पञ्चसंग्रहः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [प्राकृत ग्रन्थाङ्क-१०]

पञ्चसंग्रहः

[संस्कृतटीका-प्राकृतवृत्ति-हिन्दीभाषानुवादसहितः]

—सम्पादक—

पण्डित हीरालाल जैन, सिद्धान्तशास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

प्रथम आवृत्ति
११०० प्रति

भाद्रपद, वीर नि० २४८७
वि० सं० २०१७
अगस्त १९६०

मूल्य
पन्द्रह रुपये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

प्राकृत ग्रन्थाङ्क १०

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ. हीरालाल जैन,
एम० ए०, डी० लिट्०

डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये,
एम० ए०, डी० लिट्०

प्रकाशक

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक—बाबूलाल जैन फागुल्ल, सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

स्थापनाब्द
फाल्गुन कृष्ण ६
वीर नि० २४७०

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी सन् १९४४

सर्वाधिकार सुरक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्गीय मातेश्वरी, मातेश्वरी साहु शान्तिप्रसाद जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

JNĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ
PRAKRIT GRNTHA, No. 10

PAÑCASANGRAHA

SANSKRIT ṬĪKĀ, PRĀKRIT VṚITTI AND HINDI TRANSLATION

EDITOR

Pandit **HIRALAL JAIN** Siddhantashastri

Published by

BHĀRATĪYA JNĀNAPĪṬHA, KĀSHĪ

First Edition
1100 Copies

BHĀDRAPAD, VIRA SAMVAT 24[illegible]
V. S. 2017
AUGUST 1960

Price
Rs. 15/-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

BHĀRATĪYA JNĀNAPĪTHA Kashi

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

BHĀRATĪYA JNĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ

PRAKRIT GRANTHA No. 10

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PAURANIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRANSHA, HINDI, KANNADA, TAMIL ETC., WILL BE PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERATURE WILL ALSO BE PUBLISHED.

General Editors

Dr. Hiralal Jain, M. A., D. Litt.
Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.

Publisher

Secy., Bharatiya Jnanapitha, Durgakund Road, Varanasi

Founded on
Phalguna krishna 9.
Vira Sam. 2470

Vikrama Samvat 2000
18 Febr. 1944.

All Rights Reserved

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रधान सम्पादकोंका वक्तव्य

कर्म और कर्मफलका चिन्तन मानव जीवनकी एक प्राचीनतम प्रवृत्ति है। प्रत्येक व्यक्ति यह देखना और जानना चाहता है कि वह जो कुछ करता है उसका क्या फल होता है। इसी अनुभवके आधारपर वह यह भी निश्चित करता है कि किस फलकी प्राप्तिके लिए उसे कौन-सा काम करना चाहिए। इस प्रकार मानवीय सभ्यताका समस्त ऐतिहासिक, सामाजिक व धार्मिक चिन्तन किसी-न-किसी प्रकार कर्म और कर्मफलको अपना विषय बनाता चला आ रहा है।

कर्म व कर्मफल सम्बन्धी चिन्तनकी दृष्टिसे संसारके समस्त दर्शनोंको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—एक वे दर्शन हैं जो कर्मफल सम्बन्धी कारण-कार्य परम्पराको इस जीवन-भर तक चलनेवाली ही मानते हैं। वे यह विश्वास नहीं करते कि इस देहके विनष्ट हो जानेपर उसके कार्योंकी कोई परम्परा आगे चलती है। ऐसी मान्यता रखनेवाले दर्शनोंको भौतिकवादी कहा जाता है, क्योंकि उसके अनुसार जीवन सम्बन्धी समस्त प्रवृत्तियाँ पञ्चभूतोंके मेलसे प्राणीके गर्भ या जन्म-कालसे प्रारम्भ होती हैं और आयुके अन्तमें शरीरके विनष्ट होकर पञ्चभूतोंमें मिल जानेपर उसकी समस्त प्रवृत्तियोंका अवसान हो जाता है।

इसके विपरीत दूसरे प्रकारके वे दर्शन हैं जो मानते हैं कि पञ्चभूतात्मक शरीरके भीतर एक अन्य तत्त्व, जीव व आत्मा, विद्यमान है जो अनादि और अनन्त है। उसकी अनादि-कालीन सांसारिक यात्राके बीच किसी विशेष भौतिक शरीरको धारण करना और उसे त्यागना एक अवान्तर घटनामात्र है। आत्मा ही अपने भौतिक शरीरके साधनसे नाना प्रकारकी मानसिक, वाचिक व कायिक क्रियाओं द्वारा नित्य नये संस्कार उत्पन्न करता, उसके फलोंको भोगता और उन्हींके अनुसार एक योनिको छोड़ दूसरी योनिमें प्रवेश करता रहता है, जब तक कि वह विशेष क्रियाओं द्वारा अपनेको शुद्ध कर इस जन्म-मरण रूप संसारसे मुक्त होकर सिद्ध नहीं हो जाता। ऐसी ही मुक्ति व सिद्धि प्राप्त करना मानव-जीवनका परम उद्देश्य होना चाहिए और इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए आचार्योंने धर्मका उपदेश दिया है। इस प्रकारकी मान्यताओंको स्वीकार करनेवाले दर्शन अध्यात्मवादी कहलाते हैं।

जैन-दर्शन अध्यात्मवादी है और कर्म-सिद्धान्त उसका प्राण है। जैन कर्म-सिद्धान्तमें यह चिन्तन बड़ी गम्भीरता, सूक्ष्मता और विस्तारसे किया गया है कि विश्वके मूल तत्त्व क्या हैं और उनमें किस प्रकारके विपरिवर्तनों द्वारा प्रकृति और जीवनके नाना रूपोंकी विचित्रता उत्पन्न होती है। जैन मान्यतानुसार विश्वके मूल तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव अथवा चेतन और जड़। निर्जीव अवस्थामें पृथ्वी, जल, अग्नि व वायु ये सब एक ही जड़ तत्त्वके रूपान्तर हैं, जिसे जैन-दर्शनमें पुद्गल कहा गया है। आकाश और काल भी जड़ तत्त्व हैं, किन्तु वे उपर्युक्त पृथ्वी आदिके समान मूर्तिमान् नहीं अमूर्त्त हैं। जीव व आत्मा इन सबसे पृथक् तत्त्व है जिसका लक्षण है चेतना। वह अपनी सत्ताका भी अनुभव करता है और अपने आस-पासके पर पदार्थोंका भी ज्ञान रखता है। उसकी इन्हीं दो वृत्तियोंको जैन-सिद्धान्तमें दर्शन और ज्ञानरूप उपयोग कहा गया है। दैहिकावस्थामें यह जीव अपनी रागद्वेषात्मक मन-वचन-कायकी प्रवृत्तियों द्वारा सूक्ष्मतम पुद्गल परमाणुओंको ग्रहण करता है और उनके द्वारा नाना प्रकारके आभ्यन्तर संस्कारोंको उत्पन्न करता है। जिन सूक्ष्म परमाणुओंको जीव ग्रहण करता है उन्हें ही जैन सिद्धान्तमें कर्म कहा गया है। उनके आत्म-प्रदेशोंमें आ मिलनेकी प्रक्रियाका नाम आस्रव है, और इस मेलके द्वारा जो शक्तियाँ व आत्म-स्वरूपकी विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं उनका नाम बन्ध है। कर्म-बन्धकी इसी प्रक्रियाको विधिवत् समझाना जैन कर्म-सिद्धान्तका विषय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन-साहित्यमें कर्म-सिद्धान्तका सबसे प्राचीन प्रतिपादन पूर्वोमें किया गया था। जैन-धर्मके अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरने जो उपदेश दिया उसको उनके गणधरों व साक्षात् शिष्योंने बारह अंगोंमें विभक्त किया। इन्हें ही द्वादशांग श्रुत या जैनागम कहा जाता है। बारहवें श्रुतांगका नाम दृष्टिवाद है और उसीके भीतर विद्यमान चौदह खण्डोंका नाम 'पूर्व' है। वे पूर्व इस कारण कहलाये कि भगवान् महावीरने उन्हींका सर्वप्रथम उपदेश दिया था। नाना उल्लेखोंपरसे यह भी अनुमान किया जाता है कि उनमें भगवान् महावीरसे भी पूर्वके तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तोंका समावेश किया गया था, और इसीलिए वे पूर्व कहलाये। दुर्भाग्यसे वे पूर्व नामक ग्रन्थ कालक्रमसे विनष्ट हो गये। तथापि जैन-समाजके दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दोनों सम्प्रदाय इस सम्बन्धमें एकमत हैं कि उक्त १४ पूर्वोमें दूसरा पूर्व आग्रायणीय नामक था और उसीके भीतर कर्म-सिद्धान्तका सूक्ष्म विवेचन किया गया था। उसीके आधारसे पश्चात्कालमें दिगम्बर सम्प्रदायके क्रमशः षट्खण्डागम व उनकी धवला टीका, कषायप्राभृत और उसकी चूर्णि व जयधवला टीका, गोम्मटसार व उसकी टीकाएँ तथा प्राकृत व संस्कृत पञ्चसंग्रह नामक ग्रन्थोंकी रचना हुई, तथा श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी कर्मप्रकृति, पञ्चसंग्रह तथा उनके कर्म-ग्रन्थोंका निर्माण हुआ।

प्रस्तुत पञ्चसंग्रह नामक ग्रन्थ कर्म-सिद्धान्तकी उक्त दिगम्बर परम्पराकी एक विशिष्ट रचना है, जो हाल ही प्रकाशमें आई है। उसके पाँच प्रकरणोंके नाम हैं—जीवसमास, प्रकृति-समुत्कीर्तन, कर्मस्तव, शतक और सत्तरी। इनमेंसे प्रथम तीन अधिकारोंके नाम तो उनके विषयको सूचित करनेवाले हैं, किन्तु शतक और सत्तरी विषयको नहीं, किन्तु विषयको प्रतिपादन करनेवाली मूल सौ और सत्तर गाथाओंको देखकर रख दिये गये हैं। यथार्थतः ये नाम मूल ग्रन्थमें पाये भी नहीं जाते। शतककी प्रथम मूलगाथामें कहा गया है कि यह बन्ध-समास प्रकरण संक्षेप रूपसे कर्मप्रवाद नामक श्रुतसागरका निस्यन्दमात्र वर्णन किया गया है। इसी प्रकार सत्तरीकी प्रथम मूलगाथामें कर्ताने कहा है कि मैं यहाँ बन्धोदय व सत्त्व प्रकृति-स्थानोंको दृष्टिवादके निस्यन्द रूप संक्षेपसे कहता हूँ तथा ७१ वीं मूलगाथामें कहा है कि मैंने उक्त विषयका प्रतिपादन उस दृष्टिवादके आधारसे किया है जो दुर्गमनीय, निपुण, परमार्थ, रुचिर और बहुभङ्गी युक्त है।

श्वेताम्बर पञ्चसंग्रहमें भी अन्तिम दो प्रकरणोंके नाम ये ही शतक और सत्तरी पाये जाते हैं। उसके प्रथम तीन प्रकरणोंके नाम सत्त्वकर्मप्राभृत, कर्मप्रकृति और कषायप्राभृत ध्यान देने योग्य हैं। दिगम्बर परम्परामें कषायप्राभृत गुणधर आचार्यकृत गाथात्मक रचना है और उसमें रागद्वेषात्मक बन्धहेतुओंका ही प्ररूपण किया गया है। षट्खण्डागमकी धवला टीकाके अनुसार दृष्टिवादके द्वितीय पूर्व आग्रायणीयके पाँचवें अधिकारका नाम च्यवनलब्धि था और उसके २० पाहुडोंमेंसे चतुर्थ पाहुडका नाम था कर्म-प्रकृति। इसी कर्म-प्रकृति पाहुड़के अन्तर्गत कृति, वेदना आदि २४ अधिकार थे जिनका संक्षेप परिचय षट्खंडागम व उसकी धवला टीकामें कराया गया है और उसे संतकम्मपाहुड़ भी कहा गया है। इस प्रकार जहाँ तक कर्म-सिद्धान्तका सम्बन्ध है, न केवल विषयकी दृष्टिसे किन्तु अपने प्राचीनतम ग्रन्थोंके नामों तकमें दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायोंके बीच कोई विशेष भेद नहीं पाया जाता।

प्रस्तुत पञ्चसंग्रहके पाँचों अधिकारोंमें मूल गाथाओंकी संख्या ४४५ तथा भाष्यगाथाओंकी संख्या ८६४ कुल १३०९ दिखाई देती है। प्रथम दो अधिकारोंमें भाष्यगाथाएँ नहीं हैं, तथा दूसरे प्रकरण प्रकृति-समुत्कीर्तनमें गाथाएँ केवल १० ही है, किन्तु कर्म प्रकृतियोंको गिनानेवाला बहुत-सा अंश प्राकृत गद्यमें है, जो षट्खंडागमके प्रथम खंड जीवट्ठाणकी प्रकृति-समुत्कीर्तन नामक प्रथम चूलिकासे प्रायः जैसेका-तैसा उद्धृत किया गया है और अधिकारका नाम भी वही है। समस्त रचना गोम्मटसारसे भी खूब मेल खाती है। गोम्मटसारका भी दूसरा नाम पञ्चसंग्रह है। वहाँ भी जीवकाण्डकी प्रथम गाथामें **'जीवस्स परूवणं वोच्छं'** रूपसे अधिकारके विषयका निर्देश किया गया है जो इस संग्रहमें भी जैसाका तैसा पाया जाता है। उसी प्रकार कर्मकाण्डके आदिमें 'पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं' रूपसे जैसी अधिकारकी सूचना की गई है ठीक वैसी ही यहाँपर पाई जाती है। गोम्मटसारका तीसरा अधिकार 'बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे **थवं** वोच्छं' इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार कर्मस्तव अधिकारकी सूचनासे प्रारंभ होता है और यहाँ 'बंधोदयसंतजुयं वोच्छामि थवं णिसामेह' इस प्रतिज्ञा वाक्यके साथ। चतुर्थ अधिकार कर्मकाण्डकी ७८५ वीं गाथामें **'पयडीणं पच्चयं** वोच्छं'के प्रतिज्ञा-वाक्यसे प्रारम्भ होता है, और यहाँ 'जं पच्चइओ बंधो हवइ'। पाँचवाँ प्रकरण दोनोंमें उक्त प्रकार व्यवस्थित रीतिसे मेल नहीं खाता। गोम्मटसारकी कुल गाथा संख्या १७०५ है, जिनमेंकी बहुत-सी, विशेषत: प्रस्तुत पञ्चसंग्रहके आदिके दो-तीन भागोंमें क्रमबद्ध जैसीकी तैसी पाई जाती हैं। यही कारण है कि इसके संस्कृत टीकाकार सुमतिकीर्तिने अपनी पुष्पिकाओंमें इसे गोम्मटसार व लघुगोम्मटसार सिद्धांतके नामसे उल्लिखित किया है। जो भी हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि गोम्मटसार और प्रस्तुत पञ्चसंग्रहमें असाधारण मेल है। बीस प्ररूपणाओं द्वारा जीव समास निरूपण इन दोनोंमें समान है।

गोम्मटसारके कर्ता नेमिचंद्र सिद्धांत-चक्रवर्ती और उसका रचना-काल १०वीं शतीके सम्बन्धमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु प्रस्तुत पञ्चसंग्रहके कर्ता और उनके रचनाकालका कोई निश्चय नहीं पाया जाता। प्रस्तुत ग्रंथकी भूमिकामें सम्पादकने कल्पना की है कि इसकी एक गाथा धवला टीकामें भी पाई जाती है, इस-लिए इसकी रचना उससे पूर्वकालकी होनी चाहिए, तथा कर्मप्रकृतिके कर्ता शिवशर्म ही श्वेताम्बर पञ्चसंग्रह अंतर्गत शतकके रचयिता भी माने जाते हैं, अतः उसका रचनाकाल इसकी पूर्वावधि कहा जा सकता है, और इस प्रकार इसकी रचना विक्रमकी ५वीं और ८वीं शतीके मध्यवर्ती कालमें हुई है। किन्तु पूर्वोक्त समस्त ग्रन्थ-परम्पराके प्रकाशमें यह कल्पना निर्णायक नहीं मानी जा सकती। विषयकी दृष्टिसे सम्पादकने हमारा ध्यान इसकी कुछ गाथाओंकी ओर आकर्षित किया है। इसके प्रथम अधिकारकी गाथा १०२–१०४ में द्रव्यवेदोंकी विपरीतताका उल्लेख किया गया है, जबकि धवलाकारने स्पष्ट कहा है कि वेद अन्तर्मुहूर्तक नहीं होते, क्योंकि जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त एक ही वेदका उदय पाया जाता है। यही बात अमितगतिने अपने संस्कृत पञ्चसंग्रहकी गाथा १९१ में कही है। उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थके प्रथम प्रकरण १९३ की गाथामें सम्यग्दृष्टि जीवकी छह अधस्तन पृथिवियों, ज्योतिषी, वाणव्यंतर और भवनवासी देवों तथा समस्त स्त्री पर्यायोंके अतिरिक्त बारह मिथ्यावादोंमें भी उत्पत्तिका निषेध किया गया है। किन्तु धवला और गोम्मट-सारमें एक ही प्रकारसे उक्त निरूपण किया गया है जिसमें बारह मिथ्यावादका कोई उल्लेख नहीं है। यथार्थतः ये दोनों प्रकरण उक्त रचनाको धवलासे पूर्वकी नहीं, किन्तु उससे पश्चात्कालीन इंगित कर रहे हैं। धवलाकारने अपने पूर्ववर्ती सिद्धान्त ग्रन्थोंका यत्र-तत्र स्पष्ट उल्लेख किया है। यदि यह पञ्चसंग्रह उनके सम्मुख होता तो कोई कारण नहीं कि वे उसका उल्लेख न करते, विशेषतः बीस प्ररूपणाओंके प्रसंगमें जहाँ उन्हें शंका-समाधान रूपमें कहना पड़ा है कि उनके निर्देश सूत्रोंमें नहीं हैं। अन्य किन्हीं रचनाओंमें भी इस ग्रन्थका उल्लेख प्रकाशमें नहीं आया। संस्कृत पञ्चसंग्रहके कर्ता अमितगतिके सम्मुख कोई पूर्व-रचित पञ्चसंग्रह अवश्य था, जिसके अन्तिम दो प्रकरणोंके नाम शतक और सत्तरी थे। यह बात माने बिना उनके द्वारा स्वीकार किये गये इन नामोंकी सार्थकता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि वहाँ स्वयं इन प्रकरणोंमें सौ और सत्तर पद्योंसे अधिक पाये जाते हैं। सम्भव है प्रस्तुत पञ्चसंग्रहका मूलगाथा भाग ही उनके सम्मुख रहा हो। यदि यह बात ठीक हो तो इसके मूलरचनाकी उत्तरावधि वि० सं० १०७३ सिद्ध होती है, क्योंकि यही उस संस्कृत पञ्चसंग्रहकी रचनाका काल है। किन्तु इन दोनों रचनाओंमें जो अनेक भेद पाये जाते हैं, जिनका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थके सम्पादकने अपनी भूमिकामें किया है, उन्हें देखते हुए यह बात भी सर्वथा सन्देहके परे नहीं कही जा सकती। इस प्रकार इस रचनाका काल-निर्णय अभी भी विशेष अध्ययनकी अपेक्षा रखता है। हो सकता है कि मूलतः ये पाँचों प्रकरण पृथक् स्वतन्त्र गाथा-संग्रह थे, जिन्हें एकत्र कर व अन्य कुछ गाथाएँ जोड़कर भाष्यकारने पञ्चसंग्रह नामसे प्रगट किया हो। इस सम्बन्धमें यह भी विचार-णीय है कि जब पूर्वों व पाहुड़ोंकी परम्परामें षट्खण्डागम व धवला टीकाके काल तक कर्मसिद्धान्तका विवेचन बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बन्ध विधान इन चार अधिकारों द्वारा ही किया जाता रहा, तब यह पाँच अधिकारों-की परम्परा कब कहाँसे चल पड़ी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चसंग्रहका यह सर्व-प्रथम प्रकाशन है और उसमें उस समस्त साहित्यका समावेश कर दिया गया है जो मूल संग्रहके आश्रयसे निर्मित हुआ है। इसमें मूल और भाष्य गाथाओंके अतिरिक्त १७वीं शतीमें सुमतिकीर्ति द्वारा रचित टीका भी है, एक प्राकृत वृत्ति भी है तथा श्रीपालसुत डड्ढकृत संस्कृत पञ्चसंग्रह भी है। मूलका पाठ हिन्दी अनुवाद, पादटिप्पण तथा गाथानुक्रमणी व भूमिका परिश्रमसे तैयार किये गये हैं, जिसके लिए हम इसके सम्पादक पं० हीरालाल शास्त्रीको हृदयसे धन्यवाद देते हैं। इस प्रकाशन-के लिए ज्ञानपीठके अधिकारी अभिनन्दनीय हैं। इस ग्रन्थके द्वारा जैन कर्म-सिद्धान्तके अध्ययनको और भी अधिक गति मिलेगी, ऐसी आशा है।

शोलापुर
१५-६-६०

हीरालाल जैन,
आ० ने० उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय वक्तव्य

पन्द्रह वर्षसे भी अधिक हुए, जब मुझे प्राकृत पञ्चसंग्रहकी मूल प्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन ब्यावरसे प्राप्त हुई और तभी मैंने उसकी प्रतिलिपि कर ली। उसके पश्चात् अन्य कार्योंमें व्यस्त रहनेसे इच्छा रहनेपर भी मैं उसका अनुवाद प्रारम्भ नहीं कर सका। दिनाङ्क ८–३–५३ को अनुवाद करना प्रारम्भ किया, पर वह भी लगातार चालू नहीं रह सका और बीच-बीचमें व्यवधान पड़ता रहा। अन्तमें सन् १९५७ के दिसम्बरमें वह पूरा किया जा सका और उसके पश्चात् वह प्रकाशनार्थ भारतीय ज्ञानपीठ काशी-को सौंप दिया गया। सम्पादक-मण्डलकी स्वीकृति मिल जानेपर ग्रन्थ प्रेसमें दे दिया गया। इसी समय पञ्च-संग्रहकी अधूरी संस्कृत टीका हस्तगत हुई और उसके प्रकाशनार्थ भी सम्पादक-मण्डलको लिखा गया। उसके भी प्रकाशनकी स्वीकृति मिलनेपर मूल और अनुवादके साथ नवमें फार्मसे उसका छपना प्रारम्भ कर दिया गया। इसी बीच प्राकृतवृत्तिकी प्रति आमेरके भण्डारसे और डड्ढाकृत संस्कृत पञ्चसंग्रहकी प्रति ईडरके भण्डारसे प्राप्त हुई। दोनोंकी उपयोगिता समझकर उनके भी प्रकाशनार्थ सम्पादक-मण्डलने स्वीकृति दे दी और अनु-वादके अन्तमें दोनोंको मुद्रित करनेका निर्णय किया गया। फलस्वरूप १८ मासमें यह सम्पूर्ण ग्रन्थ मुद्रित हो सका है। इस प्रकार पूरे पन्द्रह वर्षके पश्चात् पञ्चसंग्रहके सानुवाद-प्रकाशनकी भावना पूर्ण हुई। इसके लिए मैं भारतीय ज्ञानपीठके संस्थापक, संचालक और सम्पादक-मण्डलका आभारी हूँ।

ग्रंथके सम्पादनमें पहले मूलगाथा दी गई है, उसके नीचे संस्कृत टीका (जहाँसे वह उपलब्ध हुई) और उसके नीचे हिन्दी अनुवाद दिया गया है। अमितगतिकृत मुद्रित मूल-संस्कृत पञ्चसंग्रहके जो श्लोक मूल गाथाके छायानुवाद रूप हैं, उन्हें गाथारम्भमें रोमन अङ्कोंके द्वारा टिप्पण-अङ्क देकर टिप्पणीमें सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। दूसरे ग्रन्थोंमें पायी जानेवाली या समता रखनेवाली गाथाओंके ऊपर हिन्दी अङ्कोंमें टिप्पण-अङ्क देकर उसके नीचे टिप्पणीमें स्थान दिया गया है। तदनन्तर प्रतियोंमें प्राप्त होनेवाले पाठ-भेदों-को (+) इत्यादि प्रकारके चिह्न-विशेष देकर टिप्पणीमें स्थान दिया गया है। इन तीनों प्रकारकी टिप्पणियोंमें से प्रथम प्रकारकी टिप्पणीको ग्रन्थारम्भसे लेकर ग्रन्थ-समाप्ति तक चालू रहनेके कारण प्रथम स्थान देना उचित समझा गया है।

संस्कृत टीका-गत जो पद्य जिस ग्रन्थके रहे हैं, उनकी सूचना टिप्पणीमें यथास्थान कर दी गई है। डड्ढाकृत संस्कृत पञ्चसंग्रहमें जो टिप्पणियाँ दी गई हैं, वे सब आदर्श प्रतिके हासियेपर लिखी हुई प्राप्त हुई हैं। प्रतिकी प्राचीनता, लेखनकी समता और अर्थ-बोधकी सरलता आदि कई बातें ऐसी हैं जो हमें यह कहनेके लिए प्रेरित करती हैं कि इन टिप्पणियोंको स्वयं ग्रन्थकार श्री डड्ढाने ही लिखा है।

पञ्चसंग्रह जैसे प्राचीन एवं दुर्गम ग्रन्थके अनुवादका काम कितना कठिन रहा है, यह उसके अभ्या-सियोंसे छिपा न रहेगा। मैंने शक्ति-भर पूरी सावधानी रखी है, फिर भी यदि कहीं कोई चूक रह गई हो, तो विद्वान् पाठकोंसे निवेदन है कि वे उसका सुधार कर लेवें और उससे मुझे सूचित करें।

किसी भी ग्रन्थकी प्रस्तावना लिखनेका कार्य अनुवादसे अधिक कठिन होता है। फिर जिसके कर्त्ता आदिका पता न हो, और दि० श्वे० दोनों सम्प्रदायोंमें मान्य रहा हो, तथा जिसपर दोनों सम्प्रदायके आचार्योंने स्वतन्त्र चूर्णि और टीका-टिप्पण आदि लिखे हों, उसकी प्रस्तावना लिखनेका कार्य तो और भी अधिक गुरुतर एवं समय-साध्य होता है। उसके लिए पर्याप्त समय और पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री अपेक्षित है। मेरे लिए समय और साधन दोनोंकी कमी रही है, इसलिए चाहते हुए भी मैं उन सब बातोंपर प्रकाश नहीं डाल सका हूँ, जिनपर कि उसकी आवश्यकता थी। फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण बातोंकी मैंने प्रस्तावनामें चर्चा की है और आशा करता हूँ कि इस विषयके अधिकारी विद्वान् अपेक्षित सभी मुख्य बातोंपर अनुसन्धान करेंगे और उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठकोंके सामने रखेंगे। खास तौरसे वे 'पञ्चसंग्रहकार कौन हैं, उनका समय क्या रहा,' इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नके समाधानके लिए अपनी अनुसन्धान-प्रवृत्तिको आगे बढ़ावें, ऐसा मेरा नम्र निवेदन है। प्रस्तावनाके लिए ग्रन्थको और आगे रोकना मैंने उचित नहीं समझा और इसलिए जैसी भी सम्भव हो सकी है, वैसी लिखकर उसे पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करना ही उचित समझा है।

प्रतियोंकी प्राप्तिके लिए मैं श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन ब्यावर, दि० जैन पंचायती मन्दिर, खजूर मस्जिद दिल्ली, दि० जैनशास्त्र-भण्डार ईडर और श्रीमहावीर-शास्त्र-भण्डार जयपुरके संचालकों और व्यवस्थापकोंका आभारी हूँ, जिन्होंने कि अपने-अपने भण्डारोंसे अलभ्य प्राचीन प्रतियाँ प्रस्तुत संस्करणके लिए भेजी हैं। पं० परमानन्दजी शास्त्रीने भी अपनी हस्तलिखित मूल प्रति और प्राकृतवृत्ति मिलानके लिए दी, इसलिए मैं उनका भी आभारी हूँ।

ग्रन्थके अधिकार-विभाजनमें श्री पं० कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्त-शास्त्रीने समय-समयपर समुचित परामर्श दिया और संस्कृत टीकाके भी साथमें प्रकाशनार्थ प्रेरणा दी, इसके लिए मैं उनका भी आभारी हूँ। ग्रन्थगत अनेक संदिग्ध पाठोंके निर्णय करनेमें तथा अनुवाद-सम्बन्धी कितनी ही गुत्थियोंके सुलझानेमें श्री० पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीका सदैवकी भाँति पूर्ण साहाय्य प्राप्त हुआ है, इसलिए मैं उनका भी बहुत आभारी हूँ। सिद्धान्त ग्रन्थोंके गहरे अभ्यासी श्री० ब्र० रतनचन्द्रजी नेमिचन्द्रजी सहारनपुरसे भी समय-समयपर समुचित सूचनाएँ मिलती रही हैं, और श्री० पं० महादेवजी चतुर्वेदी, व्याकरणाचार्य काशीसे अनेक संदिग्ध पाठोंके संशोधनमें भरपूर सहयोग मिला है; एतदर्थ मैं उनका भी आभारी हूँ।

ग्रन्थ-मुद्रणके समय प्रूफ़-संशोधनार्थ मुझे भारतीय ज्ञानपीठ काशीमें तीन बार लम्बे समय तक ठहरना पड़ा। उस समय मेरी सुख-सुविधा एवं मुद्रण आदिकी समुचित व्यवस्था करनेमें ज्ञानपीठके व्यवस्थापक और उनके स्टाफके समस्त सदस्योंका जो प्रेममय व्यवहार रहा है, उसके लिए मैं किन शब्दोंमें अपनी कृतज्ञता व्यक्त करूँ। सन्मति-मुद्रणालयके कम्पोजीटर्स और कर्मचारियों तकका मेरे साथ मधुर व्यवहार रहा है, इसके लिए मैं उन सबका आभारी हूँ।

श्रावक-शिरोमणि श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा संस्थापित एवं सौ० श्री रमारानी द्वारा संचालित यह भारतीय ज्ञानपीठ अपने पवित्र सदुद्देश्योंकी पूर्तिमें उत्तरोत्तर अग्रेसर रहे, यही अन्तिम मङ्गल-कामना है।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
२९-४-६०

—हीरालाल शास्त्री
साढ़ूमल (झाँसी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

मूलग्रन्थ प्रति-परिचय

अ यह प्रति श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन ब्यावरकी है। प्राकृत पञ्चसंग्रहकी जितनी भी प्रतियाँ हमें मिल सकीं, उनमें यह सबसे प्राचीन है और अत्यन्त शुद्ध भी है। हमने इसीको आधार बनाकर पञ्चसंग्रहकी प्रतिलिपि की, अतः यह हमारे लिए आदर्श-प्रति रही है।

इस आदर्श-प्रतिका आकार १३ × ५ इंच है। पत्र-संख्या ७९ है। पत्रके प्रत्येक पृष्ठपर पंक्ति-संख्या १० है और प्रत्येक पंक्तिमें अक्षर-संख्या लगभग ५० के है। इस प्रकार पञ्चसंग्रहकी समस्त गाथाओं, अंक-संदृष्टियों और गद्यांशोंका श्लोक-प्रमाण लगभग ढाई हजार है।

प्रतिके प्रथम पत्रके ऊपरी पृष्ठपर 'पंचसंग्रह ग्रंथ, दिगम्बर जैन मन्दिर गोजगढ़, राज सवाई जैपुर' लिखा है। प्रतिके अन्तमें लेखक-प्रशस्ति इस प्रकार पाई जाती है—

"संवत् १५३७ वर्षे आषाढ़ सुदि ५ श्रीमूलसंघे नंद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीशुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीजिनचन्द्रदेवास्तच्छिष्यमुनिश्रीभुवनकीर्त्तिस्तदाम्नाये खंडेलवालान्वये राउकागोत्रे साधु थेल्हा तद्भार्या थेल्हसिरी, तत्पुत्रास्त्रयो धीरा दानपूजातत्पराः साधु नापा, द्वितीय माणा, तृतीय पेता। नापा-भार्या गोगल, तत्पुत्र दासा। एतेषां मध्ये साधु नापाख्येन इदं ग्रन्थं लिखाप्य बाई गूजरिजोगु दत्तं विद्वद्भिः पठ्यमानं चिरं नंदतु ॥०॥श्री॥"

उक्त प्रशस्तिसे सिद्ध है कि यह प्रति ४८० वर्ष प्राचीन है। इसे खंडेलवाल-वंशीय एवं रांवका-गोत्रीय नापासाहुने लिखवाकर किसी ब्रह्मचारिणी बाई गूजरिजोगुके पठनार्थ प्रदान किया है। नापासाहुने अपने जन्मसे किस नगर या ग्रामको पवित्र किया, इस बातका पता उक्त प्रशस्तिसे नहीं लगता है। संभव है कि प्रशस्तिमें दी गई भट्टारक-परम्पराकी विशेष छान-बीन करनेपर नापासाहुकी जन्म-भूमि आदिका कुछ पता लग जावे।

ब यह प्रति भी श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवनकी है। उपलब्ध प्रतियोंमें प्राचीनताकी दृष्टिसे इसका दूसरा स्थान है और यह भी पूर्व प्रतिके समान शुद्ध है। हाँ, प्राकृत भाषा-सम्बन्धी अनेक पाठ-भेद इसमें पाये जाते हैं, जिन्हें हमने यथास्थान टिप्पणमें ब संकेतके साथ दिया है। दोनों प्रतियोंमें एक मौलिक अन्तर है। शतक-प्रकरणकी गाथा नं० ६ आदर्शप्रतिमें नहीं है, जबकि वह इस प्रतिमें तथा इसके अतिरिक्त उपलब्ध अन्य अनेक प्रतियोंमें पाई जाती है।

इस प्रतिका आकार लेना हम भूल गये। पत्र-संख्या १०६ है। पत्रके प्रत्येक पृष्ठपर पंक्ति-संख्या १० है और प्रत्येक पंक्तिमें अक्षर-संख्या ३४-३५ के लगभग है। इस प्रतिमें ग्रन्थ-समाप्तिकी सूचना करते हुए निम्न गद्य-सन्दर्भ भी पाया जाता है—

"इति पंचसंग्रहः समाप्तः ॥ श्री ॥ ★ ॥ वासपुधत्तं त्रयाणामुपरि नवानां मध्यं ४–५–६–७–८–९॥ श्री क्वचित्समाप्तौ चेति दृश्यते ॥७।८॥ अंतःकोडाकोडिसंज्ञा सागरोपमैककोट्युपरि कोटीकोटीमध्यं। अन्तः-कोडाकोडिसंज्ञा गोमटसारटीकायां समयूणकोडाकोडिप्पहुदि समयाहियकोडि त्ति ॥"

इस गद्य-सन्दर्भमें किसी पाठकने तीन बातोंकी जानकारी दी है—पहली बातमें वर्षपृथक्त्वका प्रमाण बतलाया है कि तीन वर्षसे ऊपर और नौ वर्षसे नीचेके मध्यवर्ती कालको वर्षपृथक्त्व कहते हैं। दूसरी बात 'इति' शब्दके सम्बन्धमें बतलाई है कि इति शब्दका प्रयोग कहीं 'समाप्ति'के अर्थमें भी देखा जाता है। तीसरी बात जो बतलाई गई है, वह एक सैद्धान्तिक मत-भेदको व्यक्त करती है। एक मतके अनुसार एक सागरोपम कोटि वर्षसे ऊपर और एक सागरोपम कोटाकोटि वर्षसे नीचेके कालको 'अन्तःकोडाकोडी' कहते हैं। किन्तु गोम्मटसारकी टीकामें एक समयाधिक कोटिवर्षसे लेकर एक समय-कम कोटाकोटिवर्ष तकके कालको अन्तः-कोडाकोडी कहा गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके पश्चात् लेखकने अपनी प्रशस्ति इस प्रकार दी है—

"॥श्री॥ संवत् १५४८ वर्षे आसो सुदि ३ शनौ सागवाडाशुभस्थाने श्री आदिनाथ चैत्यालये श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्री विजयकीर्त्ति तच्छिष्य आ० श्री अभयचन्द्रदेवाः तच्छिष्य मु० महीभूषणेन कर्मक्षयार्थं स्वयमेव लिखितं ॥छ॥ शुभं भवतु ॥"

॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥

इस प्रशस्तिमें लेखकने प्रायः सभी आवश्यक बातोंकी जानकारी दे दी है। तदनुसार यह प्रति आजसे ४६९ वर्ष पूर्वकी लिखी हुई है। इसके लेखक मुनि महीभूषणने सागवाड़ाके श्री आदिनाथ चैत्यालयमें बैठकर कर्म-क्षयके लिए स्वयं ही अपने हाथसे इसे लिखा है। इस दृष्टिसे इस प्रतिका महत्त्व बहुत अधिक है कि वह एक मुनिके हाथसे लिखी हुई है और उस समय—जब कि जीवराज पापड़ीलाल जैसे सम्पन्न गृहस्थ सहस्रों जैन मूर्त्तियोंके निर्माण और प्रतिष्ठापनमें लग रहे थे, तब एक साधु कर्म-सिद्धान्तके एक प्राचीन ग्रन्थको लिखकर कर्म-क्षयके लिए अपनी आत्म-साधनामें संलग्न थे। आज भी यह अनुकरणीय है।

उक्त प्रशस्तिके पश्चात् भिन्न वर्णकी स्याही और बारीक कलमसे लिखा है—

"मुनिश्रीरविभूषणस्तच्छिष्य ब्रह्मगणजीष्णोरिदं पुस्तकं ॥"

तत्पश्चात् भिन्न कलमसे 'ब्र० वछराज' लिखा है। तदनन्तर इसके नीचे अन्य स्याही और अन्य कलमसे लिखा है—

"इदं पुराणं आचार्य श्री रामकीर्त्तिको छै"

ऊपरके इन उल्लेखोंसे पता चलता है कि मुनि महीभूषणके पश्चात् उक्त प्रति मुनि श्री रविभूषणके शिष्य ब्रह्मगण जिष्णुके पास रही है। तदनन्तर ब्र० बच्छराजजीके अधिकारमें रही है, जो कि अपना नाम तक भी शुद्ध नहीं लिख सकते थे। उनके पश्चात् यह प्रति 'श्री रामकीर्ति' के पास रही है। उनके ज्ञान और भावनाका अनुमान इस जरा-सी पंक्तिसे ही हो जाता है कि वे पंचसंग्रह जैसे कर्म-सिद्धान्तके ग्रन्थको एक पुराण ही समझते हैं और इसपर अपना अधिकार बतलानेके लिए स्वयं ही अपने आपको "आचार्यश्री" बतलाते हुए "रामकीर्त्तिको छै" लिख रहे हैं। ये आचार्य नहीं, किन्तु कोई ऐसे भट्टारक प्रतीत होते हैं, जिन्हें उक्त पंक्तिके प्रारम्भिक 'इदं' पदका 'अस्ति' क्रियाके साथ सम्बन्ध जोड़ने और पद-विभक्तिको शुद्ध लिखनेका भी संस्कृत ज्ञान नहीं था।

उपरि-निर्दिष्ट दोनों प्रतियोंके अतिरिक्त हमें जयपुर-शास्त्र भण्डारकी दूसरी दो और प्रतियाँ भी श्री कस्तूरचन्द्रजी काशलीवालकी कृपासे प्राप्त हुईं, जो कि ऐलक सरस्वती भवनकी प्रतियोंके बादकी लिखी हुई हैं। इनमें प्रायः वे ही पाठ उपलब्ध हुए, जो कि ऊपरकी दोनों प्रतियोंमें पाये जाते हैं। किन्तु अपेक्षाकृत ये दोनों प्रतियाँ कुछ स्थलोंपर अशुद्ध लिखी दृष्टि-गोचर हुईं, अतएव उनके साथ प्रेस-कापीका मिलान करनेपर भी उनके पाठ-भेद देना हमने आवश्यक नहीं समझा और इसीलिए उन प्रतियोंका कोई परिचय भी नहीं दिया जा रहा है।

संस्कृत टीका प्रतिका परिचय

द यह प्रति श्रीदि० जैन पंचायती मन्दिर खजूर मस्जिद दिल्लीके प्राचीन शास्त्र-भण्डारकी है। यद्यपि यह प्रति अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण और खण्डित है, तथापि उक्त शास्त्रभण्डारके संरक्षकोंने उसका जीर्णोद्धार करके उसे पढ़ने और प्रतिलिपि करनेके योग्य बना दिया है। वर्तमान प्रतिमें प्रारम्भके दो पत्र तथा १८१ और १९४ का पत्र तो बिलकुल ही नहीं हैं, १८२ वाँ पत्र आधा है और २४–२५वाँ पत्र खण्डित एवं गलित है तथा बीचके कितने ही पत्रोंमें पानी लग जानेके कारण स्याही फैल गई है। इस प्रतिके अन्तमें पत्र-संख्या यद्यपि २०१ दी हुई है तथापि उसकी प्रतिलिपि करते समय ज्ञात हुआ कि प्रारम्भसे लेकर ५४वें पत्रके उत्तरार्धकी १३वीं पंक्ति तक तो पञ्चसंग्रहकी केवल मूल गाथाएँ ही लिखी गई हैं, टीकाका प्रारम्भ तो इस पत्रके उत्तरार्धकी १३वीं पंक्तिके 'खीयंति ॥३३॥ च्छ्वासाः ४ प्रत्येकशरीरं'से होता है। इस स्थलको देखते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इस प्रतिके लेखकको भी प्रस्तुत टीका प्रारम्भसे नहीं प्राप्त हुई है, प्रत्युत मूल पञ्चसंग्रह और उसकी संस्कृत टीकाकी खण्डित प्रतियाँ ही प्राप्त हुई हैं और लेखकने उसकी पूर्वापर छान-बीन किये विना ही प्रतिलिपि करते हुए एक ही सिलसिलेसे पत्रोंपर अङ्क-संख्या डाल दी है।

पत्र ५४के जिस स्थलसे टीकाका 'प्रत्येकशरीरं' अंश प्रारम्भ होता है, वह यह सूचित करता है, कि इस प्रतिके लेखकके सामने प्रस्तुत टीकाका प्रारम्भिक अंश नहीं रहा है। गहरी छान-बीनके बाद ज्ञात हुआ कि टीकाका जो अंश उपलब्ध हो रहा है, वह पञ्चसंग्रहके तीसरे कर्मस्तवकी ४० वीं गाथाके चतुर्थ चरणका टीकांश है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि पञ्चसंग्रहके समग्र प्रथम, द्वितीय प्रकरणोंकी, तथा तृतीय प्रकरणके प्रारम्भसे लेकर ४० गाथाओंकी टीका अनुपलब्ध है। फिर भी यह उचित समझा गया कि जहाँसे भी टीका उपलब्ध है, वहाँसे ही मुद्रित कर देना चाहिए। अन्यथा कालान्तरमें यह अवशिष्ट अंश भी नष्ट हो जावेगा।

उपलब्ध प्रतिका आकार ८१/२ × ४१/२ इञ्च है। पत्र-संख्या २०१ है। प्रत्येक पत्रमें पंक्तिसं० पत्र ५५ तक १६ और आगे १५ हैं। प्रत्येक पंक्तिमें अक्षर-संख्या ५०–५२ है। यदि प्रारम्भकी अप्राप्त टीकाके पत्रोंकी संख्या ५४ ही मान ली जाय तो प्रस्तुत टीका १० हजार श्लोक प्रमाण सिद्ध होती है। इसमेंसे यदि मूल ग्रन्थकी गाथाओंका लगभग दो हजार प्रमाण कम कर दिया जावे, तो टीका परिमाण आठ हजार श्लोक-प्रमाण ठहरता है। प्रस्तुत प्रतिके अन्तमें निम्न पुष्पिका पाई जाती है—

"सं० १७११ वर्षे शाके १५७६ प्रवर्तमाने आश्विन सुदि ९ सोमवासरे श्रीपट्टणानगरे चतुर्मासि कृता। श्रेयोऽर्थ कल्याणमस्तु।"

प्रतिके इस लेखनकालसे ज्ञात होता है कि यह टीका-प्रति टीका-रचनाके ठीक ९१ वर्षके बाद लिखी गई है। यद्यपि लेखक या लिखानेवालेका इसमें कोई उल्लेख नहीं है तथापि 'चतुर्मासि' कृता पदसे यह अवश्य ज्ञात होता है कि किसी अच्छे ज्ञानी साधु, भट्टारक या ब्रह्मचारीने पटना नगरमें किये हुए चौमासेमें इसे लिखा है। इस प्रतिके अक्षर अत्यन्त सुन्दर हैं और प्रायः सभी संदृष्टियोंकी रेखाएँ लाल स्याहीसे खींची गई हैं।

इस टीका-प्रतिको देखते हुए ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस प्रतिके लिखे जानेके पश्चात् किसी विद्वान्ने उसे पढ़ा है और संशोधन भी किया है जो कि हासियेपर भिन्न स्याही और भिन्न कलमसे अंकित है।

प्राकृतवृत्ति-परिचय

संस्कृत-टीकाकी प्रशस्तिके पश्चात् परिशिष्ट रूपमें जो प्राकृत वृत्ति-सहित मूल पंचसंग्रह मुद्रित (पृ० ५४७ई०) किया गया है, उसकी दो प्रतियाँ हमें उपलब्ध हुई—एक श्री कस्तूरचन्द्रजी काशलीवालकी कृपासे जयपुर शास्त्र-भण्डारकी और दूसरी पं० परमानन्दजी शास्त्रीकी कृपासे—जिसपर कि ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन बम्बईकी मुहर लगी हुई है। इन दोनोंमें पहली बहुत प्राचीन है और दूसरी एक दम अर्वाचीन। वस्तुतः इसे नवीन ही कहना चाहिए, क्योंकि यह १५-२० वर्ष पूर्वकी ही लिखी हुई है और बहुत ही अशुद्ध है। इस प्रतिके लेखकने जिस प्राचीन प्रति परसे उसकी प्रतिलिपि की, वह सम्भवतः प्राचीन लिपिको ठीक पढ़ नहीं सका और इसीलिए उसकी प्रत्येक पंक्ति अशुद्धियोंसे भरी हुई है।

जयपुर-शास्त्र-भण्डारकी जो प्रति प्राप्त हुई, उसके आधारपर ही प्राकृत-वृत्तिकी प्रेस कापी की गई है। प्रतिलिपि करते हुए हमें यह अनुभव हुआ कि जहाँ एक ओर वह प्रति उपरिनिर्दिष्ट समस्त प्रतियोंमें सर्वाधिक प्राचीन है, वहाँपर उसकी लिखावट भी अति दुरूह है। इसके लिखनेमें—खासकर नहीं पढ़े जा सकनेवाले सन्दिग्ध पाठोंके शुद्ध रूपकी कल्पना करनेमें हमें पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा है, तथापि कितने ही स्थल संदिग्ध ही रह गये और उनके स्थानपर या तो [ ] इस प्रकारके खड़े कोष्ठकके भीतर कल्पित पाठ लिखा गया, अथवा (?) ऐसे गोल कोष्ठके भीतर प्रश्नवाचक चिह्न देकर छोड़ देना पड़ा। इस प्रतिका आकार १२ × ४१/२ इंच है और पत्र संख्या ९८ है। वेष्टन नं० १००४ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिके अन्तमें जो लेखक-प्रशस्ति पाई जाती है, वह इस प्रकार है—

"संवत् १५२६ वर्षे कार्तिक सुदि ५ श्रीमूलसंघे सरस्वती गच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्रीपद्मनन्दिस्तत्पट्टे भ० श्रीशुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीजिनचन्द्रदेव भ० श्रीपद्मनन्दिसिक्ष (शिष्य) मु० मदनकीर्त्तिस्तच्छिष्य ब्र० नरसिंघ तस्योपदेशात् खण्डेलवालान्वये वाकुल्या वालगोत्रे सं पचाइण भार्या केलू तयो त्र जैता भार्या जैतश्री तयोः पुत्र जिणदास सं० पचाइणाख्येन इदं शास्त्रं लिखापितम् ।"

इस प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि इस प्रतिको ब्र० नरसिंहके उपदेशसे खण्डेलवाल वंशीय और बाकलीवाल-गोत्रीय संघी या संघपति पचाइणने लिखवाया ।

प्राकृतवृत्तिके पश्चात् (पृ० ६६३ ई०) श्रीडड्ढाकृत संस्कृत पञ्चसंग्रह मुद्रित किया गया है। इसकी एक मात्र प्रति ईडरके शास्त्र-भण्डारसे प्राप्त हुई है जिसका वेष्टन नं० २१ है। इसका आकार १२×५ इञ्च है। पत्र-संख्या ९५ है। प्रति-पृष्ठ पंक्ति-संख्या १० और प्रति-पंक्ति अक्षर-संख्या ३५-३६ है। प्रति साधारणतः शुद्ध है, किन्तु पडिमात्रा और गुजराती टाइपकी अक्षर-बनावट होनेसे पढ़नेमें दुर्गम है। कागज बाँसका और पतला है। प्रतिके अन्तमें लेखन-काल नहीं दिया है, तथापि वह लिखावट आदिकी दृष्टिसे, ३०० वर्षके लगभग प्राचीन अवश्य है।

पञ्चसंग्रह-परिचय

समस्त जैन वाङ्मयमें पंचसंग्रहके नामसे उपलब्ध या उल्लिखित ग्रन्थोंकी तालिका इस प्रकार है—

(१) **दि० प्राकृतपञ्चसंग्रह**—उपलब्ध सर्व पञ्चसंग्रहोंमें यह सबसे प्राचीन दि० परम्पराका ग्रन्थ है। मूल प्रकरणोंके समान उनके संग्रह करनेवाले और उनपर भाष्य-गाथाएँ लिखनेवाले इस ग्रन्थकारका नाम और समय अभी तक अज्ञात है। पर इतना तो निश्चय पूर्वक कहा ही जा सकता है कि श्वेताम्बराचार्य श्री चन्द्रर्षिमहत्तरके द्वारा रचे गये पंचसंग्रहसे यह प्राचीन है। मूलप्रकरणोंके साथ इसकी गाथा-संख्या १३२४ है। गद्यभाग लगभग ५०० श्लोक प्रमाण है। यह प्रस्तुत ग्रन्थ पहली बार प्रकाशित हो रहा है।

(२) **श्वे० प्राकृत पञ्चसंग्रह**—कर्मसिद्धान्तकी जिन मान्यताओंमें दिगम्बर-श्वेताम्बर आचार्योंका मतभेद रहा है, उनमेंसे श्वे० परम्पराके अनुसार मन्तव्योंको प्रकट करते हुए प्राचीन शतक आदि पाँच ग्रन्थोंका संक्षेप कर स्वतन्त्ररूपसे इस ग्रन्थकी रचना की गई है। इसमें शतक आदि मूलग्रन्थोंकी गाथाएँ नहीं हैं। समस्त गाथा-संख्या १००५ है। रचना कुछ क्लिष्ट होनेसे ग्रन्थकारने इस पर स्वोपज्ञ वृत्ति भी लिखी है। जिसका प्रमाण आठ हजार श्लोक है। इसपर मलयगिरिकी संस्कृत टीका भी है। यह ग्रंथ उक्त दोनों टीकाओंके साथ मुक्ताबाई ज्ञानमन्दिर डभोइ (गुजरात) से सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ है। श्वे० मान्यतासे इसका रचनाकाल विक्रमकी सातवीं शताब्दी है।

(३) **दि० संस्कृत पञ्चसंग्रह (प्रथम)** दि० प्रा० पञ्चसंग्रहको आधार बनाकर उसे यथासम्भव पल्लवित करते हुए आ० अमितगतिने इसकी संस्कृत श्लोकोंमें रचना की है। इसके पाँचों प्रकरणोंकी श्लोक-संख्या १४५६ है। लगभग १००० श्लोक-प्रमाण गद्य-भाग है। इसका रचना-काल वि० सं० १०७३ है। यह मूल रूपमें सर्व-प्रथम माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे सन् १९२७ में प्रकाशित हुआ और पीछे पं० वंशीधरजी शास्त्रीके अनुवादके साथ सोलापुरसे प्रकाशित हुआ है।

(४) **दि० सं० पञ्चसंग्रह** (द्वितीय)—इसकी रचना भी दि० प्रा० पञ्चसंग्रहको आधार बनाकर की गई है। इसमें अमितगतिके सं० पञ्चसंग्रहकी अपेक्षा अनेक विशेषताएँ हैं जिनका दिग्दर्शन आगे कराया जायगा। इसके रचयिता श्रीपालसुत श्री डड्ढा हैं, जो एक जैन गृहस्थ हैं। इसकी समस्त श्लोक-संख्या १२४३ है और गद्य-भाग लगभग ७०० श्लोक प्रमाण है। इसका रचनाकाल अनुमानतः विक्रमकी सत्तरहवीं शताब्दी है। इसकी एकमात्र प्रति ईडरके भण्डारसे प्राप्त हुई। यह पहली बार इसी ग्रन्थके साथ परिशिष्ट रूपमें प्रकाशित हो रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) **दि० प्रा० पञ्चसंग्रह टीका**—दि० प्राकृत पञ्चसंग्रहपर यह एकमात्र संस्कृत टीका उपलब्ध हुई है, वह भी अपूर्ण। इस प्रतिका विशेष परिचय प्रति-परिचयमें दिया जा चुका है। टीका बहुत सरल है; मूलके भावको उत्तम रीतिसे प्रकट करती है। टीकाकारने अर्थको स्पष्ट करनेके लिए मूल प्राकृत या संस्कृत पञ्चसंग्रहमें दी गई संदृष्टियोंके अतिरिक्त अनेकों और भी संदृष्टियाँ लिखी हैं। इस टीकाके रचयिता श्री सुमतिकीर्त्ति हैं, जो सम्भवतः भट्टारक थे। इस टीकाकी रचना वि० सं० १६२० के भादों सुदी १० को हुई है।

(६) **दि० प्राकृत पञ्चसंग्रह मूल और प्राकृत वृत्ति**—प्रा० पञ्चसंग्रहके मूल आधार जो पाँच मूल ग्रन्थ हैं, उनके ऊपर श्री **पद्मनन्दिने** प्राकृत वृत्तिकी रचना की है, जिसकी शैली प्राचीन चूर्णियोंके समान है। यह मूल और वृत्ति दोनों ही अपनी एक खास महत्ता रखती है, यह आगे बताया जायगा। इसके मूल प्रकरणोंकी गाथा-संख्या ४१८ है और प्राकृतवृत्तिका परिमाण लगभग ४००० श्लोक है। ये दोनों ही प्रथम बार इसी ग्रन्थके साथ परिशिष्टमें प्रकाशित हो रहे हैं। प्राकृतवृत्तिका रचनाकाल भी अभी तक अज्ञात ही है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक पंचसंग्रहोंका उल्लेख मिलता है। उनमेंसे गोम्मटसार जीवकांड-कर्मकाण्डको भी पञ्चसंग्रह कहा जाता है; उनमें भी उक्त ग्रन्थोंके समान बन्धक, बन्धव्य, आदि पाँचों विषयोंका प्रतिपादन किया गया है। दि० प्राकृत पञ्चसंग्रहके संस्कृत टीकाकार तो इसी कारण इतने अधिक भ्रमित हुए हैं कि उन्होंने प्रत्येक प्रकरणकी समाप्ति करते हुए "इति श्रीपञ्चसंग्रहापरनाम लघुगोम्मटसार टीकायां" लिखा है और टीकाके अन्तमें भी "इति श्री लघुगोम्मटसार टीका समाप्ता" लिखा है। श्री हरि दामोदर बेलंकरने अपने श्री जिनरत्न कोशमें 'पञ्चसंग्रह दीपक" नामके एक और भी ग्रन्थका उल्लेख किया है। इसके रचयिता श्री इन्द्रवामदेव हैं। उन्होंने इसे गोम्मटसारका पद्यानुवाद बतलाया है और उसके पाँचों प्रकरणोंकी श्लोक-संख्या क्रमशः ८२५ + १४१ + १२५ + १८७ + २२० दी है, जिनका योग १४९८ होता है। यह अभी तक मेरे देखनेमें नहीं आई, इसलिए इसके विषयमें इससे अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता है।

उक्त जिनरत्नकोशमें हरिभद्रसूरि-द्वारा बनाये गये एक और पञ्चसंग्रहका उल्लेख किया गया है। पर हरिभद्रसूरि-रचित ग्रन्थोंकी जितनी भी सूचियाँ मेरे देखनेमें आई हैं, उनमेंसे किसीमें भी मैंने इस ग्रन्थका नाम नहीं देखा। इसके प्रकाशमें आनेपर ही उसके विषयमें कुछ विशेष जाना जा सकेगा।

उपर्युक्त विवेचनसे इतना तो स्पष्ट है कि पञ्चसंग्रहके आधारभूत बन्ध, बन्धक आदि पाँचों द्वार जैन दर्शनके लक्ष्यभूत मुख्य विषय हैं और इसीलिए दोनों सम्प्रदायके आविर्भाव होनेके पहलेसे ही जैन आचार्योंने उनपर प्रकरण-ग्रन्थोंकी रचना की और उनके आधारपर दोनों ही सम्प्रदायोंके आचार्योंने 'पञ्चसंग्रह' यही नाम देकर उनपर तदाधारसे स्वतन्त्र ग्रन्थोंकी रचनाएँ की और अनेक टीका-टिप्पणियों और चूर्णियोंको लिखा।

जैन वाङ्मयमें पञ्चसंग्रह नामके अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमेंसे कुछ प्राकृतमें और कुछ संस्कृतमें रचे गये हैं। इनमेंसे कुछ दिगम्बराचार्योंके द्वारा रचे गये हैं और कुछ श्वेताम्बराचार्योंके द्वारा। यहाँ एक बात खास तौरसे ज्ञातव्य है और वह यह कि इन दोनों सम्प्रदायोंके द्वारा रचे गये या संकलन किये गये पंचसंग्रहोंमें जिन पाँच ग्रंथों या प्रकरणोंका संग्रह है, उनमेंसे एकाधको छोड़कर प्रायः सभी ग्रन्थों या मूल प्रकरणोंके रचयिताओंके नामादि अभी तक भी अज्ञात हैं और इसीसे उन मूल ग्रन्थोंकी प्राचीनता प्रमाणित होती है। मूलग्रन्थोंके अध्ययन करनेपर ऐसा ज्ञात होता है कि उनकी रचना उस समय हुई है, जबकि जैन-परम्परा अक्षुण्ण थी और उसमें दिगम्बर-श्वेताम्बर जैसे भेद उत्पन्न नहीं हुए थे। कालान्तरमें जब इन दोनों भेदोंने जैन-परम्परामें अपना स्थान दृढ़ कर लिया, तब पूर्व-परम्परासे चले आये श्रुतको उन्होंने अपनी-अपनी मान्यताओंके अनुरूप निबद्ध करना प्रारम्भ किया। संस्कृत-ग्रन्थोंमें जैसे तत्त्वार्थसूत्र अपनी-अपनी मान्यता-गत पाठ-भेदोंके साथ दोनों सम्प्रदायोंमें सम्मानित है और दोनों ही सम्प्रदायोंके आचार्योंने उसपर टीका-टिप्पण और भाष्यादि लिखे हैं, ठीक उसी प्रकार प्राकृत ग्रन्थोंमें हमें एकमात्र पंचसंग्रह ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध हुआ है, जिसके मूल-प्रकरण दोनों सम्प्रदायोंमें थोड़ेसे पाठ-भेदोंके साथ समानरूपसे सम्मान्य हैं और दोनों ही सम्प्रदायके आचार्योंने उसपर प्राकृत भाषामें भाष्य-गाथाएँ और चूर्णियाँ, तथा संस्कृत भाषामें टीका और वृत्ति आदि रची हैं।

दोनों सम्प्रदायोंके इन पञ्चसंग्रहोंमें निबद्ध, संकलित या संगृहीत वे पाँच ग्रन्थ या प्रकरण कौनसे हैं, पाठकोंको यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है, अतः सर्वप्रथम उन प्रकरणोंका परिचय दिया जाता है। दि० पञ्चसंग्रहके पाँचों प्रकरणोंके नाम दो प्रकारसे मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार	द्वितीय प्रकार
१ जीवसमास	१ बन्धक
२ प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन	२ बध्यमान
३ बन्धस्तव	३ बन्धस्वामित्व
४ शतक	४ बन्ध-कारण
५ सप्ततिका	५ बन्ध-भेद

श्वे० पञ्चसंग्रहके पाँचों प्रकरणोंके नाम दो प्रकारसे मिलते हैं, जो कि इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार	द्वितीय प्रकार
१ सत्कर्मप्राभृत	१ बन्धक
२ कर्मप्रकृति	२ बन्धव्य
३ कषायप्राभृत	३ बन्ध-हेतु
४ शतक	४ बन्ध-विधि
५ सप्ततिका	५ बन्ध-लक्षण

दि० परम्पराके पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकारवाले पाँचों प्रकरण संग्रहकारके बहुत पहलेसे स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें चले आ रहे थे। संग्रहकारने देखा कि उनकी रचना संक्षिप्त या सूत्रात्मक है, तो उसने पूर्व-परम्परागत ग्रन्थोंके नामोंको और उनकी गाथाओंको ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रखकर और उन गाथाओंको मूलगाथाका रूप देकर उनपर भाष्य-गाथाओंकी रचना की। दूसरे प्रकारके नाम मिलते हैं अमितगतिके पञ्चसंग्रहमें, जिन्होंने पूर्वोक्त प्राचीन प्राकृत पञ्चसंग्रहका संस्कृत भाषामें कुछ पल्लवित पद्यानुवाद किया है। परन्तु उन्होंने भी प्रत्येक प्रकरणके अन्तमें नाम वे ही प्राचीन दिये हैं। द्वितीय प्रकारके नामोंका तो उल्लेख उन्होंने ग्रन्थके प्रारम्भमें किया है। परन्तु अर्थकी दृष्टिसे द्वितीय प्रकारके नामोंकी संगति प्रथम प्रकारके नामोंके साथ बैठ जाती है। यथा—

१ बन्धक नाम कर्मके बाँधनेवालेका है, जीवसमासमें कर्म-बंध करनेवाले जीवोंका ही चौदह मार्गणा और गुणस्थानोंके द्वारा वर्णन किया गया है।

२. बध्यमान नाम बंधनेवाले कर्मोंका है; प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन नामक द्वितीय अधिकारमें उन्हीं कर्मोंकी मूलप्रकृतियों और उत्तर प्रकृतियोंका वर्णन किया गया है।

३. बन्ध-स्वामित्व और बन्धस्तव एकार्थक ही हैं।

४. शतक यह नाम वस्तुतः गुण-कृत नहीं, अपितु संख्याकृत है अर्थात् इस प्रकरणकी मूल प्राचीन-गाथाएँ १०० ही हैं, इसलिए इसे शतक कहते हैं और इसमें कर्मबन्धके कारण आदिका ही वर्णन है, अतः ये दोनों नाम भी परस्परमें संगत बैठ जाते हैं।

५. सप्ततिका यह नाम भी संख्याकृत है, क्योंकि इस प्रकरणकी मूल-गाथाएं भी ७० ही हैं और उनमें कर्मबन्धके योग, उपयोग, लेश्या आदिकी अपेक्षा भेदों या भंगोंका वर्णन किया गया है।

इस प्रकारसे दि० परम्पराके पञ्चसंग्रहोंमें पाये जानेवाले दोनों प्रकारके नामोंमें कोई मौलिक अन्तर या भेद नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु श्वे० पञ्चसंग्रहकी स्थिति कुछ भिन्न है। उसके रचयिताने स्वयं ही दोनों प्रकारके नाम दिये हैं। जिनमें प्रथम प्रकारके नामोंका उल्लेख करते हुए कहा है कि यतः इस ग्रन्थमें शतक आदि पाँच ग्रन्थ यथास्थान संक्षिप्त करके संग्रह किये गये हैं, अतः इस ग्रन्थका नाम पञ्चसंग्रह है। अथवा इसमें बन्धक आदि पाँच अधिकार वर्णन किये गये हैं, इसलिए भी इसका पंचसंग्रह यह नाम यथार्थ या सार्थक है[1]।

प्राकृत और संस्कृत पञ्चसंग्रहकी तुलना

आ० अमितगतिने अपने संस्कृत पञ्चसंग्रहकी रचना यद्यपि प्राकृत पञ्चसंग्रहके आधारपर ही की है, तथापि उनकी रचनामें अनेक विशेषताएँ या विभिन्नताएँ हैं, जिनका विश्लेषण हम निम्नप्रकारसे कर सकते हैं—

(१) मौलिक मत-भेद या विशेष मान्यताओंका निरूपण
(२) पल्लवित वैशिष्ट्य
(३) व्युत्क्रम या आगे-पीछे वर्णन
(४) स्खलन या विषयका छोड़ देना
(५) शैली-भेद
(६) कुछ विशिष्ट ग्रन्थ या ग्रन्थकारोंके उद्धरण-उल्लेख आदि

१. मौलिक मत-भेद या विशेष मान्यताओंका निरूपण

१. प्रा० पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें वेदमार्गणाके भीतर द्रव्य और भाववेदकी जीवोंके सदृशता और विसदृशता वर्णन करनेवाली दो गाथाएँ इस प्रकार हैं—

तिव्वेद एव सव्वे वि जीवा दिट्ठा हु दव्वभावादो।
ते चेव हु विवरीया संभवंति जहाकमं सव्वे ॥१०२॥
इत्थी पुरिस णउंसय वेया खलु दव्व-भावदो होंति।
ते चेव य विवरीया हवंति सव्वे जहाकमसो ॥१०४॥

दोनों गाथाएँ अर्थकी दृष्टिसे प्रायः समान हैं, इसलिए अमितगतिने दूसरी गाथाके आधारपर केवल एक श्लोक रचा है—

स्त्रीपुन्नपुंसका जीवाः सदृशाः द्रव्य-भावतः।
जायन्ते विसदृशाश्च कर्मपाकनियन्त्रिताः ॥१९२॥

ऊपरकी दोनों गाथाओंका और इस श्लोकका अर्थ एक ही है कि जीव कर्मोदयसे द्रव्य और भाववेदकी अपेक्षा स्त्री, पुरुष और नपुंसकरूपमें कभी सदृश भी होते हैं और कभी विसदृश भी होते हैं। किन्तु सं० पञ्चसंग्रहकारके सम्मुख संभवतः अन्य मान्यता भी उपस्थित थी और इसलिए प्रा० पञ्चसंग्रहमें उसके नहीं होते हुए भी उन्होंने उसे यहाँ स्थान दिया, जो कि इस प्रकार है—

नान्तर्मौहूर्त्तिका वेदास्ततः सन्ति कषायवत्।
आजन्ममृत्युतस्तेषामुदयो दृश्यते यतः ॥१९१॥

कषायोंके उदयके समान वेदोंका उदय अन्तर्मुहूर्त्तमात्र कालावस्थायी नहीं है; क्योंकि जन्मसे लेकर मरण-पर्यन्त एक जीवके एक ही वेदका उदय देखा जाता है।

---

१. **सयगाइ पंच गंथा जहारिहं जेण एत्थ संखित्ता।**
दाराणि पंच अहवा तेण जहत्थाभिहाणमिणं ॥
(श्वे० पंचसं० द्वा० १ गा० २)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें गुणस्थानोंकी प्ररूपणाके पश्चात् जीवसमासोंका निरूपण करते हुए अमितगति कहते हैं--

चतुर्दशसु पञ्चाद्यः पर्याप्तस्तत्र वर्तते।
एतच्छास्त्रमतेनाद्ये गुणस्थानद्वयेऽपरे ॥१६॥
पूर्णः पञ्चेन्द्रियः संज्ञी चतुर्दशसु वर्तते।
सिद्धान्तमततो मिथ्यादृष्टौ सर्वे गुणे परे ॥१७॥

अर्थात् इस शास्त्रके मतसे आदिके दो गुणस्थानोंमें सभी जीवसमास होते हैं। किन्तु सिद्धान्तके मतसे केवल मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही सर्वजीवसमास होते हैं।

३. दूसरे प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन नामके प्रकरणमें प्रा० पञ्चसंग्रहकारने बन्धयोग्य प्रकृतियोंकी संख्या १२० और उदय-योग्य प्रकृतियोंकी संख्या १२२ बतलाई है और यह मान्यता दि० और श्वे० सभी कर्म-विषयक ग्रन्थोंके अनुरूप ही है। पर इस स्थलपर सं० पञ्चसंग्रहकार उक्त मान्यतानुसार बन्ध और उदयके योग्य प्रकृतियोंकी संख्या बतलानेके अनन्तर लिखते हैं—

मतेनापरसूरीणां सर्वाः प्रकृतयोऽङ्गिनाम्।
बन्धोदयौ प्रपद्यन्ते स्वहेतुं प्राप्य सर्वदा ॥

कुछ आचार्योंके मतसे सभी अर्थात् १४८ प्रकृतियाँ ही अपने-अपने निमित्तको पाकर बन्ध और उदयको प्राप्त होती हैं।

४. सं० पञ्चसंग्रहके चौथे प्रकरणमें स्थितिबन्धका वर्णन करते हुए श्लोकाङ्क २०८ के नीचे एक गद्य-भाग इस प्रकारका मुद्रित है—

"**पञ्चसंग्रहाभिप्रायेणेदं; सिद्धान्ताभिप्रायेण** पुनरायुषोऽप्याबाधो नास्ति; स्थितिः कर्मनिषेचनम्"।

प्रयत्न करनेपर भी मैं इस पंक्तिके द्वारा सूचित किये गये पंचसंग्रह और सिद्धान्तके अभिप्राय-भेदको नहीं समझ सका। यहाँ प्रकरण यह है कि आयुकर्मके सिवाय शेष सात कर्मोंका जो स्थितिबन्ध हुआ है, उसमेंसे उनका आबाधा काल घटाकर जो स्थितिबन्ध शेष रहता है, उतना उनका कर्म-निषेककाल होता है। किन्तु आयुकर्मका जितना स्थितिबन्ध होता है, उतना ही कर्म-निषेककाल होता है। (देखो प्रा० पंचसंग्रह प्रकरण चौथेकी गा० ३९५)। इसी गाथाके आधारपर जो श्लोक इस स्थलपर अमितगतिने दिया है, वह भी गाथाके छायानुवाद रूप ही है। वह गाथा और श्लोक इस प्रकार हैं—

गाथा—आबाधूणट्ठिदी कम्मणिसेओ होइ सत्तकम्माणं।
ठिदिमेव णिया सव्वा कम्मणिसेओ य आउस्स ॥३९५॥

श्लोक—आबाधो नास्ति सप्तानां स्थितिः कर्मनिषेचनम्।
कर्मणामायुषो वाचि स्थितिरेव निजा पुनः ॥२०८॥

गाथाके अनुसार ही श्लोकका अर्थ भी है, फिर यह विचारणीय बात है कि इसी श्लोकके नीचे मत-भेदकी सूचक उपर्युक्त पंक्ति दी हुई है। माणिकचन्द-ग्रन्थमालासे प्रकाशित पञ्चसंग्रहमें जो उक्त श्लोक मुद्रित है उसपर गौर करनेसे पाठककी दृष्टि उसके प्रथम चरण और उसपर दी गई टिप्पणीकी ओर जानेपर इस समस्याका समाधान सहजमें हो जाता है। प्रथम चरण इस प्रकार मुद्रित है—

"**आबाधो नास्ति सप्तानां**"

ज्ञात होता है कि इसके सम्पादकको आदर्श प्रतिमें भी ऐसा ही पाठ उपलब्ध हुआ और इसीलिए इसके नीचेकी पंक्तिको प्रमाण मानकर उन्होंने भी एक टिप्पणी इसपर दे दी, जो इस प्रकार है—

"अपरसिद्धान्ताभिप्रायेण सप्तकर्मणामाबाधो नास्ति। तर्हि किमस्ति? कर्मनिषेचनम्। × × × पञ्चसंग्रहाभिप्रायेण सप्तानां कर्मणामाबाधाऽस्ति, आयुष्कर्मणोऽपि ज्ञातव्यम्।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस टिप्पणीके देनेमें सम्पादक-महोदयको उक्त श्लोकके नीचे दी गई उक्त पंक्ति ही प्रेरक हुई है और उस पंक्तिको उन्होंने सं० पञ्चसंग्रहके रचयिता आ० अमितगतिकी ही लिखी समझ ली है। पर वास्तविक स्थिति इसके प्रतिकूल है। यथार्थमें यह पंक्ति किसी पुराने पाठकने उक्त अशुद्ध पाठको शुद्ध मान करके और उस पाठपर चिह्न लगाकर टिप्पणीके तौरपर प्रतिके हासियेपर लिखी होगी। कालान्तरमें उस प्रतिकी प्रतिलिपि करनेवाले लेखकने उसे मूलका अंश समझकर उसे उक्त श्लोकके पश्चात् ही लिख दिया। इस प्रकार मूलपाठ 'आबाधो नास्ति' इस पदकी (आबाधा + ऊना + अस्ति) सन्धिको नहीं समझ सकनेके कारण जैसी भूल पुराने पाठकसे हो गई थी, ठीक वैसी ही भूल अशुद्ध पाठ और उक्त पंक्तिके सामने होनेपर इसके सम्पादकसे भी हो गई है और उसीके फलस्वरूप उन्होंने भी उक्त भ्रमोत्पादक टिप्पणी दे दी है।

इस सारे कथनका निष्कर्ष यह है कि इस स्थलपर उक्त पंक्ति न तो सं० पञ्चसंग्रहका अंग है और न उसे वहाँपर होना चाहिए। फिर उसके आधारपर दी गई टिप्पणीकी व्यर्थता तो स्वतः सिद्ध हो जाती है। पञ्चसंग्रहादि कर्मग्रन्थ और सिद्धान्तग्रन्थ सभी उक्त विषयमें एक मत हैं।

२. पल्लवित वैशिष्ट्य

प्रा० पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें ज्ञान मार्गणाके भीतर अवधिज्ञानका वर्णन केवल दो गाथाओंमें किया गया है। पर अमितगतिने उसे पर्याप्त पल्लवित किया है और षट्खण्डागम तथा धवला टीकाके आधारसे चार श्लोकोंके द्वारा कितनी ही नवीन बातोंकी सूचना की है। जैसे—तीर्थङ्कर, देव और नारकियोंके अवधिज्ञान सर्वाङ्गसे उत्पन्न होता है, किन्तु शेष जीवोंके यदि वे मिथ्यादृष्टि हैं तो नाभिके नीचे सरट, मर्कट, काक, खर आदि अशुभ चिह्नोंसे प्रकट होता है और यदि वे सम्यग्दृष्टि हैं, जो नाभिके ऊपर शंख, पद्म, श्रीवत्स आदि शुभ चिह्नोंसे उत्पन्न होता है। (देखो सं० पञ्चसंग्रह, प्रथम प्रकरण, श्लोक २२३–२२५)

इसी प्रकारका पल्लवित वैशिष्ट्य संस्कृत पञ्चसंग्रहमें अनेक स्थलोंपर दृष्टिगोचर होता है, जिसकी तालिका इस प्रकार है—

प्रथम जीवसमास प्रकरणमें अनन्तके नौ भेद (श्लोक ६–७), ग्यारह प्रतिमाएँ (श्लो० २९–३२), वर्ग, वर्गणा और स्पर्धक (श्लो० ४५–४६), गुणस्थानोंमें औदार्यकादि भाव (श्लो० ५२–५८), गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्या आदि (श्लो० ५९–९१), चतुर्गतिनिगोद (श्लो० १११), स्थावरकायिक जीवोंके आकार (श्लो० १५४) त्रसनालीके बाहिर त्रसोंकी उपस्थिति (श्लो० ११६) तैजस्कायिक और वायुकायिक आदि जीवोंकी विक्रिया आदि (श्लो० १८१–१८५), द्रव्य-भाववेदकी अपेक्षा नौ भेद (श्लो० १९३–१९४), तीनों वेदवालोंके चिह्न-विशेष (श्लो० १९५–१९८), मति, श्रुत अवधिज्ञानके भेद-प्रभेद (श्लो० २१४–२२६), कषाय, नोकषाय और क्षायोपशमिकचारित्र (श्लो० २३४–२३७), द्रव्य-भाव-लेश्याओंका वर्णन (श्लो० २५४–२६३), पञ्च लब्धियोंका विस्तृत स्वरूप (श्लो० २८६ से २८९ तक तथा इनके मध्यवर्ती विस्तृत गद्यभाग) और तीन सौ तिरेसठ पाखण्डवादियोंका विस्तृत विवेचन (श्लो० ३०९–३१६ तथा इनके बीचका गद्य भाग) किया गया है।

प्रा० पंचसंग्रहमें चारों संज्ञाओंका केवल स्वरूप ही कहा गया है। किन्तु अमितगतिने प्रकरणोपयोगी होनेसे स्वरूपके साथ ही यह भी बतलाया है कि किस गुणस्थान तक कौन-सी संज्ञा होती है। (देखो सं० पञ्चसंगह प्रक० १, श्लो० ३४५–३४७)

प्रा० पञ्चसंग्रहके दूसरे प्रकरणमें उद्वेलना-प्रकृतियोंकी केवल संख्या ही गिनाई गई है। किन्तु सं० पञ्चसंग्रहकारने साथमें उद्वेलनाका लक्षण भी दे दिया है, जो कि प्रकरणको देखते हुए बहुत उपयोगी है।

प्रा० पञ्चसंग्रहके तीसरे प्रकरणमें चूलिकाधिकारके भीतर नौ प्रश्नोंका उत्तर प्रकृतियोंके नाममात्र गिनाकर दिया गया है। किन्तु सं० पञ्चसंग्रहकारने इस स्थलपर गद्य और पद्य भागके द्वारा प्रत्येक प्रश्नका सहेतुक विस्तृत वर्णन किया है, जो कि अभ्यासी व्यक्तिके लिए अत्युपयोगी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० पञ्चसंग्रहके चौथे प्रकरणमें अमितगतिने जिन विशिष्ट विषयोंकी चर्चा की है उनका संस्कृत-टीकाकारने यथास्थान निर्देश कर उन श्लोकोंको भी अधिकांशमें उद्धृत कर दिया है। इसके लिए देखिए—गा० १०२,१०३–१०४,१४०,१७८–१७९,२१५,२२६,२८८,३०४,३६३–३९४,३९५,४६६,४८९,४९५, ५०२,५१४–५१५ और ५१६–५१९की संस्कृतटीका और हिन्दी अनुवाद।

इसी चौथे प्रकरणमें स्थितिबन्धका उपसंहार करते हुए आयुर्बन्ध-सम्बन्धी अन्य कितनी ही बातोंका वर्णन सं० पञ्चसंग्रहकारने किया है। (इसके लिए देखिए श्लो० २५८–२६०)

प्रा० पञ्चसंग्रहकी गा० ४६६ में शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके स्वामियोंका वर्णन किया गया है। गाथा-पठित 'शेष' पदसे कितनी और कौन-सी प्रकृतियाँ प्रकृतमें ग्राह्य हैं, इसका भी उहापोह अमितगतिने श्लो० २९० से २९२ तक किया है, जिसकी चर्चा उक्त गाथाके विशेषार्थमें इन श्लोकोंके उद्धरणके साथ कर दी गई है।

प्रा० पञ्चसंग्रहके पाँचवें प्रकरणमें समुद्घातगत केवलीको अपर्याप्त मानकर नामकर्मके बीस प्रकृतिक आदि उदयस्थानोंका वर्णन नहीं किया गया है। किन्तु अमितगतिने (पृष्ठ १७९ पर) **'उदये विंशतिः'** श्लोकको आदि लेकर **'अत्रैकत्रिंशतं स्थानं'** श्लोक तक समुद्घातगत केवलीके सर्व उदयस्थानोंका वर्णन किया है। (देखो, प्रकरण ५, श्लोक ५७४ से ५८३ तक)

३. व्युत्क्रम वर्णन

प्रा० पञ्चसंग्रहकारने प्रथम प्रकरणका आरम्भ करते हुए जिन बीस प्ररूपणाओंके कथनकी प्रतिज्ञा की है, उनका वर्णन भी उन्होंने अपने उसी क्रमसे किया है। तदनुसार सं० पञ्चसंग्रहकारको भी इसी क्रमसे वर्णन करना चाहिए था। गो० जीवकाण्डमें भी इसी क्रमको अपनाया गया है। किन्तु अमितगतिने ऐसा नहीं किया। उन्होंने बीस प्ररूपणाओंकी संख्या गिनाते हुए ग्रन्थके आरम्भमें (श्लो० नं० ११ में) प्राणोंको पर्याप्तियोंसे पूर्व और संज्ञाको प्राणोंके पश्चात् न गिनाकर उपयोगके पश्चात् गिनाया और उन संज्ञाओंका वर्णन भी क्रम-प्राप्त पाँचवें स्थानपर न करके अपने क्रमके अनुसार बीसवें स्थानपर किया है। इस क्रम-भंगका क्या कारण या रहस्य रहा है; वे ही जानें।

प्राकृत पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणकी अन्तिम (२००-२०६) सात गाथाओंमें वर्णित विषयका वर्णन भी संस्कृत पञ्चसंग्रहकारको प्रकरणके अन्तमें ही करना चाहिए था। पर उन्होंने वैसा न करके गाथाङ्क २०० का विषय श्लोकाङ्क ३२७ में, गा० २०१ का श्लो० ३०१ में, गा० २०२ का श्लो० २९४ में, गा० २०३ का श्लो० २९५ में, गा० २०४ का श्लो० २९६ में और गा० २०५ का श्लो० ३३९ में किया है।

प्रा० पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें लेश्याओंका समग्र वर्णन क्रम-प्राप्त लेश्या मार्गणामें न करके कितनी ही बातोंका वर्णन बीसों प्ररूपणाओंका वर्णन कर देनेके बाद प्रकरणका उपसंहार करते हुए किया है। प्रा० पञ्चसंग्रहकारका यह क्रम-भङ्ग कुछ खटकता-सा है। सं० पञ्चसंग्रहकारको भी सम्भवतः यह बात खटकी और उन्होंने उक्त दोनों स्थलोंका वर्णन एक ही क्रम-प्राप्त स्थान लेश्यामार्गणाके भीतर कर दिया। अतएव मूलग्रन्थको देखते हुए यह व्युत्क्रम-वर्णन भी अमितगतिकी बुद्धिमत्ताका सूचक हो गया है। (देखो प्रा० पञ्चसंग्रह गा० १४२-१५३ तथा १८३-१९२ और सं० पञ्चसंग्रह श्लो० २५३-२८२)

प्रा० पञ्चसंग्रहके इसी प्रथम प्रकरणमें कौन-सा संयम किस गुणस्थानमें या किस गुणस्थान तक होता है, इस बातका वर्णन गा० १९५ में किया गया है। अमितगतिको यह क्रम-भङ्ग भी खटका और उन्होंने इस विषयका वर्णन भी संयममार्गणामें यथास्थान ही कर दिया।

प्रा० पञ्चसंग्रहके तीसरे प्रकरणकी गा० ४४ में वर्णित विषयको उदीरणा वर्णन करनेके प्रारम्भमें न कहकर अन्तमें किया है। (देखो सं० पञ्चसंग्रह ३, ६०)

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

प्रा० पञ्चसंग्रहके चौथे प्रकरणमें मार्गणा, जीवसमास और गुणस्थानोंमें योग, उपयोग और प्रत्यय आदिका वर्णन जिस क्रमसे किया गया है, सं० पञ्च संग्रहकारने उस क्रममें भी कुछ परिवर्त्तन करके विषय-का संदृष्टियोंके साथ विस्तृत गद्य भागके द्वारा वर्णन किया है। दोनोंके वर्णन-क्रमका अन्तर इस प्रकार है—

प्राकृत पञ्चसंग्रह	संस्कृत पञ्चसंग्रह
१ मार्गणाओंमें जीवसमास	१ मार्गणाओंमें जीवसमास
२ जीवसमासोंमें उपयोग	२ ,, गुणस्थान
३ मार्गणाओंमें ,,	३ ,, उपयोग
४ जीवसमासोंमें योग	४ ,, योग
५ मार्गणाओंमें ,,	५ जीवसमासोंमें उपयोग
६ ,, गुणस्थान	६ ,, योग
७ गुणस्थानोंमें उपयोग	७ गुणस्थानोंमें उपयोग
८ ,, योग	८ ,, योग
९ ,, प्रत्यय	९ ,, प्रत्यय
१० मार्गणाओंमें प्रत्यय	१० मार्गणाओंमें प्रत्यय

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि प्रारम्भके छह वर्णनोंके क्रममें कुछ अन्तर है, शेष चार वर्णन समान हैं।

४. स्खलन या विषयका छोड़ देना

प्रा० पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें मिथ्यात्व गुणस्थानका स्वरूप बतलाते हुए उसके भेदादिका भी वर्णन दो गाथाओंके द्वारा किया गया है। किन्तु सं० पञ्चसंग्रहकारने उसे छोड़ दिया है। इसी प्रकार प्रथम प्रकरणकी गा० १२, २८-२९, १२८, १३५-१३६, १४२-१४३, १६२-१६६, १८३-१८४ और २०६ वीं गाथामें वर्णित विषयोंकी भी अमितगतिने कोई चर्चा नहीं की है।

प्रा० पञ्चसंग्रहके चौथे प्रकरणमें गाथाङ्क ३२५ के द्वारा यह सूचना की गई है कि ओघकी अपेक्षा बतलाया गया बन्ध-प्रकृतियोंका स्वामित्व आदेशकी अपेक्षा भी जान लेना चाहिए। मूलगाथाकी इस सूचनाके अनुसार भाष्यगाथाकारने गा० ३२६ से लगाकर गा० ३८९ तक उक्त वर्णन किया है। पर अमितगतिने इतने लम्बे सारेके-सारे प्रकरणको ही छोड़ दिया हैं, शायद उन्होंने इस स्थलपर अपने पाठकोंको इसके कथन-की आवश्यकताका ही अनुभव नहीं किया। किन्तु ग्रन्थ-समाप्तिके पश्चात् उन्हें अपनी यह बात खटकी और उन्होंने तब निम्न मंगल एवं प्रतिज्ञा-श्लोकके साथ उसकी रचना की। वह श्लोक इस प्रकार है—

नत्वा जिनेश्वरं वीरं बन्धस्वामित्वसूदनम्।
वक्ष्याम्योघविशेषाभ्यां बन्धस्वामित्वसम्भवम् ॥१॥

(सं० पञ्चसं० पृ० २२६)

प्रा० पञ्चसंग्रहके पाँचवें प्रकरणमें गतिमार्गणाके भीतर नामकर्मके उदयस्थानोंको कहकर गा० १९१ से लेकर २०७ गाथा तक इन्द्रियादि शेष तेरह मार्गणाओंमें भी नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण किया गया है। किन्तु अमितगतिने इस सर्व वर्णनको छोड़ दिया है। सम्भवतः सुगम होनेसे उन्होंने यह वर्णन अनावश्यक समझा।

इसी प्रकरणमें गा० ४३२ से लगाकर ४७१ तकको गाथाओंके विषयको भी कोई वर्णन नहीं किया है, केवल निम्नलिखित एक श्लोक द्वारा उसे आगमानुसार जान लेनेकी सूचना भर कर दी है। वह श्लोक इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वासु मार्गणास्वेवं सत्संख्याद्यष्टकेऽपि च ।
बन्धादित्रितयं नाम्नो योजनीयं यथागमम् ॥

(सं० पञ्चसं० ५,३७)

इसी पांचवें प्रकरणके अन्तमें गा० ५०१ से लगाकर ५०४ तककी जो चार मूलगाथाएँ हैं, उनका वर्णन भी सं० पञ्चसंग्रहकारने नहीं किया है ।

५. शैली-भेद

प्रा० पञ्चसंग्रहके चौथे प्रकरणमें गाथाङ्क १०५ से लगाकर गा० २०३ तक जो गुणस्थानोंमें बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्गोंका वर्णन किया गया है, उसका अधिकांश वर्णन गद्य या पद्यमें न करके अमितगतिने अङ्कसंदृष्टियोंके द्वारा ही प्रकट किया है । (इसके लिए देखिए—सं० पञ्चसंग्रहके पृ० ९२ से ११० तक दी गई संदृष्टियां ।)

६. कुछ विशिष्ट ग्रन्थ या ग्रन्थकारादिके उल्लेख

अमितगतिने सं० पञ्चसंग्रहमें कुछ श्लोक 'अपरेऽप्येवमाहुः' इत्यादि कहकर उद्धृत किये हैं; जिनसे ज्ञात होता है कि उनके सामने संस्कृत भाषामें रचित कोई कर्म-विषयक ग्रन्थ रहा है । ऐसे कुछ उल्लेखोंका निर्देश यहाँ किया जाता है—

१. तीसरे प्रकरणमें पाँचवें श्लोकके पश्चात् 'तदुक्तम्' कहकर निम्न श्लोक दिया है—

परस्परं प्रदेशानां प्रवेशो जीव-कर्मणोः ।
एकत्वकारको बन्धो रुक्म-काञ्चनयोरिव ॥६॥

मेरे उपर्युक्त अनुमानकी पुष्टि खास तौरसे इस श्लोकसे होती है; क्योंकि इसी अर्थका प्रतिपादन करने-वाली गाथा प्रा० पञ्चसंग्रहके इसी तीसरे प्रकरणमें दूसरे नम्बरपर इस प्रकार पाई जाती है—

कंचण-रुप्पदव्वाणं एयत्तं जेम अणुपवेसो त्ति ।
अण्णोण्णपवेसाणं तह बन्धं जीव-कम्माणं ॥२॥

२. चौथे प्रकरणमें बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करनेके पश्चात् अमितगति लिखते हैं—

"इति प्रधानप्रत्ययनिर्देशः । अपरेऽप्येवमाहुः—और इसके पश्चात् ३२२ से ३२५ तकके निम्न चार श्लोक दिये हैं—

मिथ्यात्वस्योदये यान्ति षोडश प्रथमे गुणे ।
संयोजनोदये बन्धं सासने पञ्चविंशतिः ॥
कषायाणां द्वितीयानामुदये निघ्नते दश ।
स्वीक्रियन्ते तृतीयानां चतस्रो देशसंयते ॥
सयोगे योगतः सातं शेषः स्वे स्वे गुणे पुनः ।
विमुच्याहारकद्वन्द्वतीर्थकृत्वे कषायतः ॥
षष्टिः पञ्चाधिका बन्धं प्रकृतीनां प्रपद्यते ।

३. पाँचवें प्रकरणमें पृ० २२२ पर उपशमश्रेणीमें नोकषायोंके उपशमनका प्ररूपण करते हुए 'शान्तः षण्ढः' इस तिरपनवें श्लोकके पश्चात् 'उक्तं च' कहकर निम्न-लिखित दो श्लोक पाये जाते हैं—

पार्यते नोदयो दातुं यसत् शान्तं निगद्यते ।
संक्रमोदययोर्यन्न तन्निधत्तं मनीषिभिः ॥५४॥
शक्यते संक्रमे पाके यदुत्कर्षापकर्षयोः ।
चतुर्षु कर्म नो दातुं भण्यते तन्निकाचितम् ॥५५॥

इन श्लोकोंमें उपशम, निधत्ति और निकाचित करणका स्वरूप बतलाया गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों प्राकृत पञ्चसंग्रहोंमें प्राचीन कौन ?

दि० और श्वे० प्राकृत पञ्चसंग्रहमेंसे प्राचीन कौन है, यह एक प्रश्न दोनोंके सामने आनेपर उपस्थित होता है। इस प्रश्नके पूर्व हमें दोनोंके पाँचों अधिकारोंके नाम जानना आवश्यक है। दि० प्रा० पञ्चसंग्रहके पाँच प्रकरण इस प्रकार हैं—

१—जीवसमास, २—प्रकृतिसमुत्कीर्तन, ३—बन्धस्तव, ४—शतक और ५—सप्ततिका।

श्वे० प्रा० पञ्चसंग्रहके ५ संग्रह या प्रकरणोंके बारेमें ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं ग्रन्थकार ही किसी एक निश्चयपर नहीं है और इसीलिए वे ग्रन्थ प्रारम्भ करते हुए लिखते हैं:—

सयगाई पंच गंथा जहारिहं जेण एत्थ संखित्ता।
दाराणि पंच अहवा तेण जहत्थाभिहाणमिणं ॥२॥

इस गाथाका भाव यह है कि यतः इस ग्रन्थमें शतक आदि पाँच प्राचीन ग्रन्थ यथास्थान यथायोग्य संक्षेप करके संगृहीत हैं, इसलिए इसका 'पञ्चसंग्रह' यह नाम सार्थक है। अथवा इसमें बन्धक आदि पाँच द्वार वर्णन किये गये हैं। इसलिए इसका 'पञ्चसंग्रह' यह नाम सार्थक है।

ग्रन्थकारके कथनानुसार दोनों प्रकारके वे पाँच प्रकरण इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार	द्वितीय प्रकार
१—शतक	१—बन्धक द्वार
२—सप्ततिका	२—बन्धव्य द्वार
३—कषायप्राभृत	३—बन्धहेतु द्वार
४—सत्कर्मप्राभृत	४—बन्धविधि द्वार
५—कर्मप्रकृति	५—बन्धलक्षण द्वार

दि० प्रा० पञ्चसंग्रहके जिन पाँच प्रकरणोंके नाम ऊपर बतलाये हैं उनके साथ जब हम श्वे० पञ्चसंग्रहोक्त पाँचों अधिकारोंका ऊपरी तौरपर या मोटे रूपसे मिलान करते हैं तो शतक और सप्ततिका यह दो नाम तो ज्यों-के-त्यों मिलते हैं। शेष तीन नहीं। किन्तु जब हम वर्णित-अर्थ या विषयकी दृष्टिसे उनका गहराईसे मिलान करते हैं तो दिगम्बरोंका जीवसमास श्वेताम्बरोंका बन्धक द्वार है और दिगम्बरोंका प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकार श्वेताम्बरोंका बन्धव्यद्वार है। इस प्रकार दो और द्वारोंका समन्वय या मिलान हो जाता है। केवल एक द्वार 'बन्धलक्षण' शेष रहता है। सो उसका स्थान दिगम्बरोंका 'बन्धस्तव' ले लेता है। इस प्रकार दोनोंके भीतर एकरूपता स्थापित हो जाती है।

दोनों प्रा० पञ्चसंग्रहोंका तुलनात्मक अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि दि० प्रा० पञ्चसंग्रहके भीतर यतः संग्रहकारने अपनेसे पूर्व परम्परागत पाँच प्रकरणोंका संग्रह किया है और यद्यपि उनपर भाष्य गाथाएँ स्वतन्त्र रूपसे रची हैं तथापि पूर्वाचार्योंकी कृतिको प्रसिद्ध रखने और स्वयं प्रसिद्धिके व्यामोहमें न पड़नेके कारण उनके नाम ज्यों-के-त्यों रख दिये हैं। दि० प्रा० पञ्चसंग्रहकारने प्रत्येक प्रकरणके प्रारम्भमें मंगलाचरण किया है। यहाँतक कि जहाँ सारा प्रकृतिसमुत्कीर्तनाधिकार गद्यरूपमें है वहाँ भी उन्होंने पद्यमें ही मंगलाचरण किया है। पर श्वे० पञ्चसंग्रहकार चन्द्रर्षिने ऐसा नहीं किया। इसका कारण क्या रहा, यह वे ही जानें। पर दोनोंके मिलानसे एक बात तो सहजमें ही हृदयपर अंकित होती है वह है दि० प्रा० पञ्चसंग्रहके प्राचीनत्वकी। दि० पञ्चसंग्रहकारने श्वे० पञ्चसंग्रहकारके समान ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की है कि मैं पञ्चसंग्रहकी रचना करता हूँ, जब कि चन्द्रर्षिने मंगलाचरणके उत्तरार्धमें ही 'वोच्छामि पंचसंगह' कहकर पञ्चसंग्रहके कथनकी प्रतिज्ञा की है। इस एक ही बातसे यह सिद्ध है कि उनके सामने दि० प्रा० पञ्चसंग्रह विद्यमान था और उसमें भी प्रायः वे ही शतक, सित्तरी आदि प्राचीन ग्रन्थ संगृहीत थे जिनका कि संग्रह चन्द्रर्षिने किया है। पर दि० पञ्चसंग्रहकी कितनी ही बातोंको वे अपनी श्वे० मान्यताके विरुद्ध देखते थे और इस कारण उससे वे सन्तुष्ट नहीं थे। फलस्वरूप उन्हें एक स्वतन्त्र पञ्चसंग्रह रचनेकी प्रेरणा प्राप्त हुई और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतभेदवाले मन्तव्योंको श्वेताम्बर आगमानुमोदित या स्वगुरु-प्रतिपादित ढंगसे उन्हें यथास्थान निबद्ध करते हुए एक स्वतन्त्र पञ्चसंग्रह निर्माण किया।

चन्द्रर्षिने जिन शतक आदि पाँच प्राचीन ग्रन्थोंको अपने पञ्चसंग्रहमें यथास्थान संक्षेपसे निबद्ध कर संगृहीत किया है उनमेंसे सौभाग्यसे चार प्रकरण स्वतन्त्र रूपसे आज हमारे सामने विद्यमान हैं और वे चारों ही अपनी टीका-चूर्णि आदिके साथ प्रकाशित हो चुके हैं। उनमेंसे कषायपाहुड दिगम्बरोंकी ओरसे और कर्मप्रकृति श्वेताम्बरोंकी ओरसे प्रकाशमें आये हैं, और दोनों सम्प्रदाय एक-एकको अपने-अपने सम्प्रदायका ग्रन्थ समझते हैं। शतक और सप्ततिका दोनों सम्प्रदायोंके भण्डारोंमें मिली हैं और दोनों ही सम्प्रदायोंके आचार्योंने उनके विवादग्रस्त विषयोंका अपनी-अपनी मान्यताओंके अनुसार मूल पाठ रखकर चूर्णि, टीका और भाष्य गाथाओंसे उन्हें समृद्ध किया है। केवल एक सत्कर्मप्राभृत ही ऐसा शेष रहता है जिसकी स्वतन्त्र रचना अभी-तक भी प्राप्त नहीं हुई है। श्वे० परम्परामें तो इसका केवल नाम ही उपलब्ध है। किन्तु दि० परम्पराके प्रसिद्ध ग्रन्थ षट्खण्डागमकी धवला टीकामें अनेक बार 'संतकम्मपाहुड'का उल्लेख आया है और उसके अनेकों उद्धरण भी मिलते हैं। श्वे० प्रा० पञ्चसंग्रहके कर्त्ता चन्द्रर्षि और धवला टीकाके कर्त्ता वीरसेनके सम्मुख यह सत्कर्मप्राभृत था। यह बात दोनोंके उल्लेखोंसे भलीभाँति सिद्ध है।

दूसरी बात जो सबसे अधिक विचारणीय है वह है शतकादि प्राचीन ग्रन्थोंके संक्षेपीकरण की। जब हम शतक आदि प्राचीन ग्रन्थोंकी गाथा-संख्याको सामने रखकर श्वे० पञ्चसंग्रहके उक्त प्रकरणकी गाथा-संख्याका मिलान करते हैं तो संक्षेपीकरणकी कोई भी बात सिद्ध नहीं होती। यह बात नीचे दी जानेवाली तालिकासे स्पष्ट है:—

दि० प्राचीन शतक गाथा	१००	श्वे० पञ्चसंग्रह शतक और सप्ततिका	
प्राचीन सप्ततिका गाथा	७०	सम्मिलित गाथा-संख्या	१५६
	१७०	परिशिष्ट गाथा	११
			१६७

प्राचीन शतक और सप्ततिकाकी गाथाओंका योग १७० होता है। श्वे० पञ्चसंग्रहमें दोनों प्रकरणों-को सम्मिलित रूपमें ही रचा गया है। पृथक्-पृथक् नहीं। तो भी उनकी गाथा-संख्या मय परिशिष्टके १६७ होती है। इस प्रकार कुल तीन गाथाओंका संक्षेपीकरण प्राप्त होता है। यहाँ इन गाथाओंके संक्षेपीकरणमें यह बात भी खास तौरसे ध्यान देनेके योग्य है कि प्राचीन शतक आदि ग्रन्थोंमें मंगलाचरण एवं अन्तिम उपसंहार आदि पाया जाता है। तब चन्द्रर्षिने वह कुछ भी नहीं किया। शतक प्रकरणमें ऐसी मंगलादिकी प्रारम्भिक गाथाएँ दो हैं और उपसंहारात्मक गाथाएँ तीन हैं। इसी प्रकार सप्ततिकामें भी प्रारम्भिक गाथा एक और उपसंहारात्मक गाथाएँ तीन हैं। इन पाँच और चार—९ गाथाओंको छोड़ देना ही संक्षेपीकरण माना जाय तो बात दूसरी है।

अब लीजिए प्राचीन कम्मपयडी (कर्मप्रकृति) के संक्षेपीकरणकी बात। सो उसकी भी जाँच कर लीजिए। दोनोंके प्रकरणोंकी गाथा-संख्या इस प्रकार है:—

प्राचीन कर्मप्रकृति गाथा-संख्या		श्वे० पञ्चसंग्रहान्तर्गत कर्मप्रकृति, गाथा-संख्या		
बन्धनकरण	१०२	,,	,,	११२
संक्रमकरण	१११	,,	,,	११९
उद्वर्त्तना०	१०	,,	,,	२०
उदीरणा०	८९	,,	,,	८६
उपशमना०	७१	,,	,,	१०२
निधत्ति	३	,,	,,	३
	३८६			४४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस मिलानसे यह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है कि प्राचीन कर्मप्रकृतिके किसी भी प्रकरणकी गाथाओं-का संक्षेपीकरण नहीं हुआ है, प्रत्युत वृद्धिकरण ही हुआ है। यहाँ यह बात खास तौरसे विचारणीय है कि जब प्राचीन कर्मप्रकृतिमें उदय और सत्ता नामके दो अधिकार पृथक् पाये जाते हैं और जिनके कि गाथा संख्या ३२ और ५७ है, उन्हें श्वे० पञ्चसंग्रहकारने क्यों छोड़ दिया ? यदि इन दोनों समूचे प्रकरणोंको छोड़ देना ही उनका संक्षेपीकरण माना जाय तो बात दूसरी है।

श्वे० पञ्चसंग्रहके अधिकारोंकी स्थिति भी बड़ी विलक्षण है। ग्रन्थकारने ग्रन्थके प्रारम्भमें जैसी प्रतिज्ञा की है उसके अनुसार शतक आदि प्राचीन पाँच ग्रन्थोंके संक्षेपीकरणवाले पाँच ही अधिकार स्पष्ट या पृथक् रूपसे इस पञ्चसंग्रहमें होने चाहिए थे। सो उनमेंसे केवल दो ही अधिकार मिलते हैं—एक कर्मप्रकृति-संग्रहके नामसे और दूसरा सप्ततिका संग्रहके नामसे। जिनका इस प्रकार विश्लेषण किया जा सकता है कि कर्मप्रकृति संग्रहमें कर्मप्रकृतिके अतिरिक्त कषायप्राभृत और सत्कर्मप्राभृतका भी संक्षेपीकरण कर लिया गया है और सप्ततिका-संग्रहमें सप्ततिका और शतकका संक्षेप किया गया है। परन्तु सप्ततिका-संग्रहमें दोनों ग्रन्थोंका संक्षेप कोई अर्थ नहीं रखता, क्योंकि ऊपर बतलाया जा चुका है कि मूल रूपसे मात्र तीन गाथाओंका ही अन्तर है। इस प्रकार शतक एवं सप्ततिकाके दो प्रकरणोंके स्वतन्त्र दो अधिकार न बना कर एकमें संग्रह करना कोई खास महत्त्व नहीं रखता है।

रह जाती है कर्मप्रकृति-संग्रहमें कषायप्राभृत आदि प्राचीन तीन ग्रन्थोंके संक्षेपीकरणकी बात। सो ग्रन्थके प्रारम्भमें की गयी प्रतिज्ञाके अनुसार उत्तम तो यही होता कि ग्रन्थकार कर्मप्रकृति, कषायप्राभृत और सत्कर्मप्राभृतके संक्षेप करनेवाले तीन ही प्रकरण पृथक् निर्माण करते और सप्ततिका शतकवाले दो प्रकरण स्वतन्त्र रचते। तो इन पाँच ग्रन्थोंके संक्षेपीकरणके रूपसे 'पंचसंग्रह' यह नाम सार्थक होता। जैसा कि दि० पंचसंग्रहकारने किया है कि प्राचीन पाँच ग्रन्थोंको संग्रह करके और उनके कठिन या संक्षिप्त स्थलोंके स्पष्टी-करणार्थ भाष्य-गाथाएँ रचकर प्राचीन नामोंको ही अधिकारोंका नाम देकर 'पंचसंग्रह' नामको चरितार्थ किया है और स्वयं अपने नाम-ख्यातिके प्रलोभनसे इतने दूर रहे हैं कि कहीं भी उन्होंने अपने नामका उल्लेख करना तो दूर रहा, संकेत तक भी नहीं किया है। अस्तु।

थोड़ी देरके लिए उक्त पाँच ग्रन्थोंका संग्रह दो ही प्रकरणोंमें मानकर सन्तोष कर लिया जाय और ग्रन्थकारकी इच्छाको ही प्रधानता दे दी जाय, पर यह जाँच करना तो शेष ही रह जाता है कि कर्मप्रकृति आदि तीन ग्रन्थोंका उन्होंने कर्मप्रकृति-संग्रहमें क्या संक्षेपीकरण किया। जहाँ तक कर्मप्रकृतिके प्रकरणोंका सम्बन्ध है हम ऊपर बतला आये हैं कि वह कुछ महत्त्व नहीं रखता।

रह जाती है कर्मप्रकृतिवाले संग्रहमें कषायप्राभृत और सत्कर्मप्राभृतके संक्षेपीकरणकी बात। सो जाँच करनेपर वैसा कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

दुर्भाग्यसे आज हमारे सामने सत्कर्मप्राभृत—जैसा कि आचार्योंके उल्लेखों आदिसे सिद्ध होता है—मूल गाथाओंके रूपमें उपस्थित नहीं है। या यह कहना अधिक उचित होगा कि उपलब्ध नहीं है। इसलिए उसके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता कि चन्द्रर्षिने अपने पञ्चसंग्रहमें उसका क्या कितना संक्षेपीकरण किया है। पर सौभाग्यसे कषायप्राभृत आज उपलब्ध ही नहीं, अपितु मूल रूपमें अपनी चूर्णि और उसकी टीका अनुवाद आदिके साथ प्रकाशित भी हो चुका है। उसको सामने रखकर जब हम पंचसंग्रहके इस कर्मप्रकृति-संग्रहवाले प्रकरणकी छानबीन करते हैं तो संक्षेपीकरणके नामपर हमें निराश ही होना पड़ता है।

यहाँ एक विशेष बात यह ज्ञातव्य है कि जहाँ दि० पञ्चसंग्रहमें पूर्व-परम्परागत प्रकरणोंकी गाथाओंको संकलित करके उनके दुरूह अर्थवाली संक्षिप्त गाथाओंके ऊपर ही अपनी भाष्य-गाथाएँ रची हैं, वहाँ चन्द्रर्षिने स्वतन्त्र रूपसे गाथाओंकी रचना करके अपने पञ्चसंग्रहका निर्माण किया है।

दि० श्वे० पञ्चसंग्रहोंके ऊपर एक दृष्टि डालनेपर सहजमें ही जो छाप हृदयपर अंकित होती है वह उनके सरल और कठिन रचे जानेकी। दि० पञ्चसंग्रहकी रचना जितनी सरल, सुस्पष्ट और सुगम है, श्वे०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चसंग्रहकी रचना उतनी ही क्लिष्ट, कठिन और दुर्गम है। जिन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थोंकी रचनाओंका मौलिक रूपसे गहराईके साथ अध्ययन किया है वे इस बातसे सहमत हैं, कि सर्वप्रथम जिन ग्रन्थोंकी रचना की गयी वह अत्यन्त सरल शैलीकी रही है। पीछे-पीछे उनमें प्रौढ़ता एवं दुर्गमता आई है। इस विषयमें कुछ ग्रन्थ अपवाद भी हैं, पर उनका उद्देश्य दूसरा था। कसायपाहुड़, सप्ततिका आदि जैसे प्रकरणोंकी रचना सर्वसाधारणको दृष्टिमें रखकर नहीं की गयी है। प्रत्युत उच्चारणाचार्य्य या व्याख्यानाचार्योंको दृष्टिमें रखकर की गयी है। दूसरे ये ग्रन्थ उस विस्तीर्ण पूर्व साहित्यके संक्षिप्त बिन्दु रूपमें रचे गये हैं जिसे कि 'श्रुतसागर' कहा जाता है। अतः कसायपाहुड़ आदि जैसे ग्रन्थ वस्तुतः एक संकेतात्मक बीजपद रूपसे रचे गये ऐसे ग्रन्थ हैं जिन्हें आचार्य अपने प्रधान शिष्योंको पढ़ाकर और कण्ठस्थ कराकर उस पर उनके द्वारा सूचित या उनमें निबद्ध या निहित रहस्यका व्याख्यान देकर अपने शिष्योंको उनका यथार्थ अर्थबोध कराते थे। ये ग्रन्थ अभ्यासियों एवं जिज्ञासुओंके लिए एक प्रकारके नोट्स थे, जिनके आधारपर वे गुरु-प्रदत्त ज्ञानका अवधारण कर लेते थे। इसलिए इस प्रकारके ग्रन्थोंको छोड़कर सर्वसाधारणके लिए जो रचनाएँ हमारे महर्षिगण करते रहे हैं वे अत्यन्त सरल भाषामें रची गयी हैं। इसे हम इस प्रकार भी विभाजन करके कह सकते हैं कि उस कालमें दो प्रकारकी रचना-शैलियाँ रही हैं। एक सूत्र-शैली, दूसरी भाष्य-शैली। कसायपाहुड, संतकम्मपाहुड़, सित्तरी आदि सूत्र-शैलीकी रचनाएँ हैं। इनके अर्थका मौखिक अवधारण जब असम्भव-सा दिखने लगा तब मौखिक भाष्य-शैलीके स्थानपर लेखन रूप भाष्य-शैली प्रतिष्ठित हुई। उस समय उन सूत्ररूप मूल गाथाओंपर भाष्य-गाथाओंकी रचना की गयी। जब उतनेसे काम चलता दिखाई नहीं दिया, तब उनपर चूर्णियोंके लिखे जानेका क्रम अपनाया गया। यह बात हमें कसायपाहुड़, सित्तरी आदिकी मूल-गाथाओं, भाष्य-गाथाओं और उनपर लिखी गयी चूर्णियों आदिके देखनेसे सहजमें ही समझमें आ जाती है।

श्वे० पञ्चसंग्रहकी रचना करते हुए चन्द्रर्षिके सम्मुख कम्मपयडी, कसायपाहुड़, संतकम्मपाहुड़, सतक और सित्तरी आदि ग्रन्थ तो थे ही, पर दि० प्रा० पञ्चसंग्रह भी था और उसके नामके आधारपर ही उन्होंने अपने ग्रन्थका पञ्चसंग्रह—यह नाम रखा। साथ ही यह प्रयत्न भी किया कि दि० पञ्चसंग्रहमें जो ग्रन्थ संग्रह करनेसे रह गये हैं उन सबका भी संग्रह इस नवीन रचे जानेवाले संग्रहमें कर दिया जाय। फलस्वरूप उन्होंने उन सबका संग्रह अपने पञ्चसंग्रहमें करना चाहा। पर उनके इस पञ्चसंग्रहमें उनके ही शब्दोंके अनुसार संग्रह तो नहीं हुआ है, हाँ, संक्षेपीकरण कहा जा सकता है। और प्रकरण-विभाजनकी दृष्टिसे हम उसे पञ्चसंग्रह न कहकर सप्त-संग्रह या अष्ट-संग्रह जरूर कह सकते हैं। अन्यथा उन्हें चाहिए यह था कि जैसे बन्धक आदि पाँच द्वारोंका स्वतन्त्र निर्माण कर "दाराणि पंच अहवा" रूप प्रतिज्ञाका निर्वाह किया है उसी प्रकार सतक, सित्तरी, संतकम्मपाहुड़, कम्मपयडी और कसायपाहुड़, इन पाँचों ग्रन्थोंके संग्रह या संक्षेपीकरण रूपसे पाँच ही संग्रह स्वतन्त्र बनाने थे और तभी ग्रन्थारम्भकी पहली और दूसरी गाथामें की हुई प्रतिज्ञाका भली-भाँति निर्वाह हो जाता। पर उन्होंने ऐसा न करके ऊपर बतलाये गये क्रमानुसार सात ही प्रकरण या द्वार रूपमें अपने पञ्चसंग्रहकी रचना की। ऐसा उन्होंने क्यों किया और संग्रह-संख्याकी विसंगति क्यों की, यह एक ऐसा प्रश्न है, जो कि ग्रन्थके किसी भी गहरे अभ्यासी और अन्वेषकके हृदयमें उठे बिना नहीं रहता और सम्भवतः यही या इसी प्रकारका प्रश्न स्वयं चन्द्रर्षिके भी मनमें उठा है और उसका उन्होंने यह लिखकर स्वशंका और शंकालुओंका समाधान किया है कि ग्रन्थकर्त्ता अपनी रचना किस ढंगसे करे या कौन-सी बात पहले और कौन-सी पीछे कहे इसके लिए वह स्वतन्त्र होता है। स्वयं ग्रन्थकार ग्रन्थारम्भकी तीसरी गाथाकी स्वोपज्ञवृत्तिमें शंका उठाते हुए कहते हैं:—

"अत्र कश्चिदाह—कोऽयं द्वारोपन्यासे क्रमः ?
यतः कर्तुरधीनत्वात् सर्वासां क्रियाणां" इत्यादि

आश्चर्यकी बात तो यह है कि यदि प्रतिज्ञात पाँच द्वारोंमेंसे किसी द्वारको आगे-पीछे कहते तब तो ग्रन्थकारकी इच्छाको प्रधानता दी जा सकती थी, पर वैसा न करके ग्रन्थकारने प्रतिज्ञात पाँचों द्वारोंमेंसे कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी द्वार पहले न कहकर योगोपयोग नामक एक और ही नये द्वारकी कल्पना ही नहीं की, सृष्टि भी कर डाली और उसकी पुष्टिमें इसी पहले द्वारकी तीसरी गाथाकी स्वोपज्ञ वृत्तिमें लिखा है, "यतः बन्धक जीवका परिज्ञान योग, उपयोगको जाने विना नहीं हो सकता, अतः उनका वर्णन पहले किया जाता है।

इससे भी अधिक लक्ष्य देनेकी बात और देखिए—प्रतिज्ञात प्रथम द्वारको रचनामें दूसरा, प्रतिज्ञात द्वितीय द्वारको रचनामें तीसरा, प्रतिज्ञात तृतीय द्वारको रचनामें चौथा और प्रतिज्ञात चतुर्थ द्वारको रचनामें पांचवाँ स्थान देकर कर्मप्रकृति और सप्ततिका संग्रह वाले दो नये ही द्वार बनाये। प्रतिज्ञात 'बन्धलक्षणद्वार' कहाँ गया? यदि कहा जाये कि इसका समावेश कर्मप्रकृति और सप्ततिका-संग्रहमें कर दिया गया है तो भी यह बात विचारणीय रहती है कि उन दो संग्रहोंको पृथक्-पृथक् क्यों रचा? एक हीमें क्यों नहीं रचा जिससे कि ग्रन्थके पाँच ही द्वार बने रहते।

इस सब स्थितिको देखते हुए कोई भी पाठक निस्संकोच इस निष्कर्षपर पहुँचेगा कि वास्तवमें ग्रन्थकार चन्द्रर्षि अपने संग्रहके नामकरणमें अटपटा गये हैं। किये गये विभागोंके अनुसार उन्हें षट्संग्रह या सप्तसंग्रह आदि किसी अन्य ही नामको रखना था। अथवा वे अधिकारोंका विभाजन ठीक तौरसे नहीं कर सके। यदि ऐसा नहीं है तो मैं पूछता हूँ कि जब शतक और सप्ततिका यह दो ग्रन्थ स्वतन्त्र थे और दोनोंका विषय भी चौथे और पाँचवें द्वारके रूपमें भिन्न-भिन्न था तो फिर दोनोंका एक ही अधिकारमें संग्रह क्यों किया गया? इस प्रकार बहुत छानबीन और ऊहापोह करनेपर भी हम किसी समुचित समाधानपर नहीं पहुँच सके। यदि अन्य कोई विद्वान् मेरे प्रश्नका समुचित समाधान करेंगे, तो मैं उनका आभारी होऊँगा।

दि० श्वे० पञ्चसंग्रह-गत कुछ विशिष्ट मत-भेद

दि० पञ्चसंग्रह और चन्द्रर्षि महत्तरके पञ्चसंग्रहमें जो मत-भेद है उनमेंसे कुछकी तालिका इस प्रकार है:—

१—दि० ग्रन्थकारोंने देवायु और नारकायुकी जघन्य स्थिति १० हजार वर्षकी और तीर्थंकरप्रकृतिकी अन्तःकोटाकोटि सागरोपमकी बतलाई है। किन्तु चन्द्रर्षिने तीर्थंकरप्रकृतिकी उक्त स्थिति-सम्बन्धी मान्यताके विरुद्ध अपने पञ्चसंग्रहमें लिखा है—

सुर-नारयाऊआणं दसवाससहस्स लघु सतित्थाणं। (५, ४६)

अर्थात् देव और नारकायुके समान वे तीर्थंकर प्रकृतिकी भी जघन्य स्थिति १० हजार वर्षकी बतलाते हैं। ग्रन्थकारकी इस मान्यतापर संस्कृत टीकाकार मलयगिरि आपत्ति करते हुए लिखते हैं—"**इह सूत्रकृता कस्याप्याचार्यस्य मतान्तरेण तीर्थंकरनाम्नो दशवर्षसहस्रप्रमाणा जघन्या स्थितिरुक्ता, अन्यथा कर्मप्रकृत्यादिषु जघन्या स्थितिस्तीर्थंकरनाम्नोऽन्तःसागरोपमकोटिकोटिप्रमाणैवोच्यते—केवलमुत्कृष्टान्तःसागरोपमकोटीकोट्याः सा संख्येयगुणहीना द्रष्टव्या। तथा चोक्तं कर्मप्रकृतिचूर्णौ—"आहारग-तित्थयरनामाणं उक्कोसओ ठिइबंधो अंतोकोडाकोडी भणिओ। तओ उक्कोसाओ ठिइबंधाओ जहन्नओ ठिइबंधो संखेज्जगुणहीणो, सो वि जहन्नओ अंतोकोडाकोडी चेव।"**

शतकचूर्णावप्युक्तं—आहारगसरीर-आहारगअंगोवंग-तित्थयरणामाणं जहण्णो ठिइबंधो अंतोसागरोवमकोडाकोडीओ, अंतोमुहुत्तमाबाहा, उक्कोसाओ संखेज्जगुणहीणो जहण्णो ठिइबंधो त्ति।

(पञ्चसंग्रह स्वो० वृ० पृष्ठ २२५।१)

२—इसी प्रकार श्वे० पञ्चसंग्रहकारने आहारक-द्विककी जघन्य स्थिति भी कर्मप्रकृति आदि प्राचीन कर्मग्रन्थोंसे भिन्न बतलाई है। यथा—

"आहारग विग्घावरणाणं किंचूणं।" (५, ४७)

स्वयं ही इसकी व्याख्या करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं—"आहारकशरीरं तदंगोपांगं विघ्नं पंचप्रकारमन्तरायं आवरणं पंचप्रकारं ज्ञानावरणं तत्सहचरितं दर्शनावरणचतुष्कमेतासां षोडशानां प्रकृतीनां किञ्चिदूनं मुहूर्तं जघन्या स्थितिः, इति गाथार्थः।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके समान आहारकशरीर और आहारकअंगोपांगकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त होती है।

चन्द्रर्षिके इस कथनपर आपत्ति करते हुए मलयगिरि लिखते हैं—"**अत्राप्याहारकद्विकस्य जघन्या स्थितिरन्तर्मुहूर्तप्रमाणोक्ता मतान्तरेण, अन्यथा सान्तःसागरोपमकोटीकोटीप्रमाणा द्रष्टव्या, कर्मप्रकृत्यादिषु तथाभिधानात्।**"

यतः मलयगिरि कर्मप्रकृतिके भी टीकाकार हैं और अन्य कर्मग्रन्थकारोंके मतोंसे भी परिचित हैं। अतः मूल पञ्चसंग्रहकारके मतके विरुद्ध होते हुए भी 'मतान्तरेण' कहकर उनकी रक्षाका प्रयत्न कर रहे हैं। जब कि मूलमें मतान्तरका कोई संकेत नहीं है।

३—निद्रादिपञ्चककी जघन्य स्थिति भी श्वे० पञ्चसंग्रहकारने पूर्ववर्ती कार्मिक ग्रन्थोंसे भिन्न ही बतलाई है। यथा—

"**सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तठिइए जं लद्धं।**" (५, ४८)

इसकी वे स्वयं व्याख्या करते हैं—

शेषाणां शेषप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धात् मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थित्या यल्लब्धं सा जघन्या स्थितिरिति। एवं च निद्रापञ्चके त्रयः सप्त भागाः ७।३—इत्यादि।

(श्वे० पञ्चसंग्रह पृ० २२६।१)

इस कथनपर आपत्ति करते हुए मलयगिरि कहते हैं—

इदं च किल निद्रापञ्चकादारभ्य सर्वासां प्रकृतीनां जघन्यस्थितिपरिमाणमाचार्येण मतान्तरमधिकृत्योक्तमवसेयं, कर्मप्रकृत्यादावन्यथा तस्याभिधानात्। कर्मप्रकृतौ तु—

वग्गुक्कोस ठिईणं मिच्छत्तुक्कोसगेणजं लद्धं।
सेसाणं तु जहन्नो पल्लासंखेज्जगेणूणो॥

सागरोपमस्य त्रयः सप्तभागाः, ते पल्यासंख्येयभागहीना निद्रापञ्चकासातवेदनीययोर्जघन्या स्थितिः।

४—द्वीन्द्रियादि जीवोंकी उत्कृष्ट स्थितिके विषयमें श्वे० पञ्चसंग्रहकार कर्मप्रकृति आदिकी पुरानी मान्यतासे विरुद्ध निरूपण करते हैं—

पणवीसा पन्नासा सय दससयताडिया इगिंदिठिई।
विगलासण्णीण कमा जायइ जेट्ठोव इयरा वा॥ (४, ५५)

अर्थात् एकेन्द्रियोंके जघन्य या उत्कृष्ट स्थितिबन्धको २५,५०,१०० और १००० से गुणित करनेपर क्रमशः द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। पर उसकी यह मान्यता पुरातन कार्मिकोंके विरुद्ध है। इसलिए मलयगिरिको भी उक्त गाथाका अर्थ करते हुए लिखना पड़ा—

कर्मप्रकृतिकारादयः पुनरेवमाहुः—एकेन्द्रियाणामुत्कृष्टः स्थितिबन्धः पञ्चविंशत्या गुणितो द्वीन्द्रियाणामुत्कृष्टः स्थितिबन्धो भवति। पञ्चाशता गुणितस्त्रीन्द्रियाणामुत्कृष्टः स्थितिबन्धः, शतेन गुणितश्चतुरिन्द्रियाणां, सहस्रेण गुणितोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणाम्। एष एवानन्तरोक्तद्वीन्द्रियादीनामात्मीय-आत्मीय उत्कृष्टस्थितिबन्धः पल्योपमसंख्येयभागहीनो जघन्यः स्थितिबन्धो वेदितव्य इति। तत्त्वं पुनरतिशयज्ञानिनो विदन्ति।" (पृष्ठ २३।२)

५—श्वे० पञ्चसंग्रहके चतुर्थ द्वारकी १८वीं गाथाकी स्वोपज्ञवृत्तिमें चतुरिन्द्रियादि-जीवोंके बन्ध-हेतुओंका प्रतिपादन करते हुए चन्द्रर्षिने तीनों वेद बतलाये हैं। किन्तु यह बात कर्मप्रकृति एवं दि० कर्मग्रन्थोंके विरुद्ध है। अतः मलयगिरि इस सम्बन्धमें लिखते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"इह संज्ञिपञ्चेन्द्रियव्यतिरिक्ताः शेषाः सर्वेऽपि संसारिणो जीवाः परमार्थतो नपुंसकाः। केवलमसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः स्त्री-पुंल्लिङ्गाकारमात्रमधिकृत्य स्त्रीवेदे [पुरुषवेदे] च प्राप्यन्ते, इति तत्र त्रयो वेदाः परिगृहीताः। चतुरिन्द्रियादीनां पुनर्बाह्यस्त्रीपुंल्लिङ्गाकारमात्रमपि न विद्यते, तत इह नपुंसकवेद एव द्रष्टव्यः।"

(श्वे० पञ्चसं० वृ० पृ० १८३।२)

इन सब उल्लेखोंको देखते हुए यह सम्भव है कि चन्द्रर्षि महत्तरने अपनी इन मान्यताओंको प्रतिष्ठित करनेके लिए ही स्वतन्त्र रूपसे अपने पञ्चसंग्रहकी रचना की और मूलमें जिन बातोंका निर्देश नहीं किया जा सका उनके स्पष्टीकरणार्थ उसपर उन्होंने स्वोपज्ञ वृत्ति लिखी।

प्राकृत पञ्चसंग्रहके कुछ महत्त्वपूर्ण पाठ

सम्यग्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न नहीं होता, इस प्रश्नके उत्तरमें एक ही गाथाके तीन रूप तीन ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। यथा—

१—छसु हेट्ठिमासु पुढवीसु जोइस-वण-भवण-सव्व-इत्थीसु।
बारस मिच्छावादे सम्माइट्ठिस्स णत्थि उववादो॥ (प्रा० पञ्चसंग्रह १, १९३)

२—छसु हेट्ठिमासु पुढवीसु जोइस-वण-भवण-सव्व-इत्थीसु।
णेदेसु समुप्पज्जइ सम्माइट्ठी दु जो जीवो॥ (धवला पुस्तक १, पृष्ठ २०९)

३—हेट्ठिमछप्पुढवीणं जोइसि-वण-भवण-सव्व-इत्थीणं।
पुण्णिदरे ण हि सम्मो, ण सासणो णारयापुण्णे॥ (गो० जीव० गाथा १२७)

उक्त तीनों ही गाथाओंमें पूर्वार्द्धके प्रायः एक रहते हुए भी उत्तरार्धमें पाठ-भेद है। जिनमेंसे संख्या १ और २ की गाथाओंमें स्पष्टरूपसे एक ही बात बतलाई गयी है कि सम्यग्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न नहीं होता। फिर भी धवलाकी गाथाके पाठसे सम्यक्त्वीके एकेन्द्रियादि असंज्ञी पञ्चेन्द्रियान्त तिर्यञ्चोंमें उत्पादका निषेध-परक कोई पद नहीं है। यह एक कमी उस गाथामें रह गयी है, या पाई जाती है। पर यह गाथा धवलाकारने अपने कथनकी पुष्टिमें उद्धृत किया है।

गो० जीवकाण्डकी गाथा उसके कर्त्ता द्वारा रची गयी है। यद्यपि उसका आधार पहली या दूसरी गाथा ही रही है। फिर भी उन्होंने उसे अपने ढंगसे वर्णन करते हुए स्वतन्त्र रूपसे ही रचा है और इसीलिए उत्तरार्धमें खासकर 'ण सासणो णारयापुण्णे' यह पद जोड़ा है। इस विशेषताके प्रतिपादन करनेपर भी उसके तीन चरणोंमें जो बात कही गयी है उससे सम्यक्त्वी जीवके एकेन्द्रियादि जीवोंमें उत्पन्न होनेका निषेध नहीं होता। यह एक कमी उसमें भी रह गयी है।

पर प्राकृत पञ्चसंग्रहका जो पाठ है वह अपने अर्थको सामस्त्यरूपसे प्रकट करता है और उसके 'बारस मिच्छावादे' पदके द्वारा उन सब तिर्यंचोंका निषेध कर दिया गया है जिनमें कि बद्धायुष्क भी सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होता है। इस दृष्टिसे प्रा० पञ्चसंग्रहकी इस गाथाका यह पाठ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। आचार्य अमितगतिने प्राकृत पञ्चसंग्रहका ही संस्कृत रूपान्तर किया है। उन्होंने उक्त गाथाका जो रूपान्तर किया है, वह इस प्रकार है—

निकायत्रितये पूर्वे श्वभ्रभूमिषु षट्स्वधः।
वनितासु समस्तासु सम्यग्दृष्टिर्न जायते॥ (सं० पञ्चसंग्रह १, २९७)

इस श्लोकको देखते हुए ऐसा ज्ञात होता है कि उनके सामने प्रा० पञ्चसंग्रहवाला पाठ न रहकर धवलावाला पाठ रहा है। अन्यथा यह सम्भव नहीं था कि वे इतनी बड़ी बात यों ही छोड़ जाते।

दि० श्वे० शतकगत पाठभेद

१—श्वे० शतकमें 'तेरस चउसु' आदि १३ वें नम्बरकी गाथा न दि० मूल शतकमें है और न प्राकृत सभाष्य शतकमें ही।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२—दि० श्वे० मूल शतकोंमें जहाँ कहीं पाठ-भेद हैं वह पाठ-भेद प्राय: सर्वत्र सभाष्य शतकसे समता रखता है, मूल शतकसे नहीं।

३—श्वे० शतकमें 'बंधट्ठाणा चउरो' इत्यादि गाथा गाथांक २६ के बाद मुद्रित तो है पर उसपर अंक-संख्या नहीं दी, जिससे ज्ञात होता है कि वह मूल-बाह्य करार दी गयी है। दि० शतकमें यह गाथा नहीं पाई जाती।

४—दि० शतककी गाथा 'अट्ठविह सत्त छब्बंधगा'का उत्तरार्ध श्वे० शतककी गाथा-संख्या २७से मिलता है। किन्तु सभाष्य शतकमें उसके स्थानपर नया ही पाठ है।

५—श्वे० शतकमें पाई जानेवाली गाथा-संख्या ३८ और ३९ का सभाष्य शतकमें पता भी नहीं है।

६—श्वे० शतकमें संख्या ५२, ५३ पर जो गाथाएँ पाई जाती हैं उनके स्थानपर दिगम्बर शतक और सभाष्य शतकमें तदर्थ-सूचक अन्य ही गाथाएँ पाई जाती हैं।

७—श्वे० शतकमें गाथांक ५३ के बाद जो 'बारस अंतमुहुत्ता' आदि गाथा दी है और जिसपर चूर्णि भी मुद्रित है; आश्चर्य है कि उसे मूल गाथामें क्यों नहीं गिना गया? दि० शतकमें वह मूलरूपसे ही दी है और सभाष्य शतकमें भी।

८—श्वे० शतकमें संख्या ७२, ७३ पर पाई जानेवाली दोनों गाथाएँ दि० शतकसे समता रखती हैं, पर सभाष्य दि० शतकसे नहीं। वहाँ दोनों गाथाएँ अर्थ-साम्य रखते हुए भी पाठ-भेदसे युक्त हैं। यह भी एक विचारणीय बात है। (देखो गाथा ७०, ७१ मूल)

९—श्वे० शतककी गाथा संख्या ८० दिगम्बर शतककी इसी गाथासे समता रखती है पर सभाष्य शतकमें २० के स्थानपर मिश्रको मिलाकर सर्वघातिया २१ प्रकृतियाँ बतलाई गयी है। यह पाठभेद भी उल्लेखनीय है कि प्राकृतवृत्तिमें मिश्रको क्यों नहीं गिनाया गया।

१०—श्वे० शतकमें गाथा ८१ में देशघाती प्रकृतियाँ २५ ही बतलाई हैं, यही बात दि० मूल शतक-में भी है। पर सभाष्य शतकमें अन्तर स्पष्ट है। वहाँ पर २६ देशघातियाँ प्रकृतियाँ बतलाई गयी हैं। यह भी अन्तर महत्त्वपूर्ण है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर सप्ततिकागत पाठभेद

१—गाथांक ७ दिगम्बर श्वे० दोनों सप्ततिकाओंमें समान है, पर सभाष्य सप्ततिकामें उसके स्थानपर 'णव छक्कं' आदि नवीन ही गाथा पायी जाती है।

२—गाथांक ८के विषयमें दोनों समान हैं। किन्तु सभाष्य सप्ततिकामें उसके स्थानपर नवीन गाथा है।

३—गा० ९ की दिगम्बर श्वे० मूल सप्ततिकासे सभाष्य सप्ततिकामें अर्द्ध-समता और अर्द्ध-विषमता है।

४—गा० १० (गोदेसु सत्त भंगा) सभाष्य सप्ततिका और दि० मूल सप्ततिकामें है। पर श्वेताम्बर सप्ततिकामें वह नहीं पायी जाती है।

५—गा० १५ दि० श्वे० सप्ततिकामें समान है। पर सभाष्य सप्ततिकामें भिन्न है।

६—श्वे० सप्ततिकाके हिन्दी अनुवाद एवं सम्पादक 'दस बावीसे' इत्यादि गाथा १५को तथा 'चत्तारि' आदि णव बंधएसु इत्यादि गा० १६ को मूल गाथा स्वीकार करते हुए भी उन्हें सभाष्य सप्ततिकामें मूल गाथा माननेसे क्यों इनकार करते हैं? यह विचारणीय है।

७—गाथा १७ का उत्तरार्ध दि० श्वे० सप्ततिकामें समान है। पर सभाष्य सप्ततिकामें भिन्न है।

८—'एक्कं च दोणि व तिण्णि' इत्यादि गाथांक १८ न श्वे० सप्ततिकामें है और न सभाष्य सप्त-तिकामें। इसके स्थानपर श्वे० सप्ततिकामें 'एत्तो चउबंधादि' इत्यादि गाथा पाई जाती है। पर सभाष्य सप्ततिकामें तत्स्थानीय कोई भी गाथा नहीं पायी जाती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९—श्वे० सचूर्णि सप्ततिकामें मुद्रित गा० २६, २७ न दि० सप्ततिकामें ही पाई जाती है और न सभाष्य सप्ततिकामें। यह बात विचारणीय है।

१०—दि० सप्ततिकामें गा० २९ 'तेरस णव चदु पणं' यह न तो श्वे० सप्ततिकामें पाई जाती है और न सभाष्य सप्ततिकामें ही। मेरे मतसे इसे मूल गाथा होनी चाहिए।

११—'सत्तेव अपज्जत्ता' इत्यादि ३५ संख्यावाली गाथाके पश्चात् श्वे० और दि० सप्ततिकामें 'णाणं-तराय तिविहमवि' इत्यादि तीन गाथाएँ पाई जाती हैं किन्तु वे सभाष्य सप्ततिकामें नहीं। उनके स्थानपर अन्य ही तीन गाथाएँ पाई जाती हैं। जिनके आद्य चरण इस प्रकार हैं—

णाणावरणे विग्घे (३३) णव छक्कं चत्तारि य (३४) और उवरयबन्धे संते (३५)।

१२—श्वे० सचूर्णि सप्ततिकामें गा० ४५ के बाद 'बारस पण सट्ठसया' इत्यादि गाथा अन्तर्भाष्य गाथाके रूपमें दी है। साथमें उसकी चूर्णि भी दी है। यही गाथा दि० सप्ततिकामें भी सवृत्ति पाई जाती है। फिर इसे मूल गाथा क्यों नहीं माना जाय?

१३—गा० ४५ दि० सप्ततिको और सभाष्य सप्ततिकामें पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध व्युत्क्रमको लिये हुए है। पर ध्यान देनेकी बात यह है कि वह श्वे० सचूर्णि सप्ततिकाके साथ दि० सप्ततिकामें एक-सी पाई जाती है।

सत्कर्मप्राभृत

संतकम्मपाहुड या सत्कर्मप्राभृत क्या वस्तु है यह प्रश्न अद्यावधि विचारणीय बना हुआ है। श्वे० ग्रन्थकारों और चूर्णिकारोंने इनके नामका उल्लेख मात्र ही किया है। पर दि० ग्रन्थकारोंमेंसे धवला और जयधवलाकारने बीसों बार संतकम्मपाहुडका उल्लेख किया है और अनेकों स्थलोंपर कसायपाहुड आदिके अभि-प्रायोंसे उसकी विभिन्नताका भी निर्देश किया है। जिससे ज्ञात होता है कि धवला और जयधवलादिके रचे जानेके समय तक यह ग्रन्थ उपलब्ध था और सैद्धान्तिक-परम्परामें अपना विशिष्ट स्थान रखता था।

यहाँ हम कुछ अवतरण दे रहे हैं जिनसे सिद्ध है कि संतकम्मपाहुडका उपदेश कसायपाहुडके उपदेशसे कितने ही विषयोंमें भिन्न रहा है—

१—धवला पुस्तक १ पृ० २१७ पर नवम गुणस्थानमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली १६ और ८ प्रकृ-तियोंके मत-भेदका उल्लेख आया है। धवलाकार कहते हैं कि संतकम्मपाहुडके उपदेशानुसार पहले सोलह प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है और पीछे आठ प्रकृतियोंकी। पर कसायपाहुडका उपदेश है कि पहले आठ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है, पीछे सोलहकी। इस बातकी शंकाका उद्भावन करते हुए धवलाकार कहते हैं—

"एसो संतकम्मपाहुडउवएसो। कसायपाहुड उवएसो पुण" इत्यादि

(धवला पुस्तक १, पृ० २१७)

२—पुनः शिष्य पूछता है कि इन दोनोंमेंसे किसे प्रमाण माना जाय? संतकम्मपाहुड और कसाय-पाहुड इन दोनोंको ही सूत्र रूपसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है, इन दोनोंमेंसे कोई एक ही सूत्र रूपसे या जिनोक्त वचनरूपसे प्रमाण माना जा सकता है?

आयरियकहियाणं संतकम्म-कसायपाहुडाणं कथं सुत्तत्तणमिदि चे ण···इत्यादि

(धवला पुस्तक १, पृ० २२१)

अन्तमें धवलाकार समाधान करते हुए लिखते हैं कि आज वर्तमानकालमें केवली या श्रुतकेवली नहीं हैं जिनसे कि उक्त मत-भेदमेंसे किसी एकको सच्चाई या सूत्रताका निर्णय किया जा सके। दोनों ही ग्रन्थ वीतराग आचार्योंके द्वारा प्रणीत हैं, अतः दोनोंका ही संग्रह करना चाहिए।

धवलाकारके इस निर्णयसे दो बातें स्पष्ट रूपसे सिद्ध होती हैं—एक तो उनके सामने संतकम्मपाहुडके या उसके उपदेशके प्राप्त होनेकी और दूसरी बात सिद्ध होती है उसकी प्रामाणिकताकी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३—एत्थ एदेसिं चउण्हमुवक्कमाणं जहा संतकम्मपयडिपाहुडे परूविदं, तहा परूवेयव्वं। जहा महाबंधे परूविदं, तहा परूवणा एत्थ किण्ण कीरदे ? ण, तस्स पढमसमयबन्धम्मि चेव वावारादो।

(धवला क पत्र १२६७)

४—संतकम्मपाहुडके विषयमें स्वयं ही शंका उठाते हुए धवलाकार लिखते हैं—

"पुणो एदेसिं चउण्हं पि बन्धणोवक्कमाणं अत्थो जहा संतकम्मपाहुडम्मि उत्तो तहा वत्तव्वो ? संतकम्मपाहुडमिदि णाम कदमं ? महाकम्मपयडिपाहुडस्स चउवीस-अणिओगद्दारेसु चउत्थ-छट्ठम-सत्तमणियोगद्दाराणि दव्व-काल-भाव-विहाणणामधेयाणि। पुणो तहा महाकम्मपयडिपाहुडस्स पंचमो पयडिणामाहियारो। तत्थ चत्तारि अणियोगद्दाराणि अट्ठकम्माणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेससत्ताणि परूविय सूचिदुत्तरपयडिट्ठिदिअणुभागपदेससत्तादो। एदाणि संतकम्मपाहुडं णाम।

(धवला पुस्तक १५, पंजिका पृ० १८, परि०)

५—इसी बातको स्पष्ट करते हुए जयधवलामें भी लिखा है—

"संतकम्ममहाहियारे कदि-वेदणादि चउवीसणियोगद्दारेसु पडिबद्धेसु उदओ णाम अत्थाहियादो ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणं पयडिसमणिण्णयाणमुक्कस्साणुक्कस्सजहण्णाजहण्णुदयपरूवणे य बावारो।"

(जयधवला अ० ५१२)

'भवोपग्गहिया' पदकी व्याख्या करते हुए जयधवलाकार लिखते हैं—**'संतकम्मपाहुडे वित्थारेण भणिदो।'**

(जय० मैनु० पृ० ६५८)

६—वर्गणा खण्डके पश्चात् धवलाकारने जिन १८ अनुयोगद्वारोंका वर्णन किया है उनके ऊपर किसी अज्ञात आचार्यने पंजिका नामक एक वृत्तिको रचा है। उसे रचते हुए वे कहते हैं—**"पुणो तेहिंतो सेसट्ठारसाणियोगद्दाराणि संतकम्मे सव्वाणि परूविदाणि, तो वि तस्साइगंभीरत्तादो अत्थविसमपदाणमत्थे थोरुच्चेयण पंजियसरूवेण भणिस्सामो।" (धवला पुस्तक १५, पृष्ठ १)**

इन उल्लेखोंसे सिद्ध होता है कि महाकम्मपयडिपाहुडके जिन शेष १८ अनुयोगद्वारोंका षट्खण्डागममें वर्णन नहीं किया जा सका उन्हींके वर्णन करनेवाले मूलसूत्ररूप ग्रन्थका नाम सन्तकम्मपाहुड रहा है।

७—यह ग्रन्थ गद्य-सूत्रोंमें रहा, या पद्य-गाथाओंमें, यह एक प्रश्न पाठकोंके हृदयमें सहज ही उत्पन्न होता है। धवला और जयधवलाके भीतर जितने भी उल्लेख मिलते हैं उनसे इस विषयपर कोई स्पष्ट प्रकाश नहीं पड़ता है। किन्तु सप्ततिकाचूर्णिमें दिये गये एक उल्लेखसे यह ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ गाथा-निबद्ध रहा है। वह उल्लेख इस प्रकार है—

सन्तकम्मे भणियं—णिद्दादुगस्स उदओ खीणग खवगे परिच्चज्ज।

(सप्ततिका चूर्णि गाथा ९)

ऐसा प्रतीत होता है कि षट्खण्डागमके वेदना और वर्गणा खण्डमें जो सूत्रगाथाएँ पाई जाती हैं वे सम्भवतः इसी संतकम्मपाहुडकी रही हैं और उन्हें ही आधार बनाकर षट्खण्डागमकारने अपने जीवस्थान आदि अधिकारोंकी रचना की है।

८—धवला पुस्तक ६ के पृष्ठ १०९ पर वीरसेनाचार्य एक शंकाका उद्भावन कर उसका समाधान करते हुए लिखते हैं—

'विगलिंदियाणं बंधो उदओ वि दुस्सरं चेव होदि त्ति।'

अर्थात् विकलेन्द्रियोंसे दुःस्वर प्रकृतिका ही बन्ध होता है और उसका ही उदय रहता है। जो भ्रमर आदिके स्वरको मधुर मानकर विकलेन्द्रिय जीवोंके सुस्वर नामकर्मके उदयका प्रतिपादन करते हैं, उनका मत ठीक नहीं है।

किन्तु चूर्णिमें संतकम्मपाहुडका जो उल्लेख आया है, उसमें धवलाकारके मतसे सर्वथा भिन्न या प्रतिकूल ही मत पाया जाता है। वह उल्लेख इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"अण्णे भणंति—सुस्सरं विगलिंदियाणं णत्थि । तण्ण, संतकम्मे उक्तत्वात् ।"

(सित्तरी चूर्णि० गा० २५ पत्र २१।१)

अर्थात् जो लोग यह कहते हैं कि विकलेन्द्रियोंके सुस्वर कर्मका उदय नहीं होता है, तो उनका यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि संतकम्मपाहुडमें विकलेन्द्रिय जीवोंके सुस्वर कर्मका उदय कहा गया है ।

इस शंका-समाधानसे यह निष्कर्ष निकलता है कि संतकम्मपाहुडके सभी उपदेश वीरसेनको मान्य नहीं रहे हैं । इस बातकी पुष्टि एक अन्य उद्धरणसे भी होती है—

धवला पुस्तक ९ पृ० ३१८ पर वीरसेनने कहा है—

"......एदमप्पाबहुगं सोलसवदिय-अप्पाबहुएण सह विरुज्झदे......तेणेत्थ उवएसं लहिय एगदरणिण्णओ कायव्वो । **संतकम्मपयडिपाहुडं मोत्तूण सोलसपदिय अप्पाबहुअदंडए पहाणे कदे**...।"

अर्थात् संतकम्मपाहुडके उपदेशको छोड़कर इस सोलहपदिक उपदेशकी मुख्यतासे इस विवक्षित अल्पबहुत्वका निर्णय करना चाहिए ।

ऊपर दिये गये अन्तिम दो उल्लेखोंसे यह बात भलीभाँति सिद्ध होती है कि कितनी ही बातोंमें संतकम्मपाहुडका उपदेश कसायपाहुड, कम्मपयडी आदिके उपदेशोंसे भिन्न रहा है और धवलाकारको जहाँ जो बात उचित जँची है वहाँ उसका समर्थन या निषेध कर दिया है । अथवा तुल्य बलवाली बातोंमें दोनोंको प्रमाण मानकर उनके उपदेशको संग्रह करनेका भी विधान कर दिया है ।

उक्त विवेचनके प्रकाशमें जब हम नं० ४ और नं० ५ के उद्धरणोंका मिलान करते हैं, तो बहुत-सी बातें विचारणीय हो जाती हैं—

१. महाकम्मपयडि पाहुडके जिन उदय आदि शेष अट्ठारह अनुयोग द्वारोंको संतकम्मपाहुड माननेकी सूचना धवला और जयधवलाकारने की है, क्या वह ठीक है ?

२. संतकम्मपाहुडके नामसे जितने भी मतभेद धवला, जयधवला और सित्तरी चूर्णि आदिमें मिलते हैं, वे सब क्या उक्त अट्ठारह अनुयोग द्वारोंमें उपलब्ध हैं ? यदि नहीं, तो फिर उन्हें संतकम्मपाहुड क्यों माना जाय ?

३. नं० ७ पर दिये गये उद्धरणके अनुसार संतकम्मपाहुडको गाथा-निबद्ध होना चाहिए । पर उक्त १८ अनुयोग द्वारोंके जितने भी सूत्र मिलते हैं, वे सब गद्यरूप हैं । पद्यरूपमें उनके भीतर एक भी प्राप्त नहीं है । ऐसी दशामें यही क्यों न माना जाय कि षट्खण्डागमको जो संतकम्मपाहुड मानते हैं उनकी धारणा भ्रममूलक है ।[1]

दो दिगम्बर संस्कृत पञ्चसंग्रह

प्राकृत पञ्चसंग्रहको आधार बनाकर जिस संस्कृत पञ्चसंग्रहकी रचना आचार्य अमितगतिने की है उसका परिचय पहले दिया जा चुका है । उसी प्राकृत पञ्चसंग्रहको आधार बनाकर श्री श्रीपालसुत डड्ढाने अपने संस्कृत पञ्चसंग्रहकी रचना की । अमितगतिके संस्कृत पञ्चसंग्रहके होते हुए उन्हें एक और संस्कृत पञ्चसंग्रहकी रचना क्यों आवश्यक प्रतीत हुई यह एक विचारणीय प्रश्न है । दोनों संस्कृत पञ्चसंग्रहोंका तुलनात्मक अध्ययन करनेपर उक्त प्रश्नका उत्तर हमें मिल जाता है । आचार्य अमितगतिने मूल प्राकृत पञ्चसंग्रहका शब्दशः अनुकरण नहीं किया । कितने ही स्थलोंपर उन्होंने मूलके अंशको छोड़ा है और कितने ही स्थलोंपर कुछ नवीन बातोंको जोड़ा भी है । इस बातकी चर्चा हम पहले स्वतन्त्र रूपसे कर आये हैं । अमितगतिकी यह बात सम्भवतः डड्ढाको अच्छी नहीं लगी और इसीलिए उन्हें एक स्वतन्त्र पद्यानुवादकी प्रेरणा प्राप्त हुई । डड्ढाने सर्वत्र मूलका अनुगमन किया है । जहाँ अमितगतिने अनावश्यक या अतिरिक्त वर्णन किया है उसे प्रायः डड्ढाने छोड़ दिया है । हाँ, कहीं-कहीं कुछ आवश्यक बातोंका निरूपण

१ देखो, धवला पुस्तक सं० १ की प्रस्तावना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवश्य उन्होंने यथास्थान किया है। दोनों संस्कृत पञ्चसंग्रहोंकी तुलना संक्षेपमें इस प्रकार की जा सकती है—

१—कितने ही स्थलोंपर स्थानकी उपयुक्तता डड्ढाकृत पञ्चसंग्रहमें पाई जाती है वह अमितगतिके पञ्चसंग्रहमें नहीं है।

(क) संज्ञाओंके स्वरूप डड्ढाने यथास्थान दिये हैं किन्तु अमितगतिने जीवसमास प्रकरणके अन्तमें दिये हैं।

(ख) साधारण वनस्पतिका लक्षण डड्ढाकृत सं० पञ्चसंग्रहमें प्रा० पञ्चसंग्रहके समान यथास्थान दिया गया है। किन्तु अमितगतिने उसे यथास्थान न देकर उससे बहुत पहले दिया है। (देखो जीवसमास प्रकरण श्लो० १०५ आदि।)

(ग) जीवसमास प्रकरणमें ज्ञानमार्गणाका वर्णन डड्ढाने प्रा० पञ्चसंग्रहके ही अनुसार किया है। किन्तु अमितगतिने इसे कुछ परिवर्धित किया है, अतः मत्यज्ञान आदिका स्वरूप मूलके अनुसार यथास्थान न होकर स्थानान्तरित हो गया है।

२—कितने ही स्थलोंपर डड्ढाकी रचना अमितगतिकी अपेक्षा अधिक सुन्दर है। देखो मार्गणाओंके नामवाले दोनोंके श्लोक :

अमितगति पञ्चसंग्रह श्लोक १, १३२, १३३

डड्ढा ,, १, ६८

३—डड्ढाकी रचना मूल गाथाओंके अधिक समीप है, अमितगतिकी नहीं। देखो प्रथम प्रकरणमें चारों गतियोंका स्वरूप तथा कायमार्गणा और कषायमार्गणाके श्लोक आदि।

४—प्राकृत पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणमें 'अण्डज पोतज जरजा' इत्यादि गाथा दी हुई है। पर अमितगतिने इसका अनुवाद नहीं दिया, जब कि डड्ढाने दिया है। (देखो श्लोक १, ८६)। इसी प्रकार संयममार्गणामें ११ प्रतिमावाली गाथाका भी। (देखो श्लोक १, १७१)।

५—जीवसमासकी ७४वीं मूल गाथाका पद्यानुवाद जितना डड्ढाका मूलके समीप है उतना अमितगतिका नहीं। (देखो १,१५१ और १,१८७)।

६—अमितगतिने जीवसमासकी 'साहारणमाहारो' इत्यादि तीन गाथाओंका (प्रकरण १, गाथा ८७ आदि) जहाँ स्पर्श भी नहीं किया, वहाँ डड्ढाने उनका सुन्दर पद्यानुवाद किया है। समझमें नहीं आता कि अमितगतिने उक्त गाथाओंको क्यों छोड़ दिया।

७—उक्त स्थलपर अमितगतिने गोम्मटसार जीवकाण्डकी 'उववाद मारणंतिय' इत्यादि गाथाका आश्रय लेकर उसका अनुवाद किया है जबकि जीवसमासके मूलमें वह गाथा नहीं है और इसीलिए डड्ढाने उसका अनुवाद नहीं किया।

८—कितने ही स्थलोंपर डड्ढाने अमितगतिकी अपेक्षा कुछ विषयोंको बढ़ाया भी है। यथा :—

(क) प्रथम प्रकरणमें धर्मोंका स्वरूप।

(ख) योगमार्गणाके अन्तमें विक्रियादिका स्वरूप।

९—अमितगतिने 'मनःपर्ययदर्शन क्यों नहीं होता' इस प्रश्नपर भी प्रकाश डाला है। यतः यह बात मूल गाथामें नहीं है अतः डड्ढाने उसपर कुछ प्रकाश नहीं डाला। (देखो दर्शनमार्गणा प्रकरण १)।

१०—अमितगतिने प्रथम प्रकरणमें सम्यक्त्व मार्गणाके भीतर गोम्मटसार कर्मकाण्डके आधारसे ३६३ पाखंडियोंकी चर्चा की है। पर मूलमें न होनेसे डड्ढाने उसकी चर्चा नहीं की है।

११—अमितगतिने तीसरे प्रकरणके श्लोक संख्या ८२, ८७ आदिके पश्चात् जिस बातको संस्कृत गद्यके द्वारा स्पष्ट किया है वैसा डड्ढाने नहीं किया। सम्भवतः इसका कारण यह ज्ञात होता है कि वे मूलसे बाहरकी बातको नहीं कहना चाहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों संस्कृत पञ्चसंग्रहोंके सम्बन्धमें कुछ विचारणीय बातें

१—अमितगतिने पाँचवें प्रकरणमें पृष्ठ १७४के नीचे 'उक्तं च' कहकर 'असम्प्राप्त' इत्यादि १६५ वाँ श्लोक दिया है। ठीक इसी प्रकारसे इसी स्थलपर डड्ढाने श्लोक १४८ के नीचेवाली गद्यके पश्चात् 'उक्तं च' कहकर "अयशःकी०" इत्यादि अमितगतिसे भिन्न ही श्लोक दिया है।

यहाँ विचारणीय बात यह है कि जब दोनों ही श्लोक अर्थ-साम्य रखते हुए भी शब्द-साम्य नहीं रखते, तो फिर 'उक्तं च'का क्या अर्थ है? क्या यह 'मक्षिकास्थाने मक्षिकापातः' नहीं है? यही बात आगे भी दृष्टिगोचर होती है।

२—अमितगतिके संस्कृत पञ्चसंग्रहके पृष्ठ २०४ पर 'एतदुक्तम्' कहकर 'चतुःषष्ठ्या' इत्यादि ३५० वाँ श्लोक है। तथैव डड्ढाके पञ्चसंग्रहमें सप्ततिकामें श्लोकाङ्क ३१७ 'उक्तं च' कहकर दिया गया है। खास बात यह है कि अर्थ-साम्य होते हुए भी दोनों श्लोकोंमें शब्द-साम्य नहीं है।

३—डड्ढाकृत सप्ततिकाके श्लोक संख्या २४९ के पश्चात् 'अत्र वृत्तिश्लोकाः पञ्च' वाक्य दिया है। उसका आधार क्या है? यह विचारणीय है। यदि इन श्लोकोंका आधार पञ्चसंग्रहकी संस्कृत वृत्ति ही है तो यह सिद्ध है कि डड्ढा संस्कृत टीकाकारके पीछे हुए हैं।

४—अमितगतिसे डड्ढाके पञ्चसंग्रहमें एक विशेषता यह भी है कि जहाँ अमितगतिने सप्ततिकामें पृष्ठ २२१ पर श्लोकांक ४५३ में शेष मार्गणाओंके बन्धादि-त्रिकको न कहकर मूलके समान ही 'पर्यालोच्यो यथागमं' कहकर छोड़ दिया है, वहाँ डड्ढाने श्लोकांक ३९० में 'बन्धादित्रयं नेयं यथागमं' कहकर भी उसके आगे समस्त मार्गणाओंमें उसे आधार बनाकर बन्धादि-त्रिकके पूरे स्थानोंको गिनाया है जो कि प्राकृत पञ्चसंग्रहके निर्देशानुसार होना ही चाहिए। अमितगतिने उन्हें क्यों छोड़ दिया? यह बात विचारणीय है।

सभाष्य पञ्चसंग्रह

पञ्चसंग्रहमें संगृहीत पाँचों प्रकरणोंके मूल रूपोंको देखनेपर सहजमें ही यह अनुभव होता है कि प्रत्येक प्रकरणकी मूल-गाथा-संख्या अल्प रही हैं और संग्रहकारने उनपर भाष्यगाथाएँ रचकर उन्हें पल्लवित या परिवर्धित कर प्रस्तुत संकलनका नाम 'पञ्चसंग्रह' रखा है। प्रस्तुत ग्रन्थमें संग्रहकारने जिन पाँच प्रकरणोंका संग्रह किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—१ जीवसमास, २ प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन, ३ कर्मस्तव, ४ शतक और ५ सप्ततिका। इनमेंसे अन्तिम तीन प्रकरण अपने मूलरूप और उसकी प्राकृत चूर्णि एवं संस्कृत टीकाओंके साथ विभिन्न संस्थाओंसे प्रकाशित हो चुके हैं। उनके साथ जब हम प्रस्तुत ग्रन्थमें संगृहीत इन प्रकरणोंका मिलान करते हैं, तो स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि संग्रहकारने किस प्रकरणपर कितनी भाष्य-गाथाएँ रचीं हैं। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

कर्मस्तवको कर्मबन्धस्तव या बन्धस्तव भी कहते हैं। श्वे० सम्प्रदायमें इसकी गणना प्राचीन कर्मग्रन्थोंमें की जाती है। अभी तक भी इसके संग्रहकर्त्ता या रचयिताका नाम अज्ञात है। श्वे० संस्थाओंकी ओरसे जो इसके संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उनमें इसकी गाथा-संख्या ५५ पाई जाती है। और प्रस्तुत ग्रन्थके अन्तमें मुद्रित प्राकृतवृत्ति-युक्त पञ्चसंग्रहमें इसकी गाथा-संख्या ५४ पाई जाती है। किन्तु इसपर रची गई भाष्य-गाथाओंको देखते हुए इस प्रकरणकी मूल-गाथा-संख्या ५२ ही सिद्ध होती है, अतः हमने तदनुसार ही गाथाके प्रारम्भमें यही मूल-गाथा-संख्या दी है। संग्रहकारने सभी मूल-गाथाओंपर भाष्य-गाथाएँ नहीं रची हैं, किन्तु उन्हें जो गाथाएँ क्लिष्ट या अर्थ-बहुल प्रतीत हुईं, उनपर ही उन्होंने भाष्य-गाथाएँ रचीं हैं। इस प्रकार १२ गाथाएँ ही इस प्रकरणमें भाष्य-गाथाओंके रूपमें उपलब्ध होती हैं।

इसी प्रकरणके अन्तमें एक चूलिका प्रकरण भी है जो श्वे० संस्थाओंसे प्रकाशित बन्धस्तवमें नहीं पाया जाता। प्राकृतवृत्तिमें उसकी गाथा-संख्या ३४ है। किन्तु सभाष्य-कर्मस्तवमें चूलिका रूपसे केवल १३ गाथाएँ ही मिलती हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इन दोनों चूलिकाओंमें विषय-गत समता होते हुए भी गाथागत कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समानता नहीं है। प्रत्युत ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त १३ गाथाओंको सामने रखकर उनके भाष्यरूपमें ३४ गाथाओंका निर्माण किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थके चौथे प्रकरणका नाम शतक है। यतः इसकी मूल-गाथाएँ १०० ही रही हैं, अतः इसका नाम गाथा-संख्याके आधारपर शतक ही प्रसिद्ध या प्रचलित हो गया है। श्वे० संस्थाओंसे मुद्रित शतक प्रकरणमें इसकी गाथा-संख्या १०६ पाई जाती है। प्राकृतवृत्तिके अनुसार इसकी गाथा-संख्या १३९ है। किन्तु सभाष्य शतकके अनुसार इसकी गाथा-संख्या १०५ ही सिद्ध होती है। यद्यपि दोनों सम्प्रदायोंके अनुसार इस प्रकरणकी मूल-गाथाएँ १०० से अधिक मिलती हैं, पर ऐसा ज्ञात होता है कि प्रारम्भकी उत्थानिका-गाथा और अन्तकी उपसंहारात्मक-गाथाओंको न गिननेपर विवक्षित विषयकी प्रतिपादक गाथाओंको लक्ष्य करके 'शतक' यह नाम प्रख्यात हुआ है। भाष्यकारने इन मूल-गाथाओंपर जो भाष्य-गाथाएँ रची हैं, उन्हें मिलाकर इस प्रकरणकी गाथा-संख्या ५२२ हो जाती है, जिसका यह निष्कर्ष निकलता है कि इस प्रकरणकी भाष्य-गाथा-संख्या ४१७ है।

पाँचवें प्रकरणका नाम सप्ततिका है। प्राकृत भाषामें इसे सित्तरी या सत्तरी भी कहते हैं। इस प्रकरणका भी नाम-करण उसकी गाथा-संख्याके आधारपर प्रसिद्ध हुआ है। सित्तरी या सप्ततिका नामको देखते हुए इसकी मूल-गाथा-संख्या ७० ही होनी चाहिए। श्वे० संस्थाओंसे प्रकाशित प्रतियोंके अनुसार इसकी गाथा-संख्या ७२ है। प्राकृतवृत्तिमें उसकी गाथा-संख्या ३९ पाई जाती है। परन्तु भाष्यगाथाकारके अनुसार ७२ ही सिद्ध होती है। इसकी यदि आदि और अन्तकी उत्थानिका और उपसंहार-गाथा रूप २ गाथाओंको छोड़ दिया जावे, तो विवक्षित अर्थकी प्रतिपादन करनेवाली ७० गाथाएँ ही रह जाती हैं और तदनुसार इसका सित्तरी या सप्ततिका नाम भी सार्थक हो जाता है। भाष्य-गाथाकारने इन मूल-गाथाओंपर जो भाष्य-गाथाएँ रची हैं, उनके समेत इस प्रकरणकी कुल गाथा-संख्या ५०७ है और इसके अनुसार भाष्य-गाथाओंकी संख्या ४३५ सिद्ध होती है।

उक्त दोनों प्रकरणोंपर ही संग्रहकारने सबसे अधिक भाष्य-गाथाओंकी रचना की है। यतः विषयकी दृष्टिसे ये दोनों प्रकरण ही दुर्गम एवं अर्थ-बहुल रहे हैं, अतः उनपर अधिक भाष्य-गाथाओंका रचा जाना स्वाभाविक ही है।

पञ्चसंग्रहके प्रथम प्रकरणका नाम जीवसमास है। इस नामका एक ग्रन्थ श्री ऋषभदेवजी केशरीमल-जी श्वेताम्बर संस्था रतलामकी ओरसे सन् १९२८ में एक संग्रहके भीतर प्रकाशित हुआ है, जिसकी गाथा-संख्या २८६ है। नाम-साम्य होते हुए भी अधिकांश गाथाएँ न विषय-गत समता रखती हैं और न अर्थगत समता ही। गाथा-संख्याकी दृष्टिसे भी दोनोंमें पर्याप्त अन्तर है। फिर भी जितना कुछ साम्य पाया जाता है, उनके आधारपर एक बात सुनिश्चित रूपसे कही जा सकती है कि श्वे० संस्थाओसे प्रकाशित जीवसमास प्राचीन है। पञ्चसंग्रहकारने उसके द्वारा सूचित अनुयोग द्वारोंमेंसे १–२ अनुयोग द्वारके आधारपर अपने जीवसमास प्रकरणकी रचना की है। इसके पक्षमें कुछ प्रमाण निम्न प्रकार हैं—

१. श्वे० संस्थाओंसे प्रकाशित जीवसमासको 'पूर्वभृत्सूरिसूत्रित' माना जाता है। इसका यह अर्थ है कि जब जैन परम्परामें पूर्वोका ज्ञान विद्यमान था, उस समय किसी पूर्ववेत्ता आचार्यने इसका निर्माण किया है। ग्रन्थ-रचनाके देखनेसे ऐसा ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ भूतबलि और पुष्पदन्तसे भी प्राचीन है और वह षट्खण्डागमके जीवट्ठाण नामक प्रथम खण्डकी आठों प्ररूपणाओंके सूत्र-निर्माणमें आधार रहा है, तथा यही ग्रन्थ प्रस्तुत पञ्चसंग्रहके जीवसमास नामक प्रथम प्रकरणका भी आधार रहा है। इसकी साक्षीमें उक्त ग्रन्थकी एक गाथा प्रमाण रूपसे उपस्थित की जाती है जो कि श्वे० जीवसमासमें मंगलाचरणके पश्चात् ही पाई जाती है। वह इस प्रकार है—

णिक्खेव-णिरुत्तीहिं य छहिं अट्ठहिं अणुओगदारेहिं।
गइआइमग्गणाहि य जीवसमासाऽणुगंतव्वा ॥२॥

इसमें बतलाया गया है कि नामादि निक्षेपोंके द्वारा; निरुक्तिके द्वारा, निर्देश, स्वामित्व आदि छह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और सत्, संख्या आदि आठ अनुयोग-द्वारोंसे तथा गति आदि चौदह मार्गणा-द्वारोंसे जीवसमासको जानना चाहिए। इसके पश्चात् उक्त सूचनाके अनुसार ही सत्-संख्यादि आठों प्ररूपणाओं आदिका मार्गणास्थानोंमें वर्णन किया गया है। इस जीवसमास प्रकरणकी गाथा-संख्याकी स्वल्पता और जीवट्ठाणके आठों प्ररूपणाओंकी सूत्र-संख्याकी विशालता[1] ही उसके निर्माणमें एक दूसरेकी आधार-आधेयताको सिद्ध करती है।

जीवसमासकी गाथाओंका और षट्खण्डागमके जीवस्थानखंडकी आठों प्ररूपणाओंका वर्णन-क्रम विषयकी दृष्टिसे कितना समान है, यह पाठक दोनोंका अध्ययन कर स्वयं ही अनुभव करें।

प्रस्तुत पञ्चसंग्रहके जीवसमास प्रकरणके अन्तमें उपसंहार करते हुए जो १८२ अंक-संख्यावाली गाथा पाई जाती है, उससे भी हमारे उक्त कथनकी पुष्टि होती है। वह गाथा इस प्रकार है—

णिक्खेवे एयट्ठे णयप्पमाणे णिरुत्ति-अणिओगे।
मग्गइ वीसं भेए सो जाणइ जीवसब्भावं॥

अर्थात् जो पुरुष निक्षेप, एकार्थ, नय, प्रमाण, निरुक्ति और अनुयोगद्वारोंसे मार्गणा आदि बीस भेदोंमें जीवका अन्वेषण करता है, वह जीवके यथार्थ सद्भाव या स्वरूपको जानता है।

पाठक स्वयं ही देखें कि पहली गाथाकी बातको ही दूसरी गाथाके द्वारा प्रतिपादित किया गया है। केवल एक अन्तर दोनोंमें है। वह यह कि पहली गाथा उक्त प्रकरणके प्रारम्भमें दी है, जब कि दूसरी गाथा उस प्रकरणके अन्तमें। पहले प्रकरणमें प्रतिज्ञाके अनुसार प्रतिपाद्य विषयका प्रतिपादन किया गया है, जब कि दूसरे प्रकरणमें केवल एक निर्देश अनुयोग द्वारसे १४ मार्गणाओंमें जीवकी विंशतिविधा सत्प्ररूपणा की गई है और शेष संख्यादि प्ररूपणाओंको न कहकर उनके जाननेकी सूचना कर दी गई है।

२. पृथिवी आदि षट्कायिक जीवोंके भेद प्रतिपादन करनेवाली गाथाएँ भी दोनों जीवसमासोंमें बहुत कुछ समता रखती हैं।

३. प्राकृत वृत्तिवाले जीवसमासकी अनेक गाथाएँ उक्त जीवसमासमें ज्यों-की-त्यों पाई जाती हैं।

उक्त समताके होते हुए भी पञ्चसंग्रहकारने उक्त जीवसमास-प्रकरणकी अनेक गाथाएँ जहाँ संकलित की हैं, वहाँ अनेक गाथाएँ उनपर भाष्यरूपसे रची हैं और अनेक गाथाओंका आगमके आधारपर स्वयं भी स्वतन्त्र रूपसे निर्माण किया है। ऐसी स्थितिमें उनकी निश्चित संख्याका बतलाना कठिन है। प्राकृत वृत्तिवाले जीवसमासमें गाथा-संख्या १७६ और सभाष्य पञ्चसंग्रहमें २०६ पाई जाती है। इनमें कई गाथाएँ एकसे दूसरेमें सर्वथा भिन्न एवं नवीन भी पाई जाती हैं, जिनका पता पाठकोंको उनका अध्ययन करनेपर स्वयं लग जायगा।

पञ्चसंग्रहके दूसरे प्रकरणका नाम प्रकृति समुत्कीर्त्तन है। प्रकृतियोंके नामोंका समुत्कीर्त्तन गद्यके द्वारा ही किया गया है। यह गद्य-भाग षट्खण्डागमके जीवट्ठाण खण्डके अन्तर्गत प्रकृति समुत्कीर्त्तन अधिकारके साथ शब्दशः समान है और दोनोंकी स्थिति देखते हुए यह कहा जा सकता है कि पञ्चसंग्रहकारने वहाँसे ही अपने इस प्रकरणका संग्रह किया है। इस प्रकरणके आदि और अन्तमें जो १२ गाथाएँ पायी जाती हैं उनमेंसे कुछ तो पूर्व परम्परागत हैं और शेषका निर्माण पञ्चसंग्रहकारने किया है। प्राकृतवृत्तिके इस प्रकरणमें गद्य-भाग तो समान हो है। गाथाओंमें प्रारम्भ की ४ गाथाओंको छोड़कर कोई समता नहीं है। उसमेंकी अनेक गाथाएँ इधर-उधरसे संकलित की गई ज्ञात होती हैं, जब कि पहलेकी गाथाएँ संग्रहकार-द्वारा रची गई प्रतीत होती हैं। श्वे० सम्प्रदायमें इस नामवाला कोई प्रकरण देखनेमें नहीं आया। हाँ, इस विषयके जो कर्म विपाक आदि प्रकरण रचे गये हैं, ये सब अर्वाचीन हैं और गाथाओंमें हैं। अतः उनके साथ प्रस्तुत संग्रहकी रचना-समानताकी बात करना व्यर्थ है।

भाष्य गाथाओंके साथ समस्त गाथाओंकी संख्या १३२४ है। गद्य-भाग इससे पृथक् है। जिसका

---

१. जीवसमासकी गाथासंख्या २८६ है, जब कि षट्खण्डागमके जीवट्ठाणकी सूत्रसंख्या ढाई हजारके लगभग है। —सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि परिमाण ५०० श्लोकोंसे भी अधिक है। पाँचों ही प्रकरणोंके प्रारम्भमें स्वतन्त्र मङ्गलाचरण किया गया है और उसके साथ ही प्रतिपाद्य विषयके निरूपणकी प्रतिज्ञा की गई है।

पाँचों प्रकरणोंकी उपर्युक्त स्थितिमें यह बात असंदिग्ध रूपसे सिद्ध हो जाती है कि प्रस्तुत ग्रन्थमें संगृहीत पाँचों ही प्रकरण संग्रहकारको पूर्व परम्परासे प्राप्त थे और उन्हें संक्षिप्त एवं अर्थ-बोधकी दृष्टिसे दुर्गम देखकर उन्होंने उनपर भाष्य-गाथाएँ रचीं, और उन पूर्वगत पाँचों प्रकरणोंके वही नाम रखकर अपने संग्रहको पञ्चसंग्रहका रूप दिया। पर जहाँ तक मेरी जानकारी है, संग्रहकार या भाष्य-गाथाकारने अपने शब्दोंमें 'पञ्चसंग्रह' ऐसा नाम कहीं भी प्रकट नहीं किया है। उक्त प्रकरण एक साथ एक ही आचार्यके द्वारा भाष्य-गाथाओंके साथ निबद्ध होनेके पश्चात् ही परवर्त्ती विद्वानोंके द्वारा 'पञ्चसंग्रह' नाम प्रचलित हुआ प्रतीत होता है।

पञ्चसंग्रहकार कौन ?

प्रस्तुत ग्रन्थके पाँचों मूल प्रकरणोंके रचयिताओंके नाम अभी तक अज्ञात ही हैं। हाँ, श्वेताम्बर विद्वान् शिवशर्मको शतकका निर्माता मानते हैं। शतककी मुद्रित चूर्णिके प्रारम्भिक अंशसे भी इस बातकी पुष्टि होती है[1]। किन्तु शेष चारों प्रकरणोंके रचयिताओंका कुछ भी पता नहीं चलता है। साथ ही जिन शतक और सप्ततिका इन दो प्रकरणोंपर प्राकृत चूर्णियाँ उपलब्ध हैं, उनके रचयिताओंका भी अभी तक कोई पता नहीं है। इससे पञ्चसंग्रहके मूल प्रकरणों और उनकी चूर्णियोंकी प्राचीनता, प्रामाणिकता और उभय सम्प्रदायमें मान्यता सिद्ध है।

पञ्चसंग्रहके ऊपर भाष्य-गाथाएँ रचनेवाले और पाँचों प्रकरणोंको एकत्र निबद्ध करनेवाले आचार्यका नाम भी अभीतक अज्ञात ही है, जब तक कोई आधार या प्रमाण स्पष्ट रूपसे सामने नहीं आ जाता है, तब तक उसके कर्त्ताके विषयमें कल्पना करना कोरी कल्पना ही समझी जायगी। इसलिए उसपर विचार न करके यह विचार करना उचित होगा कि पञ्चसंग्रहके ऊपर भाष्य-गाथाएँ रचनेवाले आचार्य किस समयमें हुए हैं ?

प्रस्तुत ग्रन्थके पाँचों मूल प्रकरणोंकी रचना कर्मप्रकृति या कम्मपयडीके आस-पास होना चाहिए। और यतः कर्मप्रकृतिके रचयिता शिवशर्म ही शतकके भी रचयिता माने जाते हैं, और इनपर रची गई चूर्णियाँ भी यतः इनके कुछ समय बाद ही रची गई प्रतीत होती हैं, अतः उन मूल प्रकरणोंकी रचनाका काल भी शिवशर्मके लगभगका माना जा सकता है। इस प्रकार शिवशर्मके कालको मूल पञ्चसंग्रहकारके कालकी पूर्वावधि कहा जा सकता है।

धवला टीकामें जीवसमास नामके साथ जिस 'छप्पंचणवविहाणं' इत्यादि गाथाका उल्लेख आया है[2]। वह गाथा ज्यों-की-त्यों प्रस्तुत ग्रन्थके जीवसमास प्रकरणमें पायी जाती है, अतः उक्त प्रकरणका रचना-काल धवला टीकासे पूर्व होना चाहिए। यतः श्वे० पञ्चसंग्रहकार चन्द्रर्षिके सामने दि० सभाष्य पञ्चसंग्रह विद्यमान था, जैसा कि हम पहले सिद्ध कर आये हैं, अतः उनके पूर्व इसकी रचनाका होना सिद्ध है। शतक चूर्णिमें एक स्थलपर जो गाथा-गत पाठ-भेदका उल्लेख किया गया है, उससे सिद्ध होता है कि उक्त चूर्णिके पूर्व सभाष्य पञ्चसंग्रह रचा जा चुका था। शतक-गत वह गाथा इस प्रकार है—

आउक्कस्स पएसस्स पंच मोहस्स सत्त ठाणाणि।
सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कोसगे जोगे ॥९३॥

इस गाथाकी चूर्णिमें "अन्ने पढंति आउक्कस्स छ त्ति'·······अन्ने पढंति मोहस्स णव उ ठाणाणि" इस प्रकारसे आयुकर्म और मोहकर्म सम्बन्धी स्थानोंके दो पाठ-भेद आये हैं। ये दोनों पाठ-भेद दि० पञ्चसंग्रहके चौथे शतक प्रकरणमें इस प्रकार पाये जाते हैं—

१. केण कयं ?····'अणेगवायसमालद्धविजएण सिवसम्मायरियणामधेज्जेण कयं इत्यादि, (शतक चूर्णि गा० १, पत्र १। २. धवला पु० ४, पृ० ३१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आउक्कस्स पदेसस्स छच्च मोहस्स णव दु ठाणाणि ।
सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कोसगे जोगे ॥४,५०२॥

यद्यपि शतकचूर्णिके निर्माणका काल अभी तक निश्चित नहीं है, तथापि वह चूर्णि-युगमें ही रची गई है, इतना तो निश्चित है और इसी आधारपरसे उसे कम-से-कम विक्रमकी सातवीं शताब्दीसे पूर्वकी तो मान ही सकते हैं ।

उक्त आधारोंके बलपर इतना कहा जा सकता है कि सभाष्य प्राकृत पञ्चसंग्रहकी रचना विक्रमकी पाँचवीं और आठवीं शताब्दीके मध्यवर्ती कालमें हुई है ।

प्राकृतवृत्तिगत पञ्चसंग्रह

प्रस्तुत ग्रन्थमें सभाष्य पञ्चसंग्रहके पश्चात् प्राकृत वृत्ति-सहित पञ्चसंग्रह भी मुद्रित है । प्रकरणोंके नाम वे ही हैं, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है । किन्तु उनके क्रममें अन्तर है और गाथा-संख्यामें भी । गाथा-संख्याका अन्तर पहले बतला आये हैं । क्रमका अन्तर यह है कि इसमें पहले प्रकृति समुत्कीर्त्तन, पुनः कर्मस्तव और तदनन्तर जीवसमास प्रकरण निबद्ध किये गये मिलते हैं । अन्तिम दोनों प्रकरण दोनोंमें समान-रूपसे चौथे और पाँचवें स्थानपर निबद्ध हैं । तीसरा अन्तर अन्तिम प्रकरणके मंगलाचरणका है, जब कि प्रथम चार प्रकरणोंकी मंगल-गाथाएँ समान हैं ।

उपर्युक्त स्थितिको देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत-वृत्तिकारको उक्त प्रकरण स्वतन्त्र रूपसे ही अपने स्वतन्त्र पाठोंके साथ प्राप्त हुए और उन्होंने पञ्चसंग्रहके अन्यत्र प्रसिद्ध बध्य, बन्धेश, बन्धक, बन्ध-कारण और बन्धभेद इन पाँच द्वारोंके अनुसार उनका संकलन कर व्याख्या करना उचित समझा है। गाथाओंके संकलनको देखते हुए ऐसा लगता है कि वृत्तिकारको सभाष्य पञ्चसंग्रह नहीं उपलब्ध हुआ और इसीलिए उन्होंने प्राचीन चूर्णियोंकी शैलीमें ही अपनी प्राकृत वृत्तिकी रचना की है ।

प्राकृत वृत्ति और वृत्तिकार

इस वृत्तिके रचयिता श्री पद्मनन्दि मुनि हैं, यह बात शतक नामक चौथे प्रकरणके मध्यमें दी गई गाथाओंसे ज्ञात होती है । वे गाथाएँ इस प्रकार हैं—

जह जिणवरेहिं कहियं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
आयरियकमेण पुणो जह गंगणइपवाहुव्व ॥
तह पउमणंदिमुणिणा रइयं भवियाण बोहणट्ठाए ।
ओघादेसेण य पयडीणं बंधसामित्तं ॥
छउमत्थयाए रइयं जं इत्थ हविज्ज पवयणविरुद्धं ।
तं पवयणाइकुसला सोहंतु मुणी पयत्तेण ॥

इन गाथाओंका भाव यह है कि जो कर्म-प्रकृतियोंका बन्धस्वामित्व जिनेन्द्रदेवने कहा, जिसे गणधर देवोंने गूँथा और जो गंगानदीके प्रवाहके समान आचार्य-परम्परासे चला आ रहा है, उसे मुझ पद्मनन्दी मुनिने भव्योंके प्रबोधनार्थ रचा है । इसमें मेरे छद्मस्थ होनेके कारण जो कुछ भी प्रवचन-विरुद्ध कहा गया हो, उसे प्रवचनमें कुशल मुनिजन सावधानीके साथ शुद्ध करें ।

इस उल्लेखके अतिरिक्त उक्त वृत्तिमें अन्यत्र कोई दूसरा उल्लेख नहीं मिलता है, जिससे कि उसके रचयिताकी आचार्य-परम्परा आदिके विषयमें कुछ विशेष जाना जा सके । हाँ, वृत्तिमें उद्धृत पद्योंके आधार-पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे अकलङ्कदेवसे पीछे हुए हैं; क्योंकि उनके लघीयस्त्रयकी 'ज्ञानं प्रमाणमित्याहुः' इत्यादि कारिका पाई जाती है ।

पद्मनन्दि नामके अनेक मुनि हुए हैं । उनमेंसे किसने इस प्राकृतवृत्तिको रचा, यह यद्यपि निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है, तथापि जम्बूद्दीपपण्णत्तीके रचयिता पद्मनन्दिकी ही अधिक सम्भावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिखती है। साधनाभावसे हम कोई निर्णय करनेमें असमर्थ हैं। अनुमानतः विक्रमकी दशवीं शताब्दीसे पूर्वमें ही इसका रचा जाना अधिक संभव है।

वृत्तिकारने अपनी रचनामें कसायपाहुडकी चूर्णि और धवला टीकाकी शैलीका अनुसरण किया है। विषय-प्रतिपादनको देखते हुए यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि वे जैनसिद्धान्तके अच्छे वेत्ता रहे हैं। उनके द्वारा दी गई अनेक परिभाषाएँ अपूर्व हैं, क्योंकि उनका अन्यत्र दर्शन नहीं होता है। वृत्तिकारने सभी गाथाओंपर वृत्ति नहीं लिखी है, किन्तु चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभके समान उन्हें जिस गाथापर कुछ कहना अभीष्ट हुआ, उसीपर ही उन्होंने लिखा है। यतिवृषभके समान ही उन्होंने गाथाओंकी समुत्कीर्तना कर '**एत्तो सव्वपयडीणं बन्धवुच्छेदो कादव्वो भवदि। तं जहा**'[1]—इत्यादि वाक्योंको लिखा है।

प्राकृतवृत्तिके आदिमें ग्रन्थको उत्थानिकाके रूपमें जो सन्दर्भ दिया हुआ है, वह धवला—जयधवलाकी उत्थानिकाका अनुकरण करते हुए भी अपनी बहुत कुछ विशेषता रखता है। पर इसके विषयमें एक बात खासतौरसे विचारणीय है और वह यह कि जहाँ धवला या जयधवलाकार उस प्रकारकी उत्थानिकाके अन्तमें प्रतिपाद्य-विवक्षित ग्रन्थका नामोल्लेख करके उसके नामकी सार्थकता आदिका निरूपण करते हैं, वहाँ इस प्राकृतवृत्तिमें पञ्चसंग्रहका कोई नामोल्लेख आदि नहीं पाया जाता। प्रत्युत 'आराधना'का नाम पाया जाता है। वह इस प्रकार है—

'तत्थ गुणणामं आराहणा इदि किं कारणं? जेण आराधिज्जंते अणक्षा दंसण-णाण-चरित्त-तवाणि त्ति[1]?'

इस उद्धरणमें स्पष्टरूपसे 'आराधना'का नाम दिया गया है और उसकी निरुक्तिके द्वारा यह भी बतला दिया गया है कि जिसके द्वारा दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपकी आराधना की जाती है उसे आराधना कहते हैं।

इस उल्लेखको देखते हुए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इसके पूर्वका और आगेका समस्त उत्थानिका-सन्दर्भ 'भगवती आराधना'की उस प्राकृत टीकाका है, जिसका उल्लेख अपराजित सूरिने अपनी विजयोदया टीकामें अनेक वार किया है। दुर्भाग्यसे आज वह उपलब्ध नहीं है, फिर भी इसे कम सौभाग्य नहीं माना जा सकता कि इस रूपमें उसको 'बानगी' या 'नमूना' हमें देखनेको मिल गया है।

भगवती आराधनामें दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चारों ही आराधनाओंका वर्णन किया गया है, यह उसके मंगलाचरण एवं उसके आगेवाली गाथासे ही सिद्ध एवं सर्वविदित है। भ० आराधनाकी वे दोनों गाथाएँ इस प्रकार हैं—

सिद्धे जयप्पसिद्धे चउविह आराहणा फलं पत्ते।
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो ॥१॥
उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं।
दंसण-णाण-चरित्त-तवाणमाराहणा भणिया ॥२॥

ऐसा ज्ञात होता है कि पञ्चसंग्रहकी प्रतिलिपि करनेवाले किसी लेखकको उक्त भ० आराधनाकी प्राकृत टीकाका उक्त अंश उपलब्ध हुआ और उसे उसने लिखकर उसके आगे सवृत्ति पञ्चसंग्रहकी प्रतिलिपि करना प्रारम्भ कर दिया। जिससे वे दोनों एक ही ग्रन्थके अंश समझे जाने लगे। यहाँ इतना और ज्ञातव्य है कि अभी तक प्राकृत वृत्तिकी एक ही प्रति मिली है। यदि आगे किसी अन्य भण्डारसे कोई दूसरी प्रति उपलब्ध होगी, तो उससे उक्त बातपर और भी अधिक प्रकाश पड़ सकेगा।

---

१. देखो प्रस्तुत ग्रन्थके पृष्ठ ५६६ आदि।

२. देखो प्रस्तुत ग्रन्थका पृष्ठ ५४३।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

दोनों संस्कृत पञ्चसंग्रहोंका रचना-काल

प्राकृत सभाष्य पञ्चसंग्रहको आधार बनाकर दि० सम्प्रदायमें दो संस्कृत पञ्चसंग्रह रचे गये हैं— एकके रचयिता हैं अनेक ग्रंथोंके निर्माता आ० अमितगति और दूसरेके निर्माता हैं श्रीपालसुत डड्ढा। इनमें पहलेवाला पञ्चसंग्रह माणिकचंद ग्रन्थमालासे सन् १९२७ में प्रकाशित हो चुका है। आ० अमितगतिका समय निश्चित है। उन्होंने अपने इस सं० पञ्चसंग्रहकी रचना मसूतिकापुरमें वि० सं० १०७३ में की है, यह बात उसमें दी गई अन्तिम प्रशस्तिके इस श्लोकसे सिद्ध है—

त्रिसप्तत्यधिकेऽब्दानां सहस्रे शकविद्विषः।
मसूतिकापुरे जातमिदं शास्त्रं मनोरमम् ॥६॥

प्रा० पञ्चसंग्रहके साथ अमितगतिके इस सं० पञ्चसंग्रहको रखकर तुलना करनेपर यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि उन्होंने प्राकृत पञ्चसंग्रहका ही संस्कृत पद्यानुवाद किया है। पर आश्चर्यकी बात तो यह है कि उन्होंने समग्र ग्रन्थ भरमें कहीं ऐसा एक भी संकेत नहीं किया, कि जिससे उक्त बात ज्ञात हो सके। इसके विपरीत उन्होंने ग्रन्थके प्रत्येक प्रकरणके अन्तमें श्लेषरूपसे अपने नामको अवश्य व्यक्त किया है। यथा—

१ सोऽश्नुतेऽमितगतिः शिवास्पदम्। (१,३५३)
२ याति स भव्योऽमितगतिरिष्टम् ॥ (२,४८)
३ ज्ञानात्मकं सोऽमितगत्युपैति। (३,१०६)
४ सिद्धिमबन्धोऽमितगतिरिष्टाम्। (४,३७५)
५ सोऽस्तु तेऽमितगतिः शिवास्पदम्। (५,४८४)

इस सबके पश्चात् प्रशस्तिमें तो स्पष्ट ही कहा है कि मसूतिकापुरमें इस शास्त्रकी रचना हुई है।

आ० अमितगति-द्वारा रचे गये अन्य ग्रन्थोंमें भी यही बात दृष्टिगोचर होती है। क्या अपने नाम-प्रसिद्धिके व्यामोहमें दूसरेके नामका अपलाप पाप नहीं है? यह ठीक है कि प्रा० पञ्चसंग्रहके रचयिता अज्ञात आचार्य रहे हैं। परन्तु यथार्थ स्थितिसे अपने पाठकोंको परिचित रखनेके लिए कमसे कम उन्हें प्राकृत पञ्चसंग्रहके अस्तित्वका और उसके आधारपर अपनी रचना रचनेका उल्लेख तो करना ही चाहिए था। यही गनीमतकी बात है कि उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ और उसके प्रकरणोंका नाम नहीं बदला और प्राकृत पञ्चसंग्रहके समान वे ही नाम अपने संस्कृत पञ्चसंग्रहमें दिये।

यह संस्कृत पञ्चसंग्रह लगभग २५०० श्लोक प्रमाण है।

दूसरे संस्कृत पञ्चसंग्रहकी एक मात्र प्रति ईडरके भण्डारसे ही सर्वप्रथम प्राप्त हुई है। इसके रचयिता श्रीपाल-सुत डड्ढा हैं। इन्होंने अपनी रचनामें तीन स्थलोंपर जो परिचयात्मक पद्य दिये हैं, उनमेंसे दो तो बिलकुल शब्दशः समान हैं। एकके उत्तरार्धमें कुछ विभिन्नता है। वे दोनों पद्य इस प्रकार हैं—

१. श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्राग्वाटवणिजा कृते।
श्रीपालसुतडड्ढेन स्फुटार्थः पञ्चसंग्रहः ॥ ४,३३३
५,४२८

२. श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्राग्वाटवणिजा कृते।
श्रीपालसुतडड्ढेन स्फुटः प्रकृतिसंग्रहः ॥ (५,८५)
(मुद्रित पृ० ७४२)

इन उपर्युक्त दोनों ही पद्योंमें रचयिताने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है, उससे इतना ही विदित होता है कि चित्रकूट (सम्भवतः चित्तौरगढ़) के निवासी, प्राग्वाट (पोरवाड़ या परवार) जातीय वैश्य श्रीश्रीपालके सुपुत्र डड्ढाने इस सं० पञ्चसंग्रहकी रचना की है। इतने मात्र संक्षिप्त परिचयसे न उनके समयपर प्रकाश पड़ता है और न उनके गुरु आदिकी परम्परा पर ही। परन्तु पञ्चसंग्रहकी संस्कृत टीकाका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाव श्रीडड्ढा पर रहा है, यह बात उनके द्वारा दी गई संदृष्टियोंसे अवश्य हृदयपर अंकित होती है। संस्कृतटीकाकारने अपनी रचनाका काल विक्रम सं० १६२० दिया है अतः इसके बाद ही इस दूसरे सं० पञ्चसंग्रहकी रचना हुई है। प्राप्त प्रतिकी स्थिति और लिखावट आदि देखते हुए वह ३०० वर्ष प्राचीन प्रतीत होती है—यह बात हम प्रति-परिचयमें बतला आये हैं अतः इसके विक्रमकी सत्तरहवीं शताब्दीमें रचे जानेका अनुमान होता है।

दि० परम्परामें पं० आशाधरजी, पं० मेधावी और पं० राजमल्लजीके पश्चात् संस्कृत भाषामें ग्रन्थ-रचना करनेवाले सम्भवतः ये अन्तिम विद्वान् प्रतीत होते हैं। ये गृहस्थ थे, यह बात अपनी जाति और पिताके नामोल्लेखसे ही सिद्ध है। ये प्रतिभाशाली एवं कर्मशास्त्रके अच्छे अधिकारी विद्वान् रहे हैं, ऐसा उनकी रचनाका अध्ययन करनेपर सहज ही अनुभव होता है। अमितगतिके सं० पञ्चसंग्रहके होते हुए इन्होंने क्यों पुनः सं० पञ्चसंग्रहकी रचना की, यह बात पहले इसी प्रस्तावनामें स्पष्ट की जा चुकी है। यह सं० पञ्चसंग्रह लगभग २००० श्लोक-प्रमाण है।

प्रा० पञ्चसंग्रहकी संस्कृत टीका

प्राकृत पञ्चसंग्रहके ऊपर जो संस्कृत टीका उपलब्ध हुई है यह प्रस्तुत ग्रन्थमें दी गई है। दुर्भाग्यसे इसका प्रारम्भिक अंश उपलब्ध नहीं हो सका और न दूसरी कोई प्रति ही मिल सकी, जिससे कि उस खण्डित अंशकी पूर्ति की जा सकती। यद्यपि यह टीका तीसरे प्रकरणकी ४०वीं गाथातक त्रुटित है, तथापि उसके भी विनाशके भयसे व्याकुल होकर एवं श्रुत-रक्षाकी भावनासे प्रेरित होकर ज्ञानपीठके संचालकों और उसके सम्पादकोंने उसे प्रकाशमें लाना उचित समझा और इसीलिए जहाँसे भी वह उपलब्ध हुई, वहींसे उसे प्रकाशित करनेकी व्यवस्था की गई है।

टीका अपने आपमें साङ्गोपाङ्ग है। प्रत्येक स्थलपर अग्रिम वक्तव्यकी उत्थानिका देकर और गाथाको पूरा उद्धृत कर टीका लिखी गई है। प्रत्येक आवश्यक स्थलपर अंक-संदृष्टियाँ दी गई हैं, जिससे उसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गई है। बीच-बीचमें अपने कथनकी पुष्टिमें अमितगतिके संस्कृत पञ्चसंग्रहके अनेकों श्लोक एवं गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्डकी अनेकों गाथाएँ उद्धृत की गई हैं। टीकाकी भाषा अत्यन्त सरल और प्रसादगुण-युक्त है।

टीकाकार

इस टीकाके रचयिता सूरि (सम्भवतः भट्टारक) श्री सुमतिकीर्ति हैं। इन्होंने अपनी इस टीकाको वि० सं० १६२० के भाद्रपद शुक्ला दशमीके दिन ईलाव (?) नगरके आदिनाथ-चैत्यालयमें पूर्ण किया है, यह बात टीकाके अन्तमें दी गई प्रशस्तिसे स्पष्ट है। टीकाकारने अपनी जो गुरु-परम्परा दी है, उसके अनुसार वे मूलसंघ और बलात्कारगणमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें उत्पन्न हुए पद्मनन्दी, देवेन्द्रकीर्त्ति, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द्र, ज्ञानभूषण और प्रभाचन्द्रके पश्चात् भट्टारक पदपर आसीन हुए हैं। हंस नामक किसी वर्णीके उप-देशसे प्रेरित होकर उन्होंने प्रस्तुत टीकाका निर्माण किया है। इसका संशोधन उनके गुरु ज्ञानभूषणने किया है।

संस्कृत टीकाकारकी एक भूल

पञ्चसंग्रहके टीकाकार सुमतिकीर्ति समग्र ग्रन्थकी संस्कृत टीका करते हुए भी एक बहुत बड़ी भूल प्रस्तुत ग्रन्थके यथार्थ नामको नहीं समझ सकनेके कारण उसके अध्याय-विभाजनमें कर गये हैं। गोम्मटसारका दूसरा नाम पञ्चसंग्रह उसके टीकाकारोंने दिया है। सकलकीर्त्तिने देखा कि गो० जीव काण्डका विषय प्रस्तुत ग्रन्थके प्रथम प्रकरण जीवसमासमें आया है। किन्तु गो० जीवकाण्डमें तो ७३३ गाथाएँ हैं और इसमें केवल २०६ ही। अतः यह लघु गो० जीवकाण्ड होना चाहिए। इसी प्रकार गो० कर्मकाण्डके प्रकृति समुत्कीर्त्तन अधिकारमें ९० के लगभग गाथाएँ पाई जाती हैं, पर इसमें तो केवल १२ ही हैं। इसी प्रकार आगे भी गो० कर्मकाण्डके जिस प्रकरणमें जितनी गाथाएँ हैं, उससे प्रस्तुत ग्रन्थके विवक्षित प्रकरणमें कम ही गाथाएँ दृष्टिगोचर हो रही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं; अतः यह लघु गो० कर्मकाण्ड होना चाहिए। इस प्रकारके मति-विभ्रम हो जानेके कारण उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थको लघु गोम्मटसार ही समझ लिया और इसीके फलस्वरूप अधिकारोंके अन्तमें जो पुष्पिका-वाक्य दिये हैं, उसमें उन्होंने सर्वत्र उक्त भूलको दुहराया है। यहाँ हम इस प्रकारकी पुष्पिकाके दो उद्धरण देते हैं—

१. इति श्रीपञ्चसंग्रहापरनामलघुगोम्मटसारसिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डे बन्धोदयोदीरणसत्त्वप्ररूपणो नाम द्वितीयोऽध्यायः।

(देखो, पृ० ७४ की टिप्पणी)

२. इति श्रीपञ्चसंग्रहगोम्मट्टसारसिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डे जीवसमासादिप्रत्ययप्ररूपणो नाम चतुर्थोऽधिकारः।

(देखो, पृ० १७४ की टिप्पणी)

इस प्रकारकी भूल सभी अधिकारोंमें हुई है। उक्त दोनों उद्धरण गो० कर्मकाण्डके नामोल्लेख वाले दिये गये हैं, गो० जीवकाण्डके नामवाले नहीं। इसका कारण यह है कि प्रारम्भके दो प्रकरणोंपर अर्थात् जीवसमास और प्रकृति समुत्कीर्त्तनपर संस्कृत टीका उपलब्ध नहीं है। जो आदर्श प्रति प्राप्त हुई है, उसके प्रारम्भके ३७ पत्र नहीं मिल सके हैं जिनमें उक्त दोनों प्रकरणोंकी संस्कृत टीका रही है। लेकिन प्राप्त पुष्पिकाओंके आधारपर यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि जीवसमासकी समाप्तिपर टीकाकार-द्वारा जो पुष्पिका दी गई होगी, उसमें उसे 'लघु गोम्मटसार जीवकाण्ड' अवश्य कहा गया होगा। साथ ही आगेके अधिकारोंके विभाजनको देखते हुए यह भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसके भी अधिकारोंका विभाजन उन्होंने ठीक उसी प्रकार किया होगा, जिस प्रकारसे कि गो० जीवकाण्डमें पाया जाता है। इसके प्रमाणमें हम उपलब्ध पुष्पिकाओंसे दिये गये अधिकारोंकी क्रम-संख्याको प्रस्तुत करते हैं।

प्रा० पञ्चसंग्रहका कर्मस्तव तीसरा अधिकार है। पर उसके अन्तमें जो पुष्पिका दी गयी है, उसमें उसे दूसरा अध्याय कहा गया है। (देखो, पृ० ७४ की ऊपर दी गई पुष्पिका) इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन नामक दूसरे अधिकारको प्रथम अधिकार समझा है। और यतः गो० कर्मकाण्डमें प्रकृति-समुत्कीर्त्तन नामका प्रथम और बन्धोदयसत्त्व प्ररूपणावाला द्वितीय अधिकार पाया जाता है, अतः टीकाकारने प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन अधिकारसे लेकर आगेके भागको गो० कर्मकाण्डका संक्षिप्त रूप मान लिया, और उसके पूर्ववर्ती भागको गो० जीवकाण्डका। अतः उन्होंने तदनुसार ही अधिकारोंका विभाजन करना प्रारम्भ कर दिया। यदि उन्हें यह विभ्रम न होता, तो वे पञ्चसंग्रहके मूल अधिकारोंके समान ही अधिकारोंका विभाजन करते और उनके अन्तमें ही अपनी पुष्पिका देते।

उक्त विभ्रमकी पुष्टिमें दूसरी बात यह है कि प्रारम्भके दो अधिकारोंकी टीकाको छोड़कर शेष अधिकारोंपर जो टीका की गई है, उसपर मूल अधिकारोंके समान ही अधिकारोंकी अंक-संख्या दी जानी चाहिए थी। किन्तु हम देखते हैं कि पाँचवें सप्ततिका अधिकारकी समाप्तिपर सातवें अध्यायके समाप्तिका निर्देश किया गया है।

टीकाकारने मूल-गाथा और भाष्य-गाथाका अन्तर न समझ सकनेके कारण कहीं-कहीं मूल और भाष्य-गाथाकी टीका एक साथ ही की है। पर मैंने सर्वत्र मूल-गाथासे भाष्य-गाथाको पृथक् रखा है और तदनुसार पृथक् रूपसे ही उसका अनुवाद किया है। इससे २-१ स्थलोंपर अनुवाद कुछ असंगत-सा दिखाई देने लगा है (देखो, पृ० ४१५ इत्यादि)। परन्तु मूल-गाथाओंकी भिन्नता प्रकट करनेके लिए उनका पृथक् अनुवाद करना अनिवार्य रूपसे आवश्यक था।

जिस प्रकार आ० अमितगतिने श्लेषरूपमें प्रत्येक अधिकारके अन्तमें अपने नामका उल्लेख किया है ठीक उसी प्रकारसे संस्कृत टीकाकारने भी किया है और इसलिए अमितगतिके सं० पञ्चसंग्रहका अपनी टीकामें भर-पूर उपयोग करते हुए एवं पर्याप्त-संख्यामें उसके श्लोकोंको उद्धृत करते हुए भी उन्होंने उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकार-समाप्तिपर दिये गये श्लोकोंमें थोड़ा-बहुत शब्द-परिवर्तन कर स्व-रचितके रूपमें उपस्थित किया है। उदाहरणके लिए एक बानगी इस प्रकार है—

बन्धविचारं बहुतमभेदं यो हृदि धत्ते विगलितखेदम्।
याति स भव्यो व्यपगतकष्टां सिद्धिमबन्धोऽमितगतिरिष्टाम्॥

(सं० पञ्चसं० पृ० १४६)

बन्धविचारं बहुविधिभेदं यो हृदि धत्ते विगलितपापम्।
याति स भव्यः सुमतिसुकीर्त्तिं सौख्यमनन्तं शिवपदसारम्॥

(प्रस्तुत ग्रन्थ पृ० २१३)

दोनों पद्योंमें एक ही बात कही गई है, शब्द और अर्थ-साम्य भी है। परन्तु 'अमितगति' के नामपर अपने 'सुमतिकीर्त्ति' नामको प्रतिष्ठित कर दिया गया है जो स्पष्टरूपसे अनुकरण है।

विषय-परिचय

जैसा कि इस ग्रन्थके नामसे प्रकट है, इसमें पाँच प्रकरणोंका संग्रह किया गया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—जीवसमास, प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन, बन्धस्तव, शतक और सप्ततिका।

१ जीवसमास—इस प्रकरणमें गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणा और उपयोग, इन बीस प्ररूपणाओंके द्वारा जीवोंकी विविध दशाओंका वर्णन किया गया है। मोह और योगके निमित्तसे होनेवाले जीवोंके परिणामोंके तारतम्यरूप क्रम-विकसित स्थानोंको गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान चौदह होते हैं—मिथ्यात्व, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली। इनका स्वरूप प्रथम प्रकरणके प्रारम्भमें बतलाया गया है। दूसरी जीवसमास प्ररूपणा है। जिन धर्मविशेषोंके द्वारा नाना जीव और उनकी नाना प्रकारकी जातियाँ जानी जाती हैं, उन धर्मविशेषोंको जीवसमास कहते हैं। जीवसमासके संक्षेपसे चौदह भेद हैं और विस्तारकी अपेक्षा इक्कीस, तीस, बत्तीस, छत्तीस, अड़तीस, अड़तालीस, चौवन और सत्तावन भेद होते हैं। इन सर्व भेदोंका प्रथम प्रकरणमें विस्तारसे विवेचन किया गया है। तीसरी पर्याप्ति-प्ररूपणा है। प्राणोंके कारणभूत शक्तिकी प्राप्तिको पर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्तियाँ छह प्रकारकी होती हैं—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति। एकेन्द्रिय-जीवोंके प्रारम्भकी चार, विकलेन्द्रिय जीवोंके प्रारम्भकी पाँच और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके छहों पर्याप्तियाँ होती हैं। चौथी प्राणप्ररूपणा है। पर्याप्तियोंके कार्यरूप इन्द्रियादिके उत्पन्न होनेको प्राण कहते हैं। प्राणोंके दस भेद हैं—स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, कर्णेन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास। इनमेंसे एकेन्द्रिय जीवोंके स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास; ये चार प्राण होते हैं। द्वीन्द्रियजीवोंके रसनेन्द्रिय और वचनबल इन दोके साथ उपर्युक्त चार प्राण मिलाकर छह प्राण होते हैं। त्रीन्द्रियजीवोंके इन्हीं छहमें घ्राणेन्द्रिय मिला देनेपर सात प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रिय जीवोंके इन्हीं सातमें चक्षुरिन्द्रिय मिला देनेपर आठ प्राण होते हैं। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियजीवोंके इन्हीं आठमें कर्णेन्द्रिय मिला देनेपर नौ प्राण होते हैं। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके इन्हीं नौ प्राणोंमें मनोबल और मिला देनेपर दस प्राण होते हैं। पाँचवीं संज्ञा-प्ररूपणा है। जिनके सेवन करनेसे जीव इस लोक और परलोकमें दुःखोंका अनुभव करता है, उन्हें संज्ञा कहते हैं। संज्ञाके चार भेद हैं—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रह संज्ञा। एकेन्द्रियसे लगाकर पञ्चेन्द्रिय तकके सर्व जीवोंके ये चारों ही संज्ञाएँ पायी जाती हैं। जिन अवस्थाविशेषोंमें जीवोंका अन्वेषण किया जाता है, उन्हें मार्गणा कहते हैं। मार्गणाओंके चौदह भेद हैं—गतिमार्गणा, इन्द्रिय-मार्गणा, कायमार्गणा, योगमार्गणा, वेदमार्गणा, कषायमार्गणा, ज्ञानमार्गणा, संयममार्गणा, दर्शनमार्गणा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेश्यामार्गणा, भव्यमार्गणा, सम्यक्त्वमार्गणा, संज्ञिमार्गणा और आहारमार्गणा। प्रथम प्रकरणमें इन चौदह मार्गणाओंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। बीसवीं उपयोग-प्ररूपणा है। वस्तुके स्वरूपको जाननेके लिए जीवका जो भाव प्रवृत्त होता है, उसे उपयोग कहते हैं। उपयोग दो प्रकारका होता है—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग। साकारोपयोगके आठ और अनाकारोपयोगके चार भेद होते हैं। इस प्रकार पहले जीवसमास प्रकरणमें बीसप्ररूपणोंके द्वारा जीवोंकी विविध दशाओंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है।

२ प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन—यह पञ्चसंग्रहका द्वितीय प्रकरण है। इसमें कर्मोंकी मूल प्रकृतियों और उत्तर प्रकृतियोंका निरूपण किया गया है। मूलप्रकृतियाँ आठ हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। इनकी उत्तर प्रकृतियाँ क्रमशः पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानबे, दो और पाँच है। जो सब मिलाकर १४८ होती हैं। इनमेंसे बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ १२०, उदययोग्य प्रकृतियाँ १२२, उद्वेलन-प्रकृतियाँ ११, ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ ४७, अध्रुवबन्धी ११, परिवर्तमान प्रकृतियाँ ६२ तथा सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ १४८ हैं। पञ्चसंग्रहके पाँचों प्रकरणोंमें यह सबसे छोटा प्रकरण है। यतः कर्म-विषयक अन्य ग्रन्थोंमें कर्म-प्रकृतियोंका विस्तृत विवेचन किया गया है, अतः ग्रन्थकारने प्रकृतियोंके नाम-निर्देशके अतिरिक्त अन्य कुछ वर्णन करना आवश्यक नहीं समझा है।

३ कर्मस्तव—यह पञ्चसंग्रहका तृतीय प्रकरण है। कुछ आचार्य इसे बन्धस्तव और कुछ कर्म-बन्धस्तवके नामसे भी इसका उल्लेख करते हैं। इस प्रकरणकी मूलगाथाओंकी संख्या ५२ और भाष्यगाथाओं तथा चूलिका गाथाओंकी संख्या मिलाकर सर्व गाथाएँ ७७ हैं। इस प्रकरणमें चौदह गुणस्थानोंमें बँधनेवाली, नहीं बँधनेवाली और बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका; तथा सत्त्व-योग्य, असत्त्व-योग्य और सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका विवेचन किया गया है और अन्तमें चूलिकाके भीतर नौ प्रश्नोंको उठाकर उनका समाधान करते हुए बतलाया गया है कि किन प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छित्ति, उदय-व्युच्छित्ति और सत्त्व-व्युच्छित्ति पहले, पीछे या साथमें होती है। इस नवप्रश्नरूप चूलिकाके द्वारा कर्मप्रकृतियोंकी बन्ध, उदय और सत्त्व-व्युच्छित्ति सम्बन्धी कितनी ही ज्ञातव्य बातोंका सहजमें ही बोध हो जाता है। 'स्तव' नाम विवेच्य वस्तुके विवेचन करनेवाले अधिकारका है, अतः यह मूल प्रकरण दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंमें कर्मस्तव या बन्धस्तव नामसे प्रसिद्ध है।

४ शतक—पञ्चसंग्रहके चौथे प्रकरणका नाम शतक है। यतः इस प्रकरणके मूल गाथाओंकी संख्या सौ है, अतः यह प्रकरण 'शतक' नामसे ही दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें प्रसिद्ध है। इस प्रकरणमें चौदह मार्गणाओंके आधारसे जीवसमास, गुणस्थान, उपयोग और योगका वर्णन करके तदनन्तर कर्म-बन्धके कारणभूत मिथ्यात्व, अविरति आदि बन्ध-प्रत्ययोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है। साथ ही मिथ्यात्व आदि गुणस्थानोंमें जघन्य और उत्कृष्ट प्रत्ययोंकी अपेक्षा सम्भव संयोगी भंगोंका विस्तृत विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका वर्णन किया गया है। पुनः कर्मबन्धके प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका स्वामित्व आदि अनेक अधिकारोंके द्वारा विस्तारसे साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है। इस प्रकरणके मूलगाथाओंकी संख्या १०५ है और उनके साथ भाष्य-गाथाओंकी संख्या ५२२ है।

५ सप्ततिका—पञ्चसंग्रहके पाँचवें प्रकरणका नाम सप्ततिका है। यतः इस प्रकरणके मूलगाथाओं-की संख्या सत्तर है, अतः यह प्रकरण दोनों ही सम्प्रदायोंमें 'सित्तरी' या 'सप्ततिका'के नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकरणमें मूलकर्मों और उनके अवान्तर भेदोंके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थानोंका स्वतन्त्ररूपसे एवं चौदह जीवसमास और गुणस्थानोंके आश्रयसे विवेचन कर उनके संभव भंगोंका विस्तारसे वर्णन करते हुए अन्तमें कर्मोंकी उपशामना और क्षपणाका विवेचन किया गया है। इस प्रकरणकी मूलगाथाएँ अतिसंक्षिप्त एवं दुरूह हैं, इस बातका अनुभव करके ही भाष्यगाथाकारने उनका विवेचन भाष्यगाथाएँ रचकर अतिसुगम कर दिया है। इस प्रकरणकी मूलगाथा-संख्या ७२ है और उनके साथ भाष्यगाथाओंकी संख्या ५०७ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतक और सप्ततिका इन दोनों ही प्रकरणोंमें भंगोंका निरूपण करनेवाली अनेकों भाष्यगाथाएँ शब्दशः समान हैं, जिन्हें उनके रचयिताने दोनों ही प्रकरणोंकी स्वतन्त्रताको अक्षुण्ण रखनेके लिए दोनों ही प्रकरणोंमें निबद्ध किया है और इसीसे यह सिद्ध होता है कि इन प्रकरणोंके भाष्यगाथाओंके रचयिता एक ही व्यक्ति हैं।

—हीरालाल शास्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ-विषय-सूची

	पृष्ठ
१ जीवसमास-अधिकार	**१-४३**
मंगलाचरण और वस्तु-निरूपणकी प्रतिज्ञा	१
जीवप्ररूपणाके भेद	२
गुणस्थानका स्वरूप और भेद	२
मिथ्यात्वगुणस्थानका स्वरूप	३
सासादनगुणस्थान ,,	३
सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थान ,,	३
अविरतसम्यक्त्वगुणस्थान ,,	४
देशविरतगुणस्थान ,,	४
प्रमत्तसंयतगुणस्थान ,,	४
अप्रमत्तसंयतगुणस्थान ,,	५
अपूर्वकरणगुणस्थान ,,	५
अनिवृत्तिकरणगुणस्थान ,,	५
सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान ,,	६
उपशान्तकषायगुणस्थान ,,	६
क्षीणकषायगुणस्थान ,,	६
सयोगिकेवलिगुणस्थान ,,	७
अयोगिकेवलिगुणस्थान ,,	७
सिद्धोंका स्वरूप	७
जीवसमासका स्वरूप	७
जीवसमासोंके भेद	८-९
पर्याप्तिप्ररूपणा	९
प्राणप्ररूपणा	१०
संज्ञाप्ररूपणा	११
आहारसंज्ञाका स्वरूप	११
भयसंज्ञा ,,	११
मैथुनसंज्ञा ,,	१२
परिग्रहसंज्ञा ,,	१२
मार्गणाका स्वरूप और भेद	१२
आठ सान्तरमार्गणा	१२
गतिका स्वरूप	१३
नरकगति ,,	१३
तिर्यग्गति ,,	१३
मनुष्यगति स्वरूप	१३
देवगति ,,	१३
सिद्धगति ,,	१४
इन्द्रियमार्गणाका वर्णन और इन्द्रियका स्वरूप	१४
इन्द्रियोंके आकार	१४
एकेन्द्रियादि जीवोंके इन्द्रिय-निरूपण	१४
इन्द्रियोंके विषय	१४
एकेन्द्रिय जीवका स्वरूप	१५
द्वीन्द्रियजीवोंके भेद	१५
त्रीन्द्रिय जीवोंके भेद	१५
चतुरिन्द्रिय जीवोंके भेद	१५
पंचेन्द्रिय जीवोंके भेद	१५
अतीन्द्रिय जीवोंका स्वरूप	१५
कायमार्गणाका वर्णन और कायका स्वरूप	१६
पृथिवीकायिक जीवोंके भेद	१६
जलकायिक ,,	१६
अग्निकायिक ,,	१६
वायुकायिक ,,	१७
वनस्पतिकायिक ,,	१७
साधारणवनस्पतिकायिक जीवोंका वर्णन	१७
त्रसकायिक जीवोंके भेद	१८
अकायिक जीवोंका स्वरूप	१८
योगमार्गणाका वर्णन और योगका स्वरूप	१८
मनोयोगके भेद और उनका स्वरूप	१८-१९
वचनयोगके भेद और उनका स्वरूप	१९
औदारिक काययोगका ,,	२०
औदारिक मिश्रकाययोग ,,	२०
वैक्रियिककाययोग ,,	२१
वैक्रियिकमिश्रकाययोग ,,	२१
आहारककाययोग ,,	२१
आहारकमिश्रकाययोग ,,	२१
कार्मणकाययोग ,,	२१
अयोगि जीवोंका स्वरूप	२२
वेदमार्गणाका वर्णन और वेदका स्वरूप	२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदके भेद और वेद-वैषम्यका निरूपण	२२	केवल दर्शन ,,	३०
भाववेद और द्रव्यवेदका कारण	२२	लेश्यामार्गणा, लेश्याका स्वरूप	३०
वेद-वैषम्यका कारण	२२	लेश्याके स्वरूपका दृष्टान्त-द्वारा स्पष्टीकरण	३१
स्त्रीवेदका स्वरूप	२३	कृष्णलेश्याका लक्षण	३१
पुरुषवेदका स्वरूप	२३	नीललेश्या ,,	३१
नपुंसकवेद ,,	२३	कापोतलेश्या ,,	३१
अपगतवेदी जीव	२३	तेजोलेश्या ,,	३२
कषाय मार्गणा, कषायका स्वरूप	२३	पद्मलेश्या ,,	३२
कषायोंके भेद और उनके कार्य	२४	शुक्ललेश्या ,,	३२
क्रोध कषायकी जातियाँ और उनका फल	२४	अलेश्यजीवोंका स्वरूप	३२
मान कषायकी ,, ,,	२४	भव्यमार्गणा, भव्यका स्वरूप	३३
माया कषायकी ,, ,,	२४	भव्य और अभव्य जीवोंका विशेष निरूपण	३३
लोभ कषायकी ,, ,,	२४	भव्यत्व और अभव्यत्वसे रहित जीवोंका वर्णन	३३
चारों जातिकी कषायोंके कार्य	२५	सम्यक्त्वमार्गणा, सम्यक्त्वप्राप्तिकी योग्यता	३४
अकषायिक जीवोंका स्वरूप	२५	सम्यक्त्वका स्वरूप	३४
ज्ञानमार्गणा, ज्ञानका स्वरूप	२५	क्षायिकसम्यक्त्व ,,	३४
मत्यज्ञानका स्वरूप	२५	वेदकसम्यक्त्व ,,	३४
श्रुताज्ञान ,,	२६	उपशमसम्यक्त्व ,,	३५
विभंगज्ञान ,,	२६	तीनों सम्यक्त्वोंका गुणस्थानोंमें विभाजन	३५
मतिज्ञान ,,	२६	सासादनसम्यक्त्वका स्वरूप	३५
श्रुतज्ञान ,,	२६	सम्यग्मिथ्यात्व ,,	३६
अवधिज्ञान ,,	२६	मिथ्यात्व ,,	३६
अवधिज्ञानके भेद	२७	उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें सर्वोपशम और देशोपशमका नियम	३६
मनःपर्ययज्ञानका स्वरूप	२७		
केवलज्ञान ,,	२७	सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पश्चात् मिथ्यात्व-प्राप्तिका नियम	३६
संयममार्गणा, द्रव्यसंयमका स्वरूप	२७		
भावसंयमका स्वरूप	२८	संज्ञिमार्गणा, संज्ञी और असंज्ञीका सामान्य स्वरूप	३६
सामायिक संयम ,,	२८	संज्ञी असंज्ञीका विशेष स्वरूप	३७
छेदोपस्थापना ,,	२८	आहारमार्गणा, आहारकका स्वरूप	३७
परिहारविशुद्धि ,,	२८	आहारक और अनाहारक जीवोंका विभाजन	३७
सूक्ष्मसाम्पराय ,,	२८	उपयोग प्ररूपणा, उपयोगका स्वरूप और भेद	३७
यथाख्यात ,,	२९	साकार उपयोग	३८
संयमासंयम ,,	२९	अनाकार उपयोग	३८
संयमासंयमका विशेष स्वरूप	२९	युगपद् उभयोपयोगी जीवोंके कालका निरूपण	३८
देशविरतके भेद	२९	जीवसमास अधिकारका उपसंहार	३८
असंयमका स्वरूप	२९	छहों लेश्याओंके वर्ण	३८
दर्शनमार्गणा, दर्शनका स्वरूप	३०	नरकोंमें लेश्याओंका निरूपण	३९
चक्षुदर्शनका ,,	३०	तिर्यञ्च और मनुष्योंमें ,,	३९
अवधिदर्शन ,,	३०	गुणस्थानोंमें ,,	३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवोंमें लेश्याओंका निरूपण ४०
पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवोंकी लेश्याओंका निरूपण ४०
विग्रहगतिको प्राप्त ,, ,, ,, ४०
लेश्या-जनित भावोंका दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण ४०
सम्यग्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न नहीं होता ४१
एक जीवके कौन-कौनसी मार्गणाएँ एक साथ नहीं होतीं ४१
संयमोंका गुणस्थानोंमें निरूपण ४१
समुद्घातके भेद ४१
केवलिसमुद्घातका निरूपण ४१
केवलिसमुद्घातमें काययोगोंका वर्णन ४२
केवलिसमुद्घातका नियम ४२
सम्यक्त्व, अणुव्रत और महाव्रतकी प्राप्तिका नियम ४२
दर्शन मोहके क्षयका अधिकारी जीव ४२
क्षायिक सम्यग्दृष्टिके संसार-वासका नियम ४३
दर्शन मोहके उपशमका अधिकारी जीव ४३
सम्यक्त्व आदिके विरह-कालका नियम ४३
नारकियोंके विरह-कालका नियम ४३

२. प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन-अधिकार ४४–५०

मंगलाचरण और प्रकृति समुत्कीर्तन करनेकी प्रतिज्ञा ४४
प्रकृतियोंके भेद ४४
मूल प्रकृतियोंके नाम ४४
मूल प्रकृतियोंके स्वभावका दृष्टान्त द्वारा निरूपण ४४
उत्तर प्रकृतियोंके भेदोंका पृथक्-पृथक् वर्णन ४५
बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ ४८
बन्धके अयोग्य प्रकृतियाँ ४८
उदयके अयोग्य प्रकृतियाँ ४९
उद्वेलना-योग्य प्रकृतियाँ ४९
ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ ४९
अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ ४९
परिवर्त्तमान प्रकृतियाँ ५०

३. कर्मस्तव अधिकार ५१–७९

मंगलाचरण और कर्मोंके बन्ध-उदयादि-कथनकी प्रतिज्ञा ५१
बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्त्वका स्वरूप ५१
गुणस्थानोंमें मूल प्रकृतियोंके बन्धका निरूपण ५२
गुणस्थानोंमें मूल प्रकृतियोंके उदयका निरूपण ५२
गुणस्थानोंमें मूल प्रकृतियोंकी उदीरणाका निरूपण ५३
दशवें और बारहवें गुणस्थानमें उदीरणाका नियम ५३
गुणस्थानोंमें मूल प्रकृतियोंके सत्त्वका निरूपण ५४
गुणस्थानोंमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन ५४
बन्धके विषयमें कुछ विशेष नियम ५४
मिथ्यात्व गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ ५६
सासादन गुणस्थानमें ,, ,, ,, ५७
अविरत गुणस्थानमें ,, ,, ,, ५७
देशविरत गुणस्थानमें ,, ,, ,, ५७
प्रमत्तविरत गुणस्थानमें ,, ,, ,, ५७
अप्रमत्त विरत गुणस्थानमें ,, ,, ,, ५८
अपूर्वकरण गुणस्थानमें ,, ,, ,, ५८
अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें ,, ,, ,, ५८
सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें ,, ,, ,, ५९
सयोगि केवलीके ,, ,, ,, ५९
गुणस्थानोंमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंकी संख्याका निरूपण ५९
कुछ विशेष प्रकृतियोंके उदय-विषयक नियम ५९
आनुपूर्वीके उदय-विषयक कुछ विशेष नियम ६०
मिथ्यात्व गुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ ६१
सासादन गुणस्थानमें ,, ,, ,, ६२
सम्यग्मिथ्यात्वमें ,, ,, ,, ६२
अविरत सम्यक्त्वमें ,, ,, ,, ६२
देशविरतमें ,, ,, ,, ६२
प्रमत्त विरतमें ,, ,, ,, ६३
अप्रमत्तविरतमें ,, ,, ,, ६३
अपूर्वकरणमें ,, ,, ,, ६३
अनिवृत्ति करणमें ,, ,, ,, ६३
सूक्ष्म साम्परायमें ,, ,, ,, ६३
उपशान्त मोहमें ,, ,, ,, ६३
क्षीण मोहमें ,, ,, ,, ६४
सयोगि केवलीके ,, ,, ,, ६४
अयोगि केवलीके ,, ,, ,, ६५
उदय और उदीरणामें तीन गुणस्थान-गत विशेषताका निरूपण ६५
गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके क्षयका क्रम ६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ विशेष प्रकृतियोंके सत्त्व-असत्त्व-विषयक नियम ६९
अनिवृत्ति करणमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ ७१
सूक्ष्मसाम्परायमें ,, ,, ,, ७२
क्षीणकषायमें ,, ,, ,, ७२
अयोगि केवलीके द्विचरम समयमें ,, ,, ७२
अयोगि केवलीके चरम समयमें ,, ,, ७३
कर्मस्तवकी अन्तिम मंगल-कामना ७३
बन्ध-उदयादि-सम्बन्धी नवप्रश्न-चूलिका ७४
नौ प्रश्नोंमेंसे द्वितीय प्रश्नका समाधान ७५
,, तृतीय ,, ,, ७५
,, प्रथम ,, ,, ७६
,, पाँचवें ,, ,, ७७
,, चौथे ,, ,, ७७
,, छठें ,, ,, ७७
,, आठवें ,, ,, ७८
,, सातवें ,, ,, ७८
,, नवें ,, ,, ७९

४. शतक अधिकार ८०–२६३

मंगलाचरण और वस्तु-कथनकी प्रतिज्ञा ८०
जिनवचनामृतकी महत्ता ८०
प्रतिपाद्य विषयके सुननेके लिए श्रोताओंको सम्बोधन ८१
प्रतिपाद्य विषयका निर्देश ८१
शतककार-द्वारा मार्गणा स्थानोंमें जीवसमासोंका निरूपण ८१
भाष्य गाथाकार-द्वारा ,, ,, ,, ८२-८६
शतककार-द्वारा जीव समासोंमें उपयोगका निरूपण ८७
भाष्य गाथाकार-द्वारा ,, ,, ,, ८७
भाष्य गाथाकार-द्वारा मार्गणा स्थानोंमें ,, ८८-९२
शतककार-द्वारा जीवसमासोंमें योगोंका वर्णन ९२
भाष्य गाथाकार-द्वारा ,, ,, ,, ९३
भाष्य गाथाकार-द्वारा मार्गणाओंमें योगोंका वर्णन ९४-९७
शतककार-द्वारा मार्गणाओंमें गुणस्थानोंका निरूपण ९८
भाष्य गाथाकार-द्वारा ,, ,, ९८-१०२
शतककार-द्वारा गुणस्थानोंमें उपयोगका वर्णन १०२
भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका विशद विवेचन १०२-१०३
शतककार-द्वारा गुणस्थानोंमें योग-निरूपण १०३
भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण १०४
बन्ध-प्रत्ययोंके भेदोंका निर्देश १०५
गुणस्थानोंमें मूल बन्ध-प्रत्ययोंका वर्णन १०५
गुणस्थानोंमें उत्तर-प्रत्ययोंका निरूपण १०६
किस गुणस्थानमें कौन-कौनसे उत्तर प्रत्यय नहीं होते १०६
मार्गणाओंमें बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण १०८-११३
गुणस्थानोंकी अपेक्षा एक जीवके एक समयमें सम्भव, जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट बन्ध-प्रत्ययोंका निर्देश ११३
काय-विराधना-सम्बन्धी गुणकारोंका निरूपण ११४-११६
मिथ्यादृष्टिके भी अवस्था-विशेषमें एक आवली कालतक अनन्तानुबन्धी कषायका उदय नहीं होता ११६
मिथ्यादृष्टिके दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंका निरूपण ११७
मिथ्यादृष्टिके ग्यारह ,, ,, ,, ११९
,, बारह ,, ,, ,, १२०
,, तेरह ,, ,, ,, १२२
,, चौदह ,, ,, ,, १२४
,, पन्द्रह ,, ,, ,, १२६
,, सोलह ,, ,, ,, १२८
,, सत्रह ,, ,, ,, १२९
,, अट्ठारह ,, ,, ,, १३१
सासादन सम्यग्दृष्टिके बन्ध-प्रत्यय-गत विशेष निर्देश १३२
सासादन सम्यग्दृष्टिके दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंका निरूपण १३२
सासादन सम्यग्दृष्टिके ग्यारह ,, ,, १३३
,, बारह ,, ,, ,, १३४
,, तेरह ,, ,, ,, १३५
,, चौदह ,, ,, ,, १३६
,, पन्द्रह ,, ,, ,, १३८
,, सोलह ,, ,, ,, १३९
,, सत्रह ,, ,, ,, १४०
सम्यग्मिथ्यादृष्टिके नौ ,, ,, ,, १४१
,, दश ,, ,, ,, १४१

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंका निरूपण १४२
सम्यग्मिथ्यादृष्टिके बारह ,, ,, ,, १४३
,, तेरह ,, ,, ,, १४४
,, चौदह ,, ,, ,, १४५
,, पन्द्रह ,, ,, ,, १४६
,, सोलह ,, ,, ,, १४७
असंयत सम्यग्दृष्टिके बन्ध-प्रत्ययगत विशेषताका निरूपण १४८
असंयत सम्यग्दृष्टिके नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंका निरूपण १४९
असंयत सम्यग्दृष्टिके दस ,, ,, ,, १५०
,, ग्यारह ,, ,, ,, १५१
,, बारह ,, ,, ,, १५१
,, तेरह ,, ,, ,, १५२
,, चौदह ,, ,, ,, १५३
,, पन्द्रह ,, ,, ,, १५४
,, सोलह ,, ,, ,, १५५
देशसंयतके सम्भव बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी गुणकार १५६
देशसंयतके आठ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंका निरूपण १५७
देशसंयतके नौ ,, ,, ,, १५७
,, दश ,, ,, ,, १५८
,, ग्यारह ,, ,, ,, १५९
,, बारह ,, ,, ,, १६०
,, तेरह ,, ,, ,, १६१
,, चौदह ,, ,, ,, १६२
प्रमत्तसंयतके बन्ध-प्रत्यय-गत विशेषताका निरूपण १६२
प्रमत्तसंयतके पाँच बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंका निरूपण १६३
प्रमत्तसंयतके छह ,, ,, ,, १६३
प्रमत्तसंयतके सात ,, ,, ,, १६४
अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण संयतके बन्ध-प्रत्यय और उनके भंगोंका निरूपण १६४
अनिवृत्तिकरण संयतके बन्ध-प्रत्यय और उनके भंगोंका निरूपण १६५
सूक्ष्मसाम्परायादि शेष गुणस्थानोंके बन्ध-प्रत्यय और उनके भंगोंका निरूपण १६७
ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्यय वर्णन १६७
वेदनीय कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्यय वर्णन १६८
दर्शन मोहनीय कर्मके ,, ,, १६९
चारित्र मोहनीय कर्मके ,, ,, १६९
नरकायु कर्मके ,, ,, १७०
तिर्यगायु कर्मके ,, ,, १७०
मनुष्यायु कर्मके ,, ,, १७१
देवायु कर्मके ,, ,, १७१
नाम कर्मके ,, ,, १७२
गोत्र कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण १७२
अन्तराय कर्मके ,, ,, ,, १७३
कर्मोंके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण अनुभाग-बन्धकी अपेक्षासे जानना चाहिए १७४
कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्व स्थानोंका निरूपण १७४
शतककार-द्वारा गुणस्थानोंमें मूल कर्मोंके बन्ध-स्थानोंका वर्णन १७४
भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण १७५
शतककार-द्वारा गुणस्थानोंमें, उदयस्थानोंमें उदय-स्थानोंका निरूपण १७५
भाष्य गाथाकार-द्वारा उदीरकोंका कथन १७६
शतककार-द्वारा उदीरकोंका विशेष निरूपण १७६-१८०
प्रकृति बन्धसे सादि-अनादि आदि नौ भेदोंका कथन १८१
उक्त बन्ध-भेदोंका स्वरूप १८२
मूल प्रकृतियोंके सादि-आदि बन्धोंका निरूपण १८२
उत्तर प्रकृतियोंके ,, ,, ,, १८३
ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंका निरूपण १८३
निष्प्रतिपक्ष अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ १८३
सत्प्रतिपक्ष अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ १८४
मूल प्रकृतिस्थान और भुजाकारादिका निरूपण १८४
उत्तर प्रकृतियोंके प्रकृतिस्थान और भुजाकारादिका वर्णन १८६
दर्शनावरण कर्मके बन्धस्थानोंका वर्णन १८६
दर्शनावरण कर्मके भुजाकार बन्धोंका वर्णन १८६
दर्शनावरण कर्मके बन्धस्थानोंका गुणस्थानोंमें निरूपण १८७
मोहकर्मके बन्धस्थान और भुजाकारादिका वर्णन १८८
मोहकर्मके दश बन्धस्थानोंका निरूपण १८८
उक्त बन्धस्थानोंका प्रकृति निर्देशपूर्वक गुणस्थानोंमें वर्णन १८८-१९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहकर्मके भुजाकार बन्धोंका निरूपण १९२
मोहकर्मके अल्पतर और अवक्तव्य बन्धोंका वर्णन १९४
नामकर्मके बन्धस्थान आदिका निर्देश १९६
नामकर्मके बन्धस्थानोंका निरूपण १९६
नामकर्मके भुजाकार बन्धस्थानोंका वर्णन १९६-१९८
नामकर्मके अल्पतर और अवक्तव्य बन्धस्थानोंका वर्णन १९८-१९९
नामकर्मके चारों गतियोंमें सम्भव बन्धस्थानोंका निरूपण २००
नरकगति युक्त बँधनेवाले अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका वर्णन २०१
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले प्रथम तीस प्रकृतिक स्थानका वर्णन २०२
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले द्वितीय और तृतीय प्रकारके तीस प्रकृतिक स्थानोंका वर्णन २०३
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले तीनों प्रकारके उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानोंका निरूपण २०४
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले छब्बीस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन २०५
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले प्रथम पच्चीस प्रकृतिक स्थानका वर्णन २०५
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले द्वितीय प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन २०६
तिर्यग्गति युक्त बँधनेवाले तेईस ,, ,, २०७
मनुष्यगति युक्त बँधनेवाले तीस ,, ,, २०८
,, बँधनेवाले प्रथम उनतीस ,, ,, २०९
,, बँधनेवाले द्वितीय ,, ,, २०९
,, बँधनेवाले तृतीय ,, ,, २१०
,, बँधनेवाले पच्चीस ,, ,, २११
देवगति युक्त बँधनेवाले इकतीस ,, ,, २१२
,, बँधनेवाले तीस ,, ,, २१२
,, बँधनेवाले प्रथम उनतीस ,, ,, २१३
,, बँधनेवाले द्वितीय ,, ,, २१३
,, बँधनेवाले प्रथम अट्ठाईस ,, ,, २१४
,, बँधनेवाले द्वितीय ,, ,, २१४
,, बँधनेवाले एक ,, ,, २१४
गुणस्थानोंकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्ध-स्वामित्वका निरूपण २१५-२१६
मिथ्यात्व गुणस्थानमे बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ २१६
सासादन गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ २१७
अविरत आदि चार गुणस्थानोंमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ २१७-२१८
अपूर्वकरण गुणस्थानमें बन्धसे ,, ,, २१९
नवें और दशवें गुणस्थानमें ,, ,, २२०
तेरहवें गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतिका निर्देशकर प्रकृत अर्थका उपसंहार २२१
शतककार-द्वारा मार्गणाओंमें बन्ध व्युच्छिन्न प्रकृतियोंको जाननेका निर्देश २२२
भाष्यगाथाकार-द्वारा नरकगतिमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके निरूपण २२३-२२४
तिर्यग्गतिमें प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण २२५
मनुष्यगतिमें ,, ,, ,, २२६
देवगतिमें ,, ,, ,, २२७
भवनत्रिक देव और सर्व देवियोंके बन्धादिका निरूपण २२८
कल्पवासी देवोंके बन्धादिका निरूपण २२९
इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादिका वर्णन २३०
कायमार्गणाकी ,, ,, ,, २३१
योगमार्गणाकी ,, ,, ,, २३२-२३४
वेदमार्गणाकी ,, ,, ,, २३५
कषायमार्गणाकी ,, ,, ,, २३६
ज्ञान, संयम और दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादि जाननेका निर्देश २३६
लेश्या मार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादिका वर्णन २३७-२४०
भव्य और सम्यक्त्व मार्गणाकी अपेक्षा ,, २४१
शेष मार्गणाओंकी अपेक्षा बन्धादि जाननेका निर्देश २४२
कर्म प्रकृतियोंके स्थिति बन्धके नव अधिकारोंका निरूपण २४३
मूल प्रकृतियोंके स्थिति बन्धका वर्णन २४३
कर्मोंके आबाधाकालका निरूपण २४४
कर्म-निषेधका निरूपण २४५
कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका विशद वर्णन २४६-२४९
कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धका विस्तृत वर्णन २४९-२५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल प्रकृतियोंके जघन्यादि बन्ध-सम्बन्धी सादि-आदि भेदोंकी प्ररूपणा २५३
उत्तर प्रकृतियोंके सादि आदि भेदोंकी प्ररूपणा २५४
कर्मोंकी स्थितियोंमें शुभ और अशुभपनेका निरूपण २५५
उत्कृष्ट स्थितिबन्ध-गत कुछ विशिष्ट प्रकृतियोंके स्वामियोंका निरूपण २५६
शेष उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थिति बन्धकोंका निरूपण २५७-२५८
जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वका निरूपण २५८-२५९
अनुभाग बन्धका निरूपण २६०
मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि भेदोंमें सम्भव सादि आदि अनुभागबन्धका निरूपण २६१
उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि भेदोंमें सम्भव सादि आदि अनुभाग बन्धकी प्ररूपणा २६२-२६३
मूल और उत्तर प्रकृतियोंके स्वमुख-परमुख विपाकरूप अनुभागका निरूपण २६४
प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागबन्धका वर्णन २६५
तीव्र अनुभाग बन्धके स्वामित्वका निरूपण २६५
प्रशस्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश २६५
अप्रशस्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश २६६
कुछ विशिष्ट प्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध करनेवाले जीवोंका वर्णन २६७
अप्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करने-वाले जीवोंका वर्णन २६८
जघन्य अनुभाग बन्धके स्वामित्वका निरूपण २७०-२७४
सर्वघाति प्रकृतियोंका निरूपण २७४
देशघाति ,, ,, २७५
पुण्य और पापरूप प्रकृतियोंका वर्णन २७५
चतुःस्थानीय-त्रिस्थानीय आदि अनुभागबन्धका निरूपण २७६
पुण्य और पापरूप प्रकृतियोंके अनुभागका दृष्टान्त-पूर्वक वर्णन २७६
प्रत्ययरूप अनुभागबन्धका निरूपण २७७
पुद्गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और भवविपाकी प्रकृतियोंका निरूपण २७८
जीवविपाकी प्रकृतियोंका निरूपण २७९
प्रदेश बन्धका वर्णन २८०
जीवके द्वारा ग्रहण किये जानेवाले कर्मरूप पुद्गल द्रव्यका प्रमाण २८०
प्रति समय आनेवाले कर्म-पिण्डका आठ कर्मोंमें विभाजन २८१
मूलकर्मोंके उत्कृष्टादि प्रदेश बन्धके सादि आदि भेदोंका वर्णन २८२
उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेश बन्धके सादि आदि भेदोंका वर्णन २८२-२८३
गुणस्थानोंकी अपेक्षा मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेश बन्धके स्वामित्वका निरूपण २८४
मूलप्रकृतियोंके जघन्य प्रदेश बन्धके स्वामित्वका वर्णन २८५
उत्तर प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामित्वका वर्णन २८६
उत्कृष्ट प्रदेश बन्धकी सामग्री विशेषका निरूपण २८७
उत्तर प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्ध और उनके स्वामित्वका निरूपण २८८
चारों बन्धोंके कारणोंका निर्देश २८९
चारों बन्धोंका स्वरूप २९०
योगस्थान, प्रकृति-भेद, स्थिति बन्ध्याध्यवसाय स्थान, अनुभाग बन्ध्याध्यवसाय स्थान और प्रदेश बन्धादिके अल्पबहुत्वका निरूपण २९१
शतककार-द्वारा ग्रन्थका उपसंहार और अपनी लघुताका प्रदर्शन २९२
प्रकृत ग्रन्थके अध्ययनका फल २९३
५. सप्ततिका अधिकार २९४-५४०
भाष्य गाथाकार-द्वारा मंगलाचरण और प्रतिज्ञा २९४
सप्ततिकाकार-द्वारा बन्ध, उदय और सत्त्व स्थानोंके कथनकी प्रतिज्ञा २९४
बन्ध, उदय और सत्त्व-सम्बन्धी भंगोंको जाननेकी सूचना २९५
मूल प्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्त्व स्थानोंके सम्भव भंगोंका निरूपण २९६
चौदह जीव समासोंमें बन्ध, उदय और सत्त्व स्थानोंके संयोगी भंगोंका निरूपण २९७
गुणस्थानोंमें बन्धादि-त्रिसंयोगी भंगोंका निरूपण २९८
मूल प्रकृतियोंके समान उत्तर प्रकृतियोंमें भी बन्धादि-त्रिसंयोगी भंगोंको जाननेकी सूचना २९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्मके बन्धादि त्रिकके संयोगी भंगोंका निरूपण २९९
दर्शनावरण कर्मके बन्धादि त्रिकके संयोगी भंगोंका वर्णन ३००
भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त भंगोंका स्पष्टीकरण ३००-३०२
वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मके बन्धादि त्रिकके संयोगी भंगोंका वर्णन ३०३
गोत्र कर्मके भंगोंका स्पष्टीकरण ३०५-३०७
वेदनीय कर्मके भंगोंका स्पष्टीकरण ३०८
नरकायु कर्मके भंगोंका वर्णन ३०९
तिर्यगायु कर्मके " ३११
मनुष्यायु कर्मके " ३१२
देवायु कर्मके " ३१४
मोहनीय कर्मके बन्धस्थानोंका निरूपण ३१५
भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त बन्धस्थानोंका स्पष्टीकरण ३१६
उक्त बन्धस्थानोंके भंगोंका निरूपण ३१८
मोहनीय कर्मके उदयस्थानोंका निरूपण ३१९
भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त उदय स्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश ३१९
मोहनीय कर्मके सत्त्व स्थानोंका निरूपण ३२०
भाष्य गाथाकार-द्वारा सत्त्व स्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश ३२१
मोहनीय कर्मके बन्ध स्थानोंमें उदयस्थानोंका निरूपण ३२२
भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण ३२३-३२५
मोहके बन्धस्थानोंमें सम्भव उदय स्थानोंका निरूपण ३२६
मोहके उदयस्थानोंके भंगोंका निरूपण ३२७-३२८
मोहके उदय-विकल्पोंके प्रकृति-परिवर्त्तन-जनित भंगोंका परिमाण ३२९
मोहकर्मके समस्त उदय-विकल्प और पदवृन्दोंका प्रमाण ३२९
मोहकर्मके बन्धस्थानोंमें सत्त्व स्थानके भंगोंका सामान्य कथन ३३०
उक्त भंगोंका विशेष कथन ३३०-३३५
नामकर्मके बन्धस्थानोंका निरूपण ३३५
नामकर्मके चारों गतियोंमें सम्भव बन्धस्थानोंका वर्णन ३३६
नामकर्मके उक्त बन्धस्थानोंका स्पष्टीकरण ३३६
नामकर्मके नरक गति संयुक्त बँधनेवाले अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थानकी प्रकृतियाँ ३३७
नामकर्मके तिर्यग्गतियुक्त बँधनेवाले प्रथम तीस प्रकृतिक बन्धस्थानकी प्रकृतियाँ ३३७
नामकर्मके द्वितीय तीस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन ३३८
नामकर्मके तृतीय तीस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन ३३९
नामकर्मके उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण ३३९
नामकर्मके छब्बीस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण ३४०
नामकर्मके प्रथम पच्चीस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन ३४१
नामकर्मके द्वितीय पच्चीस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन ३४१
नामकर्मके तेईस प्रकृतिक बन्धस्थानका वर्णन ३४२
मनुष्यगति युक्त बँधनेवाले तीस प्रकृतिक बन्ध-स्थानका निरूपण ३४३
मनुष्यगति युक्त बँधनेवाले प्रथम, द्वितीय और तृतीय उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानोंका निरूपण ३४४-३४५
मनुष्यगति युक्त बँधनेवाले पच्चीस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण ३४५
देवगति संयुक्त बँधनेवाले इकतीस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण ३४६
देवगति संयुक्त बँधनेवाले तीस प्रकृतिक बन्ध-स्थानका निरूपण ३४६
देवगति संयुक्त बँधनेवाले प्रथम और द्वितीय उनतीस प्रकृतिकबन्ध स्थानका निरूपण ३४७
देवगति संयुक्त बँधनेवाले प्रथम और द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण ३४८
नामकर्मके एक प्रकृतिक बन्धस्थानका निरूपण ३४८
सप्ततिकाकार-द्वारा नामकर्मके उदयस्थानोंका वर्णन ३४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य-गाथाकार-द्वारा नरकगति संयुक्त नामकर्मके उदयस्थानोंका वर्णन ३४९
नरकगति संयुक्त इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३४९
नरकगति संयुक्त पच्चीस प्रकृतिक " ३५०
नरकगति संयुक्त सत्ताईस " " ३५०
नरकगति संयुक्त अट्ठाईस " " ३५१
नरकगति संयुक्त उनतीस " " ३५१
तिर्यग्गतिमें नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण ३५२
सामान्य एकेन्द्रिय जीवके नामकर्मके उदयस्थानोंका वर्णन ३५२
सामान्य एकेन्द्रिय जीवके इक्कीस प्रकृतिक " ३५२
सामान्य एकेन्द्रिय जीवके चौबीस " " ३५४
सामान्य एकेद्रिय जीवके पच्चीस " " ३५४
सामान्य एकेन्द्रिय जोवके छब्बीस " " ३५५
आतप और उद्योत प्रकृतिके उदयवाले एकेन्द्रिय जीवोंके उदयस्थानोंका निरूपण ३५५-३५६
विकलेन्द्रिय जीवोंके नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण ३५७
द्वीन्द्रियजीवके इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण ३५८
द्वीन्द्रियजीवके छब्बीस " " " ३५८
द्वीन्द्रियजीवके अट्ठाईस " " " ३५९
द्वीन्द्रियजीवके उनतीस " " " ३५९
द्वीन्द्रियजीवके तीस " " " ३५९
उद्योतके उदयवाले द्वीन्द्रियके उदयस्थानोंका निरूपण ३६०
उद्योतके उदयवाले द्वीन्द्रियके उनतीस प्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण ३६०
उक्त जीवके तीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३६०
" इकतीस " " " ३६०
द्विन्द्रिय जीवके समान त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके उदयस्थान आननेकी सूचना ३६१
विकलेन्द्रिय जीवोंके तीस और इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानोंके कालका वर्णन ३६१
पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके उदयस्थानोंका निरूपण ३६२
उद्योतके उदयसे सहित और रहित पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके उदयस्थानोंका कथन ३६२
उद्योतके उदयसे रहित इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३६२
उद्योतके उदयसे रहित छब्बीस प्रकृति उदयस्थानका वर्णन ३६३
उद्योतके उदयसे रहित अट्ठाईस " " ३६४
उद्योतके उदयसे रहित उनतीस " " ३६५
उद्योतके उदयसे रहित तीस " " ३६५
उद्योतके उदयवाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके उदयस्थानोंका निरूपण ३६५
उद्योतके उदय-सहित उनतीस प्रकृतिक उदयस्थानका कथन ३६६
उद्योतके उदय-सहित तीस " ३६७
उद्योतके उदय-सहित इकतीस " ३६७
तीस और इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानोंके कालका निरूपण ३६७
सर्व तिर्यञ्चोंके नामकर्मके उदयस्थानोंके समस्त भंगोंकी संख्याका निरूपण ३६७
मनुष्यगतिमें नामकर्मके उदयस्थानोंका वर्णन ३६८
मनुष्यगतिके उदयस्थान-गत विशेषताका निरूपण ३६९
मनुष्यगति-सम्बन्धी इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३६९
मनुष्यगति-सम्बन्धी छब्बीस " " ३७०
मनुष्यगति-सम्बन्धी अट्ठाईस " " ३७०
मनुष्यगति-सम्बन्धी उनतीस " " ३७१
मनुष्यगति-सम्बन्धी तीस " " ३७१
आहारक शरीरवाले मनुष्यके उदयस्थानोंका निरूपण ३७१
आहारक शरीरवाले मनुष्यके पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३७२
आहारक शरीरवाले मनुष्यके सत्ताईस " ३७२
आहारक शरीरवाले मनुष्यके अट्ठाईस " ३७२
आहारक शरीरवाले मनुष्यके उनतीस " ३७३
तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदय-युक्त सयोगिजिनके इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण ३७३
तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदय-युक्त अयोगिजिनके नौ प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३७४
तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदय-रहित अयोगिजिनके आठ प्रकृतिक उदयस्थानका कथन ३७४
मनुष्यगति-सम्बन्धी उदयस्थानोंके सर्व भंगोंका निरूपण ३७४
देवगति-सम्बन्धी उदयस्थानोंका निरूपण ३७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगति-सम्बन्धी इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थानका वर्णन ३७६
देवगति-सम्बन्धी पच्चीस " " ३७७
देवगति-सम्बन्धी सत्ताईस " " ३७७
देवगति-सम्बन्धी अट्ठाईस " " ३७८
देवगति-सम्बन्धी उनतीस " " ३७८
देवगति-सम्बन्धी उदयस्थानोंके सर्व उदय विकल्पोंका निरूपण ३७८
चतुर्गति-सम्बन्धी नामकर्मके उदयस्थानोंके सर्व भंगोंका निरूपण ३७८
इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा सामान्य एकेन्द्रिय जीवोंके उदयस्थानोंका वर्णन ३७९
विकलेन्द्रिय जीवोंके उदयस्थानोंका वर्णन ३७९
पञ्चेन्द्रिय " " ३७९
कायमार्गणाकी अपेक्षा स्थावरकाय और त्रसकाय जीवोंके उदयस्थानोंका वर्णन ३७९
योगमार्गणाकी अपेक्षा मनोयोगियों और वचनयोगियोंके उदयस्थानोंका वर्णन ३८०
काययोगियोंके उदयस्थानोंका निरूपण ३८०-३८१
वेद और कषायमार्गणाकी अपेक्षा उदयस्थानोंका वर्णन ३८१
ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्यज्ञानियों और श्रुताज्ञानियोंके उदयस्थानोंका निरूपण ३८१
शेष ज्ञानवाले जीवोंके उदयस्थानोंका कथन ३८१
संयममार्गणाकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका वर्णन ३८२
दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका कथन ३८२
लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका कथन ३८२
भव्यत्व आदि शेष मार्गणाओंकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण ३८३
सप्ततिकाकार-द्वारा नामकर्मके सत्त्वस्थानोंका वर्णन ३८५
भाष्य गाथाकार-द्वारा नामकर्मके सर्व सत्त्वस्थानोंकी प्रकृतियोंका निरूपण ३८५-३८७
गुणस्थानोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानोंका निरूपण ३८८
सप्ततिकाकार-द्वारा बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थान इन तीनोंको एकत्र मिलाकर कहनेकी सूचना ३९१
बन्धस्थानको आधार बनाकर उदयस्थान और सत्त्वस्थानका निरूपण ३९१
भाष्य गाथाकार-द्वारा उपर्युक्त अर्थका स्पष्टीकरण ३९२
अट्ठाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वकी विशिष्ट दशामें सम्भव स्थान विशेषोंका निरूपण ३९३
उक्त बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत दूसरी विशेषता ३९४
उक्त बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत तीसरी विशेषता ३९५
उक्त बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत चौथी विशेषता ३९५
उक्त बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत पाँचवीं विशेषता ३९५
उक्त बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत छठी विशेषता ३९६
उक्त बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत सातवीं विशेषता ३९६
उक्त बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत आठवीं विशेषता ३९७
उनतीस और तीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय सत्त्वस्थानोंका निरूपण ३९७
उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें इक्कीस प्रकृतिक उदय स्थानके साथ तेरानबे और इक्यानबे प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामीका निरूपण ३९८
उक्त बन्धस्थान और उदयस्थानके साथ बानबे और नब्बे प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामीका निरूपण ३९८
उक्त बन्धस्थान और उदयस्थानके साथ अट्ठासी, चौरासी और बयासी प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामीका वर्णन ३९९
उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें चौबीस प्रकृतिक-उदयस्थानके साथ बानबे, नब्बे आदि पाँच सत्त्वस्थानोंके स्वामीका निरूपण ३९९
उक्त बन्धस्थानमें पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थानके साथ तेरानबे आदि सात सत्त्वस्थानोंके स्वामियोंका कथन ३९९
उक्त बन्धस्थानमें छब्बीससे लेकर तीस प्रकृतिक उदयस्थानोंके साथ तेरानबे आदि सात सत्त्वस्थानोंके स्वामियोंका कथन ४००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त बन्धस्थानमें इकतीरा प्रकृतिक उदयस्थानके साथ बानवे; नब्बे, अठासी, चौरासी और बयासी प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामियोंका वर्णन ४००

तीस प्रकृति बन्धस्थानमें संभव उदयस्थानों और सत्त्वस्थानोंका वर्णन ४०१

उक्त स्थानोंमें संभव विशेषताका निरूपण ४०२–४०३

सप्ततिकाकार-द्वारा शेष बन्धस्थानोंमें संभव उदय और सत्त्वस्थानोंका निरूपण ४०४

भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण ४०५

उपर्युक्त बन्धादि तीनों प्रकारके स्थानोंका जीवसमास और गुणस्थानोंकी अपेक्षा स्वामित्व जाननेकी सूचना ४०६

जीवसमासोंमें ज्ञानावरण और अन्तराय कर्मके बन्धादि स्थानोंके स्वामित्वका निर्देश ४०७

दर्शनावरणकर्मके बन्धादि स्थानोंके स्वामित्वगत भंगोंका जीवसमासोंमें निर्देश, वेदनीय, आयु और गोत्रके स्थानो के भंग जाननेका संकेत और मोहकर्मके भंग-निरूपणकी प्रतिज्ञा ४०८

भाष्यगाथाकार-द्वारा वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मके भंगोंकी संख्याका निर्देश ४१०

वेदनीयकर्मके भंगोंका जीवसमासो में निरूपण ४१०

आयुकर्मके भंगो का जीवसमासो में निरूपण ४११

गोत्रकर्मके भंगो का जीवसमासो में निरूपण ४१४

सप्ततिकाकार-द्वारा जीवसमासो में मोहकर्मके भंगो का निरूपण ४१५

भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण ४१६

सप्ततिकाकार-द्वारा जीवसमासो में नामकर्मके बन्ध उदय और सत्त्वस्थान सम्बन्धी भंगो-का निरूपण ४१७

भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण ४१८–४२२

सप्ततिकाकार-द्वारा ज्ञानावरण और अन्तरायकर्मके बन्धादि-स्थानो का गुणस्थानो में वर्णन ४२३

दर्शनावरण कर्मके बन्धादि स्थानो का गुणस्थानोंमें वर्णन ४२४

भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त स्थानो का स्पष्टीकरण ४२४

गुणस्थानो में दर्शनावरणके बन्धादि स्थानो का निरूपण ४२५–४२६

सप्ततिकाकार-द्वारा वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मके बन्धादि स्थान सम्बन्धी भंगो का निरूपण ४२७

भाष्यगाथाकार-द्वारा वेदनीयकर्मके भंगोंका वर्णन ४२७

गुणस्थानो में आयुकर्मके भंगसंख्यादिका वर्णन ४२८–४२९

नरकायुके भंगोंका वर्णन ४२९

तिर्यगायुके ” ” ४३०

मनुष्यायुके ” ” ४३०

देवायुके ” ” ४३१

आयुकर्मके ११३ भंगोंका स्पष्टीकरण ४३१-४३४

गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भंगोंका निरूपण ४३४

उपर्युक्त भंगोंका स्पष्टीकरण ४३५-४३६

सप्ततिकाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें मोहकर्मके बन्धस्थानोंका निरूपण ४३६

उक्त अर्थका भाष्य गाथाकार-द्वारा स्पष्टीकरण ४३७

भाष्यगाथाकार-द्वारा मोहकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण ४३८

मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्भव मोहकर्मके उदयस्थानोंका वर्णन ४३८

सासादनादि गुणस्थानोंमें उपर्युक्त स्थानोंका वर्णन ४३९-४४०

सप्ततिकाकार-द्वारा प्रत्येक गुणस्थानमें सम्भव उदयस्थानोंका निरूपण ४४१

सप्ततिकाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें उदयस्थानोंके भंगोंका वर्णन ४४२

भाष्य गाथाकार-द्वारा उपर्युक्त अर्थका स्पष्टीकरण ४४३-४४४

सर्वगुणस्थानोंके मोहकर्म सम्बन्धी उदयविकल्पोंका निरूपण ४४५

गुणस्थानोंमें उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंका तथा उनके पदवृन्दोंका निरूपण ४४५-४४८

सप्ततिकाकार-द्वारा योग, उपयोग और लेश्यादिको आश्रय करके मोहकर्मके उदयस्थानसम्बन्धी भंगोंको जाननेकी सूचना ४४८

भाष्यगाथाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें योगोंका निरूपण ४४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टिके योगसम्बन्धी भंगोंका निरूपण ४४९
सासादन सम्यग्दृष्टिके " " " ४५०
सम्यग्मिथ्यादृष्टिके " " " ४५०
अविरत सम्यग्दृष्टिके " " " ४५०
देशविरतके " " " ४५०
प्रमत्त विरतके " " " ४५१
अप्रमत्त विरतके " " " ४५१
अपूर्वकरणके " " " ४५१
योग सम्बन्धी सर्व भंगोंका निर्देश ४५२
सासादन गुणस्थानोंमें योगसम्बन्धी भंग-गत विशेषताका निरूपण ४५३
अविरत गुणस्थानमें उक्त विशेषताका निरूपण ४५३
अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके योग सम्बन्धी भंगोंका निरूपण ४५५
गुणस्थानोंमें सम्भव सर्व योग-भंगोंका उपसंहार ४५६
गुणस्थानोंमें योगके पदवृन्दोंका निरूपण ४५६
मिथ्यादृष्टिके योगसम्बन्धी पदवृन्दोंका निरूपण ४५७
सासादन गुणस्थानमें " " " ४५८
मिश्र गुणस्थानमें " " " ४५८
अविरत गुणस्थानमें " " " ४५९
देशविरत गुणस्थानमें " " " ४५९
प्रमत्तविरत " " " " ४५९
अप्रमत्तविरत " " " " ४६०
अपूर्वकरण " " " " ४६०
उक्त सर्वगुणस्थानोंके पदवृन्दोंके प्रमाणका निरूपण ४६०
सासादन गुणस्थानगत विशेष भंगोंका निरूपण ४६१
अविरत " " " " ४६२
मोहकर्मके योगोंकी अपेक्षा सम्भव सर्वभंगोंका निरूपण ४६३-४६४
उपयोगकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें मोहकर्मके उदय-स्थानगत भंगोंका निरूपण ४६५-४६७
गुणस्थानोंमें उपयोगकी अपेक्षा मोहकर्मकी उदय-प्रकृतियोंकी संख्या जाननेकी सूचना ४६७
मिथ्यात्व और सासादनमें उपयोगकी अपेक्षा उदयप्रकृतिगत पदवृन्दोंका निरूपण ४६८
मिश्र और अविरतमें " " " ४६८
देशविरत और प्रमत्तविरतमें " " " ४६९
अप्रमत्तविरत और अपूर्वकरणमें उपयोगकी अपेक्षा उदयप्रकृतिगत पदवृन्दोंका निरूपण ४६९
अनिवृत्तिकरणमें " " " ४६९
सर्वगुणस्थानोंके उक्त पदवृन्दोंका योग ४६९-४७०
लेश्याओंकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें मोहके उदयस्थान जाननेकी सूचना और उनमें सम्भव लेश्याओं-का निरूपण ४७०-४७१
मिथ्यात्व और सासादनमें लेश्याओंकी अपेक्षा मोहके उदय-भंग ४७१
मिश्र और अविरतमें " " " ४७२
देश, प्रमत्त और अप्रमत्त विरतमें " " ४७२
अपूर्वकरणमें " " " ४७३
अनिवृत्तिकरणमें " " " ४७३
उपर्युक्त सर्व उदय-विकल्पोंका प्रमाण ४७३
लेश्याओंकी अपेक्षा मोहकर्मके पदवृन्दोंका निरूपण ४७४
मिथ्यात्व और सासादनमें " " " ४७४
मिश्र और अविरतमें " " " ४७४
देशविरत और प्रमत्तविरतमें " " ४७४
अप्रमत्तविरत और अपूर्वकरणमें " " ४७४
अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म साम्परायमें " " ४७५
उपर्युक्त सर्व पदवृन्दोंका परिमाण ४७५
वेदकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय विकल्पोंका निरूपण ४७६
वेदकी अपेक्षा मोहकर्मके पदवृन्दोंका वर्णन ४७७
संयमकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय-विकल्पोंका निरूपण ४७८
संयमकी अपेक्षा मोहकर्मके पदवृन्दोंका वर्णन ४७९
सम्यक्त्वकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय-विकल्प ४८०
सम्यक्त्वकी अपेक्षा मोहकर्मके पदवृन्दोंकी संख्या ४८१
सप्ततिकाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें मोहकर्मके सत्त्वस्थानोंका निरूपण ४८२
भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त कथनका स्पष्टीकरण ४८३-४८५
सप्ततिकाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें नामकर्मके बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका निर्देश ४८६
भाष्य गाथाकार-द्वारा उक्त त्रिसंयोगी स्थानोंका स्पष्टीकरण ४८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्व गुणस्थानमें नामकर्मके बन्ध, उदय और सत्त्वस्थान ४८७
सासादन ” ” ” ४८७
मिश्र ” ” ” ४८८
अविरत ” ” ” ४८८
देशविरत ” ” ” ४८९
प्रमत्तविरत ” ” ” ४८९
अप्रमत्तविरत ” ” ” ४९०
अपूर्वकरण ” ” ” ४९०
अनिवृत्तिकरण ” ” ” ४९१
सूक्ष्मसाम्पराय ” ” ” ४९१
क्षीणकषाय ” ” ” ४९१
सयोगिकेवली ” ” ” ४९१
अयोगिकेवली ” ” ” ४९२
सप्ततिकाकार-द्वारा मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धादि स्थानोंका निर्देश करते हुए गति मार्गणामें निरूपण ४९३
भाष्यगाथाकार-द्वारा नरक गतिमें उक्त बन्धादि स्थानोंका निरूपण ४९३
तिर्यग्गतिमें नामकर्मके बन्धादि स्थानोंका निरूपण ४९४
मनुष्यगतिमें ” ” ” ४९४
देवगतिमें ” ” ” ४९५
सप्ततिकाकार-द्वारा इन्द्रिय मार्गणाओंमें उक्त स्थानोंका निर्देश ४९६
भाष्यगाथाकार-द्वारा एकेन्द्रिय जीवोंमें उक्त स्थानोंका निर्देश ४९६
विकलेन्द्रिय जीवोंमें उक्त स्थानोंका निर्देश ४९७
पंचेन्द्रिय जीवोंमें ” ” ४९७
कायमार्गणामें नामकर्मके बन्धादि स्थानोंका निरूपण ४९८
योग मार्गणामें ” ” ” ४९९-५०१
वेदमार्गणामें ” ” ” ५०१
कषायमार्गणामें ” ” ” ५०२
ज्ञानमार्गणामें ” ” ” ५०२–५०३
संयममार्गणामें ” ” ” ५०४–५०६
दर्शनमार्गणामें ” ” ” ५०६
लेश्यामार्गणामें ” ” ” ५०७–५०८
भव्यमार्गणामें ” ” ” ५०८–५०९
सम्यक्त्वमार्गणामें नामकर्मके बन्धादि स्थानोंका निरूपण ५०९–५११
संज्ञिमार्गणामें ” ” ” ५११–५१२
आहारमार्गणामें ” ” ” ५१२–५१३
संस्कृत टीकाकार-द्वारा चौदह मार्गणाओंमें नामकर्मके उक्त बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंकी अंकसंदृष्टि ५१३–५१८
सप्ततिकाकार-द्वारा उपर्युक्त अर्थका उपसंहार और विशेष जाननेके लिए आवश्यक निर्देश ५१८
इकतालीस प्रकृतियोंमें उदयकी अपेक्षा उदीरणागत विशेषताका निरूपण ५१९
उक्त इकतालीस प्रकृतियोंका नाम-निर्देश ५२०
उक्त इकतालीस प्रकृतियोंमें नामकर्म सम्बन्धी नौ प्रकृतियोंका निरूपण ५२१
सप्ततिकाकार-द्वारा गुणस्थानोंमें कर्मप्रकृतियोंके बन्धका वर्णन ५२२–५२३
भाष्यगाथाकार-द्वारा मिथ्यात्व और सासादनमें बँधनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन ५२४
असंयत देशसंयत और प्रमत्तसंयतके बँधनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन ५२४
अप्रमत्त और अपूर्वकरणके बँधनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन ५२५
अनिवृत्तिकरण आदिके ” ” ५२६
सप्ततिकाकार-द्वारा मार्गणाओंमें भी बन्धस्वामित्वको जाननेकी सूचना ५२७
सप्ततिकाकार-द्वारा चारों गतियोंमें कर्मप्रकृतियोंके सत्त्वका निरूपण ५२८
भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त अर्थका स्पष्टीकरण ५२८
सप्ततिकाकार-द्वारा दर्शन मोहकर्मके उपशमन करनेका विधान ५२८
सप्ततिकाकार-द्वारा चरित्र मोहके उपशमन करनेका विधान ५२९
भाष्यगाथाकार-द्वारा उपशान्त होनेवाली प्रकृतियोंके क्रमका निरूपण ५३०
सप्ततिकाकार-द्वारा कर्मप्रकृतियोंके क्षपणका विधान ५३१–५३३
भाष्यगाथाकार-द्वारा अयोगिकेवलीके द्विचरम समय और चरम समयोंमें क्षय होनेवाली प्रकृतियोंका नाम-निर्देश ५३४–५३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयोगिकेवलीके उदयमें आनेवाली प्रकृतियोंका निरूपण ५३६–५३७
अयोगि जिनके मनुष्यानुपूर्वीका उदय किस क्षण तक रहता है, इस बातका सयुक्तिक निरूपण ५३७
कर्म-क्षयसे प्राप्त होनेवाली अवस्था विशेषका वर्णन ५३८
सप्ततिकाकार-द्वारा प्रकरणका उपसंहार और आवश्यक ज्ञातव्य तत्त्वका निर्देश ५३८
सप्ततिकाकार-द्वारा अपनी लघुताका प्रदर्शन ५३९
संस्कृतटीकाकारकी प्रशस्ति ५४०

परिशिष्ट ७४५–७८४

१ संदृष्टियाँ ७४५-७५४
२ सभाष्य प्रा० पञ्चसंग्रह-गाथानुक्रमणिका ७५५-७६६
३ संस्कृतटीकोद्‌धृत-पद्यानुक्रमणी ७६७
४ प्राकृत वृत्तिगत-पद्यानुक्रमणी ७६८-७७३
५ संकृत पञ्चसंग्रहस्थश्लोकानुक्रमः ७७४-७८४

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकेत-विवरण

आचा० नि०—आचाराङ्ग निर्युक्ति
क० पा० गा०—कसायपाहुड गाथा
कर्मवि०—कर्मविपाक (गर्गर्षिप्रणीत)
कर्मस्त०—कर्मस्तव (श्वेताम्बर)
गो० क०—गोम्मटसार कर्मकाण्ड
गो० जी०—गोम्मटसार जीवकाण्ड
जीवस०—जीवसमास प्रकरण (पूर्वभृद्-रचित)
द—ऐलक सरस्वती भवन ब्यावरकी प्रति सं० १५४८ वाली
धव०—षट्खण्डागमकी धवला टीका
प—पंचायती मन्दिर खजूर मस्जिद दिल्लीकी प्रति
ब—ऐलक सरस्वती भवन ब्यावरकी प्रति सं० १५३७ वाली
मूला०—मूलाचार
शतक०—शतक प्रकरण (भावनगर-मुद्रित)
षट्खं० प्र० स० चू०—षट्खण्डागम प्रकृति समुत्कीर्त्तन चूलिका
स्था० सू०—स्थानाङ्गसूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चसंग्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चसंग्रह

प्रथम अधिकार

जीवसमास

मंगलाचरण और वस्तु-निरूपणकी प्रतिज्ञा—

[1]छद्दव्व-णवपयत्थे दव्वाइचउव्विहेण जाणंते ।
वंदित्ता अरहंते जीवस्स परूवणं वोच्छं ॥१॥

द्रव्यादि चार प्रकारसे छह द्रव्य और नौ पदार्थोंको जाननेवाले अरहन्तोंको नमस्कार करके जीवकी प्ररूपणा कहूँगा ॥१॥

अस्स णमोकारस्स विवरणं । तं जहा—[2]दव्वेण सपमाणादो सव्वे जीवा केत्तिया, अणंता । खेत्तेण सव्वे जीवा केत्तिया, अणंता लोका । कालेण सव्वे जीवा केत्तिया, अतीदकालादो अणंतगुणा । भावेण सव्वे जीवा केत्तिया, केवलणाणस्य अणंतिमभागमित्ता । [3]**पुग्गल-काल-आगासाणं जीवभंगो** । णवरिविसेसो, जीवरासीदो पुग्गलरासी अणंतगुणा । पुग्गलरासीदो कालरासी अणंतगुणा । कालरासीदो आगासं अणंतगुण त्ति वत्तव्वं । [4]धम्माधम्मा दो वि दव्वेण असंखेज्जा । खेत्तेण लोगपमाणा । कालेण अदीदकालस्स अणंतिमभागो* । भावेण केवलणाणस्स अणंतिमभागो । ओहिणाणस्स दो वि असंखेज्जदिमभागो । **णवण्हं पयत्थाणं** मज्झे जीवाजीवाणं पुव्वभंगो । पुण्ण-पावा दो वि दव्वेण असंखिज्जा । खेत्तेण घणंगुलस्स असंखिज्जदिमभागो । कालेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो† । **आसवाइपंचण्हं पयत्थाणं** दव्वेण अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा । अहवा सिद्धाणमणंतिमभागो । खेत्तेण अणंता लोगा । कालेण अदीदकालस्स अणंतगुणो + । भावेण केवलणाणस्स अणंतिमभागो ।

1. सं० पञ्चसं० १, ३ । 2. १, ४-५ । 3. १, ८ । 4. १, ६ ।

* ब -भागो । † ब -दिमभागो । + ब -गुणा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस नमस्काररूप गाथासूत्रका विवरण इस प्रकार है:—द्रव्यकी अपेक्षा स्वप्रमाणसे सर्व जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। क्षेत्रकी अपेक्षा सर्व जीव कितने हैं ? अनन्त लोक-प्रमाण हैं। कालकी अपेक्षा सर्व जीव कितने हैं ? अतीत कालसे अनन्तगुणित हैं। भावकी अपेक्षा सर्व जीव कितने हैं ? केवलज्ञानके अनन्तवें भागमात्र हैं। पुद्गल, काल और आकाश द्रव्यका परिमाण जीवद्रव्यके प्रमाणके समान है। विशेषता केवल यह है कि जीवराशिसे पुद्गलराशि अनन्तगुणित है, पुद्गलराशिसे कालराशि अनन्तगुणित है और कालराशिसे आकाशद्रव्य अनन्तगुणित है, ऐसा कहना चाहिए। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये दोनों ही द्रव्यकी अपेक्षा असंख्यात हैं। क्षेत्रकी अपेक्षा लोकप्रमाण हैं। कालकी अपेक्षा अतीत कालके अनन्तवें भाग हैं। भावकी अपेक्षा केवलज्ञानके अनन्तवें भाग हैं और दोनों ही द्रव्य अवधिज्ञानके असंख्यातवें भाग हैं। नौ पदार्थोंके मध्यमें जीव और अजीव पदार्थका परिमाण पूर्वके भंग है अर्थात् जीवादि द्रव्योंके परिमाणके समान है। पुण्य और पाप ये दोनों ही पदार्थ द्रव्यकी अपेक्षा असंख्यात हैं। क्षेत्रकी अपेक्षा घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। कालकी अपेक्षा पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हैं। भावकी अपेक्षा अवधिज्ञानके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। आस्रवादि पांचों पदार्थोंका प्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित है। अथवा सिद्धोंके अनन्तवें भागमात्र है। क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्त लोकप्रमाण है। कालकी अपेक्षा अतीतकालसे अनन्तगुणित है और भावकी अपेक्षा केवलज्ञानके अनन्तवें भागमात्र है।

जीव-प्ररूपणाके भेद—

[1]गुण जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।
उवओगो* वि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिया[1] ॥२॥

१४।१४।६।१०।४।१४ (४।५।६।१५।३।१६।८।७।४।६।२।६।२।२) १२।

गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणाएं और उपयोग; इस प्रकार क्रमसे ये बीस प्ररूपणा कही गई हैं ॥२॥

गुणस्थानके १४, जीवसमासके १४, पर्याप्तिके ६, प्राणके १०, संज्ञाके ४, मार्गणाके १४ और उपयोगके १२ भेद हैं। इनमेंसे १४ मार्गणाओंके अवान्तर भेद इस प्रकार हैं—गति ४, इन्द्रिय ५, काय ६, योग १५, वेद ३, कषाय १६, ज्ञान ८, संयम ७, दर्शन ४, लेश्या ६, भव्यत्व २, सम्यक्त्व ६, संज्ञित्व २ और आहार २।

गुणस्थानका स्वरूप और भेद—

[2]जेहिं दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं[2] ॥३॥
[3]मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरदो पमत्त इयरो अपुव्व अणियट्टि सुहुमो य[3] ॥४॥
उवसंतखीणमोहो सजोगिकेवलिजिणो अजोगी य।
चोद्दस गुणट्ठाणाणि य कमेण सिद्धा य णायव्वा[4] ॥५॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, ११। 2. १, १२। 3. १, १५-१८।

१. गो० जी० २। २. धवला० भा० १, पृ० १६१ गा० १०४, गो० जी० ८। ३. गो० जी० ६। ४. गो० जी० १०; परं तत्र तृतीयचरणे 'चोद्दस जीवसमासा' इति पाठः।

* ब-उग्गो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनमोहनीयादि कर्मोंकी उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्थाओंके होने पर उत्पन्न होनेवाले जिन भावोंसे जीव लक्षित किये जाते हैं, उन्हें सर्वदर्शियोंने 'गुणस्थान' इस संज्ञासे निर्देश किया है। १ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र (सम्यग्मिथ्यात्व), ४ अविरतसम्यक्त्व, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तविरत, ७ अप्रमत्तविरत, ८ अपूर्वकरणसंयत, ९ अनिवृत्तिकरणसंयत, १० सूक्ष्मसाम्परायसंयत, ११ उपशान्तमोह, १२ क्षीणमोह, १३ सयोगिकेवलिजिन और १४ अयोगिकेवली ये क्रमसे चौदह गुणस्थान होते हैं। तथा सिद्धोंको गुणस्थानातीत जानना चाहिए ॥३-५॥

१ मिथ्यात्वगुणस्थानका स्वरूप—

[1]मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होइ।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं पि रसं जहा जरिदो[1] ॥६॥
तं मिच्छत्तं *जमसद्दहणं †तच्चाण होदि अत्थाणं।
संसइद×मभिग्गहियं अणभिग्गहियं तु तं तिविहं[2] ॥७॥
मिच्छादिट्ठी जीओ उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं अणुवइट्ठं +च[3] ॥८॥

मिथ्यात्वकर्मको वेदन अर्थात् अनुभव करनेवाला जीव विपरीतश्रद्धानी होता है। उसे धर्म नहीं रुचता है, जैसे कि ज्वर-युक्त मनुष्यको मधुर (मीठा) रस भी नहीं रुचता है। जो सात तत्त्वों या नव पदार्थोंका अश्रद्धान होता है, उसे मिथ्यात्व कहते हैं। वह तीन प्रकारका है—संशयित, अभिगृहीत और अनभिगृहीत। मिथ्यादृष्टि जीव जिन-उपदिष्ट प्रवचनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रत्युत अन्यसे उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भाव अर्थात् पदार्थके अयथार्थ स्वरूपका श्रद्धान करता है ॥६-८॥

२ सासादनगुणस्थानका स्वरूप—

[2]सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो> मिच्छभावसमभिमुहो।
णासियसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेयव्वो[4] ॥९॥

सम्यक्त्वरूप रत्न-पर्वतके शिखरसे च्युत, मिथ्यात्वरूप भूमिके समभिमुख और सम्यक्त्वके नाशको प्राप्त जो जीव है, उसे सासादन नामवाला जानना चाहिए ॥९॥

३ सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानका स्वरूप—

[3]दहिगुडमिव वामिस्सं पिहुभावं ÷णेव कारिदुं सक्कं।
एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो[5] ॥१०॥

जिस प्रकार व्यामिश्र अर्थात् अच्छी तरहसे मिला हुआ दही और गुड़ पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता, उसी प्रकारसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके मिश्रित भावको सम्यग्मिथ्यात्व जानना चाहिए। यह सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका सम्मिश्रण उन दोनोंके स्वतंत्र आस्वादसे एक भिन्न-जातीय रूपको धारण कर लेता है, अतएव उसको अपेक्षासे मिश्रभावको एक स्वतन्त्र गुणस्थान माना गया है। ॥१०॥

1. सं० पञ्च सं० १, १९। 2. १, २०। 3. १, ३२।

१. धवला, भा० १, पृ० १६२ गा० १०६। गो० जी० १७। २. ध० भा० १, पृ० १६३ गा० १०७। ३. गो० जी० १८, ६५५। ४. ध० भा० १ पृ० १६६ गा० १०८। गो० जी० २०। ५. ध० भा० १, पृ० १७० गा० १०९। गो० जी० २२।

*ब-जं असद्दहणं। †ब-तच्चाण। ×ब-मवि। +ब-वा। >ब-सिहरगओ। ÷ब-नय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४ अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानका स्वरूप--

[1]णो इंदिएसु विरदो णो जीवे थावरे तसे चावि*।
जो सद्दहइ जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो †सो[1] ॥११॥
सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहइ असब्भावं अजाणमाणो गुरुणिओगा[2] ॥१२॥

जो पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंसे विरत नहीं है और न त्रस तथा स्थावर जीवोंके घातसे ही विरक्त है, किन्तु केवल जिनोक्त तत्त्वका श्रद्धान करता है, वह चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत-सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि जीव जिन-उपदिष्ट प्रवचनका तो श्रद्धान करता ही है, किन्तु कदाचित् (सद्भावको) नहीं जानता हुआ गुरुके नियोग (उपदेश या आदेश) से असद्भावका भी श्रद्धान कर लेता है ॥११-१२॥

५ देशविरतगुणस्थानका स्वरूप—

[2]जो तसवहाउ विरदो णो विरओ अक्ख-थावरवहाओ× ।
पडिसमयं सो जीवो विरयाविरओ जिणेक्कमई[3] ॥१३॥

जो जीव एक मात्र जिन भगवान्‌में ही मति (श्रद्धा) को रखता है, तथा त्रस जीवोंके घातसे विरत है और इन्द्रिय-विषयोंसे एवं स्थावर जीवोंके घातसे विरक्त नहीं है, वह जीव प्रति समय विरताविरत है। अर्थात् अपने गुणस्थानके कालके भीतर हर-क्षण विरत और अविरत इन दोनों संज्ञाओंको एक साथ एक समयमें धारण करता है ॥१३॥

६ प्रमत्तसंयतगुणस्थानका स्वरूप—

[3]वत्तावत्तपमाए जो वसइ पमत्तसंजओ होइ ।
सयलगुणसीलकलिओ महव्वई चित्तलायरणो[4] ॥१४॥
[4]विकहा तहा कसाया इंदियणिद्दा तहेव पणओ य ।
चदु चदु पण एगेगं होंति पमादा हु पण्णरसा[5] ॥१५॥

जो पुरुष सकल मूलगुणोंसे और शील अर्थात् उत्तरगुणोंसे सहित है, अतएव महाव्रती है; तथा व्यक्त और *अव्यक्त प्रमादमें रहता है, अतएव चित्रल-आचरणी है;* वह प्रमत्त संयत कहलाता है। चार विकथा (स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा, अवनिपालकथा) चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) पाँच इन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, नासिका, नयन, श्रवण) एक निद्रा और एक प्रणय (प्रेम या स्नेह-सम्बन्ध) ये पन्द्रह (४+४+५+१+१=१५) प्रमाद होते हैं ॥१४-१५॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, २३ । 2. १, २४ । 3. १, २८ । 4. १, ३३ ।

१. ध० भा० १ पृ० १७३ गा० १११ । गो० जी० २९ । २. ध० भा० १ पृ० १७३ गा० ११० । गो० जी० २७ । ३. ध० भा० १ पृ० १७५ गा० ११२ । गो० जी० ३१ । ४. ध० भा० १ पृ० १७८ गा० ११३ । गो० जी० ३३ । ५. ध० भा० १ पृ० १७८ गा० ११४ । गो० जी० ३४ ।

* गो० जी० 'वापि' । † अरहंते य पदत्थे अविरदसम्मो दु सद्दहदि । इति प्राकृतवृत्तौ मूलगाथापाठः ।

× थूले जीवे वधकरणवज्जगो हिंसगो य इदराणं ।
एक्कम्हि चेव समए विरदाविरदु त्ति णादव्वो ॥ इति प्राकृतवृत्तौ मूलगाथापाठः ।

७ अप्रमत्तसंयतगुणस्थानका स्वरूप—

[1]णट्ठासेसपमाओ वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी ।
अणुवसमओ ×अखवओ झाणणिलीणो हु अप्पमत्तो सो[1] ॥१६॥

जो व्यक्त और अव्यक्तरूप समस्त प्रकारके प्रमादसे रहित है, महाव्रत, मूलगुण और और उत्तरगुणोंकी मालासे मंडित है, स्व और परके ज्ञानसे युक्त है, और कषायोंका अनुपशमक या अक्षपक होते हुए भी ध्यानमें निरन्तर लीन रहता है, वह अप्रमत्तसंयत कहलाता है ॥१६॥

८ अपूर्वकरणसंयतगुणस्थानका स्वरूप—

[2]भिण्णसमयट्ठिएहिं दु जीवेहि ण होइ सव्वहा सरिसो ।
करणेहिं एयसमयट्ठिएहिं सरिसो विसरिओ वा[2] ॥१७॥
एयम्मि गुणट्ठाणे विसरिससमयट्ठिएहिं जीवेहिं ।
पुव्वमपत्ता जम्हा होंति अपुव्वा हु परिणामा[3] ॥१८॥
तारिसपरिणामट्ठियजीवा हु जिणेहिं गलियतिमिरेहिं ।
मोहस्सऽपुव्वकरणा खवणुवसमणुज्जया भणिया[4] ॥१९॥

इस गुणस्थानमें, भिन्न समयवर्ती जीवोंमें करण अर्थात् परिणामोंकी अपेक्षा कभी भी सादृश्य नहीं पाया जाता। किन्तु एक समयवर्त्ती जीवोंमें सादृश्य और वैसादृश्य दोनों ही पाये जाते हैं। इस गुणस्थानमें यतः विभिन्न-समय-स्थित जीवोंके पूर्वमें अप्राप्त अपूर्व परिणाम होते हैं; अतः उन्हें अपूर्वकरण कहते हैं। इस प्रकारके अपूर्वकरण परिणामोंमें स्थित जीव मोहकर्मके क्षपण या उपशमन करनेमें उद्यत होते हैं, ऐसा गलित-तिमिर अर्थात् अज्ञानरूप अन्धकारसे रहित वीतरागी जिनोंने कहा है ॥१७–१९॥

९ अनिवृत्तिकरणसंयतगुणस्थानका स्वरूप—

[3]एकम्मि कालसमए संठाणादीहि जह णिवट्टंति ।
ण *णिवट्टंति तह च्चिय परिणामेहिं मिहो जम्हा[5] ॥२०॥
होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जेसिमेकपरिणामा ।
विमलयर ÷ झाणहुयवहसिहाहिं णिद्दड्ढकम्मवणा[6] ॥२१॥

इस गुणस्थानके अन्तर्मुहूर्त-प्रमित कालमें से विवक्षित किसी एक समयमें अवस्थित जीव यतः संस्थान (शरीरका आकार) आदिकी अपेक्षा जिस प्रकार निवृत्ति या भेदको प्राप्त होते हैं, उस प्रकार परिणामोंकी अपेक्षा परस्पर निवृत्तिको प्राप्त नहीं होते हैं, अतएव वे अनिवृत्तिकरण कहलाते हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवोंके प्रति समय एक ही परिणाम होता है। ऐसे ये जीव अपने अति विमल ध्यानरूप अग्निकी शिखाओंसे कर्मरूप वनको सर्वथा जला डालते हैं ॥२०–२१॥

1. सं० पंचसं० १, ३४ । 2. १, ३५–३७ । 3. १, ३८–४० ।

१. ध० भा० १ पृ० १७९ गा० १५५ । गो० जी० ४६ । २. ध० भा० १ पृ० १८३ गा० ११६ । गो० जी० ५२ । ३. ध० भा० १ पृ० १८३ गा० ११७ । गो० जी० ५१ । ४. ध० भा० १ पृ० १८३ गा० ११८ । गो० जी० ५४ । ५. ध० भा० १ पृ० १८६ गा० ११९ । गो० जी० ५६ । ६. ध० भा० १ पृ० १८६ गा० १२० । गो० जी० ५७ ।

× द ब -यखवओ । * ब -निव० । ÷ ब -दर ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१० सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानका स्वरूप—

[1]कोसुंभो जिह राओ अब्भंतरदो य सुहुमरत्तो य ।
एवं सुहुमसराओ सुहुमकसाओ त्ति णायव्वो[1] ॥२२॥
पुव्वापुव्वप्फड्डयअणुभागाओ अणंतगुणहीणे ÷ ।
लोहाणुम्मि य ट्ठिअओ हंदि सुहुमसंपराओ य[2] ॥२३॥

जिस प्रकार कुसूमली रंग भीतरसे सूक्ष्म रक्त अर्थात् अत्यन्त कम लालिमावाला होता है, उसी प्रकार सूक्ष्म राग-सहित जीवको सूक्ष्मकषाय या सूक्ष्मसाम्पराय जानना चाहिए। लोभाणु अर्थात् सूक्ष्म लोभमें स्थित सूक्ष्मसाम्परायसंयत पूर्वस्पर्धक और अपूर्वस्पर्धकके अनुभाग से अनन्तगुणितहीन अनुभागवाला होता है ॥२२-२३॥

विशेषार्थ—अनेक प्रकारकी अनुभाग शक्तिसे युक्त कार्मणवर्गणाओंके समूहको स्पर्धक कहते हैं। जो स्पर्धक अनिवृत्तिकरणके पहले पाये जाते हैं, उन्हें पूर्वस्पर्धक कहते हैं। जिन स्पर्धकोंका अनिवृत्तिकरणके निमित्तसे अनुभाग क्षीण होता है, उन्हें अपूर्वस्पर्धक कहते हैं। सूक्ष्म-कषाय-सम्बन्धी स्पर्धककी अनुभाग-शक्ति उक्त दोनों ही स्पर्धकोंकी अनुभाग-शक्तिसे अनन्तगुणी हीन होती है।

११ उपशान्तकषायगुणस्थानका स्वरूप—

[2]सकयाहलं जलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलयं ।
सयलोवसंतमोहो उवसंतकसायओ होइ[3] ॥२४॥

कतकफल (निर्मली)से सहित जल, अथवा शरद्-कालमें सरोवरका पानी जिस प्रकार निर्मल होता है, उसी प्रकार जिसका सम्पूर्ण मोहकर्म सर्वथा उपशान्त हो गया है, ऐसा उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती जीव अत्यन्त निर्मल परिणामवाला होता है ॥२४॥

१२ क्षीणकषायगुणस्थानका स्वरूप—

[3]णिस्सेसखीणमोहो फलिहामलभायणुदयसमचित्तो ।
खीणकसाओ भण्णइ णिग्गंथो वीयराएहिं[4] ॥२५॥
जह सुद्धफलिहभायणखित्तं *णीरं खु †णिम्मलं सुद्धं ।
तह ×णिम्मलपरिणामो खीणकसाओ मुणेयव्वो ॥२६॥

मोहकर्मके निःशेष क्षीण हो जानेसे जिसका चित्त स्फटिकके विमल भाजनमें रक्खे हुए सलिलके समान स्वच्छ हो गया है, ऐसे निर्ग्रन्थ साधुको वीतरागियोंने क्षीणकषायसंयत कहा है। जिस प्रकार निर्मली, फिटकरी आदिसे स्वच्छ किया हुआ जल शुद्ध-स्वच्छ स्फटिकमणिके भाजनमें नितरा लेनेपर सर्वथा निर्मल एवं शुद्ध होता है, उसी प्रकार क्षीणकषायसंयतको भी निर्मल, स्वच्छ एवं शुद्ध परिणामवाला जानना चाहिये ॥२५-२६॥

1. सं० पं० सं० १, ४१-४४ । 2. १, ४७ । 3. १, ४८ ।

१. गो० जी० ५९, परं तत्र प्रथम-द्वितीयचरणयोः 'धुदकोसुंभयवत्थं होदि जहा सुहुमरायसंजुत्तं' ईदृक् पाठः । २. ध० भा० १ पृ० १८८ गा० १२१ । ३. गो० जी० ६१, परं तत्र प्रथमचरणे 'कदकफलजुदजलं वा' इति पाठः । ४. ध० भा० १ पृ० १९० गा० १२३ । गो० जी० ६२ ।

÷ व -हीणो । * व -नीरं । † व -निम्मलं । × व -निम्मल ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३ सयोगिकेवलिगुणस्थानका स्वरूप—

[1]केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासिअण्णाणो ।
णवकेवललद्धुग्गमपावियपरमप्पववएसो[1] ॥२७॥
जं णत्थि राय-दोसो तेण ण बंधो हु अत्थि केवलिणो ।
जह सुक्कुड्डलग्गा वालुया सडइ तह कम्मं ॥२८॥
असहायणाण-दंसणसहिओ वि हु केवली हु× जोएण ।
जुत्तो त्ति सजोइजिणो अणाइणिहणारिसे* वुत्तो[2] ॥२९॥

केवलज्ञानरूप दिवाकर (सूर्य) की किरणोंके समूहसे जिनका अज्ञानान्धकार सर्वथा नष्ट हो गया है, जिन्होंने नौ केवल-लब्धियोंके उद्गमसे 'परमात्मा' संज्ञा प्राप्त की है और जो पर-सहायसे रहित केवलज्ञान-दर्शनसे सहित हैं, ऐसे योग-युक्त केवली भगवान्‌को अनादि-निधन आर्षमें सयोगिजिन कहा है। केवली भगवान्‌के यतः राग-द्वेष नहीं होता, इस कारणसे उनके नवीन कर्मका बन्ध भी नहीं होता है। जिस प्रकार सूखी भित्तीपर आकरके लगी हुई वालुका तत्क्षण झड़ जाती है, इसी प्रकार योगके सद्भावसे आया हुआ कर्म भी कषायके न होनेसे तत्क्षण झड़ जाता है ॥२७–२९॥

१४ अयोगिकेवलिगुणस्थानका स्वरूप—

[2]सेलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो ।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होइ[3] ॥३०॥

जो जीव शैलेशी अवस्थाको प्राप्त हुए हैं, अर्थात् शैल (पर्वत) के समान स्थिर परिणामवाले हैं; अथवा जिन्होंने अठारह हजार भेदवाले शीलके स्वामित्वरूप शीलेशत्वको प्राप्त किया है, जिनका निःशेष आस्रव सर्वथा रुक गया है, जो कर्म-रजसे विप्रमुक्त हैं और योगसे रहित हो चुके हैं, ऐसे केवली भगवान्‌को अयोगिकेवली कहते हैं ॥३०॥

१५ गुणस्थानातीत सिद्धोंका स्वरूप—

[3]अट्ठविहकम्मवियडा सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा कयकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा[4] ॥३१॥

जो अष्ट-विध कर्मोंसे रहित हैं, अत्यन्त शान्तिमय हैं, निरंजन हैं, नित्य हैं, क्षायिक सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंसे युक्त हैं, कृतकृत्य हैं और लोकके अग्रभागपर निवास करते हैं, वे सिद्ध कहलाते हैं ॥३१॥

इस प्रकार गुणस्थानप्ररूपणा समाप्त हुई ।

अब दूसरी जीवसमासप्ररूपणाका वर्णन करते हैं—

[4]जेहिं अणेया जीवा णज्जंते बहुविहा वि तज्जादी ।
ते पुण संगहिदत्था जीवसमासे† त्ति विण्णेया[5] ॥३२॥

1. सं० पञ्चसं० १, ४९ । 2. १, ५० । 3. १, ५१ । 4. १, ६३ ।

१. ध० भा० १ पृ० १९१ गा० १२४ । गो० जी० ६३ । २. ध० भा० १ पृ० १९२ गा० १२५ । गो० जी० ६४ । ३. ध० भा० १ पृ० १९९ गा० १२६ । गो० जी० ६५ । परं तत्र 'सीलेसिं' इति पाठः । ४. ध० भा० १ पृ० २०० गा० १२७ गो० जी० ६८ । ५. गो० जी० ७० ।

× द व केवलीहिं । * ब -णोरिसे । † ब -समासा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन धर्म-विशेषोंके द्वारा नाना जीव और उनकी नाना प्रकारकी जातियाँ जानी जाती हैं, पदार्थोंका संग्रह करनेवाले उन धर्मविशेषोंको जीवसमास जानना चाहिये ॥३२॥

जीवसमासोंके भेदोंका वर्णन—

[1]जीवट्ठाणवियप्पा चोद्दस इगिवीस तीस बत्तीसा ।
छत्तीस *अट्ठतीसाऽडयाल चउवण्ण सयवण्णा ॥३३॥

जीवोंके स्थानोंको जीवसमास कहते हैं। जीवस्थानोंके भेद क्रमशः चौदह, इक्कीस, तीस, बत्तीस, छत्तीस, अड़तीस, अड़तालीस, चौवन और सत्तावन होते हैं ॥३३॥

चौदह भेदोंका निरूपण—

[2]बायरसुहुमेगिंदिय-वि-ति-चउरिंदिय-असण्णि-सण्णी य ।
पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चोद्दसा होंति[१] ॥३४॥

बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञिपंचेन्द्रिय और संज्ञिपंचेन्द्रिय, ये सातों ही पर्याप्तक और अपर्याप्तक रूप होते हैं। इस प्रकार जीवसमासके चौदह भेद होते हैं ॥३४॥ (देखो संदृष्टि सं० १)

इक्कीस भेदोंका निरूपण—

[3]चोद्दस पुव्वुद्दिट्ठा अलद्धिपज्जत्तया य सत्तेव ।
इय एवं इगिवीसा णिद्दिट्ठा जिणवरिंदेहि ॥३५॥

पूर्वोद्दिष्ट चौदह भेद, तथा लब्ध्यपर्याप्तक-सम्बन्धी उपर्युक्त सातों ही भेद, इस प्रकार जीवसमासके ये इक्कीस भेद जिनवरेन्द्रोंने कहे हैं ॥३५॥ (देखो सं० सं० २)

तीस भेदोंका निरूपण—

[4]पंच वि थावरकाया बादर-सुहुमा पज्जत्त इयरा य ।
दस चेव तसेसु तहा एवं जाणे हु तीसा य ॥३६॥

पाँचों ही स्थावरकायिकजीव बादर-सूक्ष्म और पर्याप्तक-अपर्याप्तकके भेदसे बीस भेदरूप होते हैं। तथा त्रसजीवोंमें द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञिपंचेन्द्रिय और संज्ञिपंचेन्द्रिय इन पाँचोंके ही पर्याप्तक-अपर्याप्तकके भेदसे दश भेद होते हैं। इस प्रकार स्थावरोंके बीस, त्रसोंके दश ये दोनों मिलकर तीस भेद जानना चाहिये ॥३६॥ (देखो सं० सं० ३)

बत्तीस भेदोंका निरूपण—

[5]पुव्वुत्ता वि य तीसा जीवसमासा य होंति णवरं तु ।
सुपरिट्ठिय दो सहिया जीवसमासेहिं बत्तीसा ॥३७॥

पूर्वोक्त जो तीस जीवसमास हैं, उनमें केवल वनस्पतिकायिक-सम्बन्धी सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित ये दो भेद और मिला देनेपर बत्तीस जीवसमास हो जाते हैं ॥३७॥(देखो सं० सं० ४)

1. सं० पञ्चसं० १, ६८–६६ । 2. १, ६४–६५ । 3. १, १०० । 4. १, १०१–१०२ । 5. १, १०३–१०४ ।

१. गो० जी० ७२ ।

* द -अडतीसा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छत्तीस भेदोंका वर्णन—

[1]चउ-इयरणिगोएहिं जुआ बत्तीसा य होइ छत्तीसा ।
बादर-सुहुमेहिं तहा पज्जत्ता इयरसंखेहि ॥३८॥

पूर्वोक्त बत्तीस भेदोंमें बादर चतुर्गतिनिगोद पर्याप्तक, बादर चतुर्गतिनिगोद-अपर्याप्तक, बादरनित्यनिगोद पर्याप्तक और बादर नित्यनिगोद-अपर्याप्तक ये सप्रतिष्ठितके चार भेद और मिलानेपर छत्तीस जीवसमास हो जाते हैं ॥३८॥ (देखो सं० सं० ५)

अड़तीस भेदोंका वर्णन—

[2]पुव्वुत्ता छत्तीसा अट्ठत्तीसा य सा होइ ।
अपइट्ठिएहिं सहिया दो जीवसमासएहिं च ॥३९॥

पूर्वोक्त छत्तीस भेदोंमें अप्रतिष्ठित वनस्पतिके पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास और मिला देनेपर अड़तीस जीवसमास हो जाते हैं ॥३६॥ (देखो सं० सं० ६)

अड़तालीस भेदोंका वर्णन—

[3]सोलस जीवसमासा अलद्धिपज्जत्तगेसु जे भणिया ।
तेहिं जुआ बत्तीसा अडदालीसा य सा होइ ॥४०॥

लब्ध्यपर्याप्तकोंमें जो पहले सोलह जीवसमास कहे गये हैं, उनसे बत्तीस जीवसमास युक्त करनेपर अड़तालीस भेद हो जाते हैं ॥४०॥ (देखो सं० सं० ७)

चौपन भेदोंका वर्णन—

[4]अट्ठारसेहिं जुत्ता अलद्धिपज्जत्तएहिं छत्तीसा ।
जीवसमासेहिं तहा चउवण्णा *जाण णियमेण ॥४१॥

लब्ध्यपर्याप्तकोंके अठारह जीवसमासोंके साथ पूर्वोक्त छत्तीस जीवसमास युक्त करने पर चौपन भेद हो जाते हैं, ऐसा नियमसे जानना चाहिए ॥४१॥ (देखो सं० सं० ८)

सत्तावन भेदोंका वर्णन—

[5]उणवीसेहि य जुत्ता अलद्धिपज्जत्तएहिं अडतीसा ।
जीवसमासेहिं तहा सयवण्णा सा य विण्णेया ॥४२॥

लब्ध्यपर्याप्तकोंके उन्नीस जीवसमासोंके साथ पूर्वोक्त अड़तीस जीवसमास युक्त करने पर सत्तावन जीवसमास हो जाते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४२॥ (देखो सं० सं० ९)

इस प्रकार जीवसमासप्ररूपणा समाप्त हुई

पर्याप्तिप्ररूपणा—

[6]जह पुण्णापुण्णाइं गिह-घड-वत्थाइयाइं दव्वाइं ।
तह पुण्णापुण्णाओ पज्जत्तियरा मुणेयव्वा[1] ॥४३॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, १०८-१०९ । 2. १, ११२-११३ । 3. १, ११५ । 4. १, ११६ । 5. १, ११७ । 6. १, १२७ ।

१. गो० जी० ११७ ।

* ब -जाणि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]आहारसरीरिंदियपज्जत्ती *आणपाणभासमणो ।
चत्तारि पंच छप्पि य एइंदिय-वियल-सण्णीणं[१] ॥४४॥

जिस प्रकार गृह, घट, वस्त्रादिक अचेतन द्रव्य पूर्ण और अपूर्ण दोनों प्रकारके होते हैं, उसी प्रकार जीव भी पूर्ण और अपूर्ण दोनों प्रकारके होते हैं। पूर्ण जीवोंको पर्याप्त और अपूर्ण जीवोंको अपर्याप्त जानना चाहिए। आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनपान (श्वासोच्छ्वास) भाषा और मन ये छह पर्याप्तियाँ होती हैं। इनमेंसे एकेन्द्रियोंके आदिकी चार, विकलेन्द्रियोंके आदिकी पांच और संज्ञी पंचेन्द्रियोंके छहों पर्याप्तियां होती हैं ॥४३-४४॥

इस प्रकार पर्याप्तिप्ररूपणा समाप्त हुई।

प्राणप्ररूपणा—

[2]बाहिरपाणेहिं जहा तहेव अब्भंतरेहि पाणेहिं ।
जीवंति जेहिं जीवा पाणा ते होंति बोहव्वा[२] ॥४५॥
[3]पंचेविंदियपाणा मण-वचि-काएण तिण्णि बलपाणा ।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण दस होंति[३] ॥४६॥

जिस प्रकार बाह्य प्राणोंके द्वारा जीव जीते हैं, उसी प्रकार जिन आभ्यन्तर प्राणोंके द्वारा जीव जीते हैं, वे प्राण कहलाते हैं, ऐसा जानना चाहिए। स्पर्शन, रसन, घ्राण, नयन और श्रवण *ये पाँच इन्द्रियाँ, मनोबल, वचनबल और कायबल ये तीन बल, आयु और आनपान ये दश प्राण होते हैं ॥४५-४६॥*

विशेषार्थ—पौद्गलिक द्रव्येन्द्रियोंके व्यापारको बाह्यप्राण कहते हैं। बाह्यप्राणके निमित्तभूत ज्ञानावरण और अन्तरायकर्मके क्षयोपशमादिसे विजृम्भित चेतनव्यापारको आभ्यन्तर प्राण कहते हैं। इन दोनों ही प्रकारके प्राणोंके सद्भावमें जीवमें जीवितपनेका और वियोग होने पर मरणपनेका व्यवहार होता है, इसलिए इन्हें प्राण कहते हैं। ये प्राण पूर्वोक्त पर्याप्तियोंके कार्यरूप हैं और पर्याप्ति कारणरूप हैं; क्योंकि गृहीत पुद्गल स्कन्ध-विशेषोंको इन्द्रिय, वचन आदिरूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति और वचन-व्यापार आदिकी कारणभूत शक्तिको, तथा वचन आदिको प्राण कहते हैं।

[4]उस्सासो पज्जत्ते सव्वेसिं काय-इंदियाऊणि ।
वचि† पज्जत्ततसाणं चित्तबलं सण्णिपज्जत्ते ॥४७॥
दस सण्णीणं पाणा सेसेगूणंतिमस्स वे ऊणा ।
पज्जत्तेसु दरेसु अ सत्त दुए सेसगेगूणा[४] ॥४८॥
पुण्णेसु सण्णि सव्वे मणरहिया होंति ते दु इयरम्मि ।
सोदक्खिघाणजिब्भारहिया सेसिगिंदिभासूणा ॥४९॥
पंचक्ख-दुए पाणा मण वचि उस्सास ऊणिया सव्वे ।
कण्णक्खिगंधरसणारहिया सेसेसु ते अपुण्णेसु ॥५०॥

बीइंदियादिपज्जत्तेसु ४।६।७।८।९।१० । सण्णिपंचिंदियादि-अपज्जत्तेसु ७।७।६।५।४।३।

---

1. सं० पंचसं० १, १२८ । 2. १, १२३ । 3. १, १२४ । 4. १, १२५-१२६ ।

१. गो० जी० ११८ । २. ध० भा० १ पृ० २५६ गा० १४१ । गो० जी० १२८ । ३. गो० जी० १२९ । ४. गो० जी० १३२ ।

* ब -याण । † ब -विचि ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

कायबल, इन्द्रियाँ और आयु ये प्राण सभी पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके होते हैं। श्वासोच्छ्वास पर्याप्त स्थावर और त्रसजीवोंके होता है। वचनबल पर्याप्त त्रसजीवोंके, तथा मनोबल संज्ञी पर्याप्त जीवोंके होता है। पर्याप्त संज्ञीपंचेन्द्रियोंके दश प्राण होते हैं। शेष पर्याप्त जीवोंके एक-एक प्राण कम होता है और एकेन्द्रियोंके दो प्राण कम होते हैं। अपर्याप्त संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रियोंके सात प्राण होते हैं, और शेष जीवोंके एक-एक प्राण कम होता जाता है। पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रियोंके पाँचों इन्द्रियाँ, तीनों बल, आयु और आनपान ये दशों प्राण होते हैं। पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रियके मन-रहित शेष नौ प्राण होते हैं। पर्याप्त चतुरिन्द्रियके उक्त नौ प्राणोंमेंसे श्रोत्र-रहित शेष आठ प्राण होते हैं। पर्याप्त त्रीन्द्रियके उक्त आठ प्राणोंमेंसे चक्षु-रहित शेष सात प्राण होते हैं। पर्याप्त द्वीन्द्रियके उक्त सात प्राणोंमेंसे घ्राण-रहित शेष छह प्राण होते हैं। पर्याप्त एकेन्द्रियके उक्त छह प्राणोंमेंसे रसनाइन्द्रिय और वचनबल इन दो प्राणोंसे रहित शेष चार प्राण होते हैं। अपर्याप्त पंचेन्द्रिय-द्विकमें मनोबल, वचनबल और श्वासोच्छ्वास इन तीनसे कम शेष सात प्राण होते हैं। अपर्याप्त चतुरिन्द्रियके उक्त सातमें कर्णेन्द्रिय कम करनेपर शेष छह प्राण होते हैं। अपर्याप्त त्रीन्द्रियके उक्त छहमेंसे चक्षुरिन्द्रिय कम करने पर शेष पाँच प्राण होते हैं। अपर्याप्त द्वीन्द्रियके घ्राणेन्द्रिय कम करने पर शेष चार प्राण होते हैं। अपर्याप्त एकेन्द्रियके रसना-रहित शेष तीन प्राण होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है ॥४७-५०॥

इस प्रकार प्राणप्ररूपणा समाप्त हुई।

संज्ञाप्ररूपणा—

[1]इह जाहि बाहिया वि य जीवा पावंति दारुणं दुक्खं।
सेवंता वि य *उभए ताओ चत्तारि सण्णाओ[1] ॥५१॥

जिनसे बाधित होकर जीव इस लोकमें दारुण दुःखको पाते हैं और जिनको सेवन करनेसे जीव दोनों ही भवोंमें दारुण दुःखको प्राप्त करते हैं, उन्हें संज्ञा कहते हैं और वे चार होती हैं—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा ॥५१॥

आहारसंज्ञाका स्वरूप—

[2]आहारदंसणेण य तस्सुवओगेण †ऊणकुट्ठेण।
सादिदरुदीरणाए होदि हु आहारसण्णा दु[2] ॥५२॥

बहिरंगमें आहारके देखनेसे, उसके उपयोगसे और उदररूप कोठाके खाली होने पर तथा अन्तरंगमें असातावेदनीयकी उदीरणा होने पर आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है ॥५२॥

भयसंज्ञाका स्वरूप—

[3]अइ‡भीमदंसणेण य तस्सुवओगेण ×ऊणसत्तेण।
भयकम्मुदीरणाए भयसण्णा जायदे चउहिं[3] ॥५३॥

बहिरङ्गमें अति भयानक रूपके देखनेसे, उसका उपयोग करनेसे और शक्तिकी हीनता होने पर, तथा अन्तरंगमें भयकर्मकी उदीरणा होने पर, इस प्रकार इन चार कारणोंसे भयसंज्ञा उत्पन्न होती है ॥५३॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, ३४४। 2. १, ३४८। 3. १, ३४६।

१. गो०जी० १३३। २. गो०जी० १३४। ३. गो० जी० १३५।

* द -उभये। † ब -ओन, द -ओमु। ‡ ब -इय। × ब -ऊन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैथुनसंज्ञाका स्वरूप—

[1]पणिदरसभोयणेण य तस्सुवओगेण कुसीलसेवाए ।
वेदस्सुदीरणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं[1] ॥५४॥

बहिरंगमें गरिष्ठ, स्वादिष्ट और रसयुक्त भोजन करनेसे, पूर्व-भुक्त विषयोंके ध्यान करनेसे, कुशीलका सेवन करनेसे, तथा अन्तरंगमें वेदकर्मकी उदीरणा या तीव्र उदय होनेपर मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है ॥५४॥

परिग्रहसंज्ञाका स्वरूप—

[2]उवयरणदंसणेण य तस्सुवओगेण मुच्छियाए व ।
लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायदे सण्णा[2] ॥५५॥

बहिरंगमें भोगोपभोगके साधनभूत उपकरणोंके देखनेसे, उनका उपयोग करनेसे, उनमें मूर्च्छाभाव रखनेसे तथा अन्तरंगमें लोभकर्मकी उदीरणा होने पर परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है ॥५५॥

इस प्रकार संज्ञाप्ररूपणा समाप्त हुई ।

मार्गणाप्ररूपणा—

[3]जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा ।
ताओ चोद्दस जाणे सुदणाणे मग्गणाओ त्ति[3] ॥५६॥

[4]गइ इंदियं च काए जोए वेए कसाय णाणे य ।
संजम दंसण लेस्सा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे[4] ॥५७॥

जिन-प्रवचन-दृष्ट जीव जिन भावोंके द्वारा, अथवा जिन पर्यायोंमें अनुमार्गण किये जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं। जीवोंका अन्वेषण करनेवाली ऐसी मार्गणाएँ श्रुतज्ञानमें चौदह कहीं गई हैं, ऐसा जानना चाहिए। वे चौदह मार्गणाएँ इस प्रकार हैं— १, गतिमार्गणा, २ इन्द्रियमार्गणा, ३ कायमार्गणा, ४ योगमार्गणा, ५ वेदमार्गणा, ६ कषायमार्गणा, ७ ज्ञानमार्गणा, ८ संयममार्गणा, ९ दर्शनमार्गणा, १० लेश्यामार्गणा, ११ भव्यमार्गणा, १२ सम्यक्त्वमार्गणा, १३ संज्ञिमार्गणा और १४ आहारमार्गणा ॥५६-५७॥

[5]मणुया य अपज्जत्ता वेउव्वियमिस्सऽहारया दोण्णि ।
सुहुमो सासणमिस्सो उवसमसम्मो य संतरा अट्ठ* ॥५८॥

एत्थ एगो गईए १ । तितयं जोगे ३ । सुहुमो संजमे १ । तयं सम्मत्ते ३ । इदि अट्ठ संतरा ८ ।

---

1. सं० पंचसं० १, ३५० । 2. १, ३५२ । 3. १, १३१ । 4. १, १३२-१३३ । 5. १, १३४-१३५ ।

१. गो० जी० १३६ । २. गो० जी० १३७ । ३. ध० भा० १ पृ० १३२ गा० ८३ । गो०जी० १४० । ४. गो० जी० १४१ ।

* द टिप्पणी—सत्त दिणा छम्मासा वासपुधत्तं च बारस मुहुत्ता ।
पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमओ दु ॥१॥
पढमुवसमसहिदाए विरदाविरदाए चउद्दसा दिवसा ।
विरदाए पण्णरसा विरहिदकालो दु बोहव्वो ॥२॥ गो० जी० १४३-१४४ ।

उवसमेण सह अणुव्वयंतरं दिण १४। तेण सह महव्वयंतरं दिणं १५ । पेयादोसाभिप्पायादो तस्सेवंतरं दिण २४ । प्रथमोपशमसम्यक्त्वस्य ४० । अपर्याप्तमनुष्यस्य पल्योपमासंख्याततमभागः उत्कृष्टेन शून्यकालो भवति । आहारकद्वितयस्य ससाष्टौ वर्षाणि । वैक्रियिकमिश्रे द्वादश मुहूर्त्ताः । सूक्ष्मसाम्पराय-संयमस्य षण्मासाः । सासादन-मिश्रयोः पल्योपमासंख्याततमभागः । औपशमिकस्य सप्त दिनानि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्त मनुष्य, वैक्रियिकमिश्रयोग, दोनों आहारक अर्थात् आहारककाययोग और आहारक मिश्रकाययोग, सूक्ष्मसाम्परायचारित्र, सासादनसम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और उपशमसम्यक्त्व ये आठ सान्तर मार्गणा होती हैं ॥५८॥

इनमेंसे गतिमार्गणामें एक, योगमार्गणामें तीन, संयममार्गणामें सूक्ष्मसाम्परायचारित्र तथा सम्यक्त्वमार्गणामें अन्तिम तीन, इस प्रकार आठ सान्तर मार्गणाएँ जानना चाहिए।

अब गतिमार्गणाका वर्णन करते हुए पहले गतिका स्वरूप कहते हैं—

[1]गइकम्मविणिव्वत्ता जा चेट्ठा सा गई मुणेयव्वा ।
जीवा हु चाउरंगं गच्छंति हु सा गई होइ[1] ॥५९॥

गतिनामा नामकर्मसे उत्पन्न होनेवाली जो चेष्टा या क्रिया होती है उसे गति जानना चाहिए। अथवा जिसके द्वारा जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चारों गतियोंमें गमन करते हैं, वह गति कहलाती है ॥५९॥

नरकगतिका स्वरूप—

[2]ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य काल भावे य ।
अण्णोण्णेहि य णिच्चं तम्हा ते णारया भणिया[2] ॥६०॥

यतः तत्स्थानवर्ती द्रव्यमें, क्षेत्रमें, कालमें और भावमें जो जीव रमते नहीं हैं, तथा परस्परमें भी जो कभी भी प्रीतिको प्राप्त नहीं होते हैं, अतएव वे नारक या नारकी कहे जाते हैं ॥६०॥

तिर्यग्गतिका स्वरूप—

[3]तिरियंति कुडिलभावं विगयसुसण्णा णिकट्ठमण्णाणा+ ।
अच्चंतपावबहुला तम्हा ते तिरिच्छिया भणिया[3] ॥६१॥

यतः जो सदा कुटिलभावका आचरण करते हैं, उत्कट संज्ञाओंके धारक हैं, निकृष्ट एवं अज्ञानी हैं, अत्यन्त पाप-बहुल हैं, अतः वे तिर्यञ्च कहे जाते हैं ॥६१॥

मनुष्यगतिका स्वरूप—

[4]मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा जदो दु जे जीवा ।
मणउक्कडा य जम्हा तम्हा ते माणुसा भणिया[4] ॥६२॥

यतः जो मनके द्वारा नित्य ही हेय-उपादेय, तत्त्व-अतत्त्व और धर्म-अधर्मका विचार करते हैं, कार्य करनेमें निपुण हैं, मनसे उत्कृष्ट हैं, अर्थात् उत्कृष्ट मनके धारक हैं, और युगके आदिमें मनुओंसे उत्पन्न हुए हैं, अतएव वे मनुष्य कहलाते हैं ॥६२॥

देवगतिका स्वरूप—

[5]कीडंति जदो णिच्चं गुणेहिं अट्ठेहिं दिव्वभावेहिं ।
भासंतदिव्वकाया तम्हा ते वण्णिया देवा[5] ॥६३॥

1. सं० पञ्चसं० १, १३६ । 2. १, १३७ । 3. १, १३८ । 4. १, १३९ । 5. १, १४० ।

१. ध०भा० १ पृ० १३५ गा० ८४ । २. ध०भा० १ पृ० २०२ गा० १२८ । गो०जी० १४६ । ३. ध० भा० १ पृ० २०२ गा० १२९ । गो० जी० १४७ । ४. ध० भा० १ पृ० २०३ गा० १३० । गो०जी० १४८ । ५. ध०भा० १ पृ० २०३ गा० १३१ । गो०जी० १५० । परन्तूभयत्रापि 'कीडंति' स्थाने 'दिव्वंति' पाठः ।

+ द- मण्णाणा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो दिव्यभाव-युक्त अणिमादि आठ गुणोंसे नित्य क्रीडा करते रहते हैं और जिनका प्रकाशमान दिव्य शरीर है, वे देव कहे गये हैं ॥६३॥

सिद्धगतिका स्वरूप—

[1]जाइ-जरा-मरण-भया संजोय-विओय-दुक्ख-सण्णाओ ।
रोगादिया य *जिस्से ण होंति सा होइ सिद्धिगई[1] ॥६४॥

जहाँ पर जन्म, जरा, मरण, भय, संयोग, वियोग, दुःख, संज्ञा और रोगादिक नहीं होते हैं, वह सिद्धगति कहलाती है ॥६४॥

इस प्रकार गतिमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ।

अब इन्द्रियमार्गणाका वर्णन करते हुए पहले इन्द्रियका स्वरूप कहते हैं—

[2]अहमिंदा जह + देवा अविसेसं अहमहं ति मण्णंता ।
ईसंति एक्कमेक्कं इंदा इव इंदियं जाणे[2] ॥६५॥

जिस प्रकार अहमिन्द्रदेव विना किसी विशेषताके 'मैं इन्द्र हूँ, मैं इन्द्र हूँ' इस प्रकार मानते हुए ऐश्वर्यका स्वतन्त्ररूपसे अनुभव करते हैं उसी प्रकार इन्द्रियोंको जानना चाहिए। अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने विषयके सेवन करनेमें स्वतन्त्र है ॥६५॥

इन्द्रियोंके आकार—

[3]*जवणालिया-मसूरी-चंदद्ध-अइमुत्तफुल्लतुल्लाइं ।*
इंदियसंठाणाइं फासं पुण णेगसंठाणं[3] ॥६६॥

श्रोत्रेन्द्रियका आकार यव-नालीके समान, चक्षुरिन्द्रियका मसूरके समान, रसनेन्द्रियका अर्ध-चन्द्रके समान और घ्राणेन्द्रियका अतिमुक्तक पुष्प अर्थात् कदम्बके फूलके समान है। किन्तु स्पर्शनेन्द्रिय अनेक आकारवाली है ॥६६॥

[4]एइंदियस्स फुसणं एक्कं चिय होइ सेसजीवाणं ।
एयाहिया य तत्तो जिब्भाघाणक्खिसोत्ताइं[4] ॥६७॥

एकेन्द्रिय जीवके एक स्पर्शन-इन्द्रिय ही होती है। शेष जीवोंके क्रमसे जिह्वा, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये एक-एक इन्द्रिय अधिक होती हैं ॥६७॥

इन्द्रियोंके विषय—

[5]पुट्ठं सुणेइ सद्दं अपुट्ठं पुण वि पस्सदे रूवं ।
फासं रसं च गंधं बद्धं पुट्ठं वियाणेइ[5] ॥६८॥

श्रोत्रेन्द्रिय स्पृष्ट शब्दको सुनती है। चक्षुरिन्द्रिय अस्पृष्ट रूपको देखती है। स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय क्रमशः बद्ध और स्पृष्ट, स्पर्श, रस और गन्धको जानती हैं ॥६८॥

सं० पंचसं० 1. १, १, १४१ । 2. १, १४२ । 3. १, १४३ । 4. १, १४४ । 5. १, १४५ ।

१. ध० भा० १ पृ० २०४ गा० १३२ । गो० जी० १५१ । २. ध० भा० १ पृ० १३७ गा० ८५ । गो० जी० १६३ । ३. मूला० गा० १०९१ । ध० भा० १ पृ० २३६ गा० १३४ । ४. ध० भा० १ पृ० २५८ गा० १४२ । गो० जी० १६६ । ५. सर्वा० १, १९ ।

* ब -जेस्से, द -जिस्सिं । + प्रतिषु 'जिह' पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]जाणइ पस्सइ भुंजइ *सेवइ फासिंदिएण एक्केण ।
कुणइ य तस्सामित्तं थावर एइंदियो तेण[1] ॥६९॥

स्थावरजीव एक स्पर्शनेन्द्रियके द्वारा ही अपने विषयको जानता है, देखता है, भोगता है, सेवन करता है और उसका स्वामित्व करता है इसलिए वह एकेन्द्रिय कहलाता है ॥६९॥

द्वीन्द्रिय जीवोंके भेद—

[2]खुल्ला वराड संखा अक्खुणह अरिट्ठगा य गंडोला ।
कुक्खिकिमि सिप्पिआई णेया बेइंदिया जीवा[2] ॥७०॥

क्षुल्लक अर्थात् छोटी कौड़ी, बड़ी कौड़ी, शंख, अक्ष, अरिष्टक, गंडोला, कुक्षि-कृमि अर्थात् पेटके कीड़े और सीप आदि द्वीन्द्रिय जीव जानना चाहिए ॥७०॥

त्रीन्द्रिय जीवोंके भेद—

[3]कुंथु पिपीलय मंकुण विच्छिय जूविंदगोव† गोम्ही य‡ ।
उत्तिंगमट्टियाई णेया तेइंदिया जीवा[3] ॥७१॥

कुंथु (चींटी) पिपीलक (चींटा) मत्कुण (खटमल) बिच्छू, जूँ, इन्द्रगोप, (वीर-बहूटी) गोम्ही (कनखजूरा), उत्तिंग (अन्नकीट) और मृद्-भक्षी दीमक आदि त्रीन्द्रिय जीव जानना चाहिए ॥७१॥

चतुरिन्द्रिय जीवोंके भेद—

[4]दंसमसगो य मक्खिय गोमच्छिय भमर कीड मक्कडया ।
सलह पयंगाईया णेया चउरिंदिया जीवा[4] ॥७२॥

दंश-मशक (डांस, मच्छर) मक्खी, मधुमक्खी, भ्रमर, कीट, मकड़ी, शलभ, पतंग आदि चतुरिन्द्रिय जीव जानना चाहिए ॥७२॥

पंचेन्द्रिय जीवोंके भेद—

[5]अंडज पोदज जरजा रसजा संसेदिमा य सम्मुच्छा ।
उब्भिंदिमोववादिम णेया पंचेंदिया जीवा[5] ॥७३॥

अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, स्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भेदिम, और औपपादिक जीवोंको पंचेन्द्रिय जानना चाहिये ॥७३॥

अतीन्द्रिय जीवोंका स्वरूप—

[6]ण य इंदियकरणजुआ अवग्गहाईहिं गाहया अत्थे ।
णेव य इंदियसुक्खा अणिंदियाणंतणाणसुहा[6] ॥७४॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, १४६ । 2. १, १४७ । 3. १, १४८ । 4. १, १४९ । 5. १, १५० । 6. १, १५१ ।

१. ध०भा० १ पृ० २३९ गा० १३५ । २. ध०भा० १ पृ० २४१ गा० १३६ । तत्रेदक् पाठः—कुक्खिकिमिसिप्पिसंखा गंडोलारिट्ठ अक्खखुल्ला य । तह य वराडय जीवा णेया बीइंदिया एदे । ३. ध०भा० १ पृ० २४३ गा० १३७ । ४. ध० भा० १ पृ० २४५ गा० १३८ । परं तत्रायं पाठः—मक्कडय-भमर-महुवर-मसय-पयंगा य सलह गोमच्छी । मच्छी सदंस कीडा णेया चउरिंदिया जीवा ॥ ५. ध० भा० १ पृ० २४६ गा० १३९ । परं पत्र पाठोऽयम्—सस्सेदिम सम्मुच्छिम उब्भेदिम ओववादिया चेव । रस पोदंड जरायुज णेया बीइंदिया जीवा ॥

* ब -सेवइं । † ब -जु विंदु । ‡ द -गुंभीया, ब -गुंभीय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो इन्द्रियोंके व्यापारसे युक्त नहीं हैं, अवग्रहादिके द्वारा भी पदार्थोंके ग्राहक नहीं हैं और जिनके इन्द्रिय-सुख भी नहीं है, ऐसे अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान और सुखवाले जीवोंको इन्द्रियातीत सिद्ध जानना चाहिये ॥७४॥

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ।

अब कायमार्गणाका वर्णन करते हुए पहले कायका स्वरूप कहते हैं—

[1]अप्पप्पवुत्तिसंचियपुग्गलपिंडं वियाण काओ त्ति।
सो जिणमयम्हि भणिओ पुढवीकायाइयो छद्धा[1] ॥७५॥

योगरूप आत्माकी प्रवृत्तिसे संचयको प्राप्त हुए औदारिकादिरूप पुद्गलपिंडको काय जानना चाहिये। वह काय जिनमतमें पृथिवीकाय आदिके भेदसे छह प्रकारका कहा गया है ॥७५॥

[2]जह भारवहो पुरिसो वहइ भरं गिण्हिऊण काउडियं।*
एमेव वहइ जीवो कम्मभरं कायकाउडियं[2] ॥७६॥

जिस प्रकार कोई भारको ढोनेवाला पुरुष कावटिकाको लेकर भारको वहन करता है, इसी प्रकार यह जीव कायरूपी कावटिकाको ग्रहण करके कर्मरूपी भारको वहन करता है ॥७६॥

पृथिवीकायिक जीवोंके भेद—

[3]पुढवी य सक्करा वालुया य उवले सिलाइ छत्तीसा।
पुढवीमया हु जीवा णिद्दिट्ठा जिणवरिंदेहिं[3] ॥७७॥

पृथिवी, शर्करा, वालुका, उपल, शिला आदिके भेदसे छत्तीस प्रकारके पृथ्वीमय अर्थात् पृथिवीकायिक जीव जिनवरेन्द्रोंने निर्दिष्ट किये हैं ॥७७॥

जलकायिक जीवोंके भेद—

[4]ओसा य हिमिय महिया हरदणु सुद्धोदयं घणुदयं च।
एदे दु आउकाया जीवा जिणसासणे दिट्ठा[4] ॥७८॥

ओस, हिमिका (बर्फ), महिका (कुहरा), हरदणु, (हरे तृण आदिके ऊपर अवस्थित जलबिन्दु) शुद्धोदक (चन्द्रकान्त, मणिसे उत्पन्न शुद्ध जल) घनोदक (स्थूल सघन जल) इत्यादि अप्कायिक (जलकायिक) जीव जिनशासनमें कहे गये हैं ॥७८॥

अग्निकायिक जीवोंके भेद—

[5]इंगाल जाल अच्ची मुम्मुर सुद्धागणी य अगणी य।
अण्णोवि एवमाई †तेउकाया समुद्दिट्ठा[5] ॥७९॥

सं० पंचसं० 1. १, १५३। 2. १, १५२। 3. १, १५५। 4. १, १५६। 5. १, १५७।

१. ध० भा० १ पृ० १३६ गा० ८६। गो०जी० १८०, परं तत्रोत्तरार्धसाम्यमेव। २. ध० भा० १ पृ० १३९ गा० ८७। गो० जी० २०१। ३. मूला० गा० २०६। आचा० नि० ७३। ध० भा० १, पृ० २७२ गा० १४९। ४. मूला० गा० २१०। आचा० नि० १०८। ध०भा० १ पृ० २७३ गा० १५०। परं तत्र पूर्वार्धे पाठोऽयम्—ओसा य हिमो धूमरि हरदणु सुद्धोदवो घणोदो य। ५. मूला०गा० २१२। आचा० नि० १६६। ध०भा० १ पृ० २७३ गा० १५२।

* प्रतिषु 'जिह' पाठः। † ब तेज०, द तेऊ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगार, ज्वाला, अर्चि (अग्निकिरण), मुर्मुर (निर्धूम और ऊपर राखसे ढँकी हुई अग्नि) शुद्ध-अग्नि (बिजली और सूर्यकान्तमणिसे उत्पन्न अग्नि) और धूमवाली अग्नि इत्यादि अन्य अनेक प्रकारके तेजस्कायिक जीव कहे गये हैं ॥७९॥

वायुकायिक जीवोंके भेद—

[1]वाउब्भामो उक्कलि❀ मंडलि गुंजा महाघण तणू य ।
एदे दु वाउकाया जीवा जिणसासणे दिट्ठा[1] ॥८०॥

सामान्य वायु, उद्भ्राम (ऊर्ध्व भ्रमणशील) वायु, उत्कलिका (अधोभ्रमणशील और तिर्यक् बहनेवाली), मण्डलिका (गोलरूपसे बहनेवाली वायु), गुंजा (गुंजायमान वायु), महावात (वृक्षादिकको गिरा देनेवाली वायु), घनवात और तनुवात इत्यादिक अनेक प्रकारके वायुकायिक जीव जिनशासनमें कहे गये हैं ॥८०॥

वनस्पतिकायिक जीवोंके भेद—

[2]मूलग्गपोरबीया कंदा तह खंध बीय बीयरुहा ।
सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य[2] ॥८१॥

मूलबीज, अग्रबीज, पर्वबीज, कन्दबीज, स्कन्धबीज, बीजरुह और सम्मूर्च्छिम, ये नाना प्रकारके प्रत्येक और अनन्तकाय (साधारण) वनस्पतिकायिक जीव कहे गये हैं ॥८१॥

[3]साहारणमाहारो साहारण †आणपाणगहणं च ।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं[3] ॥८२॥

साधारण अर्थात् अनन्तकायिक वनस्पति जीवोंका साधारण अर्थात् समान ही आहार होता है और साधारण ही श्वास-उच्छ्वासका ग्रहण होता है, इस प्रकार साधारण जीवोंका साधारण लक्षण कहा गया है ॥८२॥

[4]जत्थेक्क मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं ।
चक्कमइ जत्थ एक्को ‡तत्थक्कमणं अणंताणं[4] ॥८३॥

साधारण जीवोंमें जहाँ एक मरता है, वहाँ उसी समय अनन्त जीवोंका मरण होता है और जहाँ एक जन्म धारण करता है, वहाँ अनन्त जीवोंका जन्म होता है ॥८३॥

एयणिओयसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा ।
सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण[5] ॥८४॥

एक निगोदिया जीवके शरीरमें द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा सिद्धोंसे और सर्वव्यतीत कालसे अनन्तगुणित जीव सर्वदर्शियोंके द्वारा देखे गये हैं ॥८४॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, १५८ । 2. १, १५९ । 3. १, १०५ । 4. १, १०७ ।

१. मूला० २१३ । ध०भा० १ पृ० २७३ गा० १५२ । २. ध० भा० १ पृ० २७३ गा० १५३ । गो० जी० १८५ । ३. ध० भा० १ पृ० २७० गा० १४५ । गो० जी० १९१ । ४. ध० भा० १ पृ० २७० गा० १४६ । गो० जी० १९२ । ५. ध०, भा० १, पृ० २७० गा० १४७ । गो० जी० १९६ ।

❀ द ब -उक्किल । † ब -माण । ‡ब द -चक्कमणं तत्थ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसत्तपरिणामो ।
भावकलंकसुपउरा* णिगोयवासं ण मुंचंति[1] ॥८५॥

नित्य निगोदमें ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं, जिन्होंने त्रस जीवोंकी पर्याय आजतक भी नहीं पाई है और जो प्रचुर कलंकित भावोंसे युक्त होनेके कारण निगोद-वासको कभी भी नहीं छोड़ते ॥८५॥

त्रसजीवोंके भेद—

[2]विहिं तिहिं चऊहिं पंचहिं सहिया जे इंदिएहिं लोयम्हि ।
ते तसकाया जीवा णेया वीरोवएसेणं[2] ॥८६॥

लोकमें जो दो इन्द्रियोंसे, तीन इन्द्रियोंसे, चार इन्द्रियोंसे और पाँच इन्द्रियोंसे सहित जीव दिखाई देते हैं, उन्हें वीर भगवान्‌के उपदेशसे त्रसकायिक जीव जानना चाहिए ॥८६॥

अकायिक जीवोंका स्वरूप—

[3]जह† कंचणमग्गिमयं मुच्चइ किट्टेण कलियाए य ।
तह कायबंधमुक्का अकाइया झाणजोएण[3] ॥८७॥

जिस प्रकार अग्निमें दिया गया सुवर्ण किट्टिका (बहिरंगमल) और कालिमा (अन्तरंग-मल) इन दोनों प्रकारके मलोंसे रहित हो जाता है, उसी प्रकार ध्यानके योगसे शुद्ध हुए और कायके बन्धनसे मुक्त हुए जीव अकायिक जानना चाहिए ॥८७॥

इस प्रकार कायमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ

अब योगमार्गणाका वर्णन प्रारम्भ करते हुए पहले योगका स्वरूप कहते हैं—

[4]मणसा वाया काएण वा वि जुत्तस्स विरियपरिणामो ।
जीवस्स ‡प्पणिओगो जोगो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठो[4] ॥८८॥

मन, वचन और कायसे युक्त जीवका जो वीर्य-परिणाम अथवा प्रदेश-परिस्पन्द रूप प्रणियोग होता है, उसे योग कहते हैं, ऐसा जिनेन्द्र भगवान्‌ने कहा है ॥८८॥

मनोयोगके भेद और उनका स्वरूप—

[5]सब्भावो सच्चमणो जो जोगो सो दु सच्चमणजोगो ।
तव्विवरीओ मोसो जाणुभयं सच्चमोस त्ति[5] ॥८९॥

सद्भाव अर्थात् समीचीन पदार्थके विषय करनेवाले मनको सत्य मन कहते हैं और उसके द्वारा जो योग होता है, उसे सत्यमनोयोग कहते हैं। इससे विपरीत योगको मृषामनोयोग कहते हैं। सत्य और मृषारूप योगको सत्यमृषामनोयोग कहते हैं ॥८९॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, ११० । 2. १, १६० । 3. १, १६४ । 4. १, १६५ । 5. १६७ ।

१. ध० भा० १ पृ० २७१ गा० १४८ । गो० जी० १९६ । २. ध० भा० १ पृ० २७४ गा० १५४ । गो० जी० १९७ । ३. ध० भा० १, पृ० २६६ गा० १४४ । गो० जी० २०२ । ४. ध० भा० १ पृ०, १४० गा० ८८ । स्था० सू० पृ० १०१ । गो० जी० २०७ । ५. ध० भा० १ पृ० २८१ गा १५४ ।

* द -सपउरा । † प्रतिषु 'जिह' पाठः । ‡ब द -य णिय० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण य सच्चमोसजुत्तो जो हु मणो सो असच्चमोसमणो ।
जो जोगो तेण हवे असमच्चमोसो दु मणजोगो[1] ॥९०॥

जो मन न तो सत्य हो और न मृषा हो, उसे असत्यमृषामन कहते हैं। उस असत्यमृषा-मनके द्वारा जो योग होता है, उसे असत्यमृषामनोयोग कहते हैं ॥९०॥

वचनयोगके भेद और उनका स्वरूप—

[1]दसविहसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो ।
तव्विवरीओ मोसो जाणुभयं सच्चमोस त्ति[2] ॥९१॥
जो णेव सच्चमोसो तं जाण असच्चमोसवचिजोगो ।
अमणाणं जा भासा सण्णीणामंतणीयादी[3] ॥९२॥

दश प्रकारके सत्य वचनमें वचनवर्गणाके निमित्तसे जो योग होता है उसे सत्यवचन-योग कहते हैं। इससे विपरीत योगको मृषावचनयोग कहते हैं। सत्य और मृषा वचनरूप योगको उभयवचनयोग कहते हैं। जो वचनयोग न तो सत्यरूप हो और न मृषारूप ही हो, उसे असत्यमृषावचनयोग कहते हैं। असंज्ञी जीवोंकी जो अनक्षररूप भाषा है और संज्ञी जीवोंकी जो आमंत्रणी आदि भाषाएँ हैं, उन्हें अनुभय भाषा जानना चाहिए ॥९१-९२॥

विशेषार्थ—जनपदसत्य, सम्मतिसत्य, स्थापनासत्य, नामसत्य, रूपसत्य, प्रतीत्यसत्य, व्यवहारसत्य, संभावनासत्य, भावसत्य और उपमासत्य ये दश प्रकारके सत्य वचन होते हैं। विभिन्न देशवासी लोगोंके व्यवहारमें जो शब्द रूढ हो रहा है, उसे जनपदसत्य कहते हैं; जैसे भक्त नाम अग्निसे पके हुए चावलका है, उसे कहीं 'भात' और कहीं 'कुलु' कहते हैं। बहुतसे लोगोंकी सम्मतिसे जो सत्य माना जाय, अथवा कल्पनासे जो सत्य हो, उसे सम्मतिसत्य या संवृतिसत्य कहते हैं, जैसे पट्टरानीके सिवाय किसी सामान्य स्त्रीको भी देवी कहना। भिन्न वस्तुमें भिन्न वस्तुके समारोप करनेवाले वचनको स्थापनासत्य कहते हैं; जैसे प्रतिमाको चन्द्रप्रभ कहना। दूसरी कोई अपेक्षा न रखकर केवल व्यवहारके लिए जो नाम रखा जाता है, उसे नामसत्य कहते हैं, जैसे जिनदत्त। यद्यपि उसको जिनभगवान्‌ने नहीं दिया है तथापि व्यवहारके लिए उसे जिनदत्त कहते हैं। पुद्गलके रूपादिक अनेक गुणोंमेंसे रूपकी प्रधानतासे जो वचन कहा जाय, उसे रूपसत्य कहते हैं। जैसे किसी मनुष्यके केशोंको काला कहना, अथवा उसके शरीरमें रसादिकके रहनेपर भी उसे श्वेत, धवल, गौर आदि कहना। किसी विवक्षित पदार्थकी अपेक्षा दूसरे पदार्थके स्वरूप-वर्णनको प्रतीत्यसत्य या आपेक्षिक-सत्य कहते हैं; जैसे किसीको दीर्घ, स्थूल आदि कहना। नैगमादि नयोंकी प्रधानतासे जो वचन बोला जाय, उसे व्यवहार सत्य कहते हैं; जैसे नैगमनयकी अपेक्षासे 'भात पकाता हूँ' आदि वचन बोलना। असंभवताका परिहार करते हुए वस्तुके किसी धर्मके निरूपण करनेमें प्रवृत्त वचनको संभावनासत्य कहते हैं; जैसे इन्द्र जम्बूद्वीपको उलट-पलट कर सकता है आदि। आगम-वर्णित विधि-निषेधके अनुसार अतीन्द्रिय पदार्थोंमें संकल्पित परिणामको भाव कहते हैं, उसके आश्रित जो वचन बोले जाते हैं, उन्हें भावसत्य कहते हैं; जैसे सूखे, पके और अग्निसे तपे या नमक, मिर्च, खटाई आदिसे संमिश्रित द्रव्यको प्रासुक माना जाता है। यद्यपि प्रासुक माने जानेवाले द्रव्यके तद्रूप अन्तर्वर्ती

1. सं० पञ्चसं० १, १६८-१७१।

1. ध० भा० १ पृ० २८६ गा० १५५। गो० जी० २१८। २. ध० भा० १ पृ० २८६ गा० १५६। गो० जी० २१९। ३. ध० भा० १ पृ० २८६ गा० १५७। गो० जी० २२०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म जीवोंको इन्द्रियोंसे देख नहीं सकते, तथापि आगमप्रामाण्यसे उसकी प्रासुकताका वर्णन किया जाता है। इस प्रकारके पापवर्ज वचनको भावसत्य कहते हैं। दूसरे प्रसिद्ध-सदृश पदार्थको उपमा कहते हैं। उपमाके आश्रयसे जो वचन बोले जाते हैं, उन्हें उपमासत्य कहते हैं; जैसे पल्योपम। पल्य नाम गड्ढेका है, उसकी उपमासे पल्योपमका व्यवहार होता है। अनुभय भाषाके नौ भेद होते हैं, आमंत्रणी, आज्ञापनी, याचनी, आपृच्छनी, प्रज्ञापनी, प्रत्याख्यानी, संशयवचनी, इच्छानुलोम्नी और अनक्षरगता। 'हे देवदत्त, यहाँ आओ', इस प्रकारसे बुलानेवाले वचनोंको आमंत्रणी-भाषा कहते हैं। 'यह काम करो' ऐसे आज्ञारूप वचनोंको आज्ञापनी भाषा कहते हैं 'यह मुझे दो', ऐसे याचना-पूर्ण वचनोंको याचनी-भाषा कहते हैं। 'यह क्या है' ऐसे प्रश्नात्मक वचनोंको आपृच्छनी भाषा कहते हैं। 'मैं क्या करूँ' ऐसे सूचनात्मक वचनोंको प्रज्ञापनी भाषा कहते हैं। 'मैं इसे छोड़ता हूँ' ऐसे त्याग या परिहाररूप वचनोंको प्रत्याख्यानी भाषा कहते हैं। 'यह बकपंक्ति है या ध्वजपंक्ति' ऐसे संशयात्मक वचनोंको संशयवचनी भाषा कहते हैं। 'मुझे भी ऐसा ही होना चाहिए' ऐसी इच्छाके व्यक्त करनेवाले वचनोंको इच्छानुलोम्नी भाषा कहते हैं। द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञिपंचेन्द्रिय तकके जीवोंकी बोलीको अनक्षरगता भाषा कहते हैं। ये नौ प्रकारकी भाषा अनुभयवचनरूप हैं, क्योंकि इनके सुननेसे व्यक्त और अव्यक्त दोनों अंशोंका बोध होता है, सामान्य अंशके व्यक्त होनेसे इन्हें असत्य भी नहीं कह सकते और विशेष अंशके व्यक्त न होनेसे सत्य भी नहीं कह सकते। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि सत्य और अनुभय वचनयोगका मूल कारण भाषापर्याप्ति और शरीरनामकर्मका उदय है। तथा मृषा और अनुभयवचनयोगका मूल कारण अपना-अपना आवरणकर्म है ॥९१-९२॥

काययोगके सात भेदोंमेंसे औदारिककाययोगका स्वरूप—

[1]पुरु महमुदारुरालं *एयट्ठं तं वियाण तम्हि भवं।
ओरालिय त्ति वुत्तं ओरालियकायजोगो सो[1] ॥९३॥

पुरु, महत्, उदार और उराल ये सब शब्द एकार्थ-वाचक हैं। उदार या स्थूलमें जो उत्पन्न हो, उसे औदारिक जानना चाहिए। (यहाँ पर भव-अर्थमें ठण् प्रत्यय हुआ है।) उदारमें होने वाला जो काययोग है, वह औदारिककाययोग कहलाता है। अर्थात् मनुष्य और तिर्यंचोंके स्थूल शरीरमें जो योग होता है, उसे औदारिककाययोग कहते हैं ॥९३॥

औदारिकमिश्रकाययोगका स्वरूप—

[2]अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णो त्ति।
जो तेण संपओगो ओरालियमिस्सकायजोगो सो[2] ॥९४॥

औदारिकशरीरकी उत्पत्ति प्रारम्भ होनेके प्रथम समयसे लगाकर अन्तर्मुहूर्त तक मध्यवर्ती कालमें जो अपरिपूर्ण शरीर है, उसे औदारिकमिश्र जानना चाहिए। उसके द्वारा होनेवाला जो संप्रयोग है, वह औदारिकमिश्र काययोग कहलाता है। अर्थात् शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेसे पूर्व कार्मणशरीरकी सहायतासे उत्पन्न होनेवाले औदारिककाययोगको औदारिकमिश्रकाययोग कहते हैं ॥९४॥

1-2. सं० पञ्चसं०, १, १७३।

१. ध० भा० १ पृ० २९१ गा० १६०। गो० जी० २२९। २. ध० भा० १ पृ० २९१ गा० १६१। गो० जी० २३०, परन्तूभयत्रापि प्रथमचरणे 'ओरालिय उत्तत्थं' इति पाठः।

*ब एयट्ठ, द एयट्ठा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिककाययोगका स्वरूप—

[1]विविहगुणइड्ढिजुत्तं वेउव्वियमहव विकिरियं चेव ।
तिस्से भवं च णेयं वेउव्वियकायजोगो सो[1] ॥९५॥

विविध गुण और ऋद्धियोंसे युक्त, अथवा विशिष्ट क्रियावाले शरीरको वैक्रियिक कहते हैं। उसमें उत्पन्न होनेवाला जो योग है, उसे वैक्रियिककाययोग जानना चाहिए ॥९५॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगका स्वरूप—

[2]अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णो त्ति ।
जो तेण संपओगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो सो[2] ॥९६॥

वैक्रियिकशरीरकी उत्पत्ति प्रारम्भ होनेके प्रथम समयसे लगाकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने तक अन्तर्मुहूर्तके मध्यवर्ती अपरिपूर्ण शरीरको वैक्रियिकमिश्रकाय कहते हैं। उसके द्वारा होनेवाला जो संप्रयोग है, वह वैक्रियिकमिश्रकाययोग कहलाता है। अर्थात् देव-नारकियोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने तक कार्मणशरीरकी सहायतासे उत्पन्न होनेवाले वैक्रियिककाययोगको वैक्रियिकमिश्रकाययोग कहते हैं ॥९६॥

आहारककाययोगका स्वरूप—

[3]आहरइ अणेण मुणी सुहुमे अट्ठे सयस्स संदेहे ।
गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारकायजोगो सो[3] ॥९७॥

स्वयं सूक्ष्म अर्थमें सन्देह उत्पन्न होनेपर मुनि जिसके द्वारा केवलि-भगवान्के पास जाकर अपने सन्देहको दूर करता है, उसे आहारक काय कहते हैं। उसके द्वारा उत्पन्न होनेवाले योगको आहारककाययोग कहते हैं ॥९७॥

आहारकमिश्रकाययोगका स्वरूप—

[4]अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णो त्ति ।
जो तेण संपओगो आहारयमिस्सकायजोगो सो[4] ॥९८॥

आहारकशरीरकी उत्पत्ति प्रारम्भ होनेके प्रथम समयसे लगाकर शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने तक अन्तर्मुहूर्तके मध्यवर्ती अपरिपूर्ण शरीरको आहारकमिश्रकाय कहते हैं। उसके द्वारा जो योग उत्पन्न होता है वह आहारकमिश्रकाययोग कहलाता है ॥९८॥

कार्मणकाययोगका स्वरूप—

[5]कम्मेव य कम्मइयं कम्मभवं तेण जो दु संजोगो ।
कम्मइयकायजोगो एय-विय-तियगेसु समएसु[5] ॥९९॥

कर्मोंके समूहको, अथवा कार्मणशरीर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाले कायको कार्मणकाय कहते हैं और उसके द्वारा होनेवाले योगको कार्मणकाययोग कहते हैं। यह योग विग्रहगतिमें अथवा केवलिसमुद्घातमें एक, दो अथवा तीन समय तक होता है ॥९९॥

1-2. सं० पञ्चसं० १, १७३-१७४ । 3-4. १, १७५-१७७ । 5. १, १७८ ।

१. ध० भा० १ पृ० २९१ गा० १६२ । गो० जी० २३१ । २. ध० भा० १ पृ० २९२ गा० १६३ । गो०जी० २३३ । परं तत्र प्रथमचरणे पाठभेदः । ३. ध० भा० १ पृ० २९४ गा० १६४ । गो० जी० २३८ । ४. ध० भा० १ पृ० २९४ गा० १६५ । गो०जी० २३९, परं तत्र प्रथमचरणे पाठभेदः । ५. ध० भा० १ पृ० २९५ गा० १६६ । गो० जी० २४० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगरहित अयोगिजिनका स्वरूप—

[1]जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपापसंजणया ।
ते होंति अजोइजिणा अणोवमाणंतगुणकलिया[1] ॥१००॥

जिनके पुण्य और पापके संजनक अर्थात् उत्पन्न करनेवाले शुभ और अशुभ योग नहीं होते हैं, वे अयोगिजिन कहलाते हैं, जो कि अनुपम और अनन्त गुणोंसे सहित होते हैं ॥१००॥

इस प्रकार योगमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब वेदमार्गणाका निरूपण करते हुए पहले वेदका स्वरूप कहते हैं—

[2]वेदस्सुदीरणाए बालत्तं पुण णियच्छदे बहुसो ।
इत्थी पुरिस णउंसय वेयंति तदो हवदि वेदो[2] ॥१०१॥

वेदकर्मकी उदीरणा होनेपर यह जीव नाना प्रकारके बालभाव अर्थात् चांचल्यको प्राप्त होता है और स्त्रीभाव, पुरुषभाव एवं नपुंसक भावका वेदन करता है, अतएव वेदकर्मके उदयसे होनेवाले भावको वेद कहते हैं ॥१०१॥

वेदके भेद और वेद-वैषम्यका निरूपण—

[3]तिव्वेद एव सव्वे वि जीवा दिट्ठा हु दव्व-भावादो ।
ते चेव हु विवरीया संभवंति जहाकमं सव्वे ॥१०२॥

द्रव्य और भावकी अपेक्षा सर्व ही जीव तीनों वेदवाले दिखाई देते हैं और इसी कारण वे सर्व ही यथाक्रमसे विपरीत वेदवाले भी सम्भव हैं ॥१०२॥

भाववेद और द्रव्यवेदका कारण—

[4]उदयादु णोकसायाण भाववेदो य होइ जंतूणं ।
जोणी य लिंगमाई णामोदय दव्ववेदो दु ॥१०३॥

नोकषायोंके उदयसे जीवोंके भाववेद होता है। तथा योनि, लिंग आदि द्रव्यवेद नामकर्मके उदयसे होता है ॥१०३॥

वेद-वैषम्यका कारण—

[5]इत्थी पुरिस णउंसय वेया खलु दव्व-भावदो होंति ।
ते चेव य विवरीया हवंति सव्वे जहाकमसो ॥१०४॥

स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये तीनों ही वेद निश्चयसे द्रव्य और भावकी अपेक्षा दो प्रकारके होते हैं और वे सर्व ही विभिन्न नोकषायोंके उदय होनेपर यथाक्रमसे विपरीत भी परिणत होते हैं ॥१०४॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, १८० । 2. १, १८६–१८७ । 3. १, १९१–१९२ । 4. १, १८८–१८९ । 5. १, १९३–१९४ । परन्त्वत्र मतभेदो दृश्यते ।

१. ध० भा० १ पृ० २८० गा० १५३ । गो० जी० २४२ । २. ध० भा० १ पृ० १४१ गा० ८९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीवेदका स्वरूप—

[1]छादयदि सयं दोसेण जदो छादयदि परं पि दोसेण ।
छादणसीला णियदं तम्हा सा *वण्णिया इत्थी[1] ॥१०५॥

जो मिथ्यात्व आदि दोषसे अपने आपको आच्छादित करे और मधुर-भाषणादिके द्वारा दूसरेको भी आच्छादित करे, वह निश्चयसे यतः आच्छादन स्वभाववाली है अतः 'स्त्री' इस नामसे वर्णित की गई है ॥१०५॥

पुरुषवेदका स्वरूप—

[2]पुरु गुण भोगे सेदे करेदि लोयम्हि पुरुगुणं कम्मं ।
पुरु +उत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो[2] ॥१०६॥

जो उत्तम गुण और उत्कृष्ट भोगमें शयन करता है, लोकमें उत्तम गुण और कर्मको करता है, अथवा यतः जो स्वयं उत्तम है, अतः वह 'पुरुष' इस नामसे वर्णित किया गया है ॥१०६॥

नपुंसकवेदका स्वरूप—

[3]णेवित्थी ण य पुरिसो णउंसओ उभयलिंगवदिरित्तो ।
इट्टावग्गिसमाणो वेदणगरुओ कलुसचित्तो[3] ॥१०७॥

जो भावसे न स्त्रीरूप है और न पुरुषरूप है, तथा द्रव्यकी अपेक्षा जो स्त्रीलिंग और पुरुषलिंगसे रहित है; ईंटोंको पकानेवाली अग्निके समान वेदकी प्रबल वेदनासे युक्त है, और सदा कलुषित-चित्त है, उसे नपुंसकवेद जानना चाहिए ॥१०७॥

अपगतवेदी जीवोंका स्वरूप—

[4]करिसतणेट्टावग्गीसरिसपरिणामवेदणुम्मुक्का ।
अवगयवेदा जीवा सयसंभव×णंतवरसोक्खा[4] ॥१०८॥

जो कारीष अर्थात् कंडेकी अग्नि, तृणकी अग्नि और इष्टपाककी अग्निके समान क्रमशः स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदरूप परिणामोंके वेदनसे उन्मुक्त हैं और अपनी आत्मामें उत्पन्न हुए श्रेष्ठ अनन्त सुखके धारक या भोक्ता हैं, वे जीव अपगतवेदी कहलाते हैं ॥१०८॥

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कषायमार्गणा, कषायका स्वरूप—

[5]सुह-दुक्खं बहुसस्सं कम्मक्खित्तं कसेइ जीवस्स ।
संसारगदी †मेरं तेण कसाओ त्ति णं बिंति[5] ॥१०९॥

जो क्रोधादिक जीवके सुख-दुःखरूप बहुत प्रकारके धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूप खेतको कर्षण करते हैं, अर्थात् जोतते हैं और जिनके लिए संसारकी चारों गतियाँ मर्यादा या मेंढ़-रूप हैं, इसलिए उन्हें कषाय कहते हैं ॥१०९॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, १९९ । 2. १, २०० । 3. १, २०१ । 4. १, २०२ । 5. १, २०३ ।

१. ध० भा० १ पृ० ३४१ गा० १७० । गो० जी० २७३ । २. ध० भा० १ पृ० ३४१ गा० १७१ । गो० जी० २७२ । ३. ध० भा० १ पृ० ३४२ गा० १७२ । गो० जी० २७४ । ४. ध० भा० १, पृ० ३४२ गा० १७३ । गो० जी० २७५ । ५. ध० भा० १, पृ० १४२ गा० ९० । गो० जी० २८१ ।

* ब वन्निया । + द ब पुरउत्तिमो । † द -सारं । × द ब -मणंत ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषायोंके भेद और उनके कार्य—

[1]सम्मत्त-देससंजम-संसुद्धीघाइकसाइं पढमाइं ।
तेसिं तु भवे नासे सद्धाई चउहं† उप्पत्ती ॥११०॥

प्रथमादि अर्थात् अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन कषाय क्रमशः सम्यक्त्व, देशसंयम, संकलसंयम और पूर्ण शुद्धिरूप यथाख्यातचारित्रका घात करते हैं। किन्तु उनके नाश होनेपर आत्मामें श्रद्धा अर्थात् सम्यक्त्व आदिक चारों गुणोंकी उत्पत्ति होती है ॥११०॥

क्रोधकषायकी जातियाँ और उनका फल—

[2]सिलभेय पुढविभेया धूलीराई य उदयराइसमा ।
‡णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु कोहवसा ॥१११॥

अनन्तानुबन्धी क्रोध शिलाभेदके समान है, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध पृथ्वीभेदके समान है, प्रत्याख्यानावरण क्रोध धूलिराजिके समान है और संज्वलनक्रोध उदक अर्थात् जल-राजिके समान है। इन चारों जातिके क्रोधके वशसे जीव क्रमशः नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिको प्राप्त होते हैं ॥१११॥

मानकषायकी जातियाँ और उनका फल—

[3]सेलसमो अट्ठिसमो दारुसमो तह य जाण वेत्तसमो ।
×णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु माणवसा ॥११२॥

अनन्तानुबन्धी मान शैल-समान है, अप्रत्याख्यानावरण मान अस्थि-समान है, प्रत्याख्यानावरण मान दारु अर्थात् काष्ठके समान है और संज्वलन मान वेत्र (वेंत) के समान है। इन चारों जातिके मानके वशसे जीव क्रमशः नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवत्वको प्राप्त होते हैं ॥११२॥

मायाकषायकी जातियाँ और उनका फल—

[4]वंसीमूलं मेसस्स सिंग गोमुत्तियं च खोरुप्पं ।
+णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु मायवसा ॥११३॥

अनन्तानुबन्धी माया बाँसकी जड़के समान है, अप्रत्याख्यानावरण माया मेषाके सींगके समान है, प्रत्याख्यानावरण माया गोमूत्रके समान है और संज्वलन माया खुरपाके समान है। इन चारों ही जातिके मायाके वशसे जीव क्रमशः नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवत्वको प्राप्त होते हैं ॥११३॥

लोभकषायकी जातियाँ और उनका फल—

[5]किमिराय चक्कमल कद्दमो य तह चेय÷ जाण हारिद्दं ।
*णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु लोहवसा ॥११४॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, २०४–२०५ । 2. १, २०६ । 3. १, २०७ । 4. १, २०८ । 5. १, २०९ ।
† द ब -चउ हुं । ‡ ब णिर । × ब णिर । + ब णिर । ÷ ब चेय । * ब णिर ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तानुबन्धीलोभ किरमिजी रंगके समान है, अप्रत्याख्यानावरणलोभ चक्र अर्थात् गाड़ीके पहियेके मलके समान है, प्रत्याख्यानावरणलोभ कर्दम अर्थात् कीचड़के समान है और संज्वलन लोभको हल्दीके रंगके समान जानना चाहिए। इन चारों ही जातिके लोभके वशसे जीव क्रमशः नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवत्वको प्राप्त होते हैं ॥११४॥

चारों जातिके कषायोंके पृथक्-पृथक् कार्योंका वर्णन—

[1]पढमो दंसणघाई विदिओ तह घाइ देसविरइ त्ति।
तइओ संजमघाई चउथो जहखायघाईया ॥११५॥

प्रथम अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यग्दर्शनका घात करती है, द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण कषाय देशविरतिकी घातक है। तृतीय प्रत्याख्यानावरण कषाय सकलसंयमकी घातक है और चतुर्थ संज्वलन कषाय यथाख्यातचारित्रकी घातक है ॥११५॥

अकषाय जीवोंका वर्णन—

[2]अप्पपरोभयबाहणबंधासंजमणिमित्तकोहाई।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा[1] ॥११६॥

जिनके अपने आपको, परको और उभयको बाधा देने, बन्ध करने और असंयमके आचरणमें निमित्तभूत क्रोधादि कषाय नहीं हैं, तथा जो बाह्य और आभ्यन्तर मलसे रहित हैं, ऐसे जीवोंको अकषाय जानना चाहिए ॥११६॥

इस प्रकार कषायमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ।

ज्ञानमार्गणा, ज्ञानका स्वरूप—

[3]जाणइ तिकालसहिए* दव्व-गुण-पज्जए बहुब्भेए।
पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाण त्ति णं विंति[2] ॥११७॥

जिसके द्वारा जीव त्रिकाल-विषयक सर्व द्रव्य, उनके समस्त गुण और उनकी बहुत भेदवाली पर्यायोंको प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे जानता है, उसे निश्चयसे ज्ञानी जन ज्ञान कहते हैं ॥११७॥

मत्यज्ञानका स्वरूप—

[4]विस-जंत-कूड-पंजर-बंधादिसु‡ अणुवदेसकरणेण।
जा खलु पवत्तइ मई मइअण्णाण त्ति णं विंति[3] ॥११८॥

परोपदेशके विना जो विष, यन्त्र, कूट, पंजर तथा बन्ध आदिके विषयमें बुद्धि प्रवृत्त होती है, उसे ज्ञानी जन मत्यज्ञान कहते हैं ॥११८॥

---

1. सं० पञ्चसं १, २०५। 2. १, २१२। 3. १, २१३। 4. १, २३१ पूर्वार्ध।

१. ध० भा० १ पृ० ३५४, गा० १७८। गो० जी० २८८। २. ध० भा० १ पृ० १४४, गा० ९१। गो० जी० २९८। ३. ध० भा० १ पृ० ३५८, गा० १७९। गो० जी० ३०२।

* 'अणेण जीवो' इति मूलप्रतौ पाठः। † द त्तणं, ध त्तण। ‡ प्रतिषु 'बद्धादिसु' इति पाठः।

श्रुताज्ञानका स्वरूप—

[1]आभीयमासुरक्खा भारह-रामायणादि-उवएसा ।
तुच्छा असाहणीया सुयअण्णाण त्ति णं* विंति[1] ॥११९॥

चौरशास्त्र, हिंसाशास्त्र तथा महाभारत, रामायण आदिके तुच्छ और परमार्थ-शून्य होनेसे साधन करनेके अयोग्य उपदेशोंको ऋषिगण श्रुताज्ञान कहते हैं ॥११९॥

कुअवधि या विभंगज्ञानका स्वरूप—

[2]विवरीयओहिणाणं खओवसमियं च कम्मबीजं च ।
वेभंगो त्ति य वुच्चइ समत्तणाणीहिं समयम्हि[2] ॥१२०॥

जो क्षायोपशमिक अवधिज्ञान मिथ्यात्वसे संयुक्त होनेके कारण विपरीत स्वरूप है, और नवीन कर्मका बीज है, उसे समाप्त अर्थात् जिनका ज्ञान सम्पूर्णताको प्राप्त है ऐसे ज्ञानियोंके द्वारा उपदिष्ट आगममें कुअवधि या विभंगज्ञान कहा है ॥१२०॥

आभिनिबोधिक या मतिज्ञानका स्वरूप—

[3]अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहियमणिंदि-इंदियजं ।
बहुउग्गहाइणा खलु कयछत्तीसा तिसयभेयं[3] ॥१२१॥

अनिन्द्रिय अर्थात् मन और इन्द्रियोंकी सहायतासे उत्पन्न होनेवाले, अभिमुख और नियमित पदार्थके बोधको आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं । उसके बहु आदिक बारह प्रकारके पदार्थोंकी और अवग्रह आदिकी अपेक्षा तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं ॥१२१॥

श्रुतज्ञानका स्वरूप—

[4]अत्थाओ अत्थंतरउवलंभे तं भणंति सुयणाणं ।
आहिणिबोहियपुव्वं णियमेण य सद्दयं मूलं[4] ॥१२२॥

मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थके अवलम्बनसे तत्सम्बन्धी दूसरे पदार्थका जो उपलम्भ अर्थात् ज्ञान होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान नियमसे आभिनिबोधिकज्ञान-पूर्वक होता है । (इसके अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक अथवा शब्दजन्य और लिंगजन्य, इस प्रकार दो भेद हैं) । उनमें अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका मूल कारण शब्द-समूह है ॥१२२॥

अवधिज्ञानका स्वरूप—

[5]अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णियं समए ।
भव-गुणपच्चयविहियं तमोहिणाण त्ति †णं विंति[5] ॥१२३॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, २३१ उत्तरार्ध । 2. १, २३२ । 3. १, २१४ । 4. १, २१७-२१८ । 5. १, २२०–२२१ ।

१. ध० भा० १ पृ० ३५८, गा० १८० । गो० जी० ३०३ । २. ध० भा० १ पृ० ३५९, गा० १८१ । गो० जी० ३०४ । ३. ध० भा० १ पृ० ३५९, गा० १८२ । गो० जी० ३०५, परं तत्रोत्तरार्धे 'अवग्गहईहावायाधारणगा होंति पत्तेयं' इति पाठः । ४. ध० भा० १ पृ० ३५९, गा० १८३ । गो० जी० ३१४ । ५. ध० भा० १ पृ० ३५९, गा० १८४ । गो० जी० ३६९ ।

* द -णत्तणं । † द -णाणेत्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा अवधि अर्थात् सीमासे युक्त अपने विषयभूत पदार्थको जाने, उसे अवधिज्ञान कहते हैं, सीमासे युक्त जाननेके कारण परमागममें इसे सीमाज्ञान कहा है। यह भवप्रत्यय और गुणप्रत्ययके द्वारा उत्पन्न होता है, ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं ॥१२३॥

अवधिज्ञानके भेदोंका वर्णन—

[1]अणुगो अणाणुगामी× तेत्तियमेत्तो य अप्पबहुगोऽयं।
वड्ढइ कमेण हीयइ ओही जाणाहि छब्भेओ ॥१२४॥

अनुगामी, अननुगामी, तावन्मात्र अर्थात् अवस्थित, अल्प-बहुत अर्थात् अनवस्थित, क्रमसे बढ़नेवाला अर्थात् वर्द्धमान और क्रमसे हीन होनेवाला अर्थात् हीयमान, इस प्रकार अवधिज्ञान छह भेदरूप जानना चाहिए ॥१२४॥

मनःपर्ययज्ञानका स्वरूप—

[2]चिंतियमचिंतियं* वा अद्धं‡ चिंतिय अणेयभेयगयं।
मणपज्जव त्ति णाणं जं जाणइ तं तु णरलोए[1] ॥१२५॥

जो चिन्तित अर्थात् भूतकालमें विचारित, अचिन्तित अर्थात् अतीतमें अविचारित किन्तु भविष्यमें विचार्यमाण, और अर्धचिन्तित इत्यादि अनेक भेदरूप दूसरेके मनमें अवस्थित पदार्थको नरलोक अर्थात् पैंतालीस लाख योजनरूप मनुष्यक्षेत्रमें जानता है, वह मनःपर्ययज्ञान कहलाता है ॥१२५॥

केवलज्ञानका स्वरूप—

[3]संपुण्णं तु समग्गं केवलमसपत्त† सव्वभावगयं।
लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मुणेयव्वं[2] ॥१२६॥

जो जीवद्रव्यके शक्ति-गत ज्ञानके सर्व अविभागप्रतिच्छेदोंके व्यक्त हो जानेसे सम्पूर्ण है, ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्मके सर्वथा क्षय हो जानेसे अप्रतिहतशक्ति है, अतएव समग्र है, जो केवल अर्थात् इन्द्रिय और मनकी सहायतासे रहित है, असपत्न अर्थात् प्रतिपक्षसे रहित है, युगपत् सर्व भावोंको जाननेवाला है, लोक और अलोकमें अज्ञानरूप तिमिर (अन्धकार)से रहित है, अर्थात् सर्व-व्यापक और सर्व-ज्ञायक है, उसे केवलज्ञान जानना चाहिए ॥१२६॥

इस प्रकार ज्ञानमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ।

संयममार्गणा, द्रव्यसंयमका स्वरूप—

[4]वय-समिदि-कसायाणं दंडाणं इंदियाण पंचण्हं।
धारण-पालण-णिग्गह-चाय-जओ संजमो भणिओ[3] ॥१२७॥

अहिंसादि पाँच महाव्रतोंका धारण करना, ईर्यादि पाँच समितियोंका पालन करना, क्रोधादि चारों कषायोंका निग्रह करना, मन, वचन, कायरूप तीन दण्डोंका त्याग करना और पाँचों इन्द्रियोंका जीतना सो द्रव्यसंयम कहा गया है ॥१२७॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, २२२। 2. १, २२७–२२८। 3. १, २२९। 4. १, २३८।

१. ध० भा० १ पृ० ३६०, गा० १८५। गो० जी० ४३७। २. ध० भा० १ पृ० ३६०, गा० १८६। गो० जी० ४५१। ३. ध० भा० १ पृ० १४५, गा० ९२। गो० जी० ४६४।

× द ब -णाणुगामी य ‡ अत्थं चिंता। † ब -वक्ष, द -वण्ण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावसंयमका स्वरूप—

सगवण्ण जीवहिंसा अट्ठावीसिंदियत्थदोसा य ।
तेहिंतो जो विरओ* भावो सो संजमो भणिओ ॥१२८॥

पहले जीवसमासोंमें जो सत्तावन प्रकारके जीव बता आये हैं, उनकी हिंसासे उपरत होना, तथा अट्ठाईस प्रकारके इन्द्रिय-विषयोंके दोषोंसे विरत होना, सो भावसंयम कहा गया है ॥१२८॥

सामायिकसंयमका स्वरूप—

[1]संगहियसयलसंजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं ।
जीवो समुव्वहंतो सामाइयसंजदो होइ[1] ॥१२९॥

जिसमें सकल संयम संगृहीत हैं, ऐसे सर्व सावद्यके त्यागरूप एकमात्र अनुत्तर एवं दुरवगम्य अभेद-संयमको धारण करना सो सामायिकसंयम है, और उसे धारण करने वाला सामायिक-संयत कहलाता है ॥१२९॥

छेदोपस्थापनासंयमका स्वरूप—

[2]छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।
पंचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावगो जीवो[2] ॥१३०॥

सावद्य व्यापाररूप पुरानी पर्यायको छेद कर अहिंसादि पाँच प्रकारके यमरूप धर्ममें अपनी आत्माको स्थापित करना छेदोपस्थापनासंयम है, और उसका धारक जीव छेदोपस्थापक-संयत कहलाता है ॥१३०॥

परिहारविशुद्धिसंयमका स्वरूप—

[3]पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सया वि जो हु सावज्जं ।
पंचजमेयजमो वा परिहारयसंजदो† साहू[3] ॥१३१॥

पाँच समिति और तीन गुप्तियोंसे युक्त होकर सदा ही सर्व सावद्य योगका परिहार करना तथा पाँच यमरूप भेद-संयम (छेदोपस्थापना) को, अथवा एक यमरूप अभेद-संयम (सामायिक) को धारण करना परिहार विशुद्धि संयम है, और उसका धारक साधु परिहार-विशुद्धिसंयत कहलाता है ॥१३१॥

सूक्ष्मसाम्परायसंयमका स्वरूप—

[4]अणुलोहं वेयंतो जीओ उवसामगो व खवगो वा ।
सो सुहुमसंपराओ जहखाएणूणओ किंचि[4] ॥१३२॥

मोहकर्मका उपशमन या क्षपण करते हुए सूक्ष्म लोभका वेदन करना सूक्ष्मसाम्परायसंयम है और उसका धारक सूक्ष्मसाम्परायसंयत कहलाता है। यह संयम यथाख्यातसंयमसे कुछ ही कम होता है। (क्योंकि सूक्ष्मसाम्परायसंयम दशवें गुणस्थानमें होता है और यथाख्यातसंयम ग्यारहवें गुणस्थानसे प्रारम्भ होता है) ॥१३२॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, २३६ । 2. १, २४० । 3. १, २४१ । 4. १, २४२ ।

१. ध० भा० १ पृ० ३७२, गा० १८७ । गो० जी० ४६६ । २. ध० भा० १ पृ० ३७२, गा १८८ । गो० जी० ४७० । ३. ध० भा० १ पृ० ३७२, गा० १८९ । गो० जी० ४७१ । ४. ध० भा० १ पृ० ३७३, गा० १९० । गो० जी० ४७३ ।

* द -विरउ । † द ब -संजमो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथाख्यातसंयमका स्वरूप—

[1]उवसंते खीणे वा असुहे कम्मम्हि मोहणीयम्हि ।
छदुमत्थो व जिणो वा *जहखाओ संजओ साहू[1] ॥१३३॥

अशुभ (पाप) रूप मोहनीय कर्मके उपशान्त अथवा क्षीण हो जानेपर जो वीतराग संयम होता है, उसे यथाख्यातसंयम कहते हैं। उसके धारक ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ साधु और तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली जिन यथाख्यातसंयत कहलाते हैं ॥१३३॥

संयमासंयमका सामान्य स्वरूप—

[2]जो ण विरदो दु भावो थावरवह-इंदियत्थदोसाओ ।
तसवहविरओ ‡सोच्चिय संजमासंजमो दिट्ठो ॥१३४॥

भावोंसे स्थावर-वध और पाँचों इन्द्रियोंके विषय-सम्बन्धी दोषोंसे विरत नहीं होने, किन्तु त्रस-वधसे विरत होनेको संयमासंयम कहते हैं और उनका धारक जीव नियमसे संयमासंयमी कहा गया है ॥१३४॥

संयमासंयमका विशेष स्वरूप—

पंच-तिय-चउविहेहिं अणु-गुण-सिक्खावएहिं संजुत्ता ।
वुच्चंति देसविरया सम्माइट्ठी झडियकम्मा[2] ॥१३५॥

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंसे संयुक्त होना विशिष्ट संयमासंयम है। उसके धारक और असंख्यातगुणश्रेणीरूप निर्जराके द्वारा कर्मोंके झड़ानेवाले ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव देशविरत या संयतासंयत कहलाते हैं ॥१३५॥

देशविरतके भेद—

दंसण-वय-सामाइय पोसह सच्चित्त राइभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदेदे[3] ॥१३६॥

दार्शनिक, व्रतिक, सामयिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत ये देशविरतके ग्यारह भेद होते हैं ॥१३६॥

असंयमका स्वरूप—

[3]जीवा चउदसभेया इंदियविसया य अट्ठवीसं तु ।
जे तेसु णेव विरया असंजया ते मुणेयव्वा[4] ॥१३७॥

जीव चौदह भेद रूप हैं और इन्द्रियोंके विषय अट्ठाईस हैं। जीवघातसे और इन्द्रिय-विषयोंसे विरत नहीं होनेको असंयम कहते हैं। जो इनसे विरत नहीं हैं, उन्हें असंयत जानना चाहिए ॥१३७॥

इस प्रकार संयममार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ

---

1. सं० पञ्चसं० १, २४३ । 2. १, २४६ । 3. १, २४७–२४८ ।

१. ध० भा० १ पृ० ३७३, गा० १९१ । गो० जी० ४७४ । परन्तूभयत्रापि 'सो दु' तथा 'सो हु' इति पाठः । २. ध० भा० १ पृ० ३७३, गा० १९२ । गो० जी० ४७५ । ३. ध० भा० १ पृ० ३७३, गा० १९३ । गो० जी० ४७६ । ४. ध० भा० १ पृ० ३७३, गा० १९४ । गो० जी० ४७७ ।

* द -खाउ । ‡ ब सुच्चिय, द सुच्चिय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनमार्गणा, दर्शनका स्वरूप—

[1]जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टु आयारं।
अविसेसिऊण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समए[1] ॥१३८॥

सामान्य-विशेषात्मक पदार्थोंके आकार-विशेषको ग्रहण न करके जो केवल निर्विकल्परूपसे अंशका या स्वरूपमात्रका सामान्य ग्रहण होता है, उसे परमागममें दर्शन कहा गया है ॥१३८॥

चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनका स्वरूप—

[2]चक्खूण जं पयासइ दीसइ तं चक्खुदंसणं विंति।
सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खु त्ति[2] ॥१३९॥

• चक्षुरिन्द्रियके द्वारा जो पदार्थका सामान्य अंश प्रकाशित होता है, अथवा दिखाई देता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। शेष चार इन्द्रियोंसे और मनसे जो सामान्य-प्रतिभास होता है, उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिए ॥१३९॥

अवधिदर्शनका स्वरूप—

[3]परमाणुआदियाइं अंतिमखंध *त्ति मुत्तदव्वाइं।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइं पच्चक्खं[3] ॥१४०॥

सर्व-लघु परमाणुसे आदि लेकर सर्व-महान् अन्तिम स्कन्ध तक जितने मूर्त्त द्रव्य हैं, उन्हें जो प्रत्यक्ष देखता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं ॥१४०॥

केवलदर्शनका स्वरूप—

[4]बहुविह बहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्हि खेत्तम्हि।
लोयालोयवितिमिरो सो† केवलदंसणुज्जोवो[4] ॥१४१॥

बहुत जातिके और बहुत प्रकारके चन्द्र-सूर्यादिके उद्योत (प्रकाश) तो परिमित क्षेत्रमें ही पाये जाते हैं, अर्थात् वे थोड़ेसे ही पदार्थोंको अल्प परिमाणमें प्रकाशित करते हैं। किन्तु जो केवलदर्शनरूप उद्योत है, वह लोकको और अलोकको भी प्रकाशित करता है, अर्थात् सर्व चराचर जगत्‌को स्पष्ट देखता है ॥१४१॥

इस प्रकार दर्शनमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ।

लेश्यामार्गणा, लेश्याका स्वरूप—

लिप्पइ अप्पीकीरइ एयाए णियय पुण्ण पावं च।
जीवो त्ति होइ लेसा लेसागुणजाणयक्खाया[5] ॥१४२॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, २४६। 2. १, २५०। 3. १, २५१ (पूर्वार्ध)। 4. १, २५१ (उत्तरार्ध)।

१. ध० भा० १ पृ० १४६, गा० ९३। गो० जी० ४८१। २. ध० भा० १ पृ० ३८२, गा० १९५। गो० जी० ४८३। ३. ध० भा० १ पृ० ३८२, गा० १९६। गो० जी० ४८४। ४. ध० भा० १ पृ० ३८२, गा० १९७। गो० जी० ४८५। ५. ध० भा० १ पृ० १५०, गा० ९४। गो० जी० ४८८, परं तत्र द्वितीय-चरणे 'णियअपुण्णपुण्णं च' इति पाठः।

* ब त्त। † द तं।

जिसके द्वारा जीव पुण्य और पापसे अपने आपको लिप्त करता है अर्थात् उनके आधीन होता है, ऐसी कषायानुरंजित योगकी प्रवृत्तिको लेश्याके गुण-स्वरूपादिके जाननेवाले गणधरोंने लेश्या कहा है ॥१४२॥

लेश्याके स्वरूपका दृष्टान्त-द्वारा स्पष्टीकरण—

जह× गेरुवेण कुड्डो लिप्पइ लेवेण आमपिट्ठेण ।
तह परिणामो लिप्पइ सुहासुहा य त्ति लेवेण ॥१४३॥

जिस प्रकार आमपिष्ट (दालकी पिट्ठी या तैलादि) से मिश्रित गेरू मिट्टीके लेप-द्वारा भित्ती (दीवाल) लीपी या रंगी जाती है, उसी प्रकार शुभ और अशुभ भावरूप लेपके द्वारा जो आत्माका परिणाम लिप्त किया जाता है उसे लेश्या कहते हैं ॥१४३॥

कृष्णलेश्याका लक्षण—

[1]चंडो ण मुयइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ ।
दुट्ठो ण य एइ वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स[1] ॥१४४॥

जो प्रचण्ड-स्वभावी हो, वैरको न छोड़े, भंडनशील या कलहस्वभावी हो, धर्म और दयासे रहित हो, दुष्ट हो, और जो किसीके भी वशमें न आवे, ये सब कृष्णलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥१४४॥

नीललेश्याका लक्षण—

[2]मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य ।
माणी माई य तहा आलस्सो चेव* भेज्जो† य ॥१४५॥
णिद्दावंचणबहुलो धण-धण्णे होइ तिव्वसण्णाओ ।
लक्खणमेयं भणियं समासओ णीललेसस्स[2] ॥१४६॥

जो कार्य करनेमें मन्द-उद्यमी एवं स्वच्छन्द हो, बुद्धि-विहीन हो, कला और चातुर्यरूप विशेष ज्ञानसे रहित हो, इन्द्रियोंके विषयोंका लोलुपी हो, मानी हो, मायाचारी हो, आलसी हो, अभेद्य-स्वभावी हो, अर्थात् दूसरे लोग जिसके अभिप्रायको प्रयत्न करने पर भी न जान सकें, बहुत निद्रालु हो, पर-वंचनमें अतिदक्ष हो, और धन-धान्यके संग्रहादिमें तीव्र लालसावाला हो, ये सब संक्षेपसे नीललेश्यावालेके लक्षण कहे गये हैं ॥१४५-१४६॥

कापोतलेश्याका लक्षण—

[3]रूसइ णिंदइ अण्णे दूसणबहुलो य सोय-भयबहुलो ।
असुवइ परिभवइ परं ‡पसंसइ य अप्पयं बहुसो ॥१४७॥
ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं पिव परं पि मण्णंतो ।
तूसइ अइथुव्वंतो ण य जाणइ हाणि-वड्ढीओ[3] ॥१४८॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, २७२-२७३ । 2. १, २७४-२७५ । 3. १, २७६-२७७ ।

१. ध० भा० १ पृ० ३८८, गा० २०० । गो० जी० ५०८ । २. ध० भा० १ पृ० ३८८-३८९, गा० २०१-२०२ । गो० जी० ५०९-५१० । ३. ध० भा० १ पृ० ३८९, गा० २०३-२०४ । गो० जी० ५११-५१२ ।

× द ब जिह । * ब -चेव । † 'भीरु' इति मूलपाठः । ‡ द -पासं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]मरणं पत्थेइ रणे देइ सु बहुयं पि थुव्वमाणो हु ।
ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स[1] ॥१४६॥

जो दूसरोंके ऊपर रोष करता हो, दूसरोंकी निन्दा करता हो, दूषण-बहुल हो, शोक-बहुल हो, भय-बहुल हो, दूसरेसे ईर्ष्या करता हो, परका पराभव करता हो, नानाप्रकारसे अपनी प्रशंसा करता हो, परका विश्वास न करता हो, अपने समान दूसरेको भी मानता हो, स्तुति किये जाने पर अति संतुष्ट हो, अपनी हानि और वृद्धि [लाभ] को न जानता हो, रणमें मरणका इच्छुक हो, स्तुति या प्रशंसा किये जाने पर बहुत धनादिक देवे और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यको कुछ भी न गिनता हो; ये सब कापोतलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥१४७–१४६॥

तेजोलेश्याका लक्षण—

[2]जाणइ कज्जाकज्जं सेयासेयं च सव्वसमपासी ।
दय-दाणरदो य विदू लक्खणमेयं तु तेउस्स[2] ॥१५०॥

जो अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य और सेव्य-असेव्यको जानता हो, सबमें समदर्शी हो, दया और दानमें रत हो, मृदु-स्वभावी और ज्ञानी हो, ये सब तेजोलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥१५०॥

पद्मलेश्याका लक्षण—

[3]चाई भद्दो चोक्खो उज्जुयकम्मो य खमइ बहुयं पि ।
साहुगुणपूयणिरओ लक्खणमेयं तु पउमस्स[3] ॥१५१॥

जो त्यागी हो, भद्र (भला) हो, चोखा (सच्चा) हो, उत्तम कार्य करनेवाला हो, बहुत भी अपराध या हानि होने पर क्षमा कर दे, साधुजनोंके गुणोंकी पूजनमें निरत हो, ये सब पद्मलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥१५१॥

शुक्ललेश्याका लक्षण—

[4]ण कुणेइं पक्खवायं ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसु ।
णत्थि य राओ दोसो णेहो वि हु सुक्कलेसस्स[4] ॥१५२॥

जो पक्षपात न करता हो, और न निदान करता हो; सबमें समान व्यवहार करता हो, जिसे परमें राग न हो, द्वेष न हो और स्नेह भी न हो; ये सब शुक्ललेश्यावालेके लक्षण हैं ॥१५२॥

अलेश्य जीवोंका स्वरूप—

[5]किण्हाइलेसरहिया संसारविणिग्गया अणंतसुहा ।
सिद्धिपुरीसंपत्ता अलेसिया ते मुणेयव्वा[5] ॥१५३॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, २७८ । 2. १, २७६ । 3. १, २८० । 4. १, २८१ । 5. १, २८३ ।

१. ध० भा० १ पृ० ३८६, गा० २०५ । गो० जी० ५१३ । २. ध० भा० १ पृ० ३८६, गा० २०६ । गो० जी० ५१४ । परन्तूभयत्रापि 'मिदू' इति पाठः । ३. ध० भा० १ पृ० ३६०, गा० २०७ । गो० जी० ५१५ । ४. ध० भा० १ पृ० ३६०, गा० २०८ । गो० जी० ५१६ । ५. धवला, भा० १ पृ० ३६०, गा० २०६ । गो० जी० ५५५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो कृष्णादि छहों लेश्याओंसे रहित हैं, पंच परिवर्त्तनरूप संसारसे विनिर्गत हैं, अनन्त-सुखी हैं, और आत्मोपलब्धिरूप सिद्धिपुरीको संप्राप्त हैं, ऐसे अयोगिकेवली और सिद्ध जीवोंको अलेश्य जानना चाहिए। ॥१५३॥

इस प्रकार लेश्यामार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ।

भव्यमार्गणा, भव्यसिद्धका स्वरूप—

[1]सिद्धत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते भवंति भवसिद्धा।
ण उ मलविगमे णियमा ताणं कणकोपलाणमिव[1] ॥१५४॥

जो जीव सिद्धत्व अर्थात् सर्व कर्मसे रहित मुक्तिरूप अवस्था पानेके योग्य हैं, वे भव्य-सिद्ध कहलाते हैं। किन्तु उनके कनकोपल (स्वर्ण-पाषाण) के समान मलका नाश होनेमें नियम नहीं है ॥१५४॥

विशेषार्थ—भव्यसिद्ध जीव दो प्रकारके होते हैं—एक वे, जो कि सिद्ध-अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, और एक वे, जो कभी सिद्ध-अवस्था प्राप्त नहीं कर सकते। जो भव्य होते हुए भी सिद्ध-अवस्थाको प्राप्त नहीं कर सकते हैं, उनके लिए स्वर्ण-पाषाणका दृष्टान्त ग्रन्थकारने दिया है। जिसप्रकार किसी स्वर्ण-पाषाणमें सोना रहते हुए भी उसको पृथक् किया जाना संभव नहीं है, उसी प्रकार सिद्धत्वकी योग्यता होते हुए कितने ही जीव तदनुकूल सामग्रीके नहीं मिलनेसे सिद्ध अवस्था नहीं प्राप्त कर पाते।

भव्य और अभव्य जीवोंका निरूपण—

[2]संखेज्ज असंखेज्जा अणंतकालेण चावि ते णियमा।
सिज्झंति भव्वजीवा अभव्वजीवा ण सिज्झंति ॥१५५॥
भविया *सिद्धी जेसिं जीवाणं ते भवंति भवसिद्धा।
तव्विवरीयाऽभव्वा संसाराओ ण सिज्झंति[2] ॥१५६॥

जो भव्य जीव हैं, वे नियमसे संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्तकालके द्वारा सिद्धपद-प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु अभव्य जीव कभी भी सिद्ध-पद प्राप्त नहीं कर पाते हैं। जिन जीवोंकी मुक्तिपद-प्राप्तिरूप सिद्धि होनेवाली है, अथवा जो उसकी प्राप्तिके योग्य हैं, उन्हें भव्यसिद्ध कहते हैं। जो इनसे विपरीत स्वरूपवाले हैं, वे अभव्य कहलाते हैं और वे कभी संसारसे छूटकर सिद्ध नहीं होते हैं ॥१५५-१५६॥

भव्यत्व और अभव्यत्वसे रहित जीवोंका वर्णन—

[3]ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तिसुहा होंति तीदसंसारा।
ते जीवा णायव्वा णो भव्वा णो अभव्वा य[3] ॥१५७॥

जो न भव्य हैं और न अभव्य हैं, किन्तु जिन्होंने मुक्ति-सुखको प्राप्त कर लिया है और अतीत-संसार हैं, अर्थात् पंचपरिवर्तनरूप संसारको पार कर चुके हैं, उन जीवोंको 'नो भव्य नो अभव्य' जानना चाहिए ॥१५७॥

इस प्रकार भव्यमार्गणाका वर्णन समाप्त हुआ।

---

1. सं० पञ्चसं० १, २८३। 2. १, २८४। 3. १, २८५।

१. ध० भा० १ पृ० १५०, गो० जी० ५५७, परं तत्र 'सिद्धत्तणस्स' स्थाने 'भव्वत्तणस्स' इति पाठः। २. ध० भा० १ पृ० ३९४, गो० जी० ५५६। ३. गो० जी० ५५८।

* ब सिद्धिं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वमार्गणा, जीव सम्यक्त्वको कब प्राप्त करता है, इस बातका निरूपण—

[1]भव्वो पंचिंदिओ सण्णी जीवो पज्जत्तओ तहा ।
काललद्धाइ-संजुत्तो सम्मत्तं पडिवज्जए ॥१५८॥

जो भव्य हो, पंचेन्द्रिय हो, संज्ञी हो, पर्याप्तक हो, तथा काललब्धि आदिसे संयुक्त हो, ऐसा जीव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। [यहाँ पर आदि पदसे वेदनाभिभव, जातिस्मरण आदि बाह्य कारण विवक्षित हैं। संस्कृत पञ्चसंग्रह] ॥१५८॥

सम्यक्त्वका स्वरूप—

[2]छप्पंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं[1] ॥१५९॥

जिनवरोंके द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ प्रकारके पदार्थोंका आज्ञा या अधिगमसे श्रद्धान करना सम्यक्त्व है ॥१५९॥

क्षायिकसम्यक्त्वका स्वरूप—

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होइ ।
तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेउं[2] ॥१६०॥
[3]वयणेहिं वि* हेऊहि य इंदियभयजणणगेहिं रूवेहिं ।
वीभच्छ-दुगुंछेहि य णो तेल्लोक्केण चालिज्जा[3] ॥१६१॥
एवं विउला बुद्धी ण य †विंभयमेदि किंचि दट्ठूणं ।
पट्ठविए सम्मत्ते खइए जीवस्स लद्धीए ॥१६२॥

दर्शनमोहनीय कर्मके सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। वह सम्यक्त्व नित्य है, अर्थात् होकरके फिर कभी छूटता नहीं है और सिद्धपद प्राप्त करने तक शेष कर्मोंके क्षपणका कारण है। यह क्षायिकसम्यक्त्व श्रद्धानको भ्रष्ट करनेवाले वचनोंसे, तर्कोंसे, इन्द्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाले रूपों [आकारों] से तथा वीभत्स और जुगुप्सित पदार्थोंसे भी चलायमान नहीं होता। अधिक क्या कहा जाय, वह त्रैलोक्यके द्वारा भी चल-विचल नहीं होता। क्षायिकसम्यक्त्वके प्रस्थापन अर्थात् प्रारम्भ होने पर अथवा लब्धि अर्थात् प्राप्ति या निष्ठापन होने पर क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवके ऐसी विशाल, गम्भीर एवं दृढ़ बुद्धि उत्पन्न हो जाती है कि वह कुछ (असंभव या अनहोनी घटनाएँ) देखकर भी विस्मय या क्षोभको प्राप्त नहीं होता ॥१६०–१६२॥

वेदकसम्यक्त्वका स्वरूप—

बुद्धी सुहाणुबंधी सुहकम्मरओ सुए य संवेगो ।
तच्चत्थे सद्दहणं पियधम्मे‡ तिव्वणिव्वेदो ॥१६३॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, २८६। 2. १, २९०। 3. १, २९३।

१. ध० भा० १ पृ० ३९५, गो० जी० ५६०। २. ध० भा० १ पृ० ३९५, गो० जी० ६४५। ३. ध० भा० १ पृ० ३९५, गो० जी० ६४६।

* ब वि। † ब -विम्भय। ‡ ब द धम्मो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्चेवमाइया जे वेदयमाणस्स होंति ते य गुणा ।
वेदयसम्मत्तमिणं सम्मत्तुदएण जीवस्स ॥१६४॥

वेदकसम्यक्त्वके उत्पन्न होने पर जीवकी बुद्धि शुभानुबन्धी या सुखानुबन्धी हो जाती है, शुचि कर्ममें रति उत्पन्न होती है, श्रुतमें संवेग अर्थात् प्रीति पैदा होती है, तत्त्वार्थमें श्रद्धान, प्रिय धर्ममें अनुराग, एवं संसारसे तीव्र निर्वेद अर्थात् वैराग्य जागृत हो जाता है। इन गुणोंको आदि लेकर इस प्रकारके जितने गुण हैं, वे सब वेदकसम्यक्त्वी जीवके प्रगट हो जाते हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयका वेदन करनेवाले जीवको वेदकसम्यक्त्वी जानना चाहिए ॥१६३-१६४॥

उपशमसम्यक्त्वका स्वरूप—

देवे अणण्णभावो विसयविरागो य तच्चसद्दहणं ।
दिट्ठीसु असम्मोहो सम्मत्तमणूणयं जाणे ॥१६५॥
दंसणमोहस्सुदए उवसंते सच्चभावसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णकलुसं जहा तोयं ॥१६६॥

उपशमसम्यक्त्वके होने पर जीवके सत्यार्थ देवमें अनन्य भक्तिभाव, विषयोंसे विराग, तत्त्वोंका श्रद्धान और विविध मिथ्या दृष्टियों (मतों) में असम्मोह प्रगट होता है, इसे क्षायिक-सम्यक्त्वसे कुछ भी कम नहीं जानना चाहिए। जिस प्रकार पंकादि-जनित कालुष्यके प्रशान्त होने पर जल निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार दर्शनमोहके उदयके उपशान्त होनेपर जो सत्यार्थ श्रद्धान उत्पन्न होता है उसे उपशमसम्यक्त्व कहते हैं ॥१६५-१६६॥

तीनों सम्यक्त्वोंका गुणस्थानोंमें विभाजन—

[1]खाइयमसंजयाइसु वेदयसम्मत्तमप्पमत्तंते ।
उवसमसम्मत्तं पुण *उवसंतंतेसु णायव्वं ॥१६७॥

क्षायिकसम्यक्त्व असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर उपरिम सर्व गुणस्थानोंमें होता है। वेदकसम्यक्त्व अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तक होता है और उपशमसम्यक्त्व उपशान्तमोह गुणस्थानान्त जानना चाहिए ॥१६७॥

सासादनसम्यक्त्वका स्वरूप—

[2]ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो हु परिवडिओ ।
सो सासणो त्ति णेओ सादियपरिणामिओ भावो ॥१६८॥

उपशमसम्यक्त्वसे परिपतित होकर जीव जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं हुआ है, तब तक उसे सासादनसम्यग्दृष्टि जानना चाहिए। इसके सादि पारिणामिक भाव होता है ॥१६८॥

---

1. सं० पञ्चसं० २६८। 2. १, ३०२।

१. गो० जी० ६५३, परं तत्र चतुर्थचरणे 'पंचमभावेण संजुत्तो' इति पाठः।

* द ते -मुणेयव्वं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्मिथ्यात्वका स्वरूप—

[1]सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवेसु होइ तच्चेसु ।
विरयाविरएण समो सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो[1] ॥१६९॥

जिसके उदयसे जीवोंके तत्त्वोंमें श्रद्धान और अश्रद्धान युगपत् प्रगट हो, उसे विरताविरतके समान सम्यग्मिथ्यात्व जानना चाहिए ॥१६९॥

मिथ्यात्वका स्वरूप—

[2]मिच्छादिट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहइ ।
सद्दहइ असब्भावं उवइट्ठं अणुवइट्ठं वा[2] ॥१७०॥

मिथ्यात्वकर्मके उदयसे मिथ्यादृष्टि जीव जिन-उपदिष्ट प्रवचनका तो श्रद्धान करता नहीं, है, किन्तु कुदेवादिकके द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भावका श्रद्धान करता है ॥१७०॥

उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्तिके विषयमें सर्वोपशम और देशोपशमका नियम—

[3]सम्मत्तपढमलंभो सयलोवसमा दु भव्वजीवाणं ।
णियमेण होइ अवरो सव्वोवसमा दु देसपसमा वा[3] ॥१७१॥

भव्यजीवोंके प्रथम वार उपशमसम्यक्त्वका लाभ नियमतः दर्शनमोहनीयके सकलोपशमसे ही होता है। किन्तु अपर अर्थात् द्वितीयादि वार सर्वोपशम अथवा देशोपशमसे होता है ॥१७१॥

सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके पश्चात् मिथ्यात्व-प्राप्तिका नियम—

[4]सम्मत्तादिमलंभस्साणंतरं णिच्छएण णायव्वो ।
मिच्छासंगो पच्छा अण्णस्स दु होइ भयणिज्जो[4] ॥१७२॥

आदिम सम्यक्त्वके लाभके अनन्तर मिथ्यात्वका संगम निश्चयसे जानना चाहिए। किन्तु अन्य अर्थात् द्वितीयादि वार सम्यक्त्व-लाभके पश्चात् मिथ्यात्वका संगम भजनीय है, अर्थात् किसीके होता भी है और किसीके नहीं भी होता ॥१७२॥

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई।

संज्ञिमार्गणा, संज्ञी और असंज्ञीका स्वरूप—

[5]सिक्खाकिरिओवएसा आलावगाही मणोवलंबेण ।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीओ असण्णी य[5] ॥१७३॥

जो जीव मनके अवलम्बनसे शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलापको ग्रहण करता है, उसे संज्ञी कहते हैं। जो इससे विपरीत है, अर्थात् शिक्षा आदिको ग्रहण नहीं कर सकता, उसे असंज्ञी कहते हैं ॥१७३॥

विशेषार्थ—जिसके द्वारा हितका ग्रहण और अहितका त्याग किया जा सके, उसे शिक्षा कहते हैं। इच्छापूर्वक हस्त-पाद आदिके संचालनको क्रिया कहते हैं। वचनादिके द्वारा बताये हुए कर्तव्यको उपदेश कहते हैं। श्लोक आदिके पाठको आलाप कहते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० १, ३०३ । 2. १, ३०५ । 3. १, ३१७ । 4. १, ३१८ । 5. १, ३११ ।

१. गो० जी० ६५४ । २. गो० जी० ६५५ । ३. तुलना—सम्मत्तपढमलंभो सव्वोवसमेण तह वियट्ठेण । भजियव्वो य अभिक्खं सव्वोवसमेण देसेण ॥ क० पा० गा० १०४ । ४. तुलना—सम्मत्तपढमलंभस्सऽणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं । लंभस्स अपढमस्स दु भजियव्वो पच्छदो होदि ॥ क० पा० गा० १०५ । ५. ध० भा० १ पृ० १५२ गो० जी० ६६० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्ञी-असंज्ञीके स्वरूपका और भी स्पष्टीकरण—

[1]मीमंसइ जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।
सिक्खइ णामेणेदि य समणो अमणो य विवरीओ[1] ॥१७४॥
एवं कए मए पुण एवं होदि त्ति कज्जणिप्पत्ती ।
जो दु विचारइ जीवो सो सण्णी असण्णि इयरो य ॥१७५॥

जो जीव किसी कार्यको करनेके पूर्व कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यकी मीमांसा करे, तत्त्व और अतत्त्वका विचार करे, योग्यको सीखे और उसके नामसे पुकारने पर आवे, उसे समनस्क या संज्ञी कहते हैं। इससे विपरीत स्वरूपवालेको अमनस्क या असंज्ञी कहते हैं। जो जीव ऐसा विचार करता है कि मेरे इस प्रकारके कार्य करने पर इस प्रकारके कार्यकी निष्पत्ति होगी, वह संज्ञी है। जो ऐसा विचार नहीं करता है, वह असंज्ञी जानना चाहिए ॥१७४-१७५॥

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई ।

आहारमार्गणा, आहारकका स्वरूप—

[2]आहारइ सरीराणं तिण्हं एकदरवग्गणाओ य ।
भासा मणस्स णियमं तम्हा आहारओ भणिओ[2] ॥१७६॥

जो जीव औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरोंमेंसे उदयको प्राप्त हुए किसी एक शरीरके योग्य शरीरवर्गणाको, तथा भाषावर्गणा और मनोवर्गणाको नियमसे ग्रहण करता है, वह आहारक कहा गया है ॥१७६॥

आहारक और अनाहारक जीवोंका विभाजन—

[3]विग्गहगइमावण्णा केवलिणो *समुहदो अजोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा[3] ॥१७७॥

विग्रहगतिको प्राप्त हुए चारों गतिके जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, तथा सिद्ध भगवान् ये सब अनाहारक होते हैं, अर्थात् औदारिकादि शरीरके योग्य पुद्गलपिंडको ग्रहण नहीं करते हैं। इनके अतिरिक्त शेष सब जीव आहारक होते हैं ॥१७७॥

इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।

उपयोगप्ररूपणा, उपयोगका स्वरूप और भेद-निरूपण—

[4]वत्थुणिमित्तो भावो जादो जीवस्स होदि उवओगो ।
उवओगो सो दुविहो सागारो चेव अणगारो[4] ॥१७८॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, ३२० । 2. १, ३२३ । 3. १, ३२४ । 4. १, ३३२ ।

१. गो० जी० ६६१ । २. ध० भा० १ पृ०१५२ गा० ९८ । गो०जी० ६६४ । ३. ध० भा० १ पृष्ठ १५३ गा० ९९ । गो० जी० ६६५ । ४. गो० जी० ६७१ ।

* द -घदो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवका जो भाव वस्तुके ग्रहण करनेके लिए प्रवृत्त होता है, उसे उपयोग कहते हैं। वह साकार और अनाकारके भेदसे दो प्रकारका जानना चाहिए ॥१७८॥

साकार-उपयोगका स्वरूप—

[1]मइ-सुइ-ओहि-मणेहि य जं सयविसयं विसेसविण्णाणं।
अंतोमुहुत्तकालो उवओगो सो हु सागारो[1] ॥१७९॥

मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्ययज्ञानके द्वारा जो अपने-अपने विषयका विशेष विज्ञान होता है, उसे साकार-उपयोग कहते हैं। यह अन्तर्मुहूर्त्तकाल तक होता है ॥१७९॥

अनाकार-उपयोगका स्वरूप—

[2]इंदियमणोहिणा वा अत्थे अविसेसिऊण जं गहणं।
अंतोमुहुत्तकालो उवओगो सो अणागारो[2] ॥१८०॥

इन्द्रिय, मन और अवधिके द्वारा पदार्थोंकी विशेषताको ग्रहण न करके जो सामान्य अंशका ग्रहण होता है, उसे अनाकार-उपयोग कहते हैं। यह भी अन्तर्मुहूर्त्तकाल तक होता है ॥ १८० ॥

[3]केवलिणं सागारो अणगारो जुगवदेव उवओगो।
सादी अणंतकालो पच्चक्खो सव्वभावगदो ॥१८१॥

केवलियोंके साकार और अनाकार उपयोग युगपत् ही होता है। उसका काल सादि और अनन्त है, अर्थात् उत्पन्न होनेके पश्चात् अनन्तकाल तक रहता है। वह प्रत्यक्ष है और सर्व भाव-गत है, अर्थात् चराचर जगद्-व्यापी समस्त पदार्थोंको जानता है ॥१८१॥

इस प्रकार उपयोगप्ररूपणा समाप्त हुई।

जीवसमास-अधिकारका उपसंहार—

[4]णिक्खेवे एयट्ठे णयप्पमाणे णिरुत्ति अणिओगे।
मग्गइ वीसं भेए सो जाणइ जीवसब्भावं ॥१८२॥

जो ज्ञानी पुरुष निक्षेप, एकार्थ, नय, प्रमाण, निरुक्ति और अनुयोगमें उपर्युक्त बीस प्ररूपणा-रूप भेदोंका अन्वेषण करता है, वह जीवके सद्भाव अर्थात् यथार्थ स्वरूपको जानता है ॥१८२॥

छहों लेश्याओंके वर्ण—

किण्हा भमर-सवण्णा णीला पुण णील-गुलियसंकासा।
काऊ कओद-वण्णा तेऊ तवणिज्ज-वण्णा हु ॥१८३॥
पम्हा पउमसवण्णा सुक्का पुणु कासकुसुमसंकासा।
वण्णंतरं च एदे हवंति परिमिता अणंता वा ॥१८४॥

---

1. सं० पंचसं० १, ३३३। 2. १, ३३४। 3. १, ३३५। 4. १, ३५३।

१. गो० जी० ६७३, परं तत्र द्वितीयचरणे 'जं सयविसयं' स्थाने 'सगसगविसये' इति पाठः।
२. गो०जी० ६७४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्णलेश्या भौंरेके समान वर्णवाली है, नीललेश्या नीलकी गोली, नीलमणि या मयूरकंठके समान वर्णवाली है। कापोतलेश्या कपोत (कबूतर) के समान वर्णवाली है। तेजोलेश्या तपे हुए सोनेके समान वर्णवाली है। पद्मलेश्या पद्म (गुलाबी रंगके कमल) के सदृश वर्णवाली है और शुक्ललेश्या कांसके फूलके समान श्वेतवर्णवाली है। इन छहों लेश्याओंके वर्णान्तर अर्थात् तारतम्यकी अपेक्षा मध्यवर्ती वर्णोंके भेद इन्द्रियों-द्वारा ग्रहण करनेकी दृष्टिसे संख्यात हैं, स्कन्धगत जातियोंकी अपेक्षा असंख्यात हैं और परमाणु-गत भेदकी अपेक्षा अनन्त हैं ॥१८३-१८४॥

नरकोंमें लेश्याओंका निरूपण—

[1]काऊ काऊ तह काउ-णील णीला य णील-किण्हा य ।
किण्हा य परमकिण्हा लेसा रयणादि-पुढवीसु[1] ॥१८५॥

रत्नप्रभादि पृथिवियोंमें क्रमशः कापोत, कापोत, कापोत और नील, नील, नील और कृष्ण, कृष्ण, तथा परमकृष्ण लेश्या होती है ॥१८५॥

विशेषार्थ—प्रथम पृथिवीके नारकियोंके कापोतलेश्याका जघन्य अंश होता है। द्वितीय पृथिवीके नारकियोंके कापोतलेश्याका मध्यम अंश होता है। तृतीय पृथिवीके नारकियोंके कापोत-लेश्याका उत्कृष्ट अंश और नीललेश्याका जघन्य अंश होता है। चतुर्थ पृथिवीके नारकियोंके नीललेश्याका मध्यम अंश होता है। पंचम पृथिवीके नारकियोंके नीललेश्याका उत्कृष्ट अंश और कृष्णलेश्याका जघन्य अंश होता है। षष्ठ पृथ्वीके नारकियोंके कृष्णलेश्याका मध्यम अंश होता है। सप्तम पृथ्वीके नारकियोंके परम कृष्णलेश्या अर्थात् कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट अंश होता है।

तिर्यंच और मनुष्योंमें लेश्याओंका निरूपण—

[2]एइंदिय-वियलिंदिय-असण्णि-पंचिंदियाण पढमतियं ।
संखदीदाऊणं सेसा सेसाण छप्पि लेसाओ ॥१८६॥

३।३।६।

एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें प्रथम तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। संख्यातीत आयुवालोंके अर्थात् असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियाँ मनुष्य और तिर्यंचोंके शेष तीन शुभ लेश्याएँ होती हैं। शेष अर्थात् संख्यात वर्षकी आयुवाले कर्मभूमियाँ मनुष्य और तिर्यंचोंके छहों लेश्याएँ होती हैं ॥१८६॥ (इनकी अंकसंदृष्टि गाथाके नीचे दी है।)

गुणस्थानोंमें लेश्याओंका निरूपण—

[3]पढमाइचउ छलेसा सुहाउ जाणे हु तिस्सु तिण्णेव ।
उवरिमगुणेसु सुक्का णिल्लेसो अंतिमो भणिओ ॥१८७॥

६।६।६।६।३।३।३।१।१।१।१।१।१।०।

प्रथम गुणस्थानसे लेकर चौथे गुणस्थान तक छहों लेश्याएँ होती हैं। पाँचवेंसे लेकर सातवें तक तीन गुणस्थानोंमें तीन शुभ लेश्याएँ ही होती हैं। उपरिम गुणोंमें अर्थात् आठवेंसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तक एक शुक्ललेश्या ही होती है। अन्तिम अयोगकेवली गुणस्थान निर्लेश्य अर्थात् लेश्या-रहित कहा गया है ॥१८७॥ (इनकी अंकसंदृष्टि गाथाके नीचे दी है।)

---

1. सं० पञ्चसं० १, २६८ । 2. १, २६७ । 3. १, २६५ ।

१. जीवस० ७२, मूला० ११३४, गो० जी० ५२८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवोंमें लेश्याओंका निरूपण—

[1]तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दुण्हं च तेरसण्हं च ।
एदो य चउदसण्हं लेसाण समासओ मुणह[1] ॥१८८॥
तेऊ तेऊ तह तेउ-पम्म पम्मा य पम्म-सुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का लेसा भवणाइदेवाणं[2] ॥१८९॥

भवनादि तीन देवोंके अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंके जघन्य तेजोलेश्या होती है। सौधर्म और ईशान इन दो कल्पवासी देवोंके मध्यम तेजोलेश्या होती है। सनत्कुमार और महेन्द्र इन दो कल्पवासी देवोंके उत्कृष्ट तेजोलेश्या और जघन्य पद्मलेश्या होती है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र इन छह कल्पवासी देवोंके मध्यम पद्मलेश्या होती है। शतार, सहस्रार इन दो कल्पवासी देवोंके उत्कृष्ट पद्मलेश्या और जघन्य शुक्ललेश्या होती है। आनत, प्राणत, आरण, अच्युत इन चार कल्पवासी देवोंके तथा नव ग्रैवेयकवासी कल्पातीत देवोंके, इन तेरहोंके मध्यम शुक्ललेश्या होती है। इससे ऊपर नव अनुदिश और पंच अनुत्तर इन चौदह कल्पातीत देवोंके परम अर्थात् उत्कृष्ट शुक्ललेश्या होती है ॥१८८-१८९॥

[2]पज्जत्तयजीवाणं सरीर-लेसा हवंति छब्भेया ।
सुक्का काऊ य तहा अपज्जत्ताणं तु बोहव्वा ॥१९०॥

पर्याप्तक जीवोंके शरीरकी लेश्या अर्थात् द्रव्य लेश्या छहों होती हैं। किन्तु अपर्याप्तकोंके शरीरलेश्या शुक्ल और कापोत जानना चाहिए ॥१९०॥

[3]विग्गहगइमावण्णा जीवाणं दव्वओ य सुक्का य ।
सरीरम्हि असंगहिए काऊ तह अपज्जत्तकाले य ॥१९१॥

विग्रहगतिको प्राप्त हुए चारों गतिके जीवोंके शरीरके ग्रहण नहीं करने अर्थात् जन्म नहीं लेनेतक द्रव्यसे शुक्ललेश्या होती है। पुनः जन्म लेनेके पश्चात् शरीरपर्याप्तिके पूर्ण नहीं होने तक अपर्याप्तकालमें कापोतलेश्या होती है ॥१९१॥

लेश्या-जनित भावोंका दृष्टान्त-द्वारा निरूपण—

[4]णिम्मूल खंध साहा गुंछा चुणिऊण ÷ कोइ पडिदाइं ।
जह एदेसिं भावा तह वि य लेसा मुणेयव्वा[3] ॥१९२॥

जिस प्रकार कोई पुरुष किसी वृक्षके फलोंको जड़-मूलसे उखाड़कर, कोई स्कन्धसे काटकर, कोई गुच्छोंको तोड़कर, कोई फलोंको चुनकर और कोई गिरे हुए फलोंको बीन करके खाना चाहे, तो उनके भाव जैसे उत्तरोत्तर विशुद्ध हैं, उसी प्रकार कृष्णादि लेश्याओंके भाव भी क्रमशः उत्तरोत्तर विशुद्ध चाहिए ॥१९२॥

1. १, २६६–२७१ । 2. १, २५३–२५६ । 3. १, २५७ । 4. १, २६४ ।

१. गो० जी० ५३३ । जीवस० गा० ७३, परं तत्र चतुर्थचरणे 'सक्कादिविमाणवासीणं' इति पाठः । २. गो० जी० ५३४ । तत्र चतुर्थचरणे भवणतियाऽपुण्णगे असुहा इति पाठः । ३. गो० जी० ५०७ । उत्तरार्धे पाठभेदः ।

÷ द ब चुण्णिऊण ।

सम्यग्दृष्टि जीव मर कर कहाँ-कहाँ उत्पन्न नहीं होता—

[I]छसु हेट्ठिमासु पुढवीसु जोइस-वण-भवण-सव्वइत्थीसु ।
वारस मिच्छावादे सम्माइट्ठिस्स णत्थि उववादो[1] ॥१६३॥

प्रथम पृथ्वीके विना अधस्तन छहों पृथिवियोंमें; ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी देवोंमें, सर्वप्रकारकी स्त्रियोंमें अर्थात् तिर्यंचनी, मनुष्यनी और देवियोंमें, तथा बारह मिथ्यावादमें अर्थात् जिनमें केवल एक मिथ्यात्व ही गुणस्थान होता है, ऐसे एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और असंज्ञिपञ्चेन्द्रियसम्बन्धी तिर्यञ्चोंके बारह जीवसमासोंमें सम्यग्दृष्टि जीवका उत्पाद नहीं है, अर्थात् वह मरकर इनमें उत्पन्न नहीं होता है ॥१६३॥

एक जीवके कौन-कौन सी मार्गणाएँ एक साथ नहीं होती हैं—

[2]मणपज्जव परिहारो उवसमसम्मत्त दोण्णि आहारा ।
एदेसु एक्कपयदे णत्थि त्ति असेसयं जाणे[2] ॥१६४॥

मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसंयम, प्रथमोपशमसम्यक्त्व और दोनों आहारक, अर्थात् आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग; इन चारोंमेंसे किसी एकके होने पर शेष तीन मार्गणाएँ नहीं होतीं, ऐसा जानना चाहिए ॥१६४॥

संयमोंका गुणस्थानोंमें निरूपण—

[3]जा सामाइय छेदोऽणियट्टि परिहारमप्पमत्तो त्ति ।
सुहुमो सुहुमसराओ उवसंताई जहक्खाय ॥१६५॥

छठे गुणस्थानसे लेकर नवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक सामायिक और छेदोपस्थापना संयम होता है । अप्रमत्तान्त अर्थात् छठें और सातवें गुणस्थानमें परिहारविशुद्धिसंयम होता है । सूक्ष्मसाम्परायसंयम सूक्ष्मसरागनामक दशवें गुणस्थानोंमें होता है और यथाख्यातसंयम उपशान्तकषायादि अन्तिम चार गुणस्थानमें होता है ॥१६५॥

समुद्घातके भेद—

[4]वेयण कसाय वेउव्विय मारणंतिओ समुग्घाओ ।
*तेजाऽऽहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं च[3] ॥१६६॥

१ वेदनासमुद्घात २ कषायसमुद्घात ३ वैक्रियिकसमुद्घात ४ मारणान्तिकसमुद्घात, ५ तैजससमुद्घात, छट्ठा आहारकसमुद्घात और सातवाँ केवलियोंके होनेवाला केवलिसमुद्घात ये सात प्रकारके समुद्घात होते हैं । (वेदनादि कारणोंसे मूल शरीरके साथ सम्बन्ध रखते हुए आत्मप्रदेशोंके बाहर निकलनेको समुद्घात कहते हैं ।)॥१६६॥

केवलिसमुद्घातका निरूपण—

[5]पढमे दंडं कुणइ य विदिए य कवाडयं तहा समए ।
तइए पयरं चेव य चउत्थए लोयपूरणयं ॥१६७॥

---

1. सं० पञ्चसं० १, २६७ । 2. १, ३४० । 3. १, २४४ । 4. १, ३३७ । 5. १, ३२६ ।

१. ध० भा० १ पृ० २०६, गा० १३३ । परं तत्रोत्तरार्धे 'णेदेसु समुप्पज्जइ सम्माइट्ठी दु जो जीवो' इति पाठः । गो० जी० १२७. तत्रायं पाठः—हेट्ठिमछप्पुढवीणं जोइसि-वण-भवण-सव्व-इत्थीणं । पुण्णिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ॥ २. गो०जी० ७२८ । ३. ध० १, ३, २ गो० जी० ६६६ ।

* प्रतिषु 'तेजा' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवरं पंचमसमए जोई मंथाणयं तदो छट्ठे ।

सत्तमए य कवाडं संवरइ तदोऽट्ठमे दंडं ॥१६८॥

समुद्घातगतकेवली भगवान् प्रथम समयमें दंडरूप समुद्घात करते हैं। द्वितीय समयमें कपाटरूप समुद्घात करते हैं। तृतीय समयमें प्रतररूप और चौथे समयमें लोकपूरण समुद्घात करते हैं। पाँचवें समयमें वे सयोगिजिन लोकके विवर-गत आत्मप्रदेशोंका संवरण (संकोच) करते हैं। पुनः छट्ठे समयमें मन्थान-(प्रतर-) गत आत्मप्रदेशोंका संवरण करते हैं। सातवें समयमें कपाट-गत आत्मप्रदेशोंका संवरण करते हैं और आठवें समयमें दंडसमुद्घात-गत आत्म-प्रदेशोंका संवरण करते हैं ॥१६७-१६८॥

केवलिसमुद्घातमें काययोगोंका निरूपण—

[1]**दंडदुगे ओरालं कवाडजुगले य पयरसंवरणे ।**

मिस्सोरालं भणियं कम्मइओ सेस तत्थ अणहारी ॥१६९॥

केवलिसमुद्घातके उक्त आठों समयोंमेंसे दण्ड-द्विक अर्थात् पहले और आठवें समयके दोनों दण्डसमुद्घातोंमें औदारिककाययोग होता है। कपाट-युगलमें अर्थात् विस्तार और संवरण-गत दोनों कपाटसमुद्घातोंमें तथा संवरण-गत प्रतरसमुद्घातमें यानी दूसरे, छठे और सातवें समयमें औदारिकमिश्रकाययोग होता है, ऐसा परमागममें कहा गया है। शेष समयोंमें अर्थात् तीसरे, चौथे और पांचवें समयमें कार्मणकाययोग होता है और उस समय केवली भगवान् अनाहारक रहते हैं ॥१६९॥

केवलिसमुद्घातका नियम—

[2]**छम्मासाउगसेसे उप्पण्णं जेसिं केवलं णाणं ।**

ते णियमा समुग्घायं सेसेसु हवंति भयणिज्जा[1] ॥२००॥

जिनके छह मास आयुके शेष रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वे केवली नियमसे समुद्घात करते हैं। शेष केवलियोंमें समुद्घात भजनीय है, अर्थात् कोई करते भी हैं और कोई नहीं भी करते ॥२००॥

सम्यक्त्व, अणुव्रत और महाव्रतकी प्राप्तिका नियम—

[3]**चत्तारि वि *छेत्ताइं आउयबंधेण होइ सम्मत्तं ।**

अणुवय-महव्वयाइं ण लहइ देवाउअं मोत्तुं[2] ॥२०१॥

जीव चारों ही क्षेत्रों (गतियों) की आयुका बन्ध होनेपर सम्यक्त्वको प्राप्त कर सकता है। किन्तु अणुव्रत और महाव्रत देवायुको छोड़कर शेष आयुका बन्ध होने पर प्राप्त नहीं कर सकता ॥२०१॥

दर्शनमोहनीयका क्षय कौन करता है—

[4]**दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु ।**

णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ[3] ॥२०२॥

---

1. सं पञ्चसं० १, ३२५ । 2. १, ३२७ । 3. १, ३०१ । 4. १, २६४ ।

१. मूलारा २१०५ । ध० भा० १ पृ० ३०३ गा० १६७ । २. ध० भा० १ पृ० ३२६ गा० १६६ । गो० जी० ६५२, गो० क० ३३४ । ३. क० पा० २ गा० १६७ गो०जी० ६४७ ।

* ब खेत्ताइं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यगतिमें उत्पन्न हुआ कर्मभूमियाँ मनुष्य ही नियमसे दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयका प्रस्थापक होता है अर्थात् प्रारम्भ करता है। किन्तु निष्ठापक सर्वत्र होता है। अर्थात् पूर्व-बद्ध आयुके वशसे किसी भी गतिमें उत्पन्न होकर उसकी निष्ठापना (पूर्णता) कर सकता है ॥२०२॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिके संसार-वासका नियम—

[1]खवणाए पट्ठवगो जम्मि भवे णियमदो तदो †अण्णे।
णादिक्कदि तिण्णि भवे दंसणमोहम्मि खीणम्मि[1] ॥२०३॥

जो मनुष्य जिस भवमें दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापन करता है, वह दर्शनमोहके क्षीण होने पर नियमसे उससे अन्य तीन भवोंका अतिक्रमण नहीं करता है। अर्थात् दर्शनमोहके क्षीण हो जानेपर तीन भवमें नियमसे मुक्त हो जाता है ॥२०३॥

दर्शमोहनीयका उपशम कौन करता है—

[2]दंसणमोह-उवसामगो दु चउसु वि गईसु बोहव्वो।
पंचिंदिओ य सण्णी णियमा सो होइ पज्जत्तो[2] ॥२०४॥

दर्शनमोहका उपशम करनेवाला जीव चारों ही गतियोंमें जानना चाहिए। किन्तु वह नियमसे पंचेन्द्रिय, संज्ञी और पर्याप्तक होता है। अर्थात् चारों ही गतिके संज्ञी, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव उपशमसम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं ॥२०४॥

विरह (अन्तर) कालका नियम—

[3]सम्मत्ते सत्त दिणा विरदाविरदे य चउदसा होंति।
विरदेसु य पण्णरसं विरहियकालो य बोहव्वो[3] ॥२०५॥

उपशमसम्यक्त्वका विरहकाल सात दिन, उपशामसम्यक्त्व-सहित विरताविरतका विरह-काल चौदह दिन और उपशमसम्यक्त्व-सहित विरत अर्थात् प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतका विरहकाल पन्द्रह दिन जानना चाहिए ॥२०५॥

नारकियोंके विरहकालका नियम—

पणयालीस मुहुत्ता पक्खो मासो य विण्णि चउ मासा।
छम्मास वरिसमेयं च अंतरं होइ पुढवीणं ॥२०६॥

जीवसमासो समत्तो

रत्नप्रभादि सातों पृथिवियोंमें नारकियोंकी उत्पत्तिका अन्तरकाल क्रमशः पैंतालीस मुहूर्त, एक पक्ष, एक मास, दो मास, चार मास, छह मास और एक वर्ष होता है ॥२०६॥

इस प्रकार जीवसमास नामक प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

---

1. सं० पञ्चसं० १, २९५। 2. १, २९६। 3. १, ३३६।

१. क० पा०, गा० ११३। २. क०पा० गा० ९५। ३. गो० जी० १४४ 'परं तत्र प्रथमचरणे पढमुवसमसहिदाए' इति पाठः।

† द अण्णो।

द्वितीय अधिकार

प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन

मंगलाचरण और प्रतिज्ञा—

[1]पयडि-विबंधणमुक्कं पयडिसरूवं विसेसदेसयरं ।
पणविय वीरजिणिंदं पयडिसमुक्कित्तणं वुच्छं ॥१॥

कर्म-प्रकृतियोंके बन्धनसे विमुक्त, एवं प्रकृतियोंके स्वरूपका विशेषरूपसे उपदेश करनेवाले ऐसे श्रीवीर जिनेन्द्रको प्रणाम करके मैं प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन नामक अधिकारको कहूँगा ॥१॥

पयडीओ दुविहाओ मूलपयडीओ उत्तरपयडीओ । तं जहा—

प्रकृतियाँ दो प्रकारकी होती हैं—मूलप्रकृतियाँ और उत्तरप्रकृतियाँ । उनका विशेष विवरण इस प्रकार है—

[2]णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीय मोहणियं ।
आउग णामागोदं तहंतरायं च मूलाओ[1] ॥२॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये कर्मोंकी आठ मूलप्रकृतियाँ हैं ॥२॥

कर्मोंके स्वभावका दृष्टान्त-द्वारा निरूपण—

पड पडिहारसिमज्जा हडि चित्त कुलाल भंडयारीणं ।
जह एदेसिं भावा तह वि य कम्मा मुणेयव्वा[2] ॥३॥

पट (देव-मुखका आच्छादक वस्त्र) प्रतीहार (राजद्वार पर बैठा हुआ द्वारपाल) असि (मधु-लिप्त तलवार) मद्य (मदिरा) हडि (पैर फंसानेका खोड़ा) चित्रकार (चितेरा) कुम्भकार (वर्त्तन बनानेवाला कुम्भार) और भंडारी (कोषाध्यक्ष) इन आठोंके जैसे अपने-अपने कार्य करनेके भाव होते हैं, उस ही प्रकार क्रमशः कर्मोंके भी स्वभाव समझना चाहिए ॥३॥

---

1. सं० पञ्चसं० २, १ । 2. २, २ ।

१. कर्मस्त० ६ । गो० क० ८, परं तत्र चतुर्थ-चरणे–'तरायमिदि अट्ठ पयडीओ' इति पाठः ।
२. गो० क० २१ । कर्मवि० ६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मोंकी उत्तरप्रकृतियोंका निरूपण—

[1]पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो तहेव तेणउदी ।
दोण्णि य पंच य भणिया पयडीओ उत्तरा होंति[1] ॥४॥

ज्ञानावरणादि आठों मूल-प्रकृतियोंकी उत्तरप्रकृतियाँ क्रमसे पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तेरानवे, दो और पाँच कही गई हैं ॥४॥

प्रत्येक कर्मकी उत्तरप्रकृतियोंका पृथक्-पृथक् निरूपण—

[2]जं तं णाणावरणीयं कम्मं तं पंचविहं—आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि[2] । जं दंसणावरणीयं कम्मं तं णवविहं—णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्दा य पयला य । चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि[3] । जं वेयणीयं कम्मं तं दुविहं—सादावेयणीयं असादावेयणीयं चेदि[4] ।

जो ज्ञानावरणीयकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय । जो दर्शनावरणीयकर्म है, वह नौ प्रकारका है—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला । तथा चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय । जो वेदनीयकर्म है, वह दो प्रकारका है—सातावेदनीय और असातावेदनीय ।

जं मोहणीयं कम्मं तं दुविहं—दंसणमोहणीयं चारित्तमोहणीयं चेदि[5] । जं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविहं । संतकम्मं पुण तिविहं—मिच्छत्तं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं चेदि[6] । जं चारित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं—कसायवेयणीयं णोकसायवेयणीयं चेदि[7] । जं कसायवेयणीयं कम्मं तं सोलसविहं—अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोहा, अपच्चक्खाणावरणकोह-माण-माया-लोहा, पच्चक्खाणावरणकोह-माण-माया-लोहा, संजलणकोह-माण-माया-लोहा चेदि[8] । जं णोकसायवेयणीयं कम्मं तं णवविहं*—इत्थिवेदं पुरिसवेदं णउंसयवेदं हास रइ अरइ सोय भय दुगुंछा चेदि[9] ।

जो मोहनीयकर्म है, वह दो प्रकारका है—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय । जो दर्शनमोहनीयकर्म है, वह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका है । किन्तु सत्कर्म (सत्त्व) की अपेक्षा तीन प्रकारका है—मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व । जो चारित्रमोहनीयकर्म है, वह दो प्रकारका है—कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय । जो कषायवेदनीयकर्म है, वह

---

1. सं० पञ्चसं० २, ३ । 2. २, ५–३५ ।

१. कर्मस्त० १०, परं तत्र 'तेणउदी' स्थाने 'बायाला' इति पाठः । गो० क० २२, परं तत्रोत्तरार्धे 'ते उत्तरं सयं वा दुग पणगं उत्तरा होंति' इति पाठः । २. षट्० प्र० समु० चू० सू० १४ ३. षट्० प्र० स० चू० सू० १६ । ४. षट्० प्र० स० चू० सू० १८ । ५. षट्० प्र० स० चू० सू० २० । ६. षट्० प्र० स० चू० सू० २१ । ७. षट्० प्र० स० चू० सू० २२ । ८. षट्० प्र० स० चू० सू० २३ । ९. षट्० प्र० स० चू० सू० २४ ।

* द 'भणिदं' इत्यधिकः पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलह प्रकारका है—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। जो नोकषायवेदनीयकर्म है, वह नौ प्रकारका है—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और जुगुप्सा।

जं आउकम्मं तं चउव्विहं—णिरियाउगं तिरियाउगं मणुयाउगं देवाउगं चेदि[1]।

जो आयुकर्म है, वह चार प्रकारका है—नरकायुष्क, तिर्यगायुष्क, मनुष्यायुष्क और देवायुष्क।

जं णामकम्मं तं बायालीसं पिंडापिंडपयडीओ[2]। पिंडपयडीओ चउद्दस १४। अपिंडपयडीओ अट्ठावीसं २८। तं जहा—गइणामं जाइणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघायणामं सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघयणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं विहायगइणामं अगुरुगलहुगणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साहारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दुब्भगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं चेदि[3]।

जो नामकर्म है, वह पिंड और अपिंड प्रकृतियोंके समुच्चयकी अपेक्षा ब्यालीस प्रकारका है। उनमें पिंडप्रकृतियाँ चौदह हैं और अपिंडप्रकृतियाँ अट्ठाईस हैं। उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम, शरीर-बन्धननाम शरीर-संघातनाम, शरीर-संस्थाननाम, शरीर-अंगोपांगनाम, शरीर-संहनननाम, वर्णनाम, गन्धनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, आनुपूर्वीनाम, विहायोगतिनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, परघातनाम, उच्छ्वासनाम, आतापनाम, उद्योतनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, साधारणशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्त्तिनाम, अयशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थंकरनाम।

जं गइणामकम्मं तं चउव्विहं—णिरयगइणामं तिरियगइणामं मणुयगइणामं देवगइणामं चेदि[4]। जं जाइणामकम्मं तं पंचविहं—एइंदियजाइणामं बेइंदियजाइणामं तेइंदियजाइणामं चउरिंदियजाइणामं पंचेंदियजाइणामं चेदि[5]। जं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेयसरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि[6]।

---

१. षट्० प्र० स० चू० सू० २५–२६। २. षट्० प्र०स० चू० सू० २७। ३. षट्० प्र०स०चू० सू० २८। ४. षट्० प्र० स० चू० सू० २९। ५. षट्० प्र० स० चू० सू० ३०। ६. षट्० प्र० स० चू० सू० ३१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनमें जो गतिनामकर्म है, वह चार प्रकारका है—नरकगतिनाम, तिर्यग्गतिनाम, मनुष्यगतिनाम और देवगतिनाम। जो जातिनामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम, और पंचेन्द्रियजातिनाम। जो शरीरनामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियिकशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम और कार्मणशरीरनाम।

जं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेयसरीरबंधणणामं कम्मइयसरीरबंधणणामं चेदि[1]। जं सरीरसंघायणामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरसंघायणामं वेउव्वियसरीरसंघायणामं आहारसरीरसंघायणामं तेयसरीरसंघायणामं कम्मइयसरीरसंघायणामं चेदि[2]।

जो शरीर-बन्धननामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—औदारिकशरीरबन्धननाम, वैक्रियिकशरीरबन्धननाम, आहारकशरीरबन्धननाम, तैजसशरीरबन्धननाम और कार्मणशरीरबन्धननाम। जो शरीर-संघात नामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—औदारिकशरीरसंघातनाम, वैक्रियिकशरीरसंघातनाम, आहारकशरीरसंघातनाम, तैजसशरीरसंघातनाम और कार्मणशरीरसंघातनाम।

जं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छव्विहं—समचउरससरीरसंठाणणामं णिग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणणामं साइयसरीरसंठाणणामं खुज्जयसरीरसंठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि[3]। जं सरीरअंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं—ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि[4]।

जो शरीरसंस्थाननामकर्म है, वह छह प्रकारका है—समचतुरस्रशरीरसंस्थाननाम, न्यग्रोधपरिमंडलशरीरसंस्थाननाम, स्वातिशरीरसंस्थाननाम, कुब्जकशरीरसंस्थाननाम, वामनशरीरसंस्थाननाम और हुंडकशरीरसंस्थाननाम। जो शरीर-अंगोपांगनामकर्म है, वह तीन प्रकारका है—औदारिकशरीर-अंगोपांगनाम वैक्रियिकशरीर-अंगोपांगनाम और आहारकशरीर-अंगोपांगनाम।

जं सरीरसंघयणणामकम्मं तं छव्विहं—वज्जरिसहणारायसरीरसंघयणणामं वज्जणारायसरीरसंघयणणामं णारायसरीरसंघयणणामं अद्धणारायसरीरसंघयणणामं खीलियसरीरसंघयणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघयणणामं चेदि[5]।

जो शरीरसंहनननामकर्म है, वह छह प्रकारका है—वज्रऋषभनाराचशरीरसंहनननाम, वज्रनाराचशरीरसंहनननाम, नाराचशरीरसंहनननाम, अर्धनाराचशरीरसंहनननाम, कीलकशरीरसंहनननाम और असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनननाम।

जं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं—किण्हवण्णणामं णीलवण्णणामं रत्तवण्णणामं पीतवण्णणामं सुक्कवण्णणामं चेदि[6]। जं गंधणामकम्मं तं दुविहं—सुरहिगंधणामं

1. षट्० प्र० स० चू० सू० ३२। 2. षट्० प्र० स० चू० सू० ३३। 3. षट्० प्र० स० चू० सू० ३४। 4. षट्० प्र० स० चू० सू० ३५। 5. षट्० प्र० स० चू० सू० ३६। 6. षट्० प्र० स० चू० सू० ३७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुरहिगंधणामं चेदि[1]। जं रसणामकम्मं तं पंचविहं—तित्तणामं कडुयणामं कसायणामं अंबिलणामं महुरणामं चेदि[2]। जं फासणामकम्मं तं अट्ठविहं—कक्खडणामं मउयणामं गरुयणामं लहुयणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीयणामं उण्हणामं चेदि[3]।

जो वर्णनामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—कृष्णवर्णनाम, नीलवर्णनाम, रक्तवर्णनाम, पीतवर्णनाम और शुक्लवर्णनाम। जो गन्धनामकर्म है, वह दो प्रकारका है—सुरभिगन्धनाम और दुरभिगन्धनाम। जो रसनामकर्म है, वह पाँच प्रकारका है—तिक्तनाम, कटुकनाम, कषायनाम, आम्लनाम और मधुरनाम। जो स्पर्शनामकर्म है, वह आठ प्रकारका है—कर्कशनाम, मृदुनाम, गुरुनाम, लघुनाम, स्निग्धनाम, रूक्षनाम, शीतनाम और उष्णनाम।

जं आणुपुव्वीणामकम्मं तं तं चउव्विहं—णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीणामं तिरियगइपाओग्गाणुपुव्वीणामं मणुयगइपाओग्गाणुपुव्वीणामं देवगइपाओग्गाणुपुव्वीणामं चेदि[4]। जं विहायगइणामकम्मं तं दुविहं—पसत्थविहायगइणामं अपसत्थविहायगइणामं चेदि[5]।

जो आनुपूर्वीनामकर्म है, वह चार प्रकारका है—नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम। जो विहायोगतिनामकर्म है, वह दो प्रकारका है—प्रशस्तविहायोगतिनाम और अप्रशस्तविहायोगतिनाम।

जं गोयकम्मं तं दुविहं—उच्चगोयं णीचगोयं चेदि[6]। जं अंतरायकम्मं तं पंचविहं—दाणंतराइयं लाहंतराइयं भोयंतराइयं उवभोयंतराइयं विरियंतराइयं चेदि[7]।

जो गोत्रकर्म है, वह दो प्रकारका है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र। जो अन्तरायकर्म है, वह पांच प्रकारका है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।

बन्ध-योग्य प्रकृतियोंका निरूपण—

[1]पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिया एयाओ बंधपयडीओ[8] ॥५॥

ज्ञानावरणीयकी पाँच, दर्शनावरणीयकी नौ, वेदनीयकी दो, मोहनीयकी छब्बीस, आयुकर्मकी चार, नामकर्मकी सड़सठ, गोत्रकर्मकी दो और अन्तरायकर्मकी पाँच; इस प्रकार एक सौ बीस (१२०) बंधने योग्य उत्तरप्रकृतियाँ कहीं गई हैं ॥५॥

बन्ध-प्रकृतियाँ १२०।

बन्धके अयोग्य प्रकृतियोंका निरूपण—

[2]वण्ण-रस-गंध-फासा चउ चउ इगि सत्त सम्ममिच्छत्तं।
होंति अबंधा बंधण पण पण संघाय सम्मत्तं ॥६॥

---

1. सं० पञ्चसं० २, ३६। 2. २, ३७।

१. षट्० प्र० स० चू० सू० ३८। २. षट्० प्र० स० चू० सू० ३९। ३. षट्० प्र० स० चू० सू० ४०। ४. षट्० प्र० स० चू० सू० ४१। ५. षट्० प्र० स० चू० सू० ४३। ६. षट्० प्र० स० चू० सू० ४५। ७. षट्० प्र० स० चू० सू० ४६। ८. गो० क० ३५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार वर्ण, चार रस, एक गन्ध, सात स्पर्श, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, पाँच बन्धन और पाँच संघात; ये अट्ठाईस (२८) प्रकृतियाँ बन्धके अयोग्य होती हैं ॥६॥

अबन्ध-प्रकृतियाँ २८ ।

उदयके अयोग्य प्रकृतियोंका निरूपण—

[1]वण्ण-रस-गंध-फासा चउ चउ सत्तेक्कमणुदयपयडीओ ।
एए पुण सोलसयं बंधण-संघाय पंचेवं ॥७॥

अणुदयपयडीओ २६ । उदयपयडीओ १२२ ।

चार वर्ण, चार रस, एक गन्ध, सात स्पर्श, पाँच बन्धन और पाँच संघात; ये छब्बीस प्रकृतियाँ उदयके अयोग्य हैं। शेष एक सौ बाईस (१२२) प्रकृतियाँ उदयके योग्य होती हैं ॥७॥

अनुदय-प्रकृतियाँ २६ । उदय-प्रकृतियाँ १२२ ।

उद्वेलना-योग्य प्रकृतियाँ—

[2]आहारय-वेउव्विय-णिर-णर-देवाण होंति जुगलाणि ।
सम्मत्तुच्चं मिस्सं एया उव्वेल्लणा-पयडी ॥८॥

। १३ ।

आहारक-युगल (आहारकशरीर, आहारक-अंगोपांग) वैक्रियिक-युगल (वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक-अंगोपांग) नरक-युगल (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी) नर-युगल (मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी) देव-युगल (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी) सम्यक्त्वप्रकृति, मिश्रप्रकृति (सम्यग्मिथ्यात्व) और उच्चगोत्र ये तेरह उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, अर्थात् इन प्रकृतियोंका उद्वेलनसंक्रमण होता है ॥८॥

उद्वेलन-प्रकृतियाँ ११ ।

ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ—

[3]आवरण विग्घ सव्वेऽकसाय मिच्छत्त णिमिण वण्णचदुं ।
भय णिंदाऽगुरु तेयाकम्मुवघायं धुवाउ सगदालं ॥९॥

। ४७ ।

ज्ञानावरणीय पाँच, दर्शनावरणीय पाँच, अन्तराय पाँच, कषाय सोलह, मिथ्यात्व, निर्माण वर्णचतुष्क (वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श) भय, जुगुप्सा, अगुरुलघु, तैजस, कार्मण और उपघात ये सैंतालीस ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ है; क्योंकि बन्ध-योग्य गुणस्थानमें इनका निरन्तर बन्ध होता है ॥९॥

ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ ४७ ।

अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ—

[4]परघादुस्सासाणं आयवउज्जोयमाउ चत्तारि ।
तित्थयराहारदुगं एगारह होंति सेसाओ ॥१०॥

। ११ ।

परघात, उच्छ्वास, उद्योत, चारों आयु कर्म, तीर्थंकर, आहारकशरीर और आहारक-अंगोपांग ये ग्यारह शेष अर्थात् अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं ॥१०॥

अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ ११ ।

1. सं० पञ्चसं० २, ३८ । 2. २, ४० । 3. २, ४२–४३ । 4. २, ४४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवर्त्तमान प्रकृतियाँ—

[1]साइयरं वेदतियं हस्सादिचउक्क पंच जाईयो।
संठाणं संघडणं छ छक्क चउक्क आणुपुव्वी य ॥११॥
गइचउ दो य सरीरं गोयं च य दोण्णि अंगवंगा य।
दह जुवलाणि [1]तसाई गयणगइदुगं विसट्ठि परिवत्ता ॥१२॥

। ६२ ।

एवं पयडिसमुक्कित्तणं समत्तं।

सातावेदनीय असातावेदनीय, तीनों वेद, हास्यादि-चतुष्क, पाँचों जातियाँ, छहों संस्थान, छहों संहनन, चारों आनुपूर्वियाँ, चारों गतियाँ, औदारिक और वैक्रियिक ये दो शरीर, दोनों गोत्रकर्म, औदारिक और वैक्रियिक ये दो अंगोपांग, त्रसादि दश युगल और विहायोगति-युगल ये बासठ प्रकृतियाँ परिवर्तमान जानना चाहिए ॥११-१२॥

विशेषार्थ—जिन परस्पर-विरोधी प्रकृतियोंका उदय एक साथ संभव नहीं है, उन्हें परिवर्तमान कहते हैं। जैसे साता:वेदनीयका उदय जिस समय किसी जीवके होगा, उस समय उसके असातावेदनीयका उदय संभव नहीं है। किसी एक वेदके उदय होने पर उस समय दूसरे वेदका उदय नहीं हो सकता। इसलिए इन्हें परिवर्तमान प्रकृति कहते हैं। ऐसी परिवर्तमान प्रकृतियाँ ६२ होती हैं जिन्हें ऊपर गिनाया गया है। उनमें जो त्रसादि दश युगल बतलाये हैं, वे इस प्रकार हैं—१ त्रस-स्थावर, २ बादर-सूक्ष्म, ३ पर्याप्त-अपर्याप्त, ४ प्रत्येकशरीर-साधारण-शरीर, ५ स्थिर-अस्थिर, ६ शुभ-अशुभ, ७ सुभग-दुर्भग, ८ सुस्वर-दुःस्वर, ९ आदेय-अनादेय और १० यशःकीर्त्ति-अयशःकीर्त्ति।

इसप्रकार प्रकृतिसमुत्कीर्त्तन नामक द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

---

1. सं० पञ्चसं० २, ४५-४६।

१. तस-थावरं च बादर-सुहुमं पज्जत्त तह अपज्जत्तं।
पत्तेयसरीरं पुण साहारणसरीर थिरमथिरं ॥१॥
सुह-असुह सुहग दुब्भग सुस्सर-दुस्सर तहेव णायव्वा।
आदिज्जमणादिज्जं जसकित्ति-अजसकित्ती य ॥२॥ द ब टिप्पणी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अधिकार

कर्मस्तव

मंगलाचरण और प्रतिज्ञा—

[मूलगा० १] [1]णमिऊण अणंतजिणे तिहुअणवरणाण-दंसणपईवे।
बंधोदयसंतजुयं वोच्छामि *थवं †णिसामेह[1] ॥१॥

त्रिभुवनको प्रकाशित करनेके लिए उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शनरूपी प्रदीपस्वरूप अनन्त जिनोंको नमस्कार करके कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वसे युक्त स्तवको कहूँगा, सो (हे जिज्ञासु जनो, तुम लोग) सुनो ॥१॥

विशेषार्थ—जिसमें विवक्षित विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी अंगोंका विस्तार या संक्षेपसे वर्णन किया जावे उसे स्तव कहते हैं। प्रकृत प्रकरणमें कर्म-सम्बन्धी बन्ध, उदय, उदीरणा आदि सभी विषयोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है, इसलिए इसका नाम कर्मस्तव है।

बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्त्वका स्वरूप—

[2]कंचण-रुप्पदव्वाणं एयत्तं जेम अणुपवेसो त्ति।
अण्णोण्णपवेसाणं तह बंधं जीव-कम्माणं ॥२॥

[3]धण्णस्स× संगहो वा संतं जं पुव्वसंचियं कम्मं।
[4]भुंजणकालो उदओ उदीरणाऽपक्कपाचणफलं व‡ ॥३॥

जिस प्रकार कांचन (स्वर्ण) और रूपा (चाँदी) द्रव्यके प्रदेश परस्पर एक-दूसरेमें अनुप्रविष्ट होकर एकत्वको प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार जीव और कर्मोंके परस्पर एक-दूसरेमें प्रविष्ट हुए प्रदेशोंके एकमेक होकर बंधनेको बन्ध कहते हैं। धान्यके संग्रहके समान जो पूर्व-संचित कर्म हैं, उनके आत्मामें अवस्थित रहनेको सत्त्व कहते हैं। कर्मोंके फल भोगनेके कालको उदय कहते हैं। तथा अपक्क कर्मोंके पाचनको उदीरणा कहते हैं ॥२-३॥

---

1. सं० पञ्चसं० ३, १। 2. ३, २, ६। 3. ३, ५। 4. ३, ३-४।

१. कर्मस्त० गा० १, परं तत्र 'अणंतजिणे' इति स्थाने 'जिणवरिंदे' इति पाठः।

* द ब पयं। † तुलना—णमिऊण णेमिचंदं असहायपरक्कमं महावीरं। बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे थवं वोच्छं॥ गो० क० ८७। × द ब धन्नस्स। ‡ द ब वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानोंमें मूल प्रकृतियोंके बन्धका निरूपण—

[1]सत्तट्ठछक्कठाणा मिस्सापुव्वाणियट्टिणो सत्त ।
छह सुहुमे तिण्णेगं बंधंति अबंधओऽजोओ ॥४॥

आउस्स बंधकाले अट्ठ कम्माणि, सेसकाले सत्त ।

७	७	७	७	७	७	७	७	७	६
८	८	०	८	८	८	८	०	०	०

मोहाउगेहिं विणा ६ । वेयणीयं १ । १ । १ । ० ।+

मिश्रगुणस्थानको छोड़कर अप्रमत्तगुणस्थान तकके छह गुणस्थानवर्ती जीव आयुकर्मके विना सात कर्मोंको, अथवा आयुकर्म-सहित आठ कर्मोंको बाँधते हैं। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवाले जीव आयुकर्मके विना शेष सात कर्मोंको बाँधते हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीव आयु और मोहनीय कर्मके विना छह कर्मोंको बाँधते हैं। ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें ये तीन गुणस्थानवर्ती जीव केवल एक वेदनीय कर्मको ही बाँधते हैं। अयोगिकेवली जिन किसी भी कर्मका बन्ध नहीं करते हैं ॥४॥

मिश्रके विना आदिके छह गुणस्थानोंमें आयुकर्मके बंधकालमें आठ कर्म बँधते हैं और शेष कालमें सात कर्म बँधते हैं। आठवें और नवें गुणस्थानमें आयुके विना सात कर्म बँधते हैं। दशवें गुणस्थानमें मोह और आयु कर्मके विना छह कर्म बँधते हैं। शेषमें एक वेदनीय कर्म बँधता है। चौदहवें गुणस्थानमें कोई कर्म नहीं बँधता। इनकी संदृष्टि इस प्रकार है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६	१	१	१	०
८	८	०	८	८	८	८	०	०	०				

गुणस्थानोंमें मूलप्रकृतियोंके उदयका निरूपण—

[2]सुहुमं ति× अट्ठ वि कम्मा खीणुवसंता य सत्त मोहूणा ।
घाइचउक्केणूणा वेयंति य केवली वि चत्तारि ॥५॥

८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ७ । ७ । ४ । ४ । उदयः ।*

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तकके जीव आठों ही कर्मोंका वेदन करते हैं। उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीव मोहकर्मके विना सात कर्मोंका वेदन करते हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवान् घातिचतुष्कके विना चार कर्मोंका वेदन करते हैं ॥५॥

गुणस्थानोंमें मूल कर्मोंके उदयकी संदृष्टि इस प्रकार है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४

1. सं० पञ्चसं० ३, ११–१२ । 2. ३, १३ ।

+ द 'इति कर्मणां बन्धः कथितः' इत्यधिकः पाठः । × द तिट्ठवि । * द 'इति कर्मणां उदयः कथितः' ईदृक् पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानोंमें मूलप्रकृतियोंकी उदीरणाका निरूपण—

[1]घाइतियं खीणंता तह मोहमुदीरयंति सुहुमंता ।
तइ आउ पमत्तंता णामं गोयं सजोअंता ॥६॥

क्षीणकषायगुणस्थान तकके जीव ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तकके जीव मोहकर्मकी उदीरणा करते हैं । प्रमत्तसंयतगुणस्थान तकके जीव वेदनीय और आयुकर्मकी उदीरणा करते हैं । तथा सयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीव नाम और गोत्रकर्मकी उदीरणा करते हैं ॥६॥

[2]एत्थ मिस्सं वज्ज मिच्छाइपमत्तंताणं मरणावलियासेसे आउस्स उदीरणा णत्थि, तेण सत्त, मिस्सो अट्ठ चेव उदीरेइ, आउस्स मरणावलियासेसे मिस्सगुणाभावादो।

८	८	८	८	८	८	६	६	६
७	७	०	७	७	७	०	०	०

यहाँ पर इतना विशेष जानना चाहिए कि मिश्रगुणस्थानको छोड़कर मिथ्यात्वसे लेकर प्रमत्तसंयतगुणस्थान तकके जीवोंके मरणावलीके शेष रहनेपर आयुकर्मकी उदीरणा नहीं होती है । इसलिए वे सात कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । मिश्रगुणस्थानवाला आठों ही कर्मोंकी उदीरणा करता है, क्योंकि आयुकर्मकी मरणावली शेष रहनेपर मिश्रगुणस्थान नहीं होता ।

नौ गुणस्थानोंमें उदीरणाकी संदृष्टि इस प्रकार है--

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अपू०	अनि०
८	८	८	८	८	८	६	६	६
७	७	०	७	७	७			

दशवें और बारहवें गुणस्थानमें उदीरणाका नियम—

[3]सगुणा अद्धावलिआसेसे सुहुमोदीरेइ पंचेव ।

६	५
५	०

अद्धावलियासेसे खीणो णाम-गोदे चेव उदीरेइ ॥७॥

५	२	०
२		

*

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव अपने गुणस्थानके कालमें आवलीमात्र शेष रह जानेपर नाम और गोत्रको छोड़कर शेष पाँचों ही कर्मोंकी उदीरणा करता है । क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती जीव अपने गुणस्थानके कालमें आवलीमात्र शेष रह जानेपर नाम और गोत्र इन दो ही कर्मोंकी उदीरणा करता है ॥७॥

शेष गुणस्थानोंमें उदीरणाकी संदृष्टि इस प्रकार है--

सू०	उ०
६	५
५	

क्षी०	स०	अ०
५	२	०
२		

1. सं पञ्चसं० ३, १४ । 2. ३, १५ । 3. ३, १६ ।

* द 'इति उदीरणा समाप्ता' इत्यधिकः पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानोंमें मूलप्रकृतियोंके सत्त्वका निरूपण—

[1]जा उवसंता संता अड सत्त य मोहवज्ज खीणम्मि ।
जोयम्मि अजोयम्मि य चत्तारि अघाइकम्माणि ॥८॥

८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।७।४।४।

उपशान्तकषाय गुणस्थान तक आठों ही कर्मोंका सत्त्व रहता है। क्षीणकषायगुणस्थानमें मोहकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका सत्त्व रहता है। सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीमें चार अघातिया कर्म विद्यमान रहते हैं ॥८॥

गुणस्थानोंमें मूलकर्मोंके सत्त्वकी संदृष्टि इस प्रकार है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	४	४

गुणस्थानोंमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका निरूपण—

[मूलगा० २] [2]मिच्छे सोलस पणुवीस सासणे अविरए य दह पयडी ।
चउ छक्कमेयकमसो विरयाविरयाइ बंधवोछिण्णा[१] ॥९॥
[मूलगा०३] दुअ तीस चउरपुव्वे पंचऽणियट्टिम्हि† बंधवुच्छेओ ।
सोलस सुहुमसराए सायं सजोइ-जिणवरिंदे[२] ॥१०॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें सोलह, सासादनमें पच्चीस, अविरतमें दश, देशविरतमें चार, प्रमत्तविरतमें छह और अप्रमत्तविरतमें एक प्रकृति बन्धसे व्युच्छिन्न होती है। अपूर्वकरणमें क्रमसे दो, तीस और चार अर्थात् छत्तीस प्रकृतियाँ, तथा अनिवृत्तिकरणमें पाँच प्रकृतियोंका बन्धसे व्युच्छेद होता है। सूक्ष्मसाम्परायमें सोलह प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं और सयोगि-जिनवरेन्द्रके एक सातावेदनीय बन्धसे व्युच्छिन्न होती है ॥९-१०॥

बन्ध-व्युच्छिन्न प्रकृतियोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०

बन्धके विषयमें कुछ विशेष नियम—

सव्वासिं‡ पयडीणं मिच्छादिट्ठी दु बंधओ भणिओ ।
तित्थयराहारदुअं मुत्तूण य सेसपयडीणं ॥११॥
[3]सम्मत्तगुणणिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं ।
बज्झंति सेसियाओ मिच्छत्तादीहिं हेऊहिं ॥१२॥

मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थंकर और आहारकद्विक, इन तीन प्रकृतियोंको छोड़ करके शेष सभी प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला कहा गया है। इसका कारण यह है कि तीर्थंकर प्रकृतिका सम्यक्त्वगुणके निमित्तसे और आहारकद्विकका संयमके निमित्तसे बन्ध होता है। किन्तु शेष एक सौ सत्तरह प्रकृतियाँ मिथ्यात्व आदि कारणोंसे बन्धको प्राप्त होती हैं। ॥११-१२॥

1. सं० पञ्चसं० ३, १७ । 2. ३, १९-२० । 3. ३, १८ ।

१. कर्मस्त० गा० २ । २. कर्मस्त० गा० ३ ।

† प्रतिषु 'णियट्टीहिं' इति पाठः । ‡ प्रतिषु 'सव्वेसिं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	१६		२५		०
[1] तित्थयराहारदुगूणा मिच्छम्मि	११७	सासादने	१०१	मणुय-देवाउं विणा मिस्से	७४
	३		१९		४६
	३१		४७		७४

	१०		४		६		१
तित्थयर-मणुय-देवाऊहिं	७७	देसे	६७	पमत्ते	६३	आहारदुगेण	५९
सह अविरदे	४३		५३		५७	सह अप्पमत्ते	६१
	७१		८१		८५		८९

	२	०	०	०	०	३०	४		१	१	१	१	१
अपुव्वकरणे सत्तसु	५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६	अणियट्टिपंचसु	२२	२१	२०	१९	१८
भाएसु	६२	६४	६४	६४	६४	६४	९४	भाएसु	९८	९९	१००	१०१	१०२
	९०	९२	९२	९२	९२	९२	१२२		१२६	१२७	१२८	१२९	१३०

	१६	०	०	०	०
सुहुमाइसु	१७	१	१	१	०
	१०३	११९	११९	११९	१२०
	१३१	१४७	१४७	१४७	१४८

आठों कर्मोकी एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंमेंसे बन्धके योग्य प्रकृतियाँ एक सौ बीस पहले बतला आये हैं, उनमेंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें तीर्थंकर और आहारकद्विक ये तीन बन्धके अयोग्य हैं, अतः इन तीनके विना शेष एक सौ सत्तरह प्रकृतियाँ बँधती हैं, मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियोंकी बन्धसे व्युच्छित्ति होती है और इकतीसका अबन्ध रहता है। सासादन गुणस्थानमें एक सौ एक प्रकृतियाँ बँधती है, अनन्तानुबन्धीचतुष्क आदि पच्चीस प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं, उन्नीस बन्धके अयोग्य होती हैं और सैंतालीसका अबन्ध रहता है। मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यायु और देवायुके विना शेष चौहत्तर प्रकृतियाँ बँधती हैं। यहाँपर किसी भी प्रकृतिका बन्ध-व्युच्छित्ति नहीं होती। यहाँ बन्धके अयोग्य छयालीस प्रकृतियाँ हैं और चौहत्तरका अबन्ध रहता है। अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानमें तीर्थंकर, मनुष्यायु और देवायुका बन्ध होने लगता है, अतः उनको मिलाकर सतहत्तर प्रकृतियाँ बँधती हैं, अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्क आदि दश प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं, तेतालीस प्रकृतियाँ बन्धके अयोग्य हैं और इकहत्तरका अबन्ध रहता है। देशविरतमें सड़सठका बन्ध होता है, तिरेपन बन्धके अयोग्य हैं, इक्यासीका अबन्ध रहता है और प्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। प्रमत्तविरतमें तिरेसठका बन्ध होता है, सत्तावन बन्धके अयोग्य हैं, पचासीका अबन्ध रहता है और असातावेदनीय आदि छह प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। अप्रमत्तविरतमें आहारकद्विकका बन्ध होने लगता है, अतः उनसठ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इकसठबन्धके अयोग्य हैं, नवासीका अबन्ध रहता है और एक देवायुकी बन्धसे व्युच्छित्ति होती है। अपूर्वकरणके सात भागोंमेंसे प्रथम भागमें अट्ठावन प्रकृतियोंका बन्ध होता है, बासठ बन्धके अयोग्य हैं, नब्बैका अबन्ध रहता है और निद्राद्विकको बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। अपूर्वकरणके दूसरे, तीसरे, चौथे और

---

1. सं० पञ्चसं० ३, 'एतास्तीर्थंकराहार' इत्यादिगद्यभागः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँचवें भागमें छप्पन प्रकृतियाँ बँधती हैं, चौसठ बन्धके अयोग्य हैं, बानबैका अबन्ध रहता है। इन भागोंमें बन्ध-व्युच्छित्ति किसी भी प्रकृतिकी नहीं होती है। अपूर्वकरणके छठे भागमें बन्धादि तो पाँचवें भागके ही समान ही रहता है किन्तु यहाँ पर देवद्विक आदि तीस प्रकृतियों-की बन्धव्युच्छित्ति होती है। अपूर्वकरणके सातवें भागमें छब्बीस प्रकृतियाँ बँधती हैं, चौरानबै बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ बाईसका अबन्ध रहता है और हास्यादि चार प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। अनिवृत्तिकरणके पाँच भागोंमें से प्रथम भागमें बाईस प्रकृतियाँ बँधती हैं, अट्ठानबै बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ छब्बीसका अबन्ध है और एक पुरुषवेदकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। द्वितीय भागमें इक्कीस प्रकृतियाँ बँधती हैं, निन्यानबै बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ सत्ताईसका अबन्ध है और एक संज्वलन क्रोधकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। तृतीय भागमें बीस प्रकृतियाँ बँधती हैं, सौ प्रकृतियाँ बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ अट्ठाईसका अबन्ध है और एक संज्वलन मानकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। चतुर्थ भागमें उन्नीस प्रकृतियाँ बँधती हैं, एक सौ एक प्रकृतियाँ बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ उनतीसका अबन्ध है और एक संज्वलन मायाकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। पाँचवें भागमें अट्ठारह प्रकृतियाँ बँधती हैं, एक सौ दो प्रकृतियाँ बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ तीसका अबन्ध है और एक संज्वलन लोभकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। सूक्ष्मसाम्परायमें सत्तरह प्रकृतियाँ बँधती हैं, एक सौ तीन प्रकृतियाँ बन्धके अयोग्य हैं, एक सौ इकतीसका अबन्ध है और ज्ञानावरण-पंचक आदि सोलह प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। उपशान्तमोह और क्षीणमोहमें केवल एक सातावेदनीयका बन्ध होता है, एक सौ उन्नीस बन्धके अयोग्य हैं और एक सौ सैंतालीसका अबन्ध रहता है। इन दोनों गुणस्थानोंमें बन्ध-व्युच्छित्ति नहीं होती। सयोगिकेवलीके बन्ध-अबन्धादिप्रकृतियोंकी संख्या तो क्षीणमोहके ही समान है, विशेष बात यह है कि यहाँ पर एकमात्र अवशिष्ट सातावेदनीय भी बन्धसे व्युच्छिन्न हो जाती है। अयोगिकेवलीके न किसी प्रकृतिका बन्ध ही होता है और न बन्ध-व्युच्छित्ति ही। अतएव यहाँ पर बन्धके अयोग्य एक सौ बीस और अबन्ध प्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस कही गई हैं, ऐसा जानना चाहिए। (देखो संदृष्टि सं० १०)

मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ४] [1]मिच्छ णउंसयवेयं णिरयाउ तह य चेव णिरयदुअं।
इगि-वियलिंदियजाई हुंडमसंपत्तमायावं[1] ॥१३॥

[मूलगा० ५] थावर सुहुमं च तहा साहारणयं तहेव अपज्जत्तं।
एए सोलह पयडी मिच्छम्मि अ बंधवुच्छेओ[2] ॥१४॥

।१६।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु तथा नरकद्विक (नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी) एकेन्द्रिय-जाति, विकलेन्द्रिय जातियाँ (द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति) हुंडकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आताप, स्थावर, सूक्ष्म तथा साधारण और अपर्याप्त; ये सोलह प्रकृतियाँ मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥१३-१४॥

मिथ्यात्वमें बन्धसे व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ १६।

---

1. सं० पञ्चसं० ३, २१-२२।

१. कर्मस्त० गा० ११। २. कर्मस्त० गा० १२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासादनगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ६] [1]थीणतियं इत्थी वि य अण तिरियाऊ तहेव तिरियदुगं ।
मज्झिमचउसंठाणं मज्झिमचउ चेव संघयणं[1] ॥१५॥

[मूलगा० ७] उज्जोयमप्पसत्था विहायगइ दुब्भगं अणादेज्जं ।
दुस्सर णिचागोयं सासणसम्मम्हि वोच्छिण्णा[2] ॥१६॥

।२५।

स्त्यानत्रिक (स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला) स्त्रीवेद, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, तिर्यगायु तथा तिर्यग्-द्विक (तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वी) मध्यम चार संस्थान और मध्यम ही चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, अनादेय, दुःस्वर और नीचगोत्र; ये पच्चीस प्रकृतियाँ सासादनसम्यक्त्वमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥१५-१६॥

सासादनमें बन्धसे व्युच्छिन्न २५ ।

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ८] [2]विदियकसायचउक्कं मणुयाऊ मणुयदुव य ओरालं ।
तस्स य अंगोवंगं संघयणादी अविरदस्स[3] ॥१७॥

।१०।

द्वितीयकषायचतुष्क, अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; मनुष्यायु, मनुष्यद्विक (मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी) औदारिकशरीर, औदारिक-अंगोपांग और प्रथम संहनन; ये दश प्रकृतियाँ अविरतसम्यग्दृष्टिके बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥१७॥

अविरतसम्यग्दृष्टिमें बन्धसे व्युच्छिन्न १० ।

देशविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ९] [3]तइयकसायचउक्कं विरयाविरयम्हि बंधवोच्छिण्णा ।

।४।

तृतीय कषायचतुष्क अर्थात् प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार प्रकृतियाँ विरताविरत गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ।

देशविरतमें बन्धसे व्युच्छिन्न ४ ।

प्रमत्तविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

साइयरमरइसोयं तह चेव य अथिरमसुहं च[4] ॥१८॥

[मूलगा०१०] अजसकित्ती य तहा पमत्तविरयम्हि बंधवुच्छेओ ।

।६।

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति; ये छह प्रकृतियाँ प्रमत्तविरत गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥१८॥

प्रमत्तविरतमें बन्धसे व्युच्छिन्न ६ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ३, २३-२५ । 2. ३, २६-२७ । 3. ३, २८-२९ ।

१. कर्मस्त०गा० १३ । २. कर्मस्त०गा० १४ । ३. कर्मस्त०गा० १५ । ४. कर्मस्त० गा० १६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रमत्तविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

देवाउअं च एयं पमत्तइयरम्हि णायव्वो[1] ॥१९॥

।१।

अप्रमत्तविरतनामक सातवें गुणस्थानमें एक देवायु ही बन्धसे व्युच्छिन्न होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥१९॥

अप्रमत्तविरतमें बन्धसे व्युच्छिन्न १।

अपूर्वकरणगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०११] [1]णिद्दा पयला य तहा अपुव्वपढमम्हि बंधवुच्छेओ।

।२।

देवदुयं पंचिंदिय ओरालियवज्ज चदुसरीरं च[2] ॥२०॥

[मूलगा०१२] समचउरस वेउव्विय आहारयअंगुवंगणामं च।

वण्णचउक्कं च तहा अगुरुयलहुयं च चत्तारि[3] ॥२१॥

[मूलगा०१३] तसचउ पसत्थमेव य विहाइगइ थिर सुहं च णायव्वा।

सुहयं सुस्सरमेव य आइज्जं चेव णिमिणं च[4] ॥२२॥

[मूलगा०१४] [2]तित्थयरमेव तीसं अपुव्वछब्भाए बंधवोच्छिण्णा।

।३०।

हास रइ भय दुगुंछा अपुव्वचरिमम्हि बंधवोच्छिण्णा[5] ॥२३॥

।४।

अपूर्वकरणके प्रथम भागमें निद्रा और प्रचला, ये दो प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। अपूर्वकरणके छठे भागमें देवद्विक (देवगति-देवगत्यानुपूर्वी) पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-शरीरको छोड़कर शेष चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक-अंगोपांग, आहारक-अंगोपांग, वर्णचतुष्क (वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श) अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास) त्रसचतुष्क, (त्रस, बादर, प्रत्येकशरीर, पर्याप्त,) प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर, ये तीस प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। अपूर्वकरणके अन्तिम सातवें भागमें हास्य, रति, भय और जुगुप्सा; ये चार प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२०–२३॥

अपूर्वकरणके प्रथम भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न	२	
अपूर्वकरणके छठे भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न	३०	३६
अपूर्वकरणके सातवें भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न	४	

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०१५] [3]पुरिसं चउसंजलणं पंच य पयडी य पंचभागम्हि।

अणियट्टी-अद्धाए जहाकमं बंधवुच्छेओ[6] ॥२४॥

।५।

1. सं० पञ्चसं० ३, ३०–३३। 2. ३, ३४। 3. ३, ३५।

१. कर्मस्त० गा० १७। २. कर्मस्त० गा० १८। ३. कर्मस्त० गा० १९। ४. कर्मस्त० गा० २०। ५. कर्मस्त० गा० २१। ६. कर्मस्त० गा० २२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिवृत्तिकरणकालके पाँचों भागोंमें यथाक्रमसे पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ; ये पाँच प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२४॥

अनिवृत्तिकरणमें बन्ध-व्युच्छिन्न ५।

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०१६] [1]णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि उच्च जसकित्ती।
एए सोलह पयडी सुहुमकसायम्हि वोच्छेओ[1] ॥२५॥

।१६।

ज्ञानावरणीयकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी चार (चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन) उच्चगोत्र और यशःकीर्त्ति; ये सोलह प्रकृतियाँ सूक्ष्मकषायमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२५॥

सूक्ष्मसाम्परायमें बन्धसे व्युच्छिन्न १६।

सयोगिकेवलीके बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृति—

[मूलगा०१७] [2]उवसंत खीण चत्ता जोगिम्हि य सायबंधवोच्छेदो।
णायव्वो पयडीणं बंधस्संतो* अणंतो य[2] ॥२६॥

।१।

उपशान्तमोह और क्षीणमोहगुणस्थानमें कोई प्रकृति बन्धसे व्युच्छिन्न नहीं होती है, अतएव उन्हें छोड़कर सयोगीजिनके एक सातावेदनीय ही बन्धसे व्युच्छिन्न होती है। (अयोगिकेवलीके न कोई प्रकृति बँधती है और न व्युच्छिन्न ही होती है।) इस प्रकार गुणस्थानोंमें बन्धका अन्त अर्थात् व्युच्छेद और अनन्त अर्थात् बन्ध जानना चाहिए ॥२६॥

सयोगिकेवलीमें बन्धसे व्युच्छिन्न १।

इस प्रकार बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन समाप्त हुआ।

गुणस्थानोंमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंकी संख्याका निरूपण—

[मूलगा०१८] [3]पण णव इगि सत्तरसं अड पंच चउर छक्क छच्चेव।
इगि दुग सोलह तीसं बारह उयए अजोयंता[3] ॥२७॥

पहले मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर चौदहवें अयोगिकेवली तक क्रमसे पाँच, नौ, एक, सत्तरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस और बारह प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२७॥

कुछ विशेष प्रकृतियोंके उदय-विषयक नियम—

[4]मिस्सं उदेइ मिस्से अविरयसम्माइचउसु सम्मत्तं।
तित्थयराहारदुअं कमेण जोए पमत्ते य ॥२८॥

---

1. सं० पञ्चसं० ३, ३६। 2. ३, ३९–४०। 3. ३, ३७।

१. कर्मस्त० गा० २३। २. कर्मस्त०गा० २४। गो०क० १०२। केवलमुत्तरार्धे साम्यम्।

३. कर्मस्त० गा० ४। गो० क० २६४।

* द ब बंधो संतो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रप्रकृतिका उदय तीसरे मिश्रगुणस्थानमें होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय चौथे अविरतसम्यक्त्व आदि चार गुणस्थानोंमें होता है। तीर्थङ्करप्रकृतिका उदय तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थानमें और आहारकद्विकका उदय छठे प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें होता है ॥२८॥

आनुपूर्वीके उदय-विषयक कुछ विशेष नियम—

[1]णिरयाणुपुव्वि उदओ णासाए जण्ण णिरयउप्पत्ती।
सव्वाणुपुव्वि-उदओ ण होइ मिस्से जदो ण मरणं से ॥२९॥

यतः सासादनसम्यग्दृष्टिकी नरकमें उत्पत्ति नहीं होती, अतः सासादनगुणस्थानमें नरकगत्यानुपूर्वीका उदय नहीं होता। सभी आनुपूर्वियोंका उदय मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है; क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टिका मरण नहीं होता। (अतएव मिथ्यात्व और अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानमें चारोंका और सासादनगुणस्थानमें तीन आनुपूर्वियोंका उदय होता है।) ॥२९॥

*सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-आहारदुय-तित्थयरेहिं विणा मिच्छादिट्ठिम्मि	५	११७	५	३१
णिरयाणुपुव्विविणा सासणे	९	१११	११	३७
तिरिय-मणुय-देवाणुपुव्वी विणा सम्मामिच्छत्तेण सह मिस्से	१	१००	२२	४८
सव्वाणुपुव्वि-सम्मत्तेण सह अविरदे	१७	१०४	१८	४४
देसे	८	८७	३५	६१
आहारदुएण सह पमत्ते	५	८१	४१	६७
अप्पमत्ते	४	७६	४६	७२
अपुव्वे	६	७२	५०	७६
अणियट्टीए	६	६६	५६	८२
सुहुमाइसु	१	६०	६२	८८
	२	५९	६३	८९
खीणदुचरिमसमए	२	५७	६५	९१
खीणचरिमसमए	१४	५५	६७	९३
तित्थयरेण सह सजोगम्मि	३०	४२	८०	१०६
अजोगम्मि	१२	१२	११०	१३६

आठों कर्मोंकी एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंमेंसे उदयके योग्य प्रकृतियाँ एक सौ बाईस होती हैं, यह बात पहले बतला आये हैं। उनमेंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृति; ये पाँच प्रकृतियाँ उदयके योग्य नहीं हैं, अतः उनके विना शेष रही एक सौ सत्तरह प्रकृतियोंका उदय है। सर्व अनुदय-प्रकृतियाँ इकतीस हैं। यहाँ पर मिथ्यात्व आदि पाँच प्रकृतियोंकी उदयसे व्युच्छित्ति होती है। सासादन गुणस्थानमें नरकानुपूर्वीका उदय नहीं होता, अतः वहाँ पर उदय-योग्य प्रकृतियाँ एक सौ ग्यारह हैं, उदयके अयोग्य ग्यारह और अनुदय-प्रकृतियाँ सैंतीस हैं। यहाँ पर अनन्तानुबन्धीचतुष्क आदि नौ प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। मिश्रगुणस्थानमें तिर्यगानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी और देवानु-

1. सं० पञ्चसं० ३, ३८। * २, 'एताः सम्यक्त्व' इत्यादिगद्यभागः पृ० (५९)।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

पूर्वीका भी उदय नहीं होता, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वका उदय होता है, अतः उदय-योग्य प्रकृतियाँ सौ और उदयके अयोग्य बाईस हैं। अनुदयप्रकृतियाँ अड़तालीस हैं। यहाँ पर एक सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उदयसे व्युच्छित्ति होती है। अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें उदयके योग्य प्रकृतियाँ एक सौ चार हैं; क्योंकि यहाँ पर सभी अर्थात् चारों आनुपूर्वियोंका और सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होता है। उदयके अयोग्य प्रकृतियाँ अट्ठारह और अनुदय-प्रकृतियाँ चवालीस हैं। यहाँ पर अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्क आदि सत्तरह प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। देशविरतमें सत्तासी प्रकृतियोंका उदय होता है, उदयके अयोग्य पैंतीस हैं, अनुदयप्रकृतियाँ इकसठ हैं और प्रत्याख्यानावरणचतुष्क आदि आठ प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। प्रमत्तविरतमें आहारक-द्विकका उदय होता है, अतः उनके साथ उदयके योग्य प्रकृतियाँ इक्यासी हैं, उदयके अयोग्य इकतालीस हैं और अनुदय सड़सठका है। यहाँ पर स्त्यानगृद्धि आदि पाँच प्रकृतियोंकी उदयसे व्युच्छित्ति होती है। अप्रमत्तविरतमें उदयके योग्य छिहत्तर, उदयके अयोग्य छयालीस और अनुदय प्रकृतियाँ बहत्तर हैं। यहाँ पर सम्यक्त्वप्रकृति आदि चारकी उदय-व्युच्छित्ति होती है। अपूर्वकरणमें उदय-योग्य बहत्तर, उदयके अयोग्य पचास और अनुदय-प्रकृतियाँ छिहत्तर हैं। यहाँ पर हास्यादि छह प्रकृतियोंकी उदय-व्युच्छित्ति होती है। अनिवृत्तिकरणमें उदय-योग्य छयासठ, उदयके अयोग्य छप्पन और अनुदय प्रकृतियाँ बियासी हैं। यहाँ पर वेद-त्रिकादि छह प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें उदय-योग्य साठ, उदयके अयोग्य बासठ और अनुदय-प्रकृतियाँ अठासी हैं। यहाँ पर एकमात्र संज्वलन लोभकी उदय-व्युच्छित्ति होती है। उपशान्तमोहमें उदय-योग्य उनसठ, उदयके अयोग्य तिरेसठ और अनुदयप्रकृतियाँ नवासी हैं। यहाँ पर वज्रनाराच और नाराचसंहनन इन दो प्रकृतियोंकी उदय-व्युच्छित्ति होती है। क्षीण-मोहके द्विचरम समय तक सत्तावनका उदय रहता है अतः उदयके अयोग्य पैंसठ और अनुदय प्रकृतियाँ इक्यानवे जानना चाहिए। यहाँ पर द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंकी उदय-व्युच्छित्ति होती है। इसी गुणस्थानके चरम समयमें उदय-योग्य पचपन, उदयके अयोग्य सड़सठ और अनुदय-प्रकृतियाँ तेरानवे हैं। चरम समयमें ज्ञानावरण-पंचकादि चौदह प्रकृतियोंकी उदयसे व्युच्छित्ति होती है। सयोगिकेवली गुणस्थानमें तीर्थङ्कर-प्रकृतिका उदय होता है, अतः उदयके योग्य बियालीस, उदयके अयोग्य अस्सी और अनुदयप्रकृतियाँ एक सौ छह हैं। यहाँ पर संस्थान, संहनन आदि तीस प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। अयोगि-केवली गुणस्थानमें अवशिष्ट रही बारह प्रकृतियोंका उदय होता है, उदयके अयोग्य एक सौ दश और अनुदय-प्रकृतियाँ एक सौ छत्तीस हैं। यहाँ पर मनुष्यगति आदि जिन बारह प्रकृतियोंका उदय होता है, अन्तिम समयमें उन सबकी उदयसे व्युच्छित्ति हो जाती है। (देखो, संदृष्टि-संख्या ११)

मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० १६] [1]मिच्छत्तं आयावं सुहुममपज्जत्तया य तह चेव ।
साहारणं च पंच य मिच्छम्हि य उदयवुच्छेओ [1] ॥३०॥

।५।

मिथ्यात्व, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण; ये पाँच प्रकृतियाँ मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होती है ॥३०॥

मिथ्यात्वमें उदय-व्युच्छिन्न ५।

1. सं० पञ्चसं० ३, ४१।

१. कर्मस्त० गा० २५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासादनगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०२०] [1]अण एइंदियजाई वियलिंदियजाइमेव थावरयं।
एए णव पयडीओ सासणसम्मम्हि उदयवोच्छेओ[१] ॥३१॥

।६।

अनन्तानुबन्धीचतुष्क, एकेन्द्रियजाति, तीनों विकलेन्द्रिय जातियाँ, तथा स्थावर; ये नौ प्रकृतियाँ सासादनसम्यक्त्वमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३१॥

सासादनमें उदय-व्युच्छिन्न ६।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृति—

[मूलगा०२१] [2]सम्मामिच्छत्तेयं सम्मामिच्छम्हि उदयवोच्छिण्णो।

।१।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें एक सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति ही उदयसे व्युच्छिन्न होती है।

सम्यग्मिथ्यात्वमें उदय-व्युच्छिन्न १।

अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[3]विदियकसायचउक्कं तह चेव य णिरय-देवाऊ[२] ॥३२॥

[मूलगा०२२] मणुय-तिरियाणुपुव्वी वेउव्वियछक्क दुब्भगं चेव।
अणादिज्जं च तहा अजसकित्ती अविरयम्हि[३] ॥३३॥

।१७।

द्वितीयकषायचतुष्क, नरकायु, देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकषट्क (वैक्रियिक-शरीर, वैक्रियिक-अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी) दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्त्ति, इस प्रकार सत्तरह प्रकृतियाँ अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३२-३३॥

अविरतसम्यक्त्वमें उदय-व्युच्छिन्न १७।

देशविरतगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०२३] [4]तदियकसायचउक्कं तिरियाऊ तह य चेव तिरियगदी।
उज्जोअ णिच्चगोदं विरयाविरयम्हि उदयवुच्छेओ[४] ॥३४॥

।८।

तृतीयकषायचतुष्क, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, उद्योत और नीचगोत्र, ये आठ प्रकृतियाँ विरताविरतगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३४॥

विरताविरतमें उदय-व्युच्छिन्न ८।

---

1. सं० पंचसं० ३, ४२। 2. ३, ४३ पूर्वार्ध। 3. ३, ४३ उत्तरार्ध, ४४-४५। 4. ३, ४६।

१. कर्मस्त० गा० २६। २. कर्मस्त० गा० २७। ३. कर्मस्त० गा० २८। ४. कर्मस्त० गा० २९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमत्तविरतगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०२४] [1]थीणतियं चेव तहा आहारदुअं पमत्तविरयम्हि ।

।५।

स्त्यानत्रिक (स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला) तथा आहारकद्विक ये पाँच प्रकृतियाँ प्रमत्तविरतमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ।

प्रमत्तविरतमें उदय-व्युच्छिन्न ५ ।

अप्रमत्तविरतगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[2]सम्मत्तं संघयणं अंतिमतियमप्पमत्तम्हि[1] ॥३५॥

।४।

सम्यक्त्वप्रकृति और अन्तिम तीन संहनन, ये चार प्रकृतियाँ अप्रमत्तविरतगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३५॥

अप्रमत्तविरतमें उदय-व्युच्छिन्न ४ ।

अपूर्वकरणगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०२५] [3]तह णोकसायछक्कं अपुव्वकरणे* य उदयवोच्छिण्णं ।

।६।

नोकषायषट्क अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा; ये छह प्रकृतियाँ अपूर्वकरणगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ।

अपूर्वकरणमें उदय-व्युच्छिन्न ६ ।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[4]वेयतियं कोह-माण-मायासंजलण अणियट्टिम्हि[2] ॥३६॥

।६।

तीनों वेद, तथा संज्वलन क्रोध, मान, माया; ये छह प्रकृतियाँ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३६॥

अनिवृत्तिकरणमें उदय-व्युच्छिन्न ६ ।

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०२६] [5]संजलणलोहमेयं सुहुमकसायम्हि उदयवोच्छिण्णा ।

।१।

सूक्ष्मकषायगुणस्थानमें एक संज्वलनलोभ प्रकृति ही उदयसे व्युच्छिन्न होती है ।

सूक्ष्मसाम्परायमें उदय-व्युच्छिन्न १ ।

उपशान्तमोहगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[6]तह वज्जयणारायं णारायं चेव उवसंते[3] ॥३७॥

।२।

---

1. सं० पञ्चसं० ३, ४७ । 2. ३, ४८ पूर्वार्ध । 3. ३, ४८ उत्तरार्ध । 4. ३, ४६ पूर्वार्ध । 5. ३, ४६ उत्तरार्ध । 6. ३, ५० पूर्वार्ध ।

१. कर्मस्त० गा० ३० । २. कर्मस्त० गा० ३१ । ३. कर्मस्त० गा० ३२ ।

* प्रतिषु 'अपुव्वकरणाय' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्रनाराचसंहनन और नाराचसंहनन ये दो प्रकृतियाँ उपशान्तमोहगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३७॥

उपशान्तमोहमें उदय-व्युच्छिन्न २।

क्षीणमोहगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०२७] [1]णिद्दा पयला य तहा खीणदुचरिमम्हि उदयवोच्छिण्णा ।

।२।

निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियाँ क्षीणकषायके द्विचरम समयमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं।

क्षीणमोहके द्विचरमसमयमें उदय-व्युच्छिन्न २।

[2]णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमम्हि[1] ॥३८॥

।१४।

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच और दर्शनावरणकी चक्षुदर्शनावरणादि चार; ये चौदह प्रकृतियाँ क्षीणमोहके अन्तिम समयमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३८॥

क्षीणमोहके चरमसमयमें उदय-व्युच्छिन्न १४।

सयोगिकेवलीगुणस्थानमें उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०२८] [3]अण्णयरवेयणीयं ओरालियतेयणामकम्मं च ।
छच्चेव य संठाणं ओरालिय-अंगवंगं च[2] ॥३९॥

[मूलगा०२९] आदी वि य संघयणं वण्णचउक्कं च दो विहायगई ।
अगुरुगलहुयचउक्कं पत्तेय थिराथिरं चेव[3] ॥४०॥

[मूलगा०३०] सुह-सुस्सरजुयला वि य णिमिणं च तहा हवंति णायव्वा ।
एए तीसं पयडी सजोयचरिमम्हि वोच्छिण्णा[4] ॥४१॥

।३०।

[अन्यतरद्वेदनीयं १ औदारिकशरीरं १ तैजसनाम १ कार्मणशरीरनाम १ संस्थानषट्कं ६ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ वज्रवृषभनाराचसंहननं १ वर्णचतुष्कं ४ विहायोगतिद्विकं २ अगुरुलघुचतुष्कं ४] प्रत्येकशरीरं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ सुस्वर-दुःस्वरौ २ निर्माणं १ चेति एतास्त्रिंशत्प्रकृतयः ३० सयोगकेवलिगुणस्थानस्य चरमसमये उदयतो व्युच्छिन्ना भवन्तीति ज्ञातव्याः ॥३९-४१॥

साता-असातावेदनीयमेंसे कोई एक वेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छहों संस्थान, औदारिक-अंगोपांग, आदिका वज्रवृषभनाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, अगुरुलघुचतुष्क, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ-युगल, सुस्वर-युगल, तथा निर्माण; ये तीस प्रकृतियाँ सयोगिकेवलीके चरमसमयमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३९-४१॥

सयोगिकेवलीमें उदय-व्युच्छिन्न ३०।

---

1. सं० पंचसं० ३, ५० उत्तरार्ध । 2. ३, ५१ । 3. ३, ५२-५४ पूर्वार्ध ।

१. कर्मस्त० गा० ३३ । गो० क० २७० । २. कर्मस्त० गा० ३४ । ३. कर्मस्त० गा० ३५ । ४. कर्मस्त० गा० ३६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[मूलगा०३१] [1]अण्णयरवेयणीयं मणुयाऊ मणुयगई य बोहव्वा ।
पंचिंदियजाई वि य तस सुभगादेज्ज पज्जत्तं[1] ॥४२॥
बायरजसकित्ती वि य तित्थयरं उच्चगोइयं चेव ।
[मूलगा०३२] एए + बारह पयडी अजोइम्हि × उदयवोच्छिण्णा[2] ॥४३॥

।१२।

अयोगगुणस्थाने अन्यतरदेकं वेदनीयं १ मनुष्यायुः १ मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियजातिनाम १ त्रस-सुभगादेय-पर्याप्तानि ४ बादरः १ यशःकीर्तिः १ तीर्थंकरत्वं १ उच्चैर्गोत्रं १ चेति एता द्वादश प्रकृतयः अयोगिकेवलिगुणस्थानचरमसमये व्युच्छित्तयो भवन्तीति ज्ञातव्याः । नानाजीवापेक्षयैव उक्ताः । सयोगा-योगयोस्त्वेकं जीवं प्रति साते असाते वा व्युच्छिन्ने त्रिंशद् द्वादश ३०।१२ । नानाजीवान् प्रति उभयच्छेदा-भावादेकत्रिंशत् ३१ त्रयोदश १३ ज्ञातव्याः ॥४२–४३॥

इति गुणस्थानेषु उत्तरप्रकृतीनामुदयभेदः समाप्तः ।

कोई एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, सुभग, आदेय, पर्याप्त, बादर, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र; ये बारह प्रकृतियाँ अयोगि-जिनके चरम समयमें उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४२–४३ ॥

अयोगि-जिनके उदय-व्युच्छिन्न १२ ।

इस प्रकार उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

[मूलगा०३३] [2]उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जइ विसेसो ।
मोत्तूण तिण्णि ठाणं पमत्त जोई अजोई य[3] ॥४४॥

अथोदीरणाभेदं गाथाचतुष्केणाह—['उदयस्सुदीरणस्स य' इत्यादि ।] उदयस्योदीरणायाश्च स्वामित्वाद् विशेषो न विद्यते, प्रमत्त-योग्यऽयोगित्रयं स्थानं मुक्त्वा अन्यत्र विशेषो नेत्यर्थः ॥४४॥

स्वामित्वकी अपेक्षा उदय और उदीरणामें प्रमत्तविरत, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली; इन तीन गुणस्थानोंको छोड़कर कोई विशेष (अन्तर) नहीं है ॥४४॥

[मूलगा०३४] [3]तीसं बारस उदयं केवलिणं मेलणं च काऊण ।
सायासायं च तहा मणुआउगमवणियं किच्चा[4] ॥४५॥

[मूलगा०३५] सेसं उगुदालीसं जोगीसु उदीरणा य बोहव्वा ।
अवणिय तिण्णि य पयडी पमत्तउदयम्हि पक्खित्ता[5] ॥४६॥

तत्र को विशेषः इति चेदाह—सयोगाऽयोगयोः उदयव्युच्छित्ती त्रिंशद्-द्वादश एकीकृत्य ४२ तत्र साताऽसातमनुष्यायूंष्यपनेतव्यानि ३६ । शेषैकोनचत्वारिंशत्प्रकृत्युदीरणाः ३९ सयोगकेवलिगुणस्थाने भव-न्तीति बोद्धव्याः । तदपनीतसाताऽसातामनुष्यायुःप्रकृतित्रयं प्रमत्तसंयते उदयप्रकृतिपञ्चके प्रक्षेपणीयम् । ततः कारणात् प्रमत्ते अष्टौ द व्युच्छिद्यन्ते, नाप्रमत्तादिषु तत्त्रयोदीरणाऽस्ति; अप्रमत्तादित्वात् संक्लिष्टेभ्योऽ-न्यत्र तदसम्भवात् ॥४५–४६॥

1. सं० पञ्चसं० ३, ५४ उत्त०–५५ । 2. ३,६० । 3. ३, ५८–५९ ।
१. कर्मस्त० गा० ३७ । २. कर्मस्त० गा० ३८ । ३. कर्मस्त० गा० ३९ । गो० क० २७८ ।
४. कर्मस्त० गा० ४० । गो० क० २७९ । ५. कर्मस्त० गा० ४१ ।
+ द एदे । × ब अजोइहि; द अजोगिम्हि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[मूलगा०३६] तह चेव अट्ठ पयडी पमत्तविरदे उदीरणा होंति ।
[1]णत्थि त्ति अजोयजिणे उदीरणा इत्ति णायव्वा[१] ॥४७॥

तथा चैव प्रमत्तविरते षष्ठे गुणस्थाने स्त्यानत्रिकं ३ आहारकद्विकं २ साताऽसाताद्विकं २ मनुष्यायुश्चेति १ अष्टौ प्रकृतयः प्रमत्तसंयतान्तानामुदीरणा भवन्ति; अयोगिजिने उदयप्रकृतीनामुदीरणा नास्तीति ज्ञातव्यम् । उदीरणा नाम अपक्वपाचनं दीर्घकाले उदेष्यतोऽग्रनिषेकान् अपकृष्याऽल्पस्थितिकाऽधस्तननिषेकेषु उदयावल्यां दत्वा उदयमुखेनाऽनुभूय कर्मरूपं त्याजयित्वा पुद्गलान्तररूपेण परिणमयतीत्यर्थः ॥४७॥

सयोगिकेवलीके उदयमें आनेवाली तीस और अयोगिकेवलीके उदयमें आनेवाली बारह; इन दोनोंको मिला करके, तथा सातावेदनीय, असातावेदनीय और मनुष्यायु, इन तीनको घटा करके जो उनतालीस प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, उनकी उदीरणा सयोगिकेवलीके जानना चाहिए। जो सातावेदनीय आदि तीन प्रकृतियाँ घटाई हैं, उन्हें प्रमत्तविरतके उदयमें आनेवाली पाँच प्रकृतियोंमें प्रक्षेप करना चाहिए। इस प्रकार प्रमत्तविरतमें आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है। अयोगिजिनके किसी भी प्रकृतिकी उदीरणा नहीं होती है, ऐसा नियम जानना चाहिए ॥४५-४७॥

[मूलगा०३७] [2]पण णव इगि सत्तरसं अट्ठट्ठ य चउरछक्क छच्चेव ।
इगि दुय* सोलगुदालं उदीरणा होंति जोअंता[२] ÷ ॥४८॥

उदीरणाव्युच्छित्तिमाह—['पण णव इगि सत्तरसं' इत्यादि ।] सयोगपर्यन्तत्रयोदशगुणस्थानेषु यथाक्रममुदीरणाव्युच्छित्तिः पञ्च ५ नवै ६ क १ सप्तदश १७ ऽष्टा ८ ऽष्ट ८ चतुः ४ षट्क ६ षट्कै ६ क १ द्विक २ षोडशै १६ कोनचत्वारिंशत् ३६ प्रकृतयः स्युः ॥४८॥

मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली पर्यन्त क्रमसे पाँच, नौ, एक, सत्तरह, आठ, आठ, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह और उनतालीस प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है ॥४८॥

	५		६
[3]सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-तित्थयराहारदुगेण	११७	णिरयाणुपुव्वी विणा सासणे	१११
विणा मिच्छे	५		११
	३१		३७

	१		१७		८		८
तिरिय-मणुय-देवाणुपुव्वी विणा	१००	सव्वाणुपुव्वी-सम्मत्तेण	१०४	देसे	८७	आहारदुगेण	८१
मिस्सेण सह मिस्से	२२	सह असंजदे	१८		३५	सह अप्पमत्ते	४१
	४८		४४		६१		६७

	४	६	६	१	२	२	१२		३६		०
अप्पमत्तादिसु	७३	६६	३३	५१	५६	५४	५२	तित्थयरेण सह	३६	अजोगे	०
	४६	५३	५६	६५	६६	६८	७०	सजोगे	८३		१२२
	७५	७६	८५	६१	६२	६४	६६		१०६		१४८

तस्यां सत्यां सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्व-तीर्थंकराऽऽहारकद्विकैर्विना मिच्छे (मिथ्यात्वे), नरकगत्यानुपूर्व्यं विना सासादने, तिर्यग्मनुष्यदेवगत्यानुपूर्व्यैर्विना मिश्रेण सह मिश्रे, नरकतिर्यग्मनुष्यदेवगत्यानुपूर्व्यसम्यक्त्वैः सह असंयते, देशसंयमे, आहारकद्वयेन सह प्रमत्ते, अप्रमत्तादिषु [उक्तप्रकारेण उदीरणाप्रकृतयो ज्ञेयाः] ।

इति गुणस्थानेषु उदीरणाप्रकृतयः कथिताः ।

---

1. सं० पंचसं० ३, ५७ । 2. ३, ५६ । 3. ३, 'एताः सम्यक्त्व' इत्यादि गद्यभागः (पृ० ६१) ।

१. कर्मस्त० गा० ४२ । २. कर्मस्त० गा० ४३ । गो० क० २८१ ।

* द दुग । ÷ द जोगंता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदीरणा-योग्य एक सौ बाईस प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, तीर्थंकर और आहारकद्विकके विना मिथ्यात्वगुणस्थानमें एक सौ सत्तरह प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है। यहाँ पर उदीरणाके अयोग्य पाँच, और सर्व अनुदीर्ण प्रकृतियाँ इकतीस हैं। मिथ्यात्व आदि पाँच प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें नरकानुपूर्वीके विना उदीरणा-योग्य प्रकृतियाँ एक सौ ग्यारह हैं, उदीरणाके अयोग्य ग्यारह और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ सैंतीस हैं। यहाँ पर अनन्तानुबन्धी-चतुष्क आदि नौ प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। मिश्रमें तिर्यञ्च, मनुष्य और देव-आनुपूर्वीके विना, तथा सम्यग्मिथ्यात्वके साथ उदीरणाके योग्य प्रकृतियाँ सौ हैं। उदीरणाके अयोग्य बाईस और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ अड़तालीस हैं। यहाँ पर एक सम्यग्मिथ्यात्वकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। अविरतमें उदीरणाके योग्य एक सौ चार हैं, क्योंकि यहाँ सभी आनुपूर्वियोंकी और सम्यक्त्वप्रकृतिकी उदीरणा होने लगती है। उदीरणाके अयोग्य अट्ठारह और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ चवालीस हैं। यहाँ पर अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्क आदि सत्तरह प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। देशविरतमें सत्तासी प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है, उदीरणाके अयोग्य पैंतीस है, अनुदीर्ण प्रकृतियाँ इकसठ हैं और प्रत्याख्यानावरण-चतुष्क आदि आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। प्रमत्तविरतमें आहारकद्विकके साथ उदीरणा-योग्य प्रकृतियाँ इक्यासी हैं, उदीरणाके अयोग्य इकतालीस हैं अनुदीर्ण प्रकृतियाँ सड़सठ हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय और मनुष्यायुकी उदीरणा छठे गुणस्थान तक ही होती है आगे नहीं होती, ऐसा बतला आये हैं, अतएव इस गुणस्थानमें स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, आहारक-शरीर, आहारक-अंगोपांग, सातावेदनीय, असातावेदनीय और मनुष्यायु; इन आठ प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। अप्रमत्तविरतमें उदीरणाके योग्य तिहत्तर, उदीरणाके अयोग्य उनंचास और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ पिचहत्तर हैं। यहाँ पर सम्यक्त्वप्रकृति आदि चार प्रकृतियाँ उदीरणासे व्युच्छिन्न होती हैं। अपूर्वकरणमें उदीरणाके योग्य उनहत्तर, उदीरणाके अयोग्य तिरेपन, और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ उन्यासी हैं। यहाँ पर हास्यादि छह नोकषायोंकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। अनिवृत्तिकरणमें उदीरणाके योग्य तिरेसठ, उदीरणाके अयोग्य उनसठ और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ पचासी है। यहाँ पर तीनों वेद और संज्वलन क्रोध, मान, मायाकषाय, इन छह प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। सूक्ष्मसाम्परायमें उदीरणाके योग्य सत्तावन, उदीरणाके अयोग्य पैंसठ और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ इक्यानवे हैं। यहाँ पर एकमात्र संज्वलनलोभकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। उपशान्तकषायमें उदीरणा-योग्य छप्पन, उदीरणाके अयोग्य छयासठ और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ बानवे हैं। यहाँ पर वज्रनाराचादि दो संहननोंकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। क्षीणकषायके उपान्त्य समय तक चौवन प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है, अतः वहाँ पर उदीरणाके अयोग्य अड़सठ और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ चौरानवे जानना चाहिए। यहाँ पर निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंकी उदीरणाव्युच्छित्ति होती है। इसी गुणस्थानके अन्तिम समयमें उदीरणाके योग्य बावन, उदीरणाके अयोग्य सत्तर और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ छ्यानवे हैं। अन्तिम समयमें ज्ञानावरणकी पाँच, दर्शनावरणकी चार और अन्तरायकी पाँच; इन चौदह प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। सयोगिकेवली गुणस्थानमें तीर्थङ्कर-प्रकृतिको मिलानेसे उदीरणाके योग्य उनतालीस, उदीरणाके अयोग्य तेरासी और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ एक सौ नौ हैं। यतः अयोगिकेवली गुणस्थानमें किसी भी प्रकृतिकी उदीरणा नहीं होती, अतः वहाँ पर उदयसे व्युच्छिन्न होनेवाली बारह प्रकृतियोंमेंसे नौकी उदीरणा सयोगिकेवली गुणस्थानमें ही होती है। शेष तीन (साता-असाता वेदनीय और मनुष्यायु) की उदीरणा छठे गुणस्थानमें होती है, यह पहले बतला आये हैं। इस प्रकार तेरहवें गुणस्थानमें उनतालीस प्रकृतियोंकी उदीरणा-व्युच्छित्ति होती है। अयोगिकेवलीके उदीरणा और उदीरणा-व्युच्छित्तिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य कोई भी प्रकृति शेष नहीं रही है। अतएव उदीरणाके अयोग्य एक सौ बाईस और अनुदीर्ण प्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस जानना चाहिए। (देखो संदृष्टि-संख्या १२)

इस प्रकार उदीरणासे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन समाप्त हुआ।

गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके क्षयका क्रम—

[मूलगा०३८] [1]अण मिच्छ मिस्स सम्मं अविरयसम्माइ-अप्पमत्तंता।
सुर-णिरय-तिरिय-आऊ णिययभवे चेय खीयंति[1] ॥४९॥

[मूलगा०३९] [2]सोलह अट्ठेक्केक्के छक्केक्क चेय खीणमणियट्टी।
एयं सुहुमसराए खीणकसाए य सोलसयं[2] ॥५०॥

[मूलगा०४०] बावत्तरी दुचरिमे तेरह चरिमे अजोइणो खीणा।
अडयालं पयडिसयं खविय जिणं णिव्वुयं वंदे[3] ॥५१॥

अथ गुणस्थानेषु प्रकृतिसत्त्वं गाथापञ्चदशकेनाऽऽह—क्षपकश्रेण्यपेक्षयेदं गाथासूत्रं कथ्यते—['अण मिच्छ मिस्स सम्मं' इत्यादि।] अविरतसम्यक्त्वाद्यप्रमत्तान्ताः अविरतसम्यग्दृष्टयो वा देशसंयता वा प्रमत्तसंयता वा अप्रमत्तसंयता वा अनन्तानुबन्धि-क्रोध-मान-माया-लोभकषायान् ४ मिथ्यात्वं १ मिश्रं सम्यग्मिथ्यात्वं २ सम्यक्प्रकृतिं च क्षयं कुर्वन्ति क्षायिकसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। पश्चात् वैमानिकदेवाः सञ्जाताः। बद्धायुष्कात् घर्मायां नारकाः सञ्जाताः, पश्चात् भोगभूमिजास्तिर्यञ्चो वा जाताः। तत्र सुर-नरक-तिर्यगायूंषि निज-निजभवे सुर-नरक-तिर्यग्भवे क्षयन्ति क्षपयन्ति। अबद्धतत्त्रयायुष्को जीवो मनुष्यायुष्कं भुज्यमानः सन् क्षपकश्रेणिषु चटति ॥४९॥

अनिवृत्तिकरणादिषु क्षययोग्यप्रकृतीनां क्रममाह—['सोलह अट्ठेक्केक्के' इत्यादि।] सप्तप्रकृतीनां असंयतादिचतुर्गुणस्थानेषु कस्मिंश्चिदेकस्मिन् क्षपितत्वात् नरक-तिर्यग्-देवायुषां चाऽबद्धायुष्कत्वेनाऽसत्त्वात् तत्तद्भवे तत्तदायुः क्षपित्वाच्च वा अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने षोडश १६ ष्ठा ८ मेक १ मेकं १ षट्क ६ मेक १ मेक १ मेक १ मेकं १ सत्त्वप्रकृतिव्युच्छित्तिः। अनिवृत्तिकरण-गुणस्थान-संयमधरः क्षपकः अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमे भागे षोडश प्रकृतीः क्षपयति, द्वितीये अष्टौ ८, तृतीये एकाम् १, चतुर्थे एकाम्, पञ्चमे षट् ६, षष्ठे एकाम् १, सप्तमे एकाम् १, अष्टमे एकाम् १, नवमे भागे एकाम् १ च क्षपयतीत्यर्थः। ततः उपरि सूक्ष्मसाम्पराये एकां प्रकृतिं क्षपयति १। क्षीणकषाये षोडश प्रकृतीः क्षपयति। तत्र सत्त्वम् १६। अयोगे द्विचरमसमये द्वासप्ततिप्रकृतीः क्षपयति, तत्र तासां व्युच्छेदः ७२। चरमसमये त्रयोदश प्रकृतीः क्षपयति, तत्र तासां व्युच्छेदः १३। अयोगिनः क्षीणाः अष्टचत्वारिंशदुत्तरप्रकृतिशतं १४८ क्षयं नीता वा ताः, अयोगिनो जिनान् क्षपयित्वा निर्वृतिं निर्वाणं प्राप्तान् अहं वन्दे नमस्करोमि ॥५०-५१॥

अनन्तानुबन्धी-चतुष्क, मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति, ये सात प्रकृतियाँ अविरत-सम्यक्त्वसे लेकर अप्रमत्तपर्यन्त क्षयको प्राप्त होती हैं। तथा देवायु, नरकायु और तिर्यगायु अपने-अपने भवमें ही क्षयको प्राप्त होती हैं। अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमें क्रमसे सोलह, आठ, एक, एक, छह, और एक, एक, एक, एक प्रकृति क्षयको प्राप्त होती है। सूक्ष्मसाम्परायमें एक

---

1. सं० पञ्चसं० ३, ६२। 2. ३, ६३-६५।

१. कर्मस्त० गा० ६। २. कर्मस्त० गा० ७। ३. कर्मस्त० गा० ८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति और क्षीणकषायमें सोलह प्रकृतियाँ क्षय होती हैं। अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमें बहत्तर और चरम समयमें तेरह प्रकृतियाँ क्षीण होती हैं। इस प्रकार एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंका क्षय करके निर्वाणको प्राप्त हुए जिन भगवान्‌की मैं वन्दना करता हूँ ॥४९–५१॥

कुछ विशेष प्रकृतियोंका सत्त्व-असत्त्व-विषयक नियम—

[1]तित्थयराहारदुअं सासणसम्मम्मि णत्थि संतेण।
मिस्सम्मि य तित्थयरं सत्तं खलु णत्थि णियमेण ॥५२॥

सत्त्वसम्भवाऽसम्भवनियममाह—['तित्थयराहारदुअं' इत्यादि।] सासादनसम्यग्दृष्टौ तीर्थङ्कराऽऽहारकद्विकं सत्त्वेन नास्ति। यस्य तीर्थङ्करप्रकृतिसत्त्वं आहारकद्वयस्य सत्त्वं च भवति, स सासादने नाऽऽगच्छतीत्यर्थः। मिथ्यादृष्टौ तीर्थकृत्त्वसत्त्वे आहारकसत्त्वं न, 'तित्थाहारं जुगवं' इति वचनात्। मिश्रे सम्यग्मिथ्यात्वे गुणस्थाने तीर्थकृत्त्वसत्त्वं खलु नियमेन नास्ति ॥५२॥

तीर्थङ्कर और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियोंका सत्त्व निश्चयसे सासादन-सम्यक्त्व-गुणस्थानमें नहीं होता है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका सत्त्व नियमसे मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है ॥५२॥

[2]सुर-णिरय-तिरियाऊहिं विणा मिच्छे	० १४५ ३	तित्थयराहारदुगूणा सासणे	० १४२ ६	आहारदुगेण सह मिस्से	० १४४ ४

तित्थयरेण सह असंजदे	७ १४५ ३	देसे	७ १४५ ३	पमत्ते	७ १४५ ३	अप्पमत्ते	७ १४५ ३	अपुव्वे	० १३८ १०

अणियट्टिणवभाएसु	१६ १३८ १०	८ १२२ २६	१ ११४ ३४	१ ११३ ३५	६ ११२ ३६	१ १०६ ४२	१ १०५ ४३	१ १०४ ४४	१ १०३ ४५

सुहुमे	१ १०२ ४६	उवसंते	० १०१ ४७	खीणदुचरिमे समए	२ १०१ ४७	खीणचरिमसमए	१४ ९९ ४९	सजोगे	० ८५ ६२

अजोगे दुचरिमसमए	७२ ८५ ६३	चरिमसमए	१३ १३ १३५

सुर-नरक-तिर्यगायुस्त्रिकसत्त्वैर्विना मिच्छे (मिथ्यात्वे), तीर्थंकराऽऽहारकद्विकोनाः सासादने, आहारकद्विकेन सह मिश्रे, तीर्थकृत्त्वसत्त्वेन सह असंयते, अथ सप्तप्रकृतीनां असंयतादिचतुर्गुणस्थानेषु एकत्र क्षपयित्वात् नरक-तिर्यग्देवायुषां चाबद्धत्वेन वा तद्भवे क्षपितत्वात् असत्त्वमायुस्त्रिकं एवं दशप्रकृत्यभावात् [उक्तप्रकारेण सत्त्वप्रकृतयो ज्ञेयाः]।

---

1. सं० पञ्चसं० ३, ६१। 2. ३, 'एताः श्वभ्र' इत्यादि गद्यभागः (पृ० ६३)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्वगुणस्थानमें देवायु, नरकायु और तिर्यगायुके विना एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंका सत्त्व और तीनका असत्त्व रहता है। सत्त्व-व्युच्छित्ति किसी भी प्रकृतिकी नहीं होती। सासादन गुणस्थानमें तीर्थङ्कर और आहारक-द्विकके बिना एक सौ ब्यालीस प्रकृतियोंका सत्त्व और छहका असत्त्व रहता है। मिश्रगुणस्थानमें आहारक-द्विककी भी सत्ता पाई जाती है, अतः एक सौ चवालीसका सत्त्व और चार प्रकृतियोंका असत्त्व रहता है। अविरतसम्यक्त्वमें तीर्थंकर प्रकृतिकी भी सत्ता पाई जाती है, अतः एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंका सत्त्व और तीन प्रकृतियोंका असत्त्व रहता है, इस गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टिजीवकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी-चतुष्क और दर्शनमोह-त्रिक इन सात प्रकृतियोंका अभाव पाया जाता है इसलिए सात प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। अविरतके समान देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें भी एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंका सत्त्व, तीनका असत्त्व और सातकी सत्त्व-व्युच्छित्ति जानना चाहिए। अपूर्वकरणमें एक सौ अड़तीस प्रकृतियोंका सत्त्व होता है, क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्व होते समय अनन्तानुबन्धी-चतुष्क और दर्शनमोह-त्रिकका तो क्षय पहले ही कर दिया था। तथा नरकायु, तिर्यगायु और देवायु, इन तीनको भी सत्ता यहाँ नहीं पाई जाती है, अतः दश प्रकृतियोंका असत्त्व रहता है। अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमें क्रमसे सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एक और एक प्रकृतिकी सत्त्वव्युच्छित्ति होती है, अतः इन भागोंमेंसे पहले भागमें एक सौ अड़तीस प्रकृतियोंका सत्त्व और दशका असत्त्व है। यहाँ स्त्यानगृद्धि आदि सोलहकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। दूसरे भागमें एक सौ बाईसका सत्त्व और छब्बीसका असत्त्व है, तथा आठ मध्यम कषायोंकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। तीसरे भागमें एक सौ चौदहका सत्त्व और चौंतीसका सत्त्व है। यहाँ पर एक नपुंसकवेदकी सत्त्वव्युच्छित्ति होती है। चौथे भागमें एक सौ तेरहका सत्त्व और पैंतीसका असत्त्व है। एक स्त्रीवेदकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। पाँचवें भागमें एक सौ बारहका सत्त्व और छत्तीसका असत्त्व है। यहाँ पर हास्यादि छह नोकषायोंकी सत्त्वव्युच्छित्ति होती है। छठे भागमें एक सौ छहका सत्त्व और ब्यालीसका असत्त्व है। एक पुरुषवेदकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। सातवें भागमें एक सौ पाँचका सत्त्व और तेतालीसका असत्त्व है तथा एक संज्वलनक्रोधकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। आठवें भागमें एक सौ चारका सत्त्व और चवालीसका असत्त्व है, तथा एक संज्वलन मानकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। नवें भागमें एक सौ तीनका सत्त्व और पैंतालीसका असत्त्व है, तथा एक संज्वलन मायाकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एक सौ दो प्रकृतियोंका सत्त्व और छयालीसका असत्त्व है, तथा एक संज्वलन लोभकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। उपशान्तमोहमें एक सौ एक प्रकृतियोंका सत्त्व और सैंतालीसका असत्त्व है। यहाँ पर किसी भी प्रकृतिकी सत्त्व-व्युच्छित्ति नहीं होती। क्षीणमोहके द्विचरम समयमें एक सौ एकका सत्त्व और सैंतालीसका असत्त्व रहता है। यहाँ पर निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। क्षीणमोहके चरमसमयमें निन्यानवे प्रकृतियोंका सत्त्व और उनंचास प्रकृतियोंका असत्त्व रहता है। यहाँ पर ज्ञानावरणकी पाँच, दर्शनावरणकी चार और अन्तरायकी पाँच; इन चौदह प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। सयोगिकेवलीके पचासीका सत्त्व और तिरेसठका असत्त्व रहता है। यहाँ पर किसी भी प्रकृतिकी सत्त्व-व्युच्छित्ति नहीं होती। अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमें पचासीका सत्त्व और तिरेसठका असत्त्व रहता है। यहाँ पर आगे कही जानेवाली देव-द्विक आदि बहत्तर प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। अयोगिकेवलीके चरम समयमें तेरहका सत्त्व और एक सौ पैंतीसका असत्त्व रहता है। इसी समय मनुष्य-द्विक आदि आगे कही जानेवाली तेरह प्रकृतियोंकी सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। इस प्रकार सर्व गुणस्थानोंमें कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंका सत्त्व-असत्त्वादि जानना चाहिए। (देखो, संदृष्टि-संख्या १३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०४१] [1]थीणतियं चेव तहा णिरयदुअं चेव तह य तिरियदुयं।
इगि-वियलिंदियजाई आयाउज्जोवथावरयं[1] ॥५३॥

[मूलगा०४२] साहारण सुहुमं चिय सोलस पयडी य होंति णायव्वा।
।१६।
विदियकसायचउक्कं तइयकसायं च अट्ठे*ए[2] ॥५४॥
।८।

[मूलगा०४३] [2]एय णउंसयवेयं इत्थीवेयं तहेव एयं च।
छण्णोकसायछक्कं पुरिसं कोवं च माणो य[3] ॥५५॥

[मूलगा०४४] मायं चिय अणियट्टीभायं गंतूण संतवोछिण्णा।
१।१।६।१।१।१।१

अनिवृत्तिवृत्तिकरणगुणस्थानादिषु ताः षोडशादिप्रकृतयः का इति चेदाह—['थीणतियं चेव तहा' इत्यादि।] अनिवृत्तिकरणस्य नवसु भागेषु सत्त्वव्युच्छेदस्य गाथासार्धत्रयेण सम्बन्धः। स्त्यानगृद्धित्रयं ३ नरकगति-तदानुपूर्व्यद्विकं २ तिर्यग्गति-तदानुपूर्व्यद्विकं २ एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय-जातिचतुष्कं ४ आतपः १ उद्योतः १ स्थावरं १ साधारणं १ सूक्ष्मं १ चेति षोडश प्रकृतयः अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमे भागे क्षयं गताः, तत्र तासां व्युच्छेदः १६ ज्ञातव्यः। द्वितीयभागे अप्रत्याख्यानावरणद्वितीयकषायचतुष्कं ४ प्रत्याख्यानावरण-तृतीयकषायचतुष्कं ४ चेति अष्टौ कषायाः क्षयं गताः, तत्र तासां व्युच्छेदः ८। तृतीयभागे एको नपुंसकवेदो क्षयं गतः १। चतुर्थभागे एकस्य स्त्रीवेदस्य क्षयः १। पञ्चमे भागे 'षण्णोकषायषट्कं' हास्यरत्यऽरति-शोक-भय-जुगुप्सानां षण्णां क्षयः ६। षष्ठे भागे पुंवेदः क्षयं गतः १। सप्तमे भागे संज्वलनक्रोधः क्षयं गतः १। अष्टमे भागे संज्वलनमानः क्षयं गतः १। नवमे भागे संज्वलनमाया क्षयं गता १। यत्र क्षयस्तत्र तद्-व्युच्छित्तिः, अनिवृत्तिकरणस्य भागान् गत्वा सत्त्वव्युच्छित्तिः ॥५३–५५॥

अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें स्त्यानत्रिक, नरकद्विक, तिर्यग्द्विक, एकेन्द्रियजाति, तीन विकलेन्द्रियजातियाँ, आतप, उद्योत, स्थावर, साधारण और सूक्ष्म; ये सोलह प्रकृतियाँ सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती हैं, ऐसा जानना चाहिए। अनिवृत्तिकरणके द्वितीय भागमें द्वितीय अप्रत्याख्यानावरणकषाय-चतुष्क और तृतीय प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क; ये आठ प्रकृतियाँ सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती हैं। तृतीय भागमें एक नपुंसकवेद, चतुर्थभागमें एक स्त्रीवेद, पंचम भागमें छह नोकषाय, छठे भागमें पुरुषवेद, सातवें भागमें संज्वलन क्रोध, आठवें भागमें संज्वलन मान और अनिवृत्तिकरणके नवें भागमें जाकर संज्वलन माया सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती है ॥५३–५५॥

अनिवृत्तिकरणके नवों भागोंमें क्रमशः सत्त्व-व्युच्छिन्न प्रकृतियोंकी अंक-संदृष्टि—

१६, ८, १, १, ६, १, १, १, १

---

1. सं० पञ्चसं० ३, ६८–६९। 2. ३, ७०।

१. कर्मस्त० गा० ४३। २. कर्मस्त० गा० ४४। ३. कर्मस्त० गा० ४५।

* द -'व'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृति—

[1]लोभं च य संजलणं सुहुमकसायम्हि वोच्छिण्णा[१] ॥५६॥

।१।

तद्गाथार्थमाह—['लोभं च य संजलणं' इत्यादि ।] सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मसंज्वलनलोभः व्युच्छिन्नः क्षयं गतः ॥५६॥

सूक्ष्मकषायमें एक संज्वलनलोभप्रकृति सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती है ॥५६॥

सूक्ष्मसाम्परायमें सत्त्व-व्युच्छिन्न १

क्षीणकषायगुणस्थानमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०४५] [2]खीणकसायदुचरिमे णिद्दा पयला य हणइ छदुमत्थो ।
णाणंतरायदसयं दंसण चत्तारि चरिमम्हि[२] ॥५७॥

।२।१४।

क्षीणकषायस्य द्विचरमे उपान्त्यसमये निद्रा-प्रचलाद्वयं छद्मस्थक्षीणकषायो मुनिर्हन्ति, क्षयं नयतीत्यर्थः । चरमसमये ज्ञानावरणपञ्चकं ५ दानाद्यन्तरायपञ्चकं ५ चक्षुर्दर्शनावरणादीनि चत्वारि ४, एवं चतुर्दश प्रकृतयः १४ क्षयं गतास्तत्र व्युच्छेदः ॥५७॥

क्षीणकषायके द्विचरम समयमें छद्मस्थ वीतरागसंयत निद्रा और प्रचला; इन दो प्रकृतियोंका क्षय करता है । तथा चरम समयमें ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच और दर्शनावरणकी चक्षुदर्शनावरणादि चार; इन चौदह प्रकृतियोंका घात करता है ॥५७॥

क्षीणकषायके उपान्त्य समयमें सत्त्व-व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ २, अन्त्य समयमें १४

अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा०४६] [3]देवदुअ× पणसरीरं पंच सरीरस्स बंधणं चेव ।
पंचेव य संघायं संठाणं तह य छक्कं च[३] ॥५८॥

[मूलगा०४७] तिण्णि य अंगोवंगं संघयणं तह य होइ छक्कं च ।
पंचेव य वण्ण-रसं दो गंधं अट्ठ फासं च[४] ॥५९॥

[मूलगा०४८] अगुरुयलहुयचउक्कं विहायगइ-दुग थिराथिरं चेव ।
सुह-सुस्सरजुवला वि य पत्तेयं दुब्भगं अजसं[५] ॥६०॥

[मूलगा०४९] आणादेज्जं णिमिणं च य अपज्जत्तं तह य णीचगोदं च ।
अण्णयरवेयणीयं अजोगिदुचरिमम्हि वोच्छिण्णा[६] ॥६१॥

।७२।

1. सं० पञ्चसं० ३, ७१ प्रथमचरणम् । 2. ३, ७१ चरणत्रयम् । 3. ३, ७२–७५ ।

१. कर्मस्त० गा० ४६ । २. कर्मस्त० गा० ४७ । ३. कर्मस्त० गा० ४८ । ४. कर्मस्त० गा० ४९ । ५. कर्मस्त० गा० ५० । ६. कर्मस्त० गा० ५१ ।

× द—दुगं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयोगे क्षयः सत्त्वव्युच्छेदश्च नास्ति। अयोगस्य द्विचरमसमये द्वासप्ततिक्षयः व्युच्छेदः गाथाचतुष्केण कथ्यते—['देवदुअ पणसरीरं' इत्यादि।] देवगति-देवगत्याऽऽनुपूर्व्यद्विकं २ औदारिकादिशरीरपञ्चकं ५ औदारिकादिशरीरसंघातपञ्चकं ५ समचतुरस्रादिसंस्थानषट्कं ६ औदारिक-वैक्रियिकाऽऽहारकशरीराङ्गोपाङ्ग-त्रिकं ३ वज्रऋषभनाराचादिसंहननषट्कं ६ श्वेत-पीतादिवर्णपञ्चकं ५ कटु-तिक्तादिरसपञ्चकं ५ सुगन्ध-दुर्गन्धौ द्वौ २ कर्कश-कोमलादिस्पर्शाष्टकं ८ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं ४ प्रशस्ताऽप्रशस्तविहायोगतिद्विकं २ स्थिराऽस्थिरे द्वे २ शुभाशुभौ द्वौ २ सुस्वर-दुःस्वरौ द्वौ २ प्रत्येकशरीरं १ दुर्भगः १ अयशः-कीर्त्तिः १ अनादेयं १ निर्माणं १ अपर्याप्तं १ नीचैर्गोत्रं १ अन्यतरद् वेदनीयं सातमसातं वा एकं १ चेत्येवं द्वासप्ततिप्रकृतीः अयोगिद्विचरमसमये अयोगिकेवली क्षपयति क्षयं नयति, तत्र तासां सत्त्वव्युच्छेदः ॥५८–६१॥

देवद्विक, पाँचों शरीर, पाँचों शरीरोंके पाँच बन्धन, पाँच संघात, तथा छह संस्थान, तीन अंगोपांग, तथा छह संहनन, पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध, आठ स्पर्श, अगुरुलघुचतुष्क, विहायोगतिद्विक, स्थिर-अस्थिर शुभ-युगल, सुस्वर-युगल, प्रत्येकशरीर, दुर्भग, अयशःकीर्त्ति, अनादेय, निर्माण, अपर्याप्त, तथा नीचगोत्र और कोई एक वेदनीय; ये बहत्तर प्रकृतियाँ अयोगि-केवलीके द्विचरम समयमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥५८–६१॥

अयोगीके द्विचरम समयमें सत्त्व-व्युच्छिन्न ७२।

अयोगिकेवलीके चरम समयमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ—

[मूलगा० ५०] [1]अण्णयरवेयणीयं मणुयाऊ मणुअदुअं च बोहव्वा।
पंचिंदियजाई वि य तस सुभगादेज्ज पज्जत्तं[1] ॥६२॥
[मूलगा० ५१] बायर जसकित्ती वि य तित्थयरं उच्चगोययं चेव।
एए तेरस पयडी अजोइचरिमम्हि संतवोच्छिण्णा[2] ॥६३॥

।१३।

अयोगिचरमसमये त्रयोदशप्रकृतिसत्त्वव्युच्छेदं गाथाद्वयेनाह—['अण्णयरवेयणीयं' इत्यादि।] अयोगिचरमसमये अन्यतरद्वेदनीयं सातमसातं वा एकं १ मनुष्यायुः १ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वयं २ पञ्चेन्द्रियजातिः १ त्रस-सुभगादेय-पर्याप्तानि चत्वारि ४ बादरत्वं १ यशःकीर्त्तिः १ तीर्थंकरत्वं १ उच्चैर्गोत्रं १ चेत्येताः त्रयोदश प्रकृतीः अयोगिचरमसमयस्थः केवली क्षपयति, तत्र तत्सत्त्वव्युच्छेदः १३ ॥६२–६३॥

कोई एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यद्विक, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, सुभग, आदेय, पर्याप्त, बादर, यशःकीर्त्ति, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र; ये तेरह प्रकृतियाँ अयोगीके चरम समयमें सत्त्वसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥६२–६३॥

अयोगीके चरम समयमें सत्त्व-व्युच्छिन्न १३।

अन्तिम मंगल-कामना—

[मूलगा० ५२] सो मे तिहुअणमहिओ सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो।
दिसउ वरणाण-दंसण-चरित्तसुद्धिं समाहिं च[3] ॥६४॥

---

1. सं० पञ्चसं० ३, ७६–७७।

१. कर्मस्त० गा० ५२। २. कर्मस्त० गा० ५३। ३. कर्मस्त० गा० ५४।

१ गो० क० ३५७। परं तत्रोत्तरार्धे 'दिसदु वरणाणलाहं बुहजणपरिपत्थणं परमसुद्धं' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविः स्वात्मलाभं याचते—['सो मे तिहुअणमहिओ' इत्यादि ।] स सिद्धः स्वात्मोपलब्धिं प्राप्तः मे मह्यं वर-विशिष्ट-केवलज्ञान-दर्शन-यथाख्यातचारित्र-शुद्धिं समाधिं च रत्नत्रयलाभं धर्मध्यान-शुक्लध्यानं वा दिशतु प्रयच्छतु ददातु । स सिद्धः कथम्भूतः ? त्रिभुवनेन जनेन महितः पूजितः । पुनः कथम्भूतः ? बुद्धः केवलज्ञान-दर्शनमयः, निरञ्जनः—द्रव्य-भाव-नोकर्ममलेभ्यो निःक्रान्तः, नित्यः—स्वस्वरूपादच्युतः । एवम्भूतः सिद्धः मह्यं वरज्ञानादिकं दिशतु ॥६४॥

सर्व कर्म-प्रकृतियोंसे रहित, ऐसे वे शुद्ध, बुद्ध, निरंजन और नित्य सिद्ध भगवान् मुझे उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी शुद्धि और समाधिको देवें ॥६४॥

सूरीश्वरश्रेणिशिरोऽवतंसो लोकत्रयी-निर्मित-सत्प्रशंसः ।
श्रीमद्गुरुर्ज्ञानविभूषणेन्द्रो जीयात्प्रभाचन्द्रमुनीन्द्रचन्द्रः ॥*

इस प्रकार सत्त्वसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

कर्मस्तव-चूलिका

बन्ध, उदय और-सत्त्व-व्युच्छित्तिके स्पष्टीकरणार्थ नौ प्रश्न—

[1]छिज्जइ + पढमं बंधो किं उदओ किं च दो वि जुगवं किं ।
किं सोदएण बंधो किं वा अण्णोदएण उभएणं ॥६५॥
संतर† णिरंतरो वा किं वा बंधो हवेज्ज उभयं वा ।
एवं णवविहपण्हं× कमसो वोच्छामि एयं तु ॥६६॥

लक्ष्मीवीरेन्दुचिद्भूषान् पाठकान् परमेष्ठिनः ।
प्रणम्य चूलिकां वक्ष्ये नवधा-प्रश्नपूर्विकाम् ॥

अथ नवभेदबन्धस्य नवधाप्रश्नोत्तरस्वरूपं गाथात्रयोदशकेनाऽऽह । के नव प्रश्ना इति चेदाऽऽह—['छिज्जइ पढमं बंधो' इत्यादि ।] श्रीगुरूणामग्रे शिष्यः नवविधं प्रश्नं करोति—हे भगवन् , प्रथमं पूर्वं बन्धः छिद्यते विनश्यति व्युच्छेदं प्राप्यते, किमिति प्रश्ने १ ? उदयः विपाकः पूर्वं किं च छिद्यते व्युच्छेदः क्रियते २ ? द्वावपि बन्धोदयौ युगपत् समं किं वा छिद्यते ३ ? हे गुरोः, स्वोदयेन स्वकीयप्रकृत्युदयेन बन्धः स्वकीयप्रकृतिबन्धः किं वा भवति ४ ? अन्योदयेन किं बन्धो भवति ५ ? किं उभयेन स्वपरोदयेन बन्धो भवति ६ ? हे भगवन् , किं वा सान्तरो बन्धो भवति ७ ? किं वा निरन्तरः अविच्छिन्नः बन्धो भवति ८ ? किं वा उभयः सान्तर-निरन्तरो बन्धो भवति ९ ? एवममुना प्रकारेण शिष्येण नवविधप्रश्ने कृते सति श्रीगुरुराऽऽह—हे शिष्य, क्रमशः अनुक्रमेण नवविधप्रश्नोत्तरान् एतान् अहं वक्ष्यामि; त्वं शृणु ॥६५–६६॥

गुणस्थानोंमें पहले जो बन्ध-उदयादि व्युच्छित्ति बतलाई गई है, उनमेंसे क्या बन्ध प्रथम व्युच्छिन्न होता है १, क्या उदयकी पहले व्युच्छित्ति होती है २, अथवा क्या वे दोनों ही एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं ३, क्या स्वोदयसे बन्ध होता है ४, क्या परोदयसे बन्ध होता है

1. सं० पञ्चसं० ३, ७८–७९ ।

+ ब छज्जइ । † द संतरो । × ब द पण्हे ।

* इतोऽग्रेऽधस्तनः सन्दर्भ उपलभ्यते—

इति श्रीपञ्चसंग्रहापरनामलघुगोमट्टसारसिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डे बन्धोदयोदीरणासत्त्व-प्ररूपणो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५, अथवा क्या उभयके उदयसे बन्ध होता है ६, क्या बन्ध सान्तर होता है ७, अथवा निरन्तर होता है ८, अथवा क्या उभयरूप होता है (९)? ये नौ प्रकारके प्रश्न हैं। अब मैं क्रमसे इनका उत्तर कहूँगा ॥६५-६६॥

उक्त नौ प्रश्नोंमेंसे अल्प वक्तव्यके कारण सर्वप्रथम द्वितीय प्रश्नका समाधान करते हैं—

[1]देवाउ अजसकित्ती वेउव्वाहार-देवजुयलाइं।
पुव्वं उदओ णस्सइ पच्छा बंधो वि अट्ठण्हं ॥६७॥

।८।

देवायुष्कं १ अयशःकीर्त्तिः १ वैक्रियिकयुगलं २ आहारकयुगलं २ देवयुगलं २ चेत्यष्टानां प्रकृतीनां पूर्वं प्रथमं उदयः नश्यति, पश्चात् बन्धो नश्यति। तथाहि—देवायुषः असंयते उदयव्युच्छित्तिः ४, अप्रमत्ते बन्धव्युच्छेदः ७। अयशस्कीर्त्तेरसंयते उदयव्युच्छित्तिः ४, प्रमत्ते बन्धव्युच्छित्तिः ६। वैक्रियिकशरीर-तदङ्गोपाङ्गद्वयस्य २ देवगति-तदानुपूर्व्यद्वयस्य २ च असंयते उदयव्युच्छित्तिः ४, अपूर्वकरणस्य षष्ठे भागे बन्धव्युच्छित्तिः ८। आहारकद्वयस्य प्रमत्ते उदयव्युच्छित्तिः ६, अपूर्वकरणस्य षष्ठे भागे बन्ध-व्युच्छित्तिः ८ ॥६७॥

देवायु, अयशःकीर्त्ति, वैक्रियिक-युगल, आहारक-युगल और देव-युगल, इन आठ प्रकृतियोंका पहले उदय नष्ट होता है, पीछे बन्ध व्युच्छिन्न होता है ॥६७॥

बन्धसे पूर्व उदय-व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ८।

तृतीय प्रश्नका समाधान—

[2]हस्स रइ भय दुगुंछा सुहुमं साहारणं अपज्जत्तं।
जाइ-चउक्कं थावर सव्वे व कसाय अंत-लोहूणा ॥६८॥
पुंवेदो मिच्छत्तं णराणुपुव्वी य आयवं चेव।
इगितीसं पयडीणं जुगवं बंधुदयणासो त्ति ॥६९॥

।३१।

हासस्य अपूर्वकरणे बन्धोदयौ व्युच्छित्तौ(त्तौ) युगपत् समं भवतः।

बं० ८	रतेः	८	जुगुप्सायाः	८	भयस्य	८	बन्धोदयौ समं भवतः।
उ० ८		८		८		८	

सूक्ष्म-साधारणाऽपर्याप्तैकेन्द्रियादिजातिचतुष्क-स्थावराणां अष्टानां प्रकृतीनां ८ मिथ्यात्वगुणस्थाने बन्धोदयौ समं भवतः $\frac{\text{बं० १}}{\text{उ० १}}$। अन्तलोभोना संज्वलनलोभरहिताः सर्वे कषायाः तेषां युगपत् बन्धोदय-व्युच्छेदौ भवतः।

तथा हि—अनन्तानुबन्धिचतुष्टयस्य सासादने बन्धोदयौ समं व्युच्छेदं प्राप्तौ भवतः $\frac{२}{२}$ अप्रत्याख्यानचतुष्टयस्य देशविरते युगपद् बन्धोदयौ विच्छेदौ भवतः $\frac{५}{५}$। क्रोध-मान-मायासंज्वलनत्रयस्य अनिवृत्तिकरणे समं बन्धोदयौ व्युच्छिन्नौ भवतः $\frac{९}{९}$। पुंवेदस्य अनिवृत्तिकरणे बन्धोदयौ विच्छेदौ समं भवतः $\frac{२}{९}$। मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वगुणस्थाने बन्धोदयौ समं व्युच्छेदो भवतः $\frac{१}{१}$। नरानुपूर्व्याः असंयते बन्धोदयौ व्युच्छिन्नौ समं $\frac{४}{४}$ भवतः।

1. सं० पञ्चसं० ३, ८०। 2. ३, ८१-८२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आतपस्य मिथ्यात्वे बन्धोदयौ व्युच्छिन्नौ[समं] भवतः $\frac{१}{१}$। इति एकत्रिंशत्प्रकृतीनां युगपद् बन्धोदयनाश इति। उदयव्युच्छित्तिर्बन्धव्युच्छित्तिश्च द्वे समं स्त इत्यर्थः ॥६८–६९॥

हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, एकेन्द्रियादि चार जातियाँ, स्थावर, अन्तिम संज्वलनलोभके विना सभी (१५) कषाय, पुरुषवेद, मिथ्यात्व, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आताप; इन इकतीस प्रकृतियोंके बन्ध और उदयका नाश एक साथ होता है ॥६८–६९॥

युगपत् बन्धोदय-व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ३१।

प्रथम प्रश्नका समाधान—

[1]एकासी पयडीणं णाणावरणाइयाण सेसाणं।
पुव्वं बंधो *छिज्जइ पच्छा उदओ त्ति णियमेण ॥७०॥

।८१।

शेषाणां एकाशीतिप्रकृतीनां ज्ञानावरणादीनां पूर्वं प्रथमं बन्धः छिद्यते, पश्चात् उदयः छिद्यते। तथा हि—(उपरि उदयोच्छेदगुणस्थानाङ्कसंख्या, अधस्तात् बन्धोच्छेदगुणस्थानाङ्कसंख्या।) पञ्चानां ज्ञानावरणानां चतुर्णां दर्शनावरणानां पञ्चानामन्तरायाणां एतासां चतुर्दशप्रकृतीनां १४ क्षीणकषायान्ते उदयव्युच्छेदः, सूक्ष्मसाम्पराये बन्धव्युच्छेदः $\frac{१२}{१०}$। यशस्कीर्त्युच्चगोत्रयोः $\frac{१४}{१०}$ स्त्यानगृद्धित्रयस्य $\frac{६}{२}$ निद्रा-प्रचलयोः $\frac{१२}{८}$ सद्वेद्यस्य $\frac{१४}{१३}$ असद्वेद्यस्य $\frac{१४}{६}$ संज्वलनलोभस्य $\frac{१०}{९}$ स्त्रीवेदस्य $\frac{९}{२}$ नपुंसकवेदस्य $\frac{९}{१}$ अरति-शोकयोः $\frac{८}{६}$ नरकायुषः $\frac{४}{१}$ तिर्यगायुषः $\frac{५}{२}$ मनुष्यायुषः $\frac{१४}{४}$ नरकगतेः $\frac{४}{१}$ तिर्यग्गतेः $\frac{५}{२}$ मनुष्यगतेः $\frac{१४}{४}$ पञ्चेन्द्रियजातेः $\frac{१४}{८}$ औदारिकशरीरस्य $\frac{१३}{४}$ तैजसस्य $\frac{१३}{८}$ कार्मणस्य $\frac{१३}{८}$ समचतुरस्रस्य $\frac{१३}{८}$ मध्यमसंस्थानचतुष्टयस्य $\frac{१३}{२}$ हुण्डकस्य $\frac{१३}{१}$ औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गस्य $\frac{१३}{४}$ वज्रवृषभनाराचसंहननस्य $\frac{१३}{४}$ वज्रनाराच-नाराचयोः $\frac{११}{२}$ अर्धनाराच-कीलिकासंहननयोः $\frac{७}{२}$ असम्प्राप्तसृपाटिकासंहननस्य $\frac{७}{२}$ वर्णादिचतुष्टयस्य $\frac{१३}{८}$ नरकगत्यानु-पूर्व्याः $\frac{४}{१}$ तिर्यग्गत्यानुपूर्व्याः $\frac{४}{२}$ अगुरुलघ्वादिचतुष्टयस्य $\frac{१३}{८}$ प्रशस्तविहायोगतेः $\frac{१३}{८}$ अप्रशस्तविहा-योगतेः $\frac{१३}{२}$ त्रस-बादर-पर्याप्तानां $\frac{१४}{८}$ प्रत्येकशरीरस्य $\frac{१३}{८}$ स्थिरस्य $\frac{१३}{८}$ अस्थिरस्य $\frac{१३}{६}$ अशुभस्य $\frac{१३}{६}$ सुभगस्य $\frac{१४}{८}$ दुर्भगस्य $\frac{४}{२}$ सुस्वरस्य $\frac{१३}{८}$ दुःस्वरस्य $\frac{१३}{२}$ आदेयस्य $\frac{१४}{८}$ अनादेयस्य $\frac{४}{२}$ निर्माणस्य $\frac{१३}{८}$ तीर्थविधायितायाः $\frac{१३}{८}$ नीचगोत्रस्य $\frac{५}{२}$ ॥७०॥

शेष बचीं ज्ञानावरणादि कर्मोंकी इक्यासी प्रकृतियोंकी नियमसे पहले बन्ध-व्युच्छित्ति होती है और पीछे उदय-व्युच्छित्ति होती है ॥७०॥

उदयसे पूर्व बन्ध-व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ ८१।

---

1. सं० पञ्चसं० ३, ८३–८७।

* ब छुज्जइ।

पाँचवें प्रश्नका समाधान—

[1]तित्थयराहारदुअं वेउव्वियछक्क णिरय-देवाऊ ।
एयारह पयडीओ बज्झंति परस्स उदयाहिं ॥७१॥

।११।

यासां परोदयेन बन्धः, ताः प्रकृतयाः—तीर्थंकरत्वं १ आहारकद्विकं २ वैक्रियिकषट्कं ६ नरक-देवायुषी २ चेत्येकादश प्रकृतीः परेषामुदयैः बध्नन्ति । तीर्थंकरनाम्नोऽपि परोदयेन बन्धः । कुतः ? तीर्थंकरकर्मोदयसम्भविगुणस्थानयोः सयोगाऽयोगयोस्तद्बन्धाऽनुपलम्भात् । आहारकद्वयस्यापि परोदयेन बन्धः । कुत ? आहारकद्वयोदयरहितयोरप्रमत्तापूर्वयोर्बन्धोपलम्भात् । नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी-देवगति-देवगत्यानुपूर्वी-वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गानां षण्णां बन्धयोग्येषु गुणेषु परोदयेन बन्धः । कुतः ? स्वोदयेन बन्धस्य विरोधात् । देवनारकायुषोः परोदयेन बन्धः, स्वोदयेन बन्धस्य विरोधात् ॥७१॥

तीर्थङ्कर, आहारक-द्विक, वैक्रियिकषट्क, नरकायु और देवायु; ये ग्यारह प्रकृतियाँ परके उदयमें बँधती हैं ॥७१॥

परोदयसे बँधनेवाली प्रकृतियाँ ११ ।

चौथे प्रश्नका समाधान—

[2]णाणंतरायदसयं दंसणचउ तेय कम्म णिमिणं च ।
थिर-सुहजुयले य तहा वण्णचउं अगुरु मिच्छत्तं ॥७२॥
सत्ताहियवीसाए पयडीणं सोदया दु बंधो त्ति ।

।२७।

ज्ञानावरणान्तरायस्य दश प्रकृतयः १० दर्शनावरणस्य चतस्रः ४ बन्धयोग्येषु गुणस्थानेषु स्वोदयेन बध्यन्ते, मिथ्यादृष्ट्यादि-क्षीणकषायान्तेषु एतासां १४ निरन्तरोदयोपलम्भात् । तैजस-कार्मण-निर्माण-स्थिरा-स्थिर-शुभाशुभ-वर्णचतुष्कागुरुलघु-प्रकृतयः द्वादश स्वोदयेनैव बध्यन्ते; ध्रुवोदयत्वात् । मिथ्यात्वस्य स्वोद-येनैव बन्धो भवति; मिथ्यात्वकारणकषोडशप्रकृतिषु पाठात्, बन्धोदययोः समानकाले प्रवृत्तित्वाद्वा । एवं सप्ताधिकविंशतिप्रकृतीनां २७ स्वोदयाद् बन्धो भवतीत्यर्थः ॥७२॥

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी चक्षुदर्शनावरणादि चार, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, निर्माण, स्थिर-युगल, शुभ-युगल, तथा वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और मिथ्यात्व; इन सत्ताईस प्रकृतियोंका स्वोदयसे बन्ध होता है ॥७२॥

स्वोदयसे बँधनेवाली प्रकृतियाँ २७ ।

छठे प्रश्नका समाधान—

सपरोदया दु बंधो हवेज्ज बासीदि सेसाणं ॥७३॥

।८२।

शेषाणां द्व्यशीति-प्रकृतीनां ८२ स्व-परोदयाद् बन्धो भवेत् । तद्यथा—दर्शनावरणपञ्चक ५ वेदद्वय २ कषाय षोडश १६ नोकषाय-नवक ९ तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्युग्म २ तिर्यग्गति-मनुष्यगतियुगल २ एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियजात्यौ ५ दारिकौदारिकाङ्गोपाङ्ग २ संस्थानषट्क ६ संहननषट्क ६ तिर्यग्गति-मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्व्य २ उपघात १ परघातो १ च्छ्वासा १ तपो १ द्योत १ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगति २ त्रस १

---

1. सं० पञ्चसं० ३, ८८, तथाऽग्रेतनगद्यभागः । 2. ३, ८९-९० तथाऽग्रेतनगद्यभागः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थावर १ बादर १ सूक्ष्म १ पर्याप्तापर्याप्त २ प्रत्येक १ साधारण १ सुभग १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुःस्वराऽऽ १ देयानादेय २ यशोऽयशः कीर्ति २ नीचोच्चगोत्र २ नामिकानां द्व्यशीतिप्रकृतीनां ८२ स्वपरोदयाद् बन्धो द्रष्टव्यः, स्वोदयेनेव परोदयेनापि बन्धाविरोधात् ॥७३॥

इति द्वितीयप्रश्नत्रयस्य प्रत्युत्तरो जातः ।

शेष रही व्यासी प्रकृतियोंका बन्ध स्वोदयसे भी होता है और परोदयसे भी होता है ॥७३॥

स्व-परोदयसे बँधनेवाली प्रकृतियाँ ८२ ।

आठवें प्रश्नका समाधान—

[1]तित्थयराहारदुअं चउ आउ धुवा य वेइ† चउवण्णं‡ ।
एयाणं सव्वाणं पयडीणं णिरंतरो बंधो ॥७४॥

।५४।

तृतीयप्रश्नत्रयप्रकृतीर्गाथाचतुष्टयेनाऽऽह—['तित्थयराहारदुअं' इत्यादि ।]

तीर्थकरत्वं १ आहारकद्विकं २ आयुश्चतुष्कं ४ सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवबन्धप्रकृतयः ४७ चेति एकीकृताश्चतुःपञ्चाशत् ५४ । एतासां सर्वासां चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीनां निरन्तरो बन्धो भवति । तद्यथा—पञ्चज्ञानावरण ५ नव दर्शनावरण ९ पञ्चान्तराय ५ मिथ्यात्व १ षोडश कषाय १६ भय-जुगुप्सा २ तैजस-कार्मणाऽऽ २ गुरुलघूपघात २ निर्माण १ वर्णचतुष्कानीति ४७ सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवबन्धाः स्युः, एतासां ध्रुवबन्धो भवति । कुतः ? बन्धयोग्यगुणस्थाने नित्यं बन्धोपलम्भात् । एताः ४७ आयुश्चतुष्टयाहारकद्वय-तीर्थकरैर्युताश्चतुःपञ्चाशत् ५४ । एताश्च बन्धं यान्ति निरन्तरमिति ॥७४॥

ध्रुवबन्धस्य निरन्तरबन्धस्य च को विशेषः ? महान् विशेषो यतः श्लोकौ—

[2]बन्धयोग्यगुणस्थाने याः स्वकारणसन्निधौ ।
सर्वकालं प्रबध्यन्ते ध्रुवबन्धाः भवन्ति ताः ॥१॥
बन्धकालो जघन्योऽपि यासामन्तर्मुहूर्त्तकः ।
बन्धाऽऽसमाप्तितस्तत्र ता निरन्तर-बन्धनाः ॥२॥

तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, चारों आयु, और ध्रुवबन्धी सैंतालीस प्रकृतियाँ, इन सब चौवन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होता है ॥७४॥

निरन्तर बँधनेवाली प्रकृतियाँ ५४ ।

सातवें प्रश्नका समाधान—

[3]संठाणं संघयणं अंतिमदसयं च साइ उज्जोयं ।
इगि विगलिंदिय थावर संढित्थी अरइ सोय अयसं च ॥७५॥
दुब्भग दुस्सरमसुभं सुहुमं साहारणं अपज्जत्तं ।
णिरयदुअमणादेयं असायमथिरं विहायमपसत्थं ॥७६॥
चउतीसं पयडीणं बंधो णियमेण संतरो भणिओ ।

।३४।

समचतुरस्रसंस्थान-वज्रऋषभनाराचसंहननाभ्यां विना संस्थान-संहननपञ्चकमित्यन्त्यदशकं १० आतपः १ उद्योतः १ एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियजातिचतुष्कं ४ स्थावरं १ षण्ढस्त्रीवेदौ २ अरतिः १ शोकः १ अयशः-

---

1. ३, ६३ । 2. ३, ६४-६५ । 3. ३, ६६-६८ ।
†ब चेइ । ‡ब वण्णा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कीर्तिः १ दुर्भगः १ दुःस्वरः १ अशुभं १ सूक्ष्म १ साधारणं १ अपर्याप्तं १ नरकगति-तदानुपूर्वीद्विकं २ अनादेयं १ असातं १ अस्थिरं १ अप्रशस्तविहायोगतिश्चेत्येतासां चतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनां ३४ सान्तरो बन्धो भणितः ॥७५-७६॥

को नाम सान्तरं बन्धः ? उक्तञ्च—

[1]बन्धो भूत्वा क्षणं यासामसमाप्तो निवर्तते।
बन्धाऽपूर्तेः क्षणेनैताः सान्तरा विनिवेदिताः ॥
[2]अन्तर्मुहूर्त्तमात्रत्वाज्जघन्यस्यापि कर्मणाम्।
सर्वेषां बन्धकालस्य बन्धः सामयिकोऽस्ति नो ॥

अन्तिम पाँच संस्थान, अन्तिम पाँच संहनन, सातावेदनीय, उद्योत, एकेन्द्रियजाति, तीन विकलेन्द्रियजातियाँ, स्थावर, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, अरति, शोक, अयशःकीर्त्ति, दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, नरकद्विक, अनादेय, असातावेदनीय, अस्थिर और अप्रशस्त-विहायोगति; इन चौंतीस प्रकृतियोंका नियमसे सान्तर बन्ध कहा गया है ॥७५-७६॥

विशेषार्थ—जिसका बन्ध अन्तर-रहित होता है उसे निरन्तरबन्धी प्रकृति कहते हैं और जिसका बन्ध अन्तर-सहित होता है, उसे सान्तरबन्धी प्रकृति कहते हैं।

सान्तर बँधनेवाली प्रकृतियाँ ३४।

नवें प्रश्नका समाधान—

बत्तीस सेसियाणं बंधो समयम्मि उभओ वि ॥७७॥

।३२।

इति पयडीणं बंधोदयोदीरण-सत्ताभेयं समत्तं
कम्मत्थव-चूलिका समत्ता।

शेषाणां द्वात्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धः उभयथा सान्तर-निरन्तरो जिनसिद्धान्ते भणितः। तद्यथा—सुरद्विकं २ मनुष्यद्विकं २ औदारिकद्विकं २ वैक्रियिकद्विकं २ प्रशस्तविहायोगतिः १ वज्रवृषभनाराचं १ परघातोच्छ्वासौ २ समचतुरस्रसंस्थानं २ पञ्चेन्द्रियजातिः १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ शुभ १ सुभग १ सुस्वर १ आदेय १ यशस्कीर्त्तयः १ सातं १ हास्य-रती २ पुंवेदः १ गोत्रद्विकं २ चेति द्वात्रिंशत्प्रकृतयः सप्रतिपक्षे सान्तरा भवन्ति, तस्मिन्नष्टे निरन्तरोदयबन्धा भवन्ति। तत्र सुरद्विकं नरक-तिर्यङ्-मनुष्यद्विकैः मिथ्यादृष्टौ, तिर्यङ्-मनुष्यद्विकाभ्यां सासादने, मनुष्यद्विकेन मिश्रासंयतयोश्च सप्रतिपक्षमिति ज्ञेयम् ॥७७॥

इति तृतीयप्रश्नत्रयस्योत्तरो जातः❀।

शेष बची बत्तीस प्रकृतियोंका बन्ध परमागममें उभयरूप अर्थात् सान्तर और निरन्तर कहा गया है ॥७७॥

उभयबन्धी प्रकृतियाँ ३२।

इस प्रकार नवप्रश्नात्मक चूलिका समाप्त हुई।

कर्मस्तव नामक तीसरा अधिकार समाप्त हुआ।

---

1. सं॰ पञ्चसं॰ ३, ९९। 2. ३, १००-१०१।

❀इतोऽग्रेऽधस्तनः सन्दर्भ उपलभ्यते—

इति श्रीपंचसंग्रहाऽपरनामलघुगोमट्टसारे सिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डे नवप्रश्नोत्तरचूलिका-व्याख्या-तृतीयोऽधिकारः ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ-अधिकार

शतक

मंगलाचरण और प्रतिज्ञा—

सयलससिसोमवयणं णिम्मलगत्तं पसत्थणाणधरं।
पणमिय सिरसा वीरं सुयणाणादो पदं वोच्छं ॥१॥

श्रीवीरेन्दुसुधीभूषान् साधून् सद्गुणधारकान्।
प्रणिपत्य स्तवं (पदं) वक्ष्ये वीरनाथमुखोद्भवम् ॥

वक्ष्ये अहं वक्ष्यामि। किं तत्? पदं स्थानं स्थलम्, 'थवं' पाठे वा स्तवं द्वादशाङ्गश्रुतरहस्यम्। कुतः? श्रुतज्ञानात्। किं कृत्वा? पूर्वं वीरं शिरसा प्रणम्य। विशिष्टां मां लक्ष्मीं राति ददाति गृह्णातीति वीरः, तं वीरं महावीरं मस्तकेन नमस्कृत्य। कथम्भूतम्? सम्पूर्णचन्द्रसदृशसौम्यवदनम्। पुनः किंविशिष्टम्? निर्मलगात्रं प्रस्वेद-मल-मूत्रादिरहितशरीरम्। पुनः किंलक्षणम्? प्रशस्तज्ञानधरम्—गृहस्थाऽवस्थायां मत्यादिप्रशस्तज्ञानत्रयधारकम्, दीक्षानन्तरं मनःपर्ययज्ञानधारकम्, घातिक्षयानन्तरं केवलज्ञानधारकम्। एवम्भूतं वीरं नत्वा पदं स्तवं वा वक्ष्ये ॥१॥

सम्पूर्ण चन्द्रके समान सौम्य मुख, निर्मल गात्र और प्रशस्त ज्ञानके धारक श्रीवीरभगवान्‌को मस्तक नवा करके प्रणामकर मैं श्रुतज्ञानसे पदका उद्धार करके कहूँगा ॥१॥

[1]णाणोदहिणिस्संदं विण्णाणतिसाहिघायजणणत्थं।
भवियाण [+]अमियभूयं जिणवयणरसायणं इणमो ॥२॥

जिनवचनरसायनं इदानीं भो भव्या यूयं शृणुत। कथम्भूतं जिनवचनम्? रसामृतम्—भविकानां भव्यजनानां अमृतभूतं जन्म-जरा-मरणहरम्। पुनः किम्भूतम्? जिनोदधिनिर्यासम्—ज्ञानसमुद्रस्य निर्यासं सारभूतम्। किमर्थम्? विज्ञानतृषाभिघातजननार्थम् ॥२॥

यह जिनवचनरूप रसायन श्रुतज्ञानरूप समुद्रका निष्यन्द (निचोड़ या साररूप बिन्दु) है, तथापि भव्य जीवोंकी विशिष्ट ज्ञानकी प्राप्तिरूप तृषा-पिपासाको शान्त करनेके लिए अमृतके समान है ॥२॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १।
÷ द् ब अमय०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[मूलगा० १] [1]सुणह इह जीवगुणसण्णिएसु॰ ठाणेसु सारजुत्ताओ ।
वोच्छं कदिवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवादाओ[1] ॥३॥

दृष्टिवादाङ्गतः कतिपयगाथाः सारयुक्ताः तत्त्वसहिताः अहं वक्ष्ये । क ? स्थानेषु मार्गणादिस्थानेषु । कथम्भूतेषु ? जीवगुणसन्निभेषु—जीवानां गुणाः परिणामाः, तत्सदृशस्थानेषु जीवसमास-गुणस्थानक-सन्निभेषु ॥३॥

जीवसमास और गुणस्थान-सम्बन्धी सार-युक्त कुछ गाथाओंको दृष्टिवादसे उद्धार करके मैं कहूँगा, सो हे भव्यजीवो ! तुम लोग सावधान होकर सुनो ॥३॥

[मूलगा० २] [2]उवओगा जोगविही जेसु य ठाणेसु जेत्तिया अत्थि ।
जं पच्चइओ बंधो हवइ जहा जेसु ठाणेसु[2] ॥४॥

[मूलगा० ३] बंध-उदया† उदीरण‡विधिं च तिण्हं पि तेसिं संजोगो ।
बंध-विधाणो× य तहा किंचि समासं पवक्खामि[3] ॥५॥

उपयोगा ज्ञान-दर्शनोपयोगाः । योगविधयः औदारिकादिसप्तकाययोगाः, मनो-वचनानामष्टौ; तेषां विधयः विधानानि कर्त्तव्यानि येषु स्थानेषु मार्गणादिस्थानेषु यावन्ति सन्ति, तान् तेषु प्रवक्ष्यामि । यत्प्रत्ययः बन्धः मिथ्यात्वाद्यास्रवबन्धः येषु स्थानेषु यथा भवति तथा तं तेषु प्रवक्ष्यामि । बन्धोदयोदीरणविधिं मूलोत्तरप्रकृतीनां बन्धविधिं उदयविधानं उदीरणाविधिं चकारात्सत्त्वविधिं तेषु गुणेषु स्थानेषु प्रवक्ष्यामि—तेषां त्रयाणां बन्धोदयोदीरणानां संयोगान् प्रवक्ष्यामि । क ? बन्धविधाने बन्धविधौ तथा किञ्चित् समासं इति जीवसमासान् प्रवक्ष्यामि तेषु स्थानेषु ॥४–५॥

[3] ये सन्ति यस्मिन्नुपयोगयोगाः सप्रत्ययास्तान्निगदामि तत्र ।
जीवे गुणे वा परिणामतोऽहमेकत्र बन्धादिविधिं च किञ्चित् ॥१॥

जिन जीवसमास या गुणस्थानोंमें जितने योग और उपयोग होते हैं, जिन-जिन स्थानोंमें जिन-जिन प्रत्ययोंके निमित्तसे जिस प्रकार बन्ध होता है; तथा बन्ध, उदय और उदीरणाके जितने विकल्प संभव हैं और उन तीनोंके संयोगरूप जितने भेद हो सकते हैं, उन्हें तथा बन्धके चारों भेदोंका मैं संक्षेपसे कुछ व्याख्यान करूँगा ॥४–५॥

[मूलगा० ४] [4]एइंदिएसु चत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छच्चेव ।
पंचिंदिएसु एवं चत्तारि हवंति ठाणाणि[4] × ॥६॥

[मूलगा० ५] [5]तिरियगईए चोद्दस हवंति सेसासु जाण दो दो दु ।
मग्गणठाणस्सेवं णेयाणि समासठाणाणि[5] ॥७॥

+अथ मार्गणासु जीवसमासाः कथ्यन्ते—तिर्यग्गतौ चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति । शेषासु तिसृषु गतिषु द्वौ द्वौ जीवसमासौ भवतः । एवं गतिमार्गणायां जीवसमासा ज्ञातव्याः ॥७॥

जीवसमासके सर्व स्थान चौदह हैं, उनमेंसे एकेन्द्रियोंमें चार स्थान होते हैं । विकलेन्द्रियोंमें छह स्थान होते हैं और पंचेन्द्रियोंमें चार स्थान होते हैं । तिर्यग्गतिमें चौदह जीवसमास होते

1. सं० पञ्चस० ४, २ । 2. ४, ३ । 3. ४, ३ । 4. ४, ४ । 5. ४, ५ ।

१. शतक० १ । २. शतक० २ । ३. शतक० ३ । ४. शतक० ४ । ५. शतक० ५ ।

॰द -सण्णिहेसु । †ब -उदय । ‡ब -उदीरणा । ×द ब -विधाणे वि । +संस्कृतटीका नोपलभ्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। शेष तीन गतियोंमें दो-दो ही जीवसमास जानना चाहिए। इस प्रकार सर्व मार्गणास्थानोंमें भी जीवसमासस्थानोंको लगा लेना चाहिए ॥६-७॥

अब चौदह मार्गणाओंमें जीवसमासोंको बतलाते हैं—

णिरय-णर-देवगईसुं सण्णी पज्जत्तया अपुण्णा य।
एइंदियाइं चउदस तिरियगईए हवंति सव्वे वि ॥८॥
एइंदिएसु बायर-सुहुमा चउरो अपुण्ण पुण्णा य।
पज्जत्तियरा वियल† सयल‡ सण्णी असण्णिदरा पुण्णियरा ॥९॥
पंचसु थावरकाए बायर सुहुमा अपुण्ण पुण्णा य।
वियले पज्जत्तियरा सयले सण्णियर पुण्णियरा ॥१०॥

नरकगतौ पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ द्वौ, मनुष्यगत्यां पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तौ द्वौ द्वौ, देवगतौ पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ द्वौ, तिर्यग्गत्यां एकेन्द्रियादिचतुर्दशजीवसमासाः सर्वे १४ भवन्ति ॥८॥

ते के ?

बायर-सुहुमेगिंदिय वि-ति- चउरक्खा असण्णि-सण्णी य।
पज्जत्ताऽपज्जत्ता जीवसमासा चउदसा होंति ॥२॥ इति।

१ गतिमार्गणायां जीवसमासाः—

न०	ति०	म०	दे०
२	१४	२	२

इन्द्रियमार्गणायां एकेन्द्रियेषु बादर-सूक्ष्मैकेन्द्रियौ पर्याप्ताऽपर्याप्तौ इति चत्वारः ४। विकले विकलत्रये द्वीन्द्रिये त्रीन्द्रिये चतुरिन्द्रिये च पर्याप्तेतरौ निजपर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ द्वौ प्रत्येकं भवतः २, २, २। सकले पञ्चेन्द्रिये संज्ञ्यसंज्ञि-पर्याप्ताऽपर्याप्ताश्चत्वारः ४। ॥९॥

२ इन्द्रियमार्गणायां जीवसमासाः—

ए०	द्वी०	त्री०	च०	पं०
४	२	२	२	४

कायमार्गणायां पृथिव्यादिपञ्चसु प्रत्येकं बादर-सूक्ष्मौ पर्याप्ताऽपर्याप्तौ इति चत्वारः स्थावरकाये जीवसमासा भवन्ति। विकले विकलत्रये पर्याप्ताऽपर्याप्ता इति षट्। सकले पञ्चेन्द्रिये संज्ञ्यसंज्ञि-पर्याप्ताऽपर्याप्ता इति चत्वारः। एवं दश जीवसमासाः १० त्रसकाये भवन्ति ॥१०॥

३ कायमार्गणायां जीवसमासाः—

पृ०	अ०	ते०	वा०	व०	त्र०
४	४	४	४	४	१०

नरक, मनुष्य और देव इन तीन गतियोंमें संज्ञि-पर्याप्तक और संज्ञि-अपर्याप्तक ये दो-दो जीवसमास होते हैं। तिर्यग्गतिमें एकेन्द्रियको आदि लेकर संज्ञिपंचेन्द्रिय तकके जीवोंकी अपेक्षा सर्व ही चौदह जीवसमास होते हैं (१)। इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें बादर-पर्याप्त, बादर-अपर्याप्त, सूक्ष्म-पर्याप्त और सूक्ष्म-अपर्याप्त ये चार जीवसमास होते हैं। विकलेन्द्रियोंमें द्वीन्द्रिय-पर्याप्त, द्वीन्द्रिय-अपर्याप्त; त्रीन्द्रिय-पर्याप्त, त्रीन्द्रिय-अपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय-पर्याप्त और चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्त ये छह जीवसमास होते हैं। पंचेन्द्रियोंमें असंज्ञि-पर्याप्त, असंज्ञि-अपर्याप्त; संज्ञि-पर्याप्त और संज्ञि-अपर्याप्त ये चार जीवसमास होते हैं (२)। कायमार्गणाकी अपेक्षा पाँचों स्थावरकायोंमेंसे प्रत्येकमें बादर-सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्त; ये चार-चार जीवसमास होते हैं। त्रसजीवोंमेंसे विकलत्रयोंमें प्रत्येकके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो-दो जीवसमास होते हैं। तथा सकलेन्द्रियोंमें संज्ञी, असंज्ञी तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो-दो मिलकर चार जीवसमास होते हैं (३) ॥८-१०॥

---

†ब -वियले। ‡ब सयले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिय वचि चउ मणजोए सण्णी पज्जत्तओ दु णायव्वो ।
असच्चमोसवचिए पंच वि बेइंदियाइ पज्जत्ता ॥११॥
ओरालमिस्स-कम्मे सत्ताऽपुण्णा य सण्णिपज्जत्तो ।
ओरालकायजोए पज्जत्ता सत्त णायव्वा ॥१२॥
वेउव्वाहारदुगे सण्णी पज्जत्तओ मुणेयव्वो ।
वेउव्वमिस्सजोए सण्णि-अपज्जत्तओ होइ ॥१३॥

योगमार्गणायां त्रिकवचनयोगेषु चतुर्मनोयोगेषु च पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्त एक एव ज्ञातव्यः १ । असत्यमृषावचि अनुभयवाग्योगे द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-संज्ञ्यऽसंज्ञिपर्याप्ताः पञ्च जीवसमासाः भवन्ति ॥११॥

औदारिकमिश्रकाययोगे कार्मणकाययोगे च अपर्याप्ताः सप्त, सयोगिकेवलिनः संज्ञिपर्याप्त एकः, एवमष्टौ ८ । सयोगस्य कपाटयुग्मसमुद्घातकाले औदारिकमिश्रकाययोगः, दण्ड-(द्वय-) प्रतरयोः लोकपूरण-काले च कार्मणकाययोग इति । औदारिककाययोगे सप्त पर्याप्ताः ७ ज्ञातव्याः ॥१२॥

वैक्रियिककाययोगे संज्ञिपर्याप्त एकः १ । आहारकद्विके संज्ञ्यऽपर्याप्त एक एव १ ज्ञातव्यः । वैक्रियिकमिश्रकाययोगे पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यऽपर्याप्तो भवति १ ॥१३॥

४ योगमार्गणायां	स०	मृ०	उ०	अ०	स०	मृ०	उ०	अ०	औ०	औ०मि०	वै०	वै०मि०	आ०	आ०मि०	का०
जीवसमासाः—	१	१	१	१	१	१	१	५	७	८	१	१	१	१	८

योगमार्गणाकी अपेक्षा असत्यमृषावचनयोगको छोड़कर शेष तीन वचनयोगोंमें और चारों मनोयोगोंमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास जानना चाहिए। असत्यमृषावचनयोगमें द्वीन्द्रियादि पाँच पर्याप्तक जीवसमास होते हैं। औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें सातों अपर्याप्तक तथा संज्ञिपर्याप्तक ये आठ जीवसमास होते हैं। औदारिककाययोगमें सातों पर्याप्तक जीवसमास जानना चाहिए। वैक्रियिककाययोग, आहारककाययोग और आहारकमिश्र-काययोगमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास जानना चाहिए। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें एक संज्ञि-पर्याप्तक जीवसमास होता है ॥११-१३॥

इत्थि-पुरिसेसु णेया सण्णि असण्णी अपुण्ण पुण्णा य ।
संढे कोहाईसु य जीवसमासा हवंति सव्वे वि ॥१४॥

स्त्रीवेदे पुंवेदे च पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यऽसंज्ञिनौ पर्याप्ताऽपर्याप्तौ इति चत्वारः ४ । षण्ढवेदे क्रोधकषाये मानकषाये मायाकषाये लोभकषाये च सर्वे चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति ॥१४॥

५ वेदमार्गणायां	स्त्री०	पु०	नपुं०
जीवसमासाः-	४	४	१४

६ कषायमार्गणायां	क्रो०	मा०	मा०	लो०
जीवसमासाः—	१४	१४	१४	१४

वेदमार्गणाकी अपेक्षा स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये चार जीवसमास होते हैं। नपुंसकवेदमें तथा कषायमार्गणाकी अपेक्षा क्रोधादि चारों कषायोंमें सर्व ही जीवसमास होते हैं ॥१४॥

मइ-सुय-अण्णाणेसु य चउदस जीवा सुओहिमइणाणे ।
सण्णी पुण्णापुण्णा विहंग-मण-केवलेसु संपुण्णो ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मति-श्रुताज्ञानद्वये चतुर्दश जीवसमासाः स्युः १४ । श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने मतिज्ञाने च पञ्चेन्द्रिय-संज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ २ । विभंगज्ञाने मनःपर्ययज्ञाने केवलज्ञाने च पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तः पूर्णपर्याप्त एक एव १ । केवलज्ञाने तु संज्ञिपर्याप्तसयोगेऽपर्याप्तौ (सयोगे संज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ) द्वौ । अयं विशेषः गोमट्टसारेऽस्ति ॥१५॥

ज्ञानमार्गणायां जीवसमासाः—	कुम०	कुश्रु०	विभं०	मति०	श्रु०	अव०	मनः	केव०
	१४	१४	१	२	२	२	१	१

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानमें चौदह ही जीवसमास होते हैं। मति, श्रुत और अवधिज्ञानमें संज्ञिपर्याप्त और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास होते हैं। विभंगावधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास होता है ॥१५॥

सामाइयाइ-छस्सु य सण्णी पज्जत्तओ मुणेयव्वो ।
अस्संजमे अचक्खू चउदस जीवा हवंति णायव्वा ॥१६॥
चक्खूदंसे छद्धा जीवा चउरिंदियाइ ओहम्मि ।
सण्णी पज्जत्तियरा केवलदंसे य सण्णि-संपुण्णो ॥१७॥

सामायिकादिषु षट्सु पञ्चेन्द्रियसंज्ञी पर्याप्तको मन्तव्यः । सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः संज्ञि-पर्याप्ताऽऽहारकाऽपर्याप्तौ द्वौ, अयं तु विशेषः । देशसंयम-परिहारविशुद्ध-सूक्ष्मसाम्परायेषु पञ्चेन्द्रियसंज्ञि-पर्याप्त एकः १ । यथाख्याते तु संज्ञिपर्याप्त-समुद्घातकेवल्यऽपर्याप्तौ द्वौ २, अयमपि विशेषः । असंयमे अचक्षुर्दर्शने च चतुर्दश जीवसमासा ज्ञातव्याः ॥१६॥

८ संयममार्गणायां जीवसमासाः—	सा०	छे०	परि०	सू०	यथा०	देश०	असं०
	१	१	१	१	१	१	१४

चक्षुर्दर्शने चतुरिन्द्रियाऽसंज्ञि-संज्ञि-पर्याप्ताऽपर्याप्ताः षट् ६ । अपर्याप्तकालेऽपि चक्षुर्दर्शनस्य क्षयोप-*शमसद्भावात्, शक्त्यपेक्षया वा षड्धा जीवसमासा भवन्ति ६ । अवधिदर्शने पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ* द्वौ २ । केवलदर्शने संज्ञिसम्पूर्णपर्याप्त एकः । समुद्घातसयोग्यऽपर्याप्तो विशेषः ॥१७॥

६ दर्शनमार्गणायां जीवसमासाः—	चक्षु०	अच०	अव०	केव०
	६	१४	२	२

संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिक आदि पाँच संयम और देशसंयम, इन छहोंमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास जानना चाहिए। असंयम और दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा अचक्षुदर्शनमें चौदह ही जीवसमास जानना चाहिए। चक्षुदर्शनमें चतुरिन्द्रियादि छह जीवसमास होते हैं। अवधिदर्शनमें संज्ञिपर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास होते हैं। केवलदर्शनमें एक संज्ञि-पर्याप्तक जीवसमास होता है ॥१६-१७॥

किण्हाइतिए चउदस तेआइतिए य सण्णि दुविहा वि ।
भव्वाभव्वे चउदस उवसमसम्माइ सण्णि-दुविहो वि ॥१८॥
सासणसम्मे सत्त अपज्जत्ता होंति सण्णि-पज्जत्तो ।
मिस्से सण्णी पुण्णो मिच्छे सव्वे वि दोहव्वा ॥१९॥

छद् दुवि होदि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्णादित्रिके अशुभलेश्यासु तिसृषु प्रत्येकं चतुर्दश जीवसमासाः स्युः १४। तेजोलेश्यादित्रिके पीत-पद्म-शुक्ललेश्यासु तिसृषु प्रत्येकं पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ द्वौ २। शुक्ललेश्यायां विशेषः— केवल्यऽपर्याप्ताऽपर्याप्ते एवान्तर्भावाद् द्वौ २। भव्याऽभव्ययोः चतुर्दश जीवसमासाः १४। उपशमसम्यक्त्वादिषु त्रिषु पञ्चेन्द्रियसंज्ञिद्विविधः पर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ २ भवतः। अत्र विशेषः। को विशेषः? प्रथमोपशमसम्यक्त्वे मरणाभावात्संज्ञिपर्याप्त एक एव २। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वे मनुष्यसंज्ञिपर्याप्तदेवासंयतापर्याप्तौ द्वौ २। वेदकसम्यक्त्वे संज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ २। अपर्याप्तः कथम्? घर्मानारकस्य भवनत्रयवर्जितदेवस्य भोगभूमिनर-तिरश्चोः अपर्याप्तत्वेऽपि तत्सम्भवात्। क्षायिकसम्यक्त्वे तु जीवसमासौ द्वौ संज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ। संज्ञिपर्याप्तः १, बद्धायुष्कापेक्षया घर्मानारक-भोगभूमिनर-तिर्यग्-वैमानिकदेवाऽपर्याप्तश्चेति १, [एवं] द्वौ २। ॥१८॥

१० लेश्यामार्गणायां जीवसमासाः—	कृ०	नी०	का०	ते०	प०	शु०
	१४	१४	१४	२	२	२

११ भव्यमार्गणायां जीवसमासाः—	भव्य०	अभव्य०
	१४	१४

१२ सम्यक्त्वमार्गणायां	प्रथ०	द्विती०	वे०	क्षा०	सा०	मिश्र	मिथ्या०
जीवसमासाः—	१	२	२	२	८,७,२	१	१४

सासादनसम्यक्त्वे अपर्याप्ताः सप्त भवन्ति, एकः पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तो भवति १, एवमष्टौ ८। तद्यथा—बादर एकेन्द्रियापर्याप्तः १, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियापर्याप्ताः ३, पञ्चेन्द्रिय-तत्संज्ञ्यऽसंज्ञ्यऽपर्याप्तौ द्वौ २, संज्ञिपर्याप्तः एकः १, एवं सप्त ७। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वविराधकस्य सासादनत्वप्राप्तिपक्षे च संज्ञिपर्याप्तदेवापर्याप्तावपि द्वौ सासादने ।७।२।८। अत्र द्वितीयोपशमे श्रेणिपरिभ्रष्ट[स्य] निश्चयेन देवगतौ गमनं भवति, तेन देवभवेऽपर्याप्तकाले सास्वादनः प्राप्यते। तेन सास्वादने सप्ताऽपर्याप्ता जीवसमासा भवन्ति ८। अत्र विशेषविचारोऽस्ति। मिश्रे पञ्चेन्द्रियसंज्ञी पूर्णः एकः १। मिथ्यात्वे सर्वे चतुर्दश जीवसमासा ज्ञातव्याः १४ ।।१९।।

लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा कृष्णादि तीनों अशुभलेश्याओंमें चौदह-चौदह जीवसमास होते हैं। तेज आदि तीनों शुभलेश्याओंमें संज्ञिपर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास होते हैं। भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्य और अभव्यके चौदह ही जीवसमास होते हैं। सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा औपशमिकसम्यक्त्व आदि तीनों सम्यग्दर्शनोंमें संज्ञिपर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो-दो जीवसमास होते हैं। सासादनसम्यक्त्वमें विग्रहगतिकी अपेक्षा सातों अपर्याप्तक और संज्ञिपर्याप्तक ये आठ जीवसमास होते हैं। मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्वमें एक संज्ञिपर्याप्तक जीवसमास होता है। मिथ्यात्वमें सर्व ही जीवसमास जानना चाहिए ॥१८—१९॥

सण्णिम्मि सण्णि-दुविहो इयरे ते वज्ज बारसाहारे।
चउदस जीवा इयरे सत्त अपुण्णा य सण्णि-संपुण्णा ॥२०॥

एवं मग्गणासु जीवसमासा समत्ता।

संज्ञिमार्गणायां संज्ञिजीवे पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ताऽपर्याप्तौ द्वौ २। इतरे असंज्ञिजीवे तौ संज्ञ्युक्तपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ वर्जयित्वा अन्ये द्वादश भवन्ति १२। आहारमार्गणायां आहारकजीवे चतुर्दश जीवसमासाः स्युः १४। इतरे अनाहारकजीवे विग्रहगतिमाश्रित्य अपर्याप्ताः सप्त ७, संज्ञिपर्याप्त एकः १, एवमष्टौ ८। सयोगस्य प्रतरद्वये लोकपूरणकाले कार्मणस्य अनाहारकत्वात् संज्ञिपूर्णः एक ॥२०॥

१३ संज्ञिमार्गणायां	सं०	असं०	१४ आहारमार्गणायां	आ०	अना०
जीवसमासाः—	२	१२	जीवसमासाः—	१४	८

इति चतुर्दशसु मार्गणासु जीवसमासाः समाप्ताः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ गोमट्टसारे गुणस्थानेषु जीवसमासानाह—

मिच्छे चोद्दस जीवा सासण अयदे पमत्तविरदे य ।
सण्णिदुगं सेसगुणे सण्णीपुण्णो दु खीणो त्ति[1] ॥३॥

मिथ्यादृष्टौ जीवसमासाश्चतुर्दश १४ । सासादनेऽविरते प्रमत्ते चशब्दात्सयोगे च पञ्चेन्द्रियसंज्ञि-पर्याप्तौ द्वौ २ । शेषाष्टगुणस्थानेषु अपिशब्दादयोगे च संज्ञिपर्याप्त एक एव १ ।

गुणस्थानेषु	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
जीवसमासाः—	१४	२	१	२	१	२	१	१	१	१	१	१	२	१

इति मार्गणा-गुणस्थानेषु जीवसमासाः समाप्ताः ।

अथ गुणस्थानेषु पर्याप्तीः प्राणांश्चाऽऽह—

पज्जत्ती पाणा वि य सुगमा भाविंदियं ण जोगिम्हि ।
तहि वाचुस्सासाउगकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ[2] ॥४॥

मिथ्यादृगादिक्षीणकषायपर्यन्तेषु षट् पर्याप्तयः ६, दश प्राणाः १० । सयोगिजिने भावेन्द्रियं न, द्रव्येन्द्रियाऽपेक्षया षट् पर्याप्तयः ६, वागुच्छ्वासनिःश्वासाऽऽयुःकायप्राणाश्चत्वारश्च भवन्ति ४ । शेषेन्द्रिय-मनः-प्राणाः षट् न सन्ति, तत्रापि वाग्योगे विश्रान्ते त्रयः ३ । पुनः उच्छ्वास-निःश्वासे विश्रान्ते द्वौ २ । अयोगे आयुःप्राणः एकः १ ।

गुणस्थानेषु पर्याप्तयः प्राणाश्च—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अ०	देश०	प्रम०	अप्र०	अ०	अ०	सू०	उप०	क्षी०	सयो०	अयो०
पर्याप्ति	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	द्र० ६	०
प्राण	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	४, ३, २	१

अथ गुणस्थानेषु संज्ञाः—

छट्ठो त्ति पढमसण्णा सकज्ज सेसा य कारणवेक्खा ।
पुव्वो पढमणियट्टी सुहुमो त्ति कमेण सेसाओ[3] ॥५॥

मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तान्तं सकार्याः आहार-भय-मैथुन-परिग्रह-संज्ञाश्चतस्रः ४ स्युः । षष्ठे गुणस्थाने आहारसंज्ञा व्युच्छिन्ना, शेषास्तिस्रः अप्रमत्तादिषु कारणास्तित्वाऽपेक्षया अपूर्वकरणान्तं कार्यरहिता भवन्ति ३ । तत्र भयसंज्ञा व्युच्छिन्ना । अनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागे कार्यरहिते मैथुन-परिग्रहसंज्ञे द्वे स्तः २ । तत्र मैथुनसंज्ञा व्युच्छिन्ना । सूक्ष्मसाम्पराये परिग्रहसंज्ञा व्युच्छिन्ना । उपशान्तादिषु कार्यरहिताऽपि न, कारणा-भावे कार्यस्याभावः ।

गुणस्थानेषु संज्ञाः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
					१		१	१	१				
४	४	४	४	४	४	३	३	२	१	०	०	०	०

इति गोमट्टसारोक्तविचारः ।

संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञिपंचेन्द्रियोंमें संज्ञिपर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास होते हैं । असंज्ञिपंचेन्द्रियोंमें संज्ञिपंचेन्द्रिय-सम्बन्धी दो जीवसमास छोड़कर शेष बारह जीव-समास होते हैं । आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोंमें चौदह ही जीवसमास होते हैं । अनाहारकोंमें सातों अपर्याप्तक और एक संज्ञिपर्याप्तक ये आठ जीवसमास होते हैं ॥२०॥

इस प्रकार चौदह मार्गणाओंमें जीवसमासोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

---

१. गो० जी० ६९८ । २. गो० जी० ७०० । ३. गो० जी० ७०१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब जीवसमासस्थानोंमें उपयोगका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६] [1]एयारसेसु ति त्ति य† दोसु चउक्कं च बारमेकम्मि ।
जीवसमासस्सेदे उवओगविही मुणेयव्वा[1] ॥२१॥

अथ जीवसमासेषु यथासम्भवमुपयोगान् गाथात्रयेणाऽऽह—['एयारसेसु तिण्णि य' इत्यादि ।] एकादशसु जीवसमासेषु त्रय उपयोगाः स्युः ३ । द्वयोर्जीवसमासयोश्चतुष्कं चत्वार उपयोगाः सन्ति ४ । एकस्मिन् जीवसमासे द्वादश उपयोगा भवन्ति ।

जीव०	११	२	१
उप०	३	४	१२

इति जीवसमासेषु एते उपयोगविधयः विधानानि ज्ञातव्याः ॥२१॥

ग्यारह जीवसमासोंमें तीन-तीन उपयोग होते हैं। दो जीवसमासोंमें चार-चार उपयोग होते हैं। एक जीवसमासमें बारह ही उपयोग होते हैं। इस प्रकार जीवसमासोंमें यह उपयोग-विधि जानना चाहिए ॥२१॥

भाष्यगाथाकार-द्वारा उक्त मूलगाथाका स्पष्टीकरण—

[2]मइ-सुअ-अण्णाणाइं अचक्खु एयारसेसु तिण्णेव ।
चक्खूसहिया ते चिय चउरक्खे असण्णि-पज्जत्ते ॥२२॥
मइ-सुय-ओहिदुगाइं सण्णि-अपज्जत्तएसु उवओगा ।
सव्वे वि सण्णि-पुण्णे उवओगा जीवठाणेसु ॥२३॥

सूक्ष्म-बादर-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रियाः पर्याप्ताऽपर्याप्ताः एतेऽष्टौ ८। चतुः-पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यऽसंज्ञिनः अपर्याप्तास्त्रयः ३ एवमेकादशजीवसमासेषु मति-श्रुताज्ञाने द्वे २, अचक्षुर्दर्शनमेकं १ इति त्रयः उपयोगाः ३ भवन्ति । ते त्रयः चक्षुर्दर्शनसहिताः चतुरिन्द्रियपर्याप्ते असंज्ञिपर्याप्ते च द्वयोर्जीवसमासयोः चत्वार उपयोगाः ४ स्युः ॥२२॥

पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यपर्याप्तकजीवेषु मति-श्रुतावधित्रिकं मतिज्ञानं १ श्रुतज्ञानं १ अवधिद्विकं अवधिज्ञान-दर्शनद्वयं २ चकारात् अचक्षुर्दर्शनं १ इति पञ्च उपयोगाः ५। कुमति-कुश्रुतज्ञानद्वयमिति सप्त केचिद् वदन्ति अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियसंज्ञिजीवेषु भवन्तीति विशेषव्याख्येयम् । तन्मिथ्यादृक्षु कुमति-कुश्रुताऽचक्षुर्दर्शन-त्रिकं ज्ञेयमिति । संज्ञिपूर्णे पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तेषु जीवेषु सर्वे ज्ञानोपयोगा अष्टौ, दर्शनोपयोगाश्चत्वारः ४ इति द्वादशोपयोगाः १२ स्युः । केवलज्ञान-दर्शनद्वयं विना दशोपयोगा १० इति केचित् । जीवसमासेसु स्थानेषु उपयोगाः कथिताः ॥२३॥

जीवसमासेषु उपयोगाः—

एके०	एके०	एके०	एके०	द्वी०	द्वी०	त्री०	त्री०	चतु०	चतु०	पंचे०	पंचे०	पंचे०	पंचे०
सू०अ०	सू०प०	बा०अ०	बा०प०	अप०	पर्या०	अप०	पर्या०	अप०	पर्या०	असं.अ.	असं.प.	सं.अ.	सं.प.
३	३	३	३	३	३	३	३	३|४	४	३|४	४	३|४|५|७	१२|१०

इति जीवसमासेषु उपयोगाः कथिताः ।

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ६ (पृ० ८१) 2. ४, 'केवलद्वयमतः पर्ययवर्जिता' इत्यादि गद्यभागः (पृ० ७८)।
१. शतक ६ ।
†ब तिण्णि य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्दशमार्गणास्थानेषु उपयोगाः—

गतिमार्गणायां—

न०	ति०	म०	दे०
९	९	१२	९

इन्द्रियमार्गणायां—

ए०	द्वी०	त्री०	च०	पं०
३	३	३	४	१२

कायमार्गणायां—

पृ०	अ०	ते०	वा०	व०	त्र०
३	३	३	३	३	१२

योगमार्गणायां—

मनोयोगे—

स०	मृ०	स०	अ०
१२	१०	१०	१२

वचनयोगे—

स०	मृ०	स०	अ०
१२	१०	१०	१२

काययोगे—

ओ०	औ०मि०	वै०	वै०मि०	आ०	आ०मि०	का०
१२	९	९	७	६	६	९

वेदमार्गणायां—

स्त्री०	पु०	नं०
९	१०	९

कषायमार्गणायां—

क्रो०	मा०	माया०	लो०
१०	१०	१०	१०

ज्ञानमार्गणायां—

कु०	कुश्रु०	वि०	म०	श्रु०	अव०	म०	के०
५	५	५	७	७	७	७	२

संयममार्गणायां—

सा०	छे०	प०	सू०	य०	सं०	अ०
७	७	६	७	९	६	९

दर्शनमार्गणायां—

च०	अच०	अव०	के०
१०	१०	७	२

लेश्यामार्गणायां—

कृ०	नी०	का०	ते०	प०	शु०
९	९	९	१०	१०	१२

भव्यमार्गणायां—

भ०	अ०
१०	५

सम्यक्त्वमार्गणायां—

औ०	वे०	क्षा०	सा०	मिश्र	मि०
६	७	९	५	६	५

संज्ञिमार्गणायां—

सं०	अ०
१०	४

आहारमार्गणायां—

आ०	अना०
१२	९

एकेन्द्रियोंके बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये चार; द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय-सम्बन्धी पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये चार; तथा चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी अपर्याप्तक ये तीन; इस प्रकार इन ग्यारह जीवसमासोंमें मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान और अचक्षुदर्शन; ये तीन-तीन उपयोग होते हैं। चतुरिन्द्रिय और असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तक इन दो जीवसमासोंमें चक्षुदर्शनसहित उपर्युक्त तीन उपयोग, इस प्रकार चार-चार उपयोग होते हैं। मिथ्यादृष्टि संज्ञिपंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवोंमें उपर्युक्त चार, तथा सम्यग्दृष्टि संज्ञि अपर्याप्तकोंमें मति, श्रुत और अवधिद्विक ये चार उपयोग होते हैं। संज्ञिपंचेन्द्रिय पर्याप्तकमें सर्व ही अर्थात् बारह ही उपयोग होते हैं। इस प्रकार चौदह जीवसमासोंमें उपयोगोंका वर्णन किया गया ॥२२-२३॥

मार्गणास्थानोंमें उपयोगोंका निरूपण—

[1]केवलदुय मणवज्जं णिरि तिरि देवेसु होंति सेसा दु।
मणुए बारह णेया उवओगा मग्गणस्सेवं ॥२४॥

अथ रचना—रचितमार्गणासु यथासम्भवमुपयोगान् गाथासप्तदशकेनाऽऽह—['केवलदुग मणवज्जं' इत्यादि।] गुणपर्ययवद्वस्तु, तद्-ग्रहणव्यापार उपयोगः। ज्ञानं न वस्तूत्थम्। तथा चोक्तम्—

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा।
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वतः ॥६॥

[ज्ञानं] न पदार्थाऽऽलोककारणकं, परिच्छेद्यत्वात्; तमोवत्। स उपयोगः ज्ञान-दर्शनभेदाद् द्वेधा। तत्र ज्ञानोपयोगः कुमति-कुश्रुत-विभङ्ग-मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानभेदादष्टधा। दर्शनोपयोगः चक्षुर-चक्षुरवधि-केवलदर्शनभेदाच्चतुर्धा। तत्र नरक-तिर्यग्देवगतिषु तिसृषु प्रत्येकं केवलज्ञान-दर्शन-मनःपर्ययत्रय-वर्जिताः शेषा नवोपयोगा ९ भवन्ति। तु पुनः मनुष्यगत्यां द्वादशोपयोगा ज्ञेयाः १२। एवं गतिमार्गणायां ज्ञातव्याः ॥२४॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १०। 2. ४, 'गतावनाहारकद्वया' इत्यादि गद्यभागः (पृ० ८०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतिमार्गणाकी अपेक्षा नरक, तिर्यंच और देवगतिमें केवलद्विक और मनःपर्ययज्ञान इन तीनको छोड़कर शेष नौ-नौ उपयोग होते हैं। मनुष्यगतिमें बारह ही उपयोग होते हैं। शेष मार्गणाओंमें उपयोग इस प्रकार ले जाना चाहिए ॥२४॥

बि-ति-एइंदियजीवे अचक्खु मइ सुइ अणाण† उवओगा।
चउरक्खे ते चक्खूजुत्ता सव्वे वि पंचक्खे ॥२५॥

इन्द्रियमार्गणायां एकेन्द्रिये द्वीन्द्रिये त्रीन्द्रिये च अचक्षुर्दर्शनमेकम् १, मति-श्रुताज्ञानद्विकम् २ इति उपयोगास्त्रयः स्युः ३। चतुरक्षे चतुरिन्द्रिये ते पूर्वोक्तास्त्रयः चक्षुर्दर्शनयुक्ता इति चत्वारः ४। पञ्चाक्षे पञ्चेन्द्रिये सर्वे द्वादशोपयोगाः स्युः १२। उपचारतो द्वादश १०, अन्यथा दश १०। जिनस्योपचारतः पञ्चेन्द्रियत्वमिति ॥२५॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय जीवोंमें अचक्षुदर्शन, मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान ये तीन-तीन उपयोग होते हैं। चतुरिन्द्रियजीवोंमें चक्षुदर्शनसहित उक्त तीनों उपयोग, इस प्रकार चार उपयोग होते हैं। पंचेन्द्रियोंमें सर्व ही उपयोग होते हैं ॥२५॥

जिन भगवान्‌के उपचारसे पंचेन्द्रियपना माना गया है इस अपेक्षासे बारह उपयोग कहे हैं। अन्यथा केवलद्विकको छोड़कर शेष दश उपयोग होते हैं।

पंचसु थावरकाए अचक्खु मइ सुअ अणाण‡ उवओगा।
पढमंते मण-वचिए तसकाए उरालएसु सव्वे वि ॥२६॥
मज्झिल्ले मण-वचिए सव्वे वि हवंति केवलदुगूणा।
ओरालमिस्स-कम्मे मणपज्ज-विहंग-चक्खुहीणा ते ॥२७॥
वेउव्वे मणपज्जव-केवलजुगलूणया दु ते चेव।
तम्मिस्से केवलदुग-मणपज्ज-विहंग-चक्खूणा ॥२८॥
केवलदुय-मणपज्जव-अण्णाणतिएहिं होंति ते ऊणा।
आहारजुयलजोए पुरिसे ते केवलदुगूणा ॥२९॥
केवलदुग-मणहीणा इत्थी-संढम्मि ते दु सव्वे वि।
केवलदुगपरिहीणा कोहादिसु होंति णायव्वा ॥३०॥

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायेषु पञ्चसु स्थावरेषु अचक्षुर्दर्शनं मति-श्रुताज्ञानद्वयमिति त्रय उपयोगाः ३। त्रसकाये सर्वे द्वादश उपयोगाः १२। प्रथमान्ते मनो-वचनयोगे सत्याऽनुभयमनो-वचनयोगेषु चतुर्षु प्रत्येकं सर्वे द्वादश उपयोगाः १२। औदारिककाययोगे सर्वे द्वादश १२ उपयोगाः सन्ति ॥२६॥

मध्येषु असत्योभयमनो-वचनयोगेषु चतुर्षु प्रत्येकं केवलज्ञान-दर्शनद्वयोनाः अन्ये सर्वे उपयोगा दश १० भवन्ति। औदारिकमिश्रकाययोगे कार्मणकाययोगे च मनःपर्यय-विभङ्गज्ञान-चक्षुर्दर्शनहीनाः अन्ये ते नव ९ उपयोगाः स्युः ॥२७॥

वैक्रियिककाययोगे मनःपर्यय-केवलज्ञान-दर्शनयुगलोनाः अन्ये नवोपयोगाः ९ स्युः। तन्मिश्रे वैक्रियिकमिश्रकाययोगे केवलदर्शन-ज्ञानद्वय-मनःपर्यय-विभङ्गज्ञान-चक्षुर्दर्शनरहिताः अन्ये सप्त भवन्ति ॥२८॥

आहारकाऽऽहारकमिश्रकाययोगद्वये केवलद्विक-मनःपर्ययज्ञानाऽज्ञानत्रिकोनाः अन्ये षट् ते उपयोगाः आद्यज्ञानत्रय-चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि षट् भवन्ति। पुंवेदे ते उपयोगाः केवलज्ञान-दर्शनद्वयोना १० दश ॥२९॥

---

†ब अण्णाण। ‡ब अण्णाण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीवेदे नपुंसकवेदे च केवलज्ञान-दर्शनद्वय-मनःपर्ययरहिताः अन्ये ते उपयोगाः सर्वे ते ९ भवन्ति । क्रोध माने माया[यां] लोभे च केवलज्ञान-दर्शनद्विकपरिहीनाः अन्ये १० उपयोगा भवन्तीति ज्ञातव्याः॥३०॥

कायमार्गणाकी अपेक्षा पाँचों स्थावरकायोंमें अचक्षुदर्शन, मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान ये तीन-तीन उपयोग होते हैं। त्रसकायमें सर्व ही उपयोग होते हैं। योगमार्गणाकी अपेक्षा प्रथम और अन्तिम मनोयोग तथा वचनयोगमें और औदारिककाययोगमें सर्व ही उपयोग होते हैं। मध्यके दोनों मनोयोग और वचनयोगमें केवलद्विकको छोड़कर शेष सर्व उपयोग होते हैं। औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें मनःपर्ययज्ञान, विभंगावधि और चक्षुदर्शन; इन तीनको छोड़कर शेष नौ उपयोग होते हैं। वैक्रियिककाययोगमें मनःपर्ययज्ञान और केवलद्विकको छोड़कर शेष नौ उपयोग होते हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें केवलद्विक, मनःपर्ययज्ञान, विभंगावधि और चक्षुदर्शन इन पाँचको छोड़कर शेष सात उपयोग होते हैं। आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें केवलद्विक, मनःपर्ययज्ञान और अज्ञानत्रिक, इन छहको छोड़कर शेष छह उपयोग होते हैं। वेदमार्गणाकी अपेक्षा पुरुषवेदमें केवलद्विकको छोड़कर शेष दश उपयोग होते हैं। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदमें केवलद्विक और मनःपर्ययज्ञान; इन तीनको छोड़कर शेष सर्व उपयोग होते हैं। कषायमार्गणाकी अपेक्षा क्रोधादि चारों कषायोंमें केवलद्विकको छोड़कर शेष दश-दश उपयोग जानना चाहिए ॥२६-३०॥

अण्णाणतिए होंति य अण्णाणतियं अचक्खु-चक्खूणि ।
सण्णाण-पढमचउरे अण्णाणतिगूण केवलदुगूणा ॥३१॥
केवलणाणम्मि तहा केवलदुगमेव होइ णायव्वं ।
सामाइय-छेय-सुहुमे अण्णाणतिगूण केवलदुगूणा ॥३२॥
दंसण-णाणाइतियं देसे परिहारसंजमे य तहा ।
पंच य सण्णाणाइं दंसणचउरं च जहखाए ॥३३॥
असंजमम्मि णेया मणपज्जव-केवलजुगलएहिं हीणा ते ।
दंसण-आइदुगे खलु केवलजुगलेण ऊणिया सव्वे ॥३४॥
ओहीदंसे केवलदुग अण्णाणतिऊणिया सव्वे ।
केवलदंसे णेयं केवलदुगमेव होइ णियमेण ॥३५॥

अज्ञानत्रिके कुमति-कुश्रुत-विभङ्गज्ञानेषु प्रत्येकं अज्ञानत्रिकं ३ चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयं २ इति पञ्चोपयोगाः ५ स्युः । सज्ज्ञानप्रथमचतुष्के मतिज्ञाने श्रुतज्ञाने अवधिज्ञाने मनःपर्ययज्ञाने च अज्ञानत्रिकोन-केवलद्विकोनाः अन्ये सप्तोपयोगाः ७ स्युः ॥३१॥

केवलज्ञाने केवलदर्शन-ज्ञानोपयोगौ ज्ञातव्यौ द्वौ भवतः २ । सामायिकच्छेदोपस्थापन-सूक्ष्मसाम्परायसंयमेषु अज्ञानत्रिक-केवलद्विकोनाः अन्ये सप्त ७ उपयोगाः सन्ति ॥३२॥

देशसंयमे तथा परिहारविशुद्धिसंयमे च चक्षुरादिदर्शनत्रिकं ३, मत्यादिज्ञानत्रिकमिति षडुपयोगा भवन्ति ६ । यथाख्यातसंयमे मतिज्ञानादिसज्ज्ञानपञ्चकं ५, चक्षुरादिदर्शनचतुष्कं ४ इति नवोपयोगाः ९ स्युः ॥३३॥

असंयमे मनःपर्यय-केवलयुगलैर्हीनाः अन्ये ते उपयोगाः ९ स्युः । दर्शनादिद्विके चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः केवलज्ञान-दर्शनयुगलेन रहिता अन्ये सर्वे दशोपयोगाः १० स्युः ॥३४॥

अवधिदर्शने केवलज्ञान-दर्शनद्विकाऽज्ञानत्रिकोनाः अन्ये सर्वे सप्त ७ । केवलदर्शने केवलदर्शन-ज्ञानद्विकमेव भवतीति ज्ञेयं निश्चयतः ॥३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा तीनों अज्ञानोंमें तीनों अज्ञान और चक्षुदर्शन वा अचक्षुदर्शन ये पाँच-पाँच उपयोग होते हैं। प्रथमके चारों सद्ज्ञानोंमें तीन अज्ञान और केवलद्विकके विना शेष सात-सात उपयोग होते हैं। केवलज्ञानमें केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो उपयोग जानना चाहिए। संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिक, छेदोपस्थापना और सूक्ष्मसाम्परायसंयममें अज्ञान-त्रिक और केवलद्विकके विना शेष सात-सात उपयोग होते हैं। परिहारसंयम तथा देशसंयममें आदिके तीन दर्शन और तीन सद्ज्ञान इस प्रकार छह-छह उपयोग होते हैं। यथाख्यातसंयममें पाँचों सद्ज्ञान और चारों दर्शन इस प्रकार नौ उपयोग होते हैं। असंयममें मनःपर्ययज्ञान और केवलद्विकके विना शेष नौ उपयोग होते हैं। दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा आदिके दो दर्शनोंमें केवलद्विकके विना शेष दश-दश उपयोग होते हैं। अवधिदर्शनमें केवलद्विक और अज्ञानत्रिकके विना शेष सात उपयोग होते हैं। केवलदर्शनमें नियमसे केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो उपयोग होते हैं ॥३१–३५॥

किण्हाइतिए णेया मण-केवलजुगलएहिं ऊणा ते।
तेऊ पम्मे भविए केवलदुयवज्जिया दु ते चेव ॥३६॥

सुक्काए सव्वे वि य मिच्छा सासण अभविय जीवेसु।
अण्णाणतियमचक्खू चक्खूणि हवंति णायव्वा ॥३७॥

दंसण-णाणाइतियं उवसमसम्मम्मि होइ बोहव्वं।
मिस्से ते चिय× मिस्सा अण्णाणतिगूणया खइए ॥३८॥

वेदयसम्मे केवलदुअ-अण्णाणतियऊणिया सव्वे।
केवलदुएण रहिया ते चेव हवंति सण्णिम्मि ॥३९॥

मइ-सुअअण्णाणाइं अचक्खु-चक्खूणि होंति इयरम्मि।
आहारे ते सव्वे विहंग-मण-चक्खु-ऊणिया इयरे ॥४०॥

एवं मग्गणासु उवओगा समत्ता।

कृष्णादित्रिके कृष्ण-नील-कापोतलेश्यासु तिसृषु प्रत्येकं मनःपर्यय-केवलदर्शन-ज्ञानयुगलैरूना ते उपयोगा नव ९। तेजोलेश्यायां पद्मलेश्यायां भव्ये च केवलद्विकवर्जिताः अन्ये ते उपयोगा दश १०। सयोगाऽयोगयोः भव्यव्यपदेशो नास्तीति केवलद्विकं न ॥३६॥

शुक्ललेश्यायां सर्वे द्वादशोपयोगाः स्युः १२। मिथ्यात्वरुचिजीवे सासादनसम्यक्त्वे जीवे अभव्य-जीवे चाज्ञानत्रिकं चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्विकं २ इति पञ्चोपयोगाः ५ ज्ञातव्या भवन्ति ॥३७॥

उपशमसम्यक्त्वे चक्षुरादिदर्शनत्रयं ३ मत्यादिज्ञानत्रिकं ३ चेति षडुपयोगा भवन्तीति बोधव्याः ६। मिश्रे ते षड् मिश्रा मति-श्रुतावधिज्ञान-चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनाख्याः मिश्ररूपाः शुभाऽशुभरूपाः षट् उपयोगाः ६ स्युः ॥३८॥

वेदकसम्यक्त्वे केवलज्ञान-दर्शनद्वयाऽज्ञानत्रिकोनाः अन्ये सर्वे सप्तोपयोगाः स्युः। संज्ञिजीवे केवलज्ञान-दर्शनद्वयेन रहितास्ते उपयोगाः दश १० भवन्ति। सयोगाऽयोगयोः नोइन्द्रियेन्द्रियज्ञानाभावात् संज्ञ्यऽसंज्ञिव्यपदेशो नास्ति, अतः केवलद्विकं संज्ञिनि न ॥३९॥

× ब विय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतरस्मिन् असंज्ञिजीवे कुमति-कुश्रुताज्ञानद्विकं चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्विकं चेति चत्वार उपयोगाः ४ स्युः। आहारके ते उपयोगाः सर्वे द्वादश भवन्ति १२। इतरस्मिन् अनाहारे विभङ्गज्ञान-मनःपर्ययज्ञान-चक्षुर्दर्शनोनाः अन्ये नवोपयोगाः ९ स्युः। विग्रहगतौ मिथ्यादृष्टि-सासादनासंयतेषु प्रतरद्वये लोकपूरणसमये सयोगिनि अयोगिनि सिद्धे च अनाहार इति। अनाहार इति किम्? शरीराङ्गोपाङ्गनामोदयजनितं शरीर-वचन-चित्तनोकर्मवर्गणा-ग्रहणं आहारः। न आहारः अनाहारः ॥४०॥

इत्येवं मार्गणासु उपयोगाः समाप्ताः।

लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा कृष्णादि तीनों अशुभलेश्याओंमें मनःपर्ययज्ञान और केवलद्विकके विना शेष नौ-नौ उपयोग होते हैं। तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्य-जीवोंमें केवलद्विकके विना शेष दश-दश उपयोग होते हैं। शुक्ललेश्यामें सर्व ही उपयोग होते हैं। अभव्यजीवोंमें तथा सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सासादनसम्यक्त्वमें तीनों अज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ये पाँच-पाँच उपयोग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। औप-शमिकसम्यक्त्वमें आदिके तीन दर्शन और तीन सद्ज्ञान ये छह उपयोग होते हैं। सम्यग्मि-थ्यात्वमें वे ही छह मिश्रित उपयोग होते हैं। क्षायिकसम्यक्त्वमें अज्ञानत्रिकके विना शेष नौ उपयोग होते हैं। वेदकसम्यक्त्वमें केवलद्विक और अज्ञानत्रिकके विना शेष सात उपयोग होते हैं। संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञी जीवोंमें केवलद्विकके विना शेष दश उपयोग होते हैं। असंज्ञी जीवोंमें मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ये चार उपयोग होते हैं। आहार-मार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोंमें सर्व ही उपयोग होते हैं। अनाहारक जीवोंमें विभंगावधि, मनःपर्ययज्ञान और चक्षुदर्शनके विना शेष नौ उपयोग होते हैं ॥३९-४०॥

इस प्रकार मार्गणाओंमें उपयोगोंका वर्णन समाप्त हुआ।

अब मूलशतककार जीवसमासोंमें योगोंका वर्णन करते हैं—

[मूलगा०७] [1]णवसु चउक्के एक्के जोगा† एक्को य दोण्णि चोद्दस ते।
तब्भवगएसु एदे भवंतरगएसु कम्मइओ[1] ॥४१॥

अथ जीवसमासेषु यथासम्भवं योगान् गाथात्रयेण दर्शयति—['णवसु चउक्के एक्के' इत्यादि।] नवसु जीवसमासेषु योगः एकः १, चतुर्षु जीवसमासेषु द्वौ योगौ २, एकस्मिन् जीवसमासे चतुर्दश ते योगाः १४। तद्भवगतेषु एते तद्विवक्षितभवप्राप्तेषु एते योगा भवन्ति, भवान्तरगतेषु विग्रहगतौ एकः कार्मणयोगः १।

जीवस०	९	४	१
यो०	१	२	१४।१२

तद्यथा—सूक्ष्म-बादरैकेन्द्रिययोर्द्वयोः पर्याप्तयोः औदारिककाययोग एकः १ सूक्ष्म-बादरैकेन्द्रिय-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-संज्ञ्यऽसंज्ञिषु सप्तसु अपर्याप्तेषु औदारिकमिश्रः एक इति समुदायेन नवसु जीवसमासेषु ९ एको योगः। द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियासंज्ञिषु पर्याप्तेषु चतुर्षु औदारिककाययोगाऽ नुभयभाषायोगौ द्वौ भवतः २। पञ्चेन्द्रियसंज्ञिनि पर्याप्ते एकस्मिन् चतुर्दश योगाः १४। केचिदाचार्याः पञ्चदश योगान् कथयन्ति ॥४१॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १०।

१. शतक० ७। परं तत्र 'चोद्दस' स्थाने 'पन्नरस' पाठः। प्राकृतवृत्तौ मूलगाथायामपि 'पण्णरसा' इति पाठः। सं० पञ्चसंग्रहेऽपि 'समस्ता सन्ति संज्ञिनि' इति पाठः (पृ० ८२, श्लो० १०)

† ब जोगो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नौ जीवसमासोंमें एक योग होता है, चार जीवसमासोंमें दो योग होते हैं और एक जीवसमासमें चौदह योग होते हैं। तद्भवगत अर्थात् अपने वर्तमान भवके शरीरमें विद्यमान जीवोंमें ये योग जानना चाहिए। किन्तु भवान्तरगत अर्थात् विग्रहगतिवाले जीवोंके केवल एक कार्मणकाययोग होता है ॥४१॥

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंके चार जीवसमास और शेष अपर्याप्तकजीवोंके पाँच जीवसमास इन नौ जीवसमासोंमें सामान्यसे एक काययोग होता है। किन्तु विशेषकी अपेक्षा सूक्ष्म और बादर पर्याप्तक एकेन्द्रिय जीवोंके औदारिककाययोग तथा सूक्ष्म और बादर अपर्याप्तक एकेन्द्रिय-जीवोंके औदारिकमिश्रकाययोग होता है। 'पण्णरस' इस पाठान्तरकी अपेक्षा कुछ आचार्योंके अभिप्रायसे बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंके वैक्रियिककाययोग और बादरवायुकायिक अपर्याप्तोंके वैक्रियिकमिश्रकाययोग होता है। शेष द्वीन्द्रियादि सर्व अपर्याप्तक जीवोंके एकमात्र औदारिक-मिश्रकाययोग ही होता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तक, इन चारों जीवसमासोंके औदारिककाययोग और असत्यमृषावचनयोग, ये दो-दो योग होते हैं। संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तक नामके एक जीवसमासमें चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और सातों काययोग, इस प्रकार पन्द्रह योग होते हैं। यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि पर्याप्तकसंज्ञि-पंचेन्द्रियके जो अपर्याप्तकदशोंमें संभव औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारक-मिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग बतलाये गये हैं, सो सयोगिजिनके केवलिसमुद्धातकी अपेक्षा औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग कहा गया है, तथा जो औदारिककाययोगी जीव विक्रिया और आहारकऋद्धिको प्राप्त करते हैं, उनकी अपेक्षा वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मण-काययोग बतलाया गया है। अन्यथा मिश्रकाययोग अपर्याप्तकदशामें और कार्मणकाययोग विग्रहगतिमें ही संभव हैं।

अब भाष्यगाथाकार जीवसमासोंमें योगोंका वर्णन करते हैं—

[1]छसु पुण्णेसु* उरालं सत्त अपज्जत्तएसु तम्मिस्सं।
भासा असच्चमोसा चदुसुं वेइंदियाइपुण्णेसुं ॥४२॥
सण्णि-अपज्जत्तेसुं वेउव्वियमिस्सकायजोगो दु।
सण्णी-संपुण्णेसुं चउदस जोया मुणेयव्वा ॥४३॥

अथ नियमगाथाद्वयं कथ्यते—['छसु पुण्णेसु उरालं' इत्यादि।] षट्सु पूर्णेषु औदारिककाययोगः—एकेन्द्रियसूक्ष्म-बादरपर्याप्तौ द्वौ २, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियपर्याप्तास्त्रयः ३, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्त एकः, इति षण्णां पर्याप्तानां औदारिककाययोगः स्यात्। सप्ताऽपर्याप्तेषु तन्मिश्रः—सूक्ष्म-बादरैकेन्द्रिय-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्य-संज्ञिषु अपर्याप्तेषु सप्तविधेषु औदारिकमिश्रकाययोगः स्यात् १। चतुर्षु द्वीन्द्रियादिषु पूर्णेषु असत्यमृषा [भाषा] स्यात्। द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियाऽसंज्ञिजीवपर्याप्तानां चतुर्णां अनुभय-भाषौदारिककाययोगौ द्वौ २ भवतः ॥४२॥

देव-नारकसंज्ञ्यऽपर्याप्तेषु वैक्रियिकमिश्रकाययोगात्, देव-नारकाणां अपर्याप्तकाले वैक्रियिकमिश्र-काययोगात्, मनुष्य-तिर्यगपेक्षया संज्ञिसम्पूर्णेषु पर्याप्तेषु वैक्रियिकमिश्रं विना चतुर्दश १४ योगाः ज्ञातव्याः ॥४३॥

---

1. ४, 'गतावनाहारकद्वया' इत्यादिगद्यभागः। (पृ० ८०)

*द पुण्णे सोरालं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्दशमार्गणासु योगरचना—

गतिमार्गणायां—

न०	ति०	म०	दे०
११	११	१३	११

इन्द्रियमार्गणायां—

ए०	द्वी०	त्री०	च०	पं०
३	४	४	४	१५

कायमार्गणायां—

पृ०	अ०	ते०	वा०	व०	त्र०
३	३	३	३	३	१५

योगमार्गणायां—

मनोयोगे—

स०	मृ०	स०	अ०
१	१	१	१

वचनयोगे—

स०	मृ०	स०	अ०
१	१	१	१

काययोगे—

औ०	औ०मि०	वै०	वै०मि०	आ०	आ०मि०	का०
१	१	१	१	१	१	१

वेदमार्गणायां—

स्त्री०	पु०	न०
१३	१५	१३

कषायमार्गणायां—

क्रो०	मा०	माया०	लो०
१५	१५	१५	१५

ज्ञानमार्गणायां—

कुम०	कुश्रु०	वि०	म०	श्रु०	अ०	म०	के०
१३	१३	१०	१५	१५	१५	६	७

संयममार्गणायां—

सा०	छे०	प०	सू०	य०	स०	अ०
११	११	६	६	११	६	१३

दर्शनमार्गणायां—

च०	अ०	अव०	के०
१२	१५	१५	७

लेश्यामार्गणायां—

कृ०	नी०	का०	ते०	प०	शु०
१३	१३	१३	१५	१५	१५

भव्यमार्गणायां—

भ०	अ०
१५	१३

सम्यक्त्वमार्गणायां—

औ०	वे०	क्षा०	सा०	मिश्र०	मि०
१३	१५	१५	१३	१०	१३

संज्ञिमार्गणायां—

सं०	अ०
१५	४

आहारमार्गणायां—

आ०	अना०
१४	१

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, और बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञिपंचेन्द्रिय इन छह पर्याप्तक जीवसमासोंमेंसे आदिके दो जीवसमासोंमें केवल एक औदारिककाययोग होता है, और शेष चार पर्याप्तक जीवसमासोंमें औदारिककाययोग और असत्यमृषावचनयोग ये दो योग होते हैं। सातों अपर्याप्तक जीवसमासोंमें यथासंभव औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारकमिश्रकाययोग होता है। असत्यमृषावचनयोग द्वीन्द्रियादि चार पर्याप्तक जीवसमासोंमें होता है। संज्ञिपंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक जीवोंमें वैक्रियिकमिश्रकाययोग भी होता है। संज्ञिपंचेन्द्रिय-पर्याप्तक जीवोंमें कार्मणकाययोगको छोड़कर शेष चौदह योग जानना चाहिए ॥४२-४३॥

अब मार्गणाओंमें योगोंका निरूपण करते हैं—

ओरालाहारदुए वज्जिय सेसा दु णिरय-देवेसु ।
वेउव्वाहारदुगूणा तिरिए मणुए वेउव्वदुगहीणा ॥४४॥

अथ मार्गणासु यथासंभवं रचनायां रचितयोगान् गाथैकादशकेनाऽऽह—['ओरालाहारदुए' इत्यादि।] नरकगत्यां देवगत्यां च औदारिकौदारिकमिश्राऽऽहारकाऽऽहारकमिश्रान् चतुरो योगान् वर्जयित्वा शेषा एकादश योगाः ११ स्युः। तिर्यग्गतौ वैक्रियिकवैक्रियिकमिश्राऽऽहारकाऽऽहारकमिश्रैरूनाः अन्ये एकादश योगाः। मनुष्यगतौ वैक्रियिक-तन्मिश्रद्वयहीनाः शेषाः त्रयोदश १३ योगा भवन्ति ॥४४॥

गतिमार्गणाकी अपेक्षा नारकी और देवोंमें औदारिकद्विक अर्थात् औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और आहारकद्विक अर्थात् अहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग इन चार योगोंको छोड़कर शेष ग्यारह-ग्यारह योग होते हैं। तिर्यञ्चोंमें वैक्रियिकद्विक अर्थात् वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग तथा आहारकद्विक, इन चार योगोंको छोड़कर शेष ग्यारह योग होते हैं। मनुष्योंमें वैक्रियिकद्विकको छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं ॥४४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मोरालदुगाइं जोगा एइंदियम्मि वियलेसु ।
वयणंतजोयसहिया ते च्चिय पंचिंदिए सव्वे ॥४५॥

एकेन्द्रिये कार्मणकौदारिकद्विकमिति त्रयो योगाः ३ । विकलत्रये द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियेषु त्रिषु ते त्रयः वचनान्तानुभयभाषासहिताश्चत्वारः ४ योगाः । पञ्चेन्द्रिये सर्वे पञ्चदश योगा नानाजीवापेक्षया भवन्ति ॥४५॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें कार्मणकाययोग और औदारिकद्विक ये तीन योग होते हैं। विकलेन्द्रियोंमें अन्तिम वचनयोग अर्थात् असत्यमृषावचनयोग-सहित उपर्युक्त तीन योग, इस प्रकार चार योग होते हैं। पंचेन्द्रियोंमें सर्व योग होते हैं ॥४५॥

कम्मोरालदुगाइं थावरकाएसु होंति पंचेसु ।
तसकाएसु य सव्वे सगो सगो होइ जोएसु ॥४६॥

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिस्थावरकायेषु पञ्चसु कार्मणः १ औदारिकौदारिकामिश्रौ द्वौ २ इति त्रयो योगाः ३ । त्रसकायेषु सर्वेषु पञ्चदश योगाः १५ । योगेषु पञ्चदशसु सत्यादिषु स्वकः स्वको भवति, सत्यमनोयोगे सत्यमनोयोगः १ इत्यादि सर्वत्र ज्ञेयम् ॥४६॥

कायमार्गणाकी अपेक्षा पाँचों स्थावरकायिकोंमें कार्मणकाययोग और औदारिकद्विक ये तीन योग होते हैं, तथा त्रसकायिकजीवोंमें सभी योग होते हैं। योगमार्गणाकी अपेक्षा स्व-स्वयोगवाले जीवोंके स्व-स्वयोग होता है। अर्थात् सत्यमनोयोगियोंके सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोगियोंके असत्यमनोयोग इत्यादि ॥४६॥

पुरिसे सव्वे जोगा इत्थी-संढम्मि आहारदुगूणा ।
कोहाईसु य सव्वे मइ-सुय-ओहीसु होंति सव्वे वि ॥४७॥
मइ-सुअअण्णाणेसुं आहारदुगूणया दु ते सव्वे ।
अपुण्णजोगरहिया आहारदुगूणया य विभंगे ॥४८॥
केवलजुयले मण-वचि पढमंतोरालजुगलकम्मक्खा ।
मण-सुहुमे परिहारे देसे ओराल मण-वचि-चउक्का ॥४९॥

पुंवेदे सर्वे योगाः १५ । स्त्रीवेदे षण्ढवेदे च आहारकद्विकोनास्त्रयोदश १३ । क्रोधे माने मायायां लोभे च सर्वे योगाः १५ । मति-श्रुतावधिज्ञानेषु सर्वे पञ्चदश १० योगा भवन्ति ॥४७॥

मति-श्रुताज्ञानयोः द्वयोः आहारकद्विकोनाः ते सर्वे त्रयोदश योगाः स्युः १३ । विभङ्गज्ञाने औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणकापर्याप्तयोगत्रयरहिताः आहारकद्विकोनाश्चान्येऽष्टौ मनो-वचनयोगाः औदारिक वैक्रियिककाययोगौ द्वौ एवं दश योगाः १० ॥४८॥

केवल-युगले इति केवलज्ञाने केवलदर्शने च प्रथमान्तमनो-वचनं सत्यानुभयमनो-वचनचतुष्कं ४ औदारिक-तन्मिश्र-कार्मणाख्यास्त्रय इति सप्त योगाः ७ । मनःपर्ययज्ञाने सूक्ष्मसाम्परायसंयमे परिहारविशुद्धिसंयमे देशसंयमे च औदारिककाययोगः १, सत्यादिमनोयोगचतुष्कं ४ सत्यादिवचनयोगचतुष्कं ४ इत्येवं नव ९ योगाः स्युः ॥४९॥

वेदमार्गणाकी अपेक्षा पुरुषवेदियोंके सभी योग होते हैं। स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके आहारकद्विकको छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं। कषायमार्गणाकी अपेक्षा क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंके सभी योग पाये जाते हैं। ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मति, श्रुत और अवधिज्ञानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवोंके सर्व ही योग होते हैं। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके आहारकद्विकको छोड़कर शेष तेरह-तेरह योग होते हैं। विभंगज्ञानियोंके अपर्याप्तककाल-सम्बन्धी औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग ये तीन योग तथा आहारकद्विक इनके विना शेष दश योग होते हैं। केवल-युगल अर्थात् केवलज्ञान और केवलदर्शनवाले जीवोंके प्रथम और अन्तिम मनोयोग एवं वचन-योग, तथा औदारिकयुगल और कार्मणकाययोग ये सात-सात योग होते हैं। मनःपर्ययज्ञान, सूक्ष्मसाम्परायसंयम, परिहारविशुद्धिसंयम और संयमासंयमवाले जीवोंके मनोयोगचतुष्क, वचनयोगचतुष्क और औदारिककाययोग ये नौ-नौ योग होते हैं ॥४७–४६॥

आहारदुगोराला मण-वचि-चउरा य सामाइय-छेदे ।
कम्मोरालदुगाइं मण-वचि-चउरा य जहखाए ॥५०॥

सामायिक-च्छेदोपस्थापनयोः आहारकद्वयौदारिककाययोगास्त्रयः ३ मनोयोगाश्चत्वारः ४ वचन-योगाश्चत्वारः ४ इत्येकादश योगाः ११ । यथाख्याते कार्मणकौदारिक-तन्मिश्रकाययोगास्त्रयः ३ मनो-वचनयोगाः अष्टौ ८ एवं एकादश ११ योगाः ॥५०॥

संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिकसंयम और छेदोपस्थापनासंयमवाले जीवोंके चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, आहारकद्विक और औदारिककाययोग ये ग्यारह-ग्यारह योग होते हैं। यथाख्यातसंयमवाले जीवोंके चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिकद्विक और कार्मण-काययोग ये ग्यारह योग होते हैं ॥५०॥

किण्हाइ-तिआऽसंजम अभव्व जीवेसु आहारदुगूणा ।
तेआइतियाऽचक्खू ओही भव्वेसु होंति सव्वे वि ॥५१॥
चक्खूदंसे जोगा मिस्सतिगं वज्ज होंति सेसा दु ।
उवसम-मिच्छा-सादे आहारदुगूणया णेया ॥५२॥
वेदय-खइए सव्वे मिस्से मिस्सतिगाहारदुगहीणा ।
सण्णियजीवे णेया सव्वे जोया जिणेहिं णिद्दिट्ठा ॥५३॥
इयरे कम्मोरालियदुगवयणंतिल्लया होंति ।
आहारे कम्मूणा अणहारे कम्मए व जोगो दु ॥५४॥

एवं मग्गणासु जोगा समत्ता ।

कृष्ण-नील-कापोतलेश्यात्रिके असंयमे अभव्यजीवे च आहारकद्विकोना अन्ये त्रयोदश १३ योगाः । पीत-पद्म-शुक्ललेश्यात्रिके अचक्षुर्दर्शने अवधिदर्शने भव्यजीवे च सर्वे पञ्चदश योगाः १५ भवन्ति ॥५१॥

चक्षुर्दर्शने मिश्रत्रिकं औदारिक-वैक्रियिकमिश्रकार्मणकत्रिकं वर्जयित्वा शेषाः द्वादश योगाः १२ स्युः । औपशमिकसम्यक्त्वे मिथ्यादृष्टौ सासादने आहारकद्विकोनाः अन्ये त्रयोदश योगाः १३ ज्ञेयाः ॥५२॥

वेदकसम्यग्दृष्टौ क्षायिकसम्यग्दृष्टौ च सर्वे पञ्चदश योगाः १५ ज्ञेयाः । मिश्रे मिश्रत्रिकाऽऽहारक-द्विकहीनाः अन्ये योगाः १० । संज्ञिजीवे सर्वे पञ्चदश १५ योगाः ज्ञेयाः जिनैर्निर्दिष्टाः कथिताः ॥५३॥

इतरस्मिन् असंज्ञिजीवे कार्मणकौदारिक-तन्मिश्रानुभयवचनयोगाश्चत्वारः ४ । आहारके कार्मणकोना अन्ये योगाश्चतुर्दश १४ । अनाहारे कार्मणक एको योगो भवति ॥५४॥

इति मार्गणासु योगाः समाप्ताः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा कृष्णादि तीन लेश्यावालोंके, तथा असंयमी और अभव्य जीवोंके आहारकद्विकको छोड़कर शेष तेरह-तेरह योग होते हैं। तेजोलेश्यादि तीन लेश्यावालोंके, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और भव्यजीवोंमें सर्व ही योग पाये जाते हैं। चक्षुदर्शनी जीवोंमें अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी तीनों मिश्रयोगोंको छोड़कर शेष बारह योग पाये जाते हैं। सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा उपशमसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके आहारकद्विकको छोड़कर शेष तेरह-तेरह योग जानना चाहिए। वेदकसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सभी योग पाये जाते हैं। मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अपर्याप्तककाल-सम्बन्धी मिश्रत्रिक और आहारकद्विकको छोड़कर शेष दश योग पाये जाते हैं। संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञी जीवोंमें सभी योग जानना चाहिए, ऐसा जिन भगवान्‌ने उपदेश दिया है। असंज्ञी जीवोंमें कार्मणकाययोग, औदारिकद्विक और अन्तिम वचनयोग ये चार योग होते हैं। आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगको छोड़कर शेष चौदह योग पाये जाते हैं। अनाहारक जीवोंमें एकमात्र कार्मणकाययोग ही पाया जाता है ॥५१-५४॥

मार्गणाओंमें योगोंका वर्णन समाप्त हुआ।

[मूलगा० ८] उवओगा जोगविही मग्गण-जीवेसु वण्णिया एदे।
एत्तो गुणेहिं सह परिणदाणि ठाणाणि मे सुणह[1] ॥५५॥

[मूलगा० ९] *मिच्छा सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य।
णव संजए य एवं चउदस गुणणाम †ठाणाणि[2] ॥५६॥

मार्गणासु जीवसमासेषु च उपयोगा वर्णिताः, योगविधयश्च वर्णिताः। इतः परं गुणैः सह परिणतानि गुणस्थानकैः सह परिणमितानि मिश्राणि युक्तानि मार्गणस्थानानि गतीन्द्रिय-काय-योगादीनि इमानि वक्ष्यमाणाणि भो भव्या यूयं शृणुत ॥५५॥

मिथ्यादृष्टिः १ सासादनः २ मिश्रः ३ अविरतसम्यग्दृष्टिः ४ देशविरतश्च ५ प्रमत्ता ६ प्रमत्ता ७ पूर्वकरणा ८ निवृत्तिकरण ९ सूक्ष्मसाम्परायो १० पशान्त ११ क्षीणकषाय १२ सयोगाऽ १३ योगसंयता इति नव। एवं चतुर्दश गुणस्थाननामधेयानि गुणस्थाननामानि ॥५६॥

चतुर्दशमार्गणास्थानेषु गुणस्थानरचनेयम्–

गतिमार्गणायां–			
न०	ति०	म०	दे०
४	५	१४	४

इन्द्रियमार्गणायां–				
ए०	द्वी०	त्री०	च०	पं०
१	१	१	१	१४
२	२	२	२	

कायमार्गणायां–					
पृ०	अ०	ते०	वा०	व०	त्र०
१	१	१	१	१	१४
२	२			२	

योगमार्गणायां– मनोयोगे–			
स०	मृ०	स०	अ०
१३	१२	१२	१३

वचनयोगे–			
स०	मृ०	स०	अ०
१३	१२	१२	१३

काययोगे–						
औ०	औ०मि०	वै०	वै०मि०	आ०	आ०मि०	का०
१३	४	४	३	१	१	४

वेदमार्गणायां–		
स्त्री०	पु०	न०
९	९	९

कषायमार्गणायां–			
क्रो०	मा०	माया०	लो०
९	९	९	१०

ज्ञानमार्गणायां–							
कुम०	कुश्रु०	वि०	म०	श्रु०	अ०	म०	के०
२	२	२	९	९	९	७	२

संयममार्गणायां–						
सा०	छे०	प०	सू०	य०	सं०	अ०
४	४	२	१	४	१	४

१. शतक० ८। परं तत्र मग्गण-जीवेसु' स्थाने 'जीवसमासेसु' इति पाठः। प्राकृतवृत्तावप्ययं पाठः। २. शतक० ९।

* व च्छो। † व धेयाणि।

दर्शनमार्गणायां–				लेश्यामार्गणायां–						भव्यमार्गणायां–		सम्यक्त्वमार्गणायां–					
च०	अच०	अव०	के०	कृ०	नी०	का०	ते०	प०	शु०	भ०	अ०	औ०	वे०	क्षा०	सा०	मिश्र०	मि०
१२	१२	९	२	४	४	४	७	७	१३	१२	१	८	४	११	१	१	१

संज्ञिमार्गणायां–		आहारमार्गणायां–	
सं०	अ०	आ०	अना०
१२	२	१३	५

इस प्रकार मार्गणा और जीवसमासोंमें यह उपयोग और योगविधिका वर्णन किया है। अब इससे आगे गुणोंसे परिणत इन स्थानोंको कहता हूँ सो सुनो। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरतसम्यक्त्व और देशविरत, तथा इससे आगे संयतोंके नौ गुणस्थान इस प्रकार सार्थक नामवाले चौदह गुणस्थान होते हैं ॥५५–५६॥

मार्गणाओंमें गुणस्थानोंका निरूपण—

[मूलगा०१०] [1]सुर-णारएसु चत्तारि होंति तिरिएसु जाण पंचेव।
मणुयगईए वि तहा चोद्दस गुणणामधेयाणि ॥५७॥
[2]मिच्छाई चत्तारि य सुर-णिरए पंच होंति तिरिएसु।
मणुयगईए वि तहा चोद्दस गुणणामधेयाणि ॥५८॥

अथ मार्गणास्थानेषु रचितगुणस्थानानि गाथाचतुर्दशकेन प्ररूपयति—देवगत्यां नरकगत्यां च मिथ्यादृष्ट्याऽऽदीनि चत्वारि गुणस्थानानि ४, तिर्यग्गतौ मिथ्यादीनि पञ्च गुणस्थानानि त्वं जानीहि ५। मनुष्यगतौ मिथ्यादृगाऽऽद्ययोगान्तानि चतुर्दश गुणस्थानानि भवन्तीति जानीहि त्वं भव्य मन्यस्व ॥५७-५८॥

गतिमार्गणाकी अपेक्षा देव और नरकगतिमें मिथ्यात्वको आदि लेकर चार गुणस्थान होते हैं। तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व आदि पाँच गुणस्थान होते हैं। तथा मनुष्यगतिमें चौदह ही गुणस्थान होते हैं ॥५७–५८॥

मिच्छा सादा दोण्णि य इगि-वियले होंति ताणि णायव्वा।
पंचिंदियम्मि चोद्दस भूदयहरिएसु दोण्णि पढमाणि ॥५९॥
तेऊ-वाऊकाए मिच्छं तसकाए चोद्दस हवंति।
मण-वचि-पढमंतेसुं ओराले चेव जोगंता ॥६०॥
खीणंता मज्झिल्ले मिच्छाइ चयारि वेउव्वे।
तम्मिस्से मिस्सूणा हारदुगे पमत्त एगो दु ॥६१॥
ओरालमिस्स-कम्मे मिच्छा सासण अजइ सजोगा य।
कोहाइतिय तिवेदे मिच्छाई णवय दस लोहे ॥६२॥

1. सं० पञ्चसं० ४, ६। (पृ० ७५)। 2. ४, 'नारकक्षुधाशिकयोश्चत्वार्याद्यानि' इत्यादि गद्यभागः (पृ० ७६)।

१. शतक० १०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रिये विकलत्रये च मिथ्या-सासादने द्वे भवतः २ । तदेकेन्द्रिय-विकलत्रयाणां पर्याप्तकाले एकं मिथ्यात्वम् १ । तेषां केषाञ्चिद् अपर्याप्तकाले उत्पत्तिसमये सासादनं सम्भवति । पञ्चेन्द्रिये तानि सर्वाणि गुणस्थानानि चतुर्दश १४ ज्ञातव्यानि भवन्ति । भूदकहरितेषु पृथ्वीकायिके अप्कायिके वनस्पतिकायिके च *मिथ्यात्वसासादनगुणस्थाने द्वे २ भवतः* ॥५९॥

तेजस्कायिके वायुकायिके च मिथ्यात्वमेकम् १ । तयोरेकं कथम् ? सासादनस्थो जीवो मृत्वा तेजो-वायुकायिकयोर्मध्ये न उत्पद्यते, इति हेतोः । त्रसकायिके मिथ्यात्वादीनि चतुर्दश १४ गुणस्थानानि भवन्ति । मनो-वचनप्रथमान्तेषु सत्यानुभयमनो-वचनचतुष्के औदारिककाययोगे च मिथ्यात्वाऽऽदीनि सयोगान्तानि त्रयोदश गुणस्थानानि स्युः ॥६०॥

मध्यमेषु असत्योभयमनो-वचनयोगेषु चतुर्षु संज्ञिमिथ्यादृष्ट्याद्यादीनि क्षीणकषायान्तानि द्वादश १२ । वैक्रियिककाययोगे मिथ्यात्वादीनि चत्वारि ४ । तन्मिश्रयोगे देवता-नारकाऽपर्याप्तानां मिश्रोनानि मिथ्यात्व-सासादनाविरतानि त्रीणि ३ । आहारके संज्ञिपर्याप्तप्रमत्त एकं षष्ठगुणस्थानम् १ । आहारकमिश्रे संज्ञ्यऽ-पर्याप्तषष्ठगुणस्थानमेकम् १ ॥६१॥

औदारिकमिश्रकाययोगे मिथ्यात्व-सासादन-पुंवेदोदयाऽसंयतकपाटसमुद्घातसयोगगुणस्थानानि चत्वारि ४ । उक्तञ्च—

मिच्छे सासणसम्मे पुंवेदयदे कवाटजोगिम्हि ।
णर-तिरिये वि य दोण्णि वि होंति त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं[1] ॥७॥

कार्मणकाययोगे मिथ्यात्व-सासादनाऽविरतगुणस्थानत्रयं चतुर्गतिविग्रहकालसंयुक्तं प्रतरयोर्लोकपूरण-कालसंयुक्तं सयोगगुणस्थानञ्चेति चत्वारि ४ । उक्तञ्च—

योगिन्यौदारिको दण्डे मिश्रो योगः कपाटके ।
कार्मणो जायते तत्र प्रतरे लोकपूरणे[2] ॥८॥

क्रोधे माने मायायां च, नपुंसकवेदे स्त्रीवेदे पुंवेदे च मिथ्यात्वादीन्यनिवृत्तिकरणपर्यन्तानि नव ९ । अत्र किञ्चिद्विशेषः—षण्ढवेदः स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागान्तं भवति । स्त्रीवेद-पुंवेदौ संज्ञ्यऽसंज्ञिमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणस्वस्वसवेदभागपर्यन्तं भवतः । क्रोध-मान-मायाः मिथ्यादृष्ट्याद्य-निवृत्तिकरण-द्वि-त्रि-चतुर्भागान्तं भवन्ति । लोभे संज्वलनलोभापेक्षया मिथ्यात्वाऽऽदीनि सूक्ष्मसाम्पराया-न्तानि दश १० भवन्ति ॥६२॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान होते हैं । यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि उक्त जीवोंमें सासादनगुणस्थान निर्वृत्त्य-पर्याप्तक-दशामें ही संभव है, अन्यत्र नहीं । पंचेन्द्रियोंमें चौदह ही गुणस्थान होते हैं । काय-मार्गणाकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंमें आदिके दो गुणस्थान होते हैं । तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवोंमें मिथ्यात्व गुणस्थान होता है और त्रसकायिक जीवोंमें चौदह ही गुणस्थान होते हैं । योगमार्गणाकी अपेक्षा प्रथम और अन्तिम मनोयोग और वचनयोगमें तथा औदारिककाययोगमें सयोगिकेवली तकके तेरह गुणस्थान होते हैं । मध्यके दोनों मनोयोगों और वचनयोगोंमें क्षीणकषायतकके बारह गुणस्थान होते हैं । वैक्रियिककाय-योगमें मिथ्यात्व आदि चार गुणस्थान होते हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मिश्रगुणस्थानको छोड़-कर आदिके तीन गुणस्थान होते हैं । आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें एक

१. गो० जी० ६८० ।
२. सं० पञ्चसं० ४, १४ (पृ० ८३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमत्तसंयत गुणस्थान होता है। औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें मिथ्यात्व, सासादन, असंयत और सयोगकेवली ये चार-चार गुणस्थान होते हैं। वेदमार्गणाकी अपेक्षा तीनों वेदोंमें तथा कषायमार्गणाकी अपेक्षा क्रोधादि तीन कषायोंमें मिथ्यात्व आदि नौ गुणस्थान होते हैं। लोभकषायमें आदिके दश गुणस्थान होते हैं ॥५९–६२॥

पढमा दोऽण्णाणतिए णाणतिए णव दु अविरयाई।
सत्त पमत्ताइ मणे केवलजुयलम्मि अंतिमा दोण्णि ॥६३॥

अज्ञानत्रिके कुमति-कुश्रुत-विभङ्गज्ञानेषु प्रत्येकं मिथ्यात्वसासादनप्रथमद्वयं स्यात्। ज्ञानत्रिके मति-श्रुतावधिज्ञानेषु त्रिषु प्रत्येकं अविरतादीनि क्षीणकषायान्तानि नव ९ स्युः। मनःपर्ययज्ञाने प्रमत्तादीनि क्षीणकषायान्तानि सप्त ७। केवलज्ञाने केवलदर्शने च सयोगायोगान्तिमद्वयं २ भवति ॥६३॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा अज्ञानत्रिक अर्थात् कुमति, कुश्रुत और विभंगज्ञानवाले जीवोंके आदिके दो गुणस्थान होते हैं। ज्ञानत्रिक अर्थात् मति, श्रुत और अवधिज्ञानवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिको आदि लेकर नौ गुणस्थान होते हैं। मनःपर्ययज्ञानवाले जीवोंके प्रमत्तसंयतको आदि लेकर सात गुणस्थान होते हैं। केवलयुगल अर्थात् केवलज्ञान और केवलदर्शनवाले जीवोंके अन्तिम दो गुणस्थान होते हैं ॥६३॥

सामाइय-छेदेसुं पमत्तयाईणि होंति चत्तारि।
जहखाए संताई सुहुमे देसम्मि सुहुम देसा य ॥६४॥
असंजमम्मि चउरो मिच्छाइ दुवालस हवंति।
चक्खु अचक्खू य तहा परिहारे दो पमत्ताई ॥६५॥
अजयाई खीणंता ओहीदंसे हवंति णव चेव।
किण्हाइतिए चउरो मिच्छाई तेर सुक्काए ॥६६॥
तेऊ पम्मासु तहा मिच्छाई अप्पमत्तंता।
खीणंता भव्वम्मि य अभव्वे मिच्छमेयं तु ॥६७॥

सामायिक-च्छेदोपस्थापनयोः प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणान्तानि चत्वारि ४ भवन्ति। यथाख्याते उपशान्ताद्ययोगान्तानि चत्वारि ४। सूक्ष्मसाम्परायसंयमे सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमेकम् १। देशसंयमे देशसंयमं पञ्चमं गुणस्थानं भवति ॥६४॥

असंयमे मिथ्यादृगादीनि चत्वारि ४। चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वये मिथ्यादृष्ट्याऽऽदीनि क्षीणकषायान्तानि द्वादश १२। परिहारविशुद्धिसंयमे प्रमत्ताप्रमत्तद्वयं २ भवति ॥६५॥

अवधिदर्शने असंयतादीनि क्षीणकषायान्तानि नव ९ भवन्ति। कृष्णादित्रिके स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याऽऽद्यसंयतान्तानि [चत्वारि ४] भवन्ति। शुक्ललेश्यायां संज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तानि त्रयोदश गुणस्थानानि १३ भवन्ति ॥६६॥

तेजोलेश्यायां पद्मलेश्यायां च संज्ञिमिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानि गुणस्थानानि सप्त ७। भव्ये स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि द्वादश १२। सयोगायोगयोर्भव्यव्यपदेशो नास्तीति। अभव्ये मिथ्यात्वमेकम् १ ॥६७॥

संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थापना संयमवाले जीवोंके प्रमत्तसंयत आदि चार गुणस्थान होते हैं। यथाख्यातसंयमवाले जीवोंके उपशान्तकषाय आदि चार गुणस्थान होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायसंयमवालोंके एक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान और देशसंयमवालोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक देशविरतगुणस्थान होता है। असंयमी जीवोंके मिथ्यात्व आदि चार गुणस्थान होते हैं। परिहार विशुद्धिसंयमवालोंके प्रमत्तसंयत आदि दो गुणस्थान होते हैं। दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंके मिथ्यात्व आदि बारह गुणस्थान होते हैं। अवधिदर्शनी जीवोंके असंयतसम्यग्दृष्टिको आदि लेकर क्षीणकषायतकके नौ गुणस्थान होते हैं। लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा कृष्णादि तीन लेश्यावाले जीवोंके मिथ्यात्वादि चार गुणस्थान होते हैं। शुक्ललेश्यावालोंके मिथ्यात्वादि तेरह गुणस्थान होते हैं। तथा तेज और पद्मलेश्यावालोंके मिथ्यात्वको आदि लेकर अप्रमत्तसंयतान्त सात गुणस्थान होते हैं। भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्यजीवोंके क्षीणकषायान्त बारह गुणस्थान होते हैं। अभव्य जीवोंके तो एकमात्र मिथ्यात्वगुणस्थान होता है ॥६४-६७॥

अट्ठेयारह चउरो अविरयाईणि होंति ठाणाणि।
उवसम-खय-मिस्सम्मि य मिच्छाइतियम्मि एय तण्णामं ॥६८॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वे असंयताद्यप्रमत्तान्तानि चत्वारि ४। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वे असंयताद्युपशान्तकषायान्तानि गुणस्थानान्यष्टौ ८। कुतः? 'विदियउवसमसम्मत्तं अविरदसम्मादि-संतमोहो त्ति'[1]। अप्रमत्ते द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं समुत्पाद्योपर्युपशान्तकषायान्तं गत्वाऽधोऽवतरणेऽसंयतान्तमपि तत्सम्भवात्। क्षायिकसम्यक्त्वे असंयताद्ययोगान्तानि एकादश ११। सिद्धेषु तत्सम्भवति। क्षयोपशमे वेदकसम्यक्त्वे अविरताद्यप्रमत्तान्तानि चत्वारि ४। मिथ्यात्वादित्रिके मिथ्यादृष्टौ सासादने मिश्रे च स्व-स्वनाम्ना स्व-स्वगुणस्थानं भवति ॥६८॥

सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा उपशमसम्यक्त्वी जीवोंके अविरतसम्यक्त्व आदि आठ गुणस्थान होते हैं। क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोंके अविरतसम्यक्त्व आदि ग्यारह गुणस्थान होते हैं। क्षयोपशमसम्यक्त्वी जीवोंके अविरतसम्यक्त्व आदि चार गुणस्थान होते हैं। मिथ्यात्वादित्रिकमें तत्तन्नामक एक एक ही गुणस्थान होता है अर्थात् मिथ्यादृष्टियोंके पहला मिथ्यात्वगुणस्थान, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सासादननामक दूसरा गुणस्थान और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके सम्यग्मिथ्यात्व नामक तीसरा गुणस्थान होता है ॥६८॥

मिच्छाई खीणंता सण्णिम्मि हवंति बार† ठाणाणि।
असण्णियम्मि जीवे दोण्णि य मिच्छाइ बोहव्वा ॥६९॥

संज्ञिजीवे संज्ञिमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानि दश गुणस्थानानि भवन्ति १०। असंज्ञिजीवे मिथ्यात्व-सासादनगुणस्थानद्वयं ज्ञातव्यम् ॥६९॥

संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञी जीवोंके मिथ्यात्वादि क्षीणकषायान्त बारह गुणस्थान होते हैं। असंज्ञी जीवोंमें मिथ्यात्वादि दो गुणस्थान जानना चाहिए ॥६९॥

मिच्छाइ-सजोयंता आहारे होंति तह अणाहारे।
मिच्छा साद अविरदा अजोइ* जोई य णायव्वा ॥७०॥

एवं मग्गणासु गुणट्ठाणा समत्ता

आहारके मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तानि त्रयोदश १३ भवन्ति। अनाहारके मिथ्यादृष्टि-सासादनाऽसंयताऽयोग-सयोगगुणस्थानानि पञ्च भवन्ति बोधव्यानि ५। कुतः? स अनाहारकः चतुर्गतिविग्रहकाले

1. गो० जी० ६९५।

†द बारस ठाणं। * ब अजोअ।

मिथ्यादृष्टि-सासादनाऽविरतगुणस्थाने भवति। सयोगस्य प्रतरलोकपूरणकाले कार्मणावसरे च भवति। अयोगि-सिद्धयोश्चानाहारो ज्ञातव्यः ॥७०॥ [तथा चोक्तम्—]

विग्गहगइमावण्णा समुग्घाया केवली अयोगिजिणा।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा[1] ॥६॥

इति मार्गणासु यथासम्भवं गुणस्थानानि समाप्तानि।

आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोंके मिथ्यात्वादि सयोगिकेवल्यन्त तेरह गुणस्थान होते हैं। तथा अनाहारक जीवोंके मिथ्यात्व, सासादन, अविरतसम्यक्त्व, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये पाँच गुणस्थान जानना चाहिए ॥७०॥

इस प्रकार मार्गणाओंमें गुणस्थानोंका निरूपण समाप्त हुआ।

अब गुणस्थानोंमें उपयोगोंका वर्णन करते हैं—

[मूलगा०११] [1]दोण्हं पंच य छच्चेव दोसु एक्कम्मि होंति वामिस्सा।
सत्तुवओगा सत्तसु दो चेव य दोसु ठाणेसु[2] ॥७१॥

५।५।६।६।६।७।७।७।७।७।७।७।२।२।

अथ गुणस्थानेषु यथासम्भवमुपयोगान् गाथात्रयेण दर्शयति–['दोण्हं पंच य छच्चेव' इत्यादि। मिथ्यात्व-सासादनयोर्द्वयोः उपयोगाः पञ्च ५। ततः अविरत-देशविरतयोः द्वयोः षडुपयोगाः ६। एकस्मिन् मिश्रे मिश्ररूपाः षडुपयोगाः ६। सप्तसु प्रमत्तादिषु सप्त उपयोगाः ७। सयोगयोर्द्वयोः गुणस्थानयोः द्वावुपयोगौ २ भवतः ॥७१॥

गुणस्थानेषु सामान्येन उपयोगाः—

गु०	मि०	सा०	मि०	सा०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अयो०
उप०	५	५	६	६	६	७	७	७	७	७	७	७	२	२

मिथ्यादृष्टि और सासादन इन दो गुणस्थानोंमें तीनों अज्ञान और चक्षुदर्शन तथा अचक्षुदर्शन ये पाँच-पाँच उपयोग होते हैं। अविरत और देशविरत इन दो गुणस्थानोंमें आदिके तीनों ज्ञान और आदिके तीनों दर्शन इस प्रकार छह-छह उपयोग होते हैं। एक तीसरे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें उक्त छहों मिश्रित उपयोग होते हैं। अर्थात् मत्यज्ञान मतिज्ञानसे मिश्रित होता है, इसी प्रकार शेष भी मिश्रित उपयोग जानना चाहिए। प्रमत्तविरतसे लेकर क्षीणकषायान्त सात गुणस्थानोंमें आदिके चार ज्ञान और आदिके तीन दर्शन इस प्रकार सात-सात उपयोग होते हैं। सयोगिकेवली और अयोगिकेवली इन दो गुणस्थानोंमें केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो उपयोग होते हैं ॥७१॥

अब उक्त मूलगाथाके इसी अर्थको दो भाष्यगाथाओंके द्वारा स्पष्ट करते हैं—

[2]अण्णाणतियं‡ दोसु† सम्मामिच्छे तमेव मिस्सं तु।
णाणाइतियं जुयले सत्तसु मणपज्जएण तं चेव ॥७२॥

1. सं पञ्चसं० ४, ११। 2. ४, 'तत्राज्ञानत्रय' इत्यादिगद्यभागः (पृ० ८२)।

१. प्रा०पञ्चसं० १, ११७। गो० जी० ६६५। २. शतक० ११।

‡द ब एयं। †द ब जोगो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणआइदुअं दुसु दससु तं ओहिदंसणाजुत्तं ।
केवलदंसण-णाणा उवओगा दोसु य गुणेसु ॥७३॥

३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	सजोगाजोगाणं २।२
२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	

इति गुणट्ठाणेसु उवओगा समत्ता ।

गुणस्थानेषु उपयोगाः न्यस्ताः । [तान्] गाथाद्वयेन विशेषयति-मिथ्यादृष्टौ सासादने च अज्ञानत्रिकं कुमति-कुश्रुत-विभङ्गज्ञानोपयोगास्त्रयः । सम्यग्मिथ्यात्वे मिश्रे त एव मिश्ररूपज्ञानोपयोगास्त्रयः ३ । ततो युगले असंयमे देशे च ज्ञानादित्रयं सुमति-सुश्रुतावधिज्ञानोपयोगास्त्रयः ३ । ततः प्रमत्तादि-क्षीणकषायान्तेषु सप्तगुणस्थानेषु मनःपर्ययेण सहिताः त एव त्रयः, इति चतुर्ज्ञानोपयोगाः ४ स्युः । मिथ्यात्व-सासादनयो-र्द्वयो दर्शनाद्यं द्विकं चक्षुरचक्षुर्दर्शनोपयोगौ द्वौ २ । ततः दशसु मिश्रादि-क्षीणकषायान्तेषु तदेवावधिदर्शन-युक्तं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनोपयोगास्त्रयः भवन्ति । द्वयोः सयोगाऽयोगयोः केवलदर्शनं १ केवलज्ञानं च द्वौ उपयोगौ भवतः २। २। ॥७२–७३॥

गुणस्थानेषु विशेषेण उपयोगाः—

गु०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अयो०
ज्ञानो०	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	१	१
दर्शनो०	२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	१	१

इति गुणस्थानेषु उपयोगा दर्शिताः ।

आदिके दो गुणस्थानोंमें तीनों अज्ञान होते हैं । सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीनों अज्ञान तीनों सद्-ज्ञानोंसे मिश्रित होते हैं । चौथे और पाँचवें इन दो गुणस्थानोंमें मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञानोपयोग होते हैं । छठेसे लेकर बारहवें गुणस्थान तक सात गुणस्थानोंमें मनः-पर्ययज्ञानके साथ उक्त तीनों ज्ञानोपयोग होते हैं । आदिके दो गुणस्थानोमें आदिके दो दर्शनो-पयोग होते हैं । तीसरेसे लेकर बारहवें तक दश गुणस्थानोंमें अवधिदर्शनसे युक्त आदिके दोनों दर्शनोपयोग होते हैं । तेरहवें और चौदहवें इन दो गुणस्थानोंमें केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दो-दो उपयोग होते हैं ॥७२–७३॥

अब गुणस्थानोंमें योगोंका वर्णन करते हैं—

[मूलगा०१२] [1]तिसु तेरेगे दस णव सत्तसु इक्कम्हि हुंति एकारा ।
इक्कम्हि सत्त जोगा अजोयठाणं हवइ सुण्णं[1] ॥७४॥

१३।१३।१०।१३।९।११।९।९।९।९।९।९।७।०।

अथ गुणस्थानेषु यथासम्भवं योगान् गाथात्रयेण दर्शयति—['तिसु तेरे एगे दस' इत्यादि ।] त्रिषु त्रयोदश १३, एकस्मिन् दश १०, सप्तसु नव ९, एकस्मिन् एकादश ११ भवन्ति । एकस्मिन् सप्त-योगाः ७ । अयोगिस्थानं शून्यं भवेत् ॥७४॥

---

1. ४, १२-१३ ।

१. शतके । एतद्गाथास्थाने इमे द्वे गाथे उपलभ्येते —

तिसु तेरस एगे दस नव जोगा होंति सत्तसु गुणेसु ।
एक्कारस य पमत्ते सत्त सजोगे अजोगिक्के ॥१२॥
तेरस चउसु दसेगे पंचसु नव दोसु होंति एगारा ।
एगम्मि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवइ एगं ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानेषु योगाः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अयो०
१३	१३	१०	१३	९	११	९	९	९	९	९	९	७	०

इति गुणस्थानेषु योगा निरूपिताः ।

मिथ्यात्व, सासादन और अविरतसम्यक्त्व इन तीन गुणस्थानोंमें तेरह-तेरह योग होते हैं। एक सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें दश योग होते हैं। छठे गुणस्थानको छोड़कर पाँचवेंसे बारहवें तक सात गुणस्थानोंमें नौ-नौ योग होते हैं। एक प्रमत्तसंयत नामक छठे गुणस्थानमें ग्यारह योग होते हैं। एक सयोगिकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानमें सात योग होते हैं और अयोगिकेवली नामक एक चौदहवाँ गुणस्थान योग-रहित होता है ॥७४॥

अब उक्त मूलगाथाके अर्थका दो भाष्यगाथाओंसे स्पष्टीकरण करते हैं—

[1]आहारदुगूणा तिसु वेउव्वोराल मण-वचि चउक्का ।
मिस्से वेउव्वूणा सत्तसु आहारदुयजुया छट्ठे ॥७५॥
भासा-मणजोआणं असच्चमोसा य सच्चजोगा य ।
[2]ओरालजुयल-कम्मा सत्तेदे होंति जोगिम्मि ॥७६॥

इति गुणस्थानेषु चतुर्दशासु योगाः दर्शिताः ॥

मिथ्यात्व-सासादनाऽसंयमगुणस्थानेषु त्रिषु आहारकाऽऽहारकमिश्रद्विकोना अन्ये त्रयोदश योगाः १३ । मिश्रे वैक्रियिकौदारिककाययोगौ २, सत्यासत्योभयानुभयमनो-वचनयोगाः अष्टौ, एवं दश १० । अप्रमत्ताऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायोपशान्त-क्षीणकषाय-देशविरतगुणस्थानेषु सप्तसु वैक्रियि[कद्वि]कोना औदारिककाययोगः १, मनो-वचनयोगाः अष्टौ ८; एवं नव योगाः ९ भवन्ति । षष्ठे प्रमत्ते पूर्वोक्ताः नव ९, आहारकद्विकयुक्ता एकादश ११ ॥७५॥

सयोगिनि गुणस्थाने भाषा-मनोयोगानां मध्ये असत्यमृषायोगौ मुक्त्वा अन्ये अनुभयमनो-वचनयोगौ २, सत्यमनो-वचनयोगौ २, औदारिकौदारिकमिश्र-कार्मणकयोगास्त्रयः ३, इत्येते सप्त योगाः सयोगिकेवलिनि भवन्ति ॥७६॥

इति गुणस्थानेषु योगा दर्शिताः ।

पहले, दूसरे और चौथे इन तीन गुणस्थानोंमें आहारकद्विकके बिना शेष तेरह योग होते हैं। तीसरे मिश्रगुणस्थानमें चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग और वैक्रियिककाययोग ये दश योग होते हैं। इन दश योगोंमेंसे वैक्रियिककाययोगको छोड़कर शेष नौ योग छठे गुणस्थानके सिवाय शेष सात गुणस्थानोंमें होते हैं। छठे गुणस्थानमें आहारकद्विकयुक्त उपर्युक्त नौ योग अर्थात् ग्यारह योग होते हैं। सयोगिकेवलीमें भाषा और मनोयोगके असत्य-मृषा और सत्ययोगरूप चार भेद, तथा औदारिकद्विक और कार्मणकाययोग ये तीन; इस प्रकार कुल सात योग होते हैं ॥७५-७६॥

इस प्रकार चौदह गुणस्थानोंमें योगोंका निरूपण किया।

---

1. सं० पञ्चसं० ४, 'मिथ्यादृक्सासनाव्रतेषु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० ८३) । 2. ४, १४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब गुणस्थानोंमें बन्धके कारणोंका वर्णन करनेके लिए ग्रन्थकार बन्ध-हेतुओंके भेदोंका निर्देश करते हैं—

[1]मिच्छासंजम हुंति हु कसाय जोगा य बंधहेऊ ते ।
पंच दुवालस* भेया कमेण पणुवीस पण्णरसं ॥७७॥

५।१२।२५।१५ मिलिया ५७ ।

अथ गुणस्थानेषु यथासम्भवं सामान्य-विशेषेण प्रत्ययान् गाथासप्तकेनाऽऽह—['मिच्छाऽसंजम' इत्यादि ।] मिथ्यात्वाऽसंयमौ भवतः, कषाय-योगौ च भवतः; इत्येते चत्वारो मूलप्रत्यया भवन्ति ४ । ते कथम्भूताः? बन्धहेतवः कर्मणां बन्धकारणानि । तेषां मिथ्यात्वाऽसंयम-कषाय-योगानां भेदाः क्रमेण पञ्च ५ द्वादश १२ पञ्चविंशतिः २५ पञ्चदश १५ भवन्ति । मिलित्वोत्तरप्रत्ययाः सप्तपञ्चाशत् ५७ भवन्ति । तेऽपि कर्म-बन्धहेतवः ॥७७॥

मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार कर्मबन्धके मूल कारण हैं। इनके उत्तर भेद क्रमसे पाँच, बारह, पच्चीस और पन्द्रह हैं। इस प्रकार सब मिलकर कर्म-बन्धके सत्तावन उत्तर-प्रत्यय होते हैं। (प्रत्यय, हेतु और कारण ये तीनों पर्यायवाची नाम हैं।) ॥७७॥

[मूलगा० १३] [2]चउपच्चइओ बंधो पढमे अणंतरतिए तिपच्चइओ ।
मिस्सय विदिओ उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्हि[1] ॥७८॥

[मूलगा० १४] [3]उवरिल्लपंचया पुण दुपच्चया जोयपच्चया तिण्णि ।
सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्हं होंति कम्माणं[2] ॥७९॥

४।३।३।३।$\frac{5}{2}$।२।२।२।२।२।१।१।१।०

मूलप्रत्ययाः गुणस्थानेषु कथ्यन्ते—प्रथमे मिथ्यादृष्टौ बन्धश्चतुःप्रत्ययिकः चतुर्विधः प्रत्ययः ४ । अनन्तरत्रिके संलग्नसासादनमिश्राऽविरतगुणस्थानेषु त्रिषु मिथ्यात्वं विना त्रिप्रत्ययिकः ३ । देशेन लेशेनैकमसंयमं दिशति परिहरतीति देशैकदेशः देशसंयतः, तत्रापि त्रिप्रत्ययिकः । ते प्रत्ययाः विरमणेन मिश्रमविरमणं कषाययोगौ चेति, त्रसवधविना स्थावर-विराधनादिसंयुक्तौ कषाय-योगौ इत्यर्थः सार्धद्वयप्रत्ययबन्धः ॥७८॥

उपरितनाः पञ्च गुणाः द्वि-द्विप्रत्ययाः कषाया योगाः, प्रमत्तादि-सूक्ष्मसाम्परायान्तेषु पञ्चसु कषाय-योगौ प्रत्ययौ द्वौ द्वौ भवत इत्यर्थः । ततः त्रयो गुणा उपशान्तादयः योगप्रत्ययाः, उपशान्तादिषु त्रिषु एकः योगप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । इत्येवं खलु अष्टकर्मणां सामान्यप्रत्ययाः तद्बन्धननिमित्तानि भवन्ति ॥७९॥

गुणस्थानेषु मूलप्रत्ययाः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
४	३	३	३	$\frac{5}{2}$	२	२	२	२	२	१	१	१	०

प्रथम गुणस्थानमें उपर्युक्त चारों प्रत्ययोंसे कर्म-बन्ध होता है। तदनन्तर तीन गुणस्थानोंमें मिथ्यात्वको छोड़कर शेष तीन कारणोंसे कर्म-बन्ध होता है। देशविरत नामक पाँचवें गुणस्थानमें दूसरा असंयमप्रत्यय मिश्र अर्थात् आधा और उपरिम दो प्रत्यय कर्म-बन्धके कारण हैं। तदनन्तर ऊपरके पाँच गुणस्थानोंमें कषाय और योग इन दो कारणोंसे कर्म-बन्ध होता है।

1. सं० पञ्चसं० ४, १५-१६ । 2. ४, १८-१९ । 3. ४, १८-२१ ।

१. शतक० १४ । तत्र 'अणंतरतिए' इति स्थाने 'उवरिमतिगे' इति पाठः । २. गो०क० ७८७—७८८ ।

* द दुवारस ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें इन तीन गुणस्थानोंमें केवल योगप्रत्ययसे कर्म-बन्ध होता है। इस प्रकार आठों कर्मोंके बन्धके कारण ये सामान्य प्रत्यय होते हैं ॥७८-७९॥

अब गुणस्थानोंमें उत्तर प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[1]पणवण्णा पण्णासा तेयाल छयाल† सत्ततीसा य।
चउवीस दु वावीसा सोलस एऊण जाव णव सत्ता ॥८०॥

[2]णाणाजीवेसु णाणासमएसु उत्तरपच्चया गुणट्ठाणेसु ५५।५०।४३।४६।३७।२४।२२।२२।
अणियट्टिम्मि १६।१५।१४।१३।१२।११।१०। सुहुमाइसु पंचसु १०।९।९।७।०।

उत्तरप्रत्ययाः गुणस्थानेषु क्रमेण कथ्यन्ते—पञ्चपञ्चाशत् ५५, पञ्चाशत् ५०, त्रिचत्वारिंशत् ४३, षट्चत्वारिंशत् ४६, सप्तत्रिंशत् ३७, चतुर्विंशतिः २४, द्विवारद्वाविंशतिः २२, २२; षोडश १६ यावन्नवाङ्कं ९ तावदेकोनः १५, १४, १३, १२, ११, १०, ९। ७, ० ॥८०॥

नानाजीवेषु नानासमयेषु उत्तरप्रत्ययाः गुणस्थानेषु—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अनिवृत्तस्य सप्तभागेषु							सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
५५	५०	४३	४६	३७	२४	२२	२२,	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०,	१०	९	९	७	०

मिथ्यात्व गुणस्थानमें पचपन उत्तर प्रत्ययोंसे कर्म-बन्ध होता है। सासादनमें पचास उत्तर प्रत्ययोंसे कर्म-बन्ध होता है। मिश्रमें तेतालीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। अविरतमें छयालीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। देशविरतमें सैंतीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। प्रमत्तविरतमें चौबीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। अप्रमत्तविरतमें बाईस उत्तर प्रत्यय होते हैं। अपूर्वकरणमें बाईस उत्तर प्रत्यय होते हैं। अनिवृत्तिकरणमें सोलह और आगे एक-एक कम करते हुए दश तक उत्तर प्रत्यय होते हैं। सूक्ष्म-साम्परायमें दश उत्तर प्रत्यय होते हैं। उपशान्तकषाय और क्षीणकषायमें नौ-नौ उत्तर प्रत्यय होते हैं। सयोगिकेवलीमें सात उत्तर प्रत्यय होते हैं। अयोगिकेवलीमें कर्म-बन्धका कारणभूत कोई भी मूल या उत्तर प्रत्यय नहीं होता है ॥८०॥

गुणस्थानोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा नाना समयोंमें उत्तरप्रत्यय इस प्रकार होते हैं—

मि०	सा०	मि०	अवि०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनिवृत्तिकरण						
५५	५०	४३	४६	३७	२४	२२	२२,	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०,

सू०	उप०	क्षी०	सयो०	अयो०
१०	९	९	७	०

अब ग्रन्थकार किस गुणस्थानमें कौन-कौन उत्तरप्रत्यय नहीं होते, यह दिखलाते हैं—

[3]आहारदुअ-विहीणा मिच्छूणा अपुण्णजोअ अणहीणा ते।
अपज्जत्तजोअ सह ते ऊण तसवह विदिय अपुण्णजोअ वेउव्वा ॥८१॥
ते एयारह जोआ छट्ठे संजलण णोकसाया य।
आहारदुगूणा दुसु कमसो अणियट्टिए इमे भेया ॥८२॥
छक्कं हस्साईणं संढित्थी पुरिसवेय संजलणा।
बायर सुहुमो लोहो सुहुमे सेसेसु सए सए जोया ॥८३॥

1. सं० पञ्चसं० ४, ३२-३४। 2. ४, ३५। 3. ४, 'आहारकद्वयोना' इत्यादि गद्यभागः (पृ० ८५)।
† ब छायाल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टौ आहारकद्विकविहीना अन्ये पञ्चपञ्चाशत् ५५ । मिथ्यात्वपञ्चकोनाः सासादने पञ्चाशत् ५० । औदारिक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणाऽपूर्णयोगत्रयाऽनन्तानुबन्धिहीनाः मिश्रगुणे त्रिचत्वारिंशत् ४३ । अपर्याप्तयोगत्रयसहिताः असंयते षट्चत्वारिंशत् ४६ । त्रसवधाऽप्रत्याख्यानद्वितीयचतुष्कौदारिकवैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोग-वैक्रियिकैर्नवभिरूनाः देशसंयते सप्तत्रिंशत् ३७ । षष्ठे प्रमत्ते ते अपूर्णत्रिक-वैक्रियिकेभ्यो विना एकादश योगाः ११, संज्वलनकषायचतुष्कं ४ नव नोकषायाः ६ चेति चतुर्विंशतिः प्रमत्ते २४ स्युः । द्वयोरप्रमत्तापूर्वकरणयोः ते पूर्वोक्ता आहारकद्विकोनाः द्वाविंशतिः । मनो-वचनयोगाः अष्टौ ८, औदारिक-काययोगः १ संज्वलनकषायचतुष्कं ४ नव नोकषायाः ६ इति द्वाविंशतिः प्रत्यया २२ अप्रमत्ते अपूर्वकरणे च भवन्ति । अनिवृत्तिकरणे इमान् वक्ष्यमाणान् भेदान् क्रमेणाह—अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमे भागे हास्यादि-षट्कं विना षोडश, षण्ढवेदं विना द्वितीये १५, स्त्रीवेदं विना तृतीये १४, पुंवेदं विना चतुर्थे १३, संज्वलनक्रोधं विना पञ्चमे १२, संज्वलनमानं विना षष्ठे भागे एकादश ११ । बादरलोभः बादर-अनिवृत्तिकरणे व्युच्छिन्नः । सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मलोभोऽस्ति १, अष्टौ मनो-वचनयोगाः ८, औदारिककाययोगः एकः १ । एवं १० दश सूक्ष्मसाम्पराये भवन्ति । शेषेषु उपशान्तादिषु चतुर्षु स्वे स्वे योगाः । उपशान्ते क्षीणकषाये च अष्टौ मनो-वचनयोगाः ८, औदारिककाययोगः १ एवं ६ । सयोगे सत्याऽनुभयमनोवागौदारिकद्विक-कार्मण-योगाः सप्त ७ । अयोगे शून्यं ० ॥८१–८३॥

इति गुणस्थानेषु यथासम्भवं सामान्य-विशेषभेदेन प्रत्ययबन्धः समाप्तः ।

अथ मार्गणास्थानेषु यथासम्भवं प्रत्ययान् प्ररूपयति—

गतिमार्गणायां प्रत्ययाः—

न०	ति०	म०	दे०
५१	५३	५५	५२

इन्द्रियमार्गणायां प्रत्ययाः—

ए०	द्वी०	त्री०	च०	पं०
३८	४०	४१	४२	५७

कायमार्गणायां प्रत्ययाः—

पृ०	अ०	ते०	वा०	व०	त्र०
३८	३८	३८	३८	३८	५७

योगमार्गणायां प्रत्ययाः—

मनोयोगे—

स०	मृ०	स०	अ०
४३	४३	४३	४३

वचनयोगे—

स०	मृ०	स०	अ०
४३	४३	४३	४३

काययोगे—

औ०	औ०मि०	वै०	वै०मि०	आ०	आ०मि०	का०
४३	४३	४३	४३	१२	१२	४३

वेदमार्गणायां प्रत्ययाः—

स्त्री०	पु०	नं०
५३	५५	५५

कषायमार्गणायां प्रत्ययाः—

क्रो०	मा०	माया०	लो०
४५	४५	४५	४५

ज्ञानमार्गणायां प्रत्ययाः—

कुम०	कुश्रु०	वि०	म०	श्रु०	अव०	म०	के०
५५	५५	५२	४८	४८	४८	२०	७

संयममार्गणायां प्रत्ययाः—

सा०	छे०	प०	सू०	य०	सं०	अ०
२४	२४	२२	१०	११	३७	५५

दर्शनमार्गणायां प्रत्ययाः—

च०	अच०	अव०	के०
५७	५७	४८	७

लेश्यामार्गणायां प्रत्ययाः—

कृ०	नी०	का०	ते०	प०	शु०
५५	५५	५५	५७	५७	५७

भव्यमार्गणायां प्रत्ययाः—

भ०	अ०
५७	५५

सम्यक्त्वमार्गणायां प्रत्ययाः—

औ०	वे०	क्षा०	सा०	मिश्र	मि०
४६	४८	४८	५०	४३	५५

संज्ञिमार्गणायां प्रत्ययाः—

सं०	अ०
५७	४५

आहारमार्गणायां प्रत्ययाः—

आ०	अना०
५६	४३

इति मार्गणासत्प्रत्ययरचनेयम् ।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग ये दो प्रत्यय नहीं होते हैं। सासादनमें उक्त आहारकद्विक और पाँचों मिथ्यात्व ये सात प्रत्यय नहीं होते हैं। मिश्रगुणस्थानमें अपर्याप्तकालसम्बन्धी औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मण-काययोग ये तीन योग, अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क और उपर्युक्त सात इस प्रकार चौदह प्रत्यय नहीं होते हैं। अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें उक्त चौदह प्रत्ययोंमेंसे अपर्याप्तकालसम्बन्धी तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यय होते हैं, शेष ग्यारह प्रत्यय नहीं होते हैं। देशविरतमें त्रसवध; द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण-कषायचतुष्क, अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी तीनों योग, वैक्रियिककाययोग तथा उपर्युक्त ग्यारह प्रत्यय (मिथ्यात्वपञ्चक, अनन्तानुबन्धिचतुष्क और आहारकद्विक) इस प्रकार बीस प्रत्यय नहीं होते हैं। छट्ठे गुणस्थानोंमें चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग और आहारकद्विक ये ग्यारह योग, संज्वलनचतुष्क और नौ नोकषाय इस प्रकार चौबीस प्रत्यय होते हैं। (शेष तेतीस प्रत्यय नहीं होते हैं।) इन चौबीसमेंसे सातवें और आठवें इन दो गुणस्थानोंमें आहारकद्विकके विना शेष बाईस प्रत्यय होते हैं। अनिवृत्तिकरणके सात भागोंमें बन्ध-प्रत्ययोंके भेद इस प्रकार होते हैं—प्रथम भागमें अपूर्वकरणके बाईस प्रत्ययोंमेंसे हास्यादि-षट्कके विना सोलह प्रत्यय होते हैं। द्वितीय भागमें नपुंसकवेदके विना पन्द्रह, तृतीय भागमें स्त्रीवेदके विना चौदह, चतुर्थ भागमें पुरुषवेदके विना तेरह, पंचम भागमें संज्वलनक्रोधके विना बारह, षष्ठ भागमें संज्वलन-मानके विना ग्यारह और सप्तम भागमें संज्वलनमायाके विना बादरलोभ-सहित दश उत्तर प्रत्यय होते हैं। दशवें गुणस्थानमें चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग और सूक्ष्मसंज्वलन लोभ ये दश उत्तर प्रत्यय होते हैं। शेष अर्थात् ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानमें सूक्ष्मसंज्वलन लोभके विना शेष नौ नौ प्रत्यय होते हैं। तेरहवें गुणस्थानमें प्रथम और अन्तिम दो-दो मनोयोग और वचनयोग, तथा औदारिकद्विक और कार्मण काययोग ये सात प्रत्यय होते हैं ॥८१–८३॥

अब मार्गणाओंमें बन्ध प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[1]ओरालिय-आहारदुगूणा हेऊ हवंति सुर-णिरए।
आहारय-वेउव्वदुगूणा सव्वे वि तिरिएसु ॥८४॥
वेउव्वजुयलहीणा मणुए पणवण्ण पच्चया होंति।
गइचउरएसु एवं सेसासु वि ते मुणेयव्वा ॥८५॥

अथ मार्गणास्थानेषु यथासम्भवं प्रत्ययान् गाथासप्तदशकेनाह—['ओरालिय आहार—' इत्यादि।] सुरगत्यां नारकगत्यां च औदारिकद्विकाऽऽहारकद्विकोनाः अन्ये द्विपञ्चाशत्, एकपञ्चाशत् हेतवः प्रत्ययाः आस्रवा भवन्ति। देवगतौ तु नपुंसकवेदं विना, नारकगतौ तु स्त्री-पुंवेदाभ्यां विना ज्ञातव्याः। तिर्यग्गत्यां आहारकद्विक-वैक्रियिकद्विकोनाः अन्ये त्रिपञ्चाशत् ५३ भवन्ति ॥८४॥

मनुष्यगतौ वैक्रियिकयुग्महीनाः अन्ये पञ्चपञ्चाशत् प्रत्ययाः ५५ भवन्ति। गतिषु चतुर्षु एवम्। शेषासु मार्गणासु एकेन्द्रियादिषु ते वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः ज्ञातव्याः ॥८५॥

गतिमार्गणाकी अपेक्षा नरकगतिमें औदारिकद्विक, आहारकद्विक, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन छहके विना शेष इकावन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। देवगतिमें उक्त छहमेंसे स्त्रीवेद और पुरुषवेद निकालकर और नपुंसकवेद मिलाकर पाँचके विना शेष बावन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। तिर्यग्गतिमें वैक्रियिकद्विक और आहारकद्विक इन चारके विना शेष सभी अर्थात् तिरेपन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। मनुष्यगतिमें वैक्रियिकद्विकके विना शेष पचपन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। इस प्रकार चारों गतियोंमें बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण किया। इसी प्रकारसे शेष मार्गणाओंमें भी उन्हें जान लेना चाहिए ॥८४–८५॥

1. ४, ३६, तथा 'स्त्रीपुंवेदो' इत्यादि गद्यभागः (पृ० ८७)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्ताइचउक्कय बारह-जोगूणिगिंदिए मोत्तुं ।
कम्मोरालदुअं खलु वयणंतजुआ दु ते वियले ॥८६॥

एकेन्द्रिये कार्मणौदारिकयुग्मं मुक्त्वा शेषद्वादशयोगोनाः रसनादिचतुष्क-मनःपुंवेद-स्त्रीवेदेभ्यो विना च शेषाः अष्टात्रिंशत्प्रत्ययाः ३८ । मिथ्यात्वादिमूलप्रत्ययचतुष्टयः, तन्मध्ये मिथ्यात्वपञ्चकं ५ कायषट्कं ६, स्पर्शनेन्द्रियाऽसंयमः १, स्त्री-पुंवेदरहितकषायास्त्रयोविंशतिः २३ । औदारिकयुग्म-कार्मणयोग एक इति त्रिकं ३ चेत्यष्टत्रिंशत्प्रत्यया एकेन्द्रियाणां भवन्तीत्यर्थः ३८ । विकलत्रये त एव वचनान्तस्वेन्द्रिययुक्ता भवन्ति । द्वीन्द्रिये त एव ३८ अनुभयभाषा-रसनाभ्यां सह ४० । त्रीन्द्रिये घ्राणेन सह त एव ४१ । चक्षुषा सह चतुरिन्द्रिये त एव ४२ इत्यर्थः ॥८६॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व आदि चार मूलप्रत्ययोंमेंसे औदारिक-द्विक तथा कार्मणकाययोगके विना शेष बारह योगोंको, एवं रसनादि चार इन्द्रिय और मन-सम्बन्धी पाँच अविरति तथा स्त्री और पुरुष इन दो वेदोंको छोड़कर बाकीके अड़तीस बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए। विकलेन्द्रियोंमें अन्तिम वचनयोग-सहित वे सर्व प्रत्यय होते हैं ॥८६॥

विशेषार्थ—यद्यपि भाष्य-गाथामें एकेन्द्रियोंके बन्धप्रत्यय बतलाते हुए 'बारह जोगूण' पदके द्वारा केवल बारह जोगोंके विना शेष प्रत्यय होनेका विधान किया गया है, जिसके अनुसार एकेन्द्रियोंमें पैंतालीस प्रत्यय होना चाहिए। पर वे संभव नहीं हैं। अतः 'मिच्छत्तादि-चउक्कय' पदके पाये जानेसे तथा 'योग' पदको उपलक्षण मान करके रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन ये पाँच अविरति एवं स्त्रीवेद और पुरुषवेद ये दो नोकषाय इनको भी कम करना चाहिए। अर्थात् पाँच अविरति, दो नोकषाय और बारह योग, इन उन्नीस प्रत्ययोंको सर्व सत्तावन प्रत्ययोंमेंसे कम करने पर शेष अड़तीस बन्ध-प्रत्यय एकेन्द्रियोंमें होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। द्वीन्द्रियोंमें रसनेन्द्रिय और अनुभयवचनयोगको मिलाकर चालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं। त्रीन्द्रियोंमें घ्राणेन्द्रियको मिलाकर इकतालीस और चतुरिन्द्रियोंमें चक्षुरिन्द्रियको मिलाकर ब्यालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं।

तस पंचक्खे सव्वे थावरकाए इगिंदिए जेम ।
चोद्दस जोयविहीणा तेरस जोएसु ते णियं मोत्तुं ॥८७॥
संजलण णोकसाया संढित्थी वज्ज सत्त णिय जोगा ।
आहारदुगे हेऊ पुरिसे सव्वे वि णायव्वा ॥८८॥
इत्थि-णउंसयवेदे आहारदुगूणया होंति ।
कोहाइकसाएसुं कोहाइ इयर-दुवालस-विहीणा ॥८९॥

त्रसकाये पञ्चाक्षे च सर्वे प्रत्ययाः सप्तपञ्चाशत् भवन्ति ५७ । यथा एकेन्द्रियोक्ताः अष्टात्रिंशत्प्रत्ययाः, तथा पृथिव्यप्तेजोवायु-वनस्पतिकायेषु पञ्चसु स्थावरेषु ३८ भवन्ति । आहारकयुग्मं परित्यज्य अन्ये त्रयो-दशयोगेषु निजं निजं योगं राशिमध्ये मुक्त्वा चतुर्दशयोगविहीनास्ते प्रत्ययाः ४३ भवन्ति । मिथ्यात्वपञ्चकं ५, असंयमाः १२, कषायाः २५, स्वकीययोगः; एवं ४३ । ॥८७॥

संज्वलनचतुष्कं ४, नपुंसक-स्त्रीवेदवर्जितनोकषायसप्तकं ७ निजयोगैकसहितः १ इति द्वादश हेतवः प्रत्ययाः आहारककाययोगे आहारकमिश्रकाये च भवन्ति १२ । पुंवेदे एकस्मिन् समये सर्वे वेदा न भवन्ति, इति हेतोः द्वाभ्यां वेदाभ्यां विना अन्ये सर्वे आस्रवाः ५५ ज्ञातव्याः ॥८८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीवेदे नपुंसकवेदे च आहारकद्विकाऽन्यतरवेदद्वयरहिताः प्रत्ययाः ५३ भवन्ति। क्रोधादिकषायेषु क्रोधादेरितरद्वादशविहीनाः, यदा क्रोधो भवति, तदाऽन्यत् मानादित्रयं न भवति, इति हेतोरनन्तानुबन्ध्य-प्रत्याख्यानादिभेदेन द्वादशरहिताः ४५ ॥८६॥

कायमार्गणाकी अपेक्षा त्रसकायिक जीवोंमें और पंचेन्द्रियोंमें सर्व ही बन्ध-प्रत्यय होते हैं। स्थावरकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान अड़तीस बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए। योगमार्गणाकी अपेक्षा आहारकद्विकके विना बाकीके तेरह योगोंमें निज-निज योगको छोड़कर शेष चौदह योगोंसे रहित तेतालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं। आहारकद्विकमें चारों संज्वलन, तथा नपुंसक और स्त्रीवेदको छोड़कर शेष सात नोकषाय और स्वकीय योग इस प्रकार बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं। वेदमार्गणाकी अपेक्षा पुरुषवेदी जीवोंमें सभी बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए। स्त्रीवेदी और नपुंसक-वेदी जीवोंमें आहारकद्विकको छोड़कर शेष सर्व प्रत्यय होते हैं। कषायमार्गणाकी अपेक्षा विवक्षित क्रोधादि कषायोंमें अपने चारके सिवाय अन्य बारह कषायोंके घट जानेसे शेष पैंतालीस-पैंतालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥८७–८९॥

विशेषार्थ—वेदमार्गणामें इतना विशेष ज्ञातव्य है कि विवक्षित वेदवाले जीवके बन्ध-प्रत्यय कहते समय उसके अतिरिक्त अन्य दो वेदोंको भी कम करना चाहिए; क्योंकि एक जीवके एक समयमें सभी वेदोंका उदय संभव नहीं है। अतएव पुरुषवेदीके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके विना पचपन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। तथा स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदीके स्व-व्यतिरिक्त शेष दो वेद और आहारकद्विकके विना शेष तिरेपन-तिरेपन बन्ध-प्रत्यय होते हैं।

मइ-सुअअण्णाणेसुं आहारदुगूणया मुणेयव्वा।
मिस्सतियाहारदुअं वज्जित्ता सेसया दु वेभंगे ॥९०॥
मइ-सुअ-ओहिदुगेसुं अणचदु-मिच्छत्तपंचहि विहीणा।
हस्साइ छक्क पुरिसो संजलण मण-वचि चउर उरालं ॥९१॥
मणपज्जे केवलदुवे मण-वचि पढमंत कम्म उरालदुगं।
संजलण णोकसाया मण-वचि ओराल आहारदुगं ॥९२॥
सामाइय-छेएसुं आहारदुगूणया दु परिहारे।
मण-वचि अट्ठोरालं सुहुमे संजलण लोहंते ॥९३॥
कम्मोरालदुगाइं मण-वचि चउरा य होंति जहखाए।
असंजमम्मि सव्वे आहारदुगूणया णेया ॥९४॥
अण मिच्छ विदिय तसवह वेउव्वाहारजुयलाइं
ओरालमिस्सकम्मा तेहिं विहीणा दु होंति देसम्मि ॥९५॥

मति-श्रुताऽज्ञानद्वये आहारकद्विकोनाः अन्ये पञ्चपञ्चाशत् प्रत्ययाः ५५ ज्ञातव्याः। विभङ्गज्ञाने औदारिक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणमिति मिश्रत्रिकं आहारकद्विकं च वर्जयित्वा शेषाः ५२ प्रत्ययाः स्युः ॥९०॥

मति-श्रुतावधिज्ञानेषु अवधिदर्शने च अनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्वपञ्चकैर्विहीनाः अन्ये अष्टचत्वा-रिंशत् ४८ प्रत्ययाः स्युः। मनःपर्ययज्ञाने हास्यादिषट्कं ६ पुंवेदः १ संज्वलनचतुष्कं ४ मनोयोगचतुष्कं ४ वचनयोगचतुष्कं ४ औदारिकं १ चेति विंशतिः २० ॥९१॥

केवलज्ञाने केवलदर्शने च मनो-वचनप्रथमान्ताः सत्यानुभयमनो-वचनयोगाः ४, कार्मणं १ औदारिकद्विकं २ चेति सप्ताऽऽस्रवाः ७ स्युः। सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः संज्वलनाः ४ नव नोकषायाः ९ मनो-वचनयोगाः ८ औदारिकाऽऽहारकद्विकं ३ चेति चतुर्विंशतिः प्रत्ययाः २४ स्युः ॥९२॥

परिहारविशुद्धौ त एव २४ आहारकद्विकोनाः द्वाविंशतिः २२। सूक्ष्मसाम्परायसंयमे मनो-वचनयोगाः अष्टौ ८, औदारिककाययोगः १। कथम्भूते सूक्ष्मे? संज्वलनलोभान्ते। संज्वलनलोभोऽन्ते यस्य, स सूक्ष्मलोभसंयुक्तः १। एवं दश प्रत्ययाः १० ॥९३॥

यथाख्याते कार्मणं १ औदारिकद्विकं २ मनो-वचनयोगाः अष्टौ ८ चेत्येकादश ११ भवन्ति। असंयमे आहारकद्वयोनाः अन्ये सर्वे पञ्चपञ्चाशत् प्रत्यया ५५ ज्ञेयाः ॥९४॥

अनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्वपञ्चकाप्रत्याख्यानचतुष्क-त्रसवध-वैक्रियिकयुग्माऽऽहारकयुगलौदारिकमिश्रकार्मणकैस्तैर्विंशतिसंख्यैर्विहीनाः अन्ये सप्तत्रिंशत्प्रत्ययाः देशसंयमे ३७ भवन्ति ॥९५॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें आहारकद्विकके विना शेष पचपन-पचपन बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए। विभंगज्ञानियोंमें मिश्रत्रिक अर्थात् औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग, तथा आहारकद्विक; इन पाँचको छोड़कर शेष बावन बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए। मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिद्विक अर्थात् अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें अनन्तानुबन्धिचतुष्क और मिथ्यत्वपंचक; इन नौके विना शेष अड़तालीस-अड़तालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं। मनःपर्ययज्ञानियोंमें हास्यादिषट्क, पुरुषवेद, संज्वलनचतुष्क, मनोयोगचतुष्क, वचनयोगचतुष्क और औदारिककाययोग; ये बीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं। केवलद्विक अर्थात् केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जीवोंमें आदि और अन्तके दो-दो मनोयोग और वचनयोग, तथा औदारिकद्विक और कार्मणकाययोग; इस प्रकार सात-सात बन्ध-प्रत्यय होते हैं। संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी जीवोंमें संज्वलनचतुष्क, नौ नोकषाय, मनोयोगचतुष्क, वचनयोगचतुष्क, औदारिककाययोग और आहारकद्विक, ये चौबीस-चौबीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं। परिहारविशुद्धसंयमी जीवोंमें उक्त चौबीसमेंसे आहारकद्विकके सिवाय शेष बाईस बन्ध-प्रत्यय होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायसंयमियोंमें मनोयोग-चतुष्क, वचनयोगचतुष्क, औदारिककाययोग और सूक्ष्मलोभ, ये दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं। यथाख्यातसंयमियोंमें मनोयोगचतुष्क, वचनयोगचतुष्क, औदारिकद्विक और कार्मणकाययोग, ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं। असंयमी जीवोंमें आहारकद्विकके विना शेष पचपन बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए। देशसंयमी जीवोंमें अनन्तानुबन्धिचतुष्क, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, मिथ्यात्वपंचक, त्रसवध, वैक्रियिकयुगल, आहारकयुगल, औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोग, इन बीसके विना शेष सैंतीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥९०-९५॥

तेज-तिय चक्खुजुयले सव्वे हेऊ हवंति† भव्वे य।
किण्हाइतियाऽभव्वे आहारदुगूणया णेया ॥९६॥

तेजस्त्रिके पीत-पद्म-शुक्ललेश्यासु, चक्षुर्युगले चक्षुर्दर्शने अचक्षुर्दर्शने भव्यजीवे च सर्वे सप्तपञ्चाशत्क-मेगा हेतवः प्रत्ययाः ५७ भवन्ति। कृष्णादित्रिके अभव्ये च आहारकद्विकोनाः अन्ये पञ्चपञ्चाशत् ५५ प्रत्ययाः ज्ञेयाः ॥९६॥

लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा तेज-त्रिक अर्थात् तेज, पद्म और शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें, दर्शन-मार्गणाकी अपेक्षा चक्षुयुगल अर्थात् चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें तथा भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्योंमें सभी बन्ध-प्रत्यय होते हैं। कृष्णादि तीन लेश्यावालोंमें, तथा अभव्योंमें आहारक-द्विकके विना पचपन बन्ध-प्रत्यय जानना चाहिए ॥९६॥

---

†द भवंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणमिच्छाहारदुगूणा सव्वे उवसमे णेया ।
आहारजुयल*जुत्ता वेदय-खइयम्मि ते होंति ॥९७॥
मिच्छाहारदुगूणा साए मिच्छम्मि आहारदुगूणा ।
अण-मिच्छ-मिस्स जोगा हारदुगूणा हवंति मिस्सम्मि ॥९८॥

उपशमसम्यक्त्वे अनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्वपञ्चकाऽऽहारद्विकोनाः अन्ये सर्वे षट्चत्वारिंशत्प्रत्ययाः ४६ ज्ञेयाः । वेदकसम्यक्त्वे क्षायिकसम्यक्त्वे च त एवाऽऽहारकयुगलयुक्ताः ४८ भवन्ति ॥९७॥

सासादनरुचौ मिथ्यात्वपञ्चकाऽऽहारद्विकोनाः पञ्चाशत् प्रत्ययाः ५० स्युः । मिथ्यात्वे आहारकद्विकोनाः पञ्चपञ्चाशत् ५५ प्रत्ययाः स्युः । मिश्रे अनन्तानुबन्धिचतुष्क-मिथ्यात्वपञ्चकमिश्रत्रिकयोगाऽऽहारकद्वयोनास्त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययाः ४३ स्युः ॥९८॥

सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा औपशमिकसम्यक्त्वी जीवोंमें अनन्तानुबन्धिचतुष्क, मिथ्यात्वपंचक, और आहारकद्विक इन ग्यारहके विना शेष छयालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं। वेदकसम्यक्त्वी और क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोंमें आहारकयुगलसे युक्त उपर्युक्त छयालीस अर्थात् अड़तालीस-अड़तालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्वपंचक और आहारकद्विक, इन सातके विना शेष पचास बन्ध-प्रत्यय होते हैं। मिथ्यादृष्टियोंमें आहारकद्विकके विना शेष पचपन प्रत्यय होते हैं। मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धिचतुष्क, मिथ्यात्वपंचक, तीनों मिश्रयोग (औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण) तथा आहारकद्विक, इन चौदहके विना शेष तैंतालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥९७-९८॥

मिच्छाइचउक्केयारजोगूणा असण्णिए मोत्तुं ।
भासंतोरालदुअं कम्मं सण्णिम्मि सव्वे वि ॥९९॥

मिथ्यात्वादिचतुष्कं मिथ्यात्वाविरतकषाययोगा इति चतुष्कं तन्मध्ये पञ्चदश योगा वर्तन्ते । तत्र भाषान्तं अनुभयवचनं औदारिकद्विकं कार्मणं चेति चतुर्योगान् मुक्त्वा शेषैकादश योगाः, असंज्ञित्वान्मनो विना अन्ये ४५ असंज्ञिजीवे प्रत्ययाः स्युः । ते के ? मिथ्यात्वपञ्चकं ५, अविरतयः ११, कषायाः २५, योगाः ४ एवं ४५ । संज्ञिजीवे सर्वे सप्तपञ्चाशत् ५७ प्रत्ययाः स्युः ॥९९॥

संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा असंज्ञी जीवोंमें मिथ्यात्व आदि चार मूलप्रत्ययोंमेंसे योग-सम्बन्धी अन्तिम वचनयोग, औदारिकद्विकयोग और कार्मणकाययोग, इन चारको छोड़कर शेष चार मनोयोग, आदिके तीन वचनयोग, वैक्रियिकद्विक और आहारकद्विक इन ग्यारह योगोंके विना अवशिष्ट बन्ध-प्रत्यय होते हैं। संज्ञी जीवोंमें सर्व ही बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥९९॥

विशेषार्थ—यद्यपि भाष्य-गाथामें 'एयार जोगूणा' ऐसा निर्देश है, अतः ग्यारह ही योग कम करना चाहिए थे। परन्तु यतः असंज्ञी जीवोंके मन नहीं होता, अतः मन-सम्बन्धी अविरतिका न होना भी स्वतः-सिद्ध है। इस प्रकार ग्यारह योग और एक मन-सम्बन्धी अविरतिके घटाने पर शेष पैंतालीस बन्ध-प्रत्यय असंज्ञी जीवोंमें पाये जाते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

आहारे कम्मूणा इयरे कम्मूण जोयरहिया ते ।
एवं तु मग्गणासुं उत्तरहेऊ जिणेहिं णिद्दिट्ठा ॥१००॥

मग्गणासु पच्चया समत्ता ।

---

*ब जुवल ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारके कार्मणोनाः अन्ये ५६ आस्रवाः स्युः । इतरे अनाहारे कार्मणे चतुर्दशयोगरहितास्ते प्रत्ययाः ४३ भवन्ति । मिथ्यात्वपञ्चकं ५, अविरतयः १२, कषायाः २५, कार्मणयोगः १, एवं अनाहारके ४३ भवन्ति । एवं तु पुनः मार्गणास्थानेषु उत्तरहेतवः उत्तरप्रत्ययाः कर्म-कारणानि जिनैर्निर्दिष्टाः कथिताः ॥१००॥

इति मार्गणासु प्रत्ययाः समाप्ताः ।

आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगको छोड़कर शेष छप्पन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगके विना शेष चौदह योग नहीं पाये जाते हैं, अतएव उनके घट जानेसे तेतालीस बन्ध-प्रत्यय होते हैं। इस प्रकार जिनेन्द्रदेवने मार्गणाओंमें बन्धके उत्तर-प्रत्ययोंका निर्देश किया है ॥१००॥

अब गुणस्थानोंकी अपेक्षा एक जीवके एक समयमें संभव जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट बन्ध-प्रत्ययोंका निर्देश करते हैं—

[1]दस अट्ठारस दसयं सत्तर णव सोलसं च दोण्हं पि ।
अट्ठ य चउदस पणयं सत्त तिए दु ति दु एगेगं ॥१०१॥

एयजीवं पडुच्च एयसमये जहण्णुकस्स-उत्तरोत्तरपच्चया—

१०	१०	९	९	८	५	५	५	२	२	१	१	१
१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	३	२	१	१	१

अथ मिथ्यात्वादिगुणस्थानेषु एकजीवस्य एकस्मिन् समये जघन्य-मध्यमोत्कृष्टभेदेन सम्भवदुत्तरोत्तरप्रत्ययान् प्ररूपयति—['दस अट्ठारस दसयं' इत्यादि ।] एकस्य जीवस्यैकस्मिन् समये सम्भवत्प्रत्ययसमूहः स्थानम् । तत्र गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टौ जघन्यस्थानं दशकम् १० । मध्यममेकैकाधिकम् ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७ यावदुत्कृष्टमष्टादशकम् १८ । सासादने जघन्यं दशकं स्थानम् १०, तथा मध्यमं ११, १२, १३, १४, १५, १६ यावदुत्कृष्टम् १७ स्थानं सप्तदशकम् । मिश्रे जघन्यं नवकम् ९ । तथा मध्यमं [१०, ११, १२, १३, १४, १५ यावत्] उत्कृष्टं षोडशकम् १६ । तथाऽसंयतेऽपि जघन्यं नवकम् ९ । तथा मध्यमं [१०, ११, १२, १३, १४, १५ यावत्] उत्कृष्टं षोडशकम् १६ । द्वयोरपि वचनात् । देशसंयते जघन्यमष्टकम् ८ । तथा मध्यमं [९, १०, ११, १२, १३ यावत्] उत्कृष्टं चतुर्दशकम् १४ । त्रिके प्रमत्ताऽप्रमत्ताऽपूर्वकरणेषु प्रत्येकं पञ्च-षट्क-सप्तकानि ज० ५, म० ६, उ० ७ । अनिवृत्तिकरणे द्विके २ त्रिके ३ द्वे । सूक्ष्मसाम्पराये द्विकम् २ । उपशान्तकषायादित्रये एककमेकैकम् । अयोगे शून्यं प्रत्ययाभावात् ॥१०१॥

एकजीवं प्रतीत्य आश्रित्य एकसमये जघन्योत्कृष्टोत्तरोत्तरप्रत्यया एते—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अयो०
जघ०	१०	१०	९	९	८	५	५	५	२	२	१	१	१	०
उत्कृ०	१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	३	२	१	१	१	०

मिथ्यात्व गुणस्थानमें जघन्यसे दश और उत्कर्षसे अट्ठारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं। सासादनगुणस्थानमें जघन्यसे दश और उत्कर्षसे सत्तरह, मिश्रगुणस्थानमें जघन्यसे नौ और उत्कर्षसे सोलह, अविरतसम्यक्त्वगुणस्थानमें भी जघन्यसे नौ और उत्कर्षसे सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं। देशविरतगुणस्थानमें जघन्यसे आठ और उत्कर्षसे चौदह, प्रमत्तविरत आदि तीन गुणस्थानोंमें जघन्यसे पाँच-पाँच और उत्कर्षसे सात-सात बन्ध-प्रत्यय होते हैं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें जघन्यसे दो और उत्कर्षसे तीन बन्ध-प्रत्यय होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें जघन्य और उत्कर्षसे दो ही बन्ध-प्रत्यय होते हैं। उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगिकेवली इन तीनों गुणस्थानोंमें जघन्य और उत्कर्षसे एक-एक ही बन्ध-प्रत्यय होता है ॥१०१॥

1. सं० पञ्चसं० ४, ३७-३९ ।

१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार गुणस्थानोंमें एक जीवकी अपेक्षा एक समयमें जघन्यसे और उत्कर्षसे संभव उत्तर बन्ध-प्रत्ययोंकी संदृष्टि इस प्रकार जानना चाहिए—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अवि०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०	क्षी०	सयो०	अयो०
ज०	१०	१०	९	९	८	५	५	५	२	२	१	१	१	०
उ०	१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	२	१	१	१	१	०

अब काय-विराधना-सम्बन्धी गुणकारोंको बतलाते हैं—

[1]एय वियकायजोगे तिय चउ जोयम्मि पंच छज्जोए ।
छप्पंच दस य वीसा †पणरस छक्केय कायगुणकारा ॥१०२॥

१	२	३	४	५	६	
६	१५	२०	१५	६	१	एवं संजोयादिगुणयारा ।

अथैकादिकायविराधनागुणकारान् दर्शयति—['एयवियकायजोगे' इत्यादि ।]

एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षट्संयोगेन कायिकाः ।
गुणकारा भवेयुर्ये ते षट्-पञ्चदशादयः ॥९॥
अनुलोम-विलोमाभ्यां एकैकोत्तरवृद्धितः ।
एक-द्वि-त्र्यादिसंयोगे विनिक्षिप्य पटीयसा[1] ॥१०॥

अनुलोम-विलोमरचना—

६	५	४	३	२	१
१	२	३	४	५	६

पूर्वकेन परं राशिं गुणयित्वा विलोमतः ।
क्रमादेकादिकैरङ्कैर्भाजिते लभ्यते फलम्[2] ॥११॥

षडादीन् एकपर्यन्तान् अङ्कान् संस्थाप्य तदधोहारान् एकादीन् एकोत्तरान् संस्थापयेत् । अत्र प्रथम-हारेण १ स्वांशे ६ भक्ते लब्धं प्रत्येकभङ्गाः ६ षट् । पुनः परस्पराऽऽहतषट्-पञ्चांशाः ५ अन्योन्याहतः ३० । तदेक १ द्विकाहारेण २ भक्ते लब्धं द्विकायसंयोगभङ्गाः पञ्चदश १५ । पुनः परस्पराऽऽहत-तत्त्रिंश ३० चतुरंशे ४ = १२० । तथाकृतद्वित्रि ३ हारेण ६ भक्ते लब्धं त्रिकायसंयोगा विंशतिः २० । पुनः तथाकृत-विंशत्यधिकशतं १२० । ३ त्र्यंशे ३६० तथाकृतषट् ६ चतु ४ हारेण २४ भक्ते लब्धं चतुःकायविराधनसंयोगाः पञ्चदश १५ । पुनः तथाकृतषष्ट्यधिकत्रिशते ३६० द्व्यंशे २ । ७२० तथाकृतचतुर्विंशतिः २४ पञ्चहारेण भक्ते १२० लब्धं पञ्चकायविराधनासंयोगाः षट् ६ । पुनः तथाकृत १२० विंशत्यधिकसप्तशते ७२० एकांशे १ तथाकृतविंशत्यधिकशतं १२० षड् ६ हारेण ७२० भक्ते लब्धं षट्कायसंयोग एकः १ । मिलित्वा ७२० । प्रत्येकं मिथ्यादृष्ट्यादिचतुष्के संयोगगुणकाराः त्रिषष्टिः ६३ भवन्ति ।

१	२	३	४	५	६	
६	१५	२०	१५	६	१	= ६३

मि सा मि अ एककायसंयोगभङ्गाः ६ । एवं एककायविराधनायां भङ्गाः ६ । पृथ्वी १ अप् १ तेज १ वात १ वनस्पति १ त्रसकाय १ ।

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
द्वयोः संयोगे भङ्गाः १५—	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज	तेज
	अप्	तेज	वात	वन०	त्रस	तेज	वात	वन०	त्रस	वात	वन०	त्रस

---

1. सं० पंचसं० ४, ४ ।

१. सं० पञ्चसं० ४, ४४–४५ । २. ४, ४६ ।

† ब पण्ण ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३	१४	१५
वात	वात	वन०
वन०	त्रस	त्रस

एवं द्विकायविराधनायां भङ्गाः १५।

त्रयाणां संयोगभङ्गाः २०—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी
अप्	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज	तेज	वात	वात	वन०
तेज	वात	वन०	त्रस	वात	वन०	त्रस	वन०	त्रस	त्रस

११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
पृथ्वी	पृथ्वी	अप्	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज	तेज	वात
तेज	तेज	तेज	वात	वात	वन०	वात	वात	वन०	वन०
वात	वन०	त्रस	वन०	त्रस	त्रस	वन०	त्रस	त्रस	त्रस

एवं त्रिकायविराधनायां भङ्गाः २०।

चतुःसंयोगभङ्गाः १५—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्
अप्	अप्	अप्	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज	तेज	वात	तेज
तेज	तेज	तेज	वात	वात	वन०	वात	वात	वन०	वन०	वात
वात	वन०	त्रस	वन०	त्रस	त्रस	वन०	त्रस	त्रस	त्रस	वन०

१२	१३	१४	१५
अप्	अप्	अप्	तेज
तेज	तेज	वात	वात
वात	वन०	वन०	वन०
त्रस	त्रस	त्रस	त्रस

एवं चतुष्कायविराधनायां पञ्चदश भङ्गाः १५।

पञ्चकायसंयोगजाता भङ्गाः ६—

१	२	३	४	५	६
पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्
अप्	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज
तेज	तेज	तेज	वात	वात	वात
वात	वात	वन०	वन०	वन०	वन०
वन०	त्रस	त्रस	त्रस	त्रस	त्रस

यदा षण्णां कायानां मध्ये कश्चित् प्रत्येकमेकैकं कायं विराधयति तदा षड् भेदाः ६। यदा द्वयं द्वयं कायं विराधयति, तदा भेदाः पञ्चदश १५। यदा त्रिकं त्रिकं कायं विराधयति, तदा भेदाः विंशतिः २०। यदा कश्चित् कायचतुष्कं कायचतुष्कं विराधयति, तदा भेदाः पञ्चदश १५। यदा कश्चित् कायपञ्चकं पञ्चकं विराधयति, तदा भेदाः षट् ६। यदा कश्चित् युगपत् षट्कायान् विराधयति, तदा भेद एकः १। एवं [सर्वे] भेदाः ६३ ॥१०२॥

कायवधसम्बन्धी एकसंयोगी भंगोंका गुणकार छह, द्विसंयोगी भंगोंका गुणकार पन्द्रह, त्रिसंयोगी बीस, चतुःसंयोगी पन्द्रह, पंचसंयोगी छह और षट्संयोगी कायगुणकार एक जानना चाहिए ॥१०२॥

विशेषार्थ—गुणस्थानोंमें बन्ध-प्रत्ययोंके एकसंयोगी, द्विसंयोगी आदि भंग कितने होते हैं, यह बतलानेके लिए ग्रन्थकारने देशामर्शकरूपसे प्रकृत गाथासूत्र कहा है। इन संयोगी भंगोंके सिद्ध करनेका करणसूत्र यह है कि जिस विवक्षित राशिके भंग निकालने हों, उस विवक्षित राशि-प्रमाणसे लेकर एक-एक कम करते हुए एकके अन्त तक अंकोंको स्थापित करना चाहिए। तथा उसके नीचे दूसरी पंक्तिमें एक अंकसे लेकर विवक्षित राशिके प्रमाण तक अंक लिखना चाहिए। पहली पंक्तिके अंकोंको अंश या भाज्य और दूसरी पंक्तिके अंकोंको हार या भागहार कहते हैं। ये भंग भिन्नगणितके अनुसार निकाले जाते हैं, इसलिए यहाँ क्रमसे पहले भाज्योंके साथ अगले भाज्योंका और पहले भागहारोंके साथ अगले भागहारोंका गुणा करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। पुनः भाज्योंके गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उसमें भागहारोंके गुणा करनेसे उत्पन्न राशिका भाग देना चाहिए। इस प्रकार जो प्रमाण आवे, तत्प्रमाण ही विवक्षित स्थानके भंग जानना चाहिए। इसी नियमको ध्यानमें रखकरके ग्रन्थकारने मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें संभव काय-वधके संयोगी भंगोंका निरूपण किया है, जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—आदिके चार गुणस्थानोंमें षट्कायिक जीवोंका वध सम्भव है, अतएव छह, पाँच, चार, तीन, दो और एक, इन भाज्य अंकोंको क्रमसे लिखकर पुनः उनके नीचे एक, दो, तीन, चार, पाँच और छह, इन भागहार अंकोंको लिखना चाहिए। इनकी अंक संदृष्टि इस प्रकार होती है—

६ ५ ४ ३ २ १

१ २ ३ ४ ५ ६

यहाँपर पहली भाज्यराशि छहमें पहली हारराशि एकका भाग देनेसे छह आते हैं, अतएव एकसंयोगी भंगोंका प्रमाण छह होता है। पहली भाज्यराशि छहका अगली भाज्यराशि पाँचसे गुणा करनेपर गुणनफल तीस आता है, तथा पहली हारराशि एकका अगली हारराशि दोसे गुणा करनेपर हारराशिका प्रमाण दो आता है। इस दो हारराशिका भाज्यराशि तीसमें भाग देनेपर भजनफल पन्द्रह आता है, यही द्विसंयोगी भंगोंका प्रमाण है। इसी क्रमसे त्रिसंयोगी भंगोंका प्रमाण बीस, चतुःसंयोगी भंगोंका पन्द्रह, पंचसंयोगी भंगोंका छह और षट्-संयोगी भंगोंका प्रमाण एक आता है।

इन संयोगी भंगोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

१	२	३	४	५	६
६	१५	२०	१५	६	१

यह उपर्युक्त गाथासूत्र अन्य बन्ध-प्रत्ययोंके भंग जाननेके लिए बीजपदरूप है, इसलिए शेष बन्ध-प्रत्ययोंके भी भंग इसी उपर्युक्त प्रकारसे सिद्ध करना चाहिए।

यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि आगे मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें उत्तरप्रत्ययोंकी अपेक्षा जो भंग-विकल्प बतलाये हैं, उनके लानेके लिए केवल काय-अविरतिके भेदोंकी अपेक्षा गुणकाररूपसे संख्या-निर्देश करना पर्याप्त नहीं है, किन्तु उन काय-अविरति-भेदोंके जो एक-संयोगी, द्वि-संयोगी आदि भंग होते हैं, गुणकाररूपसे उन भंगोंकी संख्याका निर्देश करने पर ही सर्व भंग-विकल्प आते हैं, इसलिए यहाँपर छह काय-अविरतियोंकी अपेक्षा एक-संयोगी आदि भंग लाकर उन्हें काय-गुणकार-संज्ञा दी गई है। इस प्रकारके काय-विराधना-सम्बन्धी गुणकार तिरेसठ होते हैं, जो कि मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें पाये जाते हैं। इनका विशेष विवरण संस्कृत टीकामें दिया गया है जिसका अभिप्राय यह है कि जब कोई जीव क्रोधादि कषायोंके वश होकर षट्-कायिक जीवोंमेंसे एक-एक कायिक जीवको विराधना करता है, तब एक संयोगी छह भंग होते हैं। जब छह कायिकोंमेंसे किन्हीं दो-दो कायिक जीवोंकी विराधना करता है, तब द्विसंयोगी पन्द्रह भंग होते हैं। इसी प्रकार किन्हीं तीन-तीन कायिक जीवोंकी विराधना करनेपर त्रिसंयोगी भंग बीस, चार-चारकी विराधना करनेपर चतुःसंयोगी भंग पन्द्रह, पाँच-पाँचकी विराधना करनेपर पंच-संयोगी भंग छह होते हैं। तथा एक साथ छहों कायिक जीवोंकी विराधना करनेपर षट्संयोगी भंग एक होता है। इस प्रकारसे उत्पन्न हुए एक-संयोगी आदि भंगोंका योग तिरेसठ होता है।

[1]आवलिय मेत्तकालं अणंतबंधीण होइ णो उदओ।
अंतोमुहुत्त मरणं मिच्छत्तं दंसणा पत्ते* ॥१०३॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ४१-४२।

* द पत्तो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]मिच्छत्तक्खं काओ कोहाई तिण्णि वेद एगो य।
हस्साइजुयलमेयं जोगो दस होंति हेऊ* ते ॥१०४॥

१।१।१।३।१।२।१। मिलिया १० ।

यः सम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वं प्राप्तस्तस्याऽनन्तानुबन्धिनां आवलिकामात्रकालं उदयो नास्ति, अन्तर्मुहूर्त्तकाले मरणमपि नास्तीति तदाह—['आवलियमेत्तकालं' इत्यादि] दर्शनात् अनन्तानुबन्धि-विसंयोजितवेदकसम्यक्त्वात् मिथ्यात्वकर्मोदयान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं प्राप्ते सति आवलिमात्रकालं आवलिपर्यन्तं अनन्तानुबन्धिनां उदयो नास्ति। अन्तर्मुहूर्त्तं यावत्, तावन्मरणं नास्ति। तावत्कालं सम्यक्त्वप्राप्तिर्नास्ति ॥१०३॥ तथा चोक्तम्—

अण संजोजिदसम्मे मिच्छं पत्ते ण आवलि त्ति अणं।
उवसम खविये सम्मं ण हि तत्थ वि चारि ठाणाणि[1] ॥१२॥
अणसंजोजिद मिच्छे मुहुत्त-अंतो त्ति णत्थि मरणं तु[2] ॥१३॥ इति
कालमावलिकामात्रं पाकोऽनन्तानुबन्धिनाम्।
जन्तोरस्ति न सम्यक्त्वं हित्वा मिथ्यात्वयायिनः ॥१४॥
सम्यक्त्ववतो न मिथ्यात्वं प्रयातोऽन्तर्मुहूर्त्तकम्।
मिथ्यात्वतो न सम्यक्त्वं शरीरी याति पञ्चताम्[3] ॥१५॥ इति

पञ्च [मिथ्यात्वानि, षडिन्द्रियाणि, एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षट्कायवधान्, चत्वारि क्रोधचतुष्काणि त्रीन् वेदान्, हास्ययुग्मारतियुग्मे आहारकद्वयं विना] त्रयोदशयोगांश्च उपर्युपरि तिर्यग् रचयित्वा इदं कूटं कथ्यते—भय-जुगुप्सारहितं प्रथमं कूटं १। तदन्यतरयुतं द्वितीयं कूटं २। तद्द्वययुतं तृतीयं कूटं ३। इति सामान्यकूटानि त्रीणि ३। अनन्तानुबन्ध्यूनानि कूटानि त्रीणि ३। मिलित्वा मिथ्यादृष्टौ षट् कूटानि ६ भवन्ति। अनन्तानुबन्धि-रहितप्रथमे कूटे—

का०	भ०	भ०
१	०	०

मिथ्यात्व १ मिन्द्रियं १ कायः कषायैकतमत्रयम् ३।
एको वेदो १ द्वियुग्मैकं २ दशयोगैककः १ परम् ॥१६॥

मि०	इं०	का०	कषा०	वे०	हा०	यो०
१	१	१	३	१	२	१

मेलिताः पिण्डीकृताः दश १०। एते जघन्यहेतवः प्रत्ययानि मिथ्यादृष्टौ भवन्ति १०। [4]अत्र पञ्चानां मिथ्यात्वानां मध्ये एकतमस्योदयोऽस्तीत्येको मिथ्यात्वप्रत्ययः १। षण्णामिन्द्रियाणामेकतमेन षण्णां कायानामेकतमविराधने कृते असंयमप्रत्ययः १। प्रथमचतुष्कहीनानां चतुर्णां कषायाणामेकतमत्रिकोदये त्रयः कषायप्रत्ययाः ३। त्रयाणां वेदानामेकतमोदये एको वेदप्रत्ययः १। हास्य-रतियुग्माऽरतिशोकयुग्मयोरेकतरोदये द्वौ युग्मप्रत्ययौ २। आहारकद्वय-मिश्रत्रयहीनानां दशानां योगानामेकतमोदयेन एको योगप्रत्ययः १। एवमेते मिथ्यादृष्टेरेकस्मिन् समये जघन्यप्रत्ययाः दश १० ॥१०४॥

[2]सत्रयोदशयोगस्य सम्यग्दर्शनधारिणः।
मिथ्यात्वमुपयातस्य शान्तानन्तानुबन्धिनः ॥१७॥
पाकोनावलिका यस्मादस्त्यनन्तानुबन्धिनाम्।
ततोऽनन्तानुबन्ध्यूनकषायप्रत्ययत्रयम् ॥१८॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ४७। 2. ४, ४८–४९।

१. गो० क० ४७८। २. गो० क० ५६१ (पूर्वार्ध)। ३. सं० पञ्चसं० ४, ४१–४२।

४. सं० पञ्चसं० ४, 'अत्र पंचानां' इत्यादि गद्यभागः शब्दशस्तुल्यः (पृ० ९०)।

*द ते हेऊ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असौ न म्रियते यस्मात्कालमन्तर्मुहूर्त्तकम् ।
मिश्रत्रयं विना तस्माद्यौगिकाः प्रत्ययाः दश[1] ॥१६॥ इति

१।१।१।३।१।२।१

जो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजक सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वको छोड़कर मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होता है, उसके एक आवलीमात्रकाल तक अनन्तानुबन्धी कषायोंका उदय नहीं होता है। तथा सम्यक्त्वको छोड़कर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवका अन्तर्मुहूर्तकाल तक मरण भी नहीं होता है इस नियमके अनुसार मिथ्यादृष्टिके एक समयमें पाँच मिथ्यात्वोंमें-से एक मिथ्यात्व, पाँच इन्द्रियोंमेंसे एक इन्द्रिय, छह कायोंमें-से एक काय, अनन्तानुबन्धीके विना शेष कषायोंमेंसे क्रोधादि तीन कषाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्यादि दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल और आहारकद्विक तथा अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी तीन मिश्रयोग, इन पाँचके विना शेष दश योगोंमेंसे कोई एक योग इस प्रकार जघन्यसे दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०३-१०४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— मि० इ० का० क० वे० हा० यो०
१ + १ + १ + ३ + १ + २ + १ = १०

का० अ० भ०
१ ० ० इस कूटका अभिप्राय इस प्रकार है—

आगे मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट संख्या तकके बन्ध-प्रत्ययोंके उत्पन्न करनेके जो प्रकार बतलाये गये हैं, उनमें जहाँ जितने और जो बन्ध-प्रत्यय विवक्षित हैं यद्यपि उनका संख्याके साथ नाम-निर्देश गाथाओंमें किया गया है, तथापि काय-सम्बन्धी अविरति, अनन्तानुबन्धि-चतुष्क और भय-युगलके सद्भाव-असद्भावके जिन भंगोंका निर्देश किया गया है, वहाँ उनके स्थानमें विवक्षित अन्य प्रत्ययोंके साथ उनके अन्य भंग भी हो सकते हैं। परन्तु ऐसा करनेसे स्थानोंकी निश्चित संख्याका व्यतिक्रम हो जाता है, जो विवक्षित स्थान-संख्याको ध्यानमें रखते हुए अभीष्ट नहीं है। इस प्रकारके इस गूढ़ार्थको स्पष्ट करनेके लिए कूटोंकी रचना की गई है। इन कूटोंसे गाथामें निर्दिष्ट विवक्षित स्थान-संख्याके साथ काय-विराधना आदि तीनोंके भंगोंका स्पष्ट बोध हो जाता है। उदाहरण-स्वरूप दश-प्रत्ययक बन्धस्थानके इस कूटके प्रथम भागमें 'का०'के नीचे एकका अंक दिया हुआ है, जिसका अभिप्राय यह है कि यहाँपर काय-सम्बन्धी एक-संयोगी गुणकार विवक्षित है। 'अ०' के नीचे शून्य दिया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि यहाँपर अनन्तानुबन्धि-चतुष्कसे रहित स्थान विवक्षित है। 'भ०'के नीचे जो शून्य दिया गया है, उससे यह सूचित किया गया है कि यहाँपर भय-युगलसे रहित स्थान विवक्षित है। आगे आनेवाले सभी कूटोंमें दिये गये अंकों या शून्योंसे भी इसी प्रकारका अर्थ लेना चाहिए। इस प्रकारके गूढ रहस्यसे अन्तर्हित रखनेके कारण इसे कूट-संज्ञा दी गई है।

पंच मिच्छत्ताणि, छ इंदियाणि, छक्काया, चत्तारि वि कसाया, तिण्णि वेया, एयजुयलं, दस जोगा।
५।६।६।४।३।२।१० । अण्णोण्णगुणिया दसजोगजहण्णभंगा ४३२०० ।

एतेषाञ्च भङ्गाः—मिथ्यात्वपञ्चकेन्द्रियषट्क-कायषट्क-कषायचतुष्क-वेदत्रय-युग्मद्वययोगदशैकतमभङ्गाः ५।६।६।४।३।२।१० । अन्योन्यगुणिताः दशसंयोगस्य जघन्यभङ्गाः स्युः ४३२०० । तत्कथम् ? दश १० द्वाभ्यां २ गुणिताः विंशतिः २०, त्रिभिर्गुणिताः षष्टिः ६०, चतुर्भिर्गुणिताः २४० । एते षड्भिर्गुणिताः १४४० । एते पुनः षड्भिर्गुणिताः ८६४० । एते पञ्चभिर्गुणिताः ४३२०० । अनेन प्रकारेण सर्वत्र अन्योन्यभङ्गाः गुणनीयाः ॥१०४॥

---

१. सं० पञ्चसं० ४, ५० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन दश बन्ध-प्रत्ययोंके भंग तेतालीस हजार दो सौ होते हैं। उनके निकालनेका प्रकार यह है—पाँच मिथ्यात्व, छह इन्द्रियाँ, छह काय, चारों कषाय, तीनों वेद, हास्यादि एक युगल और दश योग, इन्हें क्रमसे स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेपर जघन्य दश बन्ध-प्रत्ययोंके भंग सिद्ध होते हैं। इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

५ × ६ × ६ × ४ × ३ × २ × १० = ४३२०० दश बन्ध-प्रत्ययोंके भंग।

आगे बतलाये जानेवाले मिथ्यादृष्टिके ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अ०	भ०
२	०	०
१	१	०
१	०	१

मिच्छत्तक्ख दुकाया कोहाई तिण्णि वेय एगो य।
हस्साइजुयलमेयं जोगो एयारसं हेऊं ॥१०५॥

१।१।२।३।१।२।१। मिलिया ११।

मिथ्यात्वमेकं १ खमिन्द्रियमेकं १ द्विकायविराधनाद्विकं २ अनन्तानुबन्धिरहित-कषायत्रिकं ३ वेद एकः १ हास्यादियुगलं २ योग एकः १ चेत्येवं संयोगीकृता मध्यमहेतवः प्रत्ययाः भवन्ति १ । १ । २ । ३ । १ । २ । १ । मीलिताः ११ ॥१०५॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + ३ + १ + २ + १ = ११।

मिच्छत्तक्खं काओ कोहाइचउक्क वेय एगो य।
हस्साइजुयलमेयं जोगो एयारसं हेऊ ॥१०६॥

१।१।१।४।१।२।१। मिलिया ११।

मिथ्यात्वमेकतमं १ खमिन्द्रियमेकं १ कायः १, क्रोधादिचतुष्कं ४ अत्रानन्तानुबन्धित्वात्। वेद एकतमः १ हास्यादियुगलं १। संयोगे एकादश ११ मध्यमप्रत्ययाः १।१।१।४।१।२।१ मीलिताः ११॥१०६॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + १ + ४ + १ + २ + १ = ११।

मिच्छत्तक्खं काओ कोहाई तिण्णि वेय एगो य।
हस्साइजुयं एयं भयदुय एयं च जोगो ते ॥१०७॥

१।१।१।३।१।२।१।१। मिलिया ११।

मिथ्यात्वे १ न्द्रिय १ क्रोधादिकै ३ कवेदै १ क-हास्यादियुग्म २ भयैक १ योगैकतमाः भङ्गाः १।१। १।१।३।१।२।१। पिण्डीकृताः ११ ॥१०७॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-जुगुप्सामेंसे एक, और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + १ + ३ + १ + २ + १ + १ = ११।

एदेसिं च भंगा—५।६।१५।४।३।२।१०। एदे अण्णोण्णगुणिया १०८०००।

५।६।६।४।३।२।१३। एदे अण्णोण्णगुणिय। ५६१६०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५।६।६।४।३।२।२।१०। एदे अण्णोण्णगुणिया ८६४०० ।

ए तिण्णिम्मि मिलिए मज्झिमभंगा हवंति १०८००० + ५६१६० + ८६४०० = २५०५६० ।

एतेषां त्रयाणां भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१० । एते अन्योन्यगुणिताः १०८००० । ५।६।६।४।३।२।१३ एते परस्परं गुणिताः ५६१६० । ५।६।६।४।३।२।२।१० एते अन्योन्यगुणिताः ८६४०० । एते त्रयो राशयः एकीकृताः एकादशानामुत्तरोत्तरमध्यमभङ्गाः २५०५६० भवन्ति ।

इन उपर्युक्त ग्यारह बन्ध-प्रत्ययोंके तीनों प्रकारोंके भंग इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१०। इनका परस्पर गुणा करनेपर १०८००० भंग होते हैं।

द्वितीय प्रकार—५।६।६।४।३।२।१३। इनका परस्पर गुणा करनेपर ५६१६० भंग होते हैं।

तृतीय प्रकार—५।६।६।४।३।२।२।१०। इनका परस्पर गुणा करनेपर ८६४०० भंग होते हैं।

उक्त तीनों प्रकारोंके भंगोंके प्रमाणको जोड़ देनेपर (१०८००० + ५६१६० + ८६४०० =) मध्यम ग्यारह बन्ध-प्रत्ययोंके सर्व भंगोंका प्रमाण २५०५६० होता है।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०	भ०
३	०	०
२	१	०
२	०	१
१	१	१
१	०	२

मिच्छत्तक्खतिकाया कोहाई तिण्णि एय वेदो य ।
हस्साइजुयलमेयं जोगो बारह हवंति ते हेऊ ॥१०८॥

१।१।३।३।१।२।१। मिलिया १२ ।

मिथ्यात्वं खमिन्द्रियं १ त्रिकायविराधना ३ अनन्तानुबन्ध्यूनक्रोधादित्रयं ३ एको वेदः १ हास्यादि-युगलं २ योग एकः १ इत्येवं द्वादश हेतवः १२ प्रत्ययास्ते भवन्ति ॥१०८॥

१।१।३।३।१।२।१ मीलिताः १२ । एतेषां भङ्गाः—मिथ्यात्वपञ्चके ५ न्द्रियषट्क ६ त्रिकायविराधनासंयोगविंशतिः २० कषायचतुष्क ४ वेदत्रय ३ हास्यादियुग्म २ मिश्रत्रिकाऽऽहारकद्विकरहितयोगाः १० भङ्गाः ५।६।२०।४।३।२।१० परस्परगुणिताः १४४००० ।

अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + ३ + १ + २ + १ = १२ ।

मिच्छत्तक्खदुकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइजुयलमेयं जोगो बारह हवंति ते हेऊ ॥१०९॥

१।१।२।४।१।२।१ एते मिलिया १२ ।

१।१।२।४।१।२।१ एते मीलिताः १२ । एतेषां भङ्गाः विकल्पाः ५।६।१५।४।३।२।१३ परस्पराभ्यस्ताः १४०४०० ॥१०९॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, योग एक, इस प्रकार बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१०९॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + ४ + १ + २ + १ = १२ ।

मिच्छत्तक्खदुकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥११०॥

१।१।२।३।१।२।१।१ । एते मिलिया १२ ।

१।१।२।३।१।२।१।१ एते मिलिताः १२ । एतेषां भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।२।१० परस्परं हताः २१६००० ॥११०॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; इस प्रकार बारह बन्धप्रत्यय होते हैं ॥११०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + ३ + १ + २ + १ + १ = १२ ।

मिच्छत्तक्खं काओ कोहाइचउक एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥१११॥

१।१।१।४।१।२।१।१ । एदे मिलिया १२ ।

१।१।१।४।१।२।१।१ एते पिण्डीकृताः १२ । एतेषां विकल्पाः ५।६।६।४।३।२।२।१३ परस्परेण गुणिताः ११२३२० ॥१११॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक, और योग एक; इस प्रकार बारह बन्धप्रत्यय होते हैं ॥१११॥

इसकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + १ + ४ + १ + २ + १ + १ = १२ ।

मिच्छत्तक्खं काओ कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥११२॥

१।१।१।३।१।२।२।१ । एदे मिलिया १२ ।

१।१।१।३।१।२।२।१ एते मिलिताः १२ । एतेषां भङ्गाः ५।६।६।४।३।२।२।१० परस्परेण गुणिताः ४३२०० ॥११२॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल एक और योग एक; इस प्रकार बारह बन्धप्रत्यय होते हैं ॥११२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + १ + ३ + १ + २ + २ + १ = १२ ।

एदेसिं च भंगा—	५।६।२०।४।३।२।१० ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा = १४४०००
	५।६।१५।४।३।२।१३ ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा = १४०४००
	५।६।१५।४।३।२।२।१० ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा = २१६०००
	५।६।६।४।३।२।२।१३ ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा = ११२३२०
	५।६।६।४।३।२।२।१० ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा = ४३२००
	एए पंच वि मिलिया मज्झिमभंगा	= ६५५९२०

एते पञ्च राशयः एकीकृता मिथ्यात्वे मध्यमद्वादशप्रत्ययानां उत्तरोत्तरमध्यमभङ्गाः ६५५९२० भवन्ति । सुगमत्वात् वारं वारं वृत्तिविस्तरो न कृतोऽस्ति ।

इन उपर्युक्त बारह बन्धप्रत्ययोंके पाँचों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

प्रथम प्रकार—५।६।२०।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४००० भङ्ग होते हैं।

द्वितीय प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४०४०० भङ्ग होते हैं।

तृतीय प्रकार—५।६।१५।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर २१६००० भङ्ग होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ प्रकार—५।६।६।४।३।२।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ११२३२० भङ्ग होते हैं।
पंचम प्रकार—५।६।६।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ४३२०० भङ्ग होते हैं।
उक्त पाँचों प्रकारोंके भङ्गोंके प्रमाणको जोड़ देनेपर (१४४००० + १४०४०० + २१६००० + ११२३२० + ४३२०० =) बारह बन्धप्रत्यय-सम्बन्धी सर्व मध्यम भङ्गोंका प्रमाण ६५५६२० होता है।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
४	०	०
३	१	०
३	०	१
२	१	१
२	०	२
१	१	२

मिच्छक्खं चउकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्साइजुयलमेयं जोगो तेरह हवंति ते हेऊ ॥११३॥

१।१।४।३।१।२।१ एदे मिलिया १३।

मध्यमत्रयोदशप्रत्ययभेदाः चतुस्त्रित्रिद्विद्व्येककायविराधनादिभेदान् गाथाषट्केनाऽऽह—['मिच्छक्खं चउकाया' इत्यादि।] १।१।४।३।१।२।१ एते मिलिताः १३। एतेषां च भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१० एते अन्योन्यगुणिताः १०८००० ॥११३॥

अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११३॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ३ + १ + २ + १ = १३।

मिच्छत्तक्खतिकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइजुयलमेयं जोगो तेरह हवंति ते हेऊ ॥११४॥

१।१।३।४।१।२।१। एदे मिलिया १३।

१।१।३।४।१।२।१ एते मीलिताः १३ त्रयोदश मध्यमप्रत्ययाः भवन्ति। एतेषां विकल्पाः ५।६।२०।४।३।२।१३ एते परस्परगुणिताः १८७२०० ॥११४॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + ४ + १ + २ + १ = १३।

मिच्छत्तक्खतिकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥११५॥

१।१।३।३।१।२।१।१। एदे मिलिया १३।

१।१।३।३।१।२।१।१ एकीकृताः १३ प्रत्ययाः भवन्ति। एतेषां भङ्गाः ५।६।२०।४।३।२।२।१०। एते परस्परेण हताः २८८००० विकल्पा भवन्ति ॥११५॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + ३ + १ + २ + १ + १ = १३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्तक्खदुकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो च ॥११६॥

१।१।२।४।१।२।१।१ । एदे मिलिया १३ ।

१।१।२।४।१।२।१।१ एते पिण्डीकृताः प्रत्ययाः १३ । एतेषां भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।२।१३ । एते अन्योन्यगुणिताः २८०८०० उत्तरोत्तरविकल्पाः स्युः ॥११६॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११६॥

इनकी अंक संदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + ४ + १ + २ + १ + १ = १३ ।

मिच्छत्तक्खदुकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साई दुयमेयं भयजुयलं होंति जोगो य ॥११७॥

१।१।२।३।१।२।२।१ । मिलिया १३ ।

१।१।२।३।१।२।२।१ एते एकीकृताः १३ । एतेषां च भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः १०८००० विकल्पा भवन्ति ॥११७॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक, इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + ३ + १ + २ + २ + १ = १३ ।

मिच्छत्तक्खं कायो कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं होंति जोगो य ॥११८॥

१।१।१।४।१।२।२।१ । एदे मिलिया १३।

१।१।१।४।१।२।२।१ एते मेलिताः १३ प्रत्ययाः स्युः । एतेषां च भङ्गाः ५।६।६।४।३।२।१३ एते अन्योन्यगुणिताः ५६१६० विकल्पा भवन्ति ॥११८॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार; वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और एक योग, इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + १ + ४ + १ + २ + २ + १ = १३ ।

एदेसिं च भंगा—५।६।१५।४।३।२।१० ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	१०८०००
५।६।२०।४।४।३।२।१३ ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	१८७२००
५।६।२०।४।३।२।२।१० ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	२८८०००
५।६।१५।४।३।२।२।१३ ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	२८०८००
५।६।१५।४।३।२।१० ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	१०८०००
५।६।६।४।३।२। ३ ।	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	५६१६०
एदे सव्वे वि मिलिया हवंति		= १०२८१६०

एतेषां षड् राशयः एकीकृताः १०२८१६० मध्यमत्रयोदशप्रत्ययानामुत्तरोत्तरविकल्पा भवन्ति ।

इन उपर्युक्त तेरह बन्ध-प्रत्ययोंके छहों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

प्रथम प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १०८००० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—५।६।२०।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १८७२०० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—५।६।२०।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर २८८००० भङ्ग होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ प्रकार—५।६।१५।४।३।२।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर २८०८०० भङ्ग होते हैं।
पंचम प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १०८००० भङ्ग होते हैं।
षष्ठ प्रकार—५।६।६।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ५६१६० भङ्ग होते हैं।

उक्त छहों प्रकारोंके भङ्गोंके प्रमाणको जोड़ देनेपर (१०८००० + १८७२०० + २८८००० + २८०८०० + १०८००० + ५६१६० =) तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व मध्यम भङ्गोंका प्रमाण १०२८१६० होता है।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
५	०	०
४	१	०
४	०	१
३	१	१
३	०	२
२	१	२

मिच्छक्खं पंचकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्साइजुयलमेयं जोगो चउदह हवंति ते हेऊ ॥११९॥

१।१।५।३।१।२।१। एदे मिलिया १४।

अथ चतुर्दशप्रत्ययभेदे पञ्चचतुश्चतुस्त्रित्रिद्विकायविराधनादिभेदान् गाथाषट्केनाऽऽह—['मिच्छक्खं पंचकाया' इत्यादि।] १।१।५।३।१।२।१ एते पिण्डीकृताः १४ प्रत्यया मध्यमा भवन्ति। एतेषां भङ्गाः ५। ।६।४।३।२।१० परस्परेणाभ्यस्ताः ४३२०० उत्तरोत्तरविकल्पाः स्युः ॥११९॥

अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥११९॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ५ + ३ + १ + २ + १ = १४।

मिच्छक्खं चउकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइजुयलमेयं जोगो चउदस हवंति ते हेऊ ॥१२०॥

१।१।४।४।१।२।१। एदे मिलिया १४।

१।१।४।४।१।२।१ एते मीलिताः १४ मध्यमप्रत्यया भवन्ति। एतेषां च भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१३ अन्योन्यगुणिताः १४०४०० विकल्पा भवन्ति ॥१२०॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ४ + १ + २ + १ = १४।

मिच्छक्खं चउकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एय जोगो य ॥१२१॥

१।१।४।३।१।२।१।१। एदे मिलिया १४।

१।१।४।३।१।२।१।१ एकत्रीकृताः १४। एतेषां भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।२।१० परस्परेण गुणिताः २१६००० भवन्ति।

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और एक योग; इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ३ + १ + २ + १ + १ = १४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्तक्ख तिकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१२२॥

१।१।३।४।१।२।१।१ । एदे मिलिया १४ ।

१।१।३।४।१।२।१।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः स्युः । एतेषां भङ्गाः ५।६।२०।४।३।२।२।१३ अन्योन्य-गुणिताः ३७४४०० विकल्पा भवन्ति ॥१२२॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और एक योग, इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२२॥
इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + ४ + १ + २ + १ + १ = १४ ।

मिच्छत्तक्खतिकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइजुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१२३॥

१।१।३।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १४ ।

१।१।३।३।१।२।२।१ एकत्रीकृताः १४ । एतेषां भङ्गाः ५।६।२०।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः १४४००० भवन्ति ॥१२३॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और एक योग; इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२३॥
इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + ३ + १ + २ + २ + १ = १४ ।

मिच्छत्तक्ख दुकाया कोहाइचउक्क एकवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१२४॥

१।१।२।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १४ ।

१।१।२।४।१।२।२।१ एतेषां भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१३। परस्परेण गुणिताः १४०४०० ॥१२४॥
अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और एक योग; इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२४ ॥
इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + ४ + १ + २ + २ + १ = १४ ।

एदेसिं च भंगा—	५।६।६।४।३।२।१०	एदे अण्णोण्णगुणिदा = ४३२००
	५।६।१५।४।३।२।१३	एदे अण्णोण्णगुणिदा = १४०४००
	५।६।१५।४।३।२।२।१०।	एदे अण्णोण्णगुणिदा = २१६०००
	५।६।२०।४।३।२।२।१३।	एदे अण्णोण्णगुणिदा = ३७४४००
	५।६।२०।४।३।२।१०	एदे अण्णोण्णगुणिदा = १४४०००
	५।६।१५।४।३।२।१३।	एदे अण्णोण्णगुणिदा = १४०४००
		एदे सव्वे वि मिलिए = १०५८४००

एते सर्वे षड्राशयः मिलिताः १०५८४०० । इति चतुर्दश-मध्यमप्रत्ययानां उत्तरोत्तर-विकल्पा भवन्ति ।

इन उपर्युक्त चौदह बन्ध-प्रत्ययोंके छहों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—
प्रथम प्रकार—५।६।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ४३२०० भङ्ग होते हैं ।
द्वितीय प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४०४०० भङ्ग होते हैं ।
तृतीय प्रकार—५।६।१५।४।३।२।२ इनका परस्पर गुणा करनेपर २१६००० भङ्ग होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ प्रकार—५।६।२०।४।३।२।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ३७४४०० भङ्ग होते हैं।
पंचम प्रकार—५।६।२०।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४००० भङ्ग होते हैं।
षष्ठ प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४०४०० भङ्ग होते हैं।
उक्त सर्व भङ्गोंका जोड़— १०५८४००
यह सब चौदह बन्ध प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका प्रमाण जानना चाहिए।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
६	०	०
५	१	०
५	०	१
४	१	१
४	०	२
३	१	२

मिच्छिंदिय छक्काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्सादिजुयलमेयं जोगो पण्णरस पच्चया होंति ॥१२५॥

१।१।६।३।१।२।१। एदे मिलिया १५।

अथ पञ्चदशमध्यमप्रत्ययभेदेषु षट् ६ पञ्च ५ पञ्च ५ चतु ४ श्चतु ४ स्त्रिकाय ३ विराधनादिभेदान् गाथाषट्केन कथयति—['मिच्छिंदिय छक्काया' इत्यादि ।]

१।१।६।३।१।२।१। एते मीलिताः १५ प्रत्यया भवन्ति । एतेषां भङ्गाः ५।६।१।४।३।२।१०। एते परस्परेण गुणिता ७२०० उत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पा भवन्ति ॥१२५॥

अथवा मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते ह ॥१२५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ६ + ३ + १ + २ + १ = १५।

मिच्छक्ख पंचकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्सादिजुयलमेयं जोगो पण्णरस पच्चया होंति ॥१२६॥

१।१।५।४।१।२।१। एदे मिलिया १५।

१।१।५।४।१।२।१। एते मीलिताः १५ उत्तरप्रत्ययाः। एतेषां च भङ्गाः ५।६।६।४।३।२।१३। एते अन्योन्यगुणिताः ५६१६० ॥१२६॥

अथवा मिथ्यात्व एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ५ + ४ + १ + २ + १ = १५।

मिच्छक्ख पंचकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्सादिजुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१२७॥

१।१।५।३।१।२।१।१। एदे मिलिया १५।

१।१।५।३।१।२।१।१। एकीकृताः १५। एतेषां विकल्पाः ५।६।६।४।३।२।२।१०। एते परस्परेण हताः ८६४०० भवन्ति ॥१२७॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक, और योग एक; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ५ + ३ + १ + २ + १ + १ = १५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छक्खं चउकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च × होंति जोगो य ॥१२८॥

१।१।४।४।१।२।१।१। एदे मिलिया १५ ।

१।१।४।४।१।२।१।१। एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां विकल्पाः ५।६।१५।४।३।२।२।१३ । एते परस्परेण गुणिताः २८०८०० भवन्ति ॥१२८॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ४ + १ + २ + १ + १ = १५ ।

मिच्छक्खं चउकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१२९॥

१।१।४।३।१।२।२।१। एदे मिलिया १५ ।

१।१।४।३।१।२।२।१। एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।२।१०। एते अन्योन्याभ्यस्ताः १०८००० ॥१२९॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और एक योग; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१२९॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ३ + १ + २ + २ + १ = १५ ।

मिच्छत्तक्ख तिकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुअं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१३०॥

१।१।३।४।१।२।२।१।एदे मिलिया १५ ।

१।१।३।४।१।२।२।१ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ५।६।२०।४।३।२।२।१३। एते अन्योन्यगुणिताः १८७२०० ॥१३०॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और एक योग; इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + ४ + १ + २ + २ + १ = १५ ।

एदेसिं च भंगा—५।६।१।४।३।२।१०	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	७२००
५।६।६।४।३।२।१३	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	५६१६०
५।६।६।४।३।२।२।१०	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	८६४००
५।६।१५।४।३।२।२।१३	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	२८०८००
५।६।१५।४।३।२।१०	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	१०८०००
५।६।२०।४।३।२।१३	एदे अण्णोण्ण.गुणिदा =	१८७२००
	एदे सव्वे मिलिया =	७२५७६०

एते षड् राशयो मीलिताः ७२०० + ५६१६० + ८६४०० + २८०८०० + १०८००० + १८७२०० = ७२५७६० पञ्चदशप्रत्ययानामुत्तरोत्तरविकल्पाः स्युः ।

इन उपर्युक्त पन्द्रह बन्ध-प्रत्ययोंके छहों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रकार—५।६।१।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ७२०० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—५।६।६।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ५६१६० भङ्ग होते हैं ।

× ब भयजुयलं एय जोगो य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय प्रकार—५।६।६।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ८६४०० भङ्ग होते हैं।
चतुर्थ प्रकार—५।६।१५।४।३।२।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर २८०८०० भङ्ग होते हैं।
पंचम प्रकार—५।६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १०८००० भङ्ग होते हैं।
षष्ठ प्रकार—५।६।२०।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १८७२०० भङ्ग होते हैं।
उपर्युक्त सर्व भङ्गोंका जोड़— ७२५७६०
यह सब पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका प्रमाण जानना चाहिए।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
१	१	०
१	०	१
५	१	१
५	०	२
४	१	२

मिच्छिंदिय छकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्सादिजुयं एयं जोगो सोलस हवंति ते हेऊ ॥१३१॥

११।६।४।१।२।१ एदे मिलिया १६।

अथ मध्यमषोडशप्रत्ययभेदेषु षट्-षट्-पञ्च-पञ्च-चतुःकायविराधनादिप्रत्ययभेदान् गाथापञ्चकेनाऽऽह-['मिच्छिंदिय छकाया' इत्यादि।] १।१।६।४।१।२।१ एकीकृताः ते षोडश १६ हेतवो भवन्ति। एतेषां भङ्गाः ५।६।१।४।३।२।१३। एते परस्परेण गुणिताः ६३६० विकल्पा भवन्ति ॥१३१॥

अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, एक वेद, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+१+६+४+१+२+१=१६।

मिच्छिंदिय छक्काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च सोलसं जोगो ॥१३२॥

१।१।६।३।१।२।१।१ एदे मिलिया १६।

१।१।६।३।१।२।१।१ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः। एतेषां भङ्गाः ५।६।१।४।३।२।२।१० एते अन्योन्यगुणिताः १४४०० भवन्ति ॥१३२॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगलमेंसे एक और योग एक, इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+१+६+३+१+२+१+१=१६।

मिच्छक्ख पंचकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च सोलसं जोगो ॥१३३॥

१।१।५।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १६।

१।१।५।४।१।२।१।१ एकीकृताः १६। एतेषां भङ्गाः ५।६।६।४।३।२।२।१३। एते अन्योन्यताडिताः ११२३२० प्रत्ययविकल्पाः स्युः ॥१३३॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३३॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+१+५+४+१+२+१+१=१६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छक्ख पंचकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइजुयलमेयं भयजुयलं सोलसं जोगो ॥१३४॥

११।१।५।३।१।२।२।१। एदे मिलिया १६ ।

१।१।५।३।१।२।२।१ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ५।६।६।४।३।२।१० एते परस्पर-गुणिताः ४३२०० ॥१३४॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ५ + ३ + १ + २ + २ + १ = १६ ।

मिच्छक्खं चउकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइजुयलमेयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१३५॥

१।१।४।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १६ ।

१।१।४।४।१।२।२।१ एकीकृताः १६ । एतेषां भङ्गाः ५।६।१५।४।३।२।१३ । परस्परेण गुणिताः १४०४०० ॥१३५॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और एक योग; इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ४ + ४ + १ + २ + २ + १ = १६ ।

एदेसिं च भंगा—	५।६।१।४।३।२।१३	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	९३६०
	५।६।१।४।३।२।२।१०	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	१४४००
	५।६।६।४।३।२।२।१३	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	११२३२०
	५।६।६।४।३।२।१०	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	४३२००
	५।६।१५।४।३।२।१३	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	१४०४००
	एए सव्वे मिलिया		= ३१९६८०

एते सर्वे पञ्चराशयः मीलिताः ३१९६८० इति मध्यमषोडशप्रत्ययानां विकल्पाः समाप्ताः ।

इन उपर्युक्त सोलह बन्ध-प्रत्ययोंके पाँचों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—

प्रथम प्रकार—५।६।१।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ९३६० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—५।६।१।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४०० भङ्ग होते हैं ।

तृतीय प्रकार—५।६।६।४।३।२।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ११२३२० भङ्ग होते हैं ।

चतुर्थ प्रकार—५।६।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ४३२०० भङ्ग होते हैं ।

पंचम प्रकार—५।६।१५।४।३।२।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४०४०० भङ्ग होते हैं ।

उपर्युक्त सर्व भङ्गोंका जोड़— = ३१९६८०

यह सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका प्रमाण है ।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले सत्तरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
६	१	१
६	०	२
५	१	२

मिच्छिंदिय छक्काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च सत्तरस जोगो ॥१३६॥

१।१।६।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १७ ।

अथ सप्तदशमध्यमप्रत्ययानां भेदे षट्-षट्-पञ्चकायविराधनादिप्रत्ययान् गाथात्रयेणाऽऽह—['मिच्छि-दिय छकाया' इत्यादि] १।१।६।४।१।२।१।१ एकीकृताः १७ प्रत्ययाः स्युः। एतेषां भेदाः ५।६।१।४।३।२।२ एते परस्परांकेन गुणिताः १८७२० उत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पाः ॥१३६॥

अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; इस प्रकार सत्तरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ६ + ४ + १ + २ + १ + १ = १७ ।

मिच्छिंदिय छकाया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइजुयलमेयं भयजुयलं सत्तरस जोगो ॥१३७॥

१।१।६।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १७ ।

१।१।६।३।१।२।२।१ एकीकृताः १७ । एतेषां भंगा ५।६।१।४।३।२।१।१० । एते परस्परेण हताः ७२०० विकल्पाः स्युः ॥१३७॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; इस प्रकार सत्तरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ६ + ३ + १ + २ + २ + १ = १७ ।

मिच्छक्ख पंचकाया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं सत्तरस जोगो ॥१३८॥

१।१।५।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १७ ।

१।१।५।४।१।२।२।१ एकीकृताः १७ प्रत्ययाः। एतेषां भंगाः ५।६।६।४।३।२।१।१३ । एते अन्योन्य-गुणिताः ५६१६० ॥१३८॥

अथवा मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; इस प्रकार सत्तरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ५ + ४ + १ + २ + २ + १ = १७ ।

एदेसिं च भंगा— ५।६।१।४।३।२।२।१३ एदे अण्णोण्णगुणिदा = १८७२०
५।६।१।४।३।२।१० एदे अण्णोण्णगुणिदा = ७२००
५।६।६।४।३।२।१३ एदे अण्णोण्णगुणिदा = ५६१६०
एए सव्वे मिलिया = ८२०८०

एते त्रयो राशयो मीलिताः १८७२० + ७२०० + ५६१६० = ८२०८० । एते सप्तदश-प्रत्ययानां विकल्पा भवन्ति ।

इन उपर्युक्त सत्तरह बन्ध-प्रत्ययोंके तीनों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—
प्रथम प्रकार—५।६।१।४।३।२।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर १८७२० भङ्ग होते हैं ।
द्वितीय प्रकार—५।६।१।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ७२०० भङ्ग होते हैं ।
तृतीय प्रकार—५।६।६।४।३।२।१३ इनका परस्पर गुणा करनेपर ५६१६० भङ्ग होते हैं ।
उपर्युक्त सर्व बन्ध-प्रत्ययोंका जोड़— = ८२०८०
यह सत्तरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका प्रमाण है ।

मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले अट्ठारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
६	१	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छिंदिय छक्काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं अट्ठरस जोगो ॥१३६॥

११।६।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १८ ।

अथाष्टादशोत्कृष्टभेदे कायषट्कविराधनादिभेदमाह—१।१।६।४।१।२।२।१ एकीकृताः १८ प्रत्ययाः । [1]पञ्चानां मिथ्यात्वानां मध्ये एकतममिथ्यात्वप्रत्ययः। षण्णामिन्द्रियाणामेकतमेन षट्कायविराधने सहाऽसंयमप्रत्ययाः ११६ । चतुर्णां कषायाणां मध्ये एकतमचतुष्कोदये चत्वारः प्रत्ययाः ४ । वेदानां त्रयाणां मध्ये एकतरो वेदः १ । हास्य-रतियुगलाऽरति-शोकयुगलयोर्मध्ये एकतरयुगलं २ । भय-जुगुप्साद्वयं २ । आहारकद्वयं विना त्रयोदशानां योगानामेकतमो योगः १ । एवमेतेऽष्टादशोत्कृष्टप्रत्ययाः १८ । [2]मिथ्यात्वपञ्चके ५ न्द्रियषट्कै ६ ककाय १ कषायचतुष्क ४ वेदत्रय ३ हास्यादियुग्मद्वय २ योगत्रयोदशक १३ भंगाः ५।६।१।४।३।२।१।१।१३ परस्परेण गुणिताः ९३६० अष्टादशोत्कृष्टप्रत्ययानां विकल्पाः स्युः ॥१३६॥

अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व एक, इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; इस प्रकार अट्ठारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१३६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ६ + ४ + १ + २ + २ + १ = १८ ।

एदेसिं च भंगा— ५।६।१।४।३।२।१३ । एते मिलिया ९३६० ।

मिच्छाइट्ठिस्स भंगा ४१७३१२० ।

मिच्छत्तगुणट्ठाणस्स पच्चयभंगा समत्ता ।

मिथ्यात्वगुणस्थाने दशैकादशाद्यऽष्टादशानां जघन्य-मध्यमोत्कृष्टानां प्रत्ययानां सर्वे भंगा उत्तरविकल्पा एकीकृताः विंशत्यग्रैकशतत्रिसप्ततिसहस्रैकचत्वारिंशल्लक्षसंख्योपेताः ४१७३१२० मिथ्यादृष्टिषु भवन्ति ।

इति मिथ्यात्वस्य भंगाः समाप्ताः ।

अट्ठारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग ५ × ६ × १ × ४ × ३ × २ × १३ = ९३६० होते हैं ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें दशसे लेकर अट्ठारह बन्ध-प्रत्ययों तकके सर्व भङ्गोंका प्रमाण ४१७३१२० होता है । जिसका विवरण इस प्रकार है—

दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग—	४३२००
ग्यारह ,, ,, ,,	२५०५६०
बारह ,, ,, ,,	६५५६२०
तेरह ,, ,, ,,	१०२८१६०
चौदह ,, ,, ,,	१०५८४००
पन्द्रह ,, ,, ,,	७२५७६०
सोलह ,, ,, ,,	३१९६८०
सत्तरह ,, ,, ,,	८२०८०
अट्ठारह ,, ,, ,,	९३६०
मिथ्यादृष्टिके सर्व बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्गोंका जोड़—	४१७३१२०

इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानके बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भंग समाप्त हुए ।

---

१. सं० पञ्चसं० ४, पृ० ९५ 'पञ्चानां मिथ्यात्वानां' इत्यादि गद्यभागः शब्दशः समानः ।

२. सं० पञ्चसं० ४, पृ० ९६ 'मिथ्यात्वपंचके' इत्यादि गद्यभागः शब्दशस्तुल्यः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब सासादन गुणस्थान-सम्बन्धी बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

वेउव्वमिस्सजोयं पडुच्च वेदो णउंसओ णत्थि ।
उववज्जइ णो णिरए सासणसम्मो त्ति वयणाओ[1] ॥१४०॥

अथ सासादनसम्यग्दृष्टौ जघन्य-मध्यमोत्कृष्टप्रत्ययभेदान् गाथैकोनविंशत्या प्ररूपयति—['वेउव्व-मिस्सजोयं' इत्यादि ।] वैक्रियिकमिश्रयोगं प्रतीत्याऽऽश्रित्य स्वीकृत्य वैक्रियिकमिश्रे नपुंसकवेदो नास्ति । कुतः ? यतः 'सासादनसम्यग्दृष्टिः नरकेषु न उत्पद्यते' इति वचनात् । देवेषु वैक्रियिकमिश्रकाले स्त्री-पुंवेदावेव ॥१४०॥ उक्तञ्च—

सासादनो यतो जातु श्वभ्रभूमिं न गच्छति ।
मिश्रे वैक्रियिके योगे स्त्री-पुंवेदद्वयं यतः ॥२०॥
योगैर्द्वादशभिस्तस्मान्मिश्रवैक्रियिकेण च ।
त्रिभिर्द्वाभ्यां च भेदाभ्यां तस्य भङ्गप्रकल्पना ॥२१॥
संस्थाप्य सासनं द्वेधा योग-वेदैर्यथोदितैः ।
गुणयित्वाऽखिला भङ्गास्तस्याऽऽनेया यथागमम्[2] ॥२२॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगकी अपेक्षा नपुंसकवेद संभव नहीं है; क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नरकगतिमें उत्पन्न नहीं होता है, ऐसा आगमका वचन है ॥१४०॥

सासादनसम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
१	१	०

इंदियमेओ काओ कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइजुयलमेयं जोगो दस पच्चया सादे ॥१४१॥

१।१।४।१।२।१ एदे मिलिया १० ।

सासादने षण्णामिन्द्रियाणां मध्ये एकतमेन्द्रियाऽसंयमप्रत्ययः १ । षण्णां कायविराधनानां एकतम-कायविराधनाऽसंयमप्रत्ययः १ । चतुर्णां कषायाणां मध्ये एकतमचतुष्कोदये चत्वारः कषायप्रत्ययाः ४ । त्रयाणां वेदानामेकतरवेदप्रत्ययः १ । हास्य-रतियुग्माऽरति-शोकयुग्मयोर्मध्ये एकतरयुग्मं २ । नारकवैक्रियिक-मिश्राऽऽहारकद्वयरहितद्वादशयोगानां मध्ये एकतमो योगः १ । एवमेते दश जघन्यप्रत्ययाः सासादन-सम्यग्दृष्टौ भवन्ति । १।१।४।१।२।१ एकीकृताः १० । इन्द्रियषट्क ६ कायषट्क ६ कषायचतुष्क ४ वेदत्रय ३ हास्यादियुग्म २ नारकवैक्रियिकमिश्राऽऽहारकद्विकरहितयोगद्वादशक १२ भंगाः ६।६।४।३।२।१२ परस्परेण गुणिताः सन्तः १०३६८ उत्तराः जघन्यदशकस्य विकल्पाः स्युः । पुनः अपूर्णदेववैक्रियिकापेक्षया एते १।१।४।१।२।१ एकीकृताः १० । असंयमषट्क ६ कायषट्क ६ कषायचतुष्क ४ पण्ढोनवेदद्वय २ हास्यादि-युग्म २ देवसम्बन्धिवैक्रियिकमिश्रयोगैकभंगाः ६।६।४।२।२।१ परस्परेण गुणिताः ५७६ भवन्ति । एते द्विराशयः एकीकृताः १०३६८ + ५७६ = १०९४४ जघन्यदशप्रत्ययानां सर्वे उत्तरोत्तरभंगा एते । एवं सर्वत्र गमनिका ज्ञेया ॥१४१॥

सासादन गुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ४ + १ + २ + १ = १०

---

१. सं० पञ्चसं० ४,५७ (पृ० ९६)। २. सं० पञ्चसं० ४,५८–५९ (पृ० ९६)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेसिं च भंगा— ६।६।४।३।२।१२ । एदे अण्णोण्णगुणिदा = १०३६८
६।६।४।२।२।१ । एदे अण्णोण्णगुणिदा = ५७६
एदे मेलिए = १०९४४

दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार होंगे—
प्रथम प्रकार—६।६।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर १०३६८ भङ्ग होते हैं।
द्वितीय प्रकार—६।६।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर ५७६ भङ्ग होते हैं।
सासादनगुणस्थानमें दशबन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी उपर्युक्त सर्व भङ्गोंका जोड़ १०९४४ होता है।

विशेषार्थ—सासादन गुणस्थानवाला जीव नरकगतिको नहीं जाता है, इसलिए इस गुणस्थानवालेके यदि वैक्रियिकमिश्रकाययोग होगा, तो देवगतिकी अपेक्षासे होगा और वहाँ स्त्रीवेद तथा पुरुषवेद ये दो ही वेद होते हैं, नपुंसक वेद नहीं होता। अतएव बारह योगोंके साथ तीनों वेदोंको जोड़कर भङ्गोंकी रचना होगी। तदनुसार ६×६×४×३×२×१२= १०३६८ भङ्ग होते हैं। किन्तु वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ नपुंसकवेदको छोड़कर शेष दो वेदोंकी अपेक्षा भङ्गोंकी रचना होगी। तदनुसार ६×६×४×२×२×१=५७६ भङ्ग होते हैं। इस प्रकार सासादन गुणस्थानमें दशबन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी इन दोनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्गोंका जोड़ १०९४४ हो जाता है।

सासादन सम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
२	१	०
१	१	१

इंदिय दोण्णि य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइजुयलमेयं जोगो एक्कारसा जादे ॥१४२॥

१।२।४।१।२।१ । एदे मिलिया ११ ।

१।२।४।१।२।१ एकीकृताः ११ । एतेषां भंगाः ६।१५।४।३।२।१२॥ ६।१५।४।२।२।१ । परस्परेण गुणिताः २५९२०।१४४० ॥१४२॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+२+४+१+२+१=११।

इंदियमेओ काओ कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥१४३॥

१।१।४।१।२।१।१ एदे मिलिया ११ ।

१।१।४।१।२।१।१ एकीकृताः ११ । एतेषां भंगाः ६।६।४।३।२।२।१२ । वैक्रियिकमाश्रित्य ६।६।४।२।२।२।१ । एते अन्योन्यगुणिताः २०७३६ । ११५२ । एते सर्वे मीलिताः ४१२४८ विकल्पाः मध्यमैकादशानां भवन्ति ॥१४३॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; इस प्रकार ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४३॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+१+४+१+२+१+१=११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेसिं च भंगा— ६।१५।४।३।२।१२ एदे अण्णोण्णगुणिदा = २५९२०
६।१५।४।२।२।१ एए अण्णोण्णगुणिदा = १४४०
६।६।४।३।२।२।१२ एदे अण्णोण्णगुणिदा = २०७३६
६।६।४।२।२।२।१ एए अण्णोण्णगुणिदा = ११५२
एए सव्वे वि मेलिए = ४९२४८

ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी उपर्युक्त दोनों प्रकारोंके भङ्ग ऊपर विशेषार्थमें बतलाई गई दोनों विवक्षाओंकी अपेक्षा इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार— { ६।१५।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर २५९२० भङ्ग होते हैं।
६।१५।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४० भङ्ग होते हैं।

द्वितीय प्रकार— { ६।६।४।३।२।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर २०७३६ भङ्ग होते हैं।
६।६।४।२।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर ११५२ भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार सासादन गुणस्थानमें ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़ ४९२४८ होता है।

सासादन सम्यग्दृष्टिसे आगे बतलाये जानेवाले बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
३	१	०
२	१	१
१	१	२

इंदिय तिण्णि य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइजुयलमेयं जोगो बारस हवंति ते हेऊ ॥१४४॥

१।३।४।१।२।१ एदे मिलिया १२।

१।३।४।१।२।१ एकीकृताः १२ प्रत्ययाः। एतेषां भंगाः ६।२०।४।३।२।१२। पुनः वैक्रियिक-मिश्रापेक्षया ६।२०।४।२।२।१। एते परस्परेण गुणिताः ३४५६०। १९२०॥१४४॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; इस प्रकार बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ३ + ४ + १ + २ + १ = १२।

इंदिय दोण्णि य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥१४५॥

१।२।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १२।

१।२।४।१।२।१।१ एकीकृताः १२। एतेषां भंगाः ६।१५।४।३।२।२।१२। पुनः वै० ६।१५।४।२।२।२।१ गुणिताः ५१८४०।२८८०॥१४५॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विकमेंसे एक और योग एक, ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + २ + ४ + १ + २ + १ + १ = १२।

इंदियमेओ काओ कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१४६॥

१।१।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १२।

१।१।४।१।२।२।१ एकीकृताः १२। एतेषां भंगाः ६।६।४।३।२।१२। ६।६।४।२।२।१। स्त्री-पुंवेदौ २।२। वै० मि० १। परस्परेण गुणिताः १०३६८। ५७६॥१४६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ४ + १ + २ + २ + १ = १२ ।

एदेसिं च भंगा—	६।२०।४।३।२।१२	एदे अण्णोण्णगुणिदा = ३४५६०
	६।२०।४।२।२।२	एदे अण्णोण्णगुणिदा = १९२०
	६।१५।४।३।२।२।१२	एदे अण्णोण्णगुणिदा = ५१८४०
	६।१५।४।२।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा = २८८०
	६।६।४।३।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा = १०३६८
	६।६।४।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा = ५७६
		एदे सव्वे वि मिलिदे = १०२१४४

एते षड्राशयो मिलिताः १०११४४ द्वादशप्रत्ययानां सर्वे विकल्पाः उत्तरोत्तरविकल्पा भवन्ति ।

बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी उक्त तीनों प्रकारोंके ऊपर बतलाई गई दोनों विवक्षाओंसे भंग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार—	६।२०।४।३।२।१२	इनका परस्पर गुणा करनेपर	३४५६० भङ्ग होते हैं।
	६।२०।४।२।२।१	इनका परस्पर गुणा करनेपर	१९२० भङ्ग होते हैं।
द्वितीय प्रकार—	६।१५।४।३।२।२।१२	इनका परस्पर गुणा करनेपर	५१८४० भङ्ग होते हैं।
	६।१५।४।२।२।२।१	इनका परस्पर गुणा करनेपर	२८८० भङ्ग होते हैं।
तृतीय प्रकार—	६।६।४।३।२।१२	इनका परस्पर गुणा करनेपर	१०३६८ भङ्ग होते हैं।
	६।६।४।२।२।१	इनका परस्पर गुणा करनेपर	५७६ भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार सासादनगुणस्थानमें बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंका जोड़ १०२११४ होता है ।

सासादन सम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
४	१	०
३	१	१
२	१	२

इंदिय चउरो काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं जोगो तेरस हवंति ते हेऊ ॥१४७॥

१।४।४।१।२।१ एदे मिलिया १३ ।

१।४।४।१।२।१ एकीकृता मूलप्रत्ययास्त्रयोदश १३ भवन्ति । एतेषां भंगाः ६।१५।४।३।२।२।१२ । वै० मि० ६।१५।४।२।२ । एते उत्तरप्रत्ययाः परस्परेण गुणिता २५९२० । १४४० उत्तरोत्तरप्रत्यय-विकल्पाः स्युः ॥१४७॥

अथवा सासादनगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ४ + ४ + १ + २ + १ = १३ ।

इंदिय तिण्णि य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥१४८॥

१।३।४।१।२।१।१ । एदे मिलिया १३ ।

१।३।४।१।२।१।१ एकीकृताः १३ । एतेषां भङ्गाः ६।२०।४।३।२।२।१२ वै० मि० ६।२०।४।३।२।२।२।१ परस्परेण गुणिताः ६९१२० । ३८४० ॥१४८॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विकमेंसे एक और योग एक; ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ३ + ४ + १ + २ + १ + १ = १३।

इंदिय दोण्णि य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१४९॥

१।२।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १३।

१।२।४।१।२।२।१ एकीकृताः प्रत्ययाः १३। एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२। वै० मि० ६।१५।४।२।२। एते परस्परेण गुणिताः २५९२०। १४४० ॥१४९॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१४९॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + २ + ४ + १ + २ + २ + १ = १३।

एदेसिं च भंगा—६।१५।४।३।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	२५९२०
६।१५।४।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	१४४०
६।२०।४।३।२।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	६९१२०
६।२०।४।२।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	३८४०
६।१५।४।३।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	२५९२०
६।१५।४।२।२।१।	एए अण्णोण्णगुणिदा =	१४४०
	एए सव्वे मिलिया =	१२७६८०

सर्वे मिलिताः १२७६८०।

तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी इन तीनों प्रकारोंके उक्त दोनों विवक्षाओंसे भंग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार— { ६।१५।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर २५९२० भङ्ग होते हैं।
६।१५।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४० भङ्ग होते हैं।

द्वितीय प्रकार— { ६।२०।४।३।२।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर ६९१२० भङ्ग होते हैं।
६।२०।४।२।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर ३८४० भङ्ग होते हैं।

तृतीय प्रकार— { ६।१५।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करनेपर २५९२० भङ्ग होते हैं।
६।१५।।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४० भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार सासादन गुणस्थानमें तेरह बन्ध प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़ १२७६८० होता है।

सासादनसम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
५	१	०
४	१	१
३	१	२

इंदिय पंच य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइजुयलमेयं जोगो चउदस हवंति ते हेऊ ॥१५०॥

१।५।४।१।२।१ एदे मिलिया १४।

१।५।४।१।२।१। एकीकृताः १४ प्रत्ययाः। एतेषां भङ्गाः ६।६।४।३।२।१२। पुनः वै० मि० ६।६।४।२।२।१ एते परस्परेण गुणिताः १०३६८। ५७६ ॥१५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा सासादनगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५०॥

इनकी संदृष्टि इस प्रकार है—१ + ५ + ४ + १ + २ + १ = १४।

इंदिय चउरो काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१५१॥

१।४।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १४।

१।४।४।१।२।१।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः। एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२।२।१२। वै० मि० ६।१५। ४।२।२।१। एते अन्योन्यगुणिताः ५१८४०। २८८०॥१५१॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विकमें से एक और योग एक; ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ४ + ४ + १ + २ + १ + १ = १४।

इंदिय तिण्णि य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१५२॥

१।३।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १४।

१।३।४।१।२।२।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः। एतेषां भङ्गाः ६।२०।४।३।२।१२। वै० मि० ६।२०।४ २।२।१। एते परस्परेण गुणिताः ३४५६०। १९२०॥१५२॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और एक योग; ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ३ + ४ + १ + २ + २ + १ = १४।

एदेसिं च भंगा—	६।६।४।३।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा = १०३६८
	६।६।४।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा = ५७६
	६।१५।४।३।२।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा = ५१८४०
	६।१५।४।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा = २८८०
	६।२०।४।३।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा = ३४५६०
	६।२०।४।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा = १९२०
एए सव्वे मेलिए—		= १०२१४४

एते सर्वे षड् राशयो मीलिताः १०२१४४ एते मध्यमचतुर्दशप्रत्ययानामुत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पा भवन्ति।

चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी इन तीनों प्रकारोंके उक्त दोनों विवक्षाओंसे भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार—	६।६।४।३।२।१२	इनका परस्पर गुणा करने पर १०३६८ भङ्ग होते हैं।
	६।६।४।२।२।१	इनका परस्पर गुणा करने पर ५७६ भङ्ग होते हैं।
द्वितीय प्रकार—	६।१५।४।३।२।२।१२	इनका परस्पर गुणा करने पर ५१८४० भङ्ग होते हैं।
	६।१५।४।२।२।२।१	इनका परस्पर गुणा करने पर २८८० भङ्ग होते हैं।
तृतीय प्रकार—	६।२०।४।३।२।१२	इनका परस्पर गुणा करने पर ३४५६० भङ्ग होते हैं।
	६।२०।४।२।२।१	इनका परस्पर गुणा करने पर १९२० भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार सासादनगुणस्थानमें चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़ १०२१४४ होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सासादनसम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
६	१	०
५	१	१
४	१	२

इंदिय छक्क य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइजुयलमेयं जोगो पण्णरस पच्चया सादे ॥१५३॥

१।६।४।१।२।१ एदे मिलिया १५ ।

१।६।४।१।२।१ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।१।४।३।२।१२। वै मि० ६।१।४।२।२।१। एते अन्योन्यगुणिताः १७२८ । ९६ । ॥१५३॥

अथवा सासादनगुणस्थानमें इन्द्रियमें एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५३॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ६ + ४ + १ + २ + १ = १५ ।

इंदिय पंचय काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्सादिजुयलमेयं भयजुय एयं च जोगो य ॥१५४॥

१।५।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १५ ।

१।५।४।१।२।१।१ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः। एतेषां भङ्गाः ६।६।४।३।२।२।१२। वै० मि० ६।६।४।२।२।२।१। एते परस्परेण गुणिताः २०७३६ । ११५२ ॥१५४॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विकमेंसे एक और योग एक; ये पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ५ + ४ + १ + २ + १ + १ = १५ ।

इंदिय चउरो काया कोहाइचउक्क एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एगजोगो य ॥१५५॥

१।४।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १५ ।

१।४।४।१।२।२।१। एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२।२।१२। वै० मि० ६।१५।४।२।२।१ एते परस्परेण गुणिताः २५९२० । १४४० ॥१५५॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ४ + ४ + १ + २ + २ + १ = १५ ।

एदेसिं च भंगा—६।१।४।३।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा	= १७२८
६।१।४।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा	= ९६
६।६।४।३।२।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा	= २०७३६
६।६।४।२।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा	= ११५२
६।१५।४।३।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा	= २५९२०
६।१५।४।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा	= १४४०
एए सव्वे मेलिए—		= ५१०७२

एते सर्वे षड् राशयो मीलिताः ५१०७२ । इति पञ्चदशप्रत्ययानामुत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पाः कथिताः ।

पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी इन तीनों प्रकारोंके उक्त दोनों विवक्षाओंसे भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम प्रकार—६।१।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर १७२८ भङ्ग होते हैं।
६।१।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर ९६ भङ्ग होते हैं।

द्वितीय प्रकार—६।६।४।३।२।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर २०७३६ भङ्ग होते हैं।
६।६।४।२।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर २१५२ भङ्ग होते हैं।

तृतीय प्रकार—६।१५।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर २५९२० भङ्ग होते हैं।
६।१५।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर १४४० भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार सासादनगुणस्थानमें पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़ ५१०७२ होता है।

सासादनसम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
६	१	१
५	१	२

इंदिय छक्क य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च सोलसं जोगो ॥१५६॥

१।६।४।१।२।१।१ एदे मिलिया १६।

१।६।४।१।२।१।१ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः। एतेषां भंगाः ६।१।४।३।२।२।१२। वै० मि० ६।१।४।२।२।२।१। एते अङ्काः परस्परगुणिताः ३४५६। १९२ ॥१५६॥

अथवा सासादनगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; ये सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ६ + ४ + १ + २ + १ + १ = १६।

इंदिय पंच य काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्सादिजुयलमेयं भयजुयलं सोलसं जोगो ॥१५७॥

१।५।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १६।

१।५।४।१।२।२।१ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः। एतेषां भंगाः ६।६।४।३।२।१२। वै० मि० ६।६।४।२।२।१। एते गुणिताः १०३६८। ५७६ ॥१५७॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; ये सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ५ + ४ + १ + २ + २ + १ = १६।

एदेसिं च भंगा—	६।१।४।३।२।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा = ३४५६
	६।१।४।२।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा = १९२
	६।६।४।३।२।१२	एए अण्णोण्णगुणिदा = १०३६८
	६।६।४।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा = ५७६
एए सव्वे मेलिए—		= १४५९२

एते सर्वे चत्वारो राशयो मीलिताः १४५९२ षोडशप्रत्ययानां सर्वे उत्तरप्रत्ययविकल्पा भवन्ति।

सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी इन दोनों प्रकारोंके उक्त दोनों अपेक्षाओंसे भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम प्रकार—६।१।४।३।२।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर ३४५६ भङ्ग होते हैं।
६।१।४।२।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर १६२ भङ्ग होते हैं।
द्वितीय प्रकार—६।६।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर १०३६८ भङ्ग होते हैं।
६।६।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर ५७६ भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार सासादन गुणस्थानमें सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़ १४५६२ होता है।

सासादनसम्यग्दृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले सत्तरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	अन०	भ०
६	१	२

इंदिय छक्कय काया कोहाइचउक्क एयवेदो य।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं सत्तरस जोगो ॥१५८॥

१।६।४।१।२।२।१ एदे मिलिया १७।

१।६।४।१।२।२।१ एकीकृताः १७ प्रत्ययाः। एतेषां भङ्गाः ६।१।४।३।२।१२। वै० मि० ६।१।४।२।२।१ एते परस्परेण गुणिताः १७२८। ६६ ॥१५८॥

अथवा सासादनगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय चार, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; ये सत्तरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+६+४+१+२+२+१=१७।

एदेसिं च भंगा—६।१।४।३।२।१२ एदे अण्णोण्णगुणिदा = १७२८
६।१।४।२।२।१ एदे अण्णोण्णगुणिदा = ९६
एए सव्वे वि मिलिए = १८२४

सव्वे मिलिया— ४५६६४८।

सासादनगुणट्ठाणस्स भंगा समत्ता।

[सप्तदशप्रत्ययानां सर्वे भङ्गाः १८२४।] जघन्यदश-मध्यमैकादशादि-सप्तदशप्रत्ययानां सर्वे मीलिताः भंगाः चतुर्लक्षैकोनषष्टिसहस्र-षट्शताऽष्टचत्वारिंशतः उत्तरोत्तरविकल्पाः ४५६६४८ सासादन-सम्यग्दृष्टिषु भवन्ति।

सत्तरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग उक्त दोनों अपेक्षाओंसे इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—६।१।४।३।२।१२ इनका परस्पर गुणा करने पर १७२८ भङ्ग होते हैं। ६।१।४।२।२।१ इनका परस्पर गुणा करने पर ९६ भङ्ग होते हैं। इन सर्व भङ्गोंका जोड़—१८२४ होता है।

इस प्रकार सासादनगुणस्थानमें दशसे लेकर सत्तरह बन्ध-प्रत्ययों तकके सर्व भङ्गोंका प्रमाण ४५९६४८ होता है। जिसका विवरण इस प्रकार है—

दश	बन्ध-प्रत्यय-	सम्बन्धी	भङ्ग	१०९४४
ग्यारह	,,	,,	,,	४९२४८
बारह	,,	,,	,,	१०२१४४
तेरह	,,	,,	,,	१२७६८०
चौदह	,,	,,	,,	१०२१४४
पन्द्रह	,,	,,	,,	५१०७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलह ,, ,, ,, १४५६२
सत्तरह ,, ,, ,, १८२४

सासादनसम्यग्दृष्टिके सर्व बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्गोंका जोड़ ४५६६४८ होता है।

इस प्रकार सासादनगुणस्थानके भङ्गोंका विवरण समाप्त हुआ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
१	०

इंदियमेओ काओ कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्साइजुयलमेयं जोगो णव होंति† पच्चया मिस्से ॥१५९॥

१।१।३।१।२।१। एदे मिलिया ९।

अथ मिश्रगुणस्थाने जघन्यनवक-मध्यमदशकाद्युत्कृष्टषोडशपर्यन्तं प्रत्ययभेदान् गाथाऽष्टादशकेन प्राह–['इंदियमेओ काओ' इत्यादि।] षण्णामिन्द्रियाणां मध्ये एकतमेन्द्रियाऽसंयमप्रत्ययः १। षण्णां कायानां एकतमकायविराधकाऽसंयमप्रत्ययः १। मिश्रे अनन्तानुबन्धिनामुदयाऽभावात् अप्रत्याख्यानाऽऽदीनां कषायाणां मध्ये अन्यतमक्रोधादयस्त्रयः प्रत्ययाः ३। त्रिवेदानां एकतमवेदः १। हास्य-रतियुग्माऽरति-शोकयुग्मयोर्मध्ये एकतमयुग्मम् २। मिश्रे आहारकद्विक-मिश्रत्रिकयोगाऽभावात् दशानां योगानां मध्ये एकतमयोगप्रत्ययः १। एवं मिश्रे नव प्रत्ययाः ९ भवन्ति। १।१।३।१।२।१ एकीकृताः ९ प्रत्ययाः ॥१५९॥

मिश्रगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय एक, अनन्तानुबन्धीके विना अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन-सम्बन्धी क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक; ये नौ बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१५९॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + १ + २ + १ = ९।

एदेसिं च भंगा—६।६।४।३।२।१० एए अण्णोण्णगुणिया = ८६४०

इन्द्रियषट्क ६ कायषट्क ६ कषायचतुष्क ४ वेदत्रय ३ हास्यादियुग्म २ मनो-वचनौदारिकवैक्रियिकयोगाः दश १०। भङ्गाः ६।६।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः ८६४० नवप्रत्ययानामुत्तरोत्तरविकल्पा भवन्ति। एवं सर्वत्राग्रे कर्तव्यम्।

इनके ६।६।४।३।२।१० परस्पर गुणा करने पर नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी ८६४० भङ्ग होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाने जानेवाले दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
२	०
१	१

इंदिय दोण्णि य काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्सादिजुयलमेयं जोगो दस पच्चया मिस्से ॥१६०॥

१।२।३।१।२।१। एदे मिलिया १०।

१।२।३।१।२।१ एकीकृताः १०। एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२।१०। परस्परेण गुणिताः २१६०० ॥१६०॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक, ये दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + २ + ३ + १ + २ + १ = १०।

---

† ब होइ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंदियमेओ काओ कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१६१॥

१।१।३।१।२।१।१ एदे मिलिया १० ।

१।१।३।१।२।१।१ एकीकृताः १० प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।६।४।३।२।२।१० । परस्परेण गुणिताः १७२८० ॥१६१॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; ये दशबन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + १ + २ + १ + १ = १० ।

एदेसिं च भंगा—	६।१५।४।३।२।१० एए अण्णोण्णगुणिया		= २१६००
	६।६।४।३।२।२।१०	,,	= १७२८०
एदे मेलिए—			= ३८८८०
सर्वे मीलिताः—			३८८८० ।

मिश्र गुणस्थानमें दशबन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी दोनों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार हैं—

(१) ६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर २१६०० भङ्ग होते हैं ।

(२) ६।६।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर १७२८० भङ्ग होते हैं ।

दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका जोड़— ३८८८० होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
३	०
२	१
१	२

इंदिय तिण्णि य काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्सादिजुयलमेयं जोगो एकार† पच्चया मिस्से ॥१६२॥

१।३।३।१।२।१ एदे मिलिया ११ ।

१।३।३।१।२।१ एकीकृताः ११ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।२०।४।३।२।१० । परस्परगुणिताः २८८०० ॥१६२॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ३ + ३ + १ + २ + १ = ११ ।

इंदिय दोण्णि य काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१६३॥

१।२।३।१।२।१।१ एदे मिलिया ११ ।

१।२।३।१।२।१।१ एकीकृताः ११ प्रत्ययाः एतेषां । भङ्गाः ६।१५।४।३।२।२।१० । परस्परेण गुणिताः ४३२०० ॥१६३॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक, और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६३॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + २ + ३ + १ + २ + १ + १ = ११ ।

---

† ब इकारस ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंदियमेओ काओ कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१६४॥

१।१।३।१।२।२।१ एदे मिलिया ११।

१।१।३।१।२।२।१ एकीकृताः ११ प्रत्ययाः। एतेषां भङ्गाः ६।६।४।३।२।१०। गुणिताः ८६४० ॥१६४॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + ३ + १ + २ + २ + १ = ११।

एदेसिं च भंगा—	६।२०।४।३।२।१०	एए अण्णोण्णगुणिया	= २८८००
	६।१५।४।३।२।२।१०	,,	= ४३२००
	६।६।४।३।२।१०	,,	= ८६४०
एए सव्वे मेलिए—			= ८०६४०
एते सर्वे मीलिताः—			८०६४०।

मिश्रगुणस्थानमें ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी तीनों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार हैं—
(१) ६।२०।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर २८८०० भङ्ग होते हैं।
(२) ६।१५।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर ४३२०० भङ्ग होते हैं।
(३) ६।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर ८६४० भङ्ग होते हैं।
ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंका जोड़— ८०६४० होता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
४	०
३	१
२	२

इंदिय चउरो काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्सादिदुयं एयं जोगो बारस हवंति ते हेऊ ॥१६५॥

१।४।३।१।२।१ एदे मिलिया १२।

१।४।३।१।२।१ एकीकृताः १२ द्वादश कर्मणां ते हेतवः प्रत्यया भवन्ति। एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः २१६०० ॥१६५॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक, ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ४ + ३ + १ + २ + १ = १२।

इंदिय तिण्णि वि काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च बारसं जोगो ॥१६६॥

१।३।३।१।२।१।१ एदे मिलिया १२।

१।३।३।१।२।१।१ एकीकृताः १२ प्रत्ययाः। एतेषां भङ्गाः ६।२०।४।३।२।२।१० गुणिताः ५७६०० ॥१६६॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ३ + ३ + १ + २ + १ + १ = १२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंदिय दोण्णि य काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१६७॥

१।२।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १२ ।

१।२।३।१।२।२।१ एकीकृताः १२ । एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२।१० गुणिताः २१६०० ॥१६७॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+२+३+१+२+२+१=१२ ।

एदेसिं च भंगा—	६।१५।४।३।२।१० एए अण्णोण्णगुणिया		=२१६००
	६।२०।४।३।२।२।१०	,,	=५७६००
	६।१५।४।३।२।१०	,,	=२१६००
सव्वे मेलिए—			=१००८००

सर्वे मीलिताः १००८०० द्वादशप्रत्ययानां विकल्पाः ।

मिश्र गुणस्थानमें बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी तीनों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार हैं—
प्रथम प्रकार—६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर २१६०० भङ्ग होते हैं ।
द्वितीय प्रकार—६।२०।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर ५७६०० भङ्ग होते हैं
तृतीय प्रकार—६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करने पर २१६०० भङ्ग होते हैं ।
उक्त सर्व भङ्गोंका जोड़— १००८०० होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
५	०
४	१
३	२

इंदिय पंच वि काया कोहाई तिण्णि एय वेदो य ।
हस्साइजुयं एयं जोगो तेरस हवंति ते हेऊ ॥१६८॥

१।५।३।१।२।१ एदे मिलिया १३ ।

१।५।३।१।२।१ एकीकृताः १३ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।६।४।३।२।१० गुणिताः ८६४० ॥१६८॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक, ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+५+३+१+२+१=१३ ।

इंदिय चउरो काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१६९॥

१।४।३।१।२।१।१ एदे मिलिया १३ ।

१।४।३।१।२।१।१ एकीकृताः १३ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२।२।१० परस्परेण गुणिताः ४३२०० ॥१६९॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, एक वेद, हास्यादि युगल एक, भय-द्विकमेंसे एक और योग एक; ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६९॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१+४+३+१+२+१+१=१३ ।

इंदिय तिण्णि य काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं तेरसं जोगो ॥१७०॥

१।३।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १३ ।

१।३।३।१।२।२।१ एकीकृताः १३ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।२०।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः २८८०० ॥१७०॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७०॥

एदेसिं च भंगा—	६।६।४।३।२।१०	एए अण्णोण्णगुणिया	= ८६४०
	६।१५।४।३।२।२।१०	,,	= ४३२००
	६।२०।४।३।२।१०	,,	= २८८००
एए सव्वे मेलिए			= ८०६४०

एते त्रयो राशयो मीलिताः ८०६४० त्रयोदशप्रत्ययानां विकल्पाः ।

मिश्रगुणस्थानमें तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी तीनों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार हैं—
प्रथम प्रकार—६।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ८६४० भङ्ग होते हैं।
द्वितीय प्रकार—६।१५।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ४३२०० भङ्ग होते हैं।
तृतीय प्रकार—६।२०।४।३।२।१०। इनका परस्पर गुणा करनेपर २८८००भङ्ग होते हैं।
उक्त सर्व भंगोंका जोड़— = ८०६४० होता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
६	०
५	१
४	२

इंदिय छक्कय कया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं जोगो चउदस हवंति ते हेऊ ॥१७१॥

१।६।३।१।२।१ एदे मिलिया १४ ।

१।६।३।१।२।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।१।४।३।२।१० परस्परहताः १४४० ॥१७१॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, और योग एक; ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ६ + ३ + १ + २ + १ = १४।

इंदिय पंचय काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१७२॥

१।५।३।१।२।१।१ पदे मिलिया १४ ।

१।५।३।१।२।१।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः । तेषां भंगाः ६।६।४।३।२।२।१० गुणिताः १७२८० ॥१७२॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ५ + ३ + १ + २ + १ + १ = १४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंदिय चउरो काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं चउदसं जोगो ॥१७३॥

१।४।३।१।२।२।१ मिलिया १४ ।

१।४।३।१।२।२।१ एकीकृताः १४ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।१५।४।३।२।१० अन्योन्यगुणिताः २१६०० ॥१७३॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक, ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७३॥

इनकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ४ + ३ + १ + २ + २ + १ = १४ ।

एदेसिं च भंगा—	६।१।४।३।२।१०	एदे अण्णोण्णगुणिदा = १४४०
	६।६।४।३।२।२।१०	एदे अण्णोण्णगुणिदा = १७२८०
	६।१५।४।३।२।१०	एदे अण्णोण्णगुणिदा = २१६००
एए सव्वे मिलिया—		= ४०३२०

एते सर्वे त्रयो राशयो मीलिताः ४०३२० चतुर्दशप्रत्ययानां विकल्पाः स्युः ।

मिश्रगुणस्थानमें चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी तीनों प्रकारोंके भंग इस प्रकार हैं—

(१) ६।१।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४० भंग होते हैं ।
(२) ६।६।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १७२८ भंग होते हैं ।
(३) ६।१५।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर २१६०० भंग होते हैं ।

उक्त सर्व भंगोंका जोड़— ४०३२० होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
६	१
५	२

इंदिय छक्क य काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च पण्णरस जोगो ॥१७४॥

१।६।३।१।२।१।१ एदे मिलिया १५ ।

१।६।३।१।२।१।१ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः भंगाः ६।१।४।३।२।२।१० गुणिताः २८८० ॥१७४॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; ये पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ६ + ३ + १ + २ + १ + १ = १५ ।

इंदिय पंचय काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं पण्णरस जोगो ॥१७५॥

१।५।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १५ ।

१।५।३।१।२।२।१ एकीकृताः १५ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।६।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः ८६४० ॥१७५॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ५ + ३ + १ + २ + २ + १ = १५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेसिं च भंगा—६।१।४।३।२।२।१० एए अण्णोण्णगुणिदा = २८८०
६।६।४।३।२।१० एदे अण्णोण्णगुणिदा = ८६४०
दो वि मेलिए— = ११५२०

एतौ द्वौ राशी एकीकृतौ ११५२० । एते पञ्चदशप्रत्ययानां विकल्पाः ।

मिश्र गुणस्थानमें पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी दोनों प्रकारोंके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—
प्रथम प्रकार—६।१।४।३।२।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर २८८० भङ्ग होते हैं।
द्वितीय प्रकार—६।६।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर ८६४० भङ्ग होते हैं।
उक्त सर्व भङ्गोंका जोड़— ११५२० होता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके आगे बतलाये जानेवाले सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
६	२

इंदिय छक्क य काया कोहाई तिण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं सोलसं जोगो ॥१७६॥

१।६।३।१।२।२।१ एदे मिलिया १६ ।

१।६।३।१।२।२।१ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।१।४।३।२।१० परस्परेण गुणिताः १४४० ॥१७६॥

अथवा मिश्रगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय छह, क्रोधादि कषाय तीन, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; ये सोलह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१७६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—$१ + ६ + ३ + १ + २ + २ + १ = १६$ ।

एदेसिं च भंगा—६।१।४।३।२।१० एए अण्णोण्णगुणिदा = १४४० ।

मिस्सभंगा एवं सव्वे मिलिया ३६२८८० ।

मिस्सगुणट्ठाणस्स भंगा समत्ता ।

एवं सर्वे नवादि-षोडशान्तप्रत्ययानां भंगाः त्रिलक्ष-द्वाषष्टि-सहस्राष्टशताशीतिविकल्पाः ३६२८८० मिश्रगुणस्थाने भवन्ति ।

उक्त सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार होते हैं—
६।१।४।३।२।१० इनका परस्पर गुणा करनेपर १४४० भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार मिश्रगुणस्थानमें दशसे लेकर सोलह बन्ध-प्रत्ययों तकके सर्व भङ्गोंका प्रमाण ३६२८८० होता है। जिसका विवरण इस प्रकार है—

नौ	बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग—			८६४०
दश	,,	,,	,,	३८८८०
ग्यारह	,,	,,	,,	८०६४०
बारह	,,	,,	,,	१००८००
तेरह	,,	,,	,,	८०६४०
चौदह	,,	,,	,,	४०३२०
पन्द्रह	,,	,,	,,	११५२०
सोलह	,,	,,	,,	१४४०

सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सर्व बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्गोंका जोड़— ३६२८८० होता है।

इस प्रकार मिश्रगुणस्थानके भङ्गोंका विवरण समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे पच्चया वियप्पा मिस्से भणिया पडुच्च दसजोगं ।
ते चेव य अजईए अपुण्णजोगाहिया णेया ॥१७७॥

अथाऽसंयतसम्यग्दृष्टौ नवादि-षोडशान्तप्रत्ययानां भंगानाह—दशयोगान् प्रतीत्य मनो-वचनाष्टकौ-दारिक-वैक्रियिकद्वययोगान् स्वीकृत्याऽऽश्रित्य ये प्रत्यय-विकल्पाः मिश्रगुणस्थाने भणिताः, त एव मिश्रोक्त-दशयोगाऽऽश्रिताः प्रत्यय-विकल्पाः । तेषु औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्रकार्मणेषु अपूर्णयोगेषु यावन्तः प्रत्यय-विकल्पाः सम्भवन्ति, तैः अपूर्णयोगोक्तैरधिकाः असंयते अविरतसम्यग्दृष्टौ ज्ञेयाः । असंयते मिश्रोक्ताः प्रत्ययविकल्पाः तथा मिश्रयोगत्रिकोक्ताः प्रत्ययविकल्पाश्च भवन्तीत्यर्थः ॥१७७॥

मिश्रगुणस्थानमें दशयोगोंकी अपेक्षा जो बन्ध-प्रत्यय और विकल्प अर्थात् भङ्ग कहे हैं, असंयतगुणस्थानमें अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोगसे अधिक वे ही बन्ध-प्रत्यय और भंग जानना चाहिए ॥१७७॥

विशेषार्थ—मिश्रगुणस्थानमें अपर्याप्तकाल-सम्बन्धी तीनों अपर्याप्त योग नहीं थे, केवल दश योगोंसे ही बन्ध होता था, किन्तु असंयतगुणस्थानमें अपर्याप्तकालमें देव और नारकियोंकी अपेक्षा वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग, तथा बद्धायुष्क तिर्यञ्च और मनुष्योंकी अपेक्षा औदा-रिकमिश्रकाययोग सम्भव है, अतएव दशवे स्थानपर तेरह योगोंसे बन्ध होता है । इस कारण भंग-संख्या भी योग-गुणकारके बढ़ जानेसे बढ़ जाती है ।

ओरालमिस्सजोगं पडुच्च पुरिसो तहा भवे एक्को ।
वेउव्वमिस्सकम्मे पडुच्च इत्थी ण होइ त्ति ॥१७८॥
सम्माइट्ठी णिर-तिरि-जोइस-वण-भवण-इत्थि-संढेसु ।
जीवो बद्धाऊयं मोत्तुं णो उववज्जइ त्ति वयणाओ ॥१७९॥

असंयते औदारिकमिश्रकाययोगं प्रतीत्याऽऽश्रित्य एकः पुंवेदो भवेत्, औदारिकमिश्रयोगे पुमानेवेति । कुतः ? पूर्वं तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्वा बद्ध्वा पश्चात्सम्यग्दृष्टिर्जातः मृत्वा भोगभूमौ तिर्यग्जीवो मनुष्यो वा जायते । तदा औदारिकमिश्रपुंवेद एव, न तु नपुंसक-स्त्रीवेदौ भवतः । अथवा सम्यक्त्ववान् देवो नारको वा मृत्वा कर्मभूमौ मानुष्याः गर्भे उत्पद्यते, तदा औदारिकमिश्रे पुंवेदः । वैक्रियिकमिश्रं कार्मणयोगं च प्रतीत्याऽऽश्रित्य स्त्रीवेदोऽसंयते न भवति, सम्यग्दृष्टिर्मृत्वा देवेषु उत्पद्यते, तथा वैक्रियिकमिश्रे कार्मणकाले पुंवेद एव । तथा प्रथमनरके उत्पद्यते, तदा नपुंसकवेद एव; न तु स्त्रीवेदः । वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोः स्त्री नेति ॥१७८॥

कुतः इति चेत् सम्यग्दृष्टिर्जीवः नारक-तिर्यग्ज्योतिष-वानव्यन्तर-भवनवासि-स्त्री-षण्ढेषु नोत्पद्यते, *बद्धाऽऽयुष्कं मुक्त्वा । कथम् ? पूर्वं नरकायुर्बद्धं पश्चाद् वेदको वा* क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वा जातः, असौ मृत्वा प्रथमघर्मानरके उत्पद्यते । अथवा तिर्यगायुर्मनुष्याऽऽयुर्वा बद्ध्वा पश्चात् सम्यग्दृष्टिर्जातः, स मृत्वा भोगभूमौ तिर्यग् मनुष्यो वा जायते । अन्यथा सम्यग्दृष्टिर्नरकेषु तिर्यक्षु नपुंसकेषु च नोत्पद्यते । भवनत्रिकेषु स्त्रीषु च सर्वथा नोत्पद्यते इति वचनात् । उक्तञ्च तथा—

योगे वैक्रियिके मिश्रे कार्मणे च सुधाशिषु ।
पुंवेद षण्डवेदश्च श्वभ्रे बद्धायुषः पुनः ॥२३॥
तिर्यग्दवौदारिके मिश्रे पूर्वबद्धायुषो मृतः ।
मनुष्येषु च पुंवेदः सम्यक्त्वालङ्कृतात्मनः[1] ॥२४॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ५६–६० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिभिर्द्वाभ्यां तथैकेन वेदेनास्य प्रताडना ।
भङ्गानां दशभिर्योगैर्द्वाभ्यामेकेन च क्रमात्[1] ॥२५॥

अस्यार्थः—चिरन्तनचतुश्चत्वारिंशच्छतादिलक्षणं राशिं त्रिधा व्यवस्थाप्यैकं त्रिभिर्वेदैः, अन्यं द्वाभ्यां पुन्नपुंसकवेदाभ्याम्, परं राशिं एकेन पुंवेदेन गुणितं हास्यादियुगलेन २ गुणयित्वा योगैरेकं दशभिः, अन्यं द्वाभ्यां वैक्रियिकमिश्र-कार्मणाभ्यां परमेकेनौदारिकमिश्रेण गुणयेत् । तत एकीकरणे फलं भवति[2] ॥१७९॥

असंयतगुणस्थानमें औदारिकमिश्रकाययोगकी अपेक्षा एक पुरुषवेद ही होता है । तथा वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोगको अपेक्षा स्त्रीवेद नहीं होता है । (किन्तु देवोंकी अपेक्षा पुरुष वेद और नारकियोंकी अपेक्षा नपुंसक वेद होता है ।) क्योंकि, बद्धायुष्कको छोड़कर सम्यग्दृष्टि जीव नारकी, तिर्यञ्च, ज्योतिष्क, व्यन्तर, भवनवासी, स्त्री और नपुंसक जीवोंसे उत्पन्न नहीं होता है, ऐसा आगमका वचन है ॥१७८-१७९॥

विशेषार्थ—असंयतगुणस्थानवर्ती जीव यदि बद्धायुष्क नहीं है, तो उसके वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग देवोंमें ही मिलेंगे । तथा उसके केवल पुरुषवेद ही संभव है । यदि असंयत-सम्यग्दृष्टि जीव बद्धायुष्क है, तो वह नरकगतिमें भी जायगा और उसके वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ नपुंसकवेद भी रहेगा । इसलिए असंयतगुणस्थानके भंगोंको उत्पन्न करनेके लिए तीन वेदोंसे, दो वेदोंसे और एक वेदसे गुणा करना चाहिए । तथा पर्याप्तकालमें संभव दश योगोंसे और अपर्याप्तकालमें संभव दो योगोंसे और एक योगसे भी गुणा करना चाहिए । इस प्रकार वेद और योग-सम्बन्धी विशेषताकृत भेद तीसरे और चौथे गुणस्थानके भंगोंमें है; अन्य कोई भेद नहीं है । इसलिए ग्रन्थकारने नौ, दश आदि बन्ध-प्रत्ययोंके भंगादिका गाथाओं-द्वारा वर्णन न करके केवल अंकसंदृष्टियोंसे ही उनका वर्णन किया है ।

असंयतसम्यग्दृष्टिके नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
१	०

एए १४४।१।२।१ तेणेदे = २८८
एए १४४।२।२।२ तेणेदे = ११५२
दसजोग-भंगा = ८६४०
तिण्णि वि मिलिए जहण्णभंगा भवंति = १००८०

इन्द्रियमेकं १ कायमेकं १ कषायः ३ वेदः १ हास्यादियुग्मं २ योगः १ एते एकीकृताः ९ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।६।४ परस्परं गुणिताः १४४ । एते एकेन पुंवेदेन १ गुणितास्त एव । हास्यादियुग्मेन गुणिताः २८८ । एकेनौदारिकमिश्रकायेन १ गुणितास्त एव २८८ ।

१।१।३।१।२।१ एकीकृताः ९ भंगाः ६।६।४।२।२।२ परस्परहताः १४४ । पुंवेद-नपुंसकवेदाभ्यां २ हताः २८८ । हास्यादियुग्मेन रहिताः ५७६ । वैक्रियिकमिश्र-कार्मणाभ्यां २ हताः ११५२ ।

६।६।४ गुणिताः १४४ । वेदत्रयेण ३ गुणिताः ४३२ । हास्यादियुग्मेन २ हताः ८६४ । एते दश-भिर्योगैः १० हताः ८६४० । एते त्रयो राशयो मीलिताः जघन्यभंगाः १००८० भवन्ति ।

असंयतगुणस्थानमें नौ बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—
नपुंसकवेद और एक योगकी अपेक्षा ६×६×४ (=१४४) ×१×२×१=२८८
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा ६×६×४ (=१४४)×२×२×२=११५२
तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा ६×६×४ (=१४४)×३×२×१०=८६४०
नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्गोंका जोड़— १००८०
इस प्रकार नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग १००८० होते हैं ।

१. सं० पञ्चसं० ४,६१ । २. ४,१०२ तमे पृष्ठे शब्दशः समानोऽयं गद्यांशः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	का०	भ०
असंयतसम्यग्दृष्टिके दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको	२	०
निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—	१	१

एदेसिं भंगा—	३६०।१।२।१	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	७२०
	३६०।२।२।२	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	२८८०
	१४४।१।२।२।१	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	५७६
	१४४।२।२।२।२	एदे अण्णोण्णगुणिदा =	२३०४
दसयोग-तिवेद-भंगा—			= ३८८८०
सव्वे वि मेलिए संति—			= ४५३६०

मिश्रोक्ताः १।२।३।१।२।१ एकीकृताः १० । एतेषां भंगाः ६।१५।४ पुंवेद १ हास्यादियुग्म २ औदारिकमिश्रकाययोगैः परस्परगुणिताः ३६० । एते पुंवेदेन गुणितास्त एव ३६० । हास्यादियुग्मेन २ गुणिताः ७२० । एते औदारिकमिश्रेण १ गुणितास्त एव ७२० ।

१।२।३।१।२।१ एकीकृताः १० । [एतेषां भंगाः] ६।१५।४।२।२ परस्परेण गुणिताः ३६० । *पुंवेद-नपुंसकवेदाभ्यां २ गुणिताः ७२० । हास्यादियुग्मेन २ गुणितास्ते १४४० । एते वैक्रियिकमिश्र-कार्मणाभ्यां २ गुणिताः २८८० ।*

१।२।३।१।२।१ एकीकृताः १० । एतेषां भंगाः ६।१५।४।३।२।१० परस्परगुणिताः २१६०० ।

मिश्रोक्ताः १।२।३।१।१।२।१ एकीकृताः १० । एतेषां भंगाः ६।६।४ । पुंवेदः १ हास्यादियुग्मं २ भययुग्मं २ औदारिकमिश्रं १ परस्परगुणिताः ५७६ ।

१।१।३।१।१।२।१ एकीकृताः १० । भंगाः ६।६।४।२।२।२।२ । परस्परेण गुणिताः १४४ । पुंवेद-नपुंसकवेदाभ्यां द्वाभ्यां २ गुणिताः २८८ । एते हास्यादियुग्मेन २ गुणिताः ५७६ । भययुग्मेन २ गुणिताः ११५२ । एते वैक्रियिकमिश्र-कार्मणाभ्यां २ गुणिताः २३०४ ।

१।१।३।१।२।१।१ एकीकृताः १० भेदाः । ६।६।४।३।२।२ । यो० १० परस्परं गुणिताः १७२८० । दशप्रत्ययानां भंगाः सर्वे मिलिताः ४५३६० सन्ति ।

असंयतगुणस्थानमें दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा ६×१५×४ (= ३६०)×१×२×१ = ७२०
दो वेद और एक योगकी अपेक्षा ६×१५×४ (= ३६०)×२×२×२ = २८८०

(२) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा ६×६×४ (= १४४)×१×२×२×१ = ५७६
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा ६×६×४ (= १४४)×२×२×२×२ = २३०४

(३) तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा
दोनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग—　　२१६०० + १७२८० = ३८८८० होते हैं ।
उपर्युक्त सर्व भङ्गोंका जोड़—　　४५३६० होता है ।

इस प्रकार दशबन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग ४५३६० होते हैं ।

	का०	भ०
असंयतसम्यग्दृष्टिके ग्यारह बन्धप्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको	३	०
निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—	२	१
	१	२

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एदेसिं भंगा— ४८०।१।२।१ एदे अण्णोण्णगुणिदा = ९६०
४८०।२।२।२ एदे अण्णोण्णगुणिदा = ३८४०
३६०।१।२।२।१ एदे अण्णोण्णगुणिदा = १४४०
३६०।२।२।२।२ एदे अण्णोण्णगुणिदा = ५७६०
१४४।१।२।१ एदे अण्णोण्णगुणिदा = २८८
१४४।२।२।२ एदे अण्णोण्णगुणिदा = ११५२
सव्वे वि मेलिए संति— = ९४०८०

१।३।२।१।१।२।१ एकीकृताः ११। एतेषां भंगाः ६।२०।४। पुंवेद १ हास्यादियुग्म २ औ० मि १ परस्परगुणिताः ९६०।

१।३।३।१।१।२।१ एकीकृताः ११। एतेषां भंगाः ६।२०।४। गुणिताः ४८०। नपुंसक-पुंवेदाभ्यां २ गुणिताः ९६०। युग्मेन गुणिताः १९२०। वैक्रियिकमिश्र-कार्मणाभ्यां २ गुणिताः ३८४०।

१।३।३।१।१।२।१ एकीकृताः ११। भेदाः ६।२०।४।३।२ यो० १०। परस्परं गुणिताः २८८००।

१।२।३।१।२।१।१ एकीकृताः ११। एतेषां भंगाः ६।१५।४।१।२।२।१ परस्परं गुणिताः १४४०।

१।२।३।१।२।१।१ एकीकृताः ११। एतेषां भंगाः ६।१५।४।२।२।२।२ परस्परेण गुणिताः ५७६० भंगाः ६।१५।४ वे० ३।२।२।१० परस्परेण गुणिताः ४३२००।

१४४ पुंवेदः १।२। औ० मि० १ परस्परं गुणिताः २८८।

१४४ पुं-नपुंसकौ २।२ वै० मि० का० २ गुणिताः ११५२।

१४४ वेद ३ हास्यादि २ भय २ योगाः १० परस्परेण गुणिताः ८६४०।

एकादशप्रत्ययानां भंगाः सर्वे ९४०८० भवन्ति।

असंयतगुणस्थानमें ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × २० × ४ (=४८०) × १ × २ × १ = ९६०
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—६ × २० × ४ (=४८०) × २ × २ × २ = ३८४०

(२) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × १५ × ४(=३६०) × १ × २ × २ × १ = १४४०
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—६ × १५ × ४(=३६०) × २ × २ × २ × २ = ५७६०

(३) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × ६ × ४(=१४४) × १ × २ × १ = २८८
दो वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × ६ × ४(=१४४)२ × २ × २ = ११५२

तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा
तीनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग— २८८०० + ४३२०० + ८६४० = ८०६४०
सर्व भङ्गोंका जोड़— ९४०८०

इस प्रकार ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग ९४०८० होते हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टिके बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
४	०
३	१
२	२

एदेसिं भंगा— ३६०।१।२ एए अण्णोण्णगुणिदा = ७२०
३६०।२।२।२ एए अण्णोण्णगुणिदा = २८८०
४८०।१।२।२।१ एए अण्णोण्णगुणिदा = १९२०
४८०।२।२।२।२ एए अण्णोण्णगुणिदा = ७६८०
३६०।१।२।१ एए अण्णोण्णगुणिदा = ७२०
३६०।२।२।२ एए अण्णोण्णगुणिदा = २८८०
= १००८००
सव्वे वि मिलिया संति— = ११७६००

मिश्रोक्ताः १।४।३।१।२।१ एकीकृताः १२ । एतेषां भंगाः ६।१५।४। पुं० १।२ औ० मि० १ परस्परं गुणिताः ७२० भंगाः ।

६।१५।४।२।२।२ इन्द्रियषट्-कायभेदपञ्चदशक-कषायचतुष्केण गुणिताः ३६० । नपुंसक-पुंवेदाभ्यां २ गुणिताः ७२० । एते युग्मेन २ गुणिताः १४४० । वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगाभ्यां २ गुणिताः २८८० ।

६।१५।४ वेद ३।२।१० । एते परस्परेण गुणिताः २१६०० ।

त्रिवेद-दशयोगाश्रिता विकल्पा एते मिश्रोक्ताः १००८०० ।

मिश्रोक्ताः १।३।३।१।२।१ एकीकृताः १२ । एतेषां भंगाः ६।२०।४ । पुंवेद १।२।२ औ० मि० १ । इन्द्रियषट्क ६ कायविराधनाभेदविंशतिः २० कषायचतुष्केण ४ गुणिताः ४८० । पुंवेदेन १ गुणितास्त एव ४८० । हास्यादि २ भययुग्म २ गुणिताः ९६० । औदारिकमिश्रेण १ गुणिताश्च १९२० ।

इन्द्रियषट्कायविराधना २० कषायै ४ गुणिताः ४८० । पुं०-नपुंसकौ २।२।२ । वै० मि० का० २ परस्परेण गुणिताः ७६८० ।

४८० । वै० ३।२।१० परस्परं गुणिताः ५७६०० ।

३६०।२।२।४ गुणिताः २८८० ।

३६० । वेद ३ । २।१० गुणिताः २१६०० ।

सर्वे द्वादशप्रत्ययानां भंगाः ११७६०० ।

असंयतगुणस्थानमें बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × १५ × ४ (= ३६०) × १ × २ × १ = ७२०
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—६ × १५ × ४ (= ३६०) × २ × २ × २ = २८८०

(२) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × २० × ४ (= ४८०) × १ × २ × २ × १ = १९२०
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—६ × २० × ४ (= ४८०) × २ × २ × २ × २ = ७६८०

(३) एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × १५ × ४ (= ३६०) × १ × २ × १ = ७२०
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—६ × १५ × ४ (= ३६०) × २ × २ × २ = २८८०

तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा
तीनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग— २१६०० + ५७६०० + २१६०० = १०८०००
सर्व भंगोंका जोड़— ११७६०० होता है ।

इस प्रकार बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भंग ११७६०० होते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टिके तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीज़भूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
५	०
४	१
३	२

एदेसिं भंगा—

१४४।१।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	२८८
१४४।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	११५२
३६०।१।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	१४४०
३६०।२।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	५७६०
४८०।१।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	९६०
४८०।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	३८४०
		= ८०६४०

सव्वे वि मेलिए— = ९४०८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१।५।३।१।२।१ एकीकृताः १३ । भंगाः ६।६।४ गु० १४४ । पुंवेद १ हास्यादि २ औ० मि० १ । एवं २८८ ।

१४४ नपुंसक-पुंवेदौ २।२ । वैक्रियिकमिश्र- कार्मणद्वयं २ गुणिताः ११५२ एतेषां भंगाः ।

६।१५।४ गुणिताः ३६० । पुंवेदेन १।२।२ वैक्रियिकमिश्रेण १ परस्परेण गुणिताः १४४० ।

३६० । पुंवेद-नपुंसकाभ्यां २।२।२ वैक्रियिकमिश्र-कार्मणाभ्यां २ परस्परं गुणिताः ५७६० ।

६।२०।४ गुणिताः ४८० । पुंवेदः १।२ औदारिकमिश्रं १ परस्परं गुणिताः ६६० ।

४८० । वेद २।२।२ परस्परेण गुणिताः ३८४० ।

मिश्रोक्तत्रिवेद-दशयोगप्रत्ययविकल्पाः पूर्वोक्ताः १४४ वे० ३ हा० २ यो० १० गुणिताः ८६४० ।

पूर्वोक्ताः ३६० । वे० ३ हा० २ भ० २ यो० १० गुणिताः ४३२०० ।

पूर्वोक्ताः ४८० वे० ३ हा० २ यो० १० गुणिताः २८८०० ।

त्रयो मीलिताः ८०६४० ।

सर्वे मीलिताः त्रयोदशप्रत्ययानां विकल्पाः ६४०८० ।

असंयतगुणस्थानमें तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१)	एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—	६ × ६ × ४ (= १४४) × १ × २ × १	= २८८
	दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—	६ × ६ × ४ (= १४४) × २ × २ × २	= ११५२
(२)	एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—	६ × १५ × ४ (= ३६०) × १ × २ × २ × १	= १४४०
	दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—	६ × १५ × ४ (= ३६०) × २ × २ × २ × २	= ५७६०
(३)	एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—	६ × २० × ४ (= ४८०) × १ × २ × १	= ६६०
	दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—	६ × २० × ४ (= ४८०) × २ × २ × २	= ३८४०
	तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा		
	तीनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग—	८६४० + ४३२०० + २८८००	= ८०६४०
	सर्व भङ्गोंका जोड़—		६४०८०

इस प्रकार तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग ६४०८० होते हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टिके चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
६	०
५	१
४	२

एदेसिं भंगा—	२४।१।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	४८
	२४।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	१९२
	१४४।१।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	५७६
	१४४।२।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	२३०४
	३६०।१।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	७२०
	३६०।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	२८८०
एए भंगा—			= ४०३२०
सव्वे वि मेलिए संति—			= ४७०४०

१।६।३।१।२।१ एकीकृताः १४ । एतेषां भंगाः ६।१।४।१।२ औ० १ परस्परगुणिताः ४८ ।

२४ । पुन्नपुंसकौ २।२।२ परस्परगुणिताः १९२ ।

६।६।४।१।२।२ औदारिकमिश्रं १ परस्परं गुणिताः ५७६ ।

६।६।४।२।२।२।२ अन्योन्यगुणिताः २३०४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६।१५।४ गुणिताः ३६०।१।२।१ गुणिताः ७२० ।

३६०।२।२।२ गुणिताः २८८० ।

मिश्रोक्तत्रिवेद-दशयोगराशित्रयविकल्पाः ४०३२० ।

सर्वे मीलिताश्चतुर्दशप्रत्ययविकल्पाः ४७०४० भवन्ति ।

असंयतगुणस्थानमें चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१) { एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × १ × ४(= २४) × १ × २ × १ = ४८
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—६ × १ × ४(= २४) × २ × २ × २ = १९२

(२) { एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × ६ × ४(= १४४) × १ × २ × २ × १ = ५७६
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—६ × ६ × ४(= १४४) × २ × २ × २ × २ = २३०४

(३) { एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × १५ × ४(= ३६०) × १ × २ × १ = ७२०
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—६ × १५ × ४(= ३६०) × २ × २ × २ = २८८०

तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा तीनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग— १४४० + १७२८० + २१६०० = ४०३२०

सर्व भङ्गोंका जोड़— ४७०४०

इस प्रकार चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग ४७०४० होते हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टिके पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है--

का०	भ०
५	१
६	२

एदेसिं भंगा—	२४।१।२।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	९६
	२४।२।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	३८४
	१४४।१।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा =	२८८
	१४४।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा =	११५२
तिवेद-दसयोग भंगा—			= ११५२०
सव्वे वि मिलिया संति—			= १३४४०

१।६।३।१।१।२।१।१ एकीकृताः १५ । एतेषां भंगाः ६।१।४ गु० २४ । पुंवेदः १।२।२ । औ० मि० १ परस्परगुणिताः ९६ ।

२४ पुं० नपुं० २।२।२ वै० मि० का० २ परस्परं गुणिताः ३८४ ।

१।५।३।१।१।२।१ एकीकृताः १५ । एतेषां भंगाः ६।४।४ गुणिताः १४४ । पुंवेदः १ हास्यादि २ औ० मि० १ परस्परेण गुणिताः २८८ ।

१४४।२।२।२ परस्परं गुणिताः ११५२ ।

मिश्रोक्तत्रिवेद-दशयोगराशिद्वयप्रत्ययानां विकल्पाः ११५२० ।

सर्वे पञ्चदशप्रत्ययानां विकल्पाः १३४४० ।

असंयतगुणस्थानमें पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

(१) { एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × १ × ४(= २४) × १ × २ × २ × १ = ९६
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—६ × १ × ४(= २४) × २ × २ × २ × २ = ३८४

(२) { एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—६ × ६ × ४(= १४४) × १ × २ × १ = २८८
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—६ × ६ × ४(= १४४) × २ × २ × २ = ११५२

तीनों वेद और दश योगोंकी अपेक्षा दोनों प्रकारोंसे उत्पन्न भङ्ग— } २८८० + ८६४० = ११५२०

सर्व भङ्गोंका जोड़— १३४४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार पन्द्रह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग १३४४० होते हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टिके सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए बीजभूत कूटकी रचना इस प्रकार है—

का० भ०
६ २

एदेसिं भंगा—	२४।१।१।२।१	एए अण्णोण्णगुणिदा	=४८
	२४।२।२।२	एए अण्णोण्णगुणिदा	=१९२
	२४।३।२।१०	एए अण्णोण्णगुणिदा	=१४४०
सव्वे वि मेलिए संति—			=१६८०

१।६।३।१।१।२।२।१ एकीकृताः १६ प्रत्ययाः। एतेषां भंगाः ६।१।४ गुणिताः २४। पुंवेद १।२। औ० मि० १ परस्परं गुणिताः ४८।

२४।२।२।२ परस्परं गुणिताः १९२।

६।१।४।३।२।१० परस्परं गुणिताः १४४०।

सर्वे षोडशप्रत्ययानां प्रत्ययविकल्पाः १६८० भवन्ति।

असंयतगुणस्थानमें सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

एक वेद और एक योगकी अपेक्षा—	६×१×४(=२४)×१×२×१	=४८
दो वेद और दो योगोंकी अपेक्षा—	६×१×४(=२४)×२×२×२	=१९२
तीन वेद और दश योगोंकी अपेक्षा—	६×१×४(=२४)×३×२×१०	=१४४०
सर्व भङ्गोंका जोड़—		१६८०

इस प्रकार सोलह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग १६८० होते हैं।

अविरदस्स सव्वेवि भङ्गा—४२३३६०

अविरदगुणट्ठाणस्स भंगा समत्ता।

अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने नवादि-षोडशान्तप्रत्ययानामुत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पाश्चतुर्लक्ष-त्रयोविंशति-सहस्र-त्रिशतषष्टिः ४२३३६० भवन्ति।

इत्यविरतगुणस्थानस्य भंगाः समाप्ताः।

इस प्रकार असंयतगुणस्थानमें नौसे लेकर सोलह बन्ध-प्रत्ययों तकके सर्व भङ्गोंका प्रमाण ४२३३६० होता है। जिसका विवरण इस प्रकार है—

नौ	बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी		भङ्ग—	१००८०
दश	,,	,,	,,	४५३६०
ग्यारह	,,	,,	,,	६४०८०
बारह	,,	,,	,,	११७६००
तेरह	,,	,,	,,	६४०८०
चौदह	,,	,,	,,	४७०४०
पन्द्रह	,,	,,	,,	१३४४०
सोलह	,,	,,	,,	१६८०

असंयतसम्यग्दृष्टिके सर्व बन्ध-प्रत्ययोंके भङ्गोंका जोड़ ४२३३६० होता है।

इस प्रकार असंयतगुणस्थानके भङ्गोंका विवरण समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]इगि दुग तिग संजोए देसजयम्मि चउ पंच संजोए।
पंचेव दस य दसगं पंच य एक्कं भवंति गुणयारा ॥१८०॥

५।१०।१०।५।१।

अथ देशसंयतगुणस्थाने जघन्य-मध्यमोत्कृष्टान् अष्टकनवकादि-चतुर्दशकान्तप्रत्ययभेदान् गाथाषोडश-केनाऽऽह—['इगि दुग तिग संजोए' इत्यादि ।] ५।१०।१०।५।१ । पञ्चादीन् एकपर्यंतान् अङ्कान् संस्थाप्य तदधो हारान् एकादीन् एकोत्तरान् संस्थाप्य $\frac{5}{1}\ \frac{4}{2}\ \frac{3}{3}\ \frac{2}{4}\ \frac{1}{5}$ अत्र प्रथमहारेण १ स्वांशे ५ भक्ते लब्धं प्रत्येक-भंगाः ५ । पुनः परस्पराहतपञ्चचतुरंशोऽन्योन्यहत २० तदेक-द्विकहारेण भक्ते लब्धं द्विसंयोगभंगाः दश १० । पुनः परस्पराहत-तद्विंशतिः २० अंशे तथाकृतद्वि २ त्रि ३ हारेण भक्ते लब्धं त्रिसंयोगा दश १० । पुनस्तथाकृतषष्टिद्व्यंशे तथाकृत १२० षट्चतुर्हारेण २४ भक्ते लब्धं चतुःसंयोगाः पञ्च ५ । पुनस्तथाकृत-विंशत्यधिकैकशतैकांशे १२० तथाकृत-चतुर्विंशति-पञ्चहारेण १२० भक्ते लब्धं पञ्चसंयोग एकः १। ५।१०।१०। ५।१ मिलित्वा ३१ देशसंयमे गुणकाराः $\frac{1}{5}\ \frac{2}{10}\ \frac{3}{10}\ \frac{4}{5}\ \frac{5}{1}$ तद्यथा—

एक-द्विक-त्रिकसंयोगे चतुः-पञ्चसंयोगे च एककायसंयोगे एकैककायहिंसका भंगाः पञ्च ५ । द्विकाय-संयोगे द्विकायहिंसकाः दश १० । त्रिकायसंयोगे त्रिकायहिंसका भंगाः दश १० । चतुः-कायसंयोगे चतुः-कायहिंसका भंगाः पञ्च ५ । पञ्चसंयोगे तु युगपत्पञ्चकायहिंसको भंग एकः १ ।

एकैककायहिंसका भंगाः ५—पृथ्वी १ अप् १ तेज १ वायु १ वनस्पति १ । एवं एकैककायविराध-नायाम् ५ ।

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
द्विकायहिंसका भंगाः १०—	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज	वात
	अप्	तेज	वात	वन०	तेज	वात	वन०	वात	वन०	वन०

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
त्रिकायहिंसका भंगाः १०—	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्	अप्	अप्	तेज
	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज	वात	तेज	तेज	वात	वात
	तेज	वात	वन०	वात	वन०	वन०	वात	वन०	वन०	वन०

	१	२	३	४	५
चतुःकायहिंसका भंगाः ५—	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	पृथ्वी	अप्
	अप्	अप्	अप्	तेज	तेज
	तेज	तेज	वात	वात	वात
	वात	वन०	वन०	वन०	वन०

पञ्चकायहिंसको भंगः १ एकः—पृथ्वी अप् तेज वात वन० युगपद्वारं हिनस्ति ।

एवं [५ + १० + १० + ५ + १] ३१ भंगाः ॥१८०॥

अब देशसंयतगुणस्थानमें सम्भव उत्तरप्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

देशसंयतगुणस्थानमें संभव भङ्गोंको निकालनेके लिए एक संयोगीका गुणकार पांच, द्विसंयोगीका गुणकार दश, त्रिसंयोगीका गुणकार दश, चतुःसंयोगीका गुणकार पाँच और पंच-संयोगीका गुणकार एक है ॥१८०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—५।१०।१०।५।१।

देशसंयतके आठ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए कूट-रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
१	०

1. सं० पञ्चसं० ४, ६२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंदियमेओ काओ कोहाई विण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं जोगो अट्ठ य हवंति ते देसे ॥१८१॥

१।१।२।१।२।१। एदे मिलिया ८ ।

षण्णामिन्द्रियाणां मध्ये एकतमेन्द्रियप्रत्ययः १। त्रसवधं विना पञ्चानां कायानां मध्ये एकतमकाय-विराधकासंयमप्रत्ययः १। अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानरहितानां चतुर्णां कषायाणां मध्ये अन्यतमक्रोधादिद्वय-प्रत्ययः २। त्रयाणां वेदानां मध्ये एकतमवेदप्रत्ययः १। हास्यरतियुग्मारतिशोकयुग्मयोर्मध्ये एकतमयुग्मं २। सत्यादिमनोवचनौदारिकयोगानां नवानां मध्ये एकतमयोगोदयः १ ॥१८१॥

देशसंयतमें इन्द्रिय एक, काय एक, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन-सम्बन्धी क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये आठ बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८१॥

एदेसिं च भंगा—६।५।४।३।२।९ एदे अण्णोण्णगुणिदा ६४८० ।

१।१।२।१।२।१ एकीकृताः ८ प्रत्ययाः जघन्याः इन्द्रियषट्क ६ कायपञ्च ५ कषायचतुष्क ४ वेदत्रय ३ हास्यादियुग्म २ सत्यादियोगनवकभंगाः ६।५।४।३।२।९। एते परस्परेण गुणिताः देशसंयमजघन्याष्टकस्य प्रत्ययविकल्पाः ६४८० भवन्ति । एवं सर्वत्रापि ज्ञेयम् ।

देशसंयतमें सर्वजघन्य आठ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—६।५।४।३।२।९ इनका परस्पर गुणा करने पर ६४८० भङ्ग होते हैं।

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + १ + २ + १ = ८ ।

देशसंयतके नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको निकालनेके लिए कूट-रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
२	०
१	१

इंदिय दोण्णि य काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं जोगो णव होंति ते देसे ॥१८२॥

१।२।२।१।२।१। एदे मिलिया ९ ।

१।२।२।१।२।१ एकीकृताः नव ९ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।१०।४।३।२।९ । एते अन्योन्यगुणिताः १२९६० भंगाः स्युः ॥१८२॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये नौ बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + २ + २ + १ + २ + १ = ९ ।

इंदियमेओ काओ कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१८३॥

१।१।२।१।२।१।१ एदे मिलिया ९ ।

१।१।२।१।२।१।१ एकीकृताः ९ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।५।४।३।२।२।९ परस्परेण गुणिताः १२९६० ॥१८३॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-द्विकमेंसे एक और योग एक; ये नौ बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८३॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + १ + २ + १ + १ = ९ ।

एदेसिं च भंगा—	६।१०।४।३।२।९	एए अण्णोण्णगुणिया	= १२९६०
	६।५।४।३।२।२।९	,,	= १२९६०
एए दो वि मेलिए संति			= २५९२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतौ द्वौ राशी मीलितौ २५९२० । एते विकल्पाः सन्ति ।

देशसंयतमें नौ बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—

प्रथम प्रकार—६।१०।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२९६० भङ्ग होते हैं ।

द्वितीय प्रकार—६।५।४।३।२।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२९६० भङ्ग होते हैं ।

इन दोनोंके मिलाने पर सर्व भङ्ग २५९२० होते हैं ।

देशसंयतके दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको लानेके लिए कूट रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
३	०
२	१
१	२

इंदिय-तिण्णि य काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं जोगो दस होंति ते देसे ॥१८४॥

१।३।२।१।२।१ एदे मिलिया १० ।

१।३।२।१।२।१ एकीकृताः १० प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।१०।४।२।२।६ । अन्योन्यगुणिताः १२९६० ॥१८४॥

अथवा देशसंयतमें इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ३ + २ + १ + २ + १ = १० ।

इंदिय दोण्णि य काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१८५॥

१।२।२।१।२।१।१ एदे मिलिया १० ।

१।२।२।१।२।१।१ एकीकृताः १० प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।१०।४।३।२।२।६ गुणिताः २५९२० प्रत्ययविकल्पाः स्युः ॥१८५॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय दो, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; ये दशबन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + २ + २ + १ + २ + १ + १ = १० ।

इंदियमेओ काओ कोहाई दुण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१८६॥

१।१।२।१।२।२।१ एदे मिलिया १० ।

१।१।२।१।२।२।१ एकीकृताः प्रत्ययाः १० । एतेषां भंगाः ६।५।४।३।२।६ । एते परस्परेण गुणिताः ६४८० ॥१८६॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय एक, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विक और योग एक; ये दश बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + १ + २ + २ + १ = १० ।

एदेसिं च भंगा— ६।१०।४।३।२।६ एए अण्णोण्णगुणिदा = १२९६०
६।१०।४।३।२।२।६ एए अण्णोण्णगुणिदा = २५९२०
६।५।४।३।२।६ एए अण्णोण्णगुणिदा = ६४८०
एए सव्वे वि मिलिया— = ४५३६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एते त्रयो राशयो मीलिताः ४५३६० मध्यमदशप्रत्ययानां भंगाः भवन्ति ।

देशसंयतमें दश-बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—
प्रथम प्रकार—६।१०।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२६६० भङ्ग होते हैं।
द्वितीय प्रकार—६।१०।४।३।२।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर २५६२० भङ्ग होते हैं।
तृतीय प्रकार—६।५।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर ६४८० भङ्ग होते हैं।
दश बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग— ४५३६० होते हैं।

का०	भ०
४	१
३	१
२	२

देशसंयतके ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको लानेके लिए कूट-रचना इस प्रकार है—

इंदिय चउरो काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं जोगो एक्कारसं देसे ॥१८७॥

१।४।२।१।२।१ एदे मिलिया ११ ।

१।४।२।१।२।१ एकीकृताः ११ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।५।४।३।२।६ । एते अन्योन्यहताः ६४८० ॥१८७॥

अथवा देशसंयतमें इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ४ + २ + १ + २ + १ = ११ ।

इंदिय तिण्णि य काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्सादिदुयं एयं भयदुय एयं च एयजोगो य ॥१८८॥

१।३।२।१।२।१।१ एदे मिलिया ११ ।

१।३।२।१।२।१।१ एकीकृताः ११ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।१०।४।३।२।२।६ अन्योन्यगुणिताः २५६२० ॥१८८॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक भयद्विकमेंसे एक और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ३ + २ + १ + २ + १ + १ = ११ ।

इंदिय दोण्णि य काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१८९॥

१।२।२।१।२।२।१ एदे मिलिया ११ ।

१।२।२।१।२।२।१ एकीकृताः ११ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।१०।४।३।२।६ । एते गुणिताः १२९६० ॥१८९॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादियुगल एक, भयद्विक और योग एक; ये ग्यारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१८९॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + २ + २ + १ + + २ + २ + १ = ११ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेसिं च भंगा—	६।५।४।३।२।९	एए अण्णोण्णगुणिया	= ६४८०
	६।१०।४।३।२।२।९	,, ,,	= २५९२०
	६।१०।४।३।२।९	,, ,,	= १२९६०
सव्वे मिलिया—			= ४५३६०

एकादशप्रत्ययानां विकल्पाः सर्वे एकत्रीकृताः ४५३६० भवन्ति ।

देशसंयतमें ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—
(१) ६।५।४।३।२।९ इनका परस्पर गुणा करने पर ६४८० भङ्ग होते हैं ।
(२) ६।१०।४।३।२।२।९ इनका परस्पर गुणा करने पर २५९२० भङ्ग होते हैं ।
(३) ६।१०।४।३।२।९ इनका परस्पर गुणा करने पर १२९६९ भङ्ग होते हैं ।
ग्यारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भङ्ग— ४५३६० होते हैं ।

देशसंयतके बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको लानेके लिए कूटरचना इस प्रकार है—

का०	भ०
५	०
४	१
३	२

इंदिय पंच वि काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं जोगो बारस हवंति ते हेऊ ॥१९०॥

१।५।२।१।२।१ एदे मिलिया १२ ।

१।५।२।१।२।१ एकीकृताः १२ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।१।४।३।२।९। एते अन्योन्यगुणिताः १२९६ ॥१९०॥

अथवा देशसंयतमें इन्द्रिय एक, काय पाँच क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक और योग एक; ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१९०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ५ + २ + १ + २ + १ = १२ ।

इंदिय चउरो काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च जोगो य ॥१९१॥

१।४।२।१।२।१।१ एदे मिलिया १२ ।

१।४।२।१।२।१।१ एकीकृताः १२ । एतेषां भंगाः ६।५।४।३।२।२।९ परस्परेण गुणिताः १२९६० ॥१९१॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक; ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१९१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ४ + २ + १ + २ + १ + १ = १२ ।

इंदिय तिण्णि य काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१९२॥

१।३।२।१।२।२।१ एदे मिलिया १२ ।

१।३।२।१।२।२।१ एकीकृताः १२ प्रत्ययाः । एतेषां भंगाः ६।१०।४।३।२।९ परस्परेण गुणिताः १२९६० ॥१९२॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय तीन, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भययुगल और योग एक; ये बारह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१९२॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ३ + २ + १ + २ + २ + १ = १२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेसिं च भंगा— ६।१।४।३।२।६ एए अण्णोण्णगुणिए = १२९६
,, ६।५।४।३।२।२।६ ,, ,, = १२९६०
,, ६।१०।४।३।२।६ ,, ,, = १२९६०
एए सव्वे वि मेलिए = २७२१६

एते सर्वे त्रयो राशयो मीलिताः २७२१६ ।

देशसंयत गुणस्थानमें बारह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—
(१) ६।१।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२९६ भङ्ग होते हैं ।
(२) ६।५।४।३।२।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२९६० ,, होते हैं ।
(३) ६।१०।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर १२९६० ,, होते हैं ।
इन सबके मिलाने पर सर्व भङ्ग २७२१६ ,, होते हैं ।

देशसंयतके तेरह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको लानेके लिए कूट-रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
५	१
४	२

इंदिय पंच वि काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च तेरसं जोगो ॥१९३॥

१।५।२।१।२।१।१ एदे मिलिया १३ ।

१।५।२।१।२।१।१ एकीकृताः १३ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ६।१।४।३।२।२।६ । एते अन्योन्यगुणिताः २५९२ ॥१९३॥

अथवा देशसंयतमें इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भयद्विकमेंसे एक और योग एक, ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१९३॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ५ + २ + १ + २ + १ + १ = १३ ।

इंदिय चउरो काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एगजोगो य ॥१९४॥

१।४।२।१।२।२।१ एदे मिलिया १३ ।

१।४।२।१।२।२।१ एकीकृताः १३ । एतेषां भङ्गाः ६।१५।४।३।२।६ । गुणिताः ६४८० ॥१९४॥

अथवा इन्द्रिय एक, काय चार,, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये तेरह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१९४॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + ४ + २ + १ + २ + २ + १ = १३ ।

एदेसिं च भंगा— ६।१।४।३।२।२।६ एए अण्णोण्णगुणिए = २५९२
६।१५।४।३।२।६ ,, ,, = ६४८०
एए दो वि मेलिए संति— = ९०७२

एतौ द्वौ राशी मीलितौ ९०७२ ।

देशसंयतमें बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग इस प्रकार उत्पन्न होते हैं—
(१) ६।१।४।३।२।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर २५९२ भङ्ग होते हैं ।
(२) ६।१५।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर ६४८० भङ्ग होते हैं ।
इन दोनोंके मिलानेपर सर्व भङ्ग ९०७२ होते हैं ।

देशसंयतके चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंको लानेके लिए कूट-रचना इस प्रकार है—

का०	भ०
५	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंदिय पंच वि काया कोहाई दोण्णि एयवेदो य ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं एयजोगो य ॥१६५॥

१।५।२।१।२।२।१ एदे मिलिया १४ ।

१।५।२।१।२।२।१ एकीकृताः १४ । एतेषां भङ्गाः ६।१।४।३।२।६ । एते परस्परं गुणिताः संयतासंयतस्योत्कृष्टभङ्गाः १२९६ ॥१६५॥

अथवा देशसंयतगुणस्थानमें इन्द्रिय एक, काय पाँच, क्रोधादि कषाय दो, वेद एक, हास्यादि युगल एक, भय-युगल और योग एक; ये चौदह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६५॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है--१ + ५ + २ + १ + २ + २ + १ = १४ ।

एदेसिं च भंगा--६।१।४।३।२।६ एए दो वि अण्णोण्णगुणिया उक्कस्सभंगा हवंति संजयासंजयस्स १२९६ । सव्वे वि मिलिया १६०७०४ ।

देससंजदस्स भंगा समत्ता ।
सर्वेऽपि जघन्यादयो मीलिताः १६०७०४ ।
देशसंयतगुणस्थानस्य भङ्गविकल्पाः समाप्ताः ।

६।१।४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर संयतासंयतके उत्कृष्ट चौदह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्ग १२९६ होते हैं । तथा उपर्युक्त सर्व भङ्ग मिलकर १६०७०४ होते हैं । जिनका विवरण इस प्रकार है—

आठ	बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी		सर्व भङ्ग	६४८०
नौ	,,	,,	,,	२५९२०
दश	,,	,,	,,	४५३६०
ग्यारह	,,	,,	,,	४५३६०
बारह	,,	,,	,,	२७२१६
तेरह	,,	,,	,,	९०७२
चौदह	,,	,,	,,	१२९६
सर्व भङ्गोंका जोड़--				१६०७०४

इस प्रकार देशसंयतके भङ्गोंका विवरण समाप्त हुआ ।

अब प्रमत्तसंयतके सम्भव बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भङ्गोंका निरूपण करते हैं--

[1]आहारजुयलजोगं पडुच्च पुरिसो हवेज्ज णो इयरा ।
अपसत्थवेदउदया जायइ णाहारलद्धि वयणाओ ॥१६६॥

अथ प्रमत्तस्थाने जघन्यपञ्चकाद्युत्कृष्टसप्तान्तप्रत्ययभेदान् गाथाचतुष्केणाऽऽह--['आहारजुयलजोगं' इत्यादि ।] षष्ठे प्रमत्ते आहारकाऽऽहारकमिश्रयोगयुगलं प्रतीत्याऽऽश्रित्य पुंवेदो भवेत् । प्रमत्तसंयतानां पुंवेदोदये सति आहारकद्वयं भवति । इतरस्त्री-नपुंसकवेदोदयात् आहारकलब्धिर्न जायते इति वचनात् ॥१६६॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें आहारककाययोगद्विककी अपेक्षा केवल एक पुरुषवेद होता है, इतर दोनों वेद नहीं होते हैं । क्योंकि, 'अप्रशस्तवेदके उदयमें आहारकऋद्धि नहीं उत्पन्न होती है' ऐसा आगमका वचन है ॥१६६॥

प्रमत्तसंयतके सम्भव बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंगोंको लानेके लिए कूट-रचना इस प्रकार है—

भ
०
१
२

1, सं० पञ्चसं० ४, ६३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजलणं एयदरं एयदरं चेव तिण्णि वेदाणं।
हस्साइदुयं एयं जोगो पंच हवंति ते हेऊ ॥१६७॥

१।१।२।१ एदे मिलिया ५।

चतुर्णां कषायाणां मध्ये एकतरः संज्वलनकषायप्रत्ययः १। त्रयाणां वेदानां मध्ये एकतरवेदोदयः १। हास्य-रतियुग्माऽरतिशोकयुग्मयोर्मध्ये एकतरयुग्मोदयः २। सत्यमनोयोगाद्यौदारिकयोगानां नवानां मध्ये एकतरयोगोदयः। १।१।२।१। एते एकीकृताः ५। एतेषां ५ प्रत्ययानां भङ्गाः ४।३।२।९। आहारकद्वयापेक्षया भङ्गाः ४। पुंवेदः १।२ आहारकद्वयं परस्परद्वयभङ्गराशिं गुणयित्वा २१६।१६ ॥१६७॥

प्रमत्तसंयतमें कोई एक संज्वलन कषाय, तीन वेदोंमें से कोई एक वेद, हास्यादि एक युगल और कोई एक योग, इस प्रकार पाँच बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + १ = ५।

एदेसिं च भंगा—४।३।२।९ एए अण्णोण्णगुणिए = २१६
४।१।२।२ ,, ,, = १६
एए दोण्णि वि मिलिए = २३२

राशिद्वयं पिण्डीकृतं २३२।

प्रमत्तसंयतके पाँच बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंग इस प्रकार हैं—

(१) ४।३।२।९ इनका परस्पर गुणा करने पर २१६ भंग होते हैं।
(२) ४।१।२।२ इनका परस्पर गुणा करने पर १६ भंग होते हैं।

उक्त दोनों भंग मिला देने पर प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें २३२ भंग पाँच बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी होते हैं।

अब प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें छह बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंग कहते हैं—

संजलण य एयदरं एयदरं चेव तिण्णि वेदाणं।
हस्साइदुयं एयं भयदुय एयं च छच्च जोगो य ॥१६८॥

१।१।२।१।१ एदे मिलिया ६।

१।१।२।१।१ एकीकृताः ६। एतेषां भङ्गाः ४।३।२।२।९। आहारकद्वयापेक्षया ४।१।२।२।२ अन्योन्यगुणिताः ४३२।३२ ॥१६८॥

कोई एक संज्वलनकषाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्यादि एक युगल, भयद्विकमेंसे कोई एक और एक योग; ये छह बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१६८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + १ + १ = ६।

एदेसिं च भंगा—४।३।२।२।९ एए अण्णोण्णगुणिए = ४३२
४।१।२।२।२ ,, ,, = ३२
एए दो वि मेलिए मज्झिमभंगा भवंति = ४६४

एतौ द्वौ राशी मीलिते मध्यमप्रत्ययभङ्गविकल्पाः ४६४ भवन्ति।

इनके भंग इस प्रकार हैं—

(१) ४।३।२।२।९ इनका परस्पर गुणा करने पर ४३२ भंग होते हैं।
(२) ४।१।२।२।२ इनका परस्पर गुणा करने पर ३२ भंग होते हैं।
ये दोनों ही मिलकर मध्यम भंग ४६४ होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सात बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी भंग कहते हैं—

संजलण य एयदरं एयदरं चेव तिण्णि वेदाणं ।
हस्साइदुयं एयं भयजुयलं सत्त जोगो त्ति ॥१९९॥

१।१।२।२।१ । एदे मिलिया ७ ।

१।१।२।२।१ एकीकृताः ७ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ४।३।२।९ । आहारकद्वयापेक्षया ४।१।२।२ परस्परं गुणिताः २१६।१६ ॥१९९॥

कोई एक संज्वलन कषाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्यादि एक युगल, भययुगल और एक योग, इस प्रकार सात बन्ध-प्रत्यय होते हैं ॥१९९॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + २ + २ + १ = ७

एदेसिं च भंगा—४।३।२।९ एए अण्णोण्णगुणिए = २१६
४।१।२।२ ,, ,, = १६
दो वि मेलिए उक्कस्सभंगा भवंति पमत्तस्स = २३२
सव्वे भंगा (२३२ + ४६४ + २३२ =) ९२८
पमत्तसंजदस्स भंगा समत्ता ।

राशिद्वयमीलितं प्रमत्तसंयतस्योत्कृष्टभङ्गविकल्पाः २३२ भवन्ति ।
पञ्चकादयः सर्वे एकीकृताः ९२८ प्रमत्तस्य भङ्गाः स्युः ।
इति प्रमत्तगुणस्थानभङ्गाः समाप्ताः ।

इनके भंग इस प्रकार हैं—

(१) ४।३।२।९ इनका परस्पर गुणा करने पर २१६ भंग होते हैं ।
(२) ४।१।२।२ इनका परस्पर गुणा करने पर १६ भंग होते हैं ।

उक्त दोनों भंगोंके मिलाने पर प्रमत्तसंयतके उत्कृष्ट भंग २३२ होते हैं ।
इस प्रकार सर्व भंग ९२८ होते हैं । जिनका विवरण इस प्रकार है—

पाँच बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भंग—	२३२
छह ,, ,, ,,	४६४
सात ,, ,, ,,	२३२
सर्व भङ्गोंका जोड़—	९२८

इस प्रकार प्रमत्तसंयतगुणस्थानके भंगोंका विवरण समाप्त हुआ ।

अब अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थानके बन्ध-प्रत्यय और उनके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]जे पच्चया वियप्पा भणिया णियमा पमत्तविरदम्मि ।
ते अप्पमत्तऽपुव्वे आहारदुगूणया णेया ॥२००॥

अथाप्रमत्ताऽपूर्वकरणयोः प्रत्ययभेदान् प्राऽऽह—['जे पच्चया वियप्पा' इत्यादि ।] प्रमत्तविरते ये प्रत्ययविकल्पाः पञ्चादिसप्तान्तोक्ताः प्रत्ययभङ्गाः भणितास्त एव प्रत्ययाः भङ्गाः अप्रमत्ताऽपूर्वकरणगुणस्थानयोराहारकद्वयोना ज्ञेया नियमात् ॥२००॥

प्रमत्तविरतगुणस्थानमें जो बन्ध-प्रत्यय और उनके भंग कहे हैं, नियमसे वे ही अप्रमत्तविरत और अपूर्वकरणमें आहारकद्विकके विना जानना चाहिए ॥२००॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४,९५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४।३।२।६ एए अण्णोण्णगुणिए भंगा २१६
४।३।२।२।६ ,, ,, मज्झिम ,, ४३२
४।३।२।६ ,, ,, उक्कस्स ,, २१६ भवंति ।
सव्वे भंगा (२१६ + ४३२ + २१६) = ८६४
अप्पमत्तापुव्वसंजदाणं भंगा समत्ता ।

संज्वलनैकतरः १ वेदैकतरः १ हास्यादियुग्मैकतरं २ नवयोगानां मध्ये एकतमयोगः १।१।२।१ एकीकृताः ५ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ४।३।२।६ । एते परस्परं गुणिताः २१६ जघन्यप्रत्ययभङ्गाः स्युः । १।१।२।१।१ एकीकृताः ६ प्रत्ययाः । एतेषां भङ्गाः ४।३।२।२।६ । एते अन्योन्यगुणिता मध्यमप्रत्ययभङ्गाः ४३२ भवन्ति । १।१।२।२।१ एकीकृताः ७ । एतेषां भङ्गाः ४।३।२।६ । एते अन्योन्यगुणिताः उत्कृष्टभङ्गाः २१६ भवन्ति । सर्वे जघन्याद्येकीकृताः ८६४ स्युः । अप्रमत्तस्य प्रत्ययभङ्गाः ८६४ । अपूर्वकरणस्य प्रत्ययभङ्गाः ८६४ ।

इत्यप्रमत्ताऽपूर्वकरणयोः प्रत्ययभङ्गाः समाप्ताः ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंके भंग इस प्रकार हैं—

(१) जघन्य भंग—४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर २१६ भंग होते हैं ।
(२) मध्यम भंग—४।३।२।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर ४३२ भंग होते हैं ।
(३) उत्कृष्ट भंग—४।३।२।६ इनका परस्पर गुणा करने पर २१६ भंग होते हैं ।
इस प्रकार उक्त सर्व भङ्गोंका जोड़ ८६४ होता है ।

अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थानके भङ्गोंका विवरण समाप्त हुआ ।

अब नवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके बन्ध-प्रत्यय और उनके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]संजलण-तिवेदाणं णवजोगाणं च होइ एयदरं ।
संढूणदुवेदाणं एयदरं पुरिसवेदो य ॥२०१॥

१।१।१ एए मिलिया ३ ।

अनिवृत्तिकरणे प्रत्ययभेदान् गाथाद्वयेनाऽऽह—['संजलणतिवेदाणं' इत्यादि ।] अनिवृत्तिकरणस्य सवेदस्य प्रथमे भागे चतुर्णां संज्वलनकषायाणां मध्ये एकतरकषायोदयः प्रत्ययः १ । त्रयाणां वेदानां मध्ये एकतरवेदोदयः १ । नवानां योगानां मध्ये एकतरयोगोदयः १।१।१।१ । एकीकृताः प्रत्ययाः ३ ॥२०१॥

नवें गुणस्थानके सवेद भागमें चारों संज्वलन, तीनों वेद और नव योग, इनमेंसे कोई एक-एक, इस प्रकार तीन बन्ध-प्रत्यय होते हैं । अथवा नपुंसक वेदको छोड़कर शेष दो वेदोंमेंसे कोई एक वेद, अथवा केवल पुरुषवेद होता है ॥२०१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१ + १ + १ = ३

एदेसिं च भंगा—४।३।६ एए उक्कस्सभंगा भवंति १०८ ।
४।२।६ ,, ,, ,, ७२ ।
४।१।६ ,, ,, ,, ३६ ।

एतेषां भङ्गाः ४।३।६ । परस्परं गुणिताः १०८ । एते उत्कृष्टप्रत्ययभङ्गाः प्रथमे भागे भवन्ति । तद्द्वितीयभागे षण्ढवेदोनयोः स्त्री-पुंवेदयोर्मध्ये एकतरोदयः १ । १।१।१ एकीकृताः ३ । एतेषां भङ्गाः ४।२।६ अन्योन्यगुणिताः ७२ । एते उत्कृष्टभङ्गाः अनिवृत्तिकरणस्य द्वितीयभागे स्युः । तत्तृतीयभागे पुंवेदोदय एक एव । १।१।१ एकीकृताः ३ । एतेषां भङ्गाः ४।१।६ परस्परगुणिताः ३६ उत्कृष्टभङ्गाः स्युः ।

1. सं० पञ्चसं० ४,६६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिवृत्तिकरण-सवेद्भागके भङ्ग इस प्रकार होते हैं—
(१) ४।३।९ इनका परस्पर गुणा करने पर उत्कृष्ट भङ्ग १०८ होते हैं।
(२) ४।२।९ इनका परस्पर गुणा करने पर उत्कृष्ट भङ्ग ७२ होते हैं।
(३) ४।१।९ इनका परस्पर गुणा करने पर उत्कृष्ट भङ्ग ३६ होते हैं।
उक्त सर्व भंगोंका जोड़— २१६ होता है।

[1]चदुसंजलणणवण्हं जोगाणं होइ एयदर दो ते।
कोहूणमाणवज्जं मायारहियाण एगदरगं वा[†] ॥२०२॥

१।१ एए मिलिया जहण्णपच्चया दोण्णि हवंति २।

अनिवृत्तिकरणस्य अवेदस्य चतुर्थे भागे चतुर्णां संज्वलनकषायाणां मध्ये एकतरकषायोदयः १। नवानां योगानां मध्ये एकतरयोगोदयः १। इति द्वौ २ जघन्यौ प्रत्ययौ। १।१ एतौ ॥२०२॥

नवें गुणस्थानके अवेद भागमें चारों संज्वलनोंमेंसे कोई एक कषाय, तथा नव योगोंमेंसे कोई एक योग; ये दो बन्ध-प्रत्यय होते हैं। अथवा क्रोधको छोड़कर शेष तीनमेंसे, मानको छोड़कर शेष दोमेंसे एक और मायाको छोड़कर केवल लोभ-संज्वलन इस प्रकार एक कषाय होती है ॥२०२॥

एदेसिं च भंगा—४।९	एए अण्णोण्णगुणिए		= ३६।
३।९	,,	,,	= २७।
२।९	,,	,,	= १८।
१।९	,,	,,	= ९।

एवमणियट्टिस्स भंगा ३०६।

अणियट्टिसंजदस्स भंगा समत्ता।

तयोर्भंगौ ४।९ परस्परेण गुणितौ ३६। क्रोधोने संज्वलनक्रोध-रहिते तत्पञ्चमे भागे ३।९। गुणितौ २७। संज्वलनमानवर्जिते तत्षष्ठे भागे २।९। अन्योन्यगुणितौ १८। वा अथवा माया-रहितलोभोदयः एकतरः, तदा १।९। अन्योन्यगुणितौ ९। एते सर्वे मीलिताः ३०६ उत्तरोत्तरप्रत्ययविकल्पाः अनिवृत्तिकरणे भवन्ति।

इत्येवमनिवृत्तिकरणस्य भंगाः समाप्ताः।

इस प्रकार एक संज्वलन कषाय और एक योग, ये दो जघन्य बन्ध-प्रत्यय होते हैं।
इनके भंग इस प्रकार हैं—
४।९ इनका परस्पर गुणा करने पर ३६ भंग होते हैं।
३।९ इनका परस्पर गुणा करने पर २७ भंग होते हैं।
२।९ इनका परस्पर गुणा करने पर १८ भंग होते हैं।
१।९ इनका परस्पर गुणा करने पर ९ भंग होते हैं।

इस प्रकार दो बन्ध-प्रत्यय-सम्बन्धी सर्व भंगोंका जोड़ ९० होता है।

तीन प्रत्यय-सम्बन्धी २१६ और दो प्रत्यय-सम्बन्धी ९० इनके मिलाने पर नवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें सर्व भंग ३०६ होते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ४,६७।
† ब च.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब सूक्ष्मसाम्परायादि शेष गुणस्थानोंके बन्ध-प्रत्यय और उनके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]सुहुमम्मि सुहुमलोहं णवण्ह जोयाण तिसु एयदरं ।
जोगम्मि य सत्तण्हं भणिया तिविहा वि पच्चय-वियप्पा ॥२०३॥

सू १।१ एए २।१।६ उप० १।१ खीण० १।६ सयो० १।७ एए सव्वे मेलिया ३४ ।
सुहुमसंपरायसंजदस्स सेसाणं च भंगा समत्ता ।

सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मलोभोदय एक एव १ । त्रिषु गुणस्थानेषु सूक्ष्मसाम्परायोपशान्तकषाय-क्षीणकषायेषु नवानां योगानां मध्ये एकतरयोगोदयः १ । योगः १ । एकीकृतौ २ । तयोर्भङ्गौ १।६ अन्योन्य-गुणितौ तावेव ६ । उपशान्तकषाये नवानां योगानां मध्ये एकतरयोगोदयः १ । तद्भङ्गाः ६ । गुणिता नवैव ६ । क्षीणकषाये नवानां योगानां मध्ये एकतरयोगोदयः १ । तद्भङ्गाः ६ । गुणिता नवैव ६ । सयोगिनि सयोगकेवलिगुणस्थाने सप्तानां योगानां मध्ये एकतर योगोदयः १ । तद्भङ्गाः ७ । गुणिताः सप्तैव ७ । इत्येवं [त्रिषु] गुणस्थानेषु त्रिविधाः प्रत्ययविकल्पाः भणिताः जघन्यमध्यमोत्कृष्टा आस्रवभङ्ग-भेदाः कथिताः ॥२०३॥

इति त्रयोदशगुणस्थानेषु प्रत्ययविकल्पाः समाप्ताः ।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें एक सूक्ष्म लोभकषाय और नव योगोंमेंसे कोई एक योग ये दो बन्ध-प्रत्यय होते हैं। उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानमें नौ योगोंमेंसे कोई एक योगरूप एक ही बन्ध-प्रत्यय होता है। सयोगिकेवली गुणस्थानमें सात योगोंमेंसे कोई एक योगरूप एक ही बन्ध-प्रत्यय होता है। इस प्रकार इन गुणस्थानोंमें तीन प्रकारके प्रत्यय-विकल्प कहे गये हैं ॥२०३॥

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें २ × १ × ६ = १८ भंग होते हैं।
क्षीणकषाय गुणस्थानमें १ × ६ = ६ भंग होते हैं।
सयोगकेवली गुणस्थानमें १ × ७ = ७ भंग होते हैं।
उक्त गुणस्थानोंके सर्व भंग मिलकर ३४ होते हैं।

अब आठों कर्मोंके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हुए सबसे पहले ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मके विशेष बन्ध-प्रत्यय बतलाते हैं—

[मूलगा० १५][2]पडिणीयमंतराए उपघाए तप्पदोस णिण्हवणे ।
आवरणदुअं भूओ बंधइ अच्चासणाए य[1] ॥२०४॥

अथ प्रत्ययोदयकार्यंजीवपरिणामानां ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मबन्धकारणत्वप्रतिपत्तिं गाथात्रयोदश-केनाऽऽह—['पडिणीयमंतराए' इत्यादि ।] श्रुतधरादिषु अविनयवृत्तिः प्रत्यनीकं प्रतिकूलतेत्यर्थः १ । ज्ञानविच्छेदकरणमन्तरायः २ । मनसा वचनेन वा प्रशस्तज्ञानदूषणमुपघातः ३ । तत्त्वज्ञाने हर्षाभावः, तस्य मोक्षसाधनस्य कीर्त्तने कृते सति कस्यचिदनभिव्याहारतोऽन्तःपैशुन्यं वा प्रद्वेषः ४ । कुतश्चित्कारणाज्जानन्नपि एतत्पुस्तकमस्मत्पार्श्वे नास्ति, एतच्छ्रुतमहं न वेद्मीति व्यपलपनं अप्रसिद्धगुरून् अपलप्य प्रसिद्धगुरुकथनं वा निह्नवः ५ । कायवचनाभ्यामननुमननं कायेन वाचा वा परप्रकाश्यज्ञानस्य वर्जनं वा इत्याऽऽसादनम् ६ । एतेषु षट्सु सत्सु जीवो ज्ञानावरणदर्शनावरणद्वयं भूयो बध्नाति प्रचुरवृत्त्या स्थित्यनुभागौ बध्नातीत्यर्थः । ते षडपि तद्-द्वयस्य युगपद् बन्धकारणानि ॥२०४॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ६८-६६ । 2. ४, ७० ।

१. शतक० १६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान-दर्शन और उनके साधनोंमें प्रतिकूल आचरण, अन्तराय, उपघात, प्रदोष और निह्नव करनेसे, तथा असातना करनेसे यह जीव आवरणद्विक अर्थात् ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मका प्रचुरतासे बन्ध करता है ॥२०४॥

विशेषार्थ—ज्ञानके, ज्ञानियोंके और ज्ञानके साधनोंके प्रतिकूल आचरण करनेसे, उनमें विघ्न करनेसे, उनका मूलसे घात करनेसे, उनमें दोष लगाने और ईर्ष्या करनेसे, उनका निह्नव (निषेध) और असातना (विराधना) करनेसे, अकालमें स्वाध्याय करनेसे, कालमें स्वाध्याय नहीं करनेसे, स्वयं संक्लेश करनेसे, दूसरेको संक्लेश उत्पन्न करनेसे, तथा दूसरे प्राणियोंको पीड़ा पहुँचानेसे ज्ञानावरण कर्मका भारी आस्रव होता है अर्थात् उनका स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध भारी परिमाणमें होता है। इसी प्रकार दर्शनगुण, उसके धारक और साधनोंके विषयमें प्रतिकूल आचरण करनेसे, विघ्न करनेसे उपघात, प्रदोष, निह्नव और असातना करनेसे, तथा आलसी जीवन बितानेसे, विषयोंमें मग्न रहनेसे, अधिक निद्रा लेनेसे, दूसरेकी दृष्टिमें दोष लगानेसे, दृष्टिके साधन उपनेत्र (चश्मा) आदिके चुरा लेने या फोड़ देनेसे और प्राणिवधादि करनेसे दर्शनावरणकर्मका तीव्र स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है।

अब वेदनीयकर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १६][1]भूयाणुकंप-वय-जोग उज्जओ* खंति-दाण-गुरुभत्तो।
बंधइ सायं भूओ विवरीओ बंधए इयरं[1] ॥२०५॥

गतौ कर्मोदयाद् भवन्तीति भूताः प्राणिनः, तेषु प्राणिषु अनुकम्पा दया १। व्रतानि हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिः २। योगः समाधिः, धर्मध्यान-शुक्लध्यानम् ३ तैर्युक्तः, क्रोधादिनिवृत्तिलक्षणया क्षान्त्या क्षमया, चतुर्विधदानेन, पञ्चगुरुभक्त्या च सम्पन्नः। स जीवः सातं सातावेदनीयं सुखरूपकर्मतीव्रानुभागं भूयो बध्नाति। तद्विपरीतस्तस्मादसातं असातावेदनीयं कर्म बध्नाति ॥२०५॥

प्राणियों पर अनुकम्पा करनेसे, व्रत-धारण करनेमें उद्यमी रहनेसे तथा उनके धारण करनेसे, क्षमा धारण करनेसे, दान देनेसे, तथा गुरुजनोंकी भक्ति करनेसे सातावेदनीय कर्मका तीव्र बन्ध होता है। और इनसे विपरीत आचरण करनेसे असातावेदनीय कर्मका तीव्र बन्ध होता है ॥२०५॥

विशेषार्थ—सर्व जीवों पर दया करनेसे, धर्ममें अनुराग रखनेसे, धर्मके आचरण करनेसे, व्रत, शील और उपवासके सेवनसे, क्रोध नहीं करनेसे, शील, तप और संयममें निरत व्रती जनोंको प्रासुक वस्तुओंके दान देनेसे, बाल, वृद्ध, तपस्वी और रोगी जनोंकी वैयावृत्य करनेसे, आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा माता, पिता और गुरुजनोंकी भक्ति करनेसे, सिद्धायतन और चैत्य-चैत्यालयोंकी पूजा करनेसे, मन, वचन और कायको सरल एवं शान्त रखनेसे सातावेदनीय कर्मका तीव्र बन्ध होता है। प्राणियोंपर क्रूरतापूर्वक हिंसक भाव रखने और तथैव आचरण करनेसे, पशु-पक्षियोंका वध-बन्धन, छेदन-भेदन और अंग-उपांगादिके काटनेसे, उन्हें बधिया (नपुंसक) करनेसे, शारीरिक और मानसिक दुःखोंके उत्पादनसे, तीव्र अशुभ परिणाम रखनेसे, विषय-कषाय-बहुल प्रवृत्ति करनेसे, अधिक निद्रा लेनेसे, तथा पंच पापरूप आचरण करनेसे तीव्र असातावेदनीय कर्मका बन्ध होता है।

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ७१-७३।

१. शतक० १७।

*ब उज्जअं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मोहनीय कर्मके भेदोंमेंसे पहले दर्शनमोहके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १७][1]अरहंत-सिद्ध-चेइय-तव-सुद-गुरु-धम्म-संघपडिणीओ।
बंधइ दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण[1] ॥२०६॥

यो जीवोऽर्हत्सिद्ध-चैत्य-तपो-गुरु-श्रुत-धर्म-संघप्रतिकूलः स तद्दर्शनमोहनीयं बध्नाति येनोदयागतेन जीवोऽनन्तसंसारी स्यात् ॥२०६॥

अरहंत, सिद्ध, चैत्य, तप, श्रुत, गुरु, धर्म और संघके अवर्णवाद करनेसे, जीव दर्शन-मोह कर्मका बन्ध करता है, जिससे कि वह अनन्तसंसारी बनता है ॥२०६॥

विशेषार्थ—जिसमें जो अवगुण नहीं है, उसमें उसके निरूपण करनेको अवर्णवाद कहते हैं। वीतरागी अरहंतोंके भूख, प्यासकी बाधा बताना, रोगादिकी उत्पत्ति कहना, सिद्धोंका पुनरागमन कहना, तपस्वियोंमें दूषण लगाना, हिंसामें धर्म बतलाना, मद्य मांस, मधुके सेवनको निर्दोष कहना, निर्ग्रन्थ साधुको निर्लज्ज और गन्दा कहना, उन्मार्गका उपदेश देना, सन्मार्गके प्रतिकूल प्रवृत्ति करना, धर्मात्मा जनोंमें दोष लगाना, कर्म-मलीमस असिद्धजनोंको सिद्ध कहना, सिद्धोंमें असिद्धत्वकी भावना करना, अदेव या कुदेवोंको देव बतलाना, देवोंमें अदेवत्व प्रकट करना, असर्वज्ञ-को सर्वज्ञ और सर्वज्ञको असर्वज्ञ कहना, इत्यादि कारणोंसे संसारके बढ़ानेवाले और सम्यक्त्वका घात करनेवाले दर्शनमोहनीयकर्मका तीव्र बन्ध होता है यह कर्म सर्व कर्मोंमें प्रधान है। इसे ही कर्म-सम्राट् या मोहराज कहते हैं और उसके तीव्रबन्धसे जीवको संसारमें अनन्तकाल तक परिभ्रमण करना पड़ता है।

अब मोहनीयकर्मके दूसरे भेद चारित्रमोहके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १८][2]तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणओ रायदोससंसत्तो।
बंधइ चरित्तमोहं दुविहं पि चरित्तगुणघादी[2] ॥२०७॥

यस्तीव्रकषायनोकषायोदययुतः बहुमोहपरिणतः रागद्वेषसंसक्तः चारित्रगुणविनाशनशीलः, स जीवः कषाय-नोकषायभेदं द्विविधमपि चारित्रमोहनीयं बध्नाति ॥२०७॥

तीव्रकषायी, बहुमोहसे परिणत और राग-द्वेषसे संयुक्त जीव चारित्रगुणके घात करनेवाले दोनों ही प्रकारके चारित्रमोहनीयकर्मका बन्ध करता है ॥२०७॥

विशेषार्थ—चारित्रमोहनीय कर्मके दो भेद हैं—कषायवेदनीय और अकषायवेदनीय। राग-द्वेषसे संयुक्त तीव्र कषायी जीव कषायवेदनीयकर्मका और बहुमोहसे परिणत जीव नोकषाय-वेदनीयकर्मका बन्ध करता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तीव्र क्रोधसे परिणत जीव क्रोधवेदनीयकर्मका बन्ध करता है। इसी प्रकार तीव्र मान, माया और लोभसे परिणत जीव मान, माया और लोभवेदनीयकर्मका बन्ध करता है। तीव्र रागी, अतिमानी, ईर्ष्यालु, अलीक-भाषी, कुटिलाचरणी और पर-स्त्री-रत जीव स्त्रीवेदका बन्ध करता है। सरल व्यवहार करनेवाला मन्दकषायी, मृदुस्वभावी, ईर्ष्या-रहित और स्वदार-सन्तोषी जीव पुरुषवेदका बन्ध करता है। तीव्रक्रोधी, पिशुन, पशुओंका बध-बन्धन और छेदन-भेदन करनेवाला, स्त्री और पुरुष दोनोंके साथ अनंगक्रीडा करनेवाला, व्रत, शील और संयम-धारियोंके साथ व्यभिचार करनेवाला, पंचेन्द्रियोंके विषयोंका तीव्र अभिलाषी, लोलुप जीव नपुंसकवेदका बन्ध करता है। स्वयं हँसने

1. सं० पञ्चसं० ४, ७४। 2. ४, ७५।

१. शतक० १८। २. शतक० १९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाला, दूसरोंको हँसानेवाला, मनोरंजनके लिए दूसरोंकी हँसी उड़ानेवाला विनोदी स्वभावका जीव हास्यकर्मका बन्ध करता है। स्वयं शोक करनेवाला, दूसरोंको शोक उत्पन्न करनेवाला, दूसरोंको दुखी देखकर हर्षित होनेवाला जीव शोककर्मका बन्ध करता है। नाना प्रकारके क्रीड़ा-कुतूहलोंके द्वारा स्वयं रमनेवाला और दूसरोंको रमानेवाला, दूसरोंको दुखसे छुड़ानेवाला और सुख पहुँचानेवाला जीव रतिकर्मका बन्ध करता है। दूसरोंके आनन्दमें अन्तराय करनेवाला, अरति उत्पन्न करनेवाला और पापी जनोंका संसर्ग रखनेवाला जीव अरतिकर्मका बन्ध करता है। स्वयं भयसे व्याकुल रहनेवाला और दूसरोंको भय उपजानेवाला जीव भय कर्मका बन्ध करता है। साधुजनोंको देखकर ग्लानि करनेवाला, दूसरोंको ग्लानि उपजानेवाला और दूसरेकी निन्दा करनेवाला जीव जुगुप्सा कर्मका बन्ध करता है। इस प्रकार चारित्र मोहकर्मकी पृथक्-पृथक् प्रकृतियोंका आस्रव करके बन्धप्रत्ययोंका निरूपण किया। अब सामान्यसे चारित्रमोहके बन्धप्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—जो व्रत-शील-सम्पन्न, धर्मगुणानुरागी, सर्वजगद्वत्सल साधुजनोंकी निन्दा-गर्हा करता है, धर्मात्माजनोंके धर्म-सेवनमें विघ्न करता है, उनमें दोष लगाता है, मद्य, मांस मधुके सेवनका प्रचार करता है, दूसरोंको कषाय और नोकषाय उत्पन्न करता है, ऐसा जीव चारित्रमोहकर्मका तीव्र बन्ध करता है। इस प्रकार चारित्रमोहके बन्धप्रत्ययोंका निरूपण किया।

अब आयुकर्मके चार भेदोंमेंसे पहले नरकायुकर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० १९][1] मिच्छादिट्ठी महारंभ-परिग्गहो तिव्वलोह णिस्सीलो ।
णिरयाउयं णिबंधइ पावमई रुद्दपरिणामो[1] ॥२०८॥

यो मिथ्यादृष्टिर्जीवो बह्वाऽऽरम्भ-बहुपरिग्रहः, तीव्राऽनन्तानुबन्धिलोभः, निःशीलः शील-रहितो लम्पटः, पापकारणबुद्धिः रौद्रपरिणामः स जीवो नरकायुर्बध्नाति ॥२०८॥

मिथ्यादृष्टि, महारम्भी, महापरिग्रही, तीव्रलोभी, निःशीली, रौद्रपरिणामी और पापबुद्धि जीव नरकायुका बन्ध करता है ॥२०८॥

विशेषार्थ—जो जीव धर्मसे पराङ्मुख है, पापोंका आचरण करनेवाला है, जिस आरम्भ और परिग्रहमें महा हिंसा हो, उसका करनेवाला है, जिसके व्रत-शीलादिका लेश भी न हो, भक्ष्य-अभक्ष्यका कुछ भी विचार न हो अर्थात् मद्य-मांसका सेवी और सर्व-भक्षी हो, जिसके परिणाम सदा रौद्रध्यानमय रहते हों और जिसका चित्त पत्थरकी रेखाके समान कठोर हो, ऐसा जीव नरकायुकर्मका बन्ध करता है।

अब तिर्यगायुकर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २०][2] उम्मग्गदेसओ सम्मग्गणासओ गूढहियय माइल्लो ।
सढसीलो य ससल्लो तिरियाउ णिबंधए जीवो[2] ॥२०९॥

य उन्मार्गोपदेशकः सन्मार्गविनाशकः, गूढहृदयो मायावी शठशीलः, सशल्यः माया-मिथ्या-निदान-शल्यत्रयो जीवः स तिर्यगायुर्बध्नाति ॥२०९॥

उन्मार्गका उपदेशक, सन्मार्गका नाशक, गूढहृदयी, महामायावी, परन्तु मुखसे मीठे वचन बोलनेवाला, शठशील और शल्ययुक्त जीव तिर्यगायुका बन्ध करता है ॥२०९॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ७६। 2. ४, ७७।

१. शतक० २०। २. शतक० २१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—जो जीव केवल कुमार्गका उपदेश ही न देता हो, अपितु सन्मार्गके विरुद्ध प्रचार भी करता हो, सन्मार्ग पर चलनेवालोंके छिद्रान्वेषण और असत्य दोषारोपण करनेवाला हो, माया, मिथ्यात्व और निदान इन तीन शल्योंसे युक्त हो, जिसके व्रत और शीलमें अतिचार लगते रहते हों, पृथिवी-रेखाके सदृश रोपका धारक हो, गूढ-हृदय मायावी और शठशील हो, ऐसा जीव तिर्यगायुका बन्ध करता है। यहाँ पर अन्तिम तीनों विशेषण विशेषरूपसे विचारणीय हैं। जिसके हृदयकी बातका पता कोई न चला सके, उसे गूढहृदय कहते हैं। जो सोचे कुछ और, तथा करे कुछ और उसे मायावी कहते हैं। जो मनमें कुटिलता रख करके भी वचनोंसे मधुरभाषी हो, उसे शठशील कहते हैं। ऐसा जीव तिर्यगायुका बन्ध करता है।

अब मनुष्यायुके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २१][1]पयडीए† तणुकसाओ दाणरओ सील-संजमविहूणो।
मज्झिमगुणेहिं जुत्तो मणुयाउ णिबंधए जीवो[1] ॥२१०॥

यः प्रकृत्या स्वभावेन मन्दकषायोदयः, चतुर्विधदानप्रीतिः, शीलैः संयमेन च विहीनः, मध्यमगुणैर्युक्तः, स जीवो मानुष्यायुर्बध्नाति ॥२१०॥

जो प्रकृतिसे ही मन्दकषायी है, दान देनेमें निरत है, शील-संयमसे रहित होकरके भी मनुष्योचित मध्यम गुणोंसे युक्त है, ऐसा जीव मनुष्यायुका बन्ध करता है ॥२१०॥

जो स्वभावसे ही शान्त एवं अल्प कषायवाला हो, प्रकृतिसे ही भद्र और विनीत हो, समय-समय पर लोकोपकारक कार्योंके लिए दान देता रहता हो, अप्रत्याख्यानावरण कषायके तीव्र उदय होनेसे व्रत-शीलादिके नहीं पालन कर सकने पर भी मानवोचित दया, क्षमा, आदि गुणोंसे युक्त हो, वालुकाराजिके सदृश रोपका धारक हो, न अति संक्लेश परिणामोंका धारक हो और न अति विशुद्ध भावोंका ही धारक हो, किन्तु सरल हो और सरल कार्य करनेवाला हो, ऐसा जीव मनुष्यायुकर्मका बन्ध करता है।

अब देवायुके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २२][2]अणुवय-महव्वएहि य बालतवाकामणिज्जराए य।
देवाउयं णिबंधइ सम्माइट्ठी य जो जीवो[2] ॥२११॥

यः सम्यग्दृष्टिर्जीवः स केवलसम्यक्त्वेन साक्षादणुव्रतैर्महाव्रतैर्वा देवायुर्बध्नाति। यो मिथ्यादृष्टिर्जीवः स उपचाराणुव्रत-महाव्रतैर्बालतपसा अकामनिर्जरया वा देवायुर्बध्नाति ॥२११॥

अणुव्रतों, शीलव्रतों और महाव्रतोंके धारण करनेसे, बालतप और अकामनिर्जराके करनेसे जीव देवायुका बन्ध करता है। तथा जो जीव सम्यग्दृष्टि है, वह भी देवायुका बन्ध करता है ॥२११॥

विशेषार्थ—जो पाँचों अणुव्रतों और सप्त शीलोंका धारक है, महाव्रतोंको धारण कर षड्जीव-निकायकी रक्षामें निरत है, तप और नियमका पालक है, ब्रह्मचारी है, सरागसंयमी है, अथवा बालतप और अकाम निर्जरा करनेवाला है, ऐसा जीव देवायुका बन्ध करता है। यहाँ बालतपसे अभिप्राय उन मिथ्यादृष्टि जीवोंके तपसे है जिन्होंने कि जीव-अजीवके स्वरूपको ही नहीं समझा है, आपा-परके विवेकसे रहित हैं और अज्ञानपूर्वक नाना प्रकारसे कायक्लेशको

1. सं० पञ्चसं० ४, ७८। 2. ४, ७९।

१. शतक० २२। २. शतक० २३।

†ब पयडीय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहन करते हैं। विना इच्छाके पराधीन होकर जो भूख-प्यासकी और शीत-उष्णादिकी बाधा सहन की जाती है, उसे अकाम निर्जरा कहते हैं। कारागारमें परवश होकर पृथिवी पर सोनेसे, रूखे-सूखे भोजन करनेसे, स्त्रीके अभावमें विवश होकर ब्रह्मचर्य पालनेसे, सदा रोगी रहनेके कारण परवश होकर पथ्य-सेवन करने और अपथ्य-सेवन न करनेसे जो कर्मोंकी निर्जरा होती है, उसे अकामनिर्जरा कहते हैं। इस अकामनिर्जरा और बालतपके द्वारा भी जीव देवायुका बन्ध करता है। जो सम्यग्दृष्टि जीव चारित्रमोहकर्मके तीव्र उदयसे लेशमात्र भी संयमको नहीं धारण कर पाते हैं, फिर भी वे सम्यक्त्वके प्रभावसे देवायुका बन्ध करते हैं। तथा जो जीव संक्लेश-रहित हैं, जलराजिके सदृश रोषके धारक हैं, और उपवासादि करने वाले हैं, वे भी देवायुका बन्ध करते हैं। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि सम्यक्त्वी और अणुव्रत-महाव्रतोंका धारक जीव कल्पवासी देवोंकी ही आयुका बन्ध करते हैं, जब कि अकामनिर्जरा करनेवाले प्रायः भवनत्रिक देवोंकी ही आयुका बन्ध करते हैं और बालतप करनेवाले यथासंभव सभी प्रकारके देवोंकी आयुका बन्ध करते हैं।

अब नामकर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २३][1]मण-वयण-कायवंको माइल्लो गारवेहिं पडिबद्धो+।
असुहं बंधइ णामं तप्पडिवक्खेहिं सुहणामं[१] ॥२१२॥

यो मनोवचनकायैर्वक्रः, मायावी गारवत्रयप्रतिबद्धः, स जीवो नरकगति-तिर्यग्गत्याऽऽद्यशुभं नामकर्म बध्नाति। तत्प्रतिपक्षपरिणामो हि शुभं नामकर्म बध्नाति ॥२१२॥

जिसके मन-वचन-कायकी प्रवृत्ति वक्र हो, जो मायावी हो और तीनों गारवोंका धारक हो, ऐसा जीव अशुभ नामकर्मका बन्ध करता है और इनसे विपरीत कर्म करनेसे शुभ नामकर्मका बन्ध होता है ॥२१२॥

विशेषार्थ—जो मायाचारी है, जिसके मन-वचन-कायकी प्रवृत्ति कुटिल है, जो रस-गारव ऋद्धिगारव और सातगारव इन तीनों प्रकारके गारवों या अहंकारोंका धारक है, झूठे नाप-तौलके बाँट रखता है और हीनाधिक देता-लेता है, अधिक मूल्यकी वस्तुमें अल्प मूल्यकी वस्तु मिलाकर बेचता है, रस-धातु आदिका वर्ण-विपर्यास करता है, नकली बनाकर बेंचता है, दूसरोंको धोका देता है, सोने-चाँदीके जेवरोंमें खार मिलाकर और उन्हें असली बताकर व्यापार करता है, व्यवहारमें विसंवादनशील एवं झगड़ालू मनोवृत्तिका धारक है, दूसरोंके अंग-उपांगोंका छेदन-भेदन करनेवाला है, दूसरोंकी नकल करता है, दूसरोंसे ईर्ष्या रखता है, और दूसरोंके देहको विकृत बनाता है, ऐसा जीव अशुभ नामकर्मका बन्ध करता है, किन्तु जो इनसे विपरीत आचरण करता है, सरल-स्वभावी है, कलह और विसंवाद आदिसे दूर रहता है, न्यायपूर्वक व्यापार करता है और ठीक-ठीक नाप-तौल कर देता लेता है, वह शुभ नामकर्मका बन्ध करता है।

अब गोत्रकर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २४][2]अरहंताइसु भत्तो सुत्तरुई पयणुमाण* गुणपेही।
बंधइ उच्चागोयं विवरीओ बंधए इयरं[२] ॥२१३॥

यः अर्हदादिषु भक्तः, गणधराद्युक्ताऽऽगमेषु श्रद्धाऽध्ययनार्थविचार-विनयादिगुणदर्शी, स जीवः उच्चैर्गोत्रं बध्नाति। तद्विपरीतः नीचैर्गोत्रं बध्नाति ॥२१३॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ८०। 2. ४, ८१।

१. शतक० २४। २. शतक० २५।

+ व परिबद्धो। *द पढमाणु०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो अरहंत आदिकी भक्ति करनेवाला है, आगमका अभ्यासी है और उच्च जाति, कुलादि-का धारक होने पर भी जो अहंकारसे रहित है ऐसा जीव उच्चगोत्रकर्मका बन्ध करता है। तथा इससे विपरीत आचरण करनेवाला नीचगोत्रका बन्ध करता है ॥२१३॥

विशेषार्थ—जो सदा अरहंत, सिद्ध, चैत्य, गुरु और प्रवचनकी भक्ति करता है, नित्य सर्वज्ञ-प्रणीत आगमसूत्रका स्वयं अभ्यास करता है और अन्यको कराता है, दूसरोंको तत्त्वका उपदेश देता है और आगमोक्त तत्त्वका स्वयं श्रद्धान करता है, उत्तम जाति, कुल, रूप, विद्यादि-से मंडित होने पर भी उनका अहंकार नहीं करता और न हीन जाति-कुलादिवालोंका तिरस्कार ही करता है, पर-निन्दासे रहित है, भूल करके भी दूसरोंके बुरे कार्यों पर दृष्टि नहीं डालता है, किन्तु सदाकाल सबके गुणोंको ही देखता है और गुणाधिकोंके साथ अत्यन्त विनम्र व्यवहार करता है, ऐसा जीव उच्चगोत्रकर्मका बन्ध करता है। किन्तु इससे विपरीत आचरण करनेवाला जीव नीचगोत्रकर्मका बन्ध करता है अर्थात् जो सदा अहंकारमें मस्त रहता है, दूसरोंके बुरे कार्यों पर ही जिसकी दृष्टि रहती है, दूसरोंका अपमान और तिरस्कार करता है, अरहंतादिकी भक्तिसे रहित है और आगमके अभ्यासको बेकार समझता है, ऐसा जीव नीचयोनियोंमें उत्पन्न करनेवाले नीचगोत्रकर्मका बन्ध करता है।

अब अन्तरायकर्मके विशेष बन्ध-प्रत्ययोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २५][1]पाणवहाइम्हि* रओ जिणपूआ†-मोक्खमग्ग-विग्घयरो।
अज्जेइ अंतरायं ण लहइ हिय×-इच्छियं जेण[1] ॥२१४॥

यः द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-[पञ्चेन्द्रिय-] वधेषु स्व-परकृतेषु प्रीतः, जिनपूजायाः रत्नत्रयप्राप्तेश्च स्वान्ययो-र्विघ्नकरः, स जीवस्तदन्तरायकर्म अर्जयति येनोदयेन हृदयेप्सितं तत् [वस्तु] न लभ्यते ॥२१४॥

प्राणियोंकी हिंसादिमें रत रहनेवाला और जिन-पूजनादि मोक्षमार्गके साधनोंमें विघ्न करनेवाला जीव अन्तराय कर्मका उपार्जन करता है, जिससे कि वह हृदय-इच्छित वस्तुको नहीं प्राप्त कर पाता है ॥२१४॥

विशेषार्थ—जो जीव पाँचो पापोंको करते हैं, महाऽऽरम्भी और परिग्रही हैं, तथा जिन-पूजन, रोगी साधु आदिकी वैयावृत्त्य, सेवा-उपासनादि मोक्षमार्गके साधनभूत धार्मिक क्रियाओंमें विघ्न डालते हैं, रत्नत्रयके धारक साधुजनोंको आहारादिके देनेसे रोकते हैं, तथा किसी भी प्राणी के खान-पानका निरोध करते हैं, उन्हें समय पर खाने-पीने और सोने-बैठने नहीं देते हैं, जो दूसरेके भोगोपभोगके सेवनमें बाधक होते हैं, दूसरेको आर्थिक हानि पहुँचाते हैं और उत्साह-भङ्ग करते हैं, दान देनेसे रोकते हैं, दूसरेकी शक्तिका मर्दन करते हैं, उसे निराश और निश्चेष्ट बनानेका प्रयत्न करते हैं, अथवा कराते हैं, वे जीव नियमसे अन्तराय कर्मका तीव्र बन्ध करते हैं। इस प्रकारसे संचित किये गये अन्तरायकर्मका जब उदय आता है, तब यह संसारी जीव अपनी इच्छाके अनुकूल न आर्थिक लाभ ही उठा पाता है, न भोग-उपभोग ही भोग सकता है और न इच्छा करते हुए भी किसीको कुछ दान ही दे पाता है।

कुछ अन्य प्रत्यय भी अन्तरायकर्मके आस्रवमें सहायक होते हैं—

[2]अंतरायस्स कोहाई पच्चूहकरणं तहा।
आसवम्मि वि जे हेऊ ते वि कज्जोवचारओ ॥२१५॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ८२। 2. ४, ८३।

१. शतक० २६।

* द ब बहाईहिं। † ब पूया। × द हियइ-।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्रवेषु ये हेतवः मिथ्यात्वादयः कारणानि प्रत्ययास्तेऽपि कार्योपचारतः अन्तरायस्य दानाद्यन्तराय-कर्मणो हेतवः। तथा क्रोधादिभिर्विघ्नकरणम्। उक्तञ्च--

बन्धस्य हेतवो येऽमी आस्रवस्यापि ते मताः।
बन्धो हि कर्मणां जन्तोरास्रवे सति जायते[1] ॥२७॥ इति ॥२१५॥

तथा जो दूसरोंपर क्रोधादि करता है और दूसरोंके दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यमें विघ्न-बाधाएँ उपस्थित करता है, मिथ्यात्वादिका सेवन करता है ऐसा जीव भी अन्तराय-कर्मको उत्पन्न करता है। इस प्रकार कर्मोंके आस्रवके सम्बन्धमें जो हेतु या प्रत्यय बतलाये गये हैं, वे सब कारणमें कार्यके उपचारसे कर्म-बन्धके भी कारण जानना चाहिए ॥२१५॥

पडिणीयाइ हेऊ जे अणुभायं पडुच्च ते भणिया।
णियमा पदेसबंधं पडुच्च वहिचारिणो सव्वे ॥२१६॥

इदि विसेसपच्चया बंधासवाणं।

अनुभागं प्रतीत्याऽऽश्रित्य ये प्रत्यनीकादिहेतवो भणिताः, अनुभागबन्धं प्रति ये प्रत्यनीक-प्रदोषादि-हेतवः प्रोक्ता नियमात् ते प्रत्यनीक-प्रदोषादिहेतवः प्रदेशबन्धं प्रतीत्याऽऽश्रित्य सर्वे व्यभिचारिणः, अन्यथा-काराः। तथा चोक्तम्---

अनुभागं प्रति प्रोक्ता ये प्रदोषादिहेतवः।
प्रदेशं प्रति ते नूनं जायन्ते व्यभिचारिणः ॥२७॥* ॥२१६॥

ज्ञानावरणादि कर्मोंके जो प्रत्यनीक आदि आस्रव हेतु बतलाये गये हैं, वे सब अनुभाग बन्धकी अपेक्षा कहे गये जानना चाहिए; क्योंकि प्रदेशबन्धकी अपेक्षा वे सब नियमसे व्यभि-चारी देखे जाते हैं ॥२१६॥

इस प्रकार कर्मोंके आस्रव और बन्धके विशेष प्रत्ययोंका निरूपण समाप्त हुआ।

अब कर्मोंके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

बंधट्ठाणा चउरो तिण्णि य उदयस्स होंति ठाणाणि।
पंच य उदीरणाए संजोगं अउ परं वोच्छं[2] ॥२१७॥

[मूलगा० २६] छसु ठाणेसु सत्तट्ठविहं बंधंति तिसु य सत्तविहं।
छव्विहमेओ तिण्णेयविहं तु अबंधओ एओ[3] ॥२१८॥

श्री विद्यानन्दिनं देवं मल्लिभूषणसद्गुरुम्।
लक्ष्मीवीरेन्दुचिद्भूषं नत्वा बन्धादिकं ब्रुवे ॥२८॥

अथ बन्धोदयसत्त्वयुक्तस्थानं कथ्यते। किं स्थानम्? एकस्य जीवस्य एकस्मिन् समये सम्भवतीनां प्रकृतीनां समूहः तत्स्थानम्। तावद्गुणस्थाने मूलप्रकृतीनां बन्धोदयोदीरणाभेदं गाथानवकेनाऽऽह--['छसु ठाणेसु' इत्यादि।] षट्सु स्थानेषु मिथ्यात्वसासादनाऽविरत-विरताविरत-प्रमत्ताऽप्रमत्तगुणस्थानेषु ज्ञानावरणाद्यष्टविधं आयुर्विना सप्तविधं च कर्म जीवा बध्नन्ति, बन्धं नयन्तीत्यर्थः। त्रिषु मिश्राऽपूर्वकरणाऽ-निवृत्तिकरणगुणस्थानेषु आयुर्विना सप्तविधं कर्म जीवा बध्नन्ति। एकः सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती आयुर्मोहवर्जितं षड्विधं कर्म बध्नाति। त्रयः उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगिनः एकं सातावेदनीयं बध्नन्ति। एकः अयोगी अबन्धको भवति ॥२१७-२१८॥

---

* इतोऽग्रे प्रतौ सन्दर्भोऽयं प्राप्यते--इतिश्री पञ्चसंग्रहगोमट्टसारसिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डे जीव-समासादिप्रत्ययप्ररूपणो नाम चतुर्थोऽधिकारः ॥श्री॥

१. सं० पञ्चसं० ४, ८३। २. संस्कृत टीका नापलभ्यते। ३. शतक० २७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्धस्थान चार होते हैं। उदयके स्थान तीन होते हैं, किन्तु उदीरणाके स्थान पाँच होते हैं। इनके वर्णन करनेके पश्चात् इनके संयोगी स्थानोंको कहेंगे ॥२१७॥

छह गुणस्थानोंमें जीव सात या आठ प्रकारके कर्मोंका बन्ध करते हैं। तीन गुणस्थानोंमें सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करते हैं। एक गुणस्थानमें छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करते हैं। तीन गुणस्थानोंमें एक कर्मका बन्ध करते हैं और एक गुणस्थान अबन्धक है अर्थात् उसमें किसी भी कर्मका बन्ध नहीं होता ॥२१८॥

अब भाष्यकार उक्त मूलगाथाके अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]छप्पढमा बंधंति य मिस्सूणा सत्तकम्म अट्ठं वा।
आऊणा सत्तेव य मिस्सापुव्वाणियट्टिणो णेया ॥२१९॥
मोहाऊणं हीणा सुहुमो बंधेइ कम्म छच्चेव।
वेयणियमेय तिण्णि य बंधंति अबंधओऽजोगो ॥२२०॥

७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ६ १ १ १ ०
८ ८ ० ८ ८ ८ ८

तदेव गाथाबन्धेन विवृणोति—मिश्रोनाः षट् प्रथमाः अप्रमत्तान्ताः विनाऽऽयुः सप्तविधं तत्सहित-मष्टविधं च बध्नन्ति। मिश्राऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणा आयुरूनं सप्तविधं कर्म बध्नन्ति। तत्त्रयः आयुर्बन्ध-हीना ज्ञेयाः ॥२१९॥

सूक्ष्मसाम्परायस्थो मुनिरायुर्मोहिनीयकर्मद्वयहीनानि षडेव कर्माणि बध्नाति, ततस्त्रयः उपशान्त-क्षीणकषाय-सयोगजिना एकं सातावेदनीयं बध्नन्ति। अयोगी अबन्धकः स्यात् ॥२२०॥

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६	१	१	१	०
८	८	०	८	८	८	८	०	०	०	०	०	०	०

मिश्र गुणस्थानको छोड़कर पहलेके छह गुणस्थानवर्ती जीव आयुके विना सात कर्मोंका, अथवा आयु-सहित आठ कर्मोंका बन्ध करते हैं। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण; इन तीन गुणस्थानोंके जीव आयुकर्मके विना सात कर्मोंका बन्ध करनेवाले जानना चाहिए। सूक्ष्म-साम्परायगुणस्थानवर्ती जीव मोह और आयुके विना शेष छह कर्मोंका बन्ध करते हैं। ग्यारहवें बारहवें और तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीव एक वेदनीय कर्मका ही बन्ध करते हैं। अयोगिकेवली भगवान् अबन्धक कहे गये हैं ॥२१९-२२०॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

गु०—	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
बं०	७	७	७	७	७	७	७	७	७	६	१	१	१	०
	८	८	०	८	८	८	८	०	०	०	०	०	०	०

अब उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० २७][2]अट्ठविह-सत्त-छ-बंधगा वि वेयंति अट्ठयं णियमा।
*उवसंतखीणमोहा मोहूणाणि य जिणा अघाईणि[1] ॥२२१॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ८४-८५। 2. ४, ८६।

१. शतक० २८। परं तत्रोत्तरार्धे 'एगविहबन्धगा पुण चत्तारि व सत्त वेएंति' इति पाठः।

* मूलप्रतौ ईदृक् पाठः—'एगविहबंधगा पुण चत्तारि व सत्त चेव वेदंति'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८।८।८।८।८।८।८।८।८।८ उवसंत-खीणाणं ७।७।

सजोगाजोगाणं ४।४।

अष्टविध-सप्तविधकर्मबन्धका जीवा ज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म वेदयन्ति उदयरूपेण भुञ्जन्तीत्यर्थः ८ नियमात् । उपशान्त-क्षीणमोहौ उपशान्तकषाय-क्षीणकषायिणौ छद्मस्थौ मोहनीयं विना सप्त कर्माणि उदयरूपेणानुभवतः ७ । जिनौ इति सयोगाऽयोगिनौ वेद्यायुर्नामगोत्राणीति अघातीन्यनुभवतः ४ ॥२२१॥

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४

इति गुणस्थानेषु मूलप्रकृतीनामुदयः ।

आठ, सात और छह प्रकारके कर्म-बन्ध करनेवाले जीव नियमसे आठों ही कर्मोंका वेदन करते हैं। उपशान्तमोही और क्षीणमोही जीव मोहकर्मके विना शेष सात कर्मोंका वेदन करते हैं। सयोगी और अयोगी जिन चार अघातिया कर्मोंका वेदन करते हैं ॥२२१॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

गु०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
उ०	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४

घाईणं छदुमत्था उदीरगा राइणो य मोहस्स ।
तइयाउयं पमत्ता× जोगंता +णाम-गोयाणं ॥२२२॥

गुणठाणेसु उदीरणा—८।८।८।८।८।८।६।६।६।६।५।५।२।० ।

अथोदीरणा कथ्यते—घातिकर्मणां चतुर्णां मिथ्यादृगादि-क्षीणकषान्ताः छद्मस्था एवोदीरका भवन्ति । तत्रापि मोहनीयस्य रागिणः सूक्ष्मसाम्परायान्ताः उदीरकाः स्युः । वेदनीयायुषोः प्रमत्तान्ताः षष्ठान्ता उदीरणां कुर्वन्ति । नाम-गोत्रयोः सयोगिपर्यन्ता एव उदीरकाः ॥२२२॥

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	६	६	६	६	५	५	२	०

इति सामान्येन गुणस्थानेषु उदीरणा ।

छद्मस्थ अर्थात् बारहवें गुणस्थान तकके जीव घातिया कर्मोंकी उदीरणा करते हैं। किन्तु मोहकर्मकी उदीरणा करनेवाले रागी अर्थात् सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान तकके ही जीव माने गये हैं। तृतीय वेदनीय कर्म और आयुकर्मकी उदीरणा प्रमत्तगुणस्थान तकके जीव करते हैं। तथा नाम और गोत्रकर्मकी उदीरणा सयोगिकेवली गुणस्थान तकके जीव करते हैं ॥२२२॥

गुणस्थानोंमें कर्मोंकी उदीरणा इस क्रमसे होती है—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	६	६	६	६	५	५	२	०

[मूलगा० २८][1]मिच्छादिट्ठिप्पभिई अट्ठ उदीरंति जा पमत्तो त्ति ।
अद्धावलियासेसे मिस्सूणा सत्त आऊणा[१] ॥२२३॥

तद्विशेषयति—मिथ्यादृष्टिप्रभृतयो यावत्प्रमत्तान्ताः मिथ्यात्वादि-प्रमत्तान्ता ज्ञानावरणादीन्यष्टौ कर्माण्युदीरयन्ति उदीरणां कुर्वन्ति । सम्यग्मिथ्यादृष्टेराऽऽयुष्याऽऽवलिमात्रेऽवशिष्टे सति नियमेन गुणस्थाना-

1. सं० पञ्चसं० ४, ८६–८८ ।

१. शतक० २९ ।

×ब० प्रमत्तो । +मूल प्रतौ 'हुंति दुण्हं पि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्तराश्रयणात् । तं मिश्रं विना मिथ्यादृगादि-प्रमत्तान्ता पञ्च निजाऽऽयुषि अद्धाकालविशेषाऽऽवलिमात्रेऽवशिष्टे सति आयुर्वर्जितसप्तकर्माण्युदीरयन्ति उदीरणां कुर्वन्तीत्यर्थः ॥२२३॥

अब ग्रन्थकार इसी अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके जीव आठों ही कर्मोंकी उदीरणा करते हैं। किन्तु अपने-अपने आयुकालमें आवलीमात्र शेष रहने पर मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव आयुकर्मके बिना शेष सात कर्मोंकी उदीरणा करते हैं। मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव आठों ही कर्मोंकी उदीरणा करते हैं क्योंकि आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थान छूट जाता है अर्थात् वह जीव अन्य गुणस्थानको प्राप्त हो जाता है ॥२२३॥

[मूलगा० २९][1]वेयणियाउयवज्जे छक्कम्मुदीरंति चत्तारि ।
अद्धावलियासेसे सुहुमोदीरेइ पंचेव[1] ॥२२४॥

चत्वारोऽप्रमत्ताऽपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थाः वेदनीयायुर्द्वयं वर्जयित्वा षट्कर्माण्युदीरयन्ति, षण्णां कर्मणां उदीरणां कुर्वन्तीत्यर्थः । सूक्ष्मसाम्परायस्तु, अद्धावलिकाशेषे आवलिकामात्रेऽवशिष्टे सति आयुर्मोहवेदनीयकर्मत्रिकवर्जितशेषकर्मपञ्चकं उदीरयन्ति ॥१२४॥

अप्रमत्तसंयतसे आदि लेकर चार गुणस्थानवर्ती जीव वेदनीय और आयुकर्मको छोड़कर शेष छह कर्मोंकी उदीरणा करते हैं। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके कालमें आवलीमात्र कालके शेष रह जाने पर सूक्ष्मसाम्परायसंयत वेदनीय, आयु और मोहकर्मको छोड़कर शेष पाँच कर्मोंकी उदीरणा करते हैं ॥२२४॥

[मूलगा० ३०][2]वेयणियाउयमोहे वज्जिय उदीरंति दोण्णि पंचेव ।
अद्धावलियासेसे णामं गोयं च अकसाई[2] ॥२२५॥

द्वौ उपशान्त-क्षीणकषायौ वेदनीयाऽऽयुर्मोहनीयत्रिकं वर्जयित्वा शेषकर्मपञ्चकमुदीरयतः तद्गुणस्थानयोरावलिकालेऽवशिष्टे नाम-गोत्रकर्मद्वयमुदीरयतः ॥२२५॥

उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय, ये दो गुणस्थानवर्ती जीव वेदनीय, आयु और मोहको छोड़कर शेष पांचों ही कर्मोंकी उदीरणा करते हैं। किन्तु अकषायी अर्थात् क्षीणकषायी जीव क्षीणकषाय गुणस्थानके कालमें आवलीमात्र कालके शेष रहने पर नाम और गोत्र इन दो कर्मोंकी उदीरणा करते हैं ॥२२५॥

[मूलगा० ३१][3]उदीरेइ णाम-गोदे छक्कम्म विवज्जिए सजोगी दु ।
वट्टंतो दु अजोगी ण किंचि कम्मं उदीरेइ[3] ॥२२६॥

सयोगी वर्तमानः सन् कर्मषट्क-वर्जिते नाम-गोत्रे द्वे कर्मणी उदीरयति २ । पुनः अयोगी किमपि कर्म उदीरयति न, उदीरणां न करोतीत्यर्थः ॥२२६॥

सयोगिकेवली जिन शेष छह कर्मोंको छोड़कर नाम और गोत्र इन दो ही कर्मोंकी उदीरणा करते हैं। चार अघातिया कर्मोके उदयमें वर्तमान भी अयोगी जिन योगके अभाव होनेसे किसी भी कर्मकी उदीरणा नहीं करते हैं ॥२२६॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ८९ । 2. सं० पञ्चसं० ४, ९० । 3. सं० पञ्चसं० ४, ९१ ।

१. शतक० ३० । २. शतक० ३१ । ३. शतक० ३२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणठाणेसु उदीरणा—

८	८	८	८	८	८	६	६	६	६	५	५	२	०
७	७	०	७	७	७	०	०	०	५	०	२	०	०

[1]एत्थ मरणावलियाए आउस्स उदीरणा णत्थि । आवलियासेसे आउम्मि मिस्सगुणो वि ण संभवइ ।

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
८	८	८	८	८	८	६	६	६	५	५	५	२	०
७	७	०	७	७	७	०	०	०	२	२	२	०	०

इति गुणस्थानेषु [विशेषेण] उदीरणा ।

अत्रापक्वपाचनमुदीरणेति वचनादुदयावलिकायां प्रविष्टायाः कर्मस्थितेर्नोदीरणेति मरणावलिकायामायुषः उदीरणा नास्ति । सूक्ष्मे मोहस्योदीरणा नास्ति । क्षीणे घातित्रयस्योदीरणा नास्ति । मरणावलिकाशेषाऽऽयुषि मिश्रो गुणोऽपि न सम्भवति ।

गुणस्थानोंमें उदीरणाका क्रम इस प्रकार है—

८	८	८	८	८	८	६	६	६	६	५	५	२	०
७	७	०	७	७	७	०	०	०	५	०	२	०	०

यहाँ इतना विशेष जानने योग्य है कि मरणावलीके शेष रहने पर आयुकर्मकी उदीरणा नहीं होती है । तथा आयुकर्मके आवलीमात्र शेष रह जाने पर मिश्रगुणस्थान भी नहीं होता है।

विशेषार्थ—शतककी मूलगाथाङ्क ३० के उत्तरार्धमें यह बतलाया गया है कि अकषायी जीव आवलीमात्र कालके शेष रह जाने पर नाम और गोत्र इन दो कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । मूलगाथाके नीचे दी गई अङ्कसंदृष्टिके अंकोंको देखनेसे विदित होता है कि गाथामें दिये गये 'अकसाई' पदसे बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणकषायी संयत अभिप्रेत है । आ० अमितगति-रचित संस्कृत पञ्चसंग्रहसे भी 'अकसाई' पदके इसी अर्थकी पुष्टि होती है । यथा—

सप्तैवावलिकाशेषे पञ्चाद्या मिश्रकं विना ।
वेद्यायुर्मोहहीनानि पञ्च सूक्ष्मकषायकः ॥
नामगोत्रद्वयं क्षीणस्तत्रोदीरयते यतिः ।

(सं० पञ्चसं० ४, ८९-९०)

इन श्लोकोंके नीचे दी गई अंकसंदृष्टिसे भी इसी अर्थकी पुष्टि होती है । शतकप्रकरणकी मुद्रित चूर्णिमें भी 'अकसाई' पदका अर्थ 'क्षीणकषाय' किया गया है । यथा—

"अद्धावलिकाशेषे णामं गोयं च अकसाइ त्ति' खीणकसायद्धाए आवलिकाशेषे णामं गोयं च खीण-कसाओ उदीरेइ । कम्हा ! णाणदंसणावरणंतराइगाणि आवलिगापविट्ठाणि ण उदीरेंति त्ति काउं ।"

शतकके संस्कृत टीकाकार मलधारीय श्री हेमचन्द्राचार्यने भी 'अकसाई' पदका अर्थ क्षीणकषायी ही किया है । यथा—

"अद्धावलिकाशेषे आवलिकामात्रं प्रविष्टे ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मणीति शेषः । नामगोत्राख्ये द्वे एव कर्मणी उदीरयति । क इत्याह—'अकसाइ' त्ति। न विद्यन्ते कषाया अस्येति अकषायी, क्षीणमोह इत्यर्थः । इदमुक्तं भवति—क्षीणमोहो ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणि क्षपयन् प्रतिसमयं तावदुदीरयति यावत्केवलोत्पत्ति-प्रत्यासत्तावावलिकावशेषाणि भवन्ति । तत ऊर्ध्वमनुदीरयन्नेव क्षपयत्यावलिकागतानामुदीरणाभावादिति । तदा नाम-गोत्रयोरेवास्योदीरणासम्भवः । उपशान्तमोहस्तु सर्वदा पञ्चैवोदीरयति, तस्य ज्ञानावरणादीनां क्षयाभावेनावलिकाप्रवेशाभावादिति ।"

(शतक टीका गा० ३१)

---

1. सं० पञ्चसं० ४, 'मरणावलिकायामायुषः' इत्यादि गद्यभागः शब्दशः समानः । (पृ० ११३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त उद्धरणमें तो स्पष्टरूपसे कहा गया है कि उपशान्त मोहगुणस्थानवाला जीव अपने सर्वकालमें पाँचों ही कर्मोंकी उदीरणा करता है।

किन्तु प्राकृत पंचसंग्रहके संस्कृत टीकाकार श्रीसुमतिकीर्त्तिने गाथोक्त 'अकसाई' पदका अर्थ 'द्वौ उपशान्त-क्षीणकषायौ' कह कर उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय किया है, जैसा कि उक्त गाथाके नीचे दी गई संस्कृत टीकासे स्पष्ट है। इतना ही नहीं; प्रत्युत संस्कृतटीकाके नीचे जो अंकसंदृष्टि दी गई है, उसमें दिये गये अंकोंसे भी उन्होंने अपने उपर्युक्त अर्थकी पुष्टि की है। संस्कृत टीकाकार-द्वारा किया गया यह अर्थ विचारणीय है, क्योंकि किसी भी अन्य आधारसे उसकी पुष्टि नहीं होती है।

[मूलगा० ३२] अट्ठविहमणुदीरंतो अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो।
इरियावहं ण बंधइ आसण्णपुरक्कडो* दिट्ठो ॥२२७॥

अथैकस्मिन् जीवे बन्धोदयोदीरणात्रिकं [गाथा-] पञ्चकेनाऽऽह—

अट्ठविहमणुदीरंतो अणुहवइ चउव्विहं गुणविसालो।
इरियावहं ण बंधइ आसण्णपुरक्कमो दिट्ठो ॥२६॥

आसन्नः पराक्रमो यस्य स आसन्नपराक्रमः, पञ्चलघ्वक्षरपठनकालस्य मध्ये अघातिचतुष्ककर्मशत्रु-विध्वंसनात् चतुर्दशगुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली ईर्यापथं सातावेदनीयं कर्म न बध्नाति, ज्ञानावरणाद्यष्ट-विधं कर्म अनुदीरयन् उदीरणामकुर्वन् चतुर्विधं वेद्याऽऽयुर्नाम-गोत्राघातिकर्मचतुष्कं अनुभवति उदयरूपेण भुङ्क्ते। स कथम्भूतः? गुणैश्चतुरशीतिलक्षैर्विशालः विस्तीर्णः आसन्नपराक्रमः एवम्भूतो दृष्टः कथितः ॥२२७॥

गुणविशाल अर्थात् चौरासी लाख उत्तर गुणोंका स्वामी अयोगी जिन आठों कर्मोंमेंसे किसी भी कर्मकी उदीरणा नहीं करते हुए भी चारों ही अघातिया कर्मोंका वेदन करते हैं। तथा योगका अभाव होनेसे वे ईर्यापथका भी बन्ध नहीं करते हैं, क्योंकि उनका मोक्ष अतिसन्निकट है ॥२२७॥

[मूलगा० ३३][1] इरियावहमाउत्ता चत्तारि वि सत्त चेव वेयंति।
उदीरंति दोण्णि पंच य संसारगदम्हि भयणिज्जं[1] ॥२२८॥

सयोगकेवलीत्यध्याहार्यम्। ईर्यापथं कर्म सातावेदनीयं आयत्तं बध्नन् चत्वार्यघातिकर्माणि वेदयति उदयति उदयरूपेण भुङ्क्ते। द्वे नाम-गोत्रे कर्मणी उदीरयति। संसारगते इति क्षीणकषाये उपशान्ते च

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ६२।

१. शतक० ३४।

* 'आसन्ने' त्यादि—इह 'सन्' पदेन मोक्ष उच्यते, तस्यैव वस्तुवृत्त्या सत्त्वात्। संसारावस्था-विशेषा हि सर्वे कर्ममलपटलाच्छादितत्वात्, स्वरूपालाभरूपत्वात्, आसन्नः जीवानां वस्तुतोऽसन्त एव। मोक्षपर्यायस्तु कर्ममलपटलविनिर्मुक्तत्वात्, स्वरूपलाभरूपत्वात् सन् उच्यते। ततश्च 'पुरक्खडो' इत्युकारस्यालाक्षणिकत्वादासन्नः पुरस्कृतोऽङ्गीकृतः सन् मोक्षो येन स आसन्न-पुरस्कृतः सन्। इदमुक्तं भवति आसन्नमोक्षस्त्वयोगिकेवली अबन्धकोऽनुदीरयंश्चतुर्विधं वेदयतीति गाथार्थः। शतकप्रकरण गा० ३३ टीका।

अज्जोगिरियावहियं सायावेयं पि नेव बंधेइ। आसन्ननियडवत्ती पुरक्खडो सम्मुहो य कओ॥
संतो मोक्खो जेणं सो आसन्नपुरक्खडो संतो। वुच्चइ पुरक्खडो इह सद्दे ओ (उ) लक्खणविहीणो॥
—शतक० भाष्यगा० ६६–७०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईर्यापथमेकं सातावेदनीयं बध्नन् मोहं विना सप्त कर्माणि वेदयति, उदयरूपेणानुभवति मुनिः शेषः। क्षीणकषाये तु ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-नाम-गोत्र-पञ्चकानां उदीरणां करोति क्षीणकषायो मुनिः। आवलिकाशेषकाले भजनीयं नाम-गोत्रयोरुदीरणां करोति पञ्चक-द्विकयोर्विकल्पा भजनीयमिति। उपशान्ते तु ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-नाम-गोत्राणां पञ्चानामुदीरणा भवति ॥२२८॥

ईर्यापथ आस्रवसे संयुक्त उपशान्तमोही और क्षीणमोही जीव मोहकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका वेदन करते हैं और पाँच कर्मोंकी उदीरणा करते हैं। तथा सयोगिकेवली जिन चार अघातिया कर्मोंका वेदन करते हैं और नाम वा गोत्र इन दो कर्मोंकी उदीरणा करते हैं। किन्तु ईर्यापथ आस्रवसे संयुक्त उपशान्तकषायी जीव संसारगत दशामें भजनीय है अर्थात् कोई प्राप्त हुई बोधिका विनाश कर देता है और कोई नहीं भी करता है ॥२२८॥

[मूलगा० ३४][1]छप्पंचमुदीरंतो बंधइ सो छव्विहं तणुकसाओ।
अट्ठविहमणुभवंतो सुक्कज्झाणे दहइ कम्मं[1] ॥२२९॥

तनुकषायः सूक्ष्मसाम्परायो मुनिः षट्-पञ्चकर्माणि उदीरयन् मोहाऽऽयुर्भ्यां विना षण्णां कर्मणां ६, आयुर्मोहवेदनीयत्रिकं विना पञ्चानां कर्मणां उदीरणां करोति ५। स सूक्ष्मसाम्परायी षड्विधं मोहाऽऽयुर्द्विकं विना षट्प्रकारं कर्म बध्नाति। स मुनिः सूक्ष्मसाम्परायो ज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म उदयरूपेण भुङ्क्ते। स मुनिः प्रथमशुक्लध्यानेन सूक्ष्मलोभं कर्म दहति भस्मीकरोति ॥२२९॥

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीव छह अथवा पाँच प्रकारके कर्मोंकी उदीरणा करते हुए भी मोह और आयुके विना शेष छह प्रकारके कर्मोंका बन्ध करते हैं। तथा वही सूक्ष्मसाम्परायसंयत आठों ही कर्मोंका अनुभवन करते हुए शुक्लध्यानमें मोहकर्मको जलाता है ॥२२९॥

[मूलगा० ३५][2]अट्ठविहं वेयंता छव्विहमुदीरंति सत्त बंधंति।
अणियट्टी य णियट्टी अप्पमत्तो य तिण्णेदे[2] ॥२३०॥

अनिवृत्तिकरणः अपूर्वकरणः अप्रमत्तश्चैते त्रयः ज्ञानावरणादीन्यष्टौ कर्माणि वेदयन्तः उदयरूपेणानुभवन्ति ८। आयुर्वेद्यद्वयं विना षट्कर्माणि (षट्कर्मणां) उदीरणां कुर्वन्ति ६। आयुर्विना सप्त कर्माणि बध्नन्ति ७ ॥२३०॥

अनिवृत्तिकरणसंयत, अपूर्वकरणसंयत और अप्रमत्तसंयत, ये तीनों ही गुणस्थानवर्ती जीव आठों ही कर्मोंका वेदन करते हुए आयु और वेदनीयको छोड़कर शेष सात कर्मोंका बन्ध करते हैं ॥२३०॥

विशेषार्थ—उक्त गाथामें जो अप्रमत्त संयतके भी आयुकर्मके बन्धका अभाव बतलाया गया है, सो उसका अभिप्राय यह है कि अप्रमत्तसंयत जीव आयुकर्मके बन्धका प्रारम्भ नहीं करता है, किन्तु यदि प्रमत्तसंयतने आयुकर्मका बन्ध प्रारम्भ कर रक्खा है, तो वह उसे बाँधता है, अन्यथा नहीं।

[मूलगा० ३६][3]बंधंति य वेयंति य उदीरंति य अट्ठ अट्ठ अवसेसा।
सत्तविहबंधगा पुण अट्ठण्हमुदीरणे भज्जा[3] ॥२३१॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ६४। 2. सं० पञ्चसं० ४, ६५। 3. सं० पञ्चसं० ४, ६६–६७।

१. शतक० ३५। २ शतक० ३६। ३. शतक० ३७। परं तत्र पूर्वार्धे 'अवसेसट्ठविहकरा वेयंति उदीरगावि अट्ठण्हं' इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अशेषाः मिथ्यादृष्ट्यादि-प्रमत्तान्ताः षड्-गुणस्थानकाः ज्ञानावरणादीन्यष्टौ कर्माणि बध्नन्ति, तदष्टौ कर्माणि वेदयन्ति उदयरूपेण भुञ्जन्ति । पुनस्ते षड्-गुणस्थानकाः कथम्भूताः ? आयुर्विना सप्तविध-कर्म-बन्धकाः ७ भवन्ति, ते अष्टानां कर्मणां उदीरणायां भाज्या विकल्पनीयाः । आयुषः मरणावलिकाशेषे उदीरणा नास्ति, इत्याऽऽयुर्विना सप्तकर्मोदीरकाः ७ अष्टकर्मोदीरकाश्च ८ ॥२३१॥

ऊपर कहे गये जीवोंके अतिरिक्त अवशिष्ट गुणस्थानवाले जो जीव हैं वे अर्थात् मिथ्या-दृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत तकके जीव आठों ही कर्मोंका बन्ध करते हैं, आठों ही कर्मोंका वेदन करते हैं और आठों ही कर्मोंकी उदीरणा करते हैं । किन्तु आयुकर्मको छोड़कर शेष सात प्रकारके कर्मोंका बन्ध करनेवाले जीव आठों कर्मोंकी उदीरणामें भजनीय हैं । अर्थात् अपनी अपनी आयुमें आवली काल शेष रहनेके पूर्व तक तो वे आठों ही कर्मोंकी उदीरणा करते हैं और आवली मात्र कालके शेष रह जानेके अनन्तर सात प्रकारके कर्मोंकी उदीरणा करते हैं ॥२३१॥

७।८	७।८	७	७।८	७।८	७।८	७।८	७	७	६	१	१	१	०
८	८	८	८	८	८	८	८	७	८	७	७	४	४
७।८	७।८	८	७।८	७।८	७।८	०।६	६	६	६।५	५	५।२	२	०

एत्थ पमत्तो आउबंधं आरंभेइ, अप्पमत्तो होऊण समाणेइ त्ति णिद्दिट्ठं । तत्थ सव्वकम्माणि बंधेइ त्ति वुत्तं ।

बन्धोदयोदीरणासम्पृक्तयन्त्रम्—

गुणस्थानं—	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
बन्धः—	७।८	७।८	७	७।८	७।८	७।८	७।८	७	७	६	१	१	१	०
उदयः—	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४
उदीरणा—	७।८	७।८	८	७।८	७।८	७।८	६	६	६	६।५	५	५।२	२	०

अत्राप्रमत्ते कर्माष्टकस्य बन्धः कथम् ? भवता भव्यं पृष्टम्, प्रमत्तो मुनिराऽऽयुर्बन्धं आरभति प्रारभति; अप्रमत्तो भूत्वा तत्पूर्णं करोति समाप्तिं नयति । यतोऽप्रमत्ते आयुर्बन्धाऽऽरम्भो नास्तीति तत्र सप्तमे गुणस्थाने तद्-दृष्टं कथितं सर्वकर्माणि बध्नातीति उक्तमिति ।

ऊपर कहे गये बन्ध, उदय और उदीरणा सम्बन्धी अर्थकी बोधक अंकसंदृष्टि मूलमें दी हुई है ।

यहाँ यह बात ध्यानमें देनेकी है कि प्रमत्तसंयत जीव आयुकर्मके बन्धका प्रारम्भ करता है और अप्रमत्तसंयत होकर उसकी समाप्ति करता है, इस अपेक्षा 'वह सर्व कर्मोंका बन्ध करता है' ऐसा गाथासूत्रमें कहा गया है ।

अब बन्धके नौ भेदोंका वर्णन करते हैं—

[1]सादि अणादि य धुवद्धुवो य पयडिट्ठाणं च भुजगारो ।
अप्पयरमवट्ठिदं च हि सामित्तेणावि णव होंति ॥२३२॥

नवधा कर्मबन्धा भवन्तीत्याऽऽह—सादिबन्धः १ अनादिबन्धः २ ध्रुवबन्धः ३ अध्रुवबन्धः ४ प्रकृतिस्थानबन्धः ५ भुजाकारबन्धः ६ अल्पतरबन्धः ७ अवस्थितबन्धः ८ स्वामित्वेन सह ९ नव बन्ध-भेदा भवन्ति ॥२३२॥

सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, प्रकृतिस्थानबन्ध, भुजाकारबन्ध, अल्पतर-बन्ध, अवस्थितबन्ध और स्वामित्वकी अपेक्षा बन्ध, इस प्रकार बन्धके नौ भेद होते हैं ॥२३२॥

1. सं० पञ्चसं० ४, १०० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब उक्त बन्धभेदोंका स्वरूप कहते हैं—

[1]साइ अबंधा बंधइ अणाइबंधो य जीवकम्माणं ।
धुवबंधो य अभव्वे बंध-विणासेण अद्धुवो होज्ज ।।२३३।।
अप्पं बंधिय कम्मं बहुयं बंधेइ होइ भुययारो ।
विवरीओ अप्पयरो अवट्ठिओ तेत्तिय त्ति बंधंतो ।।२३४।।

तल्लक्षणमाह—योऽबन्धकर्मप्रकृतीर्बध्नाति स सादिबन्धः । अबन्धपतितस्य कर्मणः पुनर्बन्धे सति सादिबन्धः स्यात् । यथा ज्ञानावरणपञ्चकस्योपशान्तकषायादवतरतः सूक्ष्मसाम्पराये बन्धो भवति १ । जीव-कर्मणोः अनादिबन्धः स्यात् । तथा उपरितनगुणस्थानं श्रेणिः, तत्रानारूढे अनादिबन्धः स्यात् २ । अभव्ये अभव्यसिद्धे ध्रुवबन्धो भवति, निःप्रतिपक्षाणां बन्धस्य तत्रानाद्यनन्तत्वात् । बन्ध-विनाशेन कर्म-बन्धविध्वंसनेनाध्रुवबन्धो भवेत् । अथवा अबन्धे सति अध्रुवबन्धो भवति । स अध्रुवबन्धो भव्ये भवति ४ । संख्याभेदेनैकस्मिन् जीवे युगपत्सम्भवत्प्रकृतिसमूहः स्थानमिति प्रकृतिस्थानबन्धः ५ अल्पं बध्वा बहुकं बध्नतः योऽल्पकर्मप्रकृतिकं बध्वा बहुकर्मप्रकृतिकं बध्नाति, स भुजाकारो बन्धः स्यात् ६ । तद्विपरीतो यो बहुकर्म बध्नतोऽल्पकर्मप्रकृतिकं बध्नाति, स अल्पतरो बन्धः स्यात् ७ । अल्पकर्मप्रकृतिकं बहुकर्मप्रकृतिकं वा बध्वा अनन्तरसमये तावदेव बध्नतोऽवस्थितो बन्धः ८ । आसामेव प्रकृतीनामयमेव गुणस्थानवर्ती जीवो बन्धको भवतीति स्वामित्वम् । तथा कर्म-बन्धविशेषस्य कर्तृ स्वामित्वं ९ ज्ञातव्यम् । इति स्वामित्वेन सह नवविधबन्धस्य लक्षणं ज्ञेयम् ।।२३३–२३४।।

विवक्षित कर्मप्रकृतिके अबन्ध अर्थात् बन्धविच्छेद हो जाने पर पुनः जो उसका बन्ध होता है, उसे सादिबन्ध कहते हैं। जीव और कर्मके अनादिकालीन बन्धको अनादिबन्ध कहते हैं। अभव्यके बन्धको ध्रुवबन्ध कहते हैं। एक बार बन्धका विनाश होकर पुनः होनेवाले बन्धको अध्रुवबन्ध कहते हैं। अथवा भव्यके बन्धको अध्रुवबन्ध कहते हैं। (एक जीवमें एक समय बँधनेवाली प्रकृतियोंके समूहको प्रकृतिस्थानबन्ध कहते हैं।) अल्प कर्म-बन्धको करके अधिक कर्मके बन्ध करनेको भुजाकारबन्ध कहते हैं। अधिक कर्म-बन्धको करके अल्प कर्मके बन्ध करनेको अल्पतर बन्ध कहते हैं। पहले समयमें जितना कर्म-बन्ध किया है, दूसरे समयमें उतना ही कर्म-बन्ध होनेको अवस्थितबन्ध कहते हैं। (इन विवक्षित कर्मप्रकृतियोंका इस गुणस्थानवर्ती जीव बन्ध करता है, इस प्रकारसे कर्मबन्धके स्वामित्व-विशेषके निरूपणको स्वामित्वकी अपेक्षा बन्ध कहते हैं।) ।।२३३–२३४।।

अब मूलप्रकृतियोंके सादिबन्ध आदिका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ३७][2]साइ अणाइ य धुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स ।
तइए साइयसेसा अणाइ धुवसेसओ आऊ ।।२३५।।

अथ मूलप्रकृतीनां सादि-बन्धादि कथ्यते—कर्मषट्कस्य ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ मोहनीय ३ नाम ४ गोत्रा ५ न्तरायाणां ६ षण्णां कर्मणां प्रत्येकं सादिबन्धः १ अनादिबन्धः २ ध्रुवबन्धः ३ अध्रुव-बन्धः ४ चेति चतुर्धा बन्धो भवति । तृतीये वेदनीयकर्मणि सादितः शेषास्त्रयो बन्धा ज्ञेयाः । अनादिबन्धः १ ध्रुवबन्धः २ अध्रुवबन्ध ३ श्चेति त्रिविधबन्धो वेदनीयकर्मणो भवतीत्यर्थः, सातापेक्षया तस्य गुणप्रतिप-न्नेषु उपशमश्रेण्याऽऽरोहणाऽवरोहणे च निरन्तरबन्धेन सादित्वाऽसम्भवात् । आयुष्ककर्मणोऽनादि-ध्रुवाभ्यां

1. सं० पञ्चसं० ४, १०१-१०४ । 2. ४, १०५ ।

१. शतक० ४० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विना शेषौ साद्यध्रुवौ भवतः, आयुषः सादिबन्धाऽध्रुवबन्धौ भवतः। कुतः ? एकवारादिना बन्धेन सादित्वात् अन्तर्मुहूर्त्तावसानेन चाध्रुवत्वात् ॥२३५॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय; इन छह कर्मोंका सादिबन्ध भी होता है, अनादिबन्ध भी होताहै, ध्रुवबन्ध भी होता है और अध्रुवबन्ध भी होता है, अर्थात् चारों प्रकारका बन्ध होता है। तीसरे वेदनीय कर्मका सादिबन्धको छोड़कर शेष तीन प्रकारका बन्ध होता है। आयु कर्मका अनादिबन्ध और ध्रुवबन्धके सिवाय शेष दो प्रकारका बन्ध होता है ॥२३५॥

अब उत्तरप्रकृतियोंके सादिबन्ध आदिका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ३८][1]उत्तरपयडीसु तहा धुवियाणं बंधचउवियप्पो दु।
सादिय अद्धुवियाओ सेसा परियत्तमाणीओ ॥२३६॥

अथोत्तरप्रकृतिषु सादिबन्धादिकाः कथ्यन्ते—तथा मूलप्रकृतिप्रकारेण उत्तरप्रकृतिषु मध्ये सप्तचत्वारिंशद्-ध्रुवप्रकृतीनां ४७ सादिबन्धादिचतुर्विकल्पश्चतुर्धा भवति। सादिबन्धाऽध्रुवबन्धा शेषा एकादश ११ द्विषष्टिः परिवर्त्तिकाश्च प्रकृतयः ६२। ॥२३६॥

उत्तरप्रकृतियोंमें जो सैंतालीस ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं, उनका चारों प्रकारका बन्ध होता है। तथा शेष बची जो तेहत्तर परिवर्तमान प्रकृतियाँ हैं, उनका सादिबन्ध और अध्रुवबन्ध होता है ॥२३६॥

अब सैंतालीस ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

[2]आवरण विग्घ सव्वे कसाय मिच्छत्त णिमिण वण्णचदुं।
भयणिंदागुरुतेयाकम्मुवघायं धुवाउ सगदालं* ॥२३७॥

का ध्रुवाः प्रकृतयः काः परिवर्त्तिका इतिचेदाऽऽह—ज्ञानावरण-दर्शनावरणान्तरायैकोनविंशतिः १९, सर्वे षोडश कषायाः १६, मिथ्यात्वं १ निर्माणं १ वर्णचतुष्कं ४ भय-निन्दाद्वयं २ अगुरुलघुकं १ तैजस-कार्मणे द्वे २ उपघातश्चेति १ सप्तचत्वारिंशद्-ध्रुवाणां प्रकृतीनां ४७ साद्यऽनादिध्रुवाऽध्रुवबन्धश्चतुर्विधो भवति ॥२३७॥

पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, पांच अन्तराय, सभी अर्थात् सोलह कषाय, मिथ्यात्व, निर्माण, वर्णादि चार, भय, जुगुप्सा, अगुरुलघु, तैजसशरीर, कार्मणशरीर और उपघात; ये सैंतालीस ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं, अर्थात् बन्ध-व्युच्छित्तिके पूर्व इनका निरन्तर बन्ध होता रहता है ॥२३७॥

निष्प्रतिपक्ष और सप्रतिपक्षके भेदसे परिवर्तमान प्रकृतियोंके दो भेद हैं। उनमेंसे पहले निष्प्रतिपक्ष अध्रुवबन्धी प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

[3]परघादुस्सासाणं आयावुज्जोवमाउ चत्तारि।
तित्थयराहारदुयं एकारस होंति सेसाओ ॥२३८॥

इदि णिप्पडिवक्खा अद्धुवा ११

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १०६। 2. ४, १०७-१०८। 3. ४,१०९-११०।

1. शतक० ४१।

* इसके स्थान पर मूल प्रतिमें निम्न दो गाथाएँ पाई जाती हैं—

णाणंतरायदसयं दंसण णव मिच्छ सोलस कसाया। भयकम्मदुगुंछा वि य तेजाकम्मं च वण्णचदु ॥१॥
अगुरुगलहुगुवघादा णिमिणं च तहा भवंति सगदालं। बंधो य चदुवियप्पो धुवपगडीणं पगिदिबंधो ॥२॥
इदि धुवाओ ४७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परघातोच्छ्वासद्वयं २ आतपोद्योतौ २ आयूंषि चत्वारि ४ तीर्थकरत्वं १ आहारकद्विकं चेति एकादश प्रकृतयो निःप्रतिपक्षाः ११ भवन्ति । शेषा द्वाषष्टिः प्रकृतयः अध्रुवाः ६२ ॥२३८॥

परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, चारों आयु, तीर्थंकर और आहारकद्विक, ये ग्यारह निष्प्रतिपक्ष अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं ॥२३८॥

अब सप्रतिपक्ष अध्रुवबन्धी प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

[1]सादियरं वेयावि य हस्साइचउक्क पंच जाईओ ।
संठाणं संघयणं छच्छक्क चउक्क आणुपुव्वी य ॥२३९॥
गइ चउ दोय सरीरं गोयं च य दोण्णि अंगवंगा य ।
दह जुयलाण तसाइं गयणगइदुअं विसट्ठिपरिवत्ता ॥२४०॥

सप्पडिवक्खा ६२ ।

ता का इति चेदाऽऽह—साताऽसातद्वयं २ वेदास्त्रयः ३ हास्यरत्यरतिशोकचतुष्कं ४ एक-द्वि-त्रि-चतु-पञ्चेन्द्रियजातिपञ्चकं ५ समचतुरस्रादिसंस्थानषट्कं ६ वज्रवृषभनाराचसंहननादिषट्कं ६ नरकगत्या-द्याऽऽनुपूर्वीचतुष्कं ४ नरकादिगतिचतुष्कं ४ औदारिक-वैक्रियिकशरीरद्वयं २ नीचोच्चगोत्रद्वयं २ औदारिक-वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गद्वयं २ त्रसद्वयं २ बादरद्वयं २ पर्याप्तद्वयं २ प्रत्येकद्वयं २ स्थिरद्वयं २ शुभद्वयं २ सुस्वरद्वयं २ आदेयद्वयं २ यशःकीर्त्तिद्वयं २ चेति दश-युगल-त्रसादिकं प्रशस्ताऽप्रशस्तगतिद्वयं २ इति द्वाषष्टिः परिवर्त्तिकाः । परावर्त्तिकाः सप्रतिपक्षाः ६२ । एकादश निःप्रतिपक्षाः । इत्येकीकृतानां त्रिसप्तत्य-ध्रुवाणां प्रकृतीनां ७३ सादिबन्धाऽध्रुवबन्धौ भवतः । अत्र विशेषः—साताऽसातद्वयं त्रिबन्धयुक्तं गोत्रद्वयं चतुर्बन्धयुक्तं चेति मूलप्रकृतिषु प्रोक्तमस्ति तेन ज्ञायत इति ॥२३९–२४०॥

सातावेदनीय, असातावेदनीय, तीनों वेद, हास्यादि चार, जातियाँ पाँच, संस्थान छह, संहनन छह, आनुपूर्वी चार, गति चार, औदारिक और वैक्रियिक ये दो शरीर, तथा इन दोनोंके दो अंगोपांग, दो गोत्र, त्रसादि दश युगल और दो विहायोगति, ये बासठ सप्रतिपक्ष अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं ॥२३९–२४०॥

अब मूल प्रकृतिस्थान और भुजाकारादिका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ३९][2]चत्तारि पयडिठाणाणि तिण्णि भुजगार अप्पयराणि ।
मूलपयडीसु एवं अवट्ठिओ चउसु णायव्वो[1] ॥२४१॥

मूलप्रकृतिषु सामान्यबन्धस्थानानि अष्टकं ८ सप्तकं ७ षट्कं ६ एककं १ इति चत्वारि ८।७।६।१। मिथ्यात्वाऽऽद्यप्रमत्तान्ता अष्टौ कर्माणि बध्नन्ति ८ । ततः अपूर्वकरणाऽनिवृत्तिकरणौ आयुर्विना सप्त कर्माणि बध्नतः ७ । सूक्ष्मसाम्परायः षट् कर्माणि बध्नाति ६ । उपशान्तः एकं सातं बध्नाति १ । एतेषां च उपशमश्रेण्याऽवतरणे भुजाकारबन्धास्त्रयः $\frac{1\ 6\ 7}{6\ 7\ 8}$ । तद्यथा—उपशान्तो मुनिः एकं सातं कर्म बध्वा सूक्ष्म-साम्परायं गतः सन् आयुर्मोहद्वयं विना षट् कर्माणि बध्नाति ६ । सूक्ष्मसाम्परायो मुनिः कर्मषट्कं बध्वा अनिवृत्तिकरणमपूर्वकरणं च समागतः सन् आयुर्विना सप्त कर्माणि बध्नाति ७ । तत्र कर्मसप्तकं बध्वा अप्रमत्त-प्रमत्त-देशसंयताऽसंयत-सास्वादन-मिथ्यात्वगुणान् प्राप्तः सन् अष्टौ कर्माणि बध्नाति ८ । मिश्रे आयुर्विना

1. सं० पञ्चसं० ४, १११-११२ । 2. ४, ११३ ।

१. शतक० ४२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्त कर्माणि बध्नातीत्यर्थः। उपर्युपरि गुणस्थानारोहणे अल्पतरबन्धास्त्रयः ८ ७ ६ / ७ ६ १ । तथाहि—प्रमत्तोऽप्रमत्तो वा अष्टौ कर्माणि बध्नन् अपूर्वकरणेऽनिवृत्तिकरणे च चटितः सन् आयुर्विना सप्त कर्माणि बध्नाति ७ । तत्र कर्मसप्तकं बध्नन् सूक्ष्मसाम्पराये चटितः सन् आयुर्मोहद्वयं विना षट् कर्माणि बध्नाति ६ । सूक्ष्मसाम्परायस्थः कर्मषट्कं बध्नन् उपशान्तादिकं प्राप्तः सन् एकं सातं कर्म १ बध्नातीत्यर्थः । स्वस्थानेऽवस्थितबन्धाश्चत्वारो भवन्ति ८ ७ ६ १ / ८ ७ ६ १ । अल्पं बध्वा बहु बध्नतः भुजाकारो बन्धः १ । बहु बध्वाऽल्पं बध्नतोऽल्पतरबन्धः स्यात् २ । अल्पं बहु वा बध्वाऽनन्तरसमये तावदेव बध्नतोऽवस्थितबन्धः ३ । किमप्यऽबध्वा पुनर्बध्नतोऽवक्तव्यबन्धः ४ । किमपि बध्वाऽवक्तव्यबन्धनादयं भेदो मूलप्रकृतिबन्धस्थानेष्वस्ति ॥२४१॥

मूल प्रकृतियोंके प्रकृतिस्थान चार हैं, भुजाकार तीन हैं, अल्पतर तीन हैं, और अवस्थित-बन्ध चार जानना चाहिए ॥२४१॥

बंधट्ठाणाणि ८।७।६।१ भुजयारा १ ६ ७ / ६ ७ ८

अप्पयरा ८ ६ १ / ७ ६ १ अवट्ठिया ८ ७ ६ १ / ८ ७ ६ १

बन्धस्थानानि ८।७।६।१। भुजाकाराः १ ६ ७ / ६ ७ ८ अल्पतराः ६ ७ ८ / १ ६ ७ अवस्थिताः ८ ७ ६ १ / ८ ७ ६ १ ।

चार प्रकृतिबन्धस्थान इस प्रकार हैं—८।७।६।१।

तीन भुजाकार बन्ध इस प्रकार हैं—१।६।७। / ६।७।८।

तीन अल्पतर बन्ध इस प्रकार हैं—८।७।६। / ७।६।१।

चार अवस्थितबन्ध इस प्रकार हैं—८।७।६।१। / ८।७।६।१।

विशेषार्थ—उक्त अर्थका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्त-गुणस्थान तकके जीव आठों ही कर्मोंका बन्ध करते हैं। अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान वाले जीव आयुके विना शेष सात कर्मोंका बन्ध करते हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती जीव मोह और आयुके विना छह कर्मोंका बन्ध करते हैं। उपशान्तकषायादि तीन गुणस्थानवर्ती जीव एक सातावेदनीय कर्मका बन्ध करते हैं। इस प्रकार आठ, सात, छह और एक प्रकृतिरूप चार प्रकृतिबन्धस्थान होते हैं। इनके तीन भुजाकारबन्धोंका विवरण इस प्रकार है—उपशान्त-कषायसंयत एक सातावेदनीयकर्मका बन्ध करके उतरता हुआ जब दशवें गुणस्थानमें आता है, तब वहाँ वह मोह और आयुके विना शेष छह कर्मोंका बन्ध करने लगता है। यह एक भुजाकार-बन्ध हुआ। पुनः दशवें गुणस्थानसे भी नीचे आकर जब नवें और आठवें गुणस्थानको प्राप्त होता है, तब वहाँ पर आयुकर्मके विना शेष सात कर्मोंका बन्ध करने लगता है, यह छहसे सात कर्मके बाँधने रूप दूसरा भुजाकारबन्ध हुआ। पुनः वही जीव और भी नीचेके गुणस्थानोंमें उतरकर आठों कर्मोंका बन्ध करने लगता है। यह सातसे आठ कर्मके बाँधनेरूप तीसरा भुजाकार बन्ध हुआ। इसी प्रकार ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़नेपर तीन अल्पतर बन्धस्थान होते हैं—जैसे आठ कर्मका बन्ध करनेवाला कोई प्रमत्त या अप्रमत्तसंयत अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें चढ़कर आयुके विना सात कर्मोंका ही बन्ध करने लगता है। यह प्रथम अल्पतर बन्धस्थान हुआ। वही जीव दशवें गुणस्थानमें पहुँच कर मोह और आयुके विना छह कर्मोंका बन्ध करने

२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगता है। यह दूसरा अल्पतर बन्धस्थान हुआ। वही जीव ग्यारहवें या बारहवें गुणस्थानमें चढ़कर एक सातावेदनीय कर्मका बन्ध करने लगता है, तब तीसरा अल्पतर बन्धस्थान होता है। पूर्व समयमें आठों कर्मोंका बन्ध कर उत्तर समयमें भी आठों ही कर्मोंका बन्ध करना, पूर्व समयमें सात कर्मोंका बन्ध कर उत्तर समयमें भी सात ही कर्मोंका बन्ध करना, पूर्व समयमें छह कर्मोंका बन्ध कर उत्तर समयमें भी छह ही कर्मोंका बन्ध करना और पूर्व समयमें एक कर्मका बन्ध करके उत्तर समयमें भी एक ही कर्मका बन्ध करना; इस प्रकारसे चार अवस्थित बन्धस्थान होते हैं।

अब उत्तर प्रकृतियोंके प्रकृतिस्थान और भुजाकारादि बतलाते हैं—

[मूलगा० ४०][1]तिण्णि दस अट्ठ ठ्ठाणाणि दंसणावरण-मोह-णामाणं।
एत्थेव य भुजयारा सेसेसेयं हवइ ठाणं[1] ॥२४२॥

अथोत्तरप्रकृतीनां तत्समुत्कीर्त्तनमाह–दर्शनावरण-मोह-नामकर्मणां बन्धस्थानानि क्रमशः त्रीणि ३ दश १० अष्टौ ८ भवन्ति। तेन भुजाकारबन्धा अप्येष्वेव, नान्येषु। शेषेषु मध्ये ज्ञानावरणेऽन्तराये च पञ्चात्मकं एकं बन्धस्थानम्। गोत्राऽऽयुर्वेदनीयेष्वेकात्मकं चैकैकमेव बन्धस्थानं भवेदिति कारणम् ॥२४२॥

दर्शनावरण, मोहनीय और नामकर्मके क्रमशः तीन, दश और आठ प्रकृतिबन्धस्थान हैं। इनमें यथासम्भव भुजाकार बन्ध होते हैं। उक्त कर्मोंके सिवाय शेष पाँच कर्मोंके एक एक ही बन्धस्थान होता है ॥२४२॥

अब दर्शनावरणकर्मके तीन बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[2]णव छक्क चउक्कं च हि दंसणावरणस्स होंति ठाणाणि।
भुजयारप्पयरा दो अवट्ठिया होंति तिण्णेव ॥२४३॥

बंधट्ठाणाणि—९, ६, ४।

दर्शनावरणस्य त्रीणि स्थानानि कानि चेदाऽऽह—दर्शनावरणस्य बन्धस्थानानि त्रीणि भवन्ति—नवप्रकृतिकं ९। स्त्यानगृद्धित्रयेण विना षट्-प्रकृतिकं ६। पुनः निद्रा-प्रचले विना चतुःप्रकृतिकं ४ चेति त्रीणि। तेषां भुजाकारौऽल्पतरौ द्वौ, अवस्थितबन्धास्त्रयो भवन्ति। चशब्दादवक्तव्यबन्ध (?) एव स्युः ९।६।४ ॥२४३॥

दर्शनावरण कर्मके तीन बन्धस्थान हैं—नौ प्रकृतिरूप, स्त्यानगृद्धित्रिकके विना छह प्रकृतिरूप और निद्रा-प्रचलाके विना चार प्रकृतिरूप। इनमें दो भुजाकार, दो अल्पतर और तीन अवस्थित बन्ध होते हैं ॥२४३॥

दर्शनावरणके बन्धस्थान तीन हैं—९, ६, ४।

अब दर्शनावरणके भुजाकार बन्धोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

[3]चउ छक्कं बंधंतो छण्णव बंधेइ होंति भुजयारा।
विवरीया अप्पयरा णवाइ हु अवट्ठिया णेया ॥२४४॥

भुजयारा	४	६	अप्पयरा	९	६	अवट्ठिया	९	६	४
	६	९		६	४		९	६	४

1. सं० पञ्चसं० ४, ११४। 2. ४. ११५। 3. ४, ११६।

१. शतक० ४३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपशमश्रेण्यावरोहको मुनिरपूर्वकरणद्वितीयभागे चतुःप्रकृतिकं बध्नाति । तत्प्रथमे भागे अवतीर्णः षट्प्रकृतिकं बध्नाति ४/६ । प्रमत्तो देशसंयतो मिश्रो वा षट् प्रकृतिकं बध्नन् मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा वा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिः सास्वादनो भूत्वा नवप्रकृतिकं बध्नाति ६/९ । भुजाकारौ द्वौ भवतः ४/६ ६/९ । तद्विपरीतौ अल्पतरौ । प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखो मिथ्यादृष्टिरनिवृत्तिकरणलब्धिचरमसमये नवप्रकृतिकं बध्नन्ननन्तरसमयेऽसंयतो देशसंयतः प्रमत्तो वा भूत्वा षट्-प्रकृतिकं बध्नातीति ९/६ । तथोपशमकः क्षपको वाऽपूर्वकरणः प्रथमभागचरमसमये षट्-प्रकृतिकं बध्नन् द्वितीयभागप्रथमसमये चतुःप्रकृतिकं बध्नातीत्यल्पतरौ द्वौ भवतः ९/६ ६/४ । नवादयोऽवस्थितास्त्रयो ज्ञेयाः । तथाहि—मिथ्यादृष्टिः सासादनो वा नवप्रकृतिकं मिश्राद्यपूर्वकरणप्रथमभागान्तः षट्प्रकृतिकं ६/६ अपूर्वकरणद्वितीयभागादि-सूक्ष्मसाम्परायान्तः चतुःप्रकृतिकं च बध्नन् ४/४ अनन्तरसमये तदेव बध्नातीत्यवस्थितबन्धास्त्रयः ९/९ ६/६ ४/४ ॥२४४॥

उपशमश्रेणीसे उतरनेवाला जीव अपूर्वकरणके द्वितीय भागमें चार प्रकृतिक स्थानका बन्ध करके प्रथम भागमें उतरकर छह्-प्रकृतिक स्थानका बन्ध करने लगता है, यह प्रथम भुजाकार हुआ। पुनः और भी नीचे उतर कर मिथ्यादृष्टि होकर, अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वी सासादनसम्यग्दृष्टि होकर नौ प्रकृतिस्थानका बन्ध करने लगता है, यह दूसरा भुजाकार हुआ। इस प्रकार दर्शनावरणके दो भुजाकार बन्ध होते हैं। इससे विपरीत क्रममें अर्थात् क्रमशः ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़ने पर दो अल्पतर बन्ध होते हैं—नौ प्रकृतिक स्थानको बाँधकर छह प्रकृतिक स्थानके बाँधनेपर पहला अल्पतर बन्ध होता है। तथा छहको बाँधकर चारके बाँधने पर दूसरा अल्पतर बन्ध होता है। अवस्थित बन्ध तीन होते हैं—नौका बन्ध कर पुनः नौके बाँधने पर पहला, छहका बन्धकर पुनः छहके बाँधने पर दूसरा और चारका बन्धकर पुनः चारके बाँधने पर तीसरा ॥२४४॥

इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

अब दर्शनावरण कर्मके कितने प्रकृतिक स्थानका कहाँ तक बन्ध होता है, इस बातका निरूपण करते हैं—

[1]मिच्छा सासण णवयं मिस्साइ-अपुव्वपढमभायंता ।
थीणतिगूणं णिद्दादुगूण बंधंति सुहुमंता ॥२४५॥

मिथ्यात्व-सास्वादनस्थाः दर्शनावरणस्य नवप्रकृतिकं बन्धन्ति । मिश्राद्यपूर्वकरणगुणस्थानप्रथमभागपर्यन्तस्थाः जीवाः स्त्यानगृद्धित्रिकोनषट्प्रकृतिकं बन्धन्ति । अपूर्वकरणद्वितीयभागात् सूक्ष्मसाम्परायान्ता जीवा निद्रा-प्रचलोनचतुःप्रकृतिकं ४ बध्नन्ति ॥२४५॥

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव नौ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं। मिश्रगुणस्थानको आदि लेकर अपूर्वकरणके प्रथम भाग तकके जीव स्त्यानगृद्धित्रिकके विना छह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं। अपूर्वकरणके द्वितीय भागसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तकके जीव निद्राद्विकके विना चार प्रकृतिक स्थानका बन्ध करते हैं ॥२४५॥

1. सं० पञ्चसं० ४, ११७ ।

Jain Education International 	For Private & Personal Use Only 	www.jainelibrary.org

६।६।६।६।६।६।६ [1]अपुव्वपढमसत्तमभागे ६। अपुव्वविदियसत्तमभागप्पहुई जाव सुहुमंता ४।

मि० ६ सा० ६ मि० ६ अ० ६ दे० ६ प्र० ६। अपूर्वकरणस्य प्रथमभागे ६। अपूर्वकरणस्य द्वितीयादिसप्तभागप्रभृतिसूक्ष्मान्ताः ४।

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान— १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ प्रथम भाग ८ द्वितीयादिभाग ९ १०

बन्धस्थान— ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ६ ४ ४ ४

अब मोहकर्मके बन्धस्थान और भुजाकारादिका निरूपण करते हैं—

[2]दस बंधट्ठाणाणि मोहस्स हवंति वीस भुजयारा।
एयारप्पयराणि य अवट्ठिया होंति तेत्तीसा ॥२४६॥

अथ मोहनीयस्य स्थानादिसमुत्कीर्तनं—मोहनीयस्य कर्मणो बन्धस्थानानि दश भवन्ति १०। किं स्थानम्? एकस्य जीवस्य एकस्मिन् समये सम्भवतीनां प्रकृतीनां समूहः। तत्स्थानसमुत्कीर्तनम्। मोहनीयस्य विंशतिः भुजाकारबन्धाः २०। अल्पतरबन्धा एकादश ११ अवस्थितबन्धास्त्रयस्त्रिंशत् ३३ भवन्ति ॥२४६॥

मोहकर्मके बन्धस्थान दश होते हैं। तथा भुजाकार बीस, अल्पतर ग्यारह और अवस्थित बन्ध तेतीस होते हैं ॥२४६॥

अब मोहके दश बन्धस्थानो को बतलाते हैं—

बावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच।
चउ तिय दुयं च एक्कं बंधट्ठाणाणि मोहस्स[1] ॥२४७॥

२२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१।

दश बन्धस्थानानि कानि चेदाऽऽह—मोहस्य बन्धस्थानानि द्वाविंशतिकं एकविंशतिकं सप्तदशकं त्रयोदशकं नवकं पञ्चकं चतुष्कं त्रिकं द्विकं एककं चेति दश १०। मिथ्यादृष्टौ द्वाविंशतिकं २२ सास्वादने विंशतिकं २१ मिश्रासंयतयोः सप्तदशकं १७ देशसंयते त्रयोदशकं १३ प्रमत्तेऽप्रमत्तेऽपूर्वकरणे च प्रत्येकं नवकं ९ अनिवृत्तिकरणे पञ्चकं ५ चतुष्कं ४ त्रिकं ३ द्विकं २ एककं १ च ॥२४७॥

२२ २१ १७ १३ ९ ५ ४ ३ २ १

बाईस, इक्कीस, सत्तरह, तेरह, नौ, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिरूप मोहके दश बन्धस्थान होते हैं ॥२४७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—२२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १।

अब उक्त बन्धस्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश करते हुए उनके गुणस्थानादिका निरूपण करते हैं—

[3]मिच्छम्मि य बावीसा मिच्छा सोलस कसाय वेओ य।
हस्साइजुयलेकणिंदा भएण' विदिए दु मिच्छ-संढूणा ॥२४८॥

मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं १ षोडश कषायाः १६ वेदानां त्रयाणां मध्ये एकतरवेदः १ हास्यरतियुग्माऽरतिशोकयुग्मयोर्मध्ये एकतरयुग्मं २ निन्दाभयेन सहितं युग्मं २ इति मिलिते द्वाविंशतिकं स्थानं मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति। १ १६ १ २ २ मीलिताः २२। 'विदिए दु मिच्छ-संढूणा' इति सासादने द्वितीये मिथ्यात्वेन रहितमेकविंशतिकम्। षण्ढोना षण्ढस्य मिथ्यात्वे व्युच्छेदः। स्त्री-पुंवेदयोर्मध्ये एकतरवेदः ॥२४८॥

---

1. सं० पञ्चसं० 'अपूर्व प्रथम' इत्यादि गद्यभागः। (पृ० ११७)। 2. ४, ११८। 3. ४, ११९।

1. गो० क० ४६३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्व गुणस्थानमें बाईस प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। वे बाईस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—मिथ्यात्व, सोलह कषाय, तीन वेदोंमेंसे एक वेद, हास्यादि दो युगलोंमेंसे एक युगल और भय-जुगुप्सा। दूसरे गुणस्थानमें मिथ्यात्वको छोड़कर शेष इक्कीस प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध होता है। यहाँ नपुंसक वेदका भी बन्ध नहीं होता है, अतएव दो वेदोंमेंसे किसी एक वेदको ही लेना चाहिए ॥२४८॥

२
२ २
१।१६।१।२।२ मेलिया २२ मिच्छम्मि २२। पच्छायारो १ १ १ भंगा ६। सासणे २१।
४ ४ ४ ४
१

२
२ २
पत्थायारो जहा १ १ ० । भंगा ४।
४ ४ ४ ४

२ भ
२ २
मिथ्यात्वे प्रस्तारः १ १ १ तद्भङ्गाः हास्यारतिद्विकाभ्यां वेदत्रये हते षट् २ ६ २।
४ ४ ४ ४
मि० १

२
२ २ सासादने षोडश कषायाः १६ वेदयोर्मध्ये एकतरवेदः १ हास्यादियुग्मं २
प्रस्तारः १ १ ० भयद्वयम् २ १६ १ २ २ मीलिताः २१। तद्भङ्गाः वेदद्वययुग्मजाः
४ ४ ४ ४ चत्वारः ४।

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार हैं—मि० कषाय वेद हा० भय०
१ + १६ + १ + २ + २ = २२

प्रस्तारका आकार मूलमें दिया है। मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीन वेदोंसे हास्यादि दो युगलोंके गुणा करने पर छह भंग होते हैं। सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्वके विना शेष इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। प्रस्तारकी रचना मूलमें दी है। यहाँ नपुंसकवेदके बन्ध न होनेसे दो वेदोंको हास्यादि दो युगलोंसे गुणा करने पर चार भंग होते हैं।

[1]पढमचउक्केणित्थी-रहिया मिस्से †अविरयसम्मे य।
बिदिएणूणा देसे छट्ठे तइऊण सत्तमट्ठे य ॥२४९॥

मिश्रगुणस्थाने अविरतसम्यग्दृष्टौ च अनन्तानुबन्धि-प्रथमचतुष्कं विना शेषाः सप्तदश। स्त्रीवेदः सासादने विच्छिन्नः, पुंवेदः एक एव १। देशसंयमेऽप्रत्याख्यानद्वितीयचतुष्कं विना त्रयोदश १३। षष्ठे प्रमत्तेऽप्रमत्ते सप्तमे अष्टमेऽपूर्वकरणे च प्रत्याख्यानतृतीयचतुष्कं विना शेषा नवैव ९ ॥२४९॥

मिश्र और अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें प्रथम चतुष्क अर्थात् अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विना सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ पर स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता, केवल एक पुरुष-

1. सं० पञ्चसं० ४, १२०।
† ब -स्सेऽवि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदका ही बन्ध होता है। देशविरत गुणस्थानमें द्वितीय चतुष्क अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण चौकड़ीके विना शेष तेरह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। छठे, सातवें और आठवें गुणस्थानमें तृतीय चतुष्क अर्थात् प्रत्याख्यानावरण चौकड़ीके विना नौ प्रकृतियोंका बन्ध होता है ॥२४९॥

मिस्सासंजयाणं १७। पत्थायारो जहा

२
२ २
० १ ०
३ ३ ३ ३

। भंगा २। देसे १३। पत्थायारो

२
२ २
० १ ०
२ २ २ २

भंगा २। पमत्ते ९। पत्थायारो

२
२ २
० १ ०
१ १ १ १

भंगा २।

मिश्राऽसंयतयोः प्रस्तारौ यथा—

२
२ २
० १ ०
३ ३ ३ ३

हास्यारतिद्विकजौ द्वौ द्वौ भङ्गौ $\frac{१७}{२}$ $\frac{१७}{२}$ ।

देशसंयते १३ प्रस्तारः—

२
२ २
० १ ०
२ २ २ २

तद्भङ्गौ द्विकद्वयजौ [द्वौ] $\frac{१३}{२}$ ।

प्रमत्ते ९ प्रस्तारः—

२
२ २
० १ ०
१ १ १ १

तद्भङ्गौ द्विकजौ $\frac{९}{२}$ ।

मिश्र और अविरत गुणस्थानमें सत्तरह-सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इनके प्रस्तारकी रचना मूलमें दी है। यहाँपर हास्यादि दो युगलोंकी अपेक्षा भंग दो-दो ही होते हैं। देशविरत गुणस्थानमें तेरह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। प्रस्तारकी रचना मूलमें दी है। भंग पूर्ववत् दो ही होते हैं। प्रमत्तविरतमें नौ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। प्रस्तारकी रचना मूलमें दी है। यहाँ पर भी भंग दो ही होते हैं।

[1]अरई सोएणूणा परम्मि पुंवेय संजलणा।
एगेणूणा एवं दह ठाणा मोहबंधम्मि ॥२५०॥

प्रमत्तेऽरति-शोकद्वयबन्धविच्छिन्नत्वादप्रमत्तापूर्वकरणयोः अरतिशोकोनाः। एवं सति संख्यामध्ये भेदो न, संख्या तावन्मात्रा ९। किन्तु भङ्ग एक एव। परस्मिन् अनिवृत्तिकरणस्य पञ्चसु भागेषु पुंवेद-संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभानां मध्ये क्रमेणैकोनाः। एवं मोहबन्धे दश स्थानानि ॥२५०॥

प्रमत्तविरतमें अरति और शोक युगलकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेसे सातवें और आठवें गुणस्थानमें उनका बन्ध नहीं होता, अतएव उनमें एक-एक ही भंग होता है। इससे परे नवें गुणस्थानमें पुरुषवेद और संज्वलनचतुष्क, इन पाँचका बन्ध होता है, तथा पुरुषवेद आदि एक-

1. सं० पञ्चसं० ४, १२१-१२२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक प्रकृतिके बन्ध कम होते जानेसे चार, तीन, दो और एक प्रकृतिका भी बन्ध होता है। इस प्रकार सर्व मिलाकर मोहनीय कर्मके दश बन्धस्थान होते हैं ॥२५०॥

अप्पमत्तापुव्वाणं ९ । पत्थारारो जहा २ २ १ १ १ १ १ भंग। १ अणियट्टियम्मि ५।४।३।२।१। पत्थयारो १ १ १ १ १ ।

अप्रमत्तापूर्वकरणयोः ९ । संज्वलन ४ भयद्विकेषु २ वेद १ हास्यद्विके २ च मिलिते नवकम् ९ । प्रस्तारो यथा— २ २ ० १ ० १ १ १ १ तद्भङ्गः एकः । अत्र हास्यद्वक-भयद्विके व्युच्छिन्ने अनिवृत्तिकरणस्य पञ्चसु भागेषु ५ ४ ३ २ १ प्रस्तारः— ० १ ० १ १ १ १

चतुःसंज्वलनकषायेषु पुंवेदे मिलिते पञ्चकम् । तद्भङ्गः— ५ १ । अत्र प्रथमे भागे पुंवेदो व्युच्छिन्नः । द्वितीये भागे कषायचतुष्कम् । तद्भंगः— ४ १ । अत्र क्रोधो व्युच्छिन्नः । तृतीयभागे कषायत्रयम् । भङ्ग एकः ३ १ । अत्र मानो व्युच्छिन्नः । चतुर्थभागे कषायद्वयम् । भङ्ग एकः २ १ । अत्र माया व्युच्छिन्ना । पञ्चमभागे लोभः । एकभङ्गः १ १ ।

अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणमें नौ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इनकी प्रस्ताररचना मूलमें दी है। यहाँ पर भंग एक-एक ही होता है। अनिवृत्तिकरणके पाँचों भागोंमें क्रमशः पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिका बन्ध होता है। इनकी प्रस्ताररचना मूलमें दी है।

अब मोहनीय कर्मके सर्व बन्धस्थानोंके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]छव्वावीसे चउ इगिवीसे सत्तरस तेर दो दो दु ।
णवबंधए वि एवं एगेगमदो परं भंगा ॥२५१॥

६।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

उक्तभङ्गसंख्यामाह—मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणान्तेषु उक्तमोहनीयबन्धस्थानेषु भङ्गाः—द्वाविंशतिके षट् भङ्गाः ६ । एकविंशतिके चत्वारो भङ्गाः ४ । सप्तदशके द्विवारं द्वौ द्वौ भङ्गौ २ । २ । त्रयोदशके नवकबन्धेऽपि प्रमत्तपर्यन्तं द्वौ द्वौ भङ्गौ २।२ अन्त उपरि सर्वस्थानेषु एकैको भङ्गः १ ॥२५१॥

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	अनि०	अनि०	अनि०	अनि०
२२	२१	१७	१७	१३	९	९	९	५	४	३	२	१
६	४	२	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१

बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमें छह भंग होते हैं, इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें चार भंग होते हैं। सत्तरह, तेरह और नौ प्रकृतिक बन्धस्थानमें दो-दो भंग होते हैं। इससे परवर्ती पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बन्धस्थानोंमें एक-एक ही भंग होता है ॥२५१॥

इन भंगोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—६।४।२।२।२।२।१।१।१।१।१।

1. सं० पञ्चसं० ४, १२३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मोहनीयकर्मके बीस भुजाकार बन्धोंका निरूपण करते हैं—

[1]एकाई पणयंतं ओदरमाणो दुगाइणवयंतं ।
बंधंतो बंधेइ सत्तरसं वा सुरेसु उववण्णो ॥२५२॥

अल्पप्रकृतिकं बध्नन् अनन्तरसमये बहुप्रकृतिकं च बध्नाति, तदा भुजाकारबन्धः स्यात् । मोहनीयस्य विंशतिः भुजाकारबन्धाःकथ्यन्ते—एकादिपञ्चान्तं अधोऽवतरन् अनिवृत्तिकरणः बध्नन् द्विकादि-नवान्तं बध्नाति । वा अथवा सुरे देवलोके वैमानिकेऽसंयतदेव उत्पन्नः सप्तदश बध्नाति ॥२५२॥

उपशमश्रेणीसे उतरनेवाला अनिवृत्तिकरणसंयत एकको आदि लेकर पाँच प्रकृतिपर्यन्त स्थानोंका बन्ध करता हुआ दो को आदि लेकर नौ प्रकृतिपर्यन्त स्थानोंका बन्ध करता है, अथवा देवोंमें उत्पन्न होता हुआ सत्तरह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है ॥२५२॥

अणियट्टी एयं बंधंतो हेट्ठा ओदरिय दुविहं बंधइ । तत्थेव कालं काऊण देवेसुप्पण्णो सत्तरसं वा बंधइ । एवं सव्वत्थ उच्चारणीयं ।

	१	२	३	४	५
मोहभुजयारा—	२	३	४	५	६
	१७	१७	१७	१७	१७

अनिवृत्तिकरणः एकं बध्नन् अधः उत्तीर्य द्विविधं २ बध्नाति । वा अथवा तत्रैवैकबन्धस्थानकेऽधोऽवरतन् संज्वलनलोभ-मायाद्वयं बध्नन् कालं कृत्वा मरणं प्राप्य वैमानिकदेवे उत्पन्नः सप्तदशकं १७ बध्नाति । एवं सर्वत्रोच्चारणीयम् ।

	१	२	३	४	५
मोहभुजाकाराः—	२	३	४	५	६
	१७	१७	१७	१७	१७

अनिवृत्तिकरणसंयत एक संज्वलन लोभका बन्ध करता हुआ नीचे उतरकर संज्वलन माया और लोभरूप दो प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है । अथवा यदि वह बद्धायुष्क है और यदि आयुका क्षय हो जाता तो यहीं पर मरण कर वैमानिक देवोंमें उत्पन्न होता हुआ सत्तरह प्रकृतिकस्थानका बन्ध करता है । इस प्रकार एकका बन्ध कर दो प्रकृतिकस्थानके बाँधनेपर एक भुजाकार बन्ध हुआ, तथा सत्तरह प्रकृतिक स्थानके बाँधने पर दूसरा भुजाकार बन्ध हुआ । इस प्रकार एक प्रकृतिक स्थानके दो भुजाकार बन्ध होते हैं । इसी प्रकार सर्वत्र उच्चारण करना चाहिए । अर्थात् दो, तीन, चार और पाँच प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता हुआ अनिवृत्तिकरण-संयत क्रमशः तीन, चार, पाँच और नौ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है, अथवा मरणकर देवोंमें उत्पन्न होके सत्तरह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है । अतएव दो, तीन, चार और पाँच प्रकृतिक स्थानके भी दो-दो भुजाकार बन्ध होते हैं । इस प्रकार ये सर्व मिलकर दश भुजाकार हो जाते हैं । इनकी अकसंदृष्टि मूलमें दी गई है ।

अब आधी गाथाके द्वारा शेष भुजाकारोंका वर्णन करते हैं—

णवगाई बंधंतो सव्वे हेट्ठाणि बंधदे जीवो ।

	९	१३	१७	२१
	१३	१७	२१	२२
भुजयारा—	१७	२१	२२	
	२१	२२		
	२२			

1. सं० पञ्चसं० ४, १२४-१२६ ।

['णवगाई बंधंतो' इत्यादि ।] नवकाद्येकविंशतिपर्यन्तं बध्नतः सर्वाधोऽधः स्थानानि जीवो बध्नाति ।

भुजाकाराः—	प्र०	६	१३	१७	२१
	दे०	१३	१७	२१	२२
	अ०	१७	२१	२२	
	मि०	१७	२२		
	सा०	२१			
	मि०	२२			

तद्यथा—विंशतिर्भुजाकाराणां सम्भवत्प्रकारः पुनः विशदतयोच्यते—अवरोहकानिवृत्तिकरणो मुनिः संज्वलनलोभमेकं १ बध्नन् अधस्तनभागेऽवतीर्य मायासहितं द्विकं २ बध्नाति । वा स यदि बद्धायुष्को म्रियते तदा देवासंयतो भूत्वा सप्तदशकं १७ बध्नातीत्येकबन्धके भुजाकारौ द्वौ १ २ १७ । पुनः तद्द्वयं संज्वलनलोभ-मायाद्वयं २ बध्नन् अवतीर्याऽधोभागे मानसहितं त्रिकं बध्नाति । वा तथा देवासंयतो भूत्वा सप्तदश बध्नातीति द्विकबन्धके द्वौ भुजाकारौ २ ३ १७ । पुनः संज्वलनलोभ-माया-मानत्रयं बध्नन्नवतीर्याधस्तनभागे चतुः-संज्वलनान् ४ बध्नाति । वा देवासंयतो भूत्वा सप्तदश च बध्नातीति त्रिबन्धके भुजाकारौ द्वौ ३ ४ १७ । पुनः संज्वलनचतुष्कं बध्नन्नवतीर्याधस्तनभागे पुंवेदसहितं पञ्चकं ५ बध्नाति । वा [देवाऽ] संयतो भूत्वा सप्तदश बध्नातीति चतुष्कबन्धके द्वौ भुजाकारौ ४ ५ १७ । पुनस्तत्पञ्चकं बध्नन्नवतीर्यापूर्वकरणे नवकं बध्नाति । वा देवासंयतो भूत्वा सप्तदश बध्नातीति पञ्चबन्धके द्वौ भुजाकारौ ५ ९ १७ ।

पुनः अपूर्वकरणोऽप्रमत्तः प्रमत्तो वा नवकं ९ बध्नन् क्रमेणावतीर्य देशसंयतो भूत्वा त्रयोदश १३, वा देवासंयतो भूत्वा सप्तदश १७, वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वः स सासादनो भूत्वा एकविंशतिं २१, वा वेदकसम्यक्त्वी मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा द्वाविंशतिं च बध्नाति । एवं नवकबन्धके चत्वारो भुजाकारबन्धाः ९ १३ १७ २१ २२ । पुनस्त्रयोदश १३ बन्धको देशसंयतोऽसंयतो देवासंयतो वा भूत्वा सप्तदश १७, वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वः सः सासादनो भूत्वा एकविंशतिं २१, वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वो वेदकसम्यक्त्वश्च स मिथ्यादृष्टि-र्भूत्वा द्वाविंशतिं च बध्नातीति त्रयोदशके त्रयो भुजाकारबन्धाः १३ १७ २१ २२ । पुनस्तत्सप्तदशक १७ बन्धकः प्रथमोपशमसम्यक्त्वः सासादनो भूत्वा एकविंशतिं २१, वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वो वेदकसम्यक्त्वो मिश्रश्च मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा द्वाविंशतिं २२ च बध्नातीति सप्तदशबन्धे द्वौ भुजाकारौ १७ २१ २२ । पुनस्तदेकविंशतिं २१ बध्नन्

२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टिर्भूत्वाऽस्मिन् अन्यस्मिन् वा भवे द्वाविंशतिं बध्नातीति एकविंशतिबन्धे एको भुजाकारबन्धः $\frac{२१}{२२}$ । एवं भुजाकाराः विंशतिः २० ॥२५२½॥

नौ आदि स्थानोंका बन्ध करता हुआ जीव अधस्तन सर्व स्थानोंका बन्ध करता है ॥२५२½॥

विशेषार्थ—नौ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करनेवाला जीव नीचे उतरकर पाँचवें गुणस्थानमें पहुँचनेपर तेरहका, चौथे गुणस्थानमें पहुँचने पर सत्तरहका, दूसरे गुणस्थानमें पहुँचनेपर इक्कीसका और पहले गुणस्थानमें पहुँचने पर बाईसका बन्ध करता है। इसी प्रकार तेरह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करनेवाला जीव नीचे उतरता हुआ सत्तरह, इक्कीस और बाईसका बन्ध करता है। सत्तरह प्रकृतिका बाँधनेवाला नीचे उतरकर इक्कीस और बाईसका बन्ध करता है, तथा इक्कीसवाला नीचे उतरकर बाईसका बन्ध करता है। इस प्रकार ये सर्व मिल दश भुजाकार होते हैं। इनमें ऊपर बतलाये गये दश भुजाकारोंके मिला देनेपर समस्त भुजाकार बन्धोंकी संख्या बीस हो जाती है।

अब मोहकर्मके ग्यारह अल्पतर बन्धोंका तथा दो अवक्तव्य भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]बावीसं बंधंतो सत्तरस तेरस णवाणि बंधेइ ॥२५३॥

अप्पयरा— २२ / १७ / १३ / ९

[2]सत्तरसं बंधंतो बंधइ तेरह णवाणि अप्पयरो।
तेरहविहबंधंतो बंधइ णवयं तमेव पणयं वा ॥२५४॥

अप्पयरा— $\frac{१७}{१३}$ $\frac{१३}{९}$ $\frac{९}{५}$; $\frac{१७}{९}$

[3]तं बंधंतो चउरो बंधइ तं चिय तियं दुयं तमेक्कं च।
उवरदबंधो हेट्ठा एक्कं सत्तरस सुरेसु अवत्तव्वा ॥२५५॥

अप्पयरा— $\frac{५}{४}$ $\frac{४}{३}$ $\frac{३}{२}$ $\frac{२}{१}$

अथैकादशाल्पतरबन्धा उच्यन्ते—['बावीसं बंधंतो' इत्यादि।] अल्पतरबन्धास्त्रयोऽनादिः सादिर्वा मिथ्यादृष्टिः करणत्रयं कुर्वन्ननिवृत्तिकरणलब्धिचरमसमये द्वाविंशतिकं बध्नन् अनन्तरसमये प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा, वा सादिमिथ्यादृष्टिरेव सम्यक्त्वप्रकृत्युदये सति वेदकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा भूयोऽप्यप्रत्याख्यानोदयेऽसंयतो भूत्वा सप्तदशकं १७ बध्नाति। वा प्रत्याख्यानोदये देशसंयतो भूत्वा त्रयोदशकं १३ बध्नाति। वा संज्वलनोदयेऽप्रमत्तो भूत्वा नवकं ९ बध्नातीति द्वाविंशतिके त्रयोऽल्पतरबन्धाः २२ / १७ / १३ / ९। पुनर्वेदकसम्यग्दृष्टिः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वाऽसंयतः सप्तदशकं १७ बध्नन् देशसंयतो भूत्वा त्रयोदशकं १३, वा प्रमत्तो भूत्वा नवकं ९ च बध्नातीति सप्तदशकबन्धे द्वौ अल्पतरौ १७ / १३ / ९। पुनस्त्रयोदशकबन्धकोऽ १३ प्रमत्तो

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १३०। 2. ४, १३१। 3. ४, १३२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूत्वा नवकं बध्नाति ९। नवकबन्धकोऽपूर्वकरणोऽनिवृत्तिकरणप्रथमभागं प्राप्तः प्रकृतिपञ्चकं बध्नाति ९/५ [इति] सप्तदशकबन्धे द्वौ २, त्रयोदशकबन्धे एकः १, नवकबन्धे एकः। एवं अल्पतराश्चत्वारः— १७/१३/९ १३/९ ९/५। तत्पञ्चकं बध्नन् पञ्चकबन्धकः अनिवृत्तिकरणस्य द्वितीयभागे चत्वारि बध्नाति ५/४। चतुर्बन्धकस्तृतीयभागे त्रीणि बध्नाति ४/३। त्रिबन्धकश्चतुर्थभागे द्वे बध्नाति ३/२। द्विबन्धकः पञ्चमभागे एकं बध्नाति २/१। इति एकैकाल्पतरबन्धाश्चत्वारः। इति द्वाविंशतिकबन्धादि-द्विबन्धान्तेषु अल्पतरबन्धा एकादश ११ भवन्ति। बहुप्रकृतिकं बध्नन् अनन्तरसमयेऽल्पप्रकृतिकं बध्नाति, तदाल्पतरबन्धः स्यात्। अवक्तव्यभुजाकारौ द्वौ। उपरतबन्धोऽबन्धः सन् उपशमश्रेण्याऽधोऽवतीर्य सूक्ष्मसाम्परायोऽस्तमोहबन्धोऽवतरणेऽनिवृत्तिकरणो भूत्वा एकं संज्वलनलोभं बध्नातीत्येकः। स एव यदि बद्धायुष्क आरोहणेऽवरोहणे वा म्रियते, तदा देवासंयतो भूत्वा द्विधा सप्तदशकं बध्नातीति द्वौ ॥२५२३-२५५॥

बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानका बाँधनेवाला जीव ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़कर सत्तरह, तेरह और नौ प्रकृतिक स्थानोंका बन्ध करता है। सत्तरह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करनेवाला जीव ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़कर तेरह और नौ प्रकृतिक स्थानोंका बन्ध करता है। तेरह प्रकृतिक स्थानका बन्ध करनेवाला नौ प्रकृतिक स्थानको बाँधता है। नौ प्रकृतिक स्थानका बन्ध करनेवाला पाँच प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है। पाँच प्रकृतिक स्थानका बन्धक चार प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है। चार प्रकृतिक स्थानका बन्धक तीन प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है। तीन प्रकृतिक स्थानका बन्धक दो प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है और दो प्रकृतिक स्थानका बन्धक एक प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है। इस प्रकार सर्व मिलकर ग्यारह अल्पतर बन्धस्थान हो जाते हैं। उपरत बन्धवाला नीचे उतरकर एकका और देवोंमें उत्पन्न होकर सत्तरहका बन्ध करता है। ये दो अवक्तव्य बन्ध हैं ॥२५२३-२५५॥

[1]उवसंतकसायो हेट्ठा ओदरिय अहवा सुहुमुवसामओ हेट्ठा ओदरिय अणियट्टी होऊण एयं बंधइ। अहवा सुहुमुवसामओ कालं काऊण देवेसुप्पण्णो सत्तरसं बंधइ। अवत्तव्वभुजयारा— ०/१/१७। भुजयार-अप्पयरावत्तव्वसमासेण अवट्ठिया होंति ३३।

उपशान्तकषायादधोऽवतीर्य सूक्ष्मसाम्परायाद्वाऽधोऽवतीर्य अनिवृत्तिकरणो भूत्वा एकं संज्वलनलोभं बध्नाति। अथवा सूक्ष्मसाम्परायो मुनिः कालं कृत्वा मरणं प्राप्य देवासंयतो भूत्वा सप्तदशकं १७ बध्नातीति अवक्तव्यभुजाकारौ द्वौ २। ०/१ ०/१। १७ १७

भुजाकारा विंशतिः २०, अल्पतरबन्धा एकादश ११, अवक्तव्यौ २। एवं सर्वे एकीकृताः संक्षेपेणावस्थितबन्धास्त्रयस्त्रिंशत् ३३ भवन्ति ॥२५५॥

मोहकर्मके बन्धसे रहित एकादशम गुणस्थानवर्ती उपशान्तकषाय संयत नीचे उतरकर अथवा सूक्ष्मसाम्पराय-उपशामक नीचे उतरकर अनिवृत्तिकरण संयत होकर एक प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है। अथवा सूक्ष्मसाम्पराय-उपशामक मरण कर देवोंमें उत्पन्न होने पर सत्तरह

1. सं० पञ्चसं० ४, १३३-१३५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिक स्थानका बन्ध करता है। इस प्रकार दो अवक्तव्य भुजाकार बन्धस्थान होते हैं। इस प्रकार भुजाकार बीस, अल्पतर ग्यारह और अवक्तव्य दो; ये सर्व मिलाकर तैतीस अवस्थित बन्धस्थान होते हैं।

अब नामकर्मके बन्धस्थान आदिका वर्णन करते हैं—

[1]अट्ठ य बंधट्ठाणा बावीस हवंति णामभुजयारा।
इगिवीसं अप्पयरा अवट्ठिया होंति छायाला ॥२५६॥

बंध० ८। भुज० २२। अप्प० २१। अव० ४६।

अथ नामकर्मणो बन्धस्थान-भुजाकाराऽल्पतराऽवस्थितबन्धभेदानाऽऽह—नामकर्मणोऽष्टौ बन्धस्थानानि भवन्ति ८। द्वाविंशतिर्भुजाकारबन्धाः २२। एकविंशतिरल्पतरबन्धाः २१। षट्चत्वारिंशदवस्थितबन्धाश्च ४६ भवन्ति ॥२५६॥

८।२२।२१।४६

नामकर्मके प्रकृति-बन्धस्थान आठ होते हैं। भुजाकार बाईस, अल्पतर इक्कीस और अवस्थित बन्धस्थान छयालीस होते हैं ॥२५६॥

प्रकृतिबन्धस्थान ८। भुजाकार २२। अल्पतर २१। अवस्थित ४६।

[2]तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठवीसमुगुतीसं।
तीसेक्कतीसमेयं बंधट्ठाणाणि णामस्स[1] ॥२५७॥

२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।

कानि नाम्नः बन्धस्थानानि ? ['तेवीसं पणुवीसं' इत्यादि।] त्रयोविंशतिकं २३ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशतिकं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ एककं १ चैत्यष्टौ बन्धस्थानानि २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। आद्यानि सप्त बन्धस्थानानि मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणषड्भागपर्यन्तं यथासम्भवं बध्यन्ते। एककं यशस्कीर्त्तित्वं १ उपशम-क्षपकश्रेण्योरपूर्वकरणसप्तमभागस्य प्रथमसमयं प्रारभ्य सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमयपर्यन्तं बध्यते ॥२५७॥

तेईस, पच्चीस, छव्वीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस और एक प्रकृतिक इस प्रकार ये आठ नामकर्मके बन्धस्थान होते हैं ॥२५७॥

उनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— २३ २५ २६ २८ २९ ३० ३१ १।

अब नामकर्मके भुजाकार बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

जसकित्ती बंधंतो अडवीसाई हु एक्कतीसंता।
तेवीसाई बंधइ तीसंता हवंति भुजयारा ॥२५८॥
इगितीसंता बंधइ बंधतो अट्ठवीसाई।

भुजयारा जहा—

	१	२३	२५	२६	२८	२९	३०
	२८	२५	२६	२८	२९	३०	३१
भुजयारा जहा—	२९	२६	२८	२९	३०	३१	
	३०	२८	२९	३०	३१		
	३१	२९	३०				
		३०					

1. सं० पञ्चसं० ४, १८९। 2. ४, १३६।

१. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ६०। गो० क० ५२१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वाविंशतिर्भुजाकारबन्धा उच्यन्ते—['जसकित्ती बंधंतो' इत्यादि ।] अल्पतरप्रकृतिकं बद्ध्वा बहुप्रकृतिकं बध्नातीति भुजाकारबन्धः स्यात् । एकां यशस्कीर्त्तिं बध्नन् अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ च बध्नाति । तथाहि—उपशमश्रेण्यधोऽवतीर्णोऽपूर्वकरणस्थो मुनिः कश्चिदेकविधं यशस्कीर्त्तिनाम बध्नन् देवगतियुतमष्टाविंशतिकं स्थानं बध्नाति । तत्किम् ? देवगति-देवगत्यानुपूर्व्ये २ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गयुग्मं २ तैजस-कार्मणयुग्मं २ समचतुरस्रसंस्थानं १ त्रसचतुष्कं ४ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ स्थिरं १ शुभं १ सुभगं १ सुस्वरं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ यशःकीर्त्तिः १ आदेयं १ निर्माणं १ चेत्यष्टाविंशतिकं बध्नाति २८ । तथाविधोऽपूर्वकरणः कश्चिन्मुनिरेकां यशस्कीर्त्तिं बध्नन् तदेवाष्टाविंशतिकं तीर्थंकरत्वयुतमेकोनत्रिंशत्कं बध्नाति २९ । तथोपशमश्रेण्यवरोहकापूर्वकरणः एकाद्येककं यशस्कीर्त्तित्वं बध्नन् तदेवाष्टाविंशतिकं आहारयुग्मयुतं त्रिंशत्कं ३० बध्नाति । तथाविधोऽपूर्वकरणो यशस्कीर्त्तिमेकां बध्नन् तदेवाष्टाविंशतिकं तीर्थंकरत्वाऽऽहारकयुग्मसहितमेकत्रिंशत्कं बध्नाति ।

इति चत्वारो भुजाकारा भवन्ति $\begin{matrix}1\\28\\29\\30\\31\end{matrix}$ ।

'तेवीसाई बंधइ तीसंता हवंति भुजयारा' इति त्रयोविंशकादीनि स्थानानि बध्नन् त्रिंशत्कान्तानि बध्नाति । तथाहि—त्रयोविंशतिकं बध्नन् पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० बध्नातीति पञ्च भुजाकाराः ५। $\begin{matrix}23\\25\\26\\28\\29\\30\end{matrix}$ । पञ्चविंशतिकं बध्नन् षड्विंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं च बध्नातीति चत्वारो भुजाकाराः $\begin{matrix}25\\26\\28\\29\\30\end{matrix}$ । षड्विंशतिकं बध्नन् अष्टाविंशतिकं २८ नवविंशतिकं २९ त्रिंशत्कं च बध्नातीति त्रयो भुजाकाराः $\begin{matrix}26\\28\\29\\30\end{matrix}$ । एवं षोडश भुजाकारा भवन्ति।

अष्टाविंशतिकादीनि बध्नन् एकत्रिंशत्कान्तानि बध्नाति । तथाहि—अष्टाविंशतिकं बध्नन् एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ च बध्नाति $\begin{matrix}28\\29\\30\\31\end{matrix}$ । एकोनत्रिंशत्कं बध्नन् त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ च बध्नाति $\begin{matrix}29\\30\\31\end{matrix}$ ।

त्रिंशत्कं बध्नन् एकत्रिंशत्कं बध्नाति $\begin{matrix}30\\31\end{matrix}$ ॥२५८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वाविंशतिभुजाकाराणामेकत्र रचना——

४	५	४	३	३	२	१
भु	भु	भु	भु	भु	भु	भु
१	२३	२५	२६	२८	२९	३०
२८	२५	२६	२८	२९	३०	३१
२९	२६	२८	२९	३०	३१	
३०	२८	२३	३०	३१		
३१	२९	३०				
	३०					

उपशम श्रेणीसे उतरने वाला अपूर्वकरणसंयत एक यशस्कीर्त्तिका बन्ध करता हुआ अट्ठाईसको आदि लेकर इकतीस तकके स्थानोंको बाँधता है। इसी प्रकार तेईस आदि स्थानोंका बन्ध करनेवाला जीव पच्चीस आदि लेकर तीस तकके स्थानोंका बन्ध करता है। तथा अट्ठाईस आदि स्थानोंको बाँधता हुआ जीव उनतीसको आदि लेकर इकतीस तकके स्थानोंका बन्ध करता है। इस प्रकार नामकर्मके बाईस भुजाकार बन्धस्थान होते हैं ॥२५८॥

उक्त भुजाकार बन्धस्थानोंकी अङ्कसंदृष्टि मूलमें दी है।

अब नामकर्मके अल्पतर और अवक्तव्य बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

तीसाइ तेवीसंता तह तीसुगुतीसमेक्कमिगितीसं ॥२५९॥
इक्कं बंधइ णियमा अडवीसुगुतीस बंधंतो।
उवरदबंधो हेट्ठा एक्कं देवेसु तीसमुगुतीसा ॥२६०॥

अप्पयरा—

३०	२९	२८	२६	२५	३१	२८	२९	३०
२९	२८	२६	२५	२३	३०	१	१	१
२८	२६	२५	२३		२९			
२६	२५	२३			१			
२५	२३							
२३								

अथाल्पतराः——त्रिंशत्कादीनि बध्नन् त्रयोविंशतिकान्तानि बध्नाति। एकत्रिंशत्कं बध्नन् त्रिंशत्कं ३० एकोनत्रिंशत्कं २९ एकं १ च बध्नाति। तथाहि——त्रिंशत्कं ३० बध्नन् एकोनत्रिंशत्कं २९ अष्टाविंशतिकं २८ षड्विंशतिकं २६ पञ्चविंशतिकं २५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति ३०
२९
२८
२६
२५
२३ । एकोनत्रिंशत्कं बध्नन् अष्टाविंशतिकं २८ षड्विंशतिकं २६ पञ्चविंशतिकं २५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति २९
२८
२६
२५
२३ । अष्टाविंशतिकं बध्नन् षड्विंशतिकं २६ पञ्चविंशतिकं २५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति। २८
२६
२५
२३ । षड्विंशतिकं बध्नन् पञ्चविंशतिकं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५ त्रयोविंशतिकं २३ च बध्नाति $\frac{२६}{\frac{२५}{२३}}$ । पञ्चविंशतिकं बध्नन् त्रयोविंशतिकं २३ बध्नाति । $\frac{२५}{२३}$ । एकत्रिंशत्कं

बध्नन् त्रिंशत्कं ३० एकोनत्रिंशत्कं एककं च बध्नाति $\begin{matrix}३१\\३०\\२९\\१\end{matrix}$ । अष्टाविंशतिकं बध्नन् एकं बध्नाति $\frac{२८}{१}$। एकोनत्रिंशत्कं

बध्नन् एकां यशःकीर्त्तिं बध्नाति $\frac{२९}{१}$ । त्रिंशत्कं बध्नन् एकं बध्नाति $\frac{३०}{१}$ । इत्येवमल्पतराः २१ भवन्ति ।

अपूर्वकरणः चटने एकैकं······देवगतिचतुःस्थानानि $\frac{२९}{१}$ $\frac{३०}{१}$ $\begin{matrix}३०\\२९\\१\end{matrix}$ $\frac{२८}{१}$ २९···नानि बध्नन्···गत्वा एकैकं

बध्नातीति चत्वारोऽल्पतराः ३१।३०······। उपरतबन्धःअबन्धः सन् अधोऽवतीर्य एकं १ बध्नन् त्रिंशत्कं ३०
२८।२९
एकोनत्रिंशत्कं २९ च बध्नाति * ॥२५९–२६०॥

तीसको आदि लेकर तेईस तकके स्थानोंको बाँधनेपर, तथा इकतीसको बाँधकर तीस, उनतीस और एक प्रकृतिको बाँधनेपर अल्पतर बन्धस्थान होते हैं। अट्ठाईस और उनतीसको बाँधनेवाला नियमसे एक यशस्कीर्त्तिको बाँधता है। इस प्रकार भी अल्पतर बन्धस्थान होते हैं। अब अवक्तव्यबन्धस्थानोंको कहते हैं—उपरतबन्धवाला जीव नीचे उतरकर एक प्रकृतिको बाँधता है। अथवा मरकर देवोंमें उत्पन्न हो तीस और उनतीस प्रकृतियोंको बाँधता है। इस प्रकार अवक्तव्यबन्धस्थान प्राप्त होते हैं ॥२५९–२६०॥

उक्त अल्पतरबन्धस्थानोंकी अङ्कसंदृष्टि मूलमें दी है।

उवसंतकसाओ हेट्ठा ओदरिय सुहमुवसामओ होऊण जसकित्तिं बंधइ। अहवा उवसंतकसाओ कालं

काऊण देवेसुप्पण्णो मणुसगइसंजुत्तं तीसं उणतीसं वा बंधइ। अवत्तव्वभुजयारा–$\begin{matrix}०\\१\\३०\\२९\end{matrix}$ ।

भुजयारप्पयरऽवत्तव्वसमासेण अवट्ठिया होंति ४६ ।

तदेव कथयति––उपशान्तकषायः किमपि नामाऽबध्नन् पतितः सूक्ष्मसाम्परायं गतः एकां यशस्कीर्त्तिं बध्नाति । अथवा उपशान्तकषायो मुनिः कालं कृत्वा मरणं प्राप्य देवासंयतो भूत्वा मनुष्यगति-

युक्तं नवविंशतिकं २९, वा मनुष्यगति-तीर्थंकरत्वयुक्तं त्रिंशत्कं च बध्नाति $\begin{matrix}०\\१\\३०\\२९\end{matrix}$ अवक्तव्यभुजाकारा इति ।

पूर्वस्थानस्याल्पप्रकृतिकस्य बहुप्रकृतिकेनानुसन्धाने भुजाकारा भवन्ति । परस्थानस्य बहुप्रकृतिकस्याल्पप्रकृतिकेनानुसन्धाने अल्पतरा भवन्ति । नामकर्मणि भुजाकारबन्धा द्वाविंशतिः २२ । अल्पतरबन्धा एकविंशतिः २१ । अवक्तव्यास्त्रयश्च ३ । एते सर्वे एकीकृताः षट्चत्वारिंशदवस्थितबन्धा ४६ भवन्ति ।

उपशान्तकषायसंयत नीचे उतरकर और सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक होकर एक यशस्कीर्त्तिको बाँधता है। अथवा उपशान्तकषायसंयत मरण करके देवोंमें उत्पन्न होकर मनुष्यगतिसंयुक्त

* पत्रके गलित और त्रुटित होनेसे छूटे पाठके स्थानपर······बिन्दुएँ दी गई हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीस या उनतीस प्रकृतियोंको बाँधता है। इस प्रकार अवक्तव्यभुजाकार तीन होते हैं, जिनकी संदृष्टि मूलमें दी है। भुजाकार २२ अल्पतर २१ अवक्तव्य ३ ये सर्व मिलकर ४६ अवस्थित बन्धस्थान होते हैं।

अब नामकर्मके चारों गतियोंमें संभव बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]इगि पंच तिण्णि पंच य बंधट्ठाणाणि होंति णामस्स।
णिरयगइ-तिरिय-मणुय-देवगईसंजुया हुंति ॥२६१॥

१।५।३।५।

अथ तदाधारगतिसम्बन्धेन स्वामित्वं दर्शयति—['इगि पंच तिण्णि पंच य' इत्यादि।] नामकर्मणः एकं पञ्च त्रीणि पञ्च बन्धस्थानानि भवन्ति। कथम्भूतानि? नरक-तिर्यङ्मनुष्य-देवगतियुक्तानि क्रमेण भवन्ति। तद्यथा—नरकगत्यां एकं बन्धस्थानम् १। तिर्यग्गत्यां पञ्च बन्धस्थानानि ५। मनुष्यगतौ त्रीणि बन्धस्थानानि ३। देवगतौ पञ्च बन्धस्थानानि ५ ॥२६१॥

नरकगतिसंयुक्त नामकर्मका एक बन्धस्थान है। तिर्यग्गतिसंयुक्त नामकर्मके पाँच बन्धस्थान हैं। मनुष्यगतिसंयुक्त नामकर्मके तीन बन्धस्थान हैं और देवगतिसंयुक्त नामकर्मके पाँच बन्धस्थान होते हैं ॥२६१॥

नरकगतिसंयुक्त १। तिर्यग्गतिसंयुक्त ५। मनुष्यगतिसंयुक्त ३। देवगतिसंयुक्त ५ बन्धस्थान।

उक्त बन्धस्थानोंका स्पष्टीकरण—

[2]अट्ठावीसं णिरए तेवीसं पंचवीस छव्वीसं।
उणतीसं तीसं च हि तिरियगई संजुया पंच ॥२६२॥

णि० २८। ति० २३।२५।२६।२९।३०।

तानि कानि चेदाऽऽह—नरकगतौ नरकगतिसहितमष्टाविंशतिकं बन्धस्थानमेकं भवति २८। तिर्यग्गतौ त्रयोविंशतिकं २३ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ नवविंशतिकं २९ त्रिंशत्कं ३० चेति तिर्यग्गतिसंयुतानि पञ्च बन्धस्थानानि इति ॥२६२॥

२३।२५।२६।२९।३०

नरकगतिके साथ बँधनेवाला नामकर्मका अट्ठाईस प्रकृतिक एक बन्धस्थान है। तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीसः ये पाँच बन्धस्थान तिर्यग्गतिसंयुक्त बँधते हैं ॥२६२॥

नरकगतियुक्त २८। तिर्यग्गतियुक्त २३।२५।२६।२९।३०।

पणवीसं उगुतीसं तीसं चिय* तिण्णि होंति मणुयगई।
†देवगईए चउरो एक्कत्तीसाइ णिग्गई एयं‡ ॥२६३॥

म० २५।२९।३०। दे० ३१।३०।२९।२८।१।

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १३७। 2. ४, १४२।

*ब विय।

† मूलप्रतिमें इसका उत्तरार्ध इस प्रकार है—

इगितीसादेगुण अट्ठावीसेक्कगं च देवेसु ॥

‡, १७६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यगतौ मनुष्यगतिसहितं पञ्चविंशतिकं २५ मनुष्यगतियुतमेकोनत्रिंशत्कं २९ मनुष्यगतिसहितं त्रिंशत्कं ३० चेति त्रीणि बन्धस्थानानि भवन्ति। देवगतौ चत्वारि बन्धस्थानानि एकत्रिंशत्कादीनि। देवगतिसहितमेकत्रिंशत्कं ३१ देवगतियुतं त्रिंशत्कं ३० देवगतियुतमेकोनत्रिंशत्कं २९ देवगतियुतमष्टाविंशतिकम् २८। एकं निर्गति गतिरहितं एककं कयापि गत्या युतं न भवति। चत्वारि स्थानानि गतिसहितानि, एकं गतिरहितं स्थानम्। एवं देवगत्यां पञ्च बन्धस्थानानि–३१।३०।२९।२८।१। एतानि स्थानानि सर्वाणि जीवाः तत्तत्स्थानबन्धयोग्यपरिणामाः सन्तो बध्नन्ति ॥२६३॥

मनुष्यगतिके साथ नामकर्मके पचीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक तीन स्थान होते हैं। देवगतिके साथ इकतीस आदि चार स्थान होते हैं। तथा एक प्रकृतिक स्थान गतिरहित है ॥२६३॥

मनुष्यगतियुक्त २५।२९।३०। देवगतियुक्त ३१।३०।२९।२८। गतिरहित १।

[1]णिरयदुयं पंचिंदिय वेउव्विय तेउणाम कम्मं च।
वेउव्वियंगवंगं वण्णचउक्कं तहा हुंडं ॥२६४॥
अगुरुयलहुयचउक्कं तसचउ असुहं च अप्पसत्थगई।
अत्थिर दुब्भग दुस्सर अणादेज्जं चेव णिमिणं च ॥२६५॥
अजसकित्ती य तहा अट्ठावीसं हवंति णायव्वा।
णिरयगईसंजुत्तं मिच्छादिट्ठी दु बंधंति[1] ॥२६६॥

नरकगतिस्थानं तद्बन्धकं जीवं च गाथात्रयेणाऽऽह–['णिरयदुयं पंचिंदिय' इत्यादि।] मिथ्यादृष्टयो जीवास्तिर्यञ्चो मनुष्या वा अष्टाविंशतिकं स्थानं बध्नन्तीति ज्ञातव्या भवन्ति। तत्किम्? नरकगति-नरकगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ पञ्चेन्द्रियत्वं १ वैक्रियिकशरीरं १ तैजस-कार्मणे द्वे २ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गं १ वर्णचतुष्कं ४ हुण्डकसंस्थानं १ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं ४ त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकचतुष्कं ४ अशुभं १ अप्रशस्तविहायोगति १ अस्थिरं १ दुर्भगं १ दुस्वरः १ अनादेयं १ निर्माणं १ अयस्कीर्त्तिः १ इत्यष्टाविंशतिकं नरकगतियुक्तं बन्धस्थानं मिथ्यादृष्टिर्जीवो नरकगतिं यान्ता बध्नाति २८। मिथ्यादृग्गुणस्थानवर्ती जीवो नरस्तिर्यग्जीवो वा नारको भवति, नामकर्मणोऽष्टाविंशतिकं २८ बन्धस्थानं बध्नातीत्यर्थः ॥२६४–२६६॥

नरकद्विक (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी), पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्णचतुष्क (रूप, रस, गन्ध स्पर्शनामकर्म) हुण्डकसंस्थान, अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास) त्रसचतुष्क (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर), अशुभ, अप्रशस्तगति, अस्थिर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, निर्माण और अयशःकीर्त्ति; ये अट्ठाईस प्रकृतियाँ अट्ठाईसप्रकृतिकस्थानकी जानना चाहिए। मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यञ्च उक्त प्रकृतियोंको नरकगतिसंयुक्त बाँधते हैं ॥२६४-२६६॥

णिरयगईपंचिंदियपज्जत्तसंजुत्तं एगो भंगो ।१।

एत्थ णिरयगईए सह वुत्तिभभावादो एइंदिय-वियलिंदियजाईओ ण बज्झंति।

नरकगत्यां पञ्चेन्द्रियपर्याप्तसंयुक्त एको भङ्गः १। अत्र नरकगत्या सह प्रवृत्त्यभावात् एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियजातीः जीवा न बध्नाति। उक्तञ्च—

एकाक्ष-विकलाक्षाणां बध्यन्ते नात्र जातयः।
श्वभ्रगत्या समं तासां सर्वदा वृत्त्यभावतः[2] ॥२८॥

---

1. सं० पञ्चसं० १३८-१४०।

१. षट् खंडा० जीव० चू० ठाग० सू० ६१ ६२। २. सं० पञ्चसं० ४, १४१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकगतिका बन्ध पञ्चेन्द्रिय जाति और पर्याप्त प्रकृतिके साथ ही होता है, इसलिए एक ही भंग होता है। यहाँ नरकगतिके साथ उदय न पाये जानेसे एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जातियाँ नहीं बँधती हैं।

[1]तत्थ य पढमं तीसं तिरियदुगोरालतेज कम्मं च।
पंचिंदियजाई वि य छस्संठाणाणमेक्कयरं ॥२६७॥
ओरालियंगवंगं छस्संघयणाणमेक्कयरं।
वण्णचउक्कं च तहा अगुरुगलहुगं च चत्तारि ॥२६८॥
उज्जोव तसचउक्कं थिराइछज्जुयलमेक्कयर णिमिणं च।
बंधइ मिच्छादिट्ठी एयदरं दो विहायगई[1] ॥२६९॥

अथ मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यग्गतिं यान्ता तिर्यग् भविता इदं प्रथमत्रिंशत्कं बन्धस्थानं बध्नातीति गाथात्रयेणाऽऽह—['तत्थ य पढमं तीसं' इत्यादि।] नारकमिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यग्गतिं यान्ता तत्र प्रथमं त्रिंशत्कं बन्धस्थानं बध्नाति। तत्किम्? तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्ये द्वे २ औदारिक-तैजस-कार्मणशरीराणि ३ पञ्चेन्द्रियजातिः १ समचतुरस्रादीनां षण्णां संस्थानानां मध्ये एकतरं संस्थानं १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ वज्रवृषभनाराचादीनां षण्णां संहननानां मध्ये एकतरं संहननं १ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं ४ उद्योतः १ त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकचतुष्कं ४ स्थिरादिषड्युगलानां मध्ये एकतरं स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वरादेयानादेय-यशस्कीर्त्ययस्कीर्त्तियुग्मानां मध्ये एकतरं ६ निर्माणं १ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतियुग्मस्य मध्ये एकतरं १ चेति त्रिंशत्कं नामप्रकृतिबन्धस्थानं मिथ्यादृष्टिर्नारकजीवो बध्नातीति तिर्यङ् भविता ज्ञेयः ॥२६७–२६९॥

तिर्यग्-द्विक (तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी) औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, पञ्चेन्द्रियजाति, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, छह संहननोंमेंसे कोई एक, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय और यशःकीर्त्ति-अयशःकीर्ति इन स्थिरादि छह युगलोंमेंसे कोई एक-एक, निर्माण और दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक; इन प्रथम प्रकार वाली तीस प्रकृतियोंको तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाला नारकी मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है ॥२६७–२६९॥

[2]तत्थ पढमतीसादि छस्संठाणं छसंघयणं थिराइ-छ-जुयल-विहायगइदुयाणि ६।६।२।२।२।२।२।२।२। अण्णोण्णगुणिया भंगा ४६०८।

तत्र प्रथमत्रिंशत्कादौ षट् संस्थानानि षट् संहननानि स्थिरादि-षड्युगल-विहायोगतिद्विकानि ६।६।२।२।२।२।२।२।२। एतेऽङ्काः अन्योन्यगुणिता एतावन्तः ४६०८ त्रिंशतः विकल्पा भवन्ति। यदा प्रथमसंस्थानं तदा अन्यानि पञ्च न, यदा द्वितीयसंस्थानं तदा अन्यत्पञ्चकं न। एवं संहननम्। यदि स्थिरप्रकृतिः, तर्ह्यस्थिरप्रकृतिर्न, यदि अस्थिरं तर्हि स्थिरं न। एवं सर्वत्र भङ्गप्रकारा ज्ञेयाः।

प्रथम तीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें छह संस्थान, छह संहनन, स्थिरादि छह युगल और विहायोगतिद्विक (६×६×२×२×२×२×२×२=४६०८) इनके परस्पर गुणा करने पर चार हजार छह सौ आठ भंग होते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १४३-१४६। 2 ४, 'तत्र प्रथमत्रिंशति' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १२१)।
१. षट्खण्डा० जीव० चू० स्थान० सू० ६४-६५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एमेव विदियतीसं णवरि असंपत्तहुंडसंठाणं ।
अवणेज्जो एक्कयरं सासणसम्मो य बंधेइ[1] ॥२७०॥

एवमेव पूर्वोक्तप्रथमत्रिंशत्प्रकारेण द्वितीयत्रिंशत्कं स्थानं तिर्यग्गतियुक्तं सासादनस्थो जीवस्तिर्यग्भावी बध्नाति । तत्किम् ? तिर्यग्द्वयं २ औदारिक-तैजस-कार्मणत्रिकं ३ पञ्चेन्द्रियं १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ आद्य-पञ्चकसंस्थान-संहननयोर्मध्ये एकतरं २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ उद्योतः १ त्रसचतुष्कं ४ स्थिरादि-षड्युगलानां मध्ये एकतरं ६ निर्माणं १ प्रशस्ताप्रशस्त-[विहायगत्यो-] र्मध्ये एकतरं १ चेति त्रिंशत्कं द्वितीयं स्थानम् ३० । नवरि किं विशेषः, को विशेषः ? असृपाटिकासंहनन-हुण्डकसंस्थानद्वयमन्तिकमपनेतव्यं वर्जयित्वा [वर्जयितव्यं] आद्यपञ्चसंस्थानानामाद्यपञ्चसंहननानां च मध्ये एकतरम् १।१। ॥२७०॥

इसी प्रकार द्वितीय तीस प्रकृतिक बन्धस्थान होता है । विशेषता केवल यह है कि उसमें प्रथम तीसमेंसे असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन और हुण्डकसंस्थान इन दोको निकाल देना चाहिए । अर्थात् छह संस्थान और छह संहननके स्थान पर पाँच संस्थान और पाँच संहननमेंसे कोई एक-एकका ग्रहण करना चाहिए । इस द्वितीय तीस प्रकृतिक स्थानको सासादनसम्यग्दृष्टि जीव बाँधता है ॥२७०॥

[1]विदियतीसादिसासणे अंतिमसंठाणं संहयणं णागच्छंति, तज्जोगतिव्वसंकिलेसाभावादो । अदो ५।५।२।२।२।२।२।२।२। अण्णोण्णगुणिया भंगा ३२०० । एदे पुव्वपविट्ठा पुणरुत्ता इदि ण घेप्पंति ।

द्वितीयत्रिंशत्के सासादने अन्तिमसंस्थानान्तिमसंहननद्वयं कुतो बन्धं नागच्छति ? तद्योग्यतीव्रसंक्लेशाभावात् प्रथमगुणस्थाने द्वयस्य व्युच्छेदत्वाच्च । अतः द्वयस्य सासादने बन्धो न । ५।५।२।२।२।२।२।२।२ अन्योन्यगुणिता द्वितीयत्रिंशत्क-[स्य एतावन्तः ३२०० विकल्पा भवन्ति । एते पूर्वो-] क्तेषु ४६०८ प्रविष्टाः पुनरुक्ता इति हेतोर्न गृह्यन्ते ॥

इस द्वितीय तीस प्रकृतिक स्थानके बन्ध करनेवाले सासादनगुणस्थानमें अन्तिम संस्थान और अन्तिम संहनन बन्धको प्राप्त नहीं होते हैं; क्योंकि इन दोनोंके बन्ध-योग्य तीव्र संक्लेश सासादनगुणस्थानमें नहीं पाया जाता । इसलिए पाँच संस्थान, पाँच संहनन और स्थिरादि छह युगलोंके तथा विहायोगति-युगलके परस्पर गुणा करनेसे (५ × ५ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ = ३२००) तीन हजार दो सौ भंग होते हैं । ये सर्व भंग पूर्वोक्त ४६०८ में प्रविष्ट होनेसे पुनरुक्त होते हैं, इसलिए उनको नहीं ग्रहण किया गया है ।

[2]तह य तदीयं तीसं तिरियदुगोराल तेज कम्मं च ।
ओरालियंगवंगं हुंडमसंपत्त वण्णचदुं ॥२७१॥
अगुरुयलहुयचउक्कं तसचउ उज्जोवमप्पसत्थगई ।
थिर-सुभ-जसजुयलाणं तिण्णेयदरं अणादेज्जं ॥२७२॥
दुब्भग दुस्सर णिमिणं वियलिंदियजाइ इक्कदरमेव ।
एयाओ पयडीओ मिच्छादिट्ठी दु बंधंति[2] ॥२७३॥

अथ तृतीयत्रिंशत्कभेदं गाथात्रयेणाऽऽह—['तह य तदीयं तीसं' इत्यादि ।] एतास्त्रिंशत्प्रकृतीः मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाति । ताः काः ? तृतीयं त्रिंशत्कं—तिर्यग्गतितिर्यग्गत्या- [नुपूर्व्ये द्वे २ औदारिक-तैजस-कार्मणानि ३ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ हुण्डकं १ असम्प्राप्तं १ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुचतुष्कं

1. सं० पञ्चसं० ४, 'द्वितीयत्रिंशति' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १२१) । 2. ४, १४७-१५० ।

१. षट् सं० जीव० चू० स्थान० सू० ६६ । २. षट् खं जीव० चू० स्थान० सू० ६८-६६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४ त्रसचतु-[ष्कं ४ उद्योतं १ अप्रशस्त-] विहायोगतिः १ स्थिर-शुभ-यशोयुगलानां त्रयाणां मध्ये एकतरं ३ अनादेयः १ दुर्भगः १ दुःस्वरं १ निर्माणं १ द्वि-[त्रि-चतुरिन्द्रियजातीनां म-] ध्ये एकतरं १ चैवं त्रिंशत्प्रकृतीनां स्थानं त्रिंशत्कं मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती तिर्यग्जीवो मनुष्यो वा [तिर्यग्गतिं गन्ता बध्नाति ।] ॥२७१-२७३॥

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक तृतीय बन्धस्थान है। उसकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर-अंगोपांग, हुंडकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ और यशस्कीर्त्ति; इन तीन युगलोंमेंसे कोई एक-एक; अनादेय, दुर्भग, दुःस्वर, निर्माण और विकलेन्द्रियजातियोंमेंसे कोई एक; इन प्रकृतियोंको तिर्यग्गतिमें जानेवाला मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यंच ही बाँधता है ॥२७१–२७३॥

[1]एत्थ वियलिंदियाणं हुंडसंठाणमेयमेव । तहेव एदेसिं बंधोदयाण दुस्सरमेव । तिण्णि वियलिंदियजाईओ थिर-सुह-जसजुयलाणि ३।२।२।२। अण्णोण्णगुणिया भंगा २४ ।

[अत्र विकलेन्द्रियाणां हुंडसंस्थानमेवैकम् । तथैतेषां बन्धोदययोर्दुःस्वरमेवेति । वि-] कलत्रयजातयः स्थिर-शुभ-यशोयुगलानि त्रीणि ३।२।२।२ अन्योन्यगुणितास्तृतीय–त्रिंशत्कस्य भ-[ङ्गाः २४ भवन्ति ।]

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि विकलेन्द्रिय जीवोंके हुंडकसंस्थान ही होता है। तथा इनके दुःस्वरप्रकृतिका ही बन्ध और उदय होता है। इनकी तीन विकलेन्द्रिय-जातियाँ तथा स्थिर, शुभ और यशस्कीर्त्तियुगल; इनके परस्पर गुणा करनेसे (३×२×२×२=२४) चौबीस भंग होते हैं।

[2]जह तिण्हं तीसाणं तह चेव य तिण्णि ऊणतीसं तु ।
णवरि विसेसो जाणे उज्जोवं णत्थि सव्वत्थ[1] ॥२७४॥

एयासु पुव्वुत्तभंगा ४६०८।२४ ।

यथा येन प्रकारेण [प्रथमं द्वितीयं तृतीयं त्रिंश-] त्कं ३०।३०।३० कथितं तथैव प्रकारेणैकोनत्रिंशत्कस्थानानि त्रीणि २९।२९।२९ भवन्ति । किन्तु पुनः नव[रि वक्ष्यमाणमिमं विशेषं] त्वं जानीहि भो भव्य ? को विशेषः ? सर्वत्र तिर्यक्षूद्योतो नास्ति । केचिज्जीवा उद्योतं बध्नन्ति, केचिन्न बध्नन्तीत्यर्थः । ············-द्योतो यत्रैकोनत्रिंशत्कं तत्रोद्योतो नास्ति । एतासु पूर्वोक्ता भङ्गाः २९।२९।२९ एतेषां त्रयाणां भङ्गाः ४६०८।२४ ॥२७४॥

जिस प्रकारसे तीन प्रकारके तीसप्रकृतिक बन्धस्थानोंका निरूपण किया है, उसी प्रकारसे तीन प्रकारके उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान भी होते हैं। केवल विशेषता यह ज्ञातव्य है कि उन सभीमें उद्योतप्रकृति नहीं होती है ॥२७४॥

इन तीनों ही प्रकारके उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानोंके भंग पूर्वोक्त ४६०८ और २४ ही होते हैं।

---

1. सं०पञ्चसं० ४, 'अत्र विकलेन्द्रियाणां' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२२)। 2. ४; १५१।
१. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ७०-७५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]तत्थ इमं छव्वीसं तिरियदुगोराल तेज कम्मं च ।
एइंदिय वण्णचदुं अगुरुयलहुयचउक्कं होइ हुंडं च ॥२७५॥
आयावुज्जोयाणमेक्कयरं थावर बादरयं ।
पज्जत्तं पत्तेयं थिराथिराणं च एक्कयरं ॥२७६॥
एक्कयरं च सुहासुह दुब्भग-जसजुयल एक्कयरं ।
णिमिणं अणादेज्जं चेव तहा मिच्छादिट्ठी दु बंधंति[1] ॥२७७॥

मिथ्यादृष्टिर्देवः पर्याप्तो भवनत्रय-सौधर्मद्वयजः एकेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्गतियुतमिदं [षड्विंशतिकं नामप्रकृ-] तिस्थानं बध्नाति । क्व ? तत्र तिर्यग्गतौ । किं तत् ? [तिर्यग्गति-] तिर्यगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ औदारिक-तैजस-कार्मणशरीरत्रिकं ३ [एकेन्द्रियं १ वर्णचतुष्कं ४] अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं ४ हुण्डकसंस्थानं १ आतपोद्योतयोर्मध्ये एकतरं १ स्थावरं १ बादरं १ पर्याप्तं १ [प्रत्येकशरीरं १ स्थिरा-] स्थिरयोर्मध्ये एकतरं १ शुभाशुभयोर्मध्ये एकतरं १ दुर्भगं १ यशोऽयशसोर्मध्ये एकतरं निर्माणं १ अ- [नादेयं १ चेति षड्विं-] शतिकं नामप्रकृतिस्थानं मिथ्यादृष्टिर्देवो भवनत्रयजः सौधर्मद्वयजो बध्नाति २६ ॥२७५-२७७॥

छब्बीस प्रकृतिक बन्धस्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, एकेन्द्रियजाति, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, हुंडकसंस्थान, आतप और उद्योतमेंसे कोई एक, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर-अस्थिरमेंसे कोई एक, शुभ-अशुभमेंसे कोई एक, दुर्भग और यशस्कीर्त्तियुगलमेंसे कोई एक, निर्माण और अनादेय इन छब्बीस प्रकृतियोंको एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि देव बाँधते हैं ॥२७५-२७७॥

[2]तह (एत्थ) एइंदिएसु अंगोवंगं णत्थि, अट्ठंगाभावादो । संठाणमवि एयमेव हुंडं । अदो आया-वुज्जोव-थिराथिर-सुहासुह-जसाजसजुयलाणि २।२।२।२ अण्णोण्णगुणिया भंगा १६ ।

तथात्र एकेन्द्रियाणां अङ्गोपाङ्गं [नास्ति, तेषामष्टाङ्गा-] भावात् । संस्थानमप्येकमेव हुण्डकम् । अतः कारणादातपोद्योत-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशोऽयशोयु- [गलानि २।२।२।२। अन्योन्य-] गुणिताः षड्विंशतेर्भङ्गा विकल्पाः १६ भवन्ति ।

यहाँ पर एकेन्द्रियोंमें अंगोपांग नामकर्मका उदय नहीं होता है, क्योंकि उनके हस्त, पाद आदि आठ अंगोंका अभाव है। उनके संस्थान भी एक हुंडक ही होता है। अतः आतप-उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्त्ति-अयशःकीर्त्ति युगलोंको परस्पर गुणा करने पर (२×२×२×२=१६) सोलह भंग होते हैं।

[3]जह छव्वीसं ठाणं तह चेव य होइ पढमपणुवीसं ।
णवरि विसेसो जाणे उज्जोवादावरहियं तु ॥२७८॥
बायर सुहुमेक्कयरं साहारण पत्तेयं च एक्कयरं ।
संजुत्तं तह चेव य मिच्छादिट्ठी दु बंधंति[2] ॥२७९॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १५२-१५५ । 2. ४, 'अत्राष्टाङ्गाभावा' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२२-१२३) । 3. ४, १५६ ।

१. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ७६-७७ । २. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ७८-७९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[यथापूर्वो-] क्तप्रकारेण षड्विंशतिकं स्थानं भणितं, तथैव प्रकारेण प्रथमपञ्चविंशतिकं स्थानं भवति । नवरि वि- [शेषो ज्ञातव्यः । को वि-] शेषः ? तत्स्थानमुद्योताऽऽतपरहितम् । तु पुनर्बादर-सूक्ष्मयोर्मध्ये एकतरं १ साधारण-प्रत्येकयोर्मध्ये एकत- [र१ संयुक्तं पञ्चविंशतिकं स्थानं मिथ्या-] दृष्टिर्बध्नाति । तद्यथा––तिर्यग्गतिद्विकौदारिक-तैजस-कार्मणवर्णचतुष्कागुरुचतुष्क-हुण्डकानि १४ । ए [केन्द्रियजातिः १ स्थावरं १ बादर-सू-] क्ष्मयोर्मध्ये एकतरं १ साधारण-प्रत्येकयोर्मध्ये एकतरं १ पर्याप्तं १ स्थिरास्थिरयोः एकतरं १ शुभाशु- [भयोर्मध्ये एकतरं १ दुर्भगं १] यशोऽयशसोर्मध्ये एकतरं निर्माणं १ अनादेयं १ चेति पञ्चविंशतिकं नामप्रकृतिबन्धस्थानं मिथ्यादृष्टि [स्तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाती-] त्यर्थः । ननु देवा इदं स्थानं कथं न बध्नन्ति ? साधु पृष्टम् । यद्यपि देवाः सहस्रारपर्यन्तं तिर्यग्गतिं बध्नन्ति, तथापि एकेन्द्रियजातिं भवन-] त्रय-सौधर्मद्वयजा एव; नान्ये बध्नन्ति ॥२७८–२७९॥

जिस प्रकार छब्बीस प्रकृतिक स्थान है, उस ही प्रकार प्रथम पच्चीस प्रकृतिक स्थान जानना चाहिए। विशेषता केवल यह जानना चाहिए कि वह उद्योत और आतप इन दो प्रकृतियोंसे रहित है। इस स्थानको बादर-सूक्ष्ममेंसे किसी एकसे संयुक्त तथा साधारण-प्रत्येकशरीरमेंसे किसी एकसे संयुक्त मिथ्यादृष्टि जीव बाँधते हैं ॥२७८–२७९॥

[1]एत्थ सुहुमसाहारणाणि भवणाइ-ईसाणंता देवा ण बंधंति । एत्थ या जसकित्तिं णिरुंभिऊण थिराथिर-दो भंगा सुहासुह-दोभंगेहिं गुणिया ४ । अजसकित्तिं णिरुंभिऊण बायर-पत्तेय-थिर-सुहजुयलाणि २।२।२।२ अण्णोण्णगुणिया अजसकित्तिभंगा १६ । दोण्णि वि २० ।

अत्र पञ्चविंशतिके स्थाने सूक्ष्म-साधारणे द्वे भवनादीशानान्ता देवाः [न बध्नन्ति । ततोऽत्र यशःकीर्तिं] निरुध्य समाश्रित्य स्थिरास्थिरभङ्गौ २ शुभाशुभभङ्गाभ्यां द्वाभ्यां २ गुणितौ चत्वारो भङ्गा २।४ अयशः [कीर्तिं निरुध्य बा-]दर-प्रत्येक-स्थिर-शुभयुगलानि २।२।२।२ अन्योन्यगुणिताः अयशस्कीर्तिभङ्गाः १६ । द्वयेऽपि २० ।

इस प्रथम पच्चीस प्रकृतिक स्थानमें बतलाई गई प्रकृतियोंमेंसे सूक्ष्म और साधारण ये दो प्रकृतियाँ भवनवासियोंको आदि लेकर ईशान स्वर्ग तकके देव नहीं बाँधते हैं। यहाँ पर यशस्कीर्त्तिको निरुद्ध करके स्थिर-अस्थिर-सम्बन्धी दो भंगोंको शुभ-अशुभ-सम्बन्धी दो भंगोंसे गुणित करने पर चार भंग होते हैं। तथा अयशःकीर्त्तिको निरुद्ध करके बादर, प्रत्येक स्थिर और शुभ इन चार युगलोंको परस्पर गुणित करने पर (२×२×२×२=१६) अयशःकीर्त्ति-सम्बन्धी सोलह भंग होते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त चार और सोलह ये दोनों मिलकर २० भंग हो जाते हैं।

[2]विदियपणवीसठाणं तिरियदुगोराल तेजकम्मं च ।
थिरलिंदिय-पंचिंदिय एक्कयरं हुंडसंठाणं ॥२८०॥
ओरालियंगवंगं वण्णचउक्कं तहा अपज्जत्तं ।
अगुरुयलहुगुवघादं तस बायरयं असंपत्तं ॥२८१॥
पत्तेयमथिरमसुभं दुहगं णादेज्ज अजस णिमिणं च ।
बंधइ मिच्छादिट्ठी अपज्जत्तयसंजुयं एयं[1] ॥२८२॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, 'अत्र प्रथमायां पञ्चविंशतौ' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२३) ।
2. ४, १५७-१५९ ।
१. षट् खं० जीव चू० स्थान० सू० ८०-८१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यङ् मनुष्यो वा द्वितीयपञ्चविंशतिकमपर्याप्तसंयुक्तमेकं बध्नाति । तत्किम् ? तिर्यग्गति [तिर्यग्-] गत्यानुपूर्व्ये द्वे २ औदारिक-तैजसकार्मणशरीराणि ३ विकलेन्द्रिय-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियजातीनां मध्ये एकतरं १ हुण्डकसंस्थानं औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ वर्णचतुष्कं ४ अपर्याप्तं १ अगुरुलघूपघातद्वयं २ त्रसं १ बादरं १ सृपाटिकासंहननं १ प्रत्येकं १ अस्थिरं १ अशुभं १ दुर्भगं १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ चेति द्वितीय-पञ्चविंशतिकं नामकर्मणः स्थानं २५ मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाति ॥२८०-२८२॥

द्वितीय पच्चीस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, विकलत्रय और पञ्चेन्द्रियजातिमेंसे कोई एक, हुण्डकसंस्थान, औदारिकशरीर-अंगोपांग, वर्णचतुष्क, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, सृपाटिकासंहनन, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति और निर्माण । इस द्वितीय पच्चीस प्रकृतिक अपर्याय-संयुक्त स्थानको तिर्यञ्च या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है ॥२८०-२८२॥

[1]एत्थ य परघादुस्सासविहायगइदुस्सरणामाणं अपज्जत्तेण सह बंधो णत्थि, विरोहादो, अपज्जत्तकाले य एदेसिं उदयाभावादो य । एत्थ चत्तारि जाइभंगा ४।

अत्र द्वितीयायां पञ्चविंशतौ परघातोच्छ्वास-विहायोगतिदुःस्वराणामपर्याप्तेन सह बन्धो नास्ति । कुतः ? विरोधात् , अपर्याप्तकाले चैषामुदयाभावात् । अत्र चत्वारो जातिभङ्गाः द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रिय इति १।१।१।१। जातिभङ्गाश्चत्वारः ४ ।

यहाँपर परघात, उच्छ्वास, विहायोगति और दुःस्वर नामकर्मका अपर्याप्तनामकर्मके साथ बन्ध नहीं होता; क्योंकि विरोध है । दूसरे अपर्याप्तकालमें इन प्रकृतियोंका उदय भी नहीं होता है । यहाँपर जातिसम्बन्धी चार भंग होते हैं ।

[2]तत्थ इमं तेवीसं तिरियदुगोराल तेजकम्मं च ।
एइंदिय वण्णचदुं अगुरुयलहुगं च उवघादं ॥२८३॥
थावर अथिरं असुहं दुभग अणादेज्ज अजस णिमिणं च ।
हुंडं च अपज्जत्तं बायर-सुहुमाण एक्कयरं ॥२८४॥
साहारणपत्तेयं एक्कयरं बंधओ तहा मिच्छो ।
एए बंधट्ठाणा तिरियगईसंजुया भणिया[1] ॥२८५॥

तत्र तिर्यग्गतौ इदं त्रयोविंशतिकं स्थानं मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाति । तत्किम् ? तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वीद्वयं २ औदारिक-तैजस-कार्मणत्रिकं ३ एकेन्द्रियं १ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुत्वं १ उपघातं १ स्थावरं १ अस्थिरं १ अशुभं १ दुर्भगं १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ हुण्डकं १ अपर्याप्तं १ बादर-सूक्ष्मयोर्मध्ये एकतरं १ साधारण-प्रत्येकयोर्मध्ये एकतरं १ चेति एतासां त्रयोविंशतिर्नामप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ्मनुष्यो वा बन्धको भवति २३ । एतानि नामप्रकृतिबन्धस्थानानि तिर्यग्गतिसंयुक्तानि जिनैर्भणितानि ॥२८३-२८५॥

तेईस प्रकृतिक बन्धस्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, एकेन्द्रियजाति, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण, हुण्डकसंस्थान, अपर्याप्त, बादर-सूक्ष्ममेंसे कोई एक और

1. सं०पञ्चसं० ४, 'अत्र द्वितीयायां पञ्चविंशतौ' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२३) । 2. ४,१६०-१६२ ।
१. षट् खं० जीव० चू० स्थान० सू० ८२-८३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधारण—प्रत्येकमेंसे कोई एक। इस तेईस प्रकृतिक स्थानको तिर्यञ्च या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है। इस प्रकार तिर्यग्गतिसंयुक्त बँधनेवाले उपर्युक्त बन्धस्थान कहे ॥२८३-२८५॥

[1]एत्थ संघयणबंधो णत्थि, एइंदियस्स संघयणउदयाभावादो। एत्थ बादर-सुहुमभंगाणं पत्तेय-साहारणभंगगुणणाए चत्तारि भंगा ४।

एवं तिरियगइजुत्त-सव्वभंगा ९३०८

अत्र त्रयोविंशतिके संहननबन्धो नास्ति। कुतः? एकेन्द्रियाणां संहननोदयाभावात्। ततोऽत्र बादर-सूक्ष्मयोः प्रत्येक-साधारणाभ्यां गुणिते चत्वारो भङ्गाः ४।

एवं तिर्यग्गतियुताः सर्वे भङ्गाः ४६०८। ४६०८। १६।२०।४।४। मीलिताः ९३०८ [भवन्ति]।
२४ २४

इति तिर्यग्गति (तौ) नामप्रकृतिबन्धस्थानविचारः सम्पूर्णः।

उक्त तेईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें संहननका बन्ध नहीं बतलाया गया है, क्योंकि एकेन्द्रिय जीवके संहननका उदय नहीं होता। यहाँपर बादर-सूक्ष्मसम्बन्धी भंगोको प्रत्येक और साधारण-सम्बन्धी दो भंगोंके साथ गुणा करनेपर चार भंग होते हैं।

इस प्रकार तिर्यग्गतिसंयुक्त सर्व भंग (४६०८+२४+४६०८+२४+१६+२०+४+४=९३०८) होते हैं।

अब मनुष्यगतिसंयुक्त बँधनेवाले स्थानोंका निरूपण करते हैं—

[2]तत्थ य तीसं ठाणं मणुयदुगोराल तेज कम्मं च।
ओरालियंगवंगं समचउरं वज्जरिसहं च ॥२८६॥
तसचउ वण्णचउक्कं अगुरुयलहुयं च होंति चत्तारि।
थिराथिर-सुहासुहाणं एक्कयरं सुहयमादेज्जं ॥२८७॥
सुस्सरजसजुयलेक्कं पसत्थगइ णिमिणं च तित्थयरं।
पंचिंदियं च तीसं अविरदसम्मो दु बंधेइ[1] ॥२८८॥

अथ मनुष्यगत्या सह नामप्रकृतिबन्धस्थानानि गाथादशकेनाऽऽह—[तत्थ य तीसं ठाणं' इत्यादि] तत्र मनुष्यगतौ अविरतसम्यग्दृष्टिर्वैमानिकदेवो धर्मादिनरकत्रयजो नारको वा मनुष्यगत्या सह त्रिंशत्कं ३० नामकर्मणो बन्धस्थानं बध्नाति। तत्किम्? मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वयं २ औदारिक-तैजस-कार्मण-शरीरत्रिकं ३ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ समचतुरस्रसंस्थानं १ वज्रवृषभनाराचसंहननं १ त्रस-बादर-प्रत्येक-शरीरचतुष्कं ४ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं ४ स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-युग्मयोर्मध्ये एकतरं २ सुभगं १ आदेयं १ सुस्वरः १ यशोऽयशोर्मध्ये एकतरं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ निर्माणं १ तीर्थकरत्वं १ पञ्चेन्द्रियत्वं १ चेति नामकर्मणस्त्रिंशत्प्रकृतीः ३० असंयतगुणस्थानवर्ती वैमानिक-देवो धर्मादिनरकत्रयभवो नारको वा बध्नाति ॥२८६-२८८॥

उनमें तीस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—मनुष्यद्विक (मनुष्यगति-मनुष्य-गत्यानुपूर्वी) औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्र-संस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, स्थिर-अस्थिर और शुभ-अशुभमेंसे कोई एक-एक, सुभग, आदेय, सुस्वर और यशःकीर्त्तियुगलमेंसे एक, प्रशस्त-

---

1. सं०पञ्चसं० ४, 'अत्र संहननबन्धो नास्ति' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२४)। 2. ४, १६४-१६६।

१. षट् खं० जीव० चू० स्थान० सू० ८५-८६।

विहायोगति, निर्माण, तीर्थङ्कर और पंचेन्द्रियजाति । इस तीस प्रकृतिक स्थानको वैमानिक देव या रत्नप्रभादि तीन पृथिवियोंका नारकी अविरतसम्यग्दृष्टि जीव बाँधता है ॥२८६–२८८॥

एत्थ दुब्भग-दुस्सरऽणादेयाणं तित्थयरेण सम्मत्तेण य सह विरोहादो ण बंधेइ । [1]सुहग-सुस्सरा-देयाणमेव बंधो, तेण तिण्णि जुयलाणि २।२।२। अण्णोण्णगुणिया भंगा ८ ।

अत्र त्रिंशत्के दुर्भग-दुःस्वरानादेयानां बन्धो न । कुतः ? तीर्थकरत्वेन सम्यक्त्वेन च सह विरोधात् । तदुक्तम्—

[2]न दुर्भगमनादेयं दुःस्वरं याति बन्धताम् ।
सम्यक्त्व-तीर्थकृत्वाभ्यां सह बन्धविरोधतः ॥२९॥

इति सुभग-सुस्वराऽऽदेयानामेवात्र बन्धः । तत्र त्रीणि युगलानि २।२।२। अन्योन्यगुणिता भङ्गा विकल्पा अष्टौ ८ ।

यहाँपर दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इन तीन प्रकृतियोंका तीर्थङ्कर प्रकृति और सम्यक्त्वके साथ विरोध होनेसे बन्ध नहीं होता है; किन्तु सुभग, सुस्वर और आदेयका ही बन्ध होता है । इसलिए शेष तीन युगलोंके परस्पर गुणित करनेपर (२×२×२=) ८ भंग होते हैं ।

[3]जह तीसं तह चेव य उणतीसं तु जाण पढमा दु ।
तित्थयरं वज्जित्ता अविरदसम्मो दु बंधेइ[1] ॥२८९॥

बं० २९ । एत्थ अट्ठ भंगा ८ पुणरुत्ता ।

यथा येन प्रकारेण इदं त्रिंशत्कं बन्धस्थानमुक्तं, तथैव प्रकारेण प्रथममेकोनत्रिंशत्कं स्थानं २९ जानीहि हे भव्य, त्वं मन्यस्व । किं कृत्वा ? तीर्थकरत्वं वर्जयित्वा । तीर्थकरत्वं विना एकोनत्रिंशत्कं नाम-प्रकृतिस्थानं २९ अविरतसम्यग्दृष्टिर्जीवो देवो नारको वा बध्नाति ॥२८९॥

अत्राष्टौ भङ्गाः ८ पुनरुक्ताः ।

जिस प्रकार तीस प्रकृतिक बन्धस्थान बतलाया गया है, उसी प्रकार प्रथम उनतीस प्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए । इसमें केवल तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़ देते हैं । इस स्थानका भी अविरत सम्यग्दृष्टि देव या नारकी जीव बन्ध करता है ॥२८९॥

यहाँपर उपर्युक्त ८ भंग होते हैं, जो कि पुनरुक्त हैं ।

[4]जह पढमं उणतीसं तह चेव य विदियञ्उणतीसं तु ।
णवरिविसेसो सुस्सर-सुभगादेज्ज जुयलाणमेक्कयरं ॥२९०॥
हुंडमसंपत्तं पि य वज्जिय सेसाणमेक्कयरं च ।
विहायगइजुयलमेक्कयरं सासणसम्मा दु बंधंति[2] ॥२९१॥

यथा येन प्रकारेण प्रथममेकोनत्रिंशत्कं स्थानमुक्तं तथैव प्रकारेण द्वितीयमेकोनत्रिंशत्कं स्थानं २९ सास्वादनसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति । नवरि किञ्चिद्विशेषः । को विशेषः ? सुस्वरदुःस्वर-सुभगदुर्भगाऽऽदेयाऽना-

---

1. ४, 'सुभगसुस्वरा' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२४) । 2. सं० पञ्चसं० ४, १६७ । 3. ४, १६८ । 4. ४, १७१ ।

१. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ८७ । २. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ८९-९० ।

ञ्व सु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देययुगलानां मध्ये एकतरं १।१।१ हुण्डकसंस्थानं १ असंप्राप्तसृपाटिकासंहननं १ चेति द्वयं वर्जयित्वा। शेषाणां समचतुरस्रादि-वज्रवृषभनाराचादिसंस्थान-संहननानां पञ्चानां मध्ये एकतरं १।१। प्रशस्ताप्रशस्त-विहायोगत्योर्मध्ये एकतरं १ सासादनस्था बध्नन्ति। तथाहि—मनुष्यगति-तदानुपूर्व्ये द्वे २ औदारिक-तैजस-कार्मणानि ३ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ हुण्डकाऽसम्प्राप्तसृपाटिकाद्वयवर्जितसमचतुरस्र-वज्रवृषभनाराचसंस्थान-संहननानां पञ्चानां मध्ये एकतरं १।१ त्रसचतुष्कं ४ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ स्थिरास्थिरशुभाशुभ-युग्मानां मध्ये एकतरं १।१ सुस्वर दुःस्वर-सुभगदुर्भगाऽऽदेयाऽनादेययुग्मानां मध्ये एकतरं १।१।१ यशो-ऽयशोर्मध्ये एकतरं १ प्रशस्ताप्रशस्तगत्योर्मध्ये एकतरं १ निर्माणं १ पञ्चेन्द्रियं १ चेति नवविंशतिकं नामप्रकृतिबन्धस्थानं २९ सासादनसम्यग्दृष्टयो जीवाश्चातुर्गतिका मनुष्यगतिभाविनो बध्नन्तीत्यर्थः ॥२९०–२९१॥

जिस प्रकार प्रथम उनतीस प्रकृतिक स्थान कहा गया है, उसी प्रकार द्वितीय उनतीस प्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि सुस्वर, सुभग और आदेय, इन तीन युगलोंमेंसे कोई एक-एक; तथा हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहननको छोड़कर शेषमेंसे कोई एक-एक और विहायोगतियुगलमेंसे कोई एक प्रकृति संयुक्त द्वितीय उनतीस प्रकृतिक स्थानको मनुष्यगतिमें उत्पन्न होनेवाले चारों गतियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि जीव बाँधते हैं ॥२९०–२९१॥

एत्थ २।२।२।२।२।२।५।५।२ अण्णोण्णगुणिया भंगा ३२००। एए तइय-उणतीसं पविट्ठा इदि ण गहिया।

अत्र द्वितीये २।२।२।२।२।२।५।५।२ अन्योन्यगुणिता एकोनविंशतिके भङ्गाः ३२००। एते वक्ष्यमाण-तृतीयैकोनत्रिंशत्के प्रविष्टा इति न गृहीतव्याः, पुनरुक्तत्वात्।

यहाँपर स्थिरादि छह युगल, पाँच संस्थान, पाँच संहनन और विहायोगति युगलके परस्पर गुणा करनेपर (२×२×२×२×२×२×५×५×२=३२००) भंग होते हैं। ये भंग तृतीय उनतीसप्रकृतिक स्थानके अन्तर्गत आ जाते हैं, इसलिए इनका ग्रहण नहीं किया गया है।

[1]एवं तइउगुतीसं णवरि असंपत्त हुंडसहियं च।
बंधइ मिच्छादिट्ठी सत्तण्हं जुयलाणमेयरं[1] ॥२९२॥

६×६×२×२×२×२×२×२×२=४६०८।

एवं द्वितीयैकोनत्रिंशत्प्रकारेण तृतीयैकोनत्रिंशत्कं स्थानं २९ मिथ्यादृष्टिर्जीवो बध्नाति। नवरि विशेषः-असम्प्राप्तसृपाटिकासंहनन-हुण्डकसंस्थानसहितं सप्तानां युग्मानां मध्ये एकतरं १।१।१।१।१।१।१। तथाहि—मनुष्यद्विकं २ औदारिक-तैजस-कार्मणत्रयं ३ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ षण्णां संस्थानानां मध्ये एकतरं १ षण्णां संहननानां मध्ये एकतरं १ त्रस-वर्णाऽगुरुलघुचतुष्कं [४।४।४] १२ निर्माणं १ पञ्चेन्द्रियं १ स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भगाऽऽदेयाऽनादेय-सुस्वरदुःस्वर-प्रशस्ताप्रशस्त-[विहायोगति-] यशोऽयशसां सप्तानां युगलानां मध्ये एकतरं।१।१।१।१।१।१।१ एवं नवविंशतिकं स्थानं २९ मनुष्यगतियुक्तं मिथ्यादृष्टिश्चातुर्गतिको जीवो बध्नाति ॥२९२॥

६।६।२।२।२।२।२।२।२ एते परस्परेण गुणितास्तृतीयैकोनत्रिंशत्कस्य भङ्गाः ४६०८।

इसी प्रकार तृतीय उनतीस प्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १६९-१७०।
१. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ६१।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

कि वह सृपाटिकासंहनन और हुण्डकसंस्थान सहित है। तथा सात युगलोंमेंसे किसी एक प्रकृतिके साथ उसे चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीव बाँधते हैं ॥२६२॥

इस तृतीय उनतीस प्रकृतिक स्थानमें छह संस्थान, छह संहनन और सात युगलोंके परस्पर गुणा करनेपर (६×६×२×२×२×२×२×२×२=) ४६०८ भंग होते हैं।

[1]तत्थ इमं पणुवीसं मणुयदुगं उराल तेज कम्मं च।
ओरालियंगवंगं हुंडमसंपत्तं वण्णचदुं ॥२६३॥
अगुरुगलहुगुवघादं तस बादर पत्तेयं अपज्जत्तं।
अत्थिरमसुहं दुब्भगमणादेज्जं अजसणिमिणं च ॥२६४॥
पंचिंदियसंजुत्तं पणुवीसं बंधओ तहा मिच्छो।
मणुसगई-संजुत्ताणि तिण्णि ठाणाणि भणियाणि ॥२६५॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यङ् मनुष्यो वा मनुष्यगत्या सहेदं पञ्चविंशतिकस्थानं बध्नाति २५। किं तत्? मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ औदारिक-तैजस-कार्मणशरीराणि ३ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ हुण्डकसंस्थानं १ असम्प्राप्तसंहननं १ वर्णचतुष्कं १ अगुरुलघूपघातौ २ त्रसं १ बादरं १ प्रत्येकं १ अपर्याप्तं १ अस्थिरं १ अशुभं १ दुर्भगं अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ पञ्चेन्द्रियं १ चेति पञ्चविंशतिकं नामप्रकृतिस्थानं मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाति २५। मनुष्यगतिसहितानि त्रीणि नामप्रकृतिबन्धस्थानानि जिनैर्भणितानि ॥२६३-२६५॥

पच्चीस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—मनुष्यद्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर-अंगोपांग, हुण्डकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण और पंचेन्द्रियजाति। पंचेन्द्रियजातिसंयुक्त इस पच्चीस प्रकृतिक स्थानको तिर्यञ्च या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है। इस प्रकार मनुष्यगतिसंयुक्त उक्त तीन स्थान कहे गये हैं ॥२६३–२६५॥

[2]एत्थ संकिलेसेण बज्झमाण-अपज्जत्तेण सह थिरादीणं विसुद्धिपयडीणं बंधो णत्थि तेण १ भंगो।

एवं मणुसगइसव्वभंगा ८ + ४६०८ + १ = ४६१७ । ४६१७।

अत्र पञ्चविंशतिके संक्लेशेन बध्यमानेनापर्याप्तेन सह स्थिरादीनां विशुद्धिप्रकृतीनां बन्धो नास्ति, तेन भङ्ग एक एव १।

एवं मनुष्यगतेः सर्वे भङ्गाः ४६१७।

यहाँ पर संक्लेशके साथ बँधनेवाली अपर्याप्त प्रकृतिके साथ स्थिर आदि विशुद्धिकालमें बँधनेवाली प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है; इसलिए भंग एक ही है।

इस प्रकार मनुष्यगतिसंयुक्त सर्वभंग (८+४६०८+१=४६१७) होते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १७२-१७४। 2. ४, १७५।

१. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ६३-६४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब देवगतिसंयुक्त बँधनेवाले स्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]देवदुयं पंचिंदिय वेउव्विय आहार-तेज-कम्मं च ।
समचउरं वेउव्विय आहारय अंगवंगं च ॥२६६॥
तसचउ वण्णचउक्कं अगुरुयलहुयं च चत्तारि ।
थिर सुभ सुभगं सुस्सर पसत्थगइ जस य आदेज्जं ॥२६७॥

[2]एत्थ देवगईए सह संघयणाणि ण बज्झंति, देवेसु संघयणाणमुदयाभावादो। एत्थ भंगो १ ।

णिमिणं चि य तित्थयरं एक्कत्तीसं ति होंति णेयाणि ।
बंधइ पमत्त-इयरो अपुव्वकरणो य णियमेण[1] ॥२६८॥

अथ देवगत्या सह नामप्रकृतिबन्धस्थानविचारं गाथानवकेनाऽऽह—['देवदुयं पंचिंदिय' इत्यादि ।] प्रमत्तादितरः अप्रमत्तः, अपूर्वकरणश्च नामकर्मण एकत्रिंशत्कं प्रकृतीर्बध्नाति । ताः का इति चेदाऽऽह—देवगति-देवगत्यानुपूर्व्यद्विकं २ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिकाऽऽहारक-तैजसकार्मणशरीराणि ४ समचतुरस्रसंस्थानं १ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वयं २ त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकचतुष्कं ४ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं ४ स्थिरं १ शुभं १ सुभगं १ सुस्वरः १ प्रशस्तविहायोगतिः १ यशस्कीर्त्तिः १ आदेयं १ निर्माणं १ तीर्थंकरत्वं १ चेति एकत्रिंशत्कं नामप्रकृतिस्थानं ३१ अप्रमत्तो यतिः अपूर्वकरणोपशमकश्च बध्नाति नियमेन भवतीति ज्ञेयम् ॥२६६-२६८॥

देवद्विक (देवगति-देवगत्यानुपूर्वी), पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, आहारकशरीर-अंगोपांग, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, प्रशस्त विहायोगति, यशःकीर्त्ति, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर; ये इकतीस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियाँ जानना चाहिए। इस स्थानको अप्रमत्तसंयत या अपूर्वकरणसंयत ही नियमसे बाँधते हैं ॥२६६-२६८॥

अत्रैकत्रिंशत्के देवगत्या सह संहननानि न बध्नन्ति । कुतः ? देवानां संहननानामुदयाभावात् । अत्र भङ्गः १ एकः ।

यहाँ पर देवगतिके साथ किसी भी संहननका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि देवोंमें संहननोंका उदय नहीं पाया जाता। यहाँ पर भंग एक ही है।

[3]एमेव होइ तीसं णवरि हु तित्थयरवज्जियं णियमा ।
बंधइ पमत्त-इयरो अपुव्वकरणो य णायव्वो[2] ॥२६९॥

अप्रमत्तस्थो मुनिः अपूर्वकरणस्थः साधुश्चैवमेकत्रिंशत्कप्रकारेण नामप्रकृतिस्थानं त्रिंशत्कं ३० बध्नाति । नवरि विशेषः । कथम्भूतः ? तीर्थंकरत्ववर्जितं तीर्थंकरत्वं वर्जयित्वा त्रिंशत्कं अप्रमत्तोऽपूर्वकरणो वा बध्नाति ज्ञातव्यमिति नियमात् ॥२६९॥

इसी प्रकार—इकतीस प्रकृतिक स्थानके समान—तीस प्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि इसमें तीर्थंकर प्रकृति छूट जाती है। इस तीस प्रकृतिक स्थानको भी अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयत ही नियमसे बाँधते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२६९॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १७७-१८० । 2. ४, १८१ । 3. ४, १८२ ।

१. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ६६ । २. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० ६८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]एत्थ अथिरादीणं बंधो ण होइ, विसुद्धीए सह एएसिं बंधविरोहादो। तेणेत्थ भंगो १।

अत्रास्थिरादीनां बन्धो न भवति। कुतः? विशुद्धया सहैतासामस्थिरादीनां बन्धविरोधात्। ततोऽत्र भङ्ग एक एव १।

यहाँ पर अस्थिर आदि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि विशुद्धिके साथ इनके बँधनेका विरोध है। इस कारण यहाँ पर भंग एक ही है।

[2]आहारदुयं अवणिय एकत्तीसम्हि पढमउणतीसं।
बंधइ अपुव्वकरणो अप्पमत्तो य णियमेण[1] ॥३००॥

एत्थ वि भंगो १।

पूर्वोक्तैकत्रिंशत्कात् ३१ आहारकद्विकमपनीय दूरीकृत्याऽऽहारकद्विकं विना प्रथमैकोनत्रिंशत्कं प्रकृतिस्थानं २९ अपूर्वकरणोऽप्रमत्तश्च बध्नाति। तत्किम्? देवगति-तदानुपूर्वीद्विकं २ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिक-तैजस-कार्मणत्रिकं ३ समचतुरस्रं १ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गं १ त्रस-वर्णाऽगुरुलघुचतुष्कं १२। स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-प्रशस्तगतयः ५ यशः १ आदेयं १ निर्माणं १ तैर्थ्यं १ चेति प्रथममेकोनत्रिंशत्कं स्थानं २९ अपूर्वकरणोऽप्रमत्तश्च मुनिर्बध्नातीति निश्चयेन ॥३००॥

अत्रापि भङ्गः १।

इकतीस प्रकृतिक स्थानमेंसे आहारकद्विक (आहारकशरीर-आहारक अंगोपांग) को निकाल देने पर प्रथम उनतीस प्रकृतिक स्थान हो जाता है। इस स्थानको अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण-संयत नियमसे बाँधते हैं ॥३००॥

प्रथम उनतीस प्रकृतिक स्थानमें भी भंग एक ही होता है।

[3]एवं बिदिउगुतीसं णवरि य थिर सुभ जसं च एक्कयरं।
बंधइ पमत्तविरदो अविरदो देसविरदो य[2] ॥३०१॥

एवं प्रथममेकोनत्रिंशत्कप्रकारेण द्वितीयमेकोनत्रिंशत्कं स्थानं २९ प्रमत्तविरतो मुनिरविरतोऽसंयत-सम्यग्दृष्टिर्देशविरतश्च बध्नाति। नवरि किञ्चिद्विशेषः—स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशोऽयशसां मध्ये एकतरं १।१।१। स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोर्यशोऽयशसोर्मध्ये एकतरम् [बध्नातीत्यर्थः] ॥३०१॥

इसी प्रकार द्वितीय उनतीस प्रकृतिक स्थान जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि यहाँ पर स्थिर, शुभ और यशःकीर्ति; इन तीन युगलोंमेंसे किसी एक-एक प्रकृतिका बन्ध होता है। इस द्वितीय उनतीस प्रकृतिक स्थानको प्रमत्तविरत, देशविरत और अविरतसम्यग्दृष्टि जीव बाँधते हैं ॥३०१॥

[4]एत्थ देवगईए सह उज्जोवं ण बज्झइ, देवगदिम्मि तस्स उदयाभावादो, तिरियगई मुच्चा अण्णगईए सह तस्स बंधविरोहादो। देवाणं देहदित्ती तदो कुदो? वण्णणामकम्मोदयादो। एत्थ य तिण्णि जुयलाणि २।२।२ अण्णोण्णगुणिया भंगा ८।

अत्र देवगत्या सहोद्योतो न बध्यते, तत्र देवगतौ तस्योद्योतस्य उदयाभावात्। तिर्यग्गतिं मुक्त्वा अन्यया गत्या सह तस्योद्योतस्य बन्धविरोधात्। देवानां देहदीप्तिस्तर्हि कुतः? वर्णनामकर्मोदयात्। अत्र द्वितीयैकोनत्रिंशत्के स्थिरादीनि त्रीणि युगलानि २।२।२। अन्योन्यगुणितानि भङ्गाः अष्टौ ८।

यहाँ पर देवगतिके साथ उद्योतप्रकृति नहीं बँधती है; क्योंकि देवगतिमें उसका उदय नहीं होता है। तिर्यग्गतिको छोड़ कर अन्य गतिके साथ उसके बँधनेका विरोध है। तो देवोंमें

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १८३। 2. ४, १८४। 3. ४, १८५। 4. ४, 'अत्र देवगत्या सहोद्योतो' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२६)।

१. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० १००। २. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० १०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देह-दीप्ति किस कर्मके उदयसे होती है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि वर्णनाम कर्मके उदयसे उनके शरीरोंमें दीप्ति होती है। यहाँपर स्थिरादि तीन युगलोंके परस्पर गुणा करनेसे (२×२×२ =) ८ भंग होते हैं।

[1]तित्थयराहादुयं एक्कत्तीसम्हि अवणिए पढमं।
अट्ठावीसं बंधइ अपुव्वकरणो य अप्पमत्तो य[1] ॥२०२॥

एत्थ भंगो १। पुणरुत्तो ण गहिओ।

पूर्वोक्ते एकत्रिंशत्के ३१ तीर्थंकरत्वाऽऽहारकद्वयेऽपनीते दूरीकृते प्रथममष्टाविंशतिकं स्थानं २८ अपूर्वकरणो मुनिरप्रमत्तो मुनिश्च बध्नाति २८ ॥२०२॥

अत्र भङ्गः १ पुनरुक्तात्र गृहीतः।

इकतीसप्रकृतिक स्थानमेंसे तीर्थङ्कर और आहारकद्विक, इन तीन प्रकृतियोंके निकाल देनेपर शेष रहीं अट्ठाईस प्रकृतियोंको अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयत बाँधते हैं। यह प्रथम अट्ठाईसप्रकृतिक स्थान है ॥२०२॥

[2]बिदियं अट्ठावीसं बिदिउगुतीसं च तित्थयरहीणं।
मिच्छादिपमत्तंता य बंधगा होंति णायव्वा[2] ॥२०३॥

द्वितीयमष्टाविंशतिकं २८ द्वितीयैकोनत्रिंशत्कं २९ तीर्थंकरहीनं सत् मिथ्यादृष्ट्यादि-प्रमत्तान्ता बध्नन्ति बन्धका भवन्तीति ज्ञातव्यम्। तथाहि—देवगति-देवगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिक-तैजस-कार्मण-त्रिकं ३ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गं १ समचतुरस्रं १ त्रस-वर्णागुरुलघुचतुष्कं १२ स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशोऽयशसां युगलानां मध्ये एकतरं १।१।१ सुस्वरः १ सुभगं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ आदेयं १ निर्माणं १ चेत्यष्टाविंशतिकनामप्रकृतिबन्धस्थानस्य मिथ्यादृष्ट्यादि-प्रमत्तान्ता बन्धका भवन्ति २८ ॥२०३॥

यहाँपर भंग एक ही है। किन्तु वह पुनरुक्त है, अतः उसका ग्रहण नहीं किया गया है।

द्वितीय उनतीस प्रकृतिक स्थानमेंसे तीर्थङ्कर प्रकृतिके कम कर देनेपर द्वितीय अट्ठाईस प्रकृतिक स्थान हो जाता है। इस स्थानके बन्धक मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके जीव होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२०३॥

[3]कुदो एवं, उवरिजाणं अप्पमत्तादीणं अथिर-असुह-अजसकित्तीणं बंधाभावादो। भंगा ८।

स्थिरादीनि २।२।२ परस्परगुणितानि ८ भङ्गाः। कुत एवं? अप्रमत्तादीनां उपरिजानां गुणस्थानानां अस्थिराशुभायशस्कीर्तीनां बन्धाभावात्।

ऐसा क्यों होता है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि अप्रमत्तसंयतादि उपरितनगुणस्थान-वर्ती जीवोंके अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्त्ति, इन तीनों प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है। यहाँपर शेष तीन युगलोंके गुणा करनेसे आठ भंग होते हैं।

[4]बंधंति जसं एगं अपुव्व अणियट्टि सुहुमा य।
तेरे णव चउ पणयं बंध-वियप्पा हवंति णामस्स[3] ॥२०४॥

एवं ठाणबंधो समत्तो।

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १८६। 2. ४,१८६। 3. ४ 'अप्रमतादीनां' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १२७) 4. ४,१८८।

१. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० १०४-१०५। २. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० १०६-१०७। ३. षट्खं० जीव० चू० स्थान० सू० १०८-१०९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपूर्वकरणानिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायाः मुनयः एकं यशःप्रकृतिकं [स्थानं] बध्नन्ति । देवगत्या सह बन्धस्थानभेदा गुणस्थानेषु—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०
२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८
			२९	२९	२९	२९	२९
						३०	३०
							३१
							१

अपूर्वादिषु १।१।१। मिथ्यात्वादिप्रमत्तेषु अपूर्वकरणेषु अष्टौ भङ्गाः ८ । मिश्रीकरणेषु पृथक् पृथक् अष्टौ भङ्गाः ८ । अभेदतायां देवगतौ एकोनविंशतिभङ्गाः १९ । नामकर्मणः प्रकृतिस्थानानां त्रयोदश-नव-चतुःपञ्चसंख्योपेताः सर्वे बन्धविकल्पाः १३९४५ भवन्ति ।

घोरसंसारवाराशितरङ्गनिकरोपमैः ।
नामबन्धपदैर्जीवा वेष्टितास्त्रिजगद्भवाः[1] ॥३०॥

इति नामकर्मणः प्रकृतिस्थानबन्धः समाप्तः ।

यशस्कीर्त्तिरूप एक प्रकृतिक स्थानको अपूर्वकरणसंयत, अनिवृत्तिकरणसंयत और सूक्ष्म-साम्परायसंयत बाँधते हैं। (इस प्रकार देवगतिसंयुक्त सर्व भंग (१ + १ + १ + ८ + १ + ८ = २०) होते हैं। तथा नामकर्मके ऊपर बतलाये गये सर्व बन्धविकल्प (तिर्यग्गति-सम्बन्धी ९३०८ + मनुष्यगतिके ४६१७ + देवगतिसम्बन्धी २० = १३९४५) तेरह हजार नौ सौ पैंतालीस होते हैं ॥२०४॥

चतुर्गति-सम्बन्धी सर्व विकल्प १३९४५ होते हैं।

इस प्रकार नामकर्मके बन्धस्थानोंका विवरण समाप्त हुआ।

अब गुणस्थानोंकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्ध स्वामित्वको कहते हैं—

[मूलगा०४१] [1]सव्वासिं पयडीणं मिच्छादिट्ठी दु बंधगो भणिओ ।
तित्थयराहारदुगं मोत्तूणं सेसपयडीणं[1] ॥२०५॥

[मूलगा०४२] [2]सम्मत्तगुणणिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारा ।
बज्झंति सेसियाओ मिच्छत्ताईहिं हेऊहिं[2] ॥२०६॥

अथ गुणस्थानेषु बन्धाबन्धप्रकृतिभेदं दर्शयति—['सव्वासिं पयडीणं' इत्यादि ।] मिथ्यादृष्टिः सर्वासां प्रकृतीनां बन्धको भणितः, तीर्थकृत्वाऽऽहारकद्विकं मुक्त्वा शेषसप्तदशोत्तरशतप्रकृतीनां ११७ बन्धको मिथ्यात्वगुणस्थाने मिथ्यादृष्टिजीवो भवति सम्यक्त्वगुणकारणतीर्थकरत्वं उपशम-वेदक-क्षायिकाणां मध्ये अन्यतरसम्यक्त्वे सति तीर्थकरत्वस्याविरताद्यपूर्वकरणस्य षष्ठभागपर्यन्तं बन्धो भवति । संयमेन सामायिक-च्छेदोपस्थापनेन आहारकाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वयं अप्रमत्ताद्यपूर्वकरणषष्ठभागान्ता मुनयो बध्नन्ति । 'सम्मेव तित्थबन्धो आहारदुगं पमादरहिदेसु[3]' इति वचनात् । शेषाः प्रकृतीर्मिथ्यात्वाऽविरतिकषाययोगहेतुभिः प्रत्ययैः कृत्वा मिथ्यात्वादिगुणस्थानेषु बध्नन्ति ॥२०५-२०६॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १६२ । 2. ४. १६३ ।

१. गो० कर्म० गा० ५८२ संस्कृतटीकायामपि उपलभ्यते ।

१. शतक० ४४ । २. शतक० ४५ । ३. गो० क० गा० ९२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थङ्कर और आहारकद्विक, इन तीन प्रकृतियोंको छोड़कर शेष सर्व प्रकृतियोंका बन्धक मिथ्यादृष्टि जीव कहा गया है। इसलिए मिथ्यात्वगुणस्थानमें ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। सम्यक्त्वगुणके निमित्तसे तीर्थङ्कर प्रकृतिका और संयमगुणके निमित्तसे आहारकद्विकका बन्ध होता है। शेष एक सौ सत्तरह प्रकृतियाँ मिथ्यात्व, अविरति आदि हेतुओंसे बँधती है॥३०५-३०६॥

अब कितनी प्रकृतियाँ किस गुणस्थान तक बँधती हैं, इस बातका निरूपण करते हैं—

[3]सोलस मिच्छच्चंता आसादंता य पंचवीसं तु।
तित्थयराउवसेसा अविरय-अंता दु मिस्सस्स[1] ॥३०७॥

षोडश प्रकृतीः मिथ्यादृष्टिगुणस्थानचरमसमयान्ता बन्ध-व्युच्छिन्ना बध्नन्ति १६। पञ्चविंशति-प्रकृतीः सासादनान्ता बन्धव्युच्छेदं प्राप्ता बध्नन्ति २५। तीर्थङ्करप्रकृतिं देव-नरायुर्द्वयं च विना याः शेषाः प्रकृतीः अविरतान्ता बध्नन्ति ता मिश्रे च बध्नन्ति। तथाहि—मिश्रे मनुष्यायुर्देवायुर्बन्धो न। असंयतादौ तीर्थकरत्वबन्धोऽस्ति, नरायुषो व्युच्छेदः। अप्रमत्तान्तं देवायुषो बन्धः ॥३०७॥

मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्त तक वक्ष्यमाण सोलह प्रकृतियाँ बँधती हैं। पच्चीस प्रकृतियाँ सासादनगुणस्थानके अन्त तक बँधती है। अविरतगुणस्थानके अन्त तक जिनका बन्ध होता है, ऐसी तीर्थङ्कर और आयुद्विकके विना चौहत्तर प्रकृतियाँ मिश्रगुणस्थानके अन्त तक तक बँधती हैं ॥३०७॥

	१६		२५		०
इदि तित्थयराहार दुगूणा मिच्छादिट्ठिम्मि	११७	सासणे	१०१	मणुयदेवाउयं विणा मिस्से	७४।
	१		१६		४६
	३१		४७		७४

इति गुणस्थानेषु प्रकृतीनां स्वामित्वं कथ्यते-तीर्थङ्करत्वाऽऽहारकद्वयोना मिथ्यादृष्टौ, सास्वादने, मनुष्य-देवायुर्भ्यां विना मिश्रे—

	म०	सा०	मि०
वि०	१६	२५	०
बं०	११७	१०५	७४
अ०	३	१६	४६
बं०	३१	४७	७४

इस प्रकार तीर्थङ्कर और आहारकद्विकके विना मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्तिके योग्य प्रकृतियाँ १६ है, बन्धके योग्य ११७ हैं, अबन्धप्रकृतियाँ ३ हैं और ३१ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। सासादनगुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्तिके योग्य प्रकृतियाँ २५ हैं, बन्धके योग्य ११७ हैं, अबन्धप्रकृतियाँ १६ हैं और ४७ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। मिश्रगुणस्थानमें मनुष्यायु और देवायुके विना बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ ७४ हैं, अबन्धप्रकृतियां ४६ हैं और ७४ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। इस गुणस्थानमें किसी भी प्रकृतिको बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती है।

3. सं० पञ्चसं० ४, १६४-१६५।

1. शतक० ४६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब प्रथम गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंको गिनाते हैं--

[1]मिच्छ णउंसयवेयं णिरयाऊ तह य चेय णिरयदुगं ।
इगि-वियलिंदियजाई हुंडमसंपत्तमादावं ॥३०८॥
थावर सुहुमं च तहा साहारण तहेव अपज्जत्तं ।
एवं सोलह पयडी मिच्छत्तम्हि य बंधवोच्छेओ ॥३०९॥

मिथ्यात्वं १ नपुंसकवेदः १ नरकायुः १ नरकगति-नरकगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियजातयः ४ हुण्डकं १ असम्प्राप्तसृपाटिकासंहननं १ आतपः १ स्थावरं १ सूक्ष्मं १ साधारणं १ अपर्याप्तं १ चेत्येवं षोडश प्रकृतयो मिथ्यात्वहेतुभूता मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बन्धव्युच्छिन्नाः १६ । एतासामग्रेऽभावः ॥३०८-३०९॥

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु तथा नरकद्विक, एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रियजातित्रिक, हुण्डकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त ये सोलह प्रकृतियाँ मिथ्यात्वगुणस्थानके अन्तमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३०८-३०९॥

अब दूसरे गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ बतलाते हैं—

[2]थीणतियं इत्थी वि य अण तिरियाऊ तहेव तिरियदुगं ।
मज्झिमचउसंठाणं मज्झिमचउ चेव संघयणं ॥३१०॥
उज्जोयमप्पसत्थं विहायगइ दुब्भगं अणादेज्जं ।
दुस्सर णीचागोदं सासणसम्मम्हि वोच्छिण्णा ॥३११॥

स्त्यानगृद्धित्रयं निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिरिति त्रिकं ३ स्त्रीवेदः १ अनन्तानुबन्धि-क्रोधादिचतुष्कं ४ तिर्यगायुः १ तिर्यग्गति-तदानुपूर्व्ये २ न्यग्रोध-वाल्मीक-कुब्जक-वामनसंस्थानमध्यचतुष्कं ४ वज्रनाराचनाराचार्धनाराचकीलितसंहननमध्यचतुष्कं ४ उद्योतः १ अप्रशस्तविहायोगतिः १ दुर्भगं १ अनादेयं १ दुःस्वरः १ नीचगोत्रं १ एवं पञ्चविंशतिप्रकृतयः सास्वादनगुणस्थाने [बन्ध] व्युच्छिन्ना भवन्ति २५ ॥३१०-३११॥

स्त्यानत्रिक (स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला) स्त्रीवेद, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, तिर्यगायु, तिर्यग्द्विक, मध्यम चार संस्थान, मध्यम चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, अनादेय, दुःस्वर और नीचगोत्र, ये पच्चीस प्रकृतियाँ सासादनगुणस्थानके अन्तमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३१०-३११॥

अब अविरतादि चार गुणस्थानोंमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंकी संख्या बतलाते हैं—

[मूलगा० ४४] अविरयअंता दसयं विरयाविरयंतिया दु चत्तारि ।
छच्चेव पमत्तंता एया पुण अप्पमत्तंता[1] ॥३१२॥

दश प्रकृतयः अविरतान्ताः अविरते व्युच्छेदं प्राप्ता इत्यर्थः । चतस्रः प्रकृतयो विरताविरतान्ता देशसंयते व्युच्छिन्नाः ४ । षट् प्रकृतयः प्रमत्तान्ताः प्रमत्ते व्युच्छिन्नाः ६ । एका प्रकृतिः अप्रमत्तान्ता अप्रमत्ते व्युच्छिन्ना ॥३१२॥

---

1. ब, 'तत्र मिथ्यात्वनपुंसकं' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १२९)। 2. ब, 'स्त्यानगृद्धित्रय' इत्यादि-गद्यभागः (पृ० ११७)।

१. शतक० ४७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविरतगुणस्थानके अन्तमें दश प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। विरताविरतके अन्तमें चार प्रकृतियाँ और प्रमत्तविरतके अन्तमें छह प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। अप्रमत्तविरतके अन्तमें एक प्रकृति बन्धसे व्युच्छिन्न होती है ॥३१२॥

तित्थयर-मणुय-देवाऊहिं सह असंजयसम्माइट्ठिम्मि	१० ७७ ४३ ७१	देसविरदे	४ ६७ ५३ ८१	पमत्ते	६ ६३ ५७ ८५	आहारदुगेण

सह अप्पमत्ते	१ ५९ ६१ ८९	।

तीर्थंकरत्वेन मनुष्य-देवायुर्भ्यां च सह असंयतसम्यग्दृष्टौ, देश-विरते प्रमत्ते, आहारकयुगेन सहाप्रमत्ते—

	अ०	दे०	प्र०	अ०
वि०	१०	४	६	१
बं०	७७	६७	६३	५९
अ०	४३	५३	५७	६१
बं०	७१	८१	८५	८९

तीर्थङ्कर, मनुष्यायु और देवायुके साथ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें ७७ प्रकृतियाँ बँधती हैं, १० प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। अबन्धप्रकृतियाँ ४३ हैं और ७१ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। देशविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ ४ हैं, बन्धके योग्य ६७ हैं, अबन्धप्रकृतियाँ ५३ हैं और ८१ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। प्रमत्तविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युछिन्न होनेवाली प्रकृतियाँ ६ हैं, बन्धके योग्य ६३ हैं, अबन्धप्रकृतियाँ ५७ हैं और ८५ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। अप्रमत्तविरतमें आहारकद्विकके साथ बन्धयोग्य प्रकृतियाँ ५९ हैं, बन्धसे व्युछिन्न होनेवाली प्रकृति १ है, अबन्धप्रकृतियाँ ६१ हैं और ८९ प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है।

अब अविरत आदि चार गुणस्थानोंमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

[1]बिदियकसायचउक्कं मणुयाऊ मणुयदुगय उरालं।
तस्स य अंगोवंगं संघयणाई अविरयस्स ॥३१३॥
[2]तइयकसायचउक्कं विरयाविरयम्हि बंधवोच्छिण्णो।
[3]साइयरमरइ सोयं तह चेव य अथिरमसुहं च ॥३१४॥
अजसकित्ती य तहा पमत्तविरयम्हि बंधवोच्छेदो❀।
देवाउयं च एयं पमत्तइयरम्हि णायव्वो ॥३१५॥

प्रत्याख्यानचतुष्कं ४ मनुष्यायुः १ मनुष्यगति-तदानुपूर्व्ये द्वे २ औदारिकं १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ वज्रवृषभनाराचमाद्यसंहननं १। एवं दश प्रकृतीनां असंयतगुणस्थाने विच्छेदः १० प्रत्याख्यानतृतीयचतुष्कं ४ देशसंयमे बन्धव्युच्छिन्नम् ४। असातं १ अरतिः १ शोकः १ अस्थिरं १ अशुभं १ अयशस्कीर्त्तिः १

1. सं० पञ्चसं० ४, 'द्वितीयकषायचतुष्कं' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १२९)। 2. ४, 'चतुर्थी तृतीय कषायाणां' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १२९)। 3. ४, 'शोकारत्य' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १२९)।
❀ब बोच्छिण्णो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेति प्रमत्तसंयते षट् प्रकृतयो व्युच्छिद्यन्ते ६ । अप्रमत्ते एकस्य देवायुषो [बन्ध] व्युच्छेदो ज्ञातव्यः ॥३१३–३१५॥

द्वितीय अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क, मनुष्यायु, मनुष्यद्विक, औदारिकशरीर, औदारिक-अङ्गोपाङ्ग और वज्रवृषभनाराचसंहनन; ये दश प्रकृतियाँ अविरतगुणस्थानके अन्तमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। तृतीय प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क, विरताविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्त्ति ये छह प्रकृतियाँ प्रमत्तविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। एक देवायुप्रकृति अप्रमत्तविरतगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती है ॥३१३–३१५॥

अब अपूर्वकरणगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंकी संख्या बतलाते हैं—

[मूलगा० ४५] दो तीसं चत्तारि य भागा भागेसु संखसण्णाओ ।
चत्तारि समयसंखा अपुव्वकरणंतिहा† होंति[1] ॥३१६॥

अपूर्वकरणस्य सप्त भागास्त्रिधा भवन्ति—प्रथमभागे प्रकृतिद्वयस्य बन्धव्युच्छेदः २ । षष्ठे भागे त्रिंशत्कप्रकृतीनां व्युच्छेदः ३० । सप्तमे भागे चतुःप्रकृतीनां बन्धव्युच्छेदः ४ । अपूर्वकरणस्य त्रिषु भागेषु प्रकृतीनां संख्यासंज्ञार्थं २।३०।४। शेषाश्चत्वारो भङ्गाः समयसंख्यार्थं कालसंख्यार्थं ज्ञातव्यम् २ ॥३१६॥

अपूर्वकरणगुणस्थानके संख्यात अर्थात् सात भाग होते हैं। उनमेंसे प्रथम भागमें दो प्रकृतियाँ, छट्ठे भागमें तीस प्रकृतियाँ और सातवें भागमें चार प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती है। इस प्रकार बन्धव्युच्छित्तिकी अपेक्षा अपूर्वकरणके तीन भाग प्रधान हैं। शेष चार भाग अपूर्वकरणगुणस्थानके समय अर्थात् काल बतलानेके लिए निरूपण किये गये हैं ॥३१६॥

अपुव्वेसु सत्तसु भाएसु	२	०	०	०	०	३०	४
	५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
	६२	६४	६४	६४	६४	६४	९४
	९०	९२	९२	९२	९२	९२	१२२

अपूर्वकरणस्य सप्तसु भागेषु	२	०	०	०	०	३०	४
	५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
	६२	६४	६४	६४	६४	६४	९४
	९०	९२	९२	९२	९२	९२	१२२

अपूर्वकरणके सातों भागोंके बन्धाबन्धयोग्य प्रकृतियोंकी अङ्कसंदृष्टि मूलमें दी हुई है।

अब अपूर्वकरणमें बन्ध-व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

[1]णिद्दा पयला य तहा अपुव्वपढमम्हि बंधवोच्छेओ ।
देवदुयं पंचिंदिय ओरालिय वज्ज चउसरीरं च ॥३१७॥
समचउरं वेउव्विय आहारय अंगवंगणामं च ।
वण्णचउक्कं च तहा अगुरुयलहुगं च चत्तारि ॥३१८॥
तसचउ पसत्थमेव य विहायगइ थिर सुहं च णायव्वं ।
सुभगं सुस्सरमेव य आदेज्जं चेव णिमिणं च ॥३१९॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, 'अपूर्वस्य प्रथमे' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १२९)

१. शतक० ४८ ।

†ब -तिया ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तित्थयरमेव तीसं अपुव्वछब्भाय बंधवोच्छिण्णा ।
हस्स रइ भय दुगुंछा अपुव्वचरिमम्हि वोच्छिण्णा ॥३२०॥

अपूर्वकरणस्य प्रथमे भागे निद्रा-प्रचले द्वे बन्धव्युच्छिन्ने २ । षष्ठे भागे चरमसमये देवगति-देवगत्यानुपूर्व्ये द्वे २ पञ्चेन्द्रियं १ औदारिकवर्जितं वैक्रियिकाऽऽहारक-तैजस-कार्मणशरीरचतुष्कं ४ समचतुरस्रसंस्थानं १ वैक्रियिकाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वयं २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ त्रसचतुष्कं ४ प्रशस्तविहायोगतिः १ स्थिरं १ शुभं १ सुभगं १ सुस्वरः १ आदेयं १ निर्माणं १ तीर्थंकरत्वं १ एवं त्रिंशत्प्रकृतयोऽपूर्वकरणस्य षष्ठे भागे बन्धाद् व्युच्छिन्नाः ३० । हास्यं १ रतिः १ भयं १ जुगुप्सा १ इति चतस्रः प्रकृतयोऽपूर्वकरणस्य चरमे सप्तमे भागे बन्ध-व्युच्छिन्नाः ॥३१७–३२०॥

निद्रा और प्रचला, ये दो प्रकृतियाँ अपूर्वकरणके प्रथम भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। देवद्विक, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीरको छोड़कर शेष चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक-अङ्गोपाङ्ग, आहारक-अङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, प्रशस्त-विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्कर, ये तीस प्रकृतियाँ अपूर्वकरणके छठवें भागमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। हास्य, रति, भय और जुगुप्सा, ये चार प्रकृतियाँ अपूर्वकरणके चरम समयमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३१७-३२०॥

अब नववें और दसवें गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंकी संख्या बतलाते हैं—

[मूलगा० ४६] संखेज्जदिमे सेसे आढत्ता* वायरस्स चरिमंतो[1] ।
पंचसु एक्केक्कंता सुहुमंता सोलसा होंति[†] ॥३२१॥

बादरस्यानिवृत्तिकरणस्य शेषान् संख्याततमान् कांश्चिद् भागान् मुक्त्वा उद्वरित (?) भागेषु आहत्ता आरुह्य [आढत्ता आरभ्य] ततः पञ्चसु भागेषु चरमान्ते प्रान्ते एकैकस्याः प्रकृतेरन्तो व्युच्छेदो भवतीत्यर्थः । सूक्ष्मान्ताः सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमये षोडश प्रकृतयो व्युच्छिन्ना भवन्ति १६ ॥३२१॥

बादरसाम्पराय अर्थात् अनिवृत्तिकरणके संख्यातवें भागके शेष रह जानेपर वहाँसे लगाकर चरम समयके अन्ततक होनेवाले पाँच भागोंमें एक-एक प्रकृति क्रमशः बन्धसे व्युच्छिन्न होती है। शेष सोलह प्रकृतियाँ सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३२१॥

अणिअट्टियम्मि पंचसु भाएसु सुहुमम्मि जहा पत्थारो—

१	१	१	१	१	१६
२२	२१	२०	१९	१८	१७
९८	९९	१००	१०१	१०२	१०३
१२६	१२७	१२८	१२९	१३०	१३१

अनिवृत्तिकरणस्य पञ्चसु भागेषु सूक्ष्मसाम्पराये च प्रस्तारो यथा—

१	१	१	१	१	१६
२२	२१	२०	१९	१८	१७
९८	९९	१००	१०१	१०२	१०३
१२६	१२७	१२८	१२९	१३०	१३१

अनिवृत्तिकरणके पाँच भागोंमें तथा सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें बन्धाबन्ध प्रकृतियोंकी प्रस्तार-रचना मूलमें दी है।

---

1. शतक० ४९ ।
*ब आहत्ता । †द ब -ं

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अब नवें गुणस्थानमें, बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके नाम बतलाते हैं—

[1]पुरिसं चउसंजलणं पंच य पयडी य पंचभायम्मि ।
अणिअट्टी-अद्धाए जहाकमं बंधवुच्छेओ ॥३२२॥

अनिवृत्तिकरणस्याद्धाभागेषु पञ्चसु यथाक्रमं [बन्ध-] व्युच्छेदः । प्रथमभागे पुंवेदः १ । द्वितीयभागे संज्वलनक्रोधः १ । तृतीयभागे संज्वलनमानः १ । चतुर्थभागे संज्वलनमाया १ । पञ्चमे भागे संज्वलनलोभः १ बन्धव्युच्छिन्नः ॥३२२॥

अनिवृत्तिकरण कालके पाँच भागोंमें पुरुषवेद और चार संज्वलनकषाय, ये पाँच प्रकृतियाँ यथाक्रमसे एक-एक करके बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३२२॥

अब दशवें गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके नाम बतलाते हैं—

[2]णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि उच्च जसकित्ती ।
एए सोलह पयडी सुहुमकसायम्मि वोच्छेओ ॥३२३॥

ज्ञानावरणपञ्चकं ५ अन्तरायपञ्चकं ५ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं ४ उच्चैर्गोत्रं १ यशस्कीर्त्तिः १ इत्येताः षोडश प्रकृतयः सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमये [बन्धाद्] व्युच्छिन्नाः १६ ॥३२३॥

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी चार, उच्चगोत्र और यशःकीर्त्ति ये सोलह प्रकृतियाँ सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके अन्तिम समयमें बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥३२३॥

अब तेरहवें गुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतिका निर्देश कर प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हैं—

[मूलगा०४७] [3]सायंतो जोयंतो एत्तो पाएण णत्थि बंधो त्ति ।
णायव्वो पयडीणं बंधो संतो अणंतो य[1] ॥३२४॥

साताया: अन्तो व्युच्छेदः योगान्तः सयोगपर्यन्तः । इतः परं प्रायेण गुणस्थानकेन बन्धो नास्तीति उपशान्तादिषु ज्ञातव्यं प्रकृतीनां सन्तः अबन्धः अनन्तः व्युच्छेदः । चकाराद् बन्धाबन्धो ज्ञातव्यः ॥३२४॥

योगके अन्ततक सातावेदनीयकर्मका बन्ध होता है, अर्थात् ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानमें एक सातावेदनीयकर्म ही बँधता है। तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें उसकी भी बन्धसे व्युच्छित्ति हो जाती है। इससे आगे चौदहवें गुणस्थानमें योगका अभाव हो जानेसे फिर किसी भी कर्मका बन्धका नहीं होता है। इस प्रकार चौदह गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंका सान्त अर्थात् बन्धव्युच्छित्ति और अनन्त अर्थात् बन्ध जानना चाहिए ॥३२४॥ (देखो संदृष्टि संख्या १४)

विशेषार्थ—इस गाथाके चतुर्थ चरणके पाठ दो प्रकारके मिलते हैं—१ 'बंधो संतो' अणंतो य' और २ 'बन्धस्संतो अणंतो य'। प्रथम पाठ प्रकृत गाथामें दिया हुआ है और द्वितीय पाठ शतक प्रकरणकी गाथाङ्क ५० और गो० कर्मकाण्डकी गाथाङ्क १२१ में मिलता है। शतकचूर्णिमें 'अहवा सन्तो बंधो अणंतो य भव्वाभव्वे पडुच्च' कहकर 'बंधो संतो अणंतो य' पाठको भी स्वीकार किया है और तदनुसार शतकप्रकरणके संस्कृत टीकाकारने उसका अर्थ इस प्रकार किया है—

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ४, 'पुंवेद संज्वाल' इत्यादि गद्यांशः (पृ० १२९)। 2. ४, 'उच्चगोत्रयशो' इत्यादि गद्यांशः (पृ० १२९-१३०)। 3. ४, 'शान्तक्षीणकषायौ व्यतीत्यैकस्य सातस्य' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १३०)।

१. शतक० ५० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अथवा सर्वोऽप्यं प्रकृतीनां बन्धः सान्तो ज्ञातव्यो भव्यानाम्, अनन्तश्च ज्ञातव्योऽभव्यानामिति'।

अर्थात् भव्योंकी अपेक्षा सभी प्रकृतियोंका बन्ध सान्त है। किन्तु अभव्योंकी अपेक्षा अनन्त जानना चाहिए; क्योंकि उनके कभी भी किसी प्रकृतिका अन्त नहीं होता।

दूसरे पाठका अर्थ गो० कर्मकाण्डके टीकाकारने इस प्रकार किया है—

'बन्धस्यान्तो व्युच्छित्तिः। अनन्तः बन्धः। चशब्दादबन्धश्चोक्तः।' बन्धका अन्त यानी व्युच्छित्ति, अनन्त यानी बन्ध और गाथा-पठित 'च' शब्दसे अबन्ध जानना चाहिए।

शतक प्रकरणके संस्कृत टीकाकारने इस दूसरे पाठका अर्थ इस प्रकार किया है—

'यत्र गुणस्थाने यासां प्रकृतीनां बन्धस्यान्त उक्तस्तत्र तासां बन्धस्यान्तस्तत्र भावस्तदुत्तरत्राभाव इत्येवंलक्षणो ज्ञातव्यः। शेषाणां त्वनन्तस्तदुत्तरत्रापि भावलक्षणो ज्ञातव्यः। यथा षोडश प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टौ बन्धस्यान्तः शेषस्य त्वेकोत्तरशतस्यानन्तस्तदुत्तरत्रापि गमनात्। एवमुत्तरत्र गुणस्थानेष्वप्यन्तानन्तभावना कार्या।

अर्थात् जिस गुणस्थानमें जिन प्रकृतियोंके बन्धका अन्त कहा है, वहाँ तक उनका सद्भाव है और आगे उनका असद्भाव है। तथा जहाँपर जिन प्रकृतियोंका अन्त या असद्भाव है, वहाँपर शेष प्रकृतियोंका 'अनन्त' अर्थात् अन्तका अभाव यानी सद्भाव है।

ऐसी अवस्थामें प्राकृतपञ्चसंग्रह्के संस्कृत टीकाकार-द्वारा किया गया अर्थ विचारणीय है।

उवसंतादि—	०	०	१	०
	१	१	१	०
	११९	११९	११९	१२०
	१४७	१४७	१४७	१४८

उ०	क्षी०	स०	अ०
०	०	०	
१	१	१	०
११९	११९	११९	१२०
१४७	१४७	१४७	१४८

इति गुणस्थानेषु प्रकृतीनां बन्धस्वामित्वं समाप्तम्।

उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगिकेवलीके एक साता-वेदनीयका बन्ध होता है, शेष ११९ प्रकृतियोंका अबन्ध है। सयोगिकेवलीके सातावेदनीयकी भी बन्धसे व्युच्छित्ति हो जाती है। अतः अयोगकेवलीके १२० का ही अबन्ध रहता है।

अब मूलशतककार आदेश अर्थकी सूचनाके लिए उत्तर गाथासूत्र करते हैं—

[मूलगा० ४८] गइयादिएसु एवं तप्पाओगाणमोघसिद्धाणं।
सामित्तं णायव्वं पयडीणं णाण (ठाण) मासेज्ज[1] ॥३२५॥

अथ गत्यादिषु मार्गणासु प्रकृतीनां स्वामित्वं दर्शयति—['गइयादिएसु' इत्यादि।] गत्यादिमार्गणासु एवं गुणस्थानोक्तप्रकारेण तत्प्रायोग्यानां गत्यादिमार्गणायोग्यानां गुणस्थानप्रसिद्धानां प्रकृतीनां स्वामित्वं ज्ञातव्यं ज्ञानमाश्रित्य श्रुतज्ञानमागमं स्वीकृत्य ॥३२५॥

इसी प्रकार गति, इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणाओंमें उन उनके योग्य ओघसिद्ध प्रकृतियोंका स्वामित्व ऊपर बतलाये गये गुणस्थानों या बन्धस्थानोंके आश्रयसे लगा लेना चाहिए ॥३२५॥

१. शतक० ५१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब सूत्रकारके द्वारा सूचित अर्थका भाष्यकार व्याख्या करते हैं—

इगि-विगलिंदियजाई वेउव्वियछक्कणिरयदेवाऊ ।
आहारदुगादावं थावर सुहुमं अपुण्ण साहरणं ॥२२६॥
तेहि विणा णेरइया बंधंति य सव्वबंधपयडीओ ।
।१०१।
ताओ वि तित्थयरूणा मिच्छादिट्ठी दु णियमेण ॥२२७॥
क्रां: ।१००।
मिच्छयणउंसयवेयं हुंडमसंपत्तसंघयणं ।
एएहिया विणा ताओ सासणसम्मा दु णेरइया ॥२२८॥
।९६।
अओ मिच्छिण्णपयडी णराउरहिया उ ताओ मिस्सा दु ।
सणसम्म ।७०।
ति राउजुया अविरयसम्मा दु णेरइया ॥२२९॥
सायछि ।७२।

नरकगतौ गुण्देवाऊ-रा्य बन्धयोग्यप्रकृतीः प्रकाशयति–एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियजातयः ४ नरकगतिः नरकगत्यानुपूर्वी देवग त्यानुपूर्वी वैक्रियिकं वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गमिति वैक्रियिकषट्कं ६ नारकायुः देवायुः १ आहारकद्विको देवाउ्१ स्थावरं १ सूक्ष्मं १ अपर्याप्तं १ साधारणं १ एवमेकोनविंशति-प्रकृती १९ र्विना शेषाः स ा बध्नन्ति १०१ । ताभिरेकोनविंशत्या प्रकृतिभिर्विना एकोत्तरशतसर्व-बन्धप्रकृतीर्नारका बध्न दियकसाएहि ता अपि प्रकृतयः धर्मादित्रये बन्धयोग्यमेकोत्तरशतम् १०१ । अञ्जनादित्रये तीर्थकरत्वं वि । माघव्यां मनुष्यायुर्विना एकोनशतम् ९९ । तत्र धर्मानरके ता एव पूर्वोक्ताः १०१ तीर्थकरत्वानाः शतप्र ामिथ्यादृष्टिर्बध्नाति १०० नियमेन । मिथ्यात्वं १ नपुंसकवेदः १ हुण्डकं १ असम्प्राप्तसृपाटिकासंहननं १ चैताश्चतस्रः प्रकृतयो मिथ्यात्वे व्युच्छिन्नाः ४ । एताभिश्चतसृभिः प्रकृतिभिर्विना ताः प्रकृतीः सासादनसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ९६ । ताः षण्णवतिः ९६ प्रकृतयः सास्वादनस्य व्युच्छिन्नपञ्चविंशतिप्रकृति २५ नरायूरहिता इति सप्ततिप्रकृतीः ७० मिश्रा मिश्रगुणस्थानवर्तिनो बध्नन्ति । एतास्तीर्थंकरत्व-मनुष्यायुर्भ्यां युक्ताः ७२ अविरतसम्यग्दृष्टयो नारका बध्नन्ति ॥२२६–२२९॥

एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रियजातित्रिक, वैक्रियिकषट्क (वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी) नरकायु, देवायु, आहारकद्विक, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण; इन उन्नीस प्रकृतियोंके विना नारकी जीव शेष सर्व प्रकृतियोंका अर्थात् १०१ का बन्ध करते हैं। उनमें भी मिथ्यादृष्टि नारकी तीर्थङ्कर प्रकृतिके विना १०० प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान और सृपाटिकासंहनन, इन चारके विना ९६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। सासादनगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली २५ प्रकृतियाँ और मनुष्यायु इन २६ के विना शेष ७० प्रकृतियोंका सम्यग्मिथ्यादृष्टि बन्ध करते हैं। अविरतसम्यग्दृष्टि नारकी तीर्थङ्कर और मनुष्यायुके साथ उक्त ७० प्रकृतियोंका अर्थात् ७२ का बन्ध करते हैं ॥२२६–२२९॥ (देखो संदृष्टिसंख्या १५)

आसाय छिण्णपयडी पढमाविदियातिदियासु पुढवीसु एवं चउसु वि गुणेसु । एवं चउत्थ-पंचमि-छट्ठी-णेरइया । ताओ चउसु वि गुणेसु । णवरि तित्थयरं असंजदो ण बंधेइ ।१००।९६।७०।७१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं प्रथम-द्वितीय-तृतीयपृथ्वीषु घर्मा-वंशा-मेघानरकत्रये एताः सास्वादनव्युच्छिन्नाः प्रकृतयः २५ चतुर्षु गुणस्थानेषु पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञातव्याः । नवरि किञ्चिद्विशेषः—असंयतसम्यग्दृष्टिस्तीर्थकरत्वं न बध्नातीति अञ्जनादित्रये तीर्थकरं विना…[घर्मादि-] त्रयवत् ।

	मि०	सा०	मि०	अ०
घर्मादित्रये—	४	२५	०	१०
	१००	९६	७०	७२
	१	५	३१	२९

	मि०	सा०	मि०	अ०
अञ्जनादित्रये—	४	२५	०	१ उत्र
	१००	९६	७०	७१ पोढ
	०	४	३०	३ त्र गुणः

सासादनमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली २५ प्रकृतियाँ नारकसामान्य ो गुणस्थानवत् जानना। इसी प्रकार पहली, दूसरी और तीसरी पृथिवीके नारकियोंके वहाँ ही गुणस्थानोंकी बन्धरचना जानना चाहिए। इसी प्रकार चौथी पाँचवीं और छट्ठी पृथिव्या असरकियोंकी बन्ध रचना है। उनके चारों ही गुणस्थानोंमें वे ही बन्धादि-सम्बन्धी प्रकृतियाँ वशेषता केवल यह है कि उन पृथिवियोंका असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी तीर्थङ्कर प्रकृतिकया गन्हीं करता है। उन पृथिवियोंके चारों गुणस्थानोंमें बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ क्रमशः १००, ९ ौर ७१ हैं।

अब सातवें नरकमें प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण करते हैं—

सामण्णणिरयपयडी तित्थयर-णराउ-रहियाऊ ।
बंधंति तमतमाए णेरइया संकिलिट्ठभावेण ॥३२
१०

।९९।

णरदुयउच्चूणाओ ताओ तत्थेव मिच्छदिट्ठीया ०

।९६।

तिरियाऊ मिच्छ संढय हुंडासंपत्तरहियपयंडीओ ॥३३१॥
ताओ तत्थ य णिरया सासणसम्मा दु बंधंति ।

।९१।

तिरियाउऊण-सासण-वोच्छिण्णपयडिविहीणाओ ॥३३२॥
णरदुयउच्चजुयाओ मिस्सा अजई वि बंधंति ।

।७०।

तमस्तमःप्रभानरके सप्तमे नारकास्तीर्थंकरत्व-मनुष्यायुभ्यां रहिताः सामान्यनारकोक्तप्रकृतीः ९९ बध्नन्ति [संक्लिष्टभावेन]। तत्र माघव्यामेव नवनवति-प्रकृतीर्मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्व्योच्चैर्गोत्रत्रिकोनाः ९६ मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति । ताः षण्णवतिप्रकृतयः ९६ तिर्यगायुर्मिथ्यात्व-षण्ढवेद-हुण्डक-संस्थानाऽसम्प्राप्तसृपाटिकासंहननपञ्चप्रकृतिरहिता इत्येकनवतिप्रकृतीस्तत्र नारकोद्भवाः सासादनसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ९१ । तिर्यगायुरूना सास्वादनस्य व्युच्छिन्नप्रकृति २४ विहीनास्ताः सास्वादनोक्ता मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्योच्चैर्गोत्रयुक्ता इति सप्ततिप्रकृतीर्मिश्रगुणस्थानवर्तिनोऽसंयतसम्यग्दृष्टयश्च बध्नन्ति ७० माघव्याम् ॥३३०-३३२॥

इति नरकगतिः समाप्ता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तमस्तमा अर्थात् महातमःप्रभा पृथिवीके नारकी संक्लिष्ट भाव होनेसे तीर्थङ्कर और मनुष्यायुके विना नारकसामान्यके बँधनेवाली शेष ९९ प्रकृतियोंको बाँधते हैं। उसी पृथिवीके मिथ्यादृष्टि नारकी मनुष्यद्विक और उच्चगोत्रके विना शेष ९६ प्रकृतियोंको बाँधते हैं। तथा वहींके सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी तिर्यगायु, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुंडकसंस्थान और सृपाटिकासंहनन; इन पाँच प्रकृतियोंके विना शेष ९१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। वहाँके मिश्र और असंयत-गुणस्थानवर्ती नारकी तिर्यगायुके विना तथा सासादनमें व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके विना, तथा मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र सहित शेष ७० प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३३०-३३२½॥

(देखो संदृष्टिसंख्या १६)

अब तिर्यग्गतिमें प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण करते हैं—

तित्थयराहारदुगूणाओ बंधंति बंधपयडीओ ॥३३३॥
तिरिया तिरियगईए मिच्छाइट्ठी वि इत्तिया चेव।
।११७।
ताओ मिच्छाइट्ठी-वोच्छिण्णपयडिविहीणाओ ॥३३४॥
सासणसम्माइट्ठी तिरिया बंधंति णियमेण।
।१०१।
आसायछिण्णपयडी मणुसोरालदुग आइसंघयणं ॥३३५॥
णरदेवाऊ-रहिया मिस्सा बंधंति ताओ तिरिया हु।
।६९।
ताओ देवाउजुआ अजई तिरिया दु बंधंति ॥३३६॥
।७०।
बिदियकसाएहिं विणा ताओ तिरिया उ देसजई।
।६६।

अथ तिर्यग्गत्यां बन्धप्रकृतिभेदं गाथाषट्केनाऽऽह—['तित्थयराऽऽहारदुगूणाओ' इत्यादि ।] तिर्यग्गतौ बन्धप्रकृतिराशि १२० मध्यात्तीर्थकरत्वाऽऽहारकद्वयं परिहृत्य शेषबन्धयोग्यप्रकृतयः सप्तदशोत्तर ११७ इत्येतावतीः प्रकृतीर्मिथ्यादृष्टयस्तिर्यञ्चो बध्नन्ति । ताः सप्तदशोत्तरशतप्रकृतयः ११७ मिथ्यादृष्टिव्युच्छिन्नप्रकृति १६ विहीना इत्येकोत्तरशतप्रकृतीः १०१ सासादनसम्यग्दृष्टितिर्यञ्चो बध्नन्ति नियमेन । सासादनव्युच्छिन्नप्रकृतिपञ्चविंशतिकं २५ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्विकं २ औदारि-[कशरीरौदारि-]काङ्गोपाङ्गद्वयं २ वज्रवृषभनाराचसंहननं १ मनुष्यायुः १ देवायुष्कं १ चेति द्वात्रिंशत्कं प्रकृतिभिर्विहीनास्ताः पूर्वोक्ताः १०१ एवमेकोनसप्ततिप्रकृतीर्मिश्रगुणस्थानकास्तिर्यञ्चो बध्नन्ति । ता मिश्रोक्ता ६९ देवायुर्युक्ताः सप्तति प्रकृतीः ७० असंयतसम्यग्दृष्टयस्तिर्यञ्चो बध्नन्ति ॥३३२½-३३६½॥

तिर्यग्गतिमें मिथ्यादृष्टि तिर्यंच तीर्थंकर और आहारकद्विकके विना शेष उतनी ही अर्थात् ११७ बन्धप्रकृतियोंको बाँधते हैं। उनमेंसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें व्युच्छिन्न होनेवाली १६ प्रकृतियोंके विना शेष १०१ प्रकृतियोंको सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंच नियमसे बाँधते हैं। सासादनमें व्युच्छिन्न होनेवाली २५ प्रकृतियोंके, तथा मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, आदि संहनन, मनुष्यायु और देवायुके विना शेष रहीं ६९ प्रकृतियोंको मिश्रगुणस्थानवर्ती तिर्यंच बाँधते हैं। उनमें एक देवायुको मिलाकर ७० प्रकृतियोंको असंयतगुणस्थानवर्ती तिर्यंच बाँधते हैं। द्वितीय अप्रत्याख्यानावरण-कषायचतुष्कके विना शेष ६६ प्रकृतियोंको देशव्रती तिर्यंच बाँधते हैं ॥३३२½-३३६½॥

(देखो संदृष्टिसंख्या १७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं तिरियपंचिंदिय पुण्णा बंधंति ताओ पयडीओ ॥२३७॥

पज्जत्ता णियमेणं पंचिंदियतिरिक्खिणीओ य ।

तित्थयराहारदुयं वेउव्वियछक्कणिरयदेवाऊ ॥२३८॥

तेहि विणा बंधाओ तिरियपंचिंदियअपज्जत्ता ।

।१०६।

एवं अमुना प्रकारेण ताः सप्तदशोत्तरशतप्रकृतीः पञ्चेन्द्रियपर्याप्तास्तिर्यञ्चो बध्नन्ति । तथा पञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिरिश्च्यो योनिमत्तिर्यञ्चः एतावत् ११७ प्रकृतीर्बध्नन्ति ॥

पर्याप्तपञ्चेन्द्रिययोनिमतिर्यग्-रचनायन्त्रम्—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०
१६	३१	१	४	४
११७	१०१	६९	७०	६४
०	१६	४८	४७	५१

तीर्थकरत्वाऽऽहारकद्वयं ३ देव-नरकगति-तदानुपूर्व्य-वैक्रियिक-वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गवैक्रियिकषट्कं ६ नरकायुः १ देवायुः १ चेत्येकादशप्रकृतिभिस्ताभिर्विना शेपनवोत्तरशतप्रकृतिबन्धका लब्ध्यपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो भवन्ति ॥३३६½–३३८½॥

०

अलब्धिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्रचनायन्त्रम्——१०९ ।

०

इसी प्रकार तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी ऊपर बतलाई गईं सामान्य तिर्यञ्चोंवाली उन्हीं प्रकृतियोंको बाँधते हैं। इसी प्रकार पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चनी भी नियमसे उन्हीं प्रकृतियोंको बाँधती हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव तीर्थंकर, आहारकद्विक वैक्रियिकषट्क नरकायु और देवायुके विना शेष १०९ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३३६½–३३८½॥

अब मनुष्यगतिमें प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण करते हैं—

मणुयगईए सव्वा तित्थयराहारहीणया मिच्छा ॥३३९॥

१२० मि० ११७।

मिच्छम्मि च्छिण्णपयडी-ऊणाओ आसाय ।

।१०१।

आसायछिण्णपयडीमणुसोरालदुय आइसंघयणं ॥३४०॥

णर-देवाऊरहिया मिस्सा बंधंति ताओ मणुयाऊ ।

।६९।

तित्थयर-सुराउजुआ ताओ बंधंति अजइमणुया दु ॥३४१॥

।७१।

बिदियकसाएहिं विणा ताओ मणुया दु देसजई ।

।६७।

पमत्तादिसु ओघो जि होज्ज मणुया दु पज्जत्ता ॥३४२॥

तह मणुय-मणुसिणीओ अपुण्णतिरिया* व णरअपज्जत्ता ।

* द. 'तिरियव्व' पाठः ।

मनुष्यगतौ सर्वाः प्रकृतयो १२० बन्धयोग्या भवन्ति। तत्र तीर्थंकरत्वाऽऽहारकद्वयहीनाः अन्या सप्तदशोत्तरशतप्रकृतीर्मिथ्यादृष्टिमनुष्या बध्नन्ति ११७। मिथ्यात्वव्युच्छिन्नप्रकृतिभिः १६ हीनास्ताः सासादनस्थमनुष्या बध्नन्ति १०१। सासादनव्युच्छिन्नप्रकृति २५ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यौदारिकौदारिकाङ्गोपाङ्गचतुष्क-वज्रवृषभनाराचसंहनन- मनुष्य-देवायुष्कद्वयरहितास्ताः पूर्वोक्ता मिश्रगुणस्थानस्थमनुष्या एकोनसप्ततिं प्रकृतीर्बध्नन्ति ६९। ता एकोनसप्ततिं तीर्थंकर-देवायुर्युता एकसप्ततिप्रकृतीरसंयत-मनुष्या बध्नन्ति। एता द्वितीयकषायचतुष्केन विना सप्तषष्टिं प्रकृती देशसंयतमनुष्या बध्नन्ति ६७। प्रमत्तादिगुणस्थानेषु गुणस्थानोक्तवत्। तथाहि—प्रमत्ते ६३ अप्रमत्ते ५९ अपूर्वकरणे ५८ अनिवृत्तिकरणे २२ सूक्ष्मसाम्पराये १७ उपशान्ते १ क्षीणे १ सयोगेषु च १ प्रकृतीः पर्याप्ता मनुष्या बध्नन्ति। तथा तेनैव पर्याप्तमनुष्योक्तप्रकारेण प्रकृतीः पर्याप्ता मानुष्यः १२० बध्नन्ति। मिथ्यादृष्टिलब्ध्यपर्याप्ततिर्यग्गतिवत् मनुष्यलब्ध्यपर्याप्ताः १०९ बध्नति ॥३३८½–३४२½॥

पर्याप्तमानुष्यां बन्धयोग्याः १२०।

०

लब्ध्यपर्याप्तमनुष्येषु १०९।

०

पर्याप्तमनुष्यरचना—	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
	१६	३१	०	४	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
	११७	१०१	६९	७१	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
	३	१९	५१	४९	५३	५७	६१	६२	९०	१०७	११९	११९	११९	१२०

मनुष्यगतिमें सभी अर्थात् १२० प्रकृतियाँ बँधती हैं। उनमेंसे मिथ्यादृष्टि मनुष्य तीर्थंकर और आहारिकद्विकसे हीन शेष ११७ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्य मिथ्यात्वमें विच्छिन्न होनेवाली १६ प्रकृतियोंसे हीन शेष १०१ का बन्ध करते हैं। मिश्रगुणस्थानवर्ती मनुष्य सासादनमें विच्छिन्न होनेवाली २५ प्रकृतियोंसे, तथा मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, आदिसंहनन, मनुष्यायु और देवायुसे रहित शेष ६९ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य तीर्थंकर और देवायु सहित उक्त प्रकृतियोंका अर्थात् ७१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। देशसंयत मनुष्य द्वितीय कषायचतुष्कके बिना शेष ६७ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। प्रमत्तादि ऊपरके गुणस्थानवर्त्ती मनुष्योंमें ओघके समान प्रकृतियोंका बन्ध जानना चाहिए। सामान्य मनुष्योंके समान पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियाँ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। तथा अपर्याप्त तिर्यञ्चके समान अपर्याप्त मनुष्य १०९ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३३८½–३४२½॥

(देखो संदृष्टिसंख्या १८)

अब देवगतिमें प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण करते हैं—

सुहुमाहार अपुण्णवेउव्वियछक्कणिरयदेवाऊ ॥३४३॥
साहारण-वियलिंदियरहिया बंधंति देवाओ ।

।१०४।

तित्थयरूणे मिच्छा सासाणसम्मो दु थावरादावं ॥३४४॥
इगिजाइहुंडसंढयमिच्छासंपत्तरहियाओ ।

मि० १०३।सा० ९६।

आसायछिण्णपयडीणराउ ताउ मिस्सा दु ॥३४५॥
तित्थयरणराउजुया अजई देवा दु बंधंति ।

मि० ७०।अ०७२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ देवगतौ बन्धयोग्यप्रकृतीर्गाथाद्वादशेनाऽऽह—['सुहुमाहारमपुण्ण'–इत्यादि ।] सूक्ष्मं १ आहारकद्विकं २ अपर्याप्तं १ वैक्रियिकवैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग-देवगति-तदानुपूर्व्य-नरकगति-तदानुपूर्व्यमिति वैक्रियिकषट्कं ६ नरकायुः १ देवायुः १ साधारणं १ विकलत्रयं ३ चेति षोडश १६ प्रकृतिरहिताः अन्याश्चतुरुत्तरशतं १०४ बन्धयोग्यप्रकृतीर्देवाः सामान्यतया बध्नन्ति । ता एव १०४ तीर्थंकरोना १०३ मिथ्यादृष्टिदेवा बध्नति । तु पुनः स्थावराऽऽतपौ २ एकेन्द्रियजातिः १ हुंडकसंस्थानं १ नपुंसकवेदं १ मिथ्यात्वासम्प्राप्तसृपाटिकासंहनने २ एवं सप्तप्रकृतिभिः रहितास्ताः षण्णवतिप्रकृतीः ९६ सास्वादनस्था देवा बध्नन्ति । सासादनव्युच्छिन्नप्रकृति २५ मनुष्यायुरहितास्ता एव ७० मिश्रगुणस्थदेवा बध्नन्ति । ता एव सप्तति ७० तीर्थंकर-मनुष्यायुःसहिता इति द्वासप्ततिं ७२ प्रकृतीरसंयतसम्यग्दृष्टिदेवा बध्नन्ति । ॥३४२१/२–३४५१/२॥

	मि०	सा०	मि०	अ०
सामान्येन देवगतौ—	७	२५	०	१०
	१०३	९६	७०	७२
	१	८	३४	३२

सूक्ष्म, आहारकद्विक, अपर्याप्त, वैक्रियिकषट्क, नरकायु, देवायु, साधारण और विकलेन्द्रियत्रिक; इन सोलहके विना शेष १०४ प्रकृतियोंको सामान्यतया देव बाँधते हैं। उनमें मिथ्यादृष्टि देव तीर्थंकरके विना १०३ प्रकृतियोंको बाँधते हैं। सासादन सम्यग्दृष्टि देव स्थावर, आतप, एकेन्द्रियजाति, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व और सृपाटिका संहनन; इन सातसे रहित शेष ९६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। मिश्रगुणस्थानवर्ती देव सासादनगुणस्थानमें विच्छिन्न होनेवाली २५ और मनुष्यायु इन २६ से रहित शेष ७० प्रकृतियोंको बाँधते हैं। असंयत देव तीर्थंकर और मनुष्यायु सहित उक्त प्रकृतियोंका अर्थात् ७२ का बन्ध करते हैं ॥३४२१/२–३४५१/२॥

(देखो संदृष्टिसंख्या १९)

अब देवविशेषोंमें बन्धादिका निरूपण करते हैं—

तिकायदेव-देवी सोहम्मीसाण देवियाणं च ॥३४६॥
मिच्छाईतिसु ओघो अजई तित्थयररहियाओ ।
सामण्णदेवभंगो सोहम्मीसाणकप्पदेवाणं ॥३४७॥
एत्तो उवरिल्लाणं देवाण जहागमं वोच्छं ।

भवनवासि-व्यन्तर-ज्योतिष्कत्रयोत्पन्नदेव-देवीनां सौधर्मैशानोत्पन्नदेवीनां च मिथ्यात्वादिगुणस्थानेषु ओघवत् । मिथ्यादृष्टौ १०३ सासादने ९६ मिश्रे ७० असंयते तीर्थंकरत्वं विना ७१ ।

मि०	सा०	मि०	अ०
७	२५	०	१०
१३	९६	७०	७१

सामान्यदेवभङ्गरचनावत्सौधर्मैशानकल्पजदेवानां मिथ्यादृष्टौ । अत उपरितनानां देवानां बन्धयोग्यप्रकृतीर्यथागमानुसारेण वक्ष्येऽहम् ॥३४५१/२–३४७१/२॥

भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी, इन तीन कायके देव और देवियोंके; तथा सौधर्म और ईशान कल्पोत्पन्न देवियोंके मिथ्यात्वादि तीन गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंका बन्ध ओघके समान क्रमशः १०३, ९६ और ७० जानना चाहिए। असंयतगुणस्थानवर्ती उक्त देव और देवियाँ तीर्थंकररहित ७१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। सौधर्म-ईशान-कल्पवासी देवोंके प्रकृतियोंका बन्ध सामान्य देवोंके समान जानना चाहिए। अब इससे ऊपरके कल्पवासी देवोंके बन्धादिको आगमके अनुसार कहता हूँ ॥३४५१/२–३४७१/२॥

(देखो संदृष्टिसंख्या २०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तइकप्पाई जाव दु सहसारंता देवा जा ॥३४८॥
देवगईपयडीओ एकक्खादावथावरूणाओ ।

।१०१।

मिच्छातित्थयरूणा हुंडा संपत्तमिच्छसंढूणा ॥३४९॥
सासणसम्मा देवा ताओ बंधंति णियमेण ।

मि० १००।सा० ९६।

आसाय*छिण्णपयडीणराउरहियाउ ताउ मिस्सा दु ॥३५०॥
तित्थयर-णराउजुया अजई बंधंति देवाओ ।

मि० अ० ।७२।

तृतीयकल्पादि यावत्सहस्रारान्ताः सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरलान्तव-कापिष्ट-शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारजा देवाः याः सामान्यदेवगत्युक्तप्रकृतयः १०४ एकेन्द्रियाऽऽतपस्थावरत्रयोनास्ता एव १०१ बध्नन्ति, [एतत्रिकस्य] तद्बन्धाभावात् । तीर्थंकरत्वोनाः १०० प्रकृतिः सनत्कुमारादि-सहस्रारान्ता मिथ्यादृष्टिदेवा बध्नन्ति । हुण्डकसंस्थानासम्प्राप्तसृपाटिकासंहननमिथ्यात्व-षण्ढवेदोनास्ता एव ९६ सनत्कुमारादि-सहस्रारान्ता सासादनस्थदेवा बध्नन्ति । सासादनस्य व्युच्छिन्नप्रकृतीः २५ मनुष्यायुरहितास्ता एव ७० प्रकृतीः सनत्कुमारादि-सहस्रारान्ता मिश्रगुणस्थानस्था देवा बध्नन्ति । तीर्थंकरत्वमनुष्यायुर्भ्यां युक्तास्ता एव ७२ सनत्कुमारादि-सहस्रारान्ताः असंयतदेवा बध्नन्ति ॥३४७½–३५०½॥

तृतीय कल्पसे लेकर सहस्रारकल्प तकके देव एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरके विना देवगति-सम्बन्धी शेष १०१ प्रकृतियोंको बाँधते हैं। उक्त कल्पोंके मिथ्यादृष्टिदेव उक्त १०१ मेंसे तीर्थंकरके विना १०० प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। इन्हीं कल्पोंके सासादनसम्यग्दृष्टि देव हुंडकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, मिथ्यात्व और नपुंसकवेदके विना शेष ९६ प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करते हैं। उक्त कल्पोंके मिश्रगुणस्थानवर्ती देव सासादनमें विच्छिन्न होनेवाली २५ तथा मनुष्यायुके विना शेष ७० प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। तथा उन्हीं कल्पोंके असंयतसम्यग्दृष्टि देव तीर्थंकरप्रकृति और मनुष्यायुके सहित ७० अर्थात् कुल ७२ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३४७½–३५०½॥ (देखो संदृष्टिसंख्या २१)

आणदकप्पप्पहुई उवरिमगेवज्जयं तु जावं ति ॥३५१॥
तत्थुप्पण्णा देवा सत्ताणउदिं च बंधंति ।

।९७।

देवगईपयडीओ तिरियाउ-तिरियजुयल एइंदी ॥३५२॥
थावर-आदाउज्जोऊण बंधंति ते णियमा ।
मिच्छा तित्थयरूणा हुंडासंपत्तमिच्छसंढूणा ॥३५३॥
सासणसम्मा देवा ताओ बंधंति णियमेण ।

मि० ९६ सा ९२।

तिरियाऊ तिरियदुयं तह उज्जोवं च मोत्तूणं ॥३५४॥

---

*च-ई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसायछिण्णपयडी णराउरहियाऊ मिस्सा दु ।

।७०।

तित्थयर-णराऊजुया अजई देवा य बंधंति ॥३५५॥

।७१।

अणुदिस-अणुत्तरवासी देवा ता चेव णियमेण ।

।७२।

आनतकल्पप्रभृत्युपरिमग्रैवेयकान्तास्तत्रोत्पन्ना देवाः सप्तनवतिं ९७ प्रकृतीर्बध्नन्ति । तत्कथम् ? सामान्यतया देवगत्युक्तप्रकृतयः १०४ तिर्यगायुः १ तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्ये द्वे २ एकेन्द्रियं १ स्थावरं १ आतपः १ उद्योतः १ चेति सप्तभिः प्रकृतिभिरूना इति परायोग्यबन्धप्रकृतीः ते आनत-प्राणताऽऽरणाऽच्युत-नवग्रैवेयकान्ता देवा बध्नन्ति ९७ नियमेन । ता एव ९७ तीर्थंकरत्वोनाः प्रकृतीः षण्णवतिं आनतादिनव-ग्रैवेयकान्ता मिथ्यादृष्टयो देवा बध्नन्ति ९६ । हुण्डकासम्प्राप्त १ मिथ्यात्व १ षण्ढवेदोनास्ता एव ९२ सासादनस्था देवा बध्नन्ति नियमेन । तिर्यगायु १ स्तिर्यग्द्विकं २ उद्योत १ श्चेति प्रकृतिचतुष्कं मुक्त्वा परिवर्ज्य सासादनव्युच्छिन्नप्रकृति २१ मनुष्यायू रहितास्ता एव मिश्रगुणस्थाने देवा बध्नन्ति ७० । ता एव ७० तीर्थंकरत्व-मनुष्यायुर्भ्यां युक्ता ७२ आनतादिनवग्रैवेयकासंयतदेवा बध्नन्ति । नवानुदिश-पञ्चानुत्तर-वासिनो देवास्ता एवासंयमगुणोक्ताः प्रकृती ७२ बध्नन्ति । आनतादि-नवग्रैवेयकेषु बन्धयोग्याः ९७ । नवानुदिश-पञ्चानुत्तरेषु देवेषु अविरते ७२ ॥३५०१/२–३५५१/२॥

आनतकल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक उनमें उत्पन्न होनेवाले देव ९७ प्रकृतियोंको बाँधते हैं । अर्थात् देवगतिमें बन्धयोग्य जो १०४ प्रकृतियाँ बतलाई गईं हैं उनमेंसे तिर्यगायु, तिर्यग्द्विक, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप और उद्योतके विना शेष ९७ प्रकृतियोंका उक्त देव नियमसे बन्ध करते हैं । उक्त कल्पोंके मिथ्यादृष्टि देव तीर्थङ्करके विना ९६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि देव हुण्डकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, मिथ्यात्व और नपुंसकवेदके विना ९२ प्रकृतियोंको नियमसे बाँधते हैं । उक्त कल्पोंके मिश्र गुणस्थानवर्ती देव तिर्यगायु, तिर्यद्विक तथा उद्योतको छोड़कर सासादनमें विच्छिन्न होनेवाली शेष प्रकृतियोंके विना तथा मनुष्यायुके विना ७० प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं । उन्हीं कल्पोंके असंयतसम्यग्दृष्टि देव तीर्थङ्कर और मनुष्यायु सहित उक्त प्रकृतियोंका अर्थात् ७२ का बन्ध करते हैं । नव अनुदिश और पंच अनुत्तरवासी देव यतः सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, अतः वे नियमसे उन्हीं ७२ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३५०–३५५१/२॥ (देखो संदृष्टि संख्या २२)

अब इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादिका निरूपण करते हैं—

इगि-विगलिंदियजीवे तिरियपंचिंदिय अपुण्णभंगमिव ॥३५६॥
मिच्छे तेत्तियमेत्तं णउत्तरसयं तु णायव्वं ।

।१०९।

मिच्छवोच्छिण्णेहिं ऊणाओ ताओ आसाया णिरयाऊ ॥३५७॥
णेरइयदुयं मोत्तु पंचिंदियम्मि ओघमिव ।

।९६।

अथेन्द्रियमार्गणायां बन्धयोग्यप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाऽऽह—['इगिविगलिंदियजीवे' इत्यादि ।] एकेन्द्रिय-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-विकलेन्द्रियजीवेषु लब्ध्यपर्याप्तकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्वत् तीर्थङ्करत्वाऽऽहारकद्वय-सुरनारकायुर्वै-क्रियिकषट्कबन्धाभावाद् बन्धयोग्यं नवोत्तरशतम् १०९ । गुणस्थाने द्वे । तत्र मिथ्यादृष्टौ नवोत्तरशतमात्रं

बन्धयोग्यं ज्ञातव्यम् । मिथ्यात्वव्युच्छिन्नाभिरूनास्ता एव नरकायुर्नारकद्वयं २ च मुक्त्वा एतत्त्रयं परिहृत्य त्रयोदशप्रकृतिभिर्हीनाः अन्याः षण्णवतिः सासादने एक-विकलत्रयाणां बन्धः ९६ । तथा गोमट्टसारे एवं प्रोक्तमस्ति--मनुष्य-तिर्यगायुर्द्वयं मिथ्यादृष्टौ व्युच्छिन्नम् । सासादने एतद्द्वयं नास्ति । कुतः ? 'सासणो देहे पज्जत्तिं ण वि पावदि, इदि णर तिरियाउगं णत्थि'[1] इति एकेन्द्रिय-विकलत्रयाणां मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १५ पञ्चदश तत्षोडशके नरकद्विक-नरकायुषोरभावे नर-तिर्यगायुषोः क्षेपात् पञ्चदश एक-विकलत्रयेषु पञ्चेन्द्रियेषु ओघवत् गुणस्थानवत् । बन्धयोग्यप्रकृतिकं १२० । गुणस्थानानि १४ ॥३५५१/२–३५७१/२॥

	मि०	सा०
एकेन्द्रिय-विकलत्रययन्त्रम्—	१५	२९
	१०५	९४
	०	१५

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवोंमें प्रकृतियोंका बन्ध तिर्यञ्चपंचेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंके बन्धके समान तीर्थङ्कर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्कके विना १०९ का होता है। उनके अपर्याप्त अवस्थाकी अपेक्षा दो गुणस्थान माने गये हैं, सो उक्त जीवोंके मिथ्यात्व-गुणस्थानमें तो उतनी ही १०९ प्रकृतियोंका बन्ध जानना चाहिए। सासादनगुणस्थानवर्ती एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव नरकायु और नरकद्विकको छोड़कर मिथ्यात्वमें विच्छिन्न होनेवाली शेष १३ के विना ९६ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। पंचेन्द्रिय जीवोंमें प्रकृतियोंका बन्ध ओघके समान जानना चाहिए ॥३५५१/२–३५७१/२॥ (देखो संदृष्टिसंख्या २३)

विशेषार्थ—भाष्यगाथाकारने यहाँपर एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंकी बन्ध-प्रकृतियाँ बतलाते हुए मिथ्यात्वगुणस्थानमें नरकायु और नरकद्विकके विना १३ प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कर सासादनमें बन्ध-योग्य ९६ प्रकृतियाँ कही हैं। परन्तु गो० कर्मकाण्ड गाथाङ्क ११३ में मनुष्यायु और तिर्यगायुकी भी बन्ध-व्युच्छित्ति मिथ्यात्वमें बतला करके सासादनमें ९४ प्रकृतियोंका बन्ध बतलाया है और उसके लिए युक्ति यह दी है कि 'तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे पज्जत्तिं ण वि पावदि, इदि णर-तिरियाउगं णत्थि; अर्थात् यतः एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाला सासादनगुणस्थानवर्ती जीव शरीरपर्याप्तिको पूरा नहीं कर पाता, क्योंकि सासादनका काल अल्प और निर्वृत्त्यपर्याप्तअवस्थाका काल अधिक है, अतः सासादनगुणस्थानमें मनुष्यायु और तिर्यगायुका बन्ध नहीं होता है। किन्तु मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही उनका बन्ध होता है और उसीमें उनकी व्युच्छित्ति भी हो जाती है। तथा इसी गाथामें जो पंचेन्द्रियसामान्यकी बन्ध-विधिका ओघके समान निर्देश किया गया है, सो वह पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंका समझना चाहिए; क्योंकि निर्वृत्त्यपर्याप्तक पंचेन्द्रियोंके केवल पाँच गुणस्थान ही होते हैं, सभी नहीं।

(देखो संदृष्टि सं० २४)

अब कायमार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादिका वर्णन करते हैं—

भूदयववणप्फदीसुं मिच्छा सासण इगिंदिभंगमिव ॥३५८॥
णरदुय-णराउ-उच्चूण तेउ-वाउइगिंदियपयडीओ ।

।१०५।

पृथ्वीकायाप्कायवनस्पतिकायेषु मिथ्यात्व-सासादनोक्तैकेन्द्रियभङ्गरचनावत् । मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वय-मनुष्यायुरुच्चैर्गोत्रोना एकेन्द्रियोक्तप्रकृतयः १०५ । तेजस्काये वायुकाये च मिथ्यादृष्टौ १०५ बन्धयोग्याः ॥३५८१/२॥

1. गो० कर्म० गा० ११३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथिवीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंमें मिथ्यात्व और सासादनगुणस्थान-सम्बन्धी प्रकृतियोंका बन्ध एकेन्द्रिय जीवोंके बन्धके समान जानना चाहिए। तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवोंके एक ही गुणस्थान होता है। तथा वे मनुष्यद्विक, मनुष्यायु और उच्चगोत्रके विना एकेन्द्रियसम्बन्धी शेष अर्थात् १०५ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३५८३॥

अब योगमार्गणाकी अपेक्षा प्रकृतियोंके बन्धादिका वर्णन करते हैं—

तस-मण-वचि ओरालाहारे जह* संभवं हवे ओघो ॥३५९॥

त्रसकायिकेषु सामान्यगुणस्थानवत्, तेन तेषु बन्धयोग्याः १२०। गुणस्थानानि १४। योगमार्गणायां मनोवचनयोगेषु औदारिककाययोगे आहारककाययोगे च यथासम्भवं ओघो भवेत्, गुणस्थानोक्तवत्। तेन सत्यानुभयमनोवचनचतुष्के बन्धयोग्यप्रकृतयः १२०। गुणस्थानानि त्रयोदश १३। असत्योभयमनोवचनचतुष्के बन्धप्रकृतयः १२०। गुणस्थानानि १२। औदारिककाययोगेषु मनुष्यगतिरचनावद् बन्धयोग्यप्रकृतयः १२०। गुणस्थानानि १४। आहारकाययोगिनां प्रमत्तोक्तवत्। आहारकमिश्रे 'तम्मिस्से णत्थि देवाऊ' इति वचनात् ॥३५९॥

त्रसकायिकोंमें, तथा मनोयोगियोंमें, वचनयोगियोंमें, औदारिककाययोगियोंमें और आहारककाययोगियोंमें यथासम्भव ओघके समान बन्धादि जानना चाहिए ॥३५९॥

णिरयदुग-आहारजुयलणिरि-देवाऊहिं हीणाओ ।
ओरालमिस्सजोए बंधाओ होंति णायव्वं ॥३६०॥

।११४।

तित्थयर-सुरचदूणा ताओ बंधंति मिच्छदिट्ठी य ।

।१०९।

णिरयाऊ णिरयदुयं मोत्तुं वोच्छिण्णमिच्छपयडीहिं ॥३६१॥
तिरिय-मणुयाउगेहि य रहियाओ ताउ आसाय ।

।९४।

आसाय छिण्णपयडीऊणे तिरियाउयं मोत्तुं ॥३६२॥
तित्थयर-सुरचदुजुया ताओ अजई दु बंधंति ।

।७५।

औदारिकमिश्रे बन्धयोग्यं गाथासार्धत्रयेणाऽऽह—['णिरयदुगआहारजुयल' इत्यादि।] औदारिकमिश्रकाययोगेषु नरकगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ आहारकाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वयं २ नारक-देवायुर्द्वयं २ चेति षड्भिर्हीनाः अन्याः प्रकृतयः११४ बन्धयोग्याः भवन्तीति ज्ञातव्यम्। कथं तत्षट्कं न? तथाहि—औदारिकमिश्रकाययोगिनो हि लब्धपर्याप्ता निर्वृत्त्यपर्याप्ताश्च भवन्ति, तेन देव-नारकायुर्षी २ आहारकद्वयं २ नरकद्वयं च तत्र बन्धयोग्यं न चेति चतुर्दशोत्तरशतम् ११४। तत्रापि सुरचतुष्कं ४ तीर्थञ्च मिथ्यादृष्टि-सासादनयोर्न बध्नाति, अविरते च बध्नाति। तदाऽऽह—'तित्थयर-सुरचदूणा ताओ बंधंति मिच्छदिट्ठी य'। तीर्थंकरत्व-देवगति-देवगत्यानुपूर्व्य-वैक्रियिक-तदाङ्गोपाङ्ग-सुरचतुष्कोनास्ता एव प्रकृतीरौदारिकमिश्रकाययोगिनो मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति १०९। नरकायुर्नारकद्वयं च मुक्त्वा अपनीय मिथ्यात्वव्युच्छिन्नप्रकृतिभिः १३ तिर्यङ्-मनुष्यायुर्भ्यां च रहितास्ता एव प्रकृतीः सासादनस्थौदारिकमिश्रयोगिनो बध्नन्ति ९४। तिर्यङ्मनुष्यायुर्द्वयं मिथ्यात्वे व्युच्छिन्नम्। एवं पञ्चदश तत्र व्युच्छिन्नाः। तिर्यगायुः परिहृत्य सासादनव्युच्छिन्नचतुर्विंश-

---

*प्रतिषु 'जहि' पाठः।

तिप्रकृतिभिरूनाः तीर्थङ्करत्व-सुरचतुष्केन युताश्च ता एव प्रकृतीरौदारिकमिश्रकाययोगिनोऽविरतसम्यग्दृष्टयो ७५ बध्नन्ति ॥३६०-३६२½॥

औदारिकमिश्रकाययोगिनां रचना—

मि०	सा०	अ०	स०
१५	२४	७४	१
१०६	९४	७५	१
५	२०	३६	११३

औदारिक मिश्रकाययोगमें नरकद्विक, आहारकयुगल, नरकायु और देवायुके विना बन्धयोग्य शेष ११४ प्रकृतियाँ जानना चाहिए। उनमेंसे तीर्थङ्कर और सुरचतुष्क (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक-अङ्गोपांग) इन पाँचके विना मिथ्यादृष्टि १०९ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि नरकायु और नरकद्विकको छोड़कर मिथ्यात्वमें विच्छिन्न होनेवाली १३ प्रकृतियोंके विना तथा तिर्यगायु और मनुष्यायुके विना शेष ९४ प्रकृतियोंको बाँधते हैं। औदारिकमिश्रकाययोगी अविरतसम्यग्दृष्टि तिर्यगायुको छोड़कर सासादनमें विच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंके विना तथा तीर्थङ्कर और सुरचतुष्कसहित ७५ प्रकृतियोंको बाँधते हैं ॥३६०-३६२½॥ (देखो संदृष्टि सं० २५)

वेउव्वे सुरभंगो सुरपयडी तिरिय-णराऊणा ॥३६३॥

।१०२।

तम्मिस्से तित्थयरूणाओ बंधंति ताउ मिच्छा दु ।

।१०१।

इगिजाइथावरादवहुंडासंपत्तमिच्छसंढूणा ॥३६४॥
सासणसम्माइट्ठी ताओ बंधंति पयडीओ ।

।९४।

तिरियाउयं च मोत्तुं सासणवोच्छिण्ण बंधवोच्छिण्णा ॥३६५॥
बंधपयडीहिं रहिया तित्थयरजुआ ताउ बंधंति अजई दु ।

।७१।

वैक्रियिककाययोगे सुरभङ्गः देवगत्युक्तवत् सूक्ष्मत्रय-विकलत्रय-नरकद्विक-नरकायुः-सुरचतुष्क-सुरायुराहारकद्वयोनाः षोडशानामबन्धाद्बन्धयोग्यप्रकृतयः १०४ ।

देवसम्बन्धिवैक्रियिकानां रचना—

मि०	सा०	मि०	अ०
७	२५	०	१०
१०३	९६	७०	७२
१	८	३४	३२

तन्मिश्रे वैक्रियिक [मिश्र-] काययोगे तिर्यग्मनुष्यायुर्भ्यां ऊना देवगत्युक्तप्रकृतयो बन्धयोग्याः १०२ भवन्ति। तीर्थंकरत्वोनास्त एव १०१ प्रकृतीर्वैक्रियिकमिश्रयोगिनो मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति। एकेन्द्रियजातिः १ स्थावरं १ आतपः १ हुण्डकं १ असम्प्राप्तसृपाटिकासंहननं १ मिथ्यात्वं १ षण्ढवेदः १ चेति सप्तभिः प्रकृतिभिरूनास्त एव प्रकृतीः ९४ सासादनस्था वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनो बध्नन्ति। तिर्यगायुष्कं

३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्त्वा सासादनस्थव्युच्छिन्न २४ प्रकृतिभी रहितास्तीर्थङ्करत्वयुक्ताश्च ता एव प्रकृतीः ७१ वैक्रियिककाययोगिनोऽसंयता बध्नन्ति ॥३६२½–३६५½॥

मि०	सा०	असं०
७	२४	६
१०१	६४	७१
१	८	३

वैक्रियिककाययोगमें देवसामान्यके समान बन्धरचना जानना चाहिए। उनमें १०४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें तिर्यगायु और मनुष्यायुके विना शेष १०२ देवगतिसम्बन्धी प्रकृतियाँ बँधती हैं। उनमेंसे तीर्थङ्करके विना शेष १०१ प्रकृतियाँ मिथ्यात्वगुणस्थानमें बँधती हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, हुंडकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, मिथ्यात्व और नपुंसकवेद इन सातके विना शेष ६४ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। उक्त योगवाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव तिर्यगायुको छोड़कर सासादनमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली २४ प्रकृतियोंके विना, तथा तीर्थङ्करसहित ७१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३६२½–३६५½॥ (देखो संदृष्टि सं० २६)

विशेषार्थ—आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंकी बन्ध-प्रकृतियाँ सुगम होनेसे भाष्यगाथाकारने नहीं बतलाई हैं सो उनकी बन्ध-प्रकृतियाँ प्रमत्तगुणस्थानके समान जानना चाहिए। आहारकमिश्रकाययोगियोंके इतना विशेष ज्ञातव्य है कि उनके बन्धयोग ६२ प्रकृतियाँ ही होती हैं; क्योंकि 'तम्मिस्से णत्थि देवाऊ' इस आगम-वचनके अनुसार अपर्याप्तदशामें देवायुका बन्ध नहीं होता है।

णिरयदुगाहारजुयलचउरो आऊहिं बंधपयडीहिं ॥३६६॥
कम्मइयकायजोईरहिया बंधंति णियमेण।

।११२।

सुरचदुतित्थयरूणा ताओ बधंति मिच्छदिट्ठी दु ॥३६७॥

।१०७।

नरकगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ आहारक-तदङ्गोपाङ्गद्वयं २ नरकाद्यायुश्चतुष्कं ४ इत्यष्टाभिर्बन्धप्रकृतिभी रहिताः अन्याः द्वादशोत्तरशतप्रकृतीः कार्मणकाययोगिनो बध्नन्ति ११२। तद्योगिनां विग्रहगतौ तद्बन्धाभावान्नियमेन। तत्र देवगति-तदानुपूर्व्य-वैक्रियिक-तदङ्गोपाङ्ग-तीर्थंकरत्वोनास्ता एव प्रकृतीः कार्मणकाययोगिनो मिथ्यादृष्टयो १०७ बध्नन्ति ॥३६५½–३६७॥

कार्मणकाययोगी जीव नरकद्विक, आहारकयुगल और चारों आयुकर्मोंके विना शेष ११२ प्रकृतियोंको नियमसे बाँधते हैं। उनमें भी कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव सुरचतुष्क और तीर्थङ्करके विना १०७ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥३६५½–३६७॥

एत्थ मिच्छादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीणं मज्झे णिरयाउग-णिरयदुगं तिण्णि पयडीओ मुत्तूण सेसाओ तेरस पयडीओ अवणिय सेसाओ चउणउदिपयडीओ सासणसम्मादिट्ठिणो बंधंति ६४।

अत्र मिथ्यादृष्टिव्युच्छिन्नप्रकृतीनां १६ मध्ये नारकायुष्यं नारकद्वयमिति तिस्रः प्रकृतीः मुक्त्वा शेषास्त्रयोदशप्रकृतीरपनीय शेषाश्चतुर्नवतिं प्रकृतीः सास्वादनस्थकार्मणकाययोगिनो बध्नन्ति ६४।

यहाँपर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें विच्छिन्न होनेवाली १६ प्रकृतियोंमेंसे नरकायु और नरकद्विक, इन तीन प्रकृतियोंको छोड़कर शेष तेरह प्रकृतियोंको निकालकर बाकी बची चौरानवे प्रकृतियोंको कार्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि बाँधते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोगिम्मि ओघभंगो सासणवोच्छिण्ण-बंधपयडीहिं ।
सुरचउ-तित्थयरजुया रहिया बंधंति अजई दु ॥३६८॥

।७५।

सयोगकेवलिनि ओघभङ्गः त्रयोदशगुणस्थानोक्तवत् सास्वादनस्थव्युच्छिन्न २४ प्रकृतिभिः रहितास्ता एव सुरचतुष्क-तीर्थंकरत्वयुक्ताः प्रकृतीः पञ्चसप्ततिं ७५ कार्मणकाययोगिनोऽसंयतसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ॥३६८॥

मि०	सा०	अ०	सयो०
१३	२४	७४	१
१०७	६४	७५	१
५	१८	३७	१११

कार्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव (तिर्यगायुके विना) सासादनमें विच्छिन्न होनेवाली २४ प्रकृतियोंसे रहित, तथा सुरचतुष्क और तीर्थङ्कर सहित ७५ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। कार्मणकाययोगी सयोगिकेवलियोंमें बन्धरचना ओघके समान जानना चाहिए ॥३६८॥

(देखो संदृष्टि सं० २७)

अब वेदमार्गणाकी अपेक्षा बन्धादि बतलानेके लिए गाथासूत्र कहते हैं—

अणियट्टि मिच्छाई वेदे वावीस बंधयं जाव ।
तत्तो परं अवेदे ओघो भणिओ सजोगो त्ति ॥३६९॥

अथ वेदादिमार्गणासु प्रकृतिबन्धभेदः कथ्यते—वेदेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणगुणस्थानकसवेदभागेषु द्वाविंशतिबन्धकं यावत् तावद्बन्धकः। वेदेषु बन्धयोग्यं १२०। गुणस्थानानि ९। स्त्रीवेदिनां नपुंसकवेदिनां पुंवेदवेदिनां च रचना—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०
१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	१
११७	१०१	७४	७२	६७	६३	५९	५८	२२
३	१९	४६	४३	५३	५७	६१	६२	९८

पुंवेदिनां तु क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमचरमसमये इति विशेषः। निर्वृत्त्यपर्याप्तानां स्त्रीणां बन्धयोग्यं १०७। कुतः २ आयुश्चतुष्क-तीर्थंकराहारकद्वयवैक्रियिकषट्कानामबन्धात्। षण्ढवेदिनां निर्वृत्त्यपर्याप्तानां बन्धयोग्यं १०८। लब्ध्यपर्याप्तकबन्धात् तिर्यग्मनुष्यायुषी अपनीय नारकासंयतापेक्षया तीर्थबन्धस्यात्र प्रक्षेपात्। पुंवेदिनां निर्वृत्त्यपर्याप्तानां नारकं विना त्रिगतिजानामेव बन्धयोग्यं ११२। अत्रासंयते तीर्थ-सुरचतुष्कयोर्बन्धोऽस्तीति ज्ञातव्यम्। स्त्री-षण्ढवेदयोरपि तीर्थाहारकबन्धो न विरुध्यते, उदयस्यैव पुंवेदिषु नियमात्। ततः परं अवेदे ओघो भणितः सयोगपर्यन्तं सूक्ष्मसाम्परायादि-सयोगान्तानां वेदो नास्ति, स्वगुणस्थानोक्तबन्धादिकं ज्ञातव्यम् ॥३६९॥

	मि०	सा०
निर्वृत्त्यपर्याप्तस्त्रीवेदिनां रचना—	१०७	९४
	०	१३

	मि०	सा०	अ०
	१३	२४	९
निर्वृत्त्यपर्याप्तषण्ढवेदिनां रचना—	१०७	९४	७१
	१ ती०	१४	३७

	मि०	सा०	अ०
	१३	२४	९
निर्वृत्त्यपर्याप्तपुंवेदिनां रचना—	१०७	९४	७५
	५	१८	३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीनों वेदोंमें मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें बाईस प्रकृतियोंके बन्ध होने तक ओघके समान बन्ध-रचना जानना चाहिए। अवेदियोंमें उससे आगे इक्कीस प्रकृतियोंके बन्धस्थानसे लगाकर सयोगिकेवली पर्यन्त ओघके समान बन्ध-रचना कही है ॥३६९॥

अब कषायमार्गणाकी अपेक्षा बन्धादिका निर्देश करनेके लिए गाथासूत्र कहते हैं—

कोहाइकसाएसुं अकसाईसु य हवे मिच्छाई।
इगिवीसादी जाव ओघो संतादि जोगंता ॥३७०॥

क्रोध-मान-माया-लोभकषायेषु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणस्य द्वितीयादिभागेषु एकविंशत्याद्यष्टादशपर्यन्तं सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मलोभस्य बन्धोऽस्ति, बादरलोभस्यानिवृत्तिकरणस्य पञ्चमे भागे बन्धोऽस्ति। अकषायेषु उपशान्तादिसयोगान्तगुणस्थानवत्। कषायमार्गणायां हि बन्धयोग्यं १२०। गुणस्थानानि क्षपकानिवृत्तिकरण-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-पञ्चमभागपर्यन्तानि ६। क्रोध-मान-माया-बादर-लोभानां गुणस्थानोक्तवत्। सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसाम्परायमिव ॥३७०॥

क्रोधादि चारों कषायोंमें मिथ्यात्वको आदि लेकर क्रमशः अनिवृत्तिकरणके इक्कीस, बीस, उन्नीस और अट्ठारह प्रकृतियोंके बँधनेतक ओघके समान बन्धरचना जानना चाहिए। तथा अकषायी जीवोंमें उपशान्तमोहगुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली पर्यन्त ओघके समान बन्धरचना कही है ॥३७०॥

अब ज्ञान, संयम और दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा बन्धादिका निर्देश करते हैं—

णाणेसु संजमेसु य दंसणठाणेसु होइ णायव्वो।
जिह संभवं* च ओघो मिच्छाइगुणेसु जोयंते† ॥३७१॥

अष्टसु ज्ञानेषु च सप्तसु संयमेषु च चतुर्षु दर्शनेषु च यथासम्भवमोघो ज्ञातव्यो भवति। मिथ्यात्वादि-सयोगान्तगुणस्थानानि। तथाहि—कुमति-श्रुत-विभङ्गाज्ञानेषु बन्धयोग्यं ११७। सुज्ञानत्रये ७९। मनःपर्यये बन्धयोग्यं ६५। प्रमत्तादि-क्षीणान्तगुणस्थानरचना।

कुमति-श्रुत-विभङ्गज्ञानिनां रचना—

	मि०	सा०
	१६	२५
	११७	१०१
	०	१६

मति-श्रुतावधिज्ञानिनां रचना—

अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०
१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०
७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१
२	१२	१६	२०	२१	५७	६२	७८	७८

मनःपर्ययज्ञानिनां रचना—

प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०
६	१	३६	५	१६	०	०
६३	५९	५८	२२	१७	१	१
२	६	७	४३	४८	६४	६४

केवलज्ञानिनां रचना—

स०	अ०
१	०
१	०
११९	१२०

---

*ब -तो। द† -ता।

संयममार्गणायां—

	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
संयममार्गणायां—	६३	५६	५८	२२	१७	१	१	१	०
	२	६	७	४२	४८	६४	६४	११६	१२०

	मि०	सा०	मि०	अ०
	१६	२५	०	१०
असंयमस्य—	११७	१०१	७४	७७
	१	१७	४४	४१

	४
देशसंयतस्य—	६७
	५३

	प्र०	अ०	अ०	अ०
	६	१	३६	५
सामायिक-च्छेदोपस्थापनयोः—	६३	५६	५८	२२
	२	६	७	४३

	प्र०	अप्र०
	६	१
परिहारविशुद्धे—	६३	५६
	२	६

	१६
सूक्ष्मसाम्पराये—	१७
	१०३

	उ०	क्षी०	स०	अ०
	०	०	१	०
यथाख्याते—	१	१	१	०
	०	०	०	०

दर्शनमार्गणायां चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्बन्धयोग्यं १२० । मिथ्यादृष्ट्यादि-क्षीणकषायान्तं गुणस्थानद्वादशोक्तवत् । अवधिदर्शने अवधिज्ञानवत् बन्धयोग्याः ७६ । गुणस्थानान्यसंयतादीनि नव ९ । केवलदर्शने सयोगायोगगुणस्थानद्वयम् २ ॥३७१॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा आठों ज्ञानोंमें, संयममार्गणाकी अपेक्षा सातों स्थानोंमें तथा दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा चारों दर्शनोंमें मिथ्यात्वगुणस्थानको आदि लेकर यथासंभव अयोगिकेवली गुणस्थान तक ओघके समान बन्धादि जानना चाहिए ।।३७१।।

विशेषार्थ—कुमति, कुश्रुत और विभंगा; इन तीनों कुज्ञानोंमें आदिके दो गुणस्थान होते हैं। मत्यादि चार सुज्ञानोंमें चौथेसे लगाकर बारहवें तकके नौ गुणस्थान होते हैं। केवलज्ञानमें अन्तिम दो गुणस्थान होते हैं। सो विवक्षित ज्ञानवाले जीवोंके तत्तत्संभवगुणस्थानोंके समान बन्धरचना जानना चाहिए। संयममार्गणाकी अपेक्षा ५ संयमके, १ देशसंयमका और १ असंयम का ऐसे सात स्थान होते हैं। सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें छट्ठेसे लगाकर नवमें गुणस्थान तकके चार, परिहारविशुद्धिसंयममें छट्ठा और सातवाँ, ये दो: सूक्ष्मसाम्परायमें एक दशवाँ और यथाख्यातसंयममें अन्तिम चार गुणस्थान होते हैं। देशसंयममें पाँचवाँ और असंयममें आदिके चार गुणस्थान होते हैं। इन सातों संयमस्थानोंमें उपर्युक्त गुणस्थानोंके समान बन्धरचना जानना चाहिए। दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा चार स्थान हैं सो चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनमें आदिके १२ गुणस्थान होते हैं। अवधिदर्शनमें चौथेसे लेकर बारहवें तकके नौ गुणस्थान होते हैं। तथा केवलदर्शनमें अन्तिम दो गुणस्थान होते हैं। अतः विवक्षित दर्शनवाले जीवोंकी बन्धरचना उनमें संभव गुणस्थानोंके समान जानना चाहिए।

अब लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा बन्धादिका वर्णन करते हैं—

किण्हाईतिसु णेया आहारदुगूण ओघबंधाओ ।

।११८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तित्थयरूणा ताओ मिच्छादिट्ठी दु बंधंति ॥३७२॥

।११७।

मिच्छे वोच्छिण्णूणा ताओ बंधंति आसाया।

।१०१।

आसायछिण्णपयडी सुराउ-मणुयाउगेहिं ऊणाओ ॥३७३॥
सम्मामिच्छाइट्ठी ताओ बंधंति णियमेण।

।७४।

देव-मणुयाउ-तित्थयरजुया ताओ अजई दु णायव्वा ॥३७४॥

।७७।

कृष्ण-नील-कापोतलेश्यासु तिसृषु आहारकद्वयोना अन्याः सर्वबन्धप्रकृतयः ११८। एतास्तीर्थकरत्वोनास्ता एव मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति ११७। मिथ्यात्वस्य व्युच्छिन्नो १६ नास्ता एव १०१ सासादना बध्नन्ति। सासादनव्युच्छिन्न २५ प्रकृतिदेवायु १ मनुष्यायुष्कै १ रूनास्ता एव चतुःसप्ततिं प्रकृतीमिश्रगुणस्थानवर्तिनो बध्नन्ति ७४। ता एव देवमनुष्यायुष्क-तीर्थकरत्वयुक्ता असंयता बध्नन्ति ७७ कृष्ण-नील कापोतेषु ॥३७२-३७४॥

कृष्णादिलेश्यात्रययन्त्रम्—	मि०	सा०	मि०	अ०
	१६	२५	०	१०
	११७	७४	७४	७७
	१	१७	४४	४१

कृष्ण, नील और कापोत; इन तीन लेश्याओंमें आहारकद्विकके विना शेष ११८ प्रकृतियाँ बन्ध-योग्य हैं। उनमेंसे उक्त तीनों अशुभ लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थङ्करके विना शेष ११७ प्रकृतियाँ बाँधते हैं। मिथ्यात्वमें व्युच्छिन्न होनेवाली १६ प्रकृतियोंके विना शेष १०१ को सासादनगुणस्थानवर्ती बाँधते हैं। उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सासादनमें व्युच्छिन्न होनेवाली २५ और देवायु तथा मनुष्यायु ये दो; इन २७ के विना शेष ७४ प्रकृतियोंको नियमसे बाँधते हैं। उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव देवायु, मनुष्यायु और तीर्थङ्करसहित उक्त ७४ को अर्थात् ७७ प्रकृतियोंको बाँधते हैं, ऐसा जानना चाहिए॥३७२-३७४॥

(देखो संदृष्टि सं० २८)

वियलिंदिय-णिरयाऊ णिरयदुगापुण्ण-सुहुम-साहरणा।
रहियाउ ताउ बंधा तेजाए होंति णायव्वा ॥३७५॥

।१११।

तित्थयराहारदुगूणाउ च बंधंति ताउ मिच्छा दु।

।१०८।

इगिजाइ थावरादवहुंडासंपत्तमिच्छसंढूणा ॥३७६॥
सासणसम्माइट्ठी ताओ बंधंति णियमेण।

।१०१।

मिस्साइ ओघभंगो अपमत्तंतेसु णायव्वो ॥३७७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकलेन्द्रियजातयः ३ नारकायुष्यं १ नारकद्वयं २ अपर्याप्तं सूक्ष्मं साधारणं १ चेति एता नवप्रकृतिरहिताः अन्या बन्धयोग्या एकादशोत्तरशतप्रकृतयः १११ तेजोलेश्यायां भवन्ति ज्ञातव्याः । ताः १११ तीर्थकराहारकद्विकोना १०८ मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति । एकेन्द्रियजातिः १ स्थावरं १ आतपः १ हुण्डकं १ असम्प्राप्तसृपाटिका १ मिथ्यात्वं १ षण्ढवेदः १ चेति सप्तभिः प्रकृतिभिस्ता ऊना इति एकोत्तरशतप्रकृतीः सास्वादनस्थाः १०१ बध्नन्ति । मिश्राद्यप्रमत्तान्तेषु ओघभङ्गः गुणस्थानोक्तबन्धो ज्ञातव्यः ॥३७५–३७७

तेजोलेश्यायां बन्धयोग्याः १११ । रचना—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०
७	२५	०	१०	४	६	१
१०८	१०१	७४	७७	६७	६३	५६
३	१०	३७	३४	४४	४८	५२

तेजोलेश्यामें विकलेन्द्रियत्रिक, नरकायु, नरकद्विक, अपर्याप्त, सूक्ष्म और साधारण, इन नौके विना शेष १११ प्रकृतियाँ बन्धयोग्य हैं, ऐसा जानना चाहिए। उनमेंसे तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टिजीव तीर्थङ्कर और आहारकद्विकके विना १०८ का बन्ध करते हैं। उक्त लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, हुंडकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, मिथ्यात्व और नपुंसकवेद; इन सातके विना शेष १०१ प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करते हैं। मिश्रसे लगाकर अप्रमत्तसंयतगुणस्थान तकके तेजालेश्यावाले जीवोंकी बन्ध-रचना ओघके समान जानना चाहिए ॥३७५–३७७॥ (देखो संदृष्टि सं० २६)

इगि-विगल-थावरादव-सुहुमापज्जत्तसाहरणे ।
णिरयाउ-णिरयदुगूणाउ बंधा हवंति पम्माए ॥३७८॥

।१०८।

तित्थयराहारजुयलरहियाओ जाओ पयडीओ ।
पंचुत्तरसयमेत्ता ताओ बंधंति मिच्छा दु ॥३७६॥

।१०५।

आसाया पुण ताओ हुंडासंपत्तमिच्छसंढूणा ।

।१०१।

मिस्साइ ओघभंगो अपमत्तंतेसु णायव्वो ॥३८०॥

एकेन्द्रिय-विकलत्रयजातयः ४ स्थावरं १ आतपः १ सूक्ष्मं १ अपर्याप्तं १ साधारणं १ नरकायुष्यं १ नारकद्वयं २ चेति द्वादशप्रकृतिभिर्विहीनाः अन्याः अष्टोत्तरशतं बन्धयोग्याः १०८ पद्मलेश्यायां भवन्ति । तीर्थङ्कराऽऽहारकयुगलरहिता याः प्रकृतयस्ता एव पञ्चोत्तरशतं प्रकृतीरिति मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति १०५ । हुण्डकसंस्थानासम्प्राप्तसृपाटिकासंहनन-मिथ्यात्व-षण्ढवेदोनास्ता एव प्रकृतीः सासादना बध्नन्ति १०१ । मिश्राद्यप्रमत्तान्तेषु गुणस्थानोक्तबन्धो ज्ञातव्यः ॥३७८–३८०॥

पद्मलेश्यायां बन्धयोग्याः १०८ । रचना—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०
४	२५	०	१०	४	६	१
१०५	१०१	७४	७७	६७	६३	५९
३	७	३४	३१	४१	४५	४६

पद्मलेश्यामें एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रियत्रिक, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकायु और नरकद्विक, इन बारहके विना शेष १०८ प्रकृतियाँ बन्ध-योग्य हैं। उनमेंसे पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थङ्कर और आहारकयुगल, इन तीनसे रहित जो १०५ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, उन्हें बाँधते हैं। उक्त लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हुंडकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, मिथ्यात्व और नपुंसकवेद, इन चारके विना शेष १०१ का बन्ध करते हैं। मिश्रगुणस्थानको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि लेकर अप्रमत्तसंयत तकके पद्मलेश्यावाले जीवोंमें बन्ध-रचना ओघके समान जानना चाहिए ॥३७८–३८०॥　　　　　　　　　　　　　　　(देखो संदृष्टि सं० ३०)

इगि-विगल-थावरादव-उज्जोवापुण्ण-सुहुम-साहरणा ।
णिरि-तिरियाऊ णिरि तिरिदुगूणा बंधा हवंति सुक्काए ॥३८१॥

।१०४।

तित्थयराहारदुगूणाओ बंधंति मिच्छदिट्ठी दु ।

।१०१।

आसाया पुण ताओ हुंडासंपत्त-मिच्छ-संढूणा ॥३८२॥

।९७।

तिरियाउ तिरियजुयलं उज्जोवं च इय साय-पयडीहिं ।
देव-मणुसाउगेहि य रहियाओ ताओ मिस्सा दु ॥३८३॥

।७४।

तित्थयर-सुर-णराऊ सहिया बंधंति ताओ अजई दु ।

।७७।

जाव य सजोगकेवलि विरयाविरयाइ ताव ओघो त्ति ॥३८४॥

एकेन्द्रियविकलेन्द्रियजातयः ४ स्थावरं १ आतपः १ उद्योतः १ अपर्याप्तं १ सूक्ष्मं १ साधारणं १ नारक-तिर्यगायुषी नारकद्वयं २ तिर्यग्द्वयं२ चेति षोडशप्रकृतिभिर्विना अन्याश्चतुरुत्तरशतं १०४ बन्धयोग्याः प्रकृतयः शुक्लेश्यायां भवन्ति । तीर्थकरत्वाऽऽहारकद्वयोनास्ता एव १०१ मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति । हुण्डका-सम्प्राप्तसृपाटिका-मिथ्यात्वषण्ढवेदोनास्ता एव प्रकृतीः सासादना बध्नन्ति ९७ । तिर्यगायुष्यं १ तिर्यग्द्विकं २ उद्योतः १ चेति प्रकृतिचतुष्कं ४ सासादनव्युच्छिन्नप्रकृतीनां मध्ये त्यक्त्वा अन्याः सासादनव्युच्छिन्नप्रकृतय एकविंशतिः २१ देवमनुष्यायुर्द्वयं २ एवं त्रयोविंशत्या प्रकृतिभि २३ र्विरहितास्ता एव प्रकृती ७४ मिश्रगुणा बध्नन्ति । तीर्थङ्करत्व-देव-मनुष्यायुःसहितास्ता एव प्रकृती ७७ रसंयता बध्नन्ति । विरताविरतादिसयोग-केवलिगुणस्थानपर्यन्तं गुणस्थानोक्तबन्धादिको ज्ञेयः । ३८१–३८४॥

शुक्लेश्यायां बन्धयोग्यप्रकृतयः १०४ । शुक्लेश्यायन्त्रम्—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०
४	२१	०	१०	३	६	१	३६	५	१६	०	०	०
१०१	९७	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१
३	७	३०	२७	३७	४१	४५	४६	८२	८७	१०३	१०३	१०३

शुक्ललेश्यामें एकेन्द्रियजाति, विकलेन्द्रियत्रिक, स्थावर, आतप, उद्योत, अपर्याप्त, सूक्ष्म, साधारण, मनुष्यायु, तिर्यगायु, मनुष्यद्विक और तिर्यग्द्विक; इन सोलहके विना शेष १०४ प्रकृतियाँ बन्ध-योग्य हैं। उनमेंसे शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थङ्कर और आहारकद्विकके विना शेष १०१ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। उक्त लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हुंडकसंस्थान, सृपाटिका-संहनन, मिथ्यात्व और नपुंसकवेदके विना शेष ९७ प्रकृतियोंको बाँधते हैं। शुक्ललेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव तिर्यगायु, तिर्यग्द्विक और उद्योत; इन चारको छोड़कर सासादनमें व्युच्छिन्न होनेवाली शेष २१ प्रकृतियोंसे तथा देवायु और मनुष्यायुसे रहित शेष ७४ प्रकृतियोंको बाँधते हैं। शुक्ललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव तीर्थङ्कर, देवायु और नरकायु, इन तीनके साथ उक्त

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

७४ का अर्थात् ७७ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। पाँचवें विरताविरतगुणस्थानसे लेकर सयोगिकेवली तकके शुक्ललेश्यावाले जीवोंकी बन्धरचना ओघके समान जानना चाहिए ॥३८१–३८४॥

(देखो संदृष्टि सं० ३१)

अब भव्य और सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा बन्धादिका निरूपण करते हैं—

वेदय-खइए भव्वाभव्वे जहसंभवं ओघो ।
उवसमअजई जीवा सत्तत्तरि सुर-णराउरहियाओ ॥३८५॥
।७५।
विदियचदु-मणुसोरालियदुगाइसंघयणऊणिया पयडी ।
विरयाविरयाजीवा ताओ बंधंति णियमेण ॥३८६॥
।६६।
तइयचउक्कयरहिया पमत्तविरया दु ताओ बंधंति ।
।६२।
असुहाजसाथिरारइ-असायसोऊण आहारे* सहिया ॥३८७॥
।५८।
बंधंति अप्पमत्ता अपुव्वकरणाइ ओघभंगो य ।
सासणसम्माइतिए णियणियठाणम्मि ओघो दु ॥३८८॥

वेदकसम्यक्त्वे क्षायिकसम्यक्त्वे भव्ये अभव्ये च यथासम्भवं ओघः गुणस्थानोक्तयोग्यप्रकृतिबन्धादिको ज्ञातव्यः। भव्यजीवेषु बन्धप्रकृतियोग्यं १२०। गुणस्थानानि १२। गुणस्थानोक्तवद् रचना। अभव्यजीवेषु मिथ्यात्वं गुणस्थानमेकम्। बन्धयोग्याः प्रकृतयः ११७। उपशमाविरतसम्यग्दृष्टयो जीवाः सप्तसप्ततिः प्रकृतयो देव-मनुष्यायुष्यद्वयरहिता इति पञ्चसप्तति-प्रकृतीः बध्नन्ति ७५। अप्रत्याख्यानद्वितीयकषायचतुष्कं ४ मनुष्यगति—मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्विकं २ औदारिक-तदङ्गोपाङ्गद्वयं वज्रवृषभनाराचप्रथमसंहननं १ चेति नवप्रकृतिभिरूनास्ता एव प्रकृतीर्विरताविरता देशविरता उपशमसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति नियमेन। प्रत्याख्यानतृतीयचतुष्केन ४ रहितास्ता एव द्वाषष्टिं प्रकृतीः प्रमत्तसंयता उपशमसम्यक्त्वाः बध्नन्ति ६२। अशुभं १ अयशः १ अस्थिरं १ अरतिं १ असातावेदनीयं १ शोकः १ चेति षड्भिः प्रकृतिभिरूना आहारकद्वयसहितास्ता एव ५८ प्रकृती २ प्रमत्तोपशमसम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति। अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायोपशान्तकषायेषु ओघभङ्गः गुणस्थानोक्तवत्। तथाहि—उपशमसम्यग्दृष्टीनां तिर्यग्मनुष्यगत्यो ७२ देवायुषो नरक-देवगत्यो ७२ मनुष्यायुषश्चाबन्धात् उभयोपशमसम्यक्त्वे तद्द्वयस्याप्यभावात्।

प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टौ गुणस्थानचतुष्कं—

अ०	दे०	प्र०	अ०
६	४	६	०
७५	६६	६२	५८
२	११	१५	१६

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेऽपि बन्धयोग्याः ७७। गुणस्थानानि ८।

अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०
६	४	६	०	३६	५	१६	०
७५	६६	६२	५८	५८	२२	१७	१
२	११	१५	१६	१६	५५	६०	७६

*ब आहरे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र श्रेण्यवरोहकासंयते उपशमश्रेण्यां द्वितीयोपशमिकं क्षायिकं च। क्षपकश्रेण्यां क्षायिकमेव सम्यक्त्वमिति नियमात्। सासादनसम्यक्त्वादित्रये निज-निजगुणस्थाने गुणस्थानोक्तवत् ॥३८५–३८८॥

	१६		२५		०
मिथ्यारुचीनां—	११७	सासादनरुचीनां	१०१	मिश्ररुचीनाम्	७४
	३		१९		४६

भव्य और अभव्य जीवोंमें तथा वेदक और क्षायिक सम्यक्त्वी जीवोंमें यथासंभव ओघके समान प्रकृतियोंका बन्ध जानना चाहिए। अभव्योंके एक पहिला ही गुणस्थान होता है और भव्योंके सभी गुणस्थान होते हैं। वेदकसम्यक्त्वी जीवोंके चौथेसे लेकर सातवें तकके चार और क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोंके चौथेसे लेकर चौदहवें तकके ग्यारह गुणस्थान होते हैं। उपशमसम्यक्त्वी अविरती जीव देवायु और मनुष्यायुसे रहित सत्तहत्तर अर्थात् पचहत्तर प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। विरताविरत उपशमसम्यक्त्वी जीव द्वितीय कषायचतुष्क, मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक और आदिम संहनन, इन नौके विना शेष ६६ प्रकृतियोंको नियमसे बाँधते हैं। प्रमत्तविरत उपशमसम्यक्त्वी तृतीय कषायचतुष्कसे रहित शेष ६२ प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं। अप्रमत्तविरत उपशमसम्यक्त्वी अशुभ, अयशःकीर्त्ति, अस्थिर, अरति, असातावेदनीय और शोक इन छह प्रकृतियोंके विना तथा आहारकद्विकसहित ५८ प्रकृतियोंको बाँधते हैं। अपूर्वकरणसे आदि लेकर उपशान्तमोह तकके उपशमसम्यक्त्वी जीवोंके ओघके समान बन्धरचना जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंकी बन्धरचना उन-उन गुणस्थानोंमें वर्णित सामान्य बन्धरचनाके समान जानना चाहिए ॥३८५-३८८॥

(देखो संदृष्टि सं० ३२)

अब शेष मार्गणाओंकी अपेक्षा बन्धादिका निर्देश करते हैं—

सण्णि-असण्णि-आहारीसुं जह संभवो ओघो।
भणिओ अणहारीसु जिणेहिं कम्मइयभंगो ॥३८९॥

।११२।

एवं मग्गणासु पयडिबंधसामित्तं।

संज्ञ्यऽसंज्ञ्याऽऽहारकेषु यथासम्भवं ओघः गुणस्थानोक्तबन्धो भणितः। अनाहारकेषु कार्मणोक्तगुणस्थानवत् बन्धादिको जिनैर्भणितः। तथाहि—संज्ञिमार्गणायां बन्धयोग्यं १२०। गुणस्थानानि १२। मिथ्यात्वादि-क्षीणान्तेषु गुणस्थानोक्तं यथा। असंज्ञिमार्गणायां बन्धप्रकृतियोग्यं ११७।

मि०	सा०
१९	२९
११७	९८
०	१९

आहारकेषु बन्धयोग्यं १२०। गुणस्थानानि १३। बन्धादिकं गुणस्थानोक्तवत्। अनाहारमार्गणायां बन्धयोग्यं ११२। कार्मणोक्तरचनावत्। देव-नारकायुष्यद्वयं २ आहारकद्वयं २ नारकद्वयं २ तिर्यग्द्विकं २ इत्यष्टानां अबन्धत्वात् शेषबन्धयोग्यं ११२ ॥३८९॥

मि०	सा०	अ.वि०	सयो०	अयो०
१३	२४	९।६५	१	०
१०७	९४	७५	१	०
५	१८	३७	१११	११२

इति मार्गणासु प्रकृतिबन्धस्वामित्वं समाप्तम्।

संज्ञी, असंज्ञी और आहारक जीवोंमें प्रकृतियोंका बन्ध यथासंभव ओघके समान जानना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। अनाहारक जीवोंमें प्रकृतियोंका बन्ध जिनेन्द्रभगवान्‌ने कार्मणकाययोगियोंके समान कहा है ॥३८६॥

विशेषार्थ—संज्ञियोंके आदिके १२ गुणस्थानोंके समान, पर्याप्त असंज्ञियोंके मिथ्यात्वगुणस्थानके समान, अपर्याप्त असंज्ञियोंके आदिके दो गुणस्थानोंके समान, तथा आहारकोंके सयोगिकेवली पर्यन्त १३ गुणस्थानोंके समान बन्धरचना जानना चाहिए। अनाहारक जीवोंकी बन्धरचना यद्यपि कार्मणकाययोगियोंके समान कही गई है, तथापि इतना विशेष जानना चाहिए कि अयोगिकेवली भी अनाहारक होते हैं, अतएव अनाहारकोंकी बन्धरचना करते समय उन्हें भी परिगणित करना चाहिए।

इस प्रकार चौदह मार्गणाओंमें प्रकृतियोंके बन्धस्वामित्वका निरूपण किया।

अब कर्मप्रकृतियोंके स्थितिबन्धका निरूपण करते हैं—

[1]उक्कस्समणुक्कस्सो जहण्णमजहण्णओ य ठिदिबंधो।
सादि अणादि य धुवाधुव सामित्तेण सहिया णव होंति ॥३९०॥

अथ स्थितिबन्धः उत्कृष्टादिभिर्नवधा कथ्यते—['उक्कस्समणुक्कसो' इत्यादि।] स्थितिबन्धो नवधा भवति। स्थितिरिति कोऽर्थः? स्थितिः कालावधारणमित्यर्थः। उत्कृष्टस्थितिबन्धः १। अनुत्कृष्टस्थितिबन्धः, उत्कृष्टात् किञ्चिद्धीनोऽनुत्कृष्टः २। जघन्यस्थितिबन्धः ३। अजघन्यस्थितिबन्धः, जघन्यात्किञ्चिदधिकोऽजघन्यः ४। सादिस्थितिबन्धः, यः अबन्धं स्थितिबन्धं बध्नाति स सादिबन्धः ५। अनादिः स्थितिबन्धः, जीव-कर्मणोरनादिबन्धः स्यात् ६। ध्रुवः स्थितिबन्धः, अभव्ये ध्रुवबन्धः; अनाद्यनन्तत्वात् ७। अध्रुवः स्थितिबन्धः, स्थितिबन्धविनाशे अध्रुवबन्धः। अबन्धे सति वा अध्रुवबन्धः स्यात्, भव्येषु भवति। स्वामित्वेन बन्धकर्जीवेन सह ९ नवधा स्थितिबन्धा भवन्ति ॥३९०॥

उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव और स्वामित्वके साथ स्थितिबन्ध नौ प्रकारका है ॥३९०॥

विशेषार्थ—कर्मोंकी आत्माके साथ नियत काल तक रहनेकी मर्यादाका नाम स्थिति है। उसके सर्वोत्कृष्ट बँधनेको उत्कृष्टस्थितिबन्ध कहते हैं। उससे एक समय आदि हीन स्थितिके बन्धको अनुत्कृष्टस्थितिबन्ध कहते हैं। कर्मोंकी सबसे कम स्थितिके बँधनेको जघन्यस्थितिबन्ध कहते हैं। उससे एक समय आदि अधिक स्थितिके बन्धको अजघन्य स्थितिबन्ध कहते हैं। विवक्षित कर्मकी स्थितिके बन्धका अभाव होकर पुनः उसके बंधनेको सादि स्थितिबन्ध कहते हैं। गुणस्थानोंमें बन्धव्युच्छित्तिके पूर्व तक अनादिकालसे होनेवाले स्थितिबन्धको अनादिस्थितिबन्ध कहते हैं। जिस स्थितिबन्धका कभी अन्त न हो उसे ध्रुवस्थितिबन्ध कहते हैं; जैसे अभव्यजीवके कर्मोंका बन्ध। जिस स्थितिके बन्धका नियमसे अन्त हो, उसे अध्रुवस्थितिबन्ध कहते हैं। जैसे भव्य जीवोंके कर्मोंकी स्थितिका बन्ध। कौन जीव किस जातिकी स्थितिका बन्ध करता है, इस बातका निर्णय उसके स्वामित्वके द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार स्थितिबन्धके नौ भेद कहे गये हैं।

अब मूलकर्मोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ४९] [2]तिण्हं खलु पढमाणं उक्कस्सं अंतराइयस्सेव।
तीसं कोडाकोडी सायरणामाणमेव† ठिदी ॥३९१॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, 'उत्कृष्टानुत्कृष्ट' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १३५)। 2. ४, १९७-१९८।
†ब -माणाण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[मूलगा० ५०] मोहस्स सत्तरी खलु वीसं णामस्स चेव णादस्स।
तेतीसमाउगाणं उवमाउ सायराणं तु+ ॥३६२॥

मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धं गाथाद्वयेनाऽऽह--['तिण्हं खलु पढमाणं' इत्यादि।] त्रयाणां प्रथमानां ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीयानां कर्मणां अन्तरायस्य कर्मणश्च उत्कृष्टस्थितिबन्धः सागरोपमाणां त्रिंशत्कोटीकोटयः खलु निश्चयेन ॥३६१॥

ज्ञाना० ३० को०। दर्श० ३० को०। वेद० ३० को,। अन्त० ३० को०।

मोहनीयस्य कर्मणः सप्ततिः ७० सागराणां कोटीकोट्यः उत्कृष्टस्थितिबन्धः। नामकर्मणः गोत्रकर्मणश्चोत्कृष्टस्थितिः विंशतिसागरोपमकोटीकोट्यः स्थितिबन्धः। आयुषः कर्मणः उत्कृष्टस्थितिबन्धः शुद्धानि त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि ॥३६२॥

मो० ७० को०। ना० २० को। गो० २० को०। आयुषः साग० ३३।

आदिके तीन कर्मोंका अर्थात्—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीयकर्मका तथा अन्तरायका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। मोहनीयकर्मका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम, नाम और गोत्रकर्मका बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम और आयुकर्मका तेतीस सागरोपम है ॥३६१–३६२॥

[1]वस्ससयं आबाहा कोडाकोडी ठिदिस्स जलहीणं।
सत्तण्हं कम्माणं आउस्स दु पुव्वकोडितइअंसो ॥३६३॥
[2]तेरासिएण णेया उकस्सा होंति सव्वपयडीणं।
अंतोमुहुत्तबाहा अहमा पुण सव्वकम्माणं ॥३६४॥

उत्कृष्ट-जघन्याऽऽबाधाकालभेदं गाथाद्वयेनाऽऽह--['वस्ससयं आबाहा' इत्यादि।] आयुर्वर्जितसप्तकर्मणामुदयं प्रत्युत्कृष्टाऽऽबाधा कोटाकोटिसागरोपमाणां शतवर्षमात्री भवति। सागरकोटिं प्रति वर्षशतं वर्षशतं आबाधाकालो भवतीत्यर्थः। आयुषः पूर्वकोट्याः तृतीयांशः तृतीयभागः आबाधाकालः उत्कृष्टः। सर्वमूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च त्रैराशिकेनोत्कृष्टा आबाधा ज्ञातव्या भवन्ति। तत्कथम्? कोटीकोटिसागरोपमस्य शतवर्षम्, तदा त्रिंशतः सप्ततेः विंशतेश्च कोटीकोटिसागरोपमस्य किमिति त्रैराशिके कृते प्रमाणं सागरा० १ को० फलं वर्षः १००। इच्छा सा० ३० को०, ७० को०। २० को०। इति इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन तु भाजयेत्। लब्धम् ३०००। २०००। तथाहि—ज्ञानावरणस्योत्कृष्टाबाधाकालः वर्षः ३०००। दर्शनावरणस्योत्कृष्टाबाधाकालः वर्षः ३०००। वेदनीयस्योत्कृष्टाबाधाकालः वर्षः ३०००। अन्तरायस्योत्कृष्टाबाधाकालः वर्षः ३०००। मोहनीयस्योत्कृष्टाबाधाकालः वर्षः ७०००। नामकर्मणः उत्कृष्टाबाधाकालः वर्षः २०००। गोत्रस्योत्कृष्टाबाधाकालः वर्षः २०००। सर्वेषां ज्ञानावरणादीनां अष्टानामुत्तरप्रकृतीनां च जघन्याबाधाकालः अन्तर्मुहूर्तः। आयुषः कर्मणः उत्कृष्टाबाधा पूर्वकोटिवर्षत्रिभागः स्यात् ३३३३३३३$\frac{1}{3}$ अयं तृतीयांशः। उक्तं च—

1. सं० पञ्चसं० ४, १९९। 2. ४, २००।

+ इन दोनों गाथाओंके स्थानपर शतकप्रकरणमें ये दो निम्नगाथाएँ पाई जाती हैं—
सत्तरि कोडाकोडी अयराणं होइ मोहणीयस्स।
तीसं आइतिगंते वीसं नामे य गोए य ॥५२॥
तेत्तीसुदही आउम्मि केवला होइ एकमुक्कोसा।
मूलपयडीण एत्तो ठिई जहन्नो निसामेह ॥५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयस्त्रिंशज्जिनैर्लक्षाः सत्रिभागा निवेदिताः ।
आबाधा जीवितव्यस्य पूर्वकोटीस्थितेः स्फुटम् [1] ॥३१॥

पूर्वाणां त्रयस्त्रिंशल्लक्षा इति शेषः ३३⅓ । आयुषो जघन्याऽऽबाधाकालः अन्तर्मुहूर्तः । पक्षान्तरेणासंक्षेपाद्धा वा भवति । न विद्यतेऽस्मादन्यः संक्षेपः असंक्षेपः । स चासौ अद्धा च असंक्षेपाद्धा, आवल्यसंख्येयभागमात्रत्वात् । आयुषः कर्मणः एवमेव भवति । न च स्थिति-त्रिभागेन । तर्हि असंख्यातवर्षायुष्काणां त्रिभागे उत्कृष्टा कथं नोक्ता? तन्न, देवानां नारकाणां च स्वस्थितौ षण्मासेषु, भोगभूमिजानां नवमासेषु चावशिष्टेषु त्रिभागेनायुर्बन्धासम्भवात् । आबाधालक्षणं गोमट्टसारे प्रोक्तमस्ति—

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदि उदयरूवेण ।
रूवेणुदीरणस्स य आबाहा जाव ताव हवे [2] ॥३२॥

कार्मणशरीरनामकर्मोदयापादितजीवप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगहेतुना कार्मणवर्गणायातपुद्गलस्कन्धाः मूलोत्तरप्रकृतिरूपेणाऽऽत्मप्रदेशेषु अन्योन्यप्रवेशानुलक्षणबन्धरूपेणावस्थिताः फलदानपरिणतिलक्षणोदयरूपेणापक्वपाचनलक्षणोदीरणारूपेण वा यावन्नाऽऽयान्ति तावान् कालः 'आबाधा' इत्युच्यते १ । कर्मस्वरूपेण परिणतकार्मणद्रव्यं यावदुदयरूपेणोदीरणारूपेण वा न एति, न परिणमति तावान् कालः 'आबाधा' कथ्यते । तथा चोक्तम्—

यावत्कालमुदीर्यन्ते न कर्मपरमाणवः ।
उदीरणां विनाऽऽबाधा तावत्कालोऽभिधीयते [3] ॥३३॥३६३-३६४॥

बँधा हुआ कर्म जितने कालतक फल देना प्रारम्भ नहीं करता, उतने कालको अबाधाकाल कहते हैं। कौन कर्म कितने समय तक फल नहीं देता, इसका एक निश्चित नियम है। आगे उसीका निरूपण करते हैं—

एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम स्थितिबन्धकी आबाधा सौ वर्ष प्रमाण होती है। इस नियमके अनुसार सातों मूल कर्मोंकी, तथा उनकी उत्तरप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट आबाधा त्रैराशिकसे जान लेना चाहिए। आयुकर्मकी उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटी वर्षका त्रिभाग है। सर्व कर्मोंकी जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त काल-प्रमाण है ॥३६३-३६४॥

विशेषार्थ—सातों कर्मोंकी उत्कृष्ट आबाधा इस प्रकार जानना चाहिए—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्मकी ३००० वर्ष, दर्शनमोहकी ७००० वर्ष, चारित्रमोहकी ४००० वर्ष, नाम और गोत्रकर्मकी २००० वर्ष उत्कृष्ट आबाधा होती है।

[1]आबाधूणट्ठिदी कम्मणिसेओ होइ सत्तकम्माणं ।
ठिदिमेव णिया सव्वा कम्मणिसेओ य आउस्स [1] ॥३६५॥

अथ निषेकलक्षणमाह—['आबाधूणियकम्मट्ठिदी' इत्यादि ।] आयुर्वर्जितसप्तमूलप्रकृतीनां ज्ञानावरणादीनां आबाधोनितकर्मस्थितिः कर्मनिषेचनं क्षरणं निषेको भवति । कर्मनिषेचनं कर्मोदय इत्यर्थः । आयुषः कर्मणः निजा स्थितिः सर्वा कर्मनिषेकरूपा भवति । आयुषः स्वस्थितिः सर्वैव निषेको भवति । तथा चोक्तम्—

आबाधोनाऽस्ति सप्तानां स्थितिः कर्मनिषेचनम् ।
कर्मणामायुषोऽवाचि स्थितिरेव निजा पुनः [4] ॥३४॥ इति

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २०८ ।

१. सं० पञ्चसं० ४, २०५ । २. गो० क० गा० १५५ । ३. सं० पञ्चसं० ४, २०७ । ४. सं० पञ्चसं० ४, २०८ ।

१. गो० क० गो० गा० १६०, परं तत्रोत्तरार्धे पाठभेदोऽस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयुषो यावती स्थितिस्तावान्निषेको भवति । तथा च —

आबाधोर्ध्वस्थितावस्यां समयं समयं प्रति ।
कर्माणुस्कन्धनिक्षेपो निषेकः सर्वकर्मणाम् ॥३५॥
परतः परतः स्तोकः पूर्वतः पूर्वतो बहुः ।
समये समये ज्ञेयो यावत्स्थितिसमापनम्[1] ॥३६॥

स्वां स्वामाबाधां मुक्त्वा सर्वकर्मणां निषेका वक्तव्याः । तेषाञ्च गोपुच्छाकारेणावस्थितिः[2] ॥३९५॥

आयुके बिना शेष सात कर्मोंकी बँधी हुई स्थितिमेंसे आबाधाकालके घटा देनेसे जो स्थिति शेष रहती है, वह कर्मनिषेककाल है। आयुकर्मका कर्मनिषेककाल उसकी अपनी सर्व स्थिति ही जाननी चाहिए ॥३९५॥

विशेषार्थ—प्रत्येक समयमें खिरने या निर्जीर्ण होनेवाले कर्मपरमाणुओंके समूहको निषेक कहते हैं। आयुके बिना शेष कर्मोंका जितना स्थितिबन्ध होता है, उसमेंसे ऊपर बतलाये गये नियमके अनुसार आबाधाकालके घटा देनेपर जो स्थिति शेष रहती है, उसे निषेककाल कहते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि विवक्षित समयमें बँधनेवाले कर्मपिण्डमें जितने परमाणु हैं, वे आगममें बतलाई गई एक निश्चित विधिके अनुसार निषेककालके जितने समय हैं, उनमें विभक्त हो जाते हैं और फिर अपनी-अपनी अवधिके पूर्ण होनेपर खिर जाते हैं। किन्तु आयुकर्म उक्त नियमका अपवाद है। उसमें अन्य कर्मोंके समान आबाधाकाल और निषेककाल ऐसे दो विभाग नहीं हैं; किन्तु जिस आयुकर्मकी जितनी स्थिति बँधती है, वह सभी निषेककाल है। अर्थात् उतनी स्थिति-प्रमाण उसके निषेकोंकी रचना होती है। ऊपर जो आयुकर्मकी उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटी वर्षका त्रिभाग बतलाया गया है, सो भुज्यमान आयुकी अपेक्षा बतलाया गया है, बध्यमान आयुकी अपेक्षा नहीं, ऐसा विशेष जानना चाहिए। मूल शतककी जो चूर्णि उपलब्ध है, उसमें नरकायु-देवायुकी उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि वर्षके त्रिभागसे अधिक तेतीस सागरोपम बतलाया है। यथा—

'देव-णिरयाउगाणं उक्कोसगो ठिइबंधो तेत्तीसं सागरोवमाणि पुव्वकोडितिभागहियाणि, पुव्वकोडिति-भागो अबाहा। अबाहाए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो।

इसी प्रकार मनुष्य-तिर्यञ्चोंकी भी उत्कृष्ट आयुके विषयमें कहा है—

'मणुस-तिरियाउगाणं उक्कोसट्ठिई तिण्णि पलिओवमाणि पुव्वकोडितिभागसहियाणि। पुव्वकोडिति-भागो अबाहा। अबाहाए विणा कम्मट्ठिई कम्मणिसेगो।'

यह कथन पूर्वकोटि प्रमाण कर्मभूमियाँ मनुष्य-तिर्यञ्चोंकी भुज्यमान आयुके त्रिभाग-रूप आबाधाकालको सम्मिलित करके कहा गया समझना चाहिए।

अब उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका निरूपण करते हैं—

[1]आवरणमंतराए पण णव पणयं असायवेयणियं ।
तीसं कोडाकोडी सायरणामाणमुक्कस्सं ॥३९६॥

२० एदासिं ठिदी ३० ।

अथोत्तरप्रकृतीनां स्थितिमुत्कृष्टां गाथाद्वादशकेनाऽऽह—['आवरणमन्तराए' इत्यादि ।] मतिज्ञानावरणादिपञ्चकं ५ चक्षुर्दर्शनावरणादि नव ९ दानान्तरायादिपञ्चकं ५ असातवेदनीयं १ चेति विंशतेः

1. सं० पञ्चसं० ४, २११ ।

१. सं० पञ्चसं० ४, २०९–२१० । २. एषापि पङ्क्तिस्तत्रैवोपलभ्यते (सं० पञ्चसं० पृ० १३२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धः त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपमप्रमाणः । विंशतेः प्रकृतीनां स्थितिः ३० कोटा० ॥३६६॥

ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ६, अन्तरायकी ५ और असातावेदनीय इन बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होता है ॥३६६॥

[1]मणुसदुग इत्थिवेयं सायं पण्णरस ‡कोडिकोडीओ ।
मिच्छत्तस्स य सत्तरि चरित्तमोहस्स चत्तालं ॥३६७॥

एदेसिं ठिदी १५ । मिच्छत्तस्स ७० । सोलसकसायाणं ४० ।

मनुष्यगति- [मनुष्य-] गत्यानुपूर्व्यद्वयं २ स्त्रीवेदः १ सातवेदनीयं चेति चतसृणां प्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धः पञ्चदशकोटाकोटिसागरोपमप्रमाणो भवति १५ । मिथ्यात्वस्योत्कृष्टस्थितिबन्धः सप्ततिकोटाकोटिसागरप्रमाणः स्यात् ७० कोटा० । चारित्रमोहस्यानन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभानां षोडशकषायाणां उत्कृष्टस्थितिबन्धः चत्वारिंशत्सागरोपमकोटाकोटिप्रमाणः ४० कोटा० ॥३६७॥

मनुष्यद्विक, स्त्रीवेद, सातावेदनीय, इन चार प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है । मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी और चारित्रमोहनीयका चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम होता है ॥३६७॥

[2]णिरयाउग-देवाउगठिदि-उक्कस्सं च होइ तेत्तीसं ।
मणुयाउय-तिरियाउय-उक्कस्सं तिण्णि पल्लाणि ॥३६८॥

।३३।

नारक-देवायुषोरुत्कृष्टस्थितिबन्धः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणं साग० ३३ । मनुष्यायुषः तिर्यगायुषश्चोत्कृष्टस्थितिबन्धः त्रीणि पल्योपमप्रमाणानि पल्य० ३ ॥३६८॥

नरकायु और देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागरोपम है । मनुष्यायु और तिर्यगायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन पल्योपम है ॥३६८॥

[3]भयमरइदुगुंछा विय णउंसयं सोय णीचगोयं च ।
णिरयगइ-तिरियदोण्णि य तेसिं च तहाणुपुव्वी य ॥३६९॥
एइंदिय-पंचिंदिय-तेजा कम्मं च अंगवंगदुयं ।
दोण्णि य सरीर हुंडं वण्णचउक्कं असंपत्तं ॥४००॥
अगुरुयलहुयचउक्कं आदाउज्जोव अप्पसत्थगदिं ।
थावरणामं तसचउ अथिरं असुहं अणादेज्जं ॥४०१॥
दुब्भग दुस्सरमजसं णिमिणं च य वीस कोडकोडीओ ।
सायरसंखाणियमो ठिदि-उक्कस्सं वियाणाहि ॥४०२॥

४३ एयासिं ठिदी २० ।

भयं १ अरतिः १ जुगुप्सा १ नपुंसकवेदः १ शोकः १ नीचगोत्रं १ नरकगतिः १ नरकगत्यानुपूर्वी १ तिर्यग्गति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ एकेन्द्रियं १ पञ्चेन्द्रियं १ तैजसं १ कार्मणं १ अङ्गोपाङ्गद्वयं २ औदारिक-

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २१२ । 2. ४, २१३ । 3. ४, २१४-२१७ ।
‡द कोड ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गद्विकं २ शरीरे द्वे औदारिक-वैक्रियिकशरीरे द्वे २ हुण्डकसंस्थानं १ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णचतुष्कं ४ असम्प्राप्तसृपाटिकासंहननं १ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं, ४ आतपः १ उद्योतः १ अप्रशस्तविहायोगतिः १ स्थावरनाम १ त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकचतुष्कं ४ अस्थिरं १ अशुभं १ अनादेयं १ दुर्भगं १ दुःस्वरं १ अयशःकीर्त्तिः १ निर्माणं १ चेति त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां ४३ उत्कृष्टस्थितिबन्धः विंशति-कोटाकोटिसागरोपमप्रमाणमिति त्वं जानीहि । एतासां ४३ प्रकृतीनां स्थितिः २० कोटा० ॥३९९–४०२॥

भय, अरति, जुगुप्सा, नपुंसकवेद, शोक, नीचगोत्र, नरकगति, तिर्यग्गति, नरकानुपूर्वी तिर्यगानुपूर्वी, एकेन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर, औदारिक-अंगोपांग, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक-अंगोपांग, हुंडकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, वर्ण-चतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, अनादेय, दुर्भग, दुःस्वर, अयशःकीर्त्ति और निर्माण; इन तेतालीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ीसागरोपम जानना चाहिए ॥३९९–४०२॥

[1]हास-रइ-पुरिसवेयं देवगइदुयं पसत्थसंठाणं ।
आदी वि य संघयणं पसत्थगइसुस्सरं सुभगं ॥४०३॥
थिर सुह जस आदेज्जं उच्चागोदं ठिदी य उक्कस्सं ।
दस सागरोवमाणं पुण्णाओ कोडकोडीओ ॥४०४॥

१५ एयासिं ठिदी १० ।

हास्यं १ रतिः १ पुंवेदः १ देवगति-देवत्यानुपूर्व्यद्वयं २ समचतुरस्रसंस्थानं १ वज्रवृषभनाराच-संहननं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ सुस्वरः १ सुभगं १ स्थिरं १ [शुभं १] यशः १ आदेयं १ उच्चैर्गोत्रं १ चेति पञ्चदशप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धः दश कोटाकोटिसागरोपमप्रमाणः । अमू पुण्यप्रकृतयः १५ तासां स्थितिः १० कोटा० ॥४०३–४०४॥

हास्य, रति, पुरुषवेद, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त अर्थात् समचतुरस्रसंस्थान, आदि-का अर्थात् वज्रवृषभनाराचसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुस्वर, सुभग, स्थिर, शुभ, यशःकीर्त्ति, आदेय और उच्चगोत्र; इन पन्द्रह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दश कोड़ाकोड़ीसागरोपम होता है ॥४०३–४०४॥

[2]बितिचउरिंदिय सुहुमं साधारणणामयं अपज्जत्तं ।
अट्ठरस कोडकोडी ठिदिउक्कस्सं समुद्दिट्ठं* ॥४०५॥

६ एयासिं १८ ।

द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणि ३ सूक्ष्मं १ साधारणं १ अपर्याप्तं १ चेति षण्णां प्रकृतीनां ६ उत्कृष्टस्थितिबन्धः अष्टादशकोटाकोटि-[सागरोपम-] प्रमाणः । प्र० ६ । १८ कोटा० ॥४०५॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त नाम; इन छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अट्ठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम कहा गया है ॥४०५॥

1. सं० पञ्चसं० ४, २१८-२१९ । 2. ४, २२० ।
*ब प्रतावीदृग् पाठः—अट्ठारस कोडीओ ठिदीणमुक्कस्सयं जाणे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]संठाणं संघयणं विदियं तदियं य बारस चोद्दसयं च।
सोलस कोडाकोडी चउत्थसंठाणं-संघयणं ॥४०६॥

२-१२।२-१४।२-१६

[2]पंचमयं संठाणं संघयणं तह य होइ पंचमयं।
अट्ठरस कोडकोडी ठिदि-उक्कस्सं समुद्दिट्ठं ॥४०७॥

२।१८

संस्थान-संहननयोः द्वितीययोः न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान-वज्रनाराचसंहननयोरुत्कृष्टस्थितिबन्धः द्वादशकोटाकोटिसागरोपमप्रमाणः। २—१२ कोटा०। तृतीययोः वाल्मीक-नाराच-संस्थान-संहननयोर्द्वयो-रुत्कृष्टस्थितिबन्धः चतुर्दशकोटाकोटिसागरोपमप्रमाणः। २—१४ कोटा०। चतुर्थयोः कुब्जकसंस्थानार्धनाराच-संहननयोर्द्वयोरुत्कृष्टस्थितिबन्धः षोडशकोटाकोटिसागरोपमप्रमाणः। २—१६ कोटा०। पञ्चमं संस्थानं पंचमं संहननं पञ्चमयोर्वामनसंस्थान-कीलिकासंहननयोर्द्वयोरुत्कृष्टस्थितिबन्धः अष्टादशकोटाकोटिसागरोपमाणि, इति समुद्दिष्टं जिनैरिति। २—१८ कोटा० ॥४०६—४०७॥

दूसरे संस्थान और संहननका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। तीसरे संस्थान और संहननका चौदह, चौथे संस्थान और संहननका सोलह तथा पाँचवें संस्थान और संहननका अठ्ठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम उत्कृष्टस्थितिबन्ध कहा गया है ॥४०६—४०७॥

[3]अंतोकोडाकोडी ठिदी दु आहारदुगय तित्थयरं।
सव्वासिं पयडीणं ठिदि-उक्कस्सं वियाणाहि ॥४०८॥

आहारकाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वयस्य तीर्थंकृतश्चोत्कृष्टस्थितिरन्तःकोटाकोटिसागरोपमाणि। एककोट्या उपरि द्विकवारकोट्या मध्ये अन्तःकोटाकोटिः कथ्यते। सर्वासां विंशत्युत्तरशतप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिं हे भव्य, त्वं जानीहि ॥४०८॥

आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम है। इस प्रकार सर्व कर्मप्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध जानना चाहिए ॥४०८॥

अब मूलकर्मोंके जघन्य स्थितिबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०५१] [4]बारस य वेयणीए णामे गोदे य अट्ठ य मुहुत्ता।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं* ॥४०९॥

अथ मूलप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धमाह—['बारस य वेयणीए' इत्यादि।] जघन्यस्थितिबन्धो वेदनीये द्वादश मुहूर्त्ताः १२। नामकर्मणि अष्टौ मुहूर्त्ताः ८। गोत्रकर्मणि अष्टौ मुहूर्त्ताः ८। तु पुनः शेषाणां पञ्चानां ज्ञानावरणदर्शनावरण-मोहनीयाऽऽयुष्यान्तरायाणां भिन्नमुहूर्त्तः। अत्र भिन्नमुहूर्त्त इत्युक्ते अन्तर्मुहूर्त्तो लभ्यते। स क्वेति चेत्-ज्ञानावरणान्तरायाणां त्रयाणां जघन्या स्थितिः सूक्ष्मसाम्पराये ज्ञातव्या। मोहनीयस्यानिवृत्तिकरणगुणस्थाने जघन्या स्थितिर्ज्ञेया। आयुषो जघन्या स्थितिः कर्मभूमिजमनुष्येषु तिर्यक्षु च ज्ञेया ॥४०९॥

---

1. सं०पञ्चसं० ४, २२१। 2. ४, २२२। 3. ४, २२३। 4. २२४।

*इसके स्थान पर शतकप्रकरणमें निम्न गाथा पाई जाती है—

बारस अंतमुहुत्ता वेयणिए अट्ठ नाम-गोयाणं।
सेसाणंतमुहुत्तं खुड्डभवं आउए जाण ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदनीयकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त, नाम और गोत्रका आठ मुहूर्त्त तथा शेष पाँच कर्मोंका भिन्नमुहूर्त है। (यहाँ भिन्नमुहूर्त्तसे अभिप्राय अन्तर्मुहूर्त्तका है) ॥४०९॥

अब कर्मोंकी उत्तरप्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध बतलाते हैं—

[1]आवरण-अंतराए पण चउ पणयं तह लोहसंजलणं।
ठिदिबंधो दु जहण्णो भिण्णमुहुत्तं वियाणाहि ॥४१०॥

।१५।

[2]बारस मुहुत्त सायं अट्ठ मुहुत्तं तु उच्च-जसकित्ती।
बे मास मास पक्खं कोहं माणं च मायं च ॥४११॥

एत्थ कोहसंजलणे मासा २। माणे मासो १। मायाए पक्खो १।

अथोत्तरप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धं गाथादशकेनाऽऽह—['आवरणमन्तराए' इत्यादि।] ज्ञानावरणपञ्चकं ५ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलादर्शनावरणचतुष्कं ४ दानान्तरायादिपञ्चकं ५ संज्वलनलोभं १ इत्येतासां पञ्चदशप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धः अन्तर्मुहूर्त्तः, इति हे भव्य, जानीहि त्वम्। सातावेदनीयस्य द्वादश मुहूर्त्ता जघन्या स्थितिः १२। उच्चगोत्रस्य यशस्कीर्त्तेश्च जघन्या स्थितिरष्टौ मुहूर्त्ताः। अत्र संज्वलनक्रोधे जघन्या स्थितिः द्वौ मासौ २। संज्वलनमाने जघन्या स्थितिरेको मासः १। संज्वलनमायायां जघन्या स्थितिः पक्षः पञ्चदश दिनानि १५ ॥४१०-४११॥

ज्ञानावरणकी पाँच, दर्शनावरणकी चार, अन्तरायकी पाँच, तथा संज्वलनलोभ इन पन्द्रह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध भिन्नमुहूर्त जानना चाहिए। सातावेदनीयका बारह मुहूर्त, उच्चगोत्र और यशःकीर्त्तिका आठ मुहूर्त जघन्य स्थितिबन्ध कहा गया है। संज्वलनक्रोधका जघन्य स्थितिबन्ध दो मास, संज्वलनमानका एक मास और संज्वलन मायाका एक पक्ष जघन्य स्थितिबन्ध है ॥४१०-४११॥

[3]पुरिसस्स अट्ठवासं आउदुगं भिण्णमेव य मुहुत्तं।
देवाउय-णिरयाउय वाससहस्सा दस जहण्णा ॥४१२॥

पुंवेदस्य जघन्यस्थितिबन्धः अष्टौ वर्षाणि ८। आयुर्द्विकं मनुष्य-तिर्यगायुषोः अन्तर्मुहूर्त्तः। देवायुषो नारकायुषश्च जघन्यस्थितिबन्धो दशसहस्रवर्षमिति १०००० ॥४१२॥

पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध आठ वर्ष, मनुष्यायु और तिर्यगायुका अन्तर्मुहूर्त; तथा देवायु और नरकायुका दश हजार वर्ष है ॥४१२॥

[4]पंच य विदियावरणं साइयरं वेयणीय मिच्छत्तं।
बारस अट्ठ य णियमा कसाय तह णोकसाया य ॥४१३॥

एत्थ दंसणावरणीयस्स णिद्दापंचयं।

तिण्णि य सत्त य चदु दुग सायर उवमस्स सत्त भागा दु।
ऊणा असंखभागे पल्लस्स जहण्णठिदिबंधो ॥४१४॥

प्र	प्र	प्र	प्र
६	१	१२	८
३ ठि	७ ठि	४ ठि	२ ठि
७	७	७	७

1. सं०पञ्चसं० ४, २२५। 2. ४, २२६। 3. ४, २२७। 4. ४, २२८-२२९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयदर्शनावरणपञ्चकं निद्रा १ निद्रानिद्रा १ प्रचला १ प्रचलाप्रचला १ स्त्यानगृद्धिः १ असातावेदनीयं चेत्येतासां षण्णां प्रकृतीनां ६ जघन्या स्थितिः सागरोपमस्य सप्तभागानां मध्ये त्रयो भागाः प्र० ६। ३/७। मिथ्यात्वस्य जघन्या स्थितिः सागरोपमप्रमिता १। अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान क्रोध-मान माया-लोभानां द्वादशानां प्रकृतीनां जघन्या स्थितिः सागरोपमस्य सप्तभागानां मध्ये चत्वारो भागाः प्र० १२। ४/७। पुंवेदं विना अष्टानां नोकषायाणां जघन्या स्थितिः सागरोपमस्य सप्तभागानां मध्ये द्वौ भागौ। प्र० ८। २/७। तदेवाऽऽह-निद्रादिपञ्चकस्यासातस्य षण्णां प्रकृतीनां जघन्या स्थितिः सागरस्य त्रयः सप्त-भागाः पल्योपमस्यासंख्यातभागहीनाः। मिथ्यात्वस्य जघन्या स्थितिः सागरस्य सप्त-सप्तभागाः पल्यासंख्यातभागहीनाः। द्वादशकषायाणां चत्वारः सप्तभागाः पल्योपमासंख्यातभागहीनाः। पुंवेदं विनाऽष्टानां नोकषायाणां जघन्या स्थितिः सागरस्य द्वौ सप्तभागौ पल्यासंख्यातभागहीनौ ॥४१३–४१४॥

द्वितीय आवरण अर्थात् दर्शनावरणकी पाँच निद्राएँ और असातावेदनीय; इन छह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध एक सागरोपमके सात भागोंमेंसे पल्यके असंख्यातवें भाग हीन तीन भागप्रमाण है। मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिबन्ध सागरोपमके सात भागोंमेंसे पल्यासंख्यातभागहीन सात भागप्रमाण है। संज्वलन कषायचतुष्कको छोड़कर शेष बारहकषायोंका जघन्य स्थितिबन्ध सागरोपमके सात भागोंमेंसे पल्यासंख्यातभाग हीन चार भागप्रमाण है। तथा शेष आठ नोकषायोंका जघन्य स्थितिबन्ध सागरोपमके सात भागोंमेंसे पल्यासंख्यातभागहीन दो भागप्रमाण है ॥४१३–४१४॥ (इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।)

[1]तिरियगइ मणुयदोण्णि य पंच य जाई सरीरणामतियं।
संठाणं संघयणं छक्क ओरालियंगवंगो य ॥४१५॥
वण्ण-रस-गंध-फासं अगुरुयलहुयादि होंति चत्तारि।
आदाउज्जोवं खलु विहायगई वि य तहा दोण्णि ॥४१६॥
तस-थावरादिजुयलं णव णिमिणं अजसकित्ति णिच्चं च।
सागर वि-सत्तभागा पल्लासंखेज्जभागूणा ॥४१७॥

५८ ठिदी २/७

तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वयं २ मनुष्यगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ एकेन्द्रियादिजातिपञ्चकं ५ औदारिक-तैजस-कार्मणशरीरत्रयं ३ समचतुरस्रादिसंस्थानषट्कं ६ वज्रवृषभनाराचादिसंहननषट्कं ६ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शचतुष्कं ४ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं ४ आतपः १ उद्योतः १ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्वयं २ त्रस-स्थावर २ सुभग-दुर्भग २ सुस्वर-दुस्वर २ शुभाशुभ २ सूक्ष्म-बादर २ पर्याप्तापर्याप्त २ स्थिरास्थिरा २ देयानादेय २ प्रत्येक-साधारण २ युगलनवकं निर्माणं १ अयशस्कीर्त्तिः १ नीचैर्गोत्रं १ चेत्यष्टपञ्चाशत्प्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धः सागरोपमस्य द्वौ सप्तभागौ। किम्भूतौ १ पल्योपमासंख्यातभागहीनौ ॥४१५–४१७॥

तिर्यग्गतिद्विक, मनुष्यगतिद्विक एकेन्द्रियादि पाँच जातियाँ, औदारिक, तैजस, कार्मण ये तीन शरीर, छह संस्थान, छह संहनन, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु आदि चार, आतप, उद्योत, प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों विहायोगतियाँ, त्रस-स्थावरादि नौ युगल,

1. सं० पञ्चसं०४, २३०-२३२।

निर्माण, अयशःकीर्त्ति और नीचगोत्र; इन अट्ठावन प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध सागरोपमके सात भागोंमेंसे पल्यासंख्यातभागहीन दो भागप्रमाण है ॥४१५-४१७॥

[1]उदधिसहस्सस्स† तहा वि-सत्तभागा जहण्णठिदिबंधो।
वेउव्वियछक्कस्स य पल्लासंखेज्जभागूणा ॥४१८॥

६ ठिदी २८ सवर्णितं $\frac{२०००}{७}$ *

वैक्रियिकषट्कस्य नरकगति-तदानुपूर्व्य-देवगति-तदानुपूर्व्य-वैक्रियिक-वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गानां षण्णां प्रकृतीनां ६ जघन्यस्थितिबन्धः उदधेः सागरोपमस्य सहस्रभागकृतस्य द्वि-सप्तभागाः $\frac{२}{७}$। कथम्भूताः ? पल्यासंख्यातभागहीनाः। सागरसंज्ञाङ्कस्य २८५ $\frac{५}{७}$ सवर्णितं सप्तभिर्गुणित्वा $\frac{२०००}{७}$ पञ्च मेलिताः ॥४१८॥

वैक्रियिकषट्क (वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक-अङ्गोपाङ्ग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी) का जघन्य स्थितिबन्ध सागरोपमसहस्रका पल्यासंख्यातभागहीन दो बटे सात भाग $\frac{२}{७}$ प्रमाण है ॥४१८॥

वैक्रियिकषट्कका ज० स्थितिबन्ध $\frac{२०००}{७}$ अर्थात् २८५ $\frac{५}{७}$ सागरोपम है।

[2]आहारयं सरीरं अंगोवंगं च णाम तित्थयरं।
अंतोकोडाकोडी जहण्णबंधो ठिदी होइ ॥४१९॥

अपूर्वकरणादिक्षपकश्रेणौ आहारकाऽऽहारकाङ्गोपाङ्गद्वयस्य तीर्थकरत्वस्य च जघन्यस्थितिबन्धः अन्तःकोटाकोटिसागरोपमप्रमाणो भवति ॥४१९॥

इति मूलोत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धः उत्कृष्टो जघन्यश्च समाप्तः।

आहारकशरीर, आहारक-अङ्गोपाङ्ग और तीर्थंकरनामकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तः-कोडाकोडीसागरोपम है ॥४१९॥

विशेषार्थ—गाथोक्त तीनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध भी अन्तकोडाकोडी सागरोपम पहले बतला आये हैं और यहाँ पर जघन्य स्थितिबन्ध भी उतना ही बतला रहे हैं, सो दोनों स्थितिबन्धोंको समान नहीं जानना। किन्तु उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे इनका ही जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणित हीन होता है। जैसा कि शतकचूर्णिमें कहा है—"आहारकसरीर-आहारकांगोवंग-तित्थयरणामाणं जहण्णओ ठिइबंधो अंतोकोडाकोडी। अंतोमुहुत्तमबाहा। उक्कोसाओ संखेज्जगुणहीणो।" (श० चू० पृ० २८) दूसरी विशेषता उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्ध करनेवाले जीवोंकी है। उक्त प्रकृतियोंमेंसे आहारकद्विकका उत्कृष्टबन्ध अप्रमत्तसंयतके होता है, किन्तु जघन्य स्थितिबन्ध अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपकके अपनी बन्धव्युच्छित्तिके समय होता है। जैसा कि गो० कर्मकाण्डमें कहा है—"तित्थहाराणंतोकोडाकोडी जहण्णट्ठिदिबंधो। खवगे सगसगबंधच्छेदणकाले हवे णियमा" ॥१४१॥ तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अविरतसम्यग्दृष्टि मनुष्यके होता है।

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २३३। 2. ४, २३४।

†व उदधिस्स सहस्स०। *द २८५ $\frac{५}{७}$ ईदृक् पाठः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसा कि आगे गाथा नं० ४२७ तथा गो० कर्मकाण्डमें भी कहा है—"तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेइ ॥" गा० १३६ ।

इस प्रकार मूल और उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्ध समाप्त हुआ ।

अब मूल प्रकृतियोंके जघन्यादिबन्ध-सम्बन्धी सादि आदि भेदोंकी प्ररूपणा करते हैं—

[मूलगा०५२] [1]मूलट्ठिदिअजहण्णो सत्तण्हं बंधचदुवियप्पो य ।
सेसतिए दुवियप्पो आउचउक्के य दुवियप्पो[1] ॥४२०॥

इदि मूलपयडीसु । एत्तो उत्तरासु—

अथाजघन्यादीनां सम्भवत्साद्यादिभेदानाह—['मूलट्ठिदिअजहण्णो' इत्यादि ।] आयुर्वर्जितसप्तविधमूलप्रकृतीनां अजघन्यस्थितिबन्धः साद्यनादि-ध्रुवाध्रुवभेदेन चतुर्विधो भवति ४ । शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रितये साद्यध्रुवौ द्वौ भवतः २ । आयुःकर्मचतुष्के अजघन्यजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टेषु चतुर्विधेषु द्वौ विकल्पौ साद्यध्रुवौ भवतः २ । इति मूलप्रकृतिषु जघन्यादिषु साद्यादयः ॥४२०॥

आयुर्वर्जितसप्तमूलप्रकृतीनां साद्यादियन्त्रम्—

प्रकृति ७	जघन्य	सादि	०	०	अध्रुव २
प्रकृति ७	अजघन्य	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव ४
प्रकृति ७	उत्कृष्ट	सादि	०	०	अध्रुव २
प्रकृति ७	अनुत्कृष्ट	सादि	०	०	अध्रुव २

आयुषः साद्यादियन्त्रम्—

जघन्य १	सादि	०	०	अध्रुव
अजघन्य २	सादि	०	०	अध्रुव
अनुत्कृष्ट ३	सादि	०	०	अध्रुव
उत्कृष्ट ४	सादि	०	०	अध्रुव

आयुकर्मको छोड़कर शेष सात मूलप्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव; इन चारों ही प्रकारोंका होता है । उक्त सातों कर्मोंके शेषत्रिक अर्थात् उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्ध सादि और अध्रुव ऐसे दो प्रकारके होते हैं । आयुकर्मके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य; ये चारों ही प्रकारके स्थितिबन्ध भी सादि और अध्रुव ये दो प्रकारके होते हैं ॥४२०॥

विशेषार्थ—जिससे अन्य और कोई छोटा स्थितिबन्ध न हो, ऐसे सबसे छोटे स्थितिबन्धको जघन्य स्थितिबन्ध कहते हैं । इसको छोड़कर आगे एक समय अधिकसे लगाकर ऊपर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तकके जितने भी शेष स्थितिबन्ध हैं, उन सबको अजघन्य स्थितिबन्ध कहते हैं । जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट तकके जितने भी स्थितिविकल्प हैं, वे सर्व जघन्य और अजघन्य इन दोनों स्थितिबन्धोंमें प्रविष्ट हो जाते है । जिससे अन्य अधिक स्थितिवाला और कोई स्थितिबन्ध न हो, ऐसे सर्वोत्कृष्ट स्थितिबन्धको उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहते हैं । इसको छोड़कर एक समय कमसे लगाकर जघन्य स्थितिबन्ध तकके जितने भी शेष स्थितिविकल्प हैं, उन सबको अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहते हैं । उत्कृष्टसे लगाकर जघन्य स्थितिबन्ध तकके जितने भी स्थितिविकल्प हैं, वे सर्व उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट, इन दोनों ही स्थितिबन्धोंके अन्तर्गत आ जाते हैं इस अर्थपदके अनुसार आयुके सिवाय शेष सात कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध सादि आदि चारों प्रकारका होता है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध

1. सं० पञ्चसं० ४, २३५ ।

१. शतक० ५४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मसाम्परायक्षपकका चरमसमयभावी स्थितिबन्ध है, सो वह सादि भी है और अध्रुव भी है। इसका कारण यह है कि क्षपकके सर्वस्तोक अजघन्य स्थितिबन्धसे जघन्य स्थितिबन्धको संक्रमण होनेपर जघन्य स्थितिबन्ध सादि हुआ। तत्पश्चात् बन्धका अभाव हो जानेपर वह अध्रुव कहलाया। सूक्ष्मसाम्परायक्षपकके अन्तिम समयमें होनेवाले इस जघन्य स्थितिबन्धके सिवाय जितना भी शेष स्थितिबन्ध है, वह अजघन्य स्थितिबन्ध है। सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकके अन्तिम समयके स्थितिबन्धसे सूक्ष्मसाम्पराय-उपशामकके अन्तिम समयका अजघन्य स्थितिबन्ध दुगुना है। उपशान्तकषायके उक्त छह कर्मोंका बन्ध नहीं होता है। पुनः वहाँसे गिरनेवालेके अजघन्य स्थितिबन्ध सादि है। जिसने कभी बन्धका अभाव नहीं किया, उसके अनादिबन्ध है। अभव्यके उक्त कर्मोंका जितना भी स्थितिबन्ध है, वह ध्रुवबन्ध है, क्योंकि वह कभी भी न तो अपने बन्धका अभाव करेगा और न कभी जघन्यस्थितिबन्धको ही करेगा। भव्यजीवोंके उक्त कर्मोंका जितना भी स्थितिबन्ध है, वह अध्रुव है, क्योंकि वे नियमसे उसका बन्ध-विच्छेद करेंगे। इसी प्रकार मोहनीय कर्मके सादि आदिकी प्ररूपणा जानना चाहिए। केवल इतना विशेष ज्ञातव्य है कि अनिवृत्तिक्षपकके अन्तिम समयमें मोहकर्मका सर्वजघन्य स्थितिबन्ध होता है। सातों कर्मोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्ध सादि और अध्रुव होता है। इनमेंसे जघन्य स्थितिबन्धके सादि और अध्रुव होनेका कारण पहले कहा जा चुका है। सातों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सर्वाधिक संक्लेशसे युक्त संज्ञी मिथ्यादृष्टिके पाया जाता है, सो वह सादि और अध्रुव है। जैसे किसी जीवने विवक्षित समयमें सातों कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध प्रारम्भ किया। वह एक समयसे लगाकर अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् नियमसे उसे छोड़कर अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध करेगा। इस प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध सादि हुआ। पुनः जघन्यसे एक अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् और उत्कर्षसे अनन्त कल्पकालके पश्चात् उसने उक्त कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया। इस प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध अध्रुव हो गया और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सादि हो गया। इस प्रकार परिभ्रमण करते हुए उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धोंके करनेपर दोनों ही सादि और अध्रुव सिद्ध हो जाते हैं। सातों कर्मोंका भव्यजीवोंके अनादि ध्रुवबन्ध संभव नहीं है। आयुकर्मके उत्कृष्टादि चारों स्थितिबन्ध अध्रुव होनेके कारण अर्थात् कादाचित्क बंधनेसे सादि और अध्रुव ही होते हैं।

इस प्रकार मूल प्रकृतियोंके सादि आदि भेदोंका निरूपण किया।

अब इससे आगे मूलशतककार उत्तरप्रकृतियोंके सादि आदिकी प्ररूपणा करते हैं—

[मूलगा० ५३] [1]अट्ठारसपयडीणं अजहण्णो बंधचउवियप्पो दु।
सादियअद्धुवबंधो सेसतिए होइ बोहव्वो[1] ॥४२१॥
णाणंतरायदसयं विदियावरणस्स होंति चत्तारि।
संजलणं च अट्ठारस चदुधा अजहण्णबंधो सो ॥४२२॥

।३८।

अतः परं उत्तरप्रकृतिषु जघन्यसाद्यादिभेदानाह—['अट्ठारस पयडीणं' इत्यादि ।] ज्ञानावरणीय-पञ्चकं ५ अन्तरायपञ्चकं ५ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं ४ संज्वलनक्रोधादिचतुष्कं ४ चेत्यष्टा-

1. सं० पञ्चसं० ४, २३६।

१. शतक० ५५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशानां प्रकृतीनां अजघन्यबन्धः चतुर्विकल्पः साद्यनादि-ध्रुवाध्रुवभेदेन चतुर्विधः ४। शेषत्रिके जघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टबन्धत्रये साद्यध्रुवबन्धौ द्वौ इति ज्ञातव्यो भवति ॥४२१–४२२॥

स्थितिबन्धे अष्टादशोत्तरप्रकृतीनां साद्यादियन्त्रम्—

१८	जघन्य	सादि	०	०	अध्रुव
१८	अजघन्य	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव
१८	अनुत्कृष्ट	सादि	०	०	अध्रुव
१८	उत्कृष्ट	आदि	०	०	अध्रुव

आगे कही जानेवाली अट्ठारह प्रकृतियोंका अजघन्य बन्ध सादि आदि चारों प्रकारका होता है। उनके शेषत्रिक अर्थात् उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्ध सादि और अध्रुव होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४२१॥

अब भाष्यगाथाकार उन अट्ठारह प्रकृतियोंका नाम निर्देश करते हैं—

ज्ञानावरण और अन्तरायकी (५+५=) दश, दर्शनावरणकी चक्षुदर्शनावरणादि चार, तथा संज्वलन चार; इन अट्ठारह प्रकृतियोंका जो अजघन्यबन्ध है वह चार प्रकारका होता है ॥४२२॥

अब मूलशतककार शेष उत्तरप्रकृतियोंके सादि आदिबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०५४] [1]उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णओ य ठिदिबंधो।
साइयअद्धुवबंधो पयडीणं होइ सेसाणं[1] ॥४२३॥

।१०२।

शेषाणां द्व्यधिकशतप्रकृतीनां १०२ उत्कृष्टस्थितिबन्धः साद्यध्रुवबन्धः, अनुत्कृष्टस्थितिबन्धः साद्यध्रुवबन्धः, जघन्यस्थितिबन्धः साद्यध्रुवबन्धः, अजघन्यस्थितिबन्धः साद्यध्रुवबन्धो भवति ॥४२३॥

स्थितिबन्धे शेष १०२ प्रकृतीनां साद्यादियन्त्रम्—

१०२	जघन्य	सादि	०	०	अध्रुव
१०२	अजघन्य	सादि	०	०	अध्रुव
१०२	अनुत्कृष्ट	सादि	०	०	अध्रुव
१०२	उत्कृष्ट	सादि	०	०	अध्रुव

ऊपर कहीं गई अट्ठारह प्रकृतियोंके सिवाय शेष जो १०२ बन्धप्रकृतियां हैं उनका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिबन्ध सादि और अध्रुव होता है ॥४२३॥

अब कर्मोंकी स्थितियोंमें शुभाशुभका निरूपण करनेके लिए उत्तर गाथासूत्र कहते हैं—

[मूलगा०५५] [2]सव्वाओ वि ठिदीओ सुहासुहाणं पि होंति असुहाओ।
माणुस-तिरिक्ख-देवाउगं च मोत्तूण सेसाणं[2] ॥४२४॥

अथ स्थितिबन्धे स्वामित्वमाह—['सव्वाओ वि ठिदीओ' इत्यादि।] मनुष्यतिर्यग्देवायूंषि त्रीणि मुक्त्वा शेषसर्वशुभाशुभप्रकृतीनां ११७ सर्वाः स्थितयः संसारहेतुत्वादशुभा एव भवन्ति ॥४२४॥

मनुष्यायु, तिर्यगायु और देवायु, इन तीनको छोड़कर शेष जितनी भी शुभ और अशुभ प्रकृतियाँ हैं, उन सबकी स्थितियाँ अशुभ ही होती हैं ॥४२४॥

1. सं० पञ्चसं० ४, २३७। 2. ४, २३८।
१. शतक० ५६। २. शतक० ५७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—आयुकर्मकी उक्त तीन प्रकृतियोंके सिवाय शेष ११७ प्रकृतियोंकी स्थितियोंको अशुभ कहनेका कारण संक्लेश है। अर्थात् परिणामोंमें संक्लेशकी वृद्धि होनेसे उक्त प्रकृतियोंकी स्थितियोंमें वृद्धि होती है। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि प्रकृतियोंके शुभ-अशुभ या पुण्य-पापरूप जो दो विभाग किये गये हैं, वे अनुभागबन्धकी अपेक्षा किये गये हैं। किन्तु यहाँ-पर स्थितिबन्धकी अपेक्षा स्थितियोंके शुभ-अशुभका निर्णय किया जा रहा है। देवायु आदि तीन प्रकृतियोंकी स्थितियोंके शुभ कहनेका कारण विशुद्धि है। अर्थात् परिणामोंमें संक्लेशकी हानि और विशुद्धिकी वृद्धि होनेसे इन तीनों प्रकृतियोंकी स्थितियोंमें वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त एक कारण और भी है, जिससे कि तीर्थंकर, उच्चगोत्र, यशस्कीर्त्ति आदि जैसी शुभ प्रकृतियोंको अशुभ कहा गया है और वह कारण यह है कि आयुत्रिकको छोड़कर शेष सभी प्रकृतियोंकी जैसे जैसे स्थितियाँ बढ़ती है, वैसे वैसे ही उनका अनुभाग घटता चला जाता है। किन्तु आयुत्रिकका क्रम इससे भिन्न है। उक्त तीनों आयुकर्मोंकी स्थितियाँ ज्यों-ज्यों बढ़ती हैं, त्यों-त्यों उनका अनुभाग भी उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है उक्त दोनों कारणोंसे आयुत्रिककी स्थितियोंको शुभ और शेष सर्वप्रकृतियोंकी स्थितियोंको अशुभ कहा गया है।

अब मूलशतककार इसी अर्थको स्वयं स्पष्ट करते हैं—

[मूलगा० ५६] [1]सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेसेण।
विवरीओ दु जहण्णो आउगतिगं वज्ज सेसाणं[1] ॥४२५॥

आउतियं णिरयाउं विणा।

तिर्यग्मनुष्यदेवायुष्कत्रिकं वर्जयित्वा शेषाणां सप्तदशोत्तरसर्वप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिबन्धः उत्कृष्टसंक्लेश-परिणामेन भवति। तु पुनः तासां प्रकृतीनां ११७ जघन्यस्थितिबन्धः उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन भवति। तत्त्रयस्य तु उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन जघन्यं तद्विपरीतेनोत्कृष्टमविशुद्धपरिणामेन च भवति ॥४२५॥

आयुत्रिकको छोड़कर शेष सर्व प्रकृतियोंकी स्थितियोंका उत्कृष्ट बन्ध उत्कृष्ट संक्लेशसे होता है और उनका जघन्य स्थितिबन्ध विपरीत अर्थात् संक्लेशके कम होनेसे होता है ॥४२५॥

यहाँपर आयुत्रिकसे अभिप्राय नरकायुके विना शेष तीन आयुकर्मोंसे है।

[मूलगा० ५७] [2]सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छादिट्ठी दु बंधगो भणिओ।
आहारय-तित्थयरं देवाउगं च विमोत्तूणं[2] ॥४२६॥

[मूलगा० ५८] [3]देवाउगं पमत्तो+ आहारयमप्पमत्तविरदो दु।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरयसम्मो समज्जेइ[3] ॥४२७॥

उत्कृष्टस्थितिबन्धकमाह—['सव्वुक्कस्स ठिदीणं' इत्यादि।] आहारकद्विकं २ तीर्थंकरत्वं १ देवायुश्चेति १ चत्वारि मुक्त्वा शेष ११६ प्रकृतिसर्वोत्कृष्ट-स्थितीनां मिथ्यादृष्टिरेव बन्धको भणितः। तच्चतुर्णां आहारकद्वयतीर्थंकरत्वदेवायुषां तु सर्वोत्कृष्टस्थितीनां सम्यग्दृष्टिरेव बन्धको भवति। तत्रापि विशेषमाह—'देवाउगं पमत्तो। इति पाठे देवायुरुत्कृष्टस्थितिकं प्रमत्त एवाप्रमत्तगुणस्थानाभिमुखो बध्नाति। अप्रमत्ते तद्व्युच्छित्तावपि तत्र सातिशये तीव्रविशुद्धत्वेन तद्देवायुर्बन्धाभिरतिशये चोत्कृष्टासम्भवात्। तु पुनः आहा-रकद्वयं उत्कृष्टस्थितिकं अप्रमत्तः प्रमत्तगुणस्थानाभिमुखः संक्लिष्ट एव बध्नाति, आयुस्त्रयवर्जितानां

---

1 सं० पञ्चसं० ४, २३९–२४३। 2. ४, २४४। 3. ४, २४५।

१. शतक० ५८। २. शतक० ५९। ३. शतक० ६०।

+ ब. प्रतौ 'देवाउमप्पमत्तो' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्टस्थितिरुत्कृष्टसंक्लेशेनेत्युक्तत्वात् । तीर्थंकरत्वं उत्कृष्टस्थितिकं नरकगतिगमनाभिमुखमनुष्यासंयत-सम्यग्दृष्टिरेव बध्नाति ॥४२६-४२७॥

आहारकद्विक, तीर्थङ्कर और देवायुको छोड़कर शेष सर्व प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितियोंका बन्धक मिथ्यादृष्टि जीव कहा गया है। देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध प्रमत्तसंयत, आहारकद्विकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अप्रमत्तसंयत और तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य करता है ॥४२६-४२७॥

विशेषार्थ—इन चारों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके विषयमें इतना विशेष जानना चाहिए—देवायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अप्रमत्तगुणस्थान चढ़नेके अभिमुख हुए अप्रमत्तसंयतके होता है। आहारकद्विकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध प्रमत्तगुणस्थानमें आनेके लिए अभिमुख हुए अप्रमत्तसंयतके होता है। तीर्थङ्करप्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नरकगतिमें जानेको अभिमुख हुए असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यके होता है।

[मूलगा० ५६] [1]पण्णरसण्हं ठिदि-उकस्सं बंधंति मणुय-तेरिच्छा।
छण्हं सुर-णेरइया ईसाणंता सुरा तिण्हं[1] ॥४२८॥

१५।६।३।

देवाउग वज्जेविय आउयतिय सुहुमणामऽपज्जत्तं।
साहारण वियलिंदिय वेउव्वियछक्क पण्णरसं ॥४२९॥

।१५।

तिरियगई ओरालं तस्स य तह अंगवंगणामं च।
तिरियगइआणुपुव्वी असंपत्तं चेव उज्जोवं ॥४३०॥
छण्हं सुर-णेरइया ठिदिमुक्कस्सं *करिंति पयडीणं।
एइंदिय आयावं थावरणामं सुरा तिण्णि ॥४३१॥

६।३।

शेषाणां ११६ उत्कृष्टस्थितिबन्धकमिथ्यादृष्टीन् गाथापञ्चकेनाऽऽह—['पण्णरसण्हं' इत्यादि।] देवाऽऽयुष्कं वर्जयित्वा नरक-तिर्यङ्मनुष्यायुष्यत्रयं ३ सूक्ष्मनाम १ अपर्याप्तं १ साधारणं १ विकलत्रयं ३ वैक्रियिकषट्कं ६ चेति पञ्चदशप्रकृतीनां १५ उत्कृष्टस्थितिबन्धं मनुष्यास्तिर्यञ्चश्च बध्नन्ति। तिर्यग्गतिः १ औदारिकशरीरं १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ तिर्यग्गत्यानुपूर्वी असम्प्राप्तसृपाटिकासंहननं १ उद्योतः १ चेति षण्णां प्रकृतीनां ६ उत्कृष्टस्थितिबन्धं सुर-नारकाः कुर्वन्ति बध्नन्तीत्यर्थः। एकेन्द्रियं १ आतपः १ स्थावर-नाम चेति तिसृणां प्रकृतीनां ३ उत्कृष्टस्थितिबन्धं भवनत्रिक-सौधर्मैशानजा देवा बध्नन्ति ॥४२८-४३१॥

(वक्ष्यमाण) पन्द्रह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको मनुष्य और तिर्यञ्च बाँधते हैं, छह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको देव-नारकी बाँधते हैं और तीन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको ईशान स्वर्ग तकके देव बाँधते हैं ॥४२८॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २४६-२४८।

१. शतक० ६१।

*ब किरंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

देवायुको छोड़कर शेष तीन आयु, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलेन्द्रियत्रिक और वैक्रियिकषट्क, इन पन्द्रह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध मनुष्य और संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च करते हैं। तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, तथा उसके अंगोपाङ्गनामकर्म, सृपाटिकासंहनन और उद्योत; इन छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध देव और नारकी करते हैं। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावरनामकर्म, इन तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ईशानकल्प तकके देव और देवी करते हैं ॥४२६-४३१॥

विशेषार्थ—उत्कृष्ट संक्लेशसे कुछ हीन, या नीचे उतरते संक्लेशको ईषन्मध्यम संक्लेश[1] करते हैं।

[मूलगा०६०] [1]सेसाणं चउगइया ठिदि-उक्कस्सं †करिंति पयडीणं।
उक्कस्ससंकिलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि[1] ॥४३२॥

शेषाणां द्वानवतिसंख्योपेतप्रकृतीनां ९२ उत्कृष्टस्थितिबन्धं उत्कृष्टसंक्लेशेन परिणामेनाथवा ईषन्मध्यमसंक्लिष्टेन परिणामेन चातुर्गतिका मिथ्यादृष्टयो जीवा कुर्वन्ति बध्नन्ति ९२ ॥४३२॥

ऊपर कही हुई प्रकृतियोंके सिवाय जितनी भी शेष बानवै प्रकृतियाँ हैं, उनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चारों गतिके जीव उत्कृष्ट संक्लेशसे, अथवा ईषन्मध्यम संक्लेशसे करते हैं ॥४३२॥

अब मूलशतककार शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करनेवाले स्वामियोंका निर्देश करते हैं—

अब मूलशतककार जघन्य स्थितिबन्धके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६१] [2]आहारय-तित्थयरं णियट्टि अणियट्टि पुरिस संजलणं।
बंधइ सुहुमसराओ सायजसुच्चावरण विग्घं[2] ॥४३३॥

३।५। दंसणावरणचउक्कं।१७।

अथ जघन्यस्थितिबन्धस्वामिजीवान् गाथाद्वयेनाऽऽह—['आहारयतित्थयरं' इत्यादि।] आहारकाहारकाङ्गोपाङ्गद्वयस्य तीर्थकरत्वस्य च जघन्यस्थितिं अपूर्वकरणो निर्बध्नाति ३। पुंवेद-चतुःसंज्वलनानां जघन्यस्थितिं अनिवृत्तिकरणगुणस्थानस्थो मुनिर्बध्नाति ५। सातवेदनीयं १ यशस्कीर्त्तिं १ उच्चैर्गोत्रं १ ज्ञानावरणपञ्चकं ५ दानाद्यन्तरायपञ्चकं ५ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं ४ चेति सप्तदशप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धं सूक्ष्मसाम्पराय एव बध्नाति १७ ॥४३३॥

आहारकद्विक और तीर्थङ्करनामकर्म; इन तीन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिको अपूर्वकरण-क्षपक; पुरुषवेद और संज्वलनचतुष्क इन पाँचकी जघन्य स्थितिको अनिवृत्तिकरण-क्षपक; तथा पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, सातावेदनीय, यशःकीर्त्ति और उच्चगोत्र; इन सत्तरह प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिको सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपक बाँधते हैं ॥४३३॥

३।५। (ज्ञानावरण ५ + दर्शनावरण ४ + अन्तराय ५ + सा० १ य० १ उ० १) १७

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २४६। 2. ४, २५०-२५१।

१. शतक० ६२। २. शतक० ६३।

†ब किरंति।

१. उक्कोससंकिलेसाओ ऊण-ऊणतराणि य ठिइबन्धज्झवसाणठाणाणि, तेहिंपि तमेव उक्कस्सियं ठिइं णिव्वत्तेंति, ते ईसिमज्झिमा वुच्चंति। शतकचूर्णि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[मूलगा०६२] [1]छण्हमसण्णी ट्ठिदिं कुणइ जहण्णमाउगाणमण्णयरो।
सेसाणं पज्जत्तो बायर एइंदियविसुद्धो[1] ॥४३४॥

।६।४।

देवगति-देवगत्यानुपूर्व्य-नरकगति-तदानुपूर्व्य-वैक्रियिकतदङ्गोपाङ्गानां षण्णां प्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धं असंज्ञी एव बध्नाति ६। आयुषां चतुर्णां जघन्यस्थितिं संज्ञी वा असंज्ञी वा बध्नाति ४। शेषाणां पञ्चाशीतिप्रकृतीनां ८५ एकेन्द्रियो बादरः पर्याप्तको जीवो विशुद्धिं प्राप्तः सन् जघन्यस्थितिबन्धं बध्नाति ॥४३४॥

वैक्रियिकषट्कका जघन्य स्थितिबन्ध असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च करता है। देवायु और नरकायुका जघन्य स्थितिबन्ध कोई एक संज्ञी या असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव करता है। मनुष्य और तिर्यगायुका जघन्य स्थितिबन्ध कर्मभूमियां मनुष्य या तिर्यञ्च करते हैं। शेष ८५ प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध सर्वविशुद्ध, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव करता है ॥४३४॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त कथन-गत विशेषताका स्पष्टीकरण करते हैं—

[2]णिरयदुयस्स असण्णी पंचिंदियपुण्णओ ठिदिजहण्णं।
जीवो करेइ जुत्तो तज्जोगो† संकिलेसेण ॥४३५॥
तिस्से हवेज्ज हेऊ सो चेव य कुणइ सुरचउक्कस्स।
णवरिं विसेसो जाणे सव्वविसुद्धीए जुत्तो दु ॥४३६॥
[3]पंचिंदिओ असण्णी सण्णी वा कुणइ मंदठिदिबंधं।
णिरयाउस्स य मिच्छो सव्वविसुद्धो दु पज्जत्तो ॥४३७॥
देवाउस्स य एवं तप्पाओग्गेण संकिलेसेण।
जुत्तो णवरि य जीवो जहण्णबंधट्ठिदिं कुणइ ॥४३८॥
[4]मणुय-तिरियाउयस्स हि तिरिक्ख-मणुसाण कम्मभूमीणं।
ठिदिबंधो दु जहण्णो तज्जोयासंकिलेसेण ॥४३९॥
[5]सेणाणं पयडीणं जहण्णबंधट्ठिदिं कुणइ।
एइंदियपज्जत्तो सव्वविसुद्धो दु बायरो जीवो ॥४४०॥

सेसा ८५।

एवं ठिदिबंधो समत्तो।

वैक्रियिकषट्कस्य बन्धको विशेषयति—['णिरयदुगस्स असण्णी' इत्यादि।] नारकद्विकस्य नरकगति-तदानुपूर्व्यद्वयस्य जघन्यस्थितिबन्धं पञ्चेन्द्रियः पर्याप्तकः असंज्ञी जीवः करोति बध्नाति २। स कथम्भूतः ? असंज्ञी तद्योग्यसंक्लेशपरिणामेन युक्तः सहितः तस्य नरकद्विकस्य जघन्यस्थितिबन्धकः। स एवाऽसंज्ञी पर्याप्तकः सुरचतुष्कस्य जघन्यस्थितिबन्धहेतुरसंज्ञी पञ्चेन्द्रियः पर्याप्तको भवति—देवगति-तदानुपूर्व्य-वैक्रियिक-तदङ्गोपाङ्गानां चतुर्णां जघन्यस्थितिबन्धकोऽसंज्ञी पञ्चेन्द्रियपर्याप्तको भवति। नवरि विशेषः—

---

1. सं० पञ्चसं० ४. २५२ । 2. ४, २५३-२५४ । 3. ४, २५५ । 4. ४, २५६ । 5. ४, २५७ ।

१. शतक० ६३ ।

†ब गं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वविशुद्धया युक्तः, इति विशेषं त्वं जानीहि हे भव्य ! मिथ्यादृष्टिः पञ्चेन्द्रियः पर्याप्तकोऽसंज्ञी जीवः, अथवा संज्ञी जीवो वा नारकायुषो मन्दस्थितिबन्धं जघन्यस्थितिबन्धं करोति बध्नाति । स कथम्भूतः ? असंज्ञी संज्ञी वा तत्प्रायोग्यं योऽसंज्ञी नरकायुषो जघन्यस्थितिबन्धकः सः संक्लिष्टपरिणत्या युक्तः । यः संज्ञी जीवः नरकायुषो जघन्यस्थितिबन्धकः स सर्वविशुद्धः सर्वविशुद्धया युक्तः । देवायुषश्च एवं नरकायुष्योक्तवत् मिथ्यादृष्टिः असंज्ञी पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकः संज्ञी पञ्चेन्द्रियपर्याप्तको वा देवायुषः जघन्यस्थितिबन्धं करोति । किञ्चिन्नवरि विशेषः—योऽसंज्ञी मिथ्यादृष्टिः पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकः देवायुषो जघन्यस्थितिबन्धकः स विशुद्धिपरिणत्या युक्तः, यस्तु संज्ञी मिथ्यादृष्टिः पर्याप्तकः देवायुषो जघन्यस्थितिबन्धकः स तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन युक्तः, इति विशेषं जानीहि । कर्मभूमिजानां तिर्यग्मनुष्याणां मनुष्यतिर्यगायुषोर्द्वयोर्जघन्यस्थितिबन्धो भवति । अन्तर्मुहूर्त्तकालः जघन्यस्थितिबन्धः । केन ? तद्योग्यसंक्लेशेन । शेषाणां पञ्चाशीतिप्रकृतीनां ८५ जघन्यस्थितिबन्धं बादरैकेन्द्रियपर्याप्तको जीवस्तद्योग्यविशुद्ध एव करोति बध्नाति ८५ ॥४३५–४४०॥

इति स्थितिबन्धः समाप्तः ।

नरकद्विक अर्थात् नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका जघन्यस्थितिबन्ध तद्-योग्य संक्लेशसे युक्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यञ्च जीव करता है। जो जीव नरकद्विकका जघन्य स्थितिबन्ध करता है, वही जीव ही सुरचतुष्क (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक-अङ्गोपाङ्ग) का भी जघन्य स्थितिबन्ध करता है। केवल इतनी बात विशेष जानना चाहिए कि सुरचतुष्कका बन्धक तद्-योग्य सर्वविशुद्धिसे युक्त होता है। नरकायुका जघन्य स्थितिबन्ध संक्लेशपरिणतिसे युक्त मिथ्यादृष्टि पर्याप्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अथवा सर्वविशुद्ध संज्ञी-पञ्चेन्द्रिय करता है। देवायुका जघन्य स्थितिबन्ध भी नरकायुके बन्धकके समान पर्याप्त, मिथ्यादृष्टि असंज्ञी अथवा संज्ञी जीव करता है। केवल इतनी विशेषता ज्ञातव्य है कि यदि वह बन्धक असंज्ञी हो तो सर्वविशुद्ध और यदि संज्ञी हो, तो तद्-योग्य संक्लेशसे युक्त होना चाहिए। मनुष्यायु और तिर्यगायुका जघन्य स्थितिबन्ध तद्-योग्य संक्लेशसे युक्त कर्मभूमिके तिर्यञ्च और मनुष्योंके होता है। शेष बची ८५ प्रकृतियोंको जघन्य स्थितिबन्धको बादर, पर्याप्तक, सर्वविशुद्ध एकेन्द्रिय जीव करता है ॥४३५–४४०॥

इस प्रकार स्थितिबन्ध समाप्त हुआ ।

अब अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[1]सादि अणादिय अट्ठ य पसत्थिदरपरूवणा तहा सण्णा ।
पच्चय-विवाय देसा सामित्तेणाह अणुभागो ॥४४१॥

८।१४

अथ कर्मणां रसविशेषो विपाकरूपोऽनुभागस्तस्य बन्धभेदान् गाथाद्विचत्वारिंशता प्राह—['सादि अणादिय अट्ठ य' इत्यादि ।] अनुभागबन्धश्चतुर्दशधा भवति । स कथम् ? साद्यादयोऽष्टौ इति । साद्यनुभागबन्धः १ अनाद्यनुभागबन्धः २ ध्रुवानुभागबन्धः ३ अध्रुवानुभागबन्धः ४ जघन्यानुभागबन्धः ५ अजघन्यानुभागबन्धः ६ उत्कृष्टानुभागबन्धः ७ अनुत्कृष्टानुभागबन्धः ८ प्रशस्तप्ररूपणानुभागबन्धः ९ अप्रशस्ताशुभप्रकृत्यानुभागबन्धः १० तथा देशघाति-सर्वघातिका इति संज्ञानुभागबन्धः ११ मिथ्यात्वादि-प्रधानप्रत्ययानुभागबन्धनिर्देशः १२ विपाकानुभागबन्धोपदेशः १३ स्वामित्वेन सहानुभागबन्धः १४ इति चतुर्दशानुभागबन्धान् आह ॥४४१॥

1. सं० पञ्चसं० ४, २६१ ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अनुभागबन्धके चौदह भेद हैं—वे इस प्रकार हैं—१ सादि-अनुभागबन्ध, २ अनादि-अनुभागबन्ध, ३ ध्रुव-अनुभागबन्ध, ४ अध्रुव-अनुभागबन्ध, ५ जघन्य-अनुभागबन्ध, ६ अजघन्य-अनुभागबन्ध, ७ उत्कृष्ट-अनुभागबन्ध, ८ अनुत्कृष्ट-अनुभागबन्ध, ९ प्रशस्तप्रकृति-अनुभागबन्ध, १० अप्रशस्तप्रकृति-अनुभागबन्ध, ११ देशघाति-सर्वघातिसंज्ञानुभागबन्ध, १२ प्रत्ययानुभागबन्ध, १३ विपाकानुभागबन्ध और १४ स्वामित्वेन सह अनुभागबन्ध। इन चौदह भेदोंकी अपेक्षा अनुभागबन्धका वर्णन किया जायगा ॥४४१॥

अब पहले मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि भेदोंमें संभव सादि आदि अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६३] [1]घाईणं अजहण्णो अणुक्कस्सो वेयणीय-णामाणं ।
अजहण्णमणुक्कस्सो गोए अणुभागबंधम्मि[1] ॥४४२॥

[मूलगा०६४] [2]साइ अणाइ धुव अधुवो बंधो दु मूलपयडीणं ।
सेसतिए दुवियप्पो आउचउक्के वि एमेव[2] ॥४४३॥

एत्थ च उक्कस्सादीणं साइयादयो भेदा ।

अथ मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टाद्यनुभागानां साद्यादिसम्भवासम्भवौ गाथाद्वयेनाऽऽह—['घाईणं अजहण्णो' इत्यादि ।] घातिनां ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीयान्तरायाणां मूलप्रकृतीनां चतुर्णां अजघन्यानुभागबन्धः स सादिबन्धः १ अनादिबन्धः २ ध्रुवबन्धः ३ अध्रुवबन्धः ४ इति अजघन्यानुभागबन्धः घातिनां चतुर्विधो भवति ४ । वेदनीय-नामकर्मणोर्द्वयोरनुत्कृष्टानुभागबन्धः साद्यनादि-ध्रुवाध्रुवभेदाच्चतुर्विधो भवति ४ । गोत्रकर्मणोऽनुभागबन्धे अजघन्यानुत्कृष्टानुभागबन्धौ साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदाच्चतुर्विधौ ४ । शेषत्रिकेषु द्विविकल्पः घातिनां शेषत्रिके इत्युक्ते जघन्योत्कृष्टा[नुत्कृष्टा]नुभागबन्धेषु साद्यध्रुवौ अनुभागबन्धौ द्वौ भवतः। वेदनीय-नामकर्मणोः शेषत्रिके इत्युक्ते उत्कृष्ट-जघन्याजघन्येषु साद्यध्रुवौ अनुभागबन्धौ भवतः ३ । गोत्रस्य जघन्योत्कृष्टानुभागबन्धौ द्वौ विकल्पौ साद्यध्रुवबन्धौ । आयुश्चतुष्के एवं साद्यध्रुवौ-आयुश्चतुष्के जघन्या-जघन्योत्कृष्टबन्धाश्चत्वारः साद्यध्रुवानुभागबन्धा भवन्ति ॥४४२—४४३॥

अनुभागबन्धे आयुश्चतुष्कम्—

४	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव
४	अज०	सादि	०	०	,,
४	उत्कृ०	सादि	०	०	,,
४	अनु०	सादि	०	०	,,

अनुभागबन्धे घातिचतुष्कम्—

४	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव
४	अज०	सादि	अनादि	ध्रुव	,,
४	उत्कृ०	सादि	०	०	,,
४	अनु०	सादि	०	०	,,

अनुभागबन्धे नाम-वेद्ये—

२	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव
२	अज०	सादि	०	०	,,
२	उत्कृ०	सादि	०	०	,,
२	अनु०	सादि	अनादि	ध्रुव	,,

अनुभागबन्धे गोत्रम्—

१	जघ०	सादि	०	ध्रुव	अध्रुव
१	अज०	सादि	अनादि	,,	,,
१	उत्कृ०	सादि	०	,,	,,
१	अनु०	सादि	अनादि	,,	,,

मूल प्रकृतियोंमें जो चार घातिया कर्म हैं, उनका अजघन्यानुभागबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इन चारों ही प्रकारोंका होता है। वेदनीय और नामकर्मका अनुत्कृष्टानुभागबन्ध भी चारों प्रकारका होता है। तथा गोत्रकर्मका अजघन्यानुभागबन्ध और अनुत्कृष्टानुभागबन्ध भी चारों प्रकारका होता है। शेषत्रिक अर्थात् घातिया कर्मोंके अजघन्यानुभागबन्धके

1. सं० पञ्चसं० ४, २६२ । 2. ४, २६३-२६४ ।

१. शतक० ६५ । २. शतक० ६६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष जो जघन्य, उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध हैं, वे दो प्रकारके होते हैं—सादि अनुभागबन्ध और अध्रुव-अनुभागबन्ध। वेदनीय और नामकर्मके शेषत्रिक अर्थात् उत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य-अनुभागबन्ध भी सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकारके होते हैं। गोत्रकर्मके जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी सादि और अध्रुवरूप दो-दो प्रकारके होते हैं। आयुकर्मके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य; ये चारों ही प्रकारके अनुभागबन्ध सादि और अध्रुव ये दो ही प्रकारके होते हैं ॥४४२-४४३॥

यहाँपर मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदिके सादि आदि बन्धोंका चित्र इस प्रकार है—

आयुकर्म

४	जघ०	सा०	०	०	अध्रु०
४	अज०	सा०	०	०	अध्रु०
४	उत्कृ०	सा०	०	०	अध्रु०
४	अनु०	सा०	०	०	अध्रु०

चार घातिया कर्म

४	जघ०	सा०	०	०	अध्रु०	२
४	अज०	सा०	अना०	ध्रु०	अध्रु०	४
५	उत्कृ०	सा०	०	०	अध्रु०	२
४	अनु०	सा०	०	०	अध्रु०	२

वेदनीय और नामकर्म

२	जघ०	सा०	०	०	अध्रु०	२
२	अज०	सा०	०	०	अध्रु०	२
२	उत्कृ०	सा०	०	०	अध्रु०	२
२	अनु०	सा०	अना०	ध्रुव	अध्रु०	४

गोत्रकर्म

१	जघ०	सा०	०	०	अध्रु०	२
१	अज०	सा०	अना०	ध्रु०	अध्रु०	४
१	उत्कृ०	सा०	०	०	अध्रु०	२
१	अनु०	सा०	अना०	ध्रु०	अध्रु०	४

अब मूलशतककार उत्तरप्रकृतियोंके उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि भेदोंमें सम्भव सादि आदि अनुभागबन्धकी प्ररूपणा करते हैं—

[मूलगा०६५] [1]अट्ठण्हमणुक्कस्सो तेयालाणमजहण्णओ बंधो।
णेओ दु चउवियप्पो सेसतिए होइ दुवियप्पो ॥४४४॥

८।४३

अथ ध्रुवासु प्रशस्ताप्रशस्तानामध्रुवाणां च जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टानां सम्भवत्साद्यादिभेदान् गाथापञ्चकेनाऽऽह—['अट्ठण्हमणुक्कस्सो' इत्यादि।] अष्टानां प्रकृतीनां ८ अनुत्कृष्टानुभागबन्धः साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदेन चतुर्विकल्पः ४। त्रिचत्वारिंशतः प्रकृतीनां ४३ अजघन्यानुभागबन्धः साद्यादिचतुर्भेदो ४ ज्ञेयः। शेषत्रिकेषु द्विविकल्पः साद्यध्रुवभेदाद् द्विप्रकारः ८।४३ ॥४४४॥

वक्ष्यमाण आठ उत्तरप्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध, तथा तेतालीस उत्तरप्रकृतियोंका अजघन्य अनुभागबन्ध सादि आदि चारों प्रकारका जानना चाहिए। शेषत्रिक अर्थात् आठ प्रकृतियोंके जघन्य, अजघन्य और उत्कृष्ट, तथा तेतालीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य अनुभागबन्ध सादि और अध्रुव ऐसे दो-दो प्रकारके होते हैं ॥४४४॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त आठ और तेतालीस प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

[2]तेजा कम्मसरीरं वण्णचउक्कं पसत्थमगुरुलहुं।
णिमिणं च जाण अट्ठसु चदुव्वियप्पो अणुक्कस्सो ॥४४५॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २६५-२६६। 2. ४, २६७-२६८।

1. शतक० ६७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणंतरायदसयं दंसणणव मिच्छ सोलस कसाया ।
उवघाय भय दुगुंछा वण्णचउक्कं च अप्पसत्थं च ॥४४६॥
तेयालं पयडीणं उक्कस्साईसु जाण दुवियप्पो ।
बंधो दु चदुवियप्पो अजहण्णो साइयाईया ॥४४७॥

तैजस-कार्मणशरीरद्वयं २ प्रशस्तवर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शचतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ निर्माणं १ चेति ध्रुवप्रशस्तप्रकृतीनां अष्टानां अनुत्कृष्टानुभागबन्धः साद्यनादि-[ध्रुवा-]ध्रुवभेदाच्चतुर्धा भवति । शेषजघन्या-जघन्योत्कृष्टानुभागबन्धास्त्रयः साद्यध्रुवभेदाभ्यां द्विधा, एवं त्वं जानीहि हे महानुभाव ! मतिज्ञानावरणादि-पञ्चकं ५ दानान्तरायादिपञ्चकं ५ चक्षुर्दर्शनावरणादिनवकं ९ मिथ्यात्वं १ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-[प्रत्याख्यान-] संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभाः षोडश कषायाः १६ उपघातः १ भयं १ जुगुप्सा १ वर्णचतुष्कमप्रशस्तं ४ चेति ध्रुवाप्रशस्तानां त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां ४३ उत्कृष्टानुत्कृष्ट-जघन्यानुभागबन्धास्त्रयः द्विविकल्पाः साद्यध्रुवभेदाभ्यां द्विविधा इति त्वं जानीहि भो सिद्धान्तवेदिन् ! तासां च प्रकृतीनां ४३ अजघन्यानुभागबन्धश्चतुर्विकल्पः साद्यनादि-ध्रुवाध्रुवभेदाच्चतुःप्रकारो भवति ॥४४५-४४७॥

तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माण; इन आठ प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध चारों प्रकारका जानना चाहिए। ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी नौ, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, उपघात, भय, जुगुप्सा और अप्रशस्त वर्ण-चतुष्क; इन तेतालीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य अनुभागबन्ध सादि और अध्रुव दो प्रकारका है। तथा इन्हींका अजघन्य अनुभागबन्ध सादि आदि चारों प्रकारका होता है ॥४४५-४४७॥

[मूलगा० ६६] [1]उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णगो दु अणुभागो ।
सादिय अद्धुवबंधो पयडीणं होइ सेसाणं[1] ॥४४८॥

।७३।

शेषाणां अध्रुवत्रिसप्ततेः प्रकृतीनां ७३ उत्कृष्टानुभागबन्धः साद्यध्रुवभेदाभ्यां द्विविधः । अनुत्कृष्टानु-भागबन्धः साद्यध्रुवाभ्यां अजघन्यानुभागबन्धः साद्यध्रुवभेदाभ्यां द्वेधा भवति ॥४४८॥

अनुभागबन्धे ८ प्रकृतीनाम्—

८	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव
८	अज०	सादि	०	०	अध्रुव
८	उत्कृ०	सादि	०	०	अध्रुव
८	अनु०	सादि	अनादि	ध्रुव	अध्रुव

अनुभागबन्धे ४३ प्रकृतीनाम्—

४३	जघ०	०	०	अध्रुव
४३	अज०	अना०	ध्रुव	अध्रुव
४३	उत्कृ०	०	०	अध्रुव
४३	अनु०	०	०	अध्रुव

अनुभागबन्धे ७३ प्रकृतीनाम्—

७३	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव
७३	अज०	सादि	०	०	अध्रुव
७३	उत्कृ०	सादि	०	०	अध्रुव
७३	अनु०	सादि	०	०	अध्रुव

शेष ७३ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध सादि और अध्रुव ऐसे दो प्रकारका होता है ॥४४८॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २६६ ।

१. शतक० ६८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि अनुभागोंके सादि आदि बन्धोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

८ प्रकृतियोंके सादि आदि बन्ध						४३ प्रकृतियोंके सादि आदि बन्ध						७३ प्रकृतियोंके सादि आदि बन्ध					
जघ०	सादि	०	०	अध्रु०	२	जघ०	सादि	०	ध्रु०	अध्रु०	२	जघ०	सादि	०	०	अध्रु०	२
अज०	सादि	०	०	अध्रु०	२	अज०	सादि	अना०	ध्रुव	,,	४	अज०	सादि	०	०	अध्रु०	२
उत्कृ०	सादि	०	०	अध्रु०	२	उत्कृ०	सादि	०	ध्रु०	,,	२	उत्कृ०	सादि	०	०	अध्रु०	२
अनु०	सादि	अना०	ध्रुव	अध्रु०	४	अनु०	सादि	०	ध्रु०	,,	२	अनु०	सादि	०	०	अध्रु०	२

इस प्रकार उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टादि चारके सादि-आदि चार प्रकारके
अनुभागबन्धका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मूल और उत्तरप्रकृतियोंके स्वमुख-परमुख विपाकरूप अनुभागका निरूपण करते हैं—

[1]पच्चंति मूलपयडी णूणं समुहेण सव्वजीवाणं।
समुहेण परमुहेण य मोहाउविवज्जिया सेसा ॥४४६॥

एत्थ सेसा उत्तरपयडीओ वुच्चंति ।

अथ स्वमुख-परमुखविपाकरूपोऽनुभागः मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च गाथाद्वयेन कथ्यते—['पच्चंति मूलपयडी' इत्यादि ।] नूनं निश्चयेन सर्वमूलप्रकृतयः ज्ञानावरणादयः ८ स्वमुखेन स्वोदयेन सर्वेषां जीवानां पाचयन्ति उदयं यान्ति सर्वेषां जीवानां सर्वमूलप्रकृतीनां ८ अनुभागो विपाकरूपः आत्मनि फलदानं स्वमुखेन भवति । कथम् ? मतिज्ञानावरणं मतिज्ञानरूपेणैव [उदितं] भवति । मोहनीयायुःप्रकृतिवर्जिता उत्तरप्रकृतयः स्वमुखेन स्वोदयेन, परमुखेन परोदयेन पाचयन्ति उदयं यान्ति अनुभवन्ति । उत्तरप्रकृतयस्तुल्यजातीया अन्योदयेन स्वोदयेन वा पच्यन्ते । तथा गोमट्टसारे सर्वासां मूलप्रकृतीनां स्वमुखेनानुभवो भवति [इत्युक्तम्] ॥४४६॥

मूल प्रकृतियाँ नियमसे सर्व जीवोंके स्वमुख द्वारा ही पचती हैं, अर्थात् स्वोदय द्वारा ही विपाकको प्राप्त होती हैं । किन्तु मोह और आयुकर्मको छोड़कर शेष उत्तरप्रकृतियाँ स्वमुखसे भी विपाकको प्राप्त होती हैं और परमुखसे भी विपाकको प्राप्त होती हैं अर्थात् फल देती हैं॥४४६॥

यहाँ गाथोक्त 'शेष' पदसे उत्तरप्रकृतियाँ कही गई हैं ।

किन्तु आयुकर्मके चारों तथा मोहकर्मके दोनों मूलभेद पर मुखसे विपाकको प्राप्त नहीं होते, इस बातका निरूपण करते हैं—

[2]पच्चइ णो मणुयाऊ णिरयाउमुहेण समयणिद्दिट्ठं ।
तह चरियमोहणीयं दंसणमोहेण संजुत्तं ॥४५०॥

उत्तरप्रकृतीनां तुल्यजातीनां परमुखेनापि अनुभवो भवति । परन्तु आयुःकर्म-दर्शनमोह-चारित्रमोहान् वर्जयित्वा । तदाह—['पच्चइ णो मणुयाऊ' इत्यादि ।] मनुष्यायुः नारकायुष्योदयमुखेन न पच्यते, नोदयं याति । तथाहि—यदा जीवो मनुष्यायुष्यं भुंक्ते, तदा नरकायुस्तिर्यगायुर्देवायुर्वा न भुंक्ते । यदा नरकायुर्जीवो भुङ्क्ते, तदा तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्देवायुर्वा न भुङ्क्ते तेनायुःप्रकृतयस्तुल्यजातीयाः अपि स्वमुखेनैव भुज्यन्ते, न तु परमुखेनेति समये निर्दिष्टं जिनसूत्रे जिनैरुक्तम् । चारित्रमोहनीयं दर्शनमोहनीयेन युक्तं न पच्यते नानुभवति । यथा दर्शनमोहं भुञ्जानः पुमान् चारित्रमोहं न भुङ्क्ते । चारित्रमोहं भुञ्जानः पुमान् दर्शनमोहं न भुङ्क्ते । एवं तिसृणां प्रकृतीनां तुल्यजातीयानामपि परमुखेनानुभवो न भवति ॥४५०॥

इति स्वमुख-परमुखविपाकानुभागबन्धः समाप्तः ।

---

1. ४, सं० पञ्चसं० २७० । 2. ४, २७१-२७२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुज्यमान मनुष्यायु-नरकायुमुखसे विपाकको प्राप्त नहीं होती है, ऐसा परमागममें कहा गया है। अर्थात् कोई भी विवक्षित आयु किसी भी अन्य आयुके रूपसे फल नहीं देती है। तथा चारित्रमोहनीयकर्म भी दर्शनमोहनीयसे संयुक्त होकर अर्थात् दर्शनमोहके रूपसे फल नहीं देता है। इसी प्रकार दर्शनमोहनीयकर्म भी चारित्रमोहनीयके मुखसे फल नहीं देता है ॥४५०॥

इस प्रकार स्वमुख-परमुख विपाकानुभागबन्ध समाप्त हुआ।

अब प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागबन्धका वर्णन करते हैं—

[मूलगा०६७] [1]सुहपयडीण विसोही तिव्वं असुहाण संकिलेसेण।
विवरीए दु जहण्णो अणुभाओ सव्वपयडीणं[1] ॥४५१॥

।११।

अथ प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृतीनामनुभागबन्धः कथ्यते—['सुहपयडीण विसोही' इत्यादि।] शुभप्रकृतीनां सातादीनां ४२ विशुद्धपरिणामेन तीव्रानुभागो भवति। असाताद्यप्रशस्तानां ८२ प्रकृतीनां संक्लेशेन परिणामेन तीव्रानुभागो भवति। विपरीतेन संक्लेशपरिणामेन प्रशस्तानां प्रकृतीनां जघन्यानुभागो भवति। विशुद्धपरिणामेनाप्रशस्तानां जघन्यानुभागो भवति ॥४५१॥

सातावेदनीय आदिक शुभप्रकृतियोंका अनुभागबन्ध विशुद्ध परिणामोंसे तीव्र अर्थात् उत्कृष्ट होता है। असातावेदनीय आदिक अशुभ प्रकृतियोंका अनुभाग बन्ध संक्लेश परिणामोंसे उत्कृष्ट होता है। तथा इससे विपरीत परिणामोंमें सर्व प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध होता है। अर्थात् शुभ प्रकृतियोंका संक्लेशसे और अशुभप्रकृतियोंका विशुद्धिसे जघन्य अनुभागबन्ध होता है ॥४५१॥

अब तीव्र अनुभागबन्धके स्वामीका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०६८] [2]बायालं पि पसत्था विसोहिगुण उक्कडस्स तिव्वाओ।
बासीय अप्पसत्था मिच्छुक्कड संकिलिट्ठस्स[2] ॥४५२॥

४२।८२।

सातादिप्रशस्ता द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः ४२ विशुद्धगुणेनोत्कटस्य जीवस्य तीव्रानुभागो [गा] भवति [न्ति] ४२। असातादिचतुर्वर्णोपेताप्रशस्ताः द्व्यशीतिः प्रकृतयः ८२ मिथ्यादृष्ट्युत्कटस्य संक्लिष्टस्य जीवस्य तीव्रानुभागो [गा] भवति [न्ति] ॥४५२॥

जो ब्यालीस प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशुद्धिगुणकी उत्कटतावाले जीवके होता है। तथा ब्यासी जो अप्रशस्त प्रकृतियाँ हैं, उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशवाले मिथ्यादृष्टि जीवके होता है ॥४५२॥

अब प्रशस्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

[3]सायं तिण्णेवाऊग मणुयदुयं देवदुव य जाणाहि।
पंचसरीरं पंचिंदियं च संठाणमाईयं※ ॥४५३॥
तिण्णि य अंगोवंगं पसत्थविहायगइ आइसंघयणं।
वण्णचउक्कं अगुरुय परघादुस्सासउज्जोवं ॥४५४॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २७३। 2. ४, २७४। 3. ४, २७५-२७७।

१. शतक० ६६। २. शतक० ७०।

※ब माईया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदाव तसचउक्कं थिर सुह सुभगं च सुस्सरं णिमिणं ।
आदेज्जं जसकित्ती तित्थयरं उच्च ★बादालं ॥४५५॥

ताः प्रशस्ताः काः, अप्रशस्ताः का इति चेद् गाथासप्तकेनाऽऽह—['सादं तिण्णेवाउग' इत्यादि ।] सातावेदनीयं तिर्यगायुर्मनुष्यायुर्देवायुस्त्रितयं ३ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वयं २ देवगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणकशरीराणि पञ्च ५ पञ्चेन्द्रियजातिः १ समचतुरस्रसंस्थानं १ औदारिक-वैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गानि ३ प्रशस्तविहायोगतिः १ वज्रवृषभनाराचसंहननं १ प्रशस्तवर्णः प्रशस्तरसः प्रशस्तगन्धः प्रशस्तस्पर्श इति प्रशस्तवर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुः १ परघातः १ उच्छ्वासः १ उद्योतः १ आतपः १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ प्रत्येकशरीरमिति त्रसचतुष्कं ४ स्थिरः १ शुभः १ सुभगं १ सुस्वरः १ निर्माणं १ आदेयं १ यशस्कीर्त्तिः १ तीर्थंकरत्वं १ उच्चैर्गोत्र १ मिति द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतयः प्रशस्ताः शुभाः पुण्यरूपा भवन्ति ४२ । 'सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्य' मिति[1] परमागमसूत्रवचनात् पुण्यमिति ॥४५३–४५५॥

सातावेदनीय, नरकायुके विना शेष तीन आयु, मनुष्यद्विक, देवद्विक, पाँच शरीर, पंचेन्द्रियजाति, आदिका समचतुरस्रसंस्थान, तीनों अंगोपांग, प्रशस्त विहायोगति, आदिका वज्रवृषभनाराचसंहनन, प्रशस्तवर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, आतप, त्रस-चतुष्क, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, निर्माण, आदेय, यशस्कीर्त्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र; ये ब्यालीस प्रशस्त, शुभ या पुण्यप्रकृतियाँ हैं ॥४५३–४५५॥

अब अप्रशस्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

[1]णाणंतरायदसयं दंसणणव मोहणीय छव्वीसं ।
णिरयगइ तिरियदोण्णि य तेसिं तह आणुपुव्वीयं ॥४५६॥
संठाणं पंचेव य संघयणं चेव होंति पंचेव ।
वण्णचउक्कं अपसत्थविहायगई य उवघायं ॥४५७॥
एइंदिय-णिरयाऊ तिण्णि य वियलिंदियं असायं च ।
अप्पज्जत्तं थावर सुहुमं साहारणं णाम ॥४५८॥
दुब्भग दुस्सरमजसं अणाइज्जं चेव अथिरमसुहं च ।
णीचागोदं च तहा वासीदी अप्पसत्थं तु ॥४५९॥

पञ्च ज्ञानावरणानि अन्तरायपञ्चकम् ५ नव दर्शनावरणानि ९ षड्विंशतिर्मोहनीयानि २६ नरकगति-तिर्यग्गतिद्वयं २ तद्द्वयस्यानुपूर्व्यद्वयं २ प्रथमसंस्थानवर्जितसंस्थानपञ्चकं ५ प्रथमसंहननवर्जितसंहननपञ्चकं ५ अप्रशस्तवर्णचतुष्कं ४ अप्रशस्तविहायोगतिः १ उपघातः १ एकेन्द्रियं १ नारकायुष्यं १ विकलत्रयं ३ असातावेदनीयं १ अपर्याप्तं १ स्थावरं १ सूक्ष्मं १ साधारणं नाम १ दुर्भगं १ दुःस्वरः १ अयशः १ आदेयं १ अस्थिरं १ अशुभं १ नीचैर्गोत्रं १ चेति द्व्यशीतिः अप्रशस्ताः अशुभाः पापरूपाः प्रकृतयः ८२ । 'अतोऽन्यत् पाप' मिति[2] वचनात्पापरूपाः ॥४५६–४५९॥

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी नौ, मोहनीयकी छब्बीस, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, आदिके विना शेष पाँचों संस्थान, आदिके विना

★द बायालं ।

1. सं० पञ्चसं० ४, २८१-२८४ ।

१. तत्त्वार्थसू० अ० ८ सू० २५ । २. तत्त्वार्थसू० ८, २६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष पाँचों संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त विहायोगति, उपघात, एकेन्द्रियजाति, नरकायु, *तीन विकलेन्द्रिय जातियाँ, असातावेदनीय, अपर्याप्त, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, दुर्भग, दुःस्वर,* अयशःकीर्त्ति, अनादेय, अस्थिर, अशुभ और नीचगोत्र; ये ब्यासी अप्रशस्त, अशुभ या पाप-प्रकृतियाँ हैं ॥ ४५६–४५९॥

अब उत्तरप्रकृतियोंमेंसे पहले प्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाले जीवोंका विशेष वर्णन करते हैं—

[मूलगा०६९][1] आदाओ उज्जोयं माणुस-तिरियाउगं पसत्थासु† ।
मिच्छस्स होंति तिव्वा सम्माइट्ठीसु सेसाओ ॥४६०॥

अथोत्कृष्टानुभागबन्धकान् जीवान् गाथासप्तकेनाऽऽह—['आदाओ उज्जोवं' इत्यादि ।] प्रशस्त-प्रकृतिषु ४२ आतपः १ उद्योतः १ मानव-तिर्यगायुषी द्वे २ चेति चतस्रः अमूः प्रशस्ताः प्रकृतयः विशुद्ध-मिथ्यादृष्टेस्तीव्रानुभागा भवन्ति । शेषाः साताद्यष्टात्रिंशत्प्रशस्ताः प्रकृतयः ३८ विशुद्धसम्यग्दृष्टेस्तीव्रानुभागा भवन्ति ॥४६०॥

प्रशस्तप्रकृतियोंमें जो आतप, उद्योत, मनुष्यायु और तिर्यगायु, ये चार प्रकृतियाँ हैं, उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि जीवके होता है। शेष अड़तीस जो पुण्यप्रकृतियाँ हैं, उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है ॥४६०॥

[2]मणुयदुयं ओरालियदुगं च तह चेव आइसंघयणं ।
णिरय-सुरा सद्दिट्ठी करिंति तिव्वं विसुद्धीए ॥४६१॥

सम्यग्दृष्ट्युक्ताष्टात्रिंशन्मध्ये मनुष्यद्विकं २ औदारिकद्विकं २ वज्रवृषभनाराचसंहननं चेति प्रकृतिपञ्चकं ५ अनन्तानुबन्धिविसंयोजकानिवृत्तिकरणचरमसमयविशुद्धसुर-नारकासंयतसम्यग्दृष्टयस्तीव्रानुभागं कुर्वन्ति सम्यग्दृष्टयो देव-नारकाः पञ्चप्रकृतीनां तीव्रानुभागबन्धं कुर्वन्तीत्यर्थः। कया? विशुद्धया विशुद्ध-परिणामेन ॥४६१॥

मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक और आदिका संहनन; इन पाँचों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध विशुद्धिसे युक्त सम्यग्दृष्टि देव और नारकी करते हैं ॥४६१॥

[मूलगा०७०] [3]देवाउमप्पमत्तो वायालाओ पसत्थाओ ।
तत्तो सेसा पयडी तिव्वं खवया करिंति बत्तीसं[1] ॥४६२॥

४।५।१।३२ सव्वे मिलिया ४२ ।

अप्रमत्तो मुनिर्देवायुष्यं तीव्रानुभागबन्धं करोति । ततो द्वाचत्वारिंशत्प्रशस्तेभ्यः शेषा द्वात्रिंशत्प्रकृ-तीनां तीव्रानुभागान् क्षपकश्रेण्यारूढा क्षपकाः कुर्वन्ति ३२ । ताः का द्वात्रिंशदिति चेदाह—अपूर्वकरण-क्षपकस्योपघातवर्जिते षष्ठभागव्युच्छित्तित्रिंशति सूक्ष्मसाम्परायस्योच्चैर्गोत्रयशस्कीर्त्ति-सातावेदनीयेषु मिलि-तेषु ताः अवशेषद्वात्रिंशत्प्रकृतयो भवन्ति ३२ । प्रशस्ताः ३।५।१।३२ । सर्वा मिलिताः ४२ ॥४६२॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २७८ । 2. ४, २७९ । 3. ४, २८० ।

१. शतक० ७१ । परं तत्रेदृक् पाठः—

देवाउमप्पमत्तो तिव्वं खवगा करिंति बत्तीसं ।
बंधंति तिरिया मणुया एक्कारस मिच्छभावेणं ॥

† ब पसत्थाओ ।

देवायुके उत्कृष्ट अनुभागबन्धको अप्रमत्तसंयत करता है। उक्त दशके विना ब्यालीस प्रकृतियोंमें शेष बचीं जो बत्तीस प्रकृतियाँ हैं उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध क्षपकश्रेणिवाले जीव करते हैं। ॥४६२॥

४ + ५ + १ = १० । ४२–१० = ३२ । ३२ + १० = ४२ ।

अब अप्रशस्तप्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करनेवाले जीवोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०७१] [1]तिरि-णर मिच्छेयारह सुरमिच्छो तिण्णि जयइ पयडीओ ।
उज्जोवं तमतमगा सुर-णेरइया हवे तिण्णि[1] ॥४६३॥

११।३।१।३

तिण्णेवाउयसुहुमं साहारण-वि-ति-चउरिंदियं अपज्जत्तं ।
णिरयदुयं बंधंति य तिरिय-मणुया मिच्छभावा य ॥४६४॥

तिण्णेवाउगं, देवाउगं विणा ।

[2]एइंदियआयावं थावरणामं च देवमिच्छम्मि ।
सुर-णिरयाणं मिच्छे तिरियगइदुगं असंपत्तं ॥४६५॥

तीव्रानुभागबन्धे स्वामित्वं गाथाचतुष्केनाह—['तिरि-णर-मिच्छेयारह' इत्यादि ।] तिर्यङ्मनुष्या मिथ्यादृष्टयो विशुद्धभावा एकादश प्रकृतीर्जयन्ति चिन्वन्ति तीव्रानुभागबन्धं कुर्वन्तीत्यर्थः। ताः का इति [चेत्] 'तिण्णेवाउय' इत्यादि । नारकतिर्यग्मनुष्यायुस्त्रयं ३ सूक्ष्मनाम १ साधारणं १ द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-जातयः ३ अपर्याप्तकं १ नरकगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ चेत्येकादशप्रकृतितीव्रानुभागबन्धान् तिर्यङ्मनुष्या मिथ्याभावा बध्नन्ति कुर्वन्ति । सुरमिथ्यादृष्टिस्तिस्रः प्रकृतीस्तीव्रानुभागा बध्नाति । ताः काः ? एकेन्द्रियत्वं १ आतपः १ स्थावरनाम १ एकेन्द्रियस्थावरद्वयं संक्लिष्टो देवो मिथ्यादृष्टिः ३ आतपप्रकृतिकं विशुद्धो मिथ्यादृष्टिर्देवः सुरमिथ्यादृष्टिस्त्रयोत्कृष्टानुभागबन्धं करोति ३। तमस्तमकाः सप्तमनरकोद्भवा नारका उपशमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिविशुद्धनारका उद्योतं तीव्रानुभागं बध्नन्ति । कथम् ? अतिविशुद्धानां तद्बन्धत्वात् १ । सुरनारकास्तिस्रः प्रकृतीस्तीव्रानुभागाः कुर्वन्ति ३ । ताः काः ? तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वयं २ असम्प्राप्तसृपाटिकासंहननमेवं प्रकृतित्रयोत्कृष्टानुभागबन्धो मिथ्यात्वे मिथ्यादृष्टिदेव-नारकाणां भवति ३ ॥४६३–४६५॥

आगे कही जानेवाली ग्यारह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच करते हैं। वक्ष्यमाण तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि देव करते हैं। तमस्तमक अर्थात् महातमःप्रभानामक सातवीं पृथ्वीके उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि नारकी उद्योतप्रकृतिका तीव्र अनुभागबन्ध करते हैं। वक्ष्यमाण तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि देव और नारकी करते हैं ॥४६३॥

११।३।१।३

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंका नाम निर्देश करते हैं—

देवायुके विना शेष तीन आयु, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय-जाति, और नरकद्विक, इन ग्यारह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागको मिथ्यात्वभावसे युक्त मनुष्य

1. सं० पञ्चसं० ४, २८५-२८६ । 2. ४, २८७ ।

१. शतक० ७३ । परं तत्र प्रथमचरणे पाठोऽयम्—'पंच सुरसम्मदिट्ठि' ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तिर्यँच बाँधते हैं। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरनामकर्म, इन तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि देवमें होता है। तिर्यग्गतिद्विक और सृपाटिकासंहनन, इन तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि देव और नारकियोंके होता है ॥४६४-४६५॥

[मूलगा०७२][1]सेसाणं चउगइया तिव्वाणुभायं करिंति पयडीणं।
मिच्छाइट्ठी णियमा तिव्वकसाउकडा जीवा[१] ॥४६६॥

।६४।

शेषाणां अष्टषष्टेः प्रकृतीनां चातुर्गतिका मिथ्यादृष्टयस्तीव्रकषायोत्कृष्टा जीवाः संक्लिष्टास्तीव्रानुभागं उत्कृष्टानुभागबन्धं कुर्वन्ति बध्नन्ति नियमात्। अप्रशस्तानां अष्टषष्टेः ६८ उत्कृष्टानुभागबन्धान् चातुर्गतिकसंक्लिष्टा कुर्वन्तीत्यर्थः ॥४६६॥

शेष बचीं प्रकृतियोंके तीव्र अनुभागबन्धको तीव्र कषायसे उत्कट चारों गतिवाले मिथ्यादृष्टि जीव नियमसे करते हैं ॥४६६॥

विशेषार्थ—प्रस्तुत गाथामें उपरि-निर्दिष्ट प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष बची प्रकृतियोंके तीव्र अनुभागबन्ध करनेवाले जीवोंका निर्देश किया गया है। यद्यपि गाथामें उन शेष प्रकृतियोंकी संख्याका कोई निर्देश नहीं किया गया है, तथापि अनेक प्रतियोंमें गाथाके पश्चात् शेष पदसे सूचित की गई संख्याके निर्देशार्थ '६४' का अंक दिया हुआ है। किन्तु संस्कृत टीकाकारने 'शेष' का अर्थ 'अष्टषष्टेः प्रकृतीनां' कहकर स्पष्ट शब्दोंमें ६८ प्रकृतियोंका निर्देश किया है और संस्कृत-पञ्चसंग्रहकारने भी 'प्रकृतीनामष्टषष्टिं' (सं० पञ्चसं० ४, २८८) कहकर ६८ प्रकृतियोंको ही कहा है। दिल्ली भण्डारकी मूलप्रतिमें भी इस गाथाके अन्तमें ६८ का अंक दिया हुआ है, जिससे संस्कृत पञ्चसंग्रहकार और संस्कृत टीकाकारके द्वारा किये गये अर्थकी पुष्टि होती है। अब विचारनेकी बात यह है कि ६४ संख्या ठीक है, अथवा ६८! यह प्रश्न संस्कृत पञ्चसंग्रहकारके मनमें भी उठा है और सम्भवतः इसीलिए उन्होंने इसका समाधान भी उक्त श्लोकके आगे दिये गये तीन श्लोकों-द्वारा किया है, जो कि इस प्रकार हैं—

तिर्यगायुर्मनुष्यायुरातपोद्योतलक्षणम्।
प्रशस्तासु पुरा दत्तं प्रकृतीनां चतुष्टयम् ॥२९०॥
तीव्रानुभागबन्धासु मध्ये यद्यपि तत्त्वतः।
सम्भवापेक्षया भूयो मिथ्यादृष्टेः प्रदीयते ॥२९१॥
अप्रशस्तं तथाप्येतत्केवलं व्यपनीयते।
षडशीतेरपनीते द्व्यशीतिर्जायते पुनः ॥२९२॥

इन श्लोकोंका भाव यह है कि तिर्यगायु, मनुष्यायु, आतप और उद्योत; ये चार प्रकृतियाँ ब्यालीस प्रशस्त प्रकृतियोंमें पहले गिनाई गई हैं और वे तत्त्वतः प्रशस्त ही हैं; किन्तु यहाँपर तीव्रानुभावबन्धवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंके बीचमें मिथ्यादृष्टिके बन्ध सम्भव होनेसे उन्हें फिर भी गिनाया गया है, सो उनका अप्रशस्तपना दिखलानेके लिए ऐसा नहीं किया गया है; किन्तु मिथ्यादृष्टि देव आतपप्रकृतिका, सप्तम नरकका मिथ्यादृष्टि नारकी उद्योतका और मनुष्य तिर्यँच मिथ्यादृष्टि मनुष्यायु और तिर्यगायुका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं; केवल यह दिखलानेके लिए ही यहाँपर उनका पुनः निर्देश किया गया है। इसलिए उन चारको छोड़कर ८२ प्रकृतियाँ ही अप्रशस्त जानना चाहिए।

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २८८-२८९।

१. शतक० ७४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस उपर्युक्त कथनका निष्कर्ष यह निकला कि प्रकृत गाथाके पूर्व 'तिरिणरमिच्छेयारह' इत्यादि ४६३ संख्यावाली मूलगाथामें जिन (११+३+१+३=) १८ प्रकृतियोंके अनुभाग-बन्धके स्वामित्वका निर्देश किया गया है उनमेंसे उक्त 'मनुष्यायु, तिर्यगायु, उद्योत और आतप' इन चार प्रशस्त प्रकृतियोंको पृथक् करके शेष बची १४ को ८२ अप्रशस्त प्रकृतियोंमेंसे घटानेपर ६८ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, उनकी ही सूचना गाथा-पठित 'सेसाणं' पदसे की गई है। अनेक प्रतियोंमें जो ६४-का अङ्क पाया जाता है, सो उसे देनेवालोंकी दृष्टि सम्भवतः गाथाङ्क ४६३ में पठित १८ प्रकृतियोंको ८२ प्रकृतियोंमेंसे घटानेकी रही है; क्योंकि ८२ में से १८ घटानेपर ६४ शेष रहते हैं किन्तु जब मनुष्यायु आदि उक्त ४ प्रकृतियोंकी गणना ८२ अप्रशस्त प्रकृतियोंमें है ही नहीं, तब उनका उनमेंसे घटाना कैसे संगत हो सकता है। अतः शेष पदसे सूचित ६८ प्रकृतियोंको ही प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिए।

अब मूलशतककार जघन्य अनुभागबन्धके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०७३] चोद्दस सराय-चरिमे पंचऽनियट्टी णियट्टि एयारं।
सोलस मंदणुभायं संजमगुणपत्थिओ जयइ[1] ॥४६७॥

।१४।५।११।१६

अथ जघन्यानुभागबन्धकानाह—['चोद्दस सुहुमसरागे' इत्यादि।] सरागचरमे सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमये स्व-स्व-बन्धव्युच्छित्तिस्थाने संयमगुणविशुद्धजीवे चतुर्दशप्रकृतीनां जघन्यानुभागो भवति १४। अनिवृत्तिकरणस्थाने पञ्चप्रकृतीनां जघन्यानुभागः ५। अपूर्वकरणे एकादशप्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धः ११। षोडशकषायान् जघन्यानुभागान् संयमगुणप्रस्थितो जीवो जयति चिनोति। षोडशमध्ये कियन्त्यः द्रव्यसंयमे गुणे भवन्ति, कियन्त्यो भावसंयमगुणे भवन्ति ॥४६७॥

वक्ष्यमाण चौदह प्रकृतियोंका मन्द (जघन्य) अनुभागबन्ध सराग अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें वर्तमान संयतके होता है। पाँच प्रकृतियोंका अनिवृत्तिकरणके चरम समयवर्ती क्षपक, ग्यारहका चरम समयवर्ती अपूर्वकरण क्षपक और सोलह प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध संयमगुणस्थानको अनन्तर समयमें प्राप्त होनेवाला जीव करता है ॥४६७॥

१४।५।११।१६

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंका नामनिर्देश करते हैं—

[1]णाणंतरायदसयं विदियावरणस्स होंति चत्तारि।
एए चोद्दस पयडी सरायचरिमम्हि णायव्वा ॥४६८॥
[2]पुरिसं चउसंजलणं पंचऽणियट्टिम्मि होंति भायम्हि।
सय-सय चरिमस्स समये जहण्णबंधो य णायव्वो ॥४६९॥
[3]हास रइ भय दुगुंछा णिद्दा पयला य होइ उवघायं।
वण्णचउक्क पसत्थं अउव्वकरणे जहण्णाणि ॥४७०॥
[4]पढमकसायचउक्कं दंसणतिय मिच्छदंसणं मिच्छे।
विदियकसायचउक्कं अविरयसम्मो मुणेयव्वो ॥४७१॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २९३। 2. ४, २९४। 3. ४, २९५। 4. ४, २९७।

१. शतक० ७५।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

[1]तइयकसायचउक्कं विरियाविरयम्हि जाण णियमेण ।
*मंदो अणुभागो सो संजमगुणपत्थिओ जयइ ॥४७२॥

ताः का इति चेदाह—['णाणंतरायदसयं' इत्यादि ।] पञ्च ज्ञानावरणानि ५ पञ्चान्तरायः ५ द्वितीयावरणस्य दर्शनावरणस्य चक्षुरचक्षुरवधि-केवलदर्शनावरणानि चत्वारि चेत्येताश्चतुर्दश प्रकृतयः। तासां १४ जघन्यानुभागबन्धः सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमये ज्ञातव्यः, सूक्ष्मसाम्परायमुनयश्चतुर्दशप्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्तीत्यर्थः १४ । अनिवृत्तिकरणस्य पञ्चसु भागेषु प्रथमभागे पुंवेदस्य, द्वितीयभागे संज्वलनक्रोधस्य, तृतीयभागे संज्वलनमानस्य, चतुर्थभागे संज्वलनमायायाः, पञ्चमे भागे संज्वलनबादरलोभस्य च जघन्यानुभागबन्धो ज्ञातव्यः, स्व-स्वबन्धव्युच्छित्तिस्थाने स्व-स्वगुणस्थानस्य चरमसमयान्ते जघन्यानुभागो भवति १।१।१।१।१।एवं पञ्चप्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धं अनिवृत्तिकरणो मुनिर्बध्नातीत्यर्थः। हास्यं १ रति १ भयं १ जुगुप्सा १ निद्रा १ प्रचला १ उपघातः १ प्रशस्तवर्णचतुष्कं ४ चेत्येकादशप्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धं अपूर्वकरणे मुनिः करोति बध्नाति ११ । अनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया-लोभप्रथमकषायचतुष्कं ४ दर्शनावरणत्रिकं स्त्यानगृद्धित्रिकं मिथ्यादर्शनं १ चेति प्रकृतीनामष्टानां जघन्यानुभागबन्धं मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति ८ । अप्रत्याख्यानकषाया ४ असंयते जघन्यानुभागाः, अविरतसम्यग्दृष्टिरप्रत्याख्यानानां कषायाणां जघन्यानुभागं करोतीत्यर्थः । विरताविरते देशसंयमे तृतीयकषायचतुष्कस्य प्रत्याख्यानक्रोध-मान-माया-लोभस्य जघन्यानुभागो भवति । स अनुभागबन्धः संयमगुणप्रस्थितः तमनुभागबन्धं जयति चिनोतीत्यर्थः । इमाः षोडशप्रकृतयस्तत्र तत्र संयमगुणाभिमुखे एव विशुद्धजीवे जघन्यानुभागा भवन्ति ॥४६८–४७२॥

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच और दर्शनावरणकी चार; इन चौदह प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानके अन्तिम समयमें जानना चाहिए। पुरुषवेद और संज्वलनचतुष्क इन पाँच प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध अनिवृत्तिकरणमें अपने-अपने बन्धविच्छेद होनेके समय जानना चाहिए। हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, निद्रा, प्रचला, उपघात और प्रशस्त वर्णचतुष्क; इन ग्यारह प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध अपूर्वकरणगुणस्थानमें अपने-अपने बन्धविच्छेदके समय होता है। प्रथम अर्थात् अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्क, दर्शनत्रिक (निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि) और मिथ्यादर्शन; इन आठ प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध संयम धारण करनेके अभिमुख चरमसमयवर्ती मिथ्यादृष्टिके होता है। द्वितीय अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणकषाय चतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध संयम धारण करनेके उन्मुख चरमसमयवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टिके जानना चाहिए। तृतीय अर्थात् प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कका जघन्य अनुभागबन्ध संयमगुण धारण करनेके लिए प्रस्थान करनेवाले चरमसमयवर्ती देशसंयतके नियमसे होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥४६८–४७२॥

[मूलगा०७४] [2]आहारमप्पमत्तो पमत्तसुद्धो दु अरइ-सोयाणं ।
सोलस मणुय-तिरिया-सुर-णिरया तमतमा तिण्णि[१] ॥४७३॥

२।२।१६।३

आहारकद्वयं प्रशस्तात् प्रमत्तगुणाभिमुखसंक्लिष्टः अप्रमत्तो मुनिः जघन्यानुभागं करोति बध्नाति २ । तु पुनः अरति-शोकयोः अप्रशस्तात् अप्रमत्तगुणाभिमुखविशुद्धप्रमत्तो मुनिर्जघन्यानुभागं बध्नाति २ ।

1. सं०पञ्चसं० ४, २९८ । 2. ४, २९६ ।

* प्रतिषु 'बंधो' इति पाठः ।

१. शतक० ७६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षोडशप्रकृतीनां जघन्यानुभागं १६ मनुष्य-तिर्यञ्चो विदधति-कुर्वन्ति १६ । तिसृणां प्रकृतीनां सुर-नारका जघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति ३ तमस्तमकाः सप्तमनरकोद्भवा नारका विशुद्धाः तिसृणां प्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति ३ ॥४७३॥

अनन्तर समयमें प्रमत्तभावको प्राप्त होनेके अभिमुख ऐसा अप्रमत्तसंयत आहारकद्विकके जघन्य अनुभागको बाँधता है। प्रमत्तशुद्ध अर्थात् अनन्तर समयमें अप्रमत्तभावको प्राप्त होनेवाला प्रमत्तसंयत अरति और शोकके जघन्य अनुभागका बन्ध करता है। वक्ष्यमाण सोलह प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध मनुष्य और तिर्यञ्च करते हैं। तीन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध देव और नारकी करते हैं, तथा तीन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध तमस्तमक अर्थात् सप्तम पृथिवीके नारकी करते हैं ॥४७३॥

२।२।१६।३।३

अब भाष्यगाथाकार सोलह आदि प्रकृतियोंका नामनिर्देश करते हैं—

[1]बि-ति-चउरिंदिय-सुहुमं साहारण णामकम्म अपज्जत्तं ।
तह वेउव्वियछक्कं आउचउक्कं दुगइ मिच्छे ॥४७४॥
ओरालियं उज्जोवं अंगोवंगं च देव-णेरइया ।
तिरियदुयं णिच्चं पि य तमतमा जाण तिण्णेदे ॥४७५॥

ताः षोडशादयः का इति चेदाह—['बि-ति-चउरिंदिय-सुहुमं' इत्यादि ।] द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जातयः ३ सूक्ष्मं १ साधारणं १ अपर्याप्तं १ तथा वैक्रियिकषट्कं ६ आयुश्चतुष्कं ४ चेति षोडशप्रकृतीनां जघन्यानुभागबन्धं तिर्यग्गतिजास्तिर्यञ्चो मनुष्यगतिजा मनुजा मनुष्याश्च मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति १६ । औदारिकं १ उद्योतः १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं चेति तिस्रः प्रकृतीर्जघन्यानुभागबन्धरूपा देव-नारका बध्नन्ति ३ । तत्रोद्योतः १ अतिविशुद्धदेवे बन्धाभावात्संक्लिष्टे एव लभ्यते । तिर्यग्द्विकं २ नीचगोत्रं च सप्तमपृथ्वीनरके तमस्तमका नारकाः विशुद्धा एतास्तिस्रः प्रकृतीर्जघन्यानुभागरूपा बध्नन्तीति जानीहि ३ ॥४७४–४७५॥

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति; सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्तनामकर्म; तथा वैक्रियिकषट्क और आयुचतुष्क; इन सोलह प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको मिथ्यात्वगुणस्थानवर्ती मनुष्य और तिर्यञ्च, इन दो गतियोंके जीव बाँधते हैं। औदारिकशरीर, औदारिक-अंगोपांग और उद्योत, इन तीन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको देव और नारकी बाँधते हैं। तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र, इन तीन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको तमस्तमक नारकी बाँधते हैं; ऐसा जानना चाहिए ॥४७४–४७५॥

[मूलगा०७५] [2]एइंदिय थावरयं मंदणुमाय करिंति तिगइया ।
परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा* णारया वज्जे[1] ॥४७६॥

नारकान् नरकगतिजान् वर्जयित्वा त्रिगतिजास्तिर्यग्मनुष्यदेवाः एकेन्द्रियत्वं १ स्थावरनाम १ च मन्दानुभागबन्धं जघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति बध्नन्ति लभ्यन्त इत्यर्थः । कथम्भूतास्ते ? त्रिगतिजाः परिवर्तमाना मध्यमपरिणामाः येषां ते मध्यमपरिणामप्रवर्तमाना इत्यर्थः ॥४७६॥

1. सं० पञ्चसं० ४, २९९-३०२ । 2. ४, ३०३ ।

१. शतक० ७७ ।

* परावृत्य परावृत्य पगतीओ बंधंति त्ति परिभत्तमाणं । जहा एगिंदियं थावरयं, पंचिंदियं तसमिदि । तेसु जे मज्झिमपरिणामा परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा इति । शतकचूर्णि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारकियोंको छोड़कर शेष तीन गतिके परिवर्तनमान मध्यम परिणामी जीव एकेन्द्रियजाति और स्थावरनामकर्मके जघन्य अनुभागका बन्ध करते हैं ॥४७६॥

विशेषार्थ—परिवर्तन करके विवक्षित प्रकृतिके बाँधनेवाले जीवको परिवर्तमान कहते हैं। जैसे पहले एकेन्द्रिय और स्थावर नामको बाँधकर पुनः पंचेन्द्रिय और त्रसनामको बाँधना। इस प्रकार परिवर्तन करते हुए भी मध्यम परिणामवाले जीवोंका प्रकृतमें ग्रहण किया गया है।

[मूलगा०७६] [1]आसोधम्मादावं तित्थयरं जयइ अविरयमणुस्सो।
चउगइउक्कडमिच्छो पण्णरस दुवे विसोधीए[1] ॥४७७॥

१।१।१५।२

आसौधर्माद् भवनत्रयजाः सौधर्मैशानजा देवाश्च संक्लिष्टाः सुराः आतपनाम-जघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति। अविरतमनुष्या नरकगमनाभिमुखाः तीर्थंकरनामजघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति जयन्ति बध्नन्तीत्यर्थः। चातुर्गतिकमिथ्योत्कटसंक्लिष्टा मिथ्यादृष्टयः पञ्चदशप्रकृतिजघन्यानुभागबन्धं कुर्वन्ति १५। वेदद्वयजघन्यानुभागबन्धं विशुद्ध्या मिथ्यादृष्टयश्चातुर्गतिजा बध्नन्ति ॥४७७॥

भवनत्रिकसे लेकर सौधर्म-ईशानकल्प तकके संक्लेश परिणामी देव आतपप्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करते हैं। नरक जानेके सन्मुख अविरत सम्यक्त्वी मनुष्य तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य अनुभाग बन्ध करता है। (वक्ष्यमाण) पन्द्रह प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका बन्ध चतुर्गतिके उत्कट संक्लेशवाले मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं। तथा (वक्ष्यमाण) दो प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको विशुद्ध परिणामवाले चतुर्गतिके जीव बाँधते हैं ॥४७७॥

१।१।१५।२

अब भाष्यगाथाकार उक्त पन्द्रह और दो प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

[2]तेजाकम्मसरीरं पंचिंदिय तसचउक्क णिमिणं च।
अगुरुयलहुगुस्सासं परघायं चेव वण्णचदुं ॥४७८॥
इत्थि-णउंसयवेयं अणुभायजहण्णयं च चउगइया।
मिच्छाइट्ठी बंधइ तिव्वविसोधीए संजुत्तो ॥४७९॥

ताः काः पञ्चदशादय इति चेदाऽऽह—['तेजाकम्मसरीरं' इत्यादि।] तैजस-कार्मणशरीरे द्वे २ पञ्चेन्द्रियं १ त्रस-बादर-प्रत्येक-पर्याप्तकमिति त्रसचतुष्कं ४ निर्माणं १ अगुरुलघुत्वं १ उच्छ्वासं १ परघातः १ प्रशस्तवर्णचतुष्कं ४ चेति पञ्चदशप्रकृतिजघन्यानुभागबन्धं चातुर्गतिजा संक्लिष्टाः कुर्वन्ति। स्त्रीवेद-नपुंसकवेदयोर्जघन्यानुभागबन्धं मिथ्यादृष्टिश्चातुर्गतिको जीवो बध्नाति। स कथम्भूतः? तीव्रविशुद्ध्या संयुक्तः ॥४७८-४७९॥

तैजसशरीर, कार्मणशरीर, पंचेन्द्रियजाति, त्रसचतुष्क, निर्माण, अगुरुलघु, उच्छ्वास, परघात तथा वर्णचतुष्क, इन पन्द्रह प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको चतुर्गतिके तीव्र संक्लेश परिणामीमिथ्यादृष्टि जीव बाँधते हैं। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागको तीव्रविशुद्धिसे संयुक्त चतुर्गतिके मिथ्यादृष्टि जीव बाँधते हैं ॥४७८-४७९॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ३०४। 2. ४, ३०५-३०७।

१. शतक० ७८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[मूलगा०७७] सम्माइट्ठी मिच्छो व अट्ठ परियत्तमज्झिलो जयइ।
परियत्तमाणमज्झिममिच्छाइट्ठी दु तेवीसं ॥४८०॥
८।२३।

सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिर्वा वक्ष्यमाणसूत्रोक्तैकत्रिंशत्प्रकृतिषु प्रथमोक्तानामष्टानां यद्यपरिवर्त्तमानमध्यम-परिणामस्तदा जघन्यानुभागं जयति करोति ८। शेषत्रयोविंशतेः प्रकृतीनां जघन्यानुभागं तु पुनः परिवर्त्त-मानमध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टिरेव करोति ॥४८०॥

परिवर्तमान मध्यमपरिणामी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव (वक्ष्यमाण) आठ प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका बन्ध करते हैं। तथा परिवर्तमान मध्यमपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव (वक्ष्यमाण) तेईस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका बन्ध करते हैं ॥४८०॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त आठ और तेईस प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

[1]सायासायं दोण्णि वि थिराथिरं सुहासुहं च जसकित्ती।
अजसकित्ती य तहा सम्माइट्ठी य मिच्छो वा ॥४८१॥
संठाणं संघयणं छच्छक्क तह दो विहाय मणुयदुगं।
आदेज्जाणादेज्ज सरदुगं च हि दुब्भग-सुभगं तहा उच्चं ॥४८२॥

सातासातवेदनीयद्वयं २ स्थिरास्थिर-शुभाशुभयुगलं २।२ अयशस्कीर्त्ति-यशस्कीर्तिद्वयं २ इत्यष्टौ सम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्टौ वा जघन्यानुभागानि सन्ति, अष्टानां प्रकृतीनां जघन्यानुभागं सम्यग्दृष्टिर्मिथ्या-दृष्टिर्वा बन्धं करोति ८ मध्यमं भावं प्राप्तः सन्। संस्थानं १ संहननं १ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती २ मनुष्यद्विकं ५ आदेयानादेयद्वयं २ देवद्विकं २ दुर्भगसुभगद्विकं २ उच्चैर्गोत्रं १ चेति त्रयोविंशतेर्जघन्यानु-भागबन्धं परिवर्त्तमानमध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टिरेव बध्नाति २३। अपरिवर्त्तमान-परिवर्त्तमानमध्यमपरिणाम-लक्षणं गोम्मटसारे [कर्मकाण्डे] अनुभागबन्धमध्ये कथितमस्ति ॥४८१-४८२॥

इति जघन्यानुभागबन्धः समाप्तः।

सातावेदनीय-असातावेदनीय, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्त्ति-अयशःकीर्त्ति, इन आठ प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि बाँधते हैं। छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगतिद्विक, मनुष्यगतिद्विक, आदेय-अनादेय, सुस्वर-दुःस्वर, सुभग-दुर्भग तथा उच्चगोत्र इन तेईस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागको मिथ्यादृष्टि बाँधते हैं ॥४८१-४८२॥

अब सर्वघाति-देशघातिसंज्ञक अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०७८] [2]केवलणाणावरणं दंसणछक्कं च मोहबारसयं।
ता सव्वघाइसण्णा मिस्सं मिच्छत्तमेयवीसदिमं[2] ॥४८३॥

एत्थ दंसणावरणस्स पढमा पंच, अंतिल्ला एगा एवं ६। पढमसव्वकसाया सव्वघाईओ।२१।

अथ सर्वघाति-देशघाति-अघातिकर्मसंज्ञाः कथ्यन्ते—['केवलणाणावरणं' इत्यादि।] केवलज्ञाना-वरणं १ निद्रानिद्रा १ प्रचलाप्रचला १ स्त्यानगृद्धिः १ केवलदर्शनावरणं १ चेति दर्शनावरणषट्कं ६ अनन्ता-नुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभकषाया इति मोहद्वादशकं १२ मिश्रं सम्यग्मिथ्यात्वं १ मिथ्यात्वं १ एकविंशतितमं संख्यया। एवं ताः सर्वा एकीकृता एकविंशतिः प्रकृतयः २१ सर्वघातिसंज्ञाः

1. सं० पञ्चसं० ४, ३०८-३०९ । 2. ४, ३१०-३११ ।

१. शतक० ७९ । २. शतक० ८० । परं तत्र चतुर्थचरणे पाठोऽयम्—'हवंति मिच्छत्त वीसइमं'।

कथ्यन्ते। कुतः? आत्मनः केवलज्ञान-दर्शन-क्षायिकसम्यक्त्व-चारित्र-दानादिक्षायिकान् गुणान्, मतिश्रुतावधि-मनःपर्ययज्ञानादिक्षयोपशमान् गुणान् च घ्नन्ति घातयन्ति ध्वंसयन्तीति सर्वघातिसंज्ञाः। बन्धे २० उदये २१। मिथ्यात्वस्य बन्धो भवति, न तु सम्यग्मिथ्यात्वस्य; सत्त्वोदयापेक्षया जात्यन्तरसर्वघातीति। उक्तं च—

मिथ्यात्वं विंशतिर्बन्धे सम्यग्मिथ्यात्वसंयुताः।
उदये ता पुनर्दक्षैरेकविंशतिरीरिताः[1] ॥३७॥ इति

अत्र बन्धापेक्षया २०। सत्त्वोदयापेक्षया २१ ॥४८३॥

केवलज्ञानावरण, दर्शनावरणषट्क, मोहनीयकी बारह, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व; इन इक्कीस प्रकृतियोंकी सर्वघातिसंज्ञा है ॥४८३॥

यहाँपर दर्शनावरणषट्कसे प्रारम्भकी पाँचों निद्राएँ और अन्तिम केवलदर्शनावरण; ये छह प्रकृतियाँ अभीष्ट हैं। इसी प्रकार मोहनीयकी बारहसे प्रारम्भकी सर्व कषाय ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार सर्वघाती प्रकृतियाँ २१ हो जाती हैं।

[मूलगा०७९] [1]णाणावरणचउक्कं दंसणतिगमंतराइगे पंच।
ता होंति देसघाई सम्मं संजलण णोकसाया य[1] ॥४८४॥

२६। सव्वे मेलिया ४७।

अथ देशघातिसंज्ञामाह—['णाणावरणचउक्कं' इत्यादि।] मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणचतुष्कं ४ चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणत्रयं ३ दान-लाभ-भोगोपभोगवीर्यान्तरायपञ्चकं ५ सम्यक्त्वप्रकृतिः १ संज्वलन-क्रोधमानमायालोभकषायचतुष्कं ४ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकानीति नव नोकषायाः ९ चेति ताः षड्विंशतिः प्रकृतयः देशघातिन्यो भवन्ति २६। एकदेशेनात्मनः मतिश्रुतावधिमनःपर्ययादिक्षायोपशमिकान् गुणान् घ्नन्ति घातयन्तीति एकदेशगुणघातकत्वात्। आत्मनः सर्वगुणघातकत्वात्सर्वघातीनि २१। देशघातीनि २६। सर्वमिलिताः ४७ ॥४८४॥

ज्ञानावरणकी चार, दर्शनावरणकी तीन, अन्तरायकी पाँच, सम्यक्त्वप्रकृति, संज्वलनचतुष्क और नव नोकषाय; ये छब्बीस देशघाती प्रकृतियाँ हैं ॥४८४॥

सर्वघाती २१ + देशघाती २६ दोनों मिलकर घातिप्रकृतियाँ ४७ होती हैं।

[मूलगा०८०] [2]अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा।
ता एव पुण्ण पावा सेसा पावा मुणेयव्वा[2] ॥४८५॥

१०१। सव्वे मिलिया १४८।

सर्वघाति-देशघातिप्रकृतिभ्यः ४७ अवशेषा एकोत्तरशतप्रमाणाः १०१ अघातिकाः प्रकृतयो भवन्ति, आत्मनो गुणघातने अशक्या इत्यघातिकाः। ताः का इति चेदाह—वेदनीयस्य द्वे २ आयुश्चतुष्कं ४ नाम्नः कर्मणः त्रिनवतिः ९३ गोत्रस्य द्वे २। तथा चोक्तम्—

वेद्यायुर्नामगोत्राणां प्रोक्ताः प्रकृतयोऽखिलाः।
अघातिन्यः पुनः प्राज्ञैरेकोत्तरशतप्रमाः[2] ॥३८॥ इति

1. सं० पञ्चसं० ४, ३१२-३१३। 2. ४, ३१४-३१५।

१. सं० पञ्च सं० ४, ३११। २. सं० पञ्चसं० ४, ३१४।

1. शतक० ८१। परं तत्रोत्तरार्धे 'पणुवीस देसघाई संजलणा णोकसाया य' ईदृक् पाठः।

२. शतक० ८२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताः कथम्भूताः? घातिकानां प्रतिभागाः घातिकर्मोक्तप्रतिभागाः भवन्ति, त्रिविधशक्तयो भवन्तीत्यर्थः। ता अघातिप्रकृतयः १०१। एवं पुण्यप्रकृतयः पापप्रकृतयश्च भवन्ति। शेषघातिप्रकृतयः सर्वाः ४७ पापरूपाः पापान्येवेति मन्तव्यम् ॥४८५॥

घातीनि ४७ अघातीनि १०१ मीलिताः १४८।

उपर्युक्त सर्वघाती और देशघातीके सिवाय अवशिष्ट जितनी भी चार कर्मोंकी १०१ प्रकृतियाँ हैं, उन्हें अघातिया जानना चाहिए। वे स्वयं तो आत्मगुणोंके घातनेमें असमर्थ हैं, किन्तु घातिया प्रकृतियोंकी प्रतिभागी हैं। अर्थात् उनके सहयोगसे आत्मगुण घातनेमें समर्थ होती हैं। इन १०१ अघातिया प्रकृतियोंमें ही पुण्य और पापरूप विभाग है। शेष ४७ प्रकृतियोंको तो पापरूप ही जानना चाहिए ॥४८५॥

घातिया ४७ अघातिया १०१=१४८।

अब स्थानरूप अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०८१][1]आवरण देसघायंतराय संजलण पुरिस सत्तरसं।
चउविहभावपरिणया तिभावसेसा सयं तु सत्तहियं[1] ॥४८६॥

१७।१०७।

अथ विपाकरूपोऽनुभागो गाथाद्वयेन कथ्यते—['आवरणदेशघायं' इत्यादि।] आवरणेषु देशघातीनि मति-श्रुतावधि-मनःपर्ययज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानि ७ पञ्चान्तरायाः ५ चतुःसंज्वलनाः ४ पुंवेदश्चेति सप्तदशप्रकृतयः १७ लतादार्वस्थिशैल—लतादार्वस्थि—लतादारु—लतेति चतुर्विधानुभागभावपरिणता भवन्ति। शेषाः सप्ताधिकशतप्रमिताः प्रकृतयः १०७ वर्णचतुष्कं द्विवारगणितम्। आसां प्रकृतीनां मिश्र-सम्यक्त्वप्रकृतीनां विना घात्यघातिनां सर्वासां त्रिविधा भावा दार्वस्थिपाषाणतुल्याः त्रिविधभावशक्तिपरिणता भवन्ति। तथाहि—शेषा मिश्रोन-केवलज्ञानावरणादिसर्वघातिविंशतिः २० नोकषायाष्टकं ८ अघातिपञ्चसप्तति ७५ श्च दार्वस्थि-शैलसदृशत्रिधानुभागपरिणता भवन्ति ॥४८६॥

१७					२०।८।७५	
शै०	१७			शैल	२०।८।७५	
अ०	अ०	१७		अस्थि	अस्थि	२०।८।७५
दा०	दा०	दा०	१७	दारु	दारु	दारु
ल०	ल०	ल०	ल०	तीव्र	मध्यम	मन्द

मतिज्ञानावरणादि चार, चक्षुदर्शनावरणादि तीन, अन्तरायकी पाँच, संज्वलनचतुष्क और पुरुषवेद; ये सत्तरह प्रकृतियाँ लता, दारु, अस्थि और शैलरूप चार प्रकारके भावोंसे परिणत हैं। अर्थात् इनका अनुभागबन्ध, *एकस्थानीय, द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय* होता है। शेष १०७ प्रकृतियाँ दारु, अस्थि और शैलरूप तीन प्रकारके भावोंसे परिणत होती हैं। उनका एकस्थानीय अनुभागबन्ध नहीं होता है ॥४८६॥

[2]सुहपयडीणं भावा गुड-खंड-सियामयाण खलु सरिसा।
इयरा दु णिंब-कंजीर-विस-हालाहलेण अहमाई ॥४८७॥

एत्थ इयरा असुहपयडीभावा।

---

1. सं० पञ्चसं० ४, २१६-२१८। 2. ४, ३१६।

1. शतक० ८३। परं तत्र चतुर्थचरणे पाठोऽयम्—'तिविह परिणया सेसा'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभप्रकृतीनां प्रशस्तद्वाचत्वारिंशत्प्रकृतीनां ४२ भावाः परिणामाः परिणतयः गुड-खण्ड-शर्कराऽमृत-सदृशा एकत एकतोऽधिकमृष्टाः खलु स्फुटं भवन्ति । तु पुनः इतरासां अन्यासां द्व्यशीत्यप्रशस्तप्रकृतीनां भावाः निम्ब-काञ्जीर-विष-हालाहलेन सदृशाः । कथम्भूताः ? अधमादयः । क्रमेण जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टाः सर्वप्रकृतयः १२२ । तासु घातिन्यः ७५ । एतासु प्रशस्ता ४२ अप्रशस्ताः ३३ अप्रशस्तवर्णचतुष्कं अस्तीति तस्मिन् मिलिते ३७ । तथा कर्मप्रकृत्यां अभयनन्दिसूरिणा कर्मप्रकृतीनां तीव्र-मन्द-मध्यमशक्ति-विशेषो घातिकर्मणां अनुभागो लता-दार्वस्थि-शैलसमानः चतुःस्थानः अघातिकर्मणां अशुभप्रकृतीनां अनुभागो निम्ब-काञ्जीर-विष-हालाहल-सदृशः चतुस्थानः शुभप्रकृतीनां अनुभागो गुड-खण्ड-[शर्करामृततुल्यः । चतुस्थानीयः ।] ॥४८७॥

शुभ या पुण्यप्रकृतियोंके भाव अर्थात् अनुभाग गुड़, खाँड़, शक्कर और अमृतके तुल्य उत्तरोत्तर मिष्ट होते हैं। इनके सिवाय अन्य जितनी भी पापप्रकृतियाँ हैं; उनका अनुभाग निम्ब, कांजीर, विष और हालाहलके समान निश्चयसे उत्तरोत्तर कटुक जानना चाहिए ॥४८७॥

गाथोक्त 'इतर' पदसे अशुभ या पाप प्रकृतियाँ विवक्षित हैं।

अब प्रत्यय रूप अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०८२] [1]सायं चउपच्चइयो मिच्छो सोलह दुपच्चया पणुतीसं।
सेसा तिपच्चया खलु तित्थयराहार वज्जा दु ॥४८८॥

एत्थ मिच्छे १६, सासणे २५, असंजयसम्मादिट्ठिम्मि १० ।

[अथानु] भागबन्धभेदं गाथाद्वयेनाह—['सायं चउपच्चइदो' इत्यादि ।] सातावेदनीयस्य चतुर्थः प्रत्ययः प्रधानः योगो नाम । 'योगेन बध्यते सात' मिति वचनात् । तथाहि—उपशान्तकषाये क्षीणमोहे सयोगकेवलिनि चैकं समयस्थितिकं सातावेदनीयमेव बध्नाति, अत्य [अनुभय] सत्यादिमनोवचनौदारिक-योगहेतुकं बन्धम्, कषायादीनां तेष्वभावात् । षोडशप्रकृतीनां बन्धे मिथ्यात्वप्रत्ययः प्रधानः । तथाहि—मिथ्यात्व-हुण्डक-षण्ढासम्प्राप्तैकेन्द्रियस्थावरातपसूक्ष्मत्रिक-विकलत्रयनरकद्विक-नरकायुष्याणां षोडशप्रकृतीनां बन्धे केवलं मिथ्यात्वोदयहेतुबन्धः। सासादने पञ्चविंशतेः प्रकृतीनां बन्धे द्वितीयप्रत्ययः प्रधानः। कथम्भूतः? अविरतयः कारणभूताः । शेषाणां प्रकृतीनां बन्धे तृतीयकषायाख्यः प्रत्ययः प्रधानभूतः । तीर्थङ्करत्वाहारक-द्वयं वर्जयित्वा शेषाणां कषायः कारणम् । अत्र मिथ्यात्वे १६ प्रकृतीनां मिथ्यात्वप्रत्ययः मुख्यः । सासादने २५ [प्रकृतीनां] अविरतिप्रत्ययः प्रधानभूतः । असंयते १० [प्रकृतीनां] कषायप्रत्ययः प्रधान-भूतः ॥४८८॥

सातावेदनीय चतुर्थ-प्रत्ययक है अर्थात् उसका अनुभागबन्ध चौथे योग-प्रत्ययसे होता है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली सोलह प्रकृतियाँ मिथ्यात्वप्रत्ययक हैं। दूसरे गुण-स्थानमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली पच्चीस और चौथेमें बन्धसे व्युच्छिन्न होनेवाली दश; ये पैंतीस प्रकृतियाँ द्विप्रत्ययक हैं, क्योंकि उनका पहले गुणस्थानमें मिथ्यात्वकी प्रधानतासे और दूसरेसे चौथे तक असंयमकी प्रधानतासे बन्ध होता है। तीर्थङ्कर और आहारकद्विकको छोड़कर शेष सर्वप्रकृतियाँ त्रिप्रत्ययक हैं, क्योंकि उनका बन्ध पहले गुणस्थानमें मिथ्यात्वकी प्रधानतासे, दूसरेसे चौथे तक असंयमकी प्रधानतासे और आगे कषायकी प्रधानतासे होता है ॥४८८॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ३२० ।

१. सं० पञ्चसं० ४, ३२० ।

१. शतक० ८३ । परं तत्र प्रथमचरणे 'चउपच्चय एग' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]सम्मत्तगुणणिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं।
बज्झंति सेसियाओ मिच्छत्ताईहिं हेऊहिं ॥४८९॥

इदि बंधस्स पहाणहेउणिद्देसो।

तीर्थंकरत्वं सम्यक्त्वगुणकारणं सम्यक्त्वगुणनिमित्तं 'सम्मेव तित्थबन्धो'[1] इति वचनात्। आहारकद्वयं संयमेन सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमेन बध्नाति शेषाः प्रकृतीः मिथ्यात्वादिभिर्हेतुभिर्मिश्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगैर्बध्नन्ति जीवा इति शेषा तथोत्तरप्रत्ययप्रधानत्वम्। प्रोक्तं च—

मिथ्यात्वस्योदये यान्ति षोडश प्रथमे गुणे।
संयोजनोदये बन्धं सासने पञ्चविंशतिः ॥३९॥
कषायाणां द्वितीयानामुदये निर्व्रते दश।
स्वीक्रियन्ते तृतीयानां चतस्रो देशसंयते ॥४०॥
सयोगे योगतः सातं शेषाः स्वे स्वे गुणे पुनः।
विमुच्याहारकद्वन्द्व-तीर्थकृत्त्वे कषायतः ॥४१॥
षष्टिः पञ्चाधिका बन्धं प्रकृतीनां प्रपद्यते।
आहारकद्वयस्योक्तः संयमस्तीर्थकारिणः ॥४२॥
सम्यक्त्वं कारणं पूर्वं बन्धने बन्धवेदिभिः[2] ॥४३॥ ४८९॥

तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वगुणके निमित्तसे होता है। आहारकद्विकका बन्ध संयमके निमित्तसे होता है। शेष ११७ प्रकृतियाँ मिथ्यात्व आदि हेतुओंसे बन्धको प्राप्त होती हैं ॥४८९॥

इस प्रकार बन्धके प्रधान हेतुओंका निरूपण किया।

अब विपाकरूप अनुभागबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०८३] [2]पण्णरसं छ तिय छ पंच दोणि पंच य हवंति अट्ठेव।
सरीरादिय फासंता य पयडीओ आणुपुव्वीए[1] ॥४९०॥

[मूलगा०८४] अगुरुयलहुगुवघाया परघाया आदवुज्जोव णिमिणणामं च।
पत्तेय-थिर-सुहेदरणामाणि य पुग्गलविवागा†[2] ॥४९१॥

।६२।

[मूलगा०८५] [3]आऊणि भवविवागी खेत्तविवागी उ आणुपुव्वी य।
अवसेसा पयडीओ जीवविवागी मुणेयव्वा[3] ॥४९२॥

४।४।

अथ पुद्गलविपाकि-भवविपाकि-क्षेत्रविपाकि-जीवविपाकिप्रकृतीर्गाथाचतुष्केनाऽऽह—['पण्णरसं छ तिय' इत्यादि।] शरीरादिस्पर्शान्ताः प्रकृतयः पञ्चाशत् ५० आनुपूर्व्या अनुक्रमेण ज्ञातव्याः। ताः काः? पञ्चशरीराणि, पञ्च बन्धनानि, पञ्च संघातानि; इति पञ्चदश १५। षट् संस्थानानि ६। औदारिकवैक्रियिका

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ३२१। 2. ४, ३२६-३२९। 3. ४, ३३०-३३३।

१. गो० कर्म० गा० ६२। २. सं० पञ्चसं० ४, ३२२-३२५।

१. शतक० ८४। परं तत्र 'पण्णरस' स्थाने 'पंच य' इति पाठः। २. शतक० ८५। ३. शतक० ८६।

†ब गो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हारकशरीराङ्गोपाङ्गत्रिकं ३ षट् संहननानि ६ पञ्च वर्णाः ५ द्वौ गन्धौ २ पञ्च रसाः ५ स्पर्शाष्टकं ८ चेति पञ्चाशत् ५० । अगुरुलघुः १ उपघातः १ परघातः १ आतपः १ उद्योतः १ निर्माणं १ प्रत्येक-साधारणद्वयं २ स्थिरास्थिरद्वयं २ शुभाशुभद्वयं २ चेति द्वाषष्टिः प्रकृतयः ६२ पुद्गलविपाकीनि भवन्ति, पुद्गले शरीरे एतासां विपाकत्वात् । पुद्गले विपाकमुदयं ददतीति शरीरेण सहोदयं यान्ति पुद्गलविपाकिन्यः । नारकादिसम्बन्धीनि चत्वार्याऽऽयूंषि भवविपाकीनि नारकादिजीवपर्यायवर्तनहेतुत्वात् ४ । चत्वार्याऽऽनुपूर्व्याणि क्षेत्रविपाकीनि ४ क्षेत्रे विग्रहगतौ उदयं यान्ति ४ । अवशिष्टाः अष्टसप्ततिः ७८ प्रकृतयः जीवविपाकिन्यः जीवेन सहोदयं यान्ति । एवं प्रकृतिकार्यविशेषाः ज्ञातव्याः ॥४६०-४६२॥

शरीर नामकर्मसे आदि लेकर स्पर्श नामकर्म तककी प्रकृतियाँ आनुपूर्वीसे शरीर ५, बन्धन ५ और संघात ५ इस प्रकार १५; संस्थान ६, अङ्गोपाङ्ग ३, संहनन ६, वर्ण ५, गन्ध २, रस ५ और स्पर्श ८; तथा अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, निर्माण, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभ; ये सर्व ६२ प्रकृतियाँ पुद्गलविपाकी हैं। आयुकर्मकी चारों प्रकृतियाँ भवविपाकी हैं। चारों आनुपूर्वीप्रकृतियाँ क्षेत्रविपाकी हैं। शेष ७८ प्रकृतियाँ जीवविपाकी जानना चाहिए ॥४६०-४६२॥

विशेषार्थ—जिन प्रकृतियोंका फलस्वरूप विपाक पुद्गलरूप शरीरमें होता है, उन्हें पुद्गलविपाकी कहते हैं। जिन प्रकृतियोंका विपाक जीवमें होता है, उन्हें जीवविपाकी कहते हैं। जिन प्रकृतियोंका विपाक नरक, तिर्यंच आदिके भवमें होता है, ऐसी नरकायु आदि चारों आयुकर्मकी प्रकृतियोंको भवविपाकी कहते हैं और जिन प्रकृतियोंका विपाक विग्रहगतिरूप क्षेत्रमें होता है, ऐसी चारों आनुपूर्वियोंको क्षेत्रविपाकी कहते हैं।

अब भाष्यगाथाकार उक्त जीवविपाकी प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

वेयणीय-गोय-घाई णभगइ गइ जाइ आण तित्थयरं।
तस-जस-बायर-पुण्णा सुस्सर-आदेज्ज-सुभगजुयलाइं ॥४६३॥

२।२। एत्थ घाइपयडीओ ४७।२।४।५।१।१।२।२।२।२।२।२।२। एवं सव्वाओ मेलियाओ जीवविवागा वुच्चंति ७८। सव्वाओ मेलियाओ १४८।

एवं अणुभागबंधो समत्तो।

ताः जीवविपाकिन्यः का इति चेदाह—['वेयणीय-गोय-घाई' इत्यादि ।] सातासातावेदनीयद्वयं २ गोत्रद्वयं २ घातिसप्तचत्वारिंशत् ४७ । ताः काः ? ज्ञानावरणपञ्चकं ५ दर्शनावरणनवकं ९ मोहनीयमष्टाविंशतिकं २८ अन्तरायपञ्चकं ५ चेति घातिप्रकृतयः सप्तचत्वारिंशत् ४७ । प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्वयं २ नारकादिगतयश्चतस्रः ४ एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियजातयः पञ्च ५ आनप्राणः श्वासोच्छ्वासः १ तीर्थङ्करत्वं १ त्रसस्थावरद्वयं २ यशोऽयशोद्वयं २ बादर-सूक्ष्मयुग्मं २ पर्याप्तापर्याप्तद्वयं २ सुस्वर-दुःस्वरौ २ आदेयानादेयद्वयं २ सुभग-दुर्भग-युगलम् २ । एवं सर्वा मीलिताः जीवविपाकिन्यः ७८ उच्यन्ते ॥४६३॥

एवमनुभागबन्धः समाप्तः । इति चतुर्दशभेदानुभागबन्धः समाप्तः ।

वेदनीयकी २, गोत्रकी २, घातिकर्मोंकी ४७, विहायोगति २, गति ४, जाति ५, श्वासोच्छ्वास १, तीर्थंकर १, तथा त्रस, यशःकीर्त्ति, बादर, पर्याप्त, सुस्वर, आदेय और सुभग, इन सात युगलोंकी १४ प्रकृतियाँ; इस प्रकार सर्व मिलाकर ७८ प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं ॥४६३॥

पुद्गलविपाकी ६२, जीवविपाकी ७८, भवविपाकी ४ और क्षेत्रविपाकी ४ सब मिलाकर १४८ प्रकृतियाँ हो जाती हैं।

इस प्रकार अनुभागबन्ध समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ प्रदेशबन्धं एकोनत्रिंशद्-गाथासूत्रैराह । किं तदाह—

स्वामित्वभागभागाभ्यामष्टोत्कृष्टादयः सह ।
दश प्रदेशबन्धस्य प्रकाराः कथिताः जिनैः* ॥४४॥

अब प्रदेशबन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०८६] [1]एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं ।
बंधइ जहुत्तहेउं सादियमहऽणादियं चावि[1] ॥४६४॥

एकक्षेत्रावगाढं यथा भवति तथा सर्वात्मप्रदेशेषु कर्मयोग्यपुद्गलद्रव्यं जीवो बध्नाति । यथोक्त-मिथ्यात्वादिकारणं लब्ध्वा । किम्भूतं द्रव्यम्? सादिकमथवाऽनादिकं च । तथाहि—सूक्ष्मनिगोदशरीरं घनाङ्गुलासंख्येयभागं जघन्यावगाहक्षेत्रं एकक्षेत्रम् । तेनावगाहितं कर्मस्वरूपपरिणमनयोग्यं अनादिकं सादिकं उभयं च पुद्गलद्रव्यं जीवः सर्वात्मप्रदेशैर्मिथ्यादर्शनादिहेतुभिर्बध्नातीत्यर्थः ॥४६४॥

एकक्षेत्रावगाही, कर्मरूप परिणमनके योग्य, सादि, अथवा अनादि, तथा 'च' शब्दसे सूचित उभयरूप जो पुद्गलद्रव्य है, उसे यह जीव यथोक्त मिथ्यात्व आदि हेतुओंसे अपने सर्व प्रदेशोंके द्वारा बाँधता है । इसे ही प्रदेशबन्ध कहते हैं ॥४६४॥

विशेषार्थ—प्रकृत प्रदेशबन्धका निरूपण उत्कृष्टप्रदेशबन्ध, अनुत्कृष्टप्रदेशबन्ध, जघन्य-प्रदेशबन्ध, अजघन्यप्रदेशबन्ध, सादिप्रदेशबन्ध, अनादिप्रदेशबन्ध, ध्रुवप्रदेशबन्ध, अध्रुवप्रदेशबन्ध भागाभाग और स्वामित्व, इन दश द्वारोंसे किया जायगा । एक शरीरकी अवगाहनासे रुके हुए क्षेत्रमें अवस्थित पुद्गलद्रव्यको एकक्षेत्रावगाही द्रव्य कहते हैं । प्रकृतमें सूक्ष्मनिगोदिया जीवकी घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहनाको एक क्षेत्र जानना चाहिए ।

अब जीवके द्वारा ग्रहण किये जानेवाले कर्मरूप पुद्गलद्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

[मूलगा०८७] [2]पंचरस-पंचवण्णेहिं परिणयदुगंध चदुहिं फासेहिं ।
दवियमणंतपदेसं जीवेहि† अणंतगुणहीणं[2] ॥४६५॥

तद्द्रव्यप्रमाणमाह—['पंचरस-पंचवण्णेहिं' इत्यादि ।] पञ्चरस-पञ्चवर्ण-द्विगन्धैश्चरमशीतोष्णस्निग्ध-रूक्षचतुःस्पर्शैश्च परिणतं यत्कर्मयोग्यपुद्गलद्रव्यम् । कथम्भूतम्? अनन्तप्रदेशं अनन्तकर्मपुद्गलप्रदेशम् । पुनः कथम्भूतम्? जीवराशिभ्योऽनन्तगुणहीनम् । तथा हि—सिद्धराश्यनन्तैकभागं अभव्यराश्यनन्तगुणं समयप्रबद्धद्रव्यं भवतीत्यर्थः । गोमट्टसारे तथा चोक्तं च—

सयलरसरूपगंधेहिं परिणदं चरिमचदुहिं फासेहिं ।
सिद्धादोऽभव्वादोऽणंतिमभागं गुणं दव्वं× ॥४५॥

बंधदि त्ति किरियाणुवट्टणं । एगसमयम्हि बज्झमाणपयडीणं दव्वमिदि णेयं । तथा च—

पुद्गलाः ये प्रगृह्यन्ते जीवेन परिणामतः ।
रसादित्वमिवाहाराः कर्मत्वं यान्ति तेऽखिलाः‡ ॥४६॥४६५॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ३३६ । 2. ४, ३३७ ।

* सं० पञ्चसं० ४, ३३४ । × गो० कर्म० गा० १९१ । ‡ सं० पञ्चसं० ४, ३३५ ।

१. शतक० ८७ । गो० क० १८५ । २. शतक० ८८ ।

† ब जीवेसि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गन्ध और शीतादि अन्तिम चार स्पर्शसे परिणत, सिद्धजीवोंसे अनन्तगुणित हीन, तथा अभव्यजीवोंसे अनन्तगुणित अनन्तप्रदेशी पुद्गलद्रव्यको यह जीव एक समयमें ग्रहण करता है ॥४९५॥

अब आनेवाले द्रव्यके विभागका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०८८] [1]आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहिओ ।
आवरण अंतराए सरिसो अहिगो य मोहे वि[1] ॥४९६॥

[मूलगा०८९] सव्वुवरि वेदणीए भागो अहिओ दु कारणं किं तु ।
सुह-दुक्खकारणत्ता ठिदिव्विसेसेण सेसाणं[2] ॥४९७॥

तत् [समयप्रबद्धद्रव्यं] मूलप्रकृतिषु कथं विभज्यते इति चेदाह—['आउगभागो थोवो' इत्यादि ।] आयुःकर्मणो भागः स्तोकः । नाम-गोत्रकर्मणोः परस्परं समानः सदृशभागः, यतः आयुःकर्मभागादधिकः । ज्ञान-दर्शनावरणान्तरायकर्मसु तथा समानः सदृशभागः ततोऽधिकः । ततो मोहनीये कर्मणि अधिकभागः । ततो मोहनीयभागाद् वेदनीये कर्मणि अधिको भागः । एवं भक्त्वा दत्ते सति मिथ्यादृष्टौ आयुश्चतुर्विधं ४ सासादने नारकं नेति त्रिविधं ३ असंयते तैरश्चमपि नेति द्विविधं २ देशसंयतादित्रये एकं देवायुरेव १ । उपर्यनिवृत्तिकरणान्तेषु मूलप्रकृतयः सप्त ७ । सूक्ष्मसाम्पराये षट् ६ । उपशान्तादित्रये एका साता उदयात्मिका । वेदनीयस्य सर्वतः आधिक्ये कारणमाह—किन्तु वेदनीयस्य सुख-दुःखनिमित्ताद्बहुकं निर्जरयतीति हेतोः सर्वप्रकृतिभागद्रव्याद् बहुकं द्रव्यं भवति । वेदनीयं विना सप्तानां शेषसर्वमूलप्रकृतीनां स्थितिविशेषप्रतिभागेन द्रव्यं भवति । तत्राधिकागमननिमित्तं प्रतिभागहारः आवल्यसंख्येयभागः । तत्संदृष्टिर्नवाङ्कः ९ । कार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदं स 9 । तदावल्यसंख्यातभक्ता बहुभागाः $\frac{\text{स 9 । ८}}{\text{९}}$ । आवल्यसंख्यातभक्तबहुभागो बहुकस्य वेदनीयस्य देयः $\frac{\text{स 9 । ८}}{\text{९ ९}}$ । मोहनीयस्य $\frac{\text{स 9 । ८}}{\text{९ ९ ९}}$ । ज्ञानावरणस्य $\frac{\text{स 9 । ८}}{\text{९ ९ ९ ९}}$ दर्शनावरणस्य $\frac{\text{स 9 । ८}}{\text{९ ९ ९ ९}}$ । अन्तरायस्य $\frac{\text{स 9 । ८}}{\text{९ ९ ९ ९}}$ । नामकर्मणः $\frac{\text{स 9 । ८}}{\text{९ ९ ९ ९ ९}}$ । गोत्रस्य $\frac{\text{स 9 । ८}}{\text{९ ९ ९ ९ ९}}$ । आयुषः $\frac{\text{स 9 । ८}}{\text{९ ९ ९ ९ ९ ९}}$ । एवं दत्ते 'आउगभागो थोवो' इति सिद्धम् । एवमुत्तरप्रकृतिषु गोमट्टसारे द्रष्टव्यः ॥४९६–४९७॥

एक समयमें जो पुद्गलद्रव्य आत्मप्रदेशोंके साथ सम्बद्ध होता है, उसका विभाग आठों कर्मोंमें होता है। उसमेंसे आयुकर्मका भाग सबसे थोड़ा है। नाम और गोत्रकर्मका भाग यद्यपि आपसमें समान है, तथापि आयुकर्मके भागसे अधिक है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय, इन तीन घातिया कर्मोंका भाग यद्यपि परस्पर समान है, तथापि नाम और गोत्रकर्मके भागसे अधिक है। ज्ञानावरणादि कर्मोंके भागसे मोहनीय कर्मका भाग अधिक है। मोहनीयकर्मके भागसे भी वेदनीयकर्मका भाग अधिक है। वेदनीयकर्म सुख-दुखका कारण है, इसलिए उसका भाग सर्वोपरि अर्थात् सबसे अधिक है। शेष कर्मोंके विभाग उनकी स्थितिविशेषके अनुसार जानना चाहिए ॥४९६–४९७॥

1. सं० पञ्चसं० ४, ३४२-३४४ ।

१. शतक० ८९ । गो० क० १९२ । २. शतक० ९० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मूलकर्मोंके उत्कृष्टादि प्रदेशबन्धके सादि आदि भेदोंको कहते हैं—

[मूलगा०९०] [1]छण्हं पि अणुक्कस्सो पदेसबंधो दु चउविहो होइ।
सेसतिए दुवियप्पो मोहाउयाणं च सव्वत्थ[1] ॥४९८॥

अथोत्कृष्टादीनां साद्यादिविशेषं मूलप्रकृतिष्वाह—['छण्हं पि अणुक्कस्सो' इत्यादि ।] षण्णां ज्ञाना-वरण-दर्शनावरण-वेदनीय-नाम-गोत्रान्तरायाणां कर्मणां अनुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः सादिबन्धानादिबन्ध–[ध्रुवबन्धा-ध्रुवबन्ध-] भेदाच्चतुर्विधो भवति ६ । षण्णां तु पुनः शेषोत्कृष्टाजघन्यजघन्येषु त्रिषु साद्यध्रुवभेदाद् द्विविध एव ६ । तु पुनः मोहाऽऽयुषोः सजा [तीये] षु चतुर्विधेषु साद्यध्रुवभेदाद् द्विविधः ॥४९८॥

प्रदेशबन्धे ज्ञा० १ द० २ वे० ३ ना० ४ गो० ५ अं० ६ प्र०

६	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव	२
६	अज०	सादि	०	०	,,	२
६	उत्कृ०	सादि	०	०	,,	२
६	अनु०	सादि	अनादि	ध्रुव	,,	४

मोहनीयप्रदेशबन्धे आयुषः प्रदेशबन्धे साद्यादि—

२	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव	२
२	अज०	सादि	०	०	,,	२
२	उत्कृ०	सादि	०	०	,,	२
२	अनु०	सादि	०	०	,,	२

मोहनीय और आयुके सिवाय शेष छह कर्मोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि आदि चारों प्रकारका होता है। इन ही छह कर्मोंके शेषत्रिक अर्थात् उत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवरूप दो प्रकारके होते हैं। मोहनीय और आयुकर्मके उत्कृष्टादि चारों प्रकारका प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवरूप दो प्रकारका होता है ॥४९८॥

इनकी संदृष्टि इस प्रकार है—

ज्ञानावरणादि ६ कर्म						मोहनीय और आयुकर्म					
कर्म						कर्म					
६	जघ०	सादि	०	०	अध्रु०	२	जघ०	सादि	०	०	अध्रु०
६	अज०	सादि	०	०	,,	२	अज०	सादि	०	०	,,
६	उत्कृ०	सादि	०	०	,,	२	उत्कृ०	सादि	०	०	,,
६	अनु०	सादि	अनादि	ध्रुव	,,	२	अनु०	सादि	०	०	,,

अब उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशबन्धके सादि आदि भेदोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०९१] [2]तीसण्हमणुक्कस्सो उत्तरपयडीसु चउविहो बंधो।
सेसतिए दुवियप्पो सेसासु वि होइ दुवियप्पो[2] ॥४९९॥

३०।९०

अथोत्कृष्टादीनां साद्यादिविशेषमुत्तरप्रकृतिषु गाथात्रयेणाऽऽह—['तीसण्हमणुक्कस्सो' इत्यादि ।] उत्तरप्रकृतिषु त्रिंशतः प्रकृतीनां ३० अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धः साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदाच्चतुर्विकल्पः । शेषोत्कृष्ट-

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ३४६ । 2. ४, ३४७–३४९ ।

१. शतक० ९१ । गो० क० २०७ । २. शतक० ९२ । परं तत्र चतुर्थचरणे 'सेसासु य चउवि-गप्पो वि' इति पाठः । गो० क० २०८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्याजघन्येषु त्रिषु साद्यध्रुवभेदाद् द्विविकल्पः। शेषनवतिप्रकृतीनामुत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्यप्रदेशबन्ध-चतुष्केऽपि साद्यध्रुवभेदाद् द्विविकल्प एव भवति ॥४६६॥

उत्तर प्रकृतियोंमेंसे (वक्ष्यमाण) तीस प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि आदि चारों प्रकारका होता है। उन्हींका शेषत्रिक अर्थात् उत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवरूप दो प्रकारका होता है। उक्त प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष ९० प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि चारों प्रकारके प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवरूप दो प्रकारके होते हैं ॥४६६॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त तीस प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

णाणंतरायदसयं दंसणछक्कं च मोहचउदसयं।
तीसण्हमणुक्कस्सो पदेसबंधो चउवियप्पो[1] ॥५००॥
अंतिमए छ दंसणछक्कं थीणतिगं वज्ज मोहचउदसयं।
अण वज्ज बारह कसाया भय दुगुंछा य ॥५०१॥

।१४।

ताः त्रिंशतमाह—['णाणंतरायदसयं' इत्यादि।] पञ्चज्ञानावरणान्तरायाः १० निद्रा-प्रचला-चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणषट्कं ६ अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलनक्रोधमानमायालोभ-भय-जुगुप्सा मोहनीयचतुर्दशकं १४ चेति त्रिंशतः प्रकृतीनां अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धः साद्यनादिध्रुवाध्रुवबन्धभेदाच्चतुर्विकल्पो भवति। अत्र दर्शनावरणे स्त्यानत्रिकं वर्जयित्वा अन्तिमदर्शनषट्कं ६ मोहे अनन्तानुबन्धिचतुष्कं वर्जयित्वा कषाया द्वादश, भय-जुगुप्साद्वयमिति मोहचतुर्दशकम् १४ ॥५००-५०१॥

प्रदेशबन्धे उत्तरप्रकृतयः ३० ज्ञा० ५ द० ६ अं० ५ मो० १४

प्र० ३०	जघ०	सादि	०	०	अध्रु०
प्र० ३०	अज०	सादि	०	०	,,
प्र० ३०	उत्कृ०	सादि	०	०	,,
प्र० ३०	अनु०	सादि	अनादि	ध्रुव	,,

प्रदेशबन्धे उत्तरप्रकृतयः ९० उत्कृष्टादि० साद्यादिबन्ध-रचना—

प्र० ९०	जघ०	सादि	०	०	अध्रुव०
प्र० ९०	अज०	सादि	०	०	,,
प्र० ९०	उत्कृ०	सादि	०	०	,,
प्र० ९०	अनु०	सादि	०	०	,,

इत्युत्कृष्टादिप्रदेशबन्ध-साद्यादिबन्धाष्टकं समाप्तम्।

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी छह और मोहकी चौदह; इन तीस प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध चारों प्रकारका होता है। यहाँपर जो दर्शनावरणकी छह प्रकृतियाँ कहीं हैं सो स्त्यानगृद्धित्रिकको छोड़कर अन्तिम छहका ग्रहण करना चाहिए। तथा मोहकी जो चौदह प्रकृतियाँ कहीं हैं, उनमें अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कको छोड़कर शेष बारह कषाय और भय तथा जुगुप्सा, ये चौदह प्रकृतियाँ ग्रहण की गई हैं ॥५००-५०१॥

---

१. गो० क० गा० २०६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त प्रकृतियोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

३० प्रकृतियाँ (ज्ञा० ५, द० ६, मो० १४, अं० ५)						शेष उत्तर प्रकृतियाँ ६०					
३०	जघ०	सादि	०	०	अध्रु०	६०	जघ०	सादि	०	०	अध्रु०
३०	अज०	सादि	०	०	,,	६०	अज०	सादि	०	०	,,
३०	उत्कृ०	सादि	०	०	,,	६०	उत्कृ०	सादि	०	०	,,
३०	अनु०	सादि	अना०	ध्रुव	,,	६०	अनु०	सादि	०	०	,,

अब गुणस्थानोंकी अपेक्षा मूलप्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०९२] [1]आउक्कस्स पदेसस्स छच्च मोहस्स णव दु ठाणाणि।
सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कस्सजोगेण[1] ॥५०२॥

मिस्सवज्जेसु पढमगुणेसु।

अथ मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य गुणस्थाने स्वामित्वमाह—['आउक्कस्स पदेसस्स' इत्यादि।] आयुषः उत्कृष्टप्रदेशं मिश्रगुणं विना षड्गुणस्थानान्यतीत्याप्रमत्तो भूत्वा बध्नाति। तु पुनः नवमं गुणस्थानं प्राप्यानिवृत्तिकरणो मोहनीयस्योत्कृष्टप्रदेशबन्धं बध्नाति। शेषज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय-नाम-गोत्रान्तरायाणां षण्णां सूक्ष्मसाम्पराय एवोत्कृष्टप्रदेशबन्धं बध्नाति। अत्रापि गुणस्थानत्रये उत्कृष्टयोगः प्रकृतिबन्धाल्पतर इति विशेषणद्वयं ज्ञातव्यम् ॥५०२॥

मिश्रवर्जितेषु प्रथमगुणस्थानेषु षट्सु। मिश्रगुणस्थाने आयुषः उत्कृष्टप्रदेशबन्धो नास्ति।

आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध मिश्रगुणस्थानको छोड़कर प्रारम्भके छह गुणस्थानोंमें होता है। तथा मोहकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध प्रारम्भके नौ गुणस्थानोंमें होता है। शेष छह कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको उत्कृष्ट योगसे संयुक्त सूक्ष्मसाम्परायसंयत बाँधता है ॥५०२॥

यहाँपर मिश्रको छोड़कर प्रारम्भके छह गुणस्थानोंका ग्रहण करना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रकृत गाथामें आठों कर्मोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामित्वका निरूपण किया गया है। यह गाथा गो० कर्मकाण्डमें भी २११वीं संख्याके रूपमें पाई जाती है। किन्तु वहाँपर जो उसके पूर्वार्धकी संस्कृतटीका पाई जाती है, वह विचारणीय है। टीकाका वह अंश इस प्रकार है—

"आयुष उत्कृष्टप्रदेशं षड्गुणस्थानान्यतीत्य अप्रमत्तो भूत्वा बध्नाति। मोहस्य तु पुनः नवमं गुणस्थानं प्राप्य अनिवृत्तिकरणो बध्नाति।"

वहाँपर इसका हिन्दी अर्थ इस प्रकार किया गया है—"आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध छः गुणस्थानोंको उल्लंघ सातवें गुणस्थानमें रहनेवाला करता है। मोहनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नवम गुणस्थानवर्ती करता है।"

पञ्चसंग्रहके टीकाकारने इस गाथाकी टीकामें केवल 'मिश्रगुणं विना' इतने अंशको छोड़कर शेष अर्थमें गो० कर्मकाण्डकी टीकाका ही अनुसरण किया है। यद्यपि 'मिश्रगुणं विना' इतना अंश उन्होंने उक्त गाथाके अन्तमें दी गई वृत्ति 'मिस्सवज्जेसु पढमगुणेसु' के सामने रहनेसे दिया

1. सं० पञ्चसं० ४, ३५१-३५३।

१. शतक० ९३। परं तत्र पूर्वार्धे पाठोऽयम्—'आउक्कस्स पएसस्स पंच मोहस्स सत्त ठाणाणि'। गो० क० २११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, तथापि उक्त दोनों टीकाओंमें किया गया अर्थ न तो मूलगाथाके शब्दोंसे ही निकलता है और न महाबन्धके प्रदेशबन्धगत स्वामित्व अनुयोगद्वारसे ही उसका समर्थन होता है। महाबन्धमें आयु और मोहकर्मके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामित्वका निरूपण इस प्रकार किया गया है—

"मोहस्स उक्कस्सपदेसबन्धो कस्स ? अण्णदरस्स चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा सम्मादिट्ठिस्स वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदस्स सत्तविहबन्धगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सए पदेसबंधे वट्टमाणस्य । आउगस्स उक्कस्सपदेसबन्धो कस्स ? अण्णदरस्स चदुगदियस्स पंचिंदियस्स सण्णिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा सम्मादिट्ठिस्स वा सव्वाहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयस्स अट्ठविहबन्धगस्स उक्कस्सजोगिस्स ।"

(महाबन्ध पु० ६ पृ० १४)

इस उद्धरणमें आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध न केवल अप्रमत्तके बतलाया गया है और न मोहनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध केवल अनिवृत्तिकरणके बतलाया गया है। किन्तु स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध आठो कर्मोंके बाँधनेवाले पञ्चेन्द्रिय संज्ञी, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवके होता है, तथा आयुकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका बन्ध करनेवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिके मोहकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है। महाबन्धके इस कथनसे पंचसंग्रहकी मूलगाथा-द्वारा प्रतिपादित अर्थका ही समर्थन होता है। आ० अमितगतिके संस्कृत पञ्चसंग्रहसे भी ऊपर किये गये अर्थकी पुष्टि होती है। यथा—

उत्कृष्टो जायते बन्धः षट्सु मिश्रं विनाऽऽयुषः ।
प्रदेशाख्यो गुणस्थाननवके मोहकर्मणः ॥ (सं० पञ्चसं० ४, २५१)

संस्कृत टीकाकार सुमतिकीर्तिके सामने अमितगतिके सं० पञ्चसंग्रहके होते हुए और अनेक स्थानोंपर उसके बीसों उद्धरण देते हुए भी इस स्थलपर उन्होंने उसका अनुसरण न करके गो० कर्मकाण्डकी टीकाका अनुसरण क्यों किया, यह बात विचारणीय ही है।

उक्त गाथा श्वे० शतकप्रकरणमें भी पाई जाती है और वहाँ उसका गाथाङ्क ९३ है। परन्तु वहाँपर 'छक्क' के स्थानपर 'पंच' और 'णव' के स्थानपर 'सत्त' पाठ पाया जाता है। जिसका अर्थ करते हुए चूणिकारने उक्त दोनों पाठ-भेदोंकी सूचना की है। यथा—

'आउक्कस्स पएसस्स पंच त्ति' मिच्छद्दिट्ठि असंजतादि जाव अप्पमत्तसंजओ एतेसु पंचसु वि आउगस्स उक्कोसो पदेसबंधो लब्भइ। कहं ? सव्वत्थ उक्कोसो जोगो लब्भइ त्ति काउं। अन्ने पढंति—'आउक्कोसस्स पदेसस्स छत्ति'। × × × 'मोहस्स सत्त ठाणाणि' त्ति सासण-सम्मामिच्छद्दिट्ठिवज्जा मोहणिज्जबंधका सत्तविहबंधकाले सव्वेसिं उक्कोसपदेसबंधं बंधंति। कहं ? भन्नइ—सव्वेसु वि उक्कोसो जोगो लब्भति त्ति। अन्ने पढंति—'मोहस्स णव उ ठाणाणि' त्ति सासणसम्मामिच्छेहिं सह। (शतकप्रकरण, गा० ९३ चू० ४६)

उक्त पाठ-भेदोंके रहते हुए भी चूर्णिमें किये गये अर्थसे न पंचसंग्रहकी संस्कृतटीकाके अर्थका समर्थन होता है और न गो० कर्मकाण्डकी संस्कृतटीका-द्वारा किये गये अर्थका समर्थन होता है।

अब मूल प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ९३] सुहुमणिगोयअपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णगे जोगे ।
सत्तण्हं पि जहण्णो आउगबंधे वि आउस्स[1] ॥५०३॥

अथ मूलप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धकं स्वामित्वं कथयति—['सुहुमणिगोद' इत्यादि ।] सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकः स्वभवप्रथमसमये जघन्ययोगेनायुर्विना सप्तमूलप्रकृतीनां जघन्यं प्रदेशबन्धं करोति । आयुर्बन्धसमये वा आयुषो जघन्यप्रदेशबन्धं च विदधाति स एव जीवः ॥५०३॥

---

1. शतक० ९४ । गो० क० २१५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्त जीवके अपनी पर्यायके प्रथम समयमें जघन्य योगमें वर्तमान होनेपर आयुके विना शेष सात कर्मोंका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है। तथा त्रिभागके समय आयुबन्ध करनेके प्रथम समयमें उसी जीवके आयुकर्मका जघन्य प्रदेशबन्ध होता है ॥५०३॥

अब उत्तर प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट प्रदेशबन्धके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०९४] सत्तरस सुहुमसराए पंच णियट्टी य सम्मओ णवयं।
[1]अजदी विदियकसाए देसजदी तदियए जयइ[1] ॥५०४॥

१७।५।९।४।४ सम्मओ मिस्सादियपुव्वंता।

[2]णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि साय जसकित्ती।
उच्चागोदुक्कस्सं छव्विहबंधो तणुकसाई ॥५०५॥
उक्कस्सपदेसत्तं कुणइ अणियट्टिबायरो चेव।
पंचण्हं पयडीणं णियमा पुंवेदसंजलणा ॥५०६॥
[3]छण्णोकसाय पयला णिद्दा वि य तह य होइ तित्थयरं।
उक्कस्सपदेसत्तं कुणइ य णव सम्मओ णेयं ॥५०७॥

अथोत्तरप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं तत्स्वामित्वं च गाथाषट्केनाऽऽह—['सत्तरस सुहुमसराए' इत्यादि] सूक्ष्मसाम्पराये सप्तदशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धद्रव्यं भवति। ताः काः? ज्ञानावरणपञ्चकं ५ अन्तरायपञ्चकं ५ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं ४ साता १ यशस्कीर्त्तिः १ उच्चैर्गोत्रं १ चेति सप्तदशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं तनुकषायी सूक्ष्मसाम्परायी मुनिः करोति बध्नाति १७। उत्कृष्टप्रदेशबन्धः कथम्भूतः? षड्विधबन्धः किं तत्? उत्कृष्टप्रदेशबन्धः १ अनुत्कृष्टप्रदेशबन्धः २ सादिप्रदेशबन्धः ३ अनादिप्रदेशबन्धः ४ ध्रुवप्रदेशबन्धः ५ अध्रुवप्रदेशबन्धः ६ इति षट्प्रकारप्रदेशबन्धः सप्तदशप्रकृतीनां भवतीत्यर्थः १७। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती पञ्चप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति। पुंवेद-संज्वलनक्रोधमानमायालोभानां पञ्चप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं अनिवृत्तिकरणो मुनिः क[रोति। स]म्यग्दृष्टिः प्राणी नवप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं सम्यग्दृष्टिरसंयताद्यपूर्वकरणो जीवः करोति बध्नाति ९। असंयतश्चतुर्थगुणस्थानवर्ती द्वितीयकषायान् अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभान् उत्कृष्टप्रदेशबन्धान् करोति ४। देशसंयतः श्रावकः तृतीयप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभान् उत्कृष्टप्रदेशबन्धान् करोति बध्नातीत्यर्थः ॥५०४–५०७॥

(वक्ष्यमाण) सत्तरह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें होता है। पाँच प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होता है। नौ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि करता है। अप्रत्याख्यानावरणकषाय चतुष्कका अविरतसम्यग्दृष्टि और प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कका देशविरत गुणस्थानवाला उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है ॥५०४

प्रकृतियाँ १७।५।९।४।४। गाथा-पठित 'सम्यग्दृष्टि' पदसे मिश्रगुणस्थानको आदि लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानतकके जीवोंका ग्रहण करना चाहिए।

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी चार, सातावेदनीय, यशस्कीर्त्ति और उच्चगोत्र; इन सत्तरह प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवरूप छह प्रकारके प्रदेशबन्धको सूक्ष्मसाम्परायसंयत करता है। पुरुषवेद और चार संज्वलनकषाय; इन

1. सं० पञ्चसं० ४, ३५७। 2. ४, ३५४-३५५। 3. ४, ३५६।

१. शतक० ९५। गो० क० २१२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नियमसे अनिवृत्ति बादरसाम्परायसंयत करता है। हास्यादि छह नोकषाय, निद्रा, प्रचला और तीर्थंकर; इन नौ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि करता है, ऐसा जानना चाहिए ॥५०५-५०७॥

[मूलगा०९५] [1]तेरह बहुप्पएसो सम्मो मिच्छो व कुणइ पयडीओ।
आहारमप्पमत्तो सेस पएसेसुक्कडो मिच्छो[1] ॥५०८॥

१३।२।६६

सादेदर दो आऊ देवगइचउक्क आइसंठाणं।
आदेज्ज सुभग सुस्सर पसत्थगइ आइसंघयणं ॥५०९॥

एत्थ देव-मणुसाऊ।

त्रयोदशप्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिर्वा करोति बध्नाति। ताः का इति चेदाह—असातावेदनीयं १ मनुष्य-देवायुषी द्वे २ देवगति-तदानुपूर्वि-वैक्रियिक-तदङ्गोपाङ्गचतुष्कं ४ समचतुरस्र-संस्थानं २ सुभग-सुस्वर-प्रशस्तविहायोगतित्रिकं ३ वज्रवृषभनाराचसंहननं १ चेति त्रयोदशप्रकृतीनामुत्कृष्ट-प्रदेशबन्धं सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिर्वा करोति १३। आहारकद्वयस्याप्रमत्तो मुनिरुत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति २। इति चतुःपञ्चाशत्प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धस्वामित्वं कथितम्। शेषाणां स्त्यानगृद्धित्रिक ३ मिथ्यात्व १ अनन्तानुबन्धिचतुष्क ४ स्त्री-नपुंसकवेद २ नारक-तिर्यगायुर्द्वय २ नरक-तिर्यग्मनुष्यगतित्रय ३ पञ्चैकेन्द्रियादिजाति ५ औदारिक-तैजस-कार्मणशरीरत्रय ३ न्यग्रोधपरिमण्डलादिसंस्थानपञ्चक५वज्रनाराचादिसंहननपञ्चक ५ औदारिकाङ्गोपाङ्ग १ वर्णचतुष्क ४ नरक-तिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासातपोद्योताप्रशस्त-विहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येक-साधारण-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-दुःस्वरानादेया-यशोनिर्माण-नीचगोत्राणां षट्षष्टेः प्रकृतीनां ६६ उत्कृष्टप्रदेशबन्धं मिथ्यादृष्टिरेव करोति। एवमुक्तानुक्त १२० प्रकृतीनामुत्कृष्टप्रदेशबन्धकारणमुत्कृष्टयोगादि प्रागुक्तमेव ज्ञेयम्। अत्र मिथ्यात्वं मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्ति-द्रव्यमुत्कृष्टमुक्तम्। तथाऽनन्तानुबन्धिनः सासादने किमिति नोच्यते? तन्न; मिथ्यात्वद्रव्यस्य देशघातिनामेव स्वामित्वात् ॥५०८-५०९॥

(वक्ष्यमाण) तेरह प्रकृतियोंका उत्कृष्टप्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि जीव करता है। आहारकद्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अप्रमत्तसंयत करता है। शेष ६६ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध उत्कृष्ट योगवाला मिथ्यादृष्टि जीव करता है ॥५०८॥

प्रकृतियाँ १३।२।६६

अब भाष्यगाथाकार उक्त तेरह प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

असातावेदनीय, दो आयु, देवगतिचतुष्क, आदिका संस्थान, आदेय, सुभग, सुस्वर, प्रशस्तविहायोगति और प्रथम संहनन; इन तेरह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यक्त्वी जीव भी करते हैं और मिथ्यात्वी जीव भी करते हैं ॥५०९॥

यहाँपर दो आयुसे देवायु और मनुष्यायुका अभिप्राय है।

अब उत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी सामग्रीविशेषका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०९६] [2]उक्कस्सजोगसण्णी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पयरं।
कुणइ पदेसुक्कस्सं जहण्णयं जाण विवरीयं[2] ॥५१०॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ३५८-३६०। 2. ४, ३६१।

१. शतक० ९६। गो० क० २१४ अर्धसमता। २. शतक० ९७। गो० क० २१०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथोत्कृष्टबन्धस्य सामग्रीविशेषमाह--['उक्कस्सजोगसण्णी' इत्यादि ।] प्रदेशोत्कृष्टबन्धमुत्कृष्टयोग-संज्ञिपर्याप्त एव प्रकृतिबन्धाल्पतरः करोति । जघन्ये विपरीतं जानीहि । जघन्ययोगासंज्ञ्यपर्याप्तप्रकृतिबन्ध-बहुतर एव जघन्यप्रदेशबन्धं करोतीत्यर्थः ॥५१०॥

जो जीव उत्कृष्ट योगसे युक्त है, संज्ञी, पर्याप्तक है और प्रकृतियोंका अल्पतर बन्ध करनेवाला है, वही जीव उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। जघन्य प्रदेशबन्धमें इससे विपरीत जानना चाहिए। अर्थात् जो जघन्ययोगसे युक्त हो, असंज्ञी और अपर्याप्त हो, तथा प्रकृतियोंका अधिकतर बन्ध करनेवाला हो, वह जघन्य प्रदेशबन्धको करता है ॥५१०॥

अब उत्तरप्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्ध और उनके स्वामित्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०९७] [1]घोलणजोगमसण्णी बंधइ चदु दोण्णिमप्पमत्तो दु ।
पंचासंजदसम्मो सुहुमणिगोदो भवे सेसा[1] ॥५११॥

४।२।५।१०९।

णिरयाउग देवाउग णिरयदुगं चेव जाण चत्तारि ।
आहारदुगं चेव य देवचउक्कं च तित्थयरं ॥५१२॥

अथोत्तरप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धं तत्स्वामित्वं च गाथाद्वयेनाऽऽह—['घोडगजोगमसण्णी' इत्यादि ।] येषां योगस्थानानां वृद्धिर्हानिरवस्थानं च सम्भवति, तानि घोटमानयोगस्थानानि परिणामयोगस्थानानीति भणितं भवति । तद्योगोऽसंज्ञी पञ्चेन्द्रियजीवः प्रकृतिचतुष्कं बध्नाति । तत्किम् ? नारकायुष्यं १ देवायुष्यं १ देवगति-नरकगति-तदानुपूर्व्यद्वयं २ चेति चतुर्णां प्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धं असंज्ञी जीवः करोति बध्नातीति जानीहि ४ । आहारकशरीर-तदङ्गोपाङ्गद्वयस्य जघन्यप्रदेशबन्धं अप्रमत्तो मुनिः करोति बध्नाति । कुतः ? अपूर्वकरणात्तस्य बहुप्रकृतिबन्धसम्भवात् २ । असंयतसम्यग्दृष्टिः पञ्चप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धं बध्नाति । तत्किम् ? देवगति-तदानुपूर्व्य-वैक्रियिक-तदङ्गोपाङ्गचतुष्कं ४ तीर्थंकरत्वं १ चेति पञ्चप्रकृतीनां जघन्यप्रदेश-बन्धं असंयतसम्यग्दृष्टिर्भवग्रहणप्रथमसमयजघन्योपपादयोगः करोति बध्नातीति ज्ञेयम् ५ । एवमुक्तैकादशेभ्यः शेषाणां नवोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धं सूक्ष्मनिगोदिको जीवो द्वादशोत्तरषट्सहस्रापर्याप्तभवानां चरम-भवस्थः विग्रहगतित्रिवक्रेषु प्रथमवक्रे सूक्ष्मनिगोदो बध्नाति ॥५११-५१२॥ तथा चोक्तम्—

चरिम-अपुण्णभवत्थो तिविग्गहे पढमविग्गहम्मि ठिओ ।
सुहुमणिगोदो बंधदि सेसाणं अवरबंधं तु* ॥४७॥ इति ।

घोटमानयोगोंका धारक असंज्ञी जीव (वक्ष्यमाण) चार प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धको करता है। अप्रमत्तसंयत दो प्रकृतियोंके और असंयत सम्यग्दृष्टि पाँच प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेश-बन्धको करता है। शेष १०९ प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धको चरम भवस्थ तथा तीन विग्रहोंमें-से प्रथम विग्रहमें अवस्थित सूक्ष्मनिगोदिया जीव करता है ॥५११॥

प्रकृतियाँ ४।२।५।१०९।

विशेषार्थ—जिन योगस्थानोंकी वृद्धि भी हो, हानि भी हो और अवस्थान भी हो, उन्हें घोटमानयोग कहते हैं। इन्हींका दूसरा नाम परिणामयोगस्थान भी है।

1. सं० पञ्चसं० ४, ३६२-३६४ ।
१. शतक० ९८ । गो० क० २१६ । परन्तु तत्र पाठभेदोऽस्ति ।
*गो० कर्म० गा० २१७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंको गिनाते हैं—

नरकायु, देवायु और नरकद्विक ये उपर्युक्त चार प्रकृतियाँ जानना चाहिए। दो प्रकृतियोंसे आहारकद्विकका, तथा पाँच प्रकृतियोंसे देवचतुष्क और तीर्थंकर प्रकृतिका ग्रहण करना चाहिए ॥५१२॥

अब चारों बन्धोंके कारणोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०९८] [1]जोगा पयडि-पदेसा ठिदि-अणुभागं कसायदो कुणइ ।
काल-भव-खेत्तपेही उदओ सविवाग-अविवागो[1] ५१३॥

उक्तचतुर्विधबन्धानां कारणान्याह—['जोगा पयडिपएसा' इत्यादि ।] योगात्मनोवचनकाययोगात्प्रकृतिबन्ध-प्रदेशबन्धौ भवतः, जीवाः कुर्वते। कषायलोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधमानमायालोभात् नवनोकषायाच्च स्थितिबन्धानुभागबन्धौ भवतः, जीवाः कुर्वते । कर्मणामुदयो विपाको भवति । द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भावलक्षण-कारणभेदोत्पादितनानात्वः विपाकः विविधोऽनुभवो ज्ञातव्यः । कालं भवं क्षेत्रं द्रव्यमपेक्ष्य कालं चतुर्थादिकालं भवं नर-नारकादिभवं क्षेत्रं भरतैरावतविदेहादिक्षेत्रं द्रव्यं जीव-पुद्गल-संहननादिद्रव्यं प्राप्य कर्मणामुदयोऽनुभागो भवति । स कथम्भूतः ? द्विविधः—सविपाकोऽविपाकश्च । चातुर्गतिकानां जीवानां शुभाशुभकर्मणां सुख-दुःखादिरूपोऽनुभवः अनुभवनं स विपाकोदयः । यच्च कर्मविपाककालमप्राप्तं उदयमनागतं उपक्रमक्रियाविशेषबलादुदयमानीय आस्वाद्यते स अविपाकोदयः ॥५१३॥

तथा चोक्तं च—

कालं क्षेत्रं भवं द्रव्यमुदयः प्राप्य कर्मणाम् ।
जायमानो मतो द्वेधा विपाकेतरभेदतः* ॥४८॥

जीव प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धको योगसे, तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धको कषायसे करता है। काल, भव और क्षेत्रका निमित्त पाकर कर्मोंका उदय होता है। वह दो प्रकारका है—सविपाक उदय और अविपाक-उदय ॥५१३॥

विशेषार्थ—पूर्वार्धमें प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धका कारण योग, तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धका कारण कषाय बतलाया गया है। उत्तरार्धके द्वारा उदयके निमित्त और उसके भेद बतलाये गये हैं। जिसका अभिप्राय यह है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावका आश्रय पाकरके कर्म अपना फल देते हैं। यहाँ इतना विशेष जानना आवश्यक है कि ज्ञानावरणकी पाँच, दर्शनावरणकी चार, अन्तरायकी पाँच, मिथ्यात्व, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और निर्माण ये २७ ध्रुवोदयी-प्रकृतियाँ कहलाती हैं, सो इनका तो उदय सर्व काल सर्व संसारी जीवोंके रहता है। इन्हें छोड़कर शेष जो ९५ उदय-प्रकृतियाँ हैं, वे क्षेत्र, कालादिका निमित्त पाकर उदय देती हैं। जैसे क्षेत्रविपाकी प्रकृतियाँ क्षेत्रका निमित्त पाकर फल देती हैं। भवविपाकी प्रकृतियाँ भवका निमित्त पाकर फल देती हैं। इसी प्रकार जो प्रकृतियाँ एकान्ततः नरकगति या देवगतिमें ही उदय आनेके योग्य हैं, वे उस-उस भवका निमित्त पाकर उदयमें आती हैं। निद्रा आदि प्रकृतियाँ कालका निमित्त पाकर उदयमें आती हैं। इसी प्रकार शेष सर्व प्रकृतियाँ जानना चाहिए। वह कर्मोदय सविपाक और अविपाकके भेदसे दो प्रकारका होता है। अपने समयके आने पर जो कर्म स्वतः स्वभावसे फल देते हैं, उसे सविपा-

1. सं० पञ्चसं० ४, ३६५ ।

1. शतक० ९९ । गो० क० २५७ पूर्वार्ध-समता ।

*सं० पञ्चसं० ४, ३६८ ।

कोदय कहते हैं। जैसे मनुष्यके मनुष्यगति नामकर्म अपने स्वरूपसे स्वतः स्वभाव उदयमें आकर फल देता है। जो कर्म स्वतः स्वभावसे उदयमें न आकर पर-प्रकृतिमुखसे उदयमें आकर विपाकको प्राप्त होते हैं, उसे अविपाकोदय कहते हैं। जैसे मनुष्यके शेष तीन गतियोंका स्तिबुकसंक्रमण होकर मनुष्यगतिके उदयकालमें मनुष्यगतिके रूपसे परिणत होकर विपाकको प्राप्त होना। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंके सविपाकोदय और अविपाकोदयको जानना चाहिए।

अब भाष्यगाथाकार प्रकृति आदि चारों बन्धोंका स्वरूप कहते हैं—

[1]पयडी एत्थ सहावो तस्स अणासो ठिदी होज्ज।
तस्स य रसोऽणुभाओ एत्तियमेत्तो पदेसो दु ॥५१४॥
[2]एक्कम्मि महुरपयडी तस्स अणासो ठिदो होज्ज।
तस्स य रसोऽणुभाओ कम्माणं एवमेवो त्ति ॥५१५॥

अथ प्रकृति-स्थित्यनुभाग-प्रदेशबन्धलक्षणं गाथाद्वयेनाऽऽह—['पयडी एत्थ सहावो' इत्यादि।] अत्र कर्मकाण्डे स्वभावः परिणामः शीलं प्रकृतिर्ज्ञेया। तस्य स्वभावस्याविनाशोऽच्युतिः स्थितिर्भवति। तस्याः स्थितेः अनुभागरूपो रसो भवति। तु पुनः एतावन्मात्रः प्रदेशः कर्मप्रकृतीनामंशावधारणं प्रदेशबन्धः स्यात्। उक्तञ्च—

प्रकृतिः परिणामः स्यान्स्थितिः कालावधारणम्।
अनुभागो रसो ज्ञेयः प्रदेशः प्रचयात्मकः ॥४६॥
स्वभावः प्रकृतिर्ज्ञेया स्वभावादच्युतिः स्थितिः।
अनुभागो रसस्तासां प्रदेशोंऽशावधारणम्[1] ॥५०॥ इति

तद्दृष्टान्तमाह—['एक्कम्हि महुरपयडी' इत्यादि।] यथा एकस्मिन् वस्तुनि वृक्षादौ वा मधुरादिप्रकृतिमिष्टता स्वभावः। तस्या मधुररसादिप्रकृतेरविनाशोऽप्रच्युतिः सा स्थितिः स्यात्। तस्याः स्थितेः रसरूपोऽनुभागोऽनुभवो विपाकः, तथा कर्मणामेवेति। यथा निम्बस्य कटुकता भवति, गुडस्य प्रकृतिर्मधुरता भवति, तथा ज्ञानावरणस्य प्रकृतिः अर्थापरिज्ञानम्, वेद्यस्य सुख-दुःखानुभवनमित्यादिप्रकृतिः १। अष्टकर्मणामष्टप्रकृतिभ्योऽप्रच्युतिः स्थितिः। यथा अजा-गो-महिषीक्षीरस्य निजमाधुर्यस्वभावादच्युतिः, तथा ज्ञानावरणादिकर्मणामर्थापरिज्ञानादिस्वरूपादप्रस्खलितिः स्थितिरुच्यते २। स्थितौ सत्यां प्रकृतीनां तीव्र-मन्द-मध्यमरूपेण रसविशेषः अनुभवोऽनुभाग उच्यते। अजा-गो-महिष्यादिदुग्धानां तीव्र-मन्द-मध्यमत्वेन रसविशेषः कर्मपुद्गलानां स्वगतसामर्थ्यविशेषः ३। कर्मत्वपरिणतपुद्गलस्कन्धानां परिमाणपरिच्छेदेन इयत्तावधारणं प्रदेश उच्यते ४। तथा चोक्तम्—

प्रकृतिस्तिक्तता निम्बे स्थितिरच्यवनं पुनः।
रसस्तस्यानुभागः स्यादित्येवं कर्मणामपि[2] ॥५१॥ इति
जघन्यो नाधरो यस्मादजघन्योऽस्ति सोऽधरः।
उत्कृष्टो नोत्तरो यस्मादनुत्कृष्टोऽस्ति सोत्तरः[3] ॥५२॥

उपशमश्रेण्याऽऽरोहकः सूक्ष्मसाम्परायः उच्चैर्गोत्रानुभागं बध्वा उपशान्तकषायो जातः। पुनरवरोहणे सूक्ष्मसाम्परायो भूत्वा तदनुभागमनुत्कृष्टं बध्नाति, तदाऽस्य सादित्वम्। अथवा अबन्धपतितस्य कर्मणः

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ३६६। 2. ४, ३६७।

१. सं० पञ्चसं० ४, ३६६। २. सं० पञ्चसं० ४, ३६७। ३. सं० पञ्चसं० ४, ३५०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनर्बन्धे सति सादिबन्धः स्यात् । तत्सूक्ष्मसाम्परायचरमादधोऽनादित्वम् । अभव्यसिद्धे ध्रुवबन्धो भवति । भव्यसिद्धेऽध्रुवबन्धो भवति ॥५१४–५१५॥

प्रकृतिनाम स्वभावका है। उस स्वभावका जितने काल तक विनाश नहीं होता, उतने कालका नाम स्थिति है। कर्मके रस या फलको अनुभाग कहते हैं। इतने प्रदेश अमुक कर्मके हैं, इस प्रकारके विभागको प्रदेशबन्ध कहते हैं। जैसे किसी एक वस्तुमें मधुरताका होना उसकी प्रकृति है। उस मधुरताका नियत कालतक उसमें बना रहना स्थिति है। उसके मधुररसका आस्वादन अनुभाग है और नियत मात्रामें उस मधुरताके परमाणुओंका होना प्रदेशबन्ध है। इसी प्रकारसे कर्मोंके भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्धको जानना चाहिए ।५१४–५१५

अब योगस्थान, प्रकृति-भेद, स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान और उसके कार्य प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्धादिके अल्प-बहुत्वका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०९९] [1]सेढिअसंखेज्जदिमे जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि ।
तेसिमसंखेज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो[1] ॥५१६॥

[मूलगा०१००][2]तासिमसंखेज्जगुणा ठिदी-विसेसा हवंति पयडीणं ।
ठिदिअज्झवसाणट्ठाणाणि असंखगुणियाणि तत्तो दु[2] ॥५१७॥

[मूलगा०१०१][3]तेसिमसंखेज्जगुणा अणुभागा होंति बंधठाणाणि ।
एत्तो अणंतगुणिया कम्मपएसा मुणेयव्वा[3] ॥५१८॥

[मूलगा०१०२][4]अविभागपलियच्छेदा अणंतगुणिया हवंति एत्तो दु ।
सुयपवरदिट्ठिवादे विसुद्धमयओ परिकहंति[4] ॥५१९॥

अथ योगस्थान-प्रकृतिसंग्रह-स्थितिविकल्प-स्थितिबन्धाध्यवसायानुभागबन्धाध्यवसाय-कर्मप्रदेशानामल्पबहुत्वं गाथात्रयेणाऽऽह—['सेढिअसंखेज्जदिमे' इत्यादि ।] निरन्तर-सान्तर-तदुभयभेदभिन्नयोगस्थानानि श्रेण्यसंख्येयभागमात्राणि $\frac{9२३}{9}$ $\frac{१9}{9}$ भवन्ति । एभ्योऽसंख्यातलोकगुणः सर्वप्रकृतिसंग्रहो $\frac{\equiv}{9} \equiv 9$ भवति । तेभ्यः प्रकृतिसंग्रहभेदेभ्यः प्रकृतीनां सर्वस्थितिविशेषाः सर्वस्थितिविकल्पाः असंख्यातगुणा भवन्ति ≡9≡9२०११ । एभ्यः स्थितिविकल्पेभ्यः स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि असंख्यातगुणितानि भवन्ति । एभ्यः स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानेभ्यः अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानान्यसंख्यातलोकगुणितानि भवन्ति । एभ्योऽनुभागबन्धाध्यवसायेभ्यः कर्मप्रदेशाः अनन्तगुणा ज्ञातव्याः । एकजीवप्रदेशेषु सर्वदा सत्त्वस्थितकर्मप्रदेशाः स9१२ सर्वस्थित्यनुभागबन्धाध्यवसायस्थानेभ्योऽनन्तगुणा इति ज्ञातव्यम् । एभ्योऽनन्तगुणकर्मप्रदेशेभ्यः पल्यस्याविभागप्रतिच्छेदाः अनन्तगुणिता भवन्ति । एवं दृष्टिवादाङ्गपूर्वे श्रुतज्ञानप्रवराः शुद्धमतयः सूरयः परिकथयन्ति । अथवा श्रुतप्रवरदृष्टिवादाङ्गपूर्वे ॥५१६–५१९॥ तथा चोक्तं श्लोकचतुष्टये—

भागोऽसंख्यातिमः श्रेणेर्योगस्थानानि देहिनः ।
ततोऽसंख्यगुणो ज्ञेयः सर्वप्रकृतिसंग्रहः ॥५३॥

1. सं० पञ्चसं० ४, ३६६ । 2. ४, ३७० । 3. ४, ३७१ । 4. ४, ३७२ ।

१. शतक० १०० । गो० क० २५८ । २. शतक० १०१ । गो० क० २५९ । ३. शतक० १०२ । गो० क० २६० । ४. शतक० १०३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततोऽसंख्यगुणानि स्युः स्थितिस्थानान्यतः स्थितेः ।
स्थानान्यध्यवसायानामसंख्यातगुणानि वै ॥५४॥
असंख्यातगुणान्यस्माद्रसस्थानानि कर्मणाम् ।
ततोऽनन्तगुणाः सन्ति प्रदेशाः कर्मगोचराः ॥५५॥
अविभागपरिच्छेदाः सर्वेषामपि कर्मणाम् ।
एकैकत्र रसस्थाने ततोऽनन्तगुणाः मताः※ ॥५६॥ इति

सर्व योगस्थान जगच्छ्रेणीके असंख्यातवें भाग-प्रमाण हैं। योगस्थानोंसे असंख्यात-गुणित मतिज्ञानावरणादि सर्व कर्म-प्रकृतियोंका संग्रह अर्थात् समुदाय या प्रमाण जानना चाहिए। प्रकृतियोंके संग्रहसे प्रकृतियोंकी स्थितियोंके भेद असंख्यात-गुणित हैं। स्थिति-भेदोंसे उनके बन्धके कारणभूत स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान असंख्यात-गुणित होते हैं। स्थितिबन्धाध्यवसाय-स्थानोंसे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान असंख्यात-गुणित होते हैं। अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंसे अनन्तगुणित कर्म-प्रदेश जानना चाहिए। कर्मप्रदेशोंसे उनके अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुणित होते हैं। इस प्रकार द्वादशांग श्रुतमें प्रवर अर्थात् सर्वश्रेष्ठ जो दृष्टिवाद है, उसमें कुशल एवं विशुद्धमतिवाले आचार्य कहते हैं ॥५१६-५१९॥

इस प्रकार प्रदेशबन्धका वर्णन समाप्त हुआ।

अब मूल शतककार ग्रन्थका उपसंहार करते हुए अपनी लघुता प्रकट करते हैं

[मूलगा०१०३][1]एसो बंधसमासो पिंडक्खेवेण वण्णिओ किंचि ।
कम्मप्पवादसुयसायरस्स णिस्संदमेत्तो दु[1] ॥५२०॥

एषः प्रत्यक्षीभूतः बन्धसमासः मूलोत्तरकर्मप्रकृतीनां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धसमासः संक्षेपः स्तोकमात्रः पिण्डरूपेणैकत्रीकरणेन मया वर्णितः प्रतिपादितः। स कथम्भूतः १ कर्मप्रवादपूर्वनामश्रुतसागरस्य निःस्यन्दमात्रो बिन्दुमात्रो लेशः निर्यासः साररूप इत्यर्थः ॥५२०॥ तथा चोक्तम्—

कर्मप्रवादाम्बुधिबिन्दुकल्पश्चतुर्विधो बन्धविधिः स्वशक्त्या ।
संक्षेपतो यः कथितो मयाऽसौ विस्तारणीयो महनीयबोधैः† ॥५७॥

यह बन्धसमास अर्थात् प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश, इन चारों प्रकारके बन्धोंका संक्षेपसे कुछ कथन मैंने पिण्डरूपसे एकत्रित करके वर्णन किया है, जो कि कर्मप्रवाद नामक श्रुतसागरका निस्यन्द-मात्र अर्थात् सार-स्वरूप है ॥५२०॥

[मूलगा०१०४][2]बंधविहाणसमासो रइओ अप्पसुयमंदमदिणा दु ।
तं बंधमोक्खकुसला पूरेदूणं परिकहेंतु[2] ॥५२१॥

तु पुनः कर्मप्रकृतिबन्धविधानं संक्षेपं मया रचितम्। किम्भूतेन मया? अल्पश्रुतमन्दमतिना। तद्बन्धविधानं पूरयित्वा यद्धीनाधिकं आगमविरुद्धं मया कथितं तत्सर्वं शुद्धं कृत्वा इत्यर्थः। भोः बन्ध-मोक्ष-कुशलाः कर्मबन्धमोक्षे कुशलाः कर्मणां बन्धमोचने दक्षाः परिसमन्तात् कथयन्तु प्रतिपादयन्तु ॥५२१॥

इस बन्ध-विधान-समासको अल्पश्रुत और मन्दमति मैंने रचा है, सो इसे बन्ध और मोक्ष तत्त्वके जाननेमें जो कुशल आचार्य हैं, वे छूटे हुए अर्थको पूरा करके उसका व्याख्यान करें ॥५२१॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, ३७३। 2. ४, ३७४।

१. शतक० १०४। २. शतक० १०५।

※सं० पञ्चसं० ४, ३६९–३७२। †सं० पञ्चसं० ४, ३७३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब ग्रन्थकार प्रकृत ग्रन्थके अध्ययनका फल कहते हैं—

[मूलगा०१०५] इय कम्मपयडिपगदं संखेवुद्दिट्ठणिच्छिदमहत्थं ।
जो उवजुंजइ बहुसो सो णाहिदि बंधमोक्खट्ठं[1] ॥५२२॥

इति अमुना प्रकारेण कर्मप्रकृतिप्रकृतं कर्मप्रकृतीनां प्रवर्तितशास्त्रं संक्षेपेणोद्दिष्टम् । कथम्भूतम् ? निश्चितमहदर्थं समुच्चीकृतबह्वर्थम् । यो भव्यस्तत्कर्मप्रकृतिस्वरूपशास्त्रं उपयुञ्जति बहुशः वारम्वारं विचारयति स भव्यः बन्ध-मोक्षार्थं स्वाति कर्ममलस्फेटनार्थं पवित्रो भवति, वा कर्मबन्धस्य मोक्षार्थं प्रवर्तते ॥५२२॥

विद्यानन्दिगुरुर्यतीश्वरमहान् श्रीमूलसङ्घेऽनघे
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणमुनिर्लक्ष्मीन्दु-वीरेन्दुकौ ।
तत्पट्टे भुवि भास्करो यतिव्रतिः श्रीज्ञानभूषो गणी
तत्पादद्वयपङ्कजे मधुकरः श्रीमत्प्रभेन्दुर्यती ॥५८॥
बन्धविचारं बहुविधिभेदं यो हृदि धत्ते विगलितपापम् ।
याति स भव्यः सुमतिसुकीर्त्ति सौख्यमनन्तं शिवपदसारम्[2] ॥५९
गुणस्थानविशेषेषु प्रकृतीनां नियोजने ।
स्वामित्वमिह सर्वत्र स्वयमेव विबुध्यताम्[3] ॥६०॥*

इसप्रकार शब्द-रचनाकी अपेक्षा संक्षेपसे कहे गये, किन्तु अर्थके प्रमाणकी अपेक्षा महान् इस प्रकृत कर्मप्रकृति अधिकारका बार-बार उपयोगपूर्वक अध्ययन, मनन एवं चिन्तन करता है, वह बन्ध और मोक्ष तत्त्वके अर्थको जान लेता है । अथवा कर्म-बन्धसे मुक्त होकर मोक्षरूप अर्थको प्राप्त कर लेता है ॥५२२॥

इस प्रकार सभाष्य शतक नामक चतुर्थ प्रकरण समाप्त हुआ ।

---

१. शतक० १०६ ।

२. संस्कृत पञ्चसंग्रहमें यह पद्य इस प्रकार पाया जाता है—

बन्धविचारं बहुतमभेदं यो हृदि धत्ते विगलितखेदम् ।
याति स भव्यो व्यपगतकष्टां सिद्धिमबन्धोऽमितगतिरिष्टाम् ॥ (सं० पञ्चसं० ४, ३७४ ।)

३. सं० पञ्चसं० ४, ३७५ ।

* इस श्लोकके अनन्तर संस्कृतटीकाकारकी यह पुष्पिका पाई जाती है—

इति श्रीपञ्चसंग्रहापरनामलघुगोम्मट्टसारसिद्धान्तटीकायां कर्मकाण्डाधिकारशतके बन्धाधिकारनाम पञ्चमोऽधिकारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चम अधिकार

सप्ततिका

मङ्गलाचरण और प्रतिज्ञा—

[1]णमिऊण जिणिंदाणं वरकेवललद्धिसुक्खपत्ताणं ।
वोच्छं सत्तरिभंगं उवइट्ठं वीरणाहेण ॥१॥

नत्वाऽहमर्हतो भक्त्या घातिकर्मविघातिनः ।
स्वशक्त्या सप्ततिं वक्ष्ये बन्धसत्त्वोदयादिकान्[1] ॥

अतीतानागतवर्तमानजिनवरेन्द्रान् नमस्कृत्य वरकेवलज्ञानादिलब्धिसौख्यसम्प्राप्तान् सप्ततिभङ्गान् सप्ततिसङ्ख्योपेतान् भेदान् वक्ष्ये । कथम्भूतान् ? वीरनाथोपदिष्टान् ॥१॥

उत्कृष्ट केवलज्ञानरूप लब्धिको तथा अतीन्द्रिय सुखको प्राप्त हुए जिनेन्द्रदेवोंको नमस्कार करके मैं श्री वीरनाथसे उपदिष्ट सप्ततिका-सम्बन्धी भंगोंको कहूँगा ॥१॥

[मूलगा०१] [2]सिद्धपदेहि महत्थं बंधोदय-संत-पयडिठाणाणि ।
वोच्छं सुण संखेवेण णिस्संदं दिट्ठिवादादो[1] ॥२॥

बन्धोदयसत्त्वप्रकृतिस्थानानि संक्षेपेणाहं वक्ष्ये; भो भव्य, शृणु । कथम्भूतानि ? सिद्धपदैर्महदर्थम् । आविष्टलिङ्गत्वादेकवचनम् । कथम्भूतम् ? दृष्टिवादाङ्गात् निःस्यन्दं निर्यासं सारभूतं निर्गतं वा । बन्धप्रकृतिस्थानानि उदयप्रकृतिस्थानानि सत्ताप्रकृतिस्थानानि निःसृतं कथयिष्याम्यहम् । प्रसिद्धपदवाक्यैः बह्वर्थं महदर्थसंयुक्तानीत्यर्थः ॥२॥

मैं संक्षेपसे बन्धप्रकृतिस्थान, उदयप्रकृतिस्थान और सत्त्वप्रकृतिस्थानोंको कहूँगा, सो हे भव्यो, तुम सुनो । यह संक्षेप कथन भी सिद्धपदोंके द्वारा कहा जानेसे महान् अर्थवाला है और दृष्टिवाद नामक बारहवें अङ्गका निष्यन्द अर्थात् निचोड़ या साररूप है ॥२॥

विशेषार्थ—जो पद सर्वज्ञ-भाषित अर्थके प्रतिपादक होते हैं, उन्हें सिद्धपद कहते हैं। प्रकृत ग्रन्थके सर्व ही पद सर्वज्ञ-भाषित महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके अर्थका प्रतिपादन करते हैं, इसलिए उन्हें ग्रन्थकारने सिद्धपद कहा है । यह ग्रन्थ यद्यपि संक्षेपसे कहा जायगा, तथापि उसे अल्पार्थक नहीं जानना चाहिए । क्योंकि वह दृष्टिवादका स्वरूप होनेसे महान् अर्थका धारक है । दूसरे इस ग्रन्थमें जिस विषयका वर्णन किया जानेवाला है, वह श्री महावीर भगवान्से उपदिष्ट

---

1. सं० पञ्चसं० ५. १ । 2. ५, २ ।

१. सं० पञ्चसं० ५, १ । परं तत्र चतुर्थचरणे 'बन्धभेदावबुद्धये' इति पाठः ।

१. सप्ततिका० १. परं तत्र 'दिट्ठिवादादो' स्थाने 'दिट्ठिवायस्स' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इस वाक्यके द्वारा ग्रन्थकारने प्रस्तुत ग्रन्थकी प्रामाणिकता प्रकट की है। गाथाके द्वितीय चरणके द्वारा ग्रन्थकारने वक्ष्यमाण विषयका निर्देश किया है। कर्म-परमाणुओंका आत्माके प्रदेशोंके साथ जो एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध होता है, उसे बन्ध कहते हैं। बद्ध कर्म परमाणुओंके विपाकको प्राप्त होकर फल देनेको उदय कहते हैं। बँधनेके समयसे लेकर जब तक उन कर्म-परमाणुओंका अन्य प्रकृतिरूपसे संक्रमण नहीं होता, या जब तक उनकी निर्जरा नहीं होती, तब तक आत्माके साथ उनके अवस्थानको सत्त्व कहते हैं। स्थान शब्द समुदाय वाचक है। अतएव प्रकृत ग्रन्थमें कर्मप्रकृतियोंके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थान कहे जावेंगे, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए।

अब ग्रन्थकार प्रतिपाद्य विषय-सम्बन्धी प्रश्नोंका स्वयं उद्भावन करके ग्रन्थका अवतार करते हैं—

[मूलगा०२] [1]कदि बंधंतो वेददि कइया कदि पयडिठाणकम्मंसा।
मूलुत्तरपयडीसु य भंगवियप्पा दु बोहव्वा[1] ॥३॥

अथमूलोत्तरप्रकृतीनां स्थानभङ्गभेदप्रश्नमाह—['कदि बंधंतो वेददि' इत्यादि।] मूलप्रकृतिषु च उत्तरप्रकृतिषु च कति कर्माणि जीवो बध्नन् कति कर्माणि वेदयति अनुभवति कतीनां कर्मणामुदयमनुभवतीत्यर्थः। कति कर्माणि बध्नन् जीवः कतिपयानां कर्मणां सत्ता भवति। प्रकृतिस्थानकर्मांशा इति कर्मप्रकृतिस्थानसत्त्वमेवेत्यर्थः। तु पुनः मूलप्रकृतिषु उत्तरप्रकृतिषु च भङ्गविकल्पाः कियन्तो भवन्तीति ज्ञातव्याः। तथा च—

बन्धे कत्युदये सत्त्वे सन्ति स्थानानि वा कति।
मूलोत्तरगताः सन्ति कियन्त्यो भङ्गकल्पनाः[2] ॥१॥ इति

बन्धे कति स्थानानि, उदये कति स्थानानि, सत्तायां कति स्थानानि भवन्ति? मूलोत्तरप्रकृतिगता भङ्गविकल्पाः कियन्तो भवन्तीति प्रश्ने बन्धे स्थानानि चत्वारि ८।७।६।१। उदये स्थानानि त्रीणि ८।७।४। सत्तायां स्थानानि त्रीणि ८।७।४। किं स्थानं को भङ्ग इति प्रश्ने संख्याभेदेनैकस्मिन् जीवे युगपत् प्रकृतिसमूहः स्थानम्। एकस्य जीवस्यैकस्मिन् समये सम्भवन्तीनां प्रकृतीनां समूहः स्थानमित्यर्थः। अभिन्नसंख्यानां प्रकृतीनां परिवर्तनं भङ्गः, संख्याभेदेनैकत्वे प्रकृतिभेदेन वा भङ्गः ॥२॥

कितनी प्रकृतियोंका बन्ध करता हुआ जीव कितनी प्रकृतियोंका वेदन करता है? तथा कितनी प्रकृतियोंका बन्ध और वेदन करनेवाले जीवके कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है? इस प्रकार मूल और उत्तर प्रकृतियांमें सम्भव भङ्गोंके भेद जानना चाहिए ॥३॥

विशेषार्थ—इस गाथाके पूर्वार्ध-द्वारा दो बातें सूचित की गई हैं। पहली तो यह कि बन्ध, उदय और सत्त्वके स्थान कितने-कितने होते हैं और दूसरी यह कि किस बन्धस्थानके समय कितने उदयस्थान और सत्त्वस्थान होते हैं? गाथाके उत्तरार्ध-द्वारा उक्त स्थानोंके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाले मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियोंके भङ्गोंको जाननेकी सूचना की गई है। एक जीवके एक समयमें संभव होनेवाली प्रकृतियोंके समूहका नाम स्थान है। संख्याके एक रहते हुए भी प्रकृतियोंके परिवर्तनको भंग कहते हैं। मूलप्रकृतियोंके बन्धस्थान चार हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और एक प्रकृतिक। इनमेंसे आठ प्रकृतिक बन्धस्थानमें सभी मूल

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३।

१. सप्ततिका० २. परं तत्र 'पयडिट्ठाणकम्मंसा' स्थाने 'पयडिसंतठाणाणि' इति पाठः।

२. सं० पञ्चसं० ५, ३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतियोंका, सात प्रकृतिक बन्धस्थानमें आयुकर्मके विना सातका, छह प्रकृतिक बन्धस्थानमें आयु और मोहकर्मके विना छहका, तथा एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें एक वेदनीय कर्मका बन्ध पाया जाता है। मिश्र गुणस्थानके विना अप्रमत्त संयत गुणस्थान तक छह गुणस्थानोंमें आठों कर्मोंका, अथवा आयुके विना सात कर्मोंका बन्ध होता है। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन गुणस्थानोंमें आयुके सिवाय शेष सात कर्मोंका ही बन्ध होता है। एक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें मोह और आयुके बिना शेष छह कर्मोंका बन्ध होता है। उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगकेवली, इन तीन गुणस्थानोंमें एक वेदनीय कर्मका ही बन्ध होता है। अयोगिकेवली नामक चौदहवें गुणस्थानमें किसी भी कर्मका बन्ध नहीं होता है। मूल प्रकृतियोंके उदयस्थान तीन हैं—आठ प्रकृतिक सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक। आठ प्रकृतिक उदयस्थानमें सभी मूल प्रकृतियोंका, सात प्रकृतिक उदयस्थानमें मोहकर्मके विना सातका और चार प्रकृतिक उदयस्थानमें चार अघातिया कर्मोंका उदय पाया जाता है। आठों कर्मोंका उदय दशवें गुणस्थान तक पाया जाता है, अतः वहाँ तकके जीव आठ प्रकृतिक उदयस्थानके स्वामी जानना चाहिए। मोहकर्मके सिवाय शेष सात कर्मोंका उदय बारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। अतः सात प्रकृतिक उदयस्थानके स्वामी ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्त्ती जीव हैं। चार अघातिया कर्मोंका उदय चौदहवें गुणस्थान तक पाया जाता है, अतः तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव चार प्रकृतिक उदयस्थानके स्वामी हैं। मूल प्रकृतियोंके सत्त्वस्थान तीन हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक। आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें सभी मूल प्रकृतियोंका, सात प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें मोहके विना सात कर्मोंका और चार प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें चार अघातिया कर्मोंका सत्त्व पाया जाता है। आठों कर्मोंका सत्त्व ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है, अतः वहाँ तकके सर्व जीव आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी हैं। मोहके विना सात कर्मोंका सत्त्व बारहवें गुणस्थानमें पाया जाता है, अतः क्षीणमोही जीव सात प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी हैं। चार अघातिया कर्मोंका सत्त्व चौदहवें गुणस्थान तक पाया जाता है, अतः सयोगिकेवली और अयोगिकेवली भगवान् चार प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी हैं। किस बन्धस्थानके साथ कौन कौनसे उदयस्थान और सत्त्वस्थान पाये जाते हैं, इसका निर्णय आगे ग्रन्थकार स्वयं ही करेंगे।

अब आचार्य मूल प्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्त्व स्थानोंके संभव भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०३] [1]अट्ठविह-सत्त-छब्बंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा।
एयविहे तिवियप्पो एयवियप्पो अबंधम्मि[1] ॥४॥

बन्ध०	८	७	६		बं०	१	१	१	०
उदय०	८	८	८	एवबंधे	उ०	७	७	४	अबंधे ४
सत्त्व०	८	८	८		सं०	८	७	४	४

अथ ज्ञानावरणादीनां मूलप्रकृतीनां बन्धोदयसत्त्वस्थानत्रयसंयोगं भङ्गभेदं च गाथात्रयेणाऽऽह—

['अट्ठविह-सत्त' इत्यादि।] अष्टविध-सप्तविध-षड्विधबन्धके उदय-सत्त्वेऽष्टाष्टविधे स्तः भवतः
८ ७ ६
८ ८ ८।
८ ८ ८

1. सं०पञ्चसं० ५, ४।

१. सप्ततिका० ३. परं तत्र 'उदयकम्मंसा' स्थाने 'उदयसंताइं' इति पाठः।

१ १ १ ०
एकविधबन्धके तु सप्ताष्टविधे सप्तसप्तविधे चतुश्चतुर्विधे स्तः ७ ७ ४ । अबन्धके चतुश्चतुर्विधे स्तः ४ ।
८ ७ ४ ४

अष्टविध-सप्तविध-षड्विधबन्धकेषु एकविधबन्धे अबन्धे च भङ्गाः सप्त ॥४॥

आठ, सात और छह प्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवोंमें आठ प्रकृतिक उदयस्थान और आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान पाया जाता है। एक प्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवके तीन विकल्प होते हैं—१ एक प्रकृतिकबन्ध स्थान, सात प्रकृतिक उदयस्थान और आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान; २ एक प्रकृतिक बन्धस्थान, सात प्रकृतिक उदयस्थान और सात प्रकृतिक सत्त्वस्थान; तथा ३ एक प्रकृतिक बन्धस्थान, चार प्रकृतिक उदयस्थान और चार प्रकृतिक सत्त्वस्थान। अबन्धस्थानमें *चार प्रकृतिक उदयस्थान और चार प्रकृतिक सत्त्वस्थानरूप एक ही विकल्प होता है ॥४॥*

इनकी अङ्क संदृष्टि मूलमें दी है।

अब आचार्य चौदह जीवसमासोंमें बन्ध उदय और सत्त्वस्थानोंके परस्पर संयोजग भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०४] [1]सत्तट्ठ बंध अट्ठोदयंस तेरससु जीवठाणेसु।
एक्कम्मि पंच भंगा दो भंगा होंति केवलिणो[1] ॥५॥

७ ८ — ८ ७ ७ ६ १ १ — १ ०
[2]तेरसजीवसमासेसु ८ ८ एक्कम्मि सण्णिपज्जत्ते ८ ८ ८ ८ ७ ७ केवलीणं ४ ४
८ ८ — ८ ८ ८ ८ ८ ७ — ४ ४

अथ जीवसमासेषु बन्धोदयसत्त्वस्थानत्रिसंयोगान् योजयति—['सत्तट्ठबन्ध' इत्यादि ।] त्रयोदशजीवसमासेषु सप्तविधाष्टविधबन्धके उदयसत्त्वेऽष्टाष्टविधे स्तः। एकस्मिन् जीवसमासे पञ्च भङ्गाः। अष्टविध-सप्तविध-षड्विधैकैकविधबन्धकेषु अष्टविध-सप्तविधोदयसत्त्वभेदा भवन्तीत्यर्थः। केवलिनि द्वौ भङ्गौ। एकविधबन्धाबन्धे उदयसत्त्वे चतुश्चतुर्विधे भवतः। तथा हि—एकेन्द्रियसूक्ष्मबादरौ द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियासंज्ञिजीवाश्चत्वारः ४। एते एकीकृताः षट् पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च। एवं द्वादश १२। पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यपर्याप्तक एकः १। सर्वे एकीकृताः त्रयोदश। तेषु त्रयोदशेषु जीवसमासेषु १३ आयुर्विना सप्तकर्मणां बन्धे सति अष्टविधकर्मणां उदयः सत्ता च। अथवाऽष्टविधकर्मबन्धकेऽष्टविधकर्मणामुदयः सत्ता च। एकस्मिन् पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तके जीवसमासेऽष्टविध-सप्तविध-षड्विधैकैकविधकर्मबन्धकेषु उदये अष्टधाऽष्टधा सप्तधा सप्तधा सप्तधा। तत्र सत्तायां अष्टधा ८ अष्टधा ८ अष्टधा ८ अष्टधा ८ सप्तधा ७ चेति पञ्च भङ्गाः
८ ७ ६ १ १
८ ८ ७ ७ ७ केवलिनोः सयोगायोगयोः द्वौ भङ्गौ—सयोगे सातावन्धके उदय-सत्त्वे अघातिचतुष्के
८ ८ ८ ८ ७

१ ०
भवतः। अयोगे अबन्धे उदय-सत्त्वे चतुश्चतुर्विधे भवतः ४ ४ । अत्र भङ्गा ६। इति जीवसमासेषु
४ ४

बन्धोदयसत्त्वस्थानानि समाप्तानि ॥५॥

आदिके तेरह जीवसमासोंमें सात प्रकृतिक बन्धस्थान, आठ प्रकृतिक उदयस्थान और आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान; तथा आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान; तथा आठ प्रकृतिक बन्धस्थान, आठ प्रकृतिक उदयस्थान और आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान; ये दो भंग होते हैं। एक संज्ञी पंचेन्द्रिय

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ५। 2. 'त्रयोदशसु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १५०)।

१. सप्ततिका० ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्त जीवसमासमें पाँच भंग होते हैं—१ आठके बन्धमें आठका उदय और आठका सत्त्व; २ सातके बन्धमें आठका उदय और आठका सत्त्व; छहके बन्धमें आठका उदय और आठका सत्त्व; ४ एकके बन्धमें सातका उदय और आठका सत्त्व; ५ एकके बन्धमें सातका उदय और सातका सत्त्व। केवलीके दो भंग होते हैं—एकके बन्धमें चारका उदय और चारका सत्त्व; तथा अबन्धमें भी चारका उदय और चारका सत्त्व ॥५॥

इनकी अङ्कसंदृष्टि मूलमें दी है।

अब गुणस्थानमें बन्धादि त्रिसंयोगी भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०५] [1]अट्ठसु एयवियप्पो छासु† वि गुणसण्णिदेसु दुवियप्पो ।
पत्तेयं पत्तेयं बंधोदयसंतकम्माणं[1] ॥६॥

[2]छसु मिच्छाइसु मिस्सरहिएसु दो भंगा

८	७
८	८
८	८

एगेगो अट्ठसु—

७	७	७	६	१	१	१	०
८	८	८	८	७	७	४	४
८	८	८	८	८	७	४	४

अथ गुणस्थानेषु तत्त्रिसंयोगभङ्गान् योजयति—['अट्ठसु एयवियप्पो' इत्यादि ।] अष्टसु गुणस्थानेषु प्रत्येकं बन्धोदयसत्त्वकर्मणां एकैको भङ्गः। षट्सु गुणस्थानसंज्ञिकेषु प्रत्येकं द्वौ द्वौ विकल्पौ भङ्गौ भवतः। तथा हि—मिश्रापूर्वकरणानिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायोपशान्तक्षीणकषाय-सयोगायोगगुणस्थानेषु अष्टसु प्रत्येकं एकैकं गुणस्थानं प्रति एकैको भङ्गः। केषाम् ? बन्धोदयसत्त्वकर्मणामेकैको भेदः।तद्रचना—

	मिश्र	अपू०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
बं०	७	७	७	६	१	१	१	०
उ०	८	८	८	८	७	७	४	४
स०	८	८	८	८	८	७	४	४

मिथ्यात्व-सासादनाविरत-देश-प्रमत्ताप्रमत्तेषु षट्सु गुणस्थानेषु प्रत्येकं एकैकं गुणस्थानं प्रति द्वौ द्वौ विकल्पौ भङ्गौ भवतः

८	७
८	८
८	७

। एवं भङ्गा दश भवन्ति १०॥६॥

पुनरपि बन्धोदय-[सत्त्व] रचना रच्यते—

१४	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
बं०	७।८	७।८	७	७।८	७।८	७।८	७।८	७	७	६	१	१	१	०
उ०	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४
स०	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	४	४

अन्तिम आठ गुणस्थानोंमें कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका पृथक्-पृथक् एक-एक भंग होता है। तथा मिश्रगुणस्थानको छोड़कर प्रारम्भके छह गुणस्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं ॥६॥

विशेषार्थ—मिश्र गुणस्थानके विना मिथ्यात्व आदि छह गुणस्थानोंमें आठ प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्व; तथा सातप्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्व; ये दो भंग होते हैं। मिश्रगुणस्थानमें सात

1. सं० पञ्चसं० ५, ६ । 2. ५, 'मिथ्यादृष्ट्यादीनां' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १५०) ।

१. सप्ततिका० ५ ।

†ब छसु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग होता है। अपूर्वकरण, और अनिवृत्तिकरण बादरसाम्पराय; इन दो गुणस्थानोंमें सात प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्वरूप एक-एक भंग होता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें छह प्रकृतिक बन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग होता है। उपशान्त-मोह नामक ग्यारहवें गुणस्थानमें एक प्रकृतिक बन्ध, सात प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग होता है। क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थानमें एक प्रकृतिक बन्ध, सात प्रकृतिक उदय और सात प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग होता है। तेरहवें गुणस्थानमें एक प्रकृतिक बन्ध, चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्त्वरूप एक भंग होता है। चौदहवें गुणस्थानमें बन्ध किसी भी कर्मका नहीं होता, अतएव अबन्धके साथ चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्त्वरूव एक भंग पाया जाता है। इन सबकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०	क्षीण०	सयो०	अयो०
बन्ध	७।८	७।८	७	७।८	७।८	७।८	७।८	७	७	६	१	१	१	०
उदय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४
सत्त्व	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	४	४

[1]मूलपयडीसु एवं अत्थोगाढेण जिह विही भणिया।
उत्तरपयडीसु एवं जहाविहिं जाण वोच्छामि ॥७॥

अथोत्तरप्रकृतिष्वाह—['मूलपयडीसु एवं' इत्यादि।] एवमनुनोक्तप्रकारेणार्थावगाढेन अर्थोप-गूहनेन बह्वर्थगोपनेन मूलप्रकृतिषु यादृशी विधिर्भणिता, तादृशी विधिरुत्तरप्रकृतिषु यथोक्तविधिं वक्ष्यामि, त्वं जानीहि ॥७॥

इस प्रकार अर्थके अवगाहन द्वारा मूल प्रकृतियोंमें जिस विधिसे बन्ध, उदय और सत्त्वके भंगोंका प्रतिपादन किया है, उसी विधिसे उत्तर प्रकृतियोंमें भी कहता हूँ, सो हे भव्य, तुम जानो ॥७॥

अब ज्ञानावरण और अन्तरायकर्मकी पाँच-पाँच प्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्त्वके संयोगी भंग कहते हैं—

[मूलगा०६] [2]बंधोदय-कम्मंसा णाणावरणंतराइए पंच।
बंधोवरमे वि तहा उदयंसा होंति पंचेव[1] ॥८॥

		ज्ञाना०	अन्त०			ज्ञाना०	अन्त०
	बं०	५	५		बं०	०	०
[3]दससु	उ०	५	५	उवसंत-खीणाणं	उ०	५	५
	स०	५	५		सं०	५	५

अथ ज्ञानावरणस्यान्तरायस्य च पञ्च-पञ्चप्रकृतिषु बन्धोदयसत्त्वसंयोगान् योजयति—['बन्धोदय-कम्मंसा' इत्यादि।] ज्ञानावरणान्तराययोर्मिथ्यदृष्ट्यादिसूक्ष्मसाम्परायपर्यन्तं बन्धोदयसत्त्वानि पञ्च पञ्च प्रकृतयो भवन्ति। बन्धोपरमे बन्धविरामे पञ्चप्रकृतीनां अबन्धे सति उपशान्तक्षीणकषाययोरुदय-सत्त्वे तथा पञ्च पञ्च प्रकृतयः स्युः ॥८॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ७ । 2. ५, ८ । 3. ५, दशसु इत्यादि गद्यभागः (पृ० १५१)।
१. सप्ततिका० ६, परं तत्र 'बंधोदयकम्मंसा' स्थाने 'बंधोदयसंतंसा' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

		ज्ञाना०	अन्त०			ज्ञाना०	अन्त०
	बं०	५	५		बं०	०	०
आद्यदशगुणस्थानेषु—	उ०	५	५	उपशान्त-क्षीणकषाययोः—	उ०	५	५
	स०	५	५		स०	५	५

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्मकी पाँच-पाँच प्रकृतियोंका बन्ध दशवें गुणस्थान तक होता है, अतएव वहाँ तक उनका पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्त्वरूप एक-एक भंग पाया जाता है। दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें उनके बन्धका अभाव हो जानेपर भी ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानमें उक्त दोनों कर्मोंका पाँच-पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच-पाँच प्रकृतिक सत्त्वरूप एक-एक भंग पाया जाता है ॥८॥

इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

अब दर्शनावरण कर्मके बन्ध, उदय और सत्त्वके संयोगी भंग कहते हैं—

[मूलगा०७] [1]णव छक्कं चत्तारि य तिण्णि य ठाणाणि दंसणावरणे।
बंधे संते उदये दोण्णि य चत्तारि पंच वा होंति[1] ॥९॥

अथ दर्शनावरणस्योत्तरप्रकृतिषु बन्धोदयसत्त्वस्थानसंयोगभङ्गान् गाथाषट्केनाऽऽह—['णव छक्कं चत्तारि य' इत्यादि।] दर्शनावरणस्य बन्धके सत्तायां च नवप्रकृतिकं ९ प्रथमं स्थानम् १। स्त्यानगृद्धि-त्रयेण विना षट्प्रकृतिकं ६ द्वितीयं स्थानम् २। निद्रा-प्रचले विना चतुःप्रकृतिकं ४ तृतीयं स्थानं ३ चेति बन्धप्रकृतिस्थानानि त्रीणि भवन्ति ९।६।४। सत्ताप्रकृतिस्थानानि च त्रीणि भवन्ति ९।६।४। दर्शनावरणस्यो-दये द्वे स्थानके भवतः—चतुर्णां प्रकृतीनामुदयस्थानमेकम् ४। वाऽथवा पञ्चानां मध्ये एकतरनिद्रासहितानां प्रकृतीनां उदयस्थानं द्वितीयम् ५ ॥९॥

दर्शनावरणके बन्ध और सत्त्वकी अपेक्षा नौ प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और चार प्रकृतिक; ये तीन स्थान होते हैं। उदयकी अपेक्षा चार प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक; ये दो स्थान होते हैं ॥९॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त स्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

[2]णव सव्वाओ छक्कं थीणतिगूणाइ दंसणावरणे।
णिद्दा-पयलाहीणा चत्तारि य बंध-संताणं ॥१०॥

९।६।४।

[3]णेत्ताइदंसणाणि य चत्तारि उदिंति दंसणावरणे।
णिद्दादिपंचयस्स हि अण्णयरुदएण पंच वा जीवे ॥११॥

४।५।

[4]मिच्छम्मि सासणम्मि य तम्मि य णव होंति बंध-संतेहिं।
छब्बंधे णव संता मिस्साइ-अपुव्वपढमभायंते ॥१२॥

---

1. संपञ्चसं० ५, ९ । 2. ५, १० । 3. ५, ११ । 4. ५, १२ ।

१. सप्ततिका० ७. परं तत्रायं पाठः—बंधस्स य संतस्स य पगइट्ठाणाइँ तिण्णि तुल्लाइँ। उदय-ट्ठाणाइ दुवे चउ पणगं दंसणावरणे ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९ ९
[मिच्छे सासणे—] ४ ५ । मिस्साइ-अपुव्वकरण-पढमसत्तमभायं जाव—४ ५ ।
९ ९
६ ६
९ ९

[1]चउबंधयम्मि दुविहाऽ*पुव्वऽणियट्टीसु सुहुम-उवसमए ।
णव संता अणियट्टी-खवए सुहुमखवयम्मि छच्चेव ॥१३॥

४ ४
दुविधेसु खवगुवसामगेसु अपुव्वकरणाणियट्टि तह उवसमसुहुमकसाए ४ ५ ।
९ ९

४ ४
अणियट्टि-सुहुम-खवगाणं ४ ५ ।
६ ६

अथ दर्शनावरणस्य बन्ध-सत्तास्थानानि तानि कानीति चेदाह—['णव सव्वाओ छक्कं' इत्यादि ।] दर्शनावरणे बन्ध-सत्त्वयो सर्वाः चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचला-प्रचला-स्त्यानगृद्धिनिद्रापञ्चकमिति सर्वा नव प्रकृतयो ९ भवन्तीत्येकं प्रथमं स्थानम् ९ । ताः स्त्यानगृद्धि-त्रिकोनाः बन्ध-सत्त्वषट्प्रकृतयः ६ इति द्वितीयं स्थानम् । ताः निद्रा-प्रचलाहीनाश्चतस्रः प्रकृतयः ४ इति तृतीयं स्थानम् ।९।६।४। ॥१०॥

दर्शनावरणस्योदयप्रकृतिचतुरात्मकं उदयप्रकृतिपञ्चात्मकं स्थानं च प्रद्योतयति—['णेत्ताइ दंसणाणि य' इत्यादि ।] दर्शनावरणे जाग्रज्जीवे नेत्रादिदर्शनावरणानि चत्वारि उदयन्ति । तथा हि—चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कं उदयात्मकं स्थानं ४ जाग्रज्जीवे भवति, उदयं याति वा । निद्रिते जीवे निद्रादि-पञ्चकस्य मध्येऽन्यतरैकनिद्रया सह पञ्चात्मकं स्थानम्। एकस्मिन् निद्रिते युगपत्पञ्च निद्रा उदयं न यान्तीति हेतोरेका निद्रा चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनचतुष्कमिति पञ्चात्मकं स्थानं ५ निद्रितजीवे भवति । तद्यथा—दर्शनावरणस्योदयस्थानं जाग्रज्जीवे मिथ्यादृष्ट्यादि-क्षीणकषायचरमसमयपर्यन्तं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शना-वरणचतुरात्मकं ४ भवति । तु पुनर्निद्रिते जीवे मिथ्यात्वादि-प्रमत्तपर्यन्तं स्त्यानगृद्ध्यादिपञ्चसु मध्ये एकस्या-मुदितायां पञ्चात्मकमेवं ५ । तत उपरि क्षीणकषायद्विचरमसमयपर्यन्तं निद्रा-प्रचलयोर्मध्ये एकस्यामुदितायां पञ्चात्मकमेव ५ । ततःपरं तदुदयो नास्ति ॥११॥

अथ गुणस्थानेषु दर्शनावरणस्य बन्धोदयसत्त्वस्थानत्रयसंयोगान् तद्भङ्गानाह—['मिच्छम्हि सासणम्हि य' इत्यादि ।] दर्शनावरणे नवकबन्ध-नवकसत्त्वयोर्मिथ्यादृष्टि-सास्वादनयोर्द्वयोर्गुणस्थानयोश्चतुष्कं वा पञ्चकोदयः स्यात्

	मि०	सा०
बं०	९	९
उ०	४।५	४।५
सं०	९	९

। ताः षड्बन्धकेषु मिश्राद्युभयश्रेण्यपूर्वकरणप्रथमभागा-

६ ६
न्तेषु उदय-सत्त्वे एवमेव चत्वारि पञ्च वोदयः । सत्त्वं नव । ४ ५ ॥१२॥
९ ९

चतुर्बन्धकेऽपूर्वकरणस्य द्वितीयभागाद्युभयश्रेणिरूढानां वाऽनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायद्वयस्योपशम-श्रेण्यारूढानां मुनीनां च चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणचतुष्कबन्धे ४ सति नवप्रकृतीनां सत्ता ९ जाग्र-

४ ४
ज्जीवानां चतुर्दर्शनावरणादिचतुर्णामुदयः ४ । निद्रागतानां तु तदेकनिद्रासहितपञ्चानामुदयः ५ । ४ ५।
९ ९

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १३ ।

*ब व्वाणि- ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः क्षपकश्रेण्यारूढानां च चक्षुरादिदर्शनावरणचतुष्कस्य बन्धे सति स्त्यानगृद्धित्रिकं विना षट्प्रकृतीनां सत्ता, चक्षुरादिचतुर्णामुदयः ४ । अथवा निद्रितानां एकनिद्रासहिततदेवेति पञ्चानां-

४ ४
मुदयः ५ । ४ ५ ॥१३॥
६ ६

दर्शनावरण कर्मके नौ प्रकृतिक बन्ध और सत्त्वस्थानमें सभी प्रकृतियोंका बन्ध और सत्त्व होता है। छह प्रकृतिक स्थानमें स्त्यानगृद्धित्रिकके विना शेष छहका बन्ध और सत्त्व होता है। तथा चार प्रकृतिक स्थानमें निद्रा और प्रचलाके विना शेष चारका बन्ध और सत्त्व होता है। दर्शनावरण कर्मके चार प्रकृतिक उदयस्थानमें चक्षुदर्शनावरणादि चार प्रकृतियोंका उदय पाया जाता है। तथा पाँच प्रकृतिक उदयस्थानमें निद्रा आदि पाँच प्रकृतियोंमेंसे किसी एक प्रकृतिके उदयके साथ उक्त चार प्रकृतियोंका उदय पाया जाता है। मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानमें दर्शनावरण कर्मका नौ प्रकृतिक बन्ध और नौ प्रकृतिक सत्त्व रहता है। मिश्र गुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरणके प्रथम भाग पर्यन्त छह प्रकृतिक बन्ध और नौ प्रकृतिक सत्त्व रहता है। अपूर्वकरणके दूसरे भागसे लेकर उपशामक और क्षपक दोनों प्रकारके अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें, तथा उपशामक सूक्ष्मसाम्परायमें चार प्रकृतिक बन्ध और नौ प्रकृतिक सत्त्व रहता है। अनिवृत्तिकरण क्षपक और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकके चार प्रकृतिक बन्ध और छह प्रकृतिक सत्त्व रहता है ॥१०-१३॥

[मूलगा०८] [1]उवरयबंधे संते संता णव होंति छच्च खीणम्मि।
खीणंते संतुदया चउ तेसु चयारि पंच वा उदयं[1] ॥१४॥

	०	०		०	०		०	
उवसंते	४	५	खीणे	४	५	खीणचरमसमए य	४	एवं सव्वे १३ ।
	६	६		६	६		४	

संते इति उपशान्तकषायगुणस्थाने उपरतबन्धे अबन्धे सति नवप्रकृतिसत्तास्वरूपा भवन्ति

० ०
४ ५ । क्षीणकषायस्य क्षपकश्रेण्यां स्त्यानगृद्धित्रयं विना षण्णां प्रकृतीनां सत्ता ४ ४ । क्षीणकषायस्य
६ ६ ६ ६

द्विचरमान्ते षट् सत्ता। क्षीणकषायस्य चरमसमये अबन्धे सति चक्षुरादिचतुर्णामुदयः ४ । चक्षुरादिचतुर्णां

०
सत्ता ४ । ४ । तेषु सर्वेषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायोपान्त्यसमयपर्यन्तेषु जाग्रज्जीवेषु चक्षुर्दर्शनावरणादीनां
४

चतुर्णामुदयः ४ । वा निद्रितजीवानां कदाचिदेकनिद्रया सहितं तदेव चतुष्कमिति पञ्चानामुदयः ५ । एवं सर्वे भङ्गास्त्रयोदश १३ ॥१४॥

---

1. सं० पञ्चसं० ४, १४-१७। तथाऽग्रेतनगद्यांशश्च (पृ० १५२)।

1. श्वे० सप्ततिकायामस्याः स्थाने इमे द्वे गाथे स्तः--

बीयावरणे नवबंधगेसु चउ पंच उदय नव संता।
छच्चउबंधे चेवं चउबंधुदए छलंसा ॥८॥
उवरयबंधे चउ पण नवंस चउरुदय छच्च चउसंता।
वेयणियाउगमोहे विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनरपि दर्शनावरणस्य गुणस्थानेषु रचना रचिताऽस्ति—

गु०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी० उ०	क्षी० च०
ब०	९	९	६	६	६	६	६	६।४	४	४	०	०	०
उ०	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।४	४।५	४।५	४।५	४
स०	९	९	९	९	९	९	९	९	९।६	९।६	९	६	४

उपशमश्रेणिषु—

गुण०	अपू०	अनि०	सू०	उप०
बं०	६।४	४	४	०
उ०	४।५	४।५	४।५	४।५
स०	९	९	९	९

उपरतबन्ध अर्थात् दर्शनावरणके बन्धका अभाव हो जाने पर उपशान्त मोहमें नौ प्रकृतिक सत्त्व होता है। क्षीणमोहके उपान्त्य समय तक छह प्रकृतिक सत्त्व और क्षीणमोहके अन्तिम समयमें चार प्रकृतिक सत्त्व और चार प्रकृतिक उदय रहता है। इससे पूर्ववर्ती गुणस्थानोंमें जाग्रत अवस्थामें चार प्रकृतिक और निद्रित दशामें पाँच प्रकृतिक उदय रहता है ॥१४॥

उपर्युक्त कथनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०	क्षी०उ०	क्षी०च०
बन्ध	९	९	६	६	६	६	६	६।४	४	४	०	०	०
उदय	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४
सत्त्व	९	९	९	९	९	९	९	९	९।६	९।६	९	६	४

अब वेदनीय, आयु और गोत्र कर्मके बन्ध, उदय और सत्त्वके संयोगी भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०९] [1]गोदेसु सत्त भंगा अट्ठ य भंगा हवंति वेयणिए।
पण णव णव पण संखा आउचउक्के वि कमसो[1] दु ॥१५॥

अथ गोत्र-वेदनीयाऽऽयुषां त्रिसंयोगभङ्गान् भङ्क्त्वा गुणस्थानेषु योजयति—['गोदेसु सत्त भंगा' इत्यादि।] नीचोच्चगोत्रद्वयस्य असदृशभङ्गाः सप्त भवन्ति।७। सातासातवेदनीयद्वयस्यासदृशभङ्गाः अष्टौ भवन्ति ८। नरकगतौ नारकायुषः असदृशभङ्गा पञ्च भवन्ति ५। तिर्यग्गत्यां तिर्यगायुषो भङ्गा नव विसदृशा भवन्ति ९। मनुष्यगत्यां मनुष्यायुषो भङ्गा नव विसदृशा भवन्ति ९। देवगतौ देवायुषो भङ्गाः। पञ्च विसदृशाः स्युः ५। गोत्रे ७ वेद्ये ८ आयुषि ५।९।९।५ ॥१५॥

गोत्र कर्मके सात भंग होते हैं। तथा वेदनीय कर्मके आठ भंग होते हैं। आयु कर्मकी चारों प्रकृतियोंके क्रमसे पाँच नौ, नौ और पाँच भंग होते हैं ॥१५॥

विशेषार्थ—गोत्रकर्मके सात भङ्गोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—गोत्रकर्मके दो भेद हैं—उच्चगोत्र और नीचगोत्र। इन दोनों भेदोंमेंसे एक जीवके एक समयमें किसी एकका बन्ध और किसी एकका उदय होता है क्योंकि उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये दोनों परस्पर विरोधिनी प्रकृतियाँ हैं। अतएव इसका एक साथ बन्ध और उदय सम्भव नहीं है। किन्तु सत्त्व दोनोंका एक साथ

1. सं० पञ्चसं० ५, १८।

१. श्वे० सप्ततिकायामस्याः स्थाने कापि गाथा नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाये जानेमें कोई विरोध नहीं है। कुछ अपवादोंको छोड़कर सभी जीवोंके दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है। इनमें पहला अपवाद अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंका है, क्योंकि वे दोनों उच्चगोत्रकी उद्वेलना भी करते हैं। अतः जिन्होंने उच्चगोत्रकी उद्वेलना कर दी है उनके, या वे जीव मरकर जब अन्य एकेन्द्रियादिकोंमें उत्पन्न होते हैं, तब उनके भी उत्पन्न होनेके प्रारम्भिक अन्तर्मुहूर्त तक केवल एक नीचगोत्रका ही सत्त्व पाया जाता है। इसी प्रकार अयोगिकेवलीके उपान्त्य समयमें नीचगोत्रका क्षय होता है, तब उनके भी अन्तिम समयमें केवल एक उच्चगोत्रका सत्त्व पाया जाता है। इस कथनका सार यह है कि गोत्रकर्मका बन्धस्थान भी एक प्रकृतिक होता है और उदयस्थान भी एक प्रकृतिक होता है। किन्तु सत्त्वस्थान कहीं एक प्रकृतिक होता है और कहीं दो प्रकृतिक होता है। तदनुसार गोत्रकर्मके सात भंग ये हैं—१ नीचगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और नीचगोत्रका सत्त्व; २ नीचगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व; ३ नीचगोत्रका बन्ध, उच्चगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व; ४ उच्चगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्व; ५ उच्चगोत्रका बन्ध, उच्चगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व, ६ बन्ध किसी गोत्रका नहीं, उच्चगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व, तथा ७ बन्ध किसी गोत्रका नहीं, उच्चगोत्रका उदय और उच्चगोत्रका सत्त्व। इनमेंसे पहला भंग नीचगोत्रकी उद्वेलना करनेवाले अग्निकायिक-वायुकायिक जीवोंके, और ये जीव मर कर जिन एकेन्द्रियादिकमें उत्पन्न होते हैं, उनके अन्तर्मुहूर्त कालतक पाया जाता है। दूसरा और तीसरा भंग मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंके पाया जाता है क्योंकि नीचगोत्रका बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही पाया जाता है। चौथा भंग आदिके पाँच गुणस्थानवर्ती जीवोंके सम्भव है; क्योंकि नीचगोत्रका उदय पाँचवें गुणस्थान तक ही होता है पाँचवाँ भंग आदिके दश गुणस्थानवर्ती जीवोंके सम्भव है; क्योंकि उच्चगोत्रका बन्ध दशवें गुणस्थान तक ही होता है। छठा भंग ग्यारहवें गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थानके उपान्त्य समय तक पाया जाता है। सातवाँ भंग चौदहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें पाया जाता है। इस प्रकार गोत्रकर्मके सात भंगोंका विवरण किया।

अब वेदनीय कर्मके आठ भंगोंका स्पष्टीकरण करते हैं—वेदनीय कर्मके दो भेद हैं—सातावेदनीय और असातावेदनीय। इन दोनोंमेंसे एक जीवके एक समयमें किसी एकका बन्ध और किसी एकका उदय होता है; क्योंकि, ये दोनों परस्पर विरोधिनी प्रकृतियाँ हैं। परन्तु किसी एक प्रकृतिके सत्तासे विच्छिन्न होने तक सत्त्व दोनोंका पाया जाता है। जब किसी एककी सत्त्वविच्छित्ति हो जाती है, तब किसी एक ही प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है। इस कथनका सार यह है कि वेदनीय कर्मका बन्धस्थान भी एक प्रकृतिक होता है और उदयस्थान भी एक प्रकृतिक होता है। किन्तु सत्त्वस्थान दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक; इस प्रकार दो होते हैं। तदनुसार वेदनीयकर्मके आठ भंग ये हैं—१ असाताका बन्ध, असाताका उदय और दोनोंका सत्त्व; २ असाताका बन्ध, साताका उदय और दोनोंका सत्त्व; ३ साताका बन्ध, साताका उदय और दोनोंका सत्त्व; ४ साताका बन्ध, असाताका उदय और दोनोंका सत्त्व। इस प्रकार वेदनीयकर्मका बन्ध होने तक उपर्युक्त चार भंग होते हैं। तथा बन्धके अभावमें; ५ असाताका उदय और दोनोंका सत्त्व; ६ साताका उदय और दोनोंका सत्त्व; ७ असाताका उदय और असाता सत्त्व; तथा ८ साताका उदय और साताका सत्त्व, ये चार भंग होते हैं। इनमेंसे प्रारम्भके दो भंग पहले गुणस्थानसे लेकर छठे गुणस्थान तक होते हैं; क्योंकि, वहाँ तक ही असातावेदनीयका बन्ध होता है। तीसरा और चौथा भंग पहले गुणस्थानसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तक पाया जाता है; क्योंकि सातावेदनीयका बन्ध यहाँ तक ही होता है। पाँचवाँ और छठवाँ भंग चौदहवें गुणस्थानके उपान्त्य समय तक पाया जाता है; क्योंकि यहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है। सातवाँ और आठवाँ भंग चौदहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें पाया जाता है। जिन अयोगिकेवलीके उपान्त्य समयमें सातावेदनीयकी सत्त्व-व्युच्छित्ति हो गई है, उनके अन्तिम समयमें तीसरा भंग पाया जाता है और जिनके उपान्त्य समयमें असातावेदनीयकी सत्त्वव्युच्छित्ति होती है उनके अन्तिम समयमें चौथा भंग पाया जाता है। इस प्रकार वेदनीयकर्मके आठ भंगोंका विवरण किया।

चारों आयुकर्मोंके भंगोंका वर्णन भाष्यगाथाकारने आगे चलकर स्वयं किया है, अतएव यहाँ उनका वर्णन नहीं किया गया है।

अब भाष्यगाथाकार गोत्रकर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं--

[1]उच्चुच्चमुच्च णिच्चं णीचं उच्चं च णीच णीच्चं च।
बंधं उदयम्मि चउसु वि संतुदयं† सव्वणीचं च ॥१६॥

१	१	०	०	०
१	०	१	०	०
१।०	१।०	१।०	१।०	०।०

अथ गोत्रस्य बन्धोदयसत्त्वस्थानत्रिस्थानत्रिसंयोगान् तद्भङ्गांश्च गुणस्थानेषु गाथात्रयेणाऽऽह--['उच्चुच्च-मुच्चणिच्चं' इत्यादि।] उच्च-नीचगोत्रद्वयस्य रचना पंक्तिक्रमेण बन्धोदयेषु चतुर्षु स्थानेषु प्रथमस्थाने उच्चैर्गोत्रस्य बन्धः १ उच्चैर्गोत्रस्योदयः १। द्वितीयस्थाने उच्चैर्गोत्रस्य बन्धः १ नीचगोत्रस्योदयः ०। तृतीयस्थाने नीचैर्गोत्रस्य बन्धः ० उच्चैर्गोत्रस्योदयः १। चतुर्थस्थाने नीचगोत्रस्य बन्धः ० नीचगोत्रस्योदयः ०। एतच्चतुर्षु स्थानेषु सत्ताद्विकं उच्चैर्नीचैर्गोत्रे द्वे सत्त्वे भवतः १।०। पञ्चमभङ्गस्थाने सर्वनीचैर्गोत्रं बन्धे नीचगोत्रं ० उदये नीचगोत्रं ० सत्तायां नीचगोत्रम् ०। उच्चैर्गोत्रस्य संज्ञा एकाङ्कः १। नीचगोत्रस्य संज्ञा शून्यमेव ० ॥१६॥

	ब०	१	१	०	०	०
गोत्रस्य भङ्गा गुणस्थानेषु--	उ०	१	०	१	०	०
	स०	१।०	१।०	१।०	१।०	०।०

पंक्तिरचनाके क्रमसे प्रथम स्थानमें उच्चगोत्रका बन्ध और उच्चगोत्रका उदय लिखना। द्वितीय स्थानमें उच्चगोत्रका बन्ध और नीचगोत्रका उदय लिखना। तृतीय स्थानमें नीचगोत्रका बन्ध और उच्चगोत्रका उदय लिखना। चतुर्थस्थानमें नीचगोत्रका बन्ध और नीचगोत्रका उदय लिखना। इन चारों ही स्थानोंमें उच्च और नीच दोनों ही गोत्रोंका सत्त्व लिखना चाहिए। पाँचवें स्थानमें नीचगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और नीचगोत्रका सत्त्व लिखना चाहिए। इस प्रकार लिखनेपर गोत्रकर्मके पाँच भंग हो जाते हैं। इनकी संदृष्टि मूलमें दी है ॥१६॥

[2]मिच्छम्मि पंच भंगा सासणसम्मम्मि आइमचउक्कं।
आइदुवं तीसुवरिं पंचसु एक्को तहा पढमो ॥१७॥

[3]मिच्छाइसु पंचण्हं विभागो--५।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

मिथ्यादृष्टौ उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वं १ उच्चबन्धनीचोदयोभयसत्त्वं २ नीचबन्धोच्चोदयोभयसत्त्वं ३ नीचबन्धनीचोदयोभयसत्त्वं ४ नीचबन्धोदयसत्त्वं ५ चेति पञ्च भङ्गा मिथ्यादृष्टीनां भवन्ति। सास्वादने चरिमो नेति आदिमाश्चत्वारो भङ्गाः; तस्य सासादनस्य तेजोद्वयेऽनुत्पत्तेरुच्चानुद्वेलनात्। यच्चतुर्थगुणस्थाना-

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १९-२०। 2. ५, २१। 3. ५, 'मिथ्यादृष्ट्यादिषु इत्यादिगद्यांशः (पृ० १३५)।
†ब संतदुयं।

स्यतत्ति स एव द्वितीये सासादने आगच्छति । चतुर्थे उच्चगोत्रस्य बन्धोऽस्ति, नीचस्य बन्धो नास्ति, तस्मात् द्वितीये सास्वादने उच्चगोत्रस्य सत्ता भवत्येव । ततोऽन्तिमो नास्ति । कुत्र ? सास्वादने । त्रिषु मिश्राविरत-देशविरतेषु उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वं उच्चबन्धनीचोदयोभयसत्त्वं चेति द्वौ द्वौ भङ्गौ । ततः पञ्चसु प्रमत्ताप्रमत्ता-पूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायेषु गुणस्थानेषु उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वमित्येकबन्धोच्चगोत्रं १ उदयोच्च-गोत्रं १ नीचोच्चगोत्रद्वयसत्त्वम् $\begin{matrix} १ \\ १ \\ १।० \end{matrix}$ ॥१७॥

इति मिथ्यात्वादिगुणस्थानेषु पञ्चानां विभागः कृतः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०
५	४	२	२	२	१	१	१	१	१

उक्त पाँच भंगोंमेंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें पाँचों ही भंग होते हैं। सासादनसम्यक्त्वगुण-स्थानमें आदिके चार भंग होते हैं। मिश्र, अविरत और देशविरत, इन तीन गुणस्थानोंमें आदिके दो-दो भंग होते हैं। प्रमत्तसंयतादि पाँच गुणस्थानोंमें आदिका एक ही प्रथम भंग होता है ॥१७॥

मिथ्यात्व आदि दश गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भङ्ग इस क्रमसे होते हैं—

मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म०
५	४	२	२	२	१	१	१	१	१

[1]बंधेण विणा पढमो उवसंताई अजोयदुचरिमम्हि+ ।
चरिमम्मि अजोयस्स उच्चं उदएण संतेण ॥१८॥

[2]उवसंताई चउसु $\begin{matrix} १ & १ & १ & १ \\ १।० & १।० & १।० & १।० \end{matrix}$ अजोगंता $\begin{matrix} १ \\ १ \end{matrix}$ एवं सव्वे ७।

उपशान्त-क्षीणकषाय-सयोगायोगोपान्त्यसमयान्तेषु बन्धं विना प्रथमभङ्गः उच्चोदयोभयसत्त्व-मित्येकः । अयोगस्य चरमसमये उच्चोदयसत्त्वं $\begin{matrix} उ० & १ \\ स० & १ \end{matrix}$ । एवं गोत्रस्य गुणस्थानेषु सप्त भङ्गाः विस-दृशाः स्युः ७ ।

गु०	उप०	क्षीण०	स०	अयो०
उ०	१	१	१	१
स०	१।०	१।०	१।०	१।०

पुनरपि गोत्रद्वयस्य विचारः क्रियते-कर्मभूमिज-मनुष्याणामुच्चनीचगोत्रोदयो भवति । क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्यानामुच्चगोत्रमपरेषां नीचगोत्रम् । भोगभूमिजमनुष्य-चतुर्निकायदेवानामुच्चगोत्रोदयः । सर्वेषां तिरश्चां सर्वेषां नारकाणां च नीचगोत्रोदय एव भवति । उच्चगोत्रोदयागतभुज्यमानः १ सन् उच्चैर्गोत्रं बध्नाति । तदेव बन्धः, योऽसौ उच्चगोत्रस्य बन्धः कृतः, स एव सत्त्वं १ । नानाजीवापेक्षया मिथ्यादृष्टिना सासादन-स्थेन जीवेन वा नीचगोत्रस्य बन्धः कृतः स एव सत्त्वरूपः ० $\begin{matrix} बं० & १ \\ उ० & १ \\ स० & १० \end{matrix}$ । अयं भङ्गः मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवलि-द्विचरमसमये भुज्यमानः उच्चैर्गोत्रस्योदयः स एव सत्त्वरूपः । अथवाऽधस्तनगुणस्थानेषु उच्चगोत्रं बद्ध्वा

1. सं० पञ्चसं० ५, २२ । 2. ५, 'चतुर्थ'इत्यादिगद्यभागः (पृ० १५३) ।
+ ब-दुचरिमं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदेव सत्त्वमेव उच्चगोत्रोदयसत्त्वं १/१ नीचैर्गोत्रोदयागतभुज्यमानः सन् ० उच्चगोत्रं बध्नाति १। तदेव सत्त्वमेव १ नानाजीवापेक्षया नीचगोत्रभुज्यमानेन केनापि मिथ्यादृष्टिना सासादनस्थेन वा नीचगोत्रं बद्ध्वा तदेव सत्त्वं कृतम् उ० १/नी० ०। अयं भङ्गः मिथ्यात्वादिदेशविरतपर्यन्तं भवति। उदयागतोच्चगोत्रं भुज्यमानः सन् १ नीचगोत्रं बद्ध्वा तदेव सत्त्वं कृतम् ०। नानाजीवापेक्षया केनापि जीवेनोच्चगोत्रं बद्ध्वोच्च-

बं० नी० ०
गोत्रं सत्त्वं कृतम् उ० उ० ०। अयमपि भङ्गः बन्धापेक्षया मिथ्यात्वसास्वादनान्तं भवति। उदयागत-
स० उ०१ नी०

नीचगोत्रं भुज्यमानः सन्० नीचगोत्रं बद्ध्वा नीचगोत्रं सत्त्वं कृतम् ०। सासादनापेक्षया कश्चिच्चतुर्थगुणस्थानात्पतति। स द्वितीये सासादने समागच्छति। चतुर्थे उच्चगोत्रस्य बन्धोऽस्ति, न च नीचगोत्रस्य। तस्मात्सासादने उच्चगोत्रस्य सत्ता भवत्येव। अथवा तस्य तेजो-वायोरनुत्पत्तेरुच्चगोत्रस्यानुद्वेलनात्।

बं० नी०
उ० नी० अयं भङ्गः मिथ्यादृष्टेः सासादनस्य च भवति। उदयागतनीचगोत्रं भुज्यमानः सन्०
स० उ०१नी०

बं० नी०
नीचगोत्रं बद्ध्वा तदेव सत्त्वं० भुज्यमाननीचगोत्रसत्त्वं वा उ० नी०। अयं भङ्गो मिथ्यादृष्टेरेव भवति।
स० नी०

उपशान्तकषायगुणस्थानादिषु चतुर्षु एको भङ्गः। अयोगस्य चरमसमये एको भङ्गश्च। एवं सप्त भङ्गाः गोत्रस्य ज्ञेया भवन्ति ७। एकाङ्क उच्चगोत्रस्य संज्ञा, नीचस्य शून्यं संज्ञेति ॥१८॥

उ०	क्षी०	स०	अ० उपा०	अ० अन्त्य०
१	१	१	१	१
१।०	१।०	१।०	१।०	१

उपशान्तकषायगुणस्थानसे आदि लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानके द्विचरम समय तक गोत्रकर्मके बन्धके बिना प्रथम भंग होता है। अयोगिकेवलीके चरम समयमें उदय और सत्त्वकी अपेक्षा एक उच्चगोत्र ही पाया जाता है ॥१८॥

उपशान्तकषायसे आदि लेकर अयोगीके उपान्त्य समय तक गोत्रकर्मके भंग इस प्रकार होते हैं—

	उप०	क्षी०	सयो०	अयो० उपान्त्य
उद०	१	१	१	१
स०	१।०	१।०	१।०	१।०

अयोगीके अन्तिम समयमें १/१ एक यही भंग होता है। इस प्रकार गोत्रकर्मके सर्व भंग सात होते हैं। जिनकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भंग	बन्ध	उदय	सत्त्व		गुणस्थान
१	नीचगोत्र	नीचगोत्र	नीचगोत्र		१
२	नीचगोत्र	नीचगोत्र	नी० गो०	उच्चगोत्र	१,२
३	नीचगोत्र	उच्चगोत्र	नी० गो०	उ० गो०	१,२
४	उच्चगोत्र	नीचगोत्र	नी० गो०	उ० गो०	१,२,३,४,५
५	उच्चगोत्र	उच्चगोत्र	नी० गो०	उ० गो०	१,२,३,४,५,६,७,८,९,१०
६	०	उच्चगोत्र	नी० गो०	उ० गो०	११,१२,१३, तथा १४ उ० स०
७	०	उच्चगोत्र	उच्चगोत्र		१४ का अन्तिम समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब वेदनीयकर्मके कौनसे भंग किस-किस गुणस्थान तक होते हैं, इस बातका निरूपण करते हैं—

[1]वेदणीए गोदम्मि व पढमा भंगा हवंति चत्तारि ।
मिच्छादिपमत्तंते ते खलु सत्तसु वि आदिमा दोण्णि ॥१९॥

१ १ ० ०
१ ० १ ०
१।० १।० १।० १।०

[2]आइदुयं णिब्बंधं दुचरिमसमयम्हि होइ य अजोगे ।
उदयं संतमसायं सायं पुणुचरिमसमयम्मि ॥२०॥

१ ० ० १
१।० १।० ० १ । ८ भंगाः समाप्ताः ।

वेदनीयस्य तत्त्रिसंयोगभङ्गान् गाथाद्वयेनाऽऽह—['वेदणीए गोदम्मि व' इत्यादि ।] वेदनीये गोत्रवत् प्रथमा भङ्गाश्चत्वारो भवन्ति । गोत्रस्य पञ्चमं भङ्गं त्यक्त्वा चत्वार आद्या भङ्गा वेद्यस्य भवन्ति । सातासातैकतरमेव योग्यस्थाने बन्धः उदयो वा स्यात् । सत्त्वं सयोगान्तं द्वे द्वे अयोगे ते उदयागते । तेन वेदनीयस्य गुणस्थानं प्रति भङ्गाः मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तपर्यन्तेषु ते चत्वारो भङ्गा ४ ४ । सातबन्ध-सातोदय-सातासातोभयसत्त्वमिति प्रथमो भङ्गः १ । सातबन्धासातोदयोभयसत्त्वमिति द्वितीयो भङ्गः २ । असातबन्धसातोदयोभयसत्त्वमिति तृतीयो भङ्गः ३ । असातबन्धोदयोभयसत्त्वमिति चतुर्थो भङ्गः ४ । इति चत्वारो भङ्गाः । मिथ्यात्व-सास्वादन-मिश्राविरत-देशविरत-प्रमत्तगुणस्थानेषु षट्सु प्रत्येकं चत्वारो भङ्गा भवन्ति । खलु निश्चयेनाप्रमत्तादि-सयोगान्तेषु सप्तसु द्वौ द्वौ भङ्गौ प्रत्येकं भवतः । असातावेदनीयस्य बन्धस्य षष्ठे प्रमत्ते व्युच्छेदत्वादप्रमत्तादि-सयोगान्तं केवलसातस्यैव बन्धः । ततः सातस्य बन्धः १ सातस्योदयः १ उभयसत्त्वमिति प्रथमभङ्गः १/१/१।० १ । सातबन्धः १ असातोदयः ० सातासातसत्त्वम् १।० इति द्वितीयभङ्ग १/०/१।० २ । एवं द्वौ द्वौ भङ्गौ अप्रमत्तादि-सयोगान्तं प्रत्येकं भवतः । अयोगस्य द्विचरमसमये बन्धरहितमादिमभङ्गद्वयं भवति । सातोदयः, सातासातसत्त्वं १/१।० असातोदयः सातासातसत्त्वं ०/१।० इति द्वौ भङ्गौ अयोगस्योपान्त्यसमये भवतः । अयोगस्य चरमसमये असातोदयः सत्त्वमप्यसातं ०/० उदये सातं सत्तायां सातं १/१ नानाजीवापेक्षया ज्ञेयमिति ॥१९-२०॥

अयोगे—
१ ० ० १
१।० १।० ० १

इति वेदनीयस्य गुणस्थानं प्रति विसदृशभङ्गाः अष्टौ ।

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
४	४	४	४	४	४	२	२	२	२	२	२	२	४

गोत्रकर्मके समान वेदनीयकर्मके भी आदिके चार भंग होते हैं और वे निश्चयसे मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होते हैं । अप्रमत्तसंयतको आदि लेकर ऊपरके सात

1. सं० पञ्चसं० ५, २३ । 2. ५, २४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानोंमें आदिके दो भंग होते हैं। अयोगिकेवलीके द्विचरम समय तक वेदनीयके बन्ध विना असाताका उदय, दोनोंका सत्त्व, तथा साताका उदय, दोनोंका सत्त्व ये आदिके दो भंग होते हैं। पुनः अयोगीजिनके अन्तिम समयमें असाताका उदय, असाताका सत्त्व और साताका उदय, साताका सत्त्व, ये दो भंग होते हैं ॥१९-२०॥

उक्त भंगोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भंग	बन्ध	उदय	सत्त्व		गुणस्थान
१	असातावेद०	असातावेद०	असातावे०	सातावे०	१,२,३,४,५,६,
२	असातावेद०	सातावेद०	,,	,,	१,२,३,४,५,६
३	सातावेद०	असातावेद०	,,	,,	१ से १३
४	सातावेद०	सातावेद०	,,	,,	१ से १३
५	०	असातावेद०	,,	,,	१४ के उपान्त्य समय तक
६	०	सातावेद०	,,	,,	१४ के उपान्त्य समय तक
७	०	असातावेद०	असाता वेदनीय		१४ के अन्तिम समयमें
८	०	सातावेद०	साता वेदनीय		१४ के अन्तिम समयमें

इस प्रकार वेदनीय कर्मके आठ भङ्गोंका वर्णन समाप्त हुआ।

अब आयुकर्मके भङ्गोंका वर्णन करते हुए पहले नरकायुके भंग कहते हैं—

[1]णिरयाउस्स य उदए तिरिय-मणुयाऊणऽबंध बंधे य।
णिरयाउयं च संतं णिरयाई दोण्णि संताणि ॥२१॥

०	२	०	३	०
१	१	१	१	१
१	१।२	१।२	१।३	१।३

अथाऽऽयुषो बन्धोदयसत्त्वस्थानभङ्गान् गाथाचतुष्केणाऽऽह—['णिरयाउस्स य उदये' इत्यादि।] नरकायुष उदये नरकायुर्भुज्यमाने तिर्यग्मनुष्यायुषोरबन्धे बन्धे च नरकायुःसत्त्वं भवति, नरकादिद्वयायुः सत्त्वं भवति। तथाहि–उदयागतनरकगतौ नरकायुर्भुज्यमाने सति १ तिर्यग्मनुष्यायुषोरबन्धे ० भुज्यमाननरकायुःसत्त्वमेव १, तिर्यगायुर्बन्धे सति २ नरकतिर्यगायुःसत्त्वद्वयं १।२। नरकायुर्भुज्यमाने सति १ उपरितनबन्धे ० भुज्यमाननरकायुः तिर्यगायुःसत्त्वं ०/१/१।२ मनुष्यायुर्बन्धे सति नरक-मनुष्यायुःसत्त्वद्वयं भवति १।३ ३/१/१।२। पञ्चमभङ्गेऽबन्धे मनुष्यायुः ० भुज्यमाननरकायुः १ मनुष्यायुःसत्त्वं ०/१/१।३। तृतीयभङ्गे तिर्यगायुःसत्त्वं अबन्धे कथम्? तथा पञ्चमभंगेऽबन्धे मनुष्यायुःसत्त्वं कथम्? सत्यमेव, अहो उपरिबन्धे अग्रे बन्धं यास्यति तदपेक्षया तदाऽऽयुस्तद्भंगे सत्त्वम्। अयं विचारो गोम्मट्टसारेऽस्ति। आयुर्बन्धे अबन्धे उपरतबन्धे च एकजीवस्यैकभवे एकायुःप्रति त्रयो भङ्गा इति भङ्गाः पञ्च ५।

बं०	०	ति २	०	म ३	०
उ०	णि० १	णि १	णि १	णि १	णि १
स०	णि० १	१ ति २	१ ति २	१ म ३	१ म ३

1. सं० पञ्चसं० ५, २५-२७।

नरकायुष एकाङ्कः १ संज्ञा । तिर्यगायुषः द्विकाङ्कसंज्ञा २ । मनुष्यायुषस्त्रितयाङ्कसंज्ञा ३ । देवायुषश्चतुरङ्कसंज्ञा ४ । अबन्धस्य शून्यमेव संज्ञा ० । उपरते शून्यम् ० । तथा प्रकारान्तरेण नरकगत्यां नरकायुषः पञ्च भङ्गा एते—

बं०	०	ति	०	म०	०
उ०	णि	णि	णि	णि	णि
स०	१	२	२	३	३

तथाऽऽयुषो बन्धः गोम्मट्टसारे प्रोक्तः—

सुरणिरया णरतिरियं छम्मासावसिट्ठगे सगाउस्स ।
णरतिरिया सव्वाउं तिभागसेसम्मि उक्कस्सं ॥२॥
भोगभुमा देवायुं छम्मावसिट्ठगे य बंधंति ।
इगिविगला णरतिरियं तेउदुगा सत्तगा तिरियं[1] ॥३॥

परभवायुः स्वभुज्यमानायुष्युत्कृष्टेन षण्मासेऽवशिष्टे देव-नारकाः नारं तैरश्चं चायुर्बध्नन्ति, तद्बन्धयोग्याः स्युरित्यर्थः । नर-तिर्यञ्चस्त्रिभागेऽवशिष्टे चत्वारि आयूंषि बध्नन्ति । भोगभूमिजाः षण्मासेऽवशिष्टे दैवमायुर्बध्नन्ति । एक-विकलेन्द्रियाः नारं तैरश्चं चायुर्बध्नन्ति । तेजोवायवः सप्तमपृथ्वीजाश्च तैरश्चमेवायुर्बध्नन्ति । नारकादीनामेकं स्व-स्वगत्यायुरेवोदेति १ । सत्त्वं परभवायुर्बन्धे उदयागतेन समं द्वे स्तः । अबद्धायुष्ये सत्त्वमेकमुदयागतमेव १ ॥२१॥

नवीन आयुके अबन्धकालमें नरकायुका उदय और नरकायुका सत्त्वरूप एक भंग होता है। तिर्यगायु या मनुष्यायुके बन्ध हो जाने पर नरकायुका उदय और नरकायुके सत्त्वके साथ तिर्यगायु और मनुष्यायुका सत्त्व पाया जाता है ॥२१॥

विशेषार्थ—आयुकर्म की उसके बन्ध-अबन्धकी अपेक्षा तीन दशाएँ होती हैं—१ परभवसम्बन्धी आयुके बँधनेसे पूर्वकी दशा, २ परभवसम्बन्धी आयुके बन्धकालकी दशा और ३ परभवसम्बन्धी आयुके बँध जानेके उत्तरकालकी दशा । इन तीनों दशाओंको क्रमसे अबन्धकाल, बन्धकाल और उपरतबन्धकाल कहते हैं। इनमेंसे नारकियोंके अबन्धकालमें नरकायुका उदय और नरकायुकी सत्तारूप एक भंग होता है। बन्धकालमें तिर्यगायुका बन्ध, नरकायुका उदय और तिर्यंच-नरकायुकी सत्ता, तथा मनुष्यायुका बन्ध, नरकायुका उदय और मनुष्य-नरकायुकी सत्ता ये दो भंग होते हैं। उपरतबन्धकालमें नरकायुका उदय और नरक-तिर्यगायुकी सत्ता, तथा नरकायुका उदय और नरक-मनुष्यायुकी सत्ता ये दो भंग होते हैं। इस प्रकार नरकगतिमें आयुके अबन्ध, बन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा कुल पाँच भंग होते हैं। मूलमें जो अंकसंदृष्टि दी है उसमें एकके अंकसे नरकायुका दोके अंकसे तिर्यगायुका तीनके अंकसे मनुष्यायुका और चारके अंकसे देवायुका संकेत किया गया है।

नरकायुके उक्त भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भंग	काल	बन्ध	उदय	सत्त्व
१	अबन्धकाल	०	नरकायु	नरकायु
२	बन्धकाल	तिर्यगायु	नरकायु	नरकायु, तिर्यगायु
३	,,	मनुष्यायु	नरकायु	,, मनुष्यायु
४	उपरतबन्धकाल	०	नरकायु	,, तिर्यगायु
५	,,	०	नरकायु	,, मनुष्यायु

१. गो० क० ६३९–६४० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब तिर्यगायुके भंग कहते हैं—

[1]तिरियाउयस्स* उदए चउण्हमाऊणऽबंध बंधे य ।
तिरियाउयं च संतं तिरियाई दोण्णि संताणि ॥२२॥

०	१	०	२	०	३	०	४	०
२	२	२	२	२	२	२	२	२
२	२।१	२।१	२।२	२।२	२।३	२।३	२।४	२।४

तिर्यगायुष उदये भुज्यमाने सति चतुर्णां नरक-तिर्यग्मनुष्यदेवायुषां अबन्धे बन्धे च सति तिर्यगायुः सत्त्वम् यद्भुज्यमानं तिर्यगायुस्तदेव सत्त्वम् २ । सर्वत्र चतुर्णामायुर्बन्धे उपरमे बन्धमग्रे यास्यति तत्र सर्वत्र तिर्यगायुरादिद्वयमेव सत्त्वम् । तथाहि—उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमाने २ अबन्धे सति ० यद्भुज्यमानं तिर्यगायुस्तदेव सत्त्वं ०/२/२ एको भङ्गः १ । तिर्यगायुरुदयागतभुज्यमाने प्रथमं नरकायुर्बद्ध्वा १ तदेव सत्त्वं १ भुज्यमानतिर्यगायुः २ सत्त्वं चेति १/२/२।१ द्वितीयो भङ्गः २ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमाने २ उपरमे नरकायुर्बन्धं करिष्यति तदेव सत्त्वम् १ । तिर्यगायुर्भुज्यमानं सत्त्वं च ०/२/२।१ इति तृतीयो भङ्गः ३ । भुज्यमानोदयागततिर्यगायुः २ तिर्यगायुर्बद्ध्वा २ तदेव सत्त्वं २ भुज्यमानसत्त्वं च इति चतुर्थो २/२/२।२ भङ्गः ४ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमानः सन् २ उपरिमबन्धे ० अग्रे तिर्यगायुर्बन्धं करिष्यति तदेव सत्त्वं ०/२/२।२ इति पञ्चमो भङ्गः ५ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमानः सन् २ मनुष्यायुर्बद्ध्वा तदेव सत्त्वं ३ भुज्यमानः सत्त्वं च ३/२/२।३ इति षष्ठो भङ्गः ६ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमानः सन् २ उपरिमबन्धे मनुष्यायुर्बन्धं करिष्यति तदेव सत्त्वं ३ भुज्यमानसत्त्वं च ०/२/२।३ इति सप्तमो भङ्गः ७ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमानः सन् २ चतुर्थदेवायुर्बद्ध्वा तदेव सत्त्वं ४ भुज्यमानसत्त्वं च ४/२/२।४ इति अष्टमो भङ्गः ८ । उदयागततिर्यगायुर्भुज्यमानः सन् अग्रे देवायुर्बन्धं करिष्यति, तदेव सत्त्वं ४ भुज्यमानसत्त्वं च २ ०/२/२।४ इति नवमो भङ्गः ॥२२॥

तथा समुच्चयरचना नवभङ्गाः प्रस्तारिताः—

बं०	०	ति १	०	ति २	०	म ३	०	दे ४	०
उ०	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २
स०	ति २	ति २।१	ति २।१	२।२	२।२	ति २।३	२।३	२।४	२।४

1. सं०पञ्चसं० ५, २८ ।

*ब तिरियाउस्स य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यगायुके उदयमें और चारों आयुकर्मोंके अबन्धकालमें, तथा बन्धकालमें क्रमशः तिर्यगायुकी सत्ता, और तिर्यगायुके साथ नरकादि चारों आयुकर्मोंमेंसे एक-एक आयुकी सत्ता, इस प्रकार दो आयुकर्मोंकी सत्ता पायी जाती है ॥२२॥

विशेषार्थ—तिर्यग्गतिमें अबन्धकालमें तिर्यंचायुका उदय और तिर्यंचायुकी सत्ता, यह एक भंग होता है। बन्धकालमें १ नरकायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय और नरक-तिर्यगायुकी सत्ता २ तिर्यगायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय और तिर्यञ्च-तिर्यगायुकी सत्ता, ३ मनुष्यायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय और मनुष्य-तिर्यगायुकी सत्ता; तथा ४ देवायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय, और देव-तिर्यगायुकी सत्ता, ये चार भंग होते हैं। उपरतबन्धकालमें १ तिर्यगायुका उदय, और नरक-तिर्यगायुकी सत्ता; २ तिर्यगायुका उदय और तिर्यञ्च-तिर्यगायुकी सत्ता; ३ तिर्यगायुका उदय और मनुष्य-तिर्यगायुकी सत्ता; तथा तिर्यगायुका उदय और देव-तिर्यगायुकी सत्ता; ये चार भंग होते हैं। इस प्रकार तिर्यग्गतिमें अबन्ध, बन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा आयुकर्मके कुल नौ भङ्ग होते हैं।

तिर्यगायुके उक्त भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भङ्ग	काल	बन्ध	उदय	सत्त्व
१	अबन्धकाल	०	तिर्यगायु	तिर्यगायु
२	बन्धकाल	नरकायु	,,	नरकायु, तिर्यगायु
३	,,	तिर्यगायु	,,	तिर्यगायु, तिर्यगायु
४	,,	मनुष्यायु	,,	मनुष्यायु, तिर्यगायु
५	,,	देवायु	,,	देवायु, तिर्यगायु
६	उपरतबन्धकाल	०	,,	तिर्यगायु, नरकायु
७	,,	०	,,	तिर्यगायु, तिर्यगायु
८	,,	०	,,	तिर्यगायु, मनुष्यायु
९	,,	०	,,	तिर्यगायु, देवायु

अब मनुष्यायुके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]मणुयाउस्स य उदए चउण्हमाऊणऽबंध बंधे य।
मणुयाउयं च संतं मणुयाई दोण्णि संताणि ॥२३॥

०	१	०	२	०	३	०	४	०
३	३	३	३	३	३	३	३	३
३	३।१	३।१	३।२	३।२	३।३	३।३	३।४	३।४

मनुष्यायुष उदये चतुर्णां नरक-तिर्यग्मनुष्य-देवायुषामबन्धके चतुर्णामायुषां बन्धके च मनुष्यायुः-सत्त्वम् ३। अन्यत्र मनुष्यायुरादिद्वयं सत्त्वं १। तथाहि—उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् ३ अबन्धे सति तदेव भुज्यमानमेव सत्त्वम्। ०/३/३ प्रथमो भङ्गः। उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् नरकायुर्बद्ध्वा तदेव सत्त्वं १ भुज्यमानसत्त्वं च १/३/३।१ द्वितीयो भङ्गः २। उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः अबन्धेऽग्रे नरकायु-

1. सं० पञ्चसं० ५, २६।

बन्धं करिष्यति, तदेव सत्त्वं भुज्यमानसत्त्वं च ०/३/३।१ तृतीयो भङ्गः३। उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् तिर्यगायु २ बद्ध्वा तदेव सत्त्वं २ भुज्यमानसत्त्वं च २/३/३।२ चतुर्थो भङ्गः ४। मनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् अबन्धे तिर्यगायु-र्बन्धयिष्यति, तदेव सत्त्वं भुज्यमानसत्त्वं च ०/३/३।२ पञ्चमो भङ्गः ५। उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् तृतीयं मनुष्यायुर्बद्ध्वा ३ तदेव सत्त्वं भुज्यमानसत्त्वं च ३/३/३।३ षष्ठो भङ्गः ६। मनुष्यायुर्भुज्यमानः अबन्धे ० अग्रे मनु-ष्यायुर्बन्धयिष्यति तदेव सत्त्वं ३ भुज्यमानसत्त्वं ३ च ०/३/३।३ सप्तमो भङ्गः ७। उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः सन् देवायुश्चतुर्थं ४ बद्ध्वा तदेव सत्त्वं भुज्यमानसत्त्वं च ४/३/३।४ अष्टमो भङ्गः ८। उदयागतमनुष्यायुर्भुज्यमानः अग्रे देवायुष्यं बन्धयिष्यति तदेव सत्त्वं ४ भुज्यमानसत्त्वं च ०/३/३।४ नवमो भङ्गः ९ ॥२३॥

बं०	०	णि १	०	ति २	०	म ३	०	दे ४	०
उ०	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३
स०	म ३	म ३।१	म ३।१	म ३।२	म ३।२	म ३।३	म ३।३	म ३ दे ४	म ३ दे ४

इति मनुष्यायुषो नव भङ्गाः समाप्ताः।

मनुष्यायुके उदयमें और चारों आयुकर्मोंके अबन्धकालमें तथा बन्धकालमें क्रमशः मनुष्यायुकी सत्ता, एवं मनुष्यायुकी सत्ताके साथ नरकादि शेष चारों आयुकर्मोंमेंसे एक-एक आयुकी सत्ता; इस प्रकार दो आयुकर्मोंको सत्ता पायी जाती है ॥२३॥

विशेषार्थ—मनुष्यगतिमें भी तिर्यग्गतिके समान ही नौ भङ्ग होते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—अबन्धकालमें मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायुकी सत्ता रूप एक ही भङ्ग होता है। बन्धकालमें १ नरकायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और नरक-मनुष्यायुकी सत्ता, २ तिर्यगायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और तिर्यग्-मनुष्यायुकी सत्ता; ३ मनुष्यायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और मनुष्य-मनुष्यायुकी सत्ता; तथा ४ देवायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और देव-मनुष्यायुकी सत्ता; ये चार भङ्ग होते हैं। उपरतबन्धकालमें १ मनुष्यायुका उदय, और नरक-मनुष्यायुकी सत्ता; २ मनुष्यायुका उदय और तिर्यग्मनुष्यायुकी सत्ता; ३ मनुष्यायुका उदय और मनुष्य-मनुष्यायुकी सत्ता; तथा ४ मनुष्यायुका उदय और देव-मनुष्यायुकी सत्ता; ये चार भङ्ग होते हैं। इस प्रकार मनुष्यगतिमें अबन्ध, बन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा कुल नौ बन्ध होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यायुके उक्त भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भङ्ग	काल	बन्ध	उदय	सत्ता	
१	अबन्धकाल	०	मनुष्यायु	मनुष्यायु	
२	बन्धकाल	नरकायु	,,	मनुष्यायु	नरकायु
३	,,	तिर्यगायु	,,	,,	तिर्यगायु
४	,,	मनुष्यायु	,,	,,	मनुष्यायु
५	,,	देवायु	,,	,,	देवायु
६	उपरतबन्धकाल	०	,,	,,	नरकायु
७	,,	०	,,	,,	तिर्यगायु
८	,,	०	,,	,,	मनुष्यायु
९	,,	०	,,	,,	देवायु

अब देवायुके भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

[1]देवाउस्स य उदये तिरिय-मणुयाऊणऽबंध बंधे य ।
देवाउयं च संतं देवाई दोण्णि संताणि ॥२४॥

०	२	०	३	०
४	४	४	४	४
४	४।२	४।२	४।३	४।३

देवायुष उदये भुज्यमाने तिर्यग्मनुष्यायुषोरबन्धके बन्धके च देवायुः-सत्त्वं बन्धकादिचतुर्षु भङ्गेषु देवायुस्तिर्यगायुर्द्वयं सत्त्वं २, देवायु४र्मनुष्यायु३र्द्वयं सत्त्वं च [इति पञ्च भङ्गाः ५ ।] ॥२४॥

बं०	०	ति२	०	म३	०
उ०	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४
स०	दे ४	दे ४।२	दे ४।२	दे ४।३	दे ४।३

इति देवायुषः पञ्च भङ्गाः समाप्ताः ।

देवायुके उदयमें और तिर्यगायु तथा मनुष्यायुके अबन्ध और बन्धकालमें क्रमशः देवायुकी सत्ता और देवायु-मनुष्यायु तथा देवायु-तिर्यगायुकी सत्ता पायी जाती है ॥२४॥

विशेषार्थ—देवगतिमें नरकगतिके समान ही पाँच भङ्ग होते हैं, इसका कारण यह है कि जिस प्रकार नारकियोंके नरकायु और देवायुका बन्ध नहीं होता है, उसी प्रकार देवोंके भी इन्हीं दोनों आयुकर्मोंका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि स्वभावतः देव मरकर देव और नारकियोंमें, तथा नारकी मरकर नारकी और देवोंमें जन्म नहीं लेते हैं। देवगतिके पाँच भङ्गोंका विवरण इस प्रकार है—अबन्धकालमें देवायुका उदय और देवायुका सत्त्वरूप एक ही भङ्ग होता है। बन्धकालमें १ तिर्यगायुका बन्ध, देवायुका उदय और देव-तिर्यगायुकी सत्ता; २ मनुष्यायुका बन्ध, देवायुका उदय और देव-मनुष्यायुकी सत्ता; ये दो भङ्ग होते हैं। उपरत बन्धकालमें देवायुका १ उदय और देव-तिर्यगायुकी सत्ता; तथा २ देवायुका उदय और देव-मनुष्यायुकी सत्ता, ये दो भङ्ग होते हैं। इस प्रकार देवगतिमें कुल पाँच भङ्ग होते हैं।

1. सं०पञ्चसं० ५, ३० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवायुके भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

भङ्ग	काल	बन्ध	उदय	सत्ता
१	अबन्धकाल	०	देवायु	देवायु
२	बन्धकाल	तिर्यगायु	,,	देवायु तिर्यगायु
३	,,	मनुष्यायु	,,	,, मनुष्यायु
४	उपरतबन्धकाल	०	,,	,, तिर्यगायु
५	,,	०	,,	,, मनुष्यायु

अब मोहनीयकर्मके बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०१०] [1]बावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव नव पंच ।
चउ-तिय-दुयं च एयं बंधट्ठाणाणि मोहस्स[1] ॥२५॥

२२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१

अथ मोहनीयस्य बन्धस्थानानि, तथा तानि गुणस्थानेषु गाथापञ्चकेनाऽऽह—['बावीसमेक्कवीसं' इत्यादि ।] मोहस्य बन्धस्थानानि द्वाविंशतिकं २२ एकविंशतिकं २१ सप्तदशकं १७ त्रयोदशकं १३ नवकं ९ पञ्चकं ५ चतुष्कं ४ त्रिकं ३ द्विकं २ एककं १ चेति दश स्थानानि भवन्ति ॥२५॥

२२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१

बाईसप्रकृतिक, इक्कीसप्रकृतिक, सत्तरहप्रकृतिक, तेरहप्रकृतिक, नौप्रकृतिक, पाँच-प्रकृतिक, चारप्रकृतिक, तीनप्रकृतिक, दोप्रकृतिक और एकप्रकृतिक; इस प्रकार मोहनीयकर्मके दश बन्धस्थान होते हैं ॥२५॥

इनकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—२२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१ ।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्मकी उत्तरप्रकृतियाँ अट्ठाईस हैं उनमेंसे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिका बन्ध नहीं होता है, अतएव बन्धयोग्य शेष छब्बीस प्रकृतियाँ रहती हैं । इनमें भी तीन वेदोंका एक साथ बन्ध नहीं होता, किन्तु एक कालमें एक वेदका ही बन्ध होता है । तथा हास्य-रति और अरति-शोक; इन दोनों युगलोंमेंसे एक कालमें किसी एक युगलका ही बन्ध होता है । इस प्रकार छब्बीस प्रकृतियोंमेंसे दो वेद और किसी एक युगलके कम हो जानेपर बाईस प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, जिनका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थानमें होता है । मिथ्यात्वप्रकृतिका बन्ध पहले गुणस्थान तक ही होता है, अतः दूसरे गुणस्थानमें उसके बन्ध न होनेसे शेष इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है । नपुंसकवेदका भी बन्ध यद्यपि दूसरे गुणस्थानमें नहीं होता है, तथापि उसके न बँधनेसे इक्कीस प्रकृतियोंकी संख्यामें कोई अन्तर नहीं पड़ता । हाँ, भङ्गोंमें अन्तर अवश्य हो जाता है । अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कका बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है, आगे नहीं । अतएव उक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे चार प्रकृतियोंके कम कर देनेपर तीसरे और चौथे गुणस्थानमें सत्तरह प्रकृतिकस्थानका बन्ध होता है । यद्यपि इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदका भी बन्ध नहीं होताहै, तथापि उससे सत्तरह प्रकृतियोंकी संख्यामें कोई अन्तर नहीं पड़ता । हाँ, भंगोंमें भेद अवश्य हो जाता है । अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कका बन्ध चौथे गुणस्थान तक ही होता है, आगे नहीं । अतः सत्तरह प्रकृतिस्थानमेंसे उनके कम कर देनेपर पाँचवें गुणस्थानमें तेरहप्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है । प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कका बन्ध पाँचवें गुणस्थान

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३१-३२ ।

१. सप्ततिका० १० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक ही होता है, आगे नहीं। अतः तेरह प्रकृतिकस्थानमेंसे उनके कम कर देनेपर छठे गुणस्थानमें नौ प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। अरति और शोकप्रकृतिका बन्ध यद्यपि छठे गुणस्थान तक ही होता है, तथापि हास्य और रति प्रकृतिके बन्ध होनेसे सातवें और आठवें गुणस्थानमें भी नौ प्रकृतिक स्थानके बन्ध होनेमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हास्य-रति और भय-जुगुप्साका बन्ध आठवें गुणस्थान तक ही होता है, आगे नहीं। अतः नौ प्रकृतिक स्थानमेंसे इन चार के कम हो जानेसे शेष पाँच प्रकृतिक स्थानका बन्ध नवें गुणस्थानके प्रथम भाग तक होता है। नवें गुणस्थानके दूसरे भागमें पुरुषवेदका बन्ध नहीं होता, अतः वहाँ पर चार प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। तीसरे भागमें संज्वलन क्रोधका बन्ध नहीं होता, अतः वहाँ पर तीन प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। चौथे भागमें संज्वलनमानका बन्ध नहीं होता है, अतः वहाँ पर दो प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। पाँचवें भागमें संज्वलन मायाका बन्ध नहीं होता, अतः वहाँ पर एक प्रकृतिक स्थानका बन्ध होता है। इस प्रकार नवें गुणस्थानके पाँच भागोंमें क्रमसे पाँच प्रकृतिक, चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक ये पाँच बन्धस्थान होते हैं। दशवें गुणस्थानमें एक प्रकृतिक बन्धस्थानका भी अभाव है; क्योंकि वहाँ पर मोहनीयकर्मके बन्धका कारणभूत बादर कषाय नहीं पाया जाता।

अब भाष्यगाथाकार उक्त अर्थका ही स्पष्टीकरण करते हैं—

[1]मिच्छम्मि य बावीसा मिच्छा सोलह कसाय वेदो य।
हस्सजुयलेक्कणिंदाभएण विदिए दु मिच्छ-संढूणा ॥२६॥

२
२२
[2]मिच्छे २२ पत्थारो— १ १ १ । सासणे २० पत्थारो—
१६
१

२
२ २
१ १
१६

मिथ्यात्वे मिथ्यात्वं १ षोडश कषायाः १६ वेदानां त्रयाणां मध्ये एकतरवेदः १ हास्यरतियुग्माऽरति-शोकयुग्मयोर्मध्ये एकतरयुग्मं २ भययुग्मं २ सर्वस्मिन् मिलिते द्वाविंशतिकं मोहनीयबन्धस्थानं मिथ्यादृष्टौ मिथ्यादृष्टिर्बध्नातीत्यर्थः। मिथ्यादृष्टौ बन्धकूटे एकस्मिन् मिथ्यादृष्टिजीवे द्वाविंशतिकं बन्धस्थानं सम्भवति।

२ भ० जु
२ । २ हा
१ १ १ वे तद्भङ्गाः हास्यारतिद्विकाभ्यां २ वेदत्रये ३ हते षट्। सासादनगुणस्थाने मिथ्यात्व-पण्ढवेदोना
१६ क
१ मि

२
२।२
एते २१। प्रस्तारः कूटं वा १ १ षोडश कषाया १६ भयद्वयं २ वेदयोर्द्विकयोर्मध्ये १ हास्यदियुग्मं २
१६

मिलिते एकविंशतिकं २१। तद्भङ्गा वेदद्वय-युग्मद्वयजाश्चत्वारः ॥२६॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल, तथा भय और जुगुप्सा, इन बाईस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। दूसरे गुणस्थानमें मिथ्यात्व और नपुंसकवेदके विना शेष इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है ॥२६॥

उक्त दोनों गुणस्थानोंके बन्धप्रकृतियोंकी प्रस्तार-रचना मूलमें दी है।

1. सं० पञ्चसं० ५, ३३-३४। 2. ५, 'मिथ्यादृष्टौ' इत्यादिगद्यभागः। (पृ० १५५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]पढमचउक्केणित्थीरहिया मिस्से अविरयसम्मे य ।
बिदिएणूणा देसे छट्ठे तइऊण सत्तमट्ठे य ॥२७॥

मिस्ससस्स असंजयाणं १७ पत्थारो—२, २ २, १, १२ देसे १३ पत्थारो—२, २ २, १, ८ पमत्ते ९ पत्थारो—२, २ २, १, ४ ।

अनन्तानुबन्धिप्रथमचतुर्थ-(ष्क) स्त्रीवेदेन १ रहिताः पूर्वोक्ताः सप्तदशकं १७ मिश्रासंयतयोः प्रस्तारः २, २ २, १, १२ । द्वादशकषाय १२ भयद्विकेषु २ पुंवेदे १ द्विकयोरेकस्मिन् २ च मिलिते सप्तदशकम् १७ । तद्भङ्गौ हास्यारतिद्विकजौ द्वौ १७/२ । १७/२ । अप्रत्याख्यानद्वितीयचतुष्कोनाः त्रयोदशे १३ प्रस्तारः देशसंयतगुणस्थाने २, २ २, १, ८ । अष्टकषाय-भयद्वय १० पुंवेदे द्विकयोरेकस्मिन् २ च मिलिते त्रयोदशकं १३ । तद्भङ्गाः द्विकद्वयजौ द्वौ १३/२ । प्रत्याख्यानतृतीयचतुष्केन रहिताः षष्ठे, प्रमत्ते सप्तमाष्टमयोश्च प्रमत्ते ९ । प्रस्तारः २, २ २, १, ४ कषायचतुष्क-भयद्विक-पुंवेदेषु ७ द्विकयोरेकस्मिंश्च मिलिते नवकम् । तद्भङ्गाः द्विकद्वयजौ ९/२ ॥२७॥

प्रथम कषाय अनन्तानुबन्धिचतुष्क और स्त्रीवेदके विना शेष सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध मिश्र और अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें होता है। द्वितीय कषायचतुष्कके विना शेष तेरह प्रकृतियोंका बन्ध देशविरत गुणस्थानमें होता है। तृतीय कषायचतुष्कके विना शेष नौ प्रकृतियोंका बन्ध छठे, सातवें और आठवें गुणस्थानमें होता है ॥२७॥

उक्त गुणस्थानोंके बन्ध-प्रकृतियोंकी प्रस्तार-रचना मूलमें दी है।

[2]अरइ-सोएणूणा परम्मि पुंवेय-संजलणा ।
एगेगूणा एवं दह ठाणा मोहबंधम्मि ॥२८॥

अप्पमत्तापुव्वकरणेसु ९ पत्थारो—२, २ २, १, ४ अणियट्टिम्मि—५।४।३।२।१ ।

अरतिशोकाभ्यामूनाः अप्रमत्ते अपूर्वकरणे च प्रस्तारः ९ । चतुःसंज्वलनभयद्विकेषु ६ पुंवेदे १ हास्यद्विके २ च मिलिते नवकम् २, २ २, १, ४ । तद्भङ्ग एकः । अत्र हास्यद्विक-भयद्विके व्युच्छिन्ने परस्मिन् अनिवृत्ति-

1. सं० पञ्चसं० ५, ३४-३५ । 2. ५, ३६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणे प्रस्तारः ५। कषायचतुष्कं पुंवेद इति पञ्चकम् $\frac{१}{४}$। तद्भङ्गः १। अत्र पुंवेदो व्युच्छिन्नः। द्वितीयभागे कषायचतुष्कम् ४। तद्भङ्गः $\frac{४}{१}$। क्रोधो व्युच्छिन्नः। तृतीयभागे कषायत्रिकम् ३। भङ्गः $\frac{३}{१}$। मानो व्युच्छिन्नः। चतुर्थभागे कषायद्वयम् २। भङ्ग एककः $\frac{२}{१}$। माया व्युच्छिन्ना। पञ्चमभागे लोभ एकः १। भङ्ग एकः $\frac{१}{१}$। इति मोहबन्धे दश स्थानानि ॥२८॥

अरति और शोकका बन्ध छठे गुणस्थान तक ही होता है। हास्य-रति और भय-जुगुप्सा-का बन्ध आठवें गुणस्थान तक होता है। अतएव नवें गुणस्थानके प्रथम भागमें पुरुषवेद और संज्वलनचतुष्क, इन पाँच प्रकृतियोंका बन्ध होता है। नवें गुणस्थानके आगेके चार भागोंमें क्रमसे पुरुषवेद आदि एक-एक प्रकृतिका बन्ध कम होता जाता है, अतः चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक स्थानोंका बन्ध उन भागोंमें होता है। इस प्रकार मोहनीय कर्मके बन्धके विषयमें उक्त दश स्थान होते हैं ॥२८॥

उक्त गुणस्थानोंके बन्धप्रकृतियोंकी प्रस्तार-रचना मूलमें दी है।

अब उपर्युक्त बन्धस्थानोंके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०११] [1]छव्वावीसे चउ इगिवीसे सत्तरस तेर दो दोसु।
णवबंधए वि दोण्णि य एगेगमदो परं भंगा[1] ॥२६॥

६।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

उक्तभङ्गसंख्यामाह—['छव्वावीसे चउ' इत्यादि।] मिथ्यात्वाद्यनिवृत्तिकरणान्तेषूक्तमोहनीय-बन्धस्थानेषु भङ्गाः द्वाविंशतिके षट्, एकविंशतिके चत्वारः, सप्तदशके द्वौ, त्रयोदशके द्वौ, नवकबन्धे द्वौ। अतः परं उपरि सर्वस्थानेषु एकैको भङ्गः ॥२६॥

६।४।२।२।२।१।१।१।१।१

२२	२१	१७	१७	१३	९	९	९	५	४	३	२	१
६	४	२	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१

भङ्ग इति कोऽर्थः ? (?) मिथ्यात्वे २२ षट् सदृशभङ्गा भवन्ति। सर्वत्र ज्ञेयं यथासम्भवम्। इति मोहस्य बन्धस्थानानि।

बाईसप्रकृतिक बन्धस्थानके छह भंग होते हैं। इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थानके चार भङ्ग होते हैं। सत्तरह और तेरह प्रकृतिक बन्धस्थानके दो दो भङ्ग होते हैं। नौप्रकृतिक बन्धस्थानके भी दो भङ्ग होते हैं। इससे परवर्ती पाँचप्रकृतिक आदि शेष बन्धस्थानोंका एक एक भङ्ग होता है ॥२६॥

उक्त बन्धस्थानोंके भङ्गोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनिवृत्तिकरण				
बन्धस्थान	२२	२१	१७	१७	१३	९	९	९	५	४	३	२	१
भङ्ग	६	४	२	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१

1. सं० पञ्चसं० ५, ३७।
१. सप्ततिका० १४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मोहनीय कर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०१२] [1]एक्कं च दो व चत्तारि तदो एयाधिया दसुक्कस्सं ।
ओघेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणाणि णव होंति ॥३०॥

१०।९।८।७।६।५।४।२।१

अथ मोहस्योदयस्थानानि गुणस्थानेषु तानि च योजयति गाथात्रयेण--['एक्कं च दो व चत्तारि' इत्यादि ।] मोहनीये उदयस्थानानि एककं १ द्विकं २ चतुष्कं ४ तत एकाधिका दशोत्कृष्टं यावत् पञ्चकं ५ षट्कं ६ सप्तकं ७ अष्टकं ८ नवकं ९ दशकं १० ओघवद् गुणस्थानोक्तवत् । मोहनीये एवं नवोदयस्थानानि भवन्ति ॥३०॥ १०।९।८।७।६।५।४।२।१

ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मके उदयस्थान नौ होते हैं। गाथामें उनका निर्देश पश्चादानुपूर्वीसे किया गया है, किन्तु कथनकी सुविधासे उन्हें इस प्रकार जानना चाहिए—दशप्रकृतिक, नौप्रकृतिक, आठप्रकृतिक, सातप्रकृतिक, छह्प्रकृतिक; पाँचप्रकृतिक, चारप्रकृतिक, दोप्रकृतिक और एकप्रकृतिक; ईस प्रकार मोहकर्मके सर्व उदयस्थान नौ होते हैं ॥३०॥

इसकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१०।९।८।७।६।५।४।२।१ ।

अब भाष्यगाथाकार उक्त उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंको कहते हैं—

[2]मिच्छा कोहचउक्कं अण्णदरं तिवेद एक्कयरं ।
हस्सादिजुगस्सेयं भयणिंदा होंति दस उदया ॥३१॥
[3]मिच्छत्तण कोहाई विदियं तदियं च हाणए कमसो ।
भयजुयलेगं दोण्णि य हस्साई वेदएक्कयरं ॥३२॥

[4]एवं दसगोदयसमासादो* कमेण मिच्छत्तादीहि अवणिदेहिं सेसोदया ।९।८।७।६।५।४।२।१।

मिथ्यात्वमेकं १ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधमानमायालोभकषायाणां षोडशानां मध्ये अन्यतमक्रोधादिचतुष्कं ४ त्रिषु वेदेष्वेकतमो वेदः १ हास्यरत्यरतिशोकयुगलयोर्मध्ये एकतरयुग्मं २ भयं जुगुप्सा १ चेति १।४।१।२।१।१ एकीकृता उदया दश द्वाविंशतिबन्धस्थाने मिथ्यादृष्टौ एकस्मिन् जीवे १० सम्भवन्ति । दशोदयस्थानतो मिथ्यात्वमेकं हीयते हीनः क्रियते, तदा सासादने उदयस्थानं नवकम् ९ । ततः अनन्तानुबन्धिक्रोधादिचतुष्कत्यागे अपरचतुष्कत्रयैकतमत्रयग्रहणे एकतरवेदादिपञ्चकग्रहणे च ५ एवं मोहप्रकृत्युदयस्थानं अष्टकम् ८ मिश्रस्य सम्यग्मिथ्यादृष्टेरविरतगुणस्थानस्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेः वा क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च भवति ८ । ततो द्वितीयाप्रत्याख्यानचतुष्कत्यागे अन्यचतुष्कद्वयान्यतरद्वयग्रहणे २ एकतरवेदादिपञ्चकग्रहणे च ५ एवं मोहप्रकृत्युदयस्थानं सप्तकम् ७ संयतासंयतस्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च भवति ७ । ततस्तृतीयप्रत्याख्यानचतुष्कत्यागे चतुर्णां संज्वलनानामेकतरग्रहणे १ एकतरवेदादिपञ्चकग्रहणे च ५ एवं षट् मोहप्रकृतयः औपशमिक-क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणानां भवन्ति ६ । ततो भयमेकं हापयेद् दूरीक्रियेत, तदा मोहप्रकृतिपञ्चकस्थानम् ५ । ततो जुगुप्सात्यागे चतुरुदयस्थानं प्रमत्तादीनां च भवति ४ । ततो हास्यादिद्वयत्यागे चतुर्णां संज्वलनानामेकतरग्रहणे १ त्रयाणां वेदानामेकतरग्रहणे १ सवेदस्यानिवृत्तिकरणस्य द्विकमुदयस्थानं २ निर्वेदस्यानिवृत्तिकरणस्य चतुर्णां संज्वलनानामेकतरेणैकमुदयस्थानम् । अबन्धकस्य सूक्ष्मसाम्परायस्य सूक्ष्मलोभस्यैकमुदयस्थानम् १ ॥३१-३२॥

एवं दशकोदयसमूहात्क्रमेण मिथ्यात्वादिभिरपनीतैः शेषोदयाः ९।८।७।६।५।४।२।१।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३८ । 2. ५, ३९-४० । 3. ५, ४१ । 4. ५, 'अस्यार्थः—दशोदयस्थानतो' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १५७) ।

२. सप्ततिका० ११ ।

*द् सयासादो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि चारों जातिकी सोलह कषायोंमेंसे कोई एक क्रोधादि-चतुष्क, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक, इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन दश प्रकृतियोंका उदय एक जीवमें एक साथ मिथ्यात्वगुणस्थानमें होता है। इस दशप्रकृतिक उदयस्थानमेंसे मिथ्यात्वके कम कर देने पर शेष नौ प्रकृतियोंका उदय दूसरे गुणस्थानमें होता है। नौप्रकृतिक उदयस्थानमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोधादि एक कषायके कम कर देने पर शेष आठ प्रकृतियोंका उदय तीसरे और चौथे गुणस्थानमें होता है। पुनः क्रमसे दूसरी और तीसरी कषायके कम कर देने पर सात प्रकृतियोंका उदय पाँचवें गुणस्थानमें और छह प्रकृतियोंका उदय छठे सातवें और आठवें गुणस्थानमें होता है। पुनः भययुगलमेंसे एकके कम कर देने पर पाँच प्रकृतियोंका और दोनोंके कम कर देने पर चार प्रकृतियोंका उदय भी छठे, सातवें और आठवें गुणस्थानोंमें होता है। पुनः हास्ययुगलके कम कर देने पर पुरुषवेद और कोई एक संज्वलन कषाय इन दो प्रकृतियोंका उदय नवें गुणस्थानके सवेद भाग तक होता है। पुनः पुरुषवेदके भी कम कर देने पर एकप्रकृतिक उदयस्थान नवें गुणस्थानके अवेद भागसे लेकर दशवें गुणस्थानके अन्तिम समय तक होता है ॥३१-३२॥

इस प्रकार दशप्रकृतिक उदयस्थानमेंसे क्रमशः मिथ्यात्व आदिके कम करने पर शेष नौ, आठ आदि प्रकृतिक उदयस्थान हो जाते हैं। उनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१०।९।८।७।६।५।४।२।१।

अब मोहनीय कर्मके सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०१३] [1]अट्ठ य सत्त य छक्कय चउ तिय दुय एय अहियवीसा य ।
तेरे बारेयारं एत्तो पंचादि एगूणं ॥३३॥

२८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

अथ मोहनीयस्य सत्त्वस्थानकं तन्नियोगं च गाथाचतुष्केणाऽऽह—['अट्ठ य सत्त य छक्कय' इत्यादि ।] अष्ट-सप्त-षट्-चतुस्त्रिद्वयेकाधिकविंशतयः त्रयोदश द्वादशैकादश इतः परं पञ्चाद्येकैकोनं च सत्त्वस्थानं स्यात् ॥३३॥

२८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१। एवं मोहप्रकृतिसत्त्वस्थानानि पञ्चदश भवन्ति १५।

अट्ठाईस, सत्ताइस, छब्बीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक, इस प्रकार मोहकर्मकी प्रकृतियोंके पन्द्रह सत्त्वस्थान होते हैं ॥३३॥

इन सत्त्वस्थानोंकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १।

[मूलगा०१४] संतस्स पयडिठाणाणि ताणि मोहस्स होंति पण्णरसं ।
बंधोदय-संते पुणु भंगवियप्पा बहुं जाणे[2] ॥३४॥

मोहस्य सत्त्वप्रकृतिस्थानानि तानि पञ्चदश भवन्ति । पुनः मोहस्य बन्धोदयसत्त्वस्थानेषु बहून् भङ्ग-विकल्पान् जानीहि ॥३४॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४२-४३ ।

१. सप्ततिका० १२ । २. सप्ततिका० १३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानोंकी अपेक्षा मोहकर्मके भङ्गोंके बहुतसे विकल्प होते हैं, उन्हें जानना चाहिए ॥३४॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त सत्तास्थानोंकी प्रकृतियोंका निरूपण करते हैं—

[1]मोहे संता सव्वा वीसा पुण सत्त-छहिहि संजुत्ता ।
उव्विल्लियम्मि सम्मे सम्मामिच्छे य अट्ठवीसाओ ॥३५॥

२८।२७।२६।

[2]खविए अणकोहाई मिच्छे मिस्से य सम्म अडकसाए ।
संढित्थि हस्सछक्के पुरिसे संजलणकोहाई ॥३६॥

एवं सेसाणि संतट्ठाणाणि ।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

मोहे सत्त्वप्रकृतयः सर्वाः अष्टाविंशतिर्भवन्ति २८ । एतेभ्यः अष्टाविंशतेर्मध्यात्सम्यक्त्वप्रकृतौ उद्वेल्लितायां सप्तविंशतिकं [सत्त्वस्थानं] २७ भवति । पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे उद्वेल्लिते षड्विंशतिकं सत्त्वस्थानं २६ भवति । अष्टाविंशतिके अनन्तानुबन्धिक्रोधादिचतुष्के क्षपिते विसंयोजिते वा चतुर्विंशतिकं सत्त्वस्थानकम् २४। पुनर्मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिकं सत्त्वस्थानम् २३। पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिकं सत्त्वस्थानम् २२ । पुनः सम्यक्त्वे क्षपिते एकविंशतिकं सत्त्वस्थानम् २१ । पुनः मध्यमप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषायाष्टके क्षपिते त्रयोदशकं सत्त्वस्थानम् १३ । पुनः षण्ढे वा स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादशकं सत्त्वस्थानम् १२ । पुनः स्त्रीवेदे वा षण्ढे वा क्षपिते एकादशकं सत्त्वस्थानम् ११ । पुनः षण्णोकषाये क्षपिते पञ्चकं सत्त्वस्थानम् ५ । पुंवेदे क्षपिते चतुष्कं सत्त्वस्थानम् ४ । संज्वलनक्रोधे क्षपिते त्रिकं सत्त्वस्थानम् ३ । पुनः संज्वलनमाने क्षपिते द्विकं सत्त्वस्थानम् २ । पुनः संज्वलनमायायां क्षपितायामेककं सत्त्वस्थानम् १ पुनर्बादरलोभे क्षपिते सूक्ष्मलोभरूपमेककम् १ । उभयत्र लोभसामान्येनैक्यम् ॥३५–३६॥

एवं मोहनीयस्य सत्त्वस्थानानि २८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

अमीषां पञ्चदशानां गुणस्थानसम्भवं गोम्मटसारोक्तगाथामाह—

तिण्णेगे एगेगं दो मिस्से चदुसु पण णियट्टीए ।
तिण्णि य थूलेकारं सुहुमे चत्तारि तिण्णि उवसंते[1] ॥४॥

मि ३ । सा १ मि २ । अ ५ । दे ५ । प्र ५ । अप्र ५ । अपू ३ अनि ११ । सू ४ । उ ३ । तथाहि—मिथ्यादृष्टौ २८।२७।२६। सम्यक्त्व-मिश्रप्रकृत्युद्वेलनयोश्चतुर्गतिजीवानां तत्र करणात् । सासादने २८ । मिश्रे २८ । २४ । विसंयोजितानन्तानुबन्धिनोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वोदये तत्राऽऽगमनात् । असंयतादिचतुर्षु प्रत्येकं २८ । २४ । २३ । २२ । २१ । विसंयोजितानन्तानुबन्धिनः क्षपितमिथ्यात्वादित्रयाणां च तेषु सम्भवात्, अनन्तानुबन्ध्यादिसप्तकस्य क्षयाद्वा । उपशमश्रेण्यां चतुर्गुणस्थानेषु प्रत्येकं २८ । २४ । २१ । वियोजितानन्तानुबन्धिनः उपशमित - क्षयोपशमकस्य क्षपितदर्शनमोहसप्तकस्य तत्सत्त्वस्य च तत्रारोहणात् । क्षपकश्रेण्यामपूर्वकरणेऽष्टकषायानिवृत्तिकरणे च एकविंशतिकं २१ स्थानम् । तत उपरि पुंवेदोदयारूढस्य पञ्चकबन्धकानिवृत्तिकरणे त्रयोदशकम् १३ । द्वादकै १२ कादशकानि ११ । अष्टकषायक्षपणानन्तरं तत्र षण्ढस्त्रीवेदयोः क्रमशः क्षपणात् । स्त्रीवेदोदयारूढस्य तत्त्रयोदशकम् १३ । षण्ढे क्षपिते च द्वादशकम् १२ । षण्ढोदयारूढस्य तत्र त्रयोदशकमेव १३, स्त्रीपुंवेदयोर्युगपत् क्षपणाप्रारम्भात् । एवमनिवृत्तिकरणे एकादश सत्त्वस्थानानि ११ । सूक्ष्मसाम्पराये उपशमश्रेण्यां २८ । २४ । २१ । क्षपकक्षपकश्रेण्यां सूक्ष्मलोभरूपैकम् १ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४४ । 2. ५, ४५-४७ ।

१. गो० क० ५०६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थानेषु मोहनीयस्य बन्धादिस्थानयन्त्रम्—

गुण०	बंध०	उदय०	सत्त्व०	बन्धस्था०	उदयस्था०	सत्त्वस्थानानि	
मि०	१	४	३	२२	१०,९,८,७	२८,२७,२६	
सा०	१	३	१	२१	९,८,७	२८	
मि०	१	३	२	१७	९,८,७	२८,२४	
अ०	१	४	५	१७	९,८,७,६	२८,२४,२३,२२,२१	
दे०	१	४	५	१३	८,७,६,५	२८,२४,२३,२२,२१	
प्र०	१	४	५	९	७,६,५,४	२८,२४,२३,२२,२१	
अप्र०	१	४	५	९	७,६,५,४	२८,२४,२३,२२,२१	
						उपशमश्रेण्यां	क्षपकश्रेण्याम्
अपू०	१	३	३	९	६,५,४	२८,२४,२१	२१
अनि०	५	२	११	५,४,३, २,१	२ १	२८,२४,२१	२१,१३,१२,११,५,४, ३,२,१
सू०	०	१	४	०	१	२८,२४,२१	१
उप०	०	०	३	०	०	२८,२४,२१	०
क्षी०	०	०	०	०	०	०	०

अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थानमें मोहकर्मकी सभी प्रकृतियोंकी सत्ता होती है। पुनः अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थानमेंसे सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना होनेपर सत्ताईसप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेपर सादिमिथ्यादृष्टिके अथवा अनादिमिथ्यादृष्टिके छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थानोंमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चतुष्कके क्षपित अर्थात् विसंयोजित कर देनेपर चौबीसप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः मिथ्यात्वके क्षय करनेपर तेईसप्रकृतिक सम्यग्मिथ्यात्वके क्षय करनेपर बाईसप्रकृतिक और सम्यक्त्वप्रकृतिके क्षय कर देनेपर इक्कीसप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तदनन्तर आठ मध्यम-कषायोंके क्षय होनेपर तेरहप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः नपुंसकवेदके क्षय होनेपर बारह प्रकृतिक, स्त्रीवेदके क्षय होनेपर ग्यारहप्रकृतिक और हास्यादि छह प्रकृतियोंके क्षय होनेपर पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः पुरुषवेदके क्षय होनेपर चार प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तदनन्तर संज्वलन क्रोधके क्षय होनेपर तीनप्रकृतिक, संज्वलनमानके क्षय होनेपर दोप्रकृतिक और संज्वलन मायाके क्षय होनेपर एकप्रकृतिक सत्तास्थान होता है ॥३५-३६॥

इस प्रकार मोहकर्मके सर्व सत्तास्थानोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १।

अब मोहनीयकर्मके बन्धस्थानानोंमें उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०१५] [1]बावीसादिसु पंचसु दसादि-उदया हवंति पंचेव।
सेसे दु दोण्णि एगं एगेगमदो परं णेयं† [1] ॥३७॥

२२	२१	१७	१३	९	अणियट्टिम्मि	५	४	३	२	१	सुहुमे	०
१०	९	८	७	६		२	२	१	१	१		१

1. सं० पञ्चसं० ५, ४८।

१. श्वे० सप्ततिकायां गाथेयं नोपलभ्यते।

†द णेया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ मोहनीयस्य बन्धस्थानेषु उदयस्थानानि निरूपयन्ति—['बावीसादिसु पंचसु' इत्यादि ।] पञ्चसु द्वाविंशतिकादिबन्धस्थानेषु पञ्चोदयस्थानानि भवन्ति। शेषयोः अनिवृत्तिकरणस्य प्रथम-द्वितीयभागयोः द्विकोदयस्थानद्वयं २ तत्प्रथमभागे पञ्चकबन्धभागे द्विकोदयस्थानम् २। तच्चतुर्बन्धके द्वितीयभागे द्विकोदयमेकोदयस्थानं च $\begin{matrix}२\\१\end{matrix}$ भवति। अतः परं तत्रिबन्धके तृतीयभागे तद्द्विबन्धके चतुर्थभागे तदेकबन्धके पञ्चमे भागे च एककमुदयस्थानं ज्ञेयम्। सूक्ष्मे बन्धरहिते सूक्ष्मलोभमुदयस्थानम् १। तथाहि—मिथ्यादृष्टौ द्वाविंशतिकबन्धस्थाने एकस्मिन् जीवे मोहप्रकृत्युदयस्थानं दशकं १० भवति। ताः काः? मिथ्यात्वं १ षोडशकषायेषु क्रोधादयश्चत्वारः कषायाः ४। वेदेषु एकतरवेदः १। हास्यादियुग्मयोरेकयुग्मम् २। भयजुगुप्साद्वयम् २। एवं दशप्रकृतिकमुदयस्थानम् $\begin{matrix}२२\\१०\end{matrix}$। इति प्रथमोदयस्थानम् १। मिथ्यात्वरहिते एकविंशतिकबन्धस्थाने सासादने मिथ्यात्वरहितं नवप्रकृत्युदयस्थानम् $\begin{matrix}२१\\९\end{matrix}$। इति द्वितीयोदयस्थानम् २। ततः परं अनन्तानुबन्धिचतुष्करहिते सप्तदशकबन्धस्थानके मिश्रगुणस्थाने असंयमोपशमसम्यक्त्वे क्षायिकसम्यग्दृष्टौ च अप्रत्याख्यानादिचतुष्कत्रयैकतरत्रयं ३ एकतरवेदादिपञ्चकम् ५। एवमष्टोदयप्रकृत्युदयस्थानकं $\begin{matrix}१७\\८\end{matrix}$ भवति। इति तृतीयोदयस्थानम् ३। ततः अप्रत्याख्यानचतुष्करहिते त्रयोदयकबन्धके देशसंयमे प्रत्याख्यानादिचतुष्कद्वयैकतरद्वयं २ एकतरवेदादिपञ्चकं ५ एवं मोहप्रकृत्युदयसप्तकं स्थानं ७ देशसंयतौपशमिक-क्षायिकसम्यग्दृष्टौ भवति $\begin{matrix}१३\\७\end{matrix}$। इति चतुर्थोदयस्थानम् ४। ततः प्रत्याख्यानचतुष्करहिते नवकबन्धके संज्वलनमेकतरं वेदादिपञ्चकमेवं षट्प्रकृत्युदयस्थानं औपशमिक-क्षायिकसम्यग्दृष्टिप्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणमुनौ $\begin{matrix}९\\६\end{matrix}$ भवति। इति पञ्चमोदयस्थानम् ५। ततः पुंवेदसंज्वलनपञ्चकबन्धक संज्वलनचतुर्बन्धकानिवृत्तिकरणभागयोः प्रथम-द्वितीययोः त्रिवेद-चतुःसंज्वलनानामेकैकोदयसम्भवं द्विप्रकृत्युदयस्थानम् $\begin{matrix}५ & ४\\२ & ४\end{matrix}$। तत्रिबन्धके तृतीयभागे द्विबन्धके चतुर्थभागे संज्वलनलोभबन्धके पञ्चमभागे चैकस्थूललोभोदयस्थानम् $\begin{matrix}३ & २ & १\\१ & १ & १\end{matrix}$। अबन्धके सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मलोभस्योदयस्थानमेकम् $\begin{matrix}०\\१\end{matrix}$ ॥३७॥

मोहनीयकर्मके बाईस आदिक पाँच बन्धस्थानोंमें दश आदिक पाँच उदयस्थान होते हैं। शेष बन्धस्थानोंमेंसे पाँचप्रकृतिक बन्धस्थानमें दोप्रकृतिक उदयस्थान होता है। चारप्रकृतिक बन्धस्थानमें दोप्रकृतिक उदयस्थान होता है। इससे आगेके तीन, दो और एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें एकप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। दशवें गुणस्थानमें जहाँ मोहकी किसी प्रकृतिका बन्ध नहीं होता, वहाँपर एकप्रकृतिक उदयस्थान होता है ॥३७॥

इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

अब भाष्यगाथाकार उपर्युक्त गाथाका स्पष्टीकरण करते हैं—

[1]अणरहिओ पढमिल्लो तइओ दो मिस्स-सम्मसहिया दु।
दंसणजुत्ते सेसे अण्णो भंगो हवेज्ज दस एदे ॥३८॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२ २१ १७ १७ १३ ९ ९
१० ८ ७ ६ त्रिषु गुणेषु इदं ६ वेदकरहिते ।
९ ९ ९ ९ ८ ७ ६

अथ मिथ्यादृष्टौ मिश्रेऽसंयतादिचतुषु च सम्भवविशेषमाह—['अणरहिओ पढमिल्लो' इत्यादि ।] मोहप्रकृतीनां दशानामुदयः प्रथम आद्यः ! स कथम्भूतः ? अनन्तानुबन्ध्युदयरहितः । कथम् ? उक्तञ्च—

अणसंजोजिदसम्मं मिच्छं पत्ते ण आवलि त्ति अणं[1] ॥५॥

अनन्तानुबन्धिविसंयोजितवेदकसम्यग्दृष्टौ मिथ्यात्वकर्मोदयान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं प्राप्ते आवलिकाल-पर्यन्तमनन्तानुबन्ध्युदयो नास्ति । अतोऽनन्तानुबन्धिरहितं प्रथमस्थानं २० उ.१० उ.९ मिथ्यात्वरहितम् । सासादनं द्वितीयं स्थानं २१ ९ । तृतीयं स्थानं द्वयं कथम् ? एकं मिश्रगुणस्थानं द्वितीयं असंयतगुणस्थानं च । मिश्रे गुणस्थानेऽनन्तानुबन्धिरहितमष्टकं मिश्रेण सम्यग्मिथ्यात्वेन सहितं नवकम् १७ ९ । असंयतवेदक-सम्यग्दृष्टौ मिश्रसहितमष्टकं सम्यक्त्वप्रकृतिसहितनवप्रकृत्युदयस्थानम् १७ ८ ९ । शेषेषु देशविरत-प्रमत्त-संयताप्रमत्तसंयतवेदकसम्यक्त्वसहितेषु सम्यक्त्वरहितोऽन्यो भङ्गः, सम्यक्त्वप्रकृतिसहितोऽन्यो भङ्गः स्यात्
१२ ९
७ ६ । एते दश वक्ष्यमाणा उदयाः अग्रगाथायाम् ।
८ ७

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०
२२	२१	१७	१७	१३	९
१०	९	९	८	७	६
९			९	८	७

त्रिषु वेदकरहितप्रमत्तादिगुणस्थानेषु इदं ९ ६ । वेदकरहितदेशे १३ ७ वेदकरहितप्रमत्ताप्रमत्तयोः ९ ६ अपूर्वकरणे ९ ६ सम्यक्त्वप्रकृत्युदये अविरताद्यप्रमत्तान्तवेदकसम्यक्त्वं भवति ! तदुदये उपशमसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं च न भवति । तदुक्तञ्च—

उवसम-खइए-सम्मं ण हि तत्थ वि चारि ठाणाणि[2] ॥६॥

उवशमसम्यक्त्वे क्षायिकसम्यक्त्वे च सम्यक्त्वप्रकृत्युदयो नास्तीति तद्रहितानि असंयतादिचतुषु चत्वारि स्थानानि भवन्ति ॥३८॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें मोहनीयकर्मका बाईस प्रकृतिक प्रथम बन्धस्थान अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित भी होता है; क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाला वेदकसम्यग्दृष्टि यदि मिथ्यात्वकर्मके उदयसे मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त हो, तो एक आवलीकालपर्यन्त उसके अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता है, ऐसा नियम है । अतएव बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमें दश प्रकृतिक उदयस्थानके अतिरिक्त नौप्रकृतिक भी उदयस्थान होता है । इकीस प्रकृतिक दूसरे बन्धस्थानमें मिथ्यात्वके विना शेष नौ प्रकृतियोंके उदयवाला स्थान होता है । सत्तरह प्रकृतियोंके बन्धवाले तीसरे और चौथे गुणस्थानमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीके विना शेष आठप्रकृतिक उदयस्थान तथा तीसरेमें मिश्रप्रकृतिका और चौथेमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय बढ़ जानेसे नौ

१. गो० क० ४७८ । २. गो० क० गा० ४१८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिक उदयस्थान भी होता है। सम्यक्त्वसहित शेष गुणस्थानोंमें अर्थात् पाँचवें, छठे और सातवेंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे रहित एक-एक भङ्ग और भी होता है। अतएव वक्ष्यमाण प्रकारसे दश भङ्ग उदयस्थानसम्बन्धी जानना चाहिए ॥३८॥

इनकी अंकदृष्टि मूलमें दी है।

[1]भयरहिया णिंदूणा जुगलूणा हुंति तिण्णि तिण्णेव।
अण्णे वि तेसिमुदया एक्केक्कस्सोवरिं जाण ॥३९॥

	मिथ्या०	मिथ्या०	सासा०	मिश्र	अविरत०	अवि०	देश०	देश०	प्र०अ०	प्र०अ०
बंध०	२२	२२	२१	१७	१७	१७	१३	१३	९	९
	८	७	७	७	७	६	६	५	५	४
उदय०	९।९	८।८	८।८	८।८	८।८	७।७	७।७	६।६	६।६	५।५
	१०	९	९	९	९	८	८	७	७	६

द्वाविंशतिकबन्धके मिथ्यादृष्टौ उत्कृष्टतो दशमोहप्रकृत्युदयाः १०। भयरहिता नवोदयाः ९। जुगुप्सारहिता द्वितीयनवप्रकृत्युदयाः ९। भयजुगुप्सायुग्मोनाश्चाष्टप्रकृत्युदया ८ भवन्ति। एकैकस्योपरि तासां प्रकृतीनां नवादीनां अन्यान् उदयभङ्गान् त्रीन् त्रीन् जानीहि भो भव्यवरपुण्डरीकात्वम्। तथाहि—द्वाविंशतिकबन्धकेऽनन्तानुबन्ध्युदयरहिते मिथ्यादृष्टौ २२ नवप्रकृत्युदयाः ९। भयेन रहिता अष्टौ ८, निन्दया रहिताः अष्टौ ८, युग्मोनाश्च सप्त ७। एकविंशतिकबन्धे २१ सासादने नवप्रकृत्युदया ९, भयरहिता ८, जुगुप्सारहिता ८, युग्मोनाः सप्त ७। सप्तदशकबन्धके मिश्रे अनन्तानुबन्ध्युदयरहित-मिश्रप्रकृतिसहिता नवप्रकृत्युदयाः ९, भयरहिताः ८, निन्दारहिता ८, तद्युग्मरहिता वा ७। सप्तदशकबन्धकेऽविरतवेदकसम्यग्दृष्टौ मिश्रप्रकृतिरहिताः सम्यक्त्वप्रकृतिसहिता नवप्रकृत्युदयाः ९, भयेन रहिताः ८, जुगुप्सारहिताः ८, तद्युग्मोना वा ७। सप्तदशकबन्धकेऽविरतोपशमसम्यक्त्वे क्षायिकसम्यक्त्वे च सम्यक्त्वप्रकृतिरहिता अष्टौ प्रकृत्युदयाः ८, भयोनाः ७, निन्दोना वा ७, तद्युग्मोना वा ६। त्रयोदशकबन्धके देशसंयमवेदकसम्यग्दृष्टौ अप्रत्याख्यानोदयरहितसम्यक्त्वप्रकृतिसहिताः अष्टौ प्रकृत्युदयाः ८, भयोनाः ७, निन्दोना ७, तद्युग्मोनाः ६। त्रयोदशकबन्धके उपशमे क्षायिकसम्यक्त्वे देशसंयमे १३ अप्रत्याख्यानोनाः सप्तप्रकृत्युदयाः ७, भयोनाः ६, जुगुप्सोनाः ६, तद्युग्मोनाः ५। नवकबन्धकवेदकसम्यक्त्वप्रमत्तेऽप्रमत्ते च प्रत्याख्यानोनाः सम्यक्त्वप्रकृतिसहिताः सप्तप्रकृत्युदयाः ७, भयोनाः ६, निन्दोनाः ६, तद्युग्मोनाः ५। नवकबन्धकोपशमक-क्षायिकसम्यग्दृष्टौ प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणमुनौ संज्वलनमेकतरं : पुंवेदादिपञ्चकं ५ एवं षट्प्रकृत्युदयाः ६, भयोनाः ५, जुगुप्सोनाः ५, तद्युग्मोना वा ४ ॥३९॥

गुण०	मि०	मि०	सा०	मि०	अवि०	अवि०	दे०	दे०	प्र० अ०	प्र० अ०
	२२	२२	२१	१७	१७	१७	१३	१३	९	९
बन्ध०	८	७	७	७	७	६	६	५	५	४
उदय०	९।९	८।८	८।८	८।८	८।८	७।७	७।७	६।६	६।६	५।५
	१०	९	९	९	९	८	८	७	७	६

तथा उपर्युक्त बन्धस्थानोंके भय-रहित निन्दा अर्थात् जुगुप्सा-रहित और दोनोंसे रहित, इस प्रकार तीन-तीन अन्य भी उदयस्थान एक-एकके ऊपर जानना चाहिए ॥३९॥

विशेषार्थ—बाईस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले मिथ्यादृष्टिके यदि सम्भव सभी प्रकृतियोंका उदय हो, तो दशप्रकृतिक उदयस्थान होगा। यदि विसंयोजनके हो जानेसे अनन्तानुबन्धी कषायका उदय नहीं है, तो नवप्रकृतिक उदयस्थान भी सम्भव है। यदि भय और

1. सं० पञ्चसं० ५, ५०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जुगुप्सामेंसे किसी एकका उदय न हो, तो आठ प्रकृतिक उदयस्थान होगा। और यदि भय और जुगुप्सा इन दोनोंका ही उदय न रहे, तो सात प्रकृतिक उदयस्थान होगा। इस प्रकार बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमें दश, नौ, नौ, आठ और सात प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थान दूसरे गुणस्थानमें होता है। वहाँपर अनन्तानुबन्धीका उदय तो रहता है, परन्तु मिथ्यात्वका उदय नहीं रहता, इसलिए नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। तथा भय-जुगुप्सामेंसे किसी एकके उदय न रहनेसे आठप्रकृतिक और दोनोंका उदय न रहनेसे सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। सत्तरह प्रकृतिके बन्धवाले गुणस्थानसे लेकर नौ प्रकृतियोंके बन्धवाले गुणस्थान पर्यन्त तीन स्थानोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय रहता भी है और नहीं भी रहता है, इसलिए सत्तरह प्रकृतिक बन्धस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय न रहनेपर आठका उदयस्थान होता है। तथा भय और जुगुप्सामेंसे किसी एकके उदय न रहनेपर सातका उदयस्थान होता है और दोनोंके ही उदय न रहनेपर छहका उदयस्थान होता है। तेरह प्रकृतिक बन्धस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय रहनेपर आठका उदयस्थान होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय न रहनेपर सातका उदयस्थान होता है। भय और जुगुप्सामेंसे किसी एकके उदय न रहनेपर छहका तथा दोनोंके उदय न रहनेपर पाँचका उदयस्थान होता है। नौप्रकृतिक बन्धस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय रहने पर सातका उदयस्थान होता है। सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय न रहने पर छहका उदयस्थान होता है। जुगुप्सामेंसे किसी एकके उदय न होने पर पाँचका उदयस्थान और दोनोंके उदय न रहने पर चारका उदयस्थान होता है। मूलमें दी गई अंकसंदृष्टिका यह अभिप्राय समझना चाहिए।

अब मोहके बन्धस्थानोंमें संभव उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]दस बावीसे णव इगिवीसे सत्तादि उदय-कम्मंसा।
छादी णव सत्तरसे तेरे पंचादि अट्ठेव[1] ॥४०॥
चत्तारि-आदिणवबंधएसु उक्कस्स सत्तमुदयंसा।
चत्तालमिमेसुदया बंधट्ठाणेसु पंचसु वि[2] ॥४१॥

।४०।

[अथ] गुणस्थानेषु मोहप्रकृतिबन्धकेषु उदयस्थानानि प्ररूपयति—['दस बावीसे णव इगि' इत्यादि।] द्वाविंशतिबन्धके सप्ताद्याः दशान्ताः अष्टौ मोहप्रकृत्युदयकर्मांशा उदयांशा उदयप्रकृतिस्थान-

	२२	२२		२१।४
विकल्पा भवन्ति ८	७	८	। एकविंशतिकबन्धके सप्ताद्या नवप्रकृत्युदयस्थानचतुष्टयरूपाः	७
	८।८	९।९		८।८ ।
	९	१०		९

सप्तदशकबन्धके षडाद्या नवोत्कृष्टपर्यन्ताः प्रकृत्युदयस्थानरूपाः द्वादश भवन्ति १७।१२। त्रयोदशबन्धके पञ्चाद्यष्टोत्कृष्टस्थानपर्यन्तं प्रकृत्युदयस्थानानि अष्टौ भवन्ति १३।८। नवकबन्धके चतुरादिसप्तोत्कृष्टान्ताः मोहप्रकृत्युदयस्थानान्यष्टौ भवन्ति ९।८। इत्यमीषु पञ्चसु बन्धस्थानेषु प्रकृत्युदयस्थानानि चत्वारिंशद्भवन्ति ॥४०-४१॥

1. सं० पञ्चसं० ५, 'द्वाविंशतेर्बन्धे सप्ताद्या' इत्यादिगद्यभागः। (पृ० १२९)।

१. श्वे० सप्ततिकायामियं गाथा मूलगाथारूपेण विद्यते।

२. श्वे० सप्ततिकायामियमपि गाथा मूलरूपेणास्ति। परं तत्रोत्तरार्धे पाठोऽयम्—'पंचविहबंधगे पुण उदओ दोण्हं मुणेयव्वो'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें सातको आदि लेकर दश तकके उदयस्थान होते हैं। इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें सातको आदि लेकर नौ तकके उदयस्थान होते हैं। सत्तरहप्रकृतिक बन्धस्थानमें छहको आदि लेकर नौ तकके उदयस्थान होते हैं। और तेरहप्रकृतिक बन्धस्थानमें पाँचको आदि लेकर आठ तकके उदयस्थान होते हैं। नौ प्रकृतियोंका बन्ध करने वाले जीवोंके चार प्रकृतिक उदयस्थानको आदि लेकर उत्कर्षसे सातप्रकृतिक तकके उदयस्थान होते हैं। इस प्रकार इन पाँच बन्धस्थानों मोहप्रकृतियोंके उदयस्थान चालीस होते हैं ॥४०-४१॥

विशेषार्थ—बाईस, इक्कीस, सत्तरह, तेरह और नौ प्रकृतिक बन्धस्थानोंमें जितने उदयस्थान पाये जाते हैं, उनमेंसे दशप्रकृतिक उदयस्थान एक है, नौप्रकृतिक उदयस्थान छह हैं, आठप्रकृतिक उदयस्थान ग्यारह हैं, सातप्रकृतिक उदयस्थान दश हैं, छहप्रकृतिक उदयस्थान सात हैं, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान चार हैं और चारप्रकृतिक उदयस्थान एक है। इस प्रकार इन सबका योग (१+६+११+१०+७+४+१=४०) चालीस होता है। यह बात ऊपर मूलमें दी गई संदृष्टिमें स्पष्ट दिखाई गई है।

अब उपर्युक्त ४० भंगोंको वक्ष्यमाण २४ भंगोंसे गुणित करने पर जितने भंग होते हैं उनका निरूपण करते हैं—

[1]जुगवेदकसाएहिं दुय-तिय-चउहिं भवंति संगुणिया।
चउवीस वियप्पा ते उदया सव्वे वि पत्तेयं ॥४२॥

[2]एवं पंचसु बंधट्ठाणेसु चत्तालं उदया चउवीसभंगगुणा हवंति। एयावंतो उदयवियप्पा ९६०।

अमूनि सर्वप्रकृत्युदयस्थानानि ४० प्रत्येकं चतुर्विंशतिगुणितानि भवन्तीति तत्सम्भवगाथामाह—['जुगवेदकसाएहिं' इत्यादि।] हास्यादियुग्मेन २ वेदत्रिकेण ३ कषायचतुष्केण ४ परस्परं संगुणिताश्चतुर्विंशतिविकल्पाः २४ भवन्ति। तानि सर्वाणि चत्वारिंशत्प्रकृत्युदयस्थानानि ४० प्रत्येकं चतुर्विंशतिविकल्पा भङ्गा भेदा भवन्ति ॥४२॥

तदाह—['एवं पंचसु' इत्यादि।] एवं पञ्चसु नवकादिद्वाविंशतिपर्यन्तबन्धस्थानेषु चत्वारिंशत् ४० प्रकृत्युदयस्थानानि चतुर्विंशतिः २४ गुणितानि एतानि एतावन्त उदयविकल्पाः ९६० षष्ठ्यधिकनवशतप्रकृत्युदयस्थानभङ्गा भवन्ति।

हास्यादि दो युगल, तीन वेद और चार कषाय इनके परस्पर संगुणित करने पर चौबीस भङ्ग होते हैं। इनसे उपर्युक्त चालीस भङ्गोंको गुणित कर देने पर उदयस्थानोंके सर्व भङ्गोंका योग आ जाता है ॥४२॥

इस प्रकार पाँच बन्धस्थानोंके चालीस उदयस्थानोंको चौबीस भङ्गोंसे गुणा करने पर (४०×२४=९६०) सर्व उदयस्थान विकल्प नौ सौ साठ उपलब्ध होते हैं।

अब पाँच आदि शेष प्रकृतिक उदयस्थानोंके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[3]वेदाहया कसाया भवंति भंगा दुवारदुगउदए।
चउ-तिय-दुग एगेगं पंचसु एगोदएसु तदो ॥४३॥

	५	४	४	३	२	१		०
अणियट्टिम्मि	२	२	१	१	१	१	सुहुमे	१
	१२	१२	४	३	२	१		१

एवं सव्वे भंगा मेलिया ३५। पुव्वुत्तेहिं सह एदावंतो ९९५।

1. सं० पञ्चसं० ५, ५१। 2. ५, 'चतुर्विंशत्या' इत्यादिगद्यांशः। 3. ५, ५२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिवृत्तिकरणस्य द्विकोदये इति पञ्चबन्धक-चतुर्बन्धकानिवृत्तिकरणभागयोस्त्रिवेद-चतुःसंज्वलना-नामेकैकोदयसम्भवं द्विप्रकृत्युदयस्थानं ५/२ ४/१ स्यात्। तत्र संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभाश्चत्वारः ४ त्रिभिर्वेदै-र्हताः द्वादशः भङ्गा भवन्ति। द्विद्वादश द्वादश द्वादशेति ५/२/१२ ४/१/१२। पक्षान्तरापेक्षया चतुर्बन्धकचरमसमये त्रिद्व्येकबन्धबन्धकेषु अबन्धके पञ्चसु भागस्थानेषु क्रमेण चतुस्त्रिद्व्येकैकसंज्वलनानामेकैकोदयः सम्भव-मेकैकोदयस्थानं स्यात्। तेन तत्र भङ्गाश्चतुस्त्रिद्व्यैकैको भूत्वा एकादश ॥४३॥

	बं०	५	४	४	३	२	१		०
अनिवृत्तिकरणस्य	उ०	२	२	१	१	१	१	अबन्धे सूक्ष्मे	१
	भं०	१२	१२	४	३	२	१		१

। एवं सर्वे भङ्गा मिलिताः ३५। पूर्वोक्तैः सह एतावन्तो भङ्गाः नवशतपञ्चनवतिः ॥९९५॥

द्विक-उदयमें अर्थात् अनिवृत्तिकरणके पाँच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें जहाँ पर तीनों वेदोंमेंसे किसी एक वेद और चारों कषायोंमेंसे किसी एक कषायका उदय होता है, वहाँ पर तीनों वेदों और चारों कषायोंके परस्पर बारह बारह भङ्ग होते हैं। एक प्रकृतिके उदय वाले पाँच बन्धस्थानोंमें अर्थात् चारप्रकृतिक बन्धस्थानके चरम समयमें, तीन, दो, एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें और किसी भी प्रकृतिका बन्ध नहीं करनेवाले ऐसे अबन्धकस्थानमें क्रमसे चार, तीन, दो, एक और एक भङ्ग होते हैं ॥४३॥

इस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें दो प्रकृतिके उदयवाले पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमें बारह, चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें बारह, एक प्रकृतिके उदयवाले चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें चार, तीन प्रकृतिक बन्धस्थानमें तीन, दो प्रकृतिक बन्धस्थानमें दो और एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें एक भङ्ग होता है। तथा किसी भी मोहप्रकृतिका बन्ध नहीं करने वाले सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एक-मात्र सूक्ष्म संज्वलनलोभका उदय होनेसे एक भङ्ग होता है। इस प्रकार ये सर्व भङ्ग मिल करके (१२+१२+४+४+२+१+१=३५) पैंतीस भङ्ग हो जाते हैं। इन सर्व भङ्गोंकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है। इन्हें पूर्वोक्त ९६० भङ्गोंमें मिला देने पर मोहनीयकर्मके उदयस्थान-सम्बन्धी सर्व विकल्प ९९५ हो जाते हैं।

इन्हीं उदय-विकल्पोंको भाष्यगाथाकार उपसंहार करते हुए प्रकट करते हैं—

[1]दसगादि-उदयठाणाणि भणियाणि मोहणीयस्स।
पंचूणयं सहस्सं उदयवियप्पा हवंति ते चेव ॥४४॥

।९९५।

ते कति चेदाह—['दसगादि-उदयठाणाणि' इत्यादि] मोहनीयस्य दशकादीन्येकपर्यन्तान्युदय-प्रकृतिस्थानानि भणितानि। तेषां भङ्गाः पञ्चभिर्न्यूनं सहस्रं प्रकृत्युदयस्थानविकल्पा भवन्ति। दशकाद्येक-पर्यन्तप्रकृत्युदयस्थानानां भङ्गा विकल्पाः प्रकृत्युदयस्थानभेदा नवशतपञ्चनवतिसंख्योपेताः ९९५ भवन्तीत्यर्थः ॥४४॥

मोहनीयकर्मके दशप्रकृतियोंको आदि लेकर एक प्रकृति पर्यन्त जो दश उदयस्थान कहे गये हैं उनके उदयस्थान-सम्बन्धी सर्व विकल्प पाँच कम एक हजार अर्थात् ९९५ होते हैं ॥४४॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ५३ तथाऽग्रेतनगद्यांशः (पृ० १५९)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब उपर्युक्त उदयविकल्पोंके प्रकृति-परिवर्तन-जनित भंगोंका परिमाण कहते हैं—

[1]पुव्वुत्ता जे उदया संगुणिया तेसिं उदयपयडीहिं ।
चउवीसा आदीहि य सगेहिं भंगेहिं होंति पदबंधा ॥४५॥

[2]एए छद्दसादि-चउरंताणि उदयट्ठाणाणि एआणि— १०/१ ९/६ ८/११ ७/१० ६/७ ५/४ ४/१ दसादि† उदयत्थ-पयडिगुणियाणि १०।५४।८८।७०।४२।२०।४। मिलियाणि २८८। पुणो चउवीसभंगगुणियाणि ६९१२। अणियट्टिम्मि सुहुमे य दुगादिउदयपयडीओ २।२।१।१।१।१। सुहुमे । एयाओ एएहिं भंगेहिं १२।१२।४।३।२।१।१।गुणिआ एयावंतो २४।२४।४।३।२।१।१। मिलिया ५९। पुव्विल्लेहिं सह पयबंधा एयावंतो ।६९७१।

अथ प्रकृतिभेदेन भङ्गानाह—['पुव्वुत्ता जे उदया' इत्यादि ।] ये पूर्वोक्ता उदयाः, अत्र दशानां एकोदयः १०/१ नवानां षडुदयाः ९/६ अष्टानां एकादशोदयाः ८/११ सप्तानां दशोदयाः ७/१० षण्णां सप्तोदयाः ६/७ पञ्चानां चत्वार उदयाः ५/४ चतुर्णामेकोदयः ४/१ इत्येते उदयाः १।६।११।१०।७।४।१ एतेषां दशाद्युदयप्रकृतिभिः १०।९।८।७।६।५।४ संगुणिताः १०।५४।८८।७०।४२।२०।४ एते मिलिताः २८८। पुनश्चतुर्विंशति २४ भङ्गताडिताः ६९१२ एते पदबन्धा उदयप्रकृतिविकल्पा भङ्गा भवन्ति । अनिवृत्तिकरणे सूक्ष्मसाम्पराये च द्विकोदयः उदयप्रकृतयः २।२।१।१।१।१ सूक्ष्मे १ । एताः प्रकृतय एतैर्भङ्गैः १२।१२।४।३।२।१ गुणिता एतावन्तः २४।२४।४।३।२।१।१ । मिलिता ५९ । पूर्वैः ६९१२ सह पदबन्धा एतावन्तः ६९७१ मोहप्रकृतिसंख्यायाः पदबन्धा भवन्त्यमी ॥४५॥

जो पहले दशप्रकृतिक आदि उदयस्थान कहे गये हैं, उन्हें पहले उदय होनेवाली प्रकृतियोंसे गुणित करे। पुनः चौबीस आदि स्व-स्व भंगोंसे गुणित करनेपर सर्वपदबन्ध अर्थात् भंग आ जाते हैं। उनका परिमाण ६९७१ है ॥४५॥

अब इन्हीं ६९७१ भंगोंका स्पष्टीकरण करते हैं—दशको आदि लेकर चार प्रकृति-पर्यन्तके जो उदयस्थान हैं, उन्हें दश आदि उदयस्थ प्रकृतियोंके साथ गुणित करनेपर २८८ भंग होते हैं। (इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी हुई है।) पुनः उन्हें चौबीस भंगोंसे गुणा करनेपर (२८८ × २४ = ६९१२) छह हजार नौ सौ बारह भंग प्राप्त होते हैं। पुनः अनिवृत्तिकरणमें जो दो आदिक उदय-प्रकृतियाँ हैं और सूक्ष्मसाम्परायमें जो एक उदय प्रकृति है, (यथा—२।२।१।१।१।१।) उन्हें इनके १२।१२।४।३।२।१।१ इन भंगोंसे गुणा करनेपर क्रमशः इतने २४।२४।४।३।२।१।१ भंग आते हैं, जो सब मिलाकर ५९ होते हैं। इन्हें पूर्वोक्त ६९१२ में जोड़ देनेपर समस्त पदबन्धोंका अर्थात् भंगोंका प्रमाण ६९७१ होता है।

अब मूलगाथाकार उपर्युक्त सर्व अर्थका उपसंहार करते हैं—

[मूलगा० १६] [3]णवपंचाणउदिसया उदयवियप्पेहिं मोहिया जीवा ।
ऊणत्तरि-एयत्तरिपयबंधसएहिं विण्णेया[1] ॥४६॥

९९५।६९७१।

पञ्चनवत्यधिकनवशतसंख्योपेतैः उदयविकल्पैः प्रकृत्युदयस्थानभङ्गैः ९९५ एकोनसप्ततिशतैकसप्ततिपदबन्धैः षट्सहस्रनवशतैकसप्ततिसंख्योपेतैः ६९७१ पदबन्धैः प्रकृतिविकल्पैः प्रकृत्युदयसंख्याभङ्गैश्च त्रिकाल-

1. सं० पञ्चसं० ५, ५४ । 2. ५, 'दशादीनि' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६०) । 3. ५, ५५ ।

†ब दसा अपि ।

1. सप्ततिका० २० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिलोकोदरवर्तिचराचरजीवा मोहिताः वैचित्र्यं प्रापिताः सन्ति ६६५ उदयविकल्पाः स्थानविकल्पाः भवन्ति। ६६७१ प्रकृतिविकल्पा उदयप्रकृतिसंख्याभंगा विज्ञेया भवन्ति ॥४६॥

इति मोहनीयप्रकृत्युदयभेदः समाप्तः।

सर्व संसारी जीव नौ सौ पंचानवे उदय-विकल्पोंसे तथा उनहत्तर सौ इकहत्तर अर्थात् छह हजार नौ सौ इकहत्तर भंगरूप पदवृन्दोंसे मोहित हो रहे हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४६॥

अब मोहनीयके बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थानके भंग सामान्यसे कहते हैं—

[1]पढमे विदिए तीसु वि पंचाई बंधउवरदे कमसो।
कमसो तिण्णि य एगं पंचय छह सत्त चत्तारि ॥४७॥

[2]संतट्ठाणाणि—

२२	२१	१७	१३	९	५	४	३	२	१	०
३	१	५	५	५	६	७	४	४	४	४

अथ मोहनीयबन्धस्थानेषु सत्त्वस्थानभङ्गान् सामान्येनाह—['पढमे विदिए तीसु वि' इत्यादि।] प्रथमे द्वाविंशतिकबन्धे सत्त्वस्थानानि त्रीणि २८।२७।२६। द्वितीये एकविंशतिके बन्धे सत्त्वस्थानमेकं २८। त्रिषु बन्धेषु सप्तदशकबन्धे त्रयोदशकबन्धे नवकबन्धके च सत्त्वस्थानानि पञ्च २८।२४।२३।२२।२१। पञ्चबन्धके सत्त्वस्थानानि षट् २८।२४।२१।१३।१२।११। चतुर्विधबन्धके सप्त सत्त्वस्थानानि २८।२४।२१। १३।१२।११।५। त्रिद्वयेकबन्धके अबन्धके च सत्त्वस्थानानि चत्वारि चत्वारि क्रमेण स्वभागबन्धकेषु सत्त्वानि ॥४७॥

२२	२१	१७	१३	९	५	४	३	२	१	०
३	१	५	५	५	६	७	४	४	४	४

प्रथम बन्धस्थानमें, द्वितीय बन्धस्थानमें, तदनन्तर क्रमशः तीन बन्धस्थानोंमें, पुनः पंच आदि एक पर्यन्त बन्धस्थानोंमें और उपरतबन्धमें क्रमसे तीन, एक, पाँच, छह, सात और चार सत्त्वस्थान होते हैं ॥४७॥

किस बन्धस्थानमें कितने सत्त्वस्थान होते हैं, इस बातको बतानेवाली अंकसंदृष्टि मूलमें दी हुई है।

एवं ओघेण भणियं* विसेसेण वुच्चए—

इस प्रकार ओघसे बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थानोंको कह करके अब मूलगाथाकार विशेषरूपसे उन्हें कहते हैं—

[मूलगा०१७] [3]आइतियं बावीसे इगिवीसे अट्ठवीस कम्मंसा।
सत्तरस तेरस णव बंधए अड-चउ-तिग-दुगेगहियवीसा[1] ॥४८॥

[4]बावीसबंधए संतट्ठाणाणि २८।२७।२६। एगवीसबंधए २८। सत्तरस-तेरस-णवबंधएसु २८।२४।२३।२२।२१।

अथ विशेषेण गुणस्थानेषु मोहबन्धस्थानं प्रति सत्त्वस्थानान्याह—'एवं ओघेण भणिय विसेसेण वुच्चइ' एवं उक्तप्रकारेण सामान्येन मोहप्रकृतिबन्धेषु सत्त्वस्थानानि। भणितानि गुणस्थानैः सह विशेषेण तान्युच्यन्ते—

1. सं० पञ्चसं० ५, ५६। 2. ५, 'मोहस्य सत्तास्थानानि' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १६०)। 3. ५, ५७। 4. ५, 'द्वाविंशतिबन्धके' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १६१)।

१. सप्ततिका० २१। परं तत्रेदृक् पाठः—

तिन्नेव य बावीसे इगवीसे अट्ठवीस सत्तरसे।
छच्चेव तेर-नवबंधगेसु पंचेव ठाणाइं॥

*ब भणिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

['आइतियं बावीसे' इत्यादि ।] द्वाविंशतिकबन्धके मिथ्यादृष्टौ आदित्रिकसत्त्वस्थानानि २८।२७।२६। तत्राष्टाविंशतिके सम्यक्त्वप्रकृतौ उद्वेल्लितायां सप्तविंशतिकम् २७ । पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे उद्वेल्लिते षड्विंशतिकम् २६ । सासादने एकविंशतिबन्धके अष्टाविंशतिकमेकसत्त्वस्थानम् २८ । सप्तदशबन्धे त्रयोदशबन्धे नवबन्धे च प्रत्येकं अष्टचतुस्त्रिद्वयेकाधिकविंशतिः । अष्टाविंशतिके २८ अनन्तानुबन्धिचतुष्के विसंयोजिते क्षपिते वा चतुर्विंशतिकम् २४ । ततः पुनः मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिकम् २३ । तत्र पुनः सम्यङ्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिकम् २२ । तत्र पुनः सम्यक्त्वप्रकृतिक्षपिते एकविंशतिकम् २१ । इति पञ्च सत्त्वस्थानानि विसंयोजितानन्तानुबन्धिनः क्षपितमिथ्यात्वादित्रयाणां च तेषु सम्भवात् ॥४८॥

बाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें आदिके तीन सत्त्वस्थान होते हैं । इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें अट्ठाईस प्रकृतिक एक सत्त्वस्थान होता है । सत्तरह प्रकृतिक, तेरह प्रकृतिक और नवप्रकृतिक बन्धस्थानमें अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिक पाँच-पाँच सत्त्वस्थान होते हैं ॥४८॥

बाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें २८, २७ और २६ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं । इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८ प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान होता है । सत्तरह, तेरह और नौ प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक पाँच पाँच सत्त्वस्थान होते हैं ।

[मूलगा०१८] [1]पंचविहे अड-चउ-एगहियवीसा तेर-बारसेगारं ।
चउविहबंधे संता पंचहिया होंति ते चेव[1] ॥४९॥

पंचविहबंधए २८।२४।२१।१३।१२।११ चउव्विहबंधए २८।२४।२१।१३।१२।११।५।

पञ्चविधबन्धकेऽष्टचतुरेकाधिकविंशतिः [त्रयोदश द्वादश एकादश च] सत्त्वस्थानानि भवन्ति । चतुर्विधबन्धके तानि पूर्वोक्तानि पञ्चाधिकानि सत्त्वस्थानानि भवन्ति । तथाहि—पुंवेदसंज्वलनचतुष्कमिति पञ्चविधबन्धके अनिवृत्तिकरणोपशमश्रेण्यां अष्टाविंशतिकसत्त्वस्थानम् २८ । तत्रानन्तानुबन्धिविसंयोजिते २४ दर्शनमोहसप्तके क्षपिते २१ एकविंशतिकम् । तत्पञ्चविधबन्धके अनिवृत्तिकरणक्षपकश्रेण्यां मध्यमकषायाष्टके क्षपिते त्रयोदशकं १३ सत्त्वस्थानम् । षण्ढे स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादशं सत्त्वस्थानकम् १२ । पुनः स्त्रीवेदे वा पण्ढवेदे क्षपिते एकादशकसत्त्वस्थानम् ११ । पुंवेदं विना चतुर्विधसंज्वलनबन्धकेऽनिवृत्तिकरणोपशमश्रेण्यां २८ अनन्तानुबन्धिविसंयोजिते २४ क्षपितदर्शनमोहसप्तके एकविंशतिकं सत्त्वस्थानम् २१ । तच्चतुर्विधबन्धकानिवृत्तिकरणक्षपकश्रेण्यां एकविंशतिकसत्त्वस्थाने २१ मध्यमकषायाष्टके क्षपिते त्रयोदशकं सत्त्वस्थानम् १३ । षण्ढे स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादशकं सत्त्वस्थानम् १२ । पुनः स्त्रीवेदे वा षण्ढवेदे क्षपिते ११ । पुनः षण्णोकषाये क्षपिते पञ्च सत्त्वं संज्वलनचतुष्कं पुंवेदश्चेति पञ्चप्रकृतिसत्त्वम् ५ ॥४९॥

पञ्चकबन्धकेऽनिवृत्तिकरणोपशमके सत्त्वस्थानानि २८।२४।२१ तच्चतुर्बन्धप्रकृतिक्षपके सत्त्वस्थानानि २१।१३।१२।११।५ ।

पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमें अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह और ग्यारह ये छह सत्त्वस्थान होते हैं । चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें पाँच प्रकृतिक सत्त्वस्थानसे अधिक वे ही छह अर्थात् सात सत्त्वस्थान होते हैं ॥४९॥

पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८।२४।२१।१३।१२।११ ये छह सत्त्वस्थान तथा चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८।२४।२१।१३।१२।११।५ ये सात सत्त्वस्थान होते हैं ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ५९ ।

१. सप्ततिका० २२ परं तत्रेदृक् पाठः—

पञ्चविह-चउविहेसुं छ छक्क सेसेसु जाण पंचेव ।
पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि य बंधवोच्छेए ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[मूलगा०१६] सेसेसु अबंधम्मि य संता अड-चउर-एगहियवीसा ।
ते पुण अहिया णेया कमसो चउ-तिय-दुगेगेण[1] ॥५०॥

सेसे बंधतिए, अबंधे वि चत्तारि संतट्ठाणाणि । तत्थ तिबंधए २८।२४।२१।४। दुबंधए २८।२४।२१।३। एयबंधे २८।२४।२१।२। अबंधे २८।२४।२१।१।

शेषु त्रिद्व्येकबन्धके अबन्धके च प्रत्येकं अष्टाविंशतिकं २८ चतुर्विंशतिकं २४ एकविंशतिकं च २१ । तानि पुनः क्रमशश्चतुस्त्रिद्विकैकेनाधिकानि मोहसत्त्वस्थानानि । तथाहि अनिवृत्तिकरणे संज्वलनमानमाया-लोभत्रयबन्धके उपशमके २८।२४।२१ । अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य विसंयोजितदर्शनमोहसप्तकस्य क्षपणं च तत्र सम्भवात् । तन्निबन्धानिवृत्तिक्षपके पुंवेदे क्षयं गते चतुःसंज्वलनसत्त्वस्थानम् ४ । तद्द्विकबन्धोपशमके २८।२४।२१ । क्षपके क्रोधे क्षपिते संज्वलनत्रिकसत्त्वस्थानम् ३ । अनिवृत्तिकरणोपशमके एकबन्धके २८।२४। २१ । क्षपके च मानक्षपिते संज्वलनमाया-लोभसत्त्वद्वयम् २ । अबन्धके सूक्ष्मसाम्पराये उपशमश्रेण्यां २८।२४।२१ । क्षपकश्रेण्यां सूक्ष्मलोभसत्त्वं सूक्ष्मकृष्टिकरणरूपलोभसत्त्वमेकम् १ । इति त्रिद्व्येकबन्धके अबन्धके च चत्वारि सत्त्वस्थानानि ४।३।२।१ ॥५०॥

शेष तीन, दो और एक बन्धस्थानमें और अबन्धक स्थानमें क्रमशः चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक सत्त्वस्थानसे अधिक अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक ये चार-चार सत्त्वस्थान होते हैं ॥५०॥

शेष तीन बन्धस्थानोंमें और अबन्धकस्थानमें चार-चार सत्त्वस्थान होते हैं । उनमेंसे तीन प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८।२४।२१।४ ये चार सत्त्वस्थान होते हैं । द्विप्रकृतिक बन्धस्थानमें २८। २४।२१।३ ये चार सत्त्वस्थान होते हैं । एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८।२४।२१।२ ये चार सत्त्वस्थान होते हैं । तथा अबन्धकस्थानमें २८।२४।२१।१ ये चार सत्त्वस्थान होते हैं ।

विशेषार्थ—मोहनीयके किस-किस बन्धस्थानमें किस-किस उदयस्थानके साथ कौन-कौन से सत्त्वस्थान किस प्रकार सम्भव हैं, इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—बाईस प्रकृतिक बन्ध-स्थान मिथ्यादृष्टिके होता है । इसके सात, आठ, नौ और दश प्रकृतिक चार उदयस्थान और अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक ये तीन सत्त्वस्थान होते हैं । इनमेंसे सातप्रकृतिक उदयस्थानके समय अट्ठाईस प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान होता है । इसका कारण यह है कि सातप्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धीके उदयके विना ही प्राप्त होता है और मिथ्यात्वमें अनन्ता-नुबन्धीके उदयका अभाव उसी जीवके होता है जिसने पहले सम्यग्दृष्टिकी दशामें अनन्तानुबन्धि-चतुष्ककी विसंयोजना की है । पुनः सम्यक्त्वसे गिरकर और मिथ्यात्वमें जाकर जिसने मिथ्यात्वके निमित्तसे पुनः अनन्तानुबन्धि-चतुष्कका बन्ध प्रारम्भ किया । ऐसे जीवके एक आवलीकाल तक अनन्तानुबन्धी कषायका उदय नहीं होता है । किन्तु ऐसे जीवके अट्ठाईस प्रकृतियोंका सत्त्व अवश्य पाया जाता है । इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सात प्रकृतिक उदयस्थानमें अट्ठाईस प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान होता है । आठ प्रकृतिक उदयस्थानमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस ये तीनों ही सत्त्वस्थान होते हैं । इसका कारण यह है कि आठ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकारका होता है—एक तो अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित और दूसरा अनन्तानुबन्धीके उदयसे सहित । इनमेंसे अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित आठ प्रकृतिक उदयस्थानमें अट्ठाईस प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान होता है । तथा अनन्तानुबन्धीके उदयसे सहित आठ प्रकृतिक उदयस्थानमें आदिके तीनों ही सत्त्वस्थान सम्भव है । वह इस प्रकार कि जब तक सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना नहीं होती, तब तक अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है । सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना हो जाने पर

1. श्वे० सप्ततिकायां गाथेयं नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्ताईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना हो जाने पर छब्बीसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। इसके अतिरिक्त छब्बीसप्रकृतिक सत्त्वस्थान अनादिमिथ्यादृष्टिके भी होता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित नौप्रकृतिक उदयस्थानमें अट्ठाईसप्रकृतिक एक सत्त्वस्थान तो होता ही है; किन्तु अनन्तानुबन्धीके उदयसे सहित उसी नौ प्रकृतिक उदयस्थानमें आदिके तीनों ही सत्त्वस्थान सम्भव है। दशप्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धीके उदयवाले जीवके ही होता है, अतएव उसमें अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीसप्रकृतिक तीनों सत्त्वस्थान बन जाते हैं।

इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें अट्ठाईसप्रकृतिक एक सत्त्वस्थान होता है। इसका कारण यह है कि इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थान सासादनगुणस्थानवर्ती जीवके ही होता है और यह गुणस्थान उपशमसम्यक्त्वसे च्युत हुए जीवके ही होता है। किन्तु ऐसे जीवके दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका सत्त्व अवश्य पाया जाता है। इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवके उदयस्थान सात, आठ और नौप्रकृतिक तीन पाये जाते हैं, अतएव उनके साथ एक ही अट्ठाईस प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है।

सत्तरह प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ अट्ठाईस, सत्ताईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीसप्रकृतिक छह सत्त्वस्थान होते हैं। सत्तरहप्रकृतिक बन्धस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन दो गुणस्थानोंमें होता है। इनमेंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सात, आठ और नौप्रकृतिक तीन उदयस्थानसे होते हैं और अविरतसम्यग्दृष्टि जीवोंके छह, सात, आठ और नौ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं। इनमेंसे छहप्रकृतिक उदयस्थान उपशमसम्यक्त्वी या क्षायिकसम्यक्त्वी जीवोंके प्राप्त होता है। इनमेंसे उपशमसम्यक्त्वी जीवोंके अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान होते हैं। अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान प्रथमोपशमसम्यक्त्वके समय होता है। जो जीव अनन्तानुबन्धीका उपशम करके उपशमश्रेणी पर चढ़कर गिरा है, उस अविरतसम्यग्दृष्टिके भी अट्ठाईस प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। तथा जिसने अनन्तानुबन्धीकी उद्वेलना या विसंयोजना की है, उस औपशमिक अविरतसम्यक्त्वीके चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टिके केवल इक्कीस प्रकृतिक एक ही सत्त्वस्थान होता है; क्योंकि अनन्तानुबन्धिचतुष्क और दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियोंके क्षय होने पर ही क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार छह प्रकृतिक उदयस्थानमें अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीनों ही सत्त्वस्थान होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके सात प्रकृतिक उदयस्थानके साथ अट्ठाईस, सत्ताईस और चौबीसप्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं। इनमेंसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव तीसरे गुणस्थानको प्राप्त होता है, उसके अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। किन्तु जिस मिथ्यादृष्टिने सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतिक सत्त्वस्थानको तो प्राप्त कर लिया है, किन्तु अभी सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं की है, वह यदि मिथ्यात्वसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होता है, तो उसके सत्ताईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। सम्यग्दृष्टि रहते हुए जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है, वह यदि संक्लेशपरिणामोंके वशसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हो, तो उसके चौबीसप्रकृतिक सत्त्वस्थान पाया जाता है। किन्तु अविरतसम्यक्त्वी जीवके सात प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। इनमेंसे अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थान तो उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थान अनन्तानुबन्धिचतुष्ककी विसंयोजना करनेवालोंके ही होता है। तेईस और बाईस प्रकृतिक सत्त्वस्थान केवल वेदकसम्यक्त्वी जीवोंके ही होते हैं। इसका कारण यह है कि आठ वर्षसे ऊपरकी आयुवाला जो वेदकसम्यक्त्वी जीव दर्शनमोहकी क्षपणाके लिए अभ्युद्यत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है, उसके अनन्तानुबन्धि-चतुष्क और मिथ्यात्व, इन पाँचके क्षय हो जाने पर तेईस प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। पुनः उसीके सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय हो जाने पर बाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। यह बाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा चारों ही गतियोंमें सम्भव है। इसी प्रकार आठप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि जीवोंके क्रमशः पूर्वोक्त तीन और पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। नौ प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु अविरतोंमें नौप्रकृतिक उदयस्थान वेदकसम्यग्दृष्टियोंके ही होता है और वेदकसम्यग्दृष्टियोंके अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान पाये जाते हैं, अतः यहाँ पर भी उक्त चार सत्तास्थान होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सत्तरहप्रकृतिक बन्धस्थान, सात, आठ और नौप्रकृतिक तीन उदयस्थान तथा अट्ठाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिक तीन सत्तास्थान होते हैं। अविरतसम्यग्दृष्टियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टिके सत्तरहप्रकृतिक एक बन्धस्थान, छह, सात और आठ प्रकृतिक तीन उदयस्थान, तथा अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक दो सत्तास्थान होते हैं। क्षायिकसम्यग्दृष्टिके सत्तरह प्रकृतिक एक बन्धस्थान, छह, सात और आठ प्रकृतिक तीन उदयस्थान, तथा इक्कीसप्रकृतिक एक सत्तास्थान होता है। वेदकसम्यग्दृष्टिके सत्तरहप्रकृतिक एक बन्धस्थान सात,आठ और नौ प्रकृतिक तीन उदयस्थान, तथा अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतिक चार सत्तास्थान होते हैं।

तेरहप्रकृतिक बन्धस्थानमें अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। तेरह प्रकृतियोंका बन्ध देशविरतोंके होता है। वे दो प्रकारके होते हैं—एक तिर्यंच, दूसरे मनुष्य। इनमें जो तिर्यंच देशविरत हैं, उनके चारों ही उदयस्थानोंमें अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान होते हैं। इनमेंसे अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान तो उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि इन दोनों प्रकारके देशविरत तिर्यंचोंके होता है। उसमें भी जो प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके समय ही देशविरतिको प्राप्त करता है, उसी देशविरतके उपशमसम्यक्त्वके रहते हुए अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। जो देशविरत मनुष्य हैं उनके पाँच प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं। छहप्रकृतिक और सातप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए प्रत्येकमें अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और इक्कीस प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। तथा आठप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अट्ठाईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं।

नौ प्रकृतिक बन्धस्थान प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके होता है। इनके चार, पाँच, छह और सात प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं। इनमेंसे चार प्रकृतिक उदयस्थानके साथ दोनों गुणस्थानोंमें अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन ही सत्त्वस्थान होते हैं; क्योंकि यह उदयस्थान उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टिके ही होता है। पाँच और छह प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए पाँच-पाँच सत्त्वस्थान होते हैं, क्योंकि ये उदयस्थान तीनों प्रकारके सम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्भव हैं। किन्तु सातप्रकृतिक उदयस्थान वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके ही होता है। अतएव यहाँ इक्कीसप्रकृतिक सत्त्वस्थानसम्भव नहीं है; शेष चार ही सत्त्वस्थान होते हैं।

पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमें द्विकप्रकृतिक एक उदयस्थान और अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह और ग्यारह ये छह सत्तास्थान होते हैं। इनमेंसे उपशमश्रेणीकी अपेक्षा आदिके तीन सत्तास्थान पाये जाते हैं। तथा क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा इक्कीस, तेरह, बारह और ग्यारह ये चार सत्तास्थान होते हैं। जिस अनिवृत्तिबादरसंयतने आठ मध्यम कषायोंका क्षय नहीं किया, उसके इक्कीसप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। उसीके आठ कषायोंका क्षय होने पर तेरह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः नपुंसकवेदका क्षय होने पर बारहप्रकृतिक सत्तास्थान होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है और स्त्रीवेदका क्षय होने पर ग्यारहप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इस प्रकार पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमें दोनों श्रेणियोंकी अपेक्षा छह सत्तास्थान होते हैं।

चारप्रकृतिक बन्धस्थानमें द्विकप्रकृतिक और एकप्रकृतिक ये दो उदयस्थान और अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह और पाँच प्रकृतिक सात सत्तास्थान होते हैं। चार प्रकृतिक बन्धस्थान भी दोनों श्रेणियोंमें होता है। अतः उनके साथ उपशमश्रेणीमें अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्तास्थान होते हैं। शेष चार सत्तास्थान क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा जानना चाहिए। उनमेंसे तेरह, बारह और ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थानोंका वर्णन तो पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानके समान ही जानना चाहिए। उसी जीवके हास्यादिषट्कके क्षय हो जाने पर पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

तीन, दो और एक बन्धस्थानमें एक प्रकृतिक उदय और चार चार सत्तास्थान होते हैं, यह बात पहले स्वयं ग्रन्थकार बतला आये हैं। उन चार सत्तास्थानोंमेंसे अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्तास्थान तो उपशमश्रेणीमें ही होते हैं। शेष चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक और द्विप्रकृतिक एक-एक सत्तास्थानका स्पष्टीकरण यह है कि उसी अनिवृत्तिबादरसंयतके वेदोंका क्षय होने पर चार प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है। संज्वलन क्रोधके क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतिक सत्तास्थान होता है, संज्वलन मानके क्षय हो जाने पर द्विप्रकृतिक सत्तास्थान होता है और संज्वलन मायाके क्षय हो जाने पर एकप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। पुनः अबन्धक सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके एकप्रकृतिक उदयस्थानके साथ एकप्रकृतिक सत्तास्थान होता है। किन्तु अबन्धक सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमकके एक प्रकृतिक उदयस्थानके साथ अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्तास्थान पाये जाते हैं।

[मूलगा०२०] [1]दस णव पण्णरसाइं बंधोदयसंतपयडिठाणाणि।
भणियाणि मोहणिज्जे इत्तो णामं परं वोच्छं[1] ॥५१॥

मोहनीये बन्धोदयसत्त्वप्रकृतिस्थानानि क्रमेण दश १० नव ९ पञ्चदश १५ भणितानि। मोहनीयप्रकृतिबन्धस्थानानि १० मोहप्रकृत्युदयस्थानानि ९ मोहप्रकृतिसत्त्वस्थानानि १५। इतः परं नामकर्मणस्तानि बन्धोदयसत्त्वप्रकृतिस्थानान्यहं वक्ष्यामि ॥५१॥

इस प्रकार मोहनीयकर्मके दश बन्धस्थान, नौ उदयस्थान और पन्द्रह सत्त्वस्थान कहे। अब इससे आगे नामकर्मके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थानोंको कहेंगे ॥५१॥

अब उनमेंसे सबसे पहले नामकर्मके बन्धस्थान कहते हैं—

[मूलगा०२१] [2]तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठवीसमुगुतीसं।
तीसेक्कतीसमेगं बंधट्ठाणाणि णामस्स[2] ॥५२॥

२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।

नामकर्मणः बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकं २३ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ एककं १ इत्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। आद्यानि सप्त मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणषष्ठभागान्तं यथासम्भवं बध्यन्ते। एकं यशःकीर्तिकं १ उभयश्रेण्योरपूर्वकरणसप्तमभागप्रथमसमयात्सूक्ष्मसाम्परायचरमसमयपर्यन्तं बध्यते ॥५२॥

---

1. सं०पञ्चसं० ५, ६० । 2. ५, ६१ ।

१. सप्ततिका० २३ । २. सप्ततिका० २४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम कर्मके तेईस, पचीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस और एक प्रकृतिक, इस प्रकार ये आठ बन्धस्थान होते हैं ॥५२॥

अब नामकर्मके चारों गतियोंमें संभव बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]इगि पंच तिण्णि पंचय बंधट्ठाणा हवंति णामस्स ।
णिरयगइ तिरिय मणुया देवगईसंजुआ होंति ॥५३॥

१।५।३।५

क गत्यां कियन्ति स्थानानि सम्भवन्तीत्याह—['इगि पंच तिण्णि' इत्यादि ।] नरकगतिं याता मिथ्यादृष्टिजीवेन तिर्यग्मनुष्येण नरकगतियुक्तं नामकर्मणः बन्धस्थानं एकं बध्यते १ । तिर्यग्गत्यां तिर्यग्गतिसंयुक्तानि नामकर्मणः बन्धस्थानानि पञ्च भवन्ति ५ । मनुष्यगत्यां मनुष्यगत्या सह नाम्नः कर्मणः बन्धस्थानानि त्रीणि भवन्ति ३ । देवगतौ देवगतिसंयुक्तानि नामकर्मणः बन्धस्थानानि पञ्च भवन्ति ॥५३॥

नरकगतिसंयुक्त नामकर्मका एक बन्धस्थान है । तिर्यग्गतिसंयुक्त नामकर्मके पाँच बन्धस्थान हैं । मनुष्यगतिसंयुक्त नामकर्मके तीन बन्धस्थान है और देवगतिसंयुक्त नामकर्मके पाँच बन्धस्थान होते हैं ॥५३॥

नरकगतियुक्त १ । तिर्यग्गतियुक्त ५ । मनुष्यगतियुक्त ३ । देवगतियुक्त ५ बन्धस्थान ।

अब आचार्य उक्त स्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

अट्ठावीसं णिरए तेवीसं पंचवीस छव्वीसं ।
उणतीसं तीसं च हि तिरियगईसंजुआ पंच ॥५४॥

णिरए २८ । तिरियगईए २३।२५।२६।२९।३०

तानि कानि ? ['अट्ठावीसं णिरए' इत्यादि ।] नरकगत्यां नरकगतिं यातो जीवो नामप्रकृत्यष्टाविंशतिमेकं स्थानं बध्नाति २८ । तिर्यग्गतौ त्रयोविंशतिकं २३ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० चेति पञ्च नामकर्मणः प्रकृतिबन्धस्थानानि तिर्यग्गतियुक्तानि भवन्ति ॥५४॥

नरकगतौ २८ । तिर्यग्गतौ २३।२५।२६।२९।३० ।

नरकगतिके साथ बँधनेवाला नामकर्मका अट्ठाईसप्रकृतिक एक बन्धस्थान है । तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक पाँच बन्धस्थान तिर्यग्गति-संयुक्त बँधते हैं ॥५४॥

नरकगतियुक्त २८ । तिर्यग्गतियुक्त २३।२५।२६।२९।३०।

पणुवीसं उणतीसं तीसं च तिण्णि हुंति मणुयगई ।
[2]देवगईए चउरो एकत्तीसादि णिग्गदी एयं ॥५५॥

मणुयगईए २५।२९।३०। देवगईए ३१।३०।२९।२८।१

मनुष्यगतौ पञ्चविंशतिकं २५ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० चेति त्रीणि नामप्रकृतिबन्धस्थानानि मनुष्यगतियुक्तानि भवन्ति २५।२९।३०। देवगत्यां एकत्रिंशत्कादीनि चत्वारि । एकं गतिबन्धरहितं एकं यशो बध्नाति । देवगतौ ३१।३०।२९।२८।१। ॥५५॥

मनुष्यगतिके साथ नामकर्मके पचीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक तीन स्थान बँधते हैं । देवगतिके साथ इकतीस प्रकृतिक स्थानको आदि लेकर चार स्थान बँधते हैं । एकप्रकृतिक स्थान गति-रहित बँधता है ॥५५॥

मनुष्यगतियुक्त २५।२९।३०। देवगतियुक्त ३१।३०।२९।२८। गतिरहित १ ।

1. सं० पञ्चसं० ५, ६२ । 2. ५, १०१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]णिरयदुयं पंचिंदिय वेउव्विय तेउ कम्म णामं च ।
वेउव्वियंगवंगं वण्णचउक्कं तहा हुंडं ॥५६॥
अगुरुयलहुअचउक्कं तसचउ असुहं च अप्पसत्थगई ।
अथिर दुब्भग दुस्सर अणाइज्जं चेव णिमिणं च ॥५७॥
अजसकित्ती य तहा अट्ठावीसा हवंति णायव्वा ।
णिरयगईसंजुत्तं मिच्छादिट्ठी दु बंधंति ॥५८॥

[2]एत्थ णिरयगईए सह वुत्तिअभावादो एइंदियवियलिंदियजाईओ ण बज्झंति । तेण भंगो ।१।

अथ नरकगतिं प्रति गन्तारो जीवा मिथ्यादृष्टयः नामकर्मप्रकृतीरष्टाविंशतिं बध्नन्तीत्याह—['णिरयदुयं पंचिंदिय' इत्यादि ।] नरकगतितदानुपूर्वीद्वयं २ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिकं १ तैजसं १ कार्मणं १ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गं १ वर्णचतुष्कं ४ हुण्डकं १ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कं ४ त्रस-बादर-प्रत्येक-पर्याप्त-चतुष्कं ४ अशुभं १ अप्रशस्तविहायोगतिः १ अस्थिरं १ दुर्भगं १ दुःस्वरं १ अनादेयं १ निर्माणं १ अयशस्कीर्तिः १ चेत्यष्टाविंशतिं प्रकृतीर्नरकगतियुक्ता मिथ्यादृष्टयस्तिर्यञ्चो मनुष्या वा बध्नन्ति २८ ॥५६–५८॥

अत्राष्टाविंशतिके नरकगत्या सह प्रवृत्तिविरोधात् एकेन्द्रियविकलेन्द्रियजातयो न बध्यन्ते, संहननानि च न बध्यन्ते; तेन भङ्ग एकः १ ।

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें नरकद्विक (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी) पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिकशरीर-अंगोपांग, वर्णचतुष्क, (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श नामकर्म) हुण्डकसंस्थान, अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास), त्रस चतुष्क (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर) अशुभ, अप्रशस्तविहायोगति, अस्थिर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, निर्माण और अयशः कीर्त्ति; ये अट्ठाईस प्रकृतियाँ जानना चाहिए । इन प्रकृतियों-का नरकगतिसंयुक्त बन्ध मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यञ्च करते हैं ॥५६–५८॥

यहाँ नरकगतिके साथ उदय न पाये जानेसे एकेन्द्रिय और विकेन्द्रिय जातियाँ नहीं बँधती हैं, इसलिए भंग एक ही होता है ।

[3]तत्थ य पढमं तीसं तिरियदुगोराल तेज कम्मं च ।
पंचिंदियजाई वि य छस्संठाणाणमेयदरं ॥५६॥
ओरालियंगवंगं छस्संठाणाणमेयदरं ।
वण्णचउक्कं च तहा अगुरुयलहुयं च चत्तारि ॥६०॥
उज्जोउ तसचउक्कं थिराइछज्जुयलाणमेयदर णिमिणं ।
बंधइ मिच्छादिट्ठी एयदरं दो विहायगदी ॥६१॥

[4]एत्थ य* पढमतीसे छस्संठाण-छसंघयण-थिराइछज्जुयल-विहायगईजुयलाणि ६।६।२।२।२।२।२।२।२। अण्णोण्णगुणिया भंगा ४६०८ ।

1. सं० पञ्चसं० ५, ६३-६५ । 2. ५, 'नरकगत्या सह' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १६२) । 3. ५, ६७-६६३ । 4. ५, 'तत्र प्रथमत्रिंशति' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १६२) ।
*ब 'एयत्थ' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ तिर्यग्गतिं प्रति गन्ता मिथ्यादृष्टिर्जीवः प्रथमं त्रिंशत्कं स्थानं बध्नातीति गाथात्रयेणाह— ['तत्थ य पढमं तीसं' इत्यादि ।] तत्र तिर्यग्गत्यां बन्धस्थानेषु प्रथमं नामप्रकृतित्रिंशत्कं मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति । तदाह—तिर्यग्गतिद्वयं २ औदारिक-तैजस-कार्मणशरीरत्रयं ३ पञ्चेन्द्रियं १ संस्थानानां षण्णां मध्ये एकतरसंस्थानं १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ षण्णां संहननानां मध्ये एकतरं संहननं १ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ उद्योतं १ त्रसचतुष्कं ४ स्थिरादिषड्युग्मानां संख्योपेतानां मध्ये एकतरं १।१।१।१।१।१। निर्माणं १ विहायोगतिद्वयस्य मध्ये एकतरं १ चेति नामकर्मप्रकृतित्रिंशत्कं प्रथमं स्थानं ३० मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति । एताः ३० प्रकृतीर्बद्ध्वा मरणं प्राप्य पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवो जायते इत्यर्थः ॥५९-६१॥

अत्र प्रथमत्रिंशत्के स्थाने षट् संस्थान-संहनन-स्थिरादि षड्युगलविहायोगतियुगलानि ६।६।२।२।२। २।२।२।२ एतेऽङ्काः अन्योन्यगुणिता भङ्गाः ४६०८ ।

तिर्यग्द्विक (तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी), औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, पंचेन्द्रियजाति, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिकशरीर-अंगोपांग, छह संहननोंमेंसे कोई एक, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, त्रसचतुष्क, (स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय और यशःकीर्त्ति-अयशःकीर्त्ति इन) स्थिरादि छह युगलोंमेंसे कोई एक एक, निर्माण, दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, इन प्रथम प्रकारवाली तीस प्रकृतियोंको नारकी मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है ॥५९-६१॥

इस प्रथम तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें छह संस्थान, छह संहनन, स्थिरादि छह युगल और विहायोगतिद्विक इनके परस्पर गुणा करनेपर (६×६×२×२×२×२×२×२×२= ४६०८) चार हजार छह सौ आठ भंग होते हैं ।

[1]एमेव विदियतीसं णवरि असंपत्त हुंडसंठाणं ।
अवणिज्जो एयदरं सासणसम्मो दु बंधेइ ॥६२॥

एत्थ विदियतीसे सासणा अंतिमसंठाणा संघयणाणि बंधं णागच्छंति, तज्जोगतिव्वसंकिलेसस्स अभावादो । ५।५।२।२।२।२।२।२।२। अण्णोण्णगुणिया भंगा ३२०० । एए पुव्वपविट्ठा पुणरुत्ता इदि ण घेप्पंति ।

एवं प्रथमत्रिंशत्कोक्तप्रकृतिबन्धस्थानप्रकारेण द्वितीयं त्रिंशत्कं स्थानं ३० भवति । नवरि विशेषः किन्तु असम्प्राप्तसृपाटिकसंहनन-हुण्डकसंस्थानद्वयं अपनीय दूरीकृत्य पञ्चानां संस्थानानां पञ्चानां संहननानां च एकतरं संस्थानं १ संहननं १ सासादनस्थो जीवः द्वितीयत्रिंशत्कं बध्नाति । अन्त्यसंस्थानसंहननद्वयं वर्जयित्वा । द्वितीयत्रिंशत्कनामप्रकृतिस्थानं ३० चातुर्गतिकः सासादनगुणस्थानवर्ती जीवो बद्ध्वा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवः समुत्पद्यते ॥६२॥

अत्र द्वितीयत्रिंशत्के सासादना जीवा अन्तिमसंस्थान-संहननद्वयस्य बन्धं नागच्छन्ति । कुतः ? तद्योग्यतीव्रसंक्लेशस्य तेषामभावात् । ५।५।२।२।२।२।२।२ । २ अन्योन्यगुणिता भङ्गाः ३२०० । एते पूर्वेषु प्रविष्टाः पुनरुक्तत्वान्न गृह्यन्ते ।

इसी प्रकार द्वितीय तीसप्रकृतिक बन्धस्थान होता है । विशेषता केवल यह है कि उसमें प्रथम तीसमेंसे असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन और हुंडकसंस्थान इन दोको निकाल देना चाहिए । अर्थात् छह संस्थान और छह संहननके स्थानपर पाँच संस्थान और पाँच संहननमेंसे कोई एकको ग्रहण करना चाहिए । इस द्वितीय तीसप्रकृतिक स्थानको सासादन सम्यग्दृष्टि जीव बाँधता है ॥६२॥

इस द्वितीय तीसप्रकृतिक स्थानमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव अन्तिम संस्थान और अन्तिम संहननका बन्ध नहीं करते हैं, क्योंकि इन दोनोंके बन्धयोग्य तीव्र संक्लेश सासादनगुणस्थानमें

1. सं० पञ्चसं० ५, ७० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं पाया जाता। इसलिए पाँच संस्थान, पाँच संहनन और स्थिरादि छह युगलोंके तथा विहायोगतिद्विकके परस्पर गुणा करनेसे (५×५×२×२×२×२×२×२×२=३२००) तीन हजार दो सौ भंग होते हैं। ये सर्व भंग पूर्वोक्त ४६०८ में प्रविष्ट होनेसे पुनरुक्त होते हैं, अतः उनका ग्रहण नहीं किया गया है।

[1]तह य तदीयं तीसं तिरियदुगोराल तेज कम्मं च।
ओरालियंगवंगं हुंडमसंपत्त वण्णचदुं ॥६३॥
अगुरुयलयहुयचउक्कं तसचउउज्जोवमप्पसत्थगई।
थिर-सुह-जसजुगलाणं तिण्णेयदरं अणादेज्जं ॥६४॥
दुब्भग-दुस्सर-णिमिणं वियलिंदियजाइ एयदरमेव।
एयाओ पयडीओ मिच्छाइट्ठी दु बंधंति ॥६५॥

[2]एत्थ वियलिंदियाणं एयहुंडसंठाणमेव। तहा एदेसिं बंधोदयाणं दुस्सरमेव। इदि थिर-सुह-जसजुयलतिण्णिवियलिंदियजाईओ २।२।२।३ अण्णोण्णगुणिया भंगा २४।

तथा तृतीयं नामकर्मप्रकृतिस्थानं त्रिंशत्कं मिथ्यादृष्टिर्जीवो मनुष्यस्तिर्यग्वा बद्ध्वा विकलत्रयजीवः तिर्यग्गतावुत्पद्यते। तत्किम्? तिर्यग्द्वयं २ औदारिक-तैजस-कार्मणत्रिकं ३ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ हुण्डकं १ सृपाटिकं १ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ त्रसचतुष्कं ४ उद्योतं १ अप्रशस्तविहायोगतिः १ स्थिर-शुभ-यशोयुगलानां त्रयाणामेकतरं १।१।१। अनादेयं १ दुर्भगं १ दुस्वरं १ निर्माणं १ विकलेन्द्रियजात्येकतरं १ चेत्येताः प्रकृतीः ३० मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति ॥६३-६५॥

अत्र विकलेन्द्रियाणामेकं हुण्डसंस्थानं भवति। एतेषां विकलत्रयाणां बन्धोदययोः दुःस्वरमेव भवति। इति स्थिर-शुभ-यशोयुगलानि त्रीणि विकलत्रयजातित्रयं २।२।२।३। अन्योन्यगुणितभङ्गाः २४।

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक तृतीय बन्धस्थान है। उसकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर-अंगोपांग हुंडकसंस्थान, असंप्राप्त-सृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति; इन तीन युगलोंमेंसे कोई एक एक; अनादेय, दुर्भग, दुःस्वर, निर्माण और विकलेन्द्रियजातियोंमेंसे कोई एक, इन प्रकृतियोंको मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यञ्च ही बाँधते हैं ॥६३-६५॥

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि विकलेन्द्रियजीवोंके हुंडकसंस्थान ही होता है। तथा इनके दुःस्वरप्रकृतिका ही बन्ध और उदय होता है। इनकी तीन विकलेन्द्रिय जातियाँ तथा स्थिर, शुभ और यशस्कीर्त्ति युगल; इनके परस्पर गुणा करनेसे (३×२×२×२=२४) चौबीस भंग होते हैं।

[3]जह† तिण्हं तीसाणं तह चेव य तिण्णि ऊणतीसं तु।
णवरि विसेसो जाणे उज्जोवं णत्थि सव्वत्थ ॥६६॥

एयासु पुव्वुत्तभंगा ४६०८। २४।

यथा त्रिंशत्कानां त्रिकं ३०।३०।३० तथैव एकोनत्रिंशत्कानां त्रिकं २९।२९।२९। नवरि विशेषः,

1. सं० पञ्चसं० ५, ७१-७३। 2. ५, ७४-५५। 3. ५, ७६।

† ब जिह

किन्तु सर्वत्र तिर्यक्षु जीवेषु उद्योतो नास्तीति, केचिदुद्योतं बध्नन्ति, केचिन्न बन्धन्ति। अत उद्योतं विना एकोनत्रिंशत्कं त्रिकं पूर्वोक्तप्रकृतिस्थानत्रिकं २६।२६।२६ ज्ञेयम् ॥६६॥

एतासु पूर्वोक्ता भङ्गाः ४६०८।२४।

जिस प्रकारसे तीन प्रकारके तीसप्रकृतिक बन्धस्थानोंका निरूपण किया है, उसी प्रकारसे तीन प्रकारके उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान भी होते हैं। केवल विशेषता यह है कि उन सभीमें उद्योतप्रकृति नहीं होती है ॥६६॥

इन तीनों ही प्रकारके उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानोंके भंग पूर्वोक्त ४६०८ और २४ ही होते हैं।

[1]तत्थ इमं छव्वीसं तिरियदुगोराल तेय* कम्मं च।
एइंदिय वण्णचउ अगुरुयलहुयचउक्कं होइ हुंडं च ॥६७॥
आदावुज्जोवाणमेयदर थावर बादरयं।
पज्जत्तं पत्तेयं थिराथिराणं च एयदरं ॥६८॥
एयदरं च सुहासुह दुब्भग जसजुयलमेयदर णिमिणं।
अणादिज्जं चेव तहा मिच्छादिट्ठी दु बंधंति ॥६९॥

[2]एत्थ एइंदिएसु अंगवंगं णत्थि, अट्ठंगाभावादो। संठाणमवि एयमेव हुंडं। आदावुज्जोव-थिर-सुह-जसजुयलाणि २।२।२।२ अण्णोण्णगुणिया भंगा १६।

तत्र तिर्यग्गत्यां इदं षड्विंशतिकं नामप्रकृतिस्थानं मिथ्यादृष्टिर्जीवो बद्ध्वा तिर्यग्जीव उत्पद्यते। किं तत्? तिर्यग्द्वयं २ औदारिक-तैजस-कार्मणानि ३ एकेन्द्रियं १ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ हुण्डकं १ आतपोद्योतयोरेकतरं १ स्थावरं १ बादरं १ पर्याप्तं १ स्थिरास्थिरयोरेकतरं १ शुभाशुभयोरेकतरं १ दुर्भगं १ यशोयुग्मयोरेकतरं १ निर्माणं १ अनादेयं १ चेति षड्विंशतिं प्रकृतीर्मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति २६ ॥६७–६९॥

अत्र एकेन्द्रियेषु अङ्गोपाङ्गं नास्ति, अष्टाङ्गाभावात्। संस्थानं हुण्डकमेव भवति। अत आतपोद्योत-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशोऽयशसोर्युगलानि २।२।२।२ अन्योन्यगुणिता भङ्गाः १६।

छव्वीसप्रकृतिक बन्धस्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, एकेन्द्रियजाति, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, हुंडकसंस्थान, आतप, और उद्योतमेंसे कोई एक, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर-अस्थिरमेंसे कोई एक, शुभ-अशुभमेंसे कोई एक, दुर्भग और यशस्कीर्त्तियुगलमेंसे कोई एक, निर्माण और अनादेय, इन छव्वीस प्रकृतियोंको एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टि देव बाँधते हैं ॥६७–६९॥

यहाँपर एकेन्द्रियमें अंगोपाँगनामकर्मका उदय नहीं होता है, क्योंकि उनके हस्त, पाद आदि आठ अंगोंका अभाव है। उनके संस्थान भी एक हुंडक ही होता है। अतः आतप उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ- अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति युगलोंको परस्पर गुणा करनेपर (२×२×२×२=१६) सोलह भंग होते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ७७-७९ । 2. ५, ८० ।

* ब तेज ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

[1]जह* छव्वीसं ठाणं तह चेव य होइ पढमपणुवीसं ।
णवरि विसेसो जाणे उज्जोवादावरहियं तु ॥७०॥
बादर सुहुमेकदरं साहारणपत्तेयं च एकदरं ।
संजुत्तं तह चेव य मिच्छाइट्ठी दु बंधंति ॥७१॥

[2]एत्थ सुहुम-साहारणाणि भवणादि ईसाणंता देवाण बंधंति । एत्थ जसकित्तिं णिरुंभिऊण थिराथिर-दो भंगा सुभासुभ-दो-भंगेहिं गुणिया ।४। अजसकित्तिं णिरुंभिऊण बायर-पत्तेय-थिर-सुहजुयलाणि २।२।२।२। अण्णोण्णगुणिया अजसकित्तिभंगा १६ । उभए वि २० ।

यथा षड्विंशतिकं स्थानं तथा प्रथमपञ्चविंशतिकं नामप्रकृतिस्थानं २५ भवति । नवरि किञ्चिद्वि-शेषः, तत् षड्विंशतिकं उद्योतातपरहितं त्वं जानीहि, तत्र तद्द्वयं निराक्रियते इत्यर्थः २५ । बादर-सूक्ष्मयो-र्मध्ये एकतरेण साधारण-प्रत्येकयोर्मध्ये एकतरेण च संयुक्तं पञ्चविंशतिकं स्थानं २५ मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति ॥७०–७१॥

अत्र पञ्चविंशतिके सूक्ष्म-साधारणप्रकृती द्वे भवनत्रयज-सौधर्मैशानजा देवा न बध्नन्ति । किन्तु बादर-प्रत्येकद्वयं बध्नन्तीत्यर्थः। अत्र यशःकीर्त्तिमाश्रित्य स्थिरास्थिरभङ्गौ २ शुभाशुभाभ्यां भङ्गाभ्यां २ गुणिता भङ्गाश्चत्वारः ४ । अयशःकीर्त्तिमाश्रित्य बादरसूक्ष्म-प्रत्येकसाधारण-स्थिरास्थिर-शुभाशुभयुगलानि २।२।२।२ अन्योन्यगुणिताः अयशस्कीर्त्तिभङ्गाः १६ । उभयोऽपि २० ।

जिस प्रकार छव्वीसप्रकृतिक स्थान है, उस ही प्रकार प्रथम पच्चीसप्रकृतिक स्थान जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि वह उद्योत और आतप; इन दो प्रकृतियोंसे रहित होता है । इस स्थानको बादर-सूक्ष्मोंमेंसे किसी एकसे संयुक्त, तथा साधारण-प्रत्येकशरीरमेंसे किसी एकसे संयुक्त मिथ्यादृष्टि जीव बाँधते हैं ॥७०–७१॥

इस प्रथम पच्चीस प्रकृतिक स्थानमें बतलाई गई प्रकृतियोंमेंसे सूक्ष्म और साधारण इन दो प्रकृतियोंको भवनत्रिक और सौधर्म-ईशान स्वर्गके देव नहीं बाँधते हैं । यहाँ पर यशस्कीर्त्तिको निरुद्ध करके स्थिर-अस्थिर-सम्बन्धी दो भंगोंको शुभ-अशुभ-सम्बन्धी दो भंगोंसे गुणित करने पर चार भङ्ग होते हैं । तथा अयशस्कीर्त्तिको निरुद्ध करके बादर, प्रत्येक, स्थिर और शुभ, इन चार युगलोंको परस्पर गुणित करने पर (२×२×२×२=१६) अयशकीर्त्तिसम्बन्धी सोलह भङ्ग होते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त चार और सोलह ये दोनों मिल कर २० भङ्ग हो जाते हैं ।

[3]बिदियपणुवीसट्ठाणं तिरियदुगोराल तेय कम्मं च ।
वियलिंदिय-पंचिंदिय एयदरं हुंडसंठाणं ॥७२॥
ओरालियंगवंगं वण्णचउक्कं तहा अपज्जत्तं ।
अगुरुगलहुगुवघायं तस बायरयं असंपत्तं ॥७३॥
पत्तेयमथिरमसुहं दुभगमणादेज्ज अजस णिमिणं च ।
बंधइ मिच्छाइट्ठी अपज्जत्तसंजुयं एयं ॥७४॥

[4]एत्थ परघाय-उस्सास-विहायगदि-सरणामाणं अपज्जत्तेण सह बंधो णत्थि, विरोहाओ; अपज्जत्तकाले य एदेसिं उदयाभावादो य । एत्थ चत्तारि जाइ-भंगा ४ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ८१ । 2. ५, ८२-८३ । 3. ५, ८४-८६ । 4. ५, 'यतोऽत्र परघातोच्छ्वास' इत्यादि गद्यभागः (पृ० १६४) ।

* ब जिह ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयं पञ्चविंशतिकं नामप्रकृतिस्थानं २५ तिर्यग्जीवो मनुष्यो वा बद्ध्वा तिर्यग्गतौ समुत्पद्यते। तत्किम् ? तिर्यग्गति-तदानुपूर्व्ये २ औदारिक-तैजस-कार्मणानि ३ विकलेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियाणां मध्ये एकतरं १ हुण्डकसंस्थानं १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ वर्णचतुष्कं ४ अपर्याप्तं १ अगुरुलघु १ उपघातं १ त्रसं १ बादरं १ असम्प्राप्तसंहननं १ प्रत्येकं १ अस्थिरं १ अशुभं १ दुर्भगं १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ चेति द्वितीयपञ्चविंशतिनामप्रकृतिबन्धस्थानं अपर्याप्तसंयुक्तं मिथ्यादृष्टिर्जीवस्तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाति २५ ॥७२-७४॥

अत्र परघातोच्छ्वास-विहायोगति-स्वरनामप्रकृतीनां अपर्याप्तेन सह बन्धो नास्तीति विरोधात्। अपर्याप्तकाले तेषामुदयाभावात्। अत्र चत्वारो जातिभङ्गाः ४।

द्वितीय पच्चीसप्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, विकलत्रय और पंचेन्द्रियजातिमेंसे कोई एक, हुंडकसंस्थान, औदारिक-शरीर-अङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर सृपाटिकासंहनन, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति और निर्माण, इस द्वितीय पच्चीसप्रकृतिक अपर्याप्तसंयुक्त स्थानको मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है ॥७२-७४॥

यहाँपर परघात, उच्छ्वास, विहायोगति और स्वर नामकर्मका अपर्याप्त नामकर्मके साथ विरोध होनेसे बन्ध नहीं होता। दूसरे अपर्याप्तकालमें इन प्रकृतियोंका उदय भी नहीं होता है। यहाँ पर जातिसम्बन्धी चार भंग होते हैं।

[1]तत्थ इमं तेवीसं तिरियदुगोराल तेज कम्मं च।
एइंदियवण्णचउं अगुरुयलहुयं च उवघायं ॥७५॥
थावरमथिरं असुहं दुभग अणादेज्ज अजस णिमिणं च।
हुंडं च अपज्जत्तं बायर-सुहुमाणमेयदरं ॥७६॥
साहारण-पत्तेयं एयदर बंधगो तहा मिच्छो।
एए बंधट्ठाणा तिरियगईसंजुया भणिया ॥७७॥

[2]एत्थ संघयणबंधो णत्थि, एइंदिएसु संघयणस्स उदयाभावादो। एत्थ बादर-सुहुम दो भंगा, पत्तेय-साहारण-दोभंगेहिं गुणिया चत्तारि भंगा ४।

एवं तिरियगइसंजुत्तसव्वभंगा ९३०८।

इदं त्रयोविंशतिकं नामप्रकृतिबन्धस्थानं बद्ध्वा मिथ्यादृष्टिस्तिर्यङ् मनुष्यो वा तत्र तिर्यग्गतावुत्पद्यते। तत्किम् ? तिर्यग्द्वयं २ औदारिक-तैजस-कार्मणानि ३ एकेन्द्रियं १ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघु १ उपघातं १ स्थावरं १ अस्थिरं १ अशुभं १ दुर्भगं १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ हुण्डकं १ अपर्याप्तं १ बादर-सूक्ष्मयोर्मध्ये एकतरं १ साधारण-प्रत्येकयोर्मध्ये एकतरं १ चेति त्रयोविंशतिनामप्रकृतीनां २३ बंधको मिथ्यादृष्टिर्भवति। तिर्यग्गतौ एतानि नामकर्मप्रकृतिस्थानानि तिर्यग्गतियुक्तानि भणितानि सूरिभिरिति ॥७५-७७॥

अत्र त्रयोविंशतिके संहननबन्धो नास्ति, एकेन्द्रियेषु संहननानामुदयाभावात्। अत्र बादर-सूक्ष्मौ द्वौ २ प्रत्येक-साधारणाभ्यां द्वाभ्यां गुणिताश्चत्वारो भङ्गाः ४।

एवं तिर्यग्गतिसंयुक्तसर्वभङ्गा नवसहस्रत्रिशताष्टोत्तरसंख्याः ९३०८।

1. सं० पञ्चसं० ४, ८७-८६। 2. ४, 'अत्र संहननबन्धो' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १६४)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेईसप्रकृतिक बन्धस्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, एकेन्द्रियजाति, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण, हुंडकसंस्थान, अपर्याप्त, बादर-सूक्ष्ममेंसे कोई एक और साधारण-प्रत्येकमेंसे कोई एक। इस तेईसप्रकृतिक स्थानको मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है। इस प्रकार तिर्यग्गतिसंयुक्त बँधनेवाले उपर्युक्त बन्धस्थान कहे ॥७५-७७॥

इस तेईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें संहननका बन्ध नहीं बतलाया गया है, क्योंकि एकेन्द्रिय जीवके संहननका उदय नहीं होता है। यहाँ पर बादर-सूक्ष्मसम्बन्धी भंगोंको प्रत्येक और साधारणसम्बन्धी दो भङ्गोंके साथ गुणा करने पर ४ भंग होते हैं।

इस प्रकार तिर्यग्गतिसंयुक्त सर्व भङ्ग (४६०८ + २४ + ४६०८ + २४ + १६ + २० + ४ + ४ =) ६३०८ होते हैं।

अब मनुष्यगतिसंयुक्त बँधनेवाले स्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]तत्थ य तीसट्ठाणा मणुयदुगोराल तेय कम्मं च।
ओरालियंगवंगं समचउरं वज्जरिसभं च ॥७८॥
तसचउ वण्णचउक्कं अगुरुयलहुयं च हुंति चत्तारि।
थिरमथिर-सुहासुहाणं एयदरं सुभगमादेज्जं ॥७९॥
सुस्सर-जसजुयलेक्कं पसत्थगई णिमिणयं च तित्थयरं।
पंचिंदियं च तीसं अविरयसम्मो उ बंधेइ ॥८०॥

[2]एत्थ य दुब्भग-दुस्सर-अणादिज्जाणं तित्थयरेण सम्मत्तेण सह विरोधादो ण बंधो। सुहय-सुस्सर-आदेज्जाणमेव बंधो। तेण थिर-सुह-जसजुयलाणि २।२।२ अण्णेण्णगुणिया भंगा ८।

अथेदं नामप्रकृतिबन्धस्थानं बद्ध्वा मनुष्यगत्यां समुत्पद्यते। मनुष्यगत्या सह तत्स्थानकं गाथादशकेनाऽऽह—['तत्थ य तीसट्ठाणा' इत्यादि।] तत्र मनुष्यगत्यां नामकर्मप्रकृतिबन्धस्थानं त्रिंशत्कं ३० अविरतसम्यग्दृष्टिर्देवो नारको वा बध्नाति। तत्किम्? मनुष्यगति-तदानुपूर्व्ये २ औदारिक-तैजस-कार्मणानि ३ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ समचतुरस्रसंस्थानं १ वज्रवृषभनाराचसंहननं १ त्रसचतुष्कं ४ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ स्थिरास्थिर-शुभाशुभयुगलानां मध्ये एकतरं १।१ सुभगं १ आदेयं १ सुस्वरं १ यशोयुग्मस्यैकतरं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ निर्माणं १ तीर्थंकरत्वं १ पञ्चेन्द्रियं १ चेति नामप्रकृतिबन्धस्थानकं त्रिंशत्कं असंयतसम्यग्दृष्टिर्देवो नारको वा बध्नाति ॥७८-८०॥

अत्र दुर्भग-दुःस्वरानादेयानां तीर्थकृत्सम्यक्त्वाभ्यां विरोधान्न बन्धः। सुभग-सुस्वरादेयानामेव बन्धः। यतस्तेन स्थिर-शुभ-यशो-युगलानि २।२।२ अन्योन्यगुणिता भङ्गाः अष्टौ ८।

उनमेंसे तीसप्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—मनुष्यद्विक (मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी) औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, स्थिर, अस्थिर और शुभ-अशुभमेंसे कोई एक एक, सुभग, आदेय, सुस्वर और यशःकीर्त्तियुगलमेंसे एक, प्रशस्तविहायोगति, निर्माण, तीर्थङ्कर और पंचेन्द्रियजाति। इस तीसप्रकृतिक स्थानको अविरतसम्यग्दृष्टि बाँधता है ॥७८-८०॥

1. सं० पञ्चसं० ५. ६०-६३। 2. ५, 'अत्र दुर्भग' इत्यादिगद्यभागः। (पृ० १६५)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ पर दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इन तीन प्रकृतियोंका तीर्थङ्करप्रकृति और सम्यक्त्वके साथ विरोध होनेसे बन्ध नहीं होता है; किन्तु सुभग, सुस्वर और आदेयका ही बन्ध होता है, इसलिए शेष तीन युगलोंके परस्पर गुणित करने पर (२×२×=८) आठ भङ्ग होते हैं।

[1]जह तीसं तह चेव य ऊणत्तीसं तु जाण पढमं तु।
तित्थयरं वज्जित्ता अविरदसम्मो दु बंधेइ॥८१॥

एत्थ अट्ठ भंगा ८ पुणरुत्ता, इदि ण गहिया।

यथा त्रिंशत्कं बन्धस्थानं तीर्थंकरत्वं वर्जयित्वा प्रथममेकोनत्रिंशत्कं नामप्रकृतिबन्धस्थानं २९ अविरतसम्यग्दृष्टिर्देवो नारको वा बध्नातीति जानीहि ॥८१॥

अत्राष्टौ भङ्गाः ८ पुनरुक्तत्वान्न गृह्यन्ते।

जिस प्रकार तीसप्रकृतिक बन्धस्थान बतलाया गया है, उसी प्रकार प्रथम उनतीस प्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए। इसमें केवल तीर्थङ्करप्रकृतिको छोड़ देते हैं। इस स्थानको अविरतसम्यग्दृष्टि जीव बाँधता है ॥८१॥

यहाँ पर उपर्युक्त आठ भंग होते हैं, जो कि पुनरुक्त होनेसे ग्रहण नहीं किये गये हैं।

[2]जह पढमं उणतीसं तह चेव य विदियऊणतीसं तु।
णवरि विसेसो सुस्सर सुभगादेज्जजुयलाणमेयदरं ॥८२॥
हुंडमसंपत्तं पि† वज्जिय सेसाणमेक्कयरयं च।
विहायगइजुयलमेयदरं सासणसम्मा दु बंधंति ॥८३॥

२।२।२।२।२।२।५।५।२ अण्णोण्णगुणिया भंगा ३२००।

एए तइयउणतीसपविट्ठा ण गहिया।

यथा प्रथममेकोनत्रिंशत्कं तथा तेनैव प्रकारेण द्वितीयमेकोनत्रिंशत्कं नामप्रकृतिबन्धस्थानं २९ भवति। नवरिः किञ्चिद्विशेषः, किन्तु सुस्वर-सुभगादेययुगलानां मध्ये एकतरं १।१।१। हुण्डकसंस्थाना-सम्प्राप्तसंहनने द्वे २ अन्तिमे वर्जयित्वा शेषाणां पञ्चानां संस्थानानां पञ्चानां संहननानां चैकतरं १।१ विहायोगतियुग्मस्यैकतरं १ इति विशेषः। मनुष्यगतिसंयुक्तमेकोनत्रिंशत्कं स्थानं द्वितीयं २९ सासादन-सम्यग्दृष्टयो बध्नन्ति ॥८२-८३॥

स्थिर-शुभ-यशः-सुस्वर-सुभगादेय-प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतियुगलान्त्यसंस्थान-संहननवर्जित-पञ्च-संस्थान-पञ्चसंहननानि २।२।२।२।२।२।४।५। ५ अन्योन्यगुणिता भङ्गाः ३२००। एते भङ्गाः वक्ष्यमाण-तृतीयनवविंशतिं प्रति प्रविष्टा इति न गृहीता न गृह्यन्ते।

जिस प्रकार प्रथम उनतीसप्रकृतिक स्थान कहा गया है, उसी प्रकार द्वितीय उनतीस-प्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि सुस्वर, सुभग और आदेय, इन तीन युगलोंमेंसे कोई एक एक, तथा हुंडकसंस्थान, और सृपाटिका संहननको छोड़कर शेषमेंसे कोई एक एक और विहायोगति-युगलमेंसे कोई एक प्रकृति-संयुक्त द्वितीय उनतीस प्रकृतिकस्थानको सासादनसम्यग्दृष्टि जीव बाँधते हैं ॥८२-८३॥

यहाँ पर स्थिरादि छह युगल, पाँच संस्थान, पाँच संहनन और विहायोगति-द्विकके परस्पर गुणित करनेपर (२×२×२×२×२×२×५×५×२=) ३२०० भंग होते हैं। ये भंग तृतीय उनतीसप्रकृतिक स्थानके अन्तर्गत हैं, इससे उनका ग्रहण नहीं किया गया है।

1. सं० पञ्चसं० ५, ६४। 2. ५, ६५-६६।
†ब पिच,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]एवं तइय उगुतीसं णवरि असंपत्त हुंडसहियं च ।
बंधइ मिच्छाइट्ठी छण्हं जुयलाणमेगदरं ॥८४॥

२।२।२।२।२।२।६।६।२ एत्थ भंगा ४६०८ ।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेणासम्प्राप्तसंहनन-हुण्डकसंस्थानसहितं तृतीयमेकोनत्रिंशत्कं नामप्रकृतिबन्धस्थानं २९ मिथ्यादृष्टिर्जीवो बध्नाति । षण्णां स्थिरादीनां युगलानां मध्ये एकतरं १।१।१।१।२।१ बध्नाति ॥८४॥

२।२।२।२।२।२।६।६।२ अन्योन्येन गुणिता भङ्गाः ४६०८ ।

इसी प्रकार तृतीय उनतीसप्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए । विशेषता केवल यह है कि वह सृपाटिकासंहनन और हुण्डकसंस्थान सहित है । तथा सात युगलोंमेंसे किसी एक प्रकृतिके साथ उसे मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है ॥८४॥

इस तृतीय उनतीसप्रकृतिक स्थानमें छह संस्थान, छह संहनन और सात युगलोंके परस्पर गुणा करने पर (६×६×२×२×२×२×२×२=) ४६०८ भङ्ग होते हैं ।

[2]एत्थ इमं पणुवीसं मणुयदुगोराल तेज कम्मं च ।
ओरालियंगवंगं हुंडमसंपत्त वण्णचदुं ॥८५॥
अगुरुगलहुगुवघायं तसबायर पत्तेय अपज्जत्तं ।
अथिरमसुहं दुब्भग अणादेज्ज अजस णिमिणं च ॥८६॥
पंचिंदिमसंजुत्तं पणुवीसं बंधगो तहा मिच्छो ।
मणुयगइसंजुत्ताणि तिण्णि ठाणाणि भणियाणि ॥८७॥

[3]एत्थ संकिलेसेण बज्झमाण-अपज्जत्तेण सह थिराईणं विसुद्धपयडीणं बंधो णत्थि, तेण भंगो १ । मणुयगइ-सव्वभंगा ४६१७ ।

अत्रास्यां मनुष्यगत्यां इदं पञ्चविंशतिकं नामप्रकृतिबन्धस्थानं मिथ्यादृष्टिर्जीवः तिर्यङ् मनुष्यो वा बध्नाति । तत्किम् ? मनुष्यद्विकं २ औदारिक-तैजस-कार्मणानि ३ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ हुण्डकं १ असम्प्राप्तसंहननं १ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघु १ उपघातं १ त्रसं १ बादरं १ प्रत्येकं १ अपर्याप्तं १ अस्थिरं १ अशुभं १ दुर्भगं १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ पञ्चेन्द्रियं १ चेति पञ्चविंशतिकं नामप्रकृतिबन्धस्थानकं २५ लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यगतिसहितं मिथ्यादृष्टिर्मनुष्यस्तिर्यग् जीवो वा बध्नाति । मनुष्यगतिसहितानि त्रीणि स्थानानि मनुष्यगतौ भणितानि ॥८५–८७॥

अत्र संक्लेशतो बध्यमानेनापर्याप्तेन सह स्थिरादीनां विशुद्धप्रकृतीनां बन्धो नास्ति यतः, तत एको भङ्गः १ ।

मनुष्यगतौ सर्वे भङ्गाः (४६०८+८+१=) ४६१७ ।

पच्चीसप्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—मनुष्यद्विक, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, हुण्डकसंस्थान, सृपाटिकासंहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, निर्माण और पंचेन्द्रियजाति । पंचेन्द्रियजातिसंयुक्त इस पच्चीसप्रकृतिक स्थानको मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है । इस प्रकार मनुष्यगतिसंयुक्त तीन स्थान कहे गये हैं ॥८५–८७॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ६७ । 2. ५, ९८-१०० । 3. ५, 'अत्र संक्लेशतो' इत्यादिगद्यांशः - (पृ० १६६) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ पर संक्लेशके बँधनेवाली अपर्याप्त प्रकृतिके साथ स्थिर आदि विशुद्धिकालमें बँधनेवाली विशुद्ध प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है। इसलिए भंग एक ही है। इस प्रकार मनुष्यगति संयुक्त सर्व भंग (८+४६०८+१=) ४६१७ होते हैं।

अब देवगतिसंयुक्त बँधनेवाले स्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]देवदुयं पंचिंदिय वेउव्वाहार तेय कम्मं च।
समचउरं वेउव्विय आहारय-अंगवंगणामं च ॥८८॥
तसचउ वण्णचउक्कं अगुरुयलहुयं च होंति चत्तारि।
थिर सुह सुहयं सुस्सर पसत्थगइ जस य आदेज्जं ॥८९॥
णिमिणं चिय तित्थयरं एक्कत्तीसं होंति णेयाणि।
बंधइ पमत्त इयरो अपुव्वकरणो य णियमेण ॥९०॥

[2]एत्थ देवगईए सह संघयणाणि ण बज्झंति, देवेसु संघयणाणमुदयाभावादो भंगो १।

यदिदं नामप्रकृतिबन्धस्थानकं बद्ध्वा देवगतौ समुत्पद्यते, तदिदं बन्धस्थानकं देवगतिसहितं गाथानवकेनाऽऽह—['देवदुगं पंचिंदिय' इत्यादि।] देवगति-देवगत्यानुपूर्वी द्वे २ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणशरीराणि ४ समचतुरस्रसंस्थानं १ वैक्रियिकाहारकाङ्गोपाङ्गद्वयं २ त्रसचतुष्कं ४ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुचतुष्कं ४ स्थिरं १ शुभं १ सुभगं १ सुस्वरं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ यशस्कीर्त्तिः १ आदेयं १ निर्माणं १ तीर्थकरत्वं १ चेति एकत्रिंशत्कं प्रकृतिबन्धस्थानकं नामप्रकृतिबन्धस्थानकं ३१। अप्रमत्तो मुनिरपूर्वकरणो यतिश्च बध्नाति नियमेन ज्ञातव्यं भवति ॥८८-९०॥

अत्र देवगत्या सह संहननानि न बध्यन्ते, देवेषु संहननानामुदयाभावाद् भङ्ग एक एव १।

देवद्विक (देवगति-देवगत्यानुपूर्वी) पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर-अङ्गोपाङ्ग, त्रसचतुष्क, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, प्रशस्तविहायोगति, यशस्कीर्ति, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्कर, ये इकतीसप्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियाँ जानना चाहिए। इस स्थानको प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत या अपूर्वकरणसंयत नियमसे बाँधते हैं ॥८८-९०॥

यहाँ पर देवगतिके साथ किसी भी संहननका बन्ध नहीं होता है; क्योंकि देवोंमें संहननोंका उदय नहीं पाया जाता। यहाँ पर भङ्ग एक ही है।

[3]एमेव होइ तीसं णवरि हु तित्थयरवज्जियं णियमा।
बंधइ पमत्त इयरो अपुव्वकरणो य णायव्वो ॥९१॥

[4]एत्थ अथिरादीणं बंधो ण होइ, विसुद्धीए सह एएसिं बंधविरोधो। तेण भंगो १।

तीर्थकरत्वं वर्जितमिदमेव त्रिंशत्कं ३० भवति पूर्वोक्तैकत्रिंशत्कस्थानं तीर्थकरत्ववर्जितं नामप्रकृतिबन्धस्थानं त्रिंशत्कं ३० अप्रमत्तो यतिरपूर्वकरणो मुनिर्वा बध्नाति नियमात्। नवरि विशेषोऽयम् ॥९१॥

अत्रास्थिरादीनां बन्धो न भवति, विशुद्ध्या सह तेषां बन्धविरोधः। तेनैको भङ्गः १ $\frac{३०}{१}$।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १०२-१०४। 2. ५, १०५। 3. ५, १०६। 4. ५, 'अत्र यतोऽस्थिरादीनां' इत्यादिगद्यभागः। (पृ० १६७)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार इकतीसप्रकृतिक स्थानके समान तीसप्रकृतिक स्थान भी जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि इसमें तीर्थङ्करप्रकृति छूट जाती है। इस तीसप्रकृतिक स्थानको भी प्रमत्त, अप्रमत्त और अपूर्वकरण संयत नियमसे बाँधते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥६१॥

यहाँ पर अस्थिर आदि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि विशुद्धिके साथ इनसे बँधनेका विरोध है। अतएव यहाँ एक ही भंग होता है।

[1]आहारदुयं अवणिय एक्कत्तीसम्हि पढमगुणतीसं।
बंधइ अपुव्वकरणो अप्पमत्तो य णियमेण ॥६२॥

एत्थ वि भंगो ।१।

पूर्वोक्ते एकत्रिंशत्के ३१ आहारकद्वयं अपनीय प्रथममेकोनत्रिंशत्कं स्थानं २९ अपूर्वकरणो मुनिर्बध्नाति, अप्रमत्तो यतिश्च बध्नाति नियमेन ॥६२॥

अत्र भङ्गः १ $\frac{२९}{१}$ ।

एकतीसप्रकृतिक स्थानोंमेंसे आहारद्विक (आहारकशरीर-आहारक-अङ्गोपांग) के निकाल देने पर प्रथम उनतीसप्रकृतिक स्थान हो जाता है। इस स्थानको अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयत नियमसे बाँधते हैं ॥६२॥

प्रथम उनतीस प्रकृतिकस्थानमें भी भङ्ग एक ही होता है

[2]एवं विदिउगुतीसं णवरि य थिर सुह जसं च एयदरं।
बंधइ पमत्तविरदो अविरयं चेव देसविरदो य ॥६३॥

[3]एत्थ देवगईए सह उज्जोवो ण बज्झइ, देवगइम्मि तस्स य उदयाभावादो। तिरियगई मुत्तूण अण्णगईए सह तस्स बंधविरोधादो। देवाणं देहदित्ती तओ कुदो? वण्णणामकम्मोदयाओ। एत्थ य थिर-सुभ-जसजुयलाणि २।२।२ अण्णोण्णगुणिया भंगा ८।

एवं प्रथममेकोनत्रिंशत्कोक्तं द्वितीयमेकोनत्रिंशत्कं नामप्रकृतिबन्धस्थानं २९ भवति। नवरि विशेषः, किन्तु स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशोऽयशसां मध्ये एकतरं १।१।१। अस्थिरादीनां प्रमत्तान्तं बन्धात्। इदं द्वितीयं नवविंशतिकं स्थानं २९ प्रमत्तविरतोऽसंयतसम्यग्दृष्टिर्देशविरतश्च बध्नाति २९ ॥६३॥

अत्र देवगत्या सहोद्योतो न बध्यते, देवगतौ तस्योद्योतस्योदयाभावात्, तिर्यग्गतिं मुक्त्वाऽन्यत्रिगत्या सह तस्योद्योतस्य बन्धविरोधः। तर्हि देवानां देहदीप्तिः कुतः? वर्णनामकर्मोदयात्। अत्र च स्थिर-शुभ-यशोयुगलानि २।२।२ अन्योन्यगुणिता भङ्गाः अष्टौ ८ $\frac{२९}{८}$ ।

इसी प्रकार द्वितीय उनतीसप्रकृतिक स्थान जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि यहाँ पर स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति; इन तीन युगलोंमेंसे किसी एक एक प्रकृतिका बन्ध होता है। इस द्वितीय उनतीसप्रकृतिक स्थानको प्रमत्तविरत देशविरत और अविरत सम्यग्दृष्टि जीव बाँधते हैं ॥६३॥

यहाँ पर देवगतिके साथ उद्योतप्रकृति नहीं बँधती है; क्योंकि देवगतिमें उसका उदय नहीं होता है। तिर्यग्गतिको छोड़कर अन्यगतिके साथ उसके बँधनेका विरोध है। यदि ऐसा है, तो देवोंके देहोंमें दीप्ति किस कर्मके उदयसे होती है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि वर्णनाम-

1. सं० पञ्चसं० ५, १०७। 2. ५, 'एकान्नत्रिंशदियं इत्यादिगद्यांशः। (पृ० १६७)। 3. ५, 'अत्र देवगत्या' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६७)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मके उदयसे उनके शरीरमें दीप्ति होती है। यहाँ पर स्थिर, शुभ और यशःकीर्त्ति, इन तीन युगलोंके परस्पर गुणित करने पर (२×२×२=) आठ भङ्ग होते हैं।

[1]तित्थयराहारदुयं एकत्तीसम्हि अवणिए पढमं।
अट्ठावीसं बंधइ अपुव्वकरणो य अप्पमत्तो य ॥६४॥

एत्थ भंगो १ पुणरुत्तो त्ति ण गहिओ।

पूर्वोक्तैकत्रिंशत्कनामप्रकृतिबन्धस्थानके तीर्थंकरत्वाहारकद्वयेऽपनीते प्रथममष्टाविंशतिकं बन्धस्थानं २८ अपूर्वो मुनिः अप्रमत्तो यतिश्च बध्नाति ॥६४॥

अत्र भङ्ग एकः १ $\frac{२८}{१}$ पुनरुक्तत्वान्न गृह्यते।

इकतीसप्रकृतिक स्थानमेंसे तीर्थङ्कर और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियोंके निकाल देने पर शेष रहीं अट्ठाईसप्रकृतियोंको अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयत बाँधता है। यह प्रथम अट्ठाईस प्रकृतिक स्थान है ॥६४॥

यहाँ पर भंग एक ही है, किन्तु वह पुनरुक्त है, अतः उसे ग्रहण नहीं किया गया है।

[2]बिदियं अट्ठावीसं विदिउगुतीसं* च तित्थयरहीणं।
मिच्छाइपमत्तंता बंधगा होंति णायव्वा ॥६५॥

[3]कुदो एवं? उवरिजाणं अथिर-असुह-अजसाणं बंधाभावादो। भंगा ८।

पूर्वोक्तं द्वितीयमेकोनत्रिंशत्कं २९ तीर्थंकरहीनं सत् द्वितीयमष्टाविंशतिकं बन्धस्थानं २८ मिथ्यादृष्ट्यादि-प्रमत्तपर्यन्ता बध्नन्ति द्वितीयाष्टाविंशतिकस्य बन्धका भवन्ति ज्ञातव्याः ॥६५॥

एवं कुतः? यन्मिथ्यात्वादि-प्रमत्तान्ता बन्धकाः, अप्रमत्तादयो न; उपरिजानां अप्रमत्तादीनां अस्थिराशुभायशसां बन्धाभावात्। अत्राष्टाविंशतिके २।२।२ गुणिता भङ्गाः अष्टौ $\frac{२८}{८}$

द्वितीय उनतीसप्रकृतिक स्थानमेंसे तीर्थङ्करप्रकृतिके कम कर देने पर द्वितीय अट्ठाईस पकृतिक स्थान हो जाता है। इस स्थानके बन्धक मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके जीव होते हैं ऐसा जानना चाहिए ॥६५॥

ऐसा क्यों है! इस प्रश्नका उत्तर यह है कि अप्रमत्तसंयतादि उपरितन गुणस्थानवर्ती जीवोंके अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्त्ति, इन तीनों प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है। यहाँ पर शेष तीन युगलोंके गुणा करनेसे आठ भङ्ग होते हैं।

[4]बंधंति जसं एयं अपुव्वकरण अणियट्टि सुहुमा य।
तेरे णव चउ पणयं बंधवियप्पा हवंति णामस्स ॥६६॥

चउगइया १३९४५।

अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायाः मुनयः एकां यशस्कीर्त्तिं बध्नन्ति। देवेषु सर्वभङ्गाः १९। नाम्नः कर्मणः सर्वे चातुर्गतिका भङ्गाः त्रयोदशसहस्रनवशतपञ्चचत्वारिंशद् बन्धविकल्पाः ॥६६॥

चातुर्गतिका भङ्गाः १३९४५।

इति नामकर्मणः बन्धप्रकृतिस्थानानि समाप्तानि।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १०८। 2. ५, १०९। 3. ५, 'कुतो यतो' इत्यादिगद्यांशः। (पृ० १६७)। 4. ५, ११०-१११।
*ब विदियं उणतीसं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशस्कीर्त्तिरूप एकप्रकृतिक स्थानको अपूर्वकरणसंयत, अनिवृत्तिकरणसंयत और सूक्ष्मसाम्परायसंयत बाँधते हैं। (इस प्रकार देवगतिसंयुक्त सर्व भंग १+१+१+८+१+८=२० होते हैं।) तथा नामकर्मके ऊपर बतलाये गये सर्व बन्धविकल्प (तिर्यग्गति-सम्बन्धी ६३०८+ मनुष्यगति-सम्बन्धी ४६१७+देवगति-सम्बन्धी २०=१३६४५) तेरह हजार नौ सौ पैंतालीस होते हैं ॥६६॥

चतुर्गतिसम्बन्धी सर्वविकल्प १३६४५ होते हैं।

इस प्रकार नामकर्मके बन्धस्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ।

अब मूलगाथाकार नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०२२] [1]इगिवीसं चउवीसं एत्तो इगितीसयं ति एयहियं।
उदयट्ठाणाणि तहा णव अट्ठ य होंति णामस्स[1] ॥६७॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८।

अथ नामकर्मप्रकृत्युदयस्थानानि गत्यादिमार्गणासु तद्योग्यगुणस्थानादिषु दर्शयति—[इगिवीसं चउवीसं' इत्यादि।] नामकर्मण उदयस्थानानि एकविंशतिकं २१ चतुर्विंशतिकं २४ इतः परमेकैकाधिकमेकत्रिंशत्पर्यन्तम्। तेन पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ सप्तविंशतिकं २७ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ तथा नवकं ९ अष्टकं चेति एकादश नामप्रकृत्युदयस्थानानि भवन्ति ॥९७॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८।

इक्कीसप्रकृतिक, चौबीसप्रकृतिक और इससे आगे एक अधिक करते हुए इकतीसप्रकृतिक तक, तथा नौप्रकृतिक और आठप्रकृतिक, ये नामकर्मके ग्यारह उदयस्थान होते हैं ॥९७॥

इनकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८।

अब भाष्यगाथाकार नरकगतिमें नरकगतिसंयुक्त नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[2]इगिवीसं पणुवीसं सत्तावीसट्ठवीसगुणतीसं।
एए उदयट्ठाणा णिरयगइसंजुया पंच ॥९८॥

अथ नरकगतौ नरकगतिसंयुक्तानि नामोदयस्थानानि गाथाष्टकेनाऽऽह—['इगिवीसं पणवीसं' इत्यादि।] एकविंशतिकं २१ पञ्चविंशतिकं २५ सप्तविंशतिकं २७ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ चेति एतानि नामप्रकृत्युदयस्थानानि नरकगतिसंयुक्तानि पञ्चोदयस्थानानि ५ नरकगत्यां भवन्ति ॥९८॥

२१।२५।२७।२८।२९।

इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान नरकगतिसंयुक्त होते हैं ॥९८॥

नरकगतिसंयुक्त उदयस्थान—२१, २५, २७, २८, २९।

इनमेंसे पहले नरकगतिसंयुक्त इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[3]तत्थिगिवीसं ठाणा णिरयदुगं तेय कम्म वण्णचदुं।
अगुरुगलहु पंचिंदिय तस बायरं च पज्जत्तं ॥९९॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ११२। 2. ५, ११३। 3. ५, ११४-११६।

१. सप्ततिक० २५। परं तत्रेदृक् पाठः—

वीसिगवीसा चउवीसगाति एगाहिया उ इगतीसा।
उदयट्ठाणाणि भवे नव अट्ठ य होंति नामस्स ॥

थिर अथिरं च सुहासुह दुभग अणादेज्ज अजस णिमिणं च ।
विग्गहगईहिं एदे एयं च दो व समयाणि ॥१००॥

तत्र नरकगतिं प्रति यातरि एकस्मिन् जीवे इदमेकविंशतिकनामप्रकृत्युदयस्थानमुदेति । नरकगति-तदानुपूर्व्ये २ तैजस-कार्मणे २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघु १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसं १ बादरं १ पर्याप्तं १ स्थिरं १ अस्थिरं १ शुभं १ अशुभं १ दुर्भगं १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ चेति एकविंशत्युदयप्रकृतयः २१ एताः विग्रहगत्यां कार्मणशरीरे नारकजीवं प्रति उदयं यान्ति २१ । विग्रहगतौ कार्मणशरीरस्यैकसमयो जघन्यकालः १ उत्कृष्टतो द्वौ २ । एको वा द्वौ वा त्रयो वा (?) समया इत्यर्थः ॥९९-१००॥

नरकद्विक, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्त्ति, और निर्माण, इन इक्कीस प्रकृतियोंवाला यह उदयस्थान नरकगतिको जानेवाले जीवके विग्रहगतिमें एक या दो समय तक होता है ॥९९-१००॥

अब नरकगतिसंयुक्त उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[1]एमेव य पणुवीसं णवरि विसेसो सरीरगहियस्स ।
णिरयाणुपुव्वि अवणिय वेउव्वियदुयं च उवघादं ॥१०१॥
हुंडं पत्तेयं पिय* पक्खित्ते जाव सरीरणिप्फत्ती ।
अंतोमुहुत्तकालो जहण्णमुक्कस्सयं च भवे ॥१०२॥

एवमेकविंशतिकोक्तप्रकारेण पञ्चविंशतिकं भवति । नवरि विशेषः—वैक्रियकशरीरं गृह्णतः नारकस्य तस्मिन्नेकविंशतिके नरकानुपूर्व्यमपनीय तत्र वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गद्वयोपघात-हुण्डकसंस्थान-प्रत्येकशरीरप्रकृतिपञ्चके प्रक्षिप्ते पञ्चविंशतिकं नामकर्मप्रकृत्युदयस्थानं भवति २५ । यावत्तु शरीरनिष्पत्तिः शरीरपर्याप्तिः पूर्णतां याति तावदिदं पञ्चविंशतिकमुदयति । जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तर्मुहूर्त्तकालः वैक्रियिक-शरीरमिश्रकालोऽन्तर्मुहूर्त्तो भवति ॥१०१-१०२॥

इसी प्रकार पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि वैक्रियिकशरीरको ग्रहण करनेवाले नारकीके उपर्युक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे नरकानुपूर्वीको घटा-करके उनमें वैक्रियिकद्विक, उपघात, हुण्डकसंस्थान और प्रत्येकशरीर, इन पाँच प्रकृतियोंके मिला देनेपर पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान जब तक शरीरपर्याप्तिकी पूर्णता नहीं नहीं हो जाती है, तब तक रहता है। इस उदयस्थानका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ॥१०१-१०२॥

अब नरकगतिसंयुक्त सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[2]एमेव सत्तवीसं सरीरपज्जत्तिणिट्ठिए णवरि ।
परघायमप्पसत्थ-विहायगई चेव पक्खित्ते ॥१०३॥

एवं पञ्चविंशतिकोक्तप्रकारेण सप्तविंशतिकं शरीरपर्याप्तिनिष्ठापिते पूर्णे कृते सति वैक्रियिकशरीरपर्याप्ते पूर्णे पञ्चविंशतिके परघाताप्रशस्तविहायोगतिप्रकृतिद्वये प्रक्षिप्ते मेलिते सप्तविंशतिकं भवति २७ । शरीर-पर्याप्तिनिष्पत्तिकालोऽन्तर्मुहूर्त्तः ॥१०३॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ११७-११८ । 2. ५, १२० ।

*ब पि च ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थानके समान ही सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान भी जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान-में परघात और अप्रशस्तविहायोगति ये दो प्रकृतियाँ और मिलाना चाहिए ॥१०३॥

अब नरकगतिसंयुक्त अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[1]एमेव अट्ठवीसं आणापज्जत्तिणिट्ठिए णवरि ।
उस्सासं पक्खित्ते कालो अंतोमुहुत्तं तु ॥१०४॥

आनप्राणपर्याप्तिनिष्ठापने श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिपूर्णे कृते सति पूर्वोक्तसप्तविंशतिके उच्छ्वासनिःश्वासे प्रक्षिप्ते सति अष्टाविंशतिकं प्रकृत्युदयस्थानं नारकस्योदयागतं २८ भवति । तु पुनः उच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्ति-पूर्णकरणेऽन्तर्मुहूर्त्तकालः ॥१०४॥

इसी प्रकार अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि श्वासो-च्छ्वास पर्याप्तिके पूर्ण होनेपर सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थानमें उच्छ्वासप्रकृतिके मिलानेपर अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस उदयस्थानका काल भी अन्तर्मुहूर्त है ॥१०४॥

अब नरकगतिसंयुक्त उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[2]एमेव य उगुतीसं भासापज्जत्तिणिट्ठिए णवरि ।
दुस्सरसहियजहण्णं दसवाससहस्स किंचूणं ॥१०५॥
तेतीस सायरोवम किंचिदूणुक्कस्सयं हवइ कालो ।
णिरयगईए सव्वे उदयवियप्पा य पंचेव ॥१०६॥

एत्थ भंगा ५ ।

भाषापर्याप्तिनिष्ठापिते परिपूर्णे कृते सति एवं पूर्वोक्तमष्टाविंशतिकं दुःस्वरभाषासहितं नवविंशतिकं भवति । नवीनमिति नारकस्य दुःस्वरभाषापर्याप्तेः दशवर्षसहस्रजघन्यकालः १०००० किञ्चिन्न्यूनः उक्त-चतुःकालोनः अन्तर्मुहूर्तहीन इत्यर्थः १०००० / स२११३ समयत्रयं अन्तर्मुहूर्तत्रयम् । नारकस्य दुःस्वरभाषापर्याप्ते-रुत्कृष्टकालः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणः किञ्चिन्न्यूनः अन्तर्मुहूर्त्तहीनः सा०३३ / सु.२१२ / ३ भवेत् । तथाहि—विग्रह-गतौ कार्मणशरीरे एको वा द्वौ वा त्रयो वा (?) समयाः ३, शरीरमिश्रेऽन्तर्मुहूर्त्तः २१ शरीरपर्याप्तौ अन्तर्मुहूर्त्तः २१ उच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तौ अन्तर्मुहूर्त्तः २१ भाषापर्याप्तौ उक्तचतुष्कालोनं सर्वं भुज्यमानायुः ।

एवं सर्वगतिषु ज्ञेयम् । नरकगत्यामिदं देवगत्यामिदं च

१०००० वर्षाणि	साग० ३३
सम ०३	सम० ३
अन्त० २१३	अन्त० २१३

। एकोन-त्रिंशत्कमिति किम् ? नरकगतिः १ तैजसकार्मणद्वयं २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसं १ बादरं १ पर्याप्तं १ स्थिरास्थिरद्वयं २ शुभाशुभद्वयं २ दुर्भगं १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ वैक्रियक-तदङ्गोपाङ्गद्वयं २ उपघातः १ हुण्डसंस्थानं १ प्रत्येकं १ परघातः १ अप्रशस्तविहोगतिः १ उच्छ्वासनिःश्वासं १ दुःस्वरभाषा १ चेति एकोनत्रिंशत्कनामप्रकृत्युदयस्थानं पर्याप्तकनारकस्य भवत्युदेति ॥१०१-१०६॥

नरकगतौ सर्वे उदयविकल्पा भङ्गा एकस्मिन् नारकजीवे पञ्चैव भवन्ति । अत्र भङ्गाः ५ ।

के ते ?	२१	२५	२७	२८	२९ ।
	१	१	१	१	१

इति नरकगत्यां नामप्रकृत्युदयस्थानानि समाप्तानि ।

---

1. सं०पञ्चसं० ५, १२१ । 2. ५, १२२-१२३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि भाषा-पर्याप्तिके पूर्ण होनेपर अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानमें दुःस्वर प्रकृतिके मिलानेपर उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस उदयस्थानका जघन्यकाल कुछ कम दश हजार वर्ष है और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागरोपम है। इस प्रकार नरकगतिमें नामकर्मके उदयस्थानसम्बन्धी सर्व-विकल्प पाँच ही होते हैं ॥१०५–१०६॥

नरकगतिमें उदयस्थानके भंग ५ होते हैं।

अब तिर्यग्गतिमें नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]इगिवीसं चउवीसं एत्तो इगितीसयं ति एगधियं।
णव चेव उदयठाणा तिरियगईसंजुया होंति ॥१०७॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

अथ तिर्यग्गतौ नामप्रकृत्युदयस्थानानि गाथापञ्चाशदाऽऽह—['इगिवीसं चउवीसं' इत्यादि।] एकविंशतिकं २१ चतुर्विंशतिकं २४ इतःपरं एकत्रिंशत्पर्यन्तं एकैकाधिकं पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ सप्तविंशतिकं २७ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० यावदेकत्रिंशत्कं ३१ चेति नव नामकर्मणः प्रकृत्युदयस्थानानि तिर्यग्गतिसंयुक्तानि तिर्यग्गतौ भवन्ति ॥१०७॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

इक्कीसप्रकृतिक, चौबीसप्रकृतिक और इससे आगे एक-एक अधिक करते हुए इकतीस प्रकृतिक उदयस्थान तक नौ उदयस्थान तिर्यग्गति-संयुक्त होते हैं ॥१०७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ।

[2]पंचेव† उदयठाणा सामण्णेइंदियस्स बोहव्वा।
इगि चउ पण छ सत्त य अधिया वीसा य णायव्वा ॥१०८॥

सामण्णेइंदियस्स २१।२४।२५।२६।२७

एकविंशतिकं २१ चतुर्विंशतिकं २४ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ सप्तविंशतिकमिति नामप्रकृत्युदयस्थानानि सामान्यैकेन्द्रियाणां जीवानां मध्ये एकस्मिन् एकेन्द्रियजीवे पञ्चैव बोधव्यानि ॥१०८॥

२१।२४।२५।२६।२७।

सामान्य एकेन्द्रिय जीवके इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतिक पाँच उदयस्थान जानना चाहिए ॥१०८॥

सामान्य एकेन्द्रिय जीवके २१, २४, २५, २६, २७ प्रकृतिक पाँच उदयस्थान होते हैं।

[3]आयाउज्जोयाणं अणुदय एइंदियस्स ठाणाणि।
सत्तावीसेण विणा सेसाणि हवंति चत्तारि ॥१०९॥

२१।२४।२५।२६।

आतपोद्योतयोरनुदयैकेन्द्रियस्यातपोद्योतोदयरहितसामान्यैकेन्द्रियजीवस्य सप्तविंशतिकं विना एकविंशतिक-चतुर्विंशतिक-पञ्चविंशतिक-षड्विंशतिकानि चत्वारि नामोदयस्थानानि भवन्ति ॥१०९॥

२१।२४।२५।२६।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १२४। 2. ५, १२५-१२६। 3. ५, १२७।
† ब पंचेव य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आतप और उद्योतके उदयसे रहित एकेन्द्रियजीवके सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थानके विना शेष चार उदयस्थान होते हैं ॥१०६॥

उनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २४, २५, २६ ।

[1]आयावुज्जोयाणं अणुदय एइंदियस्स इगिवीसं ।
तिरियदुग तेय कम्मं अगुरुगलहुगं च वण्णचदुं ॥११०॥
जस※-बायर-पज्जत्ता तिण्हं जुयलाणमिक्कयर णिमिणं च ।
थिर-अथिर-सुहासुह-दुब्भगाणादेज्जं च थावरयं ॥१११॥
एइंदियस्स जाई विग्गहगइ पंचेव भंगा य ।
कालो जहण्ण इयरो इक्कं दो तिण्णि समयाणि ॥११२॥

[2]एत्थ जसकित्तिउदए सुहुम-अपज्जत्तया ण होंति, तेग एगो भंगो ।१। अजसकित्तीउदए चत्तारि ४ । सव्वे ५ ।

आतपोद्योतोदयरहितसामान्यैकेन्द्रियस्य जीवस्यैकस्येदमेकविंशतिकं २१ स्थानम् । किं तत् ? तिर्यग्गति-तदानुपूर्व्ये २ तैजस-कार्मणद्वयं २ अगुरुलघुकं १ वर्णचतुष्कं ४ यशोऽयशोयुग्म-बादरसूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्तयुग्मानां त्रयाणामेकतरं १।१।१ । निर्माणं १ स्थिरास्थिरयुग्मं २ शुभाशुभयुग्मं ६ दुर्भगं १ अनादेयं १ स्थावरं १ एकेन्द्रियजातिकं १ चेति नामप्रकृत्युदयस्थानमेकविंशतिकं २१ विग्रहगत्यां कार्मण-शरीरे सामान्यैकेन्द्रियस्य भवति । एकविंशतिकं तु पंचधा, एकविंशतिका भङ्गाः ५ भवन्ति । एतेषां भङ्गानां जघन्यकाल एकसमयः, उत्कृष्टतो द्वौ त्रयो वा समयाः ॥११०–११२॥

अत्रैकविंशतिके यशस्कीर्त्युदये सूक्ष्मापर्याप्तोदयौ न भवतो यतस्तत्र एको भङ्गः १ । अयशस्कीर्त्युदये बादर-सूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तोदयाश्चत्वारो भङ्गाः ४ । सर्वे ५ । अयशःपाके बादर-पर्याप्तयुग्मयोरन्योन्यगुणिते भङ्गाः ४ । यशःपाके [१] मीलिताः भङ्गाः ५ । यशः २१/१ बाद० २१/१ प० २१/१ अ० २१/१ सू० २१/१

आतप और उद्योतके उदयसे रहित सामान्य एकेन्द्रियजीवके यह वक्ष्यमाण इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है । वे इक्कीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यग्द्विक, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, अगुरुलघु, वर्णचतुष्क; यशःकीर्त्ति-अयशःकीर्ति, बादर-सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्त इन तीन युगलोंमेंसे कोई एक-एक; निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, स्थावर और एकेन्द्रिय-जाति । यह इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थान विग्रहगतिमें कार्मणकाययोगकी दशामें होता है । इसका जघन्य काल एक समय, मध्यमकाल दो समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है । इस स्थानके भङ्ग पाँच होते हैं ॥११०–११२॥

विशेषार्थ—इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके पाँच भङ्गोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—यशः-कीर्तिके उदयके साथ सूक्ष्म, और अपर्याप्त प्रकृतियोंका उदय नहीं होता है, इसलिए यशःकीर्तिके उदयमें एक ही भंग होता है । किन्तु अयशःकीर्तिके उदयमें बादर, सूक्ष्म और पर्याप्त, अपर्याप्त इन प्रकृतियोंका उदय होता है, अतएव इन दो युगलोंके परस्पर गुणा करनेसे चार भंग हो जाते हैं । इस प्रकार यशःकीर्त्तिके उदयका एक भंग और अयशःकीर्त्तिके उदयमें होनेवाले चार भङ्ग; इन दोनोंको मिला देनेपर पाँच भङ्ग हो जाते हैं ।

---

1. सं०पञ्चसं० ५, १२८-१३० । 2. ५, १,३१, 'तथाऽग्रेतनगद्यभागः' (पृ० १७०) ।

※द तस ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[1]एमेव य चउवीसं णवरि विसेसो सरीरगहियस्स ।
अवणिय आणुपुव्वी ओरालिय हुंड उवघायं ॥११३॥
पक्खित्ते पत्तेयं साहारणसरीरमेक्कयरं च ।
णव चेव उदयभंगा कालो अंतोमुहुत्तं तु ॥११४॥

[2]एत्थ जसकित्तिउदए सुहुम-अपज्जत्त-साहारणोदया ण होंति, तेण भंगो १ । अजसकित्तिउदये ८ । एवं सव्वे ९ ।

शरीरं गृह्णतः सामान्यैकेन्द्रियस्य पूर्वोक्तैकविंशतिकम् । नवरि विशेषः तत्रैकविंशतिके आनुपूर्व्यमपनीय औदारिकशरीरं १ हुण्डकसंस्थानं १ उपघातः १ प्रत्येक-साधारणयोर्मध्ये एकतरं १ चेति प्रकृतिचतुष्के तत्र विंशतिके प्रक्षिप्ते मिलिते चतुर्विंशतिकं स्थानम् २४ । तत्तु सामान्यैकेन्द्रियस्य शरीरमिश्रयोगे एवोदयति । अत्रोदयभङ्गा नव ९, नवधा चतुर्विंशतिका भवन्ति । अत्रौदारिकमिश्रकालोऽन्तर्मुहूर्तः २१ ॥११३–११४॥

अत्र यशस्कीर्त्युदये सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणोदया न भवन्ति यतस्तत एको भङ्गः १ । यश० $\frac{२४}{१}$ । अयशस्कीर्त्युदये स्थूलपर्याप्तप्रत्येकयुग्मानां त्रयाणां २।२।२ परस्परेण गुणिता भङ्गाः अष्टौ ८ । एवं सर्वे भङ्गा नव ९ । $\frac{२४}{८}$ $\frac{२४}{१}$ ।

इसी प्रकार इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके समान चौबीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि विग्रहगतिके समाप्त हो जानेपर जब जीव तिर्यञ्चके शरीरको ग्रहण करता है, उस समयसे लगाकर शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होने तक चौबीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है । अतएव उन इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे तिर्यगानुपूर्वी घटाकर औदारिकशरीर, हुण्डकसंस्थान, उपघात और प्रत्येक-साधारणयुगलमेंसे कोई एक, इन चार प्रकृतियोंके मिला देनेपर यह चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इस उदयस्थानके नौ भङ्ग होते हैं और इसका काल अन्तर्मुहूर्त है ॥११३–११४॥

यहाँपर यशस्कीर्त्तिके उदयमें सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणप्रकृतिका उदय नहीं होता है, इसलिए यशःकीर्त्तिसम्बन्धी एक भङ्ग होता है । तथा अयशःकीर्त्तिके उदयमें बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त और प्रत्येक-साधारण ये तीनों युगल सम्भव हैं, अतः तीन युगलोंके परस्पर गुणा करनेपर आठ भङ्ग होते हैं । इस प्रकार आठ और एक मिलकर नौ भङ्ग चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानके जानना चाहिए ।

अब पचीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[3]एमेव य पणुवीसं सरीरपज्जत्तए अपज्जत्तं ।
अवणिय पक्खिवियव्वं परघायं पंच भंगाओ ॥११५॥

एत्थ भंगा ५ ।

सामान्यैकेन्द्रियस्य शरीरपर्याप्तौ पूर्वोक्तचतुर्विंशतिके अपर्याप्तं अपनीय परघातं प्रक्षेपणीयम्, पञ्चविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं सामान्यैकेन्द्रियस्य भवति २५ । तत्र पञ्चधा पञ्चविंशतिभङ्गाः पञ्च

1. सं० पञ्चसं० ५, १३२-१३३ । 2. ५, 'अत्रायशःपाके' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १७०) ।
3. ५, १३४-१३५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवति । तत्र कालोऽन्तर्मुहूर्तः २१ । अत्रापर्याप्ते निष्काशिते परघाते प्रक्षिप्ते पञ्चविंशतिसंख्या । कथम् ? चतुर्विंशतिकस्य मध्ये पर्याप्तापर्याप्तद्वयमध्ये एकतरं वर्तते । अत्र तु अपर्याप्तनिराक्रियते [तेन] चतुर्विंशतिका संख्या ऊना न भवति । तत्र परघाते प्रक्षिप्ते पञ्चविंशतिकं स्थानं भवतीत्यर्थः । अत्रायशस्कीर्त्युदये स्थूल-प्रत्येक २।२ युग्मयोः परस्परगुणिते भङ्गाश्चत्वारः ४ । यशःपाके एको भङ्ग १ । मीलिताः पञ्च ५॥११५॥

इसी प्रकार पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। परन्तु परघातका उदय शरीर-पर्याप्तिके पूर्ण होने तक नहीं होता, अतएव शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होनेके पश्चात् अपर्याप्तप्रकृतिको घटा करके परघातप्रकृतिको जोड़ना चाहिए। इस उदयस्थानमें पाँच भङ्ग होते हैं ॥११५॥

इस पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थानमें अयशस्कीर्त्तिके साथ बादर तथा प्रत्येक ये दो युगल सम्भव हैं, इसलिए इन दोनों युगलोंके परस्पर गुणा करनेसे चार भङ्ग होते हैं और यशस्कीर्त्तिके उदयमें एक भङ्ग होता है। इस प्रकार दोनों मिलकर पाँच भङ्ग हो जाते हैं।

अब छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थानका प्ररूपण करते हैं—

[1]एमेव य छव्वीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं।
पक्खित्ते पण भंगा कालो य सगट्ठिदी ऊणा ॥११६॥

(का०) २२०००। भंगा ५। सव्वे वि २४।

एवं पूर्वोक्तपञ्चविंशतिके आनप्राणपर्याप्तिपूर्णीकृतस्योच्छ्वासनिःश्वासे प्रक्षिप्ते षड्विंशतिकं २६ सामान्यैकेन्द्रियपर्याप्तस्य भवति । अत्र भङ्गाः पञ्च ५ । अत्र कालः स्वकीयायुःस्थितिः किञ्चिदूनता उत्कृष्टा स्थितिः वर्षसहस्राणि १००० । द्वाविंशतिः परा २२००० किञ्चिदूना आतपोद्योतोदयरहितस्य सामान्यैकेन्द्रियस्य सर्वे भङ्गाश्चतुर्विंशतिः २४॥११६॥

इसी प्रकार छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थान आनापान पर्याप्तिके प्रारम्भ होने पर उच्छ्वास प्रकृतिके मिला देनेसे होता है। इस उदयस्थानके भङ्ग पाँच होते हैं और इसका उत्कृष्ट काल कुछ कम स्वोत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है ॥११६॥

बादर एकेन्द्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्षकी होती है। इस उदयस्थान-सम्बन्धी पाँचों भंगोंका विवरण पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थानके समान ही जानना चाहिए। इस प्रकार इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके पाँच, चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानके पाँच, पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थानके नौ और छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थानके पाँच, ये सर्व भंग मिल करके २४ भंग आतप-उद्योतके उदयसे रहित एकेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके जानना चाहिए।

[2]आयावुज्जोवुदयं जस्सेयंतस्स णत्थि पणुवीसं।
सेसा उदयट्ठाणा चत्तारि हवंति णायव्वा ॥११७॥

२१।२४।२६।२७।

येषु एकेन्द्रियेषु आतपोद्योतोदयौ भवतः, तेषामातपोद्योतसहितानां एकेन्द्रियाणामिदं पञ्चविंशतिकं स्थानं भवति । शेषनामोदयस्थानान्येकविंशतिक २१ चतुर्विंशतिक २४ षड्विंशतिकं २६ सप्तविंशतिकानि चत्वारि भवन्ति ॥११७॥

२१।२४।२६।२७

जिस एकेन्द्रिय जीवके आतप और उद्योतका उदय होता है, उसके पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थान नहीं होता है, शेष इक्कीस, चौबीस, छब्बीस और सत्ताईसप्रकृतिक चार उदयस्थान जानना चाहिए ॥११७॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २४, २६, २७।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १२६ । 2. ५, १२७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]आयावुज्जोवुदये इगि-चउवीसं तहेव णवरिं तु ।
अवणिय साहारणयं सुहुममपज्जत्तभंगाओ ॥११८॥

एत्थ सुहुम-अपज्जत्तूणा २१ । साहारणं विणा २४ । एत्थ दो भंगा २ पुणरुत्ता ।

आतपोद्योतोदयैकेन्द्रियेषु तथैव पूर्वोक्तमेवैकविंशतिकं २१ चतुर्विंशतिकं २४ च भवति । नवीनं किञ्चिद्विशेषः, किन्तु भङ्गात् एकविंशतिकाच्चतुर्विंशतिकाच्च साधारणं सूक्ष्मं अपर्याप्तं च अपनीय वर्जयित्वा ॥११८॥

अत्र सूक्ष्माऽपर्याप्तरहितं बादरपर्याप्तसहितं चैकविंशतिकं स्थानं २१ साधारणरहितं प्रत्येकसहितं चतुर्विंशतिकस्थानं २४ आतपोद्योतोदयभागिनां एकेन्द्रियाणां सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणशरीरोदयाभावात् । यशोयुग्मस्यैकतरभङ्गौ द्वौ द्वौ पुनरुक्तौ २।२।

आतप और उद्योतके उदयवाले एकेन्द्रियजीवोंके तथैव पूर्वोक्त इक्कीसप्रकृतिक और चौबीसप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं । विशेष बात केवल यह है कि उनमेंसे साधारण, सूक्ष्म और अपर्याप्त-सम्बन्धी भंगोंको निकाल देना चाहिए ॥११८॥

यहाँ पर सूक्ष्म और अपर्याप्त ये दो प्रकृतियाँ उदययोग्य नहीं मानी जानेसे इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान इन दोको छोड़कर होता है और चौबीसप्रकृतिक उदयस्थान साधारणको भी छोड़कर केवल प्रत्येकके साथ होता है । यहाँ आतप और उद्योत प्रकृतिका उदय होनेवालोंमें सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर इन तीनका उदय नहीं रहता, अतएव भंग अधिक होनेका कारण केवल एक यशस्कीर्त्तियुगल है । इसके द्वारा इक्कीसप्रकृतिकस्थानमें भी दो भंग होते हैं और चौबीसप्रकृतिकस्थानमें भी दो भंग होते हैं । किन्तु ये भंग पहले कहे जा चुके हैं, अतः पुनरुक्त हैं ।

[2]एमेव य छव्वीसं सरीरपज्जत्तयस्स जीवस्स ।
परघायुज्जोयाणं इक्कयरं चेव चउ भंगा ॥११९॥

२६ । भंगा ४ ।

शरीरपर्याप्तियुक्तस्यैकेन्द्रियजीवस्य पूर्वोक्तमेव षड्विंशतिकं परघातः १ आतपोद्योतयोर्मध्ये एकतरोदयः १ तत्र चतुर्भङ्गाः ४ । अन्तर्मुहूर्तकालश्च । कथं तत् षड्विंशतिकम् ? तिर्यग्गतिः १ तैजस-कार्मणद्वयं २ अगुरुलघुकं १ वर्णचतुष्कं ४ यशोयुग्मस्यैकतरं १ बादरं १ पर्याप्तं १ निर्माणं १ स्थिरास्थिरयुग्मं २ शुभाशुभद्वयं २ दुर्भगं १ अनादेयं १ स्थावरं १ एकेन्द्रियं १ औदारिकशरीरं १ हुण्डकं १ उपघातः १ प्रत्येकशरीरं १ परघातः १ आतपोद्योतयोरेकतरोदयः १ । एवं षड्विंशतिकं २६ शरीरपर्याप्तिप्राप्तस्यैकेन्द्रियस्योदयस्थानं भवति ॥११९॥

इसी प्रकार शरीरपर्याप्तिसे युक्त एकेन्द्रियजीवके परघात और आतप-उद्योत इन दोमेंसे किसी एकके मिलानेपर छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है । और इस स्थानके चार भंग होते हैं ॥११९॥

छब्बीसप्रकृतिक स्थानमें यशःकीर्त्तियुगल और आतप-उद्योत युगलके परस्पर गुणा करनेसे चार भंग हो जाते हैं ।

[3]एयमेव सत्तवीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।
पक्खित्ते चउभंगा सव्वे भंगा य बत्तीसा* ॥१२०॥

२७ । भंगा ४ । एवमेइंदियसव्वभंगा ३२ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १३८ । 2. ५, १३९ । 3. ५, १४० ।

* 'बत्तीसा होंति सव्वे वि' इति पाठः ।

उच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तिप्राप्तैकेन्द्रियजीवस्य पूर्वोक्तषड्विंशतिके उच्छ्वासनिःश्वासं प्रक्षिप्ते सप्तविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं भवति। जीवितपर्यन्तमिदं ज्ञेयम्। अस्य भङ्गाश्चत्वारः ४। उत्कृष्टा स्थितिर्द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि २२००० किञ्चिन्न्यूना ॥१२०॥

एकेन्द्रियाणां सर्वे भङ्गा द्वात्रिंशत् ३२।

इसी प्रकार श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिसे पर्याप्त जीवके उच्छ्वासप्रकृतिके मिला देनेपर सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँपर भी चार भंग होते हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवके सर्व भंग बत्तीस होते हैं ॥१२०॥

एकेन्द्रियोंके २४ भंग पहले बतलाये जा चुके हैं। आतप-उद्योतके उदयवाले जीवोंके छब्बीसके उदयस्थानमें अपुनरुक्त ४ भंग तथा सत्ताईसके उदयस्थानमें अपुनरुक्त ४ भंग इस प्रकार सर्व मिलकर एकेन्द्रियजीवोंके ३२ भंग हो जाते हैं।

अब विकलेन्द्रिय जीवोंमें नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]वियलिंदियसामण्णे उदयट्ठाणाणि होंति छच्चेव।
इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसाइइगितीसं ॥१२१॥

२१।२६।२८।२९।३०।३१

सामान्येन विकलत्रयेषु द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियेषु एकविंशतिकं २१ षड्विंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ चेति षट् नामप्रकृत्युदयस्थानानि भवन्ति ॥१२१॥

२१।२६।२८।२९।३०।३१

विकलेन्द्रिसामान्यमें इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक छह उदयस्थान होते हैं ॥१२१॥

इन उदयस्थानोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २६, २८, २९, ३०, ३१।

[2]उज्जोयरहियवियले इगितीसूणाणि पंच ठाणाणि।
उज्जोयसहियवियले अट्ठावीसूणगा पंच ॥१२२॥

[3]उज्जोवुदयरहियवियले २१।२६।२८।२९।३०। उज्जोवुदयसहियवियले २१।२६।२९।३०।३१।

उद्योतरहितविकलत्रयेषु एकत्रिंशत्कोनानि एकविंशतिक-षड्विंशतिकाष्टाविंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि पञ्च नामोदयस्थानानि २१।२६।२८।२९।३० भवन्ति। उद्योतोदयसहितविकलत्रयेषु अष्टाविंशतिकोनानि एकविंशतिक-षड्विंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि पञ्चोदयस्थानानि। २१।२६।२९।३०।३१ इति विशेषः ॥१२२॥

उद्योतप्रकृतिके उदयसे रहित विकलेन्द्रियोंमें इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानके विना शेष पाँच उदयस्थान होते हैं। तथा उद्योतप्रकृतिके उदयसे सहित विकलेन्द्रियोंमें अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानके विना शेष पाँच उदयस्थान होते हैं ॥१२२॥

उद्योतके उदयसे रहित विकलेन्द्रियोंमें २१, २६, २८, २९, ३० ये पाँच उदयस्थान होते हैं। उद्योतके उदयसे सहित विकलेन्द्रियोंमें २१, २६, २९, ३०, ३१ ये पाँच उदयस्थान होते हैं।

1. सं०पञ्चसं० ५, १४१। 2. ५, १४२। 3. ५, 'निरुद्योते' इत्यादिगद्यभागः। (पृ० १७१)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब द्वीन्द्रियके इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[1]उज्जोयउदयरहियवेइंदियट्ठाण पंच इगिवीसं ।
तिरियदुयं वेइंदिय तेजा कम्मं च वण्णचदुं ॥१२३॥
अगुरुयलहु तस बायर थिर सुह जुगलं तह अणादेज्जं ।
दुब्भगजसजुयलेक्कं पज्जत्तिदरेक्कणिमिणं च ॥१२४॥
विग्गहगईहिं एए एक्कं वा दोण्णि चेव समयाणि ।
एत्थ वियप्पा जाणसु तिण्णेव य होंति बोहव्वा ॥१२५॥

[2]एत्थ जसकित्तिउदए अप्पज्जत्तोदओ णत्थि, तेण एगो भंगो ।१। अजसकित्तिभंगा २ । सव्वे ३ ।

उद्योतोदयरहितद्वीन्द्रियेषु स्थानानि पञ्च भवन्ति । तेषु मध्ये एकविंशतिकं स्थानं किमिति ? तिर्यग्गति-तदानुपूर्व्ये २ द्वीन्द्रियजातिः १ तैजस-कार्मणद्वयं २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ त्रसं १ बादरं १ स्थिरास्थिरयुग्मं २ शुभाशुभयुग्मं २ अनादेयं १ दुर्भगं १ यशोऽयशसोर्मध्ये एकतरं १ पर्याप्ताऽपर्याप्तयोरेकतरं १ निर्माणं १ चेत्येकविंशतिकनामकर्मप्रकृत्युदयस्थानं विग्रहगतौ कार्मणशरीरे द्वीन्द्रियस्योदेति २१ । तस्योदयकाल एकसमयः द्वौ समयौ वा । अत्र विकल्पा भङ्गास्त्रयो भवन्ति बोधव्या इति त्रीन् भङ्गान् जानीहि ॥१२३–१२५॥

अत्र यशस्कीर्त्युदये सति अपर्याप्तोदयो नास्ति, तत एको भङ्गः १ । पर्याप्तापर्याप्तोदयसद्भावादत्रायशस्कीर्त्युदये द्वौ भङ्गौ २ । मीलिता ३ ।

उद्योतप्रकृतिकके उदयसे रहित द्वीन्द्रियजीवोंके जो पाँच उदयस्थान होते हैं, उनमेंसे इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है—तिर्यग्द्विक, द्वीन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, त्रस, बादर, स्थिरयुगल, शुभयुगल, अनादेय, दुर्भग, यशःकीर्त्तियुगलमेंसे एक, पर्याप्तयुगलमेंसे एक और निर्माण । यह इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थान विग्रहगतिमें एक या दो समय तक उदयको प्राप्त होता है । इस उदयस्थानके यहाँपर तीन ही विकल्प या भंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१२३-१२५॥

यहाँपर यशस्कीर्त्तिके उदयमें अपर्याप्तकर्मका उदय नहीं होता है, इसलिए एक ही भंग होता है । पर्याप्त और अपर्याप्तकर्मका उदय पाये जानेसे अयशस्कीर्त्तिसम्बन्धी दो भंग होते हैं । इस प्रकार दोनों मिला करके इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके तीन भंग हो जाते हैं ।

अब द्वीन्द्रियके छब्वीसप्रकृतिक उदयस्थानका कथन करते हैं—

[3]एमेव य छव्वीसं सरीरगहियस्स आणुपुव्वी य ।
अवणिय पक्खिवियव्वं ओरालिय-हुंड-संपत्तं ॥१२६॥
ओरालियंगवंगं पत्तेयसरीरयं च उवघायं ।
अंतोमुहुत्तकालं भंगा वि हवंति तिण्णेव ॥१२७॥

एत्थ भंगा ३ ।

एवं पूर्वोक्तमेकविंशतिकं तत्रानुपूर्व्यमपनीय विंशतिकं जातम् । तत्र औदारिकशरीरं १ हुण्डकसंस्थानं १ असम्प्राप्तसंहननं १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ प्रत्येकशरीरं १ उपघातः १ चेति प्रकृतिषट्कं

1. सं० पञ्चसं० ५, १४३-१४५ । 2. ५, 'अत्रापर्याप्तोदया' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १७२) । 3. ५, १४६-१४७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रक्षेपणीयम् । षड्विंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं २६ शरीरगृहीतस्य स्वीकृतशरीरस्य द्वीन्द्रियस्योदेति २६ । तत्रौदारिकमिश्रकालोऽन्तर्मुहूर्त्तं एव । अत्र भङ्गा विकल्पास्त्रयो भवन्ति ३ । यशोभङ्गः १ अयशोभङ्गौ २ एवं ३ ॥१२६-१२७॥

इसी प्रकार छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थान शरीरको ग्रहण करनेवाले द्वीन्द्रियजीवके जानना चाहिए । उसके उक्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आनुपूर्वीको निकाल करके औदारिकशरीर, हुंडकसंस्थान सृपाटिकासंहनन, औदारिक-अंगोपांग, प्रत्येकशरीर और उपघात, ये छह प्रकृतियाँ जोड़ना चाहिए । इस उदयस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है और भंग भी तीन ही होते हैं ॥१२६-१२७॥

यहाँ पर भंग इक्कीसप्रकृतिकस्थानके समान जानना चाहिए ।

अब द्वीन्द्रियके अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[1]एमेव अट्ठवीसं सरीरपज्जत्तए अपज्जत्तं ।
अवणिय परघायं पि य असुहगईसहिय दो भंगा ॥१२८॥

।२।

एवं पूर्वोक्तषड्विंशतिकं २६ तत्रापर्याप्तमपनीय पर्याप्तद्विकमध्यादपर्याप्तं निराक्रियते, तेन संख्या हीना न स्यात् । परघाताप्रशस्तविहायोगतिसहितं षड्विंशतिकमष्टाविंशतिकं द्वीन्द्रियस्य शरीरपर्याप्तौ पूर्णाङ्गे सति अन्तर्मुहूर्त्तकाले उदेति २८ । तत्र यशोयुग्मस्य द्वौ भङ्गौ भवतः २ । यशःपाके भङ्गः १, प्रतिपक्षप्रकृत्युदयाभावात् । अयशःपाकेऽप्येको भङ्गः १ । मीलितौ २ ॥१२८॥

इसी प्रकार अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर अपर्याप्तको निकाल करके परघात और अप्रशस्तविहायोगति इन दोको मिलाने पर होता है । यहाँपर भंग दो होते हैं ॥१२८॥

अब द्वीन्द्रियके उनतीस प्रकृतिकउदयस्थानका कथन करते हैं—

[2]एमेवूणत्तीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।
पक्खित्ते तह चेव य भंगा दो होंति णायव्वा ॥१२९॥

।२।

एवं पूर्वोक्तमष्टाविंशतिकं २८ तत्रोच्छ्वासनिःश्वासे प्रक्षिप्ते एकोनत्रिंशत्कं स्थानं २९ उच्छ्वासपर्याप्तिं प्राप्तस्य द्वीन्द्रियस्योदेति २९ । तत्र भङ्गौ द्वौ ज्ञातव्यौ भवतः २ । यशोयुग्मस्य भङ्गौ द्वावेव २ । तत्रान्तर्मुहूर्त्तकालो ज्ञेयः ॥१२९॥

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर उच्छ्वासप्रकृतिके मिलानेसे होता है । यहाँपर भी भंग दो ही होते है, ऐसा जानना चाहिए ॥१२९॥

अब द्वीन्द्रियके तीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[3]एमेव होइ तीसं भासापज्जत्तयस्स णवरिं तु ।
सहिए दुस्सरणामं भंगा वि य होंति दो चेव ॥१३०॥

भंगा २ ।

एवं पूर्वोक्तनवविंशतिकं २९ दुःस्वरनामप्रकृतिसहितं त्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं ३० भाषापर्याप्तिं प्राप्तस्य द्वीन्द्रियजीवस्योदयं याति । इदं त्रिंशत्कं जीवितावधेः स्थानम् । उत्कृष्टा स्थितिः द्वादश वार्षिकी १२ । जघन्या अन्तर्मुहूर्त्तिकी । अत्र भङ्गौ द्वौ भवतः २ । यशोयुग्मस्यैव भङ्गौ द्वौ २ ॥१३०॥

1 सं० पञ्चसं० ५, १४८ । 2. ५, १४९ । 3. ५, १५० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके भाषापर्याप्तिके पूर्ण होनेपर दुःस्वर-प्रकृतिके मिलानेसे होता है। यहाँपर भी भंग दो ही होते हैं ॥१३०॥

अब उद्योतके उदयवाले द्वीन्द्रियके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]उज्जोवउदयसहिए वेइंदिय एक्कवीस छव्वीसं।
पुव्वुत्तं चेव तहा एत्थ य भंगा य पुणरुत्ता ॥१३१॥

एत्थ दो दो भंगा ।२।२। पुणरुत्ता।

उद्योतोदयसहिते द्वीन्द्रिये पूर्वोक्तमेवैकविंशतिकं अपर्याप्तरहितं २१ षड्विंशतिकं च भवति २६। ग्रन्थभूयस्त्वभयान्नास्माभिर्वारंवारं लिख्यते। अत्र भङ्गौ द्वौ २ पुनरुक्तौ। तत्र कालः पूर्वोक्त एव ॥१३१॥

उद्योतप्रकृतिके उदयसे सहित द्वीन्द्रियजीवके पूर्वोक्त ही इक्कीस और छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। यहाँपर भी भङ्ग दो दो होवे हैं, जो कि पुनरुक्त हैं ॥१३१॥

यहाँपर पुनरुक्त दो-दो भंग होते हैं।

अब पूर्वोक्त जीवके उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[2]छव्वीसाए उवरिं सरीरपज्जत्तयस्स परघायं।
उज्जोवं असुहगई पक्खित्त गुतीस दो भंगा ॥१३२॥

।२।

षड्विंशत्या उपरि परघातं १ उद्योतं १ अप्रशस्तगतिं च प्रक्षिप्य एकोनत्रिंशत्कं स्थानं २९ शरीर-पर्याप्तिं प्राप्तस्योद्योतोदयसहितद्वीन्द्रियस्योदयागतं भवति २९। तत्र भङ्गौ द्वौ २ यशोयुग्मस्यैव ॥१३२॥

शरीरपर्याप्तिको पूर्ण करनेवाले द्वीन्द्रियजीवके छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थानके परघात, उद्योत और अप्रशस्तविहायोगति, इन तीन प्रकृतियोंके मिलानेपर उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है। यहाँपर भी दो भंग होते हैं ॥१३२॥

अब उसी जीवके तीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[3]एमेव होइ तीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं।
पक्खित्ते तह चेव य भंगा वि हवंति दो चेव ॥१३३॥

भंगा २।

एवं पूर्वोक्तनवविंशतिकं २९। तत्रोच्छ्वासनिःश्वासे निक्षिप्ते त्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं उद्योतोदय-सहितद्वीन्द्रियस्योदयागतं भवति ३०। उच्छ्वासपर्याप्तौ कालोऽन्तर्मुहूर्तः। त्रिंशत्कं द्वैधं, भङ्गौ द्वौ भवतः ॥१३३॥

इसी प्रकार श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिको सम्पन्न करनेवाले द्वीन्द्रियके उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानमें उच्छ्वासप्रकृतिके मिलाने पर तीसप्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है। यहाँ पर भी भङ्ग दो ही होते हैं ॥१३३॥

अब उसी जीवके इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानका कथन करते हैं—

[4]एमेव एक्कत्तीसं भासापज्जत्तयस्स णवरिं तु।
दुस्सर संपक्खित्ते दो चेव हवंति भंगा दु ॥१३४॥

।२।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १५१। 2. ५, १५२। 3. ५, १५३। 4. ५, १५४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमुक्तप्रकारं त्रिंशत्कम् । भङ्गौ २ । तत्र दुःस्वरे संप्रक्षिप्ते निक्षिप्ते एकत्रिंशत्कं नाम प्रकृत्युदयस्थानं भाषापर्याप्तिं प्राप्तस्योद्योतोदयसहितद्वीन्द्रियस्योदयागतं भवति ३१ । दुःस्वरं तत्र निक्षिप्तं नवीनविशेष इति । तत्र यशोयुग्मस्य भङ्गौ द्वौ $\frac{३१}{२}$ । जघन्याऽन्तर्मौहूर्त्तिकी स्थितिः, उत्कृष्टा द्वादश वार्षिकी स्थितिः तस्य भाषापर्याप्तिं प्राप्तस्य द्वीन्द्रियस्येति ॥१३४॥

इसी प्रकार भाषापर्याप्तिको पूर्ण करनेवाले द्वीन्द्रियजीवके तीसप्रकृतिक उदयस्थानमें दुःस्वरप्रकृतिके प्रक्षेप करने पर इकतीसप्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है । यहाँ पर भी भंग दो ही होते हैं ॥१३४॥

[1]बेइंदियस्स एवं अट्ठारस होंति सव्वभंगा दु ।
एवं वि-ति-चउरिंदियभंगा सव्वे वि चउवण्णा ॥१३५॥

बेइंदियस्स सव्वे भंगा १८ । एवं ति-चउरिंदियाणं । सव्वे भंगा ५४ ।

द्वीन्द्रियस्यैवं पूर्वोक्तप्रकारेणाष्टादश सर्वे भङ्गा विकल्पाः स्थानभेदा भवन्ति १८ । एवं त्रीन्द्रियस्याष्टादश भङ्गाः १८ । चतुरिन्द्रियजीवस्याष्टादश भङ्गाः १८ । सर्वे एकीकृताः विकलत्रयाणां चतुःपञ्चाशत्सर्वे भङ्गाः ५४ भवन्ति ॥१३५॥

इस प्रकार द्वीन्द्रिय जीवके सर्व भङ्ग अट्ठारह होते हैं । त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके भी अट्ठारह-अट्ठारह भंग जानना चाहिए । इस प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियके सर्व भंग चौवन होते हैं ॥१३५॥

द्वीन्द्रियके सर्व भंग १८ हैं । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियके भी भंग १८–१८ होते हैं । विकलेन्द्रियोंके सर्व भंग ५४ होते हैं ।

अब विकलेन्द्रियोंके तीस और इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानोंका काल बतलाते हैं—

[2]तीसेक्कतीसकालो जहण्णमंतोमुहुत्तयं होइ ।
उक्कस्सं पुण णियमा उक्कस्सठिदी य किंचूणा ॥१३६॥

[3]एत्थ बेइंदियम्मि तीस-इक्कतीसठाणाणं ३०।३१ ठिदी वासा १२ । तेइंदियम्मि तीसेक्कतीसठाणाणं ३०।३१ ठिदी दिवसा ४६ । चउरिंदियम्मि तीसेक्कतीसठाणाणं ३०।३१ ठिदी मासा ६ ।

त्रिंशत्कस्य एकत्रिंशत्कस्य च नामप्रकृत्युदयस्थानस्य ३०।३१ जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्त्तो भवति । पुनः उत्कृष्टकालो निजनिजोत्कृष्टायुःस्थितिरेव किञ्चिन्न्यूनविग्रहगतिशरीरमिश्रशरीरपर्याप्त्युच्छ्वासपर्याप्तिकालहीनमुत्कृष्टायुरित्यर्थः ॥१३६॥

अत्र द्वीन्द्रियाणां त्रिंशत्कस्थानस्य ३० एकत्रिंशत्कस्थानस्य च ३१ स्थितिर्द्वादशवार्षिकी १२ किञ्चिन्न्यूना । त्रीन्द्रियाणां त्रिंशत्कस्थानस्यैकत्रिंशत्कस्थानस्य च स्थितिर्दिवसा एकोनपञ्चाशत् ४६ किञ्चिन्न्यूनाः । चतुरिन्द्रियेषु त्रिंशत्कस्य एकत्रिंशत्कस्थानस्य च स्थितिः षण्मासा ६ किञ्चिन्न्यूना ।

विकलेन्द्रियोंके तीसप्रकृतिक और इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल नियमसे कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ॥१३६॥

यहाँ पर द्वीन्द्रियके तीस और इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानोंकी उत्कृष्ट स्थिति १२ वर्ष है । त्रीन्द्रियके तीस और इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानोंकी उत्कृष्ट स्थिति ४६ दिन है और चतुरिन्द्रियके तीस व इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानोंकी उत्कृष्ट स्थिति ६ मास है ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १५५ । 2. ५, १५६ । 3. ५, 'तत्र' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १७३) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके उदयस्थान बतलाते हैं—

[1]पंचिंदियतिरियाणं सामण्णे उदयठाण छच्चेव ।
इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसादि जाव इगितीसं ॥१३७॥

२१।२६।२८।२९।३०।३१।

सामान्येन पञ्चेन्द्रियाणामेकविंशतिकं २१ षड्विंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ चेति नामप्रकृत्युदयस्थानानि षड् भवन्ति ॥१३७॥

२१।२६।२८।२९।३०।३१ ।

सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंचके इक्कीस, छब्बीस और अट्ठाईसको आदि लेकर इकतीस प्रकृतिक तकके छह उदयस्थान होते हैं ॥१३७॥

इन उदयस्थानोंकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २६, २८, २९, ३०, ३१ ।

अब उद्योतके उदयसे सहित और रहित पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके उदयस्थान कहते हैं—

[2]उज्जोवरहियसयले एकत्तीसूणगाणि ठाणाणि ।
उज्जोवसहियसयले अट्ठावीसूणगा पंच ॥१३८॥

[3]उज्जोवरहियपंचिंदिए २१।२६।२८।२९।३०। उज्जोउदयसहियपंचिंदिए २१।२६।२९।३०।३१।

उद्योतोदयरहितपञ्चेन्द्रियेषु तिर्यक्षु एकत्रिंशत्कोनानि नामप्रकृत्युदयस्थानानि पञ्च भवन्ति २१।२६।२८।२९।३० । उद्योतोदयसहितपञ्चेन्द्रियेषु तिर्यक्षु अष्टाविंशतिकोनानि नामप्रकृत्युदयस्थानानि पञ्च भवन्ति २१।२६।२९।३०।३१ ॥१३८॥

उद्योतप्रकृतिके उदयसे रहित सकल अर्थात् पंचेन्द्रिय जीवके इकतीसप्रकृतिक स्थानके विना शेष पाँच उदयस्थान होते हैं। तथा उद्योतप्रकृतिके उदयसे सहित पंचेन्द्रिय जीवके अट्ठाईसप्रकृतिक स्थानके विना शेष पाँच उदयस्थान होते हैं ॥१३८॥

उद्योतके उदयसे रहित पंचेन्द्रियमें २१, २६, २८, २९, ३० ये पाँच उदयस्थान होते हैं। उद्योतके उदयसे सहित पंचेन्द्रियमें २१, २६, २९, ३०, ३१ ये पाँच उदयस्थान होते हैं।

अब उद्योतके उदयसे रहित पाँचों उदयस्थानोंका क्रमसे वर्णन करते हैं—

[4]उज्जोवरहियसयले तत्थ इमं एक्कवीससंठाणं ।
तिरियदुगं पंचिंदिय तेया कम्मं च वण्णचदुं ॥१३९॥
अगुरुयलहुयं तस बायर थिरमथिर सुहासुहं च णिमिणं च ।
सुभगं जस पज्जत्तं आदेज्जं चेव चउजुयलं ॥१४०॥
एक्कयरं वेयंति य विग्गहगईहिं एय-वियसमयं च ।
एत्थ वियप्पा णियमा णव चेव य होंति णायव्वा ॥१४१॥

[5]एत्थ अपज्जत्तोदए दुभगअणादेज-अजसकित्तीणमेवोदओ, तेण एगो भंगो १ । पज्जत्तोदए ८ । सव्वे ९ ।

---

1. सं०पञ्चसं० ५, १५७ । 2. ५, १५८ । 3. ५, 'उद्योतोदयरहिते' इत्यादिगद्यांशः । पृ० १७४) । 4. ५, १५९-१६१ । 5. ५, 'अत्र पूर्णोदये' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १७४) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्योतोदयरहितपञ्चेन्द्रियाणां तिरश्चां मध्ये एकस्मिन् तिर्यग्जीवे तत्र नामोदयस्थानेषु पञ्चसु मध्ये इदमेकविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं भवति। किमिति? तिर्यग्गतिद्वयं २ पञ्चेन्द्रियं १ तैजस-कार्मणद्वयं २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ त्रसं १ बादरं १ स्थिरास्थिरयुग्मं २ शुभाशुभद्वयं २ निर्माणं १ सुभगासुभग-यशोऽयशः-पर्याप्तापर्याप्ताऽऽदेयानादेयानां चतुर्युगलानां मध्ये एकतरं १।१।१।१ इत्येकविंशतिर्नामप्रकृतयो विग्रहगतौ उदयन्ति २१ उद्योतोदयरहितपञ्चेन्द्रियजीवस्य विग्रहगतौ कार्मणशरीरे इदमेकविंशतिकमुदयगतं भवतीत्यर्थः। अत्रैकः समयो द्वौ समयौ वा। अत्र विकल्पा भङ्गा एकविंशतिकस्य भेदा नव भवन्तीति ज्ञातव्याः ॥१३६-१४१॥

अत्रापर्याप्तोदये सति दुर्भगाऽऽनादेयाऽयशःकीर्त्तिनामुदयो भवत्येव यतस्ततः एको भङ्गः १। पर्याप्तोदये सति दुर्भग-सुभगादीनां त्रययुग्मोदयादष्टौ भङ्गाः २।२।२ परस्परं गुणिताः भङ्गाः ८। सर्वे नव ९ भङ्गाः।

उद्योत-रहित पंचेन्द्रियके इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है—तिर्यग्द्विक, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, त्रस, बादर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ; निर्माण और सुभग, यशःकीर्त्ति, पर्याप्त और आदेय इन चार युगलोंमेंसे कोई एक एक, इन इक्कीस प्रकृतियोंका उदय विग्रहगतिमें एक या दो समय तक रहता है। यहाँ पर नियमसे नौ ही भङ्ग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१३६-१४१॥

इस इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानमें अपर्याप्तप्रकृतिके उदयमें दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्तिका ही उदय होता है, इसलिए उसके साथ एक ही भंग सम्भव है। किन्तु पर्याप्तप्रकृतिके उदयमें तीनों युगलोंका उदय सम्भव है, अतः तीन युगलोंके परस्पर गुणा करनेसे आठ भंग हो जाते हैं। इस प्रकार इस उदयस्थानमें दोनों मिलकर नौ भङ्ग होते हैं।

अब उपर्युक्त जीवके छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[1]एमेव य छव्वीसं णवरि विसेसो सरीरगहियस्स।
अवणीय आणुपुव्वी पक्खिवियव्वं तथोरालं ॥१४२॥
तस्स य अंगोवंगं छस्संठाणाणमेयदरयं च।
छच्चेव य संवयणा एक्कयरं चेव उपघायं ॥१४३॥
पत्तेयसरीरजुयं भंगा वि य तह य होंति णायव्वा।
तिण्णि सयाणि य णियमा एयारस ऊणिया होंति ॥१४४॥

[2]पज्जत्तोदए भंगा २८८। अपज्जत्तोदये हुंड-असंपत्त-दुब्भग-अणादेज्ज-अजसकित्तीणमेवोदओ, तेण एगो भंगो १। एवं सव्वे २८९।

एवमेव पूर्वोक्तमेकविंशतिकं २१ तत्रानुपूर्व्यमपनीय २० तत्रौदारिकं १ तदङ्गोपाङ्गं १ षट्संस्थानानां मध्ये एकतरं संस्थानं १ षण्णां संहननानां मध्ये एकतरं [संहननं] १ उपघातः १ प्रत्येकशरीरं चेति प्रकृतिषट्कं ६ तत्र विंशतौ प्रक्षेपणीयम्। एवं षड्विंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं शरीरं गृह्णतः औदारिकमिश्रकायगृहीतस्योद्योतोदयरहितस्य पञ्चेन्द्रियस्य तिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति २६। अस्य कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः २१। अस्य पर्याप्तोदये सति द्वादशोनं शतत्रयं २८८। अपर्याप्तोदये सति एको भङ्गः। एवं एकादशोनास्त्रिशतभङ्गा भवन्ति २८९। तथाहि—अपर्याप्तोदये सति हुण्डकाऽसम्प्राप्तसृपाटिक-दुर्भगानादेयायशः-

1. सं० पञ्चसं० ५, १६२-१६४। 2. ५, 'अत्र पूर्णोददये संस्थान' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १७४)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कीर्त्तिनामोदय एव यतस्तत एको भङ्गः १ । पर्याप्तोदये सति संस्थानषट्क-संहननषट्क-युग्मत्रयाणां ६।६।२।२।२ परस्परेण गुणिताः २८८ । शुभैः सहापूर्णोदयस्याभावादपूर्णोदये भङ्गः १ । ॥१४२–१४४॥

उक्तञ्च—

असम्प्राप्तमनादेयमयशो हुण्डदुर्भगे ।
अपूर्णेन सहोदेति पूर्णेन तु सहेतराः[1] ॥७॥

इति सर्वे २८९ ।

इसी प्रकार छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि शरीर-पर्याप्तिको ग्रहण करनेवाले जीवके आनुपूर्वीको निकाल करके औदारिकशरीर, औदारिक-अङ्गोपांग, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान, छह संहननोंमेंसे कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येक-शरीर इन छह प्रकृतियोंके मिला देने पर छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ पर नियमसे ग्यारह कम तीन सौ अर्थात् दोसौ नवासी भङ्ग होते हैं ॥१४२–१४४॥

यहाँ पर्याप्तप्रकृतिके उदयमें छह संस्थान, छह संहनन, तथा शुभ, आदेय और यशःकीर्त्ति इन तीनों युगलोंके परस्पर गुणा करने पर (६×६×२×२×२=२८८) दो सौ अठासी भङ्ग होते हैं। तथा अपर्याप्तप्रकृतिके उदयमें हुंडक संस्थान, सृपाटिका संहनन, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्त्तिका ही उदय होता है, इसलिए एक ही भंग होता है। इस प्रकार २८८+१=२८९ भङ्ग छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थानमें होते हैं।

अब उसी जीवके अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[1]एमेवट्ठावीसं सरीरपज्जत्तगे अपज्जत्तं ।
अवणिय पक्खिविदव्वं एक्कयरं दो विहायगई ॥१४५॥
परघायं चेव तहा भंगवियप्पा तहा य णायव्वा ।
पंचेव सया णियमा छावत्तरि उत्तरा होंति ॥१४६॥

भंगा ५७६ ।

एवं पूर्वोक्तं षड्विंशतिकं तत्रापर्याप्तमपनीय प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्योर्मध्ये एकतरोदयः परघातं चैतद्द्वयं षड्विंशतिके प्रक्षेपणीयम् । अष्टाविंशतिकं २८ तत्तु तिर्यग्गतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ तैजसकार्मणे २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघु १ त्रसं १ बादरं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ निर्माणं १ पर्याप्तं १ सुभगासुभगयोरेकतरं १ यशोऽयशसोरेकतरं १ आदेयानादेययोरेकतरं १ औदारिकशरीरं १ औदारिकाङ्गोपाङ्गम् १ षण्णां संस्थानानां मध्ये एकतरं १ षण्णां संहननानां मध्ये एकतरं १ उपघातं १ प्रत्येकशरीरं १ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्योर्मध्ये एकतरं १ परघातं १ चेत्यष्टाविंशतिकं स्थानं २८ शरीरपर्याप्तिप्राप्ते सति उद्योतोदयरहितस्य पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति। तस्यान्तमुहूर्त्तकालः जघन्योत्कृष्टतः। तथा तस्याष्टाविंशतिकस्य भङ्गविकल्पाः षड्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्योपेता ज्ञातव्याः ॥१४५–१४६॥

६।६।२।२।२।२ गुणिता ५७६ ।

इसी प्रकार अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके शरीरपर्याप्तिके पूर्ण होने पर अपर्याप्तप्रकृतिको निकाल करके दो विहायोगतिमेंसे कोई एक और परघात प्रकृतिके मिलाने पर होता है। तथा यहाँ पर भङ्ग-विकल्प पाँच सौ छिहत्तर होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१४५–१४६॥

छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थानमें जो पर्याप्त-सम्बन्धी २८८ भङ्ग बतलाये हैं उन्हें यहाँ पर बढ़े हुए विहायोगति-युगलसे गुणा कर देने पर (२८८×२=) ५७६ भङ्ग हो जाते हैं।

1. सं० पञ्चसं० ५, १६६-१६७ ।

१. सं० पञ्चसं० ५,१६६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब उपर्युक्त जीवके उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[1]एमेऊणत्तीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।
पक्खित्ते तह भंगा पुव्वुत्ता चेव णायव्वा ॥१४७॥

भंगा ५७६ ।

एवमेवोक्तमष्टाविंशतिके उच्छ्वासनिःश्वासे प्रक्षिप्ते एकान्नत्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं २९ आनपर्याप्तस्य उच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तिं प्राप्तस्योद्योतोदयरहितस्य पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति । तस्य जघन्योत्कृष्टतोऽन्तर्मुहूर्तकालः । तथा तस्य भङ्गाः पूर्वोक्ता एव ज्ञातव्याः ५७६ ॥१४७॥

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके आनापानपर्याप्तिके पूर्ण होने पर उच्छ्वासप्रकृतिके मिला देने होता है । यहाँ पर भङ्ग पूर्वोक्त पाँच सौ छिहत्तर (५७६) ही जानना चाहिए ॥१४७॥

अब उसी जीवके तीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[2]एमेव होइ तीसं भासापज्जत्तयस्स सरजुयलं ।
एक्कयरं पक्खित्ते भंगा पुव्वुत्तदुगुणा दु ॥१४८॥

[3]सव्वे भंगा ११५२ । एवमुज्जोउदयरहियपंचिंदिए सव्वभंगा २६०२ ।

एवं पूर्वोक्तमेकान्नत्रिंशत्कं २९ तत्र स्वरयुगलस्यैकतरं १ प्रक्षिप्ते त्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं ३० भाषापर्याप्तिं प्राप्तस्योद्योतोदयरहितस्य पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति ३० । तु पुनः तस्य भङ्गाः पूर्वोक्ताः ५७६ स्वरयुगलेन २ हताः द्विगुणा भवन्ति ११५२ । एवमित्थं उद्योतोदयरहिते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवे सर्वे भङ्गाः २६०२ ॥१४८॥

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके भाषापर्याप्तिके पूर्ण होने पर स्वर-युगलमेंसे किसी एकके मिलाने पर होता है । यहाँ पर भङ्ग पूर्वोक्त भङ्गोंसे दुगुण अर्थात् ११५२ होते हैं ॥१४८॥

पूर्वोक्त ५७६ भंगोंको स्वर-युगलसे गुणा करनेपर ११५२ भंग हो जाते हैं । इस प्रकार उद्योतप्रकृतिके उदयसे रहित पंचेन्द्रियतिर्यंचके सर्व भंग ($\frac{२१}{९}+\frac{२६}{२८९}+\frac{२८}{५७६}+\frac{२९}{५७६}+\frac{३०}{११५२}=$) २६०२ होते हैं

अब उद्योतप्रकृतिके उदयवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[4]उज्जोवसहियसयले इगि-छव्वीसं हवदि† पुव्वुत्तं ।
भंगा वि तह य सव्वे पुणरुत्ता होंति णायव्वा ॥१४९॥

उद्योतोदयसहितपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवे एकविंशतिकं २१ षड्विंशतिकं च पूर्वोक्तं भवति । तत्रैवापर्याप्तमपनीय पूर्वोक्तपुनरुक्ता भङ्गास्तत्र भवन्ति । तत्किम् ? तिर्यग्गति-तदानुपूर्व्ये २ पञ्चेन्द्रियं १ तैजस-कार्मणे २ वर्णचतुष्कं४ अगुरुलघुकं १ त्रसं १ बादरं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ निर्माणं १ पर्याप्तं १ सुभगासुभगयोः यशोऽयशसोर्युग्मयोर्मध्ये एकतरं १।१ आदेयानादेययुग्मस्यैकतरं १ चेति एकविंशतिकं

1. सं० पञ्चसं० ५, १६८ । 2. ५, १६९ । 3. ५, '३० । भङ्गाः पूर्वोक्ताः' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १७५) । 4. ५, १७० ।

†ब जिहाहि ।

स्थानं उद्योतोदय-[सहित-] पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति २१ । तस्य भङ्गाः सुभगदुर्भगा-देयानादेययशोऽयशसां युग्मत्रयाणां २।२।२ परस्परं गुणिताः अष्टौ ८ । काल एक-द्वि-त्रिसमयाः । उद्योतोदये सर्वत्रापर्याप्तं नास्तीति ज्ञेयम् । इदमेकविंशतिकं स्थानं तत्रानुपूर्व्यमपनीय औदारिक-तदङ्गोपाङ्गद्वयं २ षण्णां संस्थानानामेकतरं १ षण्णां संहननानामेकतरं १ उपघातः १ प्रत्येकशरीरं चेति प्रकृतिषट्कं तत्र प्रक्षेपणीयम् । तदा षड्विंशतिकं स्थानं २६ उद्योतोदयसहितपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति । तस्य कालोऽन्तर्मुहूर्तः । तस्य भङ्गाः २।२।६।६ परस्परं गुणिताः २८८ पर्याप्तोदयभङ्गा विकल्पा भवन्तीत्यर्थः ॥१४६॥

उद्योतप्रकृतिके उदयसे सहित सकलपंचेन्द्रियजीवके इक्कीस और छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थान पूर्वोक्त अर्थात् उद्योतके उदयसे रहित पंचेन्द्रियजीवके समान ही होते हैं। तथा भंग भी उन्हींके समान होते हैं। वे सब भंग पुनरुक्त जानना चाहिए ॥१४६॥

अब उक्त जीवके उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानका प्ररूपण करते हैं—

[1]एमेव ऊणतीसं सरीरपज्जत्तयस्स परघायं।
उज्जोवं गइदुगाण एयदरं चेव सहियं तु ॥१५०॥
एत्थ वि भंग-वियप्पा छच्चेव सया हवंति ऊणा य।
चउवीसेण दु णियमा कालो अंतोमुहुत्तं तु ॥१५१॥

भंगा ५७६ ।

एवमेव पूर्वोक्तं षड्विंशतिकं २६ परघातं १ उद्योतं १ प्रशस्ताप्रशस्तगत्योर्मध्ये एकतरं १ [illegible] प्रकृतित्रयसहितं षड्विंशतिकं तु एकोनत्रिंशत्कं शरीरपर्याप्तिं गृह्णतः उद्योतोदयसहितस्य पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-जीवस्योदयागतं २९ भवति । तस्यान्तर्मुहूर्त्तकालः । तत्र भङ्गाः पूर्वोक्ताः २८८ प्रशस्ताप्रशस्तेन गतियुग्मेन गुणिताः ५७६ भवन्ति । तदाह—अत्रैकोनत्रिंशत्के भङ्गविकल्पाश्चतुर्विंशतिन्यूनाः षट्शतसंख्योपेता भवन्ति ५७६ । अत्र कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः ॥१५०-१५१॥

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके शरीरपर्याप्तिसे युक्त होनेपर परघात, उद्योत और विहायोगतियुगलमेंसे किसी एकके मिला देनेपर होता है। यहाँपर भी भंग-विकल्प चौबीससे कम छह सौ अर्थात् ५७६ होते हैं। इस उदयस्थानका काल नियमसे अन्तर्मुहूर्त है ॥१५०-१५१॥

अब उक्त जीवके तीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[2]एमेव होइ तीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं।
पक्खित्ते भंगा वि य सरिसा एऊणतीसेण ॥१५२॥

भंगा ५७६ ।

एवं पूर्वोक्तनवविंशतिकं २९ तत्रोच्छ्वासनिःश्वासे निक्षिप्ते त्रिंशत्कं स्थानं ३० आनापानपर्याप्तस्यो-द्योतोदय-[सहित-] पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं भवति ३० । तस्यैकोनत्रिंशत्कसदृशा भङ्गाः ५७६ भवन्ति ॥१५२॥

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक उदयस्थान उसी जीवके आनापानपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर उच्छ्वास-प्रकृतिके मिलानेसे होता है। इस उदयस्थानके भी भंग उनतीसप्रकृतिक उदयस्थानके सदृश ५७६ होते हैं ॥१५२॥

---

1. सं०पञ्चसं० ५, १७१-१७२ । 2. ५, १७३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब उक्त जीवके इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[1]एमेव एक्कतीसं भासापज्जत्तयस्स सरजुयलं ।
एक्कयरं पक्खित्ते भंगा पुव्वुत्तदुगुणा दु ॥१५३॥

११५२ ।

एवं पूर्वोक्तत्रिंशत्कं तत्र स्वरयुगलस्यैकतरं सुस्वरदुःस्वरयोर्मध्ये एकतरं १ निक्षिप्ते एकत्रिंशत्कं स्थानं ३१ भाषापर्याप्तिं प्राप्तस्योद्योतोदयसहितपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं ३१ भवति । तत्किम्? तिर्यग्गतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ तैजस-कार्मणे २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ त्रसं १ बादरं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ निर्माणं १ पर्याप्तं १ सुभग-दुर्भगयुग्मस्य मध्ये एकतरं १ यशोऽयशसोर्मध्ये एकतरं १ आदेयानादेययोर्मध्ये एकतरं १ औदारिक-तदङ्गोपाङ्गे २ षण्णां संस्थानानामेकतरं १ षण्णां संहननानामेकतरं १ उपघातः १ प्रत्येकशरीरं १ परघातः १ उद्योतं १ प्रशस्ताप्रशस्तगत्योर्मध्ये एकतरा गतिः १ उच्छ्वास-निःश्वासं १ सुस्वरदुःस्वरयोर्मध्ये एकतरोदयः १ । एवमेकत्रिंशत्कं प्रकृत्युदयस्थानं भाषापर्याप्तिं प्राप्तस्यो-द्योतोदय-[सहित-] पञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवस्योदयागतं भवतीत्यर्थः । अस्य भङ्गविकल्पाः २।२।२।६।६।२।२ परस्परं गुणिताः ११५२ । अथवा पूर्वोक्ताः ५७६ स्वरयुगलेन २ गुणिता द्विगुणा भवन्ति ११५२ ॥१५३॥

इसी प्रकार इकतीस प्रकृतिकउदयस्थान उसी जीवके भाषापर्याप्तिके पूर्ण होनेपर स्वर-युगल-मेंसे किसी एकके मिलानेपर होता है। यहाँपर भंग पहले कहे गये भंगोंसे दुगुने अर्थात् ११५२ होते हैं ॥१५३॥

अब तीस और इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानका काल बतलाते हैं—

[2]तीसेक्कतीसकालो जहण्णमंतोमुहुत्तयं होइ ।
अंतोमुहुत्तऊणं उक्कस्सं तिण्णि पल्लाणि ॥१५४॥

त्रिंशत्कस्थानस्य ३० जघन्योऽन्तमुहूर्तकालः । एकत्रिंशत्कस्थानस्य ३१ जघन्योऽन्तर्मुहूर्त्तः । उत्कृष्टकालोऽन्तमुहूर्त्तोनानि त्रीणि पल्यानि । विग्रहगति-शरीरमिश्र-शरीरपर्याप्ति-श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकाल-चतुष्कोनं सर्वं भुज्यमानायुरित्यर्थः ॥१५४॥

तीसप्रकृतिक उदयस्थानका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल अनन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्य है ॥१५४॥

[3]एवं उज्जोयसहियपंचिंदियतिरिएसु सव्वभंगा २३०४ । एवं सव्वपंचिंदियतिरिएसु ४९०६ ।

एवमुद्योतोदयसहितपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवे सर्वे भङ्गाः २३०४ उद्योतरहितपञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु २६०२ । एवं पञ्चेन्द्रियेषु सर्वे भङ्गाः ४९०६ ।

इस प्रकार उद्योतप्रकृतिके उदयसे युक्त पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके उदयस्थान-सम्बन्धी सर्व भंग (५७६ + ५७६ + ११५२ =) २३०४ होते हैं [२९, ३०, ३१]। इनमें उद्योतके उदयसे रहित पंचेन्द्रियोंके २६०२ भंग मिला देनेपर (२०३३ + २६०२ =) ४९०६ भंग सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके हो जाते हैं।

[4]सव्वेसिं तिरियाणं भंगवियप्पा हवंति णायव्वा ।
पंचेव सहस्साइं ऊणाइं हवंति चदुदुगूणा ॥१५५॥

४९९२ ।

तिरियगई समत्ता

1.-2. सं० पञ्चसं० ५, १७४ । 3. ५, 'इत्थं सोद्योतोदये' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १७६) ।
4. ५, १७५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टभिर्हीनाः पञ्च सहस्रा भङ्गविकल्पाः सर्वेषामेकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां तिरश्चां भवन्ति ज्ञातव्याः ४९९२ ॥१५५॥ उक्तञ्च—

सहस्राः पञ्च भङ्गानामष्टहीना निवेदिताः ।
तिर्यग्गतौ समस्तानां पिण्डितानां पुरातनैः [1] ॥८॥

इति तिर्यग्गतौ नामप्रकृत्युदयस्थानानि समाप्तानि ।

एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके सर्व तिर्यंचोंके उदयस्थान-सम्बन्धी सर्व भंगोंके विकल्प चारद्विक अर्थात् आठ कम पाँच हजार होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ।।१५५।।

भावार्थ—एकेन्द्रियोंके ३२, विकलेन्द्रियोंके ५४ और सकलेन्द्रियोंके ४९०६ भंगोंको जोड़ देनेपर तिर्यंचोंके सर्व भंग ४९९२ हो जाते हैं ।

इस प्रकार तिर्यञ्चगति-सम्बन्धी नामकर्मके उदयस्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मनुष्यगतिमें नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]मणुयगईसंजुत्ता उदये ठाणाणि होंति दस चेव ।
चउवीसं वज्जित्ता सेसाणि हवंति णायव्वा ।।१५६।।

२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८।

अथ मनुष्यगतौ नामप्रकृत्युदयस्थानानि गाथापञ्चविंशत्याऽऽह—['मणुयगईसंजुत्ता' इत्यादि ।] चतुर्विंशतिकं स्थानं वर्जयित्वा शेषाणि मनुष्यगत्यां मनुष्यगतिसंयुक्तानि नामकर्मप्रकृत्युदयस्थानानि दश भवन्ति—एकविंशतिकं २१ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २७ सप्तविंशतिकं २७ अष्टाविंशतिकं २८ नवविंशतिकं २९ त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ नवकं ९ अष्टकं ८ चेति दश १० ।।१५६।।

नामकर्मके जितने उदयस्थान हैं, उनमेंसे चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानको छोड़कर शेष दश उदयस्थान मनुष्यगति-संयुक्त होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ।।१५६।।

उनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८ ।

[2]पंचिंदियतिरिएसुं उज्जोवूणेसु जाणि भणियाणि ।
ओघणरेसु वि ताणि य हवंति पंच उदयठाणाणि ।।१५७।।

२१।२६।२८।२९।३०।

उद्योतरहितपञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु यानि उदयस्थानानि भणितानि, ओघनरेषु मनुष्यगतौ सामान्यमनुष्येषु तानि नामोदयस्थानानि पञ्चैव भवन्ति—एकविंशतिकं षड्विंशतिकं अष्टाविंशतिकं नवकविंशतिकं त्रिंशत्कमिति २१।२६।२८।२९।३० नामप्रकृत्युदयस्थानानि पञ्च भवन्ति ॥१५७॥

उद्योतप्रकृतिके उदयसे रहित पंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें जो पाँच उदयस्थान बतलाये गये हैं, सामान्यमनुष्योंमें वे ही पाँच उदयस्थान होते हैं ॥१५७।।

उनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २६, २८, २९, ३० ।

---

१. सं० पञ्चसं० ५, १७६ ।

1. सं० पञ्चसं० ५, १७६ । 2. ५, १७७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु मनुष्यगतिके उदयस्थानोंमें जो विशेषता है उसे बतलाते हैं—

[1]तिरियदुवे मणुयदुयं भणणीयं होंति सव्वभंगा हु ।
सत्तावीस सयाणि य अट्ठाणउदी य रहियाणि ॥१५८॥

।२६०२।

[2]तथावि सुहबोहत्थं वुच्चए—

अत्र सामान्यमनुष्येषु तिर्यग्द्विके मनुष्यद्विकं भणनीयम् । यथा तिर्यग्गतौ तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यं भण्यते, तथा मनुष्यगतौ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यं भण्यते । सर्वभङ्गाः पूर्वोक्तप्रकारेण भङ्गाः अष्टानवतिरहिताः सप्तविंशतिशतप्रमाः द्विसहस्रषट्शतद्विप्रमितभङ्गा इत्यर्थः २६०२ ॥१५८॥

उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंमें तिर्यग्द्विकके स्थानपर मनुष्यद्विकको कहना चाहिए । यहाँपर भी सर्व भंग अट्ठावनवैसे रहित सत्ताईस सौ अर्थात् छब्वीस सौ दो (२६०२) होते हैं ॥१५८॥

तथापि सुगमतासे समझनेके लिए उनका निरूपण करते हैं—

तित्थयराहाररहियपयडी मणुसस्स पंच ठाणाणि ।
इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसं ऊणतीस तीसा य ॥१५९॥

२१।२६।२८।२९।३०।

यद्यपि पूर्वोक्तास्ते, तथापि सुखबोधार्थं वा भव्यशिष्याणां प्रतिबोधनार्थमुच्यते—['तित्थयराहाररहिय' इत्यादि ।] तीर्थंकरप्रकृत्याहारकद्विकप्रकृतिरहितस्य सामान्यमनुष्यस्य एकविंशतिकं २१ षड्विंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ नवविंशतिकं २९ त्रिंशत्कं ३० चेति पञ्च नामप्रकृत्युदयस्थानानि भवन्ति ॥१५९॥

तीर्थंकर और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियोंके उदयसे रहित मनुष्यके इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक पाँच पाँच उदयस्थान होते हैं ॥१५९॥

उनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २६, २८, २९, ३० ।

[3]तत्थ इमं इगिवीसं ठाणं णियमेण होइ ण यव्वं ।
मणुयदुयं पंचिंदिय तेया कम्मं च वण्णचदुं ॥१६०॥
अगुरुयलहु तस बायर थिरमथिर सुहासुहं च णिमिणं च ।
सुभगं जस पज्जत्तं आदेज्जं चेव चउजुयलं ॥१६१॥
एययरं वेयंति य विग्गहगईहिं एग-विगसमयं ।
एत्थ वियप्पा णियमा णव चेव हवंति णायव्वा ॥१६२॥

पज्जत्तोदए भंगा ८ । अपज्जत्तोदये १। सव्वे ९ ।

तत्र मनुष्यगत्यामिदमेकविंशतिकं स्थानं २१ नियमेन ज्ञातव्यं भवति । तत्किम् ? मनुष्यगति-तदानुपूर्व्ये २ पञ्चेन्द्रियं १ तैजस-कार्मणद्वयं २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ त्रसं १ बादरं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ निर्माणं १ सुभगदुर्भगयुग्म-यशोऽयशोयुग्म-पर्याप्तापर्याप्तयुग्माऽऽदेयानादेययुग्मानां चतुर्णां मध्ये एकतरमेकतरमुदयं याति १।१।१।१ । चेत्येकविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं सामान्यमनुष्यस्यैकजीवस्य विग्रहगत्यां कार्मणशरीरे जघन्यमेकसमयं उत्कृष्टेन द्वौ त्रीन् (?) समयान् प्रति उदयागतं

1. सं० पञ्चसं० ५, १७८ । 2. ५, 'यद्यपि पूर्वमुक्तास्ते' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १७६) ।
3. ५, १७९-१८१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१ भवति । अत्र विकल्पा भङ्गा नियमेन नव भवन्ति ज्ञातव्याः । यशस्कीर्त्तिमाश्रित्य पर्याप्त्युदये भङ्गाः अष्टौ । अयस्कीर्त्तिमाश्रित्यापर्याप्तोदये भङ्ग एकः १ । एवं नव भङ्गाः ९ ॥१६०–१६२॥

उनमेंसे इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानमें नियमसे ये प्रकृतियाँ जानना चाहिए—मनुष्यद्विक, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, त्रस, बादर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण; तथा सुभग, यशःकीर्त्ति, पर्याप्त और आदेय इन चार युगलोंमेंसे कोई एक-एक । इन इक्कीस प्रकृतियोंका विग्रहगतिमें एक या दो समयतक मनुष्यसामान्य वेदन करते हैं । यहाँपर भंग नियमसे नौ ही होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१६०–१६२॥

पर्याप्तप्रकृतिके उदयमें ८ भङ्ग और अपर्याप्तके उदयमें १ भङ्ग; इस प्रकार सर्व ९ भङ्ग होते हैं ।

[1]एमेव य छव्वीसं णवरि विसेसो सरीरगहियस्स ।
अवणीय आणुपुव्वी पक्खिवियव्वं तथोरालं ॥१६३॥
तस्स य अंगोवंगं छस्संठाणाणमेक्कदरयं च ।
छच्चेव य संघयणा एययरं चेव उवघायं ॥१६४॥
पत्तेयसरीरजुयं भंगा वि य तस्स होंति णायव्वा ।
तिण्णि य सयाणि णियमा एयारस ऊणिया होंति ॥१६५॥

पज्जत्तोदए भंगा २८८ । अपज्जत्तोदये १ । सव्वे २८९ ।

एवमेव पूर्वोक्तमेकविंशतिकम् । तत्रानुपूर्व्यमपनीय २० तत्रौदारिकं १ तदङ्गोपाङ्गं १ षण्णां संस्थानानां मध्ये एकतरं संस्थानं १ षण्णां संहननानां मध्ये एकतरं संहननं १ उपघातं १ प्रत्येकशरीरं १ चेति प्रकृतिषट्कं प्रक्षेपणीयम् । नवीनविशेषोऽयम् । इति षड्विंशतिकं स्थानं औदारिकशरीरं गृह्णतः औदारिकमिश्रकाले उदयागतं भवति २६ । तत्रान्तर्मुहूर्त्तकालः । तस्य षड्विंशतिकस्य भङ्गा विकल्पा एकादशोनाः शतत्रयप्रमिता भवन्ति । यशस्कीर्त्तिमाश्रित्य पर्याप्तोदये सति भङ्गाः २८८ । अयशःपाके अपर्याप्तोदये एको भङ्गः १ । सर्वे भङ्गाः २८९ ॥ ६।६।२।२।२ गुणिताः २८८ । [एकश्चापर्याप्तभङ्गः] १ । एवं २८९ ॥१६३–१६५॥

इसी प्रकार छव्वीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि शरीर-पर्याप्तिको ग्रहण करनेवाले मनुष्यके मनुष्यानुपूर्वीको निकाल करके औदारिकशरीर, औदारिक-अंगोपांग, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान, छह संहननोंमेंसे कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन छह प्रकृतियोंको और मिला देना चाहिए । इस उदयस्थानके भङ्ग भी ग्यारहसे कम तीन सौ अर्थात् दो सौ नवासी होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१६३–१६५॥

पर्याप्तके उदयमें २८८, अपर्याप्तके उदयमें १ इस प्रकार कुल २८९ भङ्ग होते हैं ।

[2]एमेव अट्ठवीसं सरीरपज्जत्तगे अपज्जत्तं ।
अवणिय पक्खिवियव्वं एययरं दो विहायगई ॥१६६॥
परघायं चेव तहा भंगवियप्पा तहेव णायव्वा ।
पंचेव सया णियमा छाहत्तरि उत्तरा होंति ॥१६७॥

।५७६।

1. सं० पञ्चसं० ५, १८२-१८४ । 2. ५, १८५-१८६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं पूर्वोक्तषड्विंशतिकम्। तत्रापर्याप्तमपनीय प्रशस्ताप्रशस्तगत्योर्मध्ये एकतरं १ परघातं चेति द्वयं प्रक्षेपणीयम्। इत्यष्टाविंशतिकं स्थानं शरीरपर्याप्तौ सामान्यमनुष्यस्योदयागतं २८ भवति। तस्य कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः। तथा तस्य स्थानस्य भङ्गविकल्पाः षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतप्रमिता ५७६ भवन्ति ज्ञेयाः ॥१६६-१६७॥

इसी प्रकार अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उक्त जीवके शरीरपर्याप्तिके पूर्ण हो जानेपर अपर्याप्त प्रकृतिको निकाल करके दोनों विहायोगतियोंमेंसे कोई एक और परघात; ये दो प्रकृतियाँ मिलाना चाहिए। इस उदयस्थानमें भङ्ग-विकल्प तथैव अर्थात् तिर्यंचसम्बन्धी अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानके समान नियमसे पाँच सौ छिहत्तर होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१६६-१६७॥

[1]एमेवऊणत्तीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं।
पक्खित्ते तह भंगा पुव्वुत्ता चेव णायव्वा ॥१६८॥

भंगा ५७६।

एवं पूर्वोक्तमष्टाविंशतिकम्। तत्रोच्छ्वासनिःश्वासे प्रक्षिप्ते एकोनत्रिंशत्कं स्थानं आनापानपर्याप्ति प्राप्तस्य सामान्यमनुष्यस्योदयागतं भवति २९। तत्र कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः। तथैतस्य भङ्गाः पूर्वोक्ताः ज्ञेयाः ५७६॥१६८॥

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान शरीर-पर्याप्तिसे सम्पन्न मनुष्यके उच्छ्वास प्रकृतिके मिला देने पर होता है। तथा यहाँ पर भङ्ग भी पूर्वोक्त ५७६ ही जानना चाहिए ॥१६८॥

[2]एमेव होइ तीसं भासापज्जत्तयस्स सरजुयलं।
एययरं पक्खित्ते भंगा पुव्वुत्तदुगुणा दु ॥१६९॥

भंगा ११५२।

एवमेव पूर्वोक्तनवविंशतिकप्रकारेण [त्रिंशत्कं] भवति। तत्र सुस्वर-दुःस्वरयोर्मध्ये एकतरं प्रक्षिप्ते त्रिंशत्कं स्थानं भाषापर्याप्तिं प्राप्तस्य सामान्यमनुष्योदयागतं ३० भवति। तत्कथम्? मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ तैजसकार्मणे २ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ त्रसं १ बादरं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ निर्माणं १ पर्याप्तं १ सुभग-यशः-आदेययुग्मानां त्रयाणां एकतरं १।१।१। औदारिक-तदङ्गोपाङ्गे २ षण्णां संस्थानानामेकतरं संस्थानं १ षण्णां संहननानां मध्ये एकतरं संहननं १ उपघातं १ प्रशस्ताप्रशस्तगति-द्वयस्यैकतरं १ परघातं १ उच्छ्वासनिःश्वासं १ सुस्वर-दुःस्वरयोर्मध्ये चैकतरं १ चेति त्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं ३० सामान्यमनुष्यस्यैकजीवस्योदयागतं भवति। तस्य परा पल्यत्रयं स्थितिः समुहूर्त्तोना इति। ६।६।२।२।२।२।२। परस्परगुणिताः ११५२ तत्र भङ्गाः। अथवा पूर्वोक्ताः ५७६ स्वरयुगलेन २ गुणिता द्विगुणा भवन्ति। सर्वे मीलिताः २६०२॥१६९॥

इसी प्रकार तीसप्रकृतिक उदयस्थान भाषा-पर्याप्तिसे युक्त मनुष्यके स्वर-युगलोंमेंसे किसी एकके मिलाने पर होता है। यहाँ पर भङ्ग पूर्वोक्त भङ्गोंसे दूने अर्थात् ११५२ होते हैं ॥१६९॥

[3]आहारसरीरुदयं जस्स य ठाणाणि तस्स चत्तारि।
पणुवीस सत्तवीसं अट्ठावीसं च †उगुतीसं ॥१७०॥

विसेसमणुएसु २५।२७।२८।२९।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १८७। 2. ५, १८८। 3. ५, १८९।

† ब उण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ विशेषमनुष्येषु नामोदयस्थानान्याऽऽह—['आहारसरीरुदयं' इत्यादि ।] यस्य मुनेराहारक-शरीर-तदङ्गोपाङ्गोदयो भवति, तस्य विशिष्टपुरुषस्य पञ्चविंशतिकं २५ सप्तविंशतिकं २७ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ चेति चत्वारि नामप्रकृत्युदयस्थानानि २५।२७।२८।२९ स्युः ॥१७०॥

अब आहारक शरीरके उदयवाले जीवोंके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

जिस जीवके आहारकशरीरका उदय होता है उसके पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस; ये चार उदयस्थान होते हैं ॥१७०॥

आहारकशरीरके उदयवाले विशेष मनुष्यमें २५, २७, २८, २९ ये चार उदयस्थान होते हैं।

[1]तत्थ इमं पणुवीसं मणुसगई तेय कम्म आहारं ।
तस्स य अंगोवंगं वण्णचउक्कं च उवघायं ॥१७१॥
अगुरुयलहु पंचिंदिय-थिराथिर सुहासुहं च आदेज्जं* ।
तसचउ समचउरं सुहयं जस णिमिण भंग एगो दु ॥१७२॥

भंगो । १ ।

तत्र मनुष्यगत्याहारकद्विके इदं पञ्चविंशतिकं स्थानम् । मनुष्यगतिः १ तैजस-कार्मणे २ आहारका-हारकाङ्गोपाङ्गे २ वर्णचतुष्कं ४ उपघातं १ अगुरुलघुकं १ पञ्चेन्द्रियं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ आदेयं १ त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकचतुष्टयं ४ समचतुरस्रसंस्थानं १ सुभगं १ यशःकीर्त्तिः १ निर्माणं १ चेति पञ्च-विंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं २५ आहारकद्विकोदये सति मुनेरुदयागतं भवति । अस्यान्तर्मुहूर्त्तकालः । तस्य पञ्चविंशतिकस्य भङ्गो १ भवति ॥१७१–१७२॥

उनमेंसे पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है—मनुष्यगति, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, आहारकशरीर, आहारक-अङ्गोपांग, वर्णचतुष्क, उपघात, अगुरुलघु, पञ्चेन्द्रियजाति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, आदेय, त्रस-चतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, सुभग, यशस्कीर्त्ति और निर्माण । इस उदयस्थानमें भङ्ग एक ही होता है ॥१७१–१७२॥

[2]एमेव सत्तवीसं सरीरपज्जत्तयस्स परघायं ।
पक्खिविय पसत्थगई भंगो वि य एत्थ एगो दु ॥१७३॥

भंगो १ ।

एवं पूर्वोक्तपञ्चविंशतिकम् । तत्र परघातं १ प्रशस्तविहायोगतिं च प्रक्षिप्य मुक्त्वा सप्तविंशतिकं नामोदयस्थानं २७ शरीरपर्याप्तस्याऽऽहारकशरीरपर्याप्तिं प्राप्तस्य पूर्णाङ्गस्य मुनेरुदयागतं भवति । अत्रैको भङ्गः १ । कालस्तु अन्तर्मुहूर्त्तकः ॥१७३॥

इसी प्रकार सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थान शरीर-पर्याप्तिसे पर्याप्त मनुष्यके परघात और प्रशस्त विहायोगति इन दो प्रकृतियोंके मिलाने पर होता है । यहाँ पर भी भङ्ग एक ही होता है ॥१७३॥

[3]एमेवट्ठावीसं आणापज्जत्तयस्स उस्सासं ।
पक्खित्त तह चेव य भंगो वि य एत्थ एगो दु ॥१७४॥

भंगो १ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, १९०-१९१ । 2. ५. १९२ । 3. ५, १९३ ।

*ब यं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं पूर्वोक्तं सप्तविंशतितम् । अत्रोच्छ्वासे प्रक्षिप्ते अष्टाविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं आनापानपर्याप्तस्योच्छ्वासपर्याप्ति प्राप्तस्य मुनेरुदयागतं २८ भवति । अत्र भङ्ग एकः १ । अन्तर्मुहूर्त्तकालश्च ॥१७४॥

इसी प्रकार अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थान आनापानपर्याप्तिसे पर्याप्त मनुष्यके उच्छ्वास प्रकृतिके मिलाने पर होता है। यहाँ पर भी भङ्ग एक ही होता है ॥१७४॥

[1]†एमेऊणत्तीसं भासापज्जत्तयस्स सुस्सरयं ।
पक्खिविय एयभंगो सव्वे भंगा दु चत्तारि ॥१७५॥

भंगो १ सव्वे ४ ।

एवं पूर्वोक्तमष्टाविंशतिकम् । तत्र सुस्वरं क्षिप्त्वा प्रक्षिप्य एकोनत्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं भाषापर्याप्तिं प्राप्तस्याहारकोदये मुनेरुदयागतं २९ भवति । अत्र भङ्ग एकः । विशेषमनुष्ये एकस्मिन् भङ्गाश्चत्वारः । २५/१ । २७/१ । २८/१ । २९/१ ॥१७५॥

इसी प्रकार उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान भाषापर्याप्तिसे संयुक्त मनुष्यके सुस्वर प्रकृतिके मिला देनेपर होता है। यहाँपर भी एक ही भङ्ग होता है। इस प्रकार आहारकप्रकृतिके उदयवाले जीवके चारों उदयस्थानोंके सर्व भङ्ग चार ही होते हैं ॥१७५॥

अब तीर्थंकर प्रकृतिके उदयवाले मनुष्यके उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[2]तित्थयर सह सजोई एकत्तीसं तु जाण मणुयगई ।
पंचिंदिय ओरालं तेया कम्मं च वण्णचदुं ॥१७६॥
समचउरं ओरालिय अंगोवंगं च वज्जरिसहं च ।
अगुरुगलघुचदु तसचदु थिराथिरं तह पसत्थगदी ॥१७७॥
सुभमसुभ सुहय सुस्सर जस णिमिणादेज्ज तित्थयरं ।
वासपुधत्त जहण्णं उक्कस्सं पुव्वकोडिदेसूणं ॥१७८॥

तीर्थंकरप्रकृत्युदयसहितसयोगकेवलिनः एकत्रिंशत्कं स्थानं जानीहि भो भव्य त्वम् । किं तत्? मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ औदारिक-तैजस-कार्मणशरीराणि १ वर्णचतुष्कं ४ समचतुरस्रसंस्थानं १ औदारिकाङ्गोपाङ्गं १ वज्रवृषभनाराचसहननं १ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्टयं ४ त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकचतुष्कं ४ स्थिरास्थिरे २ प्रशस्तविहायोगतिः १ शुभं १ अशुभं १ सुभगं १ सुस्वरं १ यशस्कीर्त्ति-निर्माणे द्वे २ आदेयं १ तीर्थकरत्वं १ चेति एक-[त्रिंशत्कं स्थानं तीर्थंकरप्रकृत्युदयसहितसयोगकेवलिन उदयागतं भवति । अस्योदयस्थानस्य जघन्या स्थितिः वर्षपृथक्त्वम् उत्कृष्टा च देशोना पूर्वकोटी] ॥१७६-१७८॥

तीर्थंकरप्रकृतिके उदयके साथ सयोगिकेवलीके इकतीसप्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार जानना चाहिए—मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक-अङ्गोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन, अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास) त्रसचतुष्क (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर) स्थिर, अस्थिर, प्रशस्तविहायोगति, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, यशःकीर्त्ति, निर्माण, आदेय

1. सं०पञ्चसं० ५, १९४ । 2. ५, १९५-१९७ ।
†ब एमेय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तीर्थङ्करप्रकृति। इस उदयस्थानका जघन्यकाल वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट काल देशोन (अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षसे कम) पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है ॥१७६-१७८॥

[1]विसेस विसेसमणुएसु ३१। एत्थ जहण्णा वासपुधत्तं, उक्कस्सा अंतोमुहुत्त अधिया अट्ठवासूणा पुव्वकोडी। भंगो १।

[तीर्थंकरप्रकृत्युदयविशिष्टविशेषमनुष्येषु एकत्रिंशत्कमुदयस्थानम् ३१। अत्रोत्कृष्टा स्थितिरन्तमुहूर्त्ताधिकगर्भाद्यष्टवर्षहीना पूर्वकोटी। जघन्या वर्षपृथक्त्वम्[1]। भङ्ग एकः १।]

तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदयसे विशिष्ट विशेष मनुष्योंमें यह इकतीसप्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस उदयस्थानका जघन्यकाल वर्षपृथक्त्व है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षसे कम एक पूर्वकोटी वर्षप्रमाण है। यहाँ पर भङ्ग एक ही है।

अब नौप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[2]णवं अजोईठाणं पंचिंदिय सुभग तस य बायरयं।
पज्जत्तय मणुसगई आएज्ज जसं च तित्थयरं ॥१७९॥

९। भंगो १।

[..
....
.... ॥१७९॥]

मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्त्ति और तीर्थङ्कर, इन नौ प्रकृतियोंवाला उदयस्थान अयोगि तीर्थङ्करके होता है ॥१७९॥

अब आठप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

तित्थयरं वज्जित्ता ताओ चेव हवंति अट्ठ पयडीओ।
सव्वे केवलिभंगा तिण्णेव य होंति णायव्वा ॥१८०॥

८। भंगो १। सव्वे केवलिभंगा ३।

[..
....
.... ॥१८०॥]

नौ प्रकृतिक उदयस्थानमेंसे तीर्थङ्करप्रकृतिको छोड़कर शेष जो पूर्वोक्त आठ प्रकृतियाँ अवशिष्ट रहती हैं; उन आठ प्रकृतियोंवाला उदयस्थान सामान्य अयोगिकेवलीके होता है। यहाँ पर भी भङ्ग एक ही है। इस प्रकार केवलीके सर्व भङ्ग तीन ही होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१८०॥

अब मनुष्यगति-सम्बन्धी उदयस्थानोंके सर्व भंगोंका निरूपण करते हैं—

[3]मणुयगइसव्वभंगा दो चेव सहस्सयं च छच्च सया।
णव चेय समधिरेया णायव्वा होंति णियमेण ॥१८१॥

भंगा २६०९।

। एवं मणुयगइ समत्ता।

1. सं० पञ्चसं० ५, 'अत्रोत्कृष्टा' इत्यादिगद्यांशः। (पृ० १७९) । 2. ५, १९८। 3. ५, १९९।

१. सं० पञ्चसंग्रहादुद्धृतम्। (पृ० १७९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नृगतिः पूर्णमादेयं पञ्चाक्षं सुभगं यशः ।
त्रसस्थूलमयोगेऽष्टौ पाके तीर्थकृतो नव ॥९॥

पाके ८ । भङ्गः १ । तीर्थकृता युता ९ । भङ्गः १ । सर्वे केवलिनो भङ्गाः ३ ।

षड्विंशतिशतान्युक्त्वा नवाग्राणि नृणां गतौ ।
भङ्गानतः परं वक्ष्ये सयोगे पाकसप्तकम् ॥१०॥

२६०९ ।

उदये विंशतिः सैकषट्सप्ताष्टनवाधिका ।
दशाग्रा चेति विज्ञेयं सयोगे स्थानसप्तकम् ॥११॥

२०।२१।२६।२७।२८।२९।३०

नृगतिः कार्मणं पूर्णं तेजोवर्णचतुष्टयम् ।
पञ्चाक्षाऽगुरुलघ्वाह्वे शुभस्थिरयुगे यशः ॥१२॥
सुभगं बादरादेये निर्मितं त्रसमिति स्फुटम् ।
उदयं विंशतिर्याति प्रतरे लोकपूरणे ॥१३॥

२०। भङ्गः १।

तत्र प्रतरे समयः १ । लोकपूरणे १ । पुनः प्रतरे १ । इत्थं त्रयः समयाः ३ ।

आद्ये संहनने क्षिप्ते प्रत्येकौदारिकद्वये ।
उपाघाताख्यसंस्थानषट्कैकतरयोरपि ॥१४॥
षाड्विंशतमिदं स्थानं कपाटस्थस्य योगिनः ।
संस्थानैकतरैः षड्भिर्भङ्गषट्कमिहोदितम् ॥१५॥

२६। भङ्गाः ६ ।

परघातखगत्यन्यतराभ्यां सहितं मतम् ।
तदाष्टाविंशतं स्थानं योगिनो दण्डयायिनः ॥१६॥

२८ । अत्र द्वादश भङ्गाः ।

तदुच्छ्वासयुतं स्थानमेकोनत्रिंशतं स्मृतम् ।
आनपर्याप्तपर्याप्तिर्भङ्गाः पूर्वनिवेदिताः ॥१७॥

२९।भङ्गाः १२ ।

त्रैंशतं पूर्णभापस्य स्वरैकतरसंयुतम् ।
चतुर्विंशति[1]–] रत्रोक्ता भङ्गा भङ्गविशारदैः ॥१८॥

पूर्वोक्तं नवविंशतिकं स्थानं सुस्वर-दुःस्वरयोर्मध्ये एकतरेण १ युक्तं त्रिंशत्कं नामप्रकृत्युदयस्थानं ३० सामान्यसमुद्घातकेवलिनो भाषापर्याप्तौ उदयागतं भवति ३० । पूर्वोक्तभङ्गाः द्वादश १२ स्वरयुगलेन २ गुणिताश्चतुर्विंशतिभङ्गा भवन्त्यत्र २४ ।

अथ तीर्थङ्करसमुद्घाते नामप्रकृत्युदयस्थानान्याह—

पृथक्तीर्थकृता योगे स्थानानां पञ्चकं परम् ।
प्रथमं तत्र संस्थानं प्रशस्तौ च गतिस्वरौ[2] ॥१९॥

इति तीर्थकृति सयोगे स्थानानि पञ्च—२१।२२।२९।३०।३१। तथाहि—मनुष्यगतिः १ कार्मणं १ पर्याप्तं १ तैजसं १ वर्णचतुष्कं ४ पञ्चेन्द्रियं १ अगुरुलघुकं १ शुभाशुभे २ स्थिरास्थिरे २ यशः १ सुभग १ बादरं १ आदेयं १ निर्माणं १ त्रसं १ तीर्थकरत्वं १ चेति एकविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं २१ प्रतरे लोकपूरणे च तीर्थङ्करसमुद्घातकेवलिनः उदयागतं भवति २१ । अत्र भङ्गः १ प्रतरे समयैकः

---

१. यहाँ तकका कोष्ठकान्तर्गत अंश सं० पञ्चसंग्रह पृ० १७९–१८० से जोड़ा गया है ।
२. सं० पञ्चसं० ५,२०९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ लोकपूरणे समयैकः १ पुनः प्रतरे एकसमयः । इत्थं त्रयः समयाः । इदमेकविंशतिकं वज्रवृषभनाराच-संहननेन संयुक्तं द्वाविंशतिकं स्थानम् २२ । अत्र प्रत्येकशरीरं १ औदारिक-तदङ्गोपाङ्गे २ उपघातं १ सम-चतुरस्रसंस्थानं १ परघातं १ प्रशस्तगतिं च प्रक्षिप्य एकोनत्रिंशत्कं २९ स्थानं समुद्घाततीर्थंकरकेवलिनः शरीरपर्याप्तौ उदयागतं भवति । अत्र भङ्ग एकः १ । इदं नवविंशतिकं २९ उच्छ्वासेन संयुक्तं त्रिंशत्कं स्थानम् ३० उच्छ्वासपर्याप्तौ समुद्घाततीर्थंकरकेवलिनः उदयागतं ३० भवति । इदं सस्वरेण संयुक्तं एकत्रिंशत्कस्थानं ३१ तीर्थंकरसयोगकेवलिनः पर्याप्तावुदयागतं भवति । ३१ एकैकेन पञ्चसु भङ्गाः २१ । २२।२९।३०।३१ एवं संयोगभङ्गाः ६० ।

अत्रैकत्रिंशत्कं स्थानं पञ्चमं पूर्वभाषितम् ।
भङ्गो न पुनरुक्तत्वात्तदीयः परिगृह्यते[1] ॥२०॥

शेषाः ५९ सहैतैस्ते पूर्वोदिताः २६०९ । एतावन्तः २६६८ सर्वे भङ्गाः ॥१८१॥

इति मनुष्यगतौ नामप्रकृत्युदयस्थानानि तद्भङ्गाश्च समाप्ताः ।

मनुष्यगतिके सर्व भङ्ग नियमसे दो हजार छहसौ नौ (२६०९) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥१८१॥

भावार्थ—इक्कीसप्रकृतिक स्थानके भङ्ग ९, छब्बीसप्रकृतिक स्थानके २८९, अट्ठाईसप्रकृतिक स्थानके ५७६, उनतीसप्रकृतिक स्थानके ५७६, तीसप्रकृतिक स्थानके ११५२, इकतीसप्रकृतिक स्थानके ३ और आहारक शरीरधारी विशेष मनुष्योंके ४ ये सब मिलकर २६०९ भङ्ग मनुष्यगति-सम्बन्धी सर्व उदयस्थानोंके होते हैं ।

इस प्रकार मनुष्यगति-सम्बन्धी नामकर्मके उदयस्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब देवगति-सम्बन्धी उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]इगिवीसं पणुवीसं सत्तावीसट्ठवीसमुगुतीसं ।
एए उदयट्ठाणा देवगईसंजुया पंच ॥१८२॥

२१।२५।२७।२८।२९।

अथ देवगतौ नामप्रकृत्युदयस्थानानि गाथादशकेनाह—['इगिवीसं पणवीसं' इत्यादि ।] देवगतौ एकविंशतिकं पञ्चविंशतिकं सप्तविंशतिकं अष्टाविंशतिकं नवविंशतिकं च एतानि नामप्रकृत्युदयस्थानानि देवगतिसंयुक्तानि पञ्च भवन्ति ॥१८२॥

२१।२५।२७।२८।२९।

इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान देवगति-संयुक्त होते हैं ॥१८२॥

इनकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २५, २७, २८, २९ ।

अब उनमेंसे इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[2]तत्थिगिवीसं ठाणं देवदुयं तेय कम्म वण्णचदुं ।
अगुरुयलहु पंचिंदिय तस बायरयं अपज्जत्तं ॥१८३॥
थिरमथिरं सुभमसुभं सुहयं आदेज्जयं च जसणिमिणं ।
विग्गहगईहिं एए एक्कं वा दो व समयाणि ॥१८४॥

भंगो १ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २१० । 2. ५, २११-२१२ ।

१ सं० पञ्चसं० ५, २२० ।

तत्र देवगतौ एकविंशतिकं स्थानम् । किं तत् ? देवगति-देवगत्यानुपूर्व्ये २ तैजस-कार्मणे २ वर्ण-चतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसं १ बादरं १ [अ] पर्याप्तं १ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ सुभगं १ आदेयं १ यशः १ निर्माणं चेति एकविंशतिकं स्थानं २१ विग्रहगतौ कार्मणशरीरे देवस्योदयागतं भवति २१ । अत्र कालः जघन्येन एकसमयः । उत्कृष्टतः द्वौ वा त्रयः (?) समयाः । अत्र भङ्गः १ ॥१८३-१८४॥

देवगति-सम्बन्धी उदयस्थानोंमेंसे इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है—देवद्विक, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, आदेय, यशःकीर्त्ति और निर्माण। इन इक्कीस प्रकृतियोंका उदय विग्रहगतिमें एक या दो समय तक होता है ॥१८३-१८४॥

इस इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानमें भङ्ग १ है।

[1]एमेव य पणुवीसं णवरि विसेसो सरीरगहियस्स ।
देवाणुपुव्वि अवणिय वेउव्वदुगं च उवघायं ॥१८५॥
समचउरं पत्तेयं पक्खित्ते जा सरीरणिप्फत्ती ।
अंतोमुहुत्तकालं जहण्णमुक्कस्सयं च भवे ॥१८६॥

भंगो १ ।

एवं पूर्वोक्तं एकविंशतिकम् । तत्र नवीनविशेषः—देवगत्यानुपूर्व्यमपनीय वैक्रियिक-तदङ्गोपाङ्गं उपघातं १ समचतुरस्रसंस्थानं १ प्रत्येकं १ एवं प्रकृतिपञ्चकं तत्र प्रक्षेपणीयम् । एवं पञ्चविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं २५ शरीरं गृह्णतो वैक्रियिकशरीरं स्वीकुर्वतो देवस्य वैक्रियिकमिश्रे उदयागतं भवति यावच्छरीरपर्याप्तिः पूर्णतां याति तावत्कालमिदं जघन्योत्कृष्टतोऽन्तर्मुहूर्त्तकालः । तत्र भङ्ग एक एव १॥ १८५-१८६॥

इसी प्रकार पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि शरीर पर्याप्तिको ग्रहण करनेवाले देवके देवानुपूर्वीको निकाल करके वैक्रियिकद्विक, उपघात, समचतुरस्र संस्थान और प्रत्येकशरीर, इन पाँच प्रकृतियोंको मिलाना चाहिए। जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है, तब तक यह उदयस्थान रहता है। इसका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाण है ॥१८५-१८६॥

[2]एमेव सत्तवीसं सरीरपज्जत्तिणिट्ठिए णवरि ।
परघाय विहायगई पसत्थयं चेय पक्खित्ते ॥१८७॥

भंगो १ ।

एवं पूर्वोक्तं पञ्चविंशतिकम् । तत्र परघातं १ प्रशस्तविहायोगतिं १ च प्रक्षिप्य सप्तविंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं २७ शरीरपर्याप्ति पूर्णे कृते सति देवं प्रत्युदयागतं भवति । अत्र भङ्ग एकः १ । कालस्तु अन्तर्मुहूर्त्तः ॥१८७॥

इसी प्रकार सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थान उक्त देवके शरीरपर्याप्तिके निष्पन्न होनेपर होता है। विशेष बात यह है कि परघात और प्रशस्तविहायोगति और मिलाना चाहिए ॥१८७॥

सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थानमें भङ्ग १ है।

1. सं० पञ्चसं० ५, २१३-२१४ । 2. ५, २१५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]एमेवट्ठावीसं आणापज्जत्तिणिट्ठिए णवरि ।
उस्सासं पक्खित्ते कालो अंतोमुहुत्तं तु ॥१८८॥

भंगो १ ।

एवं पूर्वोक्तसप्तविंशतिकम् । तत्रोच्छ्वासं प्रक्षिप्य अष्टाविंशतिकं २८ उच्छ्वासपर्याप्तिं पूर्णे कृते देवे उदयागतं भवति । अत्र कालोऽन्तर्मुहूर्त्तः । भङ्गस्तु एकः १ ॥१८८॥

इसी प्रकार अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थान उक्त देवके आनापानपर्याप्तिके पूर्ण होनेपर और उच्छ्वासप्रकृतिके मिलानेपर होता है। इस उदयस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है ॥१८८॥

अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानमें भङ्ग १ है।

[2]एमेव य उगुतीसं भासापज्जत्तिणिट्ठिए णवरि ।
सुस्सरसहियॐ जहण्णं दसवाससहस्स किंचूणं ॥१८९॥

भंगो १ ।

[3]तेतीससायरोपम किंचूणुक्कस्सयं हवइ कालो ।
देवगईए सव्वे उदयवियप्पा वि पंचेव ॥१९०॥

भंगा ५ ।

[एवं देवगई समत्ता ।]

एवं पूर्वोक्तमष्टाविंशतिकं सुस्वरेण सहितमेकोनत्रिंशत्कं देवस्य हि भाषापर्याप्तिपूर्णे सति उदयागतं भवति । जघन्यकालः दशवर्षसहस्रः किञ्चिन्न्यूनः पूर्वोक्तविग्रहगत्यादिचतुःकालहीनः । उत्कृष्टकालस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणः किञ्चिद्धीनः पूर्वोक्तचतुःकालहीन इत्यर्थः । अस्य भङ्ग एकः १ । देवगत्यां सर्वे उदयविकल्पा भङ्गा पञ्चैव भवन्ति ५ । $\frac{२१}{१}$ । $\frac{२५}{१}$ । $\frac{२७}{१}$ । $\frac{२८}{१}$ । $\frac{२९}{१}$ ॥ १८९–१९० ॥

इति देवगतौ उदयस्थानानि समाप्तानि ।

इसी प्रकार उनतीसप्रकृतिक उदयस्थान उक्त देवके भाषापर्याप्तिके सम्पन्न होने और सुस्वर प्रकृतिके मिलानेपर होता है। इस उदयस्थानका जघन्यकाल कुछ कम दश हजार वर्ष और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागरोपम है। इस उदयस्थानमें भी एक ही भङ्ग होता है। इस प्रकार देवगतिमें नामकर्मके उदयस्थान-सम्बन्धी सर्व भङ्ग पाँच ही होते हैं ॥१८९–१९०॥

देवगतिमें $\frac{२१}{१}+\frac{२५}{१}+\frac{२७}{१}+\frac{२८}{१}+\frac{२९}{१}$=५ भङ्ग होते हैं।

अब ग्रन्थकार चारों गतियोंके नामकर्म-सम्बन्धी भङ्गोंका उपसंहार करते हुए इन्द्रियमार्गणादिमें उनके कथन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

[4]छावत्तरि एयारह सयाणि णामोदयाणि होंति चउगइया ।

।७६११।

गइचउरएसु भणियं इंदियमादीसु उवरि वोच्छामि ॥१९१॥

षट्सप्ततिशतैकादशप्रमिताः नामप्रकृत्युदयभङ्गविकल्पाश्चतसृषु गतिषु चातुर्गतिका भवन्ति सप्तसहस्रषट्शतैकादशप्रमिताश्चातुर्गतिका भङ्गा भवन्तीत्यर्थः ७६११ । समुद्घातापेक्षया नामप्रकृत्युदयविकल्पाः ५९

1. सं०पञ्चसं० ५, २१६ । 2. ५, २१७ । 3. ५, २१८-२२० । 4. ५, २२१ ।
ॐब सहिद- ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गणासु मध्ये गतिषु भणितम् । अत उपरि इदानीमिन्द्रियादिमार्गणासु नामप्रकृत्युदयस्थानानि वक्ष्यामि ॥ १६१ ॥

चारों गति-सम्बन्धी नामकर्मके उदयस्थानोंके भङ्ग छिहत्तर सौ ग्यारह (७६११) होते हैं। अर्थात् नरकगतिसम्बन्धी ५, देवगतिसम्बन्धी ५, तिर्यग्गतिसम्बन्धी ४९९२ और मनुष्यगति सम्बन्धी २६०९ इन सबको जोड़नेपर उक्त भङ्ग आ जाते हैं। इस प्रकार चारों गतियोंमें नामकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करके अब आगे इन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें उनका वर्णन करते हैं ॥१६१॥

पंचेव उदयठाणा सामण्णेइंदियस्स णायव्वा ।
इगि चउ पण छ सत्त य अधिया वीसा य होइ णायव्वा ॥१६२॥
अवसेससव्वभंगा जाणित्तु जहाकमं णेया ।

२१।२४।२५।२६।२७।

सामान्यैकेन्द्रियस्य नामप्रकृत्युदयस्थानानि पञ्च भवन्ति । तानि कानि ? एकविंशतिकं २१ चतुर्विंशतिकं २४ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ सप्तविंशतिकं २७ चेति ज्ञेयानि । अवशेषान् सर्वान् ज्ञात्वा यथाक्रमं ज्ञेयाः ॥१६२½॥

इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा सामान्य एकेन्द्रिय जीवोंके इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस और सत्ताईसप्रकृतिक पाँच उदयस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। एकेन्द्रियसम्बन्धी इन सर्व उदयस्थानोंके सर्व भङ्ग पूर्वोक्त प्रकार यथाक्रमसे जानना चाहिए ॥१६२½॥

एकेन्द्रियोंके नामकर्मसम्बन्धी उदयस्थान—२१, २४, २५, २६, २७।

इगिवीसं छव्वीसं अट्ठवीसादि जाव इगितीसं ॥१६३ ॥
वियलिंदियतिगस्सेवं उदयट्ठाणाणि छच्चेव ।

२१।२६।२८।२९।३०।३१।

एकविंशतिकं षड्विंशतिकं अष्टाविंशतिकं नवविंशतिकं त्रिंशत्कमेकत्रिंशत्कं च नामप्रकृत्युदयस्थानानि विकलत्रयेषु षड् भवन्ति ॥१६३½॥

२१। २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।

तीनों विकलेन्द्रियोंके इक्कीस, छब्बीस और अट्ठाईससे लेकर इकतीस तकके चार इस प्रकार छह उदयस्थान होते हैं ॥१६३½॥

विकलेन्द्रियोंके नामकर्मसम्बन्धी उदयस्थान २१, २६, २८, २९, ३०, ३१।

चउवीसं वज्जित्ता उदयट्ठाणा दसेव पंचक्खे ॥१६४॥

२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८

पञ्चाक्षे पञ्चेन्द्रिये चतुर्विंशतिकं वर्जयित्वा अपरनामप्रकृत्युदयस्थानानि दश भवन्ति २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । पञ्चेन्द्रियस्योदयागतानि भवन्तीत्यर्थः ॥ १६४ ॥

पंचेन्द्रियोंमें चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानको छोड़कर शेष दशस्थान होते हैं ॥१६४॥
उनकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८।

काएसु पंचकेसु य उदयट्ठाणाणिगिंदिभंगमिव ।
तसकाइएसु णेया विगला सयलिंदियाणभंगमिव ॥१६५॥

२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथिव्यादिकेषु पञ्चकायेषु एकेन्द्रियोक्तभङ्गवत्। पृथ्वीकायिके २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । अप्कायिके २१ । २४ । २५ । २६ । २७। आतपोद्योतोदयरहितयोस्तेजोवातकायिकयोः प्रत्येकं २१ । २४ । २५ । २६ । वनस्पतिकायिके २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । त्रसकायिकेषु विकल-सकलेन्द्रियोक्तनामोदयस्थानानि २१ । २५ । २६ २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ ॥ १९५ ॥

कायमार्गणाकी अपेक्षा पाँचों स्थावरकायिकोंमें एकेन्द्रियोंके समान उदयस्थान होते हैं। त्रसकायिक जीवोंमें विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीवोंके समान नामकर्मके उदयस्थान जानना चाहिए ॥१९५॥

पृथ्वी, अप् और वनस्पति कायिकोंमें २१, २४, २५, २६, २७। तेज-वायुकायिकोंमें २१, २४,२५, २६। त्रसकायिक जीवोंके उदयस्थान--२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८।

चउ-तिय मण-वचिए पंचिंदियसण्णिपज्जत्तभंगमिव ।
असच्चमोसवचिए तसपज्जत्तयउदयट्ठाणभंगमिव ॥१९६॥

सत्यासत्योभयानुभयमनोयोगचतुष्क-सत्यासत्योभयवचनयोगत्रिकेषु पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तोक्तभङ्गवत् २९।३०।३१ । न सत्यमृषावचने अनुभयभाषायोगे त्रसपर्याप्तोदयस्थानकरचनावत् २९।३०।३१ ॥१९६॥

योगमार्गणाकी अपेक्षा सत्य, असत्य, उभय, अनुभय, इन चार मनोयोगमें तथा सत्य, असत्य, उभय, इन तीन वचनयोगोंमें पंचेन्द्रियसंज्ञी पर्याप्तकके समान उनतीस, तीस और इकतीसप्रकृतिक तीन उदयस्थान जानना चाहिए। असत्यमृषावचनयोगमें त्रसपर्याप्तकोंके समान उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक तीन उदयस्थान होते हैं ॥१९६॥

ओरालियकाययोगे तसपज्जत्तभंगमिव ।
ओरालियमिस्सकम्मे उदयट्ठाणाणि जाणिदव्वाणि ॥१९७॥
सत्तेव य अपज्जत्ता सण्णियपज्जत्तभंगमिव ।
वेउव्वियकायदुगे देवाणं णारयाण भंगमिव ॥१९८॥

औदारिककाययोगे त्रसपर्याप्तभङ्गवदुदयस्थानानि २५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । औदारिकमिश्रकाययोगे अपर्याप्तजीवसमासोक्तसंज्ञिपर्याप्तभङ्गवदुदयस्थानानि ज्ञातव्यानि २४।२६।२७ । कार्मणकाययोगविग्रहगतौ इदं एकविंशतिकं २१ । केवलिसमुद्घाते प्रतरद्वये लोकपूरणे इदं विंशतिकं स्थानम् २० । वैक्रियिककाययोगद्विके देवगति-नरकगतिकथितोदयस्थानानि । दैववैक्रियिककाययोगे २७।२८।२९ । देववैक्रियिकमिश्रकाययोगे उदयस्थानं २५ । नारकवैक्रियिककाययोगे २७।२८।२९ । तन्मिश्रकाययोगे २५ ॥१९७-१९८॥

औदारिकाययोगमें त्रसपर्याप्तक जीवोंके समान पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक सात उदयस्थान होते हैं। औदारिकमिश्रकायकोगमें सातों अपर्याप्तक जीवसमासोंके समान चौबीस, छब्बीस और सत्ताईस प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। कार्मणकाययोगमें विग्रहगति-सम्बन्धी इक्कीसप्रकृतिक एक उदयस्थान जानना चाहिए। वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें देव और नारकियोंके उदयस्थानोंके समान उदयस्थान जानना चाहिए ॥१९७-१९८॥

विशेषार्थ—देवगतिसम्बन्धी वैक्रियिककाययोगमें सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक तीन उदयस्थान होते हैं। तथा इन्हींके वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें पच्चीसप्रकृतिक एक उदय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान होता है। नरकगति-सम्बन्धी वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी देव-सम्बन्धी उदयस्थान होते हैं, किन्तु उनकी उदय-प्रकृतियोंमें अन्तर पड़ जाता है, सो स्वयं विचार लेना चाहिए।

आहारदुगे णियमा पमत्त इव सव्वट्ठाणाणि।
थी-पुरिसवेयगेसु य पंचिंदिय-उदयठाणभंगमिव ॥१९९॥
णउंसए पुण एवं वेदे ओघवियप्पा य होंति णायव्वा।
उदयट्ठाण कसाए ओघभंगमिव होइ णायव्वं ॥२००॥

आहारकद्विके प्रमत्तोक्तोदयस्थानानि। किन्तु आहारककाययोगे २७।२८।२९। आहारकमिश्रकाययोगे २५ उदयस्थानम्। स्त्री-पुरुषवेदयोः पञ्चेन्द्रियोक्तोदयस्थानभङ्गरचनावत्। किन्तु पुंवेदे उदयस्थानानि २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। स्त्रीवेदे नामप्रकृत्युदयस्थानानि २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। नपुंसकवेदे गुणस्थानोक्तोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ भवन्ति। क्रोध-मान-माया-लोभकषायेषु ओघभङ्गमिव गुणस्थानोक्तोदयस्थानानि। किन्तु २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३० ॥१९९-२००॥

आहारककाययोग और अहारकमिश्रकाययोगमें प्रमत्तगुणस्थानके समान उदयस्थान जानना चाहिए। अर्थात् आहारककाययोगमें सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक तीन उदय-स्थान होते हैं। तथा आहारकमिश्रकाययोगमें पच्चीसप्रकृतिक एक उदयस्थान होता है। वेद-मार्गणाकी अपेक्षा स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें पंचेन्द्रियोंके समान उदयस्थान जानना चाहिए। अर्थात् इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक आठ-आठ उदयस्थान होते हैं। नपुंसक वेदमें इसी प्रकार ओघविकल्प जानना चाहिए। अर्थात् इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक नौ उदयस्थान होते हैं कषायमार्गणाकी अपेक्षा चारों कषायोंमें ओघके समान इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक और आठ उदयस्थान जानना चाहिए ॥१९९-२००॥

मइ-सुय-अण्णाणेसु य मिच्छा-सासणट्ठाणभंगमिव।
अवसेसं णाणाणं सण्णिपज्जत्तभंगमिव जाणिज्जो ॥२०१॥

कुमति-कुश्रुतयोर्मिथ्यात्व-सासादनोक्तोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। अवशेष-ज्ञानानां संज्ञिपर्याप्तोक्तोदयस्थानानि जानीयात्। किन्तु विभङ्गज्ञाने नामप्रकृत्युदयस्थानानि २९।३०।३१। मति-श्रुतावधिज्ञानेषु नामोदयस्थानानि २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। मनःपर्यये ज्ञाने ३०। केवलज्ञाने २०।२१।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८ ॥२०१॥

ज्ञानमर्गणाकी अपेक्षा कुमति और कुश्रुतज्ञानमें मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानके समान इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक नौ उदयस्थान होते हैं। शेष छह ज्ञानोंके उदयस्थान संज्ञी पर्याप्तक पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिए ॥२०१॥

विशेषार्थ—विभङ्गज्ञानमें उनतीस, तीस और इकतीसप्रकृतिक तीन उदयस्थान होते हैं। मति, श्रुत और अवधिज्ञानके इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक आठ उदयस्थान होते हैं। मनःपर्ययज्ञानमें तीसप्रकृतिक एक ही उदय-स्थान होता है। केवलज्ञानमें इकतीस, नौ और आठ प्रकृतिक तीन उदयस्थान होते हैं। यहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतनां विशेष ज्ञातव्य है कि जिन आचार्योंके मतसे सभी केवलज्ञानी केवलिसमुद्घात करते हुए सिद्ध होते हैं, उनके मतानुसार केवलिसमुद्घातमें सम्भव अपर्याप्त दशाकी अपेक्षा बीस, इक्कीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक उदयस्थान भी बतलाये गये हैं। परन्तु प्राकृत पंचसंग्रहकारको यह मत अभीष्ट नहीं रहा है, अतएव उन्होंने इन उदयस्थानों को नहीं बतलाया, जब कि संस्कृत पंचसंग्रहकारने उन्हें बतलाया है।

असंजमे तहा ठाणं णेयं मिच्छाइचउसु गुणट्ठाणमिव ।
दसविरए च भंगा णेया तससंजमे चेव ॥२०२॥
अवसेससंजमट्ठाणं पमत्ताइगुणट्ठाणमिव ।

संयममार्गणायां त्रससंयमे मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतगुणस्थानोक्तं ज्ञेयम् । किन्तु असंयमे उदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। त्रससंयमे देशसंयमे देशविरतोक्तभङ्गरचना ज्ञेया । किन्तु उदयस्थानद्वयम् २ । अवशेष-संयमस्थानेषु प्रमत्तादिगुणस्थानोक्तोदयस्थानानि । किन्तु सामायिकच्छेदो-पस्थापनयोः २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । परिहारविशुद्धिसंयमे त्रिंशत्कमेकस्थानम् ३० । सूक्ष्मसाम्पराये ३० । यथाख्याते २० । २१ ।२४। २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । ॥२०२½॥

संयममार्गणाकी अपेक्षा असंयममें मिथ्यात्व आदि चार गुणस्थानोंके समान उदयस्थान जानना चाहिए। अर्थात् असंयममें इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक नौ उदयस्थान होते हैं। त्रससंयम अर्थात् देशसंयममें देश-विरत गुणस्थानके समान तीस और इकतीस प्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं। अवशेष संयमोंके उदयस्थान प्रमत्तादिगुणस्थानोंके उदयस्थानके समान जानना चाहिए ॥२०२½॥

विशेषार्थ—सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक पाँच उदयस्थान होते हैं। परिहार विशुद्धि और सूक्ष्म साम्पराय संयममें तीस प्रकृतिक एक-एक ही उदयस्थान होता है। यथाख्यातसंयममें तीस, इकतीस, नौ और आठ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं। किन्तु सभी केवलज्ञानियोंके केवलिसमुद्घात माननेवाले आचार्योंके मतकी अपेक्षा बीस, इक्कीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, नौ और आठ प्रकृतिक दश उदयस्थान पाये जाते हैं।

अचक्खुस्स ओघभंगो चक्खुस्स य चउ-पंचिंदियसमं णेयं ॥२०३॥

दर्शनमार्गणायां अचक्षुर्दर्शने गुणस्थानोक्तवत् २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। चक्षुर्दर्शने चतुः-पञ्चेन्द्रियोक्तसदृशं ज्ञेयम् । किन्तु २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ भवन्ति ॥२०३॥

दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा अचक्षुदर्शनके उदयस्थान ओघके समान और चक्षुदर्शनके उदयस्थान चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजीवोंके समान जानना चाहिए ॥२०३॥

विशेषार्थ—अचक्षुदर्शनमें इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक नौ उदयस्थान होते हैं। चक्षुदर्शनमें इक्कीस, पच्चीस; छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और एकतीस प्रकृतिक आठ उदयस्थान होते हैं, इनमें प्रकृति-सम्बन्धी जो अन्तर होता है, वह ज्ञातव्य है।

ओधिय* केवलदंसे ओधिय-केवलणाणमिव ।
तेजप्पउमासुक्के सण्णी पंचिंदियभंगमिव ॥२०४॥

* व अवधि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवधिदर्शने केवलदर्शने अवधि-केवलदर्शनोक्तमिव । अवधिदर्शने २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । केवलदर्शने २० । २१ । २६ । २७ । २८ । ३० । ३१ । ९ । ८ । लेश्यमार्गणायां कृष्ण-नील-कापोतलेश्यात्रिके नामोदयस्थानानि २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । तेजःपद्मशुक्लेषु संज्ञिपञ्चेन्द्रियोक्तोदयस्थानानि । किन्तु तेजलेश्यायां २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । पद्मलेश्यायां २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । शुक्ललेश्यायां २० । २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ॥ २०४ ॥

अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानियोंके समान और केवलदर्शनमें केवलज्ञानियोंके समान उदयस्थान होते हैं। लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा तेज, पद्म और शुक्लेश्यामें संज्ञी पंचेन्द्रियजीवके समान उदयस्थान जानना चाहिए ॥२०४॥

विशेषार्थ—संक्षिप्त या सुगम कथन होनेसे ग्रन्थकारने तीनों अशुभ लेश्याओंके उदयस्थान नहीं कहे हैं। उन्हें इस प्रकार जानना चाहिए—कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक नौ उदयस्थान होते हैं। तेज पद्म और शुक्लेश्यामें उक्त नौ स्थानोंमेंसे चौबीस और छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थानको छोड़कर शेष सात उदयस्थान होते हैं। तथा केवलिसमुद्घातकी अपेक्षा बीसप्रकृतिक उदयस्थान भी होता है।

भविएसु ओघभंगो अभविए मिच्छाइट्ठिभंगमिव ।
मिच्छा-सासण-मिस्से सय-सयगुणठाणभंगमिव ॥२०५॥
उवसमसम्मत्तादी सय-सयगुणमिव हवंति त्ति ।
सण्णिस्स ओघभंगो असण्णि मिच्छोघभंगमिव ॥२०६॥
आहार ओघभंगो अणाहारे चउसु ठाण कम्ममिव ।
अवसेसविहिविसेसा जाणित्तु जहाकमं णेया ॥२०७॥

भव्ये गुणस्थानोक्तवत् २० । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । अभव्ये मिथ्यादृष्टिविकल्प इव । किन्तु २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । मिथ्यात्व-सासादन-मिश्रेषु स्वकीय-स्वकीयगुणस्थानोक्तवत् । मिथ्यादृष्टौ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सासादनरुचौ २१ । २४ । २५ । २६ । २९ । ३० । ३१ । मिश्ररुचौ उदयस्थानानि २९ । ३० । ३१ । स्वकीय-स्वकीयगुणस्थानोक्तवत् उपशमसम्यक्त्वादयो भवन्ति । किन्तु उपशमसम्यग्दृष्टौ २१ । २५ । २९ । ३० । ३१ । वेदकसम्यग्दृष्टौ २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । क्षायिक-सम्यग्दृष्टौ २० । २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । संज्ञिनः गुणस्थानोक्तमिव २१ । २४ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । असंज्ञिनि मिथ्यात्वोक्तवत् २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । 'आहार ओघभंगो' आहारके गुणस्थानोक्तवत् । किन्तु एकविंशतिकमुदय स्थानं नास्ति २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । अनाहारके चतुर्गुणस्थानेषु कार्मणोक्त-स्थानानि २० । २१ । ९ । ८ । तत्रानाहारे अयोगिनः उदये नवकाष्टके द्वे भवतः । सामान्यकेवलिनः प्रतरलोकपूरणे उदयो विंशतिकं २० । विग्रहगतौ २१ । तथा तीर्थङ्करे सयोगिनि प्रतरलोकपूरणे २१ । अव-शेषविधिविशेषान् ज्ञात्वा यथाक्रमं ज्ञेयमिति ॥२०५-२०७॥

अथ पूर्वोक्तनामप्रकृत्युदयस्थानानां विग्रहगत्यादिकालमाश्रित्योत्पत्तिक्रमः कथ्यते—तैजस-कार्मणे २ वर्णचतुष्कं ४ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ अगुरुलघुकं १ निर्माणं १ चेति द्वादश प्रकृतयः सर्वनामप्रकृत्युदय-स्थानेषु ध्रुवा निश्चला भवन्ति । नामध्रुवोदया द्वादश १२ । चतुर्गतिषु एकतरा गतिः १ पञ्चसु जातिषु एक-तरा जातिः १ त्रस-स्थावरयोर्मध्ये एकतरं १ बादर-सूक्ष्मयोर्मध्ये एकतरं १ पर्याप्तापर्याप्तयोर्मध्ये एकतरं १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुभग-दुर्भगयोर्मध्ये एकतरं १ आदेयानादेययोर्मध्ये एकतरं १ यशोऽयशसोर्मध्ये एकतरं १ चतुरानुपूर्व्येषु मध्ये एकतरं १ इत्येकविंशतिकं स्थानं २१ चातुर्गतिकानां विग्रहगतौ कार्मणशरीरे भवति। तदानुपूर्व्य-युतत्वाद्विग्रहगतवेवोदेति। तदानुपूर्व्यमपनीयौदारिकादित्रिशरीरेषु एकं शरीरं १ षट्संस्थानेषु एकं संस्थानं १ प्रत्येक-साधारणयोर्मध्ये एकतरं १ उपघातं १ इति प्रकृतिचतुष्कं विंशतिके युतं चतुर्विंशतिकं स्थानम् २४। इदमेकेन्द्रियाणां शरीरमिश्रे योगे एवोदेति, नान्यत्र। पुनः एकेन्द्रियस्य शरीरपर्याप्तौ तत्र चतुर्विंशतिके परघातयुते इदं २५। वा विशेषमनुष्यस्याऽऽहारकशरीरमिश्रकाले तदङ्गोपांगे युते इदं २५। वा देव-नारकयोः शरीरमिश्रकाले वैक्रियिकाङ्गोपांगे युते इदं २५। पुनः एकेन्द्रियस्य पञ्चविंशतिके तच्छरीरपर्याप्तौ आतपे उद्योते वा युते इदं २६। वा तस्यैवैकेन्द्रियस्योच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तौ उच्छ्वासे युते इदं २६। वा चतुर्विंशतिके द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियाणां सामान्यमनुष्यस्य निरतिशयकेवलिकपाटद्वयस्य च औदारिकमिश्रकाले तदङ्गोपाङ्गसंहनने युते इदं २६। पुनश्चतुर्विंशतिके प्रमत्तस्य शरीरपर्याप्तौ आहा-रकाङ्गोपाङ्ग-परघात-प्रशस्तविहायोगतिषु युतासु इदं २७। तत्केवलिषड्विंशतिकं कपाटद्वयस्यौदारिकमिश्रे तीर्थयुते इदं २७। चतुर्विंशतिके देव-नारकयोः शरीरपर्याप्तौ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग-परघाताऽविरुद्धविहायोगतिषु युतासु इदं २७। वा तत्रैवैकेन्द्रियस्योच्छ्वासपर्याप्तौ परघाते आतपोद्योतके तस्मिन्नुच्छ्वासे च युते इदं २७। पुनस्तत्रैव सामान्यमनुष्यस्य मूलशरीरप्रविष्टसमुद्घातसामान्यकेवलिनः द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियाणां च शरीरपर्याप्तौ अङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघाताऽविरुद्धविहायोगतिषु युतासु इदं २८। वा प्राग्वाऽऽहारकर्द्धेस्तच्छरीरो-च्छ्वासपर्याप्त्योस्तदङ्गोपाङ्ग-परघात-प्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेषु इदं २८। वा देव-नारकयो-रुच्छ्वासपर्याप्तौ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग-परघाताऽविरुद्धविहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेषु इदं २८। पुनस्तत्सामान्य-मनुष्याष्टाविंशतिके तस्य च मूलशरीरप्रविष्टसमुद्घातसामान्यकेवलिनश्चोच्छ्वासपर्याप्तौ उच्छ्वासयुते इदं २९। वा तच्चतुर्विंशतिके द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियाणां शरीरपर्याप्तौ उद्योतेन समं अङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघात-विहायोगतिषु युतासु इदं २९। वा समुद्घातकेवलिनः शरीरपर्याप्तौ अङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघात-प्रशस्त-विहायोगति-तीर्थेषु युतेषु इदं २९। वा प्रमत्तस्याहारकशरीर-भाषापर्याप्त्योस्तदङ्गोपाङ्ग-परघात-प्रशस्त-विहायोगत्युच्छ्वास स्वशरीरेषु युतेषु इदं २९। वा देव नारकयोः भाषापर्याप्तौ अविरुद्धैकस्वरेण युते इदं २९। पुनस्तत्रैव द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियाणामुच्छ्वासपर्याप्तावुद्योतेन समं सामान्यमनुष्य-सकल-विकलानां भाषापर्याप्तौ स्वरद्वयान्यतरेण समं चाङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघात-विहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेषु इदं ३०। वा समुद्घाततीर्थङ्करकेवलिन उच्छ्वासपर्याप्तौ तीर्थेन समं सामान्यसमुद्घातकेवलिनो भाषापर्याप्तौ स्वरद्वयान्य-तरेण समं चाङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघात-प्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेषु इदं ३०। पुनस्तत्सयोगकेवलि-स्थाने भाषापर्याप्तौ तीर्थयुते इदं ३१। वा चतुर्विंशतिके द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियाणां भाषापर्याप्तौ अङ्गोपाङ्ग-संहनन-परघातोद्योत-विहायोगत्युच्छ्वास-स्वरद्वयान्यतरेषु युतेषु इदं ३१*।

विग्रहगतौ कार्मणशरीरे एकेन्द्रियाणां २१ स्थानमुदेति। शरीरमिश्रे २४। २५। शरीरपर्याप्तौ २६। २७। उच्छ्वासपर्याप्तौ २६ उदयागतं भवति। देव-नारकयोः विग्रहगतौ कार्मणे २१। २१। वैक्रियिक-मिश्रे २५। २५ वैक्रियिकशरीरपर्याप्तौ २७। २७। आनापानपर्याप्तौ २८। २८। भाषापर्याप्तौ२९। २९ उदयागतानि भवन्ति। द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रिय-तिरश्चां विग्रहगति [तौ] कार्मणे २१ औदारिकमिश्रे २६ शरीरपर्याप्तौ २७ उदेति। उच्छ्वासपर्याप्तौ २९।३० भाषापर्याप्तौ ३०। ३१ उदयागतानि। सामान्यमनुष्ये विग्रहगतौ कार्मणे २१ औदारिकमिश्रे २६ शरीरपर्याप्तौ २८ आनापानपर्याप्तौ २९ भाषापर्याप्तौ ३० उदया-गतानि। सामान्यकेवलिनि कार्मणशरीरे प्रतरद्वये लोकपूरणे २० औदारिकमिश्रकाययोगे २६ शरीरपर्याप्तौ २८ उच्छ्वासपर्याप्तौ २९ भाषापर्याप्तौ ३० उदयस्थानानि। तीर्थङ्करकेवलिनि। प्रतरद्वये लोकपूरणे च कार्मणे २१ औदारिकमिश्रे २७ शरीरपर्याप्तौ २९ उच्छ्वासपर्याप्तौ ३० भाषापर्याप्तौ ३१। आहारकविशेषमनुष्ये आहारकमिश्रे २५ आहारकशरीरपर्याप्तौ २७ उच्छ्वासपर्याप्तौ २८ भाषापर्याप्तौ २९।

---

* उपरितनोऽयं सन्दर्भः गो० कर्मकाण्डस्य गाथाङ्क ५९३-५९४ तमटीकया शब्दशः समानः। (पृ० ७९५–७९६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चातुर्गतिकजीवेषु नामप्रकृत्युदयस्थानयन्त्रम्—

	एकेन्द्रिये	देवे	नारके	द्वीन्द्रियादौ	सामान्य-मनुष्ये	सामान्य-केवलिनि	तीर्थङ्करे	आहारक-मनुष्ये
विग्रहगतौ कार्मणे	२१	२१	२१	२१	२१	२०	२१	०
शरीरमिश्रपर्याप्तौ	२५ २४	२५	२५	२६	२६	२६	२७	२५
शरीरपर्याप्तौ	२६	२७	२७	२९, २८	२८	२८	२९	२७
आनपर्याप्तौ	२७, २६	२८	२८	३०, २९	२९	२९	३०	२८
भाषापर्याप्तौ	०	२९	२९	३१, ३०	३०	३०	३१	२९

इति नामप्रकृत्युदयस्थानानि मार्गणासु समाप्तानि ।

भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्यजीवोंमें ओघके समान सभी उदयस्थान जानना चाहिए। अभव्योंमें मिथ्यादृष्टिके समान नौ और आठ प्रकृतिक उदयस्थानोंको छोड़कर शेष नौ उदयस्थान होते हैं। सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें अपने-अपने गुणस्थानोंके समान उदयस्थान जानना चाहिए। तथा उपशमसम्यक्त्व आदिमें भी अपने-अपने संभव गुणस्थानोंके समान उदयस्थान होते हैं। संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञीके ओघके समान सभी उदयस्थान होते हैं। असंज्ञीके मिथ्यात्वगुणस्थानके समान भंग जानना चाहिए। आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारकोंके ओघके समान भङ्ग जानना चाहिए। अनाहारकोंमें कार्मण-काययोगके समान चार गुणस्थानोंमें संभव उदयस्थान जानना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो अवशिष्ट विधिविशेष है, वह आगमके अनुसार यथाक्रमसे जान लेना चाहिए ॥२०५–२०७॥

अब मूलसप्ततिकाकार नामकर्मके सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०२३] [1]ति-दु-इगिणउदिं णउदिं अड-चउ-दुगाहियमसीदिमसीदिं च ।
उणसीदिं अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव संता[1] ॥२०८॥

९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९।

अथ नामप्रकृतिसत्त्वस्थानप्रकरणं गाथाद्वादशकेनाऽऽह–['ति-दु-इगिणउदिं' इत्यादि ।] त्रिनवतिः ९३ द्वानवतिः ९२ एकनवतिः ९१ नवतिः ९० अष्टाशीतिः ८८ चतुरशीतिः ८४ द्वाशीतिः ८२ अशीतिः ८० एकोनाशीतिः ७९ अष्टसप्ततिः ७८ सप्तसप्ततिः ७७ दश १० नव ९ च प्रकृतयः नामकर्मसत्त्वस्थानानि त्रयोदश भवन्ति ॥२०८॥

९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९।

नामकर्मके तेरानबै, बानबै, इक्यानबै, नब्बै, अठासी, चौरासी, बियासी, अस्सी, उन्यासी, अठहत्तर, सतहत्तर, दश और नौ प्रकृतिक तेरह सत्त्वस्थान होते हैं ॥२०८॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९।

अब भाष्यगाथाकार क्रमशः इन सत्त्वस्थानोंकी प्रकृतियोंका वर्णन करते हैं—

[2]गइआदियतित्थंते सव्वपयडीउ संत तेणउदिं ।
वज्जित्ता तित्थयरं बाणउदिं होंति संताणि ॥२०९॥

९३।९२।

1. सं० पञ्चसं० ५, २२२-२२३ । 2. ५, २२४ ।

१. सप्ततिका २९ । तत्रेदृक् पाठः—

तिदुनउई उगुनउई अट्ठच्छलसी असीइ उगुसीई ।
अट्ठ य छप्पणत्तरि नव अट्ठ य नामसंताणि ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषामुपपत्तिमाह—['गइआदियतित्थंते' इत्यादि।] गत्यादि-तीर्थान्ताः सर्वप्रकृतयः गति ४ जाति ५ शरीरा ५ ङ्गोपाङ्ग ३ निर्माण १ बन्धन ५ संघात ५ संस्थान ६ संहनन ६ स्पर्श ८ रस ५ गन्ध २ वर्णा ५ नुपूर्व्याऽ ४ गुरुलघू १ पघात १ परघाता १ तपो १ द्योतो १ च्छ्वास १ विहायोगतयः २ प्रत्येक-शरीर २ त्रस २ सुभग २ सुस्वर २ शुभ २ सूक्ष्म २ पर्याप्ति २ स्थिराऽऽ२ देय २ यशःकीर्त्ति २ सेतराणि तीर्थकरत्वं १ चेति सर्वनामप्रकृतयः त्रिनवतिः। इति प्रथमसत्त्वस्थानं ९३ भवति। तन्मध्यात्तीर्थकरत्वं वर्जयित्वाऽन्याः द्वानवतिः प्रकृतयः, इति द्वितीयसत्त्वस्थानं ९२ भवति ॥२०९॥

९३।९२।

गतिनामकर्मको आदि लेकरके तीर्थंकर प्रकृतिपर्यन्त नामकर्मकी जो तेरानबै प्रकृतियाँ हैं, इन सबका जहाँ सत्त्व पाया जावे, वह तेरानबै प्रकृतिकसत्त्वस्थान है इसमेंसे तीथकरप्रकृतिको छोड़ देनेपर बानबैप्रकृतिक सत्त्वस्थान हो जाता है ॥२०९॥

९३ तेरानबैप्रकृतिक सत्त्वस्थान सर्वप्रकृतियाँ। तीर्थंकर बिना ९२।

[1]तेणउदीसंतादो आहारदुअं वज्जिदूण इगिणउदी।
आहारय-तित्थयरं वज्जित्ता वा हवंति णउदिसंताणि ॥२१०॥

९१।९०।

त्रिनवतिकसत्त्वादाहारकद्वयं वर्जयित्वः एकनवतिकं सत्त्वस्थानं ९१ भवति। तथा त्रिनवतिक-प्रकृतिसत्त्वतः आहारकद्वयं तीर्थंकरत्वं च वर्जयित्वा नवतिकं सत्त्वस्थानं ९० भवति ॥२१०॥

९१।९०

तेरानबैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमेंसे आहारकशरीर और आहारक-अंगोपांग, इन दोके निकाल देनेपर इक्यानबैप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। तथा उसी तेरानबैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें से तीर्थङ्कर और आहारकद्विक; इन तीन प्रकृतियोंके निकाळ देनेपर नब्बैप्रकृतिक सत्त्वस्थान हो जाता है ॥२१०॥

आहारकद्विक विना ९१। तीर्थंकर और आहारकद्विक विना ९०।

णउदीसंतेसु तहा देवदुगुव्विल्लिदे य अडसीदिं।
णिरयचदुं उव्वेल्लिदे य चउरासी दीय संतपयडीओ ॥२११॥

८८।८४।

नवतिसत्त्वप्रकृतिषु ९० देवगति-देवगत्यानुपूर्व्यद्वये उद्वेल्लिते अष्टाशीतिकं सत्त्वस्थानं भवति ८८। अतः नारकचतुष्के उद्वेल्लिते चतुरशीतिकं सत्त्वप्रकृतिस्थानं ८४ भवति ॥२११॥

८८।८४।

नब्बैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें से देवद्विक अर्थात् देवगति और देवगत्यानुपूर्वी इन दो प्रकृ-तियोंके उद्वेलन करनेपर अठासीप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। तथा इसी अठासीप्रकृतिक सत्त्वस्थान-मेंसे नरकचतुष्क अर्थात् नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक-अंगोपांग, इन चार प्रकृतियोंकी उद्वेलना करनेपर चौरासीप्रकृतिक सत्त्वस्थान हो जाता है ॥२११॥

देवद्विक विना ८८। नरकचतुष्क विना ८४।

मणुयदुयं उव्वेल्लिए वासीदी चेव संतपयडीओ।
तेणउदीसंताओ तेरसमवणिज्ज णवमखबगाई ॥२१२॥

८२।८०

1. सं० पञ्चसं० ५, २२५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुरशीतिके मनुष्यद्वयमुद्वेल्लिते द्व्यशीतिः सत्त्वप्रकृतयः द्व्यशीतिकं सत्त्वस्थानं तिर्यक्षु भवति। कुतः ? तैजस्कायिकवातकायिकयोः मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वयस्योद्वेल्लना भवतीति ८२। त्रिनवति-सत्त्वस्थानात् ९३ त्रयोदशप्रकृतीरपनीय अनिवृत्तिकरणो मुनिः क्षपकः क्षपयति क्षयं कृत्वाऽनन्तरं नवमानिवृत्तिकरणगुणस्थानादिषु पञ्चसु क्षपकश्रेणिषु अशीतिकं सत्त्वस्थानं ८० भवति ॥२१२॥

८२।८०।

चौरासीप्रकृतिक सत्त्वस्थानमेंसे मनुष्यद्विक अर्थात् मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन दो प्रकृतियोंकी उद्वेलना करनेपर बियासीप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। तेरानबैप्रकृतियोंके सत्त्वस्थानमेंसे तिर्यग्द्विक, मनुष्यद्विक, एकेन्द्रियजाति, स्थावर, आतप, उद्योत, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, सूक्ष्म और साधारण इन तेरह प्रकृतियोंके निकाल देनेपर अस्सीप्रकृतिक सत्त्वस्थान नवमगुणस्थानवर्त्ती क्षपक आदि उपरिम पाँच गुणस्थानवर्त्ती जीवोंके होता है ॥२१२॥

८४ मेंसे मनुष्यद्विकके विना ८२। ९३ मेंसे तेरहके विना ८०।

[1]आसीदि होइ संता बिय-इगि-णउदी य ऊणिया चेव।
तेरसमवणिय सेसं णवट्ठसत्तुत्तरा य सत्तरिथा ॥२१३॥

अणियट्टिखवगाइसु पंचसु ७९।७८।७७।

अनिवृत्तिकरणादिषु पञ्चसु क्षपकश्रेणिषु अशीतिकं सत्त्वस्थानं भवति ८०। तीर्थोनं द्विनवतिकं ९२ आहारकद्वयरहितमेकनवतिकं ९१ तीर्थकराऽऽहारकद्वयहीनं नवतिकं ९० च तत्त्रयेषु क्रमेण वक्ष्यमाणं प्रकृतित्रयोदशकं अपनीय क्षपयित्वा शेषैकान्नाशीतिकं ७९ अष्टासप्ततिकं ७८ सप्तसप्ततिकं ७७ स्थानं अनिवृत्तिकरणक्षपकादिषु पञ्चसु ७९।७८।७७। तथाहि—अनिवृत्तिकरणस्य क्षपकश्रेणौ ८०।७९।७८।७७। सूक्ष्मसाम्परायस्य क्षपकश्रेणौ ८०।७९।७८।७७। क्षीणकषायस्य क्षपकश्रेणौ ८०।७९।७८।७७। सयोगे ८०।७९।७८।७७। अयोगस्योपान्त्यसमये ८०।७९।७८।७७ ॥२१३॥

बानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमेंसे उपर्युक्त तेरह प्रकृतियोंके निकाल देनेपर उन्यासीप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। इक्यानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमेंसे उन्हीं तेरह प्रकृतियोंके कम कर देनेपर अठहत्तरप्रकृतिक सत्त्वस्थान हो जाता है। नब्बैप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें से उन्हीं तेरह प्रकृतियोंके कम कर देनेपर सतहत्तरप्रकृतिक सत्त्वस्थान हो जाता है ॥२१३॥

९२मेंसे १३ के विना ७९। ९१ मेंसे १३ के विना ७८। ९० मेंसे १३ के विना ७७ ये तीनों सत्त्वस्थान अनिवृत्तिक्षपकादि पाँच गुणस्थानोंमें होते हैं।

[2]इगि-वियलिंदियजाई णिरिय-तिरिक्खगइ आयउज्जोवं।
थावर सुहुमं च तहा साहारण-णिरय-तिरियाणुपुव्वी य ॥२१४॥
एए तेरह पयडी पंचसु अणियट्टिखवगाई।
अजोगिचरमसमए दस णव ठाणाणि होंति णायव्वा ॥२१५॥

१०।९।

ताः कास्त्रयोदश प्रकृतय इति चेदाऽऽह—['इगि-वियलिंदियजाई' इत्यादि।] एकेन्द्रियविकलत्रयजातयः ४ नरकगतिः १ तिर्यग्गतिः १ आतपोद्योतद्वयं २ स्थावरं १ सूक्ष्मं १ साधारणं १ नरकगत्यानुपूर्व्यं १ तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यं १ चेति १३ एतास्त्रयोदशप्रकृतीरनिवृत्तिकरणक्षपकः क्षपयति। क्षयं कृत्वाऽनन्तरं अनिवृत्तिकरणक्षपक-सूक्ष्मसाम्परायक्षपक-क्षीणकषायक्षपक-सयोगायोगिद्विचरमसमयपर्यन्तं अशीतिकादीनि

1. सं० पञ्चसं० ५, २२६-२२७। 2. ५, २२८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्त्वस्थानानि चत्वारि ८०।७९।७८।७७। अयोगिचरमसमये दशकं सत्त्वस्थानं १० नवकं सत्त्वस्थानं ९ च द्वे भवत इति ज्ञातव्यं भवति ॥२१४–२१५॥

१०।९।

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, नरकगति, तिर्यग्गति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, नरकानुपूर्वी और तिर्यगानुपूर्वी, इन तेरह प्रकृतियोंका विनाश अनिवृत्तिकरण क्षपक करता है। अतएव अनिवृत्तिक्षपकसे आदि लेकर अयोगिकेवलीके द्विचरम-समयपर्यन्त अस्सी आदि चार सत्त्वस्थान होते हैं। दश और नव प्रकृतिक सत्त्वस्थान अयोगिकेवलीके चरम समयमें जानना चाहिए ॥२१४–२१५॥

[1]मणुयदुयं पंचिंदिय तस बायर सुहय पज्जत्तं।
आएज्जं जसकित्ती तित्थयरं होंति दस एया ॥२१६॥

किं तदाऽऽह–['मणुयदुयं पंचिंदिय' इत्यादि।] मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वयं २ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसं १ बादरं १ सुभगं १ पर्याप्तं १ आदेयं १ यशःकीर्त्तिः १ तीर्थंकरत्वं १ चेति नामकृतिसत्त्वस्थानं दशकं १० अयोगिचरमसमये भवति। एतत्तीर्थंकरत्वं विना नामप्रकृतिसत्त्वस्थानं नवकं ९ भवति ॥२१६॥

दशप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें मनुष्यद्विक, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, सुभग, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्त्ति और तीर्थंकर, ये दश प्रकृतियाँ होती हैं। (इनमेंसे तीर्थङ्करप्रकृतिके विना शेष नौ प्रकृतियाँ नौप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें पाई जाती हैं) ॥२१६॥

अब गुणस्थानोंमें उक्त सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

अट्ठसु असंजयाइसु चत्तारि हवंति आइसंताणि।
तेणउदीरहियाइं मिच्छे छच्चेव पढमसंताणि ॥२१७॥

[2]अविरदादिसु अट्ठसु उवसंतेसु ९३।९२।९१।९०। मिच्छे ९२।९१।९०।८८।८४।८२।

अथ गुणस्थानेषु नामसत्त्वस्थानानि योजयति–['अट्ठसु असंजयाइसु' इत्यादि।] अविरत-सम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तकषायान्तेषु अष्टसु चत्वारि आदिमसत्त्वस्थानानि भवन्ति ९३।९२।९१।९०। तथाहि–असंयतसम्यग्दृष्टौ प्रथमं त्रिनवतिकं ९३ सत्त्वस्थानम्, तीर्थोनं द्वितीयं द्विनवतिकं ९२ सत्त्वस्थानम्, आहारकद्वयरहितमेकनवतिकं ९१ तृतीयसत्त्वस्थानम्, तीर्थाऽऽहारकत्रिकरहितं चतुर्थं नवतिकं ९० स्थानम्। एवमष्टसु ज्ञेयम्। देशसंयमे ९३।९२।९१।९०। प्रमत्ते ९३।९२।९१।९०। अप्रमत्ते ९३।९२।९१।९०। अपूर्वकरणस्योपशम-क्षपकश्रेण्योः ९३।९२।९१।९०। अनिवृत्तिकरणस्योपशमश्रेणौ ९३।९२।९१।९०। क्षपकश्रेणौ ८०।७९।७८।७७। सूक्ष्मसाम्परायस्योपशमश्रेण्यां ९३।९२।९१।९०। क्षपकश्रेण्यां ८०।७९।७८।७७। उपशान्तकषाये ९३।९२।९१।९० क्षीणकषाये ८०।७९।७८।७७। सयोगे ८०।७९। ७८।७७। अयोगिद्विचरम-समये ८०।७९।७८।७७। अयोगिचरमसमये १०।९। मिथ्यादृष्टौ त्रिनवतिकं विना आद्यसत्त्वस्थानानि षट् भवन्ति ९२।९१।९०।८८।८४।८२। तिर्यग्गतिको मनुष्यो वा मिथ्यादृष्टिः देवगति-तदानुपूर्व्यद्वयं उद्वेल्लयति, तदा अष्टाशीतिकं ८८। तथा नारकचतुष्कमुद्वेल्लयति, तदा चतुरशीतिकं ८४। तैजस्कायिक-वायुकायिकौ मनुष्यद्विकमुद्वेल्लयतस्तदा द्व्यशीतिकम् ८२ ॥२१७॥

आदिके चार सत्त्वस्थान असंयतसम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुणस्थानसे लेकर आठ गुणस्थानोंमें पाये जाते हैं। तेरानवैप्रकृतिक सत्त्वस्थानके विना प्रारम्भके छह सत्त्वस्थान मिथ्यात्व गुणस्थानमें होते हैं ॥२१७॥

1. सं० पञ्चसं० ५, २२९। 2. ५, 'अत्रासंयताद्येषू' इत्यादिगद्यभागः। (पृ० १८३)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविरतादि उपशान्तान्त आठ गुणस्थानोंमें ६३, ६२, ६१, ६०, प्रकृतिक सत्त्वस्थान हैं। मिथ्यात्वमें ६२, ६१, ६०, ८८, ८४, ८२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं।

[1]णउदीसंता सादे बाणउदी णउदि होंति मिस्सम्मि।
बाणउदि णउदि संता अड चदु दु अधियमसीदि तिरिएसु ॥२१८॥
[2]बाणउदि एगणउदी णउदी णिरए सुरेसु पढमचदुं।
बासीदी हीणाइं मणुएसु हवंति सव्वाणि ॥२१९॥

[3]सासणे ९० । मिस्से ९२।९० । तिरिएसु ९२।९०।८८।८४।८२ । णिरए ९२।९१।९० । मणुएसु संता १२ । देवेसु ९३।९२।९१।९० ।

एवं णामसंतपरूवणा

सासादनगुणस्थाने नवतिकं सत्त्वस्थानं ९० भवति । मिश्रगुणस्थाने द्विनवतिकं ९० नवतिकं ९० च सत्त्वस्थानं भवति । कुतः ?

तित्थाहारा जुगवं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिए।
तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवदि[1] ॥२१॥

तीर्थाऽऽहारकयोरुभयेन युतं सत्त्वस्थानं ९३ मिथ्यादृष्टौ नास्ति । तीर्थयुतमाहारयुतं च नानाजीवापेक्षयास्ति । सासादने नानाजीवापेक्षयाप्याहारक-तीर्थयुतानि न भवन्ति । मिश्रगुणस्थाने तीर्थयुतं ९२ न, आहारयुतं चास्ति ९०; तत्कर्मसत्त्वजीवानां [तद्] गुणस्थानं न सम्भवतीति ।

अथ तिर्यग्गत्यां तिर्यक्षु द्विनवतिकं ९२ नवतिकं ९० अष्टाशीतिकं ८८ चतुरशीतिकं ८४ द्व्यशीतिकं ८२ चेति पञ्च सत्त्वस्थानानि तिर्यग्गतौ भवन्ति । नरकगत्यां द्विनवतिकैकनवतिक-नवतिकानि त्रीणि सत्त्वस्थानानि भवन्ति ९२।९१।९० । देवगत्यां प्रथमचतुष्कं सत्त्वस्थानकम । मनुष्यगत्यां मनुष्येषु द्व्यशीतिकं विना शेषाणि द्वादश सत्त्वस्थानानि भवन्ति ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८०।७९।७८।७७।१०।९ । इति मनुष्यगतौ यथासम्भवं गुणस्थानेषु ज्ञातव्यानि ॥२१८–११९॥

पृथ्वीकायिकादिसर्वतिर्यक्षु पञ्च सत्त्वस्थानानि ९२।९०।८८।८४।८२ । भवनत्रयदेवानां ९२।९० । सर्वभोगभूमिजतिर्यङ्-मनुष्याणां ९२।९० । अञ्जनाद्यधस्तनचतुःपृथ्वीनारकाणां च द्वानवतिक ९२ नवतिके ९० द्वे भवतः । सर्वसासादनानां नवतिकमेव ९० ।

१ नरकगत्यां नामसत्त्वस्थानानि—

मिथ्या०	९२	९१	९०
सासा०	९०		
मिश्र०	९२	९०	
अवि०	९२	९१	९०

२ तिर्यग्गतौ नामसत्त्वस्थानानि—

मिथ्या०	९२	९०	८८	८४	८२
सासा०	९०				
मिश्र०	९२	९०			

३ मनुष्यगतौ नामप्रकृतिसत्त्वस्थानानि—

मि०	९२	९१	९०	८८	८४	८२
सा०	९०					
मि०	९२	९०				
अ०	९३	९२	९१	९०		
दे०	९३	९२	९१	९०		
प्र०	९३	९२	९१	९०		
अप्र०	९३	९२	९१	९०		
अपू०	९३	९२	९१	९०		

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २३० । 2. ५, २३१ । 3. ५, 'सासने' इत्यादिगद्यांशः । (पृ० १८३) ।
१. गो० क० ३३३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवि०	९२	९०		
देश०	९२	९०		

४ देवगत्यां नामसत्त्वस्थानानि—

मिथ्या०	९२	९०		
सासा०	९०			
मिश्र०	९२	९०		
अवि०	९३	९२	९१	९०

	उपशमश्रेणौ	क्षपकश्रेणौ
अनि०	९३ ९२ ९१ ९०	८० ७९ ७८ ७७
सू०	९३ ९२ ९१ ९०	८० ७९ ७८ ७७
उ०	९३ ९२ ९१ ९०	
क्षी०		८० ७९ ७८ ७७
स०		८० ७९ ७८ ७७
अयो० द्वि०		८० ७९ ७८ ७७
अयो० च०		१० ९

सासादनगुणस्थानमें नब्बैप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। मिश्रगुणस्थानमें बानबै और नब्बै प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान होते हैं। तिर्यञ्चोंमें बानबै, नब्बै, अट्ठासी, चौरासी और बियासी प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। नारकियोंमें बानबै, इक्यानबै और नब्बै प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं। देवोंमें आदिके चार सत्त्वस्थान होते हैं। मनुष्योंमें बियासीके विना शेष सर्व सत्त्वस्थान होते हैं ॥२१८-२१९॥

सासादनमें ९०। मिश्रमें ९२, ९०। तिर्यञ्चोंमें ९२, ९०, ८८, ८४, ८२। नारकियोंमें ९२, ९१, ९०। मनुष्योंमें ८२ के विना शेष १२ देवोंमें ९३, ९२, ९१, ९० प्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं।

चारों गतियोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

मनुष्यगतिमें नामसत्त्वस्थान—

	उपशमश्रेणि	क्षपकश्रेणि		
१ मिथ्यात्व	९२ ९१ ९० ८८ ८४ ८२			
२ सासादन	९०			
३ मिश्र	९२ ९०			
४ अविरत	९३ ९२ ९१ ९०			
५ देशविरत	९३ ९२ ९१ ९०			
६ प्रमत्तविरत	९३ ९२ ९१ ९०			
७ अप्रमत्तवि०	९३ ९२ ९१ ९०			
८ अपूर्वकरण	९३ ९२ ९१ ९०			
९ अनि०बृ०क०	९३ ९२ ९१ ९०	८० ७९ ७८ ७७	०	०
१० सूक्ष्मसा०	९३ ९२ ९१ ९०	८० ७९ ७८ ७७	०	०
११ उपशान्त०	९३ ९२ ९१ ९०			
१२ क्षीणमोह		८० ७९ ७८ ७७		
१३ सयोगिके०		८० ७९ ७८ ७७		
१४ अयो० द्वि०		८० ७९ ७८ ७७		
१४ अयो० च०		९ १० ९		

नरकगतिमें नामसत्त्वस्थान—

मि०	९२ ९१ ९०
सा०	९०
मि०	९२ ९०
अ०	९२ ९१ ९०

तिर्यग्गतिमें नामसत्त्वस्थान—

मि०	९२ ९० ८८ ८४ ८२
सा०	९०
मि०	९२ ९०
अ०	९२ ९०
दे०	९२ ९०

देवगतिमें नामसत्त्वस्थान—

मि०	९२ ९०
स०	९०
मि०	९२ ९०
अ०	९३ ९२ ९१ ९०

इस प्रकार नामकर्मके सत्त्वस्थानोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मूलसप्ततिकाकार नामकर्मके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थान इन तीनोंको एकत्र मिलाकर बतलाते हैं—

[मूलगा०२४] अट्ठेगारस तेरस बंधोदयसंतपयडिठाणाणि।
ओघेणादेसेण य एत्तो जिह संभवं †विसजे[1] ॥२२०॥

अथोक्तनामत्रिसंयोगस्यैकाधिकरणे द्व्याधेयं ब्रुवन् तावद् बन्धाधारे उदय-सत्त्वाधेयं गाथाकतिभिराह। आदौ बन्धादित्रिकं गाथाचतुष्केणाऽऽह—['अट्ठेगारस तेरस' इत्यादि।] इतः ओघेण गुणस्थानकैर्गुणस्थानेषु वा आदेशेन मार्गणाभिर्मार्गणासु वा बन्धोदयसत्त्वप्रकृतिस्थानानि अष्टैकादशत्रयोदशसंख्योपेतानि यथासम्भवमिति विसृजे कथयिष्यामीत्यर्थः। बन्धस्थानान्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ उदयस्थानान्येकादश २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।९।८। सत्त्वस्थानानि त्रयोदश ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।१०।९। ॥२२०॥

नामकर्मके बन्धस्थान आठ हैं, उदयस्थान ग्यारह हैं और सत्त्वस्थान तेरह हैं। इनका ओघ और आदेशकी अपेक्षा जहाँ जो स्थान संभव हैं, उनका कथन करते हैं ॥२२०॥

अब सर्वप्रथम बन्धस्थानोंको आधार बनाकर उनमें उदयस्थान और सत्त्वस्थान कहते हैं—

[मूलगा०२५] [1]णव पंचोदयसंता तेवीसे पंचवीस छव्वीसे।
अट्ठ चउरट्ठवीसे णव सत्तुगुतीस तीसम्मि[2] ॥२२१॥

बन्ध०	२३	२५	२६	अट्ठावीसादिबंधेसु	२८	२९	३०
उद०	९	९	९		८	९	९
सत्त्व०	५	५	५		४	७	७

त्रयोविंशतिके २३ बन्धस्थाने पञ्चविंशतिके २५ षड्विंशतिके २६ बन्धस्थाने च प्रत्येकमुदयस्थानानि नव भवन्ति। सत्त्वस्थानानि पञ्च भवन्ति।

बन्ध	२३	२५	२६
उद०	९	९	९
सत्त्व०	५	५	५

अष्टाविंशतिके बन्धस्थाने उदयस्थानान्यष्टौ, सत्त्वस्थानानि चत्वारि। एकोनत्रिंशत्के त्रिंशत्के च बन्धस्थाने उदयस्थानानि नव भवन्ति, सत्त्वस्थानानि सप्त भवन्ति

बं०	२८	२९	३०
उ०	८	९	९
सं०	४	७	७

एकत्रिंशत्के बन्धस्थाने उदयस्थानमेकम्, सत्त्वस्थानमेकम्। एकके बन्धस्थाने उदयस्थानमेकम्, सत्त्वस्थानान्यष्टौ। उपरतबन्धे दश-दशोदयसत्त्वस्थानानि भवन्ति ॥२२१॥

बं०	३१	१	०
उ०	१	१	१०
स०	१	८	१०

नामकर्मके तेईस, पच्चीस और छव्वीस प्रकृतिक तीन बन्धस्थानोंमें नौ उदयस्थान, और पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। अट्ठाईसप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें आठ उदयस्थान और चार सत्त्वस्थान होते हैं। उनतीस और तीस प्रकृतिक दो बन्धस्थानोंमें नौ उदयस्थान और सात सत्त्वस्थान होते हैं ॥२२१॥

इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २३२-२३४। †श्वे० सप्ततिकायां 'विभजे' इति पाठः।

१. सप्ततिका० ३०। तत्र प्रथमचरणे पाठोऽयम्—'अट्ठय बारस बारस'।

२. सप्ततिका० ३१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भाष्यगाथाकार इसी अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

[1]तिय पण छव्वीसेसु वि उवरिम दो वज्जिदूण णव उदया ।
पण संता वाणउदी णउदी अड-चउर वासीदिं ॥२२२॥

[2]बंधट्ठाणेसु २३।२५।२६ पत्तेयं णवोदयठाणाणि—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । संतट्ठाणाणि—९२।९०।८८।८४।८२।

त्रयोविंशतिके-पञ्चविंशतिके-षड्विंशतिकबन्धस्थानेषु उपरिमोभयस्थाने द्वे नवकाष्टके वर्जयित्वा शेषोदयस्थानानि नव भवन्ति, द्वानवतिक-नवतिकाष्टाशीतिक-चतुरशीतिक-द्व्यशीतिकानि पञ्च सत्त्वस्थानानि भवन्ति ॥२२२॥

तेईस, पच्चीस और छब्बीसप्रकृतिक बन्धस्थानोंमें उपरिम दो बन्धस्थानोंको छोड़कर आदिके नौ उदयस्थान होते हैं। तथा बानवे, नब्बे, अठासी, चौरासी और बियासीप्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं ॥२२२॥

बन्धस्थान २३, २५, २६ मेंसे प्रत्येकमें उदयस्थान ये नौ हैं—२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ । तथा सत्त्वस्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ ये पाँच-पाँच हैं।

[3]बासीदिं वज्जित्ता चउसंता होंति पुव्वभणिया दु ।
तह सत्तावीसुदए बंधट्ठाणाणि ते तिण्णि ॥२२३॥

बंधे २३।२५।२६ उदये २७ संतट्ठाणाणि ९२।९०।८८।८४।

बंधतियं समत्तं ।

अष्टाविंशतिके बन्धे द्व्यशीतिकं सत्त्वस्थानं वर्जयित्वा चतुःसत्त्वस्थानानि पूर्वोक्तानि भवन्ति । तु पुनस्तथाग्रे वक्ष्यमाणे सप्तविंशतिके उदयस्थाने द्व्यशीतिकं सत्त्वस्थानं वर्जयित्वाऽन्यस्थानानि भवन्ति ॥२२३॥

बन्धे २८ उदयस्थानान्यष्टौ २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वस्थानानि चत्वारि ९२।९१। ९०।८८। तानि बन्धस्थानानि त्रीणि २३।२५।२६।

इति बन्धादिकं समाप्तम् ।

तथा सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान तो ये पूर्वोक्त तीन ही होते हैं, किन्तु सत्त्वस्थान पूर्वोक्तोंमेंसे बियासीको छोड़कर शेष चार होते हैं ॥२२३॥

२७ प्रकृतिक उदयस्थानमें बन्धस्थान २३, २५, २६ प्रकृतिक तीन, तथा सत्त्वस्थान ९९, ९०, ८८, ८४ प्रकृतिक चार होते हैं।

इस प्रकार तीन बन्धस्थानोंमें उदय और सत्त्वस्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ।

[4]उवरिमदुयचउवीस य वज्जिय अट्ठुदय अट्ठवीसम्हि ।
चउ संता वाणउदी इगिणउदि णउदि अट्ठसीदी य ॥२२४॥

[5]बंधे २८ । उदये २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता ९२।९१।९०।८८ ।

अष्टाविंशतिके बन्धस्थाने उदयं सत्त्वं चाऽऽह—['उवरिमदुय चउवीस य' इत्यादि ।] अष्टाविंशतिके बन्धके उपरिमद्विके अन्तिमे द्वे नवकाष्टके स्थाने चतुर्विंशतिकमेकमिति स्थानत्रयं वर्जयित्वा त्यक्त्वा उदयस्थानान्यष्टौ भवन्ति ८ । द्विनवतिकैकनवतिक-नवतिकाष्टाशीतिकानि चतुःसत्त्वस्थानानि भवन्ति ॥२२४॥

बन्धे २८ उदयस्थानानि २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ सत्त्वस्थानानि ९२।९१।९०।८८ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २३५-२३६ । 2. ५, 'बन्धस्थानेषु' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० १८४) । 3. ५, २३७ । 4. ५, २३८-२३९ । 5. ५, 'बन्धे २८' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १८४) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें चौबीसप्रकृतिक और अन्तिम दो उदयस्थानोंको छोड़कर आठ उदयस्थान तथा बानबै, इक्यानबै, नब्बै और अठासीप्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं ॥२२४॥

२८ अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक आठ उदयस्थान और ९२, ९१, ९०, ८८ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं।

अब अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय तथा सत्त्वकी विशिष्ट दशामें जो स्थानविशेष होते हैं, उन्हें दिखलाते हैं—

[1]अट्ठ चउरट्ठवीसे य कमसोदयसंतबंधठाणा दु ।
सामण्णेण य भणिया विसेसदो एत्थ कायव्वो ॥२२५॥
छव्वीसिगिवीसुदया बाणउदी णवदि अट्ठवीसे य ।
खाइयसम्मत्ताणं पुण कुरवेसुप्पज्जमाणाणं ॥२२६॥

[2]खाइयसम्माइट्ठीणं णराणं बंधे २८ उदये २६।२१। संता ९२।९० ।

अष्टाविंशतिके बन्धे क्रमशः अष्टावुदयस्थानानि, चत्वारि सत्त्वस्थानानि सामान्येन भणितानि । अत्र विशेषतः कर्त्तव्यः । अत्राऽऽद्यत्रिसंयोगे बं० २३ उ० ९ स० ५ इदम्—तिर्यग्द्विकं २ औदारिक-तैजस-कार्मणानि ३ एकेन्द्रियं १ वर्णचतुष्कं ४ अगुरुलघुकं १ उपघातं १ स्थावरं १ अस्थिरं १ अशुभं १ दुर्भगं १ अनादेयं १ अयशः १ निर्माणं १ हुण्डकं १ अपर्याप्तं १ बादरयुग्मस्यैकतरं १ साधारणप्रत्येकयोर्मध्ये एकतरं १ चेति त्रयोविंशकं बन्धस्थानं २३ एकेन्द्रियाऽपर्याप्तयुतत्वाद्देव-नारकेभ्योऽन्ये त्रस-स्थावर-मनुष्य-मिथ्यादृष्टय एव बध्नन्ति । तत्रैकेन्द्रियादिसर्वतिरश्चां बन्धे २३ एकेन्द्रियापर्याप्तस्योदयस्थानानि नव—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वस्थानं पञ्चकम्—९२।९०।८८।८४।८२ । मनुष्येषु कर्मभूमिजानामेव बन्धे २३ एकेन्द्रियालब्धपर्याप्तके उदयस्थानं पञ्चकम्—२१।२६।२८।२९।३० । सत्त्वस्थानचतुष्कम्—९२।९०।८८।८४ । बं० २५ उ० ९ स० ५ पञ्चविंशतिकमेकेन्द्रियपर्याप्त-त्रसापर्याप्तयुतत्वात्तिर्यग्मनुष्य-देव-मिथ्यादृष्टय एव बध्नन्ति । तत्र सर्वतिरश्चां बन्धे २५ एकेन्द्रियपर्याप्ते त्रसापर्याप्ते उदयस्थाननवकम्—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वस्थानं पञ्चकम्—९२।९०।८८।८४।८२ । मनुष्यगतौ बन्धे २५ । एकेन्द्रियपर्याप्ते त्रसापर्याप्ते उदयस्थानपञ्चकम्—२१।२६।२८।२९।३० । सत्त्वस्थानचतुष्कम्—९२।९०।८८।८४ । देवेषु भवनत्रय-सौधर्मद्वयजानामेकेन्द्रियपर्याप्तयुतमेव बन्धः २५ । उदयस्थानपञ्चकम्—२१।२५।२७।२८।२९ । सत्त्वस्थानद्वयम्—९२।९० । बं० २६ उ० ९ स० ५ षड्विंशतिकं २६ एकेन्द्रियपर्याप्तोद्योतातपान्यतरयुतत्वात्तिर्यङ्-मनुष्य देवमिथ्यादृष्टय एव बध्नन्ति । तत्रापि तेजो-वायु-साधारण-सूक्ष्मापर्याप्तेषु तदुदये एव न बन्धः, तत्तिरश्चां बन्धः । उदयः—आत० १ उद्यो० स्थाननवकम्—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वस्थानपञ्चकम् ९२।९०।८८।८४।८२ । तन्मनुष्याणां बन्धः २६ । आ० उ० उदयस्थानपञ्चकम्—२१।२६।२८।२९।३० । सत्त्वस्थानचतुष्कम्—९२।९०।८८।८४ । भवनत्रय-सौधर्मद्वयजानां बन्धः २६ । ए० प० आत० उद्यो० उदयस्थानपञ्चकम्—२१।२५।२७।२८।२९ । सत्त्वस्थानद्वयम् ९२।९० ।

---

1. ५, २४०–२४१ । 2. ५, 'बन्धे २८' इत्यादिगद्यांशः । (पृ० १८५)

५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बं० २८
उ० ८ अष्टाविंशतिकं नरक-देवगतियुतत्वात्संज्ञितिर्यक्-कर्मभूमिमनुष्याणाम्। एवं विग्रहगति-
स० ५
शरीरमिश्रकाला व (?) तस्यापर्याप्तशरीरकाले एव बध्नन्ति। तत्तिरश्चां मिथ्यादृष्टेः बन्ध एव २८। नरक-देवयुतं उदयस्थानचतुष्कम्—२८।२९।३०।३१। सत्त्वस्थानत्रयम्–९२।९०।८८। तत्सासादनस्य बन्धः २८। देवे उदयद्वयं ३०।३१। सत्त्वमेकं ९०। मिश्रे बन्धः २८ देवे उदयः ३०।३१। सत्त्वं ९२।९०। असंयतस्य बन्धः २८ देवे उदयः २१।२६।२८।२९।३०।३१। सत्त्वद्वयम्—९२।९०। देशसंयतस्य बन्धः २८ देवयुतं उदयस्थानद्वयम् ३०।३१। सत्त्वं ९२।९०। द्व्यशीतिकं हि तत्सत्त्वयुततेजोवायुभ्यां पञ्चे-न्द्रियेषूत्पन्नानां विग्रहगति-शरीरमिश्रकालयोस्तिर्यग्गतियुत-त्रि २३ पञ्च २५ षट् २६ नव २९ दश ३० प्रविंशतिकानि बध्नतां सम्भवन्ति। मनुष्यद्विकयुत पञ्च २५ नव २९ विंशतिके बध्नतां न सम्भवति। चतुरशीतिकं च एक-विकलेन्द्रियभवे नारकचतुष्कमुद्वेल्य पञ्चेन्द्रियपर्याप्तेषूत्पन्नानां तस्मिन्नेव कालद्वये सम्भवति। ततोऽस्मिन्नष्टाविंशतिकबन्धकाले तयोः सत्त्वं नोक्तम्। मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेः बन्धः २८। नारक-देवयुतं उदयस्थानत्रिकम्—२८।२९।३०। सत्त्वस्थानचतुष्कं ९२।९१।९०।८८। सासादनस्य बन्धः २८। देवयुतं उदयस्थानमेकं ३०। सत्त्वं ९०। मिश्रस्य बन्धः २८। देवे उदयः। ३०। सत्त्वं ९२।९०। असंयतस्य बन्धः २८। देवयुतं उदयस्थानं पञ्चकम्—२१।२६।२८।२९।३०। सत्त्वस्थानद्वयम्—९२।९०। नात्रैकनवतिकसत्त्वम्, प्रारब्धतीर्थबन्धस्यान्यत्र बद्धनरकायुष्कात्। सम्यक्त्वप्रच्युतिर्नेति तीर्थबन्धस्य नैरन्त-र्यात्, अष्टाविंशतिकाबन्धात्। देशसंयतस्य बन्धः २८। देवे उदयस्थानमेकम् ३०। सत्त्वस्थानद्वयं ९२।९०। प्रमत्तस्य बन्धः २८। देवयुतं उदयस्थानपञ्चकम्—२५।२७।२८।२९।३०। सत्त्वस्थानद्वयं ९२।९०। अप्रमत्तस्य बन्धः २८ देवयुतम्। उदयस्थानमेकं ३०। सत्त्वस्थानद्वयम्—९२।९०। अपूर्वकरणस्य बन्धः २८ देवयुतं। उदयस्थानं ३०। सत्त्वद्वयं ९२।९०। ॥२२५॥

अष्टाविंशतिकबन्धस्य विशेषं गाथैकेनाऽऽह—['छब्बीसिगिवीसुदया' इत्यादि।] कुरुवर्षोत्पन्नाना-मुत्तमभोगभूमिजानां क्षायिकसम्यग्दृष्टिमनुष्याणामष्टाविंशतिके बन्धे २८ षड्विंशतिकमेकविंशतिकं चोदय-स्थानद्वयं २६।२१ द्वानवतिक-नवतिकसत्त्वस्थानद्वयं भवति। बन्धे २८। उदये २६।२१। सत्त्वे ९२।९०। तद्यथा—उत्तमभोगभूमिषूत्पद्यमानानां क्षायिकसम्यग्दृष्टिमनुष्याणां विग्रहगतौ सत्यां एकविंशतिकं नाम-प्रकृत्युदयस्थानमुदयागतं भवति तदा ते देवगतियुतमष्टाविंशतिकं बन्धस्थानं बध्नन्तीत्यर्थः। तथा तेषा-मौदारिकमिश्रकाले षड्विंशतिकं स्थानमुदयागतं, तदा ते देवगतियुतमष्टाविंशतिकं बध्नन्ति। तदा तेषां तत्सत्त्वस्थानद्वयं सम्भवतीत्यर्थः ॥२२६॥

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें क्रमशः आठ उदयस्थानों और चार सत्त्वस्थानोंका सामान्यसे वर्णन किया। अब यहाँपर जो कुछ विशेषता है, उसका वर्णन करना चाहिए। वह विशेषता यह है कि अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें इक्कीस और छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थान तथा बानबै और नब्बैप्रकृतिक सत्त्वस्थान देवकुरु और उत्तरकुरुमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिक-सम्यक्त्वी मनुष्योंके ही संभव हैं ॥२२५-२२६॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंके २८ प्रकृतिक बन्धस्थानमें २६ और २१ प्रकृतिक दो उदयस्थान तथा ९२ और ९० प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान होते हैं।

अब अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत दूसरी विशेषता बतलाते हैं—

[1]पण सत्तावीसुदया बाणउदी संतमट्ठवीसे य।
आहारयमुदयंते पमत्तविरदे चेव हवे ॥२२७॥

बंधे २८। उदए २५।२७। संता ९२।

1. सं०पञ्चसं० ५, २४२।

प्रमत्तविरते आहारकोदये अष्टाविंशतिकं बन्धे पञ्चविंशतिक-सप्तविंशतिकोदयस्थानद्वयं द्वानवतिसत्त्वमेव। तथाहि—प्रमत्तमुनेराहारकशरीरमिश्रकाले पञ्चविंशतिकमुदयागतं २५ तदा ते देवगतियुतमष्टाविंशतिकं स्थानं बन्धमायाति २८। द्वानवतिकसत्त्वमेव ९२ तदा। तथा प्रमत्तस्याहारकशरीरपर्याप्तौ सप्तविंशतिकं २७ स्थानमुदयागतं तदा देवगतियुतमष्टाविंशतिकं २८ बन्धमायाति। तदुक्तसत्त्वमेव ९२ ॥२२७॥

बन्धे २८। उदये २५।२७। सत्ता ९२।

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें पच्चीस और सत्ताईसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए बानबैप्रकृतिक सत्त्वस्थान आहारकशरीरके उदयवाले प्रमत्तविरत साधुके ही होता है ॥२२७॥

बन्धस्थान २८ में तथा उदयस्थान २५, २७ में सत्त्वस्थान ९२ ही होता है।

अब अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानसम्बन्धी तीसरी विशेषता बतलाते हैं

[2]उगुतीस अट्ठवीसा बाणउदि णउदि अट्ठवीसे य।
आहारसंतकम्मे अविरयसम्मे पमत्तिदरे ॥२२८॥

बंधे २८। उदए २९।२८। संते ९२।९०।

आहारकसत्त्वकर्मण्यविरतसम्यग्दृष्टौ अप्रमत्ते च अष्टाविंशतिकं बन्धे एकोनत्रिंशत्कं अष्टाविंशतिकं च [उदये] द्विनवतिकं नवतिकं च [सत्त्वं] भवति। तद्यथा—आहारकसत्त्वस्याविरतसम्यग्दृष्टेः आहारकसत्त्वस्याप्रमत्तस्य च नवविंशतिकमुदयागतस्थानं २९ अष्टाविंशतिकमुदयागतं २८ च, तदाऽष्टाविंशतिक-देवगतियुतस्थानं बन्धमायातीत्यर्थः २८। तदा सत्त्वद्वयस्थानं ९२।९०। बन्धः २८। उदये २९।२८। सत्तायां ९२।९०॥२२८॥

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उनतीस और अट्ठाईसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए बानबै और नब्बैप्रकृतिक सत्त्वस्थान आहारकप्रकृतिके सत्त्ववाले अविरतसम्यक्त्वी और संयतके होते हैं ॥२२८॥

बन्धस्थान २८ में तथा उदयस्थान २९ और २८ में सत्त्वस्थान ९२ और ९० होते हैं।

अब अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वसम्बन्धी चौथी विशेषता कहते हैं—

[3]बाणउदि-णउदिसंता तीसुदयं अट्ठवीसबंधेसु।
मिच्छाइसु णायव्वा विरयाविरयंतजीवेसु ॥२२९॥

बंधे २८। उदए ३०। संते ९२।९०।

मिथ्यादृष्ट्यादि-विरताविरतपर्यन्तजीवेषु। कथम्भूतेषु? अष्टाविंशतिक २८ स्थानबन्धकेषु द्वानवतिक-नवतिकसत्त्वद्वयस्थानं ९२।९०। त्रिंशत्कमुदयस्थानं च ज्ञातव्यम् ॥२२९॥

बन्धे २८। उदये ३०। सत्त्वे ९२।९०।

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानोंमें तथा तीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए बानबै और नब्बैप्रकृतिक सत्त्वस्थान मिथ्यादृष्टिको आदि लेकर संयतासंयतगुणस्थान तकके जीवोंमें पाये जाते हैं ॥२२९॥

अब अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थानगत पाँचवीं विशेषता बतलाते हैं—

[4]तह अट्ठवीसबंधे तीसुदए संतमेक्कणउदी य।
तित्थयरसंतयाणं वि-तिखिदिसुप्पज्जमाणाणं ॥२३०॥

बंधे २८। उदए ३०। संते ९१।

---

1. सं०पञ्चसं० ५, २४३। 2. ५, २४५। 3. ५, २४६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थङ्करसत्त्वानां द्वि-त्रिनरकद्विन्युत्पद्यमानानां अष्टाविंशतिके २८ बन्धे त्रिंशत्कोदये ३० एकनवतिक-सत्त्वं ९१ भवति । तद्यथा—प्रारबद्धनरकायुष्ककर्मभूमिजमनुष्याणां त्रिंशन्नामप्रकृत्युदयप्राप्तानां उपशम-सम्यक्त्वं वेदकसम्यक्त्वं वा प्राप्तानां केवलिपादमूले तीर्थङ्करप्रकृतिं बद्ध्वा सत्त्वकृतानां नरकगतियुतमष्टा-विंशतिकं बन्धप्रकृतिस्थानं बद्ध्वा द्वितीय-तृतीययोर्वंशा-मेघयोरुत्पद्यमानानां नारकानां आहारकद्वयं विना तीर्थकरयुतमेकनवतिकं सत्त्वस्थानं ९१ भवति । अत्राष्टाविंशतिके तीर्थबन्धो न । कुतः ? प्रारब्धतीर्थ-बन्धानां बद्धनरकायुष्कात् । सम्यक्त्वप्रच्युतिर्नेति तीर्थबन्धस्य नैरन्तर्यादष्टाविंशतिकाबन्धात् ॥२३०॥

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें तथा तीसप्रकृतिक उदयस्थानमें इक्यानबैप्रकृतिक सत्त्वस्थान तीर्थंकरप्रकृतिकी सत्तासे युक्त और दूसरी-तीसरी नारकभूमिमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके होता है ॥२३०॥

बन्धस्थान २८ में तथा उदयस्थान ३० में सत्त्वस्थान ९१ होता है ।

अब उसी बन्धस्थानकी छठी विशेषता बतलाते हैं—

[1]अडसीदिं पुण संता तीसुदए अट्ठवीसबंधेसु ।
सामित्तं जाणिज्जो तिरिय-मणुए मिच्छजीवाणं ॥२३१॥

बंधे २८ उदए ३० संते ८८ ।

तिर्यङ्मनुष्यमिथ्यादृष्टिजीवानामष्टाविंशतिकबन्धके स्वामित्वं जानीहि । त्रिंशत्कोदये अष्टाशीतिकं सत्त्वम् । तथाहि—मिथ्यादृष्टिपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो वा मिथ्यादृष्टिमनुष्या कथम्भूताः पर्याप्ताः त्रिंशन्नामकर्म-प्रकृत्युदयभुज्यमानाः अष्टाशीतिनामप्रकृतिसत्त्वसहिता नरकगतियुतमष्टाविंशतिकं बध्नन्ति । किं तत् ? तैजस-कार्मणागुरुलघूपघात निर्माण-वर्णचतुष्काणीति ध्रुवप्रकृतयो नव । त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ प्रत्येकाऽ-१ स्थिराऽ १ शुभ १ दुर्भगाऽ १ नादेयाऽ १ यशस्कीर्त्ति १ नरकगति १ पञ्चेन्द्रिय १ वैक्रियिकशरीर १ हुण्डकसंस्थान १ नरकगत्यानुपूर्वी १ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्ग १ दुःस्वराऽ १ प्रशस्तविहायोगत्यु १ च्छ्वास १ पर-घातम् १ तदष्टाविंशतिकं नरकगतियुतं २८ मिथ्यादृष्टयस्तिर्यङ्मनुष्या बध्नन्तीत्यर्थः ॥२३१॥

बन्धः २८ उदये ३० सत्ता ८८ ॥

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें तीसप्रकृतिक उदयस्थानमें और अठासीप्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामित्व मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्योंके जानना चाहिए ॥२३१॥

बन्धस्थान २८ में उदयस्थान ३० में और सत्त्वस्थान ८८ में यह विशेषता कही ।

अब उपर्युक्त बन्धस्थानमें ही सातवीं विशेषता बतलाते हैं—

[2]बाणउदिणउदिसंता इगितीसुदयट्ठवीसबंधेसु ।
मिच्छाइसु णायव्वा विरयाविरयंतजीवेसु ॥२३२॥

बंधे २८ । उदए ३१ । संते ९२।९०

मिथ्यादृष्ट्यादि-विरताविरतान्ततिर्यग्जीवेषु एकत्रिंशत्कोदयागताष्टाविंशतिबन्धकेषु द्वानवतिक-नवतिकसत्त्वस्थानद्वयं ज्ञातव्यम् । तथाहि—मिथ्यादृष्ट्यादि-देशसंयतान्ताः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः एकत्रिंशन्नाम-प्रकृत्युदयभुज्यमानाः ३१ तीर्थं विना द्वानवतिकाऽऽहारक रहितनवतिक ९० सत्त्वसहिताः देवगतियुत-मष्टाविंशतियुतं २८ बध्नन्तीत्यर्थः । किं तत् ? नव ध्रुवाः, त्रसं १ बादरं १ पर्याप्तं १ प्रत्येकं १ स्थिरा-स्थिरैकतरं १ शुभाशुभैकतरं १ सुभगाऽऽ १ देयं १ यशोऽयशसोरेकतरं १ देवगतिः १ पञ्चेन्द्रियजातिः

1. सं० पञ्चसं० ५, २४७ । 2. ५, १४८ ।

१ प्रथमसंस्थानं १ देवगत्यानुपूर्व्यं १ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गं १ सुस्वरं १ प्रशस्तविहायोगत्यु १ च्छ्वासं १ परघातं १ तद्देवगतियुतमष्टाविंशतिकं २८ मिथ्यादृष्ट्यादिदेशान्तास्तिर्यञ्चो बध्नन्तीत्यर्थः ॥२३२॥

बन्धे २८ उदये ३१ सत्ता ९२।९०।

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए बानबै और नब्बै प्रकृतिक सत्त्वस्थान मिथ्यादृष्ट्यादि विरताविरतान्त जीवोंके जानना चाहिए ॥२३२॥

यह बन्धस्थान २८ में और उदयस्थान ३१ में सत्त्वस्थान ९२ और ९० गत विशेषता है।

अब उसी बन्धस्थानमें उदय-सत्त्वगत आठवीं विशेषता बतलाते हैं—

[1]अडसीदिं पुण संता इगितीसुदयट्ठवीसबंधेसु ।
सामित्तं जाणिज्जो तेरिच्छियमिच्छजीवाणं ॥२३३॥

बंधे २८ उदए ३१ । संते ८८ ।

अट्ठावीसबंधो समत्तो ।

तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिजीवानामेकत्रिंशत्कोदयाष्टाविंशतिबन्धकेषु स्वामित्वं जानीयात् । पुनः अष्टाशीतिकं सत्त्वस्थानं जानीहि । तद्यथा—मिथ्यादृष्टिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तास्तिर्यञ्चः एकत्रिंशन्नामप्रकृत्युदयागतभुज्यमानाः ३१ अष्टाशीतिकसत्त्वसहिताः नारकयुतमष्टाविंशतिकं बन्धस्थानं २८ बध्नन्ति । तत्पूर्वं कथितमस्ति ॥२३३॥

बन्धे २८ उदये ३१ सत्ता ८८ ।

इत्यष्टाविंशतिकं बन्धस्थानं समाप्तम् ।

अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें एकतीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अट्ठासीप्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामित्व तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ॥२३३॥

यह बन्धस्थान २८ में उदयस्थान ३१ में सत्त्वस्थान ८८ गत विशेषता है।

इस प्रकार अट्ठाईसप्रकृतिक बन्धस्थानोंमें उदयस्थानों और सत्त्वस्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ।

[2]उगुतीस तीसबंधे चरिमे दो वज्जिदूण णवत्रुदये ।
तिगणउदादी णियमा संतट्ठाणाणि सत्तेव ॥२३४॥

बंधे २९।३०। पत्तेयं उदया णव—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त संतट्ठाणाणि—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।

अथैकोनत्रिंशत्कबन्धे २९ त्रिंशत्कबन्धे ३० चोदयसत्त्वस्थानान्याह—['उगुतीस-तीसबंधे' इत्यादि ।] एकोनत्रिंशत्कबन्धे २९ त्रिंशत्कबन्धे ३० च चरमे द्वे नवकाष्टकस्थाने वर्जयित्वाऽन्यनवोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । त्रिनवतिकादीनि सप्त सत्त्वस्थानानि ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ ॥२३४॥

उनतीस और तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें अन्तिम दो स्थानोंको छोड़कर शेष नौ उदयस्थानोंके रहते हुए नियमसे तेरानबे आदिक सात सत्त्वस्थान होते हैं ॥२३४॥

बन्धस्थान २९, ३० में से प्रत्येकमें उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ और सत्तास्थान ९३, ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं।

[3]णव सत्तोदयसंता उगुतीसे तीसबंधठाणेसु ।
सामण्णेण य भणिया विसेसदो एत्थ वत्तव्वो ॥२३५॥

---

1. सं०पञ्चसं० ५, २४९ । 2. ५, २५२-२५१ । 3. ५, २५२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकोनत्रिंशत्कबन्धस्थाने २९ नवोदयस्थानानि ९ सप्त सत्त्वस्थानानि ७। त्रिंशत्कबन्धस्थाने ३० नवोदयस्थानानि ९ सप्त सत्त्वस्थानानि ७। सामान्येन साधारणेन भणितानि। इदानीं विशेषतोऽत्र द्वयोर्वक्तव्यानि ॥२३५॥

ब०	२९	ब०	३०
उ०	९	उ०	९
स०	७	स०	७

इस प्रकार उनतीस और तीसप्रकृतिक बन्धस्थानोंमें नौ उदयस्थान और सात सत्तास्थान सामान्यसे कहे। अब उनमें जो कुछ विशेष वक्तव्य है, उसे कहते हैं ॥२३५॥

उगुतीसबंधगेसु य उदये इगिवीससंततिगिणउदी।
तित्थयरबंधसंजुयमणुयाणं विग्गहे होइ ॥२३६॥

बंधे २९। उदये २१। संते ९३।९१।

अथैकोनत्रिंशत्कस्य विशेषं गाथासप्तकेनाऽऽह--['उगतीसबंधगेसु य' इत्यादि।] तीर्थंकर बन्धसंयुतमनुष्याणां एकोनत्रिंशत्कबन्धे २९ एकविंशत्युदये २१ सति विग्रहगतौ त्रिनवतिकैकनवतिकसत्त्वस्थानद्वयं ९३।९१ भवति। तथाहि--ये मनुष्याः असंयतादि-चतुर्गुणस्थानवर्तिनस्तीर्थङ्कर-देवगतियुतमेकान्नत्रिंशत्कस्य बन्धं कुर्वन्तः सन्तः मरणं प्राप्तास्ते कार्मणासंयतविग्रहगतिमाश्रिता मनुष्या एकविंशतिकमुदयभुज्यमानाः सन्तः ध्रुवप्रकृतिनवकं ९ त्रसं १ बादरं १ पर्याप्तं १ प्रत्येकं १ स्थिरास्थिरैकतरं १ शुभाशुभैकतरं सुभगाऽ १ देयं १ यशोऽयशसोरेकतरं १ देवगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ वैक्रियिकं १ प्रथमसंस्थानं १ देवगत्यानुपूर्वी १ वैक्रियिकाङ्गोपाङ्गं १ सुस्वरं १ प्रशस्तविहायोगतिः १ उच्छ्वासं १ परघातं १ तीर्थङ्कर १ सहितमेकोनत्रिंशत्कं स्थानं २९ बध्नन्ति। एकविंशतिकभुज्यमाना इति किम्? तैजस-कार्मणद्वयं २ वर्णचतुष्कं ४ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ अगुरुलघुकं १ निर्माण १ मिति द्वादश ध्रुवोदयप्रकृतयः १२। देवगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसं १ बादरं १ पर्याप्तं १ सुभगं १ आदेयं १ यशः १ देवगत्यानुपूर्वी १ एवमेकविंशतिकं २१ विग्रहगतौ कार्मणकाले विग्रहगतिप्राप्तानामुदयागतं भवति। तदा तेषां सत्त्वस्थानद्वयं तीर्थसत्त्वसहितं ९१।९२। योऽविरतो वा देशविरतो वा प्रमत्तो वाऽप्रमत्तो वा एतदेकोनत्रिंशत्कं देवगतितीर्थकरत्वसहितं २९ बध्नन् कालं कृत्वा वैमानिकदेवगतिं प्रति यायिन् विग्रहगतौ इदमेकविंशतिकस्योदयमनुभवति तस्य तीर्थंकरसहितसत्त्वस्थानद्वयं ९३।९१ भवतीत्यर्थः ॥२३६॥

उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें इक्कीसप्रकृतिक उदयके रहते हुए तेरानबै और इक्यानबैप्रकृतिक सत्तास्थान तीर्थङ्करप्रकृतिके बन्धसंयुक्त मनुष्योंके विग्रहगतिमें होता है ॥२३६॥

बन्धस्थान २९में उदयस्थान २१ के रहते हुए सत्तास्थान ९३।९१ होते हैं।

विशेषार्थ—जो असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्य देवगति और तीर्थङ्कर प्रकृतिसे युक्त उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थानका बन्ध करते हुए मरणको प्राप्त होते हैं, उनके देवलोकको जाते हुए कार्मणकाययोग और असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानके साथ विग्रहगतिमें इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए तेरानबे और इक्यानबे प्रकृतिक सत्तास्थान पाये जाते हैं।

[1]ते चेव य बंधुदया वाणउदी णउदि संतठाणाणि।
चउगदिगदेसु जाणे विग्गहमुक्केसु होंति त्ति ॥२३७॥

बंधे २१। उदये २१। संते ९२।९०।

1. सं० पञ्चसं० ५, २५३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चातुर्गतिकजीवानां विग्रहगतिप्राप्तानां तावेव पूर्वोक्तबन्धोदयौ भवतः। एकोनत्रिंशत्कबन्धस्थानं २९ एकविंशतिकमुदयस्थानं च भवति। द्वानवतिक-नवतिकसत्त्वस्थानद्वयं च भवति ९२।९०। तथाहि--इदं नवविंशतिकं द्वीन्द्रियादित्रसपर्याप्तेन तिर्यग्गत्या वा मनुष्यगत्या वा युतं २९ चातुर्गतिजा जीवा विग्रहगतिं प्राप्ता एकविंशत्युदयं प्राप्ता द्वानवति-नवतिसहिताः बध्नन्तीत्यर्थः ॥२३७॥

बन्धः २९ प० वि-ति-च-पं० म० उ० २१ सत्ता ९२।९०।

उन्हीं पूर्वोक्त उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान और इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए बानबै और नब्बै प्रकृतिक सत्तास्थान विग्रहगतिसे विमुक्त चारों गतियोंके जीवोंके होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२३७॥

बन्धस्थान २९ और उदयस्थान २१ के रहते ९२ व ९० सत्तास्थान विग्रहविमुक्त चातुर्गतिक जीवोंके होता है।

[1]ते चेव बंधुदया अड-चउसीदी य विग्गहे भणिया।
मणुय-तिरिएसु णियमा वासीदी होदि तिरियम्हि ॥२३८॥

[2]बंधे २९। उदये २१। मणुय-तिरियाणं संते ८८।८४। तिरियाणं संते ८२।

मनुष्यगतिजानां तिर्यग्गतिजानां च विग्रहे वक्रगते विग्रहगतौ वा पूर्वोक्तबन्धोदयौ भवतः। बन्धः २९ उदयः २१। अष्टाशीतिक-चतुरशीतिकसत्त्वद्वयं च भवति ८८।८४। नरतिर्यक्षु बन्धे २९ उदये २१ सत्त्वे ८८।८४। तिरश्चां विग्रहगतौ तौ द्वौ बन्धोदयौ द्व्यशीतिकसत्त्वस्थानं ८२ नियमाद् भवति ॥२३८॥

तिर्यक्षु बन्धे २९ उदये २१ सत्त्वे ८२।

उन्हीं उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान और इक्कीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अट्ठासी और चौरासीप्रकृतिक सत्तास्थान विग्रहगतिको प्राप्त तिर्यञ्च और मनुष्योंमें कहे गये हैं। किन्तु बियासीप्रकृतिक सत्तास्थान नियमसे तिर्यञ्चमें ही पाया जाता है ॥२३८॥

बन्धस्थान २९ और उदयस्थान २१ में सत्तास्थान ८८, ८४ मनुष्य-तिर्यञ्चोंके होता है। किन्तु ८२ सत्तास्थान तिर्यञ्चोंके ही होता है।

[3]बंधं तं चेव उदयं चउवीसं णउदि होंति वाणउदी।
एइंदियऽपज्जत्ते अड चउ वासीदि संता दु ॥२३९॥

एइंदियअपज्जत्ते बंधे २९ उदये २४। संते ९२।९०।८८।८४।८२।

एकेन्द्रियापर्याप्तानां चतुर्विंशतिनामप्रकृत्युदये सति २४ तदेव नवविंशतिकं बन्धस्थानं द्वीन्द्रियादित्रसपर्याप्तेन तिर्यग्गत्या वा मनुष्यगत्या वा युतं २९ बन्धमायाति, एकेन्द्रियापर्याप्तको बध्नातीत्यर्थः। तदा तेषां सत्त्वं किमिति? द्वानवतिकं ९२ नवतिकं ९० अष्टाशीतिकं ८८ द्व्यशीतिकं ८२ च भवति ॥२३९॥

इसी उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें चौबीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए बानबै, नब्बै, अट्ठासी, चौरासी और बियासीप्रकृतिक पाँच सत्तास्थान एकेन्द्रिय अपर्याप्तके होते हैं ॥२३९॥

एकेन्द्रिय अपर्याप्तमें बन्धस्थान २९ उदयस्थान २४ और सत्तास्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं।

[4]बंधं तं चेव उदयं पणुवीसं संत सत्त हेट्ठिमया।
जह संभवेण जाणे चउगइपज्जत्तमिदराणं ॥२४०॥

अपज्जत्तेसु बंधे २९ उदये २५ संते ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।

1. सं० पञ्चसं० ५, २५४। 2. ५, 'नर-तिर्यक्षु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १८७)। 3 ५, २५५।
4. ५, २५६-२५७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चातुर्गतिकानां अपर्याप्तकाले शरीरमिश्रकाले तदेवैकोनत्रिंशत्कं २९ स्थानं बन्धं याति । पञ्चविंशतिकोदयागते २५ तदाऽवस्थितसत्त्वस्थानानि सप्त यथासम्भवं जानीहि । किन्तु तिर्यग्गत्यां त्रिनवतिकैकनवतिकसत्त्वं नास्ति । तदुक्तञ्च—

परं भवति तिर्यक्षु त्र्येकाग्रे नवती विना ।
प्रजायन्ते न तिर्यञ्चः सत्व तीर्थकृतो यतः[1] ॥२२॥ इति ॥२४०॥

अपर्याप्तेषु शरीरमिश्रकाले बन्धे २९ उदये २५ सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ ।

उसी उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें पचीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए अधस्तन सात सत्तास्थान यथासंभव चारों गतियोंके अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए ॥२४०॥

चातुर्गतिक अपर्याप्तोंके बन्ध २९ और उदय २५ में सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ यथासंभव पाये जाते हैं।

[1]तीसादो एगूणं छव्वीसं अंतिमा दु उदयादु ।
संता सत्तादिल्ला ऊणत्तीसाण बंधंति ॥२४१॥

बंधे २९ । जहसंभवं* उदये ३०।२९।२८।२७।२६। संते ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।

अन्तिमादुदयात्त्रिंशत्कादेकैकोनं षड्विंशतिकान्तं ३०।२९।२८।२७।२६ । आदिमाः सत्ताः सप्त सत्त्वस्थानानि ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ एकोनत्रिंशत्कबन्धस्थाने २९ भवन्ति । तथाहि—चातुर्गतिकजीवानां एकोनत्रिंशत्कबन्धे सति २९ षड्विंशतिक २६ सप्तविंशतिका २७ अष्टाविंशतिक २८ एकोनत्रिंशतिक २९ त्रिंशत्का ३० न्युदयस्थानानि यथासम्भवं सम्भवन्ति । तथा तद्बन्धके २९ यथासम्भवं त्रि-द्वि-एक-नवति नवत्यष्टाशीति-चतुरशीति-द्व्यशीतिसत्त्वस्थानानि सम्भवन्ति ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ । अथ तत्तदुदये तत्तत्सत्त्वे च तद्बन्धो जायते । तिर्यग्गत्यां त्रिनवतिकं एकनवतिकं च न सम्भवति ॥२४१॥

तीसप्रकृतिक अन्तिम उदयस्थानको आदि लेकर एक-एक कम करते हुए छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थान तकके स्थानवाले और आदिके सात सत्तास्थानवाले जीव उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थान को बाँधते हैं ॥२४१॥

बन्धस्थान २९ में यथासंभव ३०, २९, २८, २७, २६ प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं।

[2]बा चदु अट्ठासीदि य णउदी बाणउदि संतठाणाणि ।
उणतीसं बंधंति य तिरि एकत्तीस उदए दु ॥२४२॥

बंधे २९ । उदये ३१ संते ८२।८४।८८।९०।९२

इदि एगूणतीसबंधो समत्तो

तिरश्चां तिर्यग्गतौ एकोनत्रिंशत्कबन्धे २९ एकत्रिंशन्नामप्रकृतिस्थानमुदयमायाति । तथा तेषां द्व्यशीतिक ८२ चतुरशीतिक ८४ अष्टाशीतिक ८८ नवतिक ९० द्वानवतिक ९२ सत्त्वस्थानानि सम्भवन्ति यथासम्भवम् ॥२४२॥

बन्धे २९ उदये ३१ सत्त्वे ९२।९०।८८।८४।८२ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २५८ । 2. ५, २५९ ।

१. सं० पञ्चसं० ५, २५८ ।

*थ संभवे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा नवविंशतिकबन्धे उदय-सत्त्वस्थानानि यथासम्भवेन बालबोधाय प्रतिपाद्यते—नवविंशतिकं नाम प्रकृतिबन्धस्थानं द्वीन्द्रियादि-त्रसपर्याप्तेन तिर्यग्गत्या वा मनुष्यगत्या वा देवतीर्थेन वा युतत्वाच्चतुर्गतिजा बध्नन्ति । २९ प० वि-ति-च-उ० पंच० म० दे० ती० । तत्र नारकमिथ्यादृशां बन्ध० २९ पं० ति० म० । उदय० २१।२५।२७।२८।२९। सत्त्व० ९२।९१।९०। अत्रैकनवतिकं घर्मादित्रयापर्याप्तेष्वेव सम्भवति । सासादनस्य बन्धः २९ पं० ति० म० । उदय० २९ । सत्त्व० ९० । मिश्रस्य बन्धः २९ म० । उ० २९ । स०९२।९०। असंयतस्य घर्मायां बन्धः २९ मनु० । उद० २१।२५।२७।२८।२९। सत्त्व० ९२। ९०। वंशा-मेघयोः बन्धः २९ म० उ० २९ । स० ९२।९०। अञ्जनादिषु बन्धः २९ म० । उ० २९ । स० ९२।९०।

तिर्यग्गतौ मिथ्यादृष्टेः बन्धः २९ वि० ति० च० पं० मनु० । उद० २१।२४।२५।२६।२७।२८। २९।३०।३१। सत्त्व० ९२।९०।८८।८४।८२। सासादनस्य बन्धः २९ पं० ति० म० । उद० २१।२४।२६। ३०।सत्त्व० ९०। नात्र पञ्च-सप्ताष्टनवाग्रविंशतिकोदयः मिश्रादित्रये नास्य बन्धः ।

मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्टौ बन्धः २९ वि० ति० च० पं० म० । उदय० २१।२६।२८।२९।३०। सत्त्व० ९२।९१।९०।८८।८४। अत्र तेजो-वायूनामनुत्पत्तेर्न द्व्यशीतिकसत्त्वम्, प्राग्बद्धनरकायुः प्रारब्धतीर्थ-बन्धासंयतस्य नरकगमनाभिमुखमिथ्यादृष्टित्वे मनुष्यगतियुतं तत्स्थानं बध्नतः त्रिंशत्कोदयेनैकनवतिक-सत्त्वम् । सासादने बन्धः २९ पं० ति० म० उद० २१।२६।३० । सत्त्वं ९० । मिश्रे नास्य बन्धः । असंयते बन्धः २९ देव-तीर्थयुतम् । उदय० २१।२६।२८।२९।३०। सत्त्व० ९३।९१। देशे बं० २९ देव-तीर्थयुतम् । उद० ३०। सत्त्व० ९३।९१। प्रमत्ते बं० २९ दे० ती० । उद० २५।२७।२८।२९।३०। सत्त्व० ९३।९१। अप्रमत्ते बं० २९ दे० ती० । उद० ३० स० ९३।९१। अपूर्वकरणे बं० २९ दे० ती० । उ० ३०। स० ९३।९१ ।

देवगतौ भवनत्रयादिसहस्रारान्ते मिथ्यादृष्टौ संज्ञिपंचेन्द्रिय-पर्याप्ततिर्यग्गत्या मनुष्यगत्या युतमेव बन्ध० २९ पं० ति० म० । उद० २१।२५।२७।२८।२९। सत्त्व० ९२।९०। सासादने बन्धः २९ पं० ति० म० । उद० २१।२५।२७।२८। २९। सत्त्व० ९०। मिश्रे बं० २९ म० । उद० २९। स० ९२।९०। असंयते बं० २९ म० । उद० २१।२५।२७।२८।२९।भवनत्रयासंयते बं० २९ म० । उद० २९ । सत्त्व० ९२।९० आनताद्युपरिमग्रैवेयकान्ते मिथ्यादृष्टौ बन्धः २९ म० । उद० २१।२५।२७।२८।२९ । स० ९२।९०। सासादने बन्धः २९ म० । उद० २१।२५।२७।२८।२९। सत्त्व० ९० । मिश्रे बं० २९ म० । उद० २९ । स० ९३।९० । असंयते बं० २९ म० । उद० २१।२५।२७।२८।२९। स० ९२।९०। अनुदिशानुत्तरासंयते बन्धः २९ मनुष्ययुतम् । उद० २१।२५।२७।२८।२९। सत्त्व० ९२।९०।*

इत्येकोनत्रिंशतो बन्धः समाप्तः ।

इकतीस प्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए बियासी, चौरासी, अट्ठासी, नब्बै और बानबै-प्रकृतिक सत्तास्थानवाले तिर्यञ्च उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानको बाँधते हैं ॥२४२॥

बन्धस्थान २९ में उदयस्थान ३१ के रहते हुए सत्तास्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं ।

इस प्रकार उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानको आधार बनाकर उदयस्थान और सत्तास्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें संभव उदयस्थानों और सत्त्वस्थानोंका वर्णन करते हैं—

[1]जे ऊणतीसबंधे भणिया खलु उदय-संतठाणाणि ।
ते तीसबंधठाणे णियमा होंति त्ति बोहव्वा ॥२४३॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २६० ।

* सर्वोऽयमुपरितनसन्दर्भः गो० कर्मकाण्डस्य गाथाङ्क ७४५ तमटीकया सह शब्दशः समानः । (पृ० ९००–९०१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ त्रिंशत्कस्थानबन्धस्य विशेषं गाथाद्वयेनाऽऽह—['जे ऊणतीसबंधे' इत्यादि ।] यान्युदय-सत्त्वस्थानान्येकोनत्रिंशत्कबन्धे भणितानि, तान्येवोदय-सत्त्वस्थानानि त्रिंशत्कबन्धस्थाने भणितानि भवन्तीति ज्ञातव्यानि ॥२४३॥

उनतीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें जो-जो उदयस्थान और सत्तास्थान पहले कहे गये हैं, वे ही नियमसे तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२४३॥

अब यहाँपर जो कुछ विशेषता है उसे कहते हैं—

[1]बंधं तं चेवुदयं पणुवीसं संत सत्त ठाणाणि ।
ति इगि णउदि देव-णिरए तिरिए वासीदि संता दु ॥२४४॥
बाणउदि णउदिसंता चउगइजीवेसु अट्ठ चउसीदिं ।
तिरिय-मणुएसु जाणे सव्वे सत्तेव सत्ता दु ॥२४५॥

[2]बंधे ३०। उदये २५ संते ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२। एएसिं च सत्तसंतठाणाणं विभागो सुर-णारएसु—९३।९१। तिरिएसु ८२ । चउगइयजीवेसु ९२।९० । मणुय-तिरिएसु ८८।८४।

त्रिंशत्कबन्धके सामान्येन तत्त्रिंशतो बन्धे ३० पञ्चविंशतिकस्थानोदये २५ सत्त्वस्थानानि सप्त भवन्ति ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२। विशेषतो देवगतौ देवानां नारकगतौ नारकाणां च त्रिंशत्कनाम-प्रकृतिबन्धके पञ्चविंशतिकोदयस्थाने २५ त्रिनवतिकैकनवतिकसत्त्वस्थानद्वयं ९३।९१। तिर्यग्गतौ तिर्यक्षु त्रिंशत्कबन्धे ३० पञ्चविंशतिकोदयस्थाने २५ द्व्यशीतिकसत्त्वस्थानं ८२ । तु पुनश्चातुर्गतिकजीवानां त्रिंशत्क-बन्धे ३० पञ्चविंशतिकोदये २५ द्वानवतिक-नवतिकसत्त्वस्थानद्वयम् ९२।९०। तिर्यङ्-मनुष्येषु त्रिंशत्कबन्धे ३० पञ्चविंशतिकोदये २५ अष्टाशीतिक-चतुरशीतिकसत्त्वस्थानद्वयम् ८८।८४। इति सर्वाणि सप्त सत्त्वस्थानानि सत्त्वभेदाद् विभागं जानीहि ॥२४४-२४५॥

एतेषां सप्तानां सत्त्वस्थानानां विभागः सुर-नारकेषु बन्धः ३० । उदये २५ । सत्त्वे ९३।९१ । तिर्यक्षु बन्धः ३० । उदये २५ । सत्त्वे ८२ । चतुर्गतिजीवेषु बन्धः ३०। उदये २५। सत्त्वे ९२।९०। मनुष्य-तिर्यक्षु बन्धः ३० । उदये २५ । सत्त्वे ८८।८४।

तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए आदिके सात सत्तास्थान होते हैं। उनमेंसे देव और नारकियोंके तेरानबै और इक्यानबैप्रकृतिक दो सत्तास्थान होते हैं, तिर्यञ्चोंमें बियासीप्रकृतिक सत्तास्थान होता है, चारों गतियोंके जीवोंके बानबै और नब्बैप्रकृतिक स्थान होते हैं, तथा तिर्यञ्च और मनुष्योंमें अट्ठासी और चौरासीप्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार तीसप्रकृतिक बन्धस्थान और पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थानमें आदिके सातों ही सत्तास्थान जानना चाहिए ॥२४४-२४५॥

बन्धस्थान ३० और उदयस्थान २५ में सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४ और ८२ होते हैं। इन सत्तास्थानोंका विभाग इस प्रकार है—देव-नारकोंमें ९३, ९१, तिर्यञ्चोंमें ८२, चातुर्गतिक जीवोंमें ९२, ९० और मनुष्य-तिर्यञ्चोंमें ८८, ८४ प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं।

[3]तं चेव य बंधुदयं छव्वीसं णउदि होइ बाणउदी ।
अड चउरासीदि तिरिय-मणुए तिरिए वासीदि संता दु ॥२४६॥

[4]बंधे ३० उदये २६ तिरिय-मणुएसु संते ९२।९०।८८।८४। तिरिए ८२ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २६१-२६३ । 2. ५, 'सामान्येन त्रिंशद्बन्धे' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १८८) ।
3. ५, २६४ । 4. ५, 'त्रिंशद्बन्धे' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १८८) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यङ्-मनुष्येषु षड्विंशतिकस्थानोदये २६ तदेव त्रिंशत्कबन्धस्थानं ३० द्वानवति ९२ नवतिका९० ष्टाशीति ८८ चतुरशीतिकानि ८४ सत्त्वस्थानानि भवन्ति । तिर्यङ्-मनुष्येषु बन्धः ३० उदये २६ सत्त्वे ९२।९०।८८।८४ तिरश्चां बन्धे ३९ उदये २६ द्व्यशीतिकं सत्त्वस्थानं ८२ भवति ॥२४६॥

उसी तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें छब्बीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए बानबै, नब्बै, अट्ठासी और चौरासीप्रकृतिक सत्तास्थान तिर्यञ्च और मनुष्योंमें पाये जाते हैं । किन्तु बियासी प्रकृतिक सत्तास्थान तिर्यञ्चोंमें ही पाया जाता है ॥२४६॥

बन्धस्थान ३० में तथा उदयस्थान २६ में ९२, ९०, ८८, ८४ प्रकृतिक सत्तास्थान मनुष्य-तिर्यञ्चोंमें तथा ८२ प्रकृतिक सत्तास्थान तिर्यञ्चोंमें होता है ।

[1]इगि पण सत्तावीसं अट्ठावीसूणतीस उदया दु ।
तीसण्हं बंधम्मि य सत्ता आदिल्लया सत्त ॥२४७॥

[2]बंधे ३० उदये २१।२५।२७।२८।२९। संते ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।

त्रिंशन्नामप्रकृतिबन्धस्थाने ३० एकविंशतिकं २१ पञ्चविंशतिकं २५ सप्तविंशतिकं २७ अष्टाविंशतिकं २८ एकोनत्रिंशत्कं २९ च क्रमाद् भवतीत्युदयस्थानपञ्चकम् । आदिमानि सत्त्वस्थानानि सप्त भवन्ति ॥२४७॥

बन्धः ३० उदये २१।२५।२७।२८।२९ सत्तायां ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।

तीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीसप्रकृतिक उदय-स्थानोंके रहते हुए आदिके सात सत्तास्थान होते हैं ॥२४७॥

बन्धस्थान ३० उदयस्थान २१, २५, २७, २८, २९ के रहते हुए ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४ और ८२ प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं ।

[3]चउछव्वीसिगितीसय-तीस-उदयम्मि तीस-बंधम्मि ।
तेणउदिगिणउदीओ वज्जित्ता पंच संता दु ॥२४८॥

[4]बन्धे ३० उदये २४।२६।३०।३१ संते पंच ९२।९०।८८।८४।८२।

इदि तीसबंधो समत्तो ।

त्रिंशत्कस्थानबन्धे ३० चतुर्विंशतिकोदये २४ षड्विंशतिकोदये २६ त्रिंशत्कोदये ३० एकत्रिंशत्कोदये ३१ त्रिनवतिकैकनवतिकस्थानद्वयं वर्जयित्वा पञ्च सत्त्वस्थानानि ॥२४८॥

बन्धे ३० उदये २४।२६।३०।३१ सत्त्वे पञ्च ९२।९०।८८।८४।८२ ।

अथ चतुर्गतिजानां यथासम्भवं गुणस्थाने बन्धादित्रिकमुच्यते—बं० ३० / उ० ९ नामप्रकृतित्रिंशत्कं बन्ध-स्थानं बन्धः ३० त्रसपर्याप्तोद्योत-तिर्यग्गतियुत-मनुष्यगतियुत-मनुष्यगतितीर्थयुत-देवगत्याहारकद्वययुतत्वा-च्चतुर्गतिजा बध्नन्ति । बं ३० प० वि० ति० च० प० म० म० ती० दे० आहारा । तत्र सर्वनारकमिथ्यादृष्टौ बं० ३० पं० ति० । उद० २१।२५।२७।२८।२९ । स० ९२।९० । सासादने बं० ३० पं० ति० । उद्योतोदये २९ । सत्त्व० ९० । मिश्रे नास्य बन्धः । घर्मासंयते मनुष्यगति-तीर्थयुतबन्धः ३० म० ती० । उद० २१।२५।२७।२८।२९ । सत्ता ९१ । वंशा-मेघयोः बं० ३० म० तीर्थ० उद० २९ । सत्ता ९१ । अञ्जनादिषु नास्ति ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २६५ । 2. ५, 'बन्धे ३०' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १८८) । 3. ५, २६६ । 4. ५, 'बन्धे ३० उदये' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १८८) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यग्गतौ सर्वमिथ्यादृष्टौ बन्धः ३० पं० ति० । उद्योतोदये २१।२४।२६।३०।३१ । स० ९० । [सासादने बं० ३० ति० उ० । उ० २१।२४।२६।३०।३१ स० ९०] मिश्रादित्रये नास्य बन्धः ।

मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्टौ बन्धः ३० ति० उ० । उदये २१।२६।२८।२९।३० । सत्त्वं ९२।९०।८८।८४ । सासादने बं० ३० ति० उ० । उद० २१।२६।३० । स० ९० । मिश्रादिचतुष्के नास्य बन्धः । अप्रमत्तादिद्वये बन्धः ३० देव० आहारक० । उद० ३० । स० ९२ ।

देवगतौ भवनत्रयादि-सहस्रारान्तेषूद्योत-तिर्यग्गतियुतम् । तत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धः ३० ति० उद्यो० । उद० २१।२५।२७।२८।२९।३० । सत्त्व० ९२।९० । सासादने बं० ३० ति० उद्यो० । उद० २१।२५।२९ । सत्त्वं ९० । मिश्रे भवनत्रयासंयते च न त्रिंशत्कम् । किं तर्हि ? तन्मनुष्यगतियुतं नवविंशतिकमेव सम्भवति । सौधर्मादि-सहस्रारान्तासंयते मनुष्यगति-तीर्थयुतं बन्धः ३० म० ती० । उद० २१।२५।२७।२८।२९ । सत्त्व० ९३।९१ । आनताद्युपरिमग्रैवेयकान्तमिथ्यादृष्ट्यादित्रये नास्य बन्धः । आनतादिसर्वार्थसिद्ध्यन्तासंयते च मनुष्यगति-तीर्थयुतबन्धः ३० मनु० तीर्थ० । उद० २१।२५।२७।२८।२९ । सत्त्व० ९३।९१ ।

इति त्रिंशत्कस्थानबन्धः समाप्तः ।

उसी तीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें चौबीस, छब्बीस, तीस और इकतीसप्रकृतिक उदयस्थानके रहते हुए तेरानबै और इक्यानबैप्रकृतिक दो स्थानोंको छोड़कर शेष पाँच सत्तास्थान पाये जाते हैं ॥२४८॥

बन्धस्थान ३० में उदयस्थान २४, २६, ३०, ३१ के रहते हुए सत्तास्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं ।

इस प्रकार तीसप्रकृतिक बन्धस्थानको आधार बनाकर उदयस्थान और सत्तास्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मूल सप्ततिकाकार शेष बन्धस्थानोंमें संभव उदय और सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०२६][1]एगेगं इगितीसे एगेगुदयट्ठ संतम्मि ।
उवरयबंधे चउ दस वेदयदि संतठाणाणि ॥२४९[1]॥

बन्ध०	३१	१	०
उद०	१	१	४
सत्त्व०	१	८	१०

अथैकत्रिंशत्कैकोपरतबन्धेषु उदय-सत्त्वस्थानस्वरूपं गाथाचतुष्केणाऽऽह—['एगेगं इगितीसे' इत्यादि ।] एकत्रिंशत्कनामप्रकृतिबन्धस्थाने ३१ एकमुदयस्थानं १ एकं सत्त्वस्थानं १ । एकस्मिन् यशः-प्रकृतिबन्धके एकोदयस्थानं १ अष्टौ सत्त्वस्थानानि ८ । उपरतबन्धे बन्ध-रहिते ० उदयस्थानानि चत्वार्युदयन्ति ४ । सत्त्वस्थानानि दश १० भवन्ति ॥२४९॥

बं०	३१	१	०
उ०	१	१	४
स०	१	८	१०

इकतीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें एक उदयस्थान और एक सत्तास्थान होता है । एकप्रकृतिक बन्धस्थानमें एक उदयस्थान और आठ सत्तास्थान होते हैं । उपरतबन्धमें चार उदयस्थान और दश सत्तास्थान होते हैं ।

इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २६७ ।

१. सप्ततिका० ३२ । तत्र चतुर्थचरणे 'वेयगसंतम्मि ट्ठाणाणि' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भाष्यगाथाकार उपर्युक्त अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

[1]इगितीसबंधगेसु य तीसुदओ संतम्मि य तेणउदिं ।
एयविहबंधगेसु य उदओ वि य तीस अट्ठ संता य ॥२५०॥
आदी वि य चउठाणा उवरिम दो वज्जिऊण चउ हेट्ठा ।
संतट्ठाणा णियमा उवसम-खवगेसु बोहव्वा ॥२५१॥

[2]अप्पमत्त-अपुव्वाणं बंधे ३१ उदये ३० संते ९३। बंधे १ उदये ३० उवसमएसु संते ९३।९२।९१।९०। खवएसु ८०।७९।७८।७७।

एकत्रिंशत्कनामप्रकृतिबन्धकयोरप्रमत्तापूर्वकरणगुणस्थानयोः सत्त्वे त्रिनवतिकसत्त्वस्थानं स्यात् । अप्रमत्तापूर्वकरणयोः बन्धे ३१ उदये ३० सत्त्वे ९३ । एकविधयशःकीर्त्तिबन्धकेषु अपूर्वकरणस्य सप्तमभागा-निवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायिकेषु त्रिंशन्नामप्रकृत्युदयस्थानं ३० अष्टौ सत्त्वस्थानानि ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७। तानि कानि सत्त्वस्थानानान्यष्टौ ? सत्त्वेषु आद्यानि चत्वारि स्थानानि ९३।९२।९१।९०। उपरिमे द्वे दशकनवकस्थाने वर्जयित्वा अधःस्थितानि चतुःसत्त्वस्थानानि ८०।७९।७८।७७। उपशमेषु क्षपकेषु नियमाद् ज्ञातव्यानि । तथाहि—अपूर्वकरणसप्तमभागानिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायाणामुपशमश्रेणिषु एकयशस्कीर्त्ति-बन्धकेषु अबन्धकोपशान्तकषाये च प्रत्येकं सत्त्वस्थानानि चत्वारि ९३।९२।९१।९०। अपूर्वकरणस्य क्षपकश्रेण्यां आ[दिम] सत्त्वसतुष्टयम्-९३।९२।९१।९०। अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः क्षपकश्रेण्योः ८०।७९।७८।७७। नरकद्विकं २ तिर्यग्द्विकं २ विकलत्रयं ३ आतपः १ उद्योतः १ एकेन्द्रियं १ साधारणं १ सूक्ष्मं १ स्थावरं १ एवं त्रयोदश प्रकृती १३ रनिवृत्तिकरणस्य प्रथमभागे क्षपयति त्रिनवतिकमध्यात्तदा ८०। तीर्थं विना ७९। आहारकद्वयं विना ७८। तीर्थाहारकत्रिकं विना ७७ ॥२५०–२५१॥

इकतीसप्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवोंमें तीसप्रकृतिक एक उदयस्थानका उदय, तथा सत्तामें तेरानबे प्रकृतिक एक सत्तास्थान रहता है। एकप्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवोंमें तीसप्रकृतिक एक उदयस्थान और आठ सत्तास्थान होते हैं। जो इस प्रकार हैं—आदि के चार सत्तास्थान और उपरिम दो को छोड़कर अधस्तन चार सत्तास्थान। ये सत्तास्थान नियमसे उपशामकोंमें और क्षपकोंमें जानना चाहिए ॥२५०–२५१॥

अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणसंयतोंके बन्धस्थान ३१ में उदयस्थान ३० के रहते हुए ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। एक प्रकृतिक बन्धस्थानमें उदयस्थान ३० के रहते हुए उपशामकोंमें ९३, ९२, ९१ और ९० प्रकृतिक चार सत्तास्थान तथा क्षपकोंमें ८०, ७९, ७८ और ७७ प्रकृतिक चार सत्तास्थान होते हैं।

[3]उवरयबंधे इगितीस तीस णव अट्ठ उदयठाणाणि ।
छा उवरिं चउ हेट्ठा संतट्ठाणाणि दस एदे ॥२५२॥

[4]उवरयबंधे उदया ३१।३०।९।८। संते ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७।१०।९।

एवं णामपरूवणा समत्ता ।

उपरतबन्धेषु उपशान्त-क्षीणकषाय-सयोगायोगिषु चतुर्षु ०।०।०।०। एकत्रिंशत्क ३१ त्रिंशत्क ३० नवका ९ ष्टकोदयस्थानानि चत्वारि ३१।३०।९।८ षड्डुपरितनसत्त्वस्थानानि अधःस्थानानि चतुःसत्त्वस्थानानि ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७।१०।९। तथाहि—उपशान्तकषाये ९३।९२।९१।९०। उदय० ३०।

1. सं० पञ्चसं० ५, २६८–२६९। 2. ५, 'उपशमकेषु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १८९)।
3. ५, २७०। 4. ५, 'नष्टबन्धे पाका' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १८७)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षीणकषाये अबन्धके ०। उदय० ३० सत्त्वस्थानानि ८०।७९।७८।७७। सयोगे ०। उदये ३१।३० सत्त्व० ८०।७९।७८।७७। अयोगिद्विचरमसमये उदये ३१।३०। सत्त्व० ८०।७९।७८।७७। तच्चरमसमये उदये ९। ८। सत्त्व० १०।९ ॥२५२॥

पुनरपि एकत्रिंशत्कादिबन्धो विचार्यते—एकत्रिंशत्कं ३१ देवगत्याऽऽहारकद्वयतीर्थयुतत्वाद्प्रमत्ता-पूर्वकरणा एव बध्नन्ति। बं० ३१ देव-आहारक-तीर्थयुत०। उद० ३०। स० ९३। एककबन्धो विगतिर-पूर्वकरणे बं० १ उद० ३०। स० ९३।९२।९१।९०। अनिवृत्तिकरणे बं० १ उ० ३० स० ९३।९२।९१।९०। ८०।७९।७८।७७। सूक्ष्मसाम्पराये बं० १ उद० ३०। स० ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७। उपशान्ते बं० ०। उ० ३०। स० ९३।९२।९१।९०। क्षीणे बं० ०। उ० ३० स० ८०।७९।७८।७७। सयोगे स्वस्थाने बं० ०। उ० ३०।३१। स० ८०।७९।७८।७७। समुद्घाते बं० ०। उ० २०।२१।२६।२७।२८। २९।३०।३१। स० ८०।७९।७८।७७। अयोगे बं० ०। उ० ३० तीर्थसहितं ३१।९।८। सत्त्व० ८०।७९। ७८।७७।१०।९। इति विशेषो ज्ञातव्यः।

इति श्रीपञ्चसंग्रहापरनामलघुगोम्मटसारसिद्धान्तटीकायां नामकर्मप्ररूपणा समाप्ता।

उपरत बन्धस्थानमें इकतीस, तीस, नौ और आठ प्रकृतिक चार उदयस्थान, तथा उपरितन छह और अधस्तन चार; इस प्रकार दश सत्तास्थान होते हैं ॥२५२॥

उपरतबन्धमें उदयस्थान ३१, ३०, ९, ८, तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ होते हैं।

इस प्रकार नामकर्मके बन्धस्थानमें उदयस्थानोंके साथ सत्तास्थानोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब मूल सप्ततिकाकार आठों कर्मोंके उपर्युक्त बन्धादि तीनों प्रकारके स्थानोंका जीव-समास और गुणस्थानोंकी अपेक्षा स्वामित्वके कथन करनेका निर्देश करते हैं—

[मूलगा०२७] [1]तिवियप्पपयडिठाणा जीव-गुणसण्णिदेसु ठाणेसु।
भंगा पउंजियव्वा जत्थ जहा पयडिसंभवो हवइ[2] ॥२५३॥

ॐ नमः श्रीसप्तसिद्धेभ्यः।

जिनान् सिद्धान् नमस्कृत्य साधून् सद्गुणधारकान्।
लक्ष्मीवीरेन्दुचिद्भूषात् ब्रुवे बन्धादिकत्रिकान् ॥
स्थानानां त्रिविकल्पानां कर्त्तव्या विनियोजना।
अतो जीवगुणस्थाने क्रमतः सर्वकर्मणाम्[3] ॥२३॥

यत्र यथा प्रकृतीनां सम्भवो भवति, तत्र तथा जीव-गुणसंज्ञितेषु स्थानेषु जीवसमासेषु गुणस्थानेषु च त्रिविकल्पप्रकृतिस्थानानां सर्वकर्मणां सर्वप्रकृतीनां बन्धोदयसत्त्वरूपस्थानानां भङ्गा विकल्पा प्रकृष्टेन योजनीयाः ॥२५३॥

बन्ध, उदय और सत्ताकी अपेक्षा तीन प्रकारके जो प्रकृतिस्थान हैं, उनकी अपेक्षा जीव-समास और गुणस्थानोंमें जहाँ जितनी प्रकृतियाँ संभव हों, वहाँ उतने भङ्ग घटित करना चाहिए ॥२५३॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २७६।

१. गो० क० गा० ७४५ सं० टीका (पृ० ९०३)।

२. सप्ततिका० ३३। तत्र प्रथमचरणे 'तिविगप्पपगइट्ठाणेहिं' इति पाठः।

३. सं० पञ्चसं० ५, २७६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब पहले जीवसमासोंमें ज्ञानावरण और अन्तराय कर्मसम्बन्धी बन्धादिस्थानोंके स्वामित्वका निर्देश करते हैं—

[मूलगा०२८] [1]तेरससु जीवसंखेवएसु णाणंतराय-तिवियप्पो ।
एक्कम्हि ति-दु-वियप्पो करणं पडि एत्थ अवियप्पो[1] ॥२५४॥

[2]तेरससु जीवसमासेसु ५ ५ ५ सण्णिपज्जत्ते मिच्छाइसहुमंतेसु गुणेसु बंधाइसु ५ ५ ५ तत्थेव उवरयबंधे उवसंत-खीणाणं ० ५ ५ ।

अथ चतुर्दशजीवसमासेषु ज्ञानावरणान्तरायकर्मणोः प्रकृतीनां बन्धादिविकल्पान् योजयति—['तेरससु जीवसंखेवएसु' इत्यादि ।] एकेन्द्रिय-सूक्ष्मबादर-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियासंज्ञिनः पर्याप्तापर्याप्ता इति द्वादश, पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यपर्याप्तक एक इति त्रयोदशजीवसमासेषु ज्ञानावरणान्तरायप्रकृतीनां त्रिविकल्पो भवति बन्धोदयसत्त्वरूपो भवतीत्यर्थः । एकस्मिन् संज्ञिपर्याप्तके जीवसमासे त्रिविकल्पो द्विविकल्पश्च भवति । अत्र द्विविकल्पे करणमित्युपशान्त-क्षीणकषाययोः बन्धं प्रति विकल्पो न भवति । उपशान्तक्षीणकषाययोः बन्धस्य विकल्पो न भवतीत्यर्थः ॥२५४॥

त्रयोदशसु जीवसमासेषु ज्ञानावरणान्तराययोः प्रकृतीनां बन्धोदयसत्त्वम्— चतुर्दशे

	ज्ञा०	अं०
बं०	५	५
उ०	५	५
स०	५	५

संज्ञिनि पर्याप्ते जीवसमासे मिथ्यादृष्ट्यादि-सूक्ष्मसाम्परायान्तेषु गुणस्थानेषु बन्धादित्रिके

	ज्ञा०	अं०
बं०	५	५
उ०	५	५
स०	५	५

तत्रैव संज्ञिपर्याप्ते जीवसमासे उपरतबन्धयोर्बन्धरहितयोरुपशान्त-क्षीणकषाययोरुदये सत्त्वे च

	ज्ञा०	अं०
बं०	०	०
उ०	५	५
स०	५	५

इति जीवसमासेषु ज्ञानावरणान्तरायप्रकृतिविकल्पः समाप्तः ।

आदिके तेरह जीवसमासोंमें ज्ञानावरण और अन्तरायके तीन विकल्प होते हैं । संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त नामक एक चौदहवें जीवसमासमें तीन और दो विकल्प होते हैं । किन्तु करण अर्थात् उपशान्त और क्षीणकषायगुणस्थानमें बन्धका कोई विकल्प नहीं है ॥२५४॥

विशेषार्थ—तेरह जीवसमासोंमें दोनों कर्मोंका पाँचप्रकृतिक बन्ध, पाँचप्रकृतिक उदय और पाँचप्रकृतिक सत्तारूप एक ही विकल्प या भङ्ग है । संज्ञीपंञ्चेन्द्रियपर्याप्तमें मिथ्यादृष्टिगुणस्थानसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानतक पाँचप्रकृतिकबन्ध, और सत्तारूप; तथा उपरतबन्धवाले उपशान्त और क्षीणमोही जीवोंके पाँचप्रकृतिक उदय और सत्तारूप दो भङ्ग होते हैं । श्वे० चूर्णि और टीकाकारोंने गाथाके चौथे चरणका अर्थ इस प्रकार किया है—करण अर्थात् केवल द्रव्य मनकी अपेक्षा जो जीव संज्ञिपञ्चेन्द्रिय कहलाते हैं ऐसे केवलीके उक्त दोनों कर्मोंका बन्धउदय-सत्त्वसम्बन्धी कोई विकल्प नहीं है ।

1. सं० पञ्चसं० ५, २७७ । 2. ५, 'जीवसमासेषु' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १९०) ।

1. सप्ततिका० ३४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मूलसप्ततिकाकार दर्शनावरण कर्मके बन्धादि स्थानोंके स्वामित्वसम्बन्धी भंगोंका जीवसमासोंमें निर्देश करते हुए, तथा वेदनीय, आयु और गोत्र-सम्बन्धी स्थानोंके भंगोंको जाननेका संकेत करते हुए मोहकर्मके भंगोंके कथनकी प्रतिज्ञा करते हैं—

[मूलगा०२९] [1]तेरे णव चउ पणयं णव संता एयम्मि तेरह वियप्पा ।
वेयणीयाउगोदे विभज्ज मोहं परं वोच्छं[1] ॥२५५॥

दंसणा०

[2]तेरस जीवेसु ९/४/९ ९/५/९ सण्णिपज्जत्ते तेरस त्ति कहं ? वुच्चए—मिच्छा—सासणाणं ९/४/९ ९/५/९ मिस्साइ-अपुव्वकरणपढमसत्तमभागं जाव ६/४/९ ६/५/९ दुविहेसु उवसम-खवय-अपुव्वकरणाणियट्टिसु तहा उवसम-सुहुम-कसाए ४/४/९ ४/५/९ अणियट्टि-सुहुमखवगाणं ४/४/६ ४/५/६ उवसंते ०/४/९ ०/५/९ खीणदुचरिमसमये ०/४/६ ०/५/६ खीण-चरिमसमये ०/४/४ सव्वे मिलिया १३ ।

अथ दर्शनावरणस्य बन्धादि-विकल्पान् योजयति—['तेरे णव चउ पणयं' इत्यादि ।] संज्ञि-पञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीवसमासं विना त्रयोदशसु जीवसमासेषु दर्शनावरणनवप्रकृतीनां बन्धः ९ । चतुः-प्रकृतीनामुदयः ४ । अथवा पञ्चप्रकृतीनामुदयः ५ । कथम् ? जाग्रज्जीवे चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानां चतुर्णामुदयः, निद्रिते जीवे तु निद्राणां मध्ये एकतरा निद्रा १ इति पञ्चप्रकृतीनामुदयः ५ । दर्शनावरणस्य नवप्रकृतीनां सत्ता ९ । एकस्मिन् पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकजीवसमासे चतुर्दशे दर्शनावरणस्य त्रयोदश विकल्पा भङ्गा भवन्ति । वेदनीयायुर्गोत्रेषु त्रिसंयोगभङ्गान् युक्त्वा जीवसमासेषु संयोज्याग्रे मोहनीयं वक्ष्यामि ॥२५५॥

त्रयोदशसु जीवसमासेषु दर्शनावरणस्य बन्धादित्रयम्—बं० ९ ९ / उ० ४ ५ / स० ९ ९ । संज्ञिपर्याप्तकजीवसमासे त्रयो-दश भङ्गा इति कथं चेदुच्यते—पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तजीवसमासे मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः बं० ९ ९ / उ० ४ ५ / स० ९ ९ । मिश्रा-पूर्वकरणद्वयप्रथमभागं यावत् स्त्यानगृद्धित्रयबन्धं विना बं० ६ ६ / उ० ४ ५ / स० ९ ९ द्विविधेषु उपशम-क्षपक श्रेणिद्वयापूर्वकरणशेषषड्भागानिवृत्तिकरणेषु तथा सूक्ष्मसाम्परायस्योपशमश्रेणौ निद्रा-प्रचले विना बं० ४ ४ / उ० ४ ५ / स० ९ ९ । ततोऽनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः क्षपकश्रेण्योः स्त्यानत्रिकसत्त्वं विना बं० ४ ४ / उ० ४ ५ / स० ६ ६ । उपशान्त-कषाये अबन्धके बं० ० ० / उ० ४ ५ / स० ९ ९ । क्षीणकषायस्य द्विचरमसमये । बं० ० ० / उ० ४ ५ / स० ६ ६ । क्षीणकषायस्य चरमसमये ० / ४ / ४ ।

---

1. ५, २७८-२७९ । 2. ५, 'त्रयोदशसु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १९०) ।

१. सप्ततिका० ३५ । तत्र द्वितीयचरणे 'नव संतेगम्मि भंगमेक्कारा' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वे मीलिता भङ्गाः १३ । कथम् ? दर्शनावरणस्य बन्धभङ्गास्त्रयः ३ । उदयभङ्गाः सप्त ७। सत्त्वभङ्गास्त्रयः ३। एवं विसदृशभङ्गास्त्रयोदश १३।

बं०	९	६	४	४	०	०	०
उ०	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५
सं०	९	९	९	९	९	६	४

इति जीवसमासेषु दर्शनावरणस्य विकल्पाः समाप्ताः ।

प्रारम्भके तेरह जीव-समासोंमें दर्शनावरणकर्मके नौ प्रकृतिक बन्धस्थान, चार अथवा पाँच प्रकृतिक उदयस्थान और नौ प्रकृतिक सत्तास्थानरूप दो भंग होते हैं। एक चौदहवें संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक नामक जीवसमासमें तेरह विकल्प होते हैं। वेदनीय, आयु और गोत्रकर्म-सम्बन्धी स्थानोंके भंगोंका स्वयं विभाग करना चाहिए। तदनन्तर क्रम-प्राप्त मोहनीयकर्मके स्थानसम्बन्धी भंगोंका मैं वर्णन करूँगा ॥२५५॥

आदिके तेरह जीवसमासोंमें दर्शनावरणकर्मके नौप्रकृतिक बन्धस्थानमें चारप्रकृतिक उदयस्थान और नौप्रकृतिक सत्तास्थान; तथा पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और नौप्रकृतिक सत्तास्थान ऐसे दो भंग होते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक नामक जीवसमासमें तेरह भंग किस प्रकारसे संभव हैं ? इस शंकाका समाधान करते हैं—मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके नौप्रकृतिक बन्धस्थान, चारप्रकृतिक उदयस्थान और नौप्रकृतिक सत्तास्थान; तथा नौ-प्रकृतिक बन्धस्थान, पाँच प्रकृतिक उदयस्थान और नौप्रकृतिक सत्तास्थान; ये दो भंग होते हैं। तीसरे मिश्रगुणस्थानको आदि लेकर अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थानके सात भागोंमेंसे आदिके प्रथम भाग-पर्यन्त छहप्रकृतिक बन्धस्थान, चारप्रकृतिक उदयस्थान, नौप्रकृतिक सत्ता-स्थान; तथा छहप्रकृतिक बन्धस्थान, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और नौप्रकृतिक सत्तास्थान; ये दो भंग होते हैं। उपशामक और क्षपक अपूर्वकरणके शेष छह भागोंमें, तथा उपशामक अनिवृत्तिमें, उपशामक सूक्ष्मसाम्परायमें; एवं क्षपकश्रेणी-सम्बन्धी अनिवृत्तिकरणके असंख्यातवें भागपर्यन्त चारप्रकृतिक बन्धस्थान, चारप्रकृतिक उदयस्थान, नौप्रकृतिक सत्त्वस्थान, तथा चारप्रकृतिक बन्धस्थान, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान, नौप्रकृतिक सत्तास्थान, ये दो भंग होते हैं। क्षपक अनिवृत्तिकरणके शेष संख्यात भागमें और क्षपक सूक्ष्मसाम्परायमें चारप्रकृतिक बन्धस्थान, चारप्रकृतिक उदयस्थान, छहप्रकृतिक सत्तास्थान, तथा चार प्रकृतिक बन्धस्थान, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और पाँचप्रकृतिक सत्तास्थान; ये दो भंग होते हैं। दशवें गुणस्थानमें दर्शनावरणकी बन्धव्युच्छित्ति होजानेसे उपशान्तमोहमें बन्धस्थान कोई नहीं है, उदयस्थान चारप्रकृतिक, सत्तास्थान नौप्रकृतिक; तथा उदयस्थान पाँचप्रकृतिक और सत्तास्थान नौप्रकृतिक; ये दो भंग होते हैं। क्षीणमोहमें द्विचरम समय तक चारप्रकृतिक उदयस्थान, छह-प्रकृतिक सत्तास्थान; तथा पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और छह प्रकृतिक सत्तास्थान ये दो भंग होते हैं। क्षीणमोहके चरम समयमें चारप्रकृतिक उदयस्थान और चारप्रकृतिक सत्तास्थान ये रूप एक भंग होता है। इस प्रकार सब मिला करके संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवसमासमें तेरह भंग होते हैं। इन सबकी अंकसंदृष्टियाँ मूलमें दी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भाष्यगाथाकार मूलसप्ततिकाकार-द्वारा सूचित वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]बासट्ठि वेयणीए आउस्स हवंति तियधिगसयं तु ।
गोदस्स य सगदालं जीवसमासेसु णायव्वा ॥२५६॥

६२।१०३।४७।

अथ जीवसमासेषु वेदनीयायुर्गोत्राणां भङ्गाः कति चेदाह—['बासट्ठि वेयणीए' इत्यादि ।] जीवसमासेषु वेदनीयस्य द्वाषष्टिर्भङ्गाः ६२ । आयुषस्त्र्यधिकशतभङ्गाः १०३ । गोत्रस्य सप्तचत्वारिंशद्विकल्पाश्च ४७ भवन्तीति ज्ञातव्याः ॥२५६॥

जीवसमासोंमें वेदनीयकर्मके बन्धादित्रिकके भंग बासठ होते हैं, आयुकर्मके तीन अधिक सौ अर्थात् एक सौ तीन भंग होते हैं और गोत्रकर्मके सैंतालीस भंग जानना चाहिए ॥२५६॥

वेदनीयके भंग ६२, आयुके १०३ और गोत्रके ४७ होते हैं ।

अब भाष्यगाथाकार वेदनीयकर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[2]चोद्दस जीवे पढमा चउ चउभंगा भवंति वेयणिए ।
छच्चेव केवलीणं सव्वे बावट्ठि भंगा हु ॥२५७॥

[3]इदि पढमा चोद्दससु पत्तेयं चत्तारि (१/१/१।०, १/०/१।०, ०/१/१।०, ०/०/१।०) इदि ५६ । सजोगे पढमा दो (१/१/१।०, १/०/१।०) अजोगे पढमा दो चेव, बंधेण विणा दुचरिमसमए वि (१/१।०, ०/१।०) तस्सेव चरिमसमए वि (१/१, ०/•)

इदि सव्वे ६२ ।

अथ वेद्यस्य द्वाषष्टिभङ्गानाह—[चोद्दस जीवे पढमा' इत्यादि ।] चतुर्दशसु जीवसमासेषु प्रत्येकं वेदनीयस्य प्रथमा आदिमाश्चत्वारश्चत्वारो भङ्गविकल्पा भवन्ति । चतुर्भिर्गुणिताश्चतुर्दश (१४ × ४) इति षट्पञ्चाशत् ५६ । केवलिनां षड्विकल्पाः ६ । इति सर्वे द्वाषष्टिर्भङ्गा विकल्पाः वेद्यस्य जीवसमासेषु भवन्ति ६२ ॥२५७॥

इति चतुर्दशजीवसमासेषु प्रत्येकं चत्वारश्चत्वारो भङ्गाः (१/१/१।०, १/०/१।०, ०/१/१।०, ०/०/१।०) एकेन्द्रियसूक्ष्मापर्याप्तस्य साताबन्धोदयोभयसत्त्वं (१/१/१।०) सातबन्धासातोदयोभयसत्त्वं (१/०/१।०) असातबन्ध-सातोदयोभयसत्त्वं (०/१/१।०) असातबन्धोदयोभयसत्त्वमिति (०/०/१।०) चत्वारो भङ्गाः । एवं त्रयोदशसु जीवसमासेषु भङ्गा ज्ञातव्याः । एकाङ्केन सद्वेद्यस्य संज्ञा, शून्येनासद्वेद्यस्य संज्ञा । इति ५६ भङ्गाः । सयोगकेवलिनि प्रथमौ

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २८० । 2. ५, २८१ । 3 ५, 'चतुर्दशसु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १६१) ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

	बं०	१	१	
आद्यौ द्वौ भङ्गौ	उ०	१	०	अयोगकेवलिनि आद्यौ द्वौ भङ्गौ बन्धेन विना द्विचरमसमयेऽपि
	सं०	१।०	१।०	

उ०	१	०	तस्यैवायोगिचरमसमये । इति सर्वे वेद्यस्य द्वाषष्टिविकल्पा भवन्ति ६२ ।
स०	१।०	१।०	

इति जीवसमासेषु वेदनीयस्य विकल्पाः समाप्ताः ।

चौदह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येक जीवसमासमें वेदनीयकर्मके त्रिसंयोगी प्रथम चार-चार भंग होते हैं। चौदहवें जीवसमासके अन्तर्गत केवलीके छह भंग होते हैं। इस प्रकार सर्व मिल-कर वेदनीयकर्मके बासठ भंग हो जाते हैं ॥२५७॥

भावार्थ—इसी सप्ततिकाप्रकरणके प्रारम्भमें गाथाङ्क १६–२० का अर्थ करते हुए जो वेदनीयकर्मके आठ भंग बतलाये गये हैं, उनमेंसे प्रारम्भके चार भंग प्रत्येक जीवसमासमें पाये जाते हैं, अतः चौदह जीवसमासोंको चारसे गुणित करने पर छप्पन भंग हो जाते हैं। तथा केवलीके पूर्वोक्त आठ भंगोंमेंसे छह भंग पाये जाते हैं। इस प्रकार दोनों मिलकर (५६ + ६ = ६२) बासठ भंग होते हैं।

इसी अर्थका भाष्यकारने अंकसंदृष्टि द्वारा इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

	बंध	१	१	०	०
चौदह जीवसमासोंमेंसे प्रत्येकमें ये चार भंग होते हैं—	उद०	१	०	१	०
	स०	१।०	१।०	१	१।०

यहाँ पर (१) एक अंकसे सातावेदनीय और (०) शून्यसे असाता वेदनीयका संकेत किया गया है।

सयोगिकेवलीमें प्रथमके ये दो भंग (१ / १ / १।०) (१ / ० / १०।) होते हैं। अयोगिकेवलीमें भी ये ही दो भङ्ग पाये जाते हैं। किन्तु उनके द्विचरम समयमें वेदनीयकर्मके बन्धका अभाव हो जाता है, अतएव बन्धके विना (१ / १।०) (० / १।०) ये दो भङ्ग होते हैं। उन्हीं अयोगिकेवलीके चरम समयमें (१ / १) (० / ०) ये दो भङ्ग पाये जाते हैं। इस प्रकार वेदनीयकर्मके सर्व भङ्ग ६२ जानना चाहिये।

इस प्रकार जीवसमासोंमें वेदनीयकर्मके बन्धादिस्थानोंका निरूपण किया।

अब भाष्यगाथाकार चौदह जीवसमासोंमें आयुकर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]एयार जीवठाणे पणवण्णा चेव होंति भंगा य।
पज्जत्तासण्णीसु य णव दस सण्णी अपज्जत्ते ॥२५८॥
[2]सण्णी पज्जत्तस्स य अट्ठावीसा हवंति आउस्स।
तिगधियसयं तु सव्वे केवलिभंगेण संजुत्तं ॥२५९॥
[3]सुर-णिरएसु पंच य तिरिय-मणुएसु हवंति णव भंगा।
बंधंते बंधेसु वि चउसु वि आउस्स कमसो दु ॥२६०॥

५।९।९।५।

1. सं० पञ्चसं० ५, २८२। 2. ५, २८३। 3. ५, २८४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ जीवसमासेषु आयुष्कस्य विकल्पान् गाथाचतुष्केनाऽऽह–['एयार जीवठाणे' इत्यादि ।] एकेन्द्रियसूक्ष्म-बादरौ २ द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियाः ३ इत्येते पञ्च पर्याप्ताऽपर्याप्ता एवं दश १० । असंज्ञ्यपर्याप्तक एकः १ एवमेकादशजीवसमासेषु प्रत्येकं आयुषः पञ्च पञ्च स्थानानि भङ्गा विकल्पाः । इति सर्वे पञ्चपञ्चाशद्भङ्गा भवन्ति ५५ । पञ्चेन्द्रियासंज्ञिपर्याप्तजीवसमासे नव भङ्गाः ९ भवन्ति । अत्रासंज्ञितिर्यग्जीवः कथं देव-नारकायुषी बध्नाति ? प्रथमनरकनारकायुर्भवन-व्यन्तरायुश्च बध्नातीत्यर्थः । उक्तञ्च—

देवायुर्नारकायुर्बध्नीतः संज्ञ्यसंज्ञिनौ पूर्णौ ।
द्वादश नैकाद्याद्या जीवसमासाः परे जातु[1] ॥२४॥ इति

असण्णी सरिसवेत्यादिना ज्ञेयम् । संज्ञ्यपर्याप्तजीवसमासे दश विकल्पाः १० स्युः । संज्ञिपर्याप्तस्याष्टाविंशतिविकल्पा २८ भवन्ति । केवलज्ञानिनो भङ्ग एकः १ । एवं सर्वे एकीकृताः आयुषो विकल्पाः सर्वेषु जीवसमासेषु त्र्यधिकशतसंख्योपेता १०३ भवन्ति । मनुष्य-तिर्यगायुषोर्बन्धाबन्धयोर्देव-नारकाणां पञ्च पञ्च भङ्गा विकल्पा भवन्ति ५।५। आयुश्चतुष्पु बन्धाबन्धेषु तिर्यङ्-मनुष्याणां नव नव भङ्गा भवन्ति ९।९ ॥२५८–२६०॥

एकेन्द्रिय सूक्ष्म, एकेन्द्रिय बादर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय इन पाँचके पर्याप्त और अपर्याप्त-सम्बन्धी दश, तथा एक असंज्ञी अपर्याप्त, इन ग्यारह जीवसमासोंमें आयुकर्मके त्रि-संयोगी भङ्ग पचपन होते हैं । पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमासमें नौ भङ्ग होते हैं । अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमासमें दश भङ्ग होते हैं । तथा पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमासमें अट्ठाईस भङ्ग होते हैं । ये सब केवलिसम्बन्धी एक भङ्गसे संयुक्त होकर एकसौ तीन भङ्ग आयु-कर्मके होते हैं । संज्ञी पंचेन्द्रियके अट्ठाईस भङ्ग इस प्रकार हैं—आयुकर्मके ये भङ्ग चारों गतियोंमें आयु बँधने और नहीं बँधनेकी अपेक्षा क्रमसे देवोंमें पाँच, नारकियोंमें पाँच, तिर्यञ्चोंमें नौ और मनुष्योंमें नौ होते हैं ॥२५८–२६०॥

[1]णारय-देवभंगा चउरो चउरो चइऊण सेसा तिरियभंगा पंच पंच एयारसेसु जीवसमासेसु ते एक्कम्मि पंच पंच ति किच्चा पणवण्णा भवंति ।५५। तत्थ पंचण्हं संदिट्ठी वि

०	२	०	३	०
२	२	२	२	२
२	२।२	२।२	२।३	२।३

इदि ५५ ।

असण्णिपज्जत्तेसु सव्वे तिरियभंगा ९ । सण्णिअपज्जत्ते देव-णारयभंगा चउरो चउरो चइऊण सेसा तिरियाउयभंगा ५ । मणुयाउयभंगा ५ सव्वे १० । सण्णिपज्जत्ते णारयभंगा ५ । तिरियभंगा ९ । मणुयभंगा ९ । देवभंगा ५ । एवं सव्वे वि २८ । केवलिसु

०
३
३

एवं सव्वे १०३ ।

क्रमेण तु नारके ५ तिर्यक्षु ९ मनुष्येषु ९ देवे ५ । नारक-देवभङ्गान् चतुरश्चतुरस्त्यक्त्वा शेषास्तिर्यग्भङ्गाः पञ्च पञ्च । एकादशजीवसमासेषु ते भङ्गाः एकैकस्मिन् पञ्च पञ्चेति कृत्वा पञ्चपञ्चाशद्भवन्ति ५५। तथाहि—यस्मादेकादशजीवसमासा नारक-देवायुषी न बध्नन्ति, ततस्तेषु तिरश्चामायुर्बन्धभङ्गेभ्यो नवभ्यो नारकायुर्बन्धभङ्गो देवायुर्बन्धभङ्गो द्वौ द्वौ अपाकृत्य शेषा जीवसमासेष्वेकादशसु पञ्चपञ्चेति पञ्चपञ्चाशद् भवन्ति ५५ । ततः पञ्चानां संदृष्टिः—

---

1. सं० पञ्चसं० ५, 'आत्मामर्थः–' इत्यादिगद्यांशः । (पृ० १९२)।
१. सं० पञ्चसं० ५, २८३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बं०	०	ति २	०	म ३	म ३	०
उ०	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २
स०	० ति २	ति २ ति २	ति २ ति २	ति २ म २	ति २ ति २	ति २ म ३

बं०	०	१	०	ति २	०	म ३	०	दे ४	०
उ०	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २
स०	ति २	ति २ न १	ति २।१	ति २।२	ति २।२	२ म ३	२ म ३	ति २ दे ४	ति २ दे ४

[इति] तिर्यग्भङ्गाः ६। ततः संज्ञ्यपर्याप्तजीवसमासे देव-नारकभङ्गान् चतुरश्चतुरः ४ त्यक्त्वा शेषास्तिर्यगायुर्भङ्गाः पञ्च ५। मनुष्यायुर्भङ्गाः पञ्च ५। सर्वे दश। तथाहि—पंचेन्द्रियसंज्ञ्यपर्याप्ते दश भङ्गाः, यस्मादपूर्णसंज्ञी तिर्यङ्-मनुष्यश्च देवनारकायुषी न बध्नाति तस्मात्तिरश्चां मनुष्याणां चायुर्बन्ध-भंगेभ्यो नवभ्यः नारकायुर्बन्धभङ्गौ देवायुर्बन्धभङ्गौ च हित्वा शेषाः पञ्चायुर्बन्धभङ्गाः ५।५। इत्थमपर्याप्ते पंचेन्द्रियसंज्ञिनि भङ्गाः, तद्भवानां अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियसंज्ञिरचना, अपर्याप्तमनुष्यरचना, इति पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्य-पर्याप्तास्तिर्यङ्-मनुष्यभङ्गाः दश १०। संज्ञिपर्याप्तनारके भङ्गाः ५। तिर्यग्पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ते भङ्गाः ६। मनुष्यपर्याप्तके भङ्गा नव ९। पर्याप्तदेवे भङ्गा ५। एवं सर्वे संज्ञिपर्याप्ते भङ्गा २८। केवलिनि भङ्ग एक एव १। एवं सर्वे आयुषो भङ्गाः विकल्पाः १०३ भवन्ति।

बं०	०	ति २	०	३	०
उ०	२	२	२	२	२
स०	२	२।२	३।२	२।२	२।३

बं०	०	२	०	३	०
उ०	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३
स०	म ३	३।२	३।२	३।३	३।३

बं०	०	२	०	३	०
उ०	न १	न १	न १	न १	न १
स०	१	१।२	१।२	१।३	१।३

बं०	०	१	०	२	०	३	०	४	०	४	०
उ०	ति २	ति २	ति २	ति २	२	ति २	ति २	ति २	ति २	म ३	म ३
स०	२	२।१	२।१	२।२	२।२	२।३	२।३	२।४	२।४	३।४	३।४

बं०	०	१	०	२	०
उ०	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३
स०	३	३।१	३।१	३।२	३।२

बं०	०	२	०	३	०
उ०	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४
स०	४	४।२	४।२	४।३	४।३

इति जीवसमासेषु आयुर्विकल्पाः समाप्ताः।

स्पष्टीकरण—आयुकर्मके नरकादि गतियोंमें क्रमसे ५, ९, ९ और ५ भङ्ग होते हैं। इन भङ्गोंका विवरण इसी प्रकरणके प्रारम्भमें गाथाङ्क २१ से २४ तक किया जा चुका है। वहाँ पर जो तिर्यग्गतिमें नौ भङ्ग बतलाये हैं, उनमेंसे नारकायु और देवायुके बन्ध-सम्बन्धी चार चार भङ्ग छोड़कर शेष जो पाँच भङ्ग हैं, वे आदिके ग्यारह जीवसमासोंमें पाये जाते हैं। एक एक जीवसमासमें पाँच पाँच भङ्ग होते हैं, इसलिए ग्यारहको पाँचसे गुणित करने पर पचपन (५५) भङ्ग हो जाते हैं। उन पाँच भङ्गोंकी संदृष्टि मूलमें दी हुई है। असंज्ञी पर्याप्तोंमें तिर्य-ग्गतिके सर्व भङ्ग ९ होते हैं। संज्ञी अपर्याप्तके देव और नारकसम्बन्धी चार-चार भङ्ग छोड़कर तिर्यगायुसम्बन्धी शेष पाँच भङ्ग होते हैं; तथा मनुष्यायुसम्बन्धी भङ्ग भी ५ होते हैं; इस प्रकार दोनों मिलाकर १० भङ्ग अपर्याप्तसंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमासके होते हैं। संज्ञीपर्याप्त जीवसमासमें नारकियोंके ५ भङ्ग, तिर्यञ्चोंके ९ भङ्ग, मनुष्योंके ९ भङ्ग और देवोंके ५ भङ्ग, इस प्रकार सर्व मिलाकर २८ भङ्ग होते हैं। केवलीके ६ भङ्ग बतलाये गये हैं। इस प्रकार सर्व मिलाकर आयु-कर्मके (५५ + ९ + १० + २८ + ६) = १०३ होते हैं।

इस प्रकार जीवसमासोंमें आयुकर्मके बन्धादि-स्थानोंका निरूपण किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब जीवसमासोंमें गोत्रकर्मके बन्ध, उदय और सत्त्व-सम्बन्धी भङ्गोंको कहते हैं—

[1]उच्चं णीचं णीचं णीचं बंधुदयसंतजुयलं च ।
सव्वं णीचं च तहा पुह भंगा होंति तिण्णेवं ॥२६१॥

१	०	०
०	०	०
१।०	१।०	०।०

[2]तेरस *जीवसमासेसु एगुणताला हवंति भंगा हु ।
पढमा छ सण्णिपज्जत्तयस्स दो केवलीणं च ॥२६२॥

[3]तेरससु पत्तेयं तिण्णि तिण्णि । एवं ३९ । सण्णिपज्जत्ते सव्वभंगेसु पढमा छ

१	१	०	०	०	
१	०	१	०	०	१
१।०	१।०	१।०	१।०	०।०	१।०

केवलीणं चरमा दो

१	१
१।०	१

एवं ३९।६।२।

[4]सव्वे वि मिलिएसु य भंगवियप्पा हवंति गोयस्स ।
सत्तुत्तरतालीसं एत्तो मोहं परं वोच्छं[१] ॥२६३॥

[गोत्रकर्मणः] त्रयोदशजीवसमासेषु प्रत्येकं त्रयो भङ्गा भवन्ति । ते के ? उच्चगोत्रस्य बन्धः १ नीचगोत्रस्योदयः ० पुनर्नीचैर्गोत्रस्य बन्धः ० । नीचगोत्रस्योदयः ० । तत्र द्वयोरुच्चबन्ध-नीचोदय-नीचबन्धोदययोः ० सत्त्वयुगलम् । उच्चगोत्रस्य सत्त्वं १ नीचगोत्रस्य सत्त्वं ० इति द्वौ भङ्गौ

१	०
०	०
१।०	१।०

। तृतीयभङ्गे सर्वनीचगोत्रस्य बन्धः ० नीचगोत्रस्योदयः ० नीचगोत्रस्य सत्त्वं ० पुनर्नीचगोत्रस्य सत्त्वम्

०
०
०।०

इति त्रयो भङ्गाः । पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तं विना त्रयोदशजीवसमासेषु प्रत्येकं

१	०	०
०	०	०
१।०	१।०	०।०

त्रयो [भङ्गा] भवन्ति । त्रिभि ३ र्गुणितास्त्रयोदशेति एकोनचत्वारिंशद्भङ्गा विकल्पा ३९ भवन्ति । इति पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ते जीवसमासे षट् प्रथमाः ये पूर्वं गोत्रस्य भङ्गाः सप्त कथितास्तन्मध्ये आदिमाः षट् विकल्पाः ।

बन्धः	१	१	०	०	०	
उदयः	१	०	१	०	०	१
सत्ता	१।०	१।०	१।०	०।०	१।०	१।०

पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ते भवन्ति ६ । केवलिनोः निरस्तसंज्ञ्यसंज्ञिव्यपदेशयोः केवलिनोर्द्वयोरन्तिमौ द्वौ । एते ३९।६।२। पिण्डिताः ४७ सर्वे गोत्रस्य सप्तचत्वारिंशद्भङ्गाः ॥२६१-२६३॥

इति जीवसमासेषु गोत्रस्य विकल्पाः समाप्ताः ।

---

1. सं०पञ्चसं० ५, २८६ । 2. ५, २८७ । 3. ५, 'प्रत्येकं त्रयस्त्रय' इत्यादिगद्यभागः' (पृ० १९३) । 4. ५, २८८ ।

१. द प्रतिमें न यह गाथा है और न उसकी संस्कृत टीका ही उपलब्ध है ।

*द 'तेरे जीवसमासे' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और दोनोंका सत्तारूप प्रथम भङ्ग है। नीचगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और दोनोंका सत्तारूप द्वितीय भङ्ग है। तथा सर्वनीच अर्थात् नीचगोत्र का बन्ध, नीचगोत्रका उदय और नीचगोत्रका सत्त्वरूप तृतीय भङ्ग है। इस प्रकार गोत्रकर्मके पृथक्-पृथक् ये तीन भङ्ग होते हैं ॥२६१॥

स्पष्टीकरण—इन तीनों भङ्गोंकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है। उसमें एकका अंक उच्चगोत्रका और शून्य नीचगोत्रका बोधक जानना चाहिए।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तको छोड़कर शेष तेरह जीवसमासोंमें उक्त तीन-तीन भङ्ग होते हैं। अतएव तेरहको तीनसे गुणित करनेपर तेरह जीवसमासोंके उनतालीस भङ्ग हो जाते हैं। संज्ञी-पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके प्रारम्भके छह भङ्ग होते हैं। केवलीके अन्तिम दो भङ्ग होते हैं ॥२६२॥

स्पष्टीकरण—इसी प्रकरणके प्रारम्भमें गाथाङ्क १८ को व्याख्या करते हुए गोत्रकर्मके सात भङ्ग संदृष्टिके साथ बतला आये हैं। उनमेंसे प्रारम्भके छह भङ्ग संज्ञीपंचेन्द्रिय पर्याप्तके होते हैं। इनकी अङ्कसंदृष्टि मूलमें दी है। केवलीके उन सात भङ्गोंमेंसे अन्तिम दो भङ्ग होते हैं। इनकी भी अंकसंदृष्टि मूल में दी है। इस प्रकार सर्व मिलाकर (३९ + ६ + २ =) ४७ भङ्ग गोत्रकर्मके होते हैं।

अब भाष्यगाथाकार इसी अर्थका उपसंहार करते हुए आगे मोहकर्मके भङ्गोंके कहने-की प्रतिज्ञा करते हैं—

ऊपर जो तेरह जीवसमासके उनतालीस संज्ञीपंचेन्द्रिय पर्याप्तकके छह और केवलीके दो भङ्ग बतलाये हैं, वे सब मिलकर गोत्रकर्मके तैंतालीस भङ्ग होते हैं। अब इससे आगे मोहकर्मके भङ्ग कहेंगे ॥२६३॥

अब पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार सप्तिकाकार जीवसमासोंमें मोहकर्मके भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०३०] अट्ठसु पंचसु एगे एय दुय दसय मोहबंधगए।
तिउ चउ णव उदयगदे तिय तिय पण्णरस संतम्मि[1] ॥२६४॥

		८	५	१
जीवसमासेसु	बं०	१	२	१०
	उ०	३	४	९
	सं०	३	३	१५

अथ मोहनीयस्य जीवसमासेषु बन्धादित्रिसंयोगभङ्गान् गाथाचतुष्केनाऽऽह—['अट्ठसु पञ्चसु एगे' इत्यादि।] अष्टसु जीवसमासेषु ८ पञ्चसु जीवसमासेषु ५ एकस्मिन् जीवसमासे १ च क्रमेण मोहप्रकृतीनां बन्धस्थानमेकं १ द्विकं २ दशकं १० च, तथा मोहप्रकृत्युदयस्थानं त्रयं ३ चतुष्कं ४ नवकं ९, तथा मोह-प्रकृतीनां सत्त्वस्थानं त्रिकं ३ च त्रिकं ३ च पञ्चदशकं च १५ भवन्ति ॥२६४॥

	जीवस० ८	जीवस० ५	जीवस० १
बन्धः	१	२	१०
उदयः	३	४	९
सत्ता	३	३	१५

आठ, पाँच और एक जीवसमासमें मोहकर्मके क्रमशः एक, दो और दश बन्धस्थान; तीन, चार और नौ उदयस्थान; एवं तीन-तीन और पन्द्रह सत्तास्थान होते हैं ॥२६४॥

इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

१. सप्ततिका० ३९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भाष्यगाथाकार उक्त मूलगाथाके अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

[1]सत्त अपज्जत्तेसु य पज्जत्ते सुहुम तह य अट्ठसु य ।
बावीसं बंधोदय-संता पुण तिण्णि पढमिल्ला ॥२६५॥

अट्ठसु बंधे २२ उदये १०।९।८। संते २८।२७।२६।

एकेन्द्रियसूक्ष्म १ बादर १ द्वि १ त्रि १ चतुरिन्द्रिय १ पञ्चेन्द्रियसंज्ञ्यऽ १ संज्ञि १ जीवापर्याप्ताः सप्त । एकेन्द्रियसूक्ष्मपर्याप्त एकः १ एवमष्टसु जीवसमासेषु ८ मोहप्रकृतिबन्धस्थानं द्वाविंशतिकम् २२ । किं तत् ? मिथ्यात्वं १ कषायाः १६ वेदानां त्रयाणां मध्ये एकतरवेदः १ हास्य-शोकयुग्मयोर्मध्ये एकतरयुग्मं २ भय-जुगुप्साद्वयं २ इति द्वाविंशतिकं मोह[बन्ध-]स्थानं अष्टसु जीवसमासेषु बन्धमायाति २२ । तत्र मोहोदयस्थानानि आद्यानि त्रीणि ३—१०।९।८ । मोहप्रकृतिसत्त्वस्थानानि आद्यानि त्रीणि ३—२८।२७। २६ । किं तत् उदये ? मिथ्यात्वमेकं १ षोडशकषायाणां मध्ये एकतरकषायचतुष्कं ४ वेदत्रयाणां मध्ये एकतरवेदः १ हास्यादियुग्मं २ भयं १ जुगुप्सा १ एवं मोहप्रकृत्युदयस्थानं दशकम् १० । इदं भयरहितं नवकम् ९ । इदं जुगुप्सारहितमष्टकं स्थानम् ८ । मोहस्य सर्वप्रकृतिसत्त्वं २८ । अतः सम्यक्त्वप्रकृत्युद्वेल्लिते २७ । अतः मिश्रप्रकृत्युद्वेल्लिते इदं २६ ॥२६५॥

सातों अपर्याप्तक, तथा सूक्ष्म पर्याप्तक, इन आठों जीवसमासोंमें बाईसप्रकृतिक बन्धस्थान के साथ आदिके तीन उदयस्थान और तीन सत्तास्थान होते हैं ॥२६५॥

आठ जीवसमासोंमेंसे प्रत्येकमें बन्धस्थान २२ में उदयस्थान १०, ९, ८ प्रकृतिक और सत्तास्थान २८, २७, २६, प्रकृतिक तीन-तीन होते हैं ।

[2]पंचसु पज्जत्तेसु य पज्जत्तयसण्णिणामगं वज्ज† ।
हेट्ठिम× दो चउ तिण्णि य बंधोदयसंतठाणाणि ॥२६६॥

[3]पंचसु पज्जत्तेसु बंधे २२।२१। उदये १०।९।८।७। संते २८।२७।२६।

पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तकं वर्जयित्वा एकेन्द्रियबादर १ द्वीन्द्रिय १ त्रीन्द्रिय १ चतुरिन्द्रिय १ पञ्चेन्द्रियासंज्ञि १ पर्याप्तेषु पञ्चसु जीवसमासेषु ५ आदिमे द्वे मोहबन्धस्थाने द्वाविंशतिकै २२ कविंशतिके २१ भवतः । आदिमानि चत्वारि मोहप्रकृत्युदयस्थानानि १०।९।८।७ । आदिमानि त्रीणि मोहसत्त्वस्थानानि २८।२७।२६ ॥२६६॥

पञ्चसु पर्याप्तेषु बन्धे २२।२१ उदये १०।९।८।७ सत्तायाः २८।२७।२६ ।

पर्याप्त संज्ञीनामक जीवसमासको छोड़कर शेष पाँच पर्याप्तक जीवसमासोंमें अधस्तन दो बन्धस्थान, चार उदयस्थान और तीन सत्तास्थान होते हैं ॥२६६॥

पाँच पर्याप्तक जीवसमासोंमें बन्धस्थान २२, २१ प्रकृतिक दो; उदयस्थान १०, ९, ८, ७ प्रकृतिक चार और सत्तास्थान २८, २७, २६ प्रकृतिक तीन होते हैं ।

[4]दस णव पण्णरसाइ बंधोदयसंतपयडिठाणाणि ।
सण्णिपज्जत्तयाणं संपुण्ण त्ति+ बोहव्वा ॥२६७॥

[5]सण्णिपज्जत्ते सव्वाणि बंधे २२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१। उदये १०।९।८।७।६।५।४।२।१ । संते २८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१ ।

---

1. सं०पञ्चसं० ५, २८९ । 2. ५, २९० । 3. ५, 'पञ्चानां पूर्णानां' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १९४) ।
4. ५, २९१ । 5. ५, 'संज्ञिनि पूर्णे' इत्यादिगद्यांशः । (पृ० १९४) ।

†ब वज्जा, द बज्जं । ×द आदिम । +द इदि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकस्मिन् पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्ते जीवसमासे चतुर्दशे दश मोहप्रकृतिबन्धस्थानानि २२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१। नव मोहप्रकृत्युदयस्थानानि १०।९।८।७।६।५।४।२।१। पञ्चदश मोहनीयप्रकृतिसत्त्वस्थानानि सम्पूर्णानि भवन्तीति ज्ञातव्यम्। एतत्सर्वं पूर्वं व्याख्यातमेव ॥२६७॥

इति जीवसमासेषु मोहनीयस्य बन्धादित्रिकसंयोगविकल्पाः समाप्ताः।

संज्ञी पर्याप्तक जीवोंके बन्धस्थान दश, उदयस्थान नौ और सत्त्वस्थान पन्द्रह होते हैं। अर्थात् इस चौदहवें जीवसमासमें सम्पूर्ण बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थान जानना चाहिए ॥२६७॥

संज्ञी पर्याप्तकमें सभी बन्ध, उदय और सत्तास्थान होते हैं। उनकी अङ्कसंदृष्टि इस प्रकार है—बन्धस्थान २२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १। उदयस्थान १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, २, १। सत्तास्थान २८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १।

इस प्रकार जीवसमासोंमें मोहकर्मके बन्धादि स्थानोंका निरूपण किया।

अब मूल सप्ततिकाकार जीवसमासोंमें नामकर्मके बन्ध, उदय और सत्तास्थान सम्बन्धी भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०३१] [1]सत्तेव अपज्जत्ता सामी सुहुमो य बायरो चेव।
वियलिंदिया य तिण्णि दु तहा असण्णी य सण्णी य[1] ॥२६८॥

७।१।१।३।१।१।

[मूलगा०३२] [2]पणय दुय पणय पणयं चदु पण बंधुदय संत पणयं च।
पण छक्क पणय छ छक्क पणय अट्ठट्ठमेयारं[2] ॥२६९॥

अप०	७	१सु०	१ बा०	३ बि०	१असं०	१सं०
बं०	५	५	५	५	६	८
उ०	२	४	५	६	६	८
स०	५	५	५	५	५	११

अथ जीवसमासेषु नामकर्मप्रकृतिबन्धोदयसत्त्वस्थानत्रिकसंयोगान् याजयति—['सत्तेव अपज्जत्ता' इत्यादि।] सप्तापर्याप्तका जीवाः स्वामिनः ७ एकः सूक्ष्मो जीवः १ एको बादरो जीवः १ विकलत्रयजीवास्त्रयः ३ तथाऽसंज्ञी जीव एकः १ संज्ञी जीव एकः १ इति चतुर्दश जीवाः स्वामिनः ॥२६८॥

क्रमादेषां स्वामिसंख्या ७।१।१।३।१।१।

अथैतेषु बन्धादिस्थानसंख्यामाह—['पणय दुय पणय पणयं' इत्यादि।] एकेन्द्रियसूक्ष्म १ बादर २ द्वि ३ त्रि ४ चतुः ५ पञ्चेन्द्रियासंज्ञि ६ संज्ञि ७ जीवापर्याप्तेषु सप्तसु नामप्रकृतिबन्धोदयसत्त्वस्थानानि पञ्च ५ द्वे २ पञ्च ५ सर्वसूक्ष्मैकजीवसमासेषु पञ्च ५ चत्वारि ४ पञ्च ५ सर्वबादरैकजीवसमासेषु पञ्च ५ पञ्च ५ पञ्च ५, विकलत्रयजीवसमासेषु पञ्च ५ षट् ६ पञ्च ५ असंज्ञिषु षट् ६ षट् ६ पञ्च ५, संज्ञिषु अष्टा ८ ष्टै ८ कादश ११ ॥२६९॥

	अपर्याप्तेषु ७	सूक्ष्म० १	बादर० १	विकल० ३	असं०१	संज्ञि०
बन्धः	५	५	५	५	६	८
उदयः	२	४	५	६	६	८
सत्ता	५	५	५	५	५	११

1 सं० पञ्चसं० ५, २९४। 2. ५, २९२-२९३।

१. सप्ततिका० ३८। २. सप्ततिका० ३७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच बन्धस्थान, दो उदयस्थान और पाँच सत्तास्थानके स्वामी सातों ही अपर्याप्तक जीवसमास हैं। पाँच बन्धस्थान, चार उदयस्थान और पाँच सत्तास्थानके स्वामी सूक्ष्म एकेन्द्रिय-पर्याप्तक हैं। पाँच बन्धस्थान, पाँच उदयस्थान और पाँच सत्तास्थानके स्वामी बादर एकेन्द्रियपर्याप्तक हैं। पाँच बन्धस्थान, छह उदयस्थान और पाँच सत्तास्थानके स्वामी तीनों विकलेन्द्रिय हैं। छह बन्धस्थान, छह उदयस्थान और पाँच सत्तास्थानके स्वामी असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक हैं। तथा आठ बन्धस्थान, आठ उदयस्थान और ग्यारह सत्तास्थानके स्वामी संज्ञीपंचेन्द्रियपर्याप्तक जीव हैं ॥२६८-२६९॥

इनकी अंकसंदृष्टि मूल और टीकामें दी हुई है।

अब भाष्यगाथाकार इसी अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

[1]सत्तेव य पज्जत्ते तेवीसं पंचवीस छव्वीसं।
ऊणत्तीसं तीसं बंधवियप्पा हवंति त्ति ॥२७०॥

सत्त अपज्जत्तेसु बंधट्ठाणाणि २३।२५।२६।२९।३०

तानि कानीति चेदाह—['सत्तेव य पज्जत्ते' इत्यादि] सप्तसु अपर्याप्तेषु जीवसमासेषु नामप्रकृतिबन्धस्थानानि पञ्च—त्रयोविंशतिकं २३ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ नवविंशतिकं २९ त्रिंशत्कं ३० चेति। बन्धविकल्पाः पञ्च भवन्ति ॥२७०॥

२३।२५।२६।२९।३०।

सातों ही अपर्याप्तक जीवसमासोंमें तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीसप्रकृतिक पाँच बन्धस्थान होते हैं ॥२७०॥

सातों अपर्याप्तकोंमें २३, २५, २६, २९, ३० प्रकृतिक पाँच बन्धस्थान होते हैं।

[2]सुहुम-अपज्जत्ताणं उदओ इगिवीसयं तु बोहव्वो।
बायरपज्जत्तेदरउदओ चउवीसमेव जाणाहि ॥२७१॥

उदया २१।२४।

एकेन्द्रियसूक्ष्मापर्याप्तानां स्थावरलब्ध्यपर्याप्तकानां नामप्रकृत्युदयस्थानमेकविंशतिकं २१ ज्ञातव्यम्। एकेन्द्रियबादरापर्याप्तानां चतुर्विंशतिकं नामप्रकृत्युदयस्थानं २४ जानीहि ॥२७१॥

एकेन्द्रियसूक्ष्म-बादरपर्याप्तयोः उदयस्थानद्वयम् २१।२४।

सूक्ष्म अपर्याप्तकोंके इक्कीसप्रकृतिक एक उदयस्थान जानना चाहिए। बादर अपर्याप्तकोंके चौबीसप्रकृतिक एक ही उदयस्थान जानो ॥२७१॥

सूक्ष्म अपर्याप्तकके २१ प्रकृतिक और बादर अपर्याप्तकके २४ प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं।

[3]सेस-अपज्जत्ताणं उदओ दो चेव होंति णायव्वा।
इगिवीसं छव्वीसं एत्तो सत्तं भणिस्सामो ॥२७२॥

२१।२६

शेषाणां पञ्चानामपर्याप्तानां त्रसलब्ध्यपर्याप्तानां द्वे उदयस्थाने भवतः। किं तत् नामप्रकृत्युदयस्थानम्? एकविंशतिकं २१ षड्विंशतिकं च। अतः परं तत्र सत्त्वस्थानानि वयं भणिष्यामः ॥२७२॥

पञ्चानामप्यपर्याप्तानामुदये २१।२६।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, २९५। 2. ५, २९६। 3. ५, २९७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेष अपर्याप्त जीवसमासोंके इक्कीस और छब्बीसप्रकृतिक दो ही उदयस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। अब इससे आगे सातों अपर्याप्तक जीवसमासोंके सत्तास्थान कहेंगे॥२७२॥

शेष अपर्याप्तकोंके उदयस्थान २१ और २६ प्रकृतिक दो होते हैं।

[1]तेसु य संतट्ठाणा बाणउदी णवदिमेव जाणाहि।
अडसीदी चेव तहा चउ बासीदी य संतया होंति ॥२७३॥

संते ९२।९०।८८।८४।८२। 'सत्त अपज्जत्तएसु' त्ति गयं।

तयोर्नामप्रकृतिबन्धोदययोर्वा अपर्याप्तकसप्तके वा नामप्रकृतिसत्त्वस्थानं द्वानवतिकं ९२ नवतिकं ९० अष्टाशीतिकं ८८ चतुरशीतिकं ८४ द्व्यशीतिकं ८२ चेति सत्तायाः पञ्च सत्त्वस्थानानि भवन्तीति जानाहि ॥२७३॥

९२।९०।८८।८४।८२ इति सप्तसु अपर्याप्तेषु व्याख्यानं गतं पूर्णं जातम्।

उन्हीं सातों अपर्याप्तक जीवसमासोंमें बानबै, नब्बै, अट्ठासी, चौरासी और बियासी-प्रकृतिक पाँच सत्तास्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२७३॥

सातों अपर्याप्तकोंमें ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं।

[2]ते चिय बंधट्ठाणा संता वि तहेव सुहुमपज्जत्ते।
चत्तारि उदयठाणा इगि चउ पणवीस छब्बीसा ॥२७४॥

[3]सुहुमपज्जत्ते बंधा २३।२५।२६।२९।३०। उदया २१।२४।२५।२६। संता ९२।९०।८८।८४।८२।

तान्येव पूर्वं अपर्याप्तसप्तकोक्तनामबन्धस्थानानि तथैव सत्त्वस्थानानि च सूक्ष्मैकपर्याप्तकेषु बन्धस्थानानि २३।२५।२६।२९।३०। सत्त्वस्थानानि ९२।९०।८८।८४।८२ भवन्ति। एकविंशतिकं २१ चतुर्विंशतिकं २४ पञ्चविंशतिकं २५ षड्विंशतिकं २६ इत्युदयस्थानानि चत्वारि भवन्ति—२१।२४।२५।२६ ॥२७४॥

सूक्ष्मपर्याप्तके जीवसमासे बन्धाः २३।२५।२६।२९।३०। उदयाः २१।२४।२५।२६। सत्त्वानि ९२।९०।८८।८४।८२।

सूक्ष्मपर्याप्तक जीवसमासमें वे ही पूर्वोक्त पाँच बन्धस्थान और पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। किन्तु उदयस्थान इक्कीस, चौबीस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक चार होते हैं ॥२७४॥

सूक्ष्मपर्याप्तमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २९, ३०, उदयस्थान २१; २४, २५, २६ और सत्त्वस्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं।

[4]बायर पज्जत्तेसु वि ते चेव य होंति बंध-संतठाणाणि।
इगिवीसं ठाणादी सत्तावीसं ति ते उदया ॥२७५॥

[5]बायर-एइंदियपज्जत्ते बंधा २३।२५।२६।२९।३०। उदया २१।२४।२५।२६।२७। संता ९२।९०।८८।८४।८२।

तान्येव सूक्ष्मपर्याप्तोक्तबन्ध-सत्त्वस्थानानि बादरैकेन्द्रियपर्याप्तकजीवसमासे भवन्ति २३।२५।२६।२९।३०। सत्त्वस्थानानि ९२।९०।८८।८४।८२। एकविंशतिकादि-सप्तविंशतिपर्यंतोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७ भवन्ति ॥२७५॥

---

1. सं०पञ्चसं० ५, २९८। 2. २९९। 3. ५, 'सूक्ष्मे पूर्णे बन्धाः' इत्यादिगद्यभागः। (पृ० १९५)
4. ५, ३००। 5. ५, 'पूर्णे बन्धाः' इत्यादिगद्यांशः। (पृ० १९५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रियबादरपर्याप्तके बन्धाः २३।२५।२६।२९।३० । उदयाः २१।२४।२५।२६।२७ । सत्ताः ९२।९०।८८।८४।८२ ।

बादर पर्याप्त जीवसमासमें वे ही पूर्वोक्त पाँच बन्धस्थान और पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। किन्तु उदयस्थान इक्कीस प्रकृतिसे लेकर सत्ताईस प्रकृतिक तकके पाँच होते हैं ॥२७५॥

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकमें बन्धस्थान २१, २५, २६, २९, ३० होते हैं। उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७ होते हैं और सत्त्वस्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं।

[1]वियलिंदिएसु तेच्चिय पुव्वुत्ता बंध-संतठाणाणि ।
तीसिगितीसुगुतीसा इगिछव्वीसट्ठवीसुदया ॥२७६॥

[2]वियलिंदिएसु बंधा २३।२५।२६।२९।३० । उदया २१।२६।२८।२९।३०।३१ संता ९२।९०।८८।८४।८२ ।

विकलत्रये पर्याप्ते तान्येव पूर्वं सूक्ष्मोक्तबन्ध-सत्त्वस्थानानि २३।२५।२६।२९।३० । सत्ता, ९२।९०। ८८।८४।८२ । त्रिंशत्कं ३० एकत्रिंशत्कं ३१ एकोनत्रिंशत्कं २९ एकविंशतिकं २१ षड्विंशतिकं २६ अष्टाविंशतिकं २८ इत्युदयस्थानानि षड् भवन्ति ॥२७६॥

विकलत्रयपर्याप्तजीवसमासेषु प्रत्येकं बन्धाः २३।२५।२६।२९।३० । उदयाः २१।२६।२८।२९।३०। ३१ । सत्त्वानि ९२।९०।८८।८४।८२ ।

विकलेन्द्रिय जीवसमासोंमें वे ही पूर्वोक्त पाँच बन्धस्थान और पाँच सत्तास्थान होते हैं। किन्तु उदयस्थान इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक छह होते हैं ॥२७६॥

विकलेन्द्रियोंमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २९, ३०; उदयस्थान २१, २६, २८, २९, ३०, ३१ और सत्तास्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं।

[3]पज्जत्तासण्णीसु वि बंधा तेवीसमाइ तीसंता ।
तेसिं चिय संतुदया सरिसा वियलिंदियाणं तु ॥२७७॥

[4]असण्णिपज्जत्ते बंधा २३।२५।२६।२८।२९।३० । उदया २१।२६।२८।२९।३०।३१ । संता ९२।९०।८८।८४।८२ ।

असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तकेषु बन्धाः त्रयोविंशत्यादित्रिंशदन्ताः नामप्रकृतिबन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकपञ्चविंशतिक-षड्विंशतिकाष्टाविंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि षट् भवन्ति । तेषां विकलेन्द्रियाणां सदृशानि सत्त्वोदयस्थानानि भवन्ति ॥२७७॥

असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तके जीवसमासे बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३० । उदयाः २१।२६।२८।२९। ३०।३१ । सत्त्वानि ९२।९०।८८।८४।८२ ।

पर्याप्त असंज्ञी जीवोंमें तेईसप्रकृतिकको आदि लेकर तीसप्रकृतिक पर्यन्तके छह बन्धस्थान होते हैं। तथा उनके उदयस्थान और सत्तास्थान विकलेन्द्रियोंके सदृश ही जानना चाहिए ॥२७७॥

असंज्ञी पर्याप्तकोंमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०; उदयस्थान २१, २६, २८, २९, ३०, ३१ और सत्तास्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३०१-३०२ । 2. ५, २३ इत्यादिगद्यभागः (पृ० १९५) । 3. ५, ३०३ । 4. ५, 'बन्धाः २३' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १९६) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]सव्वे वि बंधठाणा सण्णी पज्जत्तयस्स बोहव्वा ।
चउवीस णवय अट्ठ य वज्जित्ता उदय पज्जत्ते ॥२७८॥
[2]तस्स दु संतट्ठाणा उवरिम दो वज्जिदूण हेट्ठिल्ला ।
दोण्हं पि केवलीणं तीसिगितीसट्ठ णव उदया ॥२७९॥
[3]णव दस सत्तत्तरियं अट्ठत्तरियं च संतठाणाणि ।
ऊणासीदि असीदी बोहव्वा होंति केवलिणो ॥२८०॥

[4]सण्णिपज्जत्ते बंधा २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदया २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । संता ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७ ।

[5]णेव सण्णिणेव असण्णीणं उदया ३१।३०।९।८ । संता ८०।७९।७८।७७।१०।९ ।

इदि जीवसमासपरूवणा समत्ता ।

पंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तकजीवस्य सर्वाणि बन्धस्थानान्यष्टौ भवन्तीति ज्ञातव्यम् २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । चतुर्विंशतिक-नवकाष्टकं स्थानत्रयं वर्जयित्वान्यान्यष्टौ सर्वाण्युदयस्थानानि पंचेन्द्रिय-संज्ञिपर्याप्तके भवन्ति २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । तु पुनस्तस्य पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तकस्यो-परिमद्वये दशक-नवकस्थानद्वयं वर्जयित्वा एकादश सत्त्वस्थानानि भवन्ति । सयोगायोगिकेवलिनोर्द्वयोः त्रिंशत्कै ३० कत्रिंशत्क ३१ नवका ९ ष्टकानि ८ चत्वार्युदयस्थानानि भवन्ति । नवक ९ दशक १० सप्तसप्ततिका ७७ ष्टसप्ततिकानि ७८ च । पुन एकोनाशीति ७९ अशीतिकं ८० चेति षट् नामप्रकृति-सत्त्वस्थानानि केवलज्ञानिनो बोधव्यानि भवन्ति ॥२७८–२८०॥

पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तकजीवसमासे बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१ । उदयाः २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वानि ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७ । संज्ञ्यसंज्ञिव्यपदेश-रहितयोः सयोगायोगद्वययोर्बन्धरहितयोरुदयस्थानानि ३०।३१।९।८ । सत्त्वस्थानानि ८०।७९।७८।७७।१०।९ ।

अपर्याप्तसप्तकेषु प्रत्येकम्			सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्ते			बादरैकेन्द्रियपर्याप्ते		
बन्धः	उदयः	सत्त्वम्	बन्धः	उदयः	सत्त्वम्	बन्धः	उदयः	सत्त्वम्
५	२	५	५	४	५	५	५	५
२३	२१।२१	९२	२३	२१	९२	२३	२१	९२
२५	२४।२६	९०	२५	२४	९०	२५	२४	९०
२६	०	८८	२६	२५	८८	२६	२५	८२
२९	०	८४	२९	२६	८४	२९	२६	८४
३०	०	८२	२०	०	८२	३०	२७	८२

1. सं०पञ्चसं० ५, ३०४ । 2. ५, ३०५ । 3. ५, ३०६ । 4. ५, 'बन्धा २३' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १९६) । 5. ५, 'उदये ३०' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १९६) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकलत्रयेषु प्रत्येकम्

बन्धः	उदयः	सत्त्वम्
५	६	५
२३	२१	९२
२५	२६	९०
२६	२८	८८
२९	२९	८४
३०	३०	८२
	३१	

असंज्ञिपर्याप्ते

बन्धः	उदयः	सत्त्वम्
६	६	५
२३	२१	९२
२५	२६	९०
२६	२८	८८
२८	२९	८४
२९	३०	८२
३०	३१	

संज्ञिपर्याप्ते

बन्धः	उदयः	सत्त्वम्
८	८	११
२३	२१	९३
२५	२५	९२
२६	२६	९१
२८	२७	९०
२९	२८	८८
३०	२९	८४
३१	३०	८२
१	३१	८०
		७९
		७८
		७७

सयोगायोगयोः

बन्धः	उदयः	सत्त्वम्
०	४	६
०	३०	८०
०	३१	७९
०	९	७८
०	८	७७
०		१०
०		९

समुद्घातकेवलिनि

बन्धः	उदयः	सत्त्वम्
०	१०	६
०	२०	८०
०	२१	७९
०	२६	७८
०	२७	७७
०	२८	१०
०	२९	९
०	३०	
०	३१	
०	९	
०	८	

इति जीवसमासप्ररूपणा समाप्ता ।

पर्याप्त संज्ञी जीवोंमें सर्व ही बन्धस्थान जानना चाहिए। उदयस्थान चौबीस, नौ और आठ प्रकृतिक तीनको छोड़कर शेष आठ होते हैं। उसके सत्तास्थान उपरिम दोको छोड़कर अधस्तन ग्यारह होते हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्त्ती दोनों ही केवलियोंके तीस, इकतीस, नौ और आठ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं। उन्हीं केवलियोंके सत्तास्थान अस्सी, उन्यासी, अठहत्तर, सतहत्तर दश और नौप्रकृतिक छह होते हैं ॥२७८-२८०॥

संज्ञी पर्याप्तकके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक आठ होते हैं। उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक आठ होते हैं। सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८ और ७७ प्रकृतिक ग्यारह होते हैं।

इस प्रकार जीवसमासोंमें नामकर्मके बन्ध, उदय और सत्तास्थानोंका निरूपण समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मूल सप्ततिकार ज्ञानावरण और अन्तरायकर्मके बन्धादिस्थानोंका गुणस्थानोंमें वर्णन करते हैं—

[मूलगा०३३] [1]णाणावरणे विग्घे बंधोदयसंत पंचठाणाणि ।
मिच्छाइ-दसगुणेसुं खीणुवसंतेसु पंच संतुदया[1] ॥२८१॥

[2]मिच्छाइगुणट्ठाणेसु दससु	बं० ५ ५			अबंधगोवसंत-खीणाणं	बं० ० ०		
	उ० ५ ५				उ० ५ ५		
	सं० ५ ५				सं० ५ ५		

अथाष्टकर्मणामुत्तरप्रकृतीनां बन्धोदयसत्त्वस्थानत्रिसंयोगभङ्गान् गुणस्थानेषु प्ररूपयति । [तत्र] आदौ ज्ञानावरणान्तरायप्रकृतिबन्धादित्रिसंयोगान् गुणस्थानेष्वाह—['णाणावरणे विग्घे' इत्यादि ।] मिथ्या-दृष्ट्यादि-सूक्ष्मसाम्परायान्तगुणस्थानेषु दशसु ज्ञानावरणान्तराययोर्बन्धोदयसत्त्वस्थानानि पञ्च पञ्च प्रकृतयो भवन्ति ५।५।५। बन्धोपरमेऽप्युपशान्त-क्षीणकषाययोरुदयसत्त्वे तथा पञ्च पञ्च प्रकृतयः स्युः । उदयरूपाः पञ्च प्रकृतयः ५ सत्त्वरूपाः पञ्च प्रकृतयः ५ इत्यर्थः ॥२८१॥

मिथ्यादिषु दशसु	बं०	५	५	अबन्धकयोरुपशान्त-क्षीणकषाययोः	बं०	०	०
	उ०	५	५		उ०	५	५
	स०	५	५		स०	५	५

ज्ञानावरणान्तराययोर्बन्धादित्रिकयन्त्रम्—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अवि०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
बं०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०	०	०	०
उ०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०	०
स०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०	०

मिथ्यात्व आदि दश गुणस्थानोंमें ज्ञानावरण और अन्तरायकर्मके पाँचप्रकृतिक बन्धस्थान, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और पाँचप्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं । इन दोनों ही कर्मोंके बन्धसे रहित उपशान्तमोह और क्षीणमोह नामक ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानमें पाँचप्रकृतिक उदयस्थान और पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान होता है ॥२८१॥

		ज्ञाना०	अन्त०
मिथ्यात्व आदि दश गुणस्थानोंमें—	बं०	५	५
	उ०	५	५
	स०	५	५
अबन्धक उपशान्त और क्षीणमोहमें	बं०	०	०
	उ०	५	५
	स०	५	५

1. प्रा॰, ३०७ । 2. प्रा॰, 'गुणस्थानदशके' इत्यादिगद्यांशः (पृ०१९६) ।

१. सप्ततिका० ३९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मूलसप्ततिकाकार गुणस्थानोंमें दर्शनावरणकर्मके बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०३४] [1]णव छक्कं चत्तारि य तिण्णि य ठाणाणि दंसणावणे ।
बंधे संते उदये दोण्णि य चत्तारि पंच वा होंति[1] ॥२८२॥

अथ गुणस्थानेषु दर्शनावरणस्य प्रकृतिबन्धादिसंयोगभङ्गान् गाथाचतुष्केणाऽऽह—['णव छक्कं चत्तारि य' इत्यादि ।] दर्शनावरणे बन्धे नवकं ९ षट्कं ६ चतुष्कं चेति दर्शनावरणस्य बन्धस्थानानि त्रीणि । सत्तायां दर्शनावरणस्य सत्त्वस्थानत्रयं नवात्मकं ९ षडात्मकं ६ चतुरात्मकं ४ । दर्शनावरणस्य प्रकृत्युदयस्थानद्वयं जाग्रज्जीवे प्रथमं प्रकृतिचतुरात्मकं ४ वा अथवा निद्रितेषु द्वितीयमेकतरनिद्रया सहितं तदेव पञ्चात्मकं ५ इति दर्शनावरणस्य बन्धे त्रीणि ३ सत्तायां त्रीणि ३ उदये द्वे स्थानानि भवन्ति ॥२८२॥

दर्शनावरण कर्मके बन्धस्थान और सत्त्वस्थान तीन तीन होते हैं—नौ प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और चार प्रकृतिक । उदयस्थान दो होते हैं—पाँच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक ॥२८२॥

अब भाष्यगाथाकार इन्हीं स्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

[2]णव सव्वाओ छक्कं थीणतियं रहिय दंसणावरणे ।
णिद्दापयलाहीणा चत्तारि य बंध-संताणि ॥२८३॥

९।६।४

दर्शनावरणस्य सर्वा नव प्रकृतयो बन्धरूपाः ९ । दर्शनावरणस्य सर्वा नव प्रकृतयः सत्त्वरूपाः ९ स्त्यानगृद्धित्रयरहिता षट् प्रकृतयो बन्धरूपाः ६ । एता निद्रा-प्रचलाद्वयरहिताश्चतुःप्रकृतयो बन्धरूपाः ४ चतुःप्रकृतयः सत्त्वरूपाश्च ४ ॥२८३॥

बन्धे ९।६।४ सत्तायां ९।६।४।

नौ प्रकृतिक बन्ध और सत्त्वस्थानमें दर्शनावरणकी सर्व प्रकृतियाँ होती हैं । छह प्रकृतिक-स्थान स्त्यानगृद्धित्रिकसे रहित होता है । तथा चार प्रकृतिकस्थान निद्रा और प्रचलासे हीन जानना चाहिए ॥२८३॥

सर्व प्रकृतियाँ ९ । स्त्यानत्रिक विना ६ । निद्रा-प्रचला विना ४ ।

[3]णेत्ताइदंसणाणि य चत्तारि उदिंति दंसणावरणे ।
णिद्दाई पंचस्स हि अण्णयरुदएण पंच वा जीवे ॥२८४॥

दर्शनावरणस्य नेत्रादिचक्षुर्दर्शनानि चत्वारि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि चत्वारि ४ जाग्रन्निद्रिते जीवे सदोदयन्ति उदयं गच्छन्ति । जाग्रज्जीवे मिथ्यादृष्ट्यादि-क्षीणकषायचरमसमयान्तं चक्षुर्दर्शनावरणादि-चतुष्कं निरन्तरोदयं गच्छतीत्यर्थः । वा निद्रिते जीवे प्रमत्तपर्यन्तं स्त्यानगृद्धयादिपञ्चसु मध्ये एकस्यां उपरि क्षीणकषायद्विचरमसमयपर्यन्तं निद्रा-प्रचलयोरेकस्यां चोदितायां पञ्चात्मकमेव दर्शनावरणचतुष्कं ४ निद्रिते कयाचिदेकया निद्रया सह पञ्चप्रकृत्युदयस्थानमित्यर्थः ५ ॥२८४॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३०८ । 2. ५, ३०९ । 3. ५, ३१० ।

१. सप्ततिका० ३१, परं तत्रेदक् पाठः—

मिच्छा साणे बिइए नव चउ पण नव य संता ।
मिस्साइ नियट्टीओ छच्चउ पण णव य संतकम्मंसा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनावरणकर्मकी चक्षुदर्शनावरणादि चारों प्रकृतियोंका उदय उनकी उदयव्युच्छित्ति होने तक बराबर बना रहता है। तथा जीवके सुप्त दशामें पाँचों निद्राओंमेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय रहता है। इस प्रकार जागृत दशामें चार प्रकृतिक उदयस्थान और सुप्त दशामें पाँच प्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए ॥२८४॥

अब गुणस्थानोंमें दर्शनावरणके बन्धादिस्थानोंका निरूपण करते हैं—

मिच्छम्मि सासणम्मि य णव होंति बंध-संतेहिं।
छब्बंधे णव संता मिस्साइ-अपुव्वपढमभायंते ॥२८५॥

मिथ्यादृष्टिसासादनयोर्दर्शनावरणस्य नव प्रकृतयो बन्धरूपाः ९ नव प्रकृतयः सत्त्वरूपाश्च भवन्ति ९। मिश्राद्यपूर्वकरणप्रथमभागान्तेषु गुणस्थानेषु स्त्यानगृद्धित्रयं विना षड्बन्धकेषु ६ दर्शनावरणस्य नव प्रकृतयः सत्त्वरूपाः भवन्ति ९ ॥२८५॥

मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानमें नौ प्रकृतिक बन्धस्थान और नौ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं। मिश्र गुणस्थानको आदि लेकर अपूर्वकरणके प्रथम भागपर्यन्त छहप्रकृतिक बन्धस्थान और नौप्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं ॥२८५॥

	९	९		६	६
[मिच्छे सासणे य]	४	५	[1]मिस्साइअपुव्वकरणपढमसत्तमभायं जाव	४	५।
	९	९		९	९

	बं०	९	९		बं०	६	६
मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः	उ०	४	५	मिश्राद्येष्वपूर्वकरणद्वयप्रथमसप्तमभागं यावत्	उ०	४	५।
	स०	९	९		स०	९	९

	बंध	९	९	
मिथ्यात्व और सासादनमें	उ०	४	५	मिश्रसे लेकर अपूर्वकरणके प्रथम सप्तम भाग तक
	स०	९	९	

६	६	
४	५	इस प्रकार बन्धादिस्थानोंकी रचना जानना चाहिए।
९	९	

[2]चउबंधयम्मि दुविहापुव्वणियट्टीसु सुहुमउवसमए।
णव संता अणियट्टी-खवए सुहुमखवयम्मि छच्चेव ॥२८६॥

चतुर्विधबन्धकेषु द्विविधापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायोपशमकेषु नव प्रकृतयः सत्त्वरूपाः ९। तथाहि—अपूर्वकरणस्य द्वितीयभागादि-षड्भागान्तस्योपशम-क्षपकश्रेणिद्वयगतस्य दर्शनावरणचतुर्बन्धकस्य ४ दर्शनावरणप्रकृतयो नव सत्त्वरूपाः ९ भवन्ति। अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोर्दर्शनावरणचतुर्बन्धकयोरुपशमश्रेण्योर्नव प्रकृतयः सत्त्वरूपाः सन्ति ९। अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायक्षपकश्रेण्योश्चतुर्बन्धकयोः स्त्यानत्रिकं विना षट् प्रकृतयः सत्त्वरूपाः स्युः ६ ॥२८६॥

दोनों प्रकारके अर्थात् उपशामक और क्षपक अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें, उपशामक सूक्ष्मसाम्परायमें चारप्रकृतिक बन्धस्थान और नौप्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं। अनिवृत्तिकरण क्षपक और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकमें चारप्रकृतिक बन्धस्थान और छहप्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं ॥२८६॥

1. सं० पञ्चसं० ५, 'मिश्राद्ये' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १९७)। 2. ५, ३११-३१२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]दुविधेसु खवगुवसमग-अउव्वकरणानियट्टिकरणेसु तह उवसम-सुहुमकसाए ४ ४ / ४ ५ / ६ ६ अणियट्टि-सुहुम-

खवणाणं ४ ४ / ४ ५ / ६ ६ ।

क्षपकोपशमयुक्तशेषापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायोपशमकेषु बं० ४ ४ / उ० ४ ५ / स० ६ ६ अनिवृत्तिकरण-

सूक्ष्मसाम्परायक्षपकयोः बं० ४ ३ / उ० ४ ५ / स० ६ ६ ।

क्षपक और उपशामक इन दोनों प्रकारके अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें तथा उपशामक सूक्ष्मसाम्परायमें बन्धस्थानादिकी रचना इस प्रकार है—बं० ४ ४ / उ० ४ ५ / स० ६ ६ क्षपक अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें रचना इस प्रकार है—४ ४ / ४ ५ / ६ ६ ।

[मूलगा० ३५] [2]उवरयबंधे संते संता णव होंति छच्च खीणम्मि ।
खीणंते संतुदया चउ तेसु चयारि पंच वा उदयं[1] ॥२८७॥

उपरतबन्धे शान्ते उपशान्तकषाये दर्शनावरणप्रकृतयो नव सत्त्वरूपा भवन्ति । उदये दर्शनावरण-चतुष्कं ४ निद्रया प्रचलया वा सहितं प्रकृतिपञ्चकम् ५ । क्षीणे क्षीणकषायोपान्त्यसमये षट् प्रकृतयः सत्त्वरूपाः ६ । उदये चतुरात्मकं ४ पञ्चात्मकं वा ५ । क्षीणकषायस्य चरमसमये चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरण-चतुः-प्रकृतयः सत्त्वरूपाः ४ उदयरूपाश्च ता एव ॥२८७॥

उपरतबन्धमें अर्थात् दर्शनावरण कर्मकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाने पर उपशान्तमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थानमें नौप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है और क्षीणकषायमें छहप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है तथा इन दोनों ही गुणस्थानोंमें चार या पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं । क्षीणकषायके चरम समयमें चारप्रकृतिक उदयस्थान और चारप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है ॥२८७॥

[3]उवसंते ० ० / ४ ५ / ६ ६ खीणे ० ० / ४ ५ / ६ ६ खीणचरिमसमए ० / ४ / ४ एवं सव्वे १३ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, 'शेषापूर्वा' इत्यादिगद्यभागः' (पृ० १९७) । 2. ५, ३१३ । 3. ५, 'शान्ते' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १९७) ।

1. सप्ततिका० ४०; परं तत्रेदक् पाठः—

चउबंध तिगे चउ पण नवंस दुसु जुयल छस्संता ।
उवसंते चउ पण नव खीणे चउरुदय छच्च चउ संतं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषु पूर्वोक्तनवादिषु स्थानादिषु चतुरात्मकं ४ पञ्चात्मकं ५ वा उदयः। उपशान्ते ०/४/९ ०/५/९ क्षीणे ०/४/६ ०/५/६ क्षीणचरमसमये ०/४/४। एवं सर्वे भङ्गास्त्रयोदश १३।

गुणस्थानेषु दर्शनावरणस्य बन्धादित्रिकसंदृष्टिः—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अवि०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०
बं	९	९	६	६	६	६	६	६।४	४	४	४	०
उद०	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५।४	४।५।४	४।५।४
स०	९	९	९	९	९	९	९	९	९।६	९।६	९।६	६।४

इति गुणस्थानेषु दर्शनावरणस्य बन्धादिसंयोगभङ्गाः समाप्ताः।

उपशान्तमोहमें ०/४/९ ४/५/९ क्षीणमोहके उपान्त्य समयतक ०/४/६ ०/५/६। क्षीणमोहके चरमसमयमें ०/४/४ इस प्रकारसे बन्धादिस्थान होते हैं। इस प्रकार दर्शनावरणके स्थानसम्बन्धी सर्व भंग १३ होते हैं।

अब मूल सप्ततिकाकार वेदनीय, आयु और गोत्रकर्मके बन्धादिस्थानसम्बन्धी भंगोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०३६] [1]बायाल तेरसुत्तरसदं च पणुवीसयं वियाणाहि।
वेदणियाउगगोदे मिच्छाइ-अजोगिणं भंगा[१] ॥२८८॥

४२।११३।२५

अथ गुणस्थानेषु वेदनीयाऽऽयुर्गोत्राणां त्रिसंयोगभङ्गसंख्यामाह—['बायाल तेरसुत्तर' इत्यादि।] मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवलिपर्यन्तं वेदनीयस्य द्वाचत्वारिंशद्भङ्गान् ४२ आयुषस्त्रयोदशाधिकशतभङ्गान् ११३ गोत्रस्य पञ्चविंशतिभङ्गांश्च २५ विशेषेण जानीहि भो भव्य, त्वम् ॥२८८॥

वेद्ये ४२ आयुषः ११३ गोत्रे २५।

मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर अयोगि गुणस्थानपर्यन्त वेदनीयकर्मके बन्धादि स्थानसम्बन्धी भंग ब्यालीस, आयुकर्मके एकसौ तेरह और गोत्रकर्मके पच्चीस जानना चाहिए ॥२८८॥

वेदनीयके ४२, आयुकर्मके ११३ और गोत्रकर्मके २५ भङ्ग होते हैं।

अब भाष्यगाथाकार उक्त भंगोंमेंसे पहले वेदनीय कर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[2]मिच्छाइपमत्तंता चउ चउ भंगा य वेयणीयस्स।
उवरिमसत्तट्ठाणे दो दो य हवंति आदिल्ला ॥२८९॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३१४। 2. ५, ३१५ पूर्वार्धम्।

१. इसके स्थानपर श्वे० सप्ततिकामें केवल यह सूचना की गई है—
'वेयणियाउयगोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥४१॥

[1]मिच्छाइपमत्तंतेसु एक्केक्कम्मि पढमा चत्तारि

१	१	०	०
१	०	१	०
१।०	१।०	१।०	१।०

एवं छसु २४। पत्तेयं सत्तसु पढमा दो दो

१	१
१	०
१।०	१।०

एवं सत्तसु १४।

अथ वेदनीयस्य त्रिसंयोगभङ्गान् गुणस्थानेषु गाथाद्वयेनाऽऽह—['मिच्छादिपमत्तंता' इत्यादि ।] मिथ्यात्व-सासादन-मिश्राऽविरत-देश-प्रमत्तेषु षट्कगुणस्थानेषु प्रत्येकं वेदनीयस्य चतुश्चतुर्भङ्गा भवन्ति । ते के ? सातबन्धोदयोभयसत्त्वं (१ / १ / १।०) सातबन्धासातोदयोभयसत्त्वं (१ / ० / १।०) असातबन्ध-सातोदयोभयसत्त्वं (० / १ / १।०) असातबन्धोदयोभयसत्त्वं (० / ० / १।०) इति चत्वारो भङ्गा मिथ्यादृष्ट्यादि-प्रमत्तान्तं भवन्तीत्यर्थः । तत उपरिमसप्त-गुणस्थानेषु अप्रमत्तादि-सयोगिकेवलिपर्यन्तं आदिमौ द्वौ द्वौ भङ्गौ भवतः । तौ कौ ? केवलि [ल] सातस्यैव बन्धात् सातोदयोभयसत्त्वं (१ / १ / १।०) सातबन्धासातोदयोभयसत्त्वमिति द्वौ (१ / ० / १।०) ॥२८९॥

मिथ्यात्वादि-प्रमत्तान्तेषु प्रत्येकं प्रथमाश्चत्वारो भङ्गाः

बं०	१	१	१	१
उ०	१	०	१	०
स०	१।०	१।०	१।०	१।०

एवं षट्सु भङ्गाः २४। ततः सप्तसु प्रत्येकं प्रथमौ द्वौ द्वौ

बं०	०	०
उ०	१	०
स०	१।०	१।०

एवं सप्तसु भङ्गाः १४।

मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर प्रमत्तसंयतगुणस्थान तक वेदनीय कर्मके चार चार भंग होते हैं। इससे उपरिम सात गुणस्थानोंमें आदिके दो दो भंग होते हैं ॥२८९॥

मिथ्यात्वसे लेकर प्रमत्तसंयतान्त एक एक गुणास्थानमें पहले गाथाङ्क १९-२० में बतलाये गये ८ भंगोंमेंसे प्रारम्भके चार चार भंग होते हैं। उनकी संदृष्टि मूलमें दी है। छह गुणस्थानोंमें २४ भंग होते हैं। आगेके सात गुणस्थानोंमें आदिके दो दो भंग होते हैं। अतः सात गुणस्थानों के १४ भंग होते हैं।

[2]चउचरिमा अजोगियस्स सव्वे भंगा दु वेयणीयस्स ।
बायालं जाणिज्जो एत्तो आउस्स वोच्छामि ॥२९०॥

अजोगे अंतिमा चत्तारि

१	०	१	०
१।०	१।०	१	०

एवं सव्वे ४२।

अयोगिकेवलिनि चरिमाः अन्तिमाश्चत्वारो भङ्गाः सातोदयोभयसत्त्वं (१ / १।०) असातोदयोभयसत्त्वं (० / १।०) सातोदयसत्त्वं (१ / १) असातोदयसत्त्वं (० / ०) इति चत्वारोऽयोगिनो भङ्गाः अयोगे अन्तिमाश्चत्वारः । वेदनीयस्य सर्वे द्वाचत्वारिंशद्भङ्गाः ४२ ज्ञातव्याः । एवं ४२ । अतः परमायुषो भङ्गान् वक्ष्यामि ॥२९०॥

[गुणस्थानेषु वेदनीयभङ्गानां संदृष्टिः—]

1. सं० पञ्चसं० ५, 'तत्र मिथ्यादृष्टीनां' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १९७)। 2. ५, ३१५ उत्तरार्धम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मि०	सा०	मि०	अवि०	दे०	प्र०	अ०	अपू०	अनि०	सू०	उप०	क्षी०	स०	अयो०
४	४	४	४	४	४	२	२	२	२	२	२	२	४

अयोगिकेवलीके अन्तिम चार भंग होते हैं। इसप्रकार वेदनीयकर्मके सर्व भंग ब्यालीस जानना चाहिए। अब इससे आगे आयुकर्मके भंग कहेंगे ॥२९०॥

अयोगीके अन्तिम चार भंग होते हैं। जिनकी रचना मूलमें दी है। इस प्रकार सर्व भंग (२४+१४+४=४२) ब्यालीस हो जाते हैं।

[1]अड छव्वीसं सोलस वीसं छ त्ति त्ति चउसु दो दो दु।
एगेगं तिसु भंगा मिच्छादिज्जा अजोगंता ॥२९१॥

[2]मिच्छादिसु भंगा २८।२६।१६।२०।६।३।३।२।२।२।२।१।१।१।

अथाऽऽयुषो भङ्गसंख्या त्रिसंयोगभङ्गांश्च गुणस्थानेषु गाथापञ्चकेनाऽऽह—['अड छव्वीसं सोलस' इत्यादि।] मिलित्वा असदृशभङ्गाः मिथ्यादृष्टौ अष्टाविंशतिर्भङ्गाः २८। सासादने षड्विंशतिर्भङ्गाः २६। मिश्रे षोडश विकल्पाः १६। असंयते विंशतिर्भङ्गाः २०। देशसंयते षट् भङ्गाः ६। प्रमत्ताप्रमत्तयोस्त्रयो भङ्गाः ३।३। उपशमकेषु चतुर्षु द्वौ द्वौ भङ्गौ २।२।२।२। क्षपकेष्वेकैकः [१।१।१।१] क्षीणकषायादिषु त्रिषु त्रिषु एकैक एव १।१।१। एवमेकीकृतास्त्रयोदशाधिकशतभङ्गाः ११३ मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगान्ता ज्ञातव्याः ॥२९१॥

मिथ्यात्वसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भंग क्रमसे अट्ठाईस, छब्बीस, सोलह, बीस, छह, तीन, तीन, दो, दो, दो, दो, एक, एक और एक होते हैं ॥२९१॥

इन भंगोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपूर्व०	अनि०	सूक्ष्म०	उप०	क्षी०	सयो०	अयो०
२८	२६	१६	२०	६	३	३	२	२	२	२	१	१	१

इन गुणस्थानोंके सर्व भङ्गोंको जोड़नेपर आयुकर्मके सर्व भङ्ग ११३ हो जाते हैं।
अब आयुकर्मके उक्त भंगोंका स्पष्टीकरण करते हुए पहले नरकायुके भंग कहते हैं—

[3]णिरियाउस्स य उदए तिरिय-मणुयाऊणऽबंध बंधे य।
णिरियाउयं च संतं णिरियाई दोण्णि संताणि ॥२९२॥

	०	२	०	३	०
[4]णिरयभंगा—	१	१	१	१	१
	१	१।२	१।२	१।३	१।३

अथ मिथ्यादृष्टौ बन्धादि-त्रिसंयोगानष्टाविंशतिमाह—['णिरियाउस्स य उदये' इत्यादि।] नरकायुष उदये भुज्यमाने तिर्यङ्-मनुष्यायुषोरबन्धे बन्धे च उदयागतनरकायुष्यसत्त्वं च पुनः नरकादि-तिर्यङ्-मनुष्यसत्त्वद्वयं—एकमुदयागत-भुज्यमानायुःसत्त्वम्, द्वितीयं तिर्यगायुःसत्त्वं वा मनुष्यायुःसत्त्वं वा इत्यर्थः। [एवं नरकायुर्भङ्गाः पञ्च ५] ॥२९२॥ तथा चोक्तम्—

उदितं विद्यमानं च देहिन्यायुरबध्नति।
बध्यमानोदिते ज्ञेये विद्यमाने प्रबन्धति[1] ॥२५॥ इति।

1. सं० पञ्चसं० ५, ३२६-३२७। 2. ५, 'मिथ्यादृष्ट्यादिषु. इत्यादिगद्यांशः (पृ० १९८)।
3. ५, ३२८-३३०। 4. ५, 'एषां संदृष्टिर्नारकेषु' इत्यादिगद्यभागः' (पृ० १९८)।
१. सं० पञ्चसं० ५, ३२९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारकेषु भङ्गसंदृष्टि :—

बं०	०	२	०	३	०
उ०	णि १	णि १	णि १	णि १	णि १
स०	१	१।२	१।२	१।३	१।३

नवीन आयुके अबन्धकालमें नरकायुका उदय और नरकायुका सत्त्वरूप एक भंग होता है। तिर्यगायु या मनुष्यायुके बन्ध हो जाने पर नरकायुका उदय और नरकायुके सत्त्वके साथ तिर्यगायु और मनुष्यायु इन दोका सत्त्व पाया जाता है। इस प्रकार नरकायुके पाँच भंग हो जाते हैं ॥२६२॥

नरकायुसम्बन्धी पाँच भंगोंकी संदृष्टि मूलमें दी है और इन भंगोंका स्पष्टीकरण इसी प्रकरणके प्रारम्भमें गाथाङ्क २१ के विशेषार्थमें कर आये हैं, सो विशेष जिज्ञासु जन वहींसे जान लेवें।

अब तिर्यगायुके भंगोंका निरूपण करते हैं—

तिरियाउस्स य उदये चउण्हमाऊणऽबंध बंधे य।
तिरियाउयं च संतं तिरियाई दोण्णि संताणि ॥२६३॥

	०	१	०	२	०	३	०	४	०
[1]तिरियभंगा—	२	२	२	२	२	२	२	२	२
	२	२।१	२।१	२।२	२।२	२।३	२।३	२।४	२।४

तिर्यगायुष उदये उदयागतभुज्यमाने चतुर्णामायुषोऽबन्धे बन्धे च तिर्यगायुःसत्त्वं च तिर्यगाद्यायुर्द्वयं सत्त्वं उदयागतभुज्यमानसत्त्वं चापरं बध्यमानायुष्यचतुष्कस्य मध्ये एकतराऽऽयुषः सत्त्वमित्यर्थः। तिर्यगायुभङ्गाः नव ९ ॥२६३॥

[तिर्यक्षु भङ्गसंदृष्टिः—]

बं०	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ०	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	ति २	२
स०	२	२।१	२।१	२।२	२।२	२।३	२।३	२।४	२।४

तिर्यगायुके उदयमें और चारों आयुकर्मोंके अबन्धकालमें, तथा बन्धकालमें क्रमशः तिर्यगायुका सत्त्व और तिर्यगायुके साथ चारों आयुकर्मोंमेंसे एक एक आयुका सत्त्व; इस प्रकार दो आयुकर्मोंका सत्त्व पाया जाता है। इस प्रकार तिर्यगायुके नौ भंग हो जाते हैं ॥२६३॥

तिर्यगायुसम्बन्धी नौ भंगोंकी संदृष्टि मूलमें दी है। इन भंगोंका विशेष स्पष्टीकरण प्रारम्भमें गाथाङ्क २२ के विशेषार्थमें किया जा चुका है।

अब मनुष्यायुके भंगोंका निरूपण करते हैं—

मणुयाउस्स य उदए चउण्हमाऊणऽबंध बंधे य।
मणुयाउयं च संतं मणुयाई दोण्णि संताणि ॥२६४॥

	०	१	०	२	०	३	०	४	०
[2]मणुयभंगा—	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	३	३।१	३।१	३।२	३।२	३।३	३।३	३।४	३।४

---

1. सं० पञ्चसं० ५, 'तिर्यक्षु इत्थम्' इत्यादिगद्यभागः। (पृ० १९९)। 2. ५, 'मनुष्येषु' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १९९)।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

मनुष्यायुष्युदयागतभुज्यमाने चतुर्णामायुषामबन्धे बन्धे च मनुष्यायुरुदयागतभुज्यमानं सत्त्वं मनुष्यायुष्युदयसत्त्वं च, अपरायुष्यचतुष्कस्य मध्ये एकतरायुषः सत्त्वमित्यर्थः। मनुष्यायुर्भङ्गाः नव ९ ॥२९४॥

[मनुष्येषु भङ्गसंदृष्टिः—]

बं०	०	१	०	२	०	३	०	४	०
उ०	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३	म ३
स०	३	३।१	३।१	३।२	३।२	३।३	३।३	३।४	३।४

मनुष्यायुके उदयमें और चारों आयुकर्मोंके अबन्धकाल तथा बन्धकालमें क्रमशः मनुष्यायुका सत्त्व, एवं मनुष्यायुके सत्त्वके साथ चारों आयुकर्मोंमेंसे एक एक आयुका सत्त्व, इस प्रकार दो आयुकर्मोंका सत्त्व पाया जाता है। इस प्रकार मनुष्यायुके नौ भंग हो जाते हैं ॥२९४॥

मनुष्यायु-सम्बन्धी नौ भंगोंकी संदृष्टि मूलमें दी है और भंगोंका खुलासा प्रारम्भमें गाथाङ्क २३ के विशेषार्थ द्वारा किया जा चुका है।

अब देवायुके भंगोंका निरूपण करते हैं—

देवाउस्स य उदए तिरिय-मणुयाऊणऽबंध बंधे य।
देवाउयं च संतं देवाई दोण्णि संताणि ॥२९५॥

	०	२	०	३	०
[1]देवाण भंगा जहा—	४	४	४	४	४
	४	४।२	४।२	४।३	४।३

देवायुष उदये तिर्यग्मनुष्यायुषोरबन्धे बन्धे च देवायुरुदयागतभुज्यमानं सत्त्वं देवायाऽऽयुष्यतिर्यग्मनुष्यायुष्यसत्त्वद्वयम्। देवायुर्भङ्गाः पञ्च ५ ॥२९५॥

[देवेषु भङ्गसंदृष्टिः—]

बं०	०	२	०	३	०
उ०	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४	दे ४
स०	४	४।२	४।२	४।३	४।३

देवायुके उदयमें और तिर्यगायु तथा मनुष्यायुके अबन्ध और बन्धकालमें क्रमशः देवायुका सत्त्व, और देवायु-मनुष्यायु तथा देवायु और तिर्यगायुका सत्त्व पाया जाता है। इस प्रकार देवायुके पाँच भंग हो जाते हैं ॥२९५॥

देवायु-सम्बन्धी पाँच भंगोंकी संदृष्टि मूलमें दी है और उन भंगोंका खुलासा प्रारम्भमें गाथाङ्क २४ के विशेषार्थमें किया जा चुका है।

[2]एवं मिच्छे सव्वे २८। सासणो णिरएसु ण गच्छइ। णिरयाउयं च बंधं तिरियाउयं च उदयं दो वि संता १। णिरयाउयं बंधं मणुयाउयं उदयं दो वि संता २। एवं दो भंगे वज्जऊणं सेसा सासणे २६। सम्मामिच्छाइट्ठी एक्कमपि आउयं ण बंधइ। अदो तस्स उवरयबंधभंगा १६। तिरियाउयं च बंधं णिरयाउयं उदयं, दो वि संता १। णिरयाउयं बंधं तिरियाउयं उदयं दो वि संता २। तिरियाउयं बंधं तिरियाउयं उदयं दो वि संता ३। मणुयाउगं बंधं तिरियाउगं उदयं, दो वि संता ४। णिरयाउगं उदयं बंधं मणुयाउगं ५। तिरियाउगं बंधं मणुयाउयं उदयं दो वि संता ६। मणुयाउयं बंधं मणुयाउगं उदयं दो वि संता ७।

1. सं० पञ्चसं० ५, 'देवेषु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० १९९)। 2. ५, 'मिथ्यादृष्टौ २८' इत्यादिगद्यांशः (पृ० १९९-२००)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो वि संता तिरियाउगं बंधं देवाउगं उदयं दो वि संता ८। एवं अट्ठभंगे चइऊण सेसा असंजयस्स २०। तिरियाउयं उदयं तिरियाउगं संतं १। देवाउयं बंधं तिरियाउयं उदयं देवतिरियाउगं संतं २। तिरियाउगं उदयं देव-तिरियाउगं संतं ३। मणुयाउगं उदयं मणुयाउगं संतं ४। देवाउगं बंधं मणुयाउगं उदयं देव-मणुयाउगं संतं ५। मणुयाउयं उदयं मणुय-देवाउगं संतं ६। एवं संजयासंजयस्स। मणुयाउगं उदयं मणुयाउगं संतं १। देवाउयं बंधं मणुयाउगं उदयं दो वि संता २। मणुयाउगं उदयं मणुय-देवाउगं संतं ३। एवं पमत्ते। एदावंतो अप्पमत्ते वि ३। अपुव्वपहुदिं जाव उवसंतं ताव चउसु उवसम-खवगेसु मणुयाउगं उदयं मणुयाउगं संतं १। उवसमगे पडुच्च मणुयाउगं उदयं मणुयदेवाउगं संतं २। एवं दो दो भंगा चउसु पुह पुह ८। खीण-सजोगाजोगेसु मणुयाउगं उदयं मणुयाउगं संतं १। एवं तिसु तिण्णि। सव्वे वि आउस्स ११३।

एवं मिथ्यादृष्टौ विसदशभङ्गाः २८। सासादनो जीवस्तिर्यग् मनुष्यो वा नरकगतिं न याति, इति

१
हेतोर्नरकायुर्बन्धः १ तिर्यगायुष्योदयं २ सत्त्वद्वयम् २ नरकायुर्बन्धं मनुष्यायुष्योदयं ३ सत्त्वद्वयम्
२।१

१
३ एवं द्वौ भङ्गौ इमौ त्यक्त्वा शेषाः पञ्चाष्टाष्टपञ्चेति षड्विंशतिर्भङ्गाः सासादने २६ भवन्ति। सम्य-
३।१

ग्मिथ्यादृष्टिः मिश्रगुणस्थानवर्ती एकमप्यायुर्न बध्नाति, अतः कारणात्तस्य मिश्रगुणस्योपरतबन्धभङ्गाः षोडश १६। मिथ्यात्वोक्तास्ते सर्वायुर्बन्धभङ्गोनास्त्रयः पञ्च-पञ्च त्रय इति षोडश मिश्रे भङ्गाः १६। तिर्यगायुर्बन्धे

२ १
नरकायुरुदये द्वयोः सर्वे १ इत्येको भङ्गः १। नरकायुर्बन्धे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ इति द्वितीयो
१।२ १।२

२
भङ्गः २। तिर्यगायुर्बन्धे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे २ इति तृतीयो भङ्गः ३। मनुष्यायुर्बन्धे तिर्यगा-
२।२

३ १
युरुदये सत्त्वे २ चतुर्थो भङ्गः ४। नरकायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ३ इति पञ्चमो भङ्गः ५।
२।३ १।३

२
तिर्यगायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ३ इति षष्ठो भङ्गः ६। मनुष्यायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये द्वयोः
३।२

३ २
सत्त्वे ३ इति सप्तमो भङ्गः ७। तिर्यगायुर्बन्धे देवायुरुदये द्वयोः सत्त्वे ४ इत्यष्टमो भङ्गः ८।
३।३ ३।४

इत्यष्टौ भङ्गान् त्यक्त्वा शेषा विंशतिर्भङ्गाः असंयतसम्यग्दृष्टेर्भवन्ति २०। कथमष्टौ त्यक्त्वा इति चेदुक्तञ्च—

यतो बध्नाति सद्दृष्टिर्नर-तिर्यग्गतिं गतः।
देवायुरेव नान्यानि श्वभ्र-देवगतिं गतः ॥२६॥
मर्त्यायुरेव नान्यानि भङ्गानामष्टकं ततः।
विहाय विंशतिः प्रोक्ता भङ्गास्तस्य मनीषिभिः[1] ॥२७॥ इति।

१. सं० पञ्चसं० ५, ३२२-३२३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यगायुरुदयसत्त्वयोः (०/उ० २/स० २) भङ्गः १ देवायुर्बन्धे तिर्यगायुरुदये द्वयोः सत्त्वे (४/२/४।२) भङ्गः २। तिर्यगायुरुदये देवतिर्यगायुषोः सत्त्वे (०/२/४।२) भङ्गाः ३। मनुष्यायुरुदयसत्त्वयो (०/३/३) भङ्गः ४। देवायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये देव-मनुष्यायुषोर्द्वयोः सत्त्वे (४/३/४।३) भङ्गः ५। मनुष्यायुरुदये देव-मनुष्यायुषोर्द्वयोः सत्त्वे (०/३/३।४) भङ्गः षष्ठः ५। एवं संयतासंयतस्य सम्यग्दृष्टेर्भङ्गाः षट् भवन्ति ६। मनुष्यायुष्योदये मनुष्यायुःसत्त्वे (०/३/३) देवायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये तद्द्वयोः सत्त्वे (४/३/३।४) मनुष्यायुरुदये मनुष्य-देवायुषोः सत्त्वे (०/३/३।४) इत्थं प्रमत्ते सर्वे भङ्गास्त्रयः ३। त एवाप्रमत्तेऽपि। अपूर्वकरणादारभ्य यावदुपशान्तं चतुर्णां शमकानां क्षपकानां च मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः सत्त्वं (३/३) उपशमकानाश्रित्य मनुष्यायुरुदये मनुष्य-देवायुषोः सत्त्वे (३/३।४) एवं च द्वौ भङ्गौ पृथक्। द्वाभ्यां भङ्गाभ्यां चतुर्षु अष्टौ भङ्गाः ८। क्षीणकषाय-सयोगायोगिकेवलिषु गुणस्थानेषु त्रिषु मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः सत्त्वं च (३/३) एवं त्रिषु त्रयो भङ्गाः ३। सर्वेऽप्यायुषि भङ्गाः विकल्पाः असदशास्त्रयोदशाधिकशतसंख्योपेताः ११३ भवन्ति।

आयुर्भङ्गयन्त्रम्—

गु०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
	५	५	५	४	३	३	३	२	२	२	२	१	१	१
	६	८	८	६	३	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	६	८	८	६	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	५	५	५	४	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
भङ्गाः	२८	२६	२६	२०	६	३	३	२	२	२	२	१	१	१

इस मिथ्यात्वगुणस्थानमें नरकायुके ५, तिर्यगायुके ९, मनुष्यायुके ९, और देवायुके ५ ये सब मिलकर २८ भंग हो जाते हैं। सासादन गुणस्थानवर्ती जीव नरकोंमें नहीं जाता है, इसलिए नरकायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय और दोनोंका सत्त्वरूप भंग; तथा नरकायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और दोनोंका सत्त्वरूप भंग इन दोनों भंगोंको छोड़ करके मिथ्यात्वगुणस्थानवाले शेष २६ भंग सासादनगुणस्थानमें पाये जाते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव किसी भी आयुका बन्ध नहीं करता है, अतएव उसके बन्धकालवाले १२ भंग कम हो जानेसे उपरतबन्धकालसम्बन्धी १६ भंग होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव यदि मनुष्यगति या तिर्यग्गतिमें हो, तो वह देवायुका ही बन्ध करता है, शेष तीनका नहीं। यदि वह देवगति या नरकगतिका हो, तो केवल मनुष्यायुका ही बन्ध करता है, शेष तीनका नहीं। अतएव २८ भंगोंमेंसे ८ भंग कमा देने पर २० भंग चौथे गुणस्थानमें होते हैं। जो आठ भंग कम किये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं—(१) तिर्यगायुका बन्ध, नरकायुका उदय और दोनोंका सत्त्व, (२) नरकायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय, दोनोंका सत्त्व, (३) तिर्यगायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय, दोनोंका सत्त्व, (४) मनुष्यायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय, दोनोंका सत्त्व, (५) नरकायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय, दोनोंका सत्त्व, (६) तिर्य-

गायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय, दोनोंका सत्त्व; (७) मनुष्यायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय, दोनोंका सत्त्व; ८ तिर्यगायुका बन्ध, देवायुका उदय, दोनोंका सत्त्व। ये आठ भंग छोड़ करके शेष २० भंग असंयतसम्यग्दृष्टिके होते हैं। अब संयतासंयतके छह भंगोंका स्पष्टीकरण करते हैं—(१) तिर्यगायुका उदय, तिर्यगायुका सत्त्व; (२) देवायुका बन्ध, तिर्यगायुका उदय और देवायु-तिर्यगायुका सत्त्व, (३) तिर्यगायुका उदय और देवायु-तिर्यगायुका सत्त्व, (४) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायुका सत्त्व (५) देवायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और देवायु-मनुष्यायुका सत्त्व, (६) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायु-देवायुका सत्त्व, ये छह भंग संयतासंयतके होते हैं। अब प्रमत्तसंयतके भंग कहते हैं—(१) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायुका सत्त्व, (२) देवायुका बन्ध, मनुष्यायुका उदय और दोनोंका सत्त्व, (३) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायु-देवायुका सत्त्व; इस प्रकार तीन भंग प्रमत्तगुणस्थानमें होते हैं। ये ही तीन भंग अप्रमत्तगुणस्थानमें भी होते हैं। अपूर्वकरणसे लेकर उपशान्तमोह तक चारों उपशामक और तीनों क्षपकोंमें (१) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायुका सत्त्व; तथा उपशामकोंकी अपेक्षा (२) मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायु-देवायुका सत्त्व, ये दो दो भंग चारों गुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् होते हैं। उन सबका योग ८ होता है। क्षीणमोह, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली इन तीनों गुणस्थानोंमें मनुष्यायुका उदय और मनुष्यायुका सत्त्वरूप एक ही भंग होता है। इस प्रकार सर्व मिलकर (२८+२६+१६+२०+६+३+३+२+२+२+२+१+१+१=११३ आयुकर्मके एक सौ तेरह भंग होते हैं।

अब गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]मिच्छाई देसंता पण चदु दो दोण्णि भंगा हु।
अट्ठसु एगेगमदो गोदे पणुवीस दो चरिमे ॥२९६॥

[2]गुणठाणेसु गोयभंगा ५।४।२।२।२।१।१।१।१।१।१।१।१।२।

अथ गुणस्थानेषु गोत्रस्य त्रिसंयोगभङ्गान् तत्संख्याश्च गाथाचतुष्टयेन प्ररूपयति—['मिच्छाई देसंता' इत्यादि।] मिथ्यादृष्ट्यादि-देशसंयतान्तं क्रमेण पञ्च ५ चतु ४ द्वौ २ द्वौ २ द्वौ २। ततोऽष्टसु गुणेषु एकैको भङ्गः १।१।१।१।१।१।१।१। अयोगे द्वौ भङ्गौ २ इति गोत्रस्य पञ्चविंशतिर्भङ्गाः स्युः २५ ॥२९६॥

गुण०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अ०	अ०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
भङ्गाः	५	४	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१	१	१

मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर देशसंयतगुणस्थान तक क्रमसे पाँच, चार, दो, दो और दो भंग होते हैं। तदनन्तर आठ गुणस्थानोंमें एक एक भंग होता है। चरम अर्थात् अयोगिकेवलीके दो भंग होते हैं। इस प्रकार गोत्रकर्मके सर्व भंग पचीस होते हैं ॥२९६॥

गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भंग इस प्रकार होते हैं—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०	क्षी०	सयो०	अयो०
५	४	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१	१	२

1. सं० पञ्चसं० ५, ३२३। 2. ५, 'गुणेषु गोत्रभङ्गा' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २००)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब उपर्युक्त भंगोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

[1]उच्चुच्चमुच्चणीचं णीचं उच्चं च णीचणीचं च ।
बंधं उदयम्मि चउसु वि संत दुयं सव्वणीचं च ॥२९७॥

१	१	०	०	०
१	०	१	०	०
१|०	१|०	१|०	१|०	०|०

बन्धोदययोः उच्चोच्चे उच्चनीचे नीचोच्चे नीचनीचे एतेषु चतुर्षु सत्त्वद्वयम् । पञ्चमे सर्वनीचं च । मिथ्यादृष्टौ एते पञ्च भङ्गाः । सासादने आदिमाश्चत्वारः त्रिषु द्वौ भङ्गौ । ततः परं पञ्चसु एको भङ्गः । तथाहि—मिथ्यादृष्टौ एते गोत्रस्य पञ्चभङ्गाः के । ? उच्चैर्गोत्रस्य बन्धः १ उच्चैर्गोत्रस्योदयः १ उच्चनीचगोत्रयोः

१
सत्त्वम् १ । उच्चबन्धः १ नीचोदयः ० तदुभयसत्त्वम् ० । नीचबन्धोच्चोदयोभयसत्त्वम् १ । नीचबन्धनीचोद-
१|० — १|१ — १|०

०
योभयसत्त्वम् ० । एतेषु चतुर्षु भङ्गेषु सत्त्वद्वयमुच्चनीचसत्त्वद्विकमित्यर्थः । सर्वनीचं नीचबन्धोदये सत्त्वं च
१|२

०
० एते गोत्रस्य पञ्च भङ्गाः मिथ्यादृष्टौ ५ भवन्ति ।
०

बं०	१	१	०	०	०
उ०	१	०	१	०	०
स०	१|०	१|०	१|०	१|०	०|०

सासादने आद्याश्चत्वारो भङ्गाः, तस्य सासादनस्य तेजोद्वयेऽनुत्पत्तेरुच्चानुद्वेल्लनात् सासादनस्य भङ्गाः ४ ॥२२९॥

बं०	१	१	०	०
उ०	१	०	१	०
स०	१|०	१|०	१|०	१|०

उच्चगोत्रका बन्ध, उच्चगोत्रका उदय, दोनों गोत्रकर्मोंका सत्त्व, उच्चगोत्रका बन्ध, नीचगोत्र का उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व; नीचगोत्रका बन्ध, उच्चगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व; नीचगोत्रका बन्ध, नीचगोत्रका उदय और दोनों गोत्रोंका सत्त्व; तथा नीच गोत्रका बन्ध, नीच गोत्रका उदय और नीच गोत्रका सत्त्व, ये पाँच भंग गोत्र कर्मके होते हैं ॥२९७॥

इन पाँचों भंगोंकी अंकसंदृष्टि मूल और टीकामें दी है ।

[2]मिच्छम्मि पंच भंगा सासणसम्मम्मि आदिमचउक्कं ।
आदिदुगंतेसुवरिं पंचसु एगो तहा पढमो ॥२९८॥

[3]मिच्छाइसु एदे भंगा—५।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

१
मिश्राविरतदेशविरतगुणस्थानेषु त्रिषु प्रत्येकं आद्यौ द्वौ भङ्गौ—उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वं १ उच्चबन्ध-
१|०

1. सं० पञ्चसं० ५, ३२४ । 2. ५, ३२५ । 3 ५, 'मिथ्यादृष्ट्यादिषु' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० २०१) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीचोदयोभयसत्त्वं १/०/१।० चेति द्वौ द्वौ भङ्गौ २ भवतः । तत उपरि पञ्चसु गुणस्थानेषु प्रमत्तादि-सूक्ष्मसाम्प-रायान्तं उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वमित्येकः प्रथमो भङ्गः १/१/१।० ॥२९८॥

गोत्रकर्मके उक्त पाँचों भंग मिथ्यात्व गुणस्थानमें पाये जाते हैं। सासादनगुणस्थानमें आदिके चार भंग होते हैं। तीसरे, चौथे और पाँचवें गुणस्थानमें आदिके दो दो भङ्ग होते हैं। इससे उपरितन पाँच गुणस्थानोंमें पहला एक ही भङ्ग होता है ॥२९८॥

मिथ्यात्व आदि दश गुणस्थानोंमें भङ्ग इस प्रकार हैं—५।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

[1]बंधेण विणा पढमा उवसंताइ-अजोइदुचरिमं ।
चरिमम्मि अजोयस्स दु उच्चं उदएण संतेण ॥२९९॥

[2]उवसंताइसु चउसु पत्तेयं १/१।० अजोइस्स चरमसमए एगो ।१। एवं गोदे सव्वभंगा २५ ।

उपशान्ताद्ययोगिद्विचरमसमयपर्यन्तं बन्धं विना प्रथमो भङ्गः उ० १ स० १।० । अयोगस्य चरमसमये उदये उच्चगोत्रं सत्त्वे उच्चगोत्रं च उच्चोदयसत्त्वमित्यर्थः उद० १ स० १ । इत्थं गोत्रे त्रिसंयोगभङ्गाः सर्वे पञ्चविंशतिः २५ ॥२९९॥

इति गुणस्थानेषु गोत्रस्य त्रिसंयोगभङ्गाः समाप्ताः ।

उपशान्तमोह गुणस्थानसे लेकर अयोगिकेवलीके द्विचरम समय तक बन्धके विना प्रथम भङ्ग होता है। अयोगिकेवलीके अन्तिम समयमें उच्चगोत्रका उदय और उच्चगोत्रका सत्त्वरूप एक भङ्ग होता है ॥२९९॥

उपशान्तमोह आदि चार गुणस्थानोंमें ०/१/१।० अयोगिकेवलीके चरमसमयमें ०/१/१ । इस प्रकारसे गोत्रकर्मके भङ्ग जानना चाहिए।

अब मूल सप्ततिकाकार गुणस्थानोंमें मोहकर्मके बन्धस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०३७] [3]गुणठाणएसु अट्ठसु एगेगं बंधपयडिठाणाणि ।
पंचाणियट्टिठाणे बंधोवरमो परं तत्तो[1] ॥३००॥

अथ गुणस्थानेषु मोहनीयस्य बन्धस्थानानि तद्भङ्गांश्च प्ररूपयति—['गुणठाणएसु अट्ठसु' इत्यादि ।] अष्टसु मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु प्रत्येकं एकैकानि मोहप्रकृतिबन्धस्थानानि भवन्ति । तथा मिथ्यादृष्टौ द्वाविंशतिकं मोहप्रकृतिबन्धस्थानकं २२ । सासादने एकविंशतिकं २१ । मिश्राऽविरतयोः सप्तदशकं सप्तदशकं १७।१७ । देशविरते मोहप्रकृतिबन्धस्थानं त्रयोदशकं १३ । प्रमत्तापूर्वकरणेषु प्रत्येकं मोहबन्धप्रकृतिस्थानं नवकं ९।९।९ । अनिवृत्तिकरणे पञ्च बन्धस्थानानि—पञ्चकं ५ चतुष्कं ४ त्रिकं ३ द्विकं २

1. सं० पञ्चसं० ५, ३२६ । 2. ५, 'शान्तक्षीणसयोगेषु' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २०१)। 3. ५, ३२७-३२८ ।

१. सप्ततिका० ४२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एककं १ इति पञ्च स्थानानि । ततः परं बन्धोपरमः बन्ध-रहितः सूक्ष्मसाम्परायादिषु मोहप्रकृतिबन्धो नास्तीत्यर्थः ॥३००॥

आदिके आठ गुणस्थानोंमें मोहकर्मका एक एक बन्धस्थान होता है। अनिवृत्तिकरणमें पाँच बन्धस्थान होते हैं। उससे परवर्ती गुणस्थानोंमें मोहकर्मका बन्ध नहीं होता है ॥३००॥

अब इसी अर्थका भाष्यगाथाकार स्पष्टीकरण करते हैं—

मिच्छाइ-अपुव्वंताणेगेगं चेव मोहबंधाणि ।
पंचणियट्टिट्ठाणे पंचेव य होंति भंगा हु ॥३०१॥

मिच्छादिसु बंधट्ठाणाणि २२।२१।१७।१७।१३।९।९।९। अणियट्टिम्मि ५।४।३।२।१।

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तं मोहप्रकृतिबन्धस्थानकमेकैकं भवति । अनिवृत्तिकरणे पञ्च बन्धस्थानानि भवन्ति, तदेव पञ्च भङ्गाः ॥३०१॥

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनिवृत्तिकरण	सू०	उ०	क्षी०	स०	अयो०
२२	२१	१७	१७	१३	९	९	९	५ ४ ३ २ १	०	०	०	०	०

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरण तकके आठ गुणस्थानोंमें मोहनीयकर्मका एक एक बन्धस्थान होता है। अनिवृत्तिकरण नामक नवें गुणस्थानमें पाँच बन्धस्थान होते हैं और वहाँ पर बन्धस्थान-सम्बन्धी पाँच ही भङ्ग होते हैं ॥३०१॥

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें बन्धस्थान क्रमशः २२, २१, १७, १७, १३, ९, ९ और ९ प्रकृतिक होते हैं। अनिवृत्तिकरणमें ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं।

अब उक्त बन्धस्थानोंके भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]छब्बावीसे चउ इगिवीसे सत्तरस तेर दो दो दु ।
णव-बंधए वि दोण्णि य एगेगमदो परं भंगा ॥३०२॥

६।४।२।२।२। सेसेसु १।१।१।१।१।

तद्भङ्गानां संख्यामाह—['छब्बावीसे चउ इगिवीसे' इत्यादि] मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणान्तेषु मोहप्रकृतिबन्धस्थानके द्वाविंशतिके षड् भङ्गाः २२/६ । एकविंशतिके चत्वारो विकल्पाः २१/४ । सप्तदशके द्विके द्वौ द्वौ भङ्गौ १७/२ । १७/२ । त्रयोदशके द्वौ भङ्गौ १३/२ । नवकबन्धस्थानके द्वौ भङ्गौ ९/२ । अतः परमेकैको भङ्गः १ ॥३०२॥

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनिवृत्तिकरणे	
२२	२१	१७	१७	१३	९	९	९	५ ४ ३ २ १	एवं २५ ।
६	४	२	२	२	२	२	२	१ १ १ १ १	

बाईसप्रकृतिक बन्धस्थानमें छह भङ्ग होते हैं। इक्कीसप्रकृतिक बन्धस्थानमें चार भङ्ग होते हैं। सत्तरह और तेरहप्रकृतिक बन्धस्थानोंमें दो दो भङ्ग होते हैं। नौप्रकृतिक बन्धस्थानमें भी दो ही भङ्ग होते हैं। इससे आगेके बन्धस्थानोंमें एक एक ही भङ्ग होता है ॥३०२॥

बन्धस्थानोंमें भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

बन्धस्थान	२२	२१	१७	१३	९	५	४	३	२	१
भङ्ग	६	४	२	२	२	१	१	१	१	१

1. सं० पञ्चसं० ५, ३२९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मोहकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]एक्कं च दो व चत्तारि तदो एयाहिया दसुक्कस्सं ।
ओघेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणाणि णव होंति ॥२०३॥

मोहोदया १०।९।८।७।६।५।४।२।१।

एकप्रकृतिकं १ द्विप्रकृतिकं २ चतुःप्रकृतिकं ४ तत एकैकाधिकं पञ्च प्रकृतिकं ५ षट् प्रकृतिकं ६ सप्तप्रकृतिकं ७ अष्टप्रकृतिकं ८ नवप्रकृतिकं ९ दशप्रकृतिकं १० उत्कृष्टस्थानम् । मोहनीयस्य प्रकृत्युदयस्थानानि नव ओघेन गुणस्थानेषु सामान्येन वा भवन्ति ॥२०३॥

मोहस्योदयाः १०।९।८।७।६।५।४।२।१ ।

ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदयस्थान नौ होते हैं—(कथनकी सुलभतासे उन्हें यहाँ विपरीत क्रमसे कहते हैं—) वे एकप्रकृतिक, दोप्रकृतिक, चारप्रकृतिक और उससे आगे एक एक अधिक करते हुए उत्कर्षसे दश प्रकृतिक तक जानना चाहिए ॥२०३॥

मोहकर्मके उदयस्थान—१०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, २ और १ प्रकृतिक नौ होते हैं।

अब मोहकर्मके दशप्रकृतिक उदयस्थानका निरूपण करते हैं—

[2]मिच्छा मोहचउक्कं अण्णयरं वा तिवेदमेक्कयरं ।
हस्सादिजुगस्सेयं भयणिंदा होंति दस उदया ॥२०४॥

।१०।

मिथ्यात्वमेकं १ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनानां मध्ये एकतरं स्वजातिक्रोधादिकषायचतुष्कं ४ त्रयाणां वेदानां मध्ये एकतरो वेदोदयः १ हास्यरतिद्विकारतिशोकद्विकयोर्मध्ये एकतरद्विकं २ भयं १ निन्दा १ एवं दश मोहनीयप्रकृतयः १० एकस्मिन् जीवे मिथ्यादृष्टौ उदयगता भवन्ति १० ॥२०४॥

२
२ । २
१ । १ । १
४ । ४ । ४ । ४
१

मोहकर्मके दशप्रकृतिक उदयस्थानमें एक मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि चारों जातिकी कषायोंमेंसे क्रोधादि कोई चार कषाय, तीनों वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्यादि दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, ये दश प्रकृतियाँ होती हैं ॥२०४॥

यह दशप्रकृतिक उदयस्थान मिथ्यात्वगुणस्थानमें होता है।

अब मिथ्यात्वगुणस्थानमें नौप्रकृतिक उदयस्थानकी भी सम्भवता बतलाते हैं—

[3]आवलियमित्तकालं मिच्छत्तं दंसणाहिसंपत्तो ।
मोहम्मि य अणहीणो पढमे पुण णवोदओ होज्ज ॥२०५॥

[4]मिच्छम्मि उदया १०।९।

1. सं० पञ्चसं० ५, ३३०। 2. ५, ३३१। 3. ५, ३३२। 4. ५, 'इति मिथ्यादृष्टौ इत्यादिगद्यांशः। (पृ० २०२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तानुबन्धिविसंयोजितवेदकसम्यग्दृष्टौ मिथ्यात्वकर्मोदयात् मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं प्राप्ते आवलिमात्रकालं अनन्तानुबन्ध्युदयो नास्ति, अतो मोहप्रकृतीनां दशकानामुदयः १० अनन्तानुबन्धिरहितो नवप्रकृतीनामुदयो ९ मिथ्यादृष्टौ प्रथमे गुणस्थाने भवेत् ॥३०५॥

मिथ्यादृष्टौ उदयौ द्वौ १०।९।

अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुआ जीव यदि मिथ्यात्व कर्मके उदयसे मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हो जावे, तो एक आवलीप्रमाण काल तक उसके अनन्तानुबन्धी कषायका उदय सम्भव नहीं है, अतएव मिथ्यात्वगुणस्थानमें नौप्रकृतिक उदयस्थान भी होता है ॥३०५॥

इस प्रकार मिथ्यात्वगुणस्थानमें दश और नौप्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं।

अब सासादनादि गुणस्थानोंमें मोहकर्मके उदयस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]मिच्छत्तऽण कोहाई विदि-तदिएहिं ते दु दसरहिया ।
सासणसम्माई खलु एगे दुग एग तीसु णायव्वा ॥३०६॥

[2]सासणादिसु ९।८।८।७।६।६।६।

ते मोहप्रकृत्युदयाः दश १० मिथ्यात्वप्रकृतिरहिता एकस्मिन् सासादने नवोदयाः ९ । एते 'दुग' इति द्वयोर्मिश्राविरतयोः अनन्तानुबन्धिरहिताः अष्टौ ८ । एते 'एग' इति एकस्मिन् देशविरते पञ्चमे अप्रत्याख्यानरहिताः सप्तोदयाः ७ । एते त्रिषु प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणेषु तृतीयप्रत्याख्यानकषायरहिताः षडुदयाः ६ ज्ञातव्या भवन्ति ॥३०६॥

सासादनादिषु ९।८।८।७।६।६।६।

ऊपर जो दशप्रकृतिक उदयस्थान बतलाया गया है, उसमेंसे मिथ्यात्वके विना शेष नौ प्रकृतियोंका उदय सासादनगुणस्थानमें होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कषायके विना शेष आठ प्रकृतियोंका उदय मिश्र और अविरतगुणस्थानमें होता है। दूसरी अप्रत्याख्यानकषायके विना शेष सात प्रकृतियोंका उदय देशविरतगुणस्थानमें होता है। तीसरी प्रत्याख्यानकषायके विना शेष छह प्रकृतियोंका उदय तीन गुणस्थानोंमें अर्थात् प्रमत्त, अप्रमत्त और अपूर्वकरणमें जानना चाहिए ॥३०६॥

सासादनादि गुणस्थानोंमें क्रमशः ९, ८, ८, ७, ६, ६, ६ प्रकृतियोंका उदय होता है।

[3]इदि मोहुदया मिस्से सम्मामिच्छेण संजुया होंति ।
अवरे सम्मत्तजुया वेदयसम्मत्तसहिया जे ॥३०७॥

[4]एवं मिस्से सम्मामिच्छत्तसहिया ९ । [5]असंजदादिसु चउसु जत्थ उवसम-खाइयसम्मत्ताणि ण होंति तत्थ सम्मत्तोदये वेदयसम्मत्तेण सह अण्णो वि विदिओ उदओ। तेण अविरयादिसु चउसु दो दो उदया। एदे ९।८।८।७।७।६।७।६। अपुव्वे पुण सम्मत्तोदओ णत्थि, तेण तत्थ वेदगाभावादो एगो चेव ६ ।

इत्यमुना प्रकारेण मोहप्रकृत्युदया अष्टौ ८ सम्यग्मिथ्यात्वेन संयुक्ता मिश्रगुणस्थाने नव मोहोदया भवन्ति ९ । अपरे ये मोहोदया वेदकसम्यक्त्वसहितास्ते सम्यक्त्वप्रकृतिसंयुक्ताः । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिर्मिश्रे उदेति, सम्यक्त्वप्रकृतिर्वेदकसम्यग्दृष्टावेवासंयतादिचतुर्षु उदयं याति । नतूपशमक-क्षायिकस्योदयः ॥३०७॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३३३ । 2. ५, 'सासनादिषु' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० २०२) । 3. ५, ३३४ । 4. ५, 'सम्यङ्मिथ्यात्व' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २२०) । 5. ५, ३३५-३३६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं मिश्रगुणस्थाने सम्यग्मिथ्यात्वसहिता नवोदयाः ९ । असंयतादिषु चतुर्षु यत्रोपशम-क्षायिक-सम्यक्त्वे द्वे न भवतस्तत्र सम्यक्त्वप्रकृत्युदयो वेदकसम्यक्त्वेन सहान्यो द्वितीयोदयः, तेन कारणेन असंयतादिषु चतुर्षु द्वौ द्वौ उदयौ एतौ । असंयते ९।८ देशे ८।७ । प्रमत्ते ७।६ अप्रमत्ते ७।६ । पुनरपूर्वकरणे सम्यक्त्वप्रकृत्युदयो नास्ति । ततस्तत्र वेदकसम्यक्त्वाभावादेको मोहोदयः ६ ।

इस प्रकार सासादनादि गुणस्थानोंमें जो मोहप्रकृतियोंका उदय बतलाया गया है, उनमेंसे मिश्रगुणस्थानमें उदय होनेवाली आठप्रकृतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वके संयुक्त कर देनेपर नौ-प्रकृतियोंका उदय होता है। वेदकसम्यक्त्वसे सहित जो चतुर्थादि चारगुणस्थान हैं, उनमें सम्यक्त्वप्रकृतिका भी उदय होता है। अतएव उनमें एक-एक उदयस्थान और भी जानना चाहिए ॥२०७॥

अब आगे इसी कथनका स्पष्टीकरण करते हैं—इस प्रकार मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वसहित नौप्रकृतियोंका उदय होता है। असंयतादि चारगुणस्थानोंमें जहाँ उपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व नहीं होता है, वहाँपर सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयमें वेदकसम्यक्त्वके साथ पूर्वमें बतलाया गया अन्य भी दूसरा उदयस्थान होता है। अतएव अविरतादि चारगुणस्थानोंमें दो-दो उदयस्थान होते हैं। अर्थात् अविरतमें नौ और आठप्रकृतिक दो उदयस्थान, देशविरतमें आठ और सातप्रकृतिक दो उदयस्थान; प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें सात और छहप्रकृतिक दो-दो उदय स्थान होते हैं। किन्तु अपूर्वकरणगुणस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय नहीं होता है, इसलिए वहाँपर वेदकसम्यक्त्वका अभाव होनेसे छहप्रकृतिक एक ही उदय स्थान होता है।

[1]ते सव्वे भयरहिया दुगुंछहीणा दु उभयहीणा दु ।
अण्णे वि य एदेसिं एक्केक्कस्सोवरिं तिण्णि ॥२०८॥

　　८　७　　७　　７　　　７ ६　　६ ५　　५ ४
मिच्छे ९।९ ८।८ सासणे ८।८ मिस्से ८।८ असंजए ८।८ ७।७ देसे ७।७ ६।६ पमत्ते ६।६ ५।५
　　१०　९　　९　　९　　　९ ८　　८ ७　　७ ६

　५ ४　　　　　　　　　४
अपमत्ते ६।६ ५।५ अपुव्वे वेदयो णत्थि तेण एगो ५।५ अणियट्टिए २।१ । सुहुमे १ ।
　७ ६　　　　　　　　　६

ते सर्वे दश-नवादयः उदयाः १० भयरहिताः नव ९ दुगुंछारहिता वा नव ९ । तु पुनः उभयहीना भय-जुगुप्साद्वयरहिता अष्टौ ८ । ततोऽन्येऽप्युदयास्तेषामेकैकस्योपरि त्रयः उदयाः ॥२०८॥

　　८　७　　　७　　７　　　　７ ६　　६
तत्र मिथ्यादृष्टौ ९।९ । ८।८ सासादने ८।८ मिश्रे ८।८ । असंयते ८।८ । ७।७ । देशे ७।७ ।
　　१०　९　　　९　　७　　　　९ ८　　८

५　　५ ४　　　५ ४
६।६ । प्रमत्ते ६।६ । ५।५ । अप्रमत्ते ६।६ । ५।५ । अपूर्वकरणे वेदकसम्यक्त्वस्योदयो नास्ति, तत
७　　७ ६　　　७ ६

　　४
एकं यन्त्रम् ५।५ । अनिवृत्तिकरणे २।१ । सूक्ष्मसाम्पराये संज्वलनलोभोदयः १ ।
　　६

ऊपर जो दश, नौ आदिक जितने भी सर्व उदयस्थान बतलाये हैं, वे भय-रहित भी होते हैं, जुगुप्सा-रहित भी होते हैं और दोनोंसे रहित भी होते हैं। इसलिए ऊपर कहे गये एक-एक स्थानके ऊपर ये तीन-तीन उदयस्थान और भी होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२०८॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३३७ ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—मिथ्यात्वगुणस्थानमें मोहकर्मकी उदय होनेके योग्य सभी प्रकृतियोंके उदय होनेपर दशप्रकृतिक उदयस्थान होता है। भय या जुगुप्साके विना नौप्रकृतिक उदयस्थान भी होता है और दोनोंके विना आठप्रकृतिक उदयस्थान भी होता है। तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके नीचे गिरे हुए जीवके मिथ्यात्वमें आनेपर एक आवली कालतक मिथ्यात्वका उदय सम्भव नहीं है, अतएव उसके नौ, आठ और सातप्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं। इसी प्रकार सासादनमें नौ, आठ-आठ और सातप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। मिश्रमें नौ, आठ-आठ और सातप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। असंयत गुणस्थानमें वेदकसम्यग्दृष्टिके नौ, आठ-आठ और सातप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। तथा शेष सम्यग्दृष्टियोंके आठ, सात-सात और छहप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। देशविरतमें वेदकसम्यग्दृष्टिके आठ, सात-सात और छहप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं; तथा शेष सम्यग्दृष्टियोंके सात, छह-छह और पाँचप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतमें वेदकसम्यग्दृष्टिके सात, छह-छह और पाँचप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं; तथा शेष सम्यग्दृष्टियोंके छह, पाँच-पाँच और चारप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं। अपूर्वकरणमें वेदकप्रकृतिका उदय नहीं होता है, इसलिए वहाँपर छह, पाँच-पाँच और चार-प्रकृतिक एक विकल्परूप ही उदयस्थान होते हैं। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणमें दो और एक-प्रकृतिक दो और सूक्ष्मसाम्परायमें एकप्रकृतिक एक उदयस्थान होते हैं। इन सब उदयस्थानोंकी संदृष्टियाँ मूलमें दी हुई हैं।

अब मूलसप्ततिकाकार इसी अर्थका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०३८] [1]सत्तादि दस दु मिच्छे सासादण मिस्से सत्तादि णवुक्कस्सं।
छादी अविरदसम्मे देसे पंचादि अट्ठेव[1] ॥३०९॥

[मूलगा०३९] विरए खओवसमिए चउरादि सत्त उक्कस्सं छ णियट्टिम्हि।
अणियट्टिबायरे पुण एक्को वा दो व उदयंसा[2] ॥३१०॥

[मूलगा०४०] एगं सुहुमसरागो वेदेदि अवेदया भवे सेसा।
भंगाणं च पमाणं पुव्वुद्दिट्ठेण णायव्वं[3] ॥३११॥

मिथ्यादृष्ट्यादि-सूक्ष्मसाम्परायान्तं मोहोदयप्रकृतिस्थानसंख्या कथ्यते—मिथ्यादृष्टौ सप्तादि-दशोत्कृष्टान्ताः १०।९।८।७। उदयप्रकृतिस्थानविकल्पा अष्टौ ८। सासादने मिश्रे च सप्तादि-नवोत्कृष्टान्ता मोहप्रकृत्युदयस्थानविकल्पाः ९।८।७।। अविरतसम्यग्दृष्टौ षडादि-नवोत्कृष्टान्ताः ९।८।७।६। देशसंयते पञ्चाद्यष्टान्ता ८।७।६।५। विरते प्रमत्ते अप्रमत्ते च क्षयोपशमसम्यक्त्वे वेदकसम्यक्त्वे सति चतुरादि-सप्तोत्कृष्टान्ता मोहप्रकृतिस्थानविकल्पाः ७।६।५।४। अपूर्वकरणे चतुरादि-षट्पर्यन्ताः ६।५।४। अनिवृत्ति-करणे द्वयोः प्रकृत्योरुदयः २ स्थूललोभप्रकृतेरुदये वा १। एकं सूक्ष्मलोभं सूक्ष्मसाम्परायो मुनिर्वेदयति उदयमनुभवति १। अनिवृत्तिकरणस्य सवेदस्य प्रथमे भागे त्रिवेद-चतुःसंज्वलनानामेकैकोदयसम्भवं द्वि-प्रकृत्युदयसम्भवं द्विप्रकृत्युदयस्थानं २ स्यात्। परेषु चतुर्षु भागेषु यथासम्भवमवेदकषायाणामेकतमः १। इत्यनिवृत्तौ २ सूक्ष्मे १। शेषाः अपूर्वकरणस्य द्वितीयभागादिसूक्ष्मसाम्परायान्ताः अवेदका वेदोदयरहिता भवन्ति। भङ्गानां विकल्पानां प्रमाणं पूर्वोद्दिष्टेन पूर्वकथितेन ज्ञातव्यम् ॥३०९–३११॥

1. सं० पञ्चसं० ३३८-३४१।

1. सप्ततिका० ४३। 2. सप्ततिका० ४४। 3. सप्ततिका० ४५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्वगुणस्थानमें सातको आदि लेकर दश तकके चार उदयस्थान होते हैं। सासादन और मिश्रमें सातसे लेकर नौ तकके तीन उदयस्थान होते हैं। अविरतसम्यक्त्वमें छहसे लेकर नौ तकके चार उदयस्थान होते हैं। देशविरतमें पाँचसे लेकर आठ तकके चार उदयस्थान होते हैं। क्षायोपशमिकसम्यक्त्वी प्रमत्त और अप्रमत्तविरतके चारसे लेकर सात तकके चार उदयस्थान होते हैं। अपूर्वकरणमें चारसे लेकर छह तकके तीन उदयस्थान होते हैं। अनिवृत्तिबादरसाम्परायमें दो और एकप्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं। सूक्ष्मसाम्पराय एकप्रकृतिक स्थानका ही वेदन करता है। शेष उपरिम गुणस्थानवर्ती जीव मोहकर्मके अवेदक होते हैं। इन उदयस्थानोंके भङ्गोंका प्रमाण पूर्वोद्दिष्ट क्रमसे जानना चाहिए ॥३०९-३११॥

अब मूलसप्ततिकाकार मिथ्यात्व आदि गुणस्थानोंकी अपेक्षा दशसे लेकर एकप्रकृतिक उदयस्थानोंके भङ्गोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०४१] एक्क य छक्केगारं एगारेगारसेव णव तिण्णि।
एदे चउवीसगदा वारस दुग पंच एगम्मि[1] ॥३१२॥

५२ । गु २४।३५२ । गु २४

सर्वगुणस्थानेषु मिलित्वा दशकं स्थानमेकं १ नवकानि स्थानानि षट् ६ अष्टकानि स्थानानि एकादश ११ सप्तकानि प्रकृतिस्थानान्येकादश ११ षट्कानि स्थानान्येकादश ११ पञ्चकानिस्थानानि नव ९ चतुष्कानि स्थानानि त्रीणि ३ एतानि समुच्चयीकृतानि मोहप्रकृतिस्थानानि द्वापञ्चाशत् ५२। क्रोधादयश्चत्वारः ४ वेदास्त्रयः ३ हास्यादियुगलं २ परस्परेण गुणिताश्चतुर्विंशतिः २४। तैर्गुणिता द्वापञ्चाशत् ५२। अष्टचत्वारिंशदधिकद्वादशशतसंख्योपेताः १२४८ मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तेषु प्रकृत्युदयस्थानविकल्पा भवन्ति। सवेदे अनिवृत्तौ भङ्गाः १२ अवेदे ४ सूक्ष्मे १ सर्वे मीलिताः १२६५। एते मोहप्रकृत्युदयस्थानविकल्पाः स्युः भवन्ति। मोहप्रकृत्युदयस्थानानि १।६।११।११।११।९।३। स्वस्वप्रकृतिसंख्याभिर्गुणितानि १०।५४।८८।७७।६६।४५।१२। एते मीलिताः ३५२। एते चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः ८४४८। तथा द्वादश द्विगुणिताः २४। एकसंख्याकाः ५ मीलिताः ८४७७ एते पदबन्धा उदयप्रकृतिविकल्पा भवन्ति ॥३१२॥

दशप्रकृतिक उदयस्थान एक है, नौप्रकृतिक उदयस्थान छह है, आठ, सात और छहप्रकृतिक उदयस्थान ग्यारह-ग्यारह हैं, पाँचप्रकृतिक उदयस्थान नौ हैं, चारप्रकृतिक उदयस्थान तीन हैं। इन सबको चौबीससे गुणा करनेपर उन-उन उदयस्थानोंके भङ्गोंका प्रमाण आ जाता है। दोप्रकृतिक उदयस्थानके बारह भङ्ग हैं और एकप्रकृतिक उदयस्थानमें पाँच भङ्ग होते हैं ॥३१२॥

विशेषार्थ—दशसे लेकर चार तकके उदयस्थानोंके विकल्प क्रमशः इस प्रकार हैं—१, ६, ११, ११, ११, ९, ३। इन्हें जोड़ देनेपर ५२ विकल्प होते हैं। इन्हें अपनी-अपनी प्रकृतियोंकी संख्यासे गुणा करनेपर ३५२ उदयस्थान-विकल्प हो जाते हैं। इन एक-एक उदयस्थानोंमें चार कषाय, तीन वेद और हास्यादियुगलके परस्परमें गुणा करनेपर चौबीस भङ्ग होते हैं। उदयस्थान विकल्पोंको चौबीससे गुणा करनेपर सर्व भङ्गोंका प्रमाण आ जाता है। कहनेका भाव यह है कि उक्त ५२ विकल्पोंको २४ से गुणा करनेपर १२४८ प्रमाण आता है। उसमें द्विकप्रकृतिक उदयस्थानके १२ एवं एकप्रकृतिक स्थानके ५ और जोड़नेपर १२६५ उदयस्थान-सम्बन्धी विकल्प होते हैं। तथा ३५२ उदयस्थानोंको २४ से गुणित करनेपर ८४४८ होते हैं।

१. सप्ततिका० ४६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनमें दोप्रकृतिक उदयस्थानके २×१२=२४ और एकप्रकृतिक उदयस्थानके ५ इस प्रकार २९ और मिला देनेपर पदवृन्दोंकी सर्व संख्या ८४७७ हो जाती है।

अब भाष्यगाथाकार इसी अर्थका स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं—

बारसपणसट्ठाइं† उदयवियप्पेहिं मोहिया जीवा।
चुलसीदिं सत्तत्तरि पयबंदसदेहिं विण्णेया ॥३१३॥

१२६५।८४७७।

द्वादशशतपञ्चषष्टिसंख्योपेतैरुदयविकल्पैर्मोहप्रकृत्युदयस्थानभङ्गैः १२६५ सप्तसप्तत्यधिकचतुरशीतिशतसंख्योपेतैश्च पदबन्धैः मोहप्रकृत्युदयविकल्पैः ८४७७ त्रिकालत्रिलोकोदरवर्त्तिचराचरजीवा मोहिता विकलीकृता ज्ञेया ज्ञातव्या भवन्ति ॥३१३॥

ये सर्व संसारी जीव बारह सौ पैंसठ (१२६५) उदयविकल्पोंसे और चौरासी सौ सत्तहत्तर (८४७७) पदवृन्दोंसे मोहित हो रहे हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३१३॥

उदयविकल्प १२६५। पदवृन्द ८४७७।

अब इनकी संख्याके लिए भाष्यगाथाकार उत्तर गाथासूत्र कहते हैं—

[1]जुगवेदकसाएहिं दुग-तिग-चउहिं भवंति संगुणिया।
चउवीस वियप्पा ते दसादि उदया य सत्तेव ॥३१४॥

[2]एवं दसादि उदयठाणाणि सत्त १०।९।८।७।६।५।४। एयाणि कसायादीहिं चउवीसभेयाणि भवंति। एदेसिं च संखत्थं भणइ—

हास्यादियुग्मेन २ वेदत्रिकेण ३ कषायचतुष्केण ४ परस्परेण संगुणिताश्चतुर्विंशतिर्विकल्पाः २४ भवन्ति। ते पूर्वोक्ता दशादय उदयाः सप्तसंख्योपेताश्चतुर्विंशतिभेदान् प्राप्नुवन्ति ॥३१४॥

एवं दशादयो मोहप्रकृत्युदयस्थानानि सप्त १०।९।८।७।६।५।४। एतानि सप्त स्थानानि कषायादिभिर्गुणितानि प्रत्येकं चतुर्विंशतिर्भेदा भवन्ति। तेषां च संख्यामाह—

मिथ्या	सासा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म०
८	७	७	७	६	५	५	४	२।१	१
९।९	८।८	८।८	८।८	७।७	६।६	६।६	५।५		
१०	९	९	९	८	७	७	६		
७		०	६	५	४	४			
८।८	०		७।७	६।६	५।५	५।५	०	०	०
९			८	७	६	६			
८	४	४	८	८	८	८	४	२।१	१
२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	६।४	१
१९२	९६	९६	१९२	१९२	१९२	१९२	९६	१२।४	१

हास्यादियुग्मको वेदत्रिक और कषायचतुष्कसे गुणा करने पर चौबीस विकल्प हो जाते हैं। दश आदि सात उदयस्थान चौबीस चौबीस विकल्परूप होते हैं ॥३१४॥

दश आदि सात उदयस्थान इस प्रकार हैं—१०, ९, ८, ७, ६, ५, ४।
ये उदयस्थान कषायादिके चौबीस चौबीस भेदरूप होते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३४२। 2. ५ 'इति दशाद्युदयः' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०३)।
†ब पण्णट्ठाइं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]मिच्छे अड चउ चउ दुसु तदो चउसु हवंति अट्ठेव।
चत्तारि अपुव्वे वि य उदयट्ठाणाणि मोहम्मि ॥३१५॥

८।४।४।८।८।८।८। अपुव्वे ४।

मिथ्यादृष्ट्यादि-सूक्ष्मान्तगुणस्थानेषु मोहनीयप्रकृत्युदयस्थानानां दशक-नवकादीनां संख्या कथ्यते—मिथ्यादृष्टौ अष्टौ ८ सासादन-मिश्रयोर्द्वयोश्चतुश्चतुःसंख्या ४।४। ततश्चतुर्षु अविरत-देशविरत-प्रमत्ताप्रमत्तेषु प्रत्येकमष्टौ ८।८।८।८। अपूर्वकरणे चत्वारि ४। अग्रे वक्ष्यमाणानिवृत्तिकरणे द्वयं २ सूक्ष्मे एकं १ मोहे प्रकृत्युदयस्थानसंख्यानि भवन्ति ॥३१५॥

८।४।४।८।८।८।८। अपूर्वे ४। एते प्रकृत्युदयाश्चतुर्विंशत्या २४ गुणिता उदयविकल्पा भवन्तीत्याह—

मिथ्यात्वगुणस्थानमें मोहके आठ उदयस्थान हैं। दूसरे और तीसरे इन दो गुणस्थानोंमें चार चार उदयस्थान हैं। चतुर्थ आदि चार गुणस्थानोंमें आठ आठ उदयस्थान हैं। अपूर्वकरणमें चार उदयस्थान हैं ॥३१५॥

मिथ्यात्वादिगुणस्थानोंमें उदयस्थानोंकी संख्या क्रमशः इस प्रकार है—८, ४, ४, ८, ८, ८, ८। अपूर्वकरणमें ४ उदयस्थान होते हैं।

[2]चउवीसेण विगुणिया मिच्छाइउदयपयडीओ।
उदयवियप्पा होंति हु ते पयबंधा य णियमेण ॥३१६॥

[3]सासण मिस्सेऽपुव्वे उदयवियप्पा हवंति छण्णउदी।
अण्णे पंचसु दुगुणा अणियट्टि सुहुमे सत्तरसं ॥३१७॥

[4]एवं मिच्छादिसु उदयवियप्पा १९२।९६।९६।१९२।१९२।१९२।१९२।९६। अणियट्टिए सवेदे १२। अवेदे ४। सुहुमे १।

मिथ्यादृष्ट्यादिषु मोहप्रकृत्युदयस्थानसंख्या ८।४।४।८।८।८।८।४ संस्थाप्य चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः सन्तः उदयविकल्पाः स्थानविकल्पा हु स्फुटं ते पदबन्धाश्च प्रकृतिविकल्पा भवन्ति नियमेन। तानुदयविकल्पान् प्राह—सासादने मिश्रे अपूर्वकरणे च षण्णवतिरुदयविकल्पा भवन्ति ९६। अन्येषु पञ्चसु मिथ्यात्वाविरत-देश-प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानेषु षण्णवतिर्द्विगुणिताः द्विनवत्यधिकशतप्रमिताः १९२ उदयविकल्पा भवन्ति। अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः सप्तदश १७ ॥३१६–३१७॥

एवं मिथ्यादृष्ट्यादि-क्षीणकषायान्तेषु मोहप्रकृत्युदयविकल्पाः

मि०	सा०	मि०	अवि०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०
१९२	९६	९६	१९२	१९२	१९२	१९२	९६

अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे १२ अवेदभागे ४ सूक्ष्मे १। एवं सर्वे मीलिताः १२६५।

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें जो मोहकर्मकी उदय-प्रकृतियाँ हैं, अर्थात् उदयस्थानोंकी संख्या है, उसे चौबीससे गुणा करने पर उदयस्थानके विकल्पोंका प्रमाण आ जाता है। वे उदयस्थानोंके विकल्प या पदवृन्द नियमसे सासादन, मिश्र और अपूर्वकरणमें छ्यानबै छ्यानबै

1. सं० पञ्चसं० ५, ३४३। 2. ५, ३४४। 3. ५, ३४५। 4. ५, 'इति मिथ्यादृष्ट्यादिषु' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०४)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं। तथा शेष पाँच गुणस्थानोंमें इनसे दुगुने अर्थात् एकसौ बानबे एक सौ बानबे होते हैं। अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें सत्तरह होते हैं ॥३१६-३१७॥

मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें उदयस्थानोंके भेद इस प्रकार हैं—

मि०	सा०	मि०	असं०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपूर्व	अनि०	सवेद०	अवेद०	सूक्ष्म०
१९२	९६	९६	१९२	१९२	१९२	१९२	९६		१२	४	१

अब भाष्यगाथाकार इन सर्व संख्याओंका योगफल बतलाते हैं—

[1]उदयट्ठाणे संखा उदयवियप्पा हवंति ते चेव ।
तेरस चेव सयाणि दु पंचत्तीसा य हीणाणि ॥३१८॥

१२६५ ।

या मोहप्रकृत्युदयस्थानानां संख्यास्ते उदयविकल्पाः पञ्चत्रिंशद्धीनास्त्रयोदशशतप्रमिताः द्वादशशत-पञ्चषष्टिर्भवन्तीत्यर्थः १२६५ ॥३१८॥

यह जो उदयस्थानोंकी संख्या है, उन सबका योग पैंतीस कम तेरह सौ अर्थात् बारहसौ पैंसठ होता है, सो ये सब उदयस्थानके विकल्प जानना चाहिए ॥३१८॥

मोहकर्मके उदयस्थान-विकल्प १२६५ होते हैं।

अब आचार्य गुणस्थानोंमें उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंका तथा उनके पदवृन्दोंका निरू-पण करते हैं—

[2]अडसट्ठी बत्तीसं बत्तीसं सट्ठि होंति बावण्णा ।
चउदालं चउदालं बीसमपुव्वे य उदयपयडीओ ॥३१९॥
ताओ चउवीसगुणा पयबंधा होंति मोहम्मि ।
अणियट्टीसुहुमाणं बारस पंचयदुगेगसंगुणिया ॥३२०॥

अथ मोहोदयपदबन्धसंख्यां गुणस्थानेषु गाथानवकेनाऽऽह—['अडसट्ठी बत्तीसं' इत्यादि ।] पूर्वोक्त-दशकाद्युदयानां प्रकृतयो मिथ्यादृष्टौ अष्टषष्टिः ६८ । सासादने द्वात्रिंशत् ३२ । मिश्रे द्वात्रिंशत् ३२ । असंयते षष्टिः ६० । देशसंयते द्वापञ्चाशत् ५२ । प्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत् ४४ । अप्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत् ४४ । अपूर्वकरणे विंशतिः २० चोदयप्रकृतयो भवन्ति । ता एताः दशादिकाः ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४ २० चतुर्विंशत्या २४ गुणिता मोहनीये पदबन्धा उदयविकल्पा भवन्ति । अनिवृत्तिकरणसवेदा २ वेद १ सूक्ष्माणां १ प्रकृत्युदया द्वादश पञ्च द्व्येके गुणिताः क्रमेण उदयप्रकृतिविकल्पा भवन्ति ॥३१९-३२०॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें उदयस्थानोंकी प्रकृतियाँ अड़सठ हैं, सासादनमें बत्तीस हैं, मिश्रमें बत्तीस हैं, अविरतमें साठ हैं, देशविरतमें बावन है, प्रमत्तविरतमें चवालीस है, अप्रमत्तविरतमें चवालीस है, अपूर्वकरणमें बीस है, इन उदयप्रकृतियोंको चौबीससे गुणा करने पर आठ गुण-स्थानोंमें मोहकर्मके पदवृन्दोंकी संख्याका प्रमाण आ जाता है। अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म-साम्परायकी उदयप्रकृतियाँ बारह और पाँच हैं, उनके पदवृन्द क्रमशः दो और एकसे गुणित जानना चाहिए ॥३१९-३२०॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ३४६ । 2. ५, ३४७-३४९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]एवं मोहे पुव्वुत्तदसगादि-उदयपयडीओ मिच्छादिसु ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४। अपुव्वे २०। अणियट्टिम्मि २।१। सुहुमे १। एयाओ चउवीसगुणा जाव अपुव्वं। मिच्छे ८६४।७६८। दो वि मिलिए १६३२। सासणादिसु ७६८।७६८।१४४०।१२४८।१०५६।१०५६।४८०। एदा हु मिलिया ८४४८। वुत्तं च—

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तदशकाद्युदयप्रकृतयः ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४।२० चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः मिथ्यादृष्टौ ८६४। द्वि० ७६८। उभयोर्मीलिताः १६३२ सासादने ७६८। मिश्रे ७६८। असंयते १४४०। देशसंयते १२४८। प्रमत्ते १०५६। अप्रमत्ते १०५६। अपूर्वकरणे ४८०। एतासु मीलिताः ८४४८।

इस प्रकार मोहकर्मकी पूर्वोक्त दशप्रकृतिक उदयस्थानोंकी उदयप्रकृतियाँ मिथ्यात्व आदि सात गुणस्थानोंमें क्रमशः ६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ होती हैं। अपूर्वकरणमें २० होती हैं। अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें २ और अवेदभागमें १ होती है, तथा सूक्ष्मसाम्परायमें १ उदय-प्रकृति होती है। अपूर्वकरणगुणस्थान तककी इन उदयप्रकृतियोंको चौबीससे गुणा करने पर पद-वृन्द इस प्रकार होते हैं–मिथ्यात्वमें पहले ३६ के भेदको २४ से गुणा करनेपर ८६४ आये। दूसरे भेदके ३२ को २४ से गुणा करने पर ७६८ आये। दोनोंको मिलाने पर १६३२ पदवृन्द होते हैं। सासादनादिगुणस्थानोंमें क्रमसे ७६८, ७६८, १४४०, १२४८, १०५६, १०५६, ४८० पदवृन्द होते हैं। ये सर्व मिलकरके ८४४८ पदवृन्द हो जाते हैं।

अब इसी कथनको भाष्यगाथाकार निरूपण करते हैं—

[2]चउसट्ठी अट्ठसया अड्डट्ठी होंति सत्तसया।
बत्तीसा सोलसया जुत्ता मिच्छम्मि उभओ वि ॥३२१॥

मिच्छे।१६३२।

एतदुक्तं च—['चउसट्ठी अट्ठसया' इत्यादि।] चतुःषष्ट्यधिकाष्टशतानि ८६४ अष्टषष्ट्यधिकसप्तशतानि ७६८ उभयविमिश्रे द्वात्रिंशदधिकषोडशशतप्रमिता मोहोदयप्रकृतिविकल्पा मिथ्यादृष्टौ १६३२ भवन्ति ॥३२१॥

मिथ्यात्वमें आठ सौ चौंसट (८६४) और सात सौ अड़सठ (७६८) ये दोनों मिलकरके सोलह सौ बत्तीस (१६३२) पदवृन्द होते हैं ॥३२१॥

मिथ्यात्वमें १६३२ पदवृन्द हैं।

[3]अड्डट्ठी सत्तसया सासण-मिस्साण होंति पयबंधा।
अविरयम्मि चोद्दह सयाणि चत्तालसहियाणि ॥३२२॥

७६८।७६८।१४४०।

सासादन-मिश्रयोरष्टषष्ट्यधिकसप्तशतप्रमिताः ७६८। ७६८। असंयते चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशत-प्रमिताः १४४० पदबन्धाः मोहोदयप्रकृतिविकल्पा भवन्ति ॥३२२॥

सासादन और मिश्रमें पदवृन्द सात सौ अड़सठ, सात सौ अड़सठ होते हैं। अविरत-सम्यक्त्वमें चौदह सौ चालीस पदवृन्द होते हैं ॥३२२॥

सासादनमें ७६८, मिश्रमें ७६८ अविरतमें १४४० पदवृन्द हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, 'पूर्वोदितदशका' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०४)। 2. ५, ३५०। 3. ५, ३५१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अडयाला वारसया देसेऽपुव्वम्मि चउसयाऽसीया ।
छप्पण्णं च सहस्सं पमत्तइयराण णायव्वं ॥३२३॥

१२४८।१०५६।१०५६।४८०। सव्वाओ ८४४८

देशसंयते अष्टचत्वारिंशदधिकद्वादशशतप्रमिताः १२४८ । अपूर्वकरणे अशीत्यधिकशतचतुष्टयं ४८० । प्रमत्ताप्रमत्तयोः षट्पञ्चाशदधिकसहस्रं १०५६।१०५६ ज्ञेयम् । सर्वाः पदबन्धाख्याः प्रकृतयो मोहोदयप्रकृतिविकल्पाः ८४४८ भवन्ति ॥३२३॥

देशविरतमें बारह सौ अड़तालीस, तथा अपूर्वकरणमें चार सौ अस्सी पदवृन्द होते हैं। प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें एक हजार छप्पन एक हजार छप्पन पदवृन्द जानना चाहिए ॥३२३॥

देशविरतमें १२४८, प्रमत्तमें १०५६, अप्रमत्तमें १०५६ और अपूर्वकरणमें ४८० पदवृन्द होते हैं। इन आठों गुणस्थानोंके पदवृन्दोंका प्रमाण ८४४८ होता है।

[2]संजलणा वेदगुणा वारस भंगा दुगोदया होंति ।
एगोदया दु चउरो सुहमे एगो मुणेयव्वो ॥३२४॥
उदयादो सत्तरसं खलु पयडीओ हवंति उगुतीसं ।
अणियट्टी तह सुहुमे दुगेगपयडीहिं संगुणिया ॥३२५॥

[3]एवं अणियट्टिम्मि दुगोदया १२ । एगोदया ४ । सुहुमे १ । एवं उदयठाणाणि १७ । तहा बारससु दुगोदएसु पयडीओ २४। एगोदयपयडीओ ४ । सुहुमे एया पयडी १ । एवं पयडीओ २९ ।

अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे पुंवेदः १ संज्वलनानां मध्ये एकः १ एवं द्वौ उदयौ २ । संज्वलनाः ४ वेदैः ३ गुणिताः द्वादश भङ्गाः १२ । तैर्द्वादशभिर्द्वौ उदय २ गुणिताश्चतुर्विंशतिः २४ । अवेदभागे एकोदयः कषायः १ चतुर्भिः कषायैर्गुणिताश्चत्वारः ४ । सूक्ष्मे संज्वलनसूक्ष्मैकलोभः १ । स एकेन गुणित एक एव १ । एवं एकोनत्रिंशदुदयप्रकृतिविकल्पाः २९ भवन्ति । तदेवाऽऽह—अनिवृत्तिकरणे सवेदे द्विकोदयाः १२ अवेदे एकोदयाः ४ सूक्ष्मे एकोदयः १ । एवमुदयात्सप्तदश प्रकृतयः १७ उदयस्थानरूपा भवन्ति । तथा अनिवृत्तिकरणे सवेदद्विकोदयौ २ द्वादशभिर्गुणिताश्चतुर्विंशतिः २४ । अवेदे एकोदयः १ चतुर्भिः कषायैः ४ गुणितश्चत्वारः ४ । सूक्ष्मे एकोदयः एकेन गुणित एक एव १ । एवमेकोनत्रिंशत्कोदयप्रकृतिविकल्पाः २९ भवन्ति ॥३२४–३२५॥

अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें एक संज्वलन और एक वेद; इन दो प्रकृतियोंके उदयस्थानके संज्वलन और वेदगुणित बारह भङ्ग अर्थात् चौबीस पदवृन्द होते हैं। अवेदभागमें एकप्रकृतिक उदयवाले चार भङ्ग होते हैं। तथा सूक्ष्मसाम्परायमें एकप्रकृतिक उदयवाला एक ही भङ्ग जानना चाहिए। अनिवृत्तिकरण सवेदभागमें उदयकी अपेक्षा द्विक उदयवाली बारह और अवेदभागमें एक उदयवाली चार; तथा सूक्ष्मसाम्परायमें एक, इस प्रकार सर्व मिलकर उदयकी अपेक्षा सत्तरह-प्रकृतियाँ होती हैं। इनमेंसे सवेदभागकी दोप्रकृतियोंको बारहसे गुणा करनेपर चौबीस पदवृन्द होते हैं। तथा अवेदभागकी चारको और सूक्ष्मसाम्परायकी एकप्रकृतिको एक-एकसे गुणा करनेपर पाँच पदवृन्द होते हैं। ये दोनों मिलकर दोनों गुणस्थानोंके उनतीस पदवृन्द हो जाते हैं ॥३२४–३२५॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३५२-३५३ । 2. ५, ३५४–३५५ । 3. ५, 'सवेदेऽनिवृत्तौ' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २०५) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें द्विक उदयवाले १२, एक उदयवाले ४, सूक्ष्मसाम्परायमें १ ये सर्व १७ उदयस्थान होते हैं। तथा द्विक उदयवाले बारह भङ्गोंकी प्रकृतियाँ २४ हैं। एक उदय वाली प्रकृतियाँ ४ हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें उदयप्रकृति १ है। इस प्रकार दोनों गुणस्थानोंके उदय पदवृन्द २९ होते हैं।

अब भाष्यगाथाकार पूर्वोक्त समस्त अर्थका उपसंहार करते हैं—

[1]उदयपयडिसंखेज्जा⊛ ते चेव हवंति पयबंधा।
अट्ठसहस्सा चउरो सयाणि सत्तत्तरी य मोहम्मि ॥३२६॥

८४७७

पदबन्धाख्याः प्रकृतयस्ते उदयप्रकृतिसंख्यायाः पदबन्धाः अष्टसहस्रचतुःशतसप्तसप्ततिप्रमिता मोहनीये उदयविकल्पाः ८४७७ भवन्तीत्यर्थः। गुणस्थानेषु मोहोदयविकल्पाः स्युः ॥३२६॥

इस प्रकार उदयप्रकृतियोंकी जितनी संख्या हैं, वे सब पदवृन्द जानना चाहिए। मोहकर्मके सर्व गुणस्थानसम्बन्धी पदवृन्द आठ हजार चारसौ सतहत्तर होते हैं ॥३२६॥

मोहकर्मके सर्वपदवृन्द ८४७७ हैं।

अब योग, उपयोग और लेश्यादिको आश्रय करके मोहकर्मके उदयस्थानसम्बन्धी भंगोंको जाननेके लिए मूलसप्ततिकाकार निर्देश करते हैं—

[मूलगा०४२] [2]जे जत्थ गुणे उदया जाओ य हवंति तत्थ पयडीओ।
जोगोवओगलेसादिएहि जिह जोगंते गुणिज्जाहि[१] ॥३२७॥

अथ मोहोदयस्थानतत्प्रकृतीर्गुणस्थानेषु योगोपयोगलेश्यादीनाश्रित्याऽऽह—['जे जत्थ गुणे उदया' इत्यादि।] यत्र गुणस्थाने ये उदया योगादयः याश्च प्रकृतयो भवन्ति, ते ताश्च तत्र योगोपयोगलेश्यादिभिर्यथायोग्यं यथासम्भवं गुण्याः गुणनीयाः। तथाहि—पूर्वोक्तस्थानसंख्यां तत्प्रकृतिसंख्यां च संस्थाप्य स्व-स्व-गुणस्थानसम्भवि-योगोपयोगलेश्याभिः संगुण्य मेलने स्थानसंख्या प्रकृतिसंख्या च स्यादित्यर्थः ॥३२७॥

जिस गुणस्थानमें जितने उदयस्थान और उनकी जितनी प्रकृतियाँ होती हैं, उन्हें उन गुणस्थानोंमें यथासम्भव योग, उपयोग और लेश्यादिकसे गुणा करना चाहिए ॥३२७॥

अब इस गाथासूत्रसे सूचित अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए भाष्यगाथाकार सबसे पहले गुणस्थानोंमें योगोंका निरूपण करते हैं—

[3]दुसु तेरे दस तेरस णव एयारस हवंति णव छासु।
सत्त सजोगे जोगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं+ ॥३२८॥

[4]एवं गुणठाणेसु जोगा १३।१३।१०।१३।११।९।९।९।९।९।९।७।०।

तद्यथा—मिथ्यादृष्टि-सासादनयोर्द्वयोर्योगा आहारकद्वयरहितास्त्रयोदश १३।१३। मिश्रे योगा दश १०। अविरते योगास्त्रयोदश १३। प्रमत्ते एकादश योगाः ११। षट्सु देशसंयताप्रमत्तापूर्वकरणानिवृत्ति-

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३५६। 2. ५, ३५७। 3. ५, ३५८। 4. ५, 'गुणेषु योगा' इत्यादिगद्यांशः। (पृ० २०६)।

१. सप्ततिका० ४७। परं तत्र गाथा-पूर्वार्धस्थाने उत्तरार्ध पाठः, उत्तरार्धस्थाने च पूर्वार्धपाठो विद्यते।

⊛ द 'पयबंधा पयडीओ' इति पाठः। + ब 'अजोगे चेव' जोगो त्ति' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणसूक्ष्मसाम्परायोपशान्तक्षीणकषायेषु प्रत्येकं नव नव योगा ६।६ भवन्ति। सयोगे सप्त योगाः ७। अयोगे शून्यं ०। सयोगान्तयोगाः सन्ति, अयोगे न सन्ति ॥३२८॥

पहले दो गुणस्थानोंमें तेरह तेरह योग होते हैं। तीसरेमें दश योग होते हैं। चौथेमें तेरह योग होते हैं। पाँचवेंमें नौ और छठेमें ग्यारह योग होते हैं। इससे आगे सातवेंसे बारहवें तक छह गुणस्थानोंमें नौ नौ योग होते हैं। सयोगिकेवलीके सात योग होते हैं। अयोगिकेवलीके कोई योग नहीं होता है ॥३२८॥

गुणस्थानोंमें योग इस प्रकार होते हैं—

मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०	क्षीण०	सयो०	अयो०
१३	१३	१०	१३	६	११	६	६	६	६	६	६	७	०

अब पहले मिथ्यादृष्टिके योगसम्बन्धी भंगोंका निरूपण करते हैं—

मिच्छादिट्ठिस्सोदयभंगा अट्ठेव होंति जिणभणिया।
ते दसजोगे गुणिया भंगमसीदी य पज्जत्ते ॥३२९॥

उदया ८ दसजोयगुणा ८०।

मि०
८

मिथ्यादृष्टेः स्थानानि दशकादीनि चत्वारि ६।६ अनन्तानुबन्ध्युदयरहितानि नवकादीनि चत्वारि
१०

मि०
७

८।८ मिलित्वा अष्टौ उदयभङ्गा भवन्ति, जिनैर्भणितास्ते अष्टौ उदयविकल्पाः ८ दशभिर्योगैः १० गुणिता
६

उदयस्थानविकल्पाः ८० मिथ्यादृष्टेः पर्याप्तस्य भवन्ति ॥३२९॥

मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धीके उदयसहित दश आदि चार उदयस्थान और अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित नौ आदि चार उदयस्थान इस प्रकार आठ उदयस्थान जिन भगवान्‌ने कहे हैं। उन्हें पर्याप्त दशामें सम्भव दश योगोंसे गुणित करने पर उदयस्थान-सम्बन्धी अस्सी भङ्ग हो जाते हैं ॥३२९॥

मिथ्यात्वमें उदयस्थान ८ को १० योगोंसे गुणा करने पर पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके ८० भङ्ग होते हैं।

तस्सेव अपज्जत्ते उदयवियप्पाणि होंति चत्तारि।
ते तिण्णि-मिस्सजोगेहिं गुणिया बारसा होंति ॥३३०॥

४।३।

८

तस्यैव मिथ्यादृष्टेरपर्याप्तकाले उदयस्थानविकल्पाः ६।६ चत्वारो भवन्ति ४। ते चत्वारो भङ्गाः ४
१०

औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगैस्त्रिभिर्गुणिता द्वादशोदयस्थानविकल्पा अपर्याप्तमिथ्यादृष्टौ भवन्ति १२ ॥३३०॥

उसी अपर्याप्त मिथ्यादृष्टिके उदयस्थान-सम्बन्धी विकल्प चार ही होते हैं। उन्हें अपर्याप्तकालमें सम्भव तीन मिश्रयोगोंसे गुणा करने पर बारह भङ्ग होते हैं ॥३३०॥

अपर्याप्त मिथ्यादृष्टिके उदय-विकल्प ४ और योग भङ्ग १२ होते हैं।

५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब सासादन गुणस्थानमें योगसम्बन्धी भंगोंका निरूपण करते हैं—

आसादे चउभंगा बारसजोगाहया य अडयाला ।
मिस्सम्हि य चउभंगा दसजोगहया य चत्तालं ॥३३१॥

४।४८।४।४०।

७
सासादनस्थानानि नवकादीनि चत्वारि ८।८ इति चतुर्भङ्गाः ४ । सासादनो नरकं न यातीति वैक्रि-
६
यिकमिश्रं विना द्वादशभिर्योगै १२ र्हता अष्टचत्वारिंशदुदयस्थानविकल्पाः ४८ सासादने भवन्ति । मिश्रे
७
८।८ चतुर्भङ्गाः दशयोगगुणिताश्चत्वारिंशदुदयस्थानविकल्पाः ४० भवन्ति ॥३३१॥

सासादन गुणस्थानमें नौ आदिक चार उदयस्थान होते हैं। उन्हें पर्याप्तकालमें संभव बारह योगोंसे गुणा करने पर अड़तालीस भङ्ग हो जाते हैं। मिश्र गुणस्थानमें सम्भव चार उदयस्थानोंको दश योगोंसे गुणा करने पर चालीस भङ्ग होते हैं ॥३३१॥

सासादनमें उदयस्थान ४ और भंग ४८ होते हैं। मिश्रमें उदयस्थान ४ और भंग ४० होते हैं।

अब अविरतसम्यग्दृष्टिके योगसम्बन्धी भंगोंका निरूपण करते हैं—

अट्ठेवोदयभंगा अविरयसम्मस्स होंति णायव्वा ।
मिस्सतिगं वज्जित्ता छह जोगहया असीदी य ॥३३२॥

८।८०।

७ ६
अविरतसम्यग्दृष्टेर्वेदकसम्यक्त्वापेक्षया ८।८ । ७।७ अष्टावुदयस्थानभङ्गाः ८ मिश्रत्रिकं वर्जयित्वा
६ ८
दशभिर्योगै १० र्गुणिताः अशीत्युदयस्थानविकल्पा असंयतसम्यग्दृष्टेः पर्याप्तस्य भवन्ति ८० ॥३३२॥

अविरतसम्यक्त्वीके उदयस्थानके विकल्प आठ ही होते हैं। उन्हें अपर्याप्तकालमें संभव तीन मिश्रयोगोंको छोड़कर शेष दश योगोंसे गुणा करने पर अस्सी भंग चौथे गुणस्थानमें जानना चाहिए ॥३३२॥

अविरतसम्यक्त्वमें उदयस्थान ८ और योग भंग ८० होते हैं।

अब देशविरतके योगसम्बन्धी भंग कहते हैं—

विरयाविरए वि णियमा †उदयवियप्पा दु होंति अट्ठेव ।
णवजोगेहि य गुणिया भंगा बावत्तरी होंति ॥३३३॥

उदया ८ णवजोगगुणा ७२ ।

६ ५
विरताविरते देशसंयते ७।७ । ६।६ मिलित्वाऽष्टौ प्रकृत्युदयस्थानविकल्पा नियमेन ८ भवन्ति ।
८ ७
नवभिर्योगैर्गुणिता द्वासप्ततिरुदयस्थानविकल्पा भवन्ति ॥३३३॥

---

†ब उदये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरताविरतमें उदयस्थान-सम्बन्धी विकल्प नियमसे आठ ही होते हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणा करने पर बहत्तर भंग होते हैं ॥३३३॥

देशविरतमें उदयस्थान ८ को ९ योगोंसे गुणा करने पर ७२ भंग होते हैं।

अब प्रमत्तविरतके योगसम्बन्धी भंग कहते हैं—

अट्ठ य पमत्तभंगा जोगा एगारसा य तस्सेव।
तेहि हया अडसीया भंगवियप्पा वि ते होंति ॥३३४॥

उदया ८ एयारहजोगगुणा ८८।

५ ४
प्रमत्तस्य ६।६। ५।५ मिलित्वाऽष्टौ भङ्गाः ८ तस्य प्रमत्तस्यैकादशयोगाः ११ तैर्गुणिताः अष्टा-
७ ६
शीतिरुदयस्थानविकल्पाः ८८ भवन्ति ॥३३४॥

प्रमत्तगुणस्थानमें उदयस्थानके विकल्प आठ होते हैं। उन्हें इस गुणस्थानमें सम्भव ग्यारह योगोंसे गुणा कर देने पर अट्ठासी भङ्ग होते हैं ॥३३४॥

प्रमत्तविरतमें उदयस्थान ८ को ११ योगोंसे गुणित करने पर ८८ भङ्ग होते हैं।

अब अप्रमत्तविरतके योगसम्बन्धी भंग कहते हैं—

अट्ठेवोदयभंगा पमत्तिदरस्स चावि बोहव्वा।
णवजोगेहि हदा ते भंगा बावत्तरी होंति ॥३३५॥

उदया ८ णवजोगगुणा ७२।

५ ४
अप्रमत्तस्य ६।६। ५।५ मिलित्वाऽष्टौ भङ्गाः ८ नवभिर्योगैर्हता द्वासप्ततिरुदयस्थानविकल्पाः ७२
७ ६
भवन्ति ॥३३५॥

अप्रमत्तविरतके उदयस्थानके भेद आठ ही जानना चाहिए। उन्हें नौ योगोंसे गुणित करने पर बहत्तर भङ्ग हो जाते हैं ॥३३५॥

अप्रमत्तविरतमें उदयस्थान ८ को ९ योगोंसे गुणित करने पर ७२ भङ्ग होते हैं।

अब अपूर्वकरणके योगसम्बन्धी भंगोंका निरूपण कर शेष अर्थका उपसंहार करते हैं—

चउभंगापुव्वस्स य णवजोगहया हवंति छत्तीसा।
एदे चउवीसहदा ठाणवियप्पा य पुव्वुत्ता ॥३३६॥

उदय ४ णवजोगगुणा ३६।

४
अपूर्वस्य ५।५ इति चतुर्भङ्गाः ४ नवयोगैर्हताः षट्त्रिंशदुदयस्थानविकल्पाः ३६। एतावत्पर्यन्तं
६
सर्वत्रोदयस्थानविकल्पाः गुणकारश्चतुर्विंशतिः। तथाहि—मिथ्यादृष्टौ ८०।१२। सासादने ४८ गु० २४। मिश्रे ४० गु० २४। अविरते ८० गु० २४। देशे ७२। गु० २४। प्रमत्ते ८८ गु० २४। अप्रमत्ते ७२ गु० २४। अपूर्वे ३६ गु० २४ ॥३३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपूर्वकरणमें उदयस्थान चार होते हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणित करने पर छत्तीस भङ्ग होते हैं। इन पूर्वोक्त योग-भङ्गोंको चौबीससे गुणा करनेपर सर्व उदयस्थान-सम्बन्धी भङ्ग प्राप्त हो जाते हैं ॥३३६॥

अपूर्वकरणमें उदयस्थान ४ को नौ योगोंसे गुणा करने पर ३६ भङ्ग होते हैं।

अब योगसम्बन्धी उक्त सर्व भंगोंका निर्देश करते हैं—

[1]चउवीसेण य गुणिया सव्वट्ठाणाणि एत्तिया होंति।
बारसयसहस्साइं छस्सदबाहत्तराइं च ॥३३७॥

१२६७२।

एते पूर्वोक्तस्थानविकल्पाश्चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः मिथ्यादृष्टौ १९२०।२८८ पिण्डिताः २२०८। सासादने ११५२। मिश्रे ९६०। असंयते १९२०। देशे १७२८। प्रमत्ते २११२। अप्रमत्ते १७२८। अपूर्वकरणे ८६४। सर्वे एकत्रीकृताः द्वादशसहस्रषट्शतद्वासप्ततिप्रमिताः सर्वोदयस्थानविकल्पाः १२६७२ भवन्ति ॥३३७॥

ऊपर जो योगसम्बन्धी सर्व उदयस्थानोंके भंग बतलाये हैं, उन्हें चौबीससे गुणा करने पर बारह हजार छह सौ बहत्तर सर्व भंग होते हैं ॥३३७॥

विशेषार्थ—ऊपर मिथ्यात्वगुणस्थानमें पर्याप्तकालसम्बन्धी योगभंग ८० और अपर्याप्त-कालसम्बन्धी १२ बतलाये हैं, उन्हें उदय-प्रकृतियोंके परिवर्तनसे सम्भव २४ भंगोंसे गुणा करने पर क्रमशः (८०×२४=) १९२० और (१२×२४=) २८८ आते हैं। इन दोनोंको जोड़ देने पर (१९२०+२८८=) २२०८ भंग मिथ्यात्वगुणस्थानमें प्राप्त होते हैं। सासादनमें योग भंग ४८ हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (४८×२४=) सर्व भंग ११५२ होते हैं। मिश्रमें योगभङ्ग ४० हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (४०×२४=) सर्व भङ्ग ९६० होते हैं। अविरतमें योगभङ्ग ८० हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (८०×२४=) सर्व भङ्ग १९२० होते हैं। देशविरतमें योग-भङ्ग ७२ हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (७२×२४=) सर्व भङ्ग १७२८ होते हैं। प्रमत्तविरतमें योग-भङ्ग ८८ हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (८८×२४=) सर्व भङ्ग २११२ होते हैं। अप्रमत्तविरतमें योगभङ्ग ७२ हैं। उन्हें २४ से गुणित करने पर (७२×२४=) सर्व भङ्ग १७२८ होते हैं। अपूर्वकरणमें योगभङ्ग ३६ हैं। उन्हें २४ से गुणा करनेपर (३६×२४=) सर्वभङ्ग ८६४ होते हैं। प्रत्येक गुणस्थानके इन सर्वभङ्गोंको जोड़ देनेपर (२२०८×११५२+९६०+१९२०+१७२८+२११२+१७२८+८६४=) १२६७२ सर्वगुणस्थानोंके-योग सम्बन्धी भङ्गोंका प्रमाण जानना चाहिए।

इन भङ्गोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है :—

क्रमांक	गुणस्थान	योग	उदय-विकल्प	गुणकार		भंग
१	मिथ्यात्व	पर्याप्त १०	८	८०	२४	१९२०
		अप० ३	४	१२	२४	२८८
२	सासादन	पर्याप्त १२	४	४८	२४	११५२
३	मिश्र	१०	४	४०	२४	९६०

1. सं०पञ्चसं० ५, ३५९-३६१। तथा 'मिथ्यादृष्टौ योगाः' इत्यादिगद्यभागः' (पृ० २०६)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	गुणस्थान	योग	उदयविकल्प	गुणकार		भंग
४	अविरत	पर्याप्त १०	८	८०	२४	१९२०
५	देशविरत	९	८	७२	२४	१७२८
६	प्रमत्तविरत	११	८	८८	२४	२११२
७	अप्रमत्तविरत	९	७	७२	२४	१७२८
८	अपूर्वकरण	९	४	३६	२४	८६४
				सर्वभंगोंका जोड़		१२६७२

अब सासादन गुणस्थानमें योगसम्बन्धी भंगोंमें जो कुछ विशेषता है उसे बतलाते हैं—

[1]चउसट्ठि होंति भंगा वेउव्वियमिस्ससासणे णियमा।
वेउव्वियमिस्सस्स य णत्थि पुहत्तेग चउवीसा ॥३३८॥

सासणो णिरए ण उववज्जइ त्ति वयणाओ णपुंसकवेदो णत्थि। उदया ४ सोलसभंगगुणा ६४।

सासादनाविरतयोर्विशेषमाह—['चउसट्ठि होंति भंगा' इत्यादि।] वैक्रियिकमिश्रकाययोगसंयुक्तसासादने चतुःषष्टिरुदयस्थानविकल्पाः भवन्ति नियमतः वैक्रियिकमिश्रस्य चतुर्विंशतिगुणकारभङ्गाः पृथक्त्वेन
७
न सन्ति। कुतः? सासादनो नरकेषु नोत्पद्यत इति वचनात् नपुंसकवेदो नास्ति। सासादने ८।८ उदय-
९
स्थानविकल्पाः ४ स्त्री-पुंवेदद्वय २ कषायचतुष्क ४ हास्यादियुग्म २ गुणिताः षोडशभङ्गगुणिताश्चतुःषष्टिः सर्वोदयस्थानविकल्पाः ६४ ॥३३८॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोग-संयुक्त सासादनमें नियमसे चौसठ ही भङ्ग होते हैं, इसलिए वैक्रियिकमिश्रके चौबीस गुणकाररूप भङ्ग पृथक् नहीं बतलाये गये हैं ॥३३८॥

सासादनगुणस्थानवाला जीव मरकर नरकमें उत्पन्न नहीं होता है, ऐसा आगमवचन है, इसलिए इस गुणस्थानमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ नपुंसकवेदका उदय संभव नहीं है, अतएव दो वेद, चार कषाय और हास्यादि दो युगलके परस्पर गुणा करनेसे उत्पन्न सोलह भङ्गोंसे चार उदयस्थानोंके गुणित करनेपर ६४ ही योगसम्बन्धी भङ्ग प्राप्त होते हैं।

अब अविरतगुणस्थानमें योगसम्बन्धी भङ्गोंमें जो कुछ विशेषता है, उसे बतलाते हैं—

[2]वेउव्व†मिस्सकम्मे वे जोगे गुणिय अट्ठभंगेहिं।
सोलसभंगेहिं पुणो गुणिदे दु हवंति अजदिभंगा दु ॥३३९॥

७ ६
असंयते वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगाभ्यां २ ८।८। ७।७ इत्यष्टौ स्थानविकल्पाः ८ गुणिताः षोडश
९ ८
स्थानभङ्गाः १६। पुनरेते पुंवेद-नपुंसकवेदद्वय २ कषायचतुष्क ४ हास्यादियुग्म २ गुणिताः षोडश १६ तैः स्थानभङ्गैः १६ गुणिता २५६ असंयते उदयस्थानविकल्पा भवन्ति ॥३३९॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३६२। 2. ५, ३६३-३६५।
†ब वेउव्वि।

वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग इन दोनों योगोंको चौथे गुणस्थानमें संभव आठों उदयस्थानोंसे गुणाकर पुनः सोलह भङ्गोंसे गुणा करनेपर असंयतगुणस्थानके भङ्ग उत्पन्न होते हैं ॥३३९॥

[1]एत्थ अविरदे कसाया ४। पुंवेद-णपुंसगवेदा २। हस्सादिगुयलं २ अण्णोण्णगुणा भंगा १६। एदे अट्ठोदयगुणा १२८। वेउव्वियमिस्स- कम्मइयजोगेहिं गुणा २५६।

तथाहि—असंयते वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगयोः स्त्रीवेदोदयो नास्तीति, असंयतस्य स्त्रीष्वनुत्पत्तेः। अत्राविरते कषायाः ४ पुंवेद-नपुंसकवेदौ २ हास्यादियुगलं २ अन्योन्यगुणिताः भङ्गाः १६। एते अष्टोदय-गुणाः १२८ वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगाभ्यां २ गुणिताः २५६।

वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें स्थित चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवके स्त्रीवेद-का उदय संभव नहीं है। इसलिए यहाँ असंयतगुणस्थानमें चार कषाय, पुरुष, नपुंसक ये दो वेद और हास्यादि युगलको परस्पर गुणा करनेपर १६ भङ्ग होते हैं। उन्हें इस गुणस्थानमें संभव आठ उदयस्थानोंसे गुणा करनेपर १२८ भङ्ग होते हैं और उन्हें वैक्रियिकमिश्र और कार्मण-काययोगसे गुणा करनेपर २५६ भङ्ग हो जाते हैं। इस प्रकार इन दोनों योगोंके २५६ भङ्ग जानना चाहिए।

अब चौथे ही गुणस्थानमें औदारिकमिश्रयोग गत विशेषताको बतलाते हैं—

[2]तेणेव होंति णेया ओरालियमिस्सजोगभंगा हु।
उदयट्ठेण य गुणिए भंगवियप्पा य होंति सव्वेवि ॥३४०॥

तेनैव प्रकारेणौदारिकमिश्रयोगभङ्गा भवन्तीति ज्ञेयाः। असंयतौदारिकमिश्रयोगे स्त्री-षण्ढवेदौ न स्तः। कुतः? तस्य तयोरनुत्पत्तेः। असंयते अष्टौ उदयस्थानविकल्पाः ८ कषायचतुष्क ४ पुंवेद १ हास्या-दियुग्म २ गुणिता अष्टौ। तैर्गुणकारैर्गुणिताश्चतुःषष्टिः ६४ सर्वे असंयतौदारिकमिश्रस्योदयस्थानभङ्गाः स्युः ॥३४०॥

उसी प्रकारसे औदारिकमिश्रकाययोगसम्बन्धी भङ्गोंको जानना चाहिए। अर्थात् चौथे गुणस्थानमें औदारिकमिश्रकाययोगके साथ स्त्री और नपुंसक इन दो वेदोंका उदय संभव नहीं है, इसलिए इस गुणस्थानमें संभव आठ उदयस्थानोंको प्रकृति-परिवर्तनसे उत्पन्न होनेवाले आठ ही भङ्गोंसे गुणा करनेपर सर्व भङ्ग-विकल्प आ जाते हैं ॥३४०॥

[3]तह कसाया ४ पुंवेदे १ हस्साइजुगं २। अण्णोण्णगुणा भंगा ८। एदे वि अट्ठोदयगुणा ६४। ओरालियमिस्सगुणा वि ६४।

तद्यथा—कषायचतुष्कं ४ पुंवेदः १ हास्यादियुग्मं २ अन्योन्यगुणिताः अष्टौ ८। एते अष्टोदयगुणिताः ६४। एते औदारिकमिश्रयोगेन १ गुणितास्तदेव ६४।

औदारिकमिश्रकाययोगमें चार कषाय, एक पुरुषवेद और हास्यादियुगलको परस्पर गुणा करनेपर ८ भङ्ग होते हैं। उन्हें इस गुणस्थानमें संभव आठ उदयस्थानोंसे गुणा करनेपर ६४ भङ्ग आते हैं। उन्हें औदारिकमिश्रकाययोगसे गुणा करनेपर भी ६४ ही भङ्ग इस योग-सम्बन्धी उत्पन्न होते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, 'पुंनपुंसक वेदद्वय' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०७)। 2. ५, ३६६।
3. ५, 'युग्मैकवेद' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २०७)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब उक्त अर्थका उपसंहार करते हैं—

[1]वेसयछप्पण्णाणि य वेउव्वियमिस्स-कम्मजोगाणं।
चउसट्ठि चेव भंगा तस्स य ओरालमिस्सए होंति ॥३४१॥

एवं अण्णे वि उदयवियप्पा ३२०।

तस्यासंयतस्य वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगयोरुदयस्थानविकल्पाः षट्पञ्चाशदधिकद्विशतप्रमिताः २५६। स्त्रीवेदोदयाभावदसंयतस्यौदारिकमिश्रयोगे उदयस्थानविकल्पाश्चतुःषष्टिः ६४ भवन्ति। कुतः? स्त्री-षण्ढवेदोदयाभावात् ॥३४१॥

उभयोर्मीलिताः ३२०।

चौथे गुणस्थानमें वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगसम्बन्धी दो सौ छप्पन भङ्ग होते हैं, तथा उसी गुणस्थानवर्तीके औदारिकमिश्रकाययोगमें चौसठ भङ्ग होते हैं ॥३४१॥

इस प्रकार २५६ + ६४ = ३२० उदयस्थानसम्बन्धी अन्य भी भङ्ग चौथे गुणस्थानमें होते हैं।

अब अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके भङ्गोंको कहते हैं—

[2]सत्तरस उदयभंगा अणियट्टिय चेव होंति णायव्वा।
णव-जोगेहि य गुणिए सदतेवण्णं च भंगा दु ॥३४२॥

अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोरुदयस्थानविकल्पानाह—['सत्तरस उदयभंगा' इत्यादि।] अनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्पराययोः पूर्वं उदयस्थानभङ्गाः सप्तदश कथिता भवन्ति १७। ते नवभिर्योगैः ९ गुणितास्त्रिपञ्चाशदधिकशतसंख्योपेताः १५३ उदयस्थानविकल्पा ज्ञातव्याः ॥३४२॥

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानसम्बन्धी उदयस्थानोंके विकल्प सत्तरह होते हैं, उन्हें इन गुणस्थानोंमें सम्भव नौ योगोंसे गुणित करनेपर एक सौ तिरेपन भङ्ग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३४२॥

[3]अणियट्टीए संजलणा ४ वेदा ३ अण्णोण्णगुणा दु दुगोदया १२ णवजोगगुणा १०८। तहा अवेदे संजलणा एगोदया ४ णव जोगगुणा ३६। एदेसिं मेलिया १४४। सुहुमे सुहुमलोहो एगोदओ १ णवजोगगुणो ९ एवं सव्वे मिलिया १५३।

तथाहि—अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे २ संज्वलनाः ४ वेदाः ३ अन्योन्यगुणिता द्विकोदयाः १२। एते नवयोगैर्गुणिताः १०८। तथा अनिवृत्तिकरणस्य अवेदभागे १ चतुःसंज्वलनान्यतमोदयाः ४ नवयोगैर्गुणिताः ३६। द्वयेऽप्यनिवृत्तौ मीलिते १४४। सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मलोभोदयः १ नवभिर्योगैर्गुणिता नव ९। एवं सर्वे मीलिताः १५३।

अनिवृत्तिकरणमें ४ संज्वलनकषाय और तीन वेदको परस्पर गुणा करनेपर द्विकप्रकृतिक उदयस्थानसम्बन्धी १२ भङ्ग होते हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणित करनेपर १०८ भङ्ग होते हैं। ये सवेदभागके भङ्ग हैं। अवेदभागमें एकप्रकृतिक उदयस्थानके चार संज्वलनकषायसम्बन्धी ४ भङ्ग होते हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणा करनेपर ३६ भङ्ग होते हैं। ये दोनों मिलकर (१०८ + ३६ =) १४४ भङ्ग अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें एक सूक्ष्म लोभका ही उदय होता है। उसे नौ योगोंसे गुणा करनेपर ९ भङ्ग नवें गुणस्थानमें होते हैं। इस प्रकारके दोनों गुणस्थानोंके सर्व भङ्ग मिलकर (१४४ + ९ =) १५३ हो जाते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, 'एवमसंयते' इत्यादिगद्यांशः। (पृ० २०७)। 2. ५, ३६७। 3. ५, सवेदेऽनिवृत्तौ इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०७)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब योगकी अपेक्षा संभव उपर्युक्त सर्व भङ्गोंका उपसंहार करते हैं—

[1]तेरस चेव सहस्सा वे चेव सया हवंति णव चेव।
उदयवियप्पे जाणसु जोगं पडि मोहणीयस्स ॥३४३॥

१३२०९।

मोहनीयस्य योगान् प्रत्याश्रित्य त्रयोदशसहस्रद्विशतनवप्रमितान् उदयस्थानविकल्पान् जानीहि १३२०९ ॥३४३॥

गुण०	यो०	भं० वि०	गुण०	उ० वि०
मिथ्या०	१३	८०।१२	२४	२२०८
सासा०	१३	४८	२४	११५२।६४
मिश्र०	१०	४०	२४	९६०
अवि०	१३	८०	२४	१९२०।२५६।६४।३२०
देश०	९	७२	२४	१७२८
प्रम०	११	८८	२४	२११२
अप्र०	९	७२	२४	१७२८
अपू०	९	३६	२४	८६४
अनि०	९	९	१२	१०८
		९	४	३६
सूक्ष्म०	९	९	१	
				१३२०९

इति गुणस्थानेषु योगानाश्रित्य मोहोदयस्थानविकल्पाः समाप्ताः।

इस प्रकार योगकी अपेक्षा मोहनीय कर्मके सर्व उदयस्थान-विकल्प तेरह हजार दो सौ नौ (१३२०९) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३४३॥

भावार्थ—मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तकके उदयस्थान-भङ्ग १२६७२, सासादनगुणस्थानके वैक्रयिकमिश्रसम्बन्धी ६४, असंयतसम्यग्दृष्टिके औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोगसम्बन्धी ३२०, तथा नवें और दशवें गुणस्थानके १५३, इन सर्व भङ्गोंको जोड़नेसे मोहनीयकर्मके उदयसम्बन्धी १३२०९ विकल्प प्राप्त होते हैं।

अब योगोंको आश्रय करके गुणस्थानोंमें पदवृन्दोंका निरूपण करते हैं—

छत्तीसं ति-बत्तीसं सट्ठी बावण्णमेव चोद्दालं।
चोद्दालं वीसं पि य मिच्छादि-णियट्टिपयडीओ ॥३४४॥

अथ पदबन्धान् योगानाश्रित्य गुणस्थानेषु प्ररूपयन्ति—['छत्तीसं ति-बत्तीसं' इत्यादि।] गुणस्थानेषु दशकादीनां प्रकृतयः मिथ्यादृष्टौ षट्त्रिंशत् ३६। त्रिवारं द्वात्रिंशत्। पुनः मिथ्यादृष्टौ द्वात्रिंशत् ३२। सासादने द्वात्रिंशत् ३२। मिश्रे द्वात्रिंशत् ३२। असंयते षष्टिः ६०। देशे द्वापञ्चाशत् ५२। प्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत् ४४। अप्रमत्ते चतुश्चत्वारिंशत् ४४। अपूर्वकरणे विंशतिः २० चेति मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणपर्यन्तं मोहप्रकृत्युदयसंख्या भवन्ति ॥३४४॥

1. सं०पञ्चसं० ५, ३६८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थान तक मोहकर्मकी उदयप्रकृतियाँ क्रमशः छत्तीस; तीन वार बत्तीस, साठ, बावन, चवालीस, चालीस और बीस होती हैं ॥३४४॥

एवं मोहे पुव्वुत्तदसगादिउदयाणं पयडीओ मिच्छादिसु ३६।३२।३२।३२।६०।५२।४४।४४। अपुव्वे २० अणियट्टिम्मि २।१ सुहुमे १।

इत्थं मोहे पूर्वोक्तदशदाद्युदयानां प्रकृतयो मिथ्यादृष्ट्यादिषु मिथ्यात्वे ३६।३२ सासादने ३२ मिश्रे ३२ अविरते ६० देशे ५२ प्रमत्ते ४४ अप्रमत्ते ४४ अपूर्वकरणे २० अनिवृत्तिसवेदे २ अवेदे १ सूक्ष्मे १।

मोहकर्मकी पूर्वोक्त दशप्रकृतिक आदि उदयस्थानोंकी प्रकृतियाँ मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों-में इस प्रकार जानना चाहिए—

मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म०
३६।३२	३२	३२	६०	५२	४४	४४	२०	२	१

अब भाष्यगाथाकार इसी अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए पहले मिथ्यादृष्टिके पदवृन्दभंगों-का निरूपण करते हैं—

दस णव अड सत्तुदया मिच्छादिट्ठिस्स होंति णायव्वा ।
सग-सग-उदएहिं गया भंगवियप्पा वि होंति छत्तीसा ॥३४५॥

१०।९।८।७।

मिथ्यादृष्ट्यादिषु दशकाद्युदयानां प्रकृतीर्दर्शयति—['दस णव अड सत्तुदया' इत्यादि ।] अनन्तानुबन्ध्युदयसहितमिथ्यादृष्टेर्दश १० नव ९ ष्ट ८ सप्तो ७ दया भवन्ति ज्ञातव्याः । स्वक-स्वकोदयं गता भङ्गा विकल्पाः षट्त्रिंशद् भवन्ति ३६ ॥३४५॥

मिथ्यादृष्टिके दश, नौ, आठ और सातप्रकृतिक उदयस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। इनमेंसे अनन्तानुबन्धीके उदयसहित मिथ्यादृष्टिके अपने-अपने उदयस्थानगत प्रकृतियोंके भङ्ग-विकल्प छत्तीस होते हैं ॥३४५॥

उनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—१०, ९, ९, ८ = ३६।

अणुदय सव्वे भंगा बत्तीसा चेव होंति णायव्वा ।
उभओ वि मेलिदेसु य मिच्छे अट्ठुत्तरा सट्ठी ॥३४६॥

उदयपयडीओ ३६।३२। उभए वि ६८

                                                            ८   ७
अनन्तानुबन्ध्यनुदयगतमिथ्यादृष्टेर्नवाष्टसप्तोदया भवन्ति ९।९ । ८।८ एषां प्रकृतयः । उभयेषु
                                                            १०   ९
मिलितेषु मिथ्यादृष्टौ अष्टषष्टिः ६८ उदयविकल्पा भवन्ति ॥३४६॥

उदयप्रकृतयः ३६।३२ उभये ६८।

अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित मिथ्यादृष्टिके उदयस्थानगत प्रकृतियोंके सर्वभंगविकल्प बत्तीस होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। दोनों उदय-भंगोंको मिला देनेपर मिथ्यादृष्टिके अड़सठ भंग हो जाते हैं ॥३४६॥

इनकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—९, ८, ८, ७ = ३२। ३६ + ३२ = ६८।

पुणरवि दसजोगहदा अट्ठासट्ठी हवंति णायव्वा ।
मिच्छादिट्ठिस्सेदे छस्सयमसीदि य भंगा दु ॥३४७॥

६८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टेः पर्याप्तकाले अष्टषष्टिः ६८ प्रकृत्युदयाः पुनरपि दशभिर्योगैः १० मनोवचनयोगैः मनोवचनयोगाष्टकौदारिक-वैक्रियिकयोगैर्गुणिता एते षट्शताशीतिप्रमिताः ६८० उदयविकल्पाः पदबन्धभङ्गा मिथ्यादृष्टौ पर्याप्ते भवन्तीति ज्ञातव्याः ॥३४७॥

इन उपर्युक्त अड़सठ उदयस्थानसम्बन्धी भङ्गोंको पर्याप्त दशामें सम्भव चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिककाययोग और वैक्रियिककाययोग इन दश योगोंसे गुणा करने पर पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके छह सौ अस्सी भङ्ग हो जाते हैं ॥३४७॥

पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके पदवृन्द भङ्ग ६८ × १० = ६८० ।

ते चेव य छत्तीसे मिस्सेण तिगेण संगुणेयव्वा ।
पुव्वुत्ते मेलविदे अडसीदा होंति सत्तसया ॥३४८॥

७८८

मिथ्यादृष्टौ अपर्याप्ते ते एव षट्त्रिंशत्प्रकृत्युदयाः ३६ मिश्रेण त्रिकेणौदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणत्रिकेण ३ संगुणिताः अष्टोत्तरशतप्रमिता १०८ पूर्वोक्तेषु ६८० मीलिताः अष्टाशीत्युत्तरसप्तशतप्रमिताः ७८८ उदयविकल्पा मिथ्यादृष्टौ भवन्ति । अथवा अनन्तानुबन्धिरहितमिथ्यादृष्टिद्वात्रिंशत्प्रकृतिं दशयोगेन गुणिते एवं ३२० । इतरषट्त्रिंशत्प्रकृतिं त्रयोदशयोगेन गुणिते एवं ४६८ । तयोर्मेलने एवं ७८८ ॥३४८॥

उन्ही पूर्वोक्त भङ्गोंको अपर्याप्तकाल भावी मिश्रयोगत्रिकसे अर्थात् औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोगसे गुणा करना चाहिए। इस प्रकारसे प्राप्त हुए एक सौ आठ भङ्गोंको उपर्युक्त छह सौ आठमें मिला देनेपर मिथ्यात्वगुणस्थानके सर्व पदवृन्दसम्बन्धी भङ्ग सात सौ अट्ठासी हो जाते हैं ॥३४८॥

मिथ्यात्वमें पर्याप्तकालभावी ६८० । अपर्याप्तकाल भावी १०८ । सर्व भङ्ग ७८८ ।

अब सासादनगुणस्थानके पदवृन्दभंग बतलाते हैं—

बत्तीसोदयभंगा सासणसम्मम्मि होंति णियमेण ।
चउरासीदिविमिस्सा तिण्णि सया बारसजोगहया ॥३४९॥

उदया ३२ बारसजोगगुणा ३८४

सासादने गुणस्थाने $\frac{7}{8{:}8}$ एषामुदयप्रकृतयः ३२ । एतैर्वैक्रियिकमिश्रं विना द्वादशभिर्योगैः १२ $\frac{}{\text{६}}$

हताश्चतुरशीति-संयुक्तास्त्रिशतप्रमिताः प्रकृत्युदयाः ३८४ सासादने भवन्ति ॥३४९॥

सासादनगुणस्थानमें नियमसे उदयस्थान-सम्बन्धी भङ्ग बत्तीस होते हैं। उन्हें बारह योगोंसे गुणा करने पर तीन सौ चौरासी पदवृन्द-भङ्ग हो जाते हैं ॥३४९॥

सासादनमें उदयप्रकृतियाँ ३२ को १२ योगोंसे गुणा करने पर ३८४ पदवृन्द भङ्ग होते हैं।

अब मिश्रगुणस्थानके पदवृन्द भंग बतलाते हैं—

मिस्सस्स वि बत्तीसा दसजोगहया विसुत्तरा तिण्णिसया ।

उदया ३२ दसजोगगुणा ३२० ।

मिश्रगुणस्थाने $\frac{7}{8{:}8}$ एषां द्वात्रिंशत्प्रकृत्युदयाः ३२ दशभिर्योगैः १० हता विंशत्युत्तरत्रिशतप्रमिता $\frac{}{\text{६}}$

उदयविकल्पा मिश्रस्य भवन्ति ३२० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्रमें उदयसम्बन्धी प्रकृतियाँ बत्तीस होती हैं। उन्हें दश योगोंसे गुणा करने पर तीन सौ बीस भंग तीसरे गुणस्थानमें जानना चाहिए।

मिश्रमें उदयप्रकृतियाँ ३२ को १० योगोंसे गुणा करने पर ३२० पदवृन्द भंग होते हैं।

अब अविरतगुणस्थानके पदवृन्द भंग बतलाते हैं—

अविरयसम्मे सट्ठी दसजोगहया य छच्च सया ॥३५०॥

उदया ६० दसजोगहगुणा ६००

७ ६
अविरतसम्यग्दृष्टौ ८।८ । ७।७ एषामुदयाः षष्टिः ६० । कार्मणौदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्रान् पृथक्
९ ८
वक्ष्यतीति दशभिर्योगैः १० गुणिताः षट्शतप्रमिता उदयविकल्पा ६०० असंयतस्य भवन्ति ॥३५०॥

अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें उदयसम्बन्धी प्रकृतियाँ साठ होती हैं। उन्हें दश योगोंसे गुणा करने पर छह सौ पदवृंद-भंग होते हैं ॥३५०॥

अविरतमें उदयप्रकृतियाँ ६० को १० योगोंसे गुणा करने पर ६०० पदवृन्द भङ्ग होते हैं।

अब देशविरतगुणस्थानके पदवृन्द भङ्ग कहते हैं—

वावण्ण देसविरदे भंगवियप्पा य हुंति उदयगया।
णव जोगेहि य गुणिया चउसयमडसट्ठि णायव्वा ॥३५१॥

उदया ५२ णवजोगगुणा ४६८।

६ ५
देशसंयते ७।७ । ६।६ एषामुदयगतभङ्गाः द्वापञ्चाशत् ५२ नवभिर्योगैः ९ गुणिताः अष्टषष्ट्यग्रचतुः-
८ ७
शतप्रमिताः ४६८ मोहोदया देशे भवन्ति ज्ञातव्याः ॥३५१॥

देशविरतमें उदयगत भङ्ग-विकल्प बावन होते हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणा कर देने पर चार सौ अड़सठ पद वृन्द-भंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३५१॥

देशविरतमें उदयप्रकृतियाँ ५२ को नौ योगोंसे गुणा करने पर ४६८ पदवृन्द भंग प्राप्त होते हैं।

अब प्रमत्तविरतगुणस्थानके पदवृन्द भंग कहते हैं—

चउदालं तु पमत्ते भंगवियप्पा वि होंति बोहव्वा।
एकारसजोगहया चउसीदा होंति चत्तसया ॥३५२॥

उदया ४४ एयारह जोगगुणा ४८४।

५ ४
प्रमत्ते ६।६ । ५।५ एषां प्रकृत्युदयाश्चतुश्चत्वारिंशत् ४४ भङ्गविकल्पा भवन्ति । ते एकादशभिर्योगै-
७ ६
११ हताश्चतुरशीत्यधिकचतुःशतप्रमिताः ४८४ उदयविकल्पाः प्रमत्ते ज्ञातव्याः ॥३५२॥

प्रमत्तगुणस्थानमें उदयस्थानसम्बन्धी भंग-विकल्प चवालीस होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। उन्हें यहाँ सम्भव चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिककाययोग, आहारक-काययोग और आहारकमिश्रकाययोग, इन ग्यारह योगोंसे गुणा करने पर चार सौ चौरासी पदवृन्दभङ्ग प्राप्त होते हैं ॥३५२॥

प्रमत्तमें उदयविकल्प ४४ को ११ योगोंसे गुणा करने पर ४८४ पदवृन्दभङ्ग आ जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब अप्रमत्तगुणस्थानके पदवृन्द-भङ्ग कहते हैं—

> **पमत्तेदरेसुदया चउदाला चेव होंति जिणवुत्ता ।**
> **तिण्णि सया छण्णउया भंगवियप्पा वि हुंति णवगुणिया ॥३५३॥**

उदया ४४ णवजोगगुणा ३९६ ।

　५　४
अप्रमत्ते ६।६।५।५ एषामुदयाश्चतुश्चत्वारिंशत् ४४ जिनोक्ता भवन्ति । एते नवभिर्योगैः ९ गुणिताः
　७　६
षण्णवत्याधिकत्रिशतप्रमिताः ३९६ उदयभङ्गविकल्पाः अप्रमत्ते भवन्ति ॥३५३॥

अप्रमत्तविरतमें उदयस्थान-सम्बन्धी भङ्ग-विकल्प जिनभगवान्ने चवालीस ही कहे हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणा करने पर तीन सौ छ्यानबै पदवृन्द-भङ्ग होते हैं ॥३५३॥

अप्रमत्तमें उदयविकल्प ४४ को नौ योगोंसे गुणा करने पर ३९६ पदवृन्द आते हैं।

अब अपूर्वकरणगुणस्थानके पदवृन्द-भंगोंका निरूपण कर प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हैं—

> **सुण्णजुयट्ठारसयं अपुव्वकरणम्मि वीस णवगुणिया ।**
> **मिच्छादि-अपुव्वंता चउवीसहया हवंति सव्वे वि ॥३५४॥**

उदया २० णवजोगगुणा १८० ।

　४
अपूर्वकरणे ५।५ एषामुदया विंशति २० नवभिर्योगैर्गुणिताः अष्टादशकं शून्ययुक्तं अशीत्युत्तरशतप्रमिता
　६
१८० उदयविकल्पा भवन्ति । मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तमुदयविकल्पाश्चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः । तथाहि—मिथ्यात्वे ७८८ गु० २४ । सासादने ३८४ गु० २४ । मिश्रे ३२० गु० २४। असंयते ६०० गु० २४ । देशे ४६८ गु० २४ । प्रमत्ते ४८४ गु० २४ । अप्रमत्ते ३९६ गु० २४ । अपूर्वकरणे १८० गु० २४ ॥३५४॥

अपूर्वकरणमें उदयप्रकृतियाँ बीस होती हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणा करने पर शून्ययुक्त अट्ठारह अर्थात् एक सौ अस्सी पदवृन्दभङ्ग होते हैं। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरण तक बतलाये हुए उक्त सर्व पद-वृन्द-भङ्गोंको प्रकृतियोंके परिवर्तनसे उत्पन्न चौबीस भङ्गोंसे गुणा करना चाहिए ॥३५४॥

अपूर्वकरणमें उदयविकल्प २० को नौ योगसे गुणित करने पर १८० पदवृन्द-भङ्ग होते हैं।

अब चौबीससे गुणा करने पर जितने भंग होते हैं, उनका निरूपण करते हैं—

> **[1]चउवीसेण विगुणिदे एत्तियमेत्ता हवंति ते सव्वे ।**
> **असिदिं चेव सहस्सा अडसट्ठि सदा असीदी य ॥३५५॥**

८६८८० ।

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तमुदयविकल्पाश्चतुर्विंशत्या २४ गुणिता मिथ्यादृष्टौ १८९१२ सासादने ९२१६ मिश्रे ७६८० असंयते १४४०० देशे ११२३२ प्रमत्ते ११६१६ अप्रमत्ते ९५०४ अपूर्वकरणे ४३२० सर्वे उदयविकल्पा एकीकृता एतावन्तः—षडशीतिसहस्राष्टशताशीतिप्रमिताः ८६८८० भवन्ति ॥३५५॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, 'तत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २०७-३०८) तथा श्लो० ३६६ ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

चौबीससे गुणा करने पर वे सर्व पदवृन्द भङ्ग छयासी हजार आठ सौ अस्सी (८६८८०) होते हैं ॥३५५॥

विशेषार्थ—मिथ्यात्वसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक सर्व पदवृन्द-भङ्ग ८६८८० होते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

गुणस्थान	उदयपदवृन्द	सर्वभङ्ग
मिथ्यात्व	७८८ × २४ =	१८९१२
सासादन	३८४ × २४ =	९२१६
मिश्र	३२० × २४ =	७६८०
अविरत	६०० × २४ =	१४४००
देशविरत	४६८ × २४ =	११२३२
प्रमत्तविरत	४८४ × २४ =	११६१६
अप्रमत्तविरत	३९६ × २४ =	९५०४
अपूर्वकरण	१८० × २४ =	४३२०

इस प्रकार उक्त सर्व भङ्गोंका योग = ८६८८०

अब सासादन गुणस्थानगत विशेष भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]बत्तीसं आसादे वेउव्वियमिस्स सोलसेण हया।
पंचसयाणि य णियमा बारससंजुत्तया य तहा ॥३५६॥

सासादनाविरतयोर्विशेषमाह— ['बत्तीसं आसादे' इत्यादि ।] सासादनस्य वैक्रियिकमिश्रयोगे
७
८।८ एषामुदया द्वात्रिंशत् ३२ । स्त्री-पुंवेदौ २ हास्यादिद्वयं २ कषायचतुष्कं ४ परस्परं गुणिता षोडश १६
९
तैर्गुणिताः पुनः द्वात्रिंशत् इति द्वादशोत्तरपञ्चशतप्रमिताः ५१२ पदबन्धाः स्युः । सासादनो नरकं न यातीति तस्य नपुंसकवेदो नास्ति ॥३५६॥

सासादन गुणस्थानमें सर्व प्रकृतियाँ बत्तीस हैं। उन्हें वैक्रियिकमिश्रकाययोग-सम्बन्धी सोलह भंगोंसे गुणा करने पर नियमसे पाँचसौ बारह भंग प्राप्त होते हैं ॥३५६॥

७
[2]सासणे उदया ८८ एएसिं पयडीओ ३२। पुव्वुत्तसोलस-भंगगुणा वेउव्वियमिस्सजोगहया
७
अण्णे वि पयबंधा ५१२ ।

७
तथाहि—सासादनस्य ८।८ एतेषां प्रकृतयः ३२ पूर्वोक्तषोडशभिर्भङ्गैर्गुणिता वैक्रियिकमिश्रयोगेन
९
१ हताश्च अन्ये पदबन्धाः ५१२ ।

सासादनमें उदयस्थान ९, ८, ८ और ७ हैं। इनकी उदयप्रकृतियाँ ३२ होती हैं। इस गुणस्थानवाला नरकमें नहीं जाता है, इसलिए बत्तीसको दो ही वेदोंके परिवर्तनसे सम्भव सोलह भंगोंसे गुणा करने पर वैक्रियिकमिश्रकाययोगसम्बन्धी ५१२ अन्य भी पदवृन्द-भंग होते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३७० । 2. ५, 'सासने चत्वारः पाकाः' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० २०८) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब चौथे गुणस्थानमें सम्भव विशेष भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]अविरयसम्मे सट्ठी भंगा वे-जोगएण संगुणिया।
पुणरवि सोलह-गुणिया भंगवियप्पा हवंति णायव्वा ॥३५७॥

अविरतसम्यग्दृष्टेः षष्टिर्भङ्गा ६० वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगाभ्यां २ संगुणिताः १२० । पुनरपि पुन्नपुंसकवेदद्वयं हास्यादिद्वयं २ कषायचतुष्कजनितषोडशभिर्भङ्गैः १६ गुणिता एकसहस्रविंशत्यधिकनवशतप्रमिताः भवन्ति ज्ञातव्याः ॥३५७॥

अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें जो पहले उदयस्थान-सम्बन्धी साठ भंग बतलाये हैं, उन्हें वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाय इन दो योगोंसे गुणित करना चाहिए। पुनरपि उदयप्रकृतियोंके परिवर्तनसे सम्भव सोलह भंगोंसे गुणित करने पर जो संख्या उत्पन्न हो, उतने अर्थात् उन्नीस सौ बीस (१९२०) भंग-विकल्प जानना चाहिए ॥३५७॥

[2] असंजये उदया $\begin{matrix}७ & & ६\\ ८ & ८ & \\ ९ & & ८\end{matrix}$ ७७ एदेसिं च पयडीओ ६० पुवुत्त-सोलसभंगगुणा ९६० । वेउव्वियमिस्स-कम्मइयजोगगुणा एगसहस्सं णवसदवीसुत्तरिया ते भंगा १९२० ।

तथाहि—असंयतवैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगयोः स्त्रीवेदोदयो नास्ति, असंयतस्य स्त्रीष्वनुपत्तेः।

असंयते एते उदया $\begin{matrix}७ & & ६\\ ८ & । ८ & \\ ९ & & ८\end{matrix}$। ७।७ एतेषां च प्रकृतयः ६० पूर्वोक्तषोडशभङ्गैर्गुणिताः ९६० । पुनः वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगाभ्यां २ गुणिता एकसहस्रविंशत्यग्रनवशतप्रमिता १९२० उदयविकल्पा भवन्ति ।

असंयतगुणस्थानमें उदयस्थान ९, ८, ८, ७ और ८, ७, ७, ६ प्रकृतिक आठ होते हैं। इनकी सर्व प्रकृतियाँ साठ होती हैं। उन्हें पूर्वोक्त सोलह भंगोंसे गुणा करनेपर ९६० पदवृन्द-भंग होते हैं। इन्हें वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाय, इन दो योगोंसे गुणा करनेपर एक हजार नौ सौ बीस (१९२०) भंग प्राप्त होते हैं।

[3]तेसिं सट्ठि वियप्पा अट्ठवियप्पेण संगुणिया।
तस्सोरालियमिस्से चउसदसीदी य भंगया जाण ॥३५८॥
एदे पुण पुव्वुत्ता पक्खित्ते हुंति भंगा दु+ ।

असंयतस्यौदारिकमिश्रयोगस्य $\begin{matrix}७ & & ६\\ ८ & । ८ & \\ ९ & & ८\end{matrix}$। ७।७ तेषामुदयविकल्पाः षष्टिः ६० पुंवेदैक १ हास्यादियुग्म २ कषायचतुष्क ४ इत्यष्टभिर्भङ्गैः ८ गुणिताः अशीत्यधिकचतुःशतप्रमिताः ४८० असंयतौदारिकमिश्रे इति जानीहि। असंयतौदारिकमिश्रस्य स्त्री-षण्ढत्वेनानुत्पत्तेः। एते पुनः पूर्वोक्ता भङ्गाः १९२० प्रक्षेपणीयाः ॥३५८॥

उसी अविरतसम्यक्त्वी जीवके औदारिकमिश्रकाययोगमें चारसौ अस्सी भंग और जानना चाहिए। जो कि पूर्वोक्त साठ उदयविकल्पोंको आठ भंगोंसे गुणा करनेपर प्राप्त होते हैं। इन भंगोंको पूर्वोक्त १९२० भंगोंमें प्रक्षेप करनेपर सर्व अपर्याप्त-दशागत भंगोंका प्रमाण २४०० आ जाता है ॥३५८॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ३७१-३७२। 2. ५, 'असंयतेऽष्टोदयाः' इत्यादिगद्यांशः। (पृ० २०८)।
3. ५, ३७३।
+ संस्कृतटीकाप्रतौ गाथार्धमिदं नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अविरयउदयपयडीओ ६० अट्ठभंगगुणा ४८० । एवमण्णे वि ओरालियमिस्सजोगभंगा* ४८० । एवमसंजए तिसु जोगेसु अण्णे वि मेलिया पयबंधा २४०० ।

अविरतोदयप्रकृतयः ६० पुंवेद-हास्यादिद्वय-कषायचतुष्क ४ हतैरष्टभिर्भङ्गैर्गुणिता ४८० । एवमन्येऽपि औदारिकमिश्रयोगेनैकेन १ गुणिता भङ्गाः ४८० । एवमसंयते त्रिषु योगेषु अन्येऽपि मीलिताः पदबन्धाः २४०० ।

अविरतगुणस्थानमें उदयप्रकृतियाँ ६० हैं, उन्हें आठ भंगोंसे गुणा करनेपर ४८० होते हैं। ये औदारिकमिश्रकाययोग-सम्बन्धी और भी ४८० भंग होते हैं। इस प्रकार असंयतगुणस्थानमें तीनों योगोंके सर्व भंग मिला देनेपर २४०० पदवृन्द-भंग आ जाते हैं।

अब नौवें और दशवें गुणस्थानके पद-वृन्दोंका प्रमाण कहते हैं—

[2]बारसभंगे विगुणे उवरिमभंगा वि पंच पक्खिविय ।
णवजोगेहि य गुणिए इगिसट्ठा विगसया होंति ॥३५९॥

अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोरुदयान् प्राह—['बारसभंगे विगुणे' इत्यादि ।] उपरिमाः अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः पुंवेद-संज्वलनचतुष्कमिति पञ्चप्रकृतिभङ्गाः प्रक्षेपणीयाः। तथाहि—अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे द्वादशभिः १२ भंगैर्द्विकोदये गुणिते चतुर्विंशतिः २४ । अवेदभागे चतुर्भिरेकोदयेन गुणिते ४ । सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभोदयः । एवमेकोनत्रिंशदुदयाः २९ नवभिर्योगै ९ र्गुणिता एकषष्ट्यधिकद्विशतप्रमिता २६१ उदयप्रकृतिविकल्पा भवन्ति ॥३५९॥

अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें दो उदयप्रकृतियोंसे गुणित बारह अर्थात् चौबीस भंग होते हैं। अवेदभागमें एक उदयप्रकृतिवाले चार भंग होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें एक सूक्ष्मलोभ होता है। इन पाँचको उपर्युक्त चौबीसमें प्रक्षेप करनेपर उनतीस होते हैं। उन्हें नौ योगोंसे गुणित करनेपर दो सौ इकसठ भंग हो जाते हैं ॥३५९॥

[3]अणियट्टीए उदया २ बारसभंगगुणा २४ । एगोदएहिं चदुहिं सह २८ । सुहुमे एगोदएण सह २९ । एदाओ पयडीओ णवजोगगुणा २६१ ।

अनिवृत्तौ उदयौ २ द्वादशभङ्गगुणिताः २४ एकोदयैश्चतुर्भिः सह २८ सूक्ष्मे एकोदयेन सह २९ । एताः प्रकृतयो नवयोगगुणिताः २६१ ।

अनिवृत्तिकरणमें सवेदभागमें उदयप्रकृतियाँ दोको बारह भंगोंसे गुणा करनेपर २४ होते हैं। उनमें अवेदभागकी एक उदयवाली चार प्रकृतियोंको मिलानेपर २८ होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें उदय होनेवाली एक प्रकृतिके मिलानेपर २९ होते हैं। इन २९ प्रकृतियोंको नौ योगोंसे गुणा करनेपर २६१ पदवृन्द-भंग प्राप्त होते हैं।

अब मोहकर्मके योगोंकी अपेक्षा संभव सर्व भंगोंका निरूपण करते हैं—

[4]णउदी चेव सहस्सा तेवण्णं चेव होंति बोहव्वा ।
पयसंखा णायव्वा जोगं पडि मोहणीयस्स ॥३६०॥

[5]एवं मोहे जोगं पडि गुणठाणेसु पयबंधा ९००५३ ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, 'असंयतेऽन्ये' इत्यादिगद्यांशः (पृ०२०८)। 2. ५, ३७४। 3. ५, 'नवमे उदये' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०९)। 4. ५, ३७५। 5. ५, 'इति मोहे' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २०९)।

*ब गुणा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति गुणस्थानेषु मोहनीयस्य योगान् प्रत्याश्रित्य नवतिसहस्रत्रिपञ्चाशत्प्रमिताः पदबन्धसंख्या भवति ज्ञातव्याः ९००५३ । ॥३६०॥

गुण०	यो०	उद०	प्रकृ०	उद० पद०	सर्वभं०
मि०	१३	८	६८	७८८।२४	१८९१२
सा०	१३	४	३२	३८४।२४	१९१६।५१२
मि०	१०	४	३२	३२०।२४	७६८०
अवि०	१३	८	६०	६००।२४	१४४००।२४००
देश०	९	८	५२	४६८।२४	११२३२
प्रम०	११	८	४४	४८४।२४	११६१६
अप्र०	९	८	४४	३९६।२४	९५०४
अपू०	९	४	२०	१८०।२४	४३२०
अनि०	९	१ १	२ १	२४ ४	२५२
सूक्ष्म०	९	१	१	९	९
					९००५३

इति गुणस्थानेषु मोहप्रकृत्युदयविकल्पाः समाप्ताः ।

मोहनीयकर्मके योगोंकी अपेक्षा सर्वपदवृन्दोंके भंगी संख्या नब्बै हजार तिरेपन होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३६०॥

भावार्थ—आठ गुणस्थानोंके पर्याप्तकाल-सम्बन्धी पदवृन्दोंका परिमाण ८६८८० बतला आये हैं, उनमें अपर्याप्तकाल सम्बन्धी सासादनगुणस्थानके ५१२, अविरतगुणस्थानके २४०० तथा नौवें और दशवें गुणस्थानके २६१ भंगोंको और जोड़ देनेपर योगोंकी अपेक्षा मोहकर्मके सर्व उदयस्थान-सम्बन्धी पदवृन्द-भंगोंका प्रमाण ९००५३ प्राप्त हो जाता है।

योगकी अपेक्षा सर्व भंगोंकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है—

गुण०	योग	उदयस्थान	उ० प्र०	पद०	गुण०	भं०
मिथ्यात्व	१३	८	६८	७८८	२४	१८९१२
सासादन	१३	४	३२	३८४	२४	९२१६
	१	४	३२		१६	५१२
मिश्र	१०	४	३२	३२०	२४	७६८०
अविरत	१०	४	६०	६००	२४	१४४००
	२	४	६०	१२०	१६	१९२०
	१	४	६०	६०	८	४८०
देशविरत	९	८	५२	४६८	२४	११२३२
प्रमत्तविरत	११	८	४४	४८४	२४	११६१६
अप्रमत्तविरत	९	८	४४	३९६	२४	९५०४
अपूर्वकरण	९	४	२०	१८०	२४	४३२०
अनिवृत्तिकरण	९	१ १	२ १	२४ ४		२५२
सूक्ष्मसाम्पराय	९	१	१	१		९

समस्त पदवृन्द-भंग = ९००५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब उपयोगकी अपेक्षा मोहनीयकर्ममें उदयसम्बन्धी भंगोंका निरूपण करते हैं—

[1]मिच्छादिय-देसंता पण पण छ छक्क छच्च उवओगा।
विरयादिय-खीणंता उवओगा सत्त दुसु दोण्णि ॥३६१॥

[2]एवं गुणठाणेसु उवओगा ५।५।६।६।६।७।७।७।७।७।७।७।२।२।

अथ मोहनीयप्रकृत्युदयस्थानतत्प्रकृतीः गुणस्थानेषु उपयोगानाश्रित्याऽऽह—['मिच्छादिय-देसंता' इत्यादि ।] मिथ्यादृष्ट्यादिदेशसंयतान्ताः क्रमेण पञ्च पञ्च षट् षट् षडुपयोगाः । प्रमत्तादिक्षीणान्ता उपयोगाः सप्त ७ । द्वयोः सयोगायोगयोर्द्वौ उपयोगौ । तथाहि—उपयोगा मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः त्र्यज्ञानं चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयमिति पञ्च ५ । मिश्रादित्रये त्रिज्ञानं त्रिदर्शनमिति षट् ६ । प्रमत्तादिसप्तके चतुर्ज्ञानं त्रिदर्शनमिति सप्त ७ । सयोगायोगसिद्धेषु केवलज्ञान-दर्शनमिति द्वौ २ ॥३६१॥

उपयोगके मूलमें दो भेद हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । ज्ञानोपयोगके आठ और दर्शनोपयोगके चार भेद होते हैं । उनमेंसे, मिथ्यादृष्टिगुणस्थानसे लेकर देशसंयतगुणस्थान तक क्रमशः पाँच, पाँच, छह, छह और छह उपयोग होते हैं । प्रमत्तविरतसे लेकर क्षीणकषायगुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानमें सात सात उपयोग होते हैं । अन्तिम दो गुणस्थानोंमें दो दो उपयोग होते हैं ॥३६१॥

गुणस्थानोंमें उपयोग इस प्रकारसे होते हैं—

मि०	सा०	मिश्र	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०	क्षी०	स०	अ०
५	५	६	६	६	७	७	७	७	७	७	७	२	२

[3]सग-सगभंगेहि य ते उवओगा संगुणं च काऊण ।
चउवीसेण य गुणिए छावत्तरिसयमसीदी य ॥३६२॥

स्वक-स्वकगुणस्थानोक्तप्रकृतिस्थानभङ्गविकल्पैः कृत्वा तान् स्व-स्वगुणस्थानोक्तोपयोगान् संगुणं कृत्वा संगुण्य पुनश्चतुर्विंशत्या २४ गुणयित्वा मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्ताः सप्तसहस्राशीत्यधिकषट्शतप्रमिताः स्थानविकल्पाः ७६८० भवन्ति ॥३६२॥

इन उपर्युक्त उपयोगोंको अपने अपने गुणस्थानसम्बन्धी भंगोंसे गुणा करके पुनः चौबीससे गुणा करनेपर छिहत्तरसौ अस्सी सर्व भंगोंका प्रमाण आ जाता है ॥३६२॥

[4]गुणठाणेसु अट्ठसु उदया ८।४।४।८।८।८।८।४ सगसगउवओगगुणा ४०।२०।२४।४८।४८।५६।५६।२८। चउवीसभंगगुणा ९६०।४८०।५७६।११५२।११५२।१३४४।१३४४।६७२। सव्वे वि मेलिया ७६८० ।

                                        ८   ७
तथाहि—तत्र मिथ्यादृष्टौ स्थानानि प्रकृतयश्च ९।९ । ८।८ स्वोपयोगै ५ गुणिते सति स्थानानि
                                        १०   ९

            ७   ७
चत्वारिंशत् ४० । सासादने ८।८ स्वोपयोगै ५ गुणिते स्थानानि २० । मिश्रे ८।८ । स्वोपयोगै ६ गुणिते
            ९   ९

                    ७   ६   ६   ५
स्थानानि २४ । असंयते ८।८ । ७।७ स्वोपयोगै ६ गुणिते स्थानानि ४८ । देशसंयते ७।७ । ६।६ स्वो-
                    ९   ८   ८   ७

1 सं० पञ्चसं० ५, ३७६-३७७ । 2. ५, गुणेषूपयोगाः' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २०९)। 3. ५, ३७८ ।
4. ५, '९६०' इत्यादिसंख्यापंक्तिः (पृ० २०९) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयोगै ६ गुंणिता स्थानविकल्पाः ४८। प्रमत्ते अप्रमत्ते च ५/६।६/७ । ४/५।५/६ स्वोपयोगै ७ गुंणिताः स्थानविकल्पाः ५६।५६। अपूर्वकरणे ४/५।५/६ स्वोपयोगै ७ गुंणिताः स्थानविकल्पाः २८। पुनर्मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरण-गुणस्थानेषु अष्टसु उपयोगाः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०
५	५	६	६	६	७	७	७

स्व-स्वस्थानसंख्याभिः स्व-स्वोपयोगगुणिताः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०
४०	२०	२४	४८	४८	५६	५६	२८

एते चतुर्विंशतिभङ्गैर्गुंणिताः सन्तः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०
९६०	४८०	५७६	११५२	११५२	१३४४	१३४४	६७२

सर्वेऽपि मीलिताः सप्तसहस्रषट्शताशीतिप्रमिताः स्थानविकल्पाः ७६८० भवन्ति।

आदिके आठों गुणस्थानोंमें उदयस्थान ८, ४, ४, ८, ८, ८, ८, ४ हैं। इन्हें अपने अपने गुणस्थानके उपयोगोंसे गुणा करनेपर ४०, २०, २४, ४८, ४८, ५६, ५६, और २८ आते हैं। इन्हें चौबीससे गुणा करनेपर ९६०, ४८०, ५७६, ११५२, ११५२, १३४४, १३४४ और ६७२ भंग प्राप्त होते हैं। इन सर्व भंगोंको मिलानेपर ७६८० आठ गुणस्थानोंमें उपयोग-सम्बन्धी भंग आ जाते हैं।

[1]अणियट्टिसुदए भंगा सत्तारस चेव होंति णायव्वा।
सत्तुवओगे गुणिया सय दस णव चेव भंगा हु ॥३६३॥

अणियट्टीए १२।४। सुहुमे १। दो वि मेलिया १७। सत्तुवजोगगुणा ११९।

अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः सप्तदशोदयभङ्गविकल्पा भवन्ति १७ ज्ञातव्याः। ते सप्तोपयोगैर्गुंणिताः शत १०० दश १० नव ९ चेति [११९] भङ्गा विकल्पा भवन्ति ॥३६३॥

अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे १२ अवेदभागे ४ सूक्ष्मे १ सर्वे मीलिताः १७। एते सप्तोपयोगैर्गुंणिताः ११९। तथाहि—अनिवृत्तौ सवेदभागे एकप्रकृतिकस्थानं १ सप्तोपयोगगुणितं सप्तकम् ७। पुनर्द्वादशभङ्गैर्गुंणिते चतुरशीतिः ८४। अवेदभागे स्थानमेकं १ सप्तभिरुपयोगैर्गुंणितं सप्तकम् ७। पुनश्चतुर्भङ्गैर्गुंणिते अष्टाविंशतिः २८। सूक्ष्मे स्थानमेकं १ सप्तोपयोगैर्गुंणितं सप्तकम् ७। एवं मीलिताः ११९।

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानमें उदयसम्बन्धी भंग सत्तरह होते हैं। उन्हें सात उपयोगोंसे गुणा करने पर एकसौ उन्नीस भङ्ग होते हैं ऐसा जानना चाहिए ॥३६३॥

[2]सत्तत्तरि चेव सया णवणउदी चेव होंति बोहव्वा।
उदयवियप्पे जाणसु उवओगे मोहणीयस्स ॥३६४॥

उदयवियप्पा ७७९९।

उपयोगाश्रितमोहनीयोदयस्थानविकल्पान् जानीहि, भो भव्यवर! त्वम्। कति? सप्तसहस्रसप्तशतनवनवतिर्ज्ञातव्या भवन्ति ७७९९ ॥३६४॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३७९। 2. ५, ३८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गु०	स्था०	प्र०	उप०	भं०	भं० वि०	गु०
मि०	८	६८	५	४०	३४०	२४
सा०	४	३२	५	२०	१६०	२४
मि०	४	३२	६	२४	१९२	२४
अ०	८	६४	६	४८	३६०	२४
दे०	८	५२	६	४८	३१२	२४
प्र०	८	४४	७	५६	३०८	२४
अप्र०	८	४४	७	५६	३०८	२४
अपू०	४	२०	७	२८	१४०	२४
	१	२	७	७	१४	१२
अनि०	१	१		७	७	४
सू०	१	१	७	७	७	१
उ०			७			
क्षी०			७			
स०			२			
अयो०			२			

इस प्रकार मोहनीयकर्मके उपयोगकी अपेक्षा सर्व उदयविकल्प सतहत्तरसौ निन्यानबै (७७९९) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३६४॥

उपयोगोंकी अपेक्षा उदयविकल्पोंकी संदृष्टि इस प्रकार है:—

गुणस्थान	उपयोग	उदयस्थान	गुणकार	भंग
मिथ्यात्व	५	८	२४	९६०
सासादन	५	८	२४	४८०
मिश्र	६	४	२४	५७६
अविरत	६	८	२४	११५२
देशविरत	६	८	२४	११५२
प्रमत्तविरत	७	८	२४	१३४४
अप्रमत्तविरत	७	८	२४	१३४४
अपूर्वकरण	७	४	२४	६७२
अनिवृत्ति	७		१२ ४	८४ २८
सूक्ष्मसाम्प०	७		१	१
			सर्व उदय विकल्प	७७९९

अब गुणस्थानोंमें उपयोगकी अपेक्षा मोहनीयकी उदयप्रकृतियोंकी संख्या बतलाते हैं—

[1]मिच्छादि-अपुव्वंता पयडिवियप्पा हवंति णायव्वा ।
उवओगेण य गुणिया चउवीसगुणा य पुणरवि य ॥३६५॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ३८१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ गुणस्थानेषु उपयोगाश्रितमोहोदयप्रकृतिसंख्या कथ्यते—['मिच्छादि-अपुव्वंता' इत्यादि ।]

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्ताः प्रकृतिविकल्पा भवन्ति ज्ञातव्याः । मिथ्यादृष्टौ ८।६ । ८।८ एषामष्टषष्टिः ६८ ।
१० ६ ७

एवं सासादनाद्यपूर्वकरणान्तेषु ज्ञेयम् । ता उदयप्रकृतयः स्व-स्वगुणस्थानसम्भव्युपयोगैर्गुणिता पुनरपि चतुर्विंशतिभङ्गैः २४ गुणिता उदयविकल्पा भवन्ति ॥३६५॥

मिथ्यात्वगुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरण तक जितने प्रकृतिविकल्प होते हैं, उन्हें पहले उपयोगसे गुणित करे। पुनरपि चौबीससे गुणा करे ॥३६५॥

[1]एवं गुणठाणेसु अट्ठसु उदयपयडीओ ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४।२०। उवओगगुणा ३४०। १६०।१६२।३६०।३१२।३०८।३०८।१४०। चउवीसभंगगुणा—

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तगुणस्थानेषु अष्टसु उदयप्रकृतयः ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४।२० स्व-स्वगुणस्थानसम्भव्युपयोगैः गुणिताः ३४०।१६०।१६२।३६०।३१२।३०८।३०८।१४०। पुनरपि वेदत्रय ३ हास्यादियुग्म २ कषायचतुष्क ४ गुणितचतुर्विंशतिभङ्गैः २४गुणिताः—

मिथ्यात्व आदि आठ गुणस्थानोंमें उदयप्रकृतियाँ क्रमशः इस इस प्रकार हैं—६८, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४, और २० । इन्हें अपने अपने गुणस्थानके योगोंसे गुणा करनेपर ३४०, १६०, १६२, ३६०, ३१२, ३०८, ३०८ और १४० संख्या प्राप्त होती है। इन्हें चौबीस चौबीस भंगोंसे गुणा करनेपर अपने अपने गुणस्थानके भंग आ जाते हैं।

अब आगे प्रत्येक गुणस्थानमें उन भंगोंका प्रमाण बतलाते हैं—

अट्ठसहस्सा एयसदसट्ठी मिच्छम्हि हवंति णायव्वा ।
तिण्णि सहस्सा अडसदचत्ताला सासणे भंगा ॥३६६॥

८१६०।३८४०।

तद्गुणितफलं गाथाचतुष्केणाऽऽह—['अट्ठ सहस्सा य सदसट्ठी' इत्यादि ।] मिथ्यादृष्टौ अष्टसहस्राः एकशतषष्टिप्रमिताः मोहोदयप्रकृतिविकल्पा भवन्ति ८१६० । सासादने त्रिसहस्रचत्वारिंशदधिकाष्टशतभङ्ग-संख्या ज्ञातव्याः ३८४० ॥३६६॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें आठ हजार एक सौ साठ भंग (८१६०) होते हैं। सासादनमें तीन हजार आठ सौ चालीस (३८४०) भंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३६६॥

सम्मामिच्छे भंगा अट्ठुत्तरछस्सदा चउसहस्सा ।
छच्च सया सत्ताला अट्ठ सहस्सं तु अजदीए ॥३६७॥

४६०८।८६४०।

सम्यग्मिथ्यात्वे मिश्रे चतुःसहस्राष्टोत्तरषट्शतप्रमिता मोहोदयप्रकृतिविकल्पाः ४६०८। असंयते अष्टसहस्रचत्वारिंशदधिकषट्शतभङ्गाः ८६४० ॥३६७॥

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें चार हजार छह सौ आठ (४६०८) भंग होते हैं। अविरत-सम्यक्त्वगुणस्थानमें आठ हजार छह सौ चालीस (८६४०) भंग होते हैं ॥३६७॥

1. सं० पञ्चसं० ५, 'गुणेष्वष्टेषु' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० २१०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देसे सहस्स सत्तय चउसय अट्ठुत्तरा असीदी य।
तिण्णि सया वाणउदी सत्त सहस्सा पमत्ते दु ॥३६८॥

७४८८।७३९२।

देशसंयते सप्तसहस्राष्टाशीत्युत्तरचतुःशतसंख्या ७४८८ भवन्ति। प्रमत्ते शतत्रयद्वानवतिसप्तसहस्राणीतिमोहोदयप्रकृतिपरिमाणं ७३९२ ॥३६८॥

देशविरतगुणस्थानमें सात हजार चार सौ अठासी (७४८८) भंग होते हैं प्रमत्तविरतमें सात हजार तीनसौ बानबै (७३९२) भङ्ग होते हैं ॥३६८॥

अह+ अप्पमत्तभंगा तावदिया होंति णायव्वा।
तिग तिग छस्सुण्णगदा भंगवियप्पा अपुव्वे य ॥३६९॥

७३९२।३३६० सव्वेमेलिया ५०८८० ।

अथ अप्रमत्ते भङ्गाः प्रमत्तोक्तप्रमितास्तावन्त उदयविकल्पाः ७३९२ भवन्ति। अपूर्वकरणे त्रिकत्रिकषट्शून्यं गताः उदयविकल्पाः ३३६० ज्ञातव्या भवन्ति ॥३६९॥

सर्वे मीलिताः ५०८८० ।

इससे आगे सातवें अप्रमत्तगुणस्थानमें भी उतने ही अर्थात् सात हजार तीनसौ बानबै (७३९२) भङ्ग जानना चाहिए। अपूर्वकरणमें तीन, तीन, छह और शून्य अर्थात् तीन हजार तीन सौ साठ (३३६०) भङ्ग होते हैं ॥३६९॥

उक्त आठों गुणस्थानोंके भङ्गोंका जोड़ ५०८८० होता है।

[1]अणियट्टिम्मि वियप्पा दोण्णि सया तिगधिया मुणेयव्वा।
सव्वेसु मेलिदेसु य उवओगवियप्पया णेया ॥३७०॥

अणियट्टिउदयपयडीओ २४। अवेदे ४ सुहुमे १। सव्वे वि २९। सत्तुवओगगुणा २०३।

अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे प्रकृतिद्वयं २ वेदत्रयकषायचतुष्कहतैर्द्वादशभङ्गैर्गुणिताः २४। अवेदभागे प्रकृतिः १ चतुःसंज्वलनहता ४। सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभः १। एवमेकोनत्रिंशदुदयविकल्पाः २९ सप्तभिर्योगैर्गुणितास्त्रिकाधिकद्विशतप्रमिता उदयविकल्पाः २०३ ज्ञेयाः ॥३७०॥

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें तीन अधिक दो सौ अर्थात् २०३ भङ्ग जानना चाहिए। इन सर्व भङ्गोंके मिला देने पर उपयोग-विकल्पोंका प्रमाण निकल आता है ऐसा जानना चाहिए ॥३७०॥

अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें उदयप्रकृतियाँ २४ होती हैं और अवेद भागमें ४ होती हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें उदयप्रकृति १ है। ये सब मिलकर २९ हो जाती हैं। उन्हें सात उपयोगसे गुणा करने पर २०३ भङ्ग दोनों गुणस्थानोंके आ जाते हैं।

[2]इक्कावण्णसहस्सा तेसीदी चेव होंति बोहव्वा।
पयसंखा णायव्वा उवओगे मोहणीयस्स[1] ॥३७१॥

५१०८३।

1. सं० पञ्चसं० ५, ३८२। 2. ५, ३८३।

१. गो० क० गा० ४९३।

+ ब अथ।

उपयोगाश्रितमोहनीयपदबन्धसंख्या प्रकृतिपरिमाणं एकपञ्चाशत्सहस्रत्र्यशीतिप्रमिता ५१०८३ मोहोदयविकल्पा सर्वे भवन्ति ज्ञातव्याः ॥३७१॥

गु०	प्र०	उ०	प्र० वि०	गु०	प्र० भं०
मि०	६८	५	३४०	२४	८१६०
सा०	३२	५	१६०	२४	३८४०
मि०	३२	६	१९२	२४	४६०८
अ०	६०	६	३६०	२४	८६४०
दे०	५२	६	३१२	२४	७४८८
प्र०	४४	७	३०८	२४	७३९२
अप्र०	४४	७	३०८	२४	७३९२
अपू०	२०	७	१४०	२४	३३६०
अनि०	२	७	१४	१२	१६८
	१		७	४	२८
सू०	१	७	७	१	७
					५१०८३

इति गुणस्थानेषु उपयोगाश्रितमोहोदयप्रकृतिविकल्पाः समाप्ताः ।

इस प्रकार उपयोगकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके पदवृन्द-भङ्गोंका प्रमाण इकावन हजार तेरासी (५१०८३) होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥३७१॥

उपर्युक्त सर्व भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	उपयोग	उदयपद	गुणकार	भङ्ग
मिथ्यात्व	५	६८	२४	८१६०
सासादन	५	३२	२४	३८४०
मिश्र	६	३२	२४	४६०८
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	६	५२	२४	७४८८
प्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३९२
अप्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३९२
अपूर्वकरण	७	२०	२४	३३६०
अनिवृत्तिकरण	७	२	१२	१६८
		१	४	२८
सूक्ष्मसाम्पराय	७	१	१	७
सर्व पदवृन्द-भङ्ग				५१०८३

अब लेश्याओंकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें मोहके उदयस्थानोंकी संख्याका विचार करते हुए पहले गुणस्थानोंमें संभवती लेश्याओंका निरूपण करते हैं—

[1]मिच्छादि-अप्पमत्तंतयाण लेसा जिणेहिं णिद्दिट्ठा ।
छ छक्क छक्क छ त्तिय तिग तिण्णि य होंति लेसाओ ॥३७२॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ३८४ ।

तस्सुवरि सुक्कलेसा मिच्छादि-अपुव्वंतया लेसा ।
चउवीसेण य गुणिदे भंगेहिं गुणिज्ज पच्छा दु ॥३७३॥

अथ लेश्यामाश्रित्य गुणस्थानेषु मोहदयस्थानसंख्यामाह । आदौ गुणस्थानेषु सम्भवल्लेश्याः प्राह—['मिच्छादिअप्पमत्तं' इत्यादि ।] मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानेषु क्रमेण षट् ६ षट्क ६ षट्क ६ षट् ६ तिस्रः ३ तिस्रः ३ तिस्रो ३ लेश्या भवन्ति । तथाहि—मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्षु गुणस्थानेषु प्रत्येकं षट् ६ लेश्या भवन्ति । देशसंयतादित्रये शुभा एव तिस्रः ३ । तत उपर्यपूर्वकरणादिसयोगपर्यन्तमेका शुक्ललेश्यैव ।

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
६	६	६	६	३	३	३	१	१	१	१	१	१	०

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तलेश्या इति स्व-स्वगुणस्थानोक्तमोहोदयस्थानभङ्गाः स्वगुणस्थानोक्तलेश्याभिर्गुणिताः पश्चाच्चतुर्विंशतिभङ्गैः २४ गुणिताः ॥३७२-३७३॥

मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक जिनेन्द्रदेवने लेश्याएँ क्रमशः इस प्रकारसे निर्दिष्ट की हैं—छह, छह, छह, छह, तीन, तीन और तीन । अर्थात् चौथे गुणस्थान तक छहों लेश्याएँ होती हैं । पाँचवेंसे सातवें तक तीनों शुभ लेश्याएँ होती हैं । इससे ऊपरके गुणस्थानोंमें केवल एक शुक्ललेश्या होती है । (चौदहवाँ गुणस्थान लेश्या-रहित होता है ।) इनमेंसे मिथ्यात्वसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक की लेश्याओंको अपने-अपने गुणस्थानोंके मोहसम्बन्धी उदयस्थानोंकी संख्यासे गुणा करे । पीछे चौबीस भङ्गोंसे गुणा करे ॥३७२-३७३॥

[1]६।६।६।६।३।३।३।१ मिच्छादिसु उदया ८।४।४।८।८।८।८।४। सग-सगलेसगुणा ४८।२४।२४।४८।२४।२४।२४।४ । चउवीसभंगगुणा—

मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणान्तोदयस्थानसंख्या—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्रम०	अप्र०	अपू०
८	४	४	८	८	८	८	८

स्व-स्वगुणस्थानोक्तलेश्याभिर्गुणितागुणिताः—

मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्रम०	अप्र०	अपू०
४८	२४	२४	४८	२४	२४	२४	४

मिथ्यात्वादि आठ गुणस्थानोंमें लेश्याएँ इस प्रकार हैं—६, ६, ६, ६, ३, ३, ३, १ । इन्हें इन्हीं गुणस्थानोंके उदयस्थानोंसे गुणे, जिनकी संख्या इस प्रकार है—८, ४, ४, ८, ८, ८, ८, ४ । इस प्रकार अपनी अपनी लेश्यासे गुणा करने पर ४८, २४, २४, ४८, २४, २४, २४, ४ संख्या आती है । उन्हें चौबीस भङ्गोंसे गुणा करने पर अपने अपने गुणस्थानके भङ्ग आ जाते हैं । जो इस प्रकार हैं—

मिच्छादिट्ठी भंगा एक्कारस सया य होंति बावण्णा ।
सासणसम्मे भंगा छावत्तरि पंचसदिगा य ॥३७४॥

११५२।५७६।

तथाहि—मिथ्यादृष्टौ स्थानानि दशादीनि चत्वारि ८ ९।९ १० नवादीनि चत्वारि ७ ८।८ ९ मिलित्वाऽष्टौ ८

1. सं० पञ्चसं० ५, '६, ६, ६, ६,' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २१०) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षड्लेश्याभि ६ गुणितानि ४८। सासादने नवादीनि चत्वारि $\begin{matrix}७\\ ८।८\\ ६\end{matrix}$ षड्लेश्याभिगुणितानि २४ मिश्रे स्थानानिनवादीनि चत्वारि $\begin{matrix}७\\ ८।८\\ ६\end{matrix}$ षड्लेश्याभिगुणितानि २४। असंयते स्थानानि नवादीनि चत्वारि $\begin{matrix}७\\ ८।८\\ ९\end{matrix}$ अष्टादीनि चत्वारि $\begin{matrix}६\\ ७।७\\ ८\end{matrix}$। मिलित्वा अष्टौ ८ षड्लेश्यागुणितानि ४८। देशसंयते स्थानानि अष्टादीनि चत्वारि $\begin{matrix}६\\ ७।७\\ ८\end{matrix}$ सप्तादीनि चत्वारि $\begin{matrix}५\\ ६।६\\ ७\end{matrix}$ मिलित्वा अष्टौ शुभलेश्यात्रयगुणितानि २४। प्रमत्ते अप्रमत्ते च स्थानानि सप्तादीनि चत्वारि $\begin{matrix}५\\ ६।६\\ ७\end{matrix}$ षट्कादीनि चत्वारि $\begin{matrix}४\\ ५।५\\ ६\end{matrix}$ मिलित्वा अष्टौ तत्त्रयलेश्यागुणितानि २४।२४। अपूर्वे स्थानानि षट्कादीनि चत्वारि शुक्ललेश्यागुणितानि चत्वार्येव ४। एतावत्पर्यन्तं सर्वत्र गुणकारश्चतुर्विंशतिः २४।

मिथ्यादृष्टेरुदयस्थानभङ्गाः ४८ चतुर्विंशत्या भङ्गैर्गुणिता एकादशशतद्वापञ्चाशत् ११५२ भवन्ति। सासादने २४ चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः पञ्चशतषट्सप्ततिप्रमिता मोहोदयस्थानविकल्पाः ५७६ स्युः ॥३७४॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके लेश्या-सम्बन्धी मोहके उदयस्थानोंके भङ्ग ग्यारहसौ बावन (११५२) होते हैं। सासादनसम्यक्त्वमें पाँचसौ छिहत्तर भंग (५७६) होते हैं ॥३७४॥

सम्मामिच्छे जाणे तावदिया चेव होंति भंगा हु।
एक्कारस चेव सया बावण्णासंजया सम्मे ॥३७५॥

५७६।११५२।

सम्यग्मिथ्यात्वे मिश्रे तावन्तः पूर्वोक्तषट्सप्तत्यधिकपञ्चशतप्रमिता भवन्तीति जानीहि ५७६। असंयतसम्यग्दृष्टौ एकादशशतद्वापञ्चाशद् भङ्गा ११५२ भवन्ति ॥३७५॥

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें उतने ही भङ्ग जानना चाहिए अर्थात् ५७६ भङ्ग होते हैं। असंयतसम्यक्त्वगुणस्थानमें ग्यारहसौ बावन (११५२) भङ्ग होते हैं ॥३७५॥

विरयाविरए भंगा छावत्तरि होंति पंचसदिगा य।
विरए दोसु वि जाणे तावदिया चेव भंगा हु ॥३७६॥

५७६।५७६।५७६

❀ ....

.... ॥३७६॥

❀टीका प्रतिमें १८१ वाँ पत्र नहीं होनेसे गाथाङ्क ३७६ से ३८६ तककी टीका अनुपलब्ध है। अतः छूटे अंशके सूचनार्थ बिन्दुएँ दी गई हैं। तथा १८२ वाँ पत्र आधा टूटा है, अतः त्रुटित अंश पर बिन्दु देकर उपलब्ध अंश दिया जा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरताविरतगुणस्थानमें पाँचसौ छिहत्तर (५७६) भङ्ग होते हैं। दोनों विरत अर्थात् प्रमत्त और अप्रमत्तविरतमें भी उतने ही अर्थात् पाँच सौ छिहत्तर, पाँचसौ छिहत्तर भङ्ग जानना चाहिए ॥३७६॥

छण्णउदिं च वियप्पा अउव्वकरणस्स होंति णायव्वा।
पंचेव सहस्साइं वेसदमसिदी य भंगा दु ॥३७७॥

९६।५२८०।

अपूर्वकरणमें छ्यानबै (९६) भङ्ग होते हैं। इस प्रकार आठों गुणस्थानोंके लेश्याकी अपेक्षा उदयस्थानके विकल्प पाँच हजार दो सौ अस्सी (५२८०) होते हैं ॥३७७॥

अणियट्टिय सत्तरसं पक्खिवियव्वा हवंति पुव्वुत्ता।
तेहिं जुआ सव्वे वि य भंगवियप्पा हवंति णायव्वा ॥३७८॥

इन उपर्युक्त भङ्गोंमें अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायके पूर्वोक्त सत्तरह भङ्ग और प्रक्षेप करना चाहिए। इस प्रकार इनसे युक्त होने पर जो आठों गुणस्थानोंके उदयविकल्प हैं, वे सर्व मिलकर लेश्याकी अपेक्षा मोहके उदयविकल्प हो जाते हैं ॥३७८॥

अणियट्टि-सुहुमाणं उदया १७। सुक्कलेसगुणा १७। सव्वे वि मेलिया—

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायके उदय-विकल्प १७ होते हैं। उन्हें एक शुक्ल-लेश्यासे गुणा करने पर १७ भङ्ग हो जाते हैं। ये उपर्युक्त सर्व भंग कितने होते हैं, इसे भाष्य-कार स्वयं बतलाते हैं—

[1]बावण्णं चेव सया सत्ताणउदी य होंति बोहव्वा।
उदयवियप्पे जाणसु लेसं पडि मोहणीयस्स ॥३७९॥

५२९७।

मोहनीयकर्मके लेश्याओंकी अपेक्षा सर्व उदयविकल्प बावन सौ सत्तानबै (५२९७) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३७९॥

इन उदयस्थानोंके भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	लेश्या	उदयस्थान	गुणकार	भङ्ग
मिथ्यात्व	६	८	२४	११५२
सासादन	६	४	२४	५७६
मिश्र	६	४	२४	५७६
अविरत	६	८	२४	११५२
देशविरत	३	८	२४	५७६
प्रमत्तविरत	३	८	२४	५७६
अप्रमत्तविरत	३	८	२४	५७६
अपूर्वकरण	१	४	२४	९६
अनिवृत्तिकरण	१		१२	१२
			४	४
सूक्ष्मसाम्पराय	१		१	१
			सर्व भङ्ग—	५२९७

1. सं० पञ्चसं० ५, ३८५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब लेश्याओंकी अपेक्षा मोहनीयके पदवृन्द बतलाते हैं—

[1]मिच्छादिट्ठिप्पहुदिं जाव अपुव्वंतलेसकप्पा दु ।
पयडिट्ठाणेहिं हया चउवीसगुणा य होंति पदबंधा ॥३८०॥

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक जो लेश्याके विकल्प बतलाये गये हैं उन्हें पहले उस उस गुणस्थानके उदयस्थानोंकी प्रकृतियोंसे गुणा करे। पीछे चौबीससे गुणा करने पर विवक्षित गुणस्थानके पदवृन्द प्राप्त हो जाते हैं ॥३८०॥

अट्ठसु गुणठाणेसु पुव्वुत्ता उदयपयडीओ ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४।२०। सग-सगलेसगुणा ४०८।१९२।१९२।३६०।१५६।१३२।१३२।२० । चउवीस-भंग-गुणा—

आदिके आठों गुणस्थानोंमें पूर्वमें बतलाई गई उदयप्रकृतियाँ क्रमशः ६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ और २० होती हैं। इन्हें अपने अपने गुणस्थानकी लेश्या-संख्यासे गुणा करनेपर ४०८, १९२, १९२, ३६०, १५६, १३२, १३२ और २० संख्या प्राप्त होती हैं। उस संख्याको चौबीस भंगोंसे गुणा करनेपर प्रत्येक गुणस्थानके उदयपदवृन्दोंका प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

अब भाष्यगाथाकार स्वयं प्रत्येक गुणस्थानके पदवृन्दोंको कहते हैं—

मिच्छादिट्ठी-भंगा सत्तसया णवसहस्स बाणउदी ।
सासणसम्मे जाणसु छायालसदा य अट्ठधिया ॥३८१॥

९७९२।४६०८।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानके सर्व भंग नौ हजार सात सौ बानबै (९७९२) होते हैं। सासादन-सम्यक्त्वमें आठ अधिक छयालीस सौ अर्थात् चार हजार छह सौ आठ (४६०८) भंग होते हैं ॥३८१॥

सम्मामिच्छे जाणसु तावदिया चेव होंति भंगा हु ।
अट्ठेव सहस्साइं छस्सय चाला अविरदे य ॥३८२॥

४६०८।८६४० ।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें भी इतने ही अर्थात् चार हजार छह सौ आठ (४६०८) जानना चाहिए। अविरतसम्यक्त्वमें आठ हजार छह सौ चालीस (८६४०) भंग होते हैं ॥३८२॥

विरयाविरए जाणसु चोदाला सत्तसय तिय सहस्सा ।
विरदे य होंति णेया एक्कत्तीस सय अडसट्ठी ॥३८३॥

३७४४।३१६८।

विरताविरतमें तीन हजार सात सौ चवालीस (३७४४) भंग होते हैं। प्रमत्तविरतमें इकतीससौ अडसठ अर्थात् तीन हजार एक सौ अडसठ (३१६८) भंग होते हैं ॥३८३॥

अथ अप्पमत्तविरदे तावदिया चेव होंति णायव्वा ।
जाणसु अपुव्वविरदे चउसदमसिदी य भंगा हु ॥३८४॥

३१६८।४८०। सव्वे मेलिया ३८२०८।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, गुणाष्टके पदवन्धे' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २१०-२११)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रमत्तविरतमें भी इतने ही भंग होते हैं अर्थात् तीन हजार एक सौ अड़सठ (३१६८) भंग जानना चाहिए। अपूर्वकरणमें चार सौ अस्सी (४८०) भंग होते हैं ॥३८४॥

इस प्रकार आठों गुणस्थानोंके सर्वपदवृन्द मिलकर ३८२०८ होते हैं।

ऊणत्तीसं भंगा अणियट्टी-सुहुमगाण बोहव्वा।

सव्वे वि मेलिदेसु य सव्ववियप्पा वि एत्तिया होंति ॥३८५॥

अणियट्टि-सुहुमाणं उदयपयडीओ २६।

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायके उनतीस भंग जानना चाहिए। इन सर्वभंगोंके मिला देनेपर जो सर्वविकल्पोंका प्रमाण होता है। वह इतना (वक्ष्यमाण) है ॥३८५॥

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायकी उदयप्रकृतियाँ २९ होती हैं।

[1]अट्ठत्तीससहस्सा वे चेव सया हवंति सगतीसा।

पदसंखा णायव्वा लेसं पडि मोहणीयस्स[1] ॥३८६॥

३८२३७।

·········[अष्टात्रिंशत्सहस्र] द्विशतसप्तत्रिंशत्प्रमिता पदसंख्या मोहोदयप्रकृतिविकल्पाः प्रागुक्तलेश्यामाश्रित्य···············[ज्ञा]तव्याः ॥३८६॥

गुण०	स्थान०	प्रकृ०	लेश्या	स्था०	गुण०	भंगाः	भंगविक०	
मि०	८	६८	६	४८	२४	११५२	९७९२	४०८
सा०	४	३२	६	२४	२४	५७६	४६०८	१९१
मि०	४	३२	६	२४	२४	५७६	४६०८	१९२
अवि०	८	६०	६	४८	२४	११५२	८६४०	३६०
दे०	८	५२	३	२४	२४	५७६	३७४४	१५६
प्रम०	८	४४	३	२४	२४	५७६	३१६८	१३२
अप्र०	८	४४	३	२४	२४	५७६	३१६८	१३२
अपू०	४	२०	१	४	२४	९६	४८०	२
अनि०	४	२	१	१	१२	१२	४८	१
		१		१	४	४	४	
सूक्ष्म०	१	१	१	१	१	१	१	१
							३८२३७	

मोहनीयकर्मके लेश्याकी अपेक्षा सर्व पदवृन्दोंकी संख्या अड़तीस हजार दो सौ सैंतीस (३८२३७) होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३८६॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ३८६।

१. गो० क० गा० ५०५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेश्याओंकी अपेक्षा पदवृन्दोंके भंगोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	लेश्या	उदयपद	गुणकार	भंग
मिथ्यात्व	६	६८	२४	९७९२
सासादन	६	३२	२४	४६०८
मिश्र	६	३२	२४	४६०८
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	३	५२	२४	३७४४
प्रमत्तविरत	३	४४	२४	३१६८
अप्रमत्तविरत	३	४४	२४	३१६८
अपूर्वकरण	१	२०	२४	४८०
अनिवृत्तिकरण	१	२	१२	२४
		१	४	४
सूक्ष्मसाम्पराय	१	१	१	१

सर्व पदवृन्दभङ्ग—३८२३७

[1]मिच्छादिसु उदया ८।४।४।८।८।८।८।४ एदे तिवेदगुणा २४।१२।१२।२४।२४।२४।२४।१२। चउवीस-भंग-गुणा ५७६।२८८।२८८।५७६।५७६।५७६।५७६।२८८। सव्वे वि मेलिया ३७४४। अणियट्टिम्मि संजलणा तिवेदगुणा १२। दो वि मेलिया—

अथ वेदानाश्रित्य मोहोदयस्थान-तत्प्रकृतिविकल्पान् दर्शयति—मो.........गुणस्थानाष्टके याश्चतुर्विंशतिसंगुणाः १ मिथ्यादृष्ट्यादिष्वष्टसु उदयाः स्थानविक[ल्पाः]............[मिथ्या० ८। सासा० ४। मिश्र० ४। अवि० ८। देश० ८। प्रम० ८। अप्र० ८। अपू० ४। एते त्रिभिर्वेदैः ३ गुणिताः मि० २४। मि० २४। सा० १२। मि० १२ अ० २४। देश० २४। प्रम० २४। अ[प्र० २४। अपू० १२। एते चतुर्विंशतिभङ्गैर्गुणि] ताः मि० ५७६। सा० २८८। मि० २८८। अ० ५७६। दे० ५७६। प्र० ५७६। अप्र० ५७६। अपू० २८८। स[र्वेऽपि मेलिताः ३७४४। अनिवृत्तिकरणे सं] ज्वलनाश्चत्वारः ४ त्रिवेदगुणिता द्वादश १२। उभये मेलिताः तदाह—

अब आगे वेदकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय-विकल्पोंका निरूपण करते हैं—

मिथ्यात्व आदि आठ गुणस्थानोंमें उदयस्थान क्रमशः ८, ४, ४, ८, ८, ८, ८ और ४ होते हैं। इन्हें तीनों वेदोंसे गुणा करने पर क्रमशः २४, १२, १२, २४, २४, २४, २४ और १२ संख्या प्राप्त होती है। इन संख्याओंको चौबीस भङ्गोंसे गुणा करने पर क्रमशः ५७६, २८८, २८८, ५७६, ५७६, ५७६, ५७६ और २८८ भंग होते हैं। ये सर्व भङ्ग मिलकर ३७४४ हो जाते हैं। अनिवृत्तिकरणमें संज्वलनकषायोंको तीनों वेदोंसे गुणा करने पर १२ भङ्ग होते हैं। ये दोनों राशियाँ मिल कर ३७५६ भङ्ग हो जाते हैं।

अब भाष्यकार इसी अर्थको गाथाके द्वारा प्रकट करते हैं—

[2]तिण्णेव सहस्साइं सत्तेव सया हवंति छप्पण्णा।
उदयवियप्पे जाणसु वेदं पडि मोहणीयस्स ॥३८७॥

३७५६।

1. सं० पञ्चसं० ५, ३८७। तथा 'मिथ्यादृष्ट्यादिष्वष्टसूदयाः' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २११)।
2. ५, ३८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

['तिण्णेवसहस्साइं' इत्यादि । वेदान् प्रत्याश्रित्य मोहोदयस्थानविकल्पाः·········[त्रीणि सहस्राणि सप्तश-]तानि षट्पञ्चाशत् ३७५६ भवन्तीति मन्यस्व ॥३८७॥

वेदकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदयविकल्प तीन हजार सात सौ छप्पन (३७५६) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३८७॥

उक्त भङ्गोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	उदयपद	वेद	गुणकार	सर्वभङ्ग
मिथ्यात्व	८	३	२४	५७६
सासादन	४	३	२४	२८८
मिश्र	४	३	२४	२८८
अविरत	८	३	२४	५७६
देशविरत	८	३	२४	५७६
प्रमत्तविरत	८	३	२४	५७६
अप्रमत्तविरत	८	३	२४	५७६
अपूर्वकरण	८	३	२४	२८८
अनिवृत्तिकरण	४	३		१२
		सर्व उदयविकल्प		३७५६

अब वेदकी अपेक्षा मोहनीयकर्मकी पदवृन्द-संख्याको बतलाते हैं—

[1]मिच्छादिसु उदयपयडीओ ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४।२० । एए तिवेदगुणा २०४।९६।९६।१८०।१५६।१३२।१३२।६०। एए चउवीसगुणा ४८९६।२३०४।२३०४।४३२०।३७४४।३१६८।३१६८।१४४० । सव्वे वि मेलिया २५३४४ । अणियट्टीए संजलणा दो उदयगुणा तिवेदगुणा य ४।८।२४ दो वि मेलिया—

पाकप्रकृतयः सर्वा वेदत्रयहता·········ताः १ मिथ्यादृष्ट्यादिषु अष्टसु उदयप्रकृतयः मि० ६८ । सा० ३२ । मि० ३२ । अवि० ६० दे० ५२ [प्रम० ४४ । अप्र० ४४ । अपू० २० । एते त्रिवेदगुणिताः मि० २०४ । सा०] ९६ । मि० ९६ । अवि० १८० । दे० १५६ । प्रम० १३२ । अप्र० १३२ । अपू० ६० । एते चतुर्विंशत्या २४ गुणिता [मि० ४८९६ । सा० २३०४ । मि० २३०४ । अवि० ४३२० । देश०] ३७४४ । प्रम० ३१६८ । अप्र० ३१६८ । अपू० १४४० । सर्वेऽपि मीलिताः २५३४४ । अनिवृत्तिकरणे [चत्वारः संज्वलनाः उदयद्विकेन] गुणिताः ८ त्रिभिर्वेदैर्गुणिताः २४ । उभये मीलिताः तदाह—

मिथ्यात्व आदि आठ गुणस्थानोंमें उदयप्रकृतियाँ क्रमशः ६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ और २० होती हैं। इन्हें तीनों वेदोंसे गुणा करने पर २०४, ९६, ९६, १८०, १५६, १३२, १३२ और ६० संख्या प्राप्त होती हैं। उसे चौबीससे गुणा करने पर क्रमशः ४८९६, २३०४, २३०४, ४३२०, ३७४४, ३१६८, ३१६८ और १४४० भङ्ग प्राप्त होते हैं। ये सब मिलकर २५३४४ हो जाते हैं। अनिवृत्तिकरणमें चारों संज्वलनोंको दो उदयप्रकृतियोंसे गुणा करके पुनः तीनों वेदोंसे गुणा करने पर (४×२×३=) २४ भंग प्राप्त होते हैं। दोनों राशियोंके मिला देने पर सर्व भङ्ग २५३६८ हो जाते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३८९। तथा तदधस्तनगद्यभागः। (पृ० २११)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भाष्यकार इसी अर्थको गाथाके द्वारा प्रकट करते हैं—

[1]पणुवीससहस्साइं तिण्णेव सया हवंति अडसट्ठी ।
पयसंखा णायव्वा वेदं पडि मोहणीयस्स ॥३८८॥

२५३३८ ।

['पणवीससहस्साइं' इत्यादि ।] वेदानाश्रित्य मोहनीयस्य पदबन्धसंख्या मोहोदयप्रकृतिप्रमाणं··· [पञ्चविंशतिसहस्राणि त्रीणि शतानि] अष्टषष्टिश्च २५३६८ मोहोदयप्रकृति-विकल्पा भवन्ति ॥३८८॥

वेदकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके पदवृन्दोंकी संख्या पच्चीस हजार तीन सौ अडसठ होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३८८॥

इन पदवृन्दोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	उदयपद	वेद	गुणकार	सर्वभङ्ग
मिथ्यात्व	६८	३	२४	४८९६
सासादन	३२	३	२४	२३०४
मिश्र	३२	३	२४	२३०४
अविरत	६०	३	२४	४३२०
देशविरत	५२	३	२४	३७४४
प्रमत्तविरत	४४	३	२४	३१६८
अप्रमत्तविरत	४४	३	२४	३१६८
अपूर्वकरण	२०	३	२४	१४४०
अनिवृत्तिकरण	४	३	२	२४

सर्व पदवृन्द-संख्या—२५३६८

अब संयमकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय-विकल्पोंका निरूपण करते हैं—

[2]पमत्तापमत्ताणं उदया ८।८। तिसंजमगुणा २४।२४। अपुव्वे उदया ४। दुसंजमगुणा ८। एए चउवीसगुणा ५७६।५७६।१९२। सव्वे वि मेलिया १३४४। अणियट्टीए उदया १६। दुसंजमगुणा ३२। सुहुमे उदओ १। एओ संजमगुणो १ सव्वे वि मेलिया—

अथ संयममाश्रित्य मोहो[दय······वि]कल्पाः ८।८। सामायिक-च्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-संयमैस्त्रिभिर्गुणिताः प्र० २४। [अप्र० २४··········अपूर्वे उदयविकल्पाः ४] सामायिकच्छेदोपस्थापना-संयमाभ्यां द्वाभ्यां गुणिताः ८। एते चतुर्विंशत्या २४ गुणिताः ······ [प्रमत्ते ५७६] अप्रमत्ते ५७६। अपूर्वे १९२। सर्वेऽपि मीलिताः १३४४। अनिवृत्तिकरणे उदयाः १६। ·········सामायिकच्छेदोपस्थापना-भ्यां गुणिताः ३२। सूक्ष्मे उदयः १ एकसूक्ष्मसाम्परायेण······[गुणितः] १ सर्वेऽपि मीलिताः तदाह—

संयमकी प्राप्ति छठे गुणस्थानसे होती है। प्रमत्त और अप्रमत्त संयतके उदयस्थान ८, ८ हैं। उन्हें तीन संयमोंसे गुणा करने पर २४, २४ भंग होते हैं। अपूर्वकरणमें उदयस्थान ४ हैं। उन्हें दो संयमोंसे गुणा करने पर ८ भङ्ग आते हैं। इन सबको चौबीससे गुणा करने पर ५७६, ५७६ और १९२ भङ्ग हो जाते हैं। वे तीनों मिलकर १३४४ भङ्ग होते हैं। अनिवृत्तिकरणमें उदयविकल्प १६ हैं, उन्हें दो संयमोंसे गुणा करने पर ३२ भङ्ग प्राप्त होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें उदयप्रकृति १ है उसे एक संयमसे गुणा करने पर १ भङ्ग रहता है। ये सर्व भङ्ग मिल करके १३७७ उदयविकल्प हो जाते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३९०-३९१। 2. ५, ३९२। तथा तदधस्तनगद्यभागः (पृ० २१२)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भाष्यकार इन्हीं भंगोंको गाथाके द्वारा प्रकट करते हैं—

[1]तेरस सयाणि सयरिं सत्तेव तहा हवंति णेया दु।
उदयवियप्पे जाणसु संजमलंभेण मोहस्स ॥३८९॥

१३७७।

['तेरस सयाणि सयरिं' इत्यादि ।] संयमालम्बनेन मोहनीयस्य उदयस्थानविक-[ल्पाः········
जानी]हि । किं तत् ? त्रयोदश शतानि सप्तसप्तत्यग्राणि १३७७ मिलित्वा भवन्तीति जानीहि ॥३८९॥

संयमकी प्राप्तिकी अपेक्षा मोहनीय कर्मके उदयविकल्प तेरह सौ सतहत्तर (१३७७) होते हैं ऐसा जानना चाहिए ॥३८९॥

संयमकी अपेक्षा उदयविकल्पोंकी संदृष्टि—

गुणस्थान	उदयविकल्प	संयम	गुणकार	सर्वभंग
प्रमत्तसंयत	८	३	२४	५७६
अप्रमत्तसंयत	८	३	२४	५७६
अपूर्वकरण	४	२	२४	१९२
अनिवृत्तिकरण		२	१६	३२
सूक्ष्मसाम्पराय		१	१	१
		सर्व उदय-विकल्प—१३७७		

अब संयमकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके पदवृन्दोंकी संख्या बतलाते हैं—

[2]पमत्तापमत्ताणं उदयपयडीओ ४४।४४। तिसंजमगुणा १३२।१३२। अपुव्वे उदयपयडीओ २०। दो संजमगुणा ४०। एए चउवीसभंगगुणा ३१६८।३१६८।९६० सव्वे वि मेलिया ७२९६। अणियट्टीए बारहभंगा दुपयडिगुणा २४। एकोदया ४। मेलिया २८। दो वि दुसंजमगुणा ५६। सुहुमे एगोदओ १ एगसंजमगुणो १। सव्वे वि मेलिया—

·········पदबन्धाः प्रमत्ताप्रमत्तयोरुदयप्रकृतयः प्रम० ४४। अप्र० ४४। संयमत्रयगुणाः प्रम० १३२ [अप्र० १३२·········अ] पूर्वे उदयप्रकृतयः २० द्विसंयमगुणाः ४०। ते चतुर्विंशतिभङ्गैर्गुणाः प्रम० ३१६८। अप्र० ३१६८। [······अपूर्वे ९] ६०। सर्वेऽपि मीलिताः ७२९६। अनिवृत्तिकरणे सवेदभागे द्वे प्रकृती २ द्वादशभंगैर्गुणिताः············[२४। अवे।] दभागे एकोदयप्रकृतिः १ चतुर्भिः ४ संज्वलनैर्गुणिता मिलिता २८। सामायिकच्छेदो [पस्थापनासंयमाभ्यां द्वा] भ्यां गुणिताः ५६। सूक्ष्मे एकोदयः सूक्ष्मलोभः १ एकेन सूक्ष्मसाम्परायसंयमेन गुणितः १ ················[सर्वेऽपि मी]लिताः किमिति ?

प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें उदयप्रकृतियाँ ४४; ४४ हैं। इन्हें तीन संयमोंसे गुणा करने पर १३२, १३२ भंग प्राप्त होते हैं। अपूर्वकरणमें उदयप्रकृतियाँ २० हैं, उन्हें दो संयमोंसे गुणा करने पर ४० भङ्ग होते हैं। इन सर्व भंगोंको चौबीस भंगोंसे गुणा करने पर ३१६८ ३१६८ और ९६० भंग हो जाते हैं। ये सर्व मिलकर ७२९६ भंग होते हैं। अनिवृत्तिकरणमें बारह भंगोंको दो प्रकृतियोंसे गुणा करने पर २४ भंग होते हैं। तथा एक प्रकृतिके उदयवाले ४ भंग उनमें मिला देने पर २८ भंग हो जाते हैं। उन्हें दोनों संयमोंसे गुणा करने पर ५६ भंग हो जाते हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें एक प्रकृतिका उदय होता है और संयम भी एक ही होता है, अतः एक

1. सं० पञ्चसं० ५, ३९३-३९४। 2. ५, ३९५। तथा तदधस्तनगद्यांशः (पृ० २२२)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को एकसे गुणित करने पर भंग एक ही रहता है। इस प्रकार ये उपर्युक्त सर्व भङ्ग मिलकर ७३५३ हो जाते हैं।

अब भाष्यकार इन्हीं भंगोंको गाथाके द्वारा उपसंहार करते हैं—

[1]सत्तेव सहस्साइं तिण्णेव सया हवंति तेवण्णा।
पयसंखा णायव्वा संजमलंभेण मोहस्स ॥३९०॥

७३५३।

['सत्तेव सहस्साइं' इत्यादि।] संयमावलम्बनेन मोहनीयस्योदयप्रकृतयः सप्त सहस्राणि त्रीणि श[तानि] त्रिपञ्चाशत् ७३५३ पदबन्धसंख्या भवन्तीति ज्ञातव्याः ॥३९०॥

संयमकी प्राप्तिकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके पदवृन्दोंकी संख्या सात हजार तीन सौ तिरेपन (७३५३) होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३९०॥

इन पदवृन्दोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुणस्थान	उदयपद	संयम	भङ्ग	गुणकार	सर्वभंग
प्रमत्तविरत	४४	३	१३२	२४	३१६८
अप्रमत्तविरत	४४	३	१३२	२४	३१६८
अपूर्वकरण	२०	२	४०	२४	९६०
अनिवृत्तिकरण	२	२	४	१२	४८
	१	२		४	८
सूक्ष्मसाम्पराय		१		१	१
				सर्व-पदवृन्द—७३५३	

अब सम्यक्त्वकी अपेक्षा मोहकर्मके उदय-विकल्पोंका निरूपण करते हैं—

[2]असंजदादिसु उदया ८।८।८।८। तिसम्मत्तगुणा २४।२४।२४।२४। अपुव्वे उदया ४ दुसम्मत्तगुणा ८ एए सव्वे वि चउवीसभंगगुणा ५७६।५७६।५७६।५७६।१९२। सव्वे वि मेलिया २४९६। अणियट्टि-सुहुमाणं उदया १७ दुसम्मत्तगुणा ३४ दो वि मेलिया—

अथ सम्यक्त्वमाश्रित्य मोहोद[यप्रकृतिभङ्गा]न् दर्शयति—असंयतादिगुणस्थानचतुष्टये उदयस्थान-विकल्पाः अविरते ८। दे० ८। प्र० ८ अप्र० ८। उपशम-वेदक-क्षायिकसम्यक्त्वत्रयेण गुणिताः अवि० २४। दे० २४। प्रम० २४। अप्र० २४। अपूर्वकरणे उदयस्थानानि ४ उपशम-क्षायिकाभ्यां २ द्वाभ्यां सम्यक्त्वाभ्यां गुणितानि ८। एते उदयस्थानविकल्पाः सर्वेऽपि चतुर्विंशत्या २४ भंगैर्गुणितानि असंयमे ५७६। दे० ५७६। प्र० ५७६। अप्र० ५७६। अपूर्वे १९२। सर्वेऽपि मीलिताः २४९६। अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोरुदयस्थानविकल्पाः सप्तदश १७। उपशम-क्षायिकसम्यक्त्वाभ्यां द्वाभ्यां २ गुणिताः३४। उभये मीलिताः—

असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें मोहकर्मके उदयस्थान ८, ८, ८, ८ होते हैं। उन्हें तीनों सम्यक्त्वोंसे गुणा करने पर २४, २४, २४, २४ भङ्ग होते हैं। अपूर्वकरणमें उदयस्थान ४ हैं। उन्हें दो सम्यक्त्वसे गुणा करने पर ८ भङ्ग होते हैं। इन सबको चौबीस भंगोंसे गुणा करने पर ५७६, ५७६, ५७६, ५७६, १९२ भंग होते हैं। ये सर्व मिलकर २४९६ हो जाते हैं। अनिवृत्ति-करण और सूक्ष्मसाम्परायमें उदयप्रकृतियाँ १७ हैं। उन्हें दो सम्यक्त्वोंसे गुणा करने पर ३४ भंग प्राप्त होते हैं। इन दोनों राशियोंको मिला देने पर २५३० उदयविकल्प हो जाते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ३९६, तदधस्तनगद्यांशः (पृ० २१२) ३९७ श्लोकश्च। 2. ५, ३९८–३९९। तथा 'असंयतादिगुणचतुष्टये' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २१३)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भाष्यकार इसी अर्थको गाथाके द्वारा प्रकट करते हैं—

[1]दो चेव सहस्साइं पंचेव सया हवंति तीसहिया।
उदयवियप्पे जाणसु सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥३६१॥

२५३०।

['दो चेव सहस्साइं' इत्यादि।] सम्यक्त्वगुणेन सह मोहनीयस्य उदयविकल्पान् स्थानविकल्पान् त्वं जानीहि—द्वे सहस्रे पञ्च शतानि त्रिंशच्च २५३० इत्युदयविकल्पा भवन्तीति जानीहि। गोमट्टसारे प्रकारान्तरेण स्थानविकल्पा दृश्यन्ते तत्तत्रावलोकनीयाः ॥३६१॥

सम्यक्त्वगुणकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके उदय-विकल्प दो हजार पाँच सौ तीस (२५३०) होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥३६१॥

इन उदयविकल्पोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुण०	उदयस्थान	सम्यक्त्व	गुण०	भङ्ग
अविरत	८	३	२४	५७६
देशविरत	८	३	२४	५७६
प्रमत्तविरत	८	३	२४	५७६
अप्रमत्तविरत	८	४	२४	५७६
अपूर्वकरण	४	२	२४	१६२
अनिवृत्तिकरण		२	१६	३२
सूक्ष्मसाम्पराय		२	१	२
			सर्व उदयविकल्प	२५३०

अब सम्यक्त्वकी अपेक्षा मोहकर्मके पदवृन्दोंकी संख्या कहते हैं—

[2] अविरयादिसु उदयपयडीओ ६०।५२।४४।४४। तिसम्मत्तगुणा १८०।१५६।१३२।१३२। अपुव्वे उदयपयडीओ २० दुसम्मत्तगुणा ४०। एए चउवीसभंगगुणा ४३२०।३७४४।३१६८।३१६८।९६०। सव्वे वि मेलिया १५३६० अणियट्टि-सुहुमाणं उदयपयडीओ २९ दुसम्मत्तगुणा ५८ दोवि मेलिया—

अथासंयतादिषु उदयप्रकृतयः अविरते ६०। दे० ५२। प्रम० ४४। अप्र० ४४ सम्यक्त्वत्रयेण गुणिताः असंयते १८०। दे० १५६। प्रम० १३२। अप्र० १३२। अपूर्वोदयप्रकृतयः २० उपशम-क्षायिक-सम्यक्त्वाभ्यां द्वाभ्यां २ गुणिताः ४०। एताः पुनरपि चतुर्विंशतिभङ्गगुणिताः असंयते ४३२०। दे० ३७४४। प्रम० ३१६८। अपूर्वे ९६०। सर्वेऽपि उदयविकल्पा मीलिताः १५३६०। अनिवृत्तिकरणे सवेदभागे द्वे प्रकृती २ द्वादशभङ्गगुणिताः २४। अवेदभागे प्रकृतिरेका १ चतुःसंज्वलनैर्गुणिताः ४। सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभप्रकृतिरेका एकेन गुणिता तदेकः १ एव। एवं अनिवृत्ति-सूक्ष्मयोरुदयप्रकृतयः २९ उपशम-क्षायिकसम्यक्त्वद्वयेन गुणिताः ५८। उभये मीलिताः तदाह—

अविरत आदि चार गुणस्थानोंमें उदयप्रकृतियाँ क्रमसे ६०, ५२, ४४, ४४ हैं। उन्हें तीनों सम्यक्त्वोंसे गुणा करनेपर १८०, १५६, १३२, १३२ भङ्ग प्राप्त होते हैं। अपूर्वकरणमें उदय-प्रकृतियाँ २० हैं। उन्हें दो सम्यक्त्वोंसे गुणा करनेपर ४० भङ्ग होते हैं। इन सबको चौबीस भङ्गोंसे गुणा करनेपर ४३२०, ३७४४, ३१६८, ३१६८, ९६० भङ्ग होते हैं। ये सर्व भङ्ग मिलकर १५३६० भङ्ग हो जाते हैं। अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्परायकी उदयप्रकृतियाँ २९ हैं, उन्हें दो

1. सं० पञ्चसं० ५, ४००। 2. ५, ४०१। तथा तदधस्तनगद्यभागः। (पृ० २१३)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वोंसे गुणा करनेपर ४८ भङ्ग आते हैं। ये दोनों राशियाँ मिलकर १५४१८ पदवृन्दोंका प्रमाण हो जाता है।

अब भाष्यकार इसी अर्थको गाथाके द्वारा उपसंहार करते हैं—

[1]पण्णरस सहस्साइं चत्तारि सया हवंति अट्ठरसा।
पयसंखा णायव्वा सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥३६२॥

१५४१८।

एवं मोहणीए उदयट्ठाणपरूवणा समत्ता।

['पण्णरस सहस्साइं' इत्यादि।] सम्यक्त्वगुणेन सह मोहनीयोदयप्रकृतिपरिमाणं पञ्च[दश]-सहस्राष्टादशाधिकचतुःशतप्रमिताः १५४१८ पदबन्धसंख्या भवन्ति ज्ञातव्याः। एते गोम्मट्टसारे प्रकारान्तरेण दृश्यन्ते। अत्र प्रकरणे यथा गुणस्थानेषु योगोपयोगलेश्या-वेद-संयम-सम्यक्त्वान्याश्रित्य मोहनीयोदयस्थानतत्प्रकृतय उक्तास्तथा जीवसमासेषु गत्यादिविशेषमार्गणासु चागमानुसारेण वक्तव्याः ॥३६२॥

इति मोहनीयस्योदयस्थान-तत्प्रकृत्युदयविकल्पप्ररूपणा समाप्ता।

मोहनीयकर्मके सम्यक्त्वगुणकी अपेक्षा पदवृन्दकी संख्या पन्द्रह हजार चार सौ अट्ठारह (१५४१८) होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥३६२॥

इन पदवृन्दोंकी संदृष्टि इस प्रकार है—

गुण०	उदयपद	सम्यक्त्व	गुण०	भङ्ग
अविरत	६०	३	२४	४३२०
देशविरत	५२	३	२४	३७४४
प्रमत्तविरत	४४	३	२४	३१६८
अप्रमत्तविरत	४४	३	२४	३१६८
अपूर्वकरण	२०	२	२४	९६०
अनिवृत्तिकरण	१२	२	१२	४८
	१	२	४	८
सूक्ष्मसाम्पराय	१	२	१	२
			सर्व उदयपदवृन्द	१५४१८

इस प्रकार मोहनीयकर्मके उदयस्थानोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

अब मूलसप्ततिकाकार गुणस्थानोंमें मोहकर्मके सत्त्वस्थानोंका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०४३] [2]तिण्णेगे एगेगं दो मिस्से पंच-चदु णियट्टीए तिण्णि।
दस बादरम्हि सुहुमे चत्तारि य तिण्णि उवसंते[1] ॥३६३॥

अथ गुणस्थानेषु मोहनीयसत्त्वप्रकृतीर्यथासम्भवं गाथाषट्केन कथयति—['तिण्णेगे एगेगं' इत्यादि।] मोहनीयसत्त्वप्रकृतिस्थानानि मिथ्यादृष्टौ त्रीणि ३। सासादने एकं १। मिश्रे २। असंयतादिचतुर्षु प्रत्येकं पञ्च पञ्च ५।५।५।५। अपूर्वकरणे त्रीणि ३। अनिवृत्तिकरणे दश १०। स्थूललोभापेक्षयैकादश ११। सूक्ष्मसाम्पराये चत्वारि ४। उपशान्तकषाये त्रीणि ३ च भवन्ति ॥३६३॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४०२-४०३। 2. ५, ४०५।

१. सप्ततिका० ४८। परं तत्र तृतीयचरणे 'एक्कार बायरम्मी' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहकर्मके सत्त्वस्थान मिथ्यात्वमें तीन, सासादनमें एक, मिश्रमें दो अविरत आदि चार गुणस्थानोंमें पाँच-पाँच, अपूर्वकरणमें तीन, अनिवृत्तिबादरमें दश, सूक्ष्मसाम्परायमें चार और उपशान्तमोहमें तीन होते हैं ॥३६३॥

[1]मोहे संतट्ठाणसंखा मिच्छादिसु उवसंतंतेसु ३।१।२।५।५।५।५।३।१०।४।३।

मोहे सत्त्वस्थानसंख्या मिथ्यादृष्ट्याद्युपशान्तेषु ३।१।२।५।५।५५।३।१०।४।३। तथाहि—तानि कानि मोहसत्त्वस्थानानि? पञ्चदश। २८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१। अत्र त्रिदर्शनमोहं ३ पञ्चविंशतिचारित्रमोहं अष्टाविंशतिकम् २८। तत्र सम्यक्त्वप्रकृतावुद्वेल्लितायां सप्तविंशतिकम् २७। पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे उद्वेल्लिते षड्विंशतिकम् २६। पुनः अष्टाविंशतिकेऽनन्तानुबन्धिचतुष्के विसंयोजिते क्षपिते वा चतुर्विंशतिकम् २४। पुनर्मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिकम् २३। पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिकम् २२। पुनः सम्यक्त्वे क्षपिते एकविंशतिकम् २१। पुनः मध्यमकषायाष्टके क्षपिते त्रयोदशकम् १३। पुनः षण्ढवेदे स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादशकम् १२। पुनः स्त्रीवेदे षण्ढवेदे वा क्षपिते एकादशकम् ११। पुनः षण्णोकषाये क्षपिते पञ्चकम् ५। पुनः पुंवेदे क्षपिते चतुष्कम् ४। पुनः संज्वलनक्रोधे क्षपिते त्रिकम् ३। पुनः संज्वलनमाने क्षपिते द्विकम् २। पुनः संज्वलनमायायां क्षपितायामेककम् १। पुनः बादरलोभे क्षपिते सूक्ष्मलोभरूपमेककम् १। उभयत्र लोभसामान्येनैक्यम्।

गुणस्थानेषु सत्त्वस्थानानि—

मि०	३	२८	२७	२६		
सा०	१	२८				
मि०	२	२८	२४			
अ०	५	२८	२४	२३	२२	२१
दे०	५	२८	२४	२३	२२	२१
प्र०	५	२८	२४	२३	२२	११
अप्र०	५	२८	२४	२३	२२	२१

उपशमश्रेणौ						क्षपकश्रेणौ							
२८	२४	२१	अपू०	३	२१								
२८	२४	२१	अनि०	११	२१	१३	१२	११	५	४	३	२	१
२८	२४	२१	सू०	४	१								
२८	२४	२१	उप०	३	१								

मिथ्यात्वसे लेकर उपशान्तमोह तकके गुणस्थानोंमें मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानोंकी संख्या इस प्रकार है—३, १, २, ५, ५, ५, ५, ३, १०, ४, ३। इनका विशेष विवरण ऊपर सं० टीकामें दी हुई संदृष्टिमें किया गया है।

अब भाष्यगाथाकार उक्त कथनका स्पष्टीकरण करते हैं—

[2]अट्ठ य सत्त य छक्क य वीसधिया होइ मिच्छदिट्ठिस्स।
अट्ठावीसा सासण अट्ठ चउव्वीसया मिस्से ॥३६४॥

[3]मिच्छे २८।२७।२६। सासणे २८। मिस्से २८।२४।

1. सं० पञ्चसं० ५, 'क्रमादेकादशगुरोषु' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २१४)। 2. ५, ४०६।
3. ५, 'मिथ्यादृष्टौ' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २१४)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ गुणस्थानेषु तानि कानि मोहसत्त्वस्थानानीति चेदाह—['अट्ठ य सत्त य छक्क य' इत्यादि ।] मिथ्यादृष्टेरष्टाविंशतिकं २८ सप्तविंशतिकं २७ षड्विंशतिकं २६ च त्रीणि भवन्तीति ३ । सम्यक्त्व-मिश्र-प्रकृत्युद्वेलनायाश्चतुर्गतिजीवानां तत्र करणात् । सासादनेऽष्टाविंशतिकम् २८ । मिश्रे द्वेऽष्टाविंशतिकं चतुर्विंशतिकं च २८।२४ । विसंयोजितानन्तानुबन्धिनोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वोदये तत्र गमनात् ॥३६४॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें मिथ्यादृष्टि जीवके अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीसप्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं । सासादनमें अट्ठाईसप्रकृतिक एक सत्त्वस्थान होता है । मिश्रमें अट्ठाईस और चौबीसप्रकृतिक दो सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६४॥

[1]असंजदमादिं किच्चा अप्पमत्तंत पंच ठाणाणि ।
अट्ठ य चदु तिय दुगेगाहियवीस मोहसंताणि ॥३६५॥

[2]अविरय-देसविरयप्पमत्तापमत्तेसु २८।२४।२३।२२।२१।

असंयतमादिं कृत्वाऽप्रमत्तान्तं असंयत-देशसंयत-प्रमत्ताप्रमत्तेषु प्रत्येकं मोहसत्त्वस्थानानि पञ्च—अष्टाविंशतिकं २८ चतुर्विंशतिकं २४ त्रयोविंशतिकं २३ द्वाविंशतिकं २२ एकविंशतिकं २१ चेति पञ्च मोहसत्त्वस्थानानि; विसंयोजितानन्तानुबन्धिनः क्षपितमिथ्यात्वादित्रयाणां च तेषु सम्भवात् ॥३६५॥

अविरतादिचतुर्षु २८।२४।२३।२२।२१ ।

मिथ्यात्वमें २८, २७, २६, सासादनमें २, मिश्रमें २८, २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होते हैं ।

असंयतको आदि करके अप्रमत्त-पर्यन्त चार गुणस्थानोंमें अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीसप्रकृतिक पाँच-पाँच सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६५॥

अविरतगुणस्थामें	२८, २४, २३, २२, २१ सत्त्वस्थान होते हैं ।
देशविरतगुणस्थानमें	२८, २४, २३, २२, २१ सत्त्वस्थान होते हैं ।
प्रमत्तविरतगुणस्थानमें	२८, २४, २३, २२, २१ सत्त्वस्थान होते हैं ।
अप्रमत्तविरतगुणस्थाममें	२८, १४, २३, २२, २१ सत्त्वस्थान होते हैं ।

[3]अपुव्वम्मि संतट्ठाणा अट्ठ चउरेय अहिय वीसाणि ।
अणियट्टिबादरस्स य दस चेव य होंति ठाणाणि ॥३६६॥

अपुव्वे २८।२४।२१।

[4]अट्ठचउरेयवीसं तिय दुय एगाधिय दस चेव ।
पण चउ तिग दो चेवाणियट्टिए होंति दस एदे ॥३६७॥

[5]अणियट्टिम्मि २८।२४।२१।१३।१२।११।५।४।३।२

अपूर्वकरणे अष्टाविंशतक-चतुर्विंशतिकैकविंशतिकानि त्रीणि मोहप्रकृतिसत्त्वस्थानानि २८।२४।२१ तथाहि—अपूर्वकरणस्योपशमश्रेण्यां एतानि त्रीणि स्थानानि २८।२४।२१ स्युः । विसंयोजितानन्तानुबन्धिनः क्षपितदर्शनमोहसप्तकस्य तत्सत्त्वस्य च तत्रारोहणात् । अपूर्वकरणस्य क्षपकश्रेण्यामेकविंशतिकम् २१ । अनिवृत्तिकरणस्य मोहप्रकृतिसत्त्वस्थानानि दश भवन्ति । तानि कानि ? अष्टाविंशतिकं २८ चतुर्विंशतिकं २४ एकविंशतिकं २१ त्रयोदशकं १३ द्वादशकं १२ एकादशकं ११ पञ्चकं ५ चतुष्कं ४ त्रिकं ३ द्विकं २ चेति मोहसत्त्वस्थानानि दशैतानि अनिवृत्तिकरणे भवन्ति । तथाहि—अनिवृत्तिकरणस्योपशम-

1. सं० पञ्चसं० ५, ४०७ । 2. ५, चतुर्थपञ्चम' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २१४) । 3. ५, ४०८ । 4. ५, ४०९ । 5. ५, 'अनिवृत्तेः शुभके' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २१५) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेण्यां २८।२४।२१। विसंयोजितानन्तानुबन्धिनः क्षपितदर्शनमोहसप्तकस्य तत्सत्त्वस्य च तत्रारोहणात् अनिवृत्तिकरणस्य क्षपकश्रेण्यां २१। मध्यमकषायाष्टके क्षपिते [त्रयोदशकम्] १३। पुनः षण्ढे वा स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादशकम् १२। पुनः स्त्रीवेदे वा षण्ढे वा क्षपिते एकादशकम् ११। पुनः षण्णोकषाये क्षपिते पञ्चकम् ५। पुनः पुंवेदे क्षपिते चतुष्कम् ४। पुनः संज्वलनक्रोधे क्षपिते त्रिकम् ३। पुनः संज्वलनमाने क्षपिते द्विकम् २। पुनः संज्वलनमायायां क्षपितायामेककम् १। पुनः बादरलोभे क्षपिते एककम् १ ॥३६६-३६७॥

अपूर्वकरण गुणस्थानमें अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीसप्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं। अनिवृत्तिबादरसंयतके दश सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६६॥

अपूर्वकरणमें २८, २४, २१ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं।

अनिवृत्तिबादरसंयतके अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाँच, चार, तीन और दो प्रकृतिक दश सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६७॥

अनिवृत्तिकरणमें २८, २४, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ प्रकृतिक दश सत्त्वस्थान होते हैं।

[1]सुहुमम्मि होंति ठाणे अट्ठ चदुरेय वीसमधियमेयं च।
उवसंतवीयराए अट्ठचदुरेयवीससंतट्ठाणाणि ॥३६८॥

[2]सुहुमे २८।२४।२१।१। उवसंते २८।२४।२१।

एवं मोहणीयस्स सत्तापरूवणा समत्ता।

सूक्ष्मसाम्पराये अष्टाविंशतिक-चतुर्विंशतिकैकविंशतिकैककानि मोहसत्त्वस्थानानि चत्वारि भवन्ति २८।२४।२१।१। तथाहि सूक्ष्मसाम्परायस्योपशमश्रेण्यां २८।२४।२१। विसंयोजितानन्तानुबन्धिनः २४। क्षपितदर्शनमोहसप्तकस्य २१। तत्सत्त्वस्य च तत्रारोहणात्। सूक्ष्मसाम्परायस्य क्षपकश्रेण्यां एकं सूक्ष्म-लोभरूपं सूक्ष्मकृष्टिरूपमनुदयगतमत्रोदये गतमिति ज्ञातव्यम्। उपशान्तवीतरागे उपशान्तकषाये अष्टा-विंशतिकचतुर्विंशतिकैकविंशतिकानि त्रीणि मोहसत्त्वस्थानानि २८।२४।२१। विसंयोजितानन्तानुबन्धिनः २४ क्षपितदर्शनमोहसप्तकस्य २१ तत्सत्त्वस्य तत्रारोहणात् ॥३६८॥

इति गुणस्थानेषु मोहसत्त्वस्थानप्ररूपणा समाप्ता।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस और एक प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं। उपशान्तकषायवीतराग छद्मस्थके अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं ॥३६८॥

सूक्ष्मसाम्परायमें २८, २४, २१, १ प्रकृतिक चार तथा उपशान्तमोहमें २८, २४, २१ प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं।

इस प्रकार मोहनीयकर्मके सत्त्वस्थानोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४१०। 2. 'सूक्ष्मस्य शमके' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २१५)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मूलसप्ततिकाकार मिथ्यात्वसे आदि लेकर सूक्ष्मसाम्पराय तकके गुणस्थानोंमें अनुक्रमसे नामकर्मसम्बन्धी बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका निर्देश करते हैं—

मिच्छादि-सुहमंतगुणठाणेसु अणुक्कमेण णामसंबंधिबंधादितयं वुच्चए—

[मूलगा०४४][1]छण्णव छत्तिय सत्तय एगदुयं तिय तियट्ठ चदुं।
दुअ दुअ चउ दुय पण चउ चदुरेग चदुपणगेग चदुं[1] ॥३९९॥

[मूलगा०४५][2]एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ छदुमत्थ-केवलिजिणाणं।
एग चदुरेग चदुरो दो चदु दो छक्कमुदयंसा ॥४००[2]॥

	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
बं	६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०	०
उ	९	७	३	८	२	५	१	१	१	१	१	१	२	२
स	६	१	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	४	६

अथ गुणस्थानेषु नामकर्मणो बन्धोदयसत्त्वस्थानानां त्रिसंयोगं गाथाविंशत्याऽऽह—['छण्णव छत्तिय' इत्यादि।] मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मसाम्परायान्तगुणस्थानेषु अनुक्रमेण नाम्नः सम्बन्धिबन्धादित्रयमुच्यते—तन्नाम्नः बन्धोदयसत्त्वस्थानानि गुणस्थानेषु क्रमेण मिथ्यादृष्टौ षट् नव षट् ६।९।६। सासादने त्रीणि सप्तैकम् ३।७।१। मिश्रे द्वे त्रीणि द्वे २।३।२। असंयते त्रीण्यष्टौ चत्वारि ३।८।४। देशसंयते द्वे द्वे चत्वारि २।२।४। प्रमत्ते द्वे पञ्च चत्वारि २।५।४। अप्रमत्ते चत्वार्येकं चत्वारि ४।१।४। अपूर्वकरणे पञ्चैकं चत्वारि ५।१।४। अनिवृत्तिकरणे एकमेकमष्टौ १।१।८। सूक्ष्मसाम्पराये एकमेकमष्टौ १।१।८। उपरतबन्धे शून्यं०। उदय-सत्त्वयोरेव उपशान्तकषाये एकं चत्वारि ०।१।४। क्षीणकषायेऽप्येकं चत्वारि ०।१।४। सयोगे द्वे चत्वारि ०।२।४। अयोगे द्वे षट् ०।२।६ भवन्ति। छद्मस्थानां केवलिनोश्च छद्मस्थानां मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मान्तेषु सयोगायोगकेवलिनोर्द्वयोश्चेति ॥३९९-४००॥

गुणस्थानेषु नाम्नः बन्धोदयसत्त्वस्थानानि—

गुण०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अ०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अयो०
बन्ध०	६	३	२	३	२	२	४	५	१	१	०	०	०	०
उद०	९	७	३	८	२	५	१	१	१	१	१	१	२	२
सत्त्व	६	१	२	४	४	४	४	४	८	८	४	४	४	६

मिथ्यात्वगुणस्थानमें नामकर्मके बन्धस्थान छह, उदयस्थान नौ, और सत्त्वस्थान छह होते हैं। सासादनमें बन्धस्थान तीन, उदयस्थान सात और सत्त्वस्थान एक होता है। मिश्रमें बन्धस्थान दो, उदयस्थान तीन और सत्त्वस्थान दो होते हैं। अविरतमें बन्धस्थान तीन, उदयस्थान आठ और सत्त्वस्थान चार होते हैं। देशविरतमें बन्धस्थान दो, उदयस्थान दो और सत्त्वस्थान चार होते हैं। प्रमत्तविरतमें बन्धस्थान दो, उदयस्थान पाँच और सत्त्वस्थान चार होते हैं। अप्रमत्तविरतमें बन्धस्थान चार, उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान चार होते हैं। अपूर्व-

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४११-४१३। 2. ५, ४१४-४१५।

१. सप्ततिका० ४९। परं तत्रेदृक् पाठः—
छण्णव छक्कं तिग सत्त दुगं दुग तिग दुगं तिगऽट्ठ चउ।
दुग छच्चउ दुग पण चउ चउ दुग चउ पणग एग चऊ॥

२. सप्ततिका० ५०।

करणमें बन्धस्थान पाँच, उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान चार होते हैं। अनिवृत्तिकरणमें बन्धस्थान एक, उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान आठ होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें बन्धस्थान एक, उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान आठ होते हैं। दोनों छद्मस्थ जिनोंके अर्थात् उपशान्तमोह और क्षीणमोह वीतराग संयतोंके एक एक उदयस्थान और चार चार सत्त्वस्थान होते हैं। केवली जिनोंके अर्थात् सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्रमशः दो दो उदयस्थान और चार तथा छह सत्त्वस्थान होते हैं ॥३९९-४००॥

इन तीनों स्थानोंकी अङ्कसंदृष्टि मूल और टीकामें दी है।

अब भाष्यगाथाकार उक्त त्रिसंयोगी स्थानोंका स्पष्टीकरण करते हैं—

णामस्स य बंधोदयसंताणि गुणं पडुच्च य विभज्ज।
तिगजोगेण य एत्थ दु भणियव्वं अत्थजुत्तीए ॥४०१॥

नाम्नो बन्धोदयसत्त्वस्थानानि गुणस्थानानि प्रतीत्याऽऽश्रित्य अत्र गुणस्थानेषु त्रिसंयोगेन बन्धोदयसत्त्वभेदेन विभज्य विभागं कृत्वाऽत्र तान्येव प्रत्येकतोऽर्थयुक्त्या सर्वाण्युच्यन्ते ॥४०१॥

नामकर्मके बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थान गुणस्थानोंकी अपेक्षा विभाग करके त्रिसंयोगी भंगरूपसे अर्थयुक्तिके द्वारा यहाँ पर कहे जाते हैं ॥४०१॥

[1]तेवीसमादि कादुं तीसंता होंति बंधमिच्छम्हि।
उवरिम दो वज्जित्ता उदया णव चेव होंति णायव्वा ॥४०२॥

[2]मिच्छे बंधा २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

मिथ्यादृष्टौ बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकमादिं कृत्वा त्रिंशत्कान्तानि २३।२५।२६।२८।२९।३० भवन्ति। उदयस्थानानि उपरिमद्वयं नवकाष्टकस्थानद्वयं वर्जयित्वा एकविंशतिकादीनि नव भवन्ति ज्ञातव्यानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१॥४०२॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें तेईस प्रकृतिको आदि करके तीस प्रकृतिक तकके छह बन्धस्थान होते हैं। तथा उपरिम दोको छोड़कर शेष नौ उदयस्थान होते हैं ॥४०२॥

मिथ्यात्वमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिक छह होते हैं। उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक नौ होते हैं।

[3]तस्स य संतट्ठाणा तेणउदिं वज्जिदूण छाउवरिं।
सासणसम्मे बंधा अट्ठावीसादि-तीसंता ॥४०३॥

९२।९१।९०।८८।८४।८२। सासणे बंधा २८।२९।३०।

तस्य मिथ्यादृष्टेः सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकं वर्जयित्वा उपरितनानि षट् ९२।९१।९०।८८।८४।८२। तथाहि—तैजसकार्मणागुरुलघुपघातनिर्माणवर्णचतुष्काणीति ध्रुवाः ९। स्वरयुग्मोनत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगादेययशस्कीर्तियुग्मानामेकैकेत्यपि नव ९। चतुर्गति-पञ्चजाति-त्रिदेह-षट्-संस्थान-चतुरानुपूर्व्याणामेकैकेऽपि पञ्च ५ मिलित्वा त्रयोविंशतिकं २३ बन्धस्थानं इत्यादिबन्धस्थानानि पूर्वं प्रतिपादितानि। तैजस-कार्मणद्वयं २ वर्णचतुष्कं ४ स्थिरास्थिरे २ शुभाशुभे २ अगुरुलघु १ निर्माणं १ चेति ध्रुवाः १२। गतिषु एका गतिः १ जातिषु एका जातिः १ त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभगादेययशोयुग्मानामेकतराणि १।१।१।१।

1. सं० पञ्चसं० ५, ४१६। 2. ५, 'बन्धे २३' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २१६)। 3. ५, ४१७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११ । चतुरानुपूर्व्येषु एकतरानुपूर्व्यं १ एवमेकविंशतिकं २१ चातुर्गतिकानां विग्रहगतौ इदं ज्ञेयम् । एवं पूर्वमेवोदय [स्थान] व्याख्यानं कृतम् । तैर्थं विना ९२ आहारकद्वयं विना ९१ तत्त्रितयं विना ९० । अत्र देवद्विकोद्वेल्लिते ८८ । अत्र नारकचतुष्के उद्वेल्लिते ८४ । अत्र मनुष्यद्विके उद्वेल्लिते ८२ । इत्येवं सत्त्वव्याख्या पूर्वमेव कृताऽस्ति, अतो ग्रन्थभूयस्त्वभयान्नात्रमाभिर्विस्तीर्यते । सासादने बन्धस्थानानि अष्टाविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि २८।२९।३० ॥४०३॥

मिथ्यात्वगुणस्थानमें तेरानवैको छोड़कर उपरिम छह सत्त्वस्थान होते हैं। सासादनमें बन्धस्थान अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक तीन होते हैं ॥४०३॥

मिथ्यात्वमें सत्त्वस्थान ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ प्रकृतिक छह होते हैं। सासादनमें बन्धस्थान २८, २९, ३० प्रकृतिक तीन होते हैं।

तस्स य उदयट्ठाणाणि होंति इगिवीसमादिएक्कतीसंता ।
वज्जिय अट्ठावीसं सत्तावीसं च संत णउदीयं ॥४०४॥

[1]आसादे उदया २१।२४।२५।२६।२९।३०।३१ । तित्थयराहारदुअसंतकम्मिओ सासणगुणं पडिवज्जइ, तेण संता ९० ।

तस्य सासादनस्य नामोदयस्थानानि अष्टाविंशतिकं सप्तविंशतिकं च परिवर्ज्य एकविंशतिकाद्येकत्रिंशत्कान्तानि २१ ।२४।२५।२६।२९।३०।३१ । सत्त्वस्थानमेकं नवतिकम् ९० । कुतः ? तीर्थकराऽऽहारकद्विकसत्त्वकर्मयुक्तो जीवः सासादनगुणस्थानं न प्रतिपद्यते, तेन सत्त्वस्थानं नवतिकम् ९० । सासादनतीर्थङ्कराऽऽहारकद्वयसत्कर्मा न भवतीत्यर्थः ॥४०४॥

सासादनमें उदयस्थान सत्ताईस और अट्ठाईसको छोड़कर इक्कीसको आदि लेकर इकतीस प्रकृतिक तकके सात होते हैं। सत्त्वस्थान नब्बै प्रकृतिक एक होता है ॥४०४॥

सासाननमें उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक सात हैं। तीर्थंकर प्रकृति और आहारकद्विककी सत्तावाला जीव सासादनगुणस्थानको प्राप्त नहीं होता है, इसलिए यहाँ पर सत्त्वस्थान ९० प्रकृतिक एक ही होता है।

[2]मिस्सम्मि ऊणतीसं अट्ठावीसा हवंति बंधाणि ।
इगितीसूणत्तीसं तीसं च य उदयठाणाणि ॥४०५॥

मिस्से बंधा २८।२९। उदया २९।३०।३१ ।

मिश्रे बन्धस्थानान्येकोनत्रिंशत्काष्टाविंशतिकद्वयं २८ । २९ भवति । नामोदयस्थानानि एकोनत्रिंशत्कत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि त्रीणि २९।३०।३१ ॥४०५॥

मिश्रगुणस्थानमें बन्धस्थान अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक दो होते हैं। तथा उदयस्थान उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक तीन होते हैं ॥४०५॥

मिश्रमें बन्धस्थान २८, २९ प्रकृतिक दो और उदयस्थान २९, ३०, ३१ प्रकृतिक तीन हैं।

[3]तस्सेव संतकम्मा बाणउदिं णउदिमेव जाणाहि ।
अविरयसम्मे बंधा अडवीसुगुतीस-तीसाणि ॥४०६॥

तित्थयरसंतकम्मिओ मिस्सगुणं ण पडिवज्जइ, तेण तस्स तेणउदि-इगिणउदीओ ण संभवंति सेसा ९२।९०। असंजए बंधा २८।२९।३० ।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, 'पाके २१' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २१६) । 2. ५, ४१८ । 3. ५, ४१९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्यैव मिश्रगुणस्थानस्य सत्त्वस्थानद्वयं द्वानवतिक-[नवतिक-]द्वयमिति जानीहि ९२।९०। तीर्थंकरसत्कर्मा जीवो मिश्रगुणस्थानं न प्रतिपद्यते, तेन तस्य मिश्रस्य त्रिनवतिकमेनवतिकं च न सम्भवति। असंयतसम्यग्दृष्टौ नामबन्धस्थानानि त्रीणि—अष्टाविंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि २८।२९।३० ॥४०६॥

उसी मिश्र गुणस्थानमें बानबै और नब्बै प्रकृतिक दो ही सत्त्वस्थान जानना चाहिए। अविरत सम्यक्त्वगुणस्थानमें बन्धस्थान अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक तीन होते हैं ॥४०६॥

तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला जीव मिश्रगुणस्थानको प्राप्त नहीं होता है। इसलिए उसके तेरानबै और इक्यानबै प्रकृतिक सत्त्वस्थान सम्भव नहीं है। शेष ९२ और ९० प्रकृतिक दो सत्त्वस्थान उसके होते हैं। असंयतसम्यग्दृष्टिके २८, २९, ३० प्रकृतिक तीन बन्धस्थान होते हैं।

तस्सेव होंति उदया उवरिम दो वज्जिदूण हेट्ठिल्ला।
चउवीसं वज्जित्ता हिट्ठिमचदुरेव संताणि ॥४०७॥

अविरए उदया २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता ९३।९२।९१।९०।

तस्यासंयतस्योदयस्थानानि उपरिमद्वयमष्टकनवकद्वन्द्वं अधःस्थचतुर्विंशतिकं च वर्जयित्वा तस्य चतुर्विंशतिकस्यैकेन्द्रियेष्वेवोदयात् एकविंशतिकादीन्यष्टौ २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। असंयते सत्त्वस्थानानि अधःस्थितानि चत्वारि, आद्यानि चत्वारि ९३।९२।९१।९० ॥४०७॥

उसी असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उदयस्थान उपरिम दो और अधस्तन चौबीसको छोड़कर शेष आठ होते हैं। तथा उसीके सत्त्वस्थान अधस्तन चार होते हैं ॥४०७॥

अविरतमें उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक आठ होते हैं। सत्त्वस्थान ९३, ९२, ९१, ९० प्रकृतिक चार होते हैं।

[1]विरदाविरदे जाणे ऊणत्तीसट्ठवीसबंधाणि।
तीसेक्कतीसमुदया हेट्ठिमचत्तारि संताणि ॥४०८॥

देसे बंधा २८।२९। उदया ३०।३१। संता ९३।९२।९१।९०।

देशसंयते बन्धस्थाने द्वे—अष्टाविंशतिकैकोनत्रिंशत्कद्वयं जानीहि २८।२९। उदयस्थाने द्वे—त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कद्वयम् ३०।३१। सत्त्वस्थानानि अधःस्थानि चत्वारि ९३।९२।९१।९० ॥४०८॥

विरताविरत गुणस्थानमें अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक दो बन्धस्थान जानना चाहिए। तीस और इकतीस प्रकृतिक दो उदयस्थान तथा अधस्तन चार सत्त्वस्थान होते हैं ॥४०८॥

देशविरतमें बन्धस्थान २८, २९, उदयस्थान ३०, ३१ और सत्त्वस्थान ९३, ९२, ९१, प्रकृतिक ९० होते हैं।

[2]उगुतीसट्ठावीसा पमत्तविरयस्स बंधठाणाणि।
पणुवीस सत्तवीसा अडवीसुगुतीस तीसुदया ॥४०९॥

पमत्ते बंधा २८।२९। उदया २५।२७।२८।२९।३०।

प्रमत्तविरतस्थमुनेः अष्टाविंशतिक-नवविंशतिकद्वयं बन्धस्थानम् २८।२९। उदयस्थानानि पञ्चविंशतिक-सप्तविंशतिकाष्टाविंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि पञ्च २५।२७।२८।२९।३० ॥४०९॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ४२०। 2. ५, ४२१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमत्तविरतके बन्धस्थान अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक दो तथा गुणस्थान पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस प्रकृतिक पाँच होते हैं ॥४०६॥

प्रमत्तसंयतके बन्धस्थान २८, २६ और उदयस्थान २५, २७, २८, २६, ३० प्रकृतिक होते हैं।

[1]तस्स य संतट्ठाणा हेट्ठा चउरेव णिद्दिट्ठा ।
इगिबंधं वज्जित्ता हेट्ठिमचउ अप्पमत्तस्स ॥४१०॥

पमत्ते संता ६३।६२।६१।६०। अपमत्ते बंधा २८।२६।३०।३१।

तस्य प्रमत्तस्याऽऽद्यचतुःसत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६० । अप्रमत्तस्य एकं बन्धस्थानं यशःकीर्त्तिकं १ वर्जयित्वा अधःस्थचतुर्बन्धस्थानानि २८।२६।३०।३१ ॥४१०॥

उसी प्रमत्तविरतके सत्त्वस्थान अधस्तन चारों ही कहे गये हैं। अप्रमत्तविरतके एकप्रकृतिक बन्धस्थानको छोड़कर अधस्तन चार बन्धस्थान होते हैं ॥४१०॥

प्रमत्तसंयतके सत्त्वस्थान ६३, ६२, ६१, ६० प्रकृतिक चार होते हैं। अप्रमत्तसंयतके २८, २६, ३०, ३१ प्रकृतिक चार बन्धस्थान होते हैं।

[2]तीसं चेव उदयं ति-दु-इगि-णउदी य णउदिसंताणि ।
जाणिज्ज अप्पमत्ते बंधोदयसंतकम्माणं ॥४११॥

अप्पमत्ते उदयं ३०। संता ६३।६२।६१।६०।

अप्रमत्ते त्रिंशत्कमुदयस्थानमेकमुदयति ३० । सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिक-द्विनवतिकैकनवतिक-नवतिकानि चत्वारि ६३।६२।६१।६० । अप्रमत्ते इत्येवं बन्धोदयसत्त्वकर्मणां स्थानानि जानीयात् ॥४११॥

उसी अप्रमत्तसंयतमें तीनप्रकृतिक एक उदयस्थान होता है, तथा तेरानबै, बानबै, इक्यानबै और नब्बैप्रकृतिक चार सत्त्वस्थान जानना चाहिए ॥४११॥

अप्रमत्तमें ३० प्रकृतिक एक उदयस्थान और ६३, ६२, ६१, ६० प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं।

उवरिमपंचट्ठाणे अपुव्वकरणस्स बंधंतो ।
उदयं तीसट्ठाणं हेट्ठिम चत्तारि संतठाणाणि ॥४१२॥

अपुव्वे बंधा २८।२६।३०।३१।१। उदयं ३०। संता ६३।६२।६१।६०।

अपूर्वकरणस्य उपरिमपञ्चस्थानानि—अष्टाविंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कैककानि २८।२६। ३०।३१।१ बन्धतः त्रिंशत्कमुदयं याति ३० । अधःस्थचत्वारि सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६० भवन्ति ॥४१२॥

उपरिम पाँच बन्धस्थानोंको बाँधनेवाले अपूर्वकरणसंयतके तीसप्रकृतिक एक उदयस्थान और अधस्तन चार सत्त्वस्थान होते हैं ॥४१२॥

अपूर्वकरणमें बन्धस्थान २८, २६, ३०, ३१, १ प्रकृतिक पाँच; उदयस्थान ३० प्रकृतिक १ और सत्त्वस्थान ६३, ६२, ६१, ६० प्रकृतिक चार होते हैं।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४२२ । 2. ५, ४२३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अणियट्टिस्स दुबंधं जसकित्ती उदय तीसगं चेव ।
ति-दु-इगि-णउदिं णउदिं णव अड सत्तऽधियसत्तरिमसीदिं ॥४१३॥
[2]एदाणि चेव सुहुमस्स होंति बंधोदयाणि संताणि ।
उवसंते तीसुदए हेट्ठिमचत्तारि संताणि ॥४१४॥

अणियट्टि-सुहुमाणं बंधो १ उदओ ३० । संता ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७। उवरद्बंधे उवसंते उदया ३० संता ९३।९२।९१।९०।

अनिवृत्तिकरणस्य एकं यशस्कीर्त्तिनाम बन्धतः त्रिंशत्कं ३० मुदयं याति । त्रिनवतिक ९३ द्विनवतिकं ९२ कनवतिक ९१ नवतिका ९० शीतिक ८० नवसप्ततिका ७९ ष्टसप्ततिक ७८ सप्तसप्ततिकानि ७७ सत्त्वस्थानान्यष्टौ भवन्ति । सूक्ष्मसाम्परायस्यैतानि बन्धोदयसत्त्वस्थानानि भवन्ति । अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराययोः बन्धस्थानमेकम् १ । उदये ३० । सत्त्वस्थानानि ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७ । उपशान्तकषाये बन्धरहिते उदये स्थानं त्रिंशत्कं ३० त्रिनवतिकादीनि चत्वारि सत्त्वस्थानानि ९३।९२।९१। ९० ॥४१३–४१४॥

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें एक यशःकीर्त्तिका बन्ध होता है। तीसप्रकृतिक एक उदय-स्थान है। तेरानबै, बानबै, इक्यानबै, नब्बै, अस्सी, उन्यासी, अठहत्तर और सतहत्तरप्रकृतिक आठ सत्त्वस्थान होते हैं। ये ही बन्ध, उदय और सत्त्वस्थान सूक्ष्मसाम्परायसंयतके भी होते हैं। उपरतबन्धवाले उपशान्तमोहमें तीसप्रकृतिक उदयस्थान और अधस्तन चार सत्त्वस्थान होते हैं ॥४१३–४१४॥

अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायके बन्धस्थान एकप्रकृतिक एक, उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक और सत्त्वस्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७ प्रकृतिक आठ हैं। मोहके बन्धसे रहित उपशान्तमोहमें उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक है और सत्त्वस्थान ९३, ९२, ९१, ९० प्रकृतिक चार होते हैं।

[3]तह खीणेसु वि उदयं उवरिमदुगमुज्झिऊण चउसंता ।
तीसेक्कतीसमुदयं होंति सजोगिम्मि णियमेण ॥४१५॥

खीणे उदओ ३० संता ८०।७९।७८।७७।

तथा क्षीणकषाये उदयस्थानं त्रिंशत्कं ३० । उपरितः दशक-नवकद्वयं वर्जयित्वा अशीतिकादीनि चत्वारि सत्त्वस्थानानि ८९।७९।७८।७७ । सयोगकेवलिनि त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कद्वयमुदयस्थानं ३०।३१ नियमेन भवन्ति ॥४१५॥

क्षीणकषाय-गुणस्थानमें उदयस्थान तीसप्रकृतिक एक ही है। तथा उपरिम दोको छोड़कर चार सत्त्वस्थान होते हैं। सयोगिकेवलीमें नियमसे तीस और एकतीसप्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं ॥४१५॥

क्षीणकषायमें उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक है और सत्त्वस्थान ८०, ७९, ७८, ७७ प्रकृतिक चार होते हैं।

[4]तस्स य संतट्ठाणा उवरिम दो वज्जिदूण चउ हेट्ठा ।
णव अट्ठेव य उदयाऽजोगिम्हि† हवंति णेयाणि ॥४१६॥

सजोगे उदया ३०।३१ । संता ८०।७९।७८।७७।

1. सं० पञ्चसं० ५, ४२४ । 2. ५, ४२५ । 3. ५, ४२६ । 4. ५, ४२७ ।
†ब 'जोगीहिं' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्य सयोगिकेवलिनः उपरिमसत्त्वस्थानद्वयं वर्जयित्वा अशीतिकादीनि चत्वारि सत्त्वस्थानानि ८०।७६।७८।७७ भवन्ति। अयोगिकेवलिनि नामप्रकृतिनवकमष्टकं चोदयस्थानद्वयं भवति ॥४१६॥

उन्हीं सयोगिकेवलीके उपरिम दो दो छोड़कर अधस्तन चार सत्त्वस्थान होते हैं। अयोगि-केवलीके नौ और आठप्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४१६॥

सयोगिकेवलीके ३०, ३१ प्रकृतिक दो उदयस्थान और ८०, ७६, ७८, ७७ प्रकृतिक चार सत्त्वस्थान होते हैं।

[1]णव दस सत्तत्तरियं अट्ठत्तरियं च ऊणसीदी य।
आसीदिं चाजोगे संतट्ठाणाणि जाणेज्जो ॥४१७॥

अजोगे उदया ९।८। संता ८०।७६।७८।७७।१०।९।

एवं णामपरूवणा गुणेसु समत्ता।

अयोगिकेवलिनि नवक ९ दशक १० सप्तसप्ततिका ७७ ष्टसप्ततिक ७८ नवसप्ततिका ७६ शीतिकानि ८० षट् सत्त्वस्थानानि अयोगिनो भवन्तीति जानीयात् ॥४१७॥

अयोगिकेवलिनि उदयस्थानद्वयं ९।८। सत्त्वस्थानषट्कम् ८०।७६।७८।७७।१०।९।

अथ मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु नामबन्धोदयसत्त्वस्थानसंख्या-तत्प्रकृतिस्थानसंख्या रचना रच्यते। तस्य यन्त्ररचना—

गुण०	बन्ध-सं०	बन्ध-प्र० स्था०	उदयसं०	उदय-प्र० स्था०	सत्त्व-सं०	सत्त्व-प्र० स्था०
मि०	६	२३,२५,२६,२८,२६,३०।	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२६,३०,३१।	६	९२,९१,९०,८८,८४,८२।
सा०	३	२८,२६,३०।	७	२१,२४,२५,२६,२६,३०,३१।	१	९०।
मि०	२	२८,२६।	३	२६,३०,३१।	२	९२,९०।
अवि०	३	२८,२६,३०।	८	२१,२५,२६,२७,२८,२६,३०,३१।	४	९३,९२,९१,९०।
देश०	२	२८,२६।	२	३०,३१।	४	९३,९२,९१,९०।
प्रम०	२	२८,२६।	५	२५,२७,२८,२६,३०।	४	९३,९२,९१,९०।
अप्र०	४	२८,२६,३०,३१	१	३०	४	९३,९२,९१,९०।
अपू०	५	२८,२६,३०,३१,१	१	३०	४	९३,९२,९१,९०।
अनि०	१	१	१	३०	८	९३,९२,९१,९०,उप० ८०,७६,७८,७७ क्षप०
सू०	१	१	१	३०	८	९३,९२,९१,९० उप० ८०,७६,७८,७७ क्षप०
उप०	०		१	३०	४	९३,९२,९१,९०।
क्षी०	०		२	३०	४	८०,७६,७८,७७।
सयो०	०		२	३०,३१।	४	८०,७६,७८,७७।
अयो०	०		२	९,८।	६	८०,७६,७८,७७,१०,९।

1. सं० पञ्चसं० ५, ४२८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयोगिकेवलीके अस्सी, उन्यासी अठहत्तर, सत्तहत्तर, दश और नौप्रकृतिक छह सत्त्वस्थान जानना चाहिए ॥४१७॥

अयोगिजिनके ९, ८ प्रकृतिक दो उदयस्थान और ८०, ७९, ७८, ७७ १० और ९ प्रकृतिक छह सत्त्वस्थान होते हैं। इन सब स्थानोंका स्पष्टीकरण टीकामें दी गई संदृष्टिमें किया गया है।

इस प्रकार गुणस्थानोंमें नामकर्मके त्रिसंयोगी प्ररूपणा की।

अब मूलसप्तिकार मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका विचार करते हुए सबसे पहले गतिमार्गणामें उनका निर्देश करते हैं—

[मूलगा०४९][1]दो छक्कट्ठ चउक्कं णिरयादिसु पयडिबंधठाणाणि।
पण णव दसयं पणयं ति-पंच-बारे चउक्कं च[1] ॥४१८॥

		नरक०	तिर्यंच०	मनुष्य०	देव०
	ब०	२	६	८	४
णिरयादिसु	उ०	५	९	१०	५
	स०	३	५	१२	४

अथ चतुर्दशमार्गणासु नामबन्धोदयसत्त्वस्थानानां त्रिसंयोगमाह—['दो छक्कट्ठ चउक्कं' इत्यादि।] नरकादिगतिषु नामप्रकृतिबन्धस्थानानि द्वे २ षट् ६ अष्टौ ८ चत्वारि ४। नामप्रकृत्युदयस्थानानि पञ्च ५ नव ९ दश १० पञ्च ५। नामप्रकृतिसत्त्वस्थानानि त्रीणि ३ पञ्च ५ द्वादश १२ चत्वारि ४ ॥४१८॥

	नरक०	ति०	म०	देव०
बं०	२	६	८	४
उ०	५	९	१०	५
स०	३	५	१२	४

नरक आदि गतियोंमें नामकर्मके प्रकृतिक बन्धस्थान क्रमशः दो, छह, आठ और चार होते हैं। उदयस्थान क्रमशः पाँच, नौ, दश और पाँच होते हैं। तथा सत्त्वस्थान क्रमशः तीन, पाँच, बारह और चार होते हैं ॥४१८॥

इस गाथाके द्वारा चारों गतियोंके नामकर्म-सम्बन्धी बन्ध, उदय और सत्तास्थान बतलाये गये हैं, जिनकी संदृष्टि मूल और टीकामें दी हुई है।

अब उक्त गाथा-सूत्र-द्वारा सूचित स्थानोंका भाष्यगाथाकार स्पष्टीकरण करते हुए पहले नरकगतिसम्बन्धी बन्धादि-स्थानोंका निरूपण करते हैं—

[2]णिरए तीसुगुतीसं बंधट्ठाणाणि होंति णायव्वा।
इगि-पण-सत्तट्ठऽधिया वीसा उगुतीसमेवुदया ॥४१९॥
[3]संतट्ठाणाणि पुणो होंति तिण्णेव णिरयवासम्मि।
वाणउदिमादियाणं णउदिट्ठाणंतियाणि सया ॥४२०॥

[4]णिरयगईए बंधो २९।३०। उदया २१।२५।२७।२८।२९। संता ९२।९१।९०।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४२९-४३० । 2. ५, ४३१ । 3. ५, ४३२ । 4. ५, 'श्वभ्रे बन्धे' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २१८) ।

१. सप्ततिका० ५१ । परं तत्र पाठोऽयम्—

दो छक्कट्ठ चउक्कं पण णव एक्कार छक्कगं उदया ।
नेरइआइसु संता ति पंच एक्कारस चउक्कं ॥

तानि कानीति चेदाह—['णिरए तीसुगुतीसं' इत्यादि ।] नरकगतौ एकान्नत्रिंशत्क-त्रिंशत्के द्वे बन्धस्थाने भवतः २९।३० । एक-पञ्च-सप्ताष्ट-नवाग्रविंशतिकानि पञ्च नाम्नः प्रकृत्युदयस्थानानि २१।२५। २८।२९ ज्ञातव्यानि । पुनः नरकावासे नरकगतौ नामसत्त्वस्थानानि त्रीणि-द्वानवतिकैकनवतिक-नवतिकानि नवत्यन्तिकानि सदा भवन्ति ९२।९१।९० ॥४१९–४२०॥

नरकगतिमें उनतीस और तीस प्रकृतिक दो बन्धस्थान जानना चाहिए। इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक पाँच उदयस्थान होते हैं। तथा नरकावासमें बानबैको आदि लेकर नब्बै तकके तीन सत्त्वस्थान सदा होते हैं ॥४१९–४२०॥

नरकगतिमें बन्धस्थान २९, ३० प्रकृतिक दो; उदयस्थान २१, २५, २७, २८, २९, प्रकृतिक पाँच और सत्त्वस्थान ९२, ९१, ९० प्रकृतिक तीन होते हैं।

अब तिर्यग्गति-सम्बन्धी बन्धादि-स्थानोंका निरूपण करते हैं—

[1]तिरियगई तेवीसं पणुवीसं छव्वीसमट्ठवीसा य ।
तीसूण तीस बंधा उवरिम दो वज्ज णव उदया ॥४२१॥
बाणउदि णउदिमडसीदिमेव संताणि चदु दु सीदी य ।
तिरिएसु जाण संता मणुएसुवि सव्वबंधा तो† ॥४२२॥

[2]तिरियगईए बंधा २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। तित्थयरसंतकम्मिओ तिरिएसु ण उप्पज्जइ त्ति तेण तेणउदिं एकाणउदिं विणा संता ९२।९०।८८।८४।८२

तिर्यग्गत्यां त्रयोविंशतिक-पञ्चविंशतिक-षड्विंशतिकाष्टाविंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि नाम्नो बन्धस्थानानि षट् २३।२५।२६।२८।२९।३० भवन्ति । तिर्यग्गतौ उपरिमनवकाष्टकद्वयं वर्जयित्वा एकविंशतिकादीनि नव नाम्न उदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ भवन्ति । तिर्यग्गतौ द्वानवतिक-नवतिकाष्टाशीतिक-चतुरशीतिक-द्व्यशीतिकानि सत्त्वस्थानानि पञ्च ९२।९०।८८।८४।८२ । तीर्थंकरत्वसत्कर्मा तिर्यक्षु नोत्पद्यते इति । तेन त्रिनवतिकमेकनवतिकं च तिर्यग्गतौ न भवतीति सत्वं जानीहि । मनुष्यगतौ तानि सर्वाण्यष्टौ बन्धस्थानानि ॥४२१–४२२॥

तिर्यग्गतिमें तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस उनतीस और तीस प्रकृतिक छह बन्धस्थान होते हैं। उदयस्थान उपरिम दोको छोड़कर शेष नौ होते हैं। तथा सत्त्वस्थान बानबै, नब्बै अठासी और बियासी प्रकृतिक पाँच होते हैं। ऐसा जानना चाहिए। मनुष्यगतिमें पूर्वमें बतलाये हुए सब बन्धस्थान होते हैं ॥४२१–४२२॥

तिर्यग्गतिमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० प्रकृतिक छह होते हैं। उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ प्रकृतिक नौ होते हैं। तीर्थङ्करप्रकृतिकी सत्तावाला जीव तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए तेरानबै और इक्यानबैके विना सत्त्वस्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ प्रकृतिक पाँच होते हैं।

अब मनुष्यगति-सम्बन्धी बन्धादि-स्थानोंका निरूपण करते हैं—

[3]चउवीसं वज्जुदया सव्वाइं हवंति संतठाणाणि ।
बासीदं वज्जित्ता एत्तो देवेसु वोच्छामि ॥४२३॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ४३३ । 2. ५, 'तिर्यक्षु बन्धे' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २१८) । 3. ५, ४३४ ।
† ब ते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यगतौ चतुर्विंशतिकमुदयस्थानं वर्जयित्वा सर्वाणि नामोदयस्थानानि, द्व्यशीतिकं वर्जयित्वा सर्वाणि नामसत्त्वस्थानानि भवन्ति । अतः परं देवगत्यां नामस्थानानि वक्ष्यामि ॥४२३॥

मनुष्यगतिमें चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान को छोड़कर शेष सर्वउदयस्थान होते हैं । तथा बियासीको छोड़कर शेष सर्वसत्त्वस्थान होते हैं । अब इससे आगे देवोंमें बन्धादिस्थानोंको कहेंगे ॥४२३॥

[1]मणुयगईए बंधा २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदया २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। ९।८। संता ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८०।७९।७८।७७।१०।९।

मनुष्यगतौ बन्धस्थानानि २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदयस्थानानि केवलिसमुद्घातापेक्षया २०।२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८ । सत्त्वस्थानानि ९३ । ९२।९१।९०।८८।८४।८०।७९। ७८।७७।१०।९ ।

मनुष्यगतिमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक आठ होते होते हैं । उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९ और ८ प्रकृतिक दश होते हैं । सत्त्वस्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ प्रकृतिक बारह होते हैं । अब देवगति-सम्बन्धी बन्धादि-स्थानोंका निरूपण करते हैं—

> [2]पणुवीसं छव्वीसं ऊणत्तीसं च तीसबंधाणि ।
> इगिवीसं पणुवीसं अडसत्तावीसभुगुतीसं ॥४२४॥
> एए उदयट्ठाणा संतट्ठाणाणि आदिचत्तारि ।
> देवगईए जाणे एत्तो पुण इंदिएसु वोच्छामि ॥४२५॥

[3]देवगईए बंधा २५।२६।२९।३०। उदया २१।२५।२७।२८।२९ । संता ९३।९२।९१।९० ।

देवगतौ पञ्चविंशतिक-षड्विंशतिकैकोनत्रिंशत्कत्रिंशत्कानि चतुर्नामबन्धस्थानानि २५।२६।२९।३० । एकविंशतिक-पञ्चविंशतिक-सप्तविंशतिकाष्टाविंशतिकानि नामोदयस्थानकपञ्चकं २१।२५।२७।२८।२९ । देवगतौ आद्यानि चत्वारि सत्त्वस्थानानि ९३।९२।९१।९० । देवगत्यामिति जानीहि ।

इति गतिमार्गणा समाप्ता ।

अतः परं इन्द्रियमार्गणायां नामबन्धोदयसत्त्वस्थानानां त्रिसंयोगं वक्ष्यामि ॥४२४–४२५॥

गति०	बं०	बं० स्था०	उद०	उद० स्था०	स०	सत्त्वस्था०
नरक०	२	२९,३० ।	५	२१,२५,२७,२८,२९ ।	३	९२,९१,९० ।
तिर्य०	६	२३,२५,२६,२७,२९, ३० ।	९	२१,२४,२५,२६,२७ २८,२९,३०,३१ ।	५	९२,९०,८८,८४,८२ ।
मनु०	८	२३,२५,२६,२८,२९, २९,३०,३१,१ ।	११	२०,२१,२५,२६,२७, २८,२९,३०,३१,९,८ ।	१२	९३,९२,९१,९०,८८, ८४,८०,७९,७८,७७, १०,९ ।
देव०	४	२५,२६,२८,२९,३० ।	५	२१,२५,२७,२८,२९ ।	४	९३,९२,९१,९० ।

देवगतिमें बन्धस्थान पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक चार होते हैं । उदयस्थान इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक पाँच होते हैं । तथा सत्त्वस्थान

---

1. सं० पञ्चसं० ५, 'नृत्वे बन्धाः' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २१८) । 2. ५, ४३५–४३६ ।
3. ५, 'स्वर्गे बन्धे' इत्यादिगद्यभागः । (पृ० २१९) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिके चार जानना चाहिए। अब इससे आगे इन्द्रियमार्गणामें बन्धादिस्थानोंका निरूपण करेंगे ॥४२४-४२५॥

देवगतिमें बन्धस्थान २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक चार होते हैं। उदयस्थान २१, २५, २७, २८, और २९ प्रकृतिक पाँच होते हैं। तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१ और ९० प्रकृतिक चार होते हैं।

अब मूल सप्ततिकाकार इन्द्रियमार्गणाकी अपेक्षा नामकर्मके बन्धादि स्थानोंका निर्देश करते हैं—

[मूलगा०४७][1]इगि-वियलिंदिय-सयले पण पंचय अट्ठ बंधठाणाणि।
पण छक्क दस य उदए पण पण तेरे दु संतम्मि[1] ॥४२६॥

	ए०	वि०	स०
बं०	५	५	८
एइंदिय-वियलिंदिय-पंचिंदिएसु बंधाइ—उ०	५	६	१०
स०	५	५	१३

एकेन्द्रिये विकलत्रये च पञ्चेन्द्रिये च क्रमेण नामबन्धस्थानानि पञ्च ५ पञ्च ५ अष्टौ ८। नामोदयस्थानानि पञ्च ५ षट् ६ दश १०। नामसत्त्वस्थानानि पञ्च ५ पञ्च ५ त्रयोदश १३ ॥४२६॥

	एके०	विक०	सक०
बन्ध०	५	५	८
उद०	५	६	१०
सत्त्व०	५	५	१३

एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीवोंके क्रमशः पाँच, पाँच और आठ बन्धस्थान; पाँच, छह और दश उदयस्थान; तथा पाँच, पाँच और तेरह सत्त्वस्थान होते हैं ॥४२६॥

भावार्थ—एकेन्द्रिय, जीवोंके ५ बन्धस्थान, ५ उदयस्थान और ५ ही सत्त्वस्थान होते हैं। विकलेन्द्रिय जीवोंके ५ बन्धस्थान, ६ उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान होते हैं। सकलेन्द्रिय जीवोंके ८ बन्धस्थान, १० उदयस्थान और १३ सत्त्वस्थान होते हैं। इनकी संदृष्टि मूल और टीकामें दी हुई है।

अब भाष्यगाथाकार मूलगाथासूत्रसे सूचित अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए पहले एकेन्द्रिय जीवोंके बन्धादिस्थानोंका निर्देश करते हैं—

[2]तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं ऊणतीस तीसं च।
बंधा हवंति एदे उदया आदी य पंचेव ॥४२७॥
तेसिं संतवियप्पा वाणउदी णउदिमेव जाणाहि।
अड-चदु-वासीदी वि य एत्तो वियलिंदिए वोच्छं ॥४२८॥

[a]एइंदिएसु बंधा २३।२५।२६।२९।३०। उदया २१।२४।२५।२६।२७। संता ९२।९०।८८।८४।८२।

1. सं० पञ्चसं० ५, ४३७। 2. ५, ४३८। 3. ५, 'बन्धे २३' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २१६)।

१. सप्ततिका० ५२। परं तत्रोत्तरार्धे पाठभेदोऽयम्—
'पण छक्केक्कारुदया पण पण बारस य संताणि।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तानि कानीति चेदाह—['तेवीसं पणवीसं' इत्यादि ।] एकेन्द्रियाणां नामबन्धस्थानानि त्रयोविंशतिक-पञ्चविंशतिक-षड्विंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि पञ्च २३।२५।२६।२९।३० भवन्ति । एकेन्द्रियाणामुदयस्थानानि आद्यानि पञ्च २१।२४।२५।२६।२७ । तेषामेकेन्द्रियाणां सत्त्वविकल्पस्थानानि द्वानवतिक-नवतिकाष्टाशीतिक-चतुरशीतिक-द्व्यशीतिकानि पञ्च ९२।९०।८८।८४।८२ भवन्तीति जानीहि । अतः परं विकलत्रये बन्धादिस्थानानि वक्ष्येऽहम् ॥४२७–४२८॥

एकेन्द्रिय जीवोंके तेईस; पच्चीस, छव्वीस, उनतीस और तीस प्रकृतिक पाँच बन्धस्थान होते हैं। इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छव्वीस और २७ प्रकृतिक आदिके पाँच उदयस्थान होते हैं। तथा उनके बानबै, नब्बै, अठासी, चौरासी और बियासी प्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान जानना चाहिए। अब इससे आगे विकलेन्द्रियोंके बन्धादिस्थानोंको कहेंगे ॥४२७–४२८॥

एकेन्द्रियके बन्धस्थान २३, २५, २६, २९, ३०; उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७; तथा सत्त्वस्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं।

अब विकलेन्द्रिय जीवोंके बन्धादिस्थान कहते हैं—

[1]वियलिंदिएसु तीसु वि बंधा एइंदियाण सरिसा ते।
संता तहेव उदया तीसिगितीसूण तीसाणि ॥४२९॥
इगि छव्वीसं च तहा अट्ठावीसाणि होंति वियलेसु।
[2]पंचिंदिएसु बंधा सव्वे वि हवंति बोहव्वा ॥४३०॥

वियलिंदिएसु बंधा २३।२५।२६।२९।३०। उदया २१।२६।२८।२९।३०।३१ संता ९२।९०।८८।८४।८२।

त्रिष्वपि द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियेषु विकलत्रये एकेन्द्रियोक्तबन्ध-सत्त्वस्थानानि भवन्ति। उदयस्थानानि त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कैकोनत्रिंशत्कैविंशतिकषड्विंशतिकाष्टाविंशतिकानि षड् भवन्ति। विकलत्रये बन्धाः २३।२५।२६।२९।३०। उदयाः २१।२६।२८।२९।३०।३१। सत्त्वानि ९२।९०।८८।८४।८२। पञ्चेन्द्रियेषु सर्वाण्यष्टौ बन्धस्थानानि २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ भवन्ति बोधव्यानि ॥४२९–४३०॥

तीनों ही विकलेन्द्रियोंमें एकेन्द्रियोंके समान वे ही पाँच बन्धस्थान होते हैं। तथा सत्त्वस्थान भी एकेन्द्रियोंके समान वे ही पाँच होते हैं। उदयस्थान इकीस, छव्वीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक छह होते हैं। पंचेन्द्रियोंमें सभी बन्धस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४२९–४३०॥

विकलेन्द्रियोंमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २९, ३०; उदयस्थान २१, २६, २८, २९, ३०, ३१; और सत्त्वस्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ होते हैं।

चउवीसं वज्जुदया सव्वे संता हवंति णायव्वा।
कायादिमग्गणासु य णेया बंधुदयसंताणि ॥४३१॥

पंचिंदिएसु बंधा २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदया २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८। संता ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९।

पञ्चेन्द्रियेषु चतुर्विंशतिकं विना सर्वाण्युदयस्थानानि दश २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८। सर्वाणि त्रयोदश सत्त्वस्थानानि भवन्ति ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९।

इतीन्द्रियमार्गणा समाप्ता।

कायादिमार्गणासु नामबन्धोदयसत्त्वस्थानानि ज्ञातव्यानि ॥४३१॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ४३९। 2. ५, ४४०–४४१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचेन्द्रिय जीवोंमें चौबीसको छोड़ कर शेष सर्व उदयस्थान तथा सर्व ही सत्त्वस्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। इसी प्रकार काय आदि मार्गणाओंमें भी बन्ध, उदय और सत्त्वस्थान लगा लेना चाहिए ॥४३१॥

पंचेन्द्रियोंमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १; उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८; तथा सत्त्वस्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ होते हैं।

यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि मूलसप्ततिकाकारने नामकर्मके बन्धादिस्थानोंका निर्देश केवल गति और इन्द्रियमार्गणामें ही किया है, शेष मार्गणाओंमें नहीं। अतएव भाष्यगाथाकारने इस गाथाके उत्तरार्ध-द्वारा उन्हें जाननेका यहाँ निर्देश किया है।

अब भाष्यगाथाकार उक्त निर्देशके अनुसार शेष मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्धादि स्थानोंका निरूपण करते हैं—

पंचसु थावरकाए बंधा पढमिल्लया हवे पंच।
अट्ठावीसं वज्जिय उदया आदिल्लया पंच ॥४३२॥

थावराणं बंधा ५–, २३।२५।२६।२९।३०। उदया ५–, २१।२४।२५।२६।२७।

पञ्चसु पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायिकेषु प्रथमाः पञ्च बन्धाः—त्रयोविंशतिकादीनि पञ्च बन्धस्थानानि भवन्तीत्यर्थः २३।२५।२६।२९।३०। अष्टाविंशतिकवर्जितानि उदयस्थानान्याद्यानि पञ्च २१।२४।२५।२६।२७। न तेजोद्विके सप्तविंशतिकं, तस्यैकेन्द्रियपर्याप्तयुतातपोद्योतान्यतरयुतत्वात्तत्रानुदयात् ॥४३२॥

कायमार्गणाकी अपेक्षा पाँचों ही स्थावरकायिकोंमें प्रारम्भके पाँच बन्धस्थान होते हैं। तथा अट्ठाईसको छोड़कर आदिके पाँच उदयस्थान होते हैं ॥४३२॥

स्थावरकायिकोंके २३, २५, २६, २९, ३० ये पाँच बन्धस्थान, तथा २१, २४, २५, २६, और २७ ये पाँच उदयस्थान होते हैं।

बाणउदि णउदिसंता अड चदु दुरधियमसीदि वियले ते।
बंधा संता उदया अड णव छिगिवीस तीस इगितीसा ॥४३३॥

संता ५—९२।९०।८८।८४।८२। वियले बंधा ५—२३।२५।२६।२९।३०। उदया ६–२१।२६।२८।२९।३०।३१। संता ५–९२।९०।८८।८४।८२।

पञ्चस्थावरकायिकेषु सत्त्वस्थानपञ्चकम्—द्वानवतिक ९२ नवतिक ९० अष्टाशीतिक ८८ चतुरशीतिक ८४ द्व्यशीतिकानि पञ्च। विकलत्रय-त्रसजीवेषु तानि पूर्वं विकलत्रयोक्तानि बन्ध-सत्त्वस्थानानि। उदयस्थानानि अष्ट-नव-षडेकाधिकविंशतिकानि त्रिंशत्कैकत्रिंशत्के च विकलत्रयत्रसजीवेषु बन्धस्थानानि पञ्च २३।२५।२६।२९।३०। उदयस्थानषट्कं २१।२६।२८।२९।३०।३१। सत्त्वस्थानपञ्चकम्—९२।९०।८८।८४।८२ ॥४३३॥

पाँचों स्थावरकायिकोंमें बानबे, नब्बै, अट्ठासी, चौरासी और बियासीप्रकृतिक पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। विकलेन्द्रिय त्रसकायिकोंमें वे ही अर्थात् स्थावरकायिकोंवाले बन्धस्थान और सत्त्वस्थान होते हैं। किन्तु उदयस्थान इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक छह होते हैं ॥४३३॥

स्थावरोंके सत्त्वस्थान ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ ये पाँच होते हैं। विकलत्रयोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २९, ३०, ३१ ये छह; तथा सत्तास्थान ९२, ९०, ८८, ८४ और ८२ ये पाँच होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउवीसं वज्जुदया बंधा संता तसेसु सव्वे वि ।
मण-वचि-चउरे बंधा सव्वे उणतीस आई य ति-उदया ॥४३४॥

पंचिंदियबंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदया १०—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३० ३१।९।८। संता १३—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९। मण-वचियोगबंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदया ३–२९।३०।३१ ।

पञ्चेन्द्रियत्रसेषु चतुर्विंशतिकवर्जितोदयस्थानानि सर्वाणि । बन्धस्थानानि सत्त्वस्थानानि च सर्वाणि भवन्ति । पञ्चेन्द्रियत्रसजीवेषु नामबन्धस्थानाष्टकम्—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदयस्थानदशकम्—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८ । सत्त्वस्थानत्रयोदशकम्—९३।९२।९१।९०।८८।८४। ८४ । ८२।८०।७९।७८।७७।१०।९ ।

इति कायमार्गणा समाप्ता ।

अथ योगमार्गणायां मनोवचनचतुष्के मनोयोगचतुष्के वचनयोगचतुष्के च प्रत्येकं सर्वाण्यष्टौ बन्धस्थानानि २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदयस्थानानि एकोनत्रिंशत्कादीनि त्रीणि एकोनत्रिंशत्क-त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि २९।३०।३१ ॥४३४॥

सकलेन्द्रिय त्रसकायिकोंमें चौबीसप्रकृतिक स्थानको छोड़कर शेष सर्व बन्धस्थान और उदयस्थान; तथा सर्व ही सत्तास्थान होते हैं। योगमार्गणाकी अपेक्षा मनोयोगियों और वचनयोगियोंके बन्धस्थान तो सर्व ही होते हैं; किन्तु उदयस्थान उनतीसको आदि लेकर तीन ही होते हैं ॥४३४॥

पंचेन्द्रियोंमें बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १, ये आठ होते हैं। उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९ और ८; ये दश होते हैं। सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ ये तेरह होते हैं। मनोयोगियों और वचनयोगियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ ये आठ; तथा उदयस्थान २९, ३०, ३१ ये तीन होते हैं।

बासीदिं दो उवरिं वज्जित्ता संतठाणाणि ।
बंधा सव्वोराले उदया पणुवीस आइ सत्तेव ॥४३५॥

संता १०—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८०।७९।७८।७७। उराले बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९। ३०।३१।१। उदया ७—२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

मनोवचनाष्टके प्रत्येकं द्व्यशीतिक-दशक-नवक-स्थानत्रयं वर्जयित्वा सर्वाणि । सत्त्वस्थानदशकम्—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८०।७९।७८।७७ । औदारिककाययोगे सर्वाण्यष्टौ बन्धस्थानानि २३।२५।२६। २८।२९।३०।३१।१ । उदयस्थानानि पञ्चविंशतिकादीनि सप्तैव २५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ ॥४३५॥

मनोयोगियों और वचनयोगियोंके सत्तास्थान बियासी और दो उपरिमस्थानोंको छोड़कर शेष दश होते हैं। औदारिककाययोगियोंके बन्धस्थान सर्व होते हैं। किन्तु उदयस्थान पच्चीसको आदि लेकर सात ही होते हैं ॥४३५॥

मन और वचनयोगियोंके सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये दश होते हैं। औदारिककाययोगियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ ये आठों ही होते हैं। उदयस्थान २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ ये सात होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो उवरिं वज्जित्ता संता सव्वेवि मिस्सम्मि ।
तेवीसं तीसंता बंधा उदया छव्वीस चउवीसा ॥४३६॥

संता ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। मिस्से बंधा ६—२३।२५।२६। २८।२९।३०। उदया २—२४।२६ संता ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।

उपरिमस्थानद्वयं दशकं नवकं च वर्जयित्वा औदारिककाययोगे सत्त्वस्थानानि सर्वाण्येकादश ९३।९२। ९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। औदारिकमिश्रकाययोगेऽपि शब्दात् औदारिकोक्तस्थानान्येकादश। त्रयोविंशतिकादि-त्रिंशत्कान्तानि बन्धस्थानानि षट् उदयस्थाने द्वे चतुर्विंशतिके औदारिकमिश्रकाययोगे बन्धस्थानानि षट् २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयस्थानद्विकं २४।२६। सत्त्वस्थानैकादशकम्—९३,९२,९१, ९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७ ॥४३६॥

औदारिककाययोगियोंके उपरिम दो स्थानोंको छोड़कर शेष सर्व सत्तास्थान होते हैं। औदारिकमिश्रकाययोगियोंके तेईससे लेकर तीस तकके बन्धस्थान; तथा छब्बीस और सत्ताईस ये दो उदयस्थान होते हैं। इनके सत्तास्थान औदारिककाययोगियोंके समान जानना चाहिए ॥४३६॥

औदारिककाययोगियोंके सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये ग्यारह होते हैं। औदारिकमिश्रकाययोगियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९ और ३० ये छह; उदयस्थान २४ और २६ ये दो; तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये ग्यारह होते हैं।

पणुवीसाई पंच य बंधा वेउव्विए भणिया ।
संता पढमा चउरो उदया सत्तट्ठवीस उणतीसा ॥४३७॥

वेउव्विए बंधा ५—२५।२६।२८।२९।३०। उदया ३—२७।२८।२९। संता ४—९३।९२।९१।९०।

वैक्रियिककाययोगे बन्धस्थानानि पञ्चविंशतिकादीनि त्रिंशत्कान्तानि पञ्च—२५।२६।२८।२९।३०। सत्त्वस्थानान्याद्यानि चत्वारि। उदयस्थानत्रिकम्—सप्तविंशतिकाष्टाविंशतिकनवविंशतिकानि त्रीणि ॥४३७॥

वैक्रियिककाययोगे बन्धाः २५।२६।२८।२९।३०। उदयाः २७।२८।२९। सत्त्वचतुष्कम् ९३।९२। ९१।९०।

वैक्रियिककाययोगियोंके पच्चीसको आदि लेकर पाँच बन्धस्थान; सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस ये तीन उदयस्थान; तथा आदिके चार सत्तास्थान कहे गये हैं ॥४३७॥

वैक्रियिककाययोगियोंके बन्धस्थान २५, २६, २८, २९, ३० ये पाँच; उदयस्थान २७, २८, २९ ये तीन; तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१ और ९० ये चार होते हैं।

तीसुगुतीसा बंधा तम्मिस्से पंचवीसमेवुदयं ।
संता पढमा चउरो बंधाहारेऽट्ठवीस उणतीसा ॥४३८॥

मिस्से बंधा—२—२९।३०। उदयो १—२५। संता ४—९३।९२।९१।९०। आहारे बंधा २— २८।२९।

वैक्रियिकमिश्रे त्रिंशत्क-नवविंशतिके द्वे बन्धस्थाने २९।३०। **गोम्मट्टसारे** तु पञ्चविंशतिकं षड्विंशतिकं च २५।२६। पञ्चविंशतिकमेवोदयस्थानमेकम्। सत्त्वस्थानान्याद्यानि चत्वारि ९३।९२।९१।९०। आहारककाययोगे अष्टाविंशतिकैकोनत्रिंशत्कं द्वे बन्धस्थाने २८।२९ ॥४३८॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें तीस और उनतीस ये दो बन्धस्थान, पच्चीसप्रकृतिक एक उदयस्थान; तथा प्रारम्भके चार सत्तास्थान होते हैं। आहारककाययोगियोंके अट्ठाईस और उनतीस ये दो बन्धस्थान होते हैं ॥४३८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके बन्धस्थान २९ और ३० ये दो, उदयस्थान २५ प्रकृतिक; एक; तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९० ये चार होते हैं। आहारककाययोगियके बन्धस्थान २८ और २९ ये दो होते हैं।

संतादिल्ला चउरो उदया सत्तट्ठवीस उणतीसा।
तम्मिस्से ते बंधा उदयं पणुवीस संत पढम चदुं ॥४३९॥

उदया ३—२७।२८।२९। संता ४—९३।९२।९१।९०। मिस्से ते बंधा २—२८।२९। उदयो १—२५। संता ४—९३।९२।९१।९०।

आहारके सत्त्वस्थानान्याद्यानि चत्वारि ९३।९२।९१।९०। उदयस्थानानि सप्तविंशतिकाष्टाविंशतिक-नवविंशतिकानि त्रीणि २७।२८।२९। तन्मिश्रे आहारकमिश्रे ते द्वे आहारकोक्ते अष्टाविंशतिकैकोनत्रिंशत्के बन्धस्थाने द्वे २८।२९। उदयस्थानमेकं पञ्चविंशतिकम् २५। सत्त्वस्थानप्रथमचतुष्कम् ९३।९२।९१।९०। **गोम्मट्टसारे** आहारके तन्मिश्रे च त्रि-द्विनवतिकद्वयम् ॥९३।९२ ॥४३९॥

आहारककाययोगियोंके उदयस्थान सत्ताईस और अट्ठाईस ये दो तथा सत्तास्थान आदिके चार होते हैं। आहारकमिश्रकाययोगियोंमें बन्धस्थान अट्ठाईस और उनतीस ये दो; उदयस्थान पच्चीस प्रकृतिक एक और सत्तास्थान प्रारम्भके चार होते हैं ॥४३९॥

आहारककाययोगियोंमें उदयस्थान २७, २८ ये दो; तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९० ये चार होते हैं। आहारकमिश्रकाययोगियोंमें बन्धस्थान २८, २९ ये दो; उदयस्थान २५ प्रकृतिक एक; तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९० ये चार होते हैं।

कम्मइए तीसंता बंधा इगिवीसमेव उदयं तु।
दो उवरिं वज्जित्ता संता हिट्ठिल्लया सव्वे ॥४४०॥

कम्मइए बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयो १—२१। संता ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।

कार्मणकाययोगे बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादि-त्रिंशत्कान्तानि षट् २३।२५।२६।२८।३०। उदय-स्थानमेकविंशतिकमेकम् २१। केवलिसमुद्घातापेक्षया विंशतिकञ्च। दशक-नवकस्थानद्वयं वर्जयित्वा अधः-स्थितानि सत्त्वस्थानानि सर्वाण्येकादश ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७ ॥४४०॥

इतियोगमार्गणा समाप्ता।

कार्मणकाययोगियोंमें आदिसे लेकर तीस तकके बन्धस्थान; इक्कीस प्रकृतिक एक उदय-स्थान और अन्तिम दोको छोड़कर नीचेके सर्व सत्तास्थान होते हैं ॥४४०॥

कार्मणकाययोगियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह; उदयस्थान २१ प्रकृतिक एक; तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये ग्यारह होते हैं।

ते चिय संता वेदे बंधा सव्वे हवंति उदया य।
इगिवीस पंचवीसाई इगितीसंतिया णेया ॥४४१॥

वेदे बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदया ८—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।

वेदमार्गणायां त्रिषु वेदेषु तान्येव कार्मणोक्तान्येकादश सत्त्वस्थानानि। बन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ। उदयस्थानान्यष्टौ एकविंशतिक-पञ्चविंशतिकादीन्येकत्रिंशत्कान्तानि चाष्टौ ज्ञेयानि ॥४४१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिषु वेदेषु प्रत्येकं बन्धाष्टकम् २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदयस्थानाष्टकम् २१।२५।२६।२८।२९।३०।३१। सत्त्वस्थानैकादशकम् ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। अत्र स्त्री-पुंवेदयोर्न चतुर्विंशतिकं स्थानम्, तस्यैकेन्द्रियेष्वेवोदयात्। स्त्री-षण्ढयोर्नाशीतिकाष्टसप्ततिके, तीर्थसत्त्वस्य पुंवेदोदयेनैव क्षपकश्रेण्याऽऽरोहणात्।

इति वेदमार्गणा समाप्ता।

वेदमार्गणाकी अपेक्षा तीनों वेदोंवालोंके सत्तास्थान तो कार्मणकाययोगियोंके समान वे ही ग्यारह; और बन्धस्थान सर्व ही होते हैं। उदयस्थान इक्कीस और पच्चीसको आदि लेकर इकतीस तकके जानना चाहिए ॥४४१॥

तीनों वेदियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ये आठ; उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये आठ तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये ग्यारह होते हैं।

कोहाइचउसु बंधा सव्वे संता हवंति ते चेव।
उवरिं दो वज्जित्ता उदया सव्वे मुणेयव्वा ॥४४२॥

कसाए बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदया ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।

क्रोधादिचतुर्षु बन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ ८। सत्त्वस्थानानि तान्येव पूर्वोक्तान्येकादश ११। उदयस्थानानि उपरितननवाष्टकस्थानद्वयं वर्जयित्वा सर्वाण्युदयस्थानानि नव ९ ज्ञातव्यानि ॥४४२॥

कषायेषु चतुर्षु बन्धस्थानाष्टकम् २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदयस्थाननवकम् २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वस्थानैकादशकम् ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।

इति कषायमार्गणा समाप्ता।

कषायमार्गणाकी अपेक्षा क्रोधादि चारों कषायवालोंके सभी बन्धस्थान होते हैं। तथा सभी सत्तास्थान होते हैं। उदयस्थान उपरिम दोको छोड़कर शेष नौ जानना चाहिए ॥४४२॥

चारों कषायवालोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ये आठ; उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये नौ; तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये ग्यारह होते हैं।

मइ-सुय-अण्णाणेसुं बंधा तेवीसाइ-तीसंतिया मुणेयव्वा।
दुणउदि आइ छ संता ते उदया हवंति वेभंगे† ॥४४३॥

मइ-सुयअण्णाणे बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता ६—९२।९१।९०।८८।८४।८२।

ज्ञानमार्गणायां कुमति-कुश्रुताज्ञानयोर्नामबन्धस्थानानि त्रयोविंशतिका-[द्वि-त्रिंशत्कान्तानि षट् मन्तव्यानि २३।२५।२६।२८।२९।३०। सत्त्वस्थानानि द्वानवतिकादीनि षट् ९२।९१।९०।८८।८४।८२। तान्येव कषायोक्तान्युदयस्थानानि नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ भवन्ति। विभङ्गज्ञाने [उपरि वक्ष्यामः।] ॥४४३॥

ज्ञानमार्गणाकी अपेक्षा मति और श्रुत-अज्ञानियोंमें बन्धस्थान तेईसको आदि लेकर तीस तकके छह जानना चाहिए। उदयस्थान कषायमार्गणाके समान वे ही नौ होते हैं। सत्तास्थान बानबैको आदि लेकर छह होते हैं। अब विभङ्गज्ञानियोंके स्थानोंका वर्णन करते हैं ॥४४३॥

---

†ब वेभंगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मति-श्रुताज्ञानियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह; उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये नौ तथा सत्त्वस्थान ९२, ९१, ९०, ८८, ८४ और ८२ ये छह होते हैं।

ते चिय बंधा संता उदया अडवीस तीस इगितीसा।
मइ-सुय-ओहीजुयले बंधा अडवीस आदि पंचेव ॥४४४॥

वेभंगे बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ३—२८।३०।३१। संता ६—९२।९१।९०। ८८।८४।८२। मइ-सुय-ओहिजुयले बंधा ५—२८।२९।३०।३१।१।

विभङ्गज्ञाने तान्येव कुमति-कुश्रुतोक्तबन्ध-सत्त्वस्थानानि। उदयस्थानानि अष्टाविंशतिक-त्रिंशत्कैक-त्रिंशत्कानि त्रीणि ॥४४४॥

विभङ्गज्ञाने बन्धस्थानषट्कम् २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयस्थानत्रिकम् २८।३०।३१। सत्त्व-स्थानषट्कम् ९२।९१।९०।८८।८४।८२।

विभंगज्ञानियोंके मतिश्रुताज्ञानियोंके समान वे ही बन्धस्थान और सत्त्वस्थान जानना चाहिए। किन्तु उदयस्थान अट्ठाईस, तीस और इकतीस ये तीन ही होते हैं। मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंके दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा अवधिदर्शनियोंके बन्धस्थान अट्ठाईस आदि पाँच होते हैं ॥४४४॥

विभंगज्ञानियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह, उदयस्थान २८, ३०, ३१ ये तीन; तथा सत्तास्थान ९२, ९१, ९०, ८८, ८४ और ८२ ये छह होते हैं। मति, श्रुत और अवधि-युगलवालोंके बन्धस्थान २८, २९, ३०, ३१ और १ ये पाँच होते हैं।

चउवीसं दो उवरिं वज्जित्ता उदय अट्ठेव।
चउ आइल्ला संता ऊवरिं दो वज्जिऊण चउ हेट्ठा ॥४४५॥

उदया ८—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता ८—९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७।

मति-श्रुतावधिज्ञानावधिदर्शनेषु बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि पञ्च २८।२९।३०।३१।१। चतुर्विंश-तिकं उपरिमनवकाष्टकद्वयं च वर्जयित्वा उदयस्थानान्यष्टौ २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। चतुराद्य-सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादिचतुष्कं उपरिमदशक-नवकद्वयं वर्जयित्वा चतुरधःस्थसत्त्वस्थानानि अशीतिका-दीनि चत्वारि इत्यष्टौ ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७ ॥४४५॥

उन्हीं उपर्युक्त जीवोंके चौबीस तथा दो अन्तिम स्थानोंको छोड़कर शेष आठ उदयस्थान होते हैं। तथा सत्तास्थान आदिके चार और अन्तिम दोको छोड़कर अधस्तन चार, ये आठ होते हैं ॥४४५॥

मति, श्रुत और अवधि-युगलवालोंके उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये आठ तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये आठ होते हैं।

बंधा संता तेच्चिय मणपज्जे तीसमेव उदयं तु।
केवलजुयले उदया चदु उवरि छच्च संत उवरिल्ला ॥४४६॥

मणपज्जे बंधा ५—२८।२९।३०।३१।१। उदयो १—३० संता ८—९३।९२।९१।९०।८०।७९। ७८।७७। केवलजुयले उदया ४—३०।३१।९।८। संता ६—८०।७९।७८।७७।१०।९।

मनःपर्ययज्ञाने तान्येव संज्ञानोक्तबन्ध-सत्त्वस्थानानि भवन्ति। उदयस्थानमेकं त्रिंशत्कम्। मनः-पर्ययज्ञाने बन्धस्थानपञ्चकम् २८।२९।३०।३१।१। उदयस्थानमेकम् ३०। सत्त्वस्थानाष्टकम् ९३।९२।९१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०।८०।७९।७८।७७। केवलयुगले केवलज्ञाने केवलदर्शने च उदयस्थानचतुष्कमुपरितनम् ३०।३१।९।८। केवलिसमुद्घातापेक्षया उदयदशकम् २०।२१।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८। सत्त्वस्थानानि षट् उपरितनानि अशीतिकादीनि षडित्यर्थः ८०।७९।७८।७७।१०।९। तत्र बन्धो नास्ति॥ ४४६॥

इति ज्ञानमार्गणा समाप्ता।

मनःपर्ययज्ञानियोंके बन्धस्थान और सत्तास्थान तो मति-श्रुतादि ज्ञानियोंके समान वे ही पूर्वोक्त जानना चाहिए। किन्तु उदयस्थान केवल तीस प्रकृतिक ही होता है। केवलज्ञानियों और केवलदर्शनियोंके (बन्धस्थान कोई नहीं होता।) उदयस्थान उपरिम चार तथा सत्तास्थान उपरिम छह होते हैं ॥४४६॥

मनःपर्ययज्ञानियोंके बन्धस्थान २८, २९, ३०, ३१, १ ये पाँच; उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक तथा सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये आठ होते हैं केवल-युगल-वालोंके उदयस्थान ३०, ३१, ९ और ८ ये चार; तथा सत्तास्थान ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ ये छह होते हैं।

सामाइय-छेदेसुं बंधा अडवीसमाइ पंचेव।
पणुवीस सत्तवीसा उदया अडवीस तीस उणतीसा ॥४४७॥

सामाइय-छेदेसु बंधा—२८।२९।३०।३१।१। उदया ५—२५।२७।२८।२९।३०।

संयममार्गणायां सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि पञ्चैव २८।२९।३०।३१।१। उदयस्थानानि पञ्चविंशतिक-सप्तविंशतिकाष्टाविंशतिक-नवविंशतिक-त्रिंशत्कानि पञ्च २५।२७।२८।२९।३०। ॥४४७॥

संयममार्गणाकी अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थापना संयतोंके बन्धस्थान अट्ठाईस आदि पाँच होते हैं। उदयस्थान पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस और तीस; ये पाँच होते हैं ॥४४७॥

सामायिक-छेदोपस्थापनासंयतोंमें बन्धस्थान २८, २९, ३०, ३१, १ ये पाँच तथा उदयस्थान २५, २७, २८, २९ और ३० ये पाँच होते हैं।

पढमा चउरो संता उवरिम दो वज्जिदूण चउ हेट्ठा।
संता चउरो पढमा परिहारे तीसमेव उदयं तु ॥४४८॥

संता ८-९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७। परिहारे उदया १—३०। संता ४-९३।९२।९१।९०

प्रथमचतुःसत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादिचतुष्कम्, उपरिमदशक-नवकद्वयं वर्जयित्वा चतुरधःस्थ-सत्त्वस्थानानि अशीतिकादिचतुष्कमित्यष्टौ सत्त्वस्थानानि ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७। परिहारविशुद्धौ सत्त्वस्थानानि चत्वारि प्रथमानि त्रिनवतिकादीनि। त्रिंशत्कमुदयस्थानमेकम् ३० ॥४४८॥

उन्हीं दोनों संयतोंके सत्त्वस्थान प्रारम्भके चार, उपरिम दोको छोड़कर अधस्तन चार, ये आठ होते हैं। परिहारविशुद्धिसंयतोंके तीस प्रकृतिक एक उदयस्थान और प्रारम्भके चार सत्तास्थान होते हैं ॥४४८॥

सामायिक-छेदोपस्थापना संयतोंके सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये आठ होते हैं। परिहारविशुद्धिसंयतोंके उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक और सत्तास्थान ९३, ९२, ९१ और ९० ये चार होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अडवीसा उणतीसा तीसिगितीसा य बंध चत्तारि ।
जसकित्ती वि य बंधा सुहुमे उदयं तु तीस हवे ॥४४६॥

परिहारे बंधा ४—२८।२६।३०।३१ सुहुमे बंधा १—१ । उदयं १—३०।

परिहारविशुद्धौ अष्टाविंशतिक नवविंशतिक-त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि चत्वारि बन्धस्थानानि । परिहारविशुद्धिसंयमे बन्धस्थानचतुष्कम् २८।२६।३०।३१। उदयस्थानमेकम् ३०। सत्त्वस्थानचतुष्कम् ६३।६२।६१।६०। सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मसाम्परायो मुनिरेकां यशस्कीर्त्तिं बध्नन् त्रिंशत्कमुदयागतमनुभवति । [उदयस्थानं तु त्रिंशत्कमेकमेव ।] ॥४४६॥

उन्हीं परिहारविशुद्धि संयतोंके बन्धस्थान अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक ये चार होते हैं । सूक्ष्मसाम्पराय संयतोंके यशस्कीर्त्ति प्रकृतिक एक ही बन्धस्थान और एक ही उदयस्थान होता है ॥४४६॥

परिहारविशुद्धि संयतोंके बन्धस्थान २८, २६, ३०, ३१ ये चार होते हैं । सूक्ष्मसाम्पराय संयतोंके बन्धस्थान १ प्रकृतिक और उदयस्थान ३० प्रकृतिक एक होता है ।

संताइल्ला चउरो उवरिम दो वज्जिदूण चउ हेट्ठा ।
जहखायम्मि वि चउरो तीसिगितीसा णव अट्ठ उदयाय ॥४५०॥

संता ८—६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७। जहखाए उदया ४—३०।३१।६।८।

सूक्ष्मसाम्पराये सत्त्वस्थानान्याद्यानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि, उपरिमदशक-नवकद्वयं वर्जयित्वा चतुरधःस्थानान्यशीतिकादीनि चत्वारि चेत्यष्टौ । सूक्ष्मसाम्पराये बन्धस्थानमेकं १ यशस्कीर्त्तिनाम १ । उदयस्थानमेकं त्रिंशत्कम् ३० । सत्त्वस्थानाष्टकम् ६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७। यथाख्याते नामबन्धो नास्ति । उदयस्थानानि चत्वारि त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कनवकाष्टकानि ३०।३१।६।८। केवलिसमुद्घातपेक्षया उदयदशकम् २०।२१।२६।२७।२८।२६।३०।३१।६।८ ॥४५०॥

उन्हीं सूक्ष्मसाम्पराय संयतोंके सत्तास्थान आदिके चार तथा उपरिम दोको छोड़कर अधस्तन चार; ये आठ होते हैं । यथाख्यात संयतोंके तीस, इकतीस, नौ और आठ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं ॥४५०॥

सूक्ष्मसाम्परायसंयतोंके सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६० ८०, ७६, ७८ और ७७ ये आठ होते हैं । यथाख्यात संयतोंके ३०, ३१, ६ और ८ प्रकृतिक चार उदयस्थान होते हैं ।

चउहेट्ठा छाउवरिं संतट्ठाणाणि दस य णेयाणि ।
तससंजमम्मि णेया संतट्ठाणाणि चउ हेट्ठा ॥४५१॥

संता १०—६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७।१०।६। तससंजमे संता ४—६३।६२।६१।६०।

यथाख्याते सत्त्वस्थानानि चतुरधःस्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि, षडुपरितनानि सत्त्वानि अशीतिकादीनि षट् । एवं दश सत्त्वस्थानानि ६३।६२।६१।६०।८०।७६।७८।७७।१०।६। त्रससंयमे देशसंयमे सत्त्वस्थानानि चतुरधःस्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि ६३।६२।६१।६० ॥४५१॥

उन्हीं यथाख्यात संयतोंके चार अधस्तन और छह उपरितन; ये दश सत्तास्थान जानना चाहिए । त्रस-संयमवालोंके अर्थात् देशसंयतोंके चार अधस्तन सत्तास्थान जानना चाहिए ॥४५१॥

यथाख्यात संयतोंके सत्तास्थान ६३, ६२, ६१, ६०, ८०, ७६, ७८, ७७, १० और ६ ये दश सत्तास्थान होते हैं । देशसंयतोंके ६३, ६२, ६१ और ६० ये चार सत्तास्थान होते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अडवीसा उणतीसा बंधा उदया य तीस इगितीसा ।
अडसीदिं वज्जित्ता पढमा सत्ता[1] असंजमे संता ॥४५२॥

बंधा २—२८।२९। उदया २—३०-३१। असंजमे संता ७—९३।९२।९१।९०।८४।८२।८०।

देशसंयमे बन्धस्थाने द्वे—अष्टाविंशतिक-नवविंशतिके २८।२९। उदयस्थाने द्वे—त्रिंशत्कैकत्रिंशत्के ३०।३१। असंयमे अष्टाशीतिकं वर्जयित्वा प्रथमानि त्रिनवतिकादीनि सत्त्वस्थानानि सप्त ९३।९२।९१।९०। ८४।८२।८० **गोम्मट्टसारे** ८८।८४।८२। एवमप्यस्ति, इदं साधु दृश्यते ॥४५२॥

असंयमे बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि षड् बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयस्थानानि उपरिमनवकाष्टद्वयं वर्जयित्वा एकविंशनिकादीनि नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१

इति संयममार्गणा समाप्ता ।

उन्हीं देशसंयतोंके अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतिक दो बन्धस्थान; तथा तीस और इकतीस प्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं। असंयतोंके अठासीको छोड़कर प्रथमके सात सत्तास्थान होते हैं ॥४५२॥

देशसंयतोंके बन्धस्थान २८, २९ ये दो; तथा उदयस्थान ३० और ३१ ये दो होते हैं। असंयतोंके ९३, ९२, ९१, ९०, ८४, ८२, ८० ये सात सत्तास्थान होते हैं।

तीसंता छब्बंधा उवरिम दो वज्जिदूण णव उदया ।
चक्खुम्मि सव्वबंधा उदया उणतीस तीस इगितीसा ॥४५३॥

बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। चक्खुदंसणे बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदया ३—२९।३०।३१।

दर्शनमार्गणायां चक्षुर्दर्शने बन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ उदयस्थानानि एकोनत्रिंशत्कत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि त्रीणि २९।३०।३१। शक्त्यपेक्षया २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। इदं **गोम्मट्टसारे**ऽप्यस्ति ॥४५३॥

उन्हीं असंयतोंके आदिसे लेकर तीस तकके छह बन्धस्थान और उपरिम दोको छोड़कर नौ उदयस्थान होते हैं। दर्शनमार्गणाकी अपेक्षा चक्षुदर्शनियोंके बन्धस्थान तो सभी होते हैं; किन्तु उदयस्थान उनतीस तीस और इकतीस प्रकृतिक तीन ही होते हैं ॥४५३॥

असंयतोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह; तथा उदयस्थान २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ ये नौ होते हैं। चक्षुदर्शनियोंके बन्धस्थान २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ये आठ; तथा उदयस्थान २९, ३० और ३१ ये तीन होते हैं।

उवरिम दो वज्जित्ता संता इयरम्मि होंति णायव्वा ।
बंधा संता तेच्चिय उवरिम दो वज्जिदूण णव उदया ॥४५४॥

संता ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। अचक्खुदंसणे बंधा ८—२३।२५।२६ २८।२९।३०।३१।१ उदया ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता—११—९३।९२।९१।९० ८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।

चक्षुर्दर्शने सत्त्वस्थानानि उपरिमदशकनवकद्वयं वर्जयित्वा एकादश सत्त्वस्थानानि ९३।९२।९१। ९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। इतरस्मिन् अचक्षुर्दर्शने तान्येव चक्षुर्दर्शनोक्तानि बन्ध-सत्त्वस्थानानि भवन्ति। उदयस्थानानि उपरिमद्विकं वर्जयित्वा नवोदयाः। अचक्षुर्दर्शने बन्धाष्टकम्। २३।२५।२६।२८।

1. आदर्शप्रतौ 'संता' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६।३०।३१।१। उदयस्थाननवकम्। २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वैकादशकम् ९३।९२। ९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। अवधि-केवलदर्शनद्वये ज्ञाने कथितमस्ति ॥४५४॥

इति दर्शनमार्गणा समाप्ता।

चक्षुदर्शनियोंके उपरिम दो सत्तास्थान छोड़कर शेष ग्यारह सत्तास्थान होते हैं। इतर अर्थात् अचक्षुदर्शनियोंमें वे ही अर्थात् चक्षुदर्शनवालोंके बतलाये गये बन्धस्थान और सत्तास्थान होते हैं। तथा उपरिम दो को छोड़कर शेष नौ उदयस्थान होते हैं ॥४५४॥

चक्षुदर्शनियोंके सत्तास्थान ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं। अचक्षुदर्शनियोंके २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, ये आठ बन्धस्थान; २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ये नौ उदयस्थान, तथा ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं।

किण्हाइतिए बंधा तेवीसाई हवंति तीसंता।
सत्ता सत्ताइल्ला उवरिम दो वज्जिदूण णव उदया ॥४५५॥

किण्ह-णील-काऊसु बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८। २९।३०।३१। संता ७—९३।९२।९१।९०।८८।८४।

लेश्यामार्गणायां कृष्णादित्रये बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि षट् २३।२५।२६।२८।२९। ३०। सत्त्वस्थानानि आद्यानि त्रिनवतिकादीनि सप्त ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२। उपरिमद्वयं वर्जयित्वा चोदयस्थानानि नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ ॥४५५॥

लेश्यामार्गणाकी अपेक्षा कृष्ण आदि तीन लेश्याओंमें तेईसको आदि लेकर तीस तकके छह बन्धस्थान, उपरिम दो को छोड़कर शेष नौ उदयस्थान; तथा आदिके सात सत्तास्थान होते हैं ॥४५५॥

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान, २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये नौ उदयस्थान; तथा ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४ और ८२ ये सात सत्तास्थान होते हैं।

तेऊ पम्मा बंधा अडवीसुणतीस तीस इगितीसा।
इगि पणुवीसा उदया सत्तावीसाइ जाव इगितीसं ॥४५६॥

तेउ-पम्मासु बंधा ४—२८।२९।३०।३१। उदया ७—२१।२५।२७।२८।२९।३०।३१।

तेजःपद्मयोर्बन्धस्थानानि अष्टाविंशत्येकोनत्रिंशत्त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि चत्वारि २८।२९।३०।३१। पद्मायमष्टाविंशतिकादीनि चत्वारि। पोतलेश्यायां २५।२६।२८।२९।३०।३१ एवमप्यस्ति। उदयस्थानानि एकविंशतिक-पञ्चविंशतिक-सप्तविंशतिकाद्येकत्रिंशत्कान्तानि सप्त २१।२५।२७।२८।२९।३०।३१॥४५६॥

तेज और पद्मलेश्यामें अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक ये चार बन्धस्थान; तथा इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, और इकतीस प्रकृतिक ये सात उदयस्थान होते हैं ॥४५६॥

तेज और पद्मलेश्यामें बन्धस्थान २८, २९, ३०, ३१, ये चार तथा उदयस्थान २१, २५, २७, २८, २९ ३० और ३१ ये सात होते हैं।

संता चउरो पढमा सुक्काए होंति तेच्चिय विवाया।
संता चउरो पढमा उवरिम दो वज्जिदूण चउ हेट्ठा ॥४५७॥

संता ४—९३।९२।९१।९०। सुक्काए उदया ७—२१।२५।२७।२८।२९।३०।३१। संता ८— ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७।

पीत-पद्मयोः सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि ९३।९२।९१।९०। शुक्ललेश्यायां त एव पीतपद्मोक्तविपाका उदयस्थानानि सप्त २१।२५।२७।२८।२९।३०।३१ भवन्ति। केवलिसमुद्घातापेक्षया विंशतिकोदयश्च सत्तास्थानानि चत्वारि त्रिनवतिकादीनि उपरिमद्विकं वर्जयित्वा चतुरधःसत्त्वस्थानानि अशीतिकादीनि चत्वारि। एवमष्टौ ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७ ॥४५७॥

तेज और पद्मलेश्यामें प्रथमके चार सत्तास्थान होते हैं। शुक्ललेश्यामें विपाक अर्थात् उदयस्थान तो वे ही होते हैं, जो कि तेज-पद्मलेश्यामें बतलाये गये हैं। किन्तु सत्तास्थान आदिके चार तथा उपरिम दो को छोड़कर अधस्तन चार, इस प्रकार आठ होते हैं ॥४५७॥

तेज-पद्मलेश्यामें ९३, ९२, ९१, ९० ये चार सत्तास्थान होते हैं। शुक्ललेश्यामें २१, २५, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये सात उदयस्थान; तथा ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये आठ सत्तास्थान होते हैं।

अडवीसाई बंधा णिल्लेसे उदय उवरिमं जुयलं।
उवरिं छच्चिय संता भव्वे बंधा हवंति सव्वे वि ॥४५८॥

सुक्काए बंधा ५—२८।२९।३०।३१।१। अल्लेसे उदया २—९।८। संता ६—८०।७९।७८।७७।१०।९। भव्वे बंधा सव्वे २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।

शुक्ललेश्यायां बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि पञ्च २८।२९।३०।३१।१। निर्लेश्ये अयोगे उदयोपरिमयुग्मं नवकाष्टकद्वयमस्ति ९।८। सत्त्वस्थानानि उपरिमस्थानानि षट् ८०।७९।७८।७७।१०।९।

इति लेश्यामार्गणा समाप्ता।

भव्यमार्गणायां भव्ये बन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ ॥४५८॥

शुक्ललेश्यामें अट्ठाईसको आदि लेकर पाँच बन्धस्थान होते हैं। लेश्यासे रहित अयोगिकेवलीके उपरिम दो उदयस्थान; तथा उपरिम छह सत्तास्थान होते हैं। भव्यमार्गणाकी अपेक्षा भव्यजीवोंके सभी बन्धस्थान होते हैं ॥४५८॥

शुक्ललेश्यामें २८, २९, ३०, ३१, १ ये पाँच बन्धस्थान होते हैं। अलेश्यजीवोंके ९ और ८ ये दो उदयस्थान; तथा ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ वे छह सत्तास्थान होते हैं। भव्योंके २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, और १ ये सभी बन्धस्थान होते हैं।

दो उवरिं वज्जित्ता संतुदया होंति सव्वे वि।
अभव्वे तीसंता बंधा उदया य उवरि दो वज्जं ॥४५९॥

उदया ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।अभव्वे बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

भव्ये सत्त्वोदयस्थानानि उपरिमद्वयं वर्जयित्वा सर्वाण्युदयसत्त्वस्थानानि भवन्ति। भव्ये उदया नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वस्थानैकादशकम् ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। अभव्ये बन्धस्थानि त्रयोविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि २३।२५।२६।२८।२९।३०। आहारकयुतं त्रिंशत्कं न स्यात्, किन्तु त्रिंशत्कमुद्योतयुतं स्यात्। उपरिमस्थानद्वयं वर्जयित्वा उदयस्थानानि नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ ॥४५९॥

भव्योंके उपरिम दो को छोड़कर शेष नौ उदयस्थान; तथा उपरिम दो को छोड़कर शेष ग्यारह सत्तास्थान होते हैं। अभव्योंके तीस तकके छह बन्धस्थान; तथा उपरिम दो को छोड़कर शेष नौ उदयस्थान होते हैं ॥४५९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भव्योंके २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये नौ उदयस्थान; तथा ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८ और ७७ ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं। अभव्यमें २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये दश बन्धस्थान; तथा २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, २९, ३० और ३१ ये नौ उदयस्थान होते हैं।

संता णउदाइ चदुं णो भव्वा† चदु छाय उवरि उदय संता।
उवसमसम्मे बंधा अडवीसाई हवंति पंचेव ॥४६०॥

संता ४—९०।८८।८४।८२। णोभव्वणोऽभव्वे* उदय। ४—३०।३१।९।८। संता ६—८०।७९।७८ ७७।१०।९। उवसमसम्मत्ते बंधा ५—२८।२९।३०।३१।१

अभव्ये नवतिकादीनि चत्वारि सत्त्वस्थानि ९०।८८।८४।८२। नोभव्याभव्ये अयोगे अन्त्योदयाश्चत्वारः ३०।३१।९।८। अन्तिमसत्त्वस्थानि षट् ८०।७९।७८।७७।१०।९।

इति भव्यमार्गणा समाप्ता।

सम्यक्त्वमार्गणायामुपशमसम्यक्त्वे बन्धस्थानानि अष्टाविंशतिकादीनि पञ्च २८।२९।३०।३१।१। ॥४६०॥

अभव्योंके नब्बे आदि चार सत्तास्थान होते हैं। नोभव्य-नोअभव्य जीवोंके उपरिम चार उदयस्थान और उपरिम छह सत्तास्थान होते हैं। सम्यक्त्वमार्गणाकी अपेक्षा उपशमसम्यक्त्वमें अट्ठाईसको आदि लेकर पाँच बन्धस्थान होते हैं ॥४६०॥

अभव्यके ९०, ८८, ८४, ८२ ये चार सत्तास्थान होते हैं। नो-भव्य-नोअभव्यके ३०, ३१, ९, ८ ये चार उदयस्थान; तथा ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ ये छह सत्तास्थान होते हैं। उपशमसम्यक्त्वमें २८, २९, ३०, ३१ और १ ये पाँच बन्धस्थान होते हैं।

उदया इगि पणुवीसा उणतीसा तीस होंति इगितीसा।
संता चउरो पढमा वेदयसम्मम्मि संत ते चेव ॥४६१॥

उदया ५—२१।२५।२९।३०।३१। संता ४—९३।९२।९१।९० वेदये संता ४—९३।९२।९१।९०।

उपशमे उदयस्थानानि एक-पञ्चाग्रविंशतिके द्वे, एकोनत्रिंशत्क-त्रिंशत्कैक-त्रिंशत्कानि त्रीणि; एवं पञ्च २१।२५।२९।३०।३१ भवन्ति। सत्त्वस्थानानि चत्वार्याद्यानि नवतिकादीनि ९३।९२।९१।९०। वेदकसम्यक्त्वे सत्त्वस्थानानि तान्येवोपशमोक्तानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि ९३।९२।९१।९० ॥४६१॥

उपशमसम्यक्त्वमें इक्कीस, पच्चीस, उनतीस, तीस, इकतीस ये पाँच उदयस्थान और आदिके चार सत्तास्थान होते हैं। वेदकसम्यक्त्वमें भी ये ही आदिके चार सत्तास्थान होते हैं ॥४६१॥

उपशम सम्यक्त्वमें २१, २५, २९, ३०, ३१ ये पाँच उदयस्थान, तथा ९३, ९२, ९०, ९१, ये चार सत्तास्थान होते हैं। वेदकसम्यक्त्वमें भी ९३, ९२, ९१, ९० ये ही चार सत्तास्थान होते हैं।

अडवीसा उणतीसा तीसिगितीसा हवंति बंधा य।
चउवीसं दो उवरिं वज्जित्ता उदयठाणाणि ॥४६२॥

बंधा ४—२८।२९।३०।३१। उदया ८—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

---

† द भव्वाभव्वे।
*ब णोभव्वाभव्वे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदकसम्यक्त्वे बन्धस्थानानि अष्टाविंशतिकनवविंशतिकत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि चत्वारि भवन्ति २८।२६। ३०।३१। उदयस्थानानि चतुर्विंशतिकं उपरिमनवकाष्टकद्वयं च वर्जयित्वा अन्यान्यष्टौ २१।२५।२६।२७। २८।२९।३०।३१ ॥४६२॥

उसी वेदकसम्यक्त्वमें अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीसप्रकृतिक चार बन्धस्थान; तथा चौबीस और उपरिम दो स्थानोंको छोड़कर शेष आठ उदयस्थान होते हैं ॥४६२॥

वेदकसम्यक्त्वमें २८, २९, ३०, ३१, ये चार बन्धस्थान और २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये आठ उदयस्थान होते हैं।

चउरो हेट्ठा छाउवरिं खाइए संता हवंति णायव्वा।
चउवीसं वज्जुदया अडवीसाई हवंति बंधा य ॥४६३॥

खाइयसम्मत्ते बंधा ५—२८।२९।३०।३१।१। उदया १०—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। ९।८। संता १०—९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७।१०।९।

क्षायिकसम्यक्त्वे चत्वारि सत्त्वस्थानान्यधःस्थानानि षडुपरिष्टानि, एवं दश सत्त्वस्थानानि क्षायिकसम्यग्दृष्टौ भवन्ति। चतुर्विंशतिकं वर्जयित्वा उदयस्थानानि दश। अष्टाविंशतिकादीनि पञ्च बन्धस्थानानि भवन्ति ज्ञातव्यानि ॥४६३॥

क्षायिकसम्यक्त्वे बन्धस्थानपञ्चकम् २८।२९।३०।३१।१। उदयस्थानदशकम् २१।२५।२६।२७।२८। २९।३०।३१।९।८। केवलिसमुद्घातापेक्षया विंशतिकस्योदयोऽस्ति। सत्त्वस्थानदशकम् ९३।९२।९१।९०। ८०।७९।७८।७७।१०।९।

क्षायिकसम्यक्त्वमें चार अधस्तन और छह उपरिम ये दश सत्तास्थान होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। उदयस्थान चौवीसको छोड़करके शेष सर्व, तथा बन्धस्थान अट्ठाईसको आदि लेकरके शेष सर्व होते हैं ॥४६३॥

क्षायिकसम्यक्त्वमें २८, २९, ३०, ३१, १ ये पाँच बन्धस्थान, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८ ये दश उदयस्थान; तथा ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ ये दश सत्तास्थान होते हैं।

अडवीसाई तिण्णि य बंधा सादम्मि संत णउदीया।
इगिवीसाई सत्त य उदया अड सत्तवीस वज्जित्ता ॥४६४॥

सासणे बंधा ३—२८।२९।३०। उदया ७—२१।२४।२५।२६।२९।३०।३१। संता १—९०।

सासादनरुचौ बन्धस्थानानि अष्टाविंशतिकादीनि त्रीणि २८।२९।३०। सत्त्वस्थानमेकं नवतिकम् ९०। अष्टाविंशतिकं सप्तविंशतिकं च वर्जयित्वा एकविंशतिकादीनि सप्तोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२९। ३०।३१। अत्र सप्ताष्टाविंशतिके तु अनयोरुदयकालागमनपर्यन्तं सासादनत्वासम्भवान्नोक्ते ॥४६४॥

सासादनसम्यक्त्वमें अट्ठाईसको आदि लेकर तीन बन्धस्थान; नब्बैप्रकृतिक एक सत्तास्थान; तथा सत्ताईस और अट्ठाईसको छोड़कर इक्कीस आदि सात उदयस्थान होते हैं ॥४६४॥

सासादनमें २८, २९, ३० ये तीन बन्धस्थान, तथा २१, २४, २५, २६, २९, ३०, ३१ ये सात उदयस्थान हैं और ९० प्रकृतिक एक सत्तास्थान होता है।

अट्ठावीसुणतीसा बंधा मिस्सम्मि णउदि वाणउदी।
संता तीसिगितीसा उणतीसा होंति उदया य ॥४६५॥

मिस्से बंधा २—२८।२९। उदया ३—२९।३०।३१। संता २—९२।९०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिश्ररुचौ बन्धस्थानेऽष्टाविंशतिक-नवविंशतिके द्वे २८।२९ । सत्त्वस्थाने द्वे नवतिक-द्वानवतिके ९२। ९० भवतः । उदयस्थानानि एकोनत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि त्रीणि २९।३०।३१ ॥४६५॥

मिश्र अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्वमें अट्ठाईस, उनतीसप्रकृतिक दो बन्धस्थान; बानबै और और नब्बैप्रकृतिक दो सत्तास्थान; तथा उनतीस, तीस और इकतीसप्रकृतिक तीन उदयस्थान होते हैं ॥४६५॥

मिश्रमें २८ और २९ ये दो बन्धस्थान; २९, ३०, ३१ ये तीन उदयस्थान; तथा ९२ और ९० ये दो सत्तास्थान होते हैं।

तीसंता छब्बंधा उवरिम दो वज्जिदूण णव उदया ।
मिच्छे पढमा संता तेणउदिं वज्जिऊण छच्चेव ॥४६६॥

मिच्छे बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। संता ६—९२।९१।९०।८८।८४।८२।

मिथ्यारुचौ बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि षट् २३।२५।२६।२८।२९।३० । उदयस्थानानि उपरिम-नवकाष्टकस्थानद्वयं वर्जयित्वा अन्यानि नवोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९। ३०।३१ । त्रिनवतिकं वर्जयित्वा आदिमसत्त्वस्थानानि षट् ९२।९१।९०।८८।८४।८२ ॥४६६॥

इति सम्यक्त्वमार्गणा समाप्ता ।

मिथ्यात्वमें तीसप्रकृतिक स्थान तकके छह बन्धस्थान; उपरिम दो को छोड़कर शेष नौ उदयस्थान; तथा तेरानबैको छोड़कर प्रारम्भके छह सत्तास्थान होते हैं ॥४६६॥

मिथ्यात्वमें २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान; २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये नौ उदयस्थान; तथा ९२, ९१, ९०, ८८, ८४ और ८२ ये छह सत्तास्थान होते हैं।

सण्णिम्मि सव्वबंधा उवरिम दो वज्जिऊण संता दु ।
चउवीसं दो उवरिं वज्जित्ता होंति उदया य ॥४६७॥

सण्णीसु बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदया ८–२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ संता ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।

संज्ञिमार्गणायां संज्ञिजीवे बन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उपरिम-दशक-नवकस्थानद्वयं वर्जयित्वा अन्यसर्वाण्येकादश सत्त्वस्थानानि ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९। ७८।७७ । चतुर्विंशतिकं उपरिमनवकाष्टकस्थानद्वयं च वर्जयित्वा उदयस्थानान्यष्टौ २१।२५।२६।२७। २८।२९।३०।३१ । संज्ञिनि भवन्ति ॥४६७॥

संज्ञिमार्गणाकी अपेक्षा संज्ञी जीवोंमें सर्व बन्धस्थान होते हैं। उपरिम दोको छोड़कर शेष ग्यारह सत्तास्थान; तथा चौबीस और उपरिम दोको छोड़कर शेष आठ उदयस्थान होते हैं ॥४६७॥

संज्ञियोंमें २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ये आठ बन्धस्थान; २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये आठ उदयस्थान और ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इगिवीसं छव्वीसं अडवीसुणतीस तीस इगितीसा ।
उदया असण्णिजीवे बंधा तीसंतिया छच्च ॥४६८॥

असण्णीसु बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३० । उदया ६—२१।२६।२८।२९।३०।३१।

असंज्ञिमार्गणायां बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादित्रिंशत्कान्तानि षट् २३।२५।२६।२८।२९।३० । उदयस्थानान्येकविंशतिकषड्‌विंशतिकाष्टाविंशतिकैकोनत्रिंशत्कत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि षट् २१।२६।२८।२९।३०। ३१ ॥४६८॥

असंज्ञी जीवोंमें इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस प्रकृतिक छह उदय-स्थान और तीस तकके प्रारम्भिक छह बन्धस्थान होते हैं ॥४६८॥

असंज्ञियोंमें २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान; तथा २१, २६, २८, २९, ३० और ये छह उदयस्थान होते हैं ।

पंचाइल्ला संता तम्मि य चत्ता ति-इक्कणउदीओ ।
उदया चउ उवरिल्ला छोवरि संता य णोभए भणिया ॥४६९॥

संता ५—९२।९०।८८।८४।८० । णेवसण्णी-णेवअसण्णीसु उदया ४—३०।३१।९।८। संता ६—८०।७९।७८।७७।१०।९ ।

सत्त्वस्थानानि—तत्र सत्त्वस्थानमध्ये त्रिनवतिकैकनवतिकस्थानद्वयं त्यक्त्वा आद्यानि सत्त्वस्थानानि पञ्च ९२।९०।८८।८४।८२ असंज्ञिजीवे भवन्ति । नोभययोः संज्ञ्यसंज्ञिव्यपदेशरहितयोः सयोगायोगयो-रुदया उपरिष्टाश्चत्वारः । सत्त्वस्थानानि चरमाणि षट् भणितानि ॥४६९॥

नैवसंज्ञि-नैवासंज्ञिषु उदयाः ४—३०।३१।९।८। सत्तास्थानानि ६—८०।७९।७८।७७।१०।९।

इति संज्ञिमार्गणा समाप्ता ।

उन्हीं असंज्ञियोंमें तेरानवै और इक्यानवैको छोड़कर आदिके पाँच सत्तास्थान होते हैं। नोभय अर्थात् नैव संज्ञी नैव असंज्ञी ऐसे केवलियोंके ऊपरके चार उदयस्थान और ऊपरके ही छह सत्तास्थान कहे गये हैं ॥४६९॥

असंज्ञियोंमें ९२, ९०, ८८, ८४, ८२ ये पाँच सत्तास्थान होते हैं। नो संज्ञी नो असंज्ञी जीवोंमें ३०, ३१, ९, ८ ये चार उदयस्थान और ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ ये छह सत्तास्थान होते हैं ।

सव्वे बंधाहारे सव्वे संता य दो उवरि मुच्चा ।
इगिवीसं दो उवरिं मुत्तुं उदया हवंति सव्वे वि ॥४७०॥

आहारे बंधा ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदया ८—२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०। ३१ । संता ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७ ।

आहारकमार्गणायां बन्धस्थानानि सर्वाण्यष्टौ २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। एकविंशतिक-मुपरिमस्थानद्वयं च मुक्त्वा उदयस्थानान्यष्टौ २४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। उपरिमसत्त्वस्थानद्वयं मुक्त्वाऽन्यसत्त्वस्थानान्येकादश ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। आहारकजीवेषु भवन्ति ॥४७०॥

आहारमार्गणाकी अपेक्षा आहारक जीवोंके सभी बन्धस्थान, तथा उपरिम दोको छोड़कर शेष सभी सत्तास्थान होते हैं । इसी प्रकार इक्कीस और उपरिम दोको छोड़कर शेष सर्व ही उदय-स्थान होते हैं ॥४७०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहारकोंमें २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१, १ ये आठ बन्धस्थान, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ ये आठ उदयस्थान; और ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७ ये ग्यारह सत्तास्थान होते हैं।

छब्बंधा तीसंता इयरे संता य होंति सव्वे वि।
इगिवीसं चउ उवरिं पंचेवुदया जिणेहिं णिद्दिट्ठा ॥४७१॥

अणाहारे बंधा ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदया ५—२१।३०।३१।९।८। संता १३—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९।

इतरेऽन्यस्मिन् अनाहारके त्रयोविंशतिकादि-त्रिंशत्कान्तानि बन्धस्थानि षट् २३।२५।२६।२८।२९।३०। सत्त्वस्थानानि सर्वाणि त्रयोदश ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९। उदयस्थानानि एकविंशतिकं उपरितनचतुष्कं चेति पञ्च २१।३०।३१।९।८। अनाहारकजीवेषु भवन्ति। तत्रानाहारके अयोगिनि उदयस्थाने नवकाष्टके द्वे स्तः। सत्त्वं दशक-नवके द्वे विद्येते। एवं नामकर्मप्रकृति-बन्धोदयसत्त्व-त्रिसंयोगो मार्गणासु जिनैर्निर्दिष्टः कथितः ॥४७१॥

इतर अर्थात् अनाहारक जीवोंके तीस तक के छह बन्धस्थान और सर्व ही सत्तास्थान होते हैं। तथा उन्हींसे इक्कीस और चार उपरिम ये पाँच ही उदयस्थान जिनेन्द्रोंने कहे हैं ॥४७१॥

अनाहारकोंके २३, २५, २६, २८, २९, ३० ये छह बन्धस्थान; २१, ३०, ३१, ९, ८ ये पाँच उदयस्थान और ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ ये तेरह सत्तास्थान होते हैं।

अथ चतुर्दशमार्गणासु नामकर्मप्रकृतिबन्धोदयसत्त्वत्रिसंयोगरचना **गोम्मट्टसारोक्ता**ऽत्र रच्यते—

१ गतिमार्गणायाम्—

	बं०	२	२९,३०
१ नरकगतौ—	उ०	५	२१,२५,२७,२८,२९,
	स०	३	९२,९१,९०,
	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३० ।
२ तिर्यग्गतौ—	उ०	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	५	९२,९०,८८,८४,८२ ।
	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१ ।
३ मनुष्यगतौ	उ०	११	२०,२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१,९,८ ।
	स०	१२	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८०,७९,७८,७७,१०,९ ।
	बं०	४	२५,२६,२९,३० ।
४ देवगतौ—	उ०	५	२१,२५,२७,२८,२९ ।
	स०	४	९३,९२,९१,९० ।

२ इन्द्रियमार्गणायाम्—

	बं०	५	२३,२५,२६,२९,३० ।
१ एकेन्द्रिये—	उ०	५	२१,२४,२५,२६,२७ ।
	स०	५	९२,९०,८८,८४,८२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	बं०	५	२३,२५,२६,२९,३० ।
२ विकलत्रये—	उ०	६	२१,२६,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	५	९२,९०,८८,८४,८२ ।
	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१ ।
३ सकलेन्द्रिये —	उ०	११	२०,२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१,९,८ ।
	स०	१३	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७,१०,९ ।

३ कायमार्गणायाम्—

	बं०	५	२३,२५,२६,२९,३० ।
१ पृथ्वीकायिके—	उ०	५	२१,२४,२५,२६,२७ ।
	स०	५	९२,९०,८८,८४,८२ ।
	बं०	५	२३,२५,२६,२९,३० ।
२ अप्कायिके—	उ०	५	२१,२४,२५,२६,२७ ।
	स०	५	९२,९०,८८,८४,८२ ।
	बं०	५	२३,२५,२६,२९,३० ।
३ तेजस्कायिके—	उ०	४	२१,२४,२५,२६ ।
	स०	५	९२,९०,८८,८४,८२ ।
	बं०	५	२३,२५,२६,२९,३० ।
४ वातकायिके—	उ०	४	२१,२४,२५,२६ ।
	स०	५	९२,९०,८८,८४,८२ ।
	बं०	५	२३,२५,२६,२९,३० ।
५ वनस्पतिकायिके—	उ०	५	२१,२४,२५,२६,२७ ।
	स०	५	९२,९०,८८,८४,८२ ।

४ योगमार्गणायाम्—

	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१ ।
मनोयोगे—	उ०	३	२९,३०,३१ ।
	स०	१०	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८०,७९,७८,७७ ।
	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१ ।
वचनयोगे—	उ०	३	२९,३०,३१ ।
	स०	१०	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८०,७९,७८,७७ ।
	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१ ।
३ औदारिककाययोगे—	उ०	७	२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	११	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७ ।
	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३० ।
४ औदारिकमिश्रकाययोगे—	उ०	२	२४,२६ ।
	स०	११	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७ ।
	बं०	५	२५,२६,२८,२९,३० ।
५ वैक्रियिककाययोगे—	उ०	३	२७,२८,२९ ।
	स०	४	९३,९२,९१,९० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	बं०	२	२९,३० ।
६ वैक्रियिकमिश्रकाययोगे—	उ०	१	२५ ।
	स०	४	९३,९२,९१,९० ।

	बं०	२	२८,२९ ।
७ आहारककाययोगे—	उ०	३	२७,२८,२९ ।
	स०	४	९३,९२,९१,९० ।

	बं०	२	२८,२९ ।
८ आहारकमिश्रकाययोगे—	उ०	१	२५ ।
	स०	४	९३,९२,९१,९० ।

	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३० ।
९ कार्मणकाययोगे—	उ०	१	२१ ।
	स०	११	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७ ।

५ वेदमार्गणायाम्—

	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१ ।
वेदत्रये—	उ०	८	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	११	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७ ।

६ कषायमार्गणायाम्—

	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१ ।
कषायचतुष्के—	उ०	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	११	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७ ।

७ ज्ञानमार्गणायाम्—

	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३० ।
१ मति-श्रुताज्ञानयोः—	उ०	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	६	९२,९१,९०,८८,८४,८२ ।

	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३० ।
२ विभङ्गज्ञाने—	उ०	३	२८,३०,३१ ।
	स०	६	९२,९१,९०;८८,८४,८२ ।

	बं०	५	२८,२९,३०,३१,१
३ मति-श्रुतावधिषु—	उ०	८	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	८	९३,९२,९१,९०,८०,७९,७८,७७ ।

	बं०	५	२८,२९,३०,३१,१ ।
४ मनःपर्ययज्ञाने—	उ०	१	३० ।
	स०	८	९३,९२,९१,९०,८०,७९,७८,७७ ।

	बं०	०	
५ केवलज्ञाने—	उ०	४	३०,३१,९,८ ।
	स०	६	८०,७९,७८,७७,१०,९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८ संयममार्गणायाम्—

	बं०	५	२८,२९,३०,३१,१।
१ सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः—	उ०	५	२५,२७,२८,२९,३०।
	स०	८	९३,९२,९१,९०,८०,७९,७८,७७।
	बं०	४	२८,२९,३०,३१।
२ परिहारविशुद्धे—	उ०	१	३०।
	स०	४	९३,९२,९१,९०।
	बं०	१	१।
३ सूक्ष्मसाम्पराये—	उ०	१	३०।
	स०	८	९३,९२,९१,९०,८०,७९,७८,७७।
	बं०	०	
४ यथाख्यातसंयमे—	उ०	४	३०,३१,९,८।
	स०	१०	९३,९२,९१,९०,८०,७९,७८,७७,१०,९।
	बं०	२	२८,२९।
५ देशसंयते—	उ०	२	३०,३१।
	स०	४	९३,९२,९१,९०।
	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०।
असंयमे—	उ०	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१।
	स०	७	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२।

९ दर्शनमार्गणायाम्—

	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१।
१ चक्षुर्दर्शने—	उ०	८	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१।
	स०	११	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७।
	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१।
२ अचक्षुर्दर्शने—	उ०	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१।
	स०	११	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७।
	बं०	५	२८,२९,३०,३१,१।
३ अवधिदर्शने—	उ०	८	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१।
	स०	८	९३,९२,९१,९०,८०,७९,७८,७७।
	बं०	०	
४ केवलदर्शने—	उ०	४	३०,३१,९,८।
	स०	६	८०,७९,७८,७७,१०,९।

१० लेश्यामार्गणायाम्—

	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०।
१ कृष्ण-नील-कापोतलेश्यासु—	उ०	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१।
	स०	७	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२।
	बं०	४	२८,२९,३०,३१।
२ तेजःपद्मलेश्ययोः—	उ०	७	२१,२५,२७,२८,२९,३०,३१।
	स०	४	९३,९२,९१,९०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	बं०	५	२८,२९,३०,३१,१ ।
३ शुक्ललेश्यायाम्-	उ०	७	२१,२५,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	८	९३,९२,९१;९०,८०,७९,७८,७७ ।
	बं०	०	
४ अलेश्ये—	उ०	२	९,८ ।
	स०	६	८०,७९,७८,७७,१०,९ ।

११ भव्यमार्गणायाम्—

	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१ ।
१ भव्ये—	उ०	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	११	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७ ।
	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३० ।
२ अभव्ये—	उ०	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	४	९०,८८,८४,८२ ।
	बं०	०	
३ नो भव्ये नो अभव्ये—	उ०	४	३०,३१,९,८ ।
	स०	६	८०,७९,७८,७७,१०,९ ।

१२ सम्यक्त्वमार्गणायाम्—

	बं०	५	२८,२९,३०,३१,१ ।
१ उपशमसम्यक्त्वे—	उ०	५	२१,२५,२९,३०,३१ ।
	स०	४	९३,९२,९१,९० ।
	बं०	४	२८,२९,३०,३१ ।
२ वेदकसम्यक्त्वे—	उ०	८	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	४	९३,९२,९१,९० ।
	बं०	५	२८,२९,३०,३१,१ ।
३ क्षायिकसम्यक्त्वे—	उ०	११	२०,२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१,९,८ ।
	स०	१०	९३,९२,९१,९०,८०,७९,७८,७७,१०,९ ।
	बं०	३	२८,२९,३० ।
४ सासादनसम्यक्त्वे—	उ०	७	२१,२४,२५,२६,२९,३०,३१ ।
	स०	१	९० ।
	बं०	२	२८,२९ ।
५ मिश्ररुचौ—	उ०	३	२९,३०,३१ ।
	स०	२	९२,९० ।
	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३० ।
६ मिथ्यारुचौ—	उ०	९	२१,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	६	९२,९१,९०,८८,८४,८२ ।

१३ संज्ञिमार्गणायाम्—

	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१ ।
१ संज्ञिनि—	उ०	८	२१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	११	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ असंज्ञिनि—	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३० ।
	उ०	६	२१,२६,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	५	९२,९०,८८,८४,८२ ।
३ नैवसंज्ञिनि नैवासंज्ञिनि—	बं०	०	
	उ०	४	३०,३१,९,८ ।
	स०	६	८०,७९,७८,७७,१०,९ ।

१४ आहारमार्गणायाम्—

१ आहारके—	बं०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३०,३१,१ ।
	उ०	८	२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
	स०	११	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७ ।
२ अनाहारके—	बं०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३० ।
	उ०	५	२१,३०,३१,९,८ ।
	स०	१३	९३,९२,९१,९०,८८,८४,८२,८०,७९,७८,७७,१०,९ ।

इस प्रकार चौदह मार्गणाओंमें नामकर्मके बन्ध, उदय और सत्तास्थानोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

अब मूल सप्ततिकाकार प्रकृत विषयका उपसंहार करते हुए और भी विशेष जाननेके लिए कुछ आवश्यक निर्देश करते हैं—

[मूलगा०४८][1]इय कम्मपयडिठाणाणि सुट्ठु बंधुदय-संतकम्माणं ।
गदिआदिएसु अट्ठहिं चउप्पयारेण णेयाणि[1] ॥४७२॥

बंधोदय उदीरणासंताणि [अट्ठहिं] अणुजोगदारेहिं ।

इत्यमुना प्रकारेण कर्मणां प्रकृतिबन्धोदयसत्त्वस्थानानि सुष्ठु अतिशयेन गत्यादिमार्गणासु गुणस्थानेषु जीवसमासादिषु च ज्ञेयानि ज्ञातव्यानि । कैः कृत्वा ? अष्टभिरनुयोगद्वारैः सूत्रोक्तसत्संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्पबहुत्वैरथवोत्कृष्टानुत्कृष्टजघन्याजघन्य-ध्रुवाध्रुव-साद्यनाद्यैर्ज्ञातव्यानि चतुःप्रकारेण बन्धोदयोदीरणासत्त्वप्रकारेण ज्ञेयानि ॥४७२॥

तथा च—

सर्वासु मार्गणास्वेवं सत्संख्याद्यष्टकेऽपि च ।
बन्धादित्रितयं नाम्नो योजनीयं यथागमम्[2] ॥२८॥

इति नामबन्धोदयसत्त्वस्थानानि मार्गणासु समाप्तानि ।

इस प्रकार कर्म-प्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्तासम्बन्धी स्थानोंको अति सावधानीके साथ गति आदि मार्गणाओंकी अपेक्षा आठ अनुयोग-द्वारोंमें चार प्रकारसे लगाकर जानना चाहिए ॥४७२॥

विशेषार्थ—मूल सप्ततिकाकारने यहाँ तक कर्मोंकी मूल और उत्तर प्रकृतियोंके बन्ध, उदय और सत्तास्थानोंका सामान्य रूपसे, तथा जीवस्थान, गुणस्थान और मार्गणाओंके द्वारा निर्देश किया । अब वे प्रस्तुत प्रकरणका उपसंहार करते हुए यही कथन विशेष रूपसे जाननेके लिए

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४४१ ।

१. सप्ततिका० ५३ ।

२. सं० पञ्चसं० ५, ४४१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूचित कर रहे हैं कि उक्त बन्धादि स्थानोंका गति आदि चौदह मार्गणाओंका आश्रय लेकर सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोग द्वारोंसे भी जानना चाहिए। प्राकृत पंचसंग्रहके संस्कृत टीकाकारने 'अथवा' कहकर उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य, सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव इन आठके द्वारा भी जाननेकी सूचना की है, क्योंकि गाथामें 'अट्ठहि' ऐसा सामान्य पद ही प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार 'चउप्पयारेण' भी सामान्य पद है, सो उसका दिगम्बर टीकाकारोंने तो बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता इन चार प्रकारोंसे जाननेकी सूचना की है। किन्तु चूर्णिकारने प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चार प्रकारों से जाननेकी सूचना की है। श्वे० संस्कृत टीकाकारोंने भी यही अर्थ किया है।

अब मूल सप्ततिकाकार उदयसे उदीरणाकी विशेषता बतलाते हैं—

[मूलगा०४९][1]उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो।
मोत्तूण य इगिदालं सेसाणं सव्वपयडीणं[1] ॥४७३॥

विद्यानन्दीश्वरं देवं मल्लिभूषणसद्गुरुम्।
लक्ष्मीचन्द्रं च वीरेन्दुं वन्दे श्रीज्ञानभूषणम्॥

एकचत्वारिंशत्प्रकृतीर्मुक्त्वा शेषाणां सप्तोत्तरशतप्रकृतीनां उदयस्योदीरणायाश्च स्वामित्वाद्विशेषो न विद्यते। एकचत्वारिंशत्प्रकृतीनां ४१ विशेषो वर्तते ॥४७३॥

तथा चोक्तम्—

न चत्वारिंशतं सैकं परित्यज्यान्यकर्मणाम्।
विपाकोदीरणयोरस्ति विशेषः स्वाम्यतः स्फुटम्[2] ॥२९॥
मिश्रसासादनापूर्वशान्तायोगान् विमुच्य सा।
योजनीया गुणस्थाने विभागेन विचक्षणैः ॥३०॥

वक्ष्यमाण इकतालीस प्रकृतियोंको छोड़कर शेष सर्व प्रकृतियोंके उदय और उदीरणामें स्वामित्वकी अपेक्षा कोई विशेषता नहीं है ॥४७३॥

विशेषार्थ—यथाकालमें प्राप्त कर्म परमाणुओंके अनुभवन करनेका नाम उदय है और अकाल-प्राप्त अर्थात् उदयावलीसे बाहर स्थित कर्म-परमाणुओंका सकषाय या अकषाय योगको परिणति-विशेषसे अपकर्षणकर उदयावलीमें लाकर-उदय-प्राप्त कर्म-परमाणुओंके साथ अनुभव करनेका नाम उदीरणा है। इस प्रकार फलानुभवकी दृष्टिसे स्वामित्वकी अपेक्षा उदय और उदीरणामें कोई विशेषता नहीं है। इन दोनोंमें यदि कोई विशेषता है, तो केवल काल-प्राप्त और अकाल प्राप्त परमाणुओंकी है। उदयमें काल प्राप्त कार्य परमाणुओंका और उदीरणामें अकाल-प्राप्त परमाणुओंका वेदन या अनुभवन किया जाता है। ऐसी व्यवस्था होनेपर भी सामान्य नियम यह है कि जहाँ पर जिस कर्मका उदय होता है, वहाँ पर उस कर्मकी उदीरणा अवश्य होती है। किन्तु इसके कुछ अपवाद हैं। पहला अपवाद यह है कि जिन प्रकृतियोंकी स्वोदयसे सत्ता-व्युच्छित्ति होती है, उनकी उदीरणा-व्युच्छित्ति एक आवली काल पहले हो जाती है और उदय-व्युच्छित्ति एक आवलीके पश्चात् होती है दूसरा अपवाद यह है कि वेदनीय और मनुष्यायुकी उदीरणा प्रमत्तविरत गुणस्थान-पर्यन्त ही होती है। जब कि इनका उदय चौदहवें

1. सं० पञ्चसं० ५, ४४२।
१. सप्ततिको० ५४।
२. सं० पञ्चसं० ५, ४४२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान तक होता है। तीसरा अपवाद यह है कि जिन प्रकृतियोंका उदय चौदहवें गुणस्थानमें होता है, उनकी उदीरणा तेरहवें गुणस्थान तक ही होती है। चौथा अपवाद यह है कि चारों आयुकर्मोंका अपने-अपने भवकी अन्तिम आवलीमें उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। पाँचवाँ अपवाद यह है कि पाँचों निद्राकर्मोंका शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेके पश्चात् इन्द्रियपर्याप्तिके पूर्ण होने तक उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। छठा अपवाद यह है कि अन्तरकरण करनेके पश्चात् प्रथम स्थितिमें एक आवली शेष रहनेपर मिथ्यात्वका, क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त करनेवालेके सम्यक्त्वप्रकृतिका और उपशमश्रेणीमें जो जिस वेदसे उपशमश्रेणीपर चढ़ा है, उसके उस वेदका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं। सातवाँ अपवाद यह है कि उपशमश्रेणीके सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें भी एक आवली कालके शेष रहनेपर सूक्ष्मलोभका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं। इन सातों अपवादवाली कुल प्रकृतियाँ यतः इकतालीस ही होती हैं, अतः गाथासूत्रकारने इकतालीस प्रकृतियोंको छोड़कर शेष सर्व अर्थात् एक सौ सात प्रकृतियोंकी उदय और उदीरणामें स्वामित्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं बतलाया है।

अब मूल ग्रन्थकार उन इकतालीस प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

[मूलगा० ५०] णाणंतरायदसयं दंसण णव वेयणीय मिच्छत्तं।
सम्मत्त लोभवेदाउगाणि णव णाम उच्चं च[1]॥४७४॥

एकचत्वारिंशत्प्रकृतयो गुणस्थानं प्रति दीयन्ते—[णाणंतरायदसयं' इत्यादि। ज्ञानावरणपञ्चकं ५ अन्तरायपञ्चकं ५ दर्शनावरणनवकं ९ सातासातवेदनीयद्वयं २ मिथ्यात्वं १ सम्यक्त्वं १ लोभः १ वेदत्रयं ३ आयुष्कचतुष्कं ४ नव नामप्रकृतयः ९ उच्चैर्गोत्रं १ चेति प्रकृतय एकचत्वारिंशत् ४१॥४७४॥

ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच, दर्शनावरणकी नौ, वेदनीयकी दो, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनीय, संज्वलन, लोभ, तीन वेद, चार आयु, नामकर्मकी नौ और उच्चगोत्र; इन इकतालीस प्रकृतियोंके उदय और उदीरणामें स्वामित्वकी अपेक्षा विशेषता बतलाई गई है॥४७४॥

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय और चार दर्शनावरण, इन चौदह प्रकृतियोंकी बारहवें गुणस्थानमें एक आवली काल शेष रहने तक उदय और उदीरणा बराबर होती रहती है। किन्तु तदनन्तर उनका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। शरीरपर्याप्तिके सम्पन्न होनेके पश्चात् इन्द्रियपर्याप्तिके सम्पन्न नहीं होने तक मध्यवर्ती कालमें निद्रा आदि पाँच दर्शनावरण प्रकृतियोंका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। इसके सिवाय शेष समयमें उदय और उदीरणा एक साथ होती है। साता और असाता वेदनीयकी उदय और उदीरणा छट्ठे गुणस्थान तक एक साथ होती है; किन्तु उपरिम गुणस्थानोंमें इन दोनोंका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं। प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवके अन्तरकरण करनेके पश्चात् प्रथम स्थिति में एक आवली कालके शेष रहनेपर मिथ्यात्वका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। क्षायिकसम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जिस वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय होनेपर सम्यक्त्वप्रकृतिकी सर्व-अपवर्तनाकरणके द्वारा अपवर्तनासे अन्तर्मुहूर्त्तप्रमित स्थिति शेष रह जाती है, तदनन्तर उदय और उदीरणाके द्वारा क्रमशः क्षीण होती हुई वह स्थिति जब आवलीमात्र शेष रह जाती है, तब उस समयसे लेकर सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। अथवा उपशमश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके अन्तरकरण करनेपर प्रथमस्थितिमें आवलीकालके शेष रह जानेपर उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती।

१. सप्ततिका० ५५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्वलन लोभकी सर्व प्राणियोंके उदय और उदीरणा सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके कालमें एक आवली शेष रहने तक होती रहती है। तदनन्तर आवलीमात्र कालमें उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। तीनों वेदोंमेंसे जिस वेदके उदयसे जीव श्रेणीपर चढ़ता है उसके अन्तरकरण करनेपर प्रथमस्थितिमें एक आवलीकालके शेष रह जानेके पश्चात् उस वेदका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं। चारों ही आयुकर्मोका अपने-अपने भवकी अन्तिम आवलीके शेष रह जानेपर उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। किन्तु मनुष्यायुमें इतना विशेष ज्ञातव्य है कि छठे गुणस्थान तक उसके उदय और उदीरणा दोनों होते हैं, किन्तु उससे ऊपरके सर्व अप्रमत्त जीवोंके उसका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। नामकर्मकी वक्ष्यमाण नौ प्रकृतियोंका और उच्चगोत्रका तेरहवें गुणस्थान तक उदय और उदीरणा दोनों होते हैं। किन्तु चौदहवें गुणस्थानमें उनका केवल उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती। इन इक्कीस-प्रकृतियोंके सिवाय शेष सर्व प्रकृतियोंके उदय और उदीरणामें स्वामित्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

अब भाष्यगाथाकार उपर्युक्त गाथासूत्रसे सूचित नामकर्मको नौ प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं

मणुयगई पंचिंदिय तस बायरणाम सुहयमादिज्जं।
पज्जत्तं जसकित्ती तित्थयरं णाम णव होंति ॥४७५॥

1

मिथ्या०			नरकायु देवायु	ति०आ०	प्र० सं०	सम्य०		वेदः	लोभः		ज्ञा०५ द०४ नाम० अंत०५ नि०प्र०	मनु०	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१			२	१	६	१		३	१		१६	१०	

सव्वे मेलिया ४१।

नाम्नो नव का इति चेदाह—['मणुयगई पंचिंदिय' इत्यादि।] मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसत्वं १ बादरनाम १ सुभगं १ आदेयं १ पर्याप्तं १ यशस्कीर्त्तिनाम १ तीर्थङ्करत्वं चेति नाम्नो नव प्रकृतयो भवन्ति ९। एतासां ४१ प्रकृतीनामुदीरणाऽपक्वपाचना सासादन-मिश्रापूर्वकरणोपशान्तकषायायोगिकेवलिगुणस्थानेषु न भवति, अन्यगुणस्थानेषु एतासामुदीरणा भवति ॥४७५॥

गुणस्थानेषु उदीरणाप्रकृतयः

गुण०	मि०	सा०	मि०	अ०	दे०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
उदी० सं०	१	०	०	२	१	६	१	०	३	१	०	१६	१०	०

ज्ञा० ५
उदी० प्र० मिथ्या० ० ० नर० देवा० तिर्य० सातादि० सम्य० ० वेदाः सं०लो० ० अ० ५ मनु० ०
द० ६

तथाहि मिथ्यात्वप्रकृतेर्मिथ्यादृष्टौ उपशमसम्यक्त्वाभिमुखस्य समयाधिकावलिपर्यन्तमुदीरणाकरणं स्यात् १। तावत्पर्यन्तमेव तदुदयात्। सासादने मिश्रे च शून्यम्०। असंयते देव-नरकायुषोरुदीरणा २। देशसंयते तिर्यगायुष उदीरणा १। प्रमत्ते सातासाते २ मनुष्यायुः १ स्त्यानगृद्धित्रय ३ मिति षण्णामुदीरणा ६। अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतेरुदीरणा १। अपूर्वकरणे शून्यमुदीरणा नास्ति०। अनिवृत्तिकरणे वेदानां त्रयाणा-

1. ५, ४४३-४४७। तथा तदधस्तनसंख्याङ्कपंक्तिश्च (पृ० २२०)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुदीरणा ३ । सूक्ष्मसाम्पराये संज्वलनसूक्ष्मलोभस्योदीरणा १, अन्यत्र तदुदयाभावात् । उपशान्ते शून्यम्० । क्षीणकषाये ज्ञानावरणान्तरायदशकं १० निद्रा-प्रचलाद्विकं २ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरण-चतुष्क ४ मिति षोडशानामुदीरणा १६ । सयोगे मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसं १ बादरं १ सुभगं १ आदेयं १ पर्याप्तं १ यशः १ तीर्थकरत्वं १ उच्चैर्गोत्र १ मिति दशानां १० प्रकृतीनामुदीरणा भवति । अयोगे शून्य० मुदीरणा नास्ति । सर्वा मीलिताः ४१ । तथा चोक्तम्-

मिथ्यात्वं तत्र दुर्दृष्टौ तुर्ये श्वभ्र-सुरायुषी ।
तैरश्चं जीवितं देशे षडेताः सप्रमादके ॥३१॥

सातासातमनुष्यायुः स्त्यानगृद्धित्रयाभिधाः ।
सम्यक्त्वं सप्तमे वेदत्रितयं त्वनिवृत्तिके ॥३२॥

लोभः संज्वलनः सूक्ष्मे क्षीणाख्ये दृक्चतुष्टयम् ।
दश ज्ञानान्तरायस्था निद्राप्रचलयोर्द्वयम् ॥३३॥

त्रसपञ्चाक्षपर्याप्तबादरोच्चनृरीतयः[1] ।
तीर्थकृत्सुभगादेययशांसि दश योगिनि[2] ॥३४॥

१।०।०।२।१।६।१।०।३।१।०।१६।१०।मीलिताः ४१ । इति विशेषः ।

मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्त्ति और तीर्थंकर ये नौ नामकर्मकी प्रकृतियाँ हैं ॥४७५॥

विशेषार्थ—ऊपर उदय और उदीरणाकी अपेक्षा जिन इकतालीस प्रकृतियोंका स्वामित्व-भेद बतलाया गया है, उनके विषयमें यह विशेष ज्ञातव्य है कि सासादन, मिश्र, अपूर्वकरण, उपशान्तमोह और अयोगिकेवली, इन पाँच गुणस्थानोंमें किसी भी प्रकृतिकी उदीरणा नहीं होती है। अन्य गुणस्थानोंमें भी सबमें सभीकी उदीरणा नहीं होती है, किन्तु मिथ्यात्वकी पहले गुणस्थानमें ही उदीरणा होती है, अन्यमें नहीं। नरकायु और देवायु, इन दो कर्मोंकी उदीरणा चौथे गुणस्थानमें ही सम्भव है, अन्यत्र नहीं। तिर्यगायुकी उदीरणा पाँचवें गुणस्थानमें होती है, अन्यत्र नहीं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मनुष्यायु, निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि; इन छह प्रकृतियोंकी उदीरणा छठे गुणस्थानमें ही संभव है, अन्यत्र नहीं। सातवें गुणस्थानमें सम्यक्त्वप्रकृतिकी उदीरणा होती है। तीनों वेदोंकी उदीरणा नवें गुणस्थानमें होती है। संज्वलनलोभकी उदीरणा दशवें गुणस्थानमें होती है अन्यत्र नहीं। पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा और प्रचला, इन सोलह प्रकृतियोंकी उदीरणा बारहवें गुणस्थानमें होती हैं। मनुष्यगति पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र, इन दश प्रकृतियोंकी उदीरणा तेरहवें गुणस्थानमें होती है। इस कथनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी हुई है।

अब मूलसप्ततिकाकार गुणस्थानोंका आश्रय लेकर कर्मप्रकृतियोंके बन्धका निरूपण करते हैं—

[मूलगा० ५१][1]तित्थयराहारविरहियाउ अज्जेदि सव्वपयडीओ ।
मिच्छत्तवेदओ सासणो य उगुवीस सेसाओ[1] ॥४७६॥

---

1. ५, ४४८-४४९ ।

१. टीकाप्रतौ 'नृगतयः' इति पाठः । २. सं० पञ्चसं० ५, ४४४-४४७ ।

१. सप्ततिका० ५६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[मूलगा० ५२][1]छायालसेसमिस्सो अविरयसम्मो तिदालपरिसेसा ।
तेवण्ण देसविरदो विरदो सगवण्ण सेसाओ[1] ॥४७७॥

अथ गुणस्थानेषु कर्मणां प्रकृतिव्युच्छेद-बन्धाबन्धभेदाः कथ्यन्ते—['तित्थयराहार' इत्यादि ।] तीर्थङ्कराहारकद्वयरहिताः सर्वाः सप्तदशोत्तरशतप्रकृती ११७ मिथ्यात्ववेदको मिथ्यादृष्टिरर्जयति बध्नातीत्यर्थः। सासादनो जीव एकोनविंशतिं विना शेषा एकाधिकशतप्रकृतीर्बध्नाति १०१ । मिश्रगुणस्थानवर्त्ती षट्चत्वारिंशत्प्रकृतिभिर्विना शेषाश्चतुःसप्ततिं प्रकृतीर्बध्नाति ७४ । अविरतसम्यग्दृष्टिस्त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतिभिर्न्यूनाः शेषाः सप्तसप्ततिं प्रकृतीर्बध्नाति ७७ । देशविरतस्त्रिपञ्चाशत्प्रकृतिविरहिताः शेषाः सप्तषष्टिं प्रकृतीर्बध्नाति ६७ । विरतः प्रमत्तो मुनिः सप्तपञ्चाशत्प्रकृतिभिर्विना त्रिषष्टिं प्रकृतीर्बध्नाति ६३ ॥४७६–४७७॥

मिथ्यात्वका वेदन करनेवाला अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थङ्करप्रकृति और आहारकद्विक; इन तीन प्रकृतियोंके विना शेष सर्व प्रकृतियोंका उपार्जन अर्थात् बन्ध करता है। सासादनसम्यग्दृष्टि उन्नीसके विना शेष सर्व प्रकृतियोंका बन्ध करता है। मिश्रगुणस्थानवर्ती छियालीसके विना, अविरतसम्यग्दृष्टि तेतालीसके विना, देशविरत तिरेपनके विना और प्रमत्तविरत सत्तावनके विना शेष सर्व प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥४७६–४७७॥

विशेषार्थ—प्रस्तुत ग्रन्थके दूसरे और तीसरे प्रकरणमें यह बतलाया जा चुका है कि आठों कर्मोंकी जो १४८ उत्तरप्रकृतियाँ हैं, उनमेंसे बन्धयोग्य केवल १२० ही होती हैं। इसका कारण यह है कि नामकर्मकी प्रकृतियोंमें जो पाँच बन्धन और पाँच संघात बतलाये गये हैं, उनका बन्ध शरीरनामकर्मके बन्धका अविनाभावी है। अर्थात् जहाँ जिस शरीरका बन्ध होता है, वहाँ उस बन्धन और संघातका अवश्य बन्ध होता है। अतः बन्धप्रकृतियोंमें पाँच बन्धन और पाँच संघातका ग्रहण नहीं किया जाता है। इसी प्रकार वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नामकर्मके अवान्तर भेद यद्यपि २० होते हैं, किन्तु एक समयमें किसी एक रूप, रस, गन्ध और स्पर्शका ही बन्ध संभव होनेसे वर्णादिक चार सामान्य प्रकृतियाँ ही बन्धयोग्य मानी गई हैं। इस प्रकार वर्णादिककी सोलह और बन्धन-संघातसम्बन्धी दश प्रकृतियोंको एक सौ अड़तालीसमेंसे घटा देनेपर १२२ प्रकृतियाँ रह जाती हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति भी बन्धयोग्य नहीं मानी गई है, क्योंकि करण-परिणामोंके द्वारा मिथ्यात्वदर्शनमोहनीयके तीन भाग करने पर ही उनकी उत्पत्ति होती है। अतएव इन दो के भी घट जानेसे शेष १२० प्रकृतियाँ ही बन्धयोग्य रह जाती हैं। उनमेंसे आहारकद्विक और तीर्थङ्करप्रकृतिका बन्ध मिथ्यात्वमें संभव न होनेसे शेष ११७ का बन्ध बतलाया गया है। मिथ्यात्वगुणस्थानके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकद्विक, नरकायु, एकेन्द्रिय आदि चार जातियाँ, हुंडकसंस्थान, सृपाटिका संहनन, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त; इन सोलह प्रकृतियोंकी प्रथम बन्ध-व्युच्छित्ति हो जानेसे सासादनमें बन्धयोग्य १०१ रह जाती हैं। दूसरे गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धिचतुष्क, स्त्यानगृद्धित्रिक, स्त्रीवेद, तिर्यग्द्विक, तिर्यगायु, मध्यम चार संस्थान; चार संहनन; उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र इन पच्चीस प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छित्ति हो जानेसे ७६ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, किन्तु मिश्र गुणस्थानमें किसी भी आयुकर्मका बन्ध नहीं होता है, अतएव मनुष्यायु और देवायु ये दो प्रकृतियाँ और भी घट जाती हैं। इस प्रकार (१६ + २५ + २ = ४६) छियालीसके विना शेष ७४ प्रकृतियोंका सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव बन्धक माना गया है। अविरत सम्यग्दृष्टिके तैंतालीस

1. सं० पञ्चसं० ५, ४५० ।

1. सप्ततिका० ५७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४७) के विना शेष सतहत्तर (७७) का बन्ध होता है। इसका कारण यह है कि इस गुणस्थानमें मनुष्यायु और देवायुका बन्ध होने लगता है, तथा तीर्थंकर प्रकृतिका भी बन्ध सम्भव है। अतएव तीसरे गुणस्थानमें नहीं बँधनेवाली ४६ मेंसे तीनके और निकल जानेसे ४३ के विना शेष ७७ का चौथेमें बन्ध माना गया है। देशविरतमें ५३ के विना शेष ६७ का बन्ध कहा है। इसका कारण यह है कि चौथे गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे जिन दश प्रकृतियोंका बन्ध होता था, उनका बन्ध पाँचवें गुणस्थानमें नहीं होता है। वे दश प्रकृतियाँ ये हैं—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, मनुष्यद्विक, मनुष्यायु, औदारिकद्विक और वज्रवृषभनाराचसंहनन। अतएव चौथेमें बन्धके अयोग्य ४३ में १० और मिला देनेपर ५३ हो जाती हैं। बन्धयोग्य १२० मेंसे ५३ के घटा देनेपर शेष ६७ प्रकृतियोंका देशविरत बन्धक कहा गया है। प्रमत्तविरतके ५७ के विना शेष ६३का बन्ध होता है। इसका कारण यह है कि यहाँपर प्रत्याख्यानावरण कषाय-चतुष्कका भी बन्ध नहीं होता। अतः ६७ मेंसे ४ के घटा देनेपर ६३ बन्ध-योग्य; तथा ५३ में ४ बढ़ा देनेपर ५७ अबन्ध-योग्य प्रकृतियाँ छठे गुणस्थानमें बतलाई गई हैं।

अब भाष्यगाथाकार उपर्युक्त अर्थका स्वयं ही निर्देश करते हैं—

सत्तरसधियसदं खलु मिच्छादिट्ठी दु बंधओ भणिओ।
एगुत्तरसयपयडी सासणसम्मा दु बंधंति ॥४७८॥

1
तित्थयराहारदुगूणा मिच्छे— १६ / ११७ / ३ / ३१ सासणे २५ / १०१ / १९ / ४७

सप्तदशाधिशतप्रकृतीनां बन्धको मिथ्यादृष्टिर्भणितः ११७। एकोत्तरशतप्रकृतीः सासादनरुचयो १०१ [बध्नन्ति] ॥४७८॥

तीर्थङ्कराहारकद्वयहीना मिथ्यादृष्टौ व्यु० १६ ब० ११७ अ० ३ (३१) सासादने व्यु० २५ ब० १०१ अ० १९ (४७)।

मिथ्यादृष्टि जीव नियमसे सत्तरह अधिक सौ अर्थात् एक सौ सत्तरह प्रकृतियोंका बन्धक कहा गया है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एक अधिक सौ अर्थात् एक सौ एक प्रकृतियोंका बन्ध करते हैं ॥४७८॥

बन्धके अयोग्य तीर्थंकर और आहारकद्विक इन तीनके विना मिथ्यात्वमें बन्ध-योग्य ११७ सासादनमें बन्ध-अयोग्य १९ के विना बन्ध-योग्य १०१ प्रकृतियाँ होती हैं। इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

चउहत्तरि सत्तत्तरि मिस्सो य असंजदो तहा चेव।
सत्तट्ठि देसविरदो तेसट्ठिं बंधगो पमत्तो दु ॥४७९॥

मणुय-देवाउं विणा मिस्से ० / ७४ / ४६ / ७४ तित्थयर-मणुय-देवाऊहिं सह अविरदे १० / ७७ / ४३ / ७१ देसे ४ / ६७ / ५३ / ८१ पमत्ते ६ / ६३ / ५७ / ८५।

1. सं० पञ्चसं० ५, 'तीर्थंकराहारकद्वयहीना' इत्यादिगद्यभागः (पृ० २२१)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुःसप्ततिं प्रकृतीर्मिश्रो बध्नाति ७४ । असंयतः सप्तसप्ततिं ७७ बध्नाति । देशसंयतः सप्तषष्टिं बध्नाति ६७। प्रमत्तस्त्रिषष्टिं बध्नाति ६३ ॥४७६॥

मनुष्य-देवायुष्यबन्धं विना मिश्रे ब० ७४ (व्यु० ०, अ० ४३, ७४) । तीर्थङ्कर-मनुष्य-देवायुष्कैः सह अविरते ब० ७७ (व्यु० १०, अ० ४३, ७१) ।

देशसंयते ब० ६७ (व्यु० ४, अ० ५३, ८१) । प्रमत्ते ब० ६३ (व्यु० ६, अ० ५७, ८५) ।

मिश्र गुणस्थानवर्ती चौहत्तर प्रकृतियोंका बन्धक है। असंयतसम्यग्दृष्टि सतहत्तरका बन्धक है। देशविरत सड़सठका तथा प्रमत्तविरत तिरेपन प्रकृतियोंका बन्धक होता है ॥४७६॥

मनुष्यायु और देवायुके विना मिश्रमें बन्धयोग्य ७४ है। तीर्थंकर, मनुष्य और देवायुके साथ अविरतमें बन्ध-योग्य ७७ हैं। देशविरतमें ६७ और प्रमत्तविरतमें ६३ बन्ध-योग्य हैं। इनकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

[मूलगा०५३][1]उगुसट्ठिमप्पमत्तो बंधइ देवाउगं च इयरो वि।
अट्ठावण्णमपुव्वो छप्पण्णं चावि छव्वीसं[1] ॥४८०॥

[2]आहारदुगेण सह अप्पमत्तो — १, ५९, ६१, ८६

अपुव्वे सत्तभाएसु—

२	०	०	०	०	३०	४
५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
६२	६४	६४	६४	६४	६४	९४
९०	९२	९२	९२	९२	९२	१२२

अप्रमत्तः एकोनषष्टिं बध्नाति ५९ । देवायुरत्यक्त्वा इतराः अष्टपञ्चाशत्प्रकृतीरपूर्वकरणो बध्नाति । तथाहि—अपूर्वकरणस्य प्रथमे भागे अष्टपञ्चाशत्प्रकृतीर्बध्नाति ५८ । [षष्ठभागान्तं षट्पञ्चाशत् प्रकृतीर्बन्धाति ५६ ।] सप्तमे भागे षड्विंशतिं प्रकृतीर्बध्नाति २६ ॥४८०॥

आहारकद्विकबन्धेन सह अप्रमत्तगुणस्थाने—ब० ५९ । (व्यु० १, अ० ६१, ८६)

अपूर्वकरणस्य सप्तभागेषु—

व्यु०	२	०	०	०	०	३०	४
ब०	५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६
अ०	६२	६४	६४	६४	६४	६४	९४
	९०	९२	९२	९२	९२	९२	१२२

अप्रमत्तसंयत उनसठ प्रकृतियोंको बाँधता है, तथा देवायुको भी बाँधता है। अपूर्वकरणसंयत अट्ठावन, छप्पन और छब्बीस प्रकृतियोंको भी बाँधता है ॥४८०॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ४५१ । 2. ५, 'आहारकद्विकेन' सहाप्रमत्ते' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २२१)।
१. सप्ततिका० ५८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—छठे गुणस्थानमें ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता था, किन्तु सातवें गुणस्थानमें असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशस्कीर्त्ति, इन छह प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है और आहारकद्विकका बन्ध होने लगता है, इसलिए ६३ मेंसे ६ घटानेपर ५७ प्रकृतियाँ रह जाती हैं किन्तु उनमें आहारकद्विक मिला देनेपर ५९ प्रकृतियाँ बन्ध योग्य हो जाती हैं। इन ५९ प्रकृतियोंमें यद्यपि देवायु सम्मिलित है, फिर भी गाथा सूत्रकारने 'अप्रमत्तसंयत देवायुको भी बाँधता है' ऐसा जो वाक्य-निर्देश किया है, उसका अभिप्राय चूर्णीकारने यह बतलाया है कि देवायुके बन्धका प्रारम्भ प्रमत्तसंयत ही करता है, किन्तु उसका बन्ध करते हुए यदि वह ऊपरके गुणस्थानमें चढ़े तो, अप्रमत्तसंयतके भी देवायुका बन्ध होता रहता है। इसका अर्थ यह निकला कि सातवें गुणस्थानमें देवायुके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता है, हाँ, यदि कोई प्रमत्तसंयत उसका बन्ध करता हुआ अप्रमत्तसंयत होवे, तो उसके बंध अवश्य संभव है। सातवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें देवायुके बन्धकी व्युच्छित्ति हो जाती है, अतः आठवें गुणस्थानके पहले संख्यातवें भागमें अपूर्वकरणसंयत ५८ प्रकृतियोंका बन्ध करता है। तदनन्तर निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेपर संख्यातवें भागके शेष रहने तक वह ५६ प्रकृतियोंका बन्ध करता है। तदनन्तर देवगति, देवगत्यानुपूर्वी पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीरद्विक, आहारकद्विक, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर, इन तीस प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाने पर अन्तिम भागमें वह अपूर्वकरणसंयत २६ प्रकृतियोंका बन्ध करता है। अपूर्वकरणके सातों भागोंमें बन्ध, अबन्ध आदि प्रकृतियोंकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

[मूलगा०५४][1]बावीसा एगूणं बंधइ अट्ठारसं च अणियट्टी।
सतरस सुहुमसराओ सायममोहो सजोई[1] दु ॥४८१॥

[2] अणियट्टीए पंचसु भाएसु — सुहुमादिसु य—

१	१	१	१	१	१६	०	०	१	०
२२	२१	२०	१९	१८	१७	१	१	१	०
९८	९९	१००	१०१	१०२	१०३	११९	११९	११९	१२०
१२६	१२७	१२८	१२९	१३०	१३१	१४७	१४७	१४७	१४८

अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमे भागे द्वाविंशतिं २२ द्वितीये भागे एकविंशतिं २१ तृतीये भागे विंशतिं २० चतुर्थे भागे एकोनविंशतिं १९ पञ्चमे भागे अष्टादशप्रकृतीर्बध्नाति १८। सूक्ष्मसाम्परायः सप्तदश प्रकृतीर्बध्नाति १७। अमोह इति उपशान्त-क्षीणकषाय-सयोगिनां एकस्य साताकर्मणो बन्धो भवति। एते उपशान्त-क्षीण-सयोगिनः एकं सातं बध्नन्तीत्यर्थः। अयोगी अबन्धको भवेत् ॥४८१॥

	व्यु०	१	१	१	१	१
अनिवृत्तिकरणस्य पञ्चसु भागेसु	ब०	२२	२१	२०	१९	१८
	अ०	९८	९९	१००	१०१	१०२
		१२६	१२७	१२८	१२९	१३०

1. सं० पञ्चसं० ५' ४५२। 2. , 'अनिवृत्तौ पञ्चसु भागेसु' इत्यादि (पृ० २२१)।

1. सप्ततिका० ५९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मसाम्परायादिषु—

व्यु०	१६ कन	०	०	१	०
बं०	१७ वार	१	१	१	०
अ०	१०३	११६	११६	११९	१२०
	१३१	१४७	१४७	१४७	१४८

अनिवृत्तिकरणसंयत बाईसका और उसमेंसे एक-एक कम करते हुए इक्कीस, बीस, उन्नीस और अट्ठारह प्रकृतियोंका बन्ध करता है। सूक्ष्मसाम्परायसंयत सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध करता है। तथा मोहरहित ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव और सयोगिकेवली जिन एक सातावेदनीयका बन्ध करते हैं ॥४८१॥

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेसे अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें बाईस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। पुनः प्रथम भागके अन्तिम समयमें पुरुषवेदकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेसे द्वितीय भागमें इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। पुनः दूसरे भागके अन्तिम समयमें संज्वलन क्रोधकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेपर तृतीय भागमें बीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। तृतीय भागके अन्तिम समयमें संज्वलनमानकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाने पर चतुर्थ भागमें उन्नीस प्रकृतियोंका बन्ध होता है। चौथे भागके अन्तिम समयमें संज्वलन मायाकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेपर पंचम भागमें अठारह प्रकृतियोंका बन्ध होता है। पाँचवें भागके अन्तिम समयमें संज्वलन लोभकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है और वह जीव दशवें गुणस्थानमें पहुँचकर सत्तरह प्रकृतियोंका बन्ध करने लगता है। इस गुणस्थानके अन्तमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, इन सोलह प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, अतएव ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानमें एक मात्र सातावेदनीयका बन्ध होता है। तेरहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें सातावेदनीय प्रकृतिकी भी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है, इसलिए अयोगिकेवलीके किसी भी प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है। अनिवृत्तिकरणके पाँचो भागोंमें और सूक्ष्मसाम्पराय आदि शेष गुणस्थानोंमें बन्ध-अबन्ध आदिकी अंकसंदृष्टि मूलमें दी है।

अब मूल सप्ततिकाकार प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हुए इसी स्वामित्वको मार्गणाओंमें भी जाननेके लिए संकेत करते हैं—

[मूलगा० ५५] एसो दु बंधसामित्तोघो गदिआदिएसु बोहव्वो।
ओघाओ साहेज्जो जत्थ जहा पयडिसंभवो होइ[1] ॥४८२॥

एषः प्रत्ययीभूतो बन्धस्वामित्वगुणस्थानकयुक्तः गतीन्द्रियकाययोगादिषु मार्गणासु ज्ञातव्यो भवति। यत्र गत्यादिमार्गणासु यथासम्भवं प्रकृतिसम्भवो भवति, तथा तत्र गुणस्थानेभ्यः सकाशात् साधितव्यो भवति ॥४८२॥

यह ओघ-प्ररूपित अर्थात् गुणस्थानोंकी अपेक्षासे कहा गया बन्धस्वामित्व गति आदि मार्गणाओंमें भी जहाँ जितनी प्रकृतियाँ संभव हों वहाँपर ओघके समान सिद्ध कर लेना चाहिए ॥४८२॥

विशेषार्थ—मूल ग्रन्थकारने गुणस्थानोंमें कर्म-प्रकृतियोंके बन्ध और अबन्धका कथन कर दिया है, अब वे कर्म-प्रकृतियोंके बन्ध-स्वामित्वको और भी विशेष रूपसे जाननेके लिए अपने

1. सं० पञ्चसं० ५, ४५३।

1. सप्ततिका० ६०।

शिष्योंको यह संकेत कर रहे हैं कि इस प्रकार चौदह मार्गणाओंकी अपेक्षासे भी जहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध सम्भव हो, उसे आगमके अनुसार जान लेना चाहिए। सो इसके विशेष परिज्ञानके लिए गो० कर्मकाण्डका बन्धाधिकार देखना आवश्यक है विस्तारके भयसे भाष्यगाथाकारने उसका विवेचन नहीं किया है।

अब मूल सप्ततिकाकार किस गतिमें कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व होता है, यह बतलाते हैं—

[मूलगा० ५६][1]तित्थयर देव-णिरयाउगं च तीसु वि गदीसु बोहव्वं।
अवसेसा पयडीओ हवंति सव्वासु वि गदीसु[1] ॥४८३॥

अथ प्रकृतिसत्त्वपरिभाषामाह—['तित्थयर-देव-णिरयाउगं' इत्यादि।] तीर्थङ्करप्रकृतिसत्त्वं तिर्यग्गतिं विना नरक-मनुष्य-देवगतिषु तिसृषु भवति ज्ञातव्यम्। देवायुःसत्त्वं च द्वयोस्तिर्यग्मनुष्यगत्योः स्यात्। अवशेषाः १४५ प्रकृतयः सर्वासु गतिषु सत्त्वरूपा भवन्ति ॥४८३॥

तीर्थंकर नामकर्म, देवायु और नरकायु; इन तीन प्रकृतियोंका सत्त्व तीन तीन ही गतियोंमें जानना चाहिए। इसके सिवाय शेष सर्व प्रकृतियाँ सर्व गतियोंमें पाई जाती हैं ॥४८३॥

अब भाष्यगाथाकार उक्त गाथासूत्रके अर्थका स्पष्टीकरण करते हैं—

[2]देवेसु य णिरयाऊ देवाऊ णत्थि चेव णिरएसु।
तित्थयरं तिरएसु य सेसाओ होंति चउसु वि गदीसु ॥४८४॥

देवगतौ भुज्यमानदेवायुः बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुषी चेति सत्त्वत्रयम्, नरकगतौ भुज्यमाननरकायुः बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुषी चेति सत्त्वत्रयम्, देवायुःसत्त्वं नास्ति। तिर्यग्गतौ तिर्यग्जीवे तीर्थंकृत्त्वसत्त्वं न स्यात्। शेष १४५ प्रकृतिसत्त्वानि चतुर्गतिषु भवन्ति ॥४८४॥

देवोंमें नरकायु और नारकियोंमें देवायु नहीं पाई जाती है। इसी प्रकार तिर्यंचोंमें तीर्थंकर प्रकृति नहीं पाई जाती है। शेष सर्व प्रकृतियाँ चारों ही गतियोंमें पाई जाती हैं ॥४८४॥

विशेषार्थ—देव मरकर नरकगतिमें उत्पन्न नहीं हो सकता और नारकी मरकर देवगतिमें उत्पन्न नहीं हो सकता, ऐसा नियम है। अतः देवोंके नरकायुका और नारकियोंके देवायुका बन्ध नहीं होता। और इसी कारण देवायुका सत्त्व नरकगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंमें, तथा नरकायुका सत्त्व देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंमें पाया जाता है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले मनुष्यके देवायु या नरकायुका बन्ध सम्भव है। पर उसके तिर्यगायुका बन्ध कदाचित् भी सम्भव नहीं है क्योंकि तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्तावाला जीव तिर्यंचोंमें उत्पन्न नहीं होता है, ऐसा नियम है। अतएव तीर्थंकरप्रकृतिका सत्त्व तिर्यग्गतिको छोड़कर शेष तीन ही गतियोंमें पाया जाता है।

अब मूलग्रन्थकार मोहकर्मके उपशमन करनेका विधान करते हैं—

[मूलगा० ५७][3]पढमकसायचउक्कं दंसणतिय सत्तया दु उवसंता।
अविरयसम्मत्तादी जाव णियट्टि त्ति णायव्वा[2] ॥४८५॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४५४। 2. ५, ४५५। 3. ५, ४५६।

१. सप्ततिका० ६१। २. सप्ततिका० ६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ गुणस्थानेषु मोहोपशमविधानं गाथाचतुष्केनाह—['पढमकसायचउक्कं' इत्यादि ।] प्रथमकषायचतुष्कं अनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया-लोभाश्चत्वारः कषायाः ४ मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्व-सम्यक्त्व-प्रकृतयः इति दर्शनत्रिकं ३ एतासां सप्तानां प्रकृतीनां ७ उपशमेन युक्ता जीवा असंयतसम्यग्दृष्ट्यादि-निवृत्तिकरणपर्यन्ता ज्ञातव्या भवन्ति ॥४८५॥

प्रथम कषाय-चतुष्क और दर्शनत्रिक; ये सातों ही प्रकृतियाँ अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानसे लेकर निवृत्ति अर्थात् अपूर्वकरण गुणस्थान तक उपशान्त हो जाती हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४८५॥

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मके दो भेद हैं, दर्शनमोह और चारित्रमोह। दर्शन मोहकी तीन और चारित्रमोहकी पच्चीस प्रकृतियाँ होती हैं। उनमेंसे दर्शन मोहकी तीन और चारित्रमोहकी अनन्तानुबन्धि-चतुष्क, इन सात प्रकृतियोंका चौथे गुणस्थानसे लेकर आठवें गुणस्थान तक नियमसे उपशम हो जाता है।

अब भाष्यगाथाकार चारित्रमोहकी शेष प्रकृतियोंके उपशमनका विधान करते हैं—

[मूलगा० ५८][1]सत्तट्ठ णव य पण्णरस सोलस अट्ठरस वीस बावीसा ।
चउवीसं पणवीसं छव्वीसं बायरे जाणे[1] ॥४८६॥

अणियट्टिम्मि[*] ७।८।९।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२५।२६।

बादरे अनिवृत्तिकरणे सप्तप्रकृत्युपशामकोऽनिवृत्तिगुणस्थानवर्ती ७ संख्याततमे भागे नपुंसकवेदमुपशमयति, तेन सहाष्टकम् ८। ततः स्त्रीवेदमुपशमयते, तेन सह नवकम् ९। ततः षण्णोकषायानुपशमयति, तैः सह पञ्चदशकम् १५। ततः पुंवेदमुपशमयति। तेन सह षोडश १६। तदनन्तरं अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-क्रोधद्वयमुपशमयति। ताभ्यां सहाष्टादश १८। तदनन्तरं संज्वलनक्रोधमुपशमयति। तेन सह एकोनविंशतिः १९। तदनन्तरं अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानमानद्वयमुपशमयति। ताभ्यां सहैकविंशतिः २१। तदनन्तरं संज्वलनमानमुपशमयति। तेनसह द्वाविंशतिः २२। तदनन्तरं अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानमायाद्वयमुपशमयति। ताभ्यां सह चतुर्विंशतिः २४। तदनन्तरं संज्वलनमायामुपशमयति। तया सह पञ्चविंशतिः २५। तदनन्तरं अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानलोभद्वयमुपशमयति। ताभ्यां सह सप्तविंशतिः २७। तदनन्तरं बादरलोभमुपशमयति। तेन सहाष्टाविंशतिः २८। सूक्ष्मसाम्पराये उपशान्तकषाये च संज्वलनसूक्ष्मलोभमुपशमयति। ७। षं० १ स्त्री १।९। पु० १। क्रो २। क्रो १। मा २। मा १। मा २। मा १। लो २। लो १। इदमुपशमविधानं **गोम्मट्टसारे** प्रोक्तमस्ति। पञ्चसंग्रहोक्तभावोऽयं कथ्यते—अनिवृत्तिकरणसंख्यातभागेषु सप्तप्रकृतीनामुपशमकः। ७। षण्ढेन सह ८। स्त्रीवेदेन सह ९। हास्यादिभिः षड्भिः सह १५। पुंवेदेन सह १६। मध्यकषायक्रोधद्वयेन सह १८। मध्यकषायमानद्वयेन सह २०। मध्यकषाय-मायाद्वयेन सह २२। मध्यकषायलोभद्वयेन सह २४। संज्वलनक्रोधेन सह २५। संज्वलनमानेन सह २६। क्षीणकषाये [सूक्ष्मसाम्पराये] संज्वलनमायया सह २७। उपशान्ते संज्वलनलोभेन सह २८ इति पञ्चसंग्रहोक्तोपशमविधानम् ॥४८६॥

बादर अर्थात् अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें क्रमशः सात, आठ, नौ, पन्द्रह, सोलह, अट्ठारह, बीस, बाईस, चौबीस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतियोंका उपशमन जानना चाहिए ॥४८६॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४६० ।

१. इन गाथाओंके स्थान पर श्वे० सप्ततिकामें कोई गाथा नहीं है ।

*ब अणियट्टियम्मि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिवृत्तिकरणमें उपशम होनेवाली प्रकृतियोंका क्रम इस प्रकार है—७, ८, ६, १५, १६, १८, २०, २२, २४, २५, २६।

अब आचार्य उपर्युक्त क्रमसे उपशान्त होनेवाली प्रकृतियोंका नामनिर्देश करते हैं—

[1]अण मिच्छ मिस्स सम्मं संढित्थी हस्सछक्क पुंवेदो।
वि ति कोहाई दो दो कमसो संता य संजलणा ॥४८७॥

७।१।१।६।१।२।२।२।२।१।१।१।१। एए मेलिया २८।

अनन्तानुबन्धि चतुष्कं ४ मिथ्यात्वं १ मिश्रं १ सम्यक्त्वप्रकृतिः १ एवं सप्तप्रकृत्युपशमकः असंयताद्यनिवृत्तिकरणान्तो भवति। सप्तप्रकृत्युपशमकोऽनिवृत्तिकरणः ७ स्वसंख्यातबहुभागेषु षण्ढवेदमुपशमयति १। तदनन्तरं स्त्रीवेदमुपशमयति १। तदनन्तरं हास्यादिषट्कमुपशमयति ६। तदनन्तरं पुंवेदमुपशमयति १। ततः द्वि-त्रिकषाय-क्रोधादिकौ द्वौ द्वौ उपशमयति। अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानक्रोधद्वयमुपशमयति २। तदनन्तरं अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानमानद्वयमुपशयति २। तदनन्तरं तन्मायाद्वयमुपशमयति २। तदनन्तरं तल्लोभद्वयमुपशमयति २। तदनन्तरं संज्वलनक्रोधमुपशमयति १। तदनन्तरं संज्वलनमानमुपशमयति १। एवमनिवृत्तिकरणो मोहप्रकृतीनां षड्विंशतेरुपशमको भवति २६। सूक्ष्मसाम्परायः संज्वलमायामुपशमयति १। तदनन्तरं उपशान्तकः संज्वलनलोभमुपशमयति १ ॥४८७॥

७।१।१।६।१।२।२।२।२।१।१।१।१। एताः सर्वाः मिलिताः २८।

अनिवृत्तिकरण बादरसाम्परायगुणस्थानके संख्यात भागों तक तो अनन्तानुबन्धिचतुष्क, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति; इन सातका उपशम रहता है। तदनन्तर नपुंसकवेदका उपशम करता है, तदनन्तर स्त्रीवेदका उपशम करता है। तदनन्तर हास्यषट्क (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और जुगुप्सा) का उपशम करता है। तदनन्तर पुरुषवेदका उपशम करता है। तदनन्तर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, इन प्रकृतियोंका उपशम करता है। तदनन्तर दोनों मध्यम मानकषायोंका उपशम करता है। तदनन्तर दोनों मध्यम-मायाकषायोंका उपशम करता है। तदनन्तर दोनों मध्यम लोभकषायोंका उपशम करता है। तदनन्तर संज्वलन क्रोधका उपशम करता है। तदनन्तर संज्वलन मानका उपशम करता है। तदनन्तर संज्वलन मायाका उपशम करता है। तदनन्तर संज्वलन बादरलोभका उपशम करता हुआ दशवें गुणस्थानमें प्रवेश करता है। पुनः दशवें गुणस्थानके अन्तमें सूक्ष्म लोभका भी उपशम करके ग्यारहवें गुणस्थानमें प्रवेश करता है। इस प्रकार सातसे लेकर छब्बीस प्रकृतियोंका उपशम अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होता है ॥४८७॥

[मूलगा० ५६][2]सत्तावीसं सुहुमे अट्ठावीसं च मोहपयडीओ।
उवसंतवीयराए† उवसंता होंति णायव्वा[1] ॥४८८॥

सुहुमे २७। उवसंते २८।

सूक्ष्मसाम्पराये सप्तविंशतिमोहप्रकृत्युपशामको मुनिः सूक्ष्मसाम्परायस्थो भवति २७। अष्टाविंशतिमोहप्रकृत्युपशामक उपशान्तकषायो भवति। इत्येवमुपशान्तपर्यन्तं मोहप्रकृत्युपशामको भवति ज्ञातव्यः। मोहनीयस्योपशमो भवति। अन्यकर्मणामुपशमविधानं नास्तीति। एतत्सर्वमोहोपशमविधानं पञ्चसंग्रहोक्तमस्ति।

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४५७। 2. ५, ४६१।

१. इन दोनों गाथाओंके स्थानपर श्वे० सप्ततिकामें कोई गाथा नहीं है।

†ब ओ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कति वारान् उपशमश्रेणिं जीवः समारोहति ? तदाह—

चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो ।
बत्तीसं वाराइं संयममुवलहिय णिव्वादि[1] ॥३५॥

उपशमश्रेणिमुत्कृष्टेन चतुर्वारानेवारोहति । क्षपितकर्मांशो जीवः उपरि नियमेन क्षपकश्रेणिमेवारोहति संयममुत्कृष्टेन द्वात्रिंशद्वारान् प्राप्य ततो नियमेन निर्वाति ।

सम्मत्तं देसजमं ऊणसंजोअणविहिं च उक्कस्सं ।
पल्लासंखेज्जदिमं वारं पडिवज्जदे जीवो[2] ॥३६॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वं वेदकसम्यक्त्वं देशसंयममनन्तानुबन्धिविसंयोजनविधिं चोत्कृष्टेन पल्यासंख्यातैकभागवारान् प्रतिपद्यते जीवः । उपरि नियमेन सिद्ध्यत्येव ॥४८८॥

दशवें सूक्ष्मसाम्परायमें मोहकी सत्ताईस प्रकृतियोंका उपशम रहता है, तथा उपशान्त कषाय वीतरागछद्मस्थ नामक ग्यारहवें गुणस्थानमें मोहकर्मकी अट्ठाईस ही प्रकृतियाँ उपशान्त रहती हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥४८८॥

बादर साम्परायमें उपशान्त प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—७, १, १, ६, १, २, २, २, २, १ १ । सूक्ष्मसाम्परायमें उपशान्तप्रकृतियाँ २७ और उपशान्तमोहमें २८ हैं ।

अब मूलसप्ततिकाकार सर्व कर्मोंके क्षपणका विधान करते हैं—

[मूलगा०६०][1]पढमकसायचउक्कं एत्तो मिच्छत्त मिस्स सम्मत्तं ।
अविरदसम्मे देसे विरदपमत्ते य खीयंति[1] ॥४८९॥

[मूलगा०६१][2]अणियट्टिबायरे थीणगिद्धितिग णिरय-तिरियणामाओ ।
संखेज्जदिमे सेसे तप्पओगा य खीयंति[2] ॥४९०॥

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशतकर्मप्रकृतिक्षपणविधिं गाथा-पञ्चदशकेन १५ निरूपयति—['पढमकसायचउक्कं' इत्यादि ।] अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्कं ४ मिथ्यात्वप्रकृतिः १ सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिः १ सम्यक्त्वप्रकृतिः १ एताः सप्त प्रकृतीः ७ असंयतसम्यग्दृष्टौ वा देशसंयते वा प्रमत्ते वा अप्रमत्ते वा क्षपयन्ति क्षयं नयन्तीत्यर्थः । तथाहि—असंयतादिषु चतुर्षु मध्ये एकतरः अनिवृत्तिकरणपरिणामकालान्तर्मुहूर्त्तचरमसमये अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्कं युगपदेव विसंयोज्य द्वादशकषाय-नवनोकषायरूपेण परिणमय्य अन्तर्मुहूर्त्तकालं विश्रम्य पुनरप्यनन्तानुबन्धिविसंयोजनवद्दर्शनमोहक्षपणोद्योगेऽपि स्वीकृतकरणलब्ध्यधःप्रवृत्तापूर्वानिवृत्तिकरणेषु तदव्युत्पस्य (?) निवृत्तिकरणकालान्तमुहूर्त्तसंख्यातबहुभागमतीत्यैकभागे मिथ्यात्वं ततः सम्यग्मिथ्यात्वं ततः सम्यक्त्वप्रकृतिं च क्रमेण क्षपयति, क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भवति, सप्तप्रकृतिक्षपको भवति । क्षपकश्रेणिचटनापेक्षया सप्तप्रकृतीनामसंयतादिचतुर्गुणस्थानेष्वेकत्र क्षपितत्वात् । नारक-तिर्यग्-देवायुषां चाबद्धायुष्कत्वेनासत्त्वात् क्षपकश्रेण्यारूढानामपूर्वकरणेऽष्टत्रिंशदुत्तरशतप्रकृतिसत्त्वं स्यात् १३८ । अनिवृत्तिकरणे संख्याततमे भागे एताः षोडश प्रकृतीः क्षपयन्ति क्षपकाः । ताः काः ? स्त्यानगृद्धित्रयं ३ नरकनाम इति नरकगति-नरकगत्यानुपूर्व्यद्वयं २ तिर्यङ्नाम इति तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यद्वयं २ तच्छेषभागेषु तत्प्रायोग्याः प्रकृतीः क्षयन्ति ॥४८९–४९०॥

---

1. सं० पञ्चसं० ५, ४६२ । 2. ४६३–४६४ ।

१. सप्ततिका० ६३ तत्र चतुर्थचरणे 'पमत्ति अपमत्ति' । २. इसके स्थानपर भी श्वे० सप्ततिकामें कोई गाथा नहीं है ।

१. गो० क० ६१६ । २. गो० क० ६१८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्क, पुनः मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, ये सात प्रकृतियाँ अविरतसम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत इन चार गुणस्थानोंमें क्षयको प्राप्त होती हैं। अनिवृत्तिकरण कालके संख्यात बहुभागोंके व्यतीत हो जानेपर और संख्यातवें भागके शेष रह जानेपर स्त्यानगृद्धित्रिक, तथा नरकगति और तिर्यग्गति प्रायोग्य अर्थात् तत्सम्बन्धी तेरह, इस प्रकार सोलह प्रकृतियाँ क्षयको प्राप्त होती हैं ॥४८६-४९०॥

अब भाष्यगाथाकार नवें गुणस्थानमें क्षय होनेवाली उन सोलह प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

[1]थीणतियं णिरयदुयं तिरियदुयं पढमजाइचदुं।
साहारणं च सुहुमं आयावुज्जोव थावरयं ॥४९१॥

एत्थ णिरयणामाओ णिरयदुयं। तिरियदुगादि तिरियगइणामाओ ।१६।

एकेन्द्रिय-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियजातिचतुष्कं ४ साधारणं १ सूक्ष्मं १ आतपः १ उद्योतः १ स्थावरं १ चेति षोडश प्रकृतीः क्षपकाः अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमभागे क्षयन्ति १६ ॥४९१॥

स्त्यानत्रिक अर्थात् स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा और प्रचला-प्रचला; नरकद्विक (नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वी) तिर्यग्द्विक (तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वी) एकेन्द्रिय आदि चार जातियाँ, साधारण, सूक्ष्म, आतप, उद्योत और स्थावर इन सोलह प्रकृतियोंका नवें गुणस्थानमें क्षय होता है ॥४९१॥

यहाँ ऊपर मूलगाथामें नरकद्विकको नरकनाम और तिर्यद्विकको तिर्यग् नामसे कहा गया है।

[मूलगा०६२][2]एत्तो हणदि कसायट्ठयं च पच्छा णउंसयं इत्थी।
तो णोकसायछक्कं पुरिसवेदम्मि संछुहइ[१] ॥४९२॥

८।१।१।६।

[मूलगा०६३][3]पुरिसं कोहे कोहं माणे माणं च छुहइ मायाए।
मायं च छुहइ लोहे लोहं सुहमम्हि तो हणइ[२] ॥४९३॥

१।१।१।१।१।

[मूलगा०६४][4]खीणकसायदुचरिमे णिद्दा पयला य हणइ छदुमत्थो।
णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमम्हि[३] ॥४९४॥

२।१४।

अत्रानिवृत्तिकरणे षोडशप्रकृतिक्षयानन्तरं अनिवृत्तिकरणः क्षपकः कषायाष्टकं शेषैकभागे अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-कषायाष्टकं क्षपयति क्षयं करोति हिनस्ति ८। पश्चात् तदनन्तरं शेषैकभागे नपुंसकवेदं क्षपयति १। ततः शेषैकभागे स्त्रीवेदं क्षपयति १। ततो हास्यादिनोकषायषट्कं हिनस्ति क्षपयति ६। नोकषायषट्कं हित्वा पुंवेदं 'संछुहइ' संस्पृशति क्षपयति १। पुंवेदं हित्वा संज्वलनक्रोधे संस्पृशति, क्रोधं क्षपयतीत्यर्थः १। क्रोधं हित्वा संज्वलनमाने संस्पृशति, संज्वलनमानं क्षपयतीत्यर्थः १। ततो मानं हित्वा क्षयं कृत्वा मायायां स्पृशति, मायां क्षपयतीत्यर्थः। ततो मायां हित्वा क्षपयित्वा लोहे स्पृशति। अत्रानिवृत्ति-

1. सं० पञ्चसं० ५, ४६५। 2. ५, ४६६। 3. ५, ४६७। 4. ५, ४६८।

१. श्वे० सप्ततिकामें यह गाथा नहीं है। २. सप्ततिका० ६४। ३. श्वे० सप्ततिकामें यह गाथा भी नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणः क्षपकः बादरलोभं क्षपयति सूक्ष्मकृष्टीः करोति । ताः कृष्टयः सूक्ष्मसाम्पराये उदयन्तीति ज्ञातव्यम् । सूक्ष्मसाम्परायः सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मकृष्टिंगतसूक्ष्मसंज्वलनलोभं क्षपयति १ । सूक्ष्मसाम्पराये सूक्ष्मसंज्वलन-लोभो व्युच्छिन्नः । अनिवृत्तिकरणे मायापर्यन्तषट्त्रिंशत्प्रकृतयः क्षयं गता व्युच्छिन्ना भवन्ति ।

अनिवृत्तिकरणे षोडशाष्टकादिक्षपणाविधानरचनासंदृष्टिः—

१६	८	१	१	६	१	१	१	१	१	१
प्र०	क०	न०	स्त्री०	नो०	पु०	क्रो०	मा०	मा०	बादरलो०	सू०लो०

क्षीणकषायस्य द्विचरमसमये उपान्त्यसमये छद्मस्थः क्षपकः निद्रा-प्रचले द्वे प्रकृती हन्ति हिनस्ति क्षपयति २ । अन्त्यसमये चरमे क्षणे ज्ञानावरणपञ्चकं ५ अन्तरायपञ्चकं ५ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरण-चतुष्कं ४ इति चतुर्दश प्रकृतीः क्षीणकषायो मुनिरन्त्यसमये क्षपयति १४ ॥४६२–४६४॥

तदनन्तर वह अनिवृत्तिकरणसंयत आठ मध्यम कषायोंका क्षय करता है। तत्पश्चात् नपुंसकवेदका क्षय करता है। तदनन्तर स्त्रीवेदका क्षय करता है। तदनन्तर नोकषायषट्कको पुरुषवेदमें संक्रान्त करता है। तदनन्तर पुरुषवेदको संज्वलनक्रोधमें संक्रान्त करता है। तद-नन्तर संज्वलनक्रोधको संज्वलनमानमें संक्रान्त करता है। तदनन्तर संज्वलनमानको संज्वलन मायामें संक्रान्त करता है। तदनन्तर संज्वलनमायाको संज्वलनलोभमें संक्रान्त करता है और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें संज्वलनलोभका क्षय करता है। पुनः बारहवें गुणस्थानमें पहुँचकर वह क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ बन जाता है और अपने गुणस्थानके द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचलाका क्षय करता है। पुनः चरम समयमें ज्ञानावरणकी पाँच, अन्तरायकी पाँच और दर्शना-वरणकी चार इन चौदह प्रकृतियोंका क्षय करता है ॥४६२-४६४॥

भावार्थ—क्षपक श्रेणीपर चढ़नेवाला जीव इस उपर्युक्त प्रकारसे कर्मप्रकृतियोंका क्षय करता हुआ दशवें गुणस्थानमें मोहका पूर्ण रूपसे क्षयकर तथा बारहवें गुणस्थानमें शेष तीन घातिया कर्मोंका भी क्षय करके सयोगिकेवली बन जाता है। सयोगिकेवली भगवान् किसी भी कर्मका क्षय नहीं करते हैं किन्तु प्रति समय असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा करते हुए विहार करते रहते हैं। तदनन्तर योग-निरोध करके अयोगी बन जाते हैं।

[मूलगा०६५][1]देवगइसहगयाओ दुचरिमभवसिद्धियम्हि खीयंति ।
सविवागेदरमणुयगइणाम णीचं पि एत्थेव[4] ॥४६५॥

द्विचरमभवसिद्धौ अयोगिकेवलिनि द्विचरमसमये उपान्त्यसमये देवगतिः १ देवगत्या सह गता देव-गतिसम्बन्धिनी देवगत्यानुपूर्वी इत्यर्थः १ । इयं प्रकृतिरेका क्षेत्रविपाका १ सविपाकेतरमनुष्यगतिनाम-जीवविपाकिन्यः पुद्गलविपाकिन्यश्च एकोनसप्ततिनामप्रकृतयः ६९ नीचगोत्रं १ एवं द्वासप्ततिं प्रकृती-रुपान्त्यसमयेऽयोगी क्षपयति ७२ ॥४६५॥

अयोगिकेवली चौदहवें गुणस्थानके द्विचरम भवसिद्धकालमें देवगति सहगत अर्थात् देव-गतिके साथ नियमसे बँधनेवाली दश प्रकृतियोंका, मनुष्यगति-सम्बन्धी जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंका, अयोगि अवस्थामें जिनका उदय नहीं आता है, ऐसी नामकर्मकी अविपाकी प्रकृतियोंका तथा नीचगोत्रका क्षय करते हैं ॥४६५॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ४६६ ।
४. सप्ततिका० ६५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब भाष्यगाथाकार उक्त प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

[1]सरजुयलमपज्जत्तदुब्भगणादेज्ज दो विहायगई ।
एयदरवेदणीयं उस्सासो अजस जीवपागाओ ॥४९६॥

।१०।

ताः का इति चेदाह—['सरजुयलमपज्जत्त' इत्यादि ।] सुस्वर-दुःस्वर युग्मं २ अपर्याप्तं १ दुर्भगं १ अनादेयं १ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्वयं २ सातासातयोर्मध्ये एकतरवेदनीयं १ श्वासोच्छ्वासं १ अयशस्कीर्तिनाम १ चेत्येता दश १० प्रकृतयः जीवविपाका जीवद्रव्ये उदयं यान्तीति जीवविपाकिन्यः १० ॥४९६॥

स्वर-युगल (सुस्वर-दुस्वर), अपर्याप्त, दुर्भग, अनादेय, विहायोगतिद्विक, कोई एक वेदनीयकर्म, उच्छ्वास और अयशस्कीर्त्ति; ये दश जीवविपाकी प्रकृतियाँ चौदहवें गुणस्थानके उपान्त्य समयमें क्षयको प्राप्त होती हैं ॥४९६॥

अयोगीके द्विचरम समयमें क्षय होनेवाली जीवविपाकी प्रकृतियाँ १० हैं ।

[2]पण्णरसं छ त्तिय छ पंच दोण्णि पंचय हवंति अट्ठेव ।
देहादिय फासंता पुग्गलपागाउ सुहजुयलं ॥४९७॥
पत्तेयागुरुणिमिणं परघादुवघादथिरजुयलं ।

।५९।

देवगईए तासिं देव–दुगं णीचगोयं च ॥४९८॥

३। सव्वे वि मेलिया ७२।

[3]बावत्तरि पयडीओ दुचरिमसमयम्मि खीणाओ ।
अंते तस्स दु बायर तस सुभगादेज्जपज्जत्तं ॥४९९॥
अण्णयरवेयणीयं मणुयाऊ मणुयजुयल तित्थयरं ।
पंचिंदियजसमुच्चं सोऽजोगो वंदणिज्जो सो ॥५००॥

७२।१३।

देहादि-स्पर्शान्ताः पञ्च शरीराणि ५ पञ्च बन्धनानि ५ पञ्च संङ्घाताः ५ इति पञ्चदश । षट् संहनन ६ आङ्गोपाङ्ग ३ षट् संस्थान ६ पञ्च वर्ण ५ द्विगन्ध २ पञ्चरसा ५ ष्टस्पर्शाः ८ इति शरीरादि-स्पर्शान्ताः पञ्चाशत् प्रकृतयः ५० । शुभाशुभयुग्मं २ प्रत्येकं १ अगुरुलघुनाम १ निर्माणं १ परघातः १ स्थिरास्थिरयुग्मं २ एवमेकोनषष्टिः प्रकृतयः ५९ पुद्गलविपाकिन्यः पुद्गले शरीरे उदयं यान्ति । दश जीवविपाकिन्यः १० । तासां मध्ये एकोनसप्ततेर्मध्ये देवगत्या देवद्विकं देवगतिः १ देवगत्यानुपूर्वी १ नीचगोत्रं १ चेति सर्वा मिलिताः द्वासप्ततिं प्रकृती ७२ रयोगिद्विचरमसमये क्षपयति । द्वासप्ततिः प्रकृतयः अयोगिद्विचरमसमये क्षयं गताः ७२ । तदनन्तरं तस्य अयोगिनः अन्त्यसमये बादरनाम १ त्रसं १ सुभगं १ आदेयं १ पर्याप्तं १ सातासातयोर्मध्ये एकतरवेदनीयं १ मनुष्यायुः १ मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्व्यद्वयं २ तीर्थकरत्वं १ पंचेन्द्रियं १ यशस्कीर्त्तिनाम १ उच्चैर्गोत्रं १ एवं त्रयोदश प्रकृतीर्योऽसौ अयोगिजिनो देवः अन्त्यसमये क्षपयति, स अयोगिजिनो वन्दनीयो भवति ॥४९७–५००॥

पाँच शरीर, पाँच बन्धन और पाँच संघात; ये पन्द्रह प्रकृतियाँ; छह संहनन, तीन अंगोपांग, छह संस्थान, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श; ये शरीरनाम कर्मसे

1. ५, ४७० । 2. ५, ४७१-४७५ । 3. ४७६-४७७ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकर स्पर्श नाम कर्म तककी पचास प्रकृतियाँ; तथा शुभ-युगल, प्रत्येकशरीर, अगुरुलघु, निर्माण, परघात, उपघात और स्थिर-युगल; ये नौ, दोनों मिलाकर उनसठ पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ हैं। देवगतिके साथ नियमसे बँधनेवाली दश प्रकृतियाँ, देवगतिद्विक और नीच गोत्र इस प्रकार (१०+५९+२+१=७२) ये बहत्तर प्रकृतियाँ अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमें क्षय होती हैं। उन्हींके अन्तिम समयमें बादर, त्रस, सुभग, आदेय, पर्याप्त, कोई एक वेदनीयकर्म, मनुष्यायु, मनुष्यगति-युगल, तीर्थंकर, पंचेन्द्रिय जाति, यशःकीर्त्ति और उच्चगोत्र, ये तेरह प्रकृतियाँ क्षयको प्राप्त होती हैं। इस प्रकार सर्व कर्म-प्रकृतियोंका क्षय करनेवाले वे अयोगिजिन हम आप सबके वन्दनीय हैं ॥४९७–५००॥

अयोगि जिनके द्विचरम समयमें ७२ और चरम समयमें १३ प्रकृतियोंका क्षय होता है।

[1]सुर-णिरय-तिरियाऊहिं विणा मिच्छे $\overset{\text{०}}{\underset{\text{३}}{\text{१४५}}}$ तित्थयराहारदुगूणा सासणे $\overset{\text{०}}{\underset{\text{६}}{\text{१४२}}}$ आहारदुगेण सह मिस्से $\overset{\text{०}}{\underset{\text{४}}{\text{१४४}}}$ तित्थयरेण सह अविरदे $\overset{\text{७}}{\underset{\text{३}}{\text{१४५}}}$ देसे $\overset{\text{७}}{\underset{\text{३}}{\text{१४५}}}$ पमत्ते $\overset{\text{७}}{\underset{\text{३}}{\text{१४५}}}$ अप्पमत्ते $\overset{\text{७}}{\underset{\text{३}}{\text{१४५}}}$ अपुव्वे $\overset{\text{०}}{\underset{\text{११}}{\text{१३८}}}$ अणियट्टि-णवभाएसु $\overset{\text{१६}}{\underset{\text{१०}}{\text{१३८}}}$ $\overset{\text{८}}{\underset{\text{२६}}{\text{१२२}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{३४}}{\text{१४४}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{३५}}{\text{११३}}}$ $\overset{\text{६}}{\underset{\text{३६}}{\text{११२}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{४२}}{\text{१०६}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{४३}}{\text{१०५}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{४४}}{\text{१०४}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{४५}}{\text{१०३}}}$ सुहुमे $\overset{\text{१}}{\underset{\text{४६}}{\text{१०२}}}$ उवसंते $\overset{\text{०}}{\underset{\text{२}}{\text{१४६}}}$ खीणदुचरिमसमए $\overset{\text{२}}{\underset{\text{४७}}{\text{१०१}}}$ (चरिमसमये $\overset{\text{१४}}{\underset{\text{४९}}{\text{९९}}}$ सयोगे $\overset{\text{०}}{\underset{\text{६३}}{\text{८५}}}$ अयोगदुचरिमसमये $\overset{\text{७२}}{\underset{\text{६३}}{\text{८५}}}$ चरिमसमये $\overset{\text{१३}}{\underset{\text{१३५}}{\text{१३}}}$ सिद्धे $\overset{\text{०}}{\underset{\text{१४८}}{\text{०}}}$।

मिथ्या०

देव-नारक-तिर्यगायुर्भिर्विना मिथ्यादृष्टौ सत्ता $\overset{\text{०}}{\underset{\text{३}}{\text{१४५}}}$ आहारकद्वय-तीर्थङ्करत्वैस्त्रिभिर्विना सासादने (सा०) $\overset{\text{०}}{\underset{\text{६}}{\text{१४२}}}$ आहरकद्वयेन सह मिश्रे (मिश्र०) $\overset{\text{०}}{\underset{\text{४}}{\text{१४१}}}$ तीर्थंकरेण सह असंयतसम्यग्दृष्टौ (अवि०) $\overset{\text{७}}{\underset{\text{३}}{\text{१४५}}}$ देशसंयते (देश०) $\overset{\text{७}}{\underset{\text{३}}{\text{१४५}}}$ प्रमत्ते (प्रम०) $\overset{\text{७}}{\underset{\text{३}}{\text{१४५}}}$ अप्रमत्ते (अप्रमत्त०) $\overset{\text{७}}{\underset{\text{३}}{\text{१४५}}}$ अपूर्वकरणे (अपू०) $\overset{\text{०}}{\underset{\text{१०}}{\text{१३८}}}$ अनिवृत्तिकरणस्य नवसु भागेषु $\overset{\text{१६}}{\underset{\text{१०}}{\text{१३८}}}$ $\overset{\text{८}}{\underset{\text{२६}}{\text{१२२}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{३४}}{\text{११४}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{३५}}{\text{११३}}}$ $\overset{\text{६}}{\underset{\text{३६}}{\text{११२}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{४२}}{\text{१०६}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{४३}}{\text{१०५}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{४४}}{\text{१०४}}}$ $\overset{\text{१}}{\underset{\text{४५}}{\text{१०३}}}$ सूक्ष्मसाम्पराये $\overset{\text{१}}{\underset{\text{४६}}{\text{१०२}}}$ उपशान्ते $\overset{\text{०}}{\underset{\text{२}}{\text{१४६}}}$ क्षीणकषायद्विचरसमये $\overset{\text{२}}{\underset{\text{४७}}{\text{१०१}}}$ क्षीणकषायचरमसमये $\overset{\text{१४}}{\underset{\text{४९}}{\text{९९}}}$ सयोगिकेवलिनि $\overset{\text{०}}{\underset{\text{६३}}{\text{८५}}}$ अयोगिद्विचरसमये $\overset{\text{७२}}{\underset{\text{६३}}{\text{८५}}}$ अन्त्यसमये $\overset{\text{१३}}{\underset{\text{१३५}}{\text{१३}}}$ सिद्धे $\overset{\text{०}}{\underset{\text{१४८}}{\text{०}}}$।

1. सं० पञ्चसं० ५, 'रभ्रदेव' इत्यादिगद्यांशः (पृ० २२४)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्व गुणस्थानसे ऊपर चढ़ते हुए जीवके किस गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोंका क्षय होता है कितनीका सत्त्व रहता है और कितनीका सत्त्व नहीं रहता है, यह स्पष्ट करनेके लिए भाष्यकारने जो अंक संदृष्टियाँ दी हैं, उनका विवेचन किया जाता है। ऊपर चढ़कर कर्मक्षय करनेवाले जीवके मिथ्यात्व गुणस्थानमें देवायु, नरकायु औ तिर्यगायुकी सत्ता संभव नहीं है, अतः ३ का असत्त्व और १४५ का सत्त्व होता है। यहाँ पर सत्त्व-व्युच्छित्ति किसी प्रकृतिकी नहीं है। सासादनमें तीर्थंकरप्रकृति और आहारकद्विक, इन तीनका सत्त्व नहीं होता, अतः यहाँपर ६ का असत्त्व और १४२ का सत्त्व जानना चाहिए। यहाँपर भी किसी प्रकृतिकी सत्त्व-विच्छित्ति नहीं होती है। तीसरे मिश्र गुणस्थानमें आहारक द्विकका सत्त्व सम्भव है, अतः यहाँपर ४ का असत्त्व और १४४ का सत्त्व है। यहाँपर भी किसी प्रकृतिकी सत्त्व-व्युच्छित्ति नहीं होती है। अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका सत्त्व पाया जाता है, अतः ३ का असत्त्व और १४५ का सत्त्व रहता है। इस गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धिचतुष्क और दर्शनमोहत्रिक; इन सातकी सत्त्वव्युच्छित्ति जानना चाहिए। देशविरतमें भी असत्त्व ३ का सत्त्व १४५ का और सत्त्वव्युच्छित्ति ७ की है। प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें भी इसी प्रकार असत्त्व, सत्त्व और सत्त्वव्युच्छित्ति जानना चाहिए। सातवें गुणस्थानके अन्तमें उक्त सातों प्रकृतियोंकी सत्त्वव्युच्छित्ति हो जानेसे और नरक आदि तीन आयुकर्मोंके सत्त्वमें न होनेसे असत्त्व प्रकृतियाँ १० और सत्त्व प्रकृतियाँ १३८ हैं। यहाँपर किसी भी प्रकृतिका क्षय नहीं होता, अतः सत्त्वव्युच्छित्ति नहीं बतलाई गई है। अनिवृत्तिकरणके नौ भागोंमें-से प्रथम भागमें असत्त्व १०, सत्त्व १३८ और सत्त्वव्युच्छित्ति १६ की है। दूसरे भागमें असत्त्व २६, सत्त्व १२२ और सत्त्वव्युच्छित्ति ८ की है। तीसरे भागमें असत्त्व ३४, सत्त्व ११४ और सत्त्व-व्युच्छित्ति १ की है। चौथे भागमें असत्त्व ३५, सत्त्व ११३ और सत्त्व-व्युच्छित्ति १ की है। पाँचवें भागमें असत्त्व ३६, सत्त्व ११२ और सत्त्वव्युच्छित्ति ६ की है। छठे भागमें असत्त्व ४२, सत्त्व १०६ और सत्त्वव्युच्छित्ति १ की है। सातवें भागमें असत्त्व ४३, सत्त्व १०५ और सत्त्वव्युच्छित्ति १ की है। आठवें भागमें असत्त्व ४०, सत्त्व १०४ और सत्ताव्युच्छित्ति १ की है। नवें भागमें असत्त्व ४५, सत्त्व १०३ और सत्त्वव्युच्छित्ति १ की है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें असत्त्व ४६, सत्त्व १०२ और सत्त्वव्युच्छित्ति १ की है। क्षपक श्रेणीवाला ग्यारहवेंमें न चढ़कर बारहवें गुणस्थानमें ही चढ़ता है, अतः उसका यहाँ विचार नहीं किया गया है। क्षीणकषायके द्विचरम समयमें ४७ का असत्त्व, १०१ का सत्त्व और २ की सत्त्वव्युच्छित्ति होती है। क्षीणकषायके चरम समयमें ४९ का असत्त्व, ९९ का सत्त्व और १४ की सत्त्व-व्युच्छित्ति होती है। सयोगिकेवलीके ६३ का असत्त्व, और ८५ का सत्त्व रहता है। यहाँपर किसी भी कर्म-प्रकृतिकी व्युच्छित्ति नहीं होती है। अयोगिकेवलीके द्विचरम समयमें ६३ का असत्त्व, ८५ का सत्त्व और ७२ की सत्त्वव्युच्छित्ति होती है। अयोगि केवलीके चरम समयमें १३५ का असत्त्व, १३ का सत्त्व और १३ की सत्त्वव्युच्छित्ति होती है। सिद्धोंके किसी भी कर्म-प्रकृतिका सद्भाव नहीं पाया जाता। अतएव उनके १४८ प्रकृतियोंका असत्त्व जानना चाहिए।

अब सप्ततिकाकार अयोगिकेवलीके उदय आनेवाली प्रकृतियोंका नाम-निर्देश करते हैं—

[मूलगा०६६] अण्णयरवेयणीयं मणुयाऊ उच्चगोय णामणवं।
वेदेदि अजोगिजिणो उक्कस्स जहण्णमेयारं[1] ॥५०१॥

---

1. सप्ततिका० ६६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयोगे उदयप्रकृतीराह—अन्यतरवेदनीयं १ मनुष्यायुः १ उच्चगोत्रं १ नामप्रकृतिनवकं ९ वक्ष्यमाणम्। एवं द्वादशानां प्रकृतीनामुदयं अयोगिजिनः उत्कृष्टतया वेदयति अनुभवति। जघन्येन तीर्थकरत्वं विना एकादशानां प्रकृतीनामुदयं अयोगिनो वेदयति अनुभवति ॥५०१॥

कोई एक वेदनीय, मनुष्यायु, उच्चगोत्र और नामकर्मकी नौ प्रकृतियाँ; इस प्रकार इन बारह प्रकृतियोंका अयोगिजिन उत्कृष्ट रूपसे वेदन करते हैं। तथा जघन्य रूपसे तीर्थङ्कर प्रकृतिके विना ग्यारह प्रकृतियोंका वेदन करते हैं। क्योंकि सभी अयोगिजिनोंके तीर्थङ्करप्रकृतिका उदय नहीं पाया जाता है ॥५०१॥

अब आचार्य अयोगिजिनके उदय होनेवाली नामकर्मकी उपरि-निर्दिष्ट नौ प्रकृतियोंका नामोल्लेख करते हैं—

[मूलगा०६७] मणुयगई पंचिंदिय तस बायरणाम सुभगमादिज्जं।
पज्जत्तं जसकित्ती तित्थयरं णाम णव होंति[1] ॥५०२॥

ताः का नवेति प्राह—['मणुयगई पंचिंदिय' इत्यादि।] मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसं १ बादरनाम १ सुभगं १ आदेयं १ पर्याप्तं १ यशस्कीर्त्तिः १ तीर्थकरत्वं १ चेति नाम्नः नव प्रकृतयो भवन्ति ॥५०२॥

मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, सुभग, आदेय, पर्याप्त, यशःकीर्त्ति और तीर्थंकर-प्रकृति नामकर्मकी इन नौ प्रकृतियोंका उदय अयोगिजिनके होता है ॥५०२॥

अयोगिजिनके मनुष्यानुपूर्वीका सत्त्व उपान्त्य समय तक रहता है, या अन्तिम समय तक? आचार्य इस बातका निर्णय करते हैं—

[मूलगा०६८] मणुयाणुपुव्विसहिया तेरस भवसिद्धियस्स चरमंते।
संतस्स दु उक्कस्सं जहण्णयं बारसा होंति[2] ॥५०३॥

अयोगिचरमसमये उत्कृष्टतो जघन्यतः सत्त्वप्रकृतीराह—['मणुयाणुपुव्विसहिया' इत्यादि।] मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ त्रसं १ बादरं १ सुभगं १ आदेयं १ पर्याप्तं १ यशस्कीर्त्तिः १ तीर्थकरत्वं १ इति नाम्नः नव प्रकृतयः ९। सातासातयोर्मध्ये एकतरवेदनीयं १ मनुष्यायुष्कं १ उच्चगोत्रं १ चेति द्वादश। मनुष्यगत्यानुपूर्व्यसहितास्त्रयोदश प्रकृतयः सत्त्वरूपा उत्कृष्टतो भवसिद्धेः चरमान्ते अयोगिजिनस्य चरमसमये भवन्ति १३। तीर्थकरत्वं विना एता द्वादश प्रकृतयः सत्त्वरूपा जघन्यतो भवन्ति १२ ॥५०३॥

भव्यसिद्ध अयोगिजिनके चरम समयमें उत्कृष्ट रूपसे मनुष्यानुपूर्वी-सहित तेरह प्रकृतियोंका और जघन्य रूपसे तीर्थङ्करप्रकृतिके विना बारह प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है ॥५०३॥

अब ग्रन्थकार उक्त कथनकी पुष्टिमें युक्तिका निर्देश करते हैं—

[मूलगा०६९] मणुयगइसहगयाओ भव-खेत्तविवाय जीववागा य।
वेदणियण्णदरुच्चं चरिमे भवसिद्धियस्स खीयंति[3] ॥५०४॥

एताः प्रकृतयो मनुष्यगत्या सह त्रयोदश। तद्विचारः क्रियते। अघातिकर्मचतुष्टयमध्ये क्रमेण कथयति—आयुषां मध्ये मनुष्यायुस्तद्भवविपाकम् १। नाममध्ये मनुष्यगत्यानुपूर्वी सा क्षेत्रविपाको १। मनुष्यगतिः १ पञ्चेन्द्रियं १ तीर्थकरत्वं १ त्रसं १ बादरं १ यशः १ सुभगः १ पर्याप्तं १ आदेयं १ एवं नव प्रकृतयः ९ जीवविपाकिन्यः। [सातासात-]वेदनीययोर्मध्ये अन्यतरवेदनीयं १ तदपि जीवविपाकम् १

1. सप्ततिका० ६७। 2. सप्ततिका० ६८। 3. सप्ततिका० ६९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[उच्च-नीच-]गोत्रयोर्मध्ये उच्चगोत्रं तदपि जीवविपाकम् १ । एवं त्रयोदश प्रकृतीरयोगिचरमसमये अयोगिनः क्षयन्ति १३ ॥५०४॥

मनुष्यगतिके साथ नियमसे उदय होनेवाली भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियाँ, कोई एक वेदनीय और उच्चगोत्र, इन सबका क्षय भव्यसिद्धिक अयोगिजिनके अन्तिम समयमें होता है ॥५०४॥

भावार्थ—यतः मनुष्यगतिके साथ नियमसे उदय होनेवाली भवविपाकी आदि प्रकृतियाँ अयोगिकेवलीके अन्तिम समय तक पाई जाती हैं, अतः वहाँ तक क्षेत्रविपाकी मनुष्यानुपूर्वीका अस्तित्व स्वतः सिद्ध है।

अब ग्रन्थकार सर्व कर्मोंका क्षय करके जीव जिस अवस्थाका अनुभव करते हैं, उसका निरूपण करते हैं—

[मूलगा०७०][1]अह सुट्ठियसयलजयसिहर-अरयणिरुवमसहावसिद्धिसुखं।
अणिहणमव्वाबाहं तिरयणसारं अणुहवंति[1] ॥५०५॥

अथ कर्मक्षयं कृत्वा सिद्धाः सिद्धिसुखमनुभवन्तीत्याह—['अह सुट्ठियसयलजय' इत्यादि ।] अथ अथानन्तरं कर्मक्षयानन्तरं स्वभावसिद्धिसुखमनुभवन्ति । स्वस्यात्मनः भावः स्वरूपं तस्मात् तत्र वा सिद्धिसुखं स्वात्मोपलब्धिसुखं आत्मस्वरूपात् प्राप्तात्मसुखमनुभवन्ति भुञ्जन्ते । के ? सिद्धाः । कथम्भूताः ? सुष्ठु अतिशयेन स्थिताः सकलाः अनन्ताः जगच्छिखरे ये सिद्धाः त्रिभुवनशिखरस्थाः अनन्तसिद्धाः स्वभावसिद्धिसुखमनुभवन्ति । कथम्भूताः ? न विद्यते रजः कर्ममलकलङ्को येषां ते अरजसः कर्ममलकलङ्करहिताः । कथम्भूतं स्वभावसिद्धिसुखम् ? निरूपमं उपमानिष्कान्तं उपमारहितम् । पुनः कथम्भूतम् ? अनिधनं विनाशरहितम्, अव्याबाधं बाधारहितम्, त्रिरत्नसारं रत्नत्रयफलमित्यर्थः ॥५०५॥

तथा चोक्तम्—

रत्नत्रयफलं प्राप्ता निर्बाधं कर्मवर्जिताः।
निर्विशन्ति सुखं सिद्धास्त्रिलोकशिखरस्थिताः[1] ॥३७॥
अष्टाचत्वारिंशतं कर्मभेदानित्थं हत्वा ध्यानतो निर्वृता ये[2]।
स्वस्थानन्तामेयसौख्याब्धिमग्नास्ते नः सद्यः सिद्धये सन्तु सिद्धाः ॥३८॥

कर्मोंका क्षय करनेके अनन्तर वे जीव सकल जगत्के शिखर पर सुस्थित होकर रज (मल) से रहित, निरुपम अनन्त, अव्याबाध और स्वाभाविक आत्मसिद्धिसे प्राप्त और त्रिभुवनमें साररूप आत्मिक-सुखका अनुभव करते हैं ॥५०५॥

भावार्थ—त्रिभुवनके शिखरपर विराजमान होकर वे सिद्ध जीव सर्व बाधाओंसे, मलोंसे और उपद्रवोंसे रहित होकर अनन्तकाल तक शुद्ध आत्मिक आनन्दका अनुभव करते रहते हैं।

अब मूलसप्ततिकाकार प्रस्तुत प्रकरणका उपसंहार करते हुए कुछ आवश्यक एवं ज्ञातव्य तत्त्वका निर्देश करते हैं—

[मूलगा०७१] दुरधिगम-णिउण-परमट्ठ-रुइर-बहुभंगदिट्ठिवादाओ।
अत्था अणुसरियव्वा बंधोदयसंतकम्माणं[2] ॥५०६॥

1. सं० पञ्चसं० ५, ४७८।

१ सं० पञ्च सं० ५, ४७८। २ सं० पञ्चसं० ५, ४७९।

१. सप्ततिका० ७०। २. सप्ततिका० ७१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्धोदयसत्त्वकर्मणां अर्थाः वाच्यरूपाः तत्स्वरूपरूपाः अनुसर्तव्या आश्रयणीया अङ्गीकर्त्तव्याः भव्यैः। कुतः? दुरधिगमनिपुणपरमार्थरुचिरबहुभङ्गदृष्टिवादाङ्गात् ॥५०६॥

तथा च—

दृष्टिवादमकराकरादिदं प्राभृतैकलवरत्नमुद्धृतम्।
ज्ञानदर्शनचरित्रबृंहकं गृह्यतां शिवनिवासकाङ्क्षिभिः[1] ॥३९॥
बन्धं पाकं कर्मणां सत्त्वमेतद्वक्तुं शक्तं दृष्टिवादप्रणीतम्।
शास्त्रं ज्ञात्वाऽभ्यस्यते येन नित्यं सम्यक् तेन ज्ञायते कर्मतत्त्वम्[2] ॥४०॥

दुरधिगम, सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा गम्य, परम तत्त्वका प्रतिपादक, रुचिर (आह्लाद-कारक) और अनेक भेद-युक्त दृष्टिवादसे कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वका विशेष अर्थ जानना चाहिए ॥५०६॥

भावार्थ—गाथासूत्रकारने इस ग्रन्थका प्रारम्भ करते हुए यह निर्देश किया था कि मैं दृष्टिवादके आश्रयसे बन्ध, उदय और सत्त्वस्थानोंका निरूपण करूँगा। अब ग्रन्थको समाप्त करते हुए वे यह कह रहे हैं कि बारहवाँ दृष्टिवाद अङ्ग अत्यन्त गहन, विस्तृत और सूक्ष्मबुद्धि पुरुषोंके द्वारा ही जानने योग्य है। अतएव मेरेसे जितना भी संभव हो सका, प्रस्तुत अर्थका प्रतिपादन किया। जो विशेष जिज्ञासु जन हों, उन्हें दृष्टिवादसे प्रकृत अर्थका अनुसरण या अध्ययन करना चाहिए।

अब मूलसप्ततिकाकार अपनी लघुता प्रकट करते हैं—

[मूलगा०७२] जो एत्थ अपडिपुण्णो अत्थो अप्पागमेण रइओ त्ति।
तं खमिऊण बहुसुया पूरेऊणं परिकहिंतु[1] ॥५०७॥

इदि पंचसंगहो समत्तो।

अत्र अस्मिन् ग्रन्थे यः अपरिपूर्णः अर्थो मया कथितः अल्पागमेन लेशसिद्धान्तज्ञायकेन रचित इति तं अर्थं भो बहुश्रुताः अनेकसिद्धान्तवेदिनः ममोपरि क्षमां कृत्वा अपरिपूर्णमर्थं पूरयित्वा पूर्णं कृत्वा परिकथयन्तु प्रकाशयन्तु ॥५०७॥

मुझ अल्प आगम-ज्ञानीने इस प्रकरणमें जो अपरिपूर्ण अर्थ रचा हो, उसे बहुश्रुत ज्ञानी आचार्य मुझे क्षमा करके और छूटे हुए अर्थकी पूर्त्ति करके जिज्ञासु जनोंको प्रस्तुत प्रकरणका व्याख्यान करें ॥५०७॥

इस प्रकार सभाष्य सप्ततिका-प्रकरण समाप्त हुआ।

---

१. सं० पञ्चसं० ५, ४८२। २. सं० पञ्चसं० ५, ४८३।

१. सप्ततिका ७२।

*च इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृतटीकाकारस्य प्रशस्तिः

श्रीमूलसंघेऽजनि नन्दिसंघो वरो बलात्कारगणप्रसिद्धः ।
श्रीकुन्दकुन्दो वरसूरिवर्यो बभौ बुधो भारतिगच्छसारे ॥१॥
तदन्वये देव-मुनीन्द्रवन्द्यः श्रीपद्मनन्दी जिनधर्मनन्दी ।
ततो हि जातो दिविजेन्द्रकीर्त्तिर्विद्या-[भि-] नन्दी वरधर्ममूर्त्तिः ॥२॥
तदीयपट्टे नृपमाननीये मल्ल्यादिभूषो मुनिवन्दनीयः ।
ततो हि जातो वरधर्मधर्त्ता लक्ष्म्यादिचन्द्रो बहुशिष्यकर्त्ता ॥३॥
पञ्चाचाररतो नित्यं सूरिसद्गुणधारकः ।
लक्ष्मीचन्द्रगुरुस्वामी भट्टारकशिरोमणिः ॥४॥
दुर्वारदुर्वादिकपर्वतानां वज्रायमानो वरवीरचन्द्रः ।
तदन्वये सूरिवरप्रधानो ज्ञानादिभूषो गणिगच्छराजः ॥५॥
त्रैविद्यविद्याधरचक्रवर्त्ती भट्टारको भूतलख्यातकीर्त्तिः ।
ज्ञानादिभूषो वरधर्ममूर्त्तिस्तदीयवाक्यात् ललसारवृत्तिः ॥६॥
भट्टारको भुवि ख्यातो जीयाच्छ्रीज्ञानभूषणः ।
तस्य पट्टोदये भानुः प्रभाचन्द्रो वचोनिधिः ॥७॥
विशदगुणगरिष्ठो ज्ञानभूपो गणीन्द्रस्तदनु पदविधाता धर्मधर्त्ता सुभर्त्ता ।
कुवलयसुखकर्त्ता मोहमिथ्यान्धहर्त्ता स जयतु यतिनाथः श्रीप्रभाचन्द्रचन्द्रः ॥८॥
दीक्षाशिक्षापदं दत्तं लक्ष्मीवीरेन्दुसूरिणा ।
येन मे ज्ञानभूषेण तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥९॥
आगमेन विरुद्धं यद् व्याकरणेन दूषितम् ।
शुद्धीकृतं च सत्सर्वं गुरुभिर्ज्ञानभूषणैः ॥१०॥

तथापि—

अत्र हीनाधिकं किञ्चिद्रचितं मतिविभ्रमात् ।
शोधयन्तु महाभव्याः कृपां कृत्वा ममोपरि ॥११॥
हंसाख्यवर्णिनाथेन ग्रन्थोऽयमुपदेशितः ।
तस्य प्रसादतो वृत्तिः कृता सुमतिकीर्त्तिना ॥१२॥
श्रीमद्विक्रमभूपते परिमिते वर्षे शते षोडशे
विंशत्यग्रगते (१६२०) सिते शुभतरे भाद्रे दशम्यां तिथौ ।
ईलावे वृषभालये वृषकरे सुश्रावके धार्मिके
सूरिश्रीसुमतीशकीर्त्तिविहिता टीका सदा नन्दतु ॥१३॥

इति श्रीपञ्चसंग्रहापरनामलघुगोम्मटसारसिद्धान्तग्रन्थटीकायां कर्मकाण्डे सप्ततिकानाम सप्तमोऽधिकारः ।

इतिश्री लघुगोम्मटसारटीका समाप्ता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाइय-वित्ति-सहिओ

सिरि पंचसंगहो

इय वंदिऊण सिद्धे अरिहंते आइरिय उवज्झाए ।
साहुगणे वि य सव्वे वुच्छेऽहं मंगलं किं पि ॥
मंगलणिमित्तहेउं परिमाणं णाममेव जाणाहि ।
छट्ठं तह कत्तारं आयम्हि य सव्वसत्थाणं ॥१॥

आदिम्हि मंगलादीणि पुव्वमेव सीसस्स जाणाविय अभिपेदत्थं परूविज्जदि । तत्थ मंगलं विशिष्टेष्टदेवतानमस्कारो मङ्गलम् । तं धादु-णिक्खेव-णअ-एगत्थ-णिरुत्तियणिओगद्दारेहि परूविज्जदि । तत्र मगिरित्यनेन धातुना निष्पन्नो मङ्गलशब्दः । धातूक्तिः किमर्थम् ?

यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके सार्थकं चोपलभ्यते ।
तत्सर्वं धातुभिर्व्याप्तं शरीरमिव धातुभिः ॥२॥

इति वचनात् । तदर्थं धातुप्ररूपणं वक्ष्यति । तत्थ णिक्खेवेण मंगलं छव्विहं—णाम-ट्ठवणा-दव्व-खेत्त-काल-भावमंगलं चेदि ।

अवगदणिवारणत्थं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च ।
संसयविणासणत्थं सण्णाणुप्पादणत्थं च ॥३॥

णिक्खेवे कदे [णवाण] अवदारो भवदि ।

उच्चारिदम्हि दु पदे णिक्खेवे वा कदम्हि दट्ठूण ।
अत्थं णयंति तच्चेत्ति य तम्हा ते णया भणिदा ॥४॥

तं जहा—णइगम-संगह-ववहारा सव्वमंगलाणि इच्छंति । किं कारणं ? तिलोगेसु तिकालेसु सव्वमंगलेहि संववहारा दिस्संति । उजुसुदो ठवणमंगलं णेच्छदि । किं कारणं ? जेण अदीदं विणट्ठं, अणागदमणुप्पण्णं । वट्टमाणमेव तच्चेत्ति इच्छदि । सद्दणओ णाममंगलं भावमंगलं च इच्छदि । किं कारणं ? जेण पज्जायगाही परप्रत्याशनकाले नाममङ्गलमिच्छति । भावमंगलं पि तस्स विसओ होऊण इच्छदि । समभिरूढ-एवंभूदणया सद्दणए पविसंति त्ति भणिदा ।

संपधि एत्थ णिक्खेवपरूवणा किं कारणं वुच्चदे ?

प्रमाण-नय-निक्षेपैर्योऽर्थो नाभिसमीक्ष्यते ।
युक्तश्चायुक्तवद्भाति तस्यायुक्तं सयुक्तिवत् ॥५॥

इति वचनात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानं प्रमाणमित्याहुरुपायो न्यास उच्यते ।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थपरिग्रहः[1] ॥६॥

तं णाममंगलं णाम जीवस्स वा एवमादि-अट्ठभंगेहि जस्स वा तस्स वा दव्वस्स वा णिमित्तंतरमविक्खिऊण सण्णा कीरदे । तत्थ णिमित्तं चदुव्विधं—जादि-दव्व-गुण-किरिया चेदि । तत्थ जादि गो-मणुस्सादि । दव्वं दुविहं—संजोगिदव्वं समवायदव्वं चेदि । संजोगिदव्वं णाम जोहा-घट्ट-पवनादि । समवायदव्वं णाम विपाणिक-कुम्माणीति । गुणो णाम—जहा सव्वण्हु सुक्किलं किण्हमिदि । किरिया णाम—लङ्की नर्त्तकी एवमादि । एदे णिमित्ते मोत्तूण तं णाममंगलं वुच्चदि ।

ठवणमंगलं दुविहं—आकृतिमति सद्भावः अनाकृतिमति असद्भावः तत्र चित्र-लेप्यकर्मादिषु लेखाक्षेपण-खनन-बन्धन-निष्पन्नं सद्भावस्थापना । तदेवाचाङ्गुल्यादिविकल्पितमितरमङ्गलम् ।

दव्वमंगलं दुविहं—आगम—णोआगमभेदादो । आगमो सिद्धंतो । आगमादो वदिरित्तो णोआगमो । तत्थ आगमादो दव्वमंगलं मंगलपाहुडजाणगो उवजुत्तो । जं तं णोआगमदव्वमंगलं तं तिविहं—जाणुग-भविय-तव्वदिरित्तं चेदि । जाणुगसरीरं तिविहं—भविय-वट्टमाण-समुज्झादं चेदि । समुज्झादं तिविहं—चुदं चइदं चत्तदेहं चेदि । अप्पणो आउक्खए जं चुदं तं चुदं णाम । विस-सत्थ-कंटयादीहिं जं चइदं, तं चइदं णाम । चत्तदेहं तिविधं—पाउवगमरणं इंगिणिमरणं भत्तपच्चक्खाणं चेदि ।

तत्थ अप्प-परणिराविक्खं पाउग्गमरणं । उक्तञ्च—

स्थितस्य वा निषण्णस्य प्रावस्तुप्तस्य वा पुनः ।
सर्वचेष्टापरित्यागः प्रायोग्यगमनं स्मृतम् ॥७॥

तत्थ इंगिणिमरणं अप्पसावेक्खं परणिरावेक्खं । उक्तञ्च—

एकैकस्योपसर्गस्य सहिष्णुः सविचारकः ।
सर्वाहारपरित्यागः इङ्गिनीमरणं स्मृतम् ॥८॥

भत्तपच्चक्खाणं णाम अप्प-परसावेक्खं चेदि । उक्तञ्च—

सल्लेख्य विधिना देहं क्रमेण सकषायकः ।
सर्वाहारपरित्यागो भवेद्भक्तव्यपोहनम् ॥९॥

भवियमंगलं मंगलपाहुडजाणगो भावी । तव्वदिरित्तं दुविधं—कम्ममंगलं णोकम्ममंगलं चेदि । तत्थ कम्ममंगलं णाम दंसणविसुज्झदा एवमादिसोलसतित्थयरणामकम्मकारणेहि पविभत्तं । णोकम्ममंगलं—लोइयं लोउत्तरियं चेदि । तत्थ लोइयमंगलं तिविधं सचित्ताचित्तमिस्सयं चेदि । तत्थ सचित्तमंगलं कण्णादि । अचित्तमंगलं सिद्धत्थ-पुण्णकुंभादि । मिस्समंगलं सिद्धत्थ-पुण्णकुंभ-सहिदकण्णादि । जं तं लोउत्तरियं मंगलं [तं] तिविहं—सचित्ताचित्तमिस्सयं चेदि । तत्थ सचित्तमंगलं अरहंतादिपंचण्हं गुरुआणं जीवपदेसा । अचित्तमंगलं चेदिया-पडिमादि । मिस्समंगलं साहुपट्टसालादि ।

तत्थ खेत्तमंगलं णाम—गुणपज्जयपरिणदेणच्छिदखेत्तं णिक्खवण-परिणिव्वाण-केवलणाणुप्पत्ति-खेत्तादि, अद्धुट्ठरदणियादि जाव पंचवीसुत्तरपंचधणूसदपमाणसरीरत्थिदा लोगागासपदेसा खेत्तमंगले त्ति वुच्चदि । अथवा अप्पजीवपदेसा वा ।

---

१. लघीय० ६, २ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ कालमंगलं णाम—जम्हि काले गुणपज्जयपरिणदो होऊणच्छिदो। तं कालमंगलं दुविधं—सगकालमंगलं परकालमंगलं चेदि। तत्थ सगकालमंगलं जम्हि काले अप्पणो अणंतणाण-दंसणाणि उप्पज्जंति [तं] कालमंगलं वुच्चदि। परकालमंगलं णाम जम्हि काले परेसिं णिक्खवण-केवलणाणुप्पत्ति-परिणिव्वाणादीणि भवंति।

भावमंगलं दुविहं—आगम-णोआगमं चेदि। तत्थ आगमदो भावमंगलं पाहुडजाणगो उवजुत्तो। णोआगमभावमंगलं दुविहं—उवउत्तो तप्परिणदो वा। आगमविरहिदमंगलथोव [मंगलत्थो] उवजुत्तो। तप्परिणदो णाम मंगल एय [एहि] परिणदो जीवो। तं जहा—मलं गालयदि विद्धंसदि वा मंगलं। तं [मलं] दुविधं—दव्वमलं भावमलं चेदि। दव्वमलं दुविहं—बाहिरमब्भंतरं च। तत्थ बाहिरमलं सेद-रजादि। अब्भंतरमलं णाम घण-कढिण-जीवपदेसणिबद्धं णाणावरणादि।

आदी मज्झवसाणे मंगलं जिणवरेहि पण्णत्तं।
तो कदमंगलविणओ इणमो सुत्तं पवक्खामि[1] ॥१०॥

तं मंगलं दुविहं—णिबद्धमंगलं अणिबद्धमंगलं चेदि। तत्थ णिबद्धमंगलं णाम जं सुत्तस्स आदीए णिबद्धं। अणिबद्धमंगलं णाम जं सुत्तस्स आदीए ण णिबद्धं, अण्णसुदो [सुदादो] आणिदूण वक्खाणिज्जदि। संपधि अण्णसुत्तादो आणेऊण जदि वक्खाणिज्जदि तो सुत्तस्स अमंगलं पावदि त्ति? ओएस्स [णो णवदि सुत्तस्स]। कहं?

जहा लोए तहा सत्थे—

प्रदीपेनार्चयेदर्कमुदकेन महोदधिम्।
वागीश्वरं तथा वाग्भिर्मङ्गलेन च मङ्गलम् ॥११॥

णिमित्तं भण्णमाणे बंधो बंधकारणं मुक्खो मुक्खकारणं णिक्खेय-णअ-प्पमाण-अणिओगद्दारेहिं भव्ववरपुंडरीयमहारिसओ जाणंति त्ति।

तत्थ हेदू दुविहो—पच्चक्ख-परोक्खमिदि। पच्चक्खहेदू दुविहो—साक्षात्प्रत्यक्षः परम्पराप्रत्यक्षश्चेति। तत्र साक्षात्प्रत्यक्षः देव-मनुष्यादिभिः सततमभ्यर्चनम्। परम्पराप्रत्यक्षः शिष्य-प्रशिष्यादिभिः सततमभ्यर्चनम्। परोक्षहेतुर्द्विविधोऽभ्युदयो-नैःश्रेयसश्चेति। तत्राभ्युदयहेतुर्यथा सातादिप्रशस्तकर्मतीव्रानुभागोदयजनित-इन्द्र-प्रतीन्द्र-सामानिक-त्रायत्रिंशादिदेव-चक्रवर्त्ति-बलदेव-वासुदेव-मण्डलीक-महामण्डलीक-राजाधिराजसुखप्रापकम्। नैःश्रेयसहेतुर्यथा—अव्याबाधमनन्त-कर्मक्षयजनितमुक्तिसुखम्।

अदिसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं[2] ॥१२॥

तत्थ परिमाणं दुविहं—अत्थपरिमाणं गंथपरिमाणं [चेदि।] अत्थपरिमाणं अणंतं [प] एयत्थ-अणंतभेदभिण्ण-[त्तादो।] गंथदो पुण अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणिओगद्दारेहिं सुदक्खरेहि [सुदरुक्खेहि] संखिज्जं। तं सुदरुक्खं पच्छा वत्तव्वं।

तत्थ गुणणामं आराहणा इदि। किं कारणं? जेण आराधिज्जन्ते अप्पआ दंसण-णाण-चरित्त-तवाणि त्ति।

---

१. धवला, पु० १ पृ० ४० (उद्धृतम्)। २. प्रवच० १, १३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कत्तारा तिविधा—मूलतंतकत्ता उत्तरतंतकत्ता उत्तरोत्तरतंतकत्ता चेदि। तत्थ मूलतंतकत्ता भयवं महावीरो। उत्तरतंतकत्ता गोदमभयवदो। उत्तरोत्तरतंतकत्ता लोहायरिया भट्टारक-अप्पभूदिअआयरिया।

एयारसंगमूलो खंधो उण दिट्ठिवादपंचविहो।
णो अंगारोहज्जदो (?) चउदहवरपुव्वसाहिल्लो ॥१३॥
वत्थूवसाहपवरो पाहुडदल पवलकुसुम.चिंचइओ।
अणिओगफलसमिद्धो सुदणाणाणोअहो जयऊ ॥१४॥

एत्थ सुदणाणस्स अधियारादो सुदणाणस्स एवं पंचविधं उवक्कमं कायव्वं। तस्स सुदं णाम—श्रुत्वा पठित्वा गृह्णातीति श्रुतं नाम। पमाणं अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणिओगद्दारेहि संखेज्ज, अत्थदो अणंतं। वत्तुपदा [वत्तव्वदा] सुदणाण तदुभयवंतपदा [वत्तव्वदा]। अत्थाधियारो बारहविधो।

आयारं सुद्दयडं ठाणं समवाय विवायपण्णत्ती।
णादाधम्मकहाओ उवासयाणं च अज्झयणं ॥१५॥
अंतयडदसं अणुत्तरोववादियदसं पण्णवायरणं।
एयार विवायसुत्तं वारसमं दिट्ठिवादं च ॥१६॥

एत्थ पुण आयारंगं अट्ठारहपदसहस्सेहि १८००० ववहारं वण्णेदि रिसिगणस्स।

कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सये।
कधं भासेज्ज भुंजीज्जा कधं पावं ण बज्झदि[1] ॥१७॥
जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये।
जदं भासेज्ज भुंजीज्जा एवं पावं ण बज्झदि[2] ॥१८॥

सुदयडणामंगं छत्तीसपदसहस्सेहिं ३६००० ससमय-परसमयमग्गणदा। ठाणणामंगं बादालसहस्सेहिं पदेहिं ४२००० एगादि—एगुत्तरट्ठाणं वण्णेदि जीवस्स। तं जहा—

एओ चेव महप्पो सो दुवियप्पो तिलक्खणो भणिदो।
चउचंकमणाजुत्तो पंचग्गगुणप्पहाणो य ॥१९॥
छक्कावक्कमजुत्तो कमसो पुण सत्तभंगिसब्भावो।
अट्ठासवो णवपदो जीवो दसठाणिओ णेओ[3] ॥२०॥

समवायणामंगं इक्कलक्ख-चउसट्ठिसहस्सेहिं पदेहिं १६४००० समकरणं मग्गणा। [समवायणा-] मंगं चदुविधं—दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो। दव्वदो धम्मत्थियाए अधम्मत्थियाए लोगागासं एगजीवपदेसा वि य चत्तारि समा। खेत्तदो सीमंतणाम णिरयं माणुसं खेत्तं उडुविमाणं सिद्धिखेत्तपदं चत्तारि वि समा। कालदो समयं समएण समं, मुहुत्तो मुहुत्तसमो त्ति। भावदो केवलणाणं केवलदंसणं च समा, ओधिणाणं ओधिणाण- [दंसण-] सममिदि।

---

१. मूलाचा० १०१२। दशवै० ४,७। ३. मूलाचा० १०१३, दशवै० ४,८। २. पञ्चास्ति० ७७-७८।

विवायपण्णत्ती णामंगं दोहि लक्खेहि अट्ठावीससहस्सेहिं पदेहिं २२८००० पुच्छणविधिं पडिच्छणविधिं च वण्णेदि। णादाधम्मकधा णामंगं पंचलक्ख-छप्पण्णसहस्सेहिं पदेहिं ५५६००० अरहंताणं धम्मदेसणं वण्णेदि। उवासयज्झयणं णामंगं एक्कारसलक्ख-सत्तरि-सहस्सेहिं पदेहिं ११७०००० सावगाचारं वण्णेदि दंसण-वद-सामाइयादि।

अंतयडदसणामंगं तेवीसलक्ख-अट्ठवीससहस्सेहिं पदेहिं २३२८००० एक्कम्हि य तित्थे दस-दस उवसग्गे दारुणे सहिऊण पाडिहेरं लद्धूण णिव्वाणगमणं वण्णेदि। तत्थ उवसग्गे, तं जहा—माणुसुवसग्गं तिविधं इत्थि-पुरिस-णउंसय [भेएण] एवं तिरिच्छियाणं। देवं दुविधं—इत्थि-पुरिसुत्ति। अचेदणीयं दुविधं-साभावियं आगंतुगं च। साभावियं सरीरमसमत्थ-सिरवेदण-कुच्छि-वेदणादि। आगंतुगं असणि-कट्ठु-रुक्खादि। सव्वसमासेण पुणो दस १०।

अणुत्तरोववादियणामंगं बाणउदिलक्ख-चउदालसहस्सेहिं पदेहिं ९२४४००० एक्केक्कम्हि य तित्थे दस-दस उवसग्गे दारुणे सहिऊण पाडिहेरं लद्धूण अणुत्तरगमणं वण्णेदि। पण्हवायरण-णामंगं तेणउदिलक्ख-सोलहसहस्सेहिं पदेहिं ९३१६००० अक्खेवणी विक्खेवणी संवेगणी णिव्वेगणी पवण्णेदि। तत्थ अक्खेवणी जत्थ ससमयं वण्णेदि। विक्खेवणी जत्थ परसमयं वण्णिज्जदि। संवेगणी णाम [जत्थ] दंसण-णाण-चरण-तव-पुण्ण-पावफलविसेसं वण्णिज्जदि। णिव्वेगणीणाम जत्थ सरीर-भोग-संसार-णिव्वेगं वण्णिज्जदि। विवागसुत्तणामंगं एगकोडि-चउरासीदिलक्खपदेहिं १८४००००० पुण्ण-पावकम्माणं उदय-उदीरणं विसेसेण फलविवागं वण्णेदि। एकादसंगपिंडं चत्तारि कोडीओ पण्णरसलक्खवेसहस्सपदेहिं ४१५०२०००।

वे चेव सहस्साणि य पणदहलक्खाणि कोडिचत्तारि।
एयारसंगपिंडं सुदणाणं होइ पदसंखा ॥२१॥

दिट्ठीओ वदंति दिट्ठिवादंगं।

असिदिसदं किरियाणं अकिरियाणं च तह य चुलसीदी।
सतसट्ठी अण्णाणी वेणइयाणं च बत्तीसा[1] ॥२२॥

आदिसिओ गच्छाए (असिदिसद-गाथाए) अत्थो वुच्चदे। तं जहा—आस्तिकमतेनेव स्व-पर-नित्येतरैर्नवजीवादिपदार्थाः नियति-स्वभाव-कालेश्वरात्मकृति च शतमशीतिः। नियति-स्वभाव-कालेश्वरात्मकृति [त्वं] उपरि संस्थाप्य मध्ये जीवादिपदार्थाः जीवाजीवास्रवसंवर-निर्जराबन्धमोक्ष-पुण्यपाप [पानि] एवं नव। [तदधः] स्व-पर-नित्यानित्यानि स्वकाइया [स्थाप्यानि]।

स्वभाव		नियति		काल		ईश्वर		आत्मकृति	
जीव	अजीव	आस्रव	संवर	निर्जरा	बन्ध	मोक्ष	पुण्य	पाप	
स्व		पर		नित्य				अनित्य	

एवं ठविदे तदुच्चारणा वक्ष्यति—अस्ति स्वतः जीवो नियतितः १। एवमेव उच्चारणा—अस्ति परतः जीवो नियतितः २। अस्ति नित्यः जीवो नियतितः ३। अस्ति अनित्यः जीवो नियतितः ४। अस्ति स्वतोऽजीवो नियतितः ५। अस्ति परतोऽजीवो नियतितः ६। अस्ति नित्योऽजीवो नियतितः ७। अस्ति अनित्योऽजीवो नियतितः ८। एवमास्रवादिः स्वभाव-कालेश्वरात्मकृतिश्च यावच्छतमशीतिमुच्चारणा वक्तव्या। इति तासां प्रमाणम् १८०।

१. गो० क० ८७६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नास्तिकमतेन स्व-पराभ्यां सह सप्त जीवादिकाः नियति-स्वभाव-कालेश्वरात्मकृतिः एवं चतुरशीतिः। नास्तिकाः पुण्य-पापं नित्यानित्यं च नेच्छन्ति।

स्वभाव	नियति	काल	ईश्वर	आत्मकृति

जीव	अजीव	आस्रव	संवर	निर्जरा	बंध	मोक्ष	पुण्य	पाप

स्वतः परतः

एषो नास्तिकप्रस्तारः। अस्योच्चारणा-नास्ति स्वतः जीवो नियतितः १। नास्ति परतः जीवो नियतितः २। नास्ति स्वतोऽजीवो नियतितः ३। नास्ति परतोऽजीवो नियतितः ४। एवं सर्वोच्चारणा सप्ततिः ७०। पुनः स्व-पराभ्यां विना कालनियतिताभ्यां सह जीवाद्यः सप्त नेतव्याः। तेषां प्रस्तारोऽयम्—

जीव	अजीव	आस्रव	बन्ध	संवर	निर्जरा	मोक्ष

नियति काल

[अस्योच्चारणा—] नास्ति जीवो नियतितः १। नास्ति अजीवो नियतितः २। नास्ति आस्रवो नियतितः ३। नास्ति संवरो नियतितः ४। एवं उच्चारणा चतुर्दश। तासां प्रमाणम् १४। पुनः सर्वपिण्डप्रमाणम् ८४।

अज्ञानवादिमतेन जीवादिपदार्थाः सदादि[भिः] सप्तविधाः—सत्। असत्। सदसत्। अवाच्यम्। सदवाच्यम्। असदवाच्यम्। सदसदवाच्यम्। जीवादीनां पदार्थाश्च [नाऋ]। अस्योदाहरणम्—

जीव	अजीव	आस्रव	बन्ध	संवर	निर्जरा	मोक्ष	पुण्य	पाप

सत्	असत्	सदसत्	अवाच्य	सदवाच्य	असदवाच्य	सदसदवाच्य

यथा—सत्-जीवभावं को वेत्ति १। असत्-जीवभावं को वेत्ति २। सदसत्—जीवभावं को वेत्ति ३। अवाच्यं जीवभावं को वेत्ति ४। सदवाच्यं जीवभावं को वेत्ति ५। असदवाच्यं जीवभावं को वेत्ति ६। उभयवाच्यं जीवभावं को वेत्ति ७। एवमजीवादिषु ६३। पुनर्जीवादिनवपदार्थान् परिमितवाच्यं च नेच्छन्ति। एवं ठविदे तस्योच्चारणा पुनर्भावोत्पत्तिः सत् असत् सदसत् अवाच्यं च इच्छंति। तस्योच्चारणा—सद्भावोत्पत्तिं को वेत्ति १। असद्भावोत्पत्तिं को वेत्ति २। सदसद्भावोत्पत्तिं को वेत्ति ३। अवाच्यभावोत्पत्तिं को वेत्ति ४। एवं सर्वेषामुच्चारणा। प्रमाणम् ६३। [उभौ मिलितौ ६३ + ४ = ६७ सप्तषष्टि]

वैनयिकमते विनयश्चेतोवाक्कायदानेष्विह कार्यो। सुर-नृपति-यति-ज्ञानि-[ज्ञाति] वृद्धेषु तथैव बाले च मातृ-पितृभ्योऽपि च।

सुर-नृपति-यति-ज्ञानि-[ज्ञाति] वृद्ध-बाल-मातृ-पितृ [पितरः।] एवमेतेषु विनयो मनो वाक्काय [दान] योगतः। उपरिमसुराद्यष्टपदानि मनोवाक्कायदानानि। एवं वैनयिकप्रस्तारम्—

सुर	नृपति	यति	ज्ञाति	वृद्ध	बाल	माता	पिता

मन	वचन	काय	दान

ठविय तदुच्चारणा वुच्चदि। तं जहा—विनयः कार्यः मनसा सुरेषु १। विनयः कार्यः वाचा सुरेषु २। विनयः कार्यः कायेन सुरेषु ३। विनयः कार्यः दानतः सुरेषु ४। एवं नृपत्यादिषु द्वात्रिंशदुच्चारणाः भवन्ति। तासां प्रमाणम् ३२। पुनः सर्वसमासः ३६३। उक्तञ्च—

स्वच्छन्ददृष्टिप्रविकल्पितानि त्रीणि त्रिषष्टीनि शतानि लोके।
पाषण्डिभिर्व्याकुलिताः कृतानि यैरत्र शिष्या हृदयो हृदन्ते ॥२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्भवति तद्भवति, यथा भवति तथा भवति, येन भवति तेन भवति, यदा भवति तदा भवति यस्य भवति तस्य भवति, इति नियतिवादः ।

कः कण्टकानां प्रकरोति तीक्ष्णं विचित्रभावान्मृगपक्षिणां च ।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रसिद्धं तत्कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः ॥२४॥

इति स्वभाववादः ।

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥२५॥

इति कालवादः ।

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुख-दुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेच्छ्वभ्रं वा स्वर्गमेव वा ॥२६॥

इति ईश्वरवादः ।

ब्रह्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नियोज्यो न परोऽस्ति कश्चित् ।
वृत्ते च तथो (?) दिवि तिष्ठते कस्तेनेदपूर्वं (?) पुरुषेण सर्वम् ॥२७॥

इति ब्रह्मवादः ।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
लोकव्यापी सर्वभूताधिदेवः साक्षी वेत्ता केवलो निर्गुणश्च ॥२८॥

इति आत्मवादः ।

आलस्योद्योतिरात्मा भोः न किञ्चित्फलमश्नुते ।
स्तनक्षीरादिपानं च पौरुषान्न विना भवेत् ॥२९॥

इति पुरुषकारवादः ।

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् ।
एष शालोऽप्रतीकाशः कर्णो बध्नाति संयुगे ॥३०॥

इति दैववादः ।

सत्यं पिशाचात्र वने वसामो भेरी कराग्रैरपि न स्पृशामः ।
विवादमेव प्रथितः पृथिव्यां भेरी पिशाचा परितं निहन्ति ॥३१॥

इति यदृच्छावादः ।

संयोगमेवेह वदन्ति तज्ज्ञाः नह्येकचक्रेण रथः प्रयाति ।
अन्धश्च पङ्गुश्च वने प्रविष्टौ तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ ॥३२॥

इति संयोगवादः ।

एदाओ दिट्ठीओ वदंति त्ति तेण दिट्ठिवादित्ति वुच्चदि ।

एत्थ किं आयारादो, किं सुदयडादो, एवं पुच्छा सव्वेसिं । णो आयारादो, [णो] सुदयडादो, एवं धा-[वा-] रणा सव्वेसिं । दिट्ठिवादादो । णाम--दिट्ठिं वदति त्ति दिट्ठिवादमिति गुणणामं । पमाणेण अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणिओगद्दारेहिं संखेज्जं, अत्थदो पुण अणंतं । वत्त-

व्वदा तदुभयवत्तव्वदा। एवं अत्थाधियारो पंचविधो। तं जहा—परियम्म सुत्त पढमाणिओय पुव्वगद चूलिया चेव। जं तं परियम्मं तं पंचविहं। तं जहा—चंदपण्णत्ती सूरपण्णत्ती जंबूदीवपण्णत्ती दीवसायरपण्णत्ती वियाहपण्णत्ती चेदि। [तत्थ चंदपण्णत्ती] छत्तीसलक्ख-पंचपद-सहस्सेहि ३६०५००० चंदस्स [आउ-परिवारिद्धि-गइ-बिंबुस्सेह-] वण्णणं कुणदि। [सूरपण्णत्ती] सूरस्स पंचलक्ख-तिण्णिपदसहस्सेहि ५०३००० आउभोगोवभोगपरिवारइड्ढिं वण्णेदि। जंबूदीवपण्णत्ती तिण्णि लक्खपंचवीसपदसहस्सेहिं ३२५००० जंबूदीवे णाणाविधमणुसाणं भोगभूमियाणं कम्मभूमियाणं अण्णेसिं पि णदी-पव्वद-दह-खेत्त-दरिसरीणं च वण्णणं कुणदि। दीवसायरपण्णत्ती बावण्णलक्ख-छत्तीस-पदसहस्सेहिं ५२३६००० उद्धारपल्लपमाणेण दीव-सायरपमाणं अण्णं पि अण्णभूदत्थं बहुभेयं वण्णेदि। वियाहपण्णत्ती णाम चदुरसीदिलक्ख-छत्तीसपदसहस्सेहि ८४३६००० रूविजीवदव्वं अरूविजीवदव्वं भवसिद्धिय-अभवसिद्धियरासिं च वण्णेदि। एवं परियम्म०।

सुत्तं अडसीदिलक्खपदेहि ८८०००००

पढमो अबंधगाणं विदिओ तेरासियाण बोधव्वो।
तदियं च णियदिपक्खो हवदि चउत्थं च समयम्हि ॥३३॥

तेरासियं णाम श्रुति-स्मृति-पुराणवादिनः। [आदा] अबस्सगो [अबंधगो] अलेवगो पण्णत्ती [अणुमेत्तो] अकत्ता णिग्गुणो सव्वगदो अत्थियवादि[दी] समुदयवादि[दी] च वण्णेदि।

पढमाणिओगो पंचसहस्सपदेहिं ५००० पुराणं वण्णेदि।

बारसविहं पुराणं जह दिट्ठं जिणवरेहिं [सव्वेहिं]।
तं सव्वं वण्णेदि [हु] जं पढमाणिओगो हु ॥३४॥
पढमो अरहंताणं वंसो विदियो पुण चक्कवट्टिवंसो दु।
विज्जाहराण तदिओ चउत्थयो वासुदेवाणं[1] ॥३५॥
चारणवंसो तह पंचमो दु छट्ठो य पण्णसमणाणं।
सत्तमओ कुरुवंसो अट्ठमओ चावि हरिवंसो ॥३६॥
णवमो इक्खाउगाणं दसमो वि य कासियाण [बोद्धव्वो]।
वाईणेगारसमो बारसमो भूदवंसो[2] [दु] ॥३७॥

एवं पढमाणिओगो।

पुव्वगदो पंचाणउदिकोडि-पण्णासलक्ख-पंचपदेहि ९५५००००५ उप्पाय-वय-धुवत्तादीणं वण्णेदि। चूलिया पंचविधा—जलगदा थलगदा मायागदा रूवगदा भव-[नभ-] गदा [चेदि]। [तत्थ जलगदा] दो कोडि-णवलक्ख-एऊणणवदिसहस्स—वे सदपदेहिं जलथंभादि वण्णेदि। पदपमाणं २०९८९२००। थलगदादिणाम तत्तिएहिं [तत्तिएहिं पदेहिं] भूमिगमणादि वण्णेदि। पदपमाणं २०९८९२००। सव्वपदसमासो दसकोडि-उणवण्ण-लक्ख-छदालसहस्साणि १०४९४६०००।

एत्थ किं परियम्मादो, [किं] सुत्तादो? एवं पुच्छा सव्वेसिं। णो परियम्मादो, णो सुत्तादो; एवं वारणा सव्वेसिं। पुव्वगदादो। तस्स उवक्कमो पंचविधो—आणुपुव्वी णामं पमाणं

---

१. ज प्रतौ 'तदिओ वासुदेवाणं चउत्थो विज्जाहराणं' इति पाठः।
२. धवलायां 'बारसमो णाहवंसो दु' इति पाठः (भा० १ पृ० ११२)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वत्तव्वदा अत्थाधियारो चेदि। तत्थ आणुपुव्वी तिविधा-पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थ-तत्थाणुपुव्वी चेदि। एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे चउत्थादो, पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे विदियादो, जत्थतत्थाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे पुव्वगदादो। पुव्वाणं वण्णणादो का (वा) तेसिं आधारभूदलक्खणेण पुव्वगदो त्ति गुणणाम। पमाणं अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणिओगद्दारेहिं संखेज्जं, अत्थदो पुण अणंतं। वत्तव्वदा ससमयवत्तव्वदा। अत्थाधियारेण जं तं पुव्वगदं तं चउदसविधं। तं जहा—उप्पायपुव्वं अग्गायणीयं वीरियाणुवादो अत्थिणत्थिपवादं णाणपवादं सच्चपवादं आदपवादं कम्मपवादं पच्चक्खाणणामधेयं विज्जाणुवादं कल्लाणणामधेयं पाणावायं किरियाविसालं लोगबिंदुसुदं चेदि।

तत्थ उप्पादपुव्वं दस वत्थू [हिं] वेसदपाहुडं [डेहि] १०।२०० कोडिपदेहि १०००००००उप्पाद-वय-धुवत्तं वण्णेदि। अग्गायणीयं णाम पुव्वं चोद्दस वत्थू [हि] १४ वेसदासीदिपाहुडा [डेहि] २८० छण्णउदिलक्खपदेहि ९६०००००० अग्गपदेहि [पदाणि] वण्णेदि विरियाणुवाद-णामपुव्वं अट्ठवत्थूहिं ८ एगसदसट्ठि पाहुडेहि १६० सत्तरिलक्खपदेहिं ७०००००० अप्पविरियं परविरियं उभयविरियं खेत्तविरियं भवविरियं तवविरियं वण्णेदि। अत्थिणत्थियवादं णाम पुव्वं अट्ठारसवत्थूहि १८ तिण्णिसदसट्ठिपाहुडेहिं ३६० सट्ठिलक्खपदेहिं ६०००००० जीवाजीवाणं अत्थि-णत्थित्तं वण्णेदि। [तं जहा-] जीवो जीवभावेण अत्थि, अजीवभावेण णत्थि। अजीवो अजीव-भावेण अत्थि, जीवभावेण णत्थि। णाणपवादं णाम पुव्वं बारस-वत्थूहि १२ वेसदचत्तालीस-पाहुडेहिं २४० एऊणकोडिपदेहि ९९९९९९९ पंच णाणं तिण्णि अण्णाणं च वण्णेदि। दव्व-गुण-पज्जयविसेसेहिं अणादिमणिधणं अणादिसणिधणं सादि-अणिधणं सादि-सणिधणं च वण्णेदि। सच्चपवादं तत्तियवत्थु-पाहुडेहिं १२। २४० एगकोडि-छप्पदेहिं १००००००६ दसविधसच्चाणि वण्णेदि।

जणवय संमद ठ्वणा णामे रूवे पडुच्च सच्चेय।
संभावण ववहारे भावे णो[ओ]पम्मसच्चेय[1] ॥३८॥

आदपवादं सोलसवत्थूहिं १६ वीसुत्तरतिण्णिसदपाहुडेहिं ३२० छव्वीसकोडिपदेहिं २६००००००० आदं वण्णेदि आदि त्ति [वा] विण्हु त्ति वा भुत्तेत्ति वा बुद्धेत्ति वा [इच्चादि-सरूवेण। उत्तं च—]

जीवो कत्ता य वत्ता य [पाणी] अप्पा [भोत्ता] य पोग्गलो।
वेदो [विण्हू] सयंभू य सरीरी तह माणवो ॥३९॥
सत्ता जंतू य माणी य [माई] जोगी य संकरो [संकडो]।
सयलो [असंकडो] य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य[2] ॥४०॥

जीवदि जीविस्सदि संजीविदपुव्वो वा जीवो। सुहासुहं करेदि त्ति कत्ता। सच्चमसच्चं संत-मसंतं वददि त्ति वत्ता। [पाणा एयस्स संति त्ति पाणी।] अमर-नर-तिरिक्ख-णारगभावे चदुरप्पा संसारे कुसलमकुसलं भुंजदि त्ति भोत्ता। पूरदि गलदि त्ति वा पुग्गलो। सुहमसुहं वेददि त्ति वेदो। अदीदाणागदपच्चुप्पण्णं जाणदि त्ति विण्हू। सयमेव भूदं च सयंभू। सरीरमत्थि त्ति सरीरी। शरीरं धारयतीति वा शरीरी। सरीरसणिदो त्ति वा सरीरी। [मणू णाणं तत्थ भवो माणवो।] सजणसंबंध-मित्तवग्गा [दिसु] सजदि त्ति वा सत्ता। चदुगदिसंसारे जायदि जण-यदि त्ति वा जंतू। [माणो अत्थि त्ति माणी। माया अत्थि त्ति मायी। जोगो अत्थि त्ति जोगी।

१. गो० जी० २२१। २. इमे गाथे धव० पु० १, पृ० ११९ तथा गो० जी० जी० प्र० ३३६ तमगाथाटीकायामुद्धृते स्तः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अइसण्हदेहपमाणेण संकुडदि त्ति संकुडो। सव्वं लोगागासं वियापदि त्ति असंकुडो। खेत्तं सस-रूवं जाणादि त्ति खेत्तण्हू। अट्ठकम्मब्भंतरो त्ति अंतरप्पा।

कम्मपवादं वीस-वत्थूहि २० चत्तारि-सदपाहुडेहिं ४०० इक्क-कोडि-असीदिलक्खपदेहिं १८०००००० अट्ठविधं कम्मं वण्णेदि। पच्चक्खाणणामधेयं तीसवत्थूहि ३० छसदपाहुडेहिं ६०० चउरसीदिलक्खपदेहिं ८४००००० दव्व-भावपरिमिदापरिमिदपच्चक्खाणं उववासविधिं च वण्णेदि। विज्जाणुवादं पण्णारसवत्थूहि १५ तिण्णिसदपाहुडेहि ३०० एक्ककोडिदसलक्खपदेहिं ११०००००० अंगुट्ठपसेणादि सत्तसदा खुल्लयमंता रोहिणी आदि पंचसदा महाविज्जा-उप्पत्तिं वण्णेदि। कल्लाणणामधेयं दसवत्थूहि १० वेसदपाहुडेहि २०० छव्वीसकोडिपदेहिं २६०००००००० बलदेव-वासुदेव-चक्कवट्टि-तित्थयराणं णक्खत्त-गह-तारया-चंद-सूराणं चारं अट्ठंगमहाणिमित्तफलं च वण्णेदि, चारित्तविधिं [च]।

पाणावायं तत्तियवत्थूहि १०० पाहुडेहि २०० तेरसकोडिपदेहिं १३०००००००० विज्जासत्थं वण्णेदि। पाणाणं वड्ढि-हाणी कुमार-तिगिंछा भूद-तंतादि-ऊसासाउगपाणादिपमाणं एदेहि वण्णेदि। किरियाविसालं तत्तिएहिं वत्थूहिं १० पाहुडेहिं २०० णवकोडिपदेहिं ९००००००० छंदोवचिति-अक्खरकिरिया-कव्वादिं वण्णेदि। लोगबिंदुसुदं तत्तिएहिं वत्थूहिं १० पाहुडेहि २०० बारसकोडि-पण्णासलक्खपदेहि १२५०००००० मोक्खपरियम्मं मोक्खसुखं च वण्णेदि।

दस चउदस अट्ठट्ठारस बारस तह य दोसु पुव्वेसु।
सोलस वीसं तीसं दसमम्मि य पण्णरस वत्थू ॥४१॥

एदेसिं पुव्वाणं एवदिओ वत्थुसंगहो भणिदो।
सेसाणं पुव्वाणं दस दस वत्थू य णिवदामि ॥४२॥

एदेसिं सव्वसमासो पंचाणउदिसदं १९५।

एक्केक्कम्हि य वत्थू वीसं वीसं च पाहुडा भणिया।
विसम-समा वि य वत्थू सव्वे पुण पाहुडेहिं समा ॥४३॥

पाहुडसव्वसमासं तिण्णि सहस्सा णवसदा ३९००।

अंगबाहिरं चउदसभेदं तमेयं णामं थवो भणियं। सामाइयं णामादि छसम्मत्तं वण्णेदि। थवं चउवीसण्हं तित्थयराणं वंदणासु छेहकल्लाणादि वण्णेदि। वंदणा एगजिण-जिणालयवंदणा-णिरवज्जभावं वण्णेदि। पडिक्कमणं सत्तविहं पडिक्कमणं वण्णेइ। वेणइयं णाणादिविणयं वण्णेइ। किरियम्मं अरहंतादीणं पूआ वण्णेइ। दसवेआलियं आयार-गोयारविहिं वण्णेइ। उत्तरज्झयणं उत्तरपदाणि वण्णेइ। कप्पववहारो साहूणं जोग्गआचारमज्जगासेवणपाअच्छित्तं वण्णेइ। कप्पा-कप्पियं साहूणं जं कप्पदि, जं ण कप्पइ तं वण्णेइ। महाकप्पियं कालसंघणणे आसिदूण साहुपा-ओग्गदव्व-खेत्तादीणं वण्णेइ। पुंडरीयं चउविहदेवेसुववादकारण-अणुट्ठाणाणि वण्णेइ। महापुंड-रीयं इंद-पडिंद-उप्पत्तिं वण्णेइ। णिसीहियं बहु पायच्छित्तं वण्णेइ।

एवं सुदरुक्खो समत्तो।

---

१. गो० जी० जी० प्र० टीका ३३६ (उद्धृते)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमो

पयडिसमुक्कित्तणा-संगहो

पयडीबंधणमुक्कं पयडिसरूवं विजाणदे सयरं ।
वंदित्ता वीरजिणं पयडिसमुक्कित्तणा वुच्छं ॥१॥

मंगलणिमित्तहेदुं परिमाणं णाममेव जाणाहि ।
छट्ठं तह कत्तारं आइम्मि य सव्वसत्थाणं ॥१॥
आई मंगलकरणं सिस्सा लहुपारगा हवंति त्ति ।
मज्झे अव्वोच्छित्ती विज्जा विज्जाफलं चरमे ॥२॥

एत्तो पयडिसमुक्कित्तणा कस्सामो । तं जहा—

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेदणीय मोहणीयं ।
आउग णामं गोदं तहंतरायं च मूलपयडीओ ॥२॥
पडपडिहारसिमज्जा हडिचित्तकुलालभंडयारीणं ।
जह एदेसिं भावा तह वि य कम्मा मुणेयव्वा ॥३॥
पंच णव दुण्णि अट्ठावीसं चदुरो तधेव बादालं ।
दोण्णि य पंच य भणिया पयडीओ उत्तरा हुंति ॥४॥

जं तं णाणावरणीयं कम्मं तं पंचविहं—आभिणिबोधियणाणावरणीयं सुअणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जयणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि। जं तं दंसणावरणीयं कम्मं तं णवविधं—णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी णिद्दा पयला चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि। जं तं वेदणीयं कम्मं तं दुविहं—सादावेदणीयं असादावेदणीयं चेदि। जं तं मोहणीयं कम्मं तं दुविधं—दंसणमोहणीयं चरित्तमोहणीयं चेदि। जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधादो एयविधं, संतकम्मं पुण तिविधं—मिच्छत्तं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तमिदि तिण्णि। जं तं चरित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविधं—कसायचरित्तमोहणीयं अकसायचरित्तमोहणीयं चेदि। जं तं कसायचरित्तमोहणीयं [तं] सोलसविधं—अणंताणुबंधि-कोध-माण-माया-लोभा अपच्चक्खाणावरण-कोध-माण-माया-लोभा पच्चक्खाणावरण-कोध-माण-माया-लोभा संजलणकोध-माण-माया-लोहा चेदि। जं तं णोकसायचरित्तमोहणीयं कम्मं तं णवविहं—इत्थिवेदं पुरिसवेदं णपुंसकवेदं हस्स रदि अरदि सोग भय दुगुंछा चेदि। जं तं आउगणामकम्मं तं चदुविधं—णिरयाउगं तिरियाउगं मणुआउगं देवाउगं चेदि। जं तं णामकम्मं तं बादालीसपिंडापिंडपयडीओ—गइणामं जाइणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्वीणामं अगुरुलहुणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदवणामं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेगसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुभणामं असुभणामं सुभगणामं दुभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदिज्जणामं अणादिज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं तित्थयरणामं चेदि । जं तं गइणामकम्मं तं चउव्विहं—णिरयगइणामं तिरिक्खगइणामं मणुयगइणामं देवगइणामं चेदि । जं तं जादिणामकम्मं तं पंचविधं—एइंदियजादिणामं वेइंदियजादिणामं तेइंदियजादिणामं चउरिंदियजादिणामं पंचिंदियजादिणामं चेदि । जं तं सरीरणामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेजससरीरणामं कम्मइगसरीरणामं चेदि । जं तं सरीरबंधणणामकम्मं तं पंचविहं—ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेजइगसरीरबंधणणामं कम्मइगसरीरबंधणणामं चेदि । जं तं सरीरसंघादणामं कम्मं तं पंचविधं—ओरालियसरीरसंघादणामं वेउव्वियसरीरसंघादणामं आहारसरीरसंघादणामं तेजइगसरीरसंघादणामं कम्मइगसरीरसंघादणामं इदि । जं तं सरीरसंठाणणामकम्मं तं छव्विहं—समचदुरससरीरसंठाणणामं णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणणामं सादिसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीरसंठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि । जं तं अंगोवंगणामकम्मं तं तिविहं—ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीअंगोवंगणामं इदि । जं तं सरीरसंघडणणामकम्मं तं छव्विहं—वज्जरिसभवइरणारायसरीरसंघडणणामं वज्जणारायसरीरसंघडणणामं अद्धणारायसरीरसंघडणणामं कीलियसरीरसंघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरणामं चेदि । जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविधं—किण्हवण्णणामं नीलवण्णणामं रुहिरवण्णणामं हलिद्दवण्णणामं सुक्किलवण्णनामं चेदि । जं तं गंधणामकम्मं तं दुविहं—सुरभिगंधणामं दुरभिगंधणामं चेदि । जं तं रसणामकम्मं तं पंचविहं—तित्तणामं कडुयणामं कसाइलणामं अंबिलणामं महुरणामं चेदि । जं तं फासणामकम्मं तं अट्ठविहं-कक्खडणामं मउवणामं गुरुगणामं लहुगणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीदणामं उण्हणामं चेदि । जं तं आणुपुव्वीणामकम्मं तं चउव्विहं—णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्वी तिरिक्खगदिपाओग्गाणुपुव्वी मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी णामं चेदि । अगुरुगलहुगणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदवणामं उज्जोयणामं चेदि । जं तं विहायगदिणामकम्मं तं दुविधं—पसत्थविहायगदिणामं अपसत्थविहायगदिणामं चेदि । तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेगसरीरणामं साधारणसरीरणामं चेदि । थिरणामं अथिरणामं सुभणामं असुभणामं सुभगणामं दुभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं आदेज्जणामं अणादिज्जणामं जसकित्तिणामं [अजसकित्तिणामं] तित्थयरणामं चेदि । जं तं गोदणामकम्मं तं दुविहं—उच्चागोदं णिचागोदं चेदि । जं तं अंतराइयं कम्मं तं पंचविहं—दाण अंतराइयं लाभअंतराइयं भोग-अंतराइयं उवभोग-अंतराइयं वीरियंतराइयं चेदि ।

एवं पयडिसमुक्कित्तणं समत्तं ।

पयडि त्ति किं भणिदं होदि ? प्रकृतिः स्वभावः शीलमित्यर्थः । दृष्टान्तश्च इक्षोः का प्रकृतिः ? मधुरता । निम्बे का प्रकृतिः ? तिक्तता । एवं ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? अज्ञानता । ज्ञानमावृणोति प्रच्छादयतीति वा ज्ञानावरणीयम् । किमिव ? देवतामुखपटवस्त्रवत् । अथवा घटाभ्यन्तरदीपवत् । दर्शनावरणस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? दर्शनप्रच्छादनता । अथवा अदर्शनता । किमिव ? राजद्वारे निरोधितप्रतिहारवत् । प्रेक्षणोन्मुखस्य मेघप्रच्छादितादित्यवत् । वेदनीयस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? वेदनता । वेद्यत इति वेदनीयं सुखदुःखानुभवनता । किमिव मधुलिप्तखड्गधारवत् । मोहनीयस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? मोहनता । मह्यत इति मोहनीयम् । किमिव ? धत्तूर-मद्य-मदनकोद्रववदिति । आयुष्कस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? चतुर्गतिविधच्छितानां (-व्यवस्थितानां) जीवानां भव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारणता। किमिव ? स्तम्भे बद्धपुरुषवत्। नामकर्मणः का प्रकृतिः ? नानाविधशरीराणि निर्वर्तयतीति नाम। अथवा शुभाशुभनामनिर्माणता। किमिव ? चित्रकारवत्, सुवलु ? काष्ठशिला-कर्मकारवदिति। गोत्रकर्मणः का प्रकृतिः ? उच्च-नीचगोत्रे निर्वर्तयतीति गोत्रम्। अथवा उच्च-नीचद्वयगोत्रनिर्माणता। किमिव ? कुम्भकारवत्। अन्तरायस्य कर्मणः का प्रकृतिः ? विघ्नकरणता। किमिव ? भाण्डागारिकवत्। अथवा गिरिदुर्गनद्यटवीवदिति।

जं तं आभिणिबोधियणाणावरणीयं णामं तं पञ्चभिरिन्द्रियैर्मनसा च दृष्ट-श्रुतानुभूतानामर्थानां अवग्रहेहावायधारणास्वरूपेण जानातीत्याभिनिबोधिकज्ञानम्। तस्य आवरणं आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयम्। तत्रावग्रहो 'ग्रह उपादाने धातुः', अवग्रहणमवग्रहः। अथवा विषय-विषयिसन्निपातसमनन्तरमाद्यग्रहणमवग्रहः। विषया येषां विद्यन्त इति विषयिणः। तत्र ईहा नाम 'ईहा चेष्टायां धातुः', ईहनं मनसा विचारणं वा ईहा। अथवा अवगृहीतार्थस्य विशेषेणार्थकाङ्क्षणमीहा। जहा पुव्वं सामण्णेण सव्वण्हु-सद्दं घेत्तूण पुणो तस्स विसेसमिच्छमाणो जिणिंद-बुद्ध-हरि-हर-हिरण्णगब्भादीणं अत्तागम-पदत्थ-पमाण-हेदू-णय-दिट्ठंतेहिं जा मग्गणा सा ईहा णाम। तत्रावायो नाम 'इण गतौ धातुः, अवायनं तत्त्वार्थपरिच्छेदकरणं वा अवायः। अथवा ईहितार्थस्य निश्चय-व्यवसायोऽवायः। जहा पुव्वं हरि-हर-हिरण्णगब्भ-बुद्ध-जिणिंदाणं परिक्खा काऊण पुणो एदेसिं हरि-हर-हिरण्णगब्भ-बुद्धादयो सव्वण्हू अत्ता ण होदि त्ति एदेसिं अवणयणं काऊण पुणो सव्वण्हू अत्ता जिणिंदो चेव होदि त्ति णिच्छयं काऊण जो अत्तपरिग्गहो सो अवायो। तत्र धारणा णाम 'धृञु धारणे' धातुः, धरणं धारणा। अथवा पूर्वगृहीतस्यार्थस्य कालान्तरादपि स्मृतिर्धारणा। जहा पुव्वं णिच्छयं कादूण जो सव्वण्हू सदु (सइ) परिग्गहो कओ दीहेणं कालेणं अविस्सरणं सा धारणा णाम।

बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनिःसृत-अनुक्त-ध्रुव[से]तराणामिति। यथा बहु इति बहूनां तज्जातीनां ग्रहणम्। यथा चक्षुषा बहूनां हंसानां ग्रहणम्, श्रोत्रस्य बहूनां शब्दानां ग्रहणम्, घ्राणस्य बहूनां चम्पक-कुसुमानां ग्रहणम्, रसनस्य बहूनां निम्बपत्राणां ग्रहणम्, स्पर्शनस्य बहूनामुदकबिन्दूनां ग्रहणम्, नोइन्द्रियस्य बहूनां संज्ञानां ग्रहणम्। चक्षुरादीनां यथासंख्यं बहुविधानां हंस-बलाकादीनां ग्रहणम्, बहुविधानां शब्दभेदमृगादीनां ग्रहणम्, बहुविधानां चम्पकोत्पलादीनां ग्रहणम्, बहुविधानां निम्बपत्र-कटुकरोहिण्यादीनां ग्रहणम्, बहुविधानां उदकबिन्दु-सर्पोत्प [द्माब्जोत्पलादीनां ग्रहणम्, बहुविधानां जीवसंज्ञानां ग्रहणम्। चक्षुरादीनां यथासंख्य तेषामेवाशु ग्रहणं क्षिप्रम्, तत्सदृशादृश्यमानकेनार्थेन निःसृत-अनिःसृतानामर्थानां ग्रहणम्। यथाभ्रगर्जनं श्रुत्वा अभ्रगर्जनमेवेत्यवधारयति। एवं सर्वत्र। अनुक्तानां अकथितानां ग्रहणम्, यथाऽग्निमानयेत्युक्ते खर्परग्रहणं करोति। ध्रुवाणां नित्यानां ग्रहणम्। यथाऽऽकाश-धर्मास्तिकायादीनां ग्रहणम्। सेतराणां नाम बहुकस्य इतरं एकस्य ग्रहणम्। यथा बहूनां हंसानां मध्ये एकहंसस्य ग्रहणम्। बहुविधस्य इतरं एकविधम्। बहुषु विद्यमानेषु एकस्य प्रकारस्य ग्रहणम् यथा—वीणा-मृदङ्गादिषु वीणाशब्दस्य ग्रहणम्। एवं सर्वत्र। क्षिप्रस्य इतरं [अक्षिप्रम्] स यथा एतेषां चिराद् ग्रहणम्, वीणादीनां चिराद् ग्रहणम्। अनिःसृतस्य इतरं निःसृतम्, यथाऽभ्रगर्जनवत्कुञ्जरगर्जनम्, शङ्खवदधिकं [शङ्खवच्छुक्लं दधिकम्], उत्पलगन्धवत्कुष्ठगन्धः, द्राक्षावद्गुडः, उत्पलनालवत्सर्पस्पर्श इति ग्रहणम्। अनुक्तस्य इतरं उक्तम्। यथा खर्परं गृहीत्वा अग्निमानयतीति। ध्रुवस्य इतरं अध्रुवम्। यथा अध्रुवाणां घट-पटादीनां अनित्यादीनां ग्रहणम्।

आभिनिबोधिकज्ञानमिति—अ इति द्रव्य-पर्यायः, भि इति द्रव्याभिमुखः, निरिति निश्चय-बोध इति। 'बुध अवगमने' धातुः। अभिनिबोधि[ध]क एव आभिनिबोधिकं वा प्रयोजनं अस्येति आभिनिबोधिकम्। आभिनिबोधिकमेव ज्ञानं आभिनिबोधिकज्ञानम्। आभिनिबोधिकज्ञानस्य आवरणं आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयं चेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभिनिबोधिकज्ञानेनावगृहीतार्थस्य उपदेशपूर्वकं वा अनुपदेशपूर्वकं वा तत्समय-परसमय-गतानामर्थं पुनः जानातीति श्रुतज्ञानम् । श्रुतज्ञानस्य आवरणं श्रुतज्ञानावरणीयं चेति ।

अक्खरणंतिमभागो पज्जाओ णाम सो णाणो ।
अक्खरमेएण पुणो णायव्वो अक्खरो णाणं ॥३॥
पदणामेण य भणिदो मज्झिमपदवण्णिदो पुव्वं ।
एओ य गदिमग्गणए संघादो होदि सो णाणो ॥४॥
चदुगदियमग्गणा विय बोधव्वो होदि पडिवत्ती ।
चउदहमग्गणणाणो अणिओगो णाम बोधव्वो ॥५॥
पाहुडपाहुडणाणो णादव्वो मग्गणा दु संखिज्जा ।
चउवीसदिअणिओगा पाहुडणाणो य णादव्वो ॥६॥
वीसदि पाहुडवत्थू संगवत्थुजुदो य पुव्वणाणो य ।
संखेवसहिद एदे बोधव्वा वीस भेदा य ॥७॥

अधस्ताद्धीयतीति अवधिः । कथमधस्तात् हीयतीति ?

अधोगौरवधर्माणः पुद्गला इति [चो]दिताः ।
ऊर्ध्वगौरवधर्माणो जीवा इति जिनोत्तमैः ॥८॥

कथिता [इति वाक्यशेषः] । पुद्गलेषु चिन्ता पुद्गलेषु धारणा पुद्गलेषु ज्ञानमित्यर्थः । अथवा अधो विस्तीर्णं द्रव्यं पश्यतीत्यवधिः । अवधिज्ञानस्य आवरणं अवधिज्ञानावरणीयं चेति ।

पल्लो सायर सूई पदरो य घणंगुलो य जगसेढी ।
लोगपदरो य लोगो अट्ठ दु माणा मुणेयव्वा[1] ॥९॥

ओधिणाणी दव्वदो जहण्णेण जाणंते एगजीवस्स ओरालियसरीरसंचयविस्ससोवचयसहिदं घणलोगमेत्ते खंडे कदे तत्थेगखंडं जाणदि । समयं भूदं भविस्सं च जाणदि । उक्कस्सेण कम्मपरमाणू जाणदि । खेत्तदो जहण्णेण उस्सेधघणंगुलस्स असंखेज्जदिमभागं जाणदि । उक्कस्सेणासंखेयलोगं जाणदि । कालदो जहण्णेण आवलियाए असंखेज्जदिभागे भूदं भविस्सं च जाणदि । उक्कस्सेण असंखेज्जलोगमेत्तसगय [समयं] भूदं भविस्सं जाणदि । भावदो पुव्वभणिददव्वस्स सत्तियं आवलियाए असंखेज्जभागं असंखेज्जलोगमेत्तवट्टमाणस्स पज्जायं जहण्णुक्कस्सेण जाणदि त्ति । सामण्णेण ओधिणाणस्स उक्कस्स-दव्वादिचदुविधो विसओ भणिदो । तं चेव विसेसिदूण भणिस्सामो ।

तद्यथा—ओधिणाणं तिविधं—देसोधी परमोधी सव्वोधी चेदि । जो सो देसोधि-उत्तस्स सामण्णभणिददव्वादि-जहण्णविसओ सो जहण्णेण होदि । वुत्तं च—

काले चदुण्ह वुड्ढी कालो भजिदव्व खेत्तवुड्ढी दु ।
वुड्ढी दु दव्व-पज्जय भजिदव्वा खेत्त कालो य[2] ॥१०॥

पुणो इदो पभुदि जाव मणवग्गणेग सूचि-अंगुल-असंखेज्जभागमेत्तं दव्वं खंडिज्जइ । एवं खंडिदे खेत्तदो एग-एगपदेसं वड्ढाविज्जइ जाव सूचिअंगुलवियप्पं खेत्तदो [कालदो] एगसमयादि-कालं वड्ढाविज्जइ, भावो वि तप्पाओग्गो होदूण वड्ढदि जाव उक्कोसेण खेत्त-कालदो किंचूणपल्लमेगं जाणदि । दव्व-भावं तप्पाओग्गं ।

---

१. मूलाचा० ११२६ । तिलोयसा० ९२ । २. षट्खण्डा० पु० १३, पृ० ३०९ । गो० जी० ४११ ।

देसोधियस्स जो दव्वादि-उक्कस्सविसओ सो परमोधियस्स जहण्णविसओ। तदो पहुदि-दव्वं एगवारं आवलिएण खंडिज्ज। खेत्त-काल-भावेण आवलिवियप्पं जाणदि। पुणो आवलि-अण्णुण्णगुणकारं कादूण दव्वभागहारो दव्वो खेत्तदो पडि आवलिमेत्तं आगासपदेसं जाणदि, पडिआवलियमेत्तं पज्जायं काल-भावेण जाणदि। एवं ताव खविं-[खंडि-]ज्जदि जाव पुव्व-दव्वस्स आवलियसंखेज्जदिभागविअप्पं अत्थि। तदो तं अवणेदूण कम्मक्खंधं ठवेदूण कमेण दव्वं खंडिज्जदि, खेत्त-काल-भावो वड्ढाविज्जइ जाव उक्कस्सेण तप्पाओग्गं दव्व-खेत्त-काल-भावेण असंखेज्जलोगं जाणदि।

परमोधियस्स जो उक्कोसो विसओ सो सव्वोधियस्स जहण्णो। तदोप्पहुदि पुव्वविधाणेण दव्वं खंडिज्जदि जाव उक्कस्सेण एगपरमाणू, खेत्तेण असंखेज्जलोगं, कालेण असंखित्तं लोगमेत्त-पज्जायं भूदं भविस्सं, भावेण असंखेज्जलोगमेत्तं वट्टमाणपज्जायं जाणदि।

अण्णे पुण आयरिया भणंति ओहिणाणं छक्कं। तं जहा—अणुगामी अणणुगामी हीयमाणं वड्ढमाणं अवट्ठिदं अणवट्ठिदं चेदि। अणुगामि प्रज्वलितहस्तधृतनिर्वातप्रदीपवत्। तं दुविधं—खेत्ताणुगामी भवाणुगामी। अणणुगामी प्रज्वलितहस्तधृतानिर्वातप्रदीपवत्। एवं दुविहं खेत्ता-णणुगामी भवाणणुगामी चेदि। हीयमाणं कृष्णपक्षे चन्द्रमण्डलवत्। वड्ढमाणं शुक्लपक्षे चन्द्र-मण्डलवत्। अवट्ठिदं आदित्यमण्डलवत्। अणवट्ठिदं लवणसमुद्रवत्। एवं ओधिणाणं छव्विहं भणिदं।

'मन ज्ञाने' धातुः। मणदि परिबुज्झदि जाणदि त्ति वा मणं। अधवा अप्पणो मणेण करण-भूदेण इंदियाणिंदियसहगदे अत्थे अवमण्णदि बुज्झदि त्ति मणो। मणस्स पज्जया मणपज्जया। अथवा अप्पचक्खेण परमणोगदाणि भवसंबंधाणि दव्व-खेत्त-काल-भावविचप्पियाणि जाणदि त्ति वा मणपज्जवणाणं। मनःपर्ययज्ञानस्य आवरणं मनःपर्ययज्ञानावरणीयं चेति। मणपज्ज-वणाणी दुविहो—उजुमदी विउलमदी चेदि। तत्थ उजुमदी दव्वादि-चउव्विधो विसओ। दव्वादो जहण्णेण जाणंतो एगसमइय-ओरालियं णिज्जरं जाणदि। उक्कस्सेण चक्खिंदिय-ओरालिय-णिज्जरं जाणदि। खेत्तदो जहण्णेण गाउपुधत्तं जाणदि, उक्कस्सेण जोयणपुधत्तं जाणदि। कालदो जहण्णेण दो-तिण्णि भवग्गहणाणि जाणदि। उक्कस्सेण सत्तट्ठभवगहणाणि जाणदि। भावदो जहण्ण-उक्कस्सेण दव्वस्स असंखेज्जपज्जायं जाणदि। विउलमदी दव्वदो जहण्णेण चक्खु-इंदिय-अउरालियणिज्जरं जाणदि। उक्कस्सेण एगकम्मइयसमयपबद्धस्स विस्ससोवचय-अविर-हियस्स अणंतिमभागं जाणदि। खेत्तदो जहण्णेण जोयणपुधत्तं जाणदि। उक्कस्सेण माणुसखेत्तं जाणदि। कालदो जहण्णेण सत्तट्ठभवगहणाणि जाणदि। उक्कस्सेण असंखिज्जं जाणदि भव-गहणाणि। भावे जं जं दिट्ठं दव्वं तस्स तस्स असंखेज्जं पज्जयं जाणदि।

सकलमसहायमेकं सर्वद्रव्यावभासकमनन्तम्।
निरतिशयमनावरणं एतद्वरकेवलज्ञानम् ॥११॥

सर्वद्रव्यगुणपर्यायद्रव्यक्षेत्रकालभावतः करणक्रमव्यवधानेन विना युगपदेव एक्कम्हि समए सव्वाओ जाणदि बुज्झदि पस्सदि त्ति वा [केवलज्ञानम्]। केवलज्ञानस्य आवरणं केवल-ज्ञानावरणीयं चेति।

तत्थ णिद्दाणिद्दाए तिव्वोदएण रुक्खग्गे विसमभूमीए जत्थ तत्थ वा देसे घोरंतो घोरंतो सुवदि णिब्भरं। पचला-पचलातिव्वोदएण बइट्ठओ उब्भओ वा मुहेण गलमाणलालो पुणो कंपमाणसिरो णिब्भरं सुवदि थीणगिद्धीए तिव्वोदएण उट्ठाविदो पुणो सोवदि, सुत्तो वि कम्मं

कुणदि, सुत्तो वि संकदि, दंतं कडकडावेदि। णिद्दाए तिव्वोदएण अप्पकालं सुवदि, उट्ठाइज्जंतो लहुं उट्ठेइ, अप्पसद्देण चेयइ। पचलाए तिव्वोदएण बालुयाए भरियाइं व लोयणाइं होंति, गरुव-भारुद्धं व सीसयं होदि, पुणो पुणो लोयणाइं उम्मीलणं णिम्मीलणं कुणदि, णिद्दाभरेण पडंतो लहु अप्पाणं साहारेइ।

सति प्रकाशे विमलविस्फारितलोचनोऽपि पश्यन्नपि न पश्यति तच्चक्षुरावृत्तं ज्ञेयम्। शृण्वन् जिघ्रन् रसन् स्पर्शन् स्वयं तद्गतार्थं अवग्रहमात्रमपि [न]स्यात्तदचक्षुरावृति कर्म। पुद्गल-स्कन्धमेकैकं परमाणु पृथक्-पृथक्दर्शनसंज्ञावरणमेवावधिदर्शनावरणम्। सकलपदार्थातीता-नागतवर्तमानद्रव्यगुणपर्यायैर्युगपत्प्रतिसमयविलोकनासमर्थं येन तत्केवलदर्शनावृतम्।

अव्यथितमनोवाक्कायैर्निरुपहतपञ्चेन्द्रियनिरोगत्वाद्यनुभवनता सातम्, तद्विपरीतमसातम्।

खयउवसमं विसोही देसण पाओग्ग करणलद्धीए।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्तं[1] ॥१२॥

पुव्वसंचियकम्ममलपडलअणुभागफड्डया जदा अणंतगुणहीणकमेण उदीरिज्जंति तदा खयउवसमलद्धी। अणंतगुणहीणकमेण उदीरिद-अणुभागफड्डयाण जणिदपरिणामो सादादिसुह-कम्मबंधणिमित्तो असादादि-असुहकम्मबंधविरुद्धो विसोधिलद्धी णाम। छद्दव्व-णवपदत्थोवदेसो देसणलद्धी णाम। सव्वकम्माणुक्कस्सट्ठिदिघादि-असुभाण उक्कस्स-अणुभागघादीए अंतोकोडाकोडी जहण्णट्ठिदी लदा-दारुसमाण-वे-अणुभागट्ठाणु [-ट्ठाणाणुभागो] ठविज्जइ पाओग्गलद्धी होइ।

तत्थ करणलद्धी तिविधा–अधापवत्तयं अपुव्वं अणियट्टी चेदि। तत्थ अधापवत्तकरण-पविट्ठस्स णत्थि ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी गुणसंकमो वा। केवलं अणंतगुणविसोधीए विसुद्धमाणो गच्छदि। अप्पसत्थाणं कम्माणं अणंतगुणहीणकमेण ओहट्टिदूण अणुभागं बंधदि। पसत्थाणं कम्माणं अणंतगुणवड्ढिकमेण अणुभागं बंधदि। एवं ठिदिकण [करण]-ओसरणे सहस्से कदे अधापवत्तद्धा समप्पदि।

अपुव्वकरणपविट्ठस्स अत्थि ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी गुणसंकमो वा। एत्थेव अणंतगुणविसोधीए विसुज्झमाणो गच्छेदि, अप्पसत्थाणं कम्माणं अणंतगुणहीणकमेण ओहट्टिदूण अणुभागबंधं बंधदि, पसत्थाणं कम्माणं अणंतगुणवड्ढिकमेण अणुभागं बंधदि, एगट्ठिदिकंडयपडण-काले व्व [च] संखेज्जाणि अणुभागकंडयपडिदफड्डआणि गालेइ। एवं ठिदिकंडए ओसरणसहस्से कए अपुव्वकरणद्धा समप्पदि।

अणियट्टिकरणपविट्ठस्स अपुव्वकरणं व। णवरि मिच्छत्तस्स य अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं कादूण पढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तट्ठिदिं मुत्तूण उवरि अंतोमुहुत्तं अंतरकरणं कादूण पुणो चरमावलिं मोत्तूण ओकड्डुण-उदीरणं कादूण उवसमसम्माइट्ठिकाले मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त [मिदि] तिविहं करिय उवसमसम्माइट्ठी होदूण अच्छदि। एदेण कारणेण मिच्छत्तं एगं बज्झदि, सत्ताभेदेण तिविहं होदि।

पढमो दंसणघादी विदिओ पुण देसविरदिघादी य।
तदिओ संजमघादी चउत्थ जहखायसंजमो घादी[2] ॥१३॥
जलरेणुभूमिपव्वदराइसरिसो चदुविधो कोधो।
तह वल्ली कट्ठट्ठी सालत्थंभो हवे माणो ॥१४॥

---

१. लब्धिसा० गा० ३। २. प्रा० पञ्चसं० १,११५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माया चमरि-गोमुत्ति-विसाण-वंसमूलसमा ।
हालिद्द-कद्दम-णिली-किमिरागसमो हवे लोहो ॥१५॥

संयोजयन्ति भवमनन्तसंखेयभवः (?) कषायास्ते संयोजनावानन्ता (?) वानन्तानुबन्धिता बाधकतास्तेषाम् ।

स्तृणाति छादयति आत्मपरदोषमिति स्त्री । पुरु कर्माणि करोतीति पुरुषः । न पुमान्, न स्त्री नपुंसकम् । हसनं हासः । रमणं रतिः । न रतिः अरतिः । शोचनं शोकः । भीतिर्भयम् । जुगुप्सनं जुगुप्सा ।

[नारकायुः] नारकभवधारक इत्यर्थः । [तिर्यगायुः] तिर्यग्भवधारक इत्यर्थः । [मनुष्यायुः] मनुष्यभवधारक इत्यर्थः । [देवायुः] देवभवधारक इत्यर्थः ।

गतिर्भवः संसार इत्यर्थः । यदि गतिनामकर्म न स्यात्, अगतिः एव जीवः स्यात् । पुनर्भवनिर्वर्तकं गतिनाम । जातिः लब्धिः प्राप्तिः शक्तिरित्यर्थः । यदि जातिनामकर्म न स्यात् जीवस्यालब्धिः स्यात् । अत इन्द्रियाणां लब्धिनिर्वर्तकं जातिनाम । यदि शरीरनामकर्म न स्यात्, अशरीरी आत्मा स्यात् । अतः शरीरनिर्वर्तकं शरीरनाम । यदि शरीरबन्धननामकर्म न स्यात्, परस्परेणाबन्धनं शरीरस्य स्यात् सिकतापुरुषवत् । अतः परस्परेण शरीरप्रदेशबन्धननिर्वर्तकं शरीरबन्धननाम । यदि शरीरसंघातनामकर्म न स्यात् तिलमोदकवत् शरीरं स्यात् । अयःपिण्डवदेकीकरणं शरीरसंघातनाम । समप्रतिभागेन शरीरावयवसन्निवेशव्यवस्थापनं कुशलशिल्पिनिर्वर्तितं अवस्थितचक्रवत्-अवस्थानकरणं समचतुरस्रसंस्थानं नाम । नाभेरुपरिष्टाद् भूयसो देहसन्निवेशस्य अधस्ताच्चाल्पशो जातं न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानं नाम । न्यग्रोधाकारसमताप्रापितार्थः (?) तद्विपरीतसन्निवेशकं सातिसंस्थानं नाम । वाल्मीकतुल्याकारम् । पृष्ठकप्रदेशभाविबहुपुद्गलप्रचयविशेषलक्षणस्य निर्वर्तकं कुब्जसंस्थाननाम । सर्वाङ्गोपाङ्गह्रस्वव्यवस्थाविशेषकरणं वामनसंस्थानं नाम । सर्वाङ्गोपाङ्गानां हुण्डसंस्थितत्वं हुण्डसंस्थाननाम । यदि संस्थाननामकर्म न स्यात्, लोष्ठवत् [शरीरं स्यात्] अतः शरीरसंस्थाननिर्वर्तकं संस्थाननाम । यद्यङ्गोपाङ्गनामकर्म न स्यात् लोष्ठवत् । अतः अङ्गोपाङ्गनिर्वर्तकं अङ्गोपाङ्गनाम । तत्र तावदङ्गानि [पादौ] बाहू पृष्ठवक्षोसिरसि (नितम्ब-शिरांसि) । शेषाण्युपाङ्गानि । उक्तं च—

णलया बाहू य तहा णियंब पुट्ठी उरो य सीसो य ।
अट्ठेव य अंगाई देहे सेसा उवंगाइं[1] ॥१६॥

वज्राकारोभयास्थिसन्धिः । प्रत्येकमध्ये सवलयबन्धनं सनाराचसंगूढनं वज्रर्षभनाराचशरीरसंहनननाम । तदेवोभयवज्राकारो संप्राप्तवलयबन्धनं वज्रनाराचशरीरसंहनननाम । तदेवोभयवज्राकारत्वव्यपेतमवलयबन्धनं सनाराचशरीरसंहनननाम । तदेवैकपार्श्वं सनाराचमितरमनाराचमर्धनाराचशरीरसंहननं नाम । तदुभयविरहितमन्ते सकीलिका नाम शरीरसंहननं नाम । अन्तरे प्राप्त (?) परस्परास्थिसन्धि बहिः शरीरच्छाद्र (?) मांसघटितमसंप्राप्तासृपाटिकासंहननं नाम । यदि संहनननामकर्म न स्यात्, असंहननशरीरः स्यात्, देवशरीरवत् । अतः संहनननिर्वर्तकं संहनननाम अस्थिबन्धनमित्यर्थः ।

यदि वर्णनामकर्म न स्यात्, अवर्णं शरीरं स्यात्, नानावर्णं वा स्यात् । अतः वर्णनिर्वर्तकं वर्णनाम । यदि गन्धनामकर्म न स्यात् नानागन्धमगन्धं वा शरीरं स्यात् । अतः गन्धनिर्वर्तकं गन्धनाम । यदि रसनामकर्म न स्यात्, नानारसं अरसं वा शरीरं स्यात् । अतः रसनिर्व-

१. गो० क० २८ । कम्मप० ७४ ।

र्तकं रसनाम। यदि स्पर्शनामकर्म न स्यात्, नानास्पर्शं [अस्पर्शं] वा शरीरं स्यात्। अतः स्पर्शनिर्वर्तकं स्पर्शनाम।

अनुपूर्वे भवा आनुपूर्वी, अनुगतिः अनुक्रान्तिरित्यर्थः। आदिलाभे च क्षेत्रम् ''प्रतिगमानुपूर्वी। यद्यानुपूर्वी नामकर्म न स्यात् क्षेत्रान्तरप्राप्तिर्जीवस्य न स्यात्। अतः क्षेत्रान्तरप्रापकमानुपूर्वी नाम। यद्यगुरुलघु नामकर्म न स्यात्, लोह-तूलवद् गुरुर्वा लघुर्वा शरीरं स्यात्। अतः शरीरस्य अगुरुकलहुकनिर्वर्तकं अगुरुकलहुकनाम। उपेत्य घातः उपघातः। उपघात आत्मघात इत्यर्थः। यद्युपघातकर्म न स्यात्, स्वशरीरेण घातो न स्यात्। तद्यथा—महाश्रृङ्ग-लम्बस्तन-तुण्डोदरमित्येवमादि। अतः आत्मघातनिर्वर्तकं उपघातनाम। परेषां घातः परघातः। यदि परघातनामकर्म न स्यात्, अपरघातं शरीरं स्यात्। यथा सिंह-व्याघ्र-कुञ्जर-वृषभादीनां घातो न स्यात्। अतः परघातनिर्वर्तकं परघातनाम। ऊर्ध्वः श्वासः उच्छ्वासः। यद्युच्छ्वासनामकर्म न स्यात्, जीवस्योच्छ्वसनं न स्यात्। अतः उच्छ्वासनिर्वर्तकं उच्छ्वासनाम। यद्यातपनामकर्म न स्यात्, अनातपशरीरः स्यात्। अत आतपशरीरनिर्वर्तकं आतपनाम। यद्युद्योतनामकर्म न स्यात्, उद्योतशरीरं न स्यात्। अतः उद्योतशरीरनिर्वर्तकं उद्योतनाम। विहाय आकाशं गगनमम्बरमित्यर्थः। विहायसि गतिः विहायोगतिः। यदि विहायोगतिनामकर्म न स्यात्, आकाशे जीवगतिर्न स्यात्, तदभावे अल्पप्रदेशानां भूम्यवस्थानं बहूनां आकाशव्यवस्थापनं पतनमेव स्यात्। अत आकाशगतिनिर्वर्तकं विहायोगतिनाम। यदि त्रसनामकर्म न स्यात्, न त्रसति जीवः; आकुञ्चन-प्रसारण-निर्मीलनोन्मीलन-स्पन्दनादि त्रसनं तद् द्वीन्द्रियादीनां न स्यात्। अतः त्रसनिर्वर्तकं त्रसनाम। यदि स्थावरनामकर्म न स्यात्, नावतिष्ठति जीवः, स्पन्दनाभावात्। अतः स्थावरनिर्वर्तकं स्थावरनाम। यदि बादरनामकर्म न स्यात्, सूक्ष्मजीव एव स्यात्, वर्णविभागाभावात्, चक्षुषा न ग्राह्यत्वात्; अनन्तानां जीवानां समुदीरितानामपि तमसि प्रक्षिप्ताञ्जनरेणुवत् अचक्षुर्विषयः स्यात्। अतः बादरनिर्वर्तकं बादरनाम। यदि सूक्ष्मनामकर्म न स्यात्, बादर एव जीवः स्यात्, पल्योपमस्यासंख्येयभागे जीवसमुदीरितेऽपि चक्षुषा ग्राह्यः स्यात्। अतः सूक्ष्मनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम। यदि पर्याप्तनामकर्म न स्यात्, आहारादीनामसंपूर्णत्वादपर्याप्त एव जीवः स्यात्। अतः पर्याप्तनिर्वर्तकं पर्याप्तनाम। यद्यपर्याप्तनामकर्म न स्यात्। आहारादीनां सम्पूर्णत्वात्पर्याप्त एव जीवः स्यात्। अतः अपर्याप्तनिर्वर्तकं अपर्याप्तनाम। यदि प्रत्येकनामकर्म न स्यात्, जीवस्य साधारणशरीरलब्धिः स्यात्। अतः प्रत्येकशरीरनिर्वर्तकं प्रत्येकशरीरनाम। यदि साधारणशरीरनामकर्म न स्यात्, एकैकस्य जीवस्य प्रत्येकशरीरं स्यात्। अतः साधारणशरीरनिर्वर्तकं साधारणशरीरनाम। यदि स्थिरनामकर्म न स्यात्, रस-रुधिर-मांसमेदास्थि-मज्जा-शुक्रादीनां स्थैर्याभावाद् गतिरेव स्यात्। अतस्तेषां स्थिरतानिर्वर्तकं स्थिरनाम। यदि अस्थिरनामकर्म न स्यात, रसादीनां स्थैर्यं स्यात्, परस्पर-संक्रान्तिर्न स्यात्। अत एकधातुशरीरं स्यात्। अतस्तेषां अस्थिरतानिर्वर्तकं अस्थिरनाम। यदि शुभनामकर्म न स्यात्, अशुभाङ्गाण्येव स्युः, कक्षोपस्थादिवत्। अतः शुभनिर्वर्तकं शुभनाम। यद्यशुभनामकर्म न स्यात्, नयन-ललाटादिवत् शुभाङ्गाण्येव स्युः। अतः अशुभनिर्वर्तकं अशुभनाम। यदि सुभगनामकर्म न स्यात्, दुर्भगत्वं अकान्तित्वं भवति। अतः कान्तित्वनिर्वर्तकं सुभगनाम। यदि दुर्भगनामकर्म न स्यात्, सुभगकान्तित्वं भवति। अतः दुर्भगं अकान्तित्वनिर्वर्तकं दुर्भगनाम। यदि सुस्वरनामकर्म न स्यात्, परुषनाद-शृगालोष्ट्रादिवत् [ ]। अतः सुस्वरनिर्वर्तकं सुस्वरनाम। यदि दुःस्वरनामकर्म न स्यात्, मधुरनाद-मयूरकोकिलादिवत् [ ]। अतः दुःस्वरनिर्वर्तकं दुःस्वरनाम। आदेयं ग्रहणीयता बहुमानतेत्यर्थः। अतः आदेयनिर्वर्तकं आदेयनाम। अनादेयमग्रहणीयता अवमानतेत्यर्थः। अतः अनादेयनिर्वर्तकं अनादेयनाम। यशः गुणोद्भावनं कीर्त्तिः ख्यातिरित्येकार्थः। अतः गुणख्यातिनिर्वर्तकं यशःकीर्त्तिनाम। अयशः अगुणोद्भावन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मित्येकार्थः । अतः दोषख्यातिनिर्वर्तकं अयशःकीर्त्तिनाम । नियतं नाम निर्माणं अनेकधा इत्यर्थः । निर्माणनिर्वर्तकं निर्माणनाम । निर्माणं तद् द्विविधं प्रमाणनिर्माणं स्थाननिर्माणमिति । प्रमाणनिर्वर्तकं प्रमाणनिर्माणम् । यदि प्रमाणनिर्माणनामकर्म न स्यात्, असंख्येययोजन-विस्तार आयामः [स्यात्,] अतः लोके प्रमाणनिर्वर्तकं प्रमाणनिर्माणम् । अन्यथा तालश्रुचियत् (?) आलोकान्तशरीरं स्यात् । अथवा हस्तिस्तम्भकीलवत् लोकान्तविस्तृतशरीरं स्यात् । अङ्गोपाङ्गानां प्रत्यङ्गगतानां स्वे स्वे स्थाने निर्मापकं स्थाननिर्माणम् । तदभावे ललाटे मूर्ध्नि कर्ण-नयन-नासिकादीनां विपरीतविन्यासः स्यात् । अतः स्वजात्यनुरूपतः अङ्गोपाङ्गनिर्वर्तकं स्थान-निर्माणनाम । त्रिलोकजीवार्हसर्वजीवहितोपदेशजनकतीर्थकरनिर्वर्तकं तीर्थकरनाम ।

जनपद-पितृ-मातृ-शुचिस्थान-मानैश्वर्य-धनादिप्राप्तिजन्मोच्चं (?) उच्चगोत्रम् । तद्विपरीतं नीचगोत्रम् ।

दानस्यान्तरायं दानान्तरायं दानविघ्नमित्यर्थः । लाभस्यान्तरायं लाभान्तरायं लाभविघ्न-मित्यर्थः । भोगस्यान्तरायं भोगान्तरायं भोगविघ्नमित्यर्थः । परिभोगस्यान्तरायं परिभोगान्तरायं परिभोगविघ्नमित्यर्थः । वीर्यस्यान्तरायं वीर्यान्तरायं वीर्यविघ्नमित्यर्थः ।

एवं प्रकृतिवृत्तिः समाप्ता ।

इदि पढमो पयडिसमुक्कित्तणा-संगहो समत्तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदिओ

कम्मत्थव-संगहो

णमिऊण अणंतजिणे तिहुवणवरणाणदंसणपईवे ।
बंधुदयसंतजुत्तं वुच्छामि थवं णिसामेह ॥१॥

एत्थ पयडिवुच्छेदे कीरमाणे दुविहणयाहिप्पाओ भवदि—उप्पादाणुच्छेदो अणुप्पादाणुच्छेदो त्ति। उत्पादः सत्त्वं सत्, छेदो विनाशः अभावनिरूपता इति यावत्। उत्पाद एव अनुच्छेदः, उत्पादानुच्छेदः, भाव एव अभाव इति यावत्। एसो दव्वट्ठियणयववहारो। अनुत्पादः असत्त्वं अनुच्छेदो विनाशः, अनुत्पाद एव अनुच्छेदः अनुत्पादानुच्छेदः, असतः अभाव इति यावत्, सतः असत्त्वविरोधात्। एसो पज्जवट्ठियणयववहारो।

मिच्छे सोलस पणुवीस सासणे अविरदे य दस पयडी ।
चउ छक्कमेयदेसे विरदे इयरे कमेण वुच्छिण्णा ॥२॥
दुगतीसचदुरपुव्वे पंचऽणियट्टिम्हि बंधवोच्छेदो ।
सोलस सुहुमसरागे साद सजोगिम्हि बंधवुच्छिणा ॥३॥
पण णव इगि सत्तरसं अड पंच य चदुर छक्क छच्चेव ।
इगि दुग सोलस तीसं वारस उदओ अजोयंता ॥४॥
पण णव इगि सत्तरसं अट्ठट्ठय चदुर छक्क छच्चेव ।
इगि दुग सोलगुदालं उदीरणा होंति जोगंता ॥५॥
अण मिच्छ मिस्स सम्मं अविरदसम्मादि-अप्पमत्तंता ।
सुर-णिरय-तिरिय-आऊ णिययभवे चेव खीयंति ॥६॥
सोलस अट्ठेक्केक्कं छक्केक्केक्क खीण अणियट्टी ।
एयं सुहुमसराए खीणकसाए य सोलसयं ॥७॥
वावत्तरिं दुचरिमे तेरस चरिमे अजोगिणो खीणा ।
अडदालं पगडिसदं खविय जिणं णिव्वुदं वंदे ॥८॥
णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेदणीय मोहणीयं ।
आउग णामं गोदं तहंतरायं च मूलपगडीओ ॥९॥
पंच णव दुण्णि अट्ठावीसं चदुरो तहेव वादालं ।
दोण्णि य पंच य भणिदा पगडीओ उत्तरा चेव ॥१०॥
मिच्छ णउंसयवेयं णिरयाउग तहय चेव णिरयदुगं ।
इगि-विगलिंदिय जादी हुंडमसंपत्त आदावं ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावर सुहुमं च तहा साधारणगं तह अपज्जत्तं ।
एदे सोलस पयडी मिच्छम्हि य बंधुवुच्छेदो ॥१२॥
थीणतिगं इत्थी वि य अण तिरियाउं तहेव तिरियदुगं ।
मज्झिम चउसंठाणं मज्झिम चउ चेव संघडणं ॥१३॥
उज्जोवमप्पसत्थं विहायगदि दुब्भगं अणादेज्जं ।
दुस्सर णिचागोदं सासणसम्मम्हि वुच्छिण्णा ॥१४॥
विदियकसायचउक्कं मणुआऊ मणुअदुगं च ओरालं ।
तस्स य अंगोवंगं संघडणादी अविरदम्हि ॥१५॥
तदियकसायचउक्कं विरदाविरदम्हि बंधवोच्छिण्णा ।
[साइयरमरइ सोयं तह चेव य अथिरमसुहं च ॥१६॥
अज्जसकित्ती य तहा पमत्तविरयम्हि वोच्छेदो]
देवाउगं च एयं पमत्त-इदरम्हि णादव्वं ॥१७॥
णिद्दा पयला य तहा अपुव्वपढमम्हि बंधवुच्छेदो ।
देवदुगं पंचिंदिय ओरालिय वज्ज चउसरीरं च ॥१८॥
समचउरं वेउव्वियमाहारय-अंगवंगणामं च ।
वण्णचउक्कं च तहा अगुरुगलहुगं च चत्तारि ॥१९॥
तसचउ.पसत्थमेव य विहायगदि थिर सुहं च णायव्वा ।
सुभगं सुस्सरमेव य आदिज्जं चेव णिमिणं च ॥२०॥
तित्थयरमेव तीसं अपुव्वछब्भाग बंधवुच्छिण्णा ।
हस्स रदि भय दुगुंछा अपुव्वचरिमम्हि वुच्छिण्णा ॥२१॥
पुरिसं चदुसंजलणं पंच य पगडीय पंचभागम्हि ।
अणियट्टी-अद्धाए जहाकमं बंधवोच्छेदो ॥२२॥
णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि उच्चजसकित्ती ।
एदे सोलस पगडी सुहुमकसायम्हि बंधवुच्छिणा ॥२३॥
उवसंत खीणमोहे [खीण चत्ता] सजोगिचरिमम्मि सादवुच्छेदो ।
णादव्वो पगडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥२४॥
मिच्छत्तं आदावं सुहुममपज्जत्तगा च तह चेव ।
साधारणं च पंच य मिच्छम्हि य उदयवुच्छेओ ॥२५॥
अण एइंदियजादी विगलिंदियजादिमेव थावरयं ।
एदे णव पगडीओ सासणसम्मम्हि उदयवुच्छिण्णा ॥२६॥
सम्मामिच्छत्तेयं सम्मामिच्छम्हि उदयवुच्छेदो ।
विदियकसायचउक्कं तह चेव य णिरय-देवायू ॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुय-तिरियाणुपुव्वी वेउव्वियछक्क दुब्भगं चेव ।
आणादिज्जं च तहा अज्जसकित्ती अविरदम्हि ॥२८॥
तदियकसायचउक्कं तिरियाऊ तह य चेव तिरियगदी ।
उज्जोव णीचगोदं विरदाविरदम्हि उदयवुच्छिण्णा ॥२९॥
थीणतिगं चेव तहा आहारदुगं पमत्तविरदम्हि ।
सम्मत्तं संघडणं अंतिम तिगमप्पमत्तम्हि ॥३०॥
तह णोकसायछक्कं अपुव्वकरणम्हि उदयबुच्छेदो ।
वेदतिग कोह माणं माया संजलणमणियट्टी ॥३१॥
संजलण लोहमेयं सुहुमकसायम्हि उदयवुच्छिण्णा ।
तह वज्जं णारायं णारायं चेव उवसंते ॥३२॥
णिद्दा पयला य तहा खीणदुचरिमम्हि उदयवुच्छिण्णा ।
णाणंतरायदसयं दसणचत्तारि चरिमम्हि ॥३३॥
अण्णदर वेदणीयं ओरालिय-तेज-कम्म णामं च ।
छच्चेव य संठाणं ओरालिय अंगवंगो य ॥३४॥
आदी वि य संघडणं वण्णचउक्कं च दो विहायगदी ।
अगुरुगलहुगचउक्कं पत्तेय थिराथिरं चेव ॥३५॥
सुह सुस्सर जुगलाविय णिमिणं च तहा हवंति णायव्वा ।
एदे तीसं पगडी सजोगिचरिमम्हि वुच्छिण्णा ॥३६॥
अण्णदर वेदणीयं मणुयाऊ मणुयगदी य बोधव्वा ।
पंचिंदियजादी वि य तस सुभगादिज्ज पज्जत्तं ॥३७॥
बादर जसकित्ती वि य तित्थयरं णाम [उच्च] गोदयं चेव ।
एदे बारस पगडी अजोगिचरिमम्हि उदयवुच्छिण्णा ॥३८॥
उदयस्सुदीरणस्स सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो ।
मुत्तूण तिण्णि ठाणं पमत्त जोगी अजोगी य ॥३९॥
तीसं बारस उदयं केवलिणं मेलणं च कादूण ।
सादासादं च तहा मणुआऊ अवणिदं किच्चा॥४०॥
सेसं उगुदालीसं सजोगिम्हि उदीरणा य बोधव्वा ।
अवणीय तिण्णि पगडी पमत्तउदयम्हि पक्खित्ता ॥४१॥
तह चेव अट्ठ पगडी पमत्तविरदे उदीरणा हुंति ।
णत्थि त्ति अजोगिजिणे उदीरणा हुंति णादव्वा ॥४२॥
थीणतिगं चेव तहा णिरयदुगं तह य चेव तिरियदुगं ।
इगिविगलिंदियजादी आदावुज्जोव थावरयं ॥४३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधारण सुहुमं चिय सोलस पयडी य होइ णायव्वा ।
विदियकसायचउक्कं तदियकसायं च अट्ठेदे ॥४४॥
एय णउंसयवेयं इत्थीवेदं तहेव एयं च ।
छण्णोकसायछक्कं पुरिसं कोहं च माणो य ॥४५॥
मायं चिय अणियट्टीभागं गंतूण संतवुच्छेदो ।
लोभं चिय संजलणं सुहुमकसायम्हि वुच्छिण्णा ॥४६॥
खीणकसायदुचरिमे णिद्दा पयला य हणइ छदुमत्थो ।
णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमम्हि ॥४७॥
देवदुग पण सरीरं पंचसरीरस्स बंधणं चेव ।
पंचेव य संघादं संठाणं तह य छक्कं च ॥४८॥
तिण्णि य अंगोवंगं संघडणं तह य हुंति छक्का य ।
पंचेव य वण्णरसं दो गंधं अट्ठफासो य ॥४९॥
अगुरुगलहुगचउक्कं विहायगदि दो थिराथिरं चेव ।
सुभ सुस्सर जुगलं चियं पत्तेयं दुब्भगं अजसं ॥५०॥
आणादिज्जं णिमिणं अपज्जत्तं तह य णीचगोदं च ।
अण्णदर वेदणीयं अजोगिदुचरमम्हि वुच्छिण्णा ॥५१॥
अण्णदर वेदणीयं मणुयाऊ मणुयदुगं च बोधव्वा ।
पंचिंदियजादी वि य तस सुभगादिज्ज पज्जत्तं ॥५२॥
बादरजसकित्ती वि य तित्थयरं उच्चगोदयं चेव ।
एदे तेरस पगडी अजोगिचरिमम्हि संतवुच्छिण्णा ॥५३॥
सो मे तिहुवणमहिदो सिद्धो बुद्धो णिरंजणो सुद्धो ।
दिसदु वरणाणलाहं दंसणसुद्धिं समाहिं च ॥५४॥

देवासुरिंदमहिदं भवसायरपारयं महावीरं ।
पणमिय सिरसा वुच्छं जहाकमं सुणह एयमणा ॥५५॥
किं बंधोदयपुव्वं समं च स-परोदएण उभए वा ।
संतर णिरंतरं वा तदुभयमिदि णवविधं पण्हं ॥५६॥
पढमुदओ वुच्छिज्जइ पच्छा बंधो त्ति अट्ठ पगडीओ ।
णादव्वाओ णियमा एकत्तीसं समं च बंधुदया ॥५७॥
एगुत्तर असिदीओ पयडीओ जिणवरेहि दिट्ठाओ ।
पच्छुदओ वोछिज्जइ पढमं बंधु त्ति णादव्वो ॥५८॥
सत्तावीसेगारं सोदयमथ परोदएण बज्झंति ।
बासीदीओ णियमा बज्झंति तत्थ उभएण ॥५९॥

चउतीसं चउवण्णं बत्तीसं चेव होइ परिसंखा ।
संतर णिरंतरेण य बज्झंति हि तदुभयेण तहा ॥६०॥
देवाऊ देवचऊ आहारदुगमयसं च अट्ठ दे ।
पढमुदओ बुच्छिज्जइ पच्छा बंधो त्ति णादव्वो ॥६१॥
मिच्छत्तं पण्णारस कसाय लोभं विणा पुरुस हस्सरदि भयदुगुंछा ।
जादिचउक्कादावं थावर सुहुमादितिण्हं पि ॥६२॥
मणुआणुपुव्विसहिदा एक्कतीसं समं च बंधुदया ।
एयाओ पयडीओ णायव्वाओ हवंति णियमेण ॥६३॥
णाणंतरायदसयं दंसणचउ उच्च णीचगोदं ग [च] ।
इत्थि णउंसयवेदं सादासादं च लोहसंजलणं ॥६४॥
णिरयाऊ तिरियाऊ णिरि-तिरिय मणुयगई ।
वण्णचउक्कं च तहा उज्जोवं चेव दो विहायगदी ॥६५॥
छस्संठाणं च तहा पंचिंदियजादि अरदि सोगं च ।
ओरालियंगबंगं छण्णं तह चेव संघडणं ॥६६॥
तस बादर पज्जत्तं पत्तेयसरीरमेव णादव्वा ।
ओरालियं च तेजा कम्मइयसरीरमेव तहा ॥६७॥
णिरय-तिरियाणुपुव्वी जसकित्ति थिराथिरादिपणजुयलं ।
णादव्वं तह चेव य अगुरुगलहुगं च चत्तारि ॥६८॥
णिमिणं तित्थयरेण इगिसीदीओ हवंति पगडीओ ।
पच्छुदओ वोच्छिज्जइ पढमं बंधुत्ति णादव्वो ॥६९॥
आवरणमंतराए चउ पण मिच्छत्त तेज कम्मइया ।
वण्णचउक्कं च तहा अगुरुगलहुगं थिरादि बे जुयलं ॥७०॥
णिमिणेण सह सगवीसा बज्झंति हि सोदएण एदाओ ।
सेसा पुण एयारा बोधव्वा तत्थ होंति इदरेण ॥७१॥
णिरयाऊ देवाऊ वेउव्वियछक्क दोण्णि आहारे ।
तित्थयरेणेयाओ बोधव्वाओ हवंति पगडीओ ॥७२॥
दंसणपण णिरियाउग मणुआउग मणुवगइमेव ।
सोलस कसायमेव य तहेव णवणोकसायं च ॥७३॥
मणुयतिरियाणुपुव्वी ओरालियदुगं तहेव णादव्वो ।
संठाणछक्कमेव य छच्चेव य तह य संघडणं ॥७४॥
उवघादं परघादं उस्सासं चेव पंच जाई य ।
दो वेदणीयमेव य आदावुज्जोय दो विहायगई ॥७५॥

तस थावर सुहुमाविय बादर पज्जत्त तह अपज्जत्तं ।
पत्तेयं साधारण णिच्चुच्चागोदमेव बोधव्वा ॥७६॥
सुभगादिजुयलचदुरो णादव्वाओ हवंति एदाओ ।
वासीदीओ णियमा सग-परउदएण बज्झंति ॥७७॥
इत्थि-णउंसयवेयं सादिदर अरदिंसोग णिरयदुगं ।
जादिचउक्कं च तहा संठाणं पंच पंच संघडणं ॥७८॥
थावर सुहुमं च तहा आदावुज्जोयमप्पसत्थगई ।
तह चेवमपज्जत्तं साहारणयं च णादव्वा ॥७६॥
अथिरासुहं तहेव य दुस्सरमध दूहवं च णियमेण ।
आणादेज्जं च तहा अज्जसकित्ती मुणेदव्वा ॥८०॥
एदे खलु चोत्तीसा बज्झंति हि संतरेण णियमेण ।
एदे खलु चउवण्णा बज्झंति णिरंतरा सव्वे ॥८१॥
णाणंतरायदसयं दंसणणव मिच्छ सोलस कसाया ।
भयकम्म दुगुंछादिय तेजा कम्मं च वण्णचऊ ॥८२॥
अगुरुगलहुगुवघादं तित्थयराहारदुग णिमिणमाऊणि ।
सेसा खलु बत्तीसा बज्झंति हि तदुभएणेव ॥८३॥
हस्स रदि पुरिसवेदं तह चेव य तिरिय-देव-मणुयगई ।
ओरालिय वेउव्विय समचउरं चेव संठाणं ॥८४॥
आदी विय संघडणं पंचिंदियजादि साद गोददुगं ।
ओरालिय वेउव्विय अंगोवंगं पसत्थगदिमेव ॥८५॥
मणुय-तिरियाणुपुव्वी परधादुस्सासमेव एदाओ ।
देवगईणुपुव्वी बोधव्वा हुंति पयडीओ ॥८६॥
तसबादरपज्जत्तं पत्तेयसरीरमेव णायव्वा ।
थिर-सुभ सुभगं च तहा सुस्सरमादेज्ज जसकित्ती ॥८७॥
एदे णवाहियारा जिणदिट्ठा वण्णिदा मए तच्चा ।
भावियमरणो जं खलु भावियसिद्धिं लहुं लहइ ॥८८॥

णमिऊण जिणवरिंदे तिहुवणवरणाण-दंसणपईवे ।
बंधोदयसंतजुत्तं वोच्छामि थवं णिसामेह ॥१॥
मिच्छे सोलस पणवीस सासणे अविरदे य दस पयडी ।
चदुछक्कमेय देसे विरदे इयरे कमेण वुच्छिण्णा ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुग तीस चदुरपुव्वे पंच णियट्टिम्हि बंधवुच्छेदो ।
सोलस सुहुमसरागे साद सजोगिय [म्हि] जिणवरिंदे ॥३॥
पण णव इगि सत्तरसं अड पंच य चदुर छक्क छच्चेव ।
इगि दुग सोलस तीसं बारस उदए अजोगंता ॥४॥
पण णव इगि सत्तरसं अट्ठट्ठय चउर छक्क छच्चेव ।
इगि दुग सोलसु दालं उदीरणा होंति जोगंता ॥५॥
अण मिच्छ मिस्स सम्मं अविरदसम्मादि-अप्पमत्तंता ।
सुर-णिरय-तिरियआऊ णिययभवे चेव खीयंति ॥६॥
सोलस अट्ठेक्केक्कं छक्केक्केक्केक्क खीण अणियट्टी ।
एयं सुहुमसरागे खीणकसाए य सोलसयं ॥७॥
वावत्तरिं दुचरिमे तेरस चरिमे अजोगिणो खीणा ।
अडयालं पयडिसदं खविदजिणं णिव्वुदं वंदे ॥८॥
एदं कम्मविधाणं णिच्चं जो पढइ सुणइ पयदमदी ।
दंसण-णाणसमग्गो सो गच्छइ उत्तमं ठाणं ॥९॥

एत्तो सव्वपयडीणं बंधवुच्छेदो कादव्वो भवदि । तं जहा । 'मिच्छे सोलस'—मिच्छत्त णपुंसकवेय णिरयाउगं णिरयगदि एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चतुरिंदिय जादि हुंडसंठाणं असंपत्त-सेवट्टसंघडणं णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्वीयं आदव थावर सुहुम अपज्जत्त साधारण एदाओ सोलस पयडीओ मिच्छादिट्ठिम्मि बंधवुच्छेदो ।

'पणवीस सासणे'—णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी अणंताणुबंधिचदुक्कं इत्थिवेद तिरिक्खाउ तिरिक्खगदी णिग्गोहसंठाणं सादिसंठाणं खुज्जसंठाणं वामसंठाणं वज्जणाराय-संघडणं णारायसंघडणं अद्धणारायसंघडणं खीलियसंघडणं तिरिक्खगदिपाउग्गाणुपुव्वी उज्जोव अप्पसत्थविहायगदी दुभग दुस्सर अणादिज्ज णीचागोद एदासिं पणुवीसण्हं पयडीणं सासणसम्मा-दिट्ठिम्हि बंधवोच्छेदो ।

'अविरदे य दस पयडि'—अपच्चक्खाणचदुक्कं मणुआऊ मणुस्सगदी ओरालियसरीर ओरा-लियसरीर-अंगोवंग वज्जरिसभवइरणारायसंघडणं मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी एदासिं दसपयडी-ओ[णं] असंजदसम्मादिट्ठिस्स बंधवुच्छेदो ।

'चदु' पच्चक्खाणावरणचदुक्कं एदाओ चत्तारि पयडीओ संजदासंजदम्हि बंधवुच्छेदो । 'छक्कं' असादावेदणीयं अरदि सोग अथिर सुभगं अजसकित्ती एदाओ छप्पयडीओ-जदस्स [पमत्तसंजदस्स] बंधवुच्छेदो । 'एयं' देवाऊ अप्पमत्तसंजदम्हि बंधवुच्छेदो । 'दुग' णिद्दा पयला य अपुव्वकरणद्धाए सत्तमभागे पढमभागचरमसमयबंधवुच्छेदो । 'तीसं' देवगदि पंचिं-दियजादि वेउव्वियाहारतेजाकम्मइयसरीर समचदुरसंठाणं वेउव्विय-आहारसरीर-अंगोवंग वण्ण गंध रस फास देवगदिआणुपुव्वी अगुरुलहुग उवघाद परघाद उस्सास पसत्थगदी तस बादर पजत्त पज्जत्तेयसरीर थिर सुभ सुभग सुस्सर आदेज्ज णिमिण तित्थयरणामं च एयाओ तीस पयडीओ अपुव्वकरणम्हि सत्तमभाग-छभागं गंतूण बंधवुच्छेदो । ['चदु' हस्स रदि भय दुगुंछा एदाओ चत्तारि पयडीओ अपुव्वचरिमम्हि वुच्छिज्जंते] । 'पंच अणियट्टिम्हि' चदु संजलणं पुरिसवेद एयाओ पंच पयडीओ अणियट्टि-अद्धाए पंचभागं गंतूणं एक्केक्क बंधवुच्छेदो । पढम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागे पुरिसवेदवुच्छेदो, विदियभागे कोधसंजलणं, तदियभागे माणसंजलणं, चउत्थभागे माया-संजलणं, चरमसमये लोभसंजलण-बंधवुच्छेदो।

'सोलस सुहुमसरागे'—पंच णाणावरणीयं चदु दंसणावरणीयं जसकित्ती उच्चागोदं पंच अंतराइयं एयाओ सोलस पयडीओ सुहुमसंपराइयस्स चरमसमए बंधवुच्छेदो। 'उवसंत खीणमोहे साद सजोगिजिणे'—सादावेदणीयं सजोगचरमसमए बंधवुच्छेदो।

एत्तो सव्वपयडीणं कादव्वो उदयवुच्छेदो—'पण' मिच्छत्त आदाव सुहुमअपज्जत्त साधारण एदाओ पंच पयडीओ मिच्छादिट्ठिम्हि उदयवुच्छेदो। 'णव' अणंताणुबंधिचदुक्कं एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियजादि थावरणामं च एयाओ णव पयडीओ सासणसम्मादिट्ठिम्हि उदयवुच्छेदो। 'इगि' [सम्मामिच्छत्तमेगं] सम्मामिच्छादिट्ठिम्हि उदयवुच्छेदो 'सत्तरस' अपच्चक्खाणावरणीयं कोध माण माया लोभ णिरय-देवाउग णिरय-देवगदि वेउव्वियसरीर वेउव्वियसरीर-अंगोवंग णिरयगदि-तिरिक्खगदि-मणुसगदि-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी दुभग अणादिज्जं अजसकित्ती एदासिं सत्तरसण्हं पयडीणं असंजदसम्मादिट्ठिम्हि उदयवुच्छेदो। 'अड' अपच्चक्खाणावरणीयं कोध माण माया लोभ तिरिक्खगदि उज्जोव णीचगोदं च एदासिं अट्ठण्हं पयडीणं संजदासंजदम्हि उदयवुच्छेदो। 'पंच' णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी आहारसरीर आहारसरीर-अंगोवंगं एदासिं पंचण्हं पयडीणं पमत्तसंजदम्हि उदयवुच्छेदो। 'चदुरो' वेदगसम्मत्तं अद्धणारायसंघडणं खीलियसंघडणं असंपत्तसेवट्टसंघडणं एदासिं चउण्हं पयडीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदोत्ति उदयवुच्छेदो। 'छक्क' हस्स रदि अरदि सोग भय दुगुंछा एदासिं छण्हं पयडीणं अपुव्वकरणउवसामयस्स वा खवयस्स वा चरिमसमयम्हि उदयवुच्छेदो। ['छच्चेव'] णवुंसक-इत्थीवेदाणं कोध माण मायासंजलणं एदासिं छण्हं पयडीणं मिच्छा-[दिट्ठि-]प्पहुडि जाव अणियट्टी सेससंखिज्जभागं गंतूण उदयवुच्छेदो। 'इगि' लोभसंजलणस्स सुहुम-संपराइयचरिमसमयम्मि उदयवुच्छेदो। 'दुग' वज्जणारायसंघडणं णारायसंघडणं एदासिं दुण्हं पयडीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-चरमसमए उदयवुच्छेदो। 'सोलस' णिद्दा पयलाणं खीणकसायस्स दुचरमसमए उदयवुच्छेदो। पंचण्हं णाणावरणीदाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं पंचण्हं अंतराइयाणं एदासिं चउदसण्हं पयडीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायचरमसमए उदयवुच्छेदो। 'तीसं' अण्णदर वेदणीयं ओरालिय तेजाकम्मइगसरीर छ संठाण ओरालियसरीर-अंगोवंग वज्जरिसभवइरणारायसंघडणं वण्ण गंध रस फास अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उस्सास दो विहायगदि जाव पत्तेयसरीर थिराथिर सुभासुभ सुस्सर दुस्सर णिमिण एदासिं तीसपयडीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुडि सजोगिकेवलिचरमसमयउदयवोच्छेदो। 'वारस' अण्णदर वेदणीयं मणुसाउग-मणुसगदि पंचिंदियजादि तस बादर पज्जत्त[1] सुभग आदेय जसकित्ती तित्थयर उच्चागोद एयासिं वारसण्हं पयडीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलिचरिमसमयम्हि उदयवुच्छेदो। णवरि तित्थयरस्स सजोगिप्पहुदि जाव वत्तव्वो।

एत्तो सव्वपयडीणं उदीरणावुच्छेदो कादव्वो भवदि। एत्थ सुत्तं—'पण मिच्छत्तस्स' उवसमसम्मत्ताभिमुहमिच्छादिट्ठिम्हि आवलिसेसे वेदगसम्मत्ताभिमुहस्स वा चरिमसमए उदीरणावुच्छेदो। आदाव सुहुम अपजत्त साधारणसरीर एदासिं चदुण्हं पयडीणं मिच्छादिट्ठिचरिमसमए उदीरणावुच्छेदो। 'णव' अणंताणुबंधिचदुक्कं एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चदुरिंदियजादि थावर णामा य एदासि णवण्हं पयडीणं सासणसम्मादिट्ठिम्हि उदीरणावुच्छेदो। 'इगि' सम्मामिच्छत्तस्स सम्मामिच्छादिट्ठिम्मि उदीरणावुच्छेदो। 'सत्तरसं' णिरयाउगं देवाउगं असंजदसम्मा-

१. आदर्शप्रतौ 'पज्जत्तापत्तेग' इति पाठः।

दिट्ठिम्हि आवलिसेसे उदीरणावुच्छेदो। पच्चक्खाणावरणचदुक्कं वेउव्वियछक्क तिरिक्खगदि मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी दुभग अणादिज्ज अजसकित्ती एदासिं पण्णरसण्हं पयडीण असंजदसम्मादिट्ठिम्हि [चरिमसमए] उदीरणावुच्छेदो। 'अट्ठ' तिरिक्खाउगस्स संजदासंजदम्हि मरणावलियसेसे उदीरणावुच्छेदो। पच्चक्खाणावरणचदुक्कं तिरिक्खगदि उज्जोव णीचागोदं एदासिं सत्तण्हं पयडीण संजदासंजदचरमसमए उदीरणावुच्छेदो। 'अट्ठ' थीणगिद्धितिग सादासादा एदासिं पंचण्हं पयडीणं पमत्तसंजदस्स उत्तरवेउव्वियस्स चरिमावलियसेसे उदीरणावुच्छेदो। आहारदुग मणुसाउगस्स पमत्तसंजदस्स चरिमावलियसेसे उदीरणावुच्छेदो। 'चदु' अद्धणारायसंघडणं खीलियसंघडणं असंपत्तसेवट्टसंघडणं वेदगसम्मत्तं एदासिं चदुण्हं पयडीणं अप्पमत्तसंजदस्स चरिमसमए उदीरणावुच्छेदो। 'छक्क' हस्स रदि अरदि सोग भय दुगुंछा एदासिं छण्हं पयडीणं अपुव्वकरण-उवसामयस्स वा खवयस्स वा चरमसमए उदीरणावुच्छेदो। 'छक्क' अणियट्टि-उवसामयस्स वा खवयस्स वा तिण्हं वेदाणं तिण्हं संजलणाणं अणियट्टिस्स सेसं संखेज्जभागं गंतूण उदीरणावुच्छेदो। 'इगि' लोभसंजलणस्स सुहुमसांपराइय उवसमयस्स वा खवयस्स वा आवलियसेसे उदीरणावुच्छेदो। 'दुग' वज्जणाराय णारायसंघडणं एदासिं दोण्हं पयडीणं उवसंतकसायम्हि उदीरणावुच्छेदो 'सोलस' णिद्दा-पयलाणं खीणकसायस्स समयावलियसेसे उदीरणावुच्छेदो। पंचण्हं णाणावरणीयाणं चउण्हं दंसणावरणीयाणं पंचण्हं अंतराइयाणं खीणकसायस्स आवलियसेसे उदीरणावुच्छेदो। 'उगुदालं' मणुसगदि पंचिंदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइगसरीर छ संठाणं ओरालियअंगोवंग वज्जरिसभवइरणारायसंघडण वण्ण गंध रस फास अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उस्सास दो विहायोगदि तस बादर पज्जत्त पत्तेयसरीर थिराथिर सुभ-असुभ सुभग सुस्सर दुस्सर आदिज्ज जसकित्ती णिमिण तित्थयर उच्चागोद एदासिं उगुदालीसण्हं पयडीणं सजोगिचरमसमये उदीरणावुच्छेदो।

एत्तो सव्वपयडीणं संतवुच्छेदो कादव्वो भवदि। तत्थ सुत्तं—'अण मिच्छ मिस्स सम्मं' अणंताणुबंधिचदुक्कं मिच्छत्त सम्मत्त सम्मामिच्छत्त एदासिं सत्तण्हं पयडीणं असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदो त्ति संतवुच्छेदो। 'सुरणिरय तिरियाऊ' णिरयाउग तिरिक्खाउग देवाउग एदासिं पयडीणं अप्पप्पणो भवम्हि संतवुच्छेदो। 'सोलस' थीणगिद्धितिग णिरयगदि तिरिक्खगदि एइंदिय बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियजादि णिरयगइ तिरिक्खपाओग्गाणुपुव्वी आदावुज्जोव थावर सुहुम साधारणसरीर एदासिं सोलसण्हं पयडीणं अणियट्टि-अद्धाए संखेज्जभागं गंतूण संतवुच्छेदो। 'अट्ठ' तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण अट्ठण्हं कसायाणं संतवुच्छेदो। 'इक्कं' तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण णवुंसयवेदो संतवुच्छेदो। 'इक्क' तदो अंतोमुहुत्तं [गंतूण] इत्थीवेद-संतवुच्छेदो। 'छक्कं' तदो अंतोमुहुत्तं [गंतूण] छण्णोकसायसंतवुच्छेदो। 'एक्केक्का य' तदो समयूण आवलियं गंतूण पुरिसवेदसंतवुच्छेदो। तदो अंतोमुहुत्तं कोधसंजलणं, तदो अंतोमुहुत्तं माणसंजलणं, तदो अंतोमुहुत्तं मायासंजलणं संतवुच्छेदो। सुहुमसंपराइयलोभसंजलणचरमसमए संतवुच्छेदो। 'खीणकसाए सोलस' णिद्दा-पयलाणं खीणकसायदुचरिमसमए संतवुच्छेदो। पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं पंचण्हं अंतराइयाणं एदासिं चउदसण्हं पयडीणं खीणकसायचरमसमए संतवुच्छेदो। 'बावत्तरिं दुचरिमे' देवगदि वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीर समचदुरससंठाणं वेउव्विय-आहारसरीर-अंगोवंग पंच वण्ण पंच रस दो गंध अट्ठ फास देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उस्सास पसत्थविहायगदि पत्तेयसरीर थिर अथिर सुभ असुभ सुस्सर दुस्सर अजसकित्ति णिमिण एदाओ चत्ताल पयडीओ देवगदि-सहगदाओ अण्णदर वेयणीयं ओरालियसरीर पंच सरीर बंधण पंचसरीर संघाद पंच संठाण ओरालियसरीर अंगोवंग छ संघडण उवघाद परघाद अप्पसत्थविहायगदि अपज्जत्त दुभग दुस्सर अणादिज्ज णीचगोद इमाओ अण्णाओ बत्तीसं पयडीओ मणुसगदि-सहगदाओ। एयासिं बावत्तरि पयडीणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजोगिदुचरिमसमए संतवोच्छेदो। 'तेरस चरिमम्हि' अण्णदरवेदणीयं मणुसाउग' मणुसगदि पंचिंदियजादि मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वी तस बादर पज्जत्त सुभग आदेज्ज जसकित्ति तित्थयर उच्चागोद एदासिं तेरसण्हं पयडीणं अजोगिचरमसमए संतवुच्छेदो। अडयाल पयडिसदं एवं भणिदो। पंच णाणावरणीयं णव दंसणावरणीयं दो वेदणीयं अट्ठावीस मोहणीयं चत्तारि आउगं तेणउदि णाम गोद दुगं पंच अंतराइय एयाओ सव्वाओ एकदो मिलिदे अडदालं पयडिसदं भवदि। पुणो एवं खविदं जेण सो जिणो, तस्स णमो त्ति भणिदं होदि।

एवं पयडिसंतवुच्छेदो समत्तो

एवं बंधुदय-उदीरणा-संतवोच्छेदो समत्तो।

इदि विदिओ कम्मत्थव-समत्तो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदिओ

जीवसमासो

छद्दव्व-णवपदत्थे दव्वादिचउव्विधेण जाणंते ।
वंदित्ता अरहंते जीवस्स परूवणं वुच्छं ॥१॥

छद्दव्व-णवपदत्थे दव्वादिचदुविधेण परूवणं कीरदे—तत्थ जीवदव्वं पुग्गलदव्वं धम्मदव्वं अधम्मदव्वं आगासदव्वं कालदव्वं चेदि । तत्थ जीवदव्वं दव्वपमाणदो केवडिया ? अणंताणंता । खेत्तपमाणदो केवडिया ? अणंता अणंतलोगमेत्तं । कालपमाणादो केवडिया ? अणंता-उस्सप्पिणि-अवसप्पिणी समयावली कदेण अवहिरदि कालेण । भावपमाणदो केवडिया ? केवलणाणविसय-अणंतिमभागमेत्तं । [जहा] जीवदव्वं दव्वादि [चदुव्विधेण] परूविदं, तहा पुग्गलदव्वं परूविदव्वं । णवरि जीवदव्वादो अणंतगुणं । तत्थ धम्मदव्वं अधम्मदव्वं लोगागासदव्वं णिच्छयकालदव्वं एदे दव्वपमाणादो केवडिया ? असंखिज्जासंखिज्जा । खेत्तापमाणादो केवडिया ? लोगागासमेत्ता । कालपमाणादो केवडिया ? असंखिज्जासंखिज्जा उस्सप्पिणि-अवसप्पिणि समयावली अ कदे अवहीरदि त्ति कालेण । भावपमाणादो केवडिया ? ओविणाणस्स विसयस्स असंखिज्जदिमभागमेत्ता । ववहारकालं अलोगागासं जीवदव्वं व वत्तव्वा । जीवाजीवदव्वं दव्वादिपरूविदं, तद्यथा वा जीवाजीवपदत्था परूविदव्वा । पुण्ण-पाव-आसव-संवरणिज्जर-बंध-मुक्खा एदे सत्त पदत्था दव्वपमाणादो केवडिया ? अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा, सिद्धाणमणंतिमभागमेत्ता । खेत्तकाल-भावदो जीवदव्वं व वत्तव्वा । णवरि अणंतगुणा ।

पुढवी जलं च छाया चउरिंदिय कम्मसंध परमाणू ।
छव्विधभेदं भणिदं पुग्गलदव्वं जिणवरेहिं ॥१॥
लोगागासपदेसे एक्केक्कं जेट्ठिया हु एक्केक्का ।
रदणाणं रासीमिव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥२॥

गुण जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य ।
उवओगो वि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिया ॥२॥
जेहिं दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं ।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥३॥

मिच्छो साणण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य ।
विरदो पमत्त इदरो अपुव्व अणियट्टि सुहुमो य ॥४॥
उवसंत-खीणमोहो सजोगि जिणकेवली अजोगी य ।
चउदस गुणठाणाणि य कमेण सिद्धा य णायव्वा ॥५॥

इदाणिं लद्धिविहं वत्तइस्सामो। तं जहा—मिच्छादिट्ठि [त्ति] को भावो? ओदइओ भावो, मिच्छत्तस्स कम्मस्स उदएण। सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो? पारिणामिओ भावो। तं कथमिति चेत्—दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण वा उवसमेण वा खएण वा खओवसमेण वा ण भवदि, सभावदो भवदि; अदो पारिणामिओ भावो। सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो? खओवसमियमिदि। तं कथमिति चेत् (?) वुत्ते वुच्चदि—मिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुगं एदेसिं पंचण्हं पयडीणं सव्वघादिफद्दयाण उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसघादिफड्डयाण उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मामिच्छत्तस्स य सव्वघादिफड्डयाण उदएण अणुदिण्णाणं कम्माणं उवसंतं च कट्टु उदीरणाणं कम्माणं खएण। अदो तस्स खओवसमिओ भावो। असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो? उवसमिओ वा खओ वा खओवसमिओ [वा] भावो। तत्कथमिति चेत् मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्कं एदासिं सत्तण्हं पयडीणं उवसमेण अउवसमिओ भावो। एदासिं चेव खएण खइओ भावो। खओवसमियमिदि को भावो? मिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्कं एदासिं पंचण्हं पयडीणं सव्वघादिफद्दयाणं उदयखएणं तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मामिच्छत्तसव्वघादिफद्दयाणं उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मत्तस्स देसघादिफद्दयाणं उदएण अणुदिण्णाणं कम्माणं उवसमेणे त्ति कट्टु उदिण्णाणं च कम्माणं खएण। अदो तस्स खओवसमिओ भावो। असंजदो त्ति संजमघादीणं कम्माणं उदएण।

संजदासंजदो त्ति को भावो? खओवसमिओ भावो। अणंताणुबंधिचदुक्कं अपच्चक्खाणावरणचदुक्कं एदासिं अट्ठण्हं पयडीणं सव्वघादिफद्दयाणं उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण चउसंजलण-णवणोकसायाणं एदासिं तेरसण्हं पयडीणं सव्वघादिफद्दयाणं उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण तेसिं चेव देसघादिफड्डयाणं अ उदएण, पुणो पच्चक्खाणचदुक्कसव्वघादीणं फड्डयाणं उदएण अणुदिण्णाणं कम्माणं उवसमएणेत्ति कट्टु, उदिण्णाणं च कम्माणं खएण तदो तस्स खओवसमिओ भावो।

पमत्तसंजदो त्ति को भावो? खओवसमिओ भावो। अणंताणुबंधिचदुक्कं अपच्चक्खाणचदुक्कं पच्चक्खाणचदुक्कं एदासिं बारसण्हं पयडीणं उदयखएण तेसिं चेव संतोवसमेण पुणो वि चदुसंजलण-णवणोकसायाणं एदासिं तेरसण्हं पयडीणं सव्ववादिफद्दयाण उदएण खएण, तेसिं चेव संतोवसमेण, तेसिं चेव देसघादिफद्दयाणं उदएण अदो तस्स खओवसमिओ भावो। किमिदं सार्धकं (स्पर्धकं) नाम? उच्यते—अविभागपल्यपुनः (?) ॱॱछिन्नकर्मप्रदेशरसभागप्रचयपंक्तिक्रमवृद्धिः क्रमहानिः स्पर्धकम्। उदयप्राप्तस्य कर्मणः प्रदेशाः अभव्यानामनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तभागप्रमाणाः। न च सर्वजघन्यगुणाः प्रदेशाः तावत्परिच्छिन्ना यावद्विभागाभावः।

एवं अप्पमत्तसंजदस्स वत्तव्वं। णवरि पण्णारस पमादा णत्थि।

अपुव्वकरणपइट्ठउवसामिओ खवओ त्ति को भावो? उवसामिओ वा खइओ वा भावो। अणंताणुबंधिचदुक्कं मिच्छत्तं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तमिदि एदाओ सत्तण्हं पयडीओ पुव्वं उवसामिओ। पुणो अप्पच्चक्खाणचदुक्कं पच्चक्खाणचदुक्कं संजलणाणं णवणोकसायाणं एदासिं एगवीसपयडीणं ण दाव [ताव] उवसमेदि, पुरदो उवसामेदि त्ति। अदो तस्स उवसामिओ भावो। जहा तित्थं पवत्तिहिदि त्ति तित्थयरो त्ति भण्णइ, तहा चेव एत्थ वि। एदासिं चेव सत्तण्हं पयडीणं पुव्वमेव खविदाओ। पुणो एदासिं चेव एक्कवीसपयडीणं न दाव [ताव] खवेदि, पुरदो खवेदि ति अदो तस्स खाइओ भावो।

अणियट्टिउवसामगे खवगेत्ति को भावो? उवसमिओ भावो खइओ वा भावो। मोहणीयकम्मस्स काओ वि पयडीओ उवसमिदाओ, काओ वि उवसामेदि, काओ वि पयडीओ पुरदो

उवसामेदि त्ति अदो तस्स उवसामिओ भावो। पुणो मोहणीयस्स कम्मस्स काओ पयडीओ खविदाओ, काओ पयडीओ खवेदि, काओ वि पयडीओ पुरदो खवेदि त्ति। अदो तस्स खइओ भावो।

सुहुमसंपराय-उवसामगो खवगो त्ति को भावो? उवसामिगो वा खवगो वा भावो। मोहणीयस्स कम्मस्स सत्तावीसपयडीओ उवसामिदाओ, लोहसंजलणं पुरदो उवसामेदि त्ति अदो तस्स उवसामगो भावो। तस्स चेव मोहणीयसत्तावीसपयडीओ खविदाओ, लोहसंजलणं पुरओ खवेदि त्ति अदो तस्स खाइगो भावो।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थ इदि को भावो? उवसमिओ भावो। मोहणीयस्स अट्ठ-वीसपयडीणं सव्वोवसमेण उवसमिओ भावो। खीणकसायवीदरागछदुमत्थ इदि [को] भावो? खइगो भावो। अट्ठावीसभेदभिण्णमोहस्स खएण खाइगो भावो।

सजोगिकेवलि त्ति को भावो? खाइगो भावो। आवरणमोहंतराइयखएण खइगो भावो। अजोगिकेवलि त्ति को भावो? खाइगो भावो। कम्मजणिदविरियक्खएण खइगो भावो।

एवं लद्धिपरूवणा समत्ता।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरमिव रसं जहा जरिदो ॥६॥
सम्मत्तरयणपव्वदसिहरादो मिच्छभावसमभिमुहो।
णासिदसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेदव्वो ॥७॥
दधि-गुलमिव वामिस्सं पुधभावं णेव कारिदुं सक्का।
एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो ॥८॥
ण य इंदिएसु विरदो ण य जीवे थावरे तसे चावि।
अरहंते य पदत्थे अविरदसम्मो दु सद्दहदि ॥९॥
थूले जीवे वधकरणवज्जगो हिंसगो य इदराणं।
एक्कम्हि चेव समए विरदाविरदु त्ति णादव्वो ॥१०॥
विकहा तह य कसाया इंदिय णिद्दा तहेव पणगो य।
चदु चदु पण एगेगं हुंति पमादा य पण्णरसा ॥११॥
सुभओगेसु पसंगो आरंभे तहा अणारंभो।
गुत्ति-समिदिप्पहाणो णादव्वो अप्पमत्तु त्ति ॥१२॥
जह लोहं धम्मंतं सुज्झदि मुचदि य कलिमलं असुहं।
एवं अपुव्वकरणं अपुव्वकरणेहिं सोधेदि ॥१३॥
जह लोहं धम्मंतं अपुव्वपुव्वे णियच्छदे किट्टिं।
तह कम्मं सोधेदि य अपुव्वपुव्वेहि करणेहिं ॥१४॥
इदरेदरपरिमाणं णयंति वड्ढदि य बादरकसाए।
सव्वे वि एगसमए तम्हा अणियट्टिणामा ते ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहु वि अवट्टमाणा (?)बादरकिट्टी णिअच्छदे किट्टी ।
एवमणियट्टिणामो बादरसेसाणमिच्छंति ॥१६॥
कोसुंभो जह रागो अब्भंतर सुहुमरायरत्तो य ।
एवं सुहुमसरागो सुहुमकसाओ त्ति णादव्वो ॥१७॥
जह खोत्तुवंतु उदयं भायणखित्तं तु णिम्मलं होदि ।
एवं कसाय उवसम उवसंतकसाओ त्ति णादव्वो ॥१८॥
तं चेव सुप्पसण्णं पक्खित्तं अण्णभायणे उदयं ।
सुइ णिम्मल णिक्खउरं खीणकसाओ त्ति तं विंति ॥१९॥
केवलणाणा[णी] लोगं[जोगं] सव्वण्हु जिणं अणंतवरणाणं ।
वागरणजोगजुत्तं सजोगिजिणकेवलिं विंति ॥२०॥
सेलेसिं संपत्तं णिरुद्धजोगं पणट्ठकम्मरयं ।
संखित्तसव्वजोगं अजोगिजिणकेवली विंति ॥२१॥
अट्ठविधकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा कियकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥२२॥
जेहिं अणेगा जीवा णज्जंते बहुविधाइं तज्जादी ।
ते पुण संगहिदत्था जीवसमासे त्ति विण्णेया ॥२३॥
बादरसुहुमेगिंदिय वि-ति-चउरिंदिय-असण्णि-सण्णी य ।
पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चउदसा होंति ॥२४॥
जह पुण्णापुण्णाइं गिह-घड-वत्थादिआइं दव्वाइं ।
तह पुण्णापुण्णाओ पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा ॥२५॥
आहारसरीरिंदियपज्जत्ती आणपाणभासमणो ।
चत्तारि पंच छप्पि य एइंदिय-विकलऽसण्णि-सण्णीणं ॥२६॥
बाहिरपाणेहिं जहा तहेव अब्भंतरेहि पाणेहि ।
जीवंति जेहिं जीवा पाणा ते हुंति बोधव्वा ॥२७॥
पंच वि इंदियपाणामण-वचि-काएण तिण्णि बलपाणा ।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण हुंति दस पाणा ॥२८॥
दस सण्णीणं पाणा सेसेगेगूण अंतियस्स बेऊणा ।
पज्जत्तेमियरेसु य सत्त दुगे सेसगेणूणा ॥२९॥

पर्याप्ति-प्राणानां नाम्नि विप्रतिपत्तिर्न वस्तुनीति चेत्कार्य-कारणयोर्भेदात् । पर्याप्तिष्वायुषो सत्त्वात् । मनोवागुच्छ्वासप्राणानामपर्याप्तकाले असत्त्वात् तयोर्भेदात् ।

पंचिंदियं च वयणं कायं तह आइ आणपाणो ।
अस्सण्णियस्स णियमा एदे णव पाणया णेया ॥३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्खुं घाणं जिब्भा फासं वचि काय आउ आणपाणा य ।
पज्जत्ते चदुरिंदिय णादव्वा होंति अट्ठेदे ॥३१॥
फासं जिब्भा घाणं आउं अणपाण काय वयणं तु ।
तेइंदियस्स एए णायव्वा पाणया सत्त ॥३२॥
जिब्भा फासं वयणं काउं अणपाण आउ तह होंति ।
वेइंदियम्मि पुण्णे छप्पाणा चेव णायव्वा ॥३३॥
फासं कायं च तहा अणपाणा हुंति आउसहियाओ ।
एइंदियपज्जत्ते पाणा चदुरो जिणुद्दिट्ठा ॥३४॥
एदे पुव्वुद्दिट्ठा पाणा पज्जत्तयाण णायव्वा ।
एत्तोऽपज्जत्ताणं जहाकमं चेय साहामि ॥३५॥
अस्सण्णिय-सण्णीणं णत्थि हु मण वयण तह य आणपाणा ।
दस मज्झे संफिडिदे सत्त य पाणा हवंति त्ति ॥३६॥
पुव्वुत्तसत्तमज्झे सोदेण विणा हवंति छप्पाणा ।
चदुरिंदियस्स एदे कहिदा जिणवीरणाहेण ॥३७॥
चक्खुविहीणे तेइंदियाण पाणा हवंति पंचेव ।
गंधे पुणु संफिडिदे वेइंतियपाणया चदुरो ॥३८॥
पुव्वुत्तचदुरमज्झे जिब्भाऽभावेण तिण्णि जाएइ ।
एइंदियस्स पाणा णादव्वा जिणवरुद्दिट्ठा ॥३९॥

इह जाहि बाधिदा वि य जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ।
सेवंता वि य उभयं ताओ चत्तारि सण्णाओ ॥४०॥
आहारदंसणेण य तस्सुवओगेण ओमकुट्ठेण ।
सादिदरउदीरणा वि य होदि हु आहारसण्णा दु ॥४१॥
अदिभीमदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमसत्तेण ।
भयकम्मुदीरणाए भयसण्णा जायदे चदुहिं ॥४२॥
पणिदरसभोयणेण य तस्सुवजोगेण कुसीलसेवाए ।
वेदस्सुदीरणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं ॥४३॥
उवयरणदंसणेण य तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य ।
लोहस्सुदीरणाए परिग्गहो जायदे चदुहिं ॥४४॥
जाहिं य जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा ।
ताओ चउदस जाणे सुदणाणे मग्गणा हुंति ॥४५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गइ इंदिएसु काए जोगे वेदे कसाय णाणे य ।
संजम दंसण लेस्सा भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥४६॥

तद्यथा—मृगयिता मृग्यमाणं मार्गणं मार्गणोपायमिति । तत्र मृगयिता नाम पुरुष-भव्य-वरपुण्डरीकस्तत्त्वपदार्थश्रद्धालुः । मृग्यमाणं चतुर्दश जीव-गुणस्थानानि । मार्गणं नाम मृग इति विषयभूतानि गत्यादि-मृग्यस्थानानि । मार्गणोपायं नाम पाठादीनि । अथवा परिकर्मादीनि । अथवा शिष्याचार्यसम्बन्धानि । अथवा—

काले विणए उवधाणे बहुमाणे तहेव णिण्हवणे ।
अत्थं वंजण तदुभय णाणचारो दु अट्ठविहो ॥३॥ इदि

एवमादि मार्गणोपायम् । एवं लोकेऽपि दृष्टमेतत् । मार्गणविधानं चतुर्विधं—नष्टद्रव्येव एष पुनर्मार्गणाविधिः ।

तत्थ इमाणि चउद्दसठाणाणि णादव्वाणि भवंति । गम्यतीति गतिः । अथवा भवाद्भव-संक्रान्तिर्गतिः । असंक्रान्तिः सिद्धगतिः । प्रत्यक्षनिरतानीन्द्रियाणि, अक्षमक्षं प्रतिवर्तत इति प्रत्यक्षम् । चीयतीति कायः । अथवा आत्मप्रवृत्त्युपचितपुद्गलपिण्डः कायः । युञ्जतीति योगः । अथवा आत्मप्रदेशपरिस्पन्दनलक्षणो एनः [योगः] । वेद्यत इति वेदः । अथवा मैथुनसम्मोहोत्पादो वेदः । सुख-दुःख बहुसस्यकर्मक्षेत्रं कृषन्तीति कषायाः । भूतार्थप्रकाशकं ज्ञानं, तत्त्वार्थोपलम्भकं वा । संयमनं संयमः । अथवा व्रत-समिति-कषाय-दण्डेन्द्रियाणां धारण-पालन-निग्रह-त्याग-जयो संयमः । दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम् । आलोकनवृत्तिर्वा दर्शनम् । लिम्पतीति लेश्या । अथवा कषायानुरञ्जित-काय-वाङ्मनोयोगप्रवृत्तिर्लेश्या । निर्वाणपुरस्कृतो भव्यः । तद्विपरीतोऽभव्यः । तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् । अथवा प्रशमसंवेगानुकम्पाऽऽस्तिक्यादिभिर्व्यक्तलक्षणं सम्यक्त्वम् । शिक्षाक्रियो-पदेशालापग्राही संज्ञी । तद्विपरीतोऽसंज्ञी । आह्रियत इत्याहारः । अथवा शरीरप्रायोग्यपुद्गलपिण्ड-ग्रहणमाहारः । तद्विपरीतोऽनाहारः ।

णिरयगई तिरियगई मणुयगई तह य जाण देवगई ।
इंदियसण्णा एइंदियादि पंचिदिया जाव ॥४७॥

पुढवी आऊ य तहा तेऊ मरु तरु तसा य णायव्वा ।
काया जिणेहि दिट्ठा संसारत्था य छब्भेया ॥४८॥

सच्चासच्चं च तहा सच्च य मोसो य असच्चमोसो य ।
मण-वयणस्स हु एवं पच्छा उण सुणहु काओगो ॥४९॥
ओरालिय तम्मिस्सं वेउव्विय पुण वि होइ तम्मिस्सं ।
आहारं पुण मिस्सं कम्मइगसमण्णियं जोयं ॥५०॥

पुरिस इत्थी णउंसय वेदा तिय होंति णादव्वा ।
कोहादी य कसाया लोभंता जाण ते चउरो ॥५१॥

मदि-अण्णाणं च तहा सुद-अण्णाणं तहेव णादव्वं ।
होइ विहंगा णाणं अण्णाणतिगं च जाणेदे ॥५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मदिसुदओही य तहा मणपज्जय केवलं वियाणाहि ।
पुव्वुत्तातिण्णि सहियं णाणट्ठं हुंति ते णियमा ॥५३॥

सामाइयं च पढमं छेदं परिहार सुहुम जहकहियं ।
संजममिस्सं च तहा असंजमं चेव सत्तेदे ॥५४॥

चक्खु अचक्खू ओधी केवलसहियं ज दंसणं चदुधा ।
किण्हादीया लेस्सा छब्भेया सुक्कपरियंता ॥५५॥

पढमं भव्वं च तहा वीयमभव्वं तु जिणवरमदम्हि ।
एत्तो सम्मत्तस्स य णामं साहंति जिणणाहा ॥५६॥
उवसम खइयं च तहा वेदगसम्मत्त सासणं मिस्सं ।
मिच्छत्तेण य सहिदं सम्मत्तं छव्विहं णाम ॥५७॥
सण्णि-असण्णी जीवा आहारी तह चे अणाहारी ।
उवओगस्स हु सण्णं एत्तो उड्ढं पवक्खामि ॥५८॥
अण्णाणतिगं ज तहा पंच य णाणा भणंति हु जिणिंदा ।
चउदंसणेण सहियं उवओगं वारसविधं तु ॥५९॥

गदिकम्मविणिव्वत्ता जा चेट्ठा सा गदी मुणेदव्वा ।
जीवा हु चादुरंगं गच्छंति त्ति य गदी हवदि ॥६०॥
ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य काल भावे य ।
अण्णोण्णेहिं य णिच्चं [तम्हा ते णारया भणिया ॥६१॥
तिरयंति कुडिलभावं सुवियडसण्णा णिगट्ठमण्णाणा ।
अच्चंतपावबहुला तम्हा तेरिच्छिया भविया ॥६२॥
मण्णंति जदो णिच्चं] मणेण णिउणा जदो हु ते जीवा ।
मण-उक्कडा य जम्हा तम्हा ते माणुसा भणिदा ॥६३॥
कीडंति जदो णिच्चं गुणेहि अट्ठेहिं दिव्व-भावेहिं ।
भासंति दिव्वकाया तम्हा ते वण्णिदा देवा ॥६४॥
जादि-जरा-मरण-भया वियोग-संजोग-दुक्खसण्णाओ ।
रागादिगा य जिस्से ण संति सा हवदि सिद्धगदी ॥६५॥

अहमिंदा वि य देवा अविसेसं बहुमहं ति मण्णंता ।
ईसंति इक्कमेक्कं इंदा इव इंदियं जाण ॥६६॥
जाणदि पस्सदि भुंजदि सेवदि फासिंदिएण एक्केण ।
कुणइ य तस्सामित्तं तो सो खिदिआदि एइंदी ॥६७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खुल्लग वरडग अक्खग रिट्ठग गंडूव वालुगा संखा ।
कुक्खि किमि सिप्पि-आदी णेया वेइंदिया जीवा ॥६८॥
कुंथु पिपीलग मक्कुण विच्छिग जुग इंदगोव गोभीया ।
उत्तिंगमट्टि-आदी णेया तेइंदिया जीवा ॥६९॥

दंसा मसगा मक्खिग गोमच्छिय भमर कीड मक्कडया ।
सलभ-पयंगादीया णेया चदुरिंदिया जीवा ॥७०॥
अंडज पोदज जरजा रसजा संसेदिमा य सम्मुच्छा ।
उब्भेदिमोववादिम णेया पंचिंदिया जीवा ॥७१॥

ण वि इंदिय-करणजुदा अवग्गहादीहिं गाहगा अत्थे ।
णेव य इंदियसुक्खा अणिंदियाणंतणाणसुहा ॥७२॥

जह भारवहो पुरिसो वहदि भरं गेण्हिऊण कायोडी ।
एमेव वहदि जीवो कम्मभरं कायकाओडी ॥७३॥
अप्पप्पवुत्तिसंचिदपुग्गलपिंडं विजाण कायो त्ति ।
सो जिणमदम्हि भणिदो पुढवीकायादियो छद्धा ॥७४॥
पुढवी य वालुगा सक्कराय उवले सिलादि छत्तीसा ।
वण्णादीहि य भेदा सुहुमाणं णत्थि ते भेदा ॥७५॥
ओसा अ हिमिग महिगा हरदणु सुद्धोदगे घणदगे य ।
वण्णादीहि य भेदा सुहुमाणं णत्थि ते भेदा ॥७६॥
इंगाल जाल अच्ची मुम्मुर सुद्धागणी य अगणी य ।
वण्णादीहि य भेदा सुहुमाणं णत्थि ते भेदा ॥७७॥
वादुब्भामो उक्कलि मंडलि गुंजा महावण तणू य ।
वण्णादीहि य भेदा सुहुमाणं णत्थि ते भेदा ॥७८॥
मूलग्ग-पोर-बीया कंदा तह खंध-बीज-बीयरुहा ।
सम्मुच्छिमा य भणिदा पत्तेयाणंतकाया ते ॥७९॥
वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय असण्णि-सण्णि जे जीवा ।
पंचिंदिया य जीवा ते तसकाया मुणेयव्वा ॥८०॥
जह कंचणग्गिगणेया बंधणमुक्का तहेव जे जीवा ।
घणकायबंधमुक्का अकाइगा ते णिराबाधा ॥८१॥

मणसा वचिया काएण चावि जुत्तस्स विरियपरिणामो ।
जीवस्सप्पणिओ खलु स जोगसण्णा जिणक्खादा ॥८२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब्भावो सच्चमणो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो ।
तव्विवरीयो मोसो जाणुभयं सच्चमोसु त्ति ॥८३॥
ण य सच्चमोसजुत्तो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो ।
जो जोगो तेण भवे असच्चमोसं तु मणजोगो ॥८४॥
दसविधसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो ।
तव्विवरीदो मोसो जाणुभयं सच्चमोसु त्ति ॥८५॥
जो णेव सच्चमोसो तं जाण असच्चमोसवचिजोगो ।
अमणाणं जा भासा सण्णीणामंतणादीया ॥८६॥
पुरु महमुदारुरालं एगट्ठं तं वियाण तम्हि भवे ।
ओरालिय त्ति वुत्तं ओरालियकायजोगो सो ॥८७॥
अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णं च ।
जो तेण संपओगो ओरालियकायमिस्सजोगो सो ॥८८॥
विविहगुणइड्ढिजुत्तो वेउव्वियमथ व विकिरियाए य ।
तिस्से भवं च णेयं वेउव्वियकायजोगो सो ॥८९॥
अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णं च ।
जो तेण संपओगो वेउव्वियमिस्सकायजोगो सो ॥९०॥
आहरदि अणेण मुणी सुहुमे अत्थे सयस्स संदेहे ।
गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारकायजोगो सो ॥९१॥
अंतोमुहुत्तमज्झं वियाण मिस्सं च अपरिपुण्णं च ।
जो तेण संपओगो आहारयमिस्सकायजोगो सो ॥९२॥
कम्मेव य कम्मभवं कम्मइगं तेण जो दु संजोगो ।
कम्मइगकायजोगो एग-विग-तिगेसु समएसु ॥९३॥
जेसिं ण संति जोगा सुभासुभा पुण्ण-पापसंजणया ।
ते होंति अजोगिजिणा अणोवमाणंतबलजुत्ता ॥९४॥

मोहस्सु-[वेदस्सु] दीरणाए बालत्तं पुण णियच्छदे बहुसो ।
इत्थी पुरिस णउंसय वेदंति हवदि वेदो सो ॥९५॥
छाएदि सयं दोसेण जदो छाददि परं पि दोसेण ।
छादणसीला णियदं तम्हा सा वण्णिदा इत्थी ॥९६॥
पुरुगुणभोगे सेदे करेदि लोगम्मि पुरुगुणं कम्मं ।
पुरुगुत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिदो पुरिसो ॥९७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेवित्थी णेव पुमा णवुंसगो उभयलिंगविदिरित्तो ।
इट्टय अवग्गिसरिसो वेदणगुरुगो कलुसचित्तो ॥९८॥
कारिसतणिट्टमग्गीसमाणपरिणामवेदणुम्मुक्का ।
अवगदवेदा जीवा सगसंभव-अमिय-वरसुक्खा ॥९९॥

सुह-दुक्खं बहुसस्सं कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स ।
संसारगदीमेरं तेण कसाओ त्ति णं विंति ॥१००॥
सिलभेद-पुढविभेदा धूलीराई य उदयराइसमा ।
णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु कोहवसा ॥१०१॥
सेलसमो अट्ठिसमो दारुसमो तह य जाण वेत्तसमो ।
णिर-तिरि-णर-देवत्तं उवेंति जीवा हु माणवसा ॥१०२॥
वंसीमूलं मेहस्स सिंग गोमुत्तयं चउरप्पं ।
णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु मायवसा ॥१०३॥
किमिरागं चक्कमलं कद्दम-उवमं च जाण हालिद्दं ।
णिर-तिरि-णर-देवत्तं उविंति जीवा हु लोहवसा ॥१०४॥
अप्पपरोभयबाधाबंधासंजमणिमित्तकोधादी ।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा ॥१०५॥

जाणदि अणेण जीवो दव्व-गुण-पज्जए य बहुभेदे ।
पच्चक्खं च परोक्खं तम्हा णाणो त्ति णं विंति ॥१०६॥
विसजंतकूडपंजरबंधादिसु अणुवदेसकरणेण ।
जा खलु पवत्तदि मदी मदि-अण्णाणेत्ति णं विंति ॥१०७॥
आभीयमासुरक्खा भारह-रामाअणादि-उवदेसा ।
रुच्छा [तुच्छा] असाधणीया सुद-अण्णाणेत्ति णं विंति ॥१०८॥
विवरीयमोधिणाणं खओवसमियं च कम्मवीयं च ।
वेभंगो त्तिय वुच्चदि सम्मंणाणीहि समयम्हि ॥१०९॥
अहिमुहणियमिदबोधण इंदिय-णोइंदियत्थसंजुत्तं ।
आभिणिबोधियणाणं विजाण तं वण्णिदं समए ॥११०॥
सोदूण पाठसद्दं जं वेप्पदि अप्पणो मदिबलेण ।
तं सुदणाणं जाणसु णिच्चं उवदेससिद्धं तु ॥१११॥
अवधीयदि त्ति ओधी सीमाणाणेत्ति वण्णिदं समए ।
भव-गुणपच्चयविहिदं तधावधिणाणेत्ति णं विंति ॥११२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उज्जुवमणुज्जुगं पि अ मणोगदं सव्वमणुयलोगम्हि ।
पज्जयगदं पि जाणदि वुच्चदि भणपज्जवं णाणं ॥११३॥
संपुण्णं तु समग्गं केवल जुगवं च सव्वभावविदू ।
[1]लोगालोगवितिमिरं केवलणाणं मुणेदव्वं ॥११४॥

जेम णियमेसु य पंचिंदिएसु पाणेसु संजमो दिट्ठं ।
सददं मुणि संजदो त्ति य तेणं किर संजमो णाम ॥११५॥
सामाइयम्हि दु कदे एगं जाम अणुत्तरं धम्मं ।
तिविहेण सद्दहंतो सामाइयसंजमो स खलु ॥११६॥
छेत्तूण य परियायं पोराणं पि त्थवेदि अप्पाणं ।
धम्मम्हि पंच जोगे छेदोवट्ठावगो स खलु ॥११७॥
परिहरदि जो विसुद्धो एयं समयं अणुत्तरं धम्मं ।
पंचसमिदो तिगुत्तो परिहारा संजमो स खलु ॥११८॥
लोभं अणुवेदंतो जो खलु उवसामगो व खवगो वा ।
सो सुहुमसंपराओ जहखादेणूणओ किंचि ॥११९॥
उवसंते खीणे वा असुभे कम्मम्मि मोहणीयम्मि ।
छदुमत्थो व जिणो वा जहखादं संजमो स खलु ॥१२०॥
दंसण वद सामाइय पोसह सच्चित्त रायभत्ते य ।
बंभारंभ परिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदी य ॥१२१॥
तसजीवेसु य विरदो थावरजीवेसु णेव विरदु त्ति ।
सावयधम्मो तम्हा संजमासंजमो स खलु ॥१२२॥
जीवे चउदसभेदे इंदियविसएसु अट्ठवीसेसु ।
जे तेसु णेय विरदा असंजदा ते मुणेदव्वा ॥१२३॥

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टु आयारं ।
अविसेसदूण अत्थे दंसणमिदि भण्णए समए ॥१२४॥
चक्खूणं जं पस्सदि वासदि[दीसदि]तं चक्खुदंसणं विंति ।
दिट्ठस्स य जं सरणं णादव्वं तं अचक्खुइंत्ति ॥१२५॥
परमाणुआदिगाइं अंतिमखंधं ति मुत्तिदव्वाइं ।
तं ओधिदंसणं पुण जं पस्सदि ताणि पच्चक्खं ॥१२६॥
बहुविह-बहुप्पयारा उज्जोआ परिमिदम्हि खेत्तम्हि ।
लोगालोगवितिमिरं केवलवरदंसणुज्जोवो ॥१२७॥

---

१. आदर्श प्रतौ 'लोगागास' इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिंपदि अप्पीकीरदि एदाए णियय पुण्ण पावं च ।
जीवस्स हवदि लेसा लेसगुणजाणणक्खादा ॥१२८॥

जह गेरुवेण कुड्डो लिप्पदि लेवेण आमपिट्ठेण ।
तह परिणामो लिप्पदि सुभासुभेणेत्ति लेवेण ॥१२९॥

चंडो ण मुयदि वेरं भंडणसीलो य धम्म-दयरहिदो ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥१३०॥

मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी विसयलोलो य ।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भीरू य ॥१३१॥

णिंदा-वंचण बहुलो धण-धण्णे होदि तिव्वपरिणामो ।
लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेसस्स ॥१३२॥

रूसदि णिंददि अण्णे दूसदि बहुसो य सोग[भ]य-बहुगो ।
असुवदि परिभवदि परं पसंसदे अप्पयं बहुसो ॥१३३॥

ण य पत्तियदि परं सो अप्पाणं पिव परो वि तह चेव ।
[तु]स्सदि अभिथुव्वंतो ण य जाणदि हाणि-वड्ढिं च ॥१३४॥

मरणं पत्थेदि रणे देदि य बहुगं पि थुव्वमाणो हु ।
ण गणदि कज्जमकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥१३५॥

जाणदि कज्जाकज्जं सेयासेयं च सव्वसमपासी ।
दय-दाणरदो य मिदू लक्खणमेदं तु तेउस्स ॥१३६॥

चागी भद्दो चोक्खो उज्जुयकम्मो य खमदि बहुगं पि ।
साहु-गुरुपुज्जणरदो लक्खणमेदं तु पउमस्स ॥१३७॥

ण य कुणदि पक्खवादं ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसु ।
णत्थि य रागो दोसो णेहो वि य सुक्कलेसस्स ॥१३८॥

किण्हा भमरसवण्णा णीला पुण णीलगुलियसंकासा ।
काऊ कओयवण्णा तेऊ तवणिज्जवण्णाहा ॥१३९॥

पउमा पउमसवण्णा सुक्का पुणु कासकुसुमसंकासा ।
वण्णंतरं च एदे हवंति परिता अणंता वा ॥१४०॥

काऊ काऊ य तहा काऊ णीला य णील णील-किण्हा य ।
किण्हा य परमकिण्हा लेसा रदणादिपुढवीसु ॥१४१॥

तेऊ तेऊ य तहा तेऊ पम्मा य पम्म-सुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का लेसा भवणादिदेवाणं ॥१४२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दुण्हं तु तेरसण्हं च ।
एत्तो चउद्दसण्हं लेसा भवणादिदेवाणं ॥१४३॥
णिम्मूलखंधदेसे[साहा]गुंछा चुणिऊण के वि पडिदा य ।
जह एदेसिं भावा तहविह लेसा मुणेयव्वा ॥१४४॥
लेसपरिणाममुक्का जे जीवा सिद्धिमस्सिदा अजोगी य ।
अवगदलेसा जीवा सग-संभवगुणअणंतजुत्ता य ॥१४५॥

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते भवंति भवसिद्धा ।
सिद्धिपुरक्कडजीवा संसारादो दु सिज्झंति ॥१४६॥
संखिज्जमसंखिज्जं अणंतकालेण चावि ते णियमा ।
सिज्झंति भव्वजीवा अभव्वजीवा ण सिज्झंति ॥१४७॥
ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तिसुहा जुत्तीदसंसारा ।
ते जीवा णादव्वा णेव अभव्वा अ भव्वा य ॥१४८॥

छप्पंचणवविधाणं अत्थाणं जिणवरोवदिट्ठाणं ।
आणाय अधिगमेण य सद्दहणं होदि सम्मत्तं ॥१४९॥
देवे अणण्णभावो विसयविरागो य तच्चसद्दहणं ।
दिट्ठीसु असम्मोहो सम्मत्तमणूणयं जाणे ॥१५०॥
वयणेण वि हेदूण वि इंदिय-भय-विउव्विगेण रूवेण ।
बीभच्छ-दुगंछाए तेलुक्केण वि ण कंपिज्जा ॥१५१॥
एवं विउला बुद्धी ण विम्हयं एदि किंचि दट्ठूण ।
पट्ठविदे सम्मत्ते खइए जीवस्स लद्धीए ॥१५२॥
बुद्धी सुहाणुबंधी सुहकम्मरदो सुदं च संवेगो ।
तच्चत्थे सद्दहणं पियधम्मं तिव्वणिव्वेगो ॥१५३॥
इच्चेवमादिया जे वेदयमाणस्स ते भवंति गुणा ।
वेदगसम्मत्तमिणं सम्मत्तुदएण जीवस्स ॥१५४॥
दंसणमोहस्सुदए उवसंते सव्वभावसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णकलुसं जहा तोयं ॥१५५॥
छसु हेट्ठिमासु पुढवीसु जोइस-वण-भवण-सव्वइत्थीसु ।
बारस मिच्छुववादे सम्मादिट्ठी ण उप्पण्णो ॥१५६॥
चत्तारि वि छेत्ताइं आउगबंधेण होदि सम्मत्तं ।
अणुवय-महव्वदेहि य ण लभदि देवाउगं मुत्तुं ॥१५७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणमोहक्खवणे पट्ठवगो कम्मभूमिजादो तु।
णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ ॥१५८॥
खवणाए पट्ठवगो जम्हि भवे णियमसा तदो अण्णे।
णादिच्छइ तिण्णि भवे दंसणमोहम्मि खीणम्हि ॥१५९॥
दंसणमोहुवसमगो दु चदुसु वि गदीसु तह य बोधव्वो।
पंचिंदिओ दु सण्णी णियमा सो होदि पज्जत्तो ॥१६०॥
मणपज्जवपरिहारो उवसम्मत्त दोण्णि आहारा।
एदेसु इक्कपयदे णत्थि त्ति अ सेसयं जाणे ॥१६१॥
सम्मत्त सत्तया पुण विरदाविरदे य चउदसा होंति।
विरदेसु य पण्णरसं विरहिदकालो य बोधव्वो ॥१६२॥
अडदालीस मुहुत्ता पक्खं मासं तहेव वे मासा।
चउ छक्क मास वरिसं अंतर रदणादिपुढवीसु ॥१६३॥
ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो दु परिपडिदो।
सो सासणो त्ति णेओ सादियमध पारिणामिओ भावो ॥१६४॥

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होदि तच्चेसु।
विरदाविरदेण समो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो ॥१६५॥
मिच्छादिट्ठी जीवो उवदिट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवदिट्ठं अणुवदिट्ठं वा ॥१६६॥

एवं कदे मए पुण एवं होदि त्ति कज्जणिप्पत्ती।
जो दु विचारदि जीवो सो सण्णी असण्णिगो इदरो ॥१६७॥
सिक्खाकिरिउवदेसालावग्गाही मणोवलंवेण।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीदो असण्णी य ॥१६८॥
मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं वा।
सिक्खदि णामेणेयदि य समणो अमणो य विवरीदो ॥१६९॥

आहरदि सरीराणं तिण्हं इक्कदरवग्गणाओ य।
भासा-मणस्स णियदं तम्हा आहारगो भणिदो ॥१७०॥
विग्गहगइमावण्णा केवलिणो समुहदो अजोगी य
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिणो जीवा ॥१७१॥

वत्थुणिमित्तो भावो जादो जीवस्स जो दु उवओगो
उवओगो सो दुविहो सागारो चेव अणगारो ॥१७२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मदि-सुद-ओधि-मणेहि य सग-सगविसए विसेसविण्णाणं ।
अंतोमुहुत्तकालो उवओगो सो दु सागारो ॥१७३॥
इंदियमणोधिणा वा अत्थे अविसेसिदूण जं गहणं ।
अंतोमुहुत्तकालो उवओगो सो अणागारो ॥१७४॥
केवलिणं सागारो अणगारो जुगवदेव उवओगा ।
सादियमणंतकालो पच्चक्खदो सव्वभावगदो ॥१७५॥

णिक्खेवे एयट्ठे णयप्पमाणे णिरुत्ति अणिओगे ।
मग्गदि वीसं भेदे सो जाणदि जीवसब्भावं ॥१७६॥

[इदि तदिओ जीवसमासो-समत्तो ।]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थो

सतग-संगहो

सयलससिसोमवयणं णिम्मलगत्तं पसत्थणाणधरं ।
पणमिय सिरसा वीरं सुदणाणादो इमं वोच्छं ॥१॥
णाणोदधिणिस्संदं विण्णाणतिसाभिघादजणणत्थं ।
भवियाणममिदभूदं जिणवयणरसायणं इणमो ॥२॥

भगवंत-अरिहंत-सव्वण्हु-वीयराय-परमेट्ठि-परमभट्टारयस्स मुहकमलविणिग्गयणाणोदधि-सुयसमुद्दस्स णिस्संदं 'स्यन्दू' स्रवणे धातुना सिद्धम्। अप्पसुदं विण्णाणं, विसेसं णाणं, बंध-मुक्ख-जाणणतिसा कंखा, अभिघादजणणत्थं विणास-उप्पादणत्थं, भवियाणं भव्ववरपुंडरीयाणं, अमय-भूदं जादि-जरा-मरणविणासगभूदं जिणवयणं अनेकभवगहनविषमव्यसनप्रापकहेतून् कर्मारातीन् जयन्तीति जिनाः। तथा चोक्तं—

जितमदहर्षद्वेषा जितमोहपरीषहा जितकषायाः ।
जितजन्ममरणदोषा जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः ॥१॥

एवंगुणविशिष्टानां जिनानां वचनम्। जिनस्य वचनं जिनवचनम्। किमुक्तं भवति ? वक्तृप्रामाण्याद्वचनप्रामाण्यं भवति। वत्तारपमाणत्तेण सुदयगाहासुत्ताण पमाणत्तं जाणावणत्थं जिणवयणमिदि वुत्तं। रसायणं अक्खयसुक्खस्स कारणं। इणमो एदाणि पच्चक्खीभूदाणि गाहासुत्ताणि।

सुणह इह जीवगुणसण्णिदेसु ठाणेसु सारजुत्ताओ ।
वुच्छं कदिवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवादाओ ॥३॥

'सुणह' सोदारसिस्साणं पडिबोहणत्थं वुत्तं, अप्पडिबुद्धाणं वक्खाणं णिरत्थयं होदि त्ति। तथा चोक्तं—

अप्रतिबुद्धे श्रोतरि वक्तृत्वमनर्थकं भवति पुंसाम् ।
नेत्रविहीने भर्त्तरि विलासलावण्यमिव स्त्रीणाम् ॥२॥

'इह' इदंशब्दः प्रत्यक्षवाची। केषां प्रत्यक्षम् ? आगमाधित [श्रित] संस्काराणां आचार्याणां प्रत्यक्षम्। 'जीवगुणसण्णिदेसु ठाणेसु' एत्थ जीवसण्णिदा चउदस जीवसमासा, गुणसण्णिदा चउदसगुणट्ठाणा। 'सारजुत्ताओ' सूत्रगुणेन युक्ताः। किं तत्सूत्रगुणम् ?

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्-गूढनिर्णयम् ।
निर्दोषं हेतुमत्तथ्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः ॥३॥

'वुच्छं' वक्ष्ये। 'कदिवइयाओ गाहाओ' केत्तियाओ वि गाहाओ। 'दिट्ठिवादादो' वारहम-अंगस्स कम्मपवाद[णाम]अट्ठमपुव्वादो घेत्तूण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवजोगा जोगविही जेसु य ठाणेसु जेत्तिया अत्थि ।
जं पच्चइओ बंधो हवइ जहा जेसु ठाणेसु ।।४।।
बंधं उदय उदीरणविहं च तिण्हं पि तेसु संजोगो ।
बंध विहाणे वि तहा किं पि समासं पवक्खामि ।।५।।
एइंदिएसु चत्तारि हुंति विगलिंदिएसु छच्चेव ।
पंचिंदिएसु एवं चत्तारि हवंति ठाणाणि ।।६।।

एइंदिया दुविहा—बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता । सुहुमा दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता । एदे चत्तारि एइंदिएसु जीवठाणाणि ४ । बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया य दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता । एदे छ विगलिंदिएसु जीवठाणाणि ६ । पंचिंदिया दुविहा—सण्णी असण्णी । सण्णी दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता । असण्णी दुविहा—पज्जत्ता अपज्जत्ता । एवं पंचिंदिएसु चत्तारि जीवठाणाणि ४ । एवं चउदस जीवठाणा १४ ।

तिरियगईए चउदस हवंति सेसासु जाण दो दो दु ।
मग्गणठाणस्सेवं णेयाणि समासठाणाणि ।।७।।

तिरियगईए चउदस जीवठाणाणि हवंति १४ । णिरयगदि-देवगदि-माणुसगदीसु सण्णिय-पंचिंदियपज्जत्तापज्जत्ता [दो दो जीवठाणाणि हवंति ।] कायाणुवादेण पुढवि-आउ-तेउ-वाउकाइया एदे १६ । वणप्फदिकाइया १० । तसकाइया एदे [१०] एवं कायमग्गणा छत्तीसं ३६ । पत्तेयं पत्तेयं बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया एदे सोलसा १६ । वणप्फदिकाइया दुविहा—पत्तेयसरीरा साहारणसरीरा । पत्तेयसरीरा दुविहा पज्जत्तापज्जत्ता । साधारणा दुविहा—णिच्चणिगोदा चदुगदिणिगोदा । णिच्चणिगोदा दुविधा—बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा—पज्जत्तापज्जत्ता । सुहुमा दुविधा—पज्जत्तापज्जत्ता ४ । चदुगदिणिगोदा दुविहा—बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा—पज्जत्तापज्जत्ता । सुहुमा दुविहा—पज्जत्तापज्जत्ता । बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया सण्णी असण्णी पज्जत्ता अपज्जत्ता १० । एवं कायमग्गणा छत्तीसा ३६ ।

जोगाणुवादेण मण चत्तारि वचि तिण्णि सण्णी पज्जत्त असच्चमोस वचिजोग बीइंदिय तीइंदिय चउरिंदिय असण्णी पंचिंदिय पज्जत्त सण्णिपज्जत्ताण कायजोगा चउदसण्हं पि १४ । ओरालियकायजोगो सत्तण्हं पज्जत्ताणं, ओरालियमिस्स० सत्तण्हं अपज्जत्ताणं । अट्ठमओ केवली समुग्घादगदो कवाडो ओरालियमिस्सं । एवं कम्मइय दे विसेवि [ ] अट्ठमं पदर-लोगपूरणे । वेउव्वियकायजोगो सण्णिपज्जत्ताणं, वेउव्वियमिस्सकायजोगो सण्णि-अपज्जत्ताणं । आहाराहारमिस्सकायजोगो सण्णिपज्जत्ताणं ।

वेदाणुवादेण णवुंसगवेदो चउदसण्हं पि । इत्थि-पुरिसवेदो सण्णि-असण्णि-पज्जत्तापज्जत्ताणं । कसायाणुवादेण कोधकसाइस्स चउदसण्हं पि १४ । माणकसाइस्स १४ । मायाकसाइस्स १४ । लोभकसाइस्स १४ । णाणाणुवादेण मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं चउदसण्हं पि १४ । विभंगणाणं सण्णिपज्जत्ताणं आभिणिबोधियणाणं सुदणाणं ओधिणाणं सण्णिपज्जत्तापज्जत्ताणं । मणपज्जवणाणं सण्णिपज्जत्ताणं । केवलणाणं णेव सण्णी णेव असण्णीपज्जत्ताणं । संजमाणुवादेण असंजमं चउदसण्हं पि १४ । सामाइय-छेदोवट्ठावणं परिहारा सुहुम जहाखायसंजमं सण्णिपज्जत्ताणं । संजमासंजमं पंचिंदियसण्णिपज्जत्ताणं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणाणुवादेण अचक्खुदंसणं चउदसण्हं पि १४। चक्खुदंसणं चउरिंदिय-असण्णि-सण्णिपंचिंदियपज्जत्ताणं ३। ओधिदसणं सण्णिपज्जत्तापज्जत्ताणं २। केवलदंसणं णेव सण्णी णेवासण्णी पज्जत्ताणं। लेसाणुवादेण किण्ह-णील-काउलेसा चउदसण्हं पि १४। तेउ-पउम-सुक्कलेसा सण्णिपज्जत्तापज्जत्ताणं। भवियाणुवादेण भवसिद्धिया चउदसण्हं पि १४। अभवसिद्धिया चउदसण्हं पि १४। सम्मत्ताणुवादेण मिच्छादिट्ठी चउदसण्हं पि १४। सासणसम्मत्तं बादर एइंदी बेइंदी तेइंदी चउरिंदी असण्णि-सण्णिपंचिंदिय-अपज्जत्ता सण्णिपज्जत्तो च ७। सम्मामिच्छत्तं सण्णिपज्जत्ताणं। उवसमसम्मत्तं वेदगसम्मत्तं खाइयसम्मत्तं सण्णिपज्जत्तापज्जत्ताणं। सण्णिआणुवादेण सण्णी पज्जत्तापज्जत्ताणं २। असण्णी बारसण्हं १२। आहाराणुवादेण [आहारा] सत्तण्हं पज्जत्ताणं, अपज्जत्ताणं च १४। अणाहारा सत्तण्हं अपज्जत्ताणं। अट्ठमओ पदर-लोग-पूरणे दीसदि।

एक्कारसेसु तिय तिय दोसु चदुक्कं च बारसेक्कम्मि।
जीवसमासस्सेदे उवओगविही मुणेदव्वा ॥८॥

एइंदिएसु चदुसु बीइंदिय तीइंदिय पज्जत्तापज्जत्ता चदुरिंदिय पंचिंदिय सण्णी असण्णी एदेसु इक्कारसेसु तिण्णि उवओगा—मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं अचक्खुदंसणे त्ति। चदुरिंदिय असण्णिपंचिंदिय पज्जत्ता एदेसु दोसु चत्तारि उवओगा-मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणे त्ति। एक्कम्मि सण्णिपंचिंदियपज्जत्ते बारस उवओगा—मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं विभंगअण्णाणं पंच णाणाणि, चत्तारि दंसणाणि एदे बारस उवओगा। सण्णिविसेसेण काऊण केवलणाणं केवलदंसणं णत्थि, पंचिंदियसामण्णेण अत्थि।

णवसु चदुक्के इक्के जोगा इक्को य दोण्णि पण्णरसा।
तब्भवगदेसु एदे भवंतरगदेसु कम्मइयं ॥९॥

'णवसु चउक्के' बादरेइंदियपज्जत्त-सुहुमेगिंदियपज्जत्तेसु ओरालियकायजोगो। बादर-सुहुमेइंदिय अपज्जत्त बीइंदिय [अ]पज्जत्त तीइंदियअपज्जत्त चउरिंदियअपज्जत्त सण्णिपंचिंदियअपज्जत्त-असण्णिपंचिंदियअपज्जत्तेसु ओरालियमिस्सकायजोगो। बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-असण्णि-पंचिंदियपज्जत्तेसु एदेसु चदुसु दोण्णि ओरालियकायजोगो असच्चमोसवचिजोगा हुंति। एदेसु पज्जत्तगहणेण णिव्वत्तिपज्जत्तयाणं गहणं, अपज्जत्तगहणेण णिव्वत्ति-लद्धिअपज्जत्तयाणं गहणं। एक्के सण्णिपंचिंदियपज्जत्तम्हि चत्तारि मणजोगा चत्तारि वचिजोगा सत्त कायजोगा हुंति। कवाडे ओरालियमिस्सकायजोगो, पदरे लोगपूरणे कम्मइयकायजोगो, पमत्तसंजदम्हि आहार-आहार मिस्सकायजोगो। देव-णेरइयणिव्वत्तिपज्जत्तयाणं पज्जत्तो त्ति काऊण वेउव्विय-वेउव्वियमिस्स-कायजोगो भणिदो। एवं सुत्ताभिप्पाअं, तेसु लद्धिअपज्जत्तगो णत्थि। 'तब्भवगदेसु' खं [णव] सरीरगहिदेसु एदे पुव्वुत्तजोगा हुंति। 'भवंतरगदेसु' कम्मइयकायजोगो त्ति भणिदो, पुव्वसरीरं छंडिऊण अण्णसरीरं जाव ण गेण्हइ ताव भवंतर विग्गहगइ त्ति एगट्ठो। तम्मि वट्टमाणे कम्मइयकायजोगो।

उवओगा जोगविही जीवसमासेसु वण्णिदा एदे।
एत्तो गुणेहि सह परिणदाणि ठाणाणिमे सुणह ॥१०॥
[मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य।
णव संजयाइ एवं चोद्दस गुणणामठाणाणि ॥११॥]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजद-पमत्तसंजद अपमत्तसंजद अपुव्वकरण अणियट्टि सुहुम उवसंत खीणकसाय सजोगिकेवली अजोगिकेवली।

सुर-णारएसु चत्तारि हुंति तिरिएसु जाण पंचेव।
मणुयगदीए वि तहा चउदस गुणणामधेयाणि ॥१२॥

गदियाणुवादेण देव-णेरइएसु चत्तारि गुणट्ठाणाणि मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठि त्ति। 'तिरिएसु जाण पंचेव' मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदेत्ति। 'मणुयगदीए वि तहा चउदस गुणणामधेयाणि' मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगि त्ति।

इंदियाणुवादेण एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिएसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठि त्ति २। पंचिंदिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति १४।

कायाणुवादेण पुढवीए [आउ] वणप्फदिएसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठि त्ति २। तेउ-वाउकाइएसु मिच्छादिट्ठि त्ति १। तसकाइएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति १४।

जोगाणुवादेण सच्चमणजोगि-असच्चमोसमणजोगि-सच्चवचि-जोगि-असच्चमोसवचिजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति १३। मोसमणजोगि-सच्चमोसमणजोगि-मोसवचिजोगि-सच्चमोसवचिजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाओ त्ति १२। ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी कवाडे सजोगिकेवली ४। वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ४। वेउव्वियमिस्से मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ३। कम्मइयकायजोगे मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी। पदरे लोगपूरणे सजोगिकेवलि त्ति ४। आहाराहारमिस्सकायजोगे एक्कं चेव पमत्तसंजद त्ति १।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदे मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति णव गुणट्ठाणाणि। णवुंसयवेदे मिच्छादिट्ठिप्पहुडि अणियट्टि त्ति ९। पुरिसवेदे मिच्छादिट्ठिप्पहुडि अणियट्टि त्ति ९। अवगदवेदे सुहुमादि अजोगि त्ति ५।

कसायाणुवादेण कोहकसाएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि अणियट्टि त्ति ९। माणकसाएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि अणियट्टि त्ति ९। मायाकसाएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि अणियट्टि त्ति ९। लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइय त्ति दस गुणट्ठाणाणि १०। अकसाएसु उवसंतकसायादि अजोगि त्ति ४।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं विभंगणाणं मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी इदि दुण्णि गुणट्ठाणेसु हुंति २। मदि-सुद-ओधिणाणेसु असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाओ त्ति ९। मणपज्जवणाणेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसाओ त्ति सत्त गुणट्ठाणाणि ७। केवलणाणेसु सजोगकेवली अजोगिकेवलि त्ति दुण्णि गुणट्ठाणाणि २।

संजमाणुवादेण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ४। परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदो अपमत्तसंजदो त्ति दुण्णि गुणट्ठाणाणि २। सुहुमसंपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसंपराइयं एक्कं १। जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु उवसंतकसायादि जाव अजोगिकेवलि त्ति ४। संजमासंजमे एक्कं चेव देसविरदगुणं १। असंजमे मिच्छादिट्ठिप्पहुडि असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणे मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाओ त्ति १२। अचक्खुदंसणे एदे चेव गुणट्ठाणा १२। ओधिदंसणे असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाओ त्ति ९। केवलदंसणे सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति २।

लेसाणुवादेण किण्ह-णील-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ४। तेउ-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तु त्ति ७। सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति १३।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति १३। अभवसिद्धिएसु एक्कं चेव मिच्छादिट्ठिट्ठाणं १।

सम्मत्ताणुवादेण वेदगसम्मत्ते असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदो त्ति ४। उवसमसम्मत्ते असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसाओ त्ति ८। खाइयसम्मत्ते असंजदसम्मादिट्ठिआदि जाव अजोगिकेवलि त्ति ११। सम्मामिच्छत्ते सम्मामिच्छत्तं इक्कं चेव गुणट्ठाणं १। सासणसम्मत्ते एक्कं चेव सासणसम्मत्तगुणं १। मिच्छत्ते मिच्छादिट्ठी चेव गुणं १।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाओ त्ति १२। असण्णीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठि त्ति दुण्णि गुणा २।

आहाराणुवादेण आहारीसु मिच्छादिट्ठि-आदि जाव सजोगिकेवलि त्ति तेरस गुणा १३। अणाहारीसु विग्गहगईए मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी पदरे लोग-पूरणे सजोगिकेवली सत्थाणे अजोगिकेवली सिद्धा चेदि ६।

मिच्छादिट्ठी अणंतरासी।

तेरस कोडी देसे बावण्णा सासणे मुणेयव्वा।
मिस्से वि य तद्दुगुणा असंजदे सत्तकोडि सदा ॥४॥
पंचेव य तेणउदी णवट्ठ विगसयछदुत्तरा पमत्ता दु।
तिरधियसदणवणउदी छण्णउदी अप्पमत्त वे कोडी ॥५॥
सोलसयं चउवीसं तीसं छत्तीसमेव जाणाहि।
बादालं अडदालं वे चदुवण्णा य बोधव्वा ॥६॥
तिसदं वदंति केई चदुत्तरं अथ पंचूणयं केई।
उवसामगेसु एवं खवगे जाणाहि तद्दुगुणं ॥७॥
अट्ठेव सदसहस्सा अट्ठाणउदी तहा सहस्साइं।
परिमाणं च सजोगी पंच सद विउत्तरं जाणे ॥८॥

[सासणादयो कमेण] ५२०००००००।१०४००००००००।७००००००००००।१३०००००००। पमत्तसंजदा ५९३९८२०६। अप्पमत्तसंजदा २९६९९१०३। अपुव्वकरणे एत्तिया हुंति २९९। खवगे दुगुणा ५९८। उवसामगेसु चत्तारिगुणट्ठाणेसु एत्तिया हुंति ११९६। खवगेसु पंचगुणट्ठाणेसु एत्तिया हुंति २९९०। सजोगी एत्तिया हुंति ८९८५०२। सव्वे मिलिया एत्तिया हुंति—

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे।
अंजलिमउलियहत्थो तिरयणसुद्धो णमंसामि ॥९॥

८९९९९९९७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुण्हं पंच य छच्चेव दोसु इक्कम्हि हुंति वामिस्सा ।
सत्तुवओगा सत्तसु दो चेव य दोसु ठाणेसु ॥१३॥

मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी एदेसु गुणट्ठाणेसु मदिअण्णाणं सुदअण्णाणं विभंगणाणं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं एदे पंच उवओगा हुंति । असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजद एदेसु दोसु गुणट्ठाणेसु मदिणाणं सुदणाणं ओधिणाणं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओधिदंसणं एदे छ उवओगा हुंति । सम्मामिच्छादिट्ठिम्हि मइणाणं मइअण्णाणेण मिस्सं सुदणाणं सुदअण्णाणेण मिस्सं ओधिणाणं विभंगणाणेण मिस्सं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओधिदंसणं एदे छ उवओगा हुंति । पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजद-अपुव्व-अणियट्टि-सुहुम-उवसंत-खीणेसु य असंजदसम्मादिट्ठि-उवओगा मणपज्जवणाणसहिदा सत्त हुंति । सजोगि-अजोगिकेवलीणं केवलणाणं केवलदंसणं च [दो] उवओगा हुंति ।

तिसु तेरेगे दस णव सत्तसु इक्कम्हि हुंति एगारा ।
एक्कम्हि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवदि एक्कं ॥१४॥

मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीसु चत्तारि मण जोग चत्तारि वचिजोग-ओरालियकायजोग-ओरालियमिस्सकायजोग - वेउव्वियकायजोग - वेउव्वियमिस्सकायजोग-कम्मइयकायजोगा हुंति १३ । सम्मामिच्छादिट्ठिम्हि चत्तारि मणजोग-चत्तारि वचिजोग-ओरालियकायजोग-वेउव्वियकायजोगा हुंति १० । संजदासंजद-अप्पमत्तसंजद-अपुव्व-अणियट्टि-सुहुम-उवसंतखीणेसु चत्तारि मणजोग-चत्तारि वचिजोग-ओरालियकायजोगा हुंति ९ । पमत्तसंजदम्मि अणंतरवुत्तं णव जोगा आहारकायजोग-आहारमिस्सकायजोगेण जुत्ता एक्कारस हुंति ११ । सजोगिकेवलिम्हि सच्चमणजोग-असच्चमोसमणजोग-सच्चवचिजोग-असच्चमोसवचिजोग-ओरालियकायजोग - ओरालियमिस्सकायजोग - कम्मइयकायजोगा हुंति ७ । जोगरहिदं अजोगिट्ठाणं हवदि एक्कं ।

चउपच्चइओ बंधो पढमाणंतरतिगे तिपच्चइगो ।
मिस्सं विदिओ उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि ॥१५॥

मिच्छादिट्ठिम्मि मिच्छत्तासंजमकसायजोगपच्चया हुंति । सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीसु मिच्छत्तवज्ज पुव्वुत्तपच्चया हुंति। संजदासंजदम्हि तससंजमथावरासंजमकसायजोगपच्चया हुंति ।

उवरिल्लपच्चया पुण दुपच्चया जोगपच्चओ तिण्हं ।
सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्हं हुंति कम्माणं ॥१६॥

पमत्तसंजदेसु अप्पमत्तसंजदेसु अपुव्व-अणियट्टिसुहुमेसु कसाय-जोगपच्चया हुंति । उवसंतकसाओ खीणकसाओ सजोगिकेवली जोगपच्चओ चेव । अजोगिकेवली अबंधगो त्ति तम्मि ण पच्चओ भणिदो । एदे णाणेगसमयमूलपच्चया वुत्ता ।

पणवण्णा इर वण्णा [पण्णासा] तिदाल छादाल सत्ततीसा य ।
चउवीस दु वावीसा सोलस एगूण जाण णव सत्ता ॥१७॥

णाणेगजीवं पडुच्च एयंतं विवरीदं वेणइय संसइयं अण्णाणं चेव । वुत्तं च—

एयंत बुद्धदरिसी विवरीदो बंभ वेणइए तावसो ।
इंदो वि य संसइओ मक्कलिओ चेव अण्णाणं ॥१०॥

एदे पंच मिच्छत्ता। चक्खू सोद घाण जिब्भा फास मणं च एदे छ इंदिय-असंजमपच्चया पुढवि आउ तेउ वाउ वणप्फदि तसकाइया एदे छपाणासंजमपच्चया। सोलस कसाय णव णोकसाया य कसायपच्चया। आहारकायजोग-आहारमिस्सकायजोग वज्जिय तेरस जोगपच्चया एदे सव्वे मिलिया पणवण्ण पच्चया मिच्छादिट्ठिस्स ५५। एदे पंचमिच्छत्तवज्जा पण्णासपच्चया सासणसम्माइट्ठिस्स ५०। एदे अणंताणुबंधिचउक्कं ओरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोग-वज्ज तिदाला पच्चया सम्मामिच्छादिट्ठिस्स ४३। एदे ओरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स-कम्मइय-कायजोगसहिदा छादालपच्चया असंजदसम्मादिट्ठिस्स ४६। एदे तसासंजम-अपच्चक्खाणावरणीयचउक्कं ओरालियमिस्स-वेउव्विय-वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोग वज्ज सत्ततीस पच्चया संजदासंजदस्स ३७। एदे इक्कारसासंजमपच्चया पच्चक्खाणावरणचउक्क वज्जं आहाराहार-मिस्सकायजोगसहिया चउवीस पच्चया पमत्तसंजदस्स २४। एदे आहार-आहारमिस्सकायजोग वज्ज बावीस पच्चया अपमत्तसंजदस्स २२। अपुव्वकरणस्स एदे हस्स रइ अरइ सोग भय दुगुंछ वज्ज सोलस पच्चया १६। अणियट्टिपढमसमयप्पहुडि जाव संखेज्जभागं एत्तिया हुंति १६। एदे णउंसगवेद वज्ज पण्णरस पच्चया १५। तओ अंतोमुहुत्तं ते चेव इत्थीवेद वज्ज चउद्दस पच्चया १४। तओ अंतोमुहुत्तं ते चेव पुरिसवेद वज्ज तेरस पच्चया १३। तओ अंतोमुहुत्तं ते चेव कोधसंजलण वज्ज बारस पच्चया १२। तओ अंतोमुहुत्तं ते चेव माणसंजलण वज्ज एक्कारस पच्चया ११। तओ अंतोमुहुत्तं ते चेव मायासंजलण वज्ज दस पच्चया १०। तओ पहुडि अणियट्टिचरमसमयं जाव ते चेव बादरलोभरहिदा दस पच्चया सुहुमसांपराइयस्स १०। ते चेव सुहुम लोभ वज्ज णव पच्चया ९ उवसंत [कसायस्स]। खीणकसायाणं ते चेव। मोसमण-सच्चमोसमण मोसवचि-सच्चमोसवचि वज्ज ओरालियमिस्स कम्मइगकायजुत्ता सत्त पच्चया सजोगिकेवलिस्स ७। एदे णाणासमयजुत्तंतरपच्चया हुंति।

दस अट्ठारह दसयं सत्तरसेव णव सोलसं च दोण्हं पि।
अट्ठय चउदस पणयं सत्त त्ति दुति एयमेयं च ॥१८॥

पंचमिच्छत्ताणमेक्कदरं छण्हं एयदर-इंदिएण एयदरकायं विराधयदि त्ति दोण्णि। अणंताणुबंधिवज्ज तिण्हं कोध-माण-माया-लोभाणमेयदरमिदि तिण्णि। तिण्हं वेदाणमेक्कदरं। हस्स-रइ अरइ-सोग दुण्हं जुअलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा विणा। आहाराहारमिस्स-ओरालियमिस्स-वेउव्विय-मिस्स-कम्मइय-कायवज्ज जोग पण्णरसण्हं जोगाणमेक्कदरं एदे दस जहण्णपच्चया मिच्छादिट्ठिस्स १०। अणंताणुबंधि-अणुदओ मिच्छादिट्ठिस्स कमेण हुंति। अणंताणुबंधी विसंजोइऊण अवट्ठिद असंजद-देसविरद-पमत्तसंजद उवसम-वेदग-सम्मादिट्ठी अणंताणुबंधिसंतविरहियसम्मामिच्छादिट्ठी वा तेसिं मिच्छत्तगयाणं बंधावलिमेत्तकालं उदओ णत्थि त्ति। तम्हि काले मरणम्मि [मरणं पि] णत्थि। ओरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगा णत्थि। पुव्विल्ल पंच-मिच्छत्तभंगा उवरिम-छ-इंदियभंगेहिं गुणिया तीसं ३०। ते चेव छक्काय उवरिल्लछक्कायभंगेहि गुणियासीदी अधियसदं १८०। ते चेव उवरिल्लकसायचउभंगेहिं गुणिया वीसअधियसत्तसदा ७२०। ते चेव उवरिमवेद-तिभंगेहिं गुणिया सट्ठि अधिय इक्कवीससदा २१६०। ते चेव उव-रिम-जुयलदोभंगेहिं गुणिदा वीसधिया तेयालीससदा ४३२०। ते चेव उवरिमजोगदसभंगेहिं गुणिया तेयालीससहस्सा दुसदा य ४३२००।

पंचमिच्छत्ताणमेक्कदरं छण्हं एयदरं इंदिएण छक्काय-विराहेण सत्त चउण्हं कोह-माण-माया-लोभाणमेक्कदरं ति चत्तारि। तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रई अरइ-सोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं। एदे तस्सेव अट्ठारस उक्कस्सपच्चया १८। पुव्विल्लपंचमिच्छत्तभंगा उवरिल्ल छइंदियभंगेहिं गुणिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसं ३० । ते चेव कसायचउभंगेहिं गुणिया १२० । ते चेव वेद-तिभंगेहिं गुणिया ३६० । ते चेव जुवलदोभंगेहिं गुणिया ७२० । ते चेव जोगतेरसभंगेहिं गुणिया ६३६० ।

छण्हं इंदियाणमेक्कदरेण छण्हं कायाणमेक्कदरविराधणे दोण्णि ; चदुण्हं कोह-माण-माया-लोभाणमेक्कदर त्ति चत्तारि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं । हस्स-रइ अरइ-सोग दुण्हं जुवलाणमेक्कदरं । आहाराहारमिस्सकायजोगवज्ज पण्णरसजोगाणमेक्कदरं । एदे दस जहण्णपच्चया सासणस्स १० । छक्काया छइंदियभेएहिं गुणिया ३६ । ते चेव कसायचउभंगेहिं गुणिया १४४ । ते चेव वेद-तिभंगेहिं गुणिया ४३२ । ते चेव जुवलदोभंगेहिं गुणिया ८६४ । बारस जोगभंगेहिं गुणिया १०३६८ । वेउव्वियमिस्सकायजोगं पडुच्च णवुंसयवेदो णत्थि । सासणो णेरइएसु ण उप्पज्जदि त्ति । देवेसु इत्थि-पुरिसवेदो चेव, तेण सदं चउदालीसुत्तरं १४४ । वेद-दुभंगेहि य २८८ । ते चेव जुवल-दोभंगेहिं गुणिया ५७६ । एदे भंगा पुव्वुत्तबारहभंगेहिं मेलिया एत्तिया हुंति १०९४४ ।

छण्हमिंदियाणमिक्कदरेण छक्कायविराधणे सत्त । चदुण्हं कोध-माण-माया-लोभाणमेक्कदरं त्ति चत्तारि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रइ-अरइ-सोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च तेरसण्हं जोगाणमेक्कदरं एदे सत्तारस उक्कस्सपच्चया तस्सेव ।

छइंदियभंगा कसायचउभंगेहिं गुणिया २४ । ते चेव वेद-तिभंगेहिं गुणिया ७२ । ते चेव जुयलदोभंगेहिं गुणिया १४४ । ते चेव बारसजोगेहि गुणिया १७२८ । वेउव्वियमिस्सकायजोगं पडुच्च चउवीसभंगा । इत्थी-पुरिसदोभंगेहि गुणिया ४८ । ते चेव जुवलदोभंगेहिं गुणिया ९६ । एदे बारस पुव्वुत्तरजोगभंगेहि मिलिया एत्तिया हुंति १८२४ ।

छण्हमिंदियाणमेक्कदरेण छण्हं कायाणमेक्कदरं विराहणे दोण्णि अणंताणुबंधी वज्ज तिण्हं कोध--माण-माया-लोभाणमेक्कदर त्ति तिण्णि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं । ओरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगे वज्ज दसण्हं जोगाणमिक्कदरं । एदे णव जहण्णपच्चया सम्मामिच्छादिट्ठिस्स ९ । छ इंदियभंगा छक्कायभंगेहिं गुणिया ३६ । ते चेव कसायचउभंगेहिं गुणिया १४४ । ते चेव वेदतिभंगेहिं गुणिया ४३२ । ते चेव जुगलदोभंगेहिं गुणिया ८६४ । ते चेव दसजोगभंगेहिं गुणिया ८६४० ।

छण्हमिंदियाणमेक्कदरेण छक्कायविराहेण सत्त । अणंताणुबंधी वज्ज तिण्हं कोध-माण-माया-लोभाणमेक्कदर त्ति तिण्णि । तिण्हं वेदाणमेक्कदरं । दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं । भय दुगुंछा च सह दसण्हं जोगाणमेक्कदरं । एदे सोलस च उक्कस्सपच्चया तस्सेव १६ ।

छ इंदियभंगा कसायचउभंगेहिं गुणिया २४ । ते चेव वेदतिभंगेहिं गुणिया ७२ । ते चेव जुवलभंगेहिं [गुणिया] १४४ । ते चेव जोगदसभंगेहिं गुणिया १४४० । सम्मामिच्छादिट्ठिस्स १४४० । ते चेव जहण्णुक्कस्सपच्चया असंजदसम्मादिट्ठिस्स वि । णवरि भंगविसेसो अत्थि तघेव जधा ओरालियमिस्सं पडुच्च पुरिसवेदो वेदंति चउदालीसुत्तारसदं १४४ । ते चेव जुवलदो भंगेहिं गुणिया २८८ । वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगं पडुच्च इत्थिवेदो णत्थि । णवुंसगवेदो-पुव्वबद्धाउस्स पढमपुढविउप्पज्जमाणस्स चउदालीसउत्तरसयं १४४ । वेददोभंगेहि गुणिया २८८ । ते चेव जुवलदोभंगेहिं गुणिया ५७६ । ते चेव वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगदो भंगेहि गुणिया ११५२ । एदे पुव्वुत्त-ओरालियमिस्सजोगभंगसहिया एत्तिया हुंति १४४० । एदे सम्मामिच्छादिट्ठि-जहण्णपच्चयभंगसहिया असंजदसम्मादिट्ठिजहण्णपच्चया हुंति १००८८ ।

ओरालियमिस्सकायजोगं पडुच्च चउवीसभंगा जुयलदोभंगेहिं गुणिया ४८ । वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगं पडुच्च चउवीसभंगा वेद दोभंगेहिं गुणिया ९६ । ते चेव वेउव्वियमिस्स-कम्मइयकायजोगदोभंगेहिं गुणिया १९२ । एदे ओरालियमिस्सकायजोगसहिया एत्तिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुंति २४०। एदे सम्मामिच्छादिट्ठिउक्कस्सपच्चयभंगसहिया दो असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्सपच्चयभंगा एत्तिया हुंति १६८०।

छण्हं इंदियाणमेक्कदरेण पंचकायाणमेक्कदरविराधणे दोण्णि अणंताणुबंधी अपच्चक्खाणावरण वज्ज दोण्हं कोध-माण-माया-लोभाणमेक्कदर त्ति दोण्णि। तिण्हं वेदाणमेक्कदरं। दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं। चत्तारि मणजोग चत्तारि वचिजोग ओरालियकायजोगाणमेक्कदरं एदे अट्ठ जहण्णपच्चया संजदासंजदस्स ८। छ इंदियभंगा तसवज्ज पंचकायभंगेहिं गुणिया ३०। ते चेव कसायचउभंगेहिं गुणिया १२०। ते चेव वेदतिभंगेहि गुणिया ३६०। ते चेव जुयलदोभंगेहिं गुणिया ७२०। ते चेव णवजोग-विभंगेहिं गुणिया ६४८०।

छण्हमिंदियाणमिक्कदरेण पंचकायविराहेण छ अणंताणुबंधी वज्ज अपच्चक्खाणावरण वज्ज दुण्हं कोध-माण-माया-लोभाणमिक्कदरं दोण्णि। तिण्हं वेदाणमेक्कदरं दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं। भय दुगुंछा च। णवण्हं जोगाणमेक्कदरं। एदे चउदस उक्कस्सपच्चया तस्सेव। छ इंदियभंगा कसायभंगेहिं गुणिया २४। ते चेव वेदतिभंगेहिं गुणिया ७२। ते चेव जुयलदोभंगेहि गुणिया १४४। ते चेव णवजोगभंगेहिं गुणिया १२९६।

संजलणकोध-माण-माया-लोभाणमेक्कदरं। तिण्हं वेदाणमेक्कदरं। दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं। चत्तारि मणजोग-चत्तारि वचिजोग-ओरालियकायजोग-आहार-आहारमिस्सकायजोगाणमेक्कदरं। एदे पंच जहण्णपच्चया पमत्तसंजदस्स। चत्तारि कसायभंगा वेदतिभंगेहि गुणिया १२। ते चेव जुवलदोभंगेहि गुणिया २४। ते चेव इक्कारस जोग भंगेहि गुणिया २६४। ते चेव जहण्णपच्चया य भय-दुगुंछा च सहिया अ सत्त उक्कस्सपच्चया हुंति। भंगा पुण ते चेव २६४।

एवं अप्पमत्तसंजदस्स वि। णवरि विसेसो आहार-आहारमिस्सकायजोगा णत्थि। चउवीस भंगा २४ जोगणवभंगेहिं गुणिया जहण्णुक्कस्सपच्चयाणं भंगा एत्तिया हुंति २१६। एवं अपुव्वकरणस्स वि। चदुसंजलणाणमेक्कदरं णवण्हं जोगाणमेक्कदरं। एदे दुण्णि जहण्णपच्चया अवगदवेदअणियट्टिस्स २। चत्तारि कसायभंगा णवजोगभंगेहिं गुणिया ३६। चदुण्हं संजलणाणमेक्कदरं। तिण्हं वेदाणमेक्कदरं। णवण्हं जोगाणमेक्कदरं। एदे तिण्णि उक्कस्सपच्चया सवेदअणियट्टिस्स। चत्तारि कसायभंगा वेदतिभंगेहिं गुणिया १२। ते चेव णवजोगदुभंगेहि गुणिया १०८।

सुहुमे लोभसंजलणं णवण्हं जोगाणमेक्कदरं। एदे दुण्णि जहण्णुक्कस्सपच्चया सुहुमस्स। जोगभंगा णव चेव ९। णवण्हं जोगाणमेक्कदरं। इक्को चेव जहण्णुक्कस्सपच्चओ। उवसंतकसायखीणकसायाण जोगभंगा णव चेव ९। सच्चमणजोग-असच्चमोसमणजोग-सच्चवचिजोग-असच्चमोसवचिजोग-ओरालिय-ओरालियमिस्स-कम्मइयकायजोगाणमेक्कदरं। एक्को चेव जहण्णुक्कस्सपच्चओ सजोगिकेवलिस्स। जोगभंगा सत्त चेव ७। एदे एक्कसमयजहण्णुक्कस्सपच्चया भणिया।

पडिणीय अंतराए उवघादे तप्पदोस णिण्हवणे।
आवरणदुगं भूओ बंधइ अच्चासणाए वि ॥१९॥

पडिणीय समच्छरो। कुदो वि कारणादो वि भावियणाणम्मि दाणजोग्गविणीयसिस्सस्स जदो ण दीयदे,अत्थोवदेसो तम्मच्छरं तित्थपडिऊलं। अंतरायं णाणवुच्छेदं। उवघादं पसत्थणाणदूसणं। तप्पदोसं परमत्थणाणस्स मोक्खसाधणस्स कित्तणे कदे अकहं मणेण पेसुण्णपरिणामो पदोसो। णिण्हवणे कुदो वि कारणादो णत्थि ण याणिमो पलावणं वंचणं णिण्हवणे। अच्चासणं अवि वाया काएण परपयासणस्स वज्जणं आसादणं तस्सद्धेणा(तप्पदेण)णाण-दंसणणिदेसो कदो। कुदो ? 'आवरणदुगं बंधइ' इदि वयणादो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूदाणुकंप वद-जोगमुज्जदो खंति-दाण-गुरुभत्तो ।
बंधदि भूओ सादं विवरीदे बंधदे इदरं ॥२०॥

भूदाणुकंप जीवाण अणुग्गहणुल्लकदचित्तो। परपीडापच्छंव करेमाणोणुकंपा। 'वद-जोयमुज्जदो' णुकंपवाणसरागादिसंजम अखीणासया। खंति कोहादिणिवित्ती। दाण उत्तमपत्तादि-आहारादिदाणं। गुरुभत्तो अंतरंगपरिणामवंदण-णिरिक्खिणादि पसण्णचित्तदा। एहिं पच्चएहिं बंधइ सादमिदि भणिदं होदि। 'विवरीदे बंधदे इदरं' असादं पीडालक्खल(ण)परिणाम दुक्ख इट्ठ-वियोय सोगपरिवादादि चित्तपीडाणिमित्तादो परिताव-पउर-अंसु-णिवडण-कंदणं इंदियाऊ-वियोग-निबंध-संकिलेसपरिणामावलंबण सपराणुग्गह-अभिलास-विसअ-अणणुकंपा परिवेदणं एदे पच्चया असादा-वेदणीयस्स दुक्खपच्चया।

अरहंत-सिद्ध-चेदिय-तव-गुरु-सुद-संघ-धम्म-पडिणीओ ।
बंधदि दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण ॥२१॥

अरहंता केवलणाणिणो असब्भूददोसुब्भाव कवलाहाराहारिणो अरहंता इदि आसादणं सिद्धा अणोवमसुहोवजुत्ता तदवण्णवादो इत्थीसुहादिणा विणा कुदो सुहं? चेदिय अरहंत-सिद्धाण गुणारोपणाधार तदसो [दासा] दणं अचेदणा णिग्गुणा, किं पडिबिंबेणे त्ति। 'तव' कम्मणिज्जराण हेदु वारस। तदासादणं किमि णिस्सिणादितवेणाप्पाण संकिलेसेण कम्मबंधो सिया। 'गुरु' सम्मणाण-दंसण-चरित्तगउरवो गुरु। तप्पडिणीओ ण किंपि णाणादिगुणो असुद-त्तादो। सुदं वारसंगं अरहदोवदिट्ठं, मंस-भक्खणादिणिरवज्जं सुदावण्णवादो। 'धम्म' चाउगइ-पडंताण सुहेऽवधारणादो धम्म। जिणदिट्ठो णिग्गुणो धम्मो जे चरंति ते असुरा भविस्संति। संहरण अणंतओ वेदो दसमणसंह (संघ रिसि-मुणि-अणगारोवेदसमणा संघो) तेसिमवण्णवादो असुचि-सरीरा फरुवदो (विरूवया) णिग्गुणा। एवं पच्चएण बंधदि दंसणमोहं जेण अणंतो संसारो।

तिव्वकसाय बहुमोहपरिणदो राग-दोससंतत्तो ।
बंधदि चरित्तमोहं दुविधं पि चरित्तगुणघादी ॥२२॥

तिव्वकसाओ पावण-तवसीणं चारित्तदूसणं संकिलिट्ठा लिंग-वद-धारणादिधम्मोवहास बहुपलावहाससीलदा हास। णाणाकीडण-परदा वद-सीलारुचि रदि। रदिविणासणं पावसीलं संग-स्सादि अरदि। अप्पसोगादि मोद-परसोगादि णिंदण सोग। सभयपरिणाम परभय-उप्पादणं भय। अकुसलकिरिया परणिंदा-दुगुंछा। अलियकहण-अदिसंधारणपविद्ध रागिच्छी। थोव कोधाणुसित्त सदारसंतोसादि पुरिस। पउरकसाय-गुज्झिंदियरोधण-परंगणागदि णवुंसय। बहुमोह अणेयमिच्छत्त-भेदेण परिणदो असुचिसारदा रागो। दोस रयणत्तअदूसणं। एदेहिं संतत्तो 'बंधदि चरित्तमोहं दुविहं' पंचाणुव्वदाणि, सयलपंचमहव्वयचारित्तगुणं घादेइ इमेहिं पच्चएहिं।

मिच्छादिट्ठी महारंभ-परिग्गहो तिव्वलोह-णिस्सीलो ।
णिरयाउगं णिबंधइ पावमदी रुद्दपरिणामो ॥२३॥

'मिच्छादिट्ठी' तच्चत्थसद्दहणरहिदो, महारम्भ हिंसातेआणंद-अपरिमिदपरिग्गह-रक्खणाणंद किण्हलेसजुदो पावमदी णिरयाउगं बंधदि त्ति ण संदेहो।

उम्मग्गदेसओ मग्गणासओ गूढहिययमाइल्लो ।
सढसीलो य ससल्लो तिरियाऊ णिबंधदे जीवो ॥२४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'उम्मग्ग' पंचमिच्छत्तो वेदधम्मदेसणं संधाणकुसलं पि य णील-कवोदलेस-अट्टज्झाणरदो तिरियाउगं णिबंधदि ।

पयडीए तणुकसाओ दाणरदो सील-संजमविहीणो ।
मज्झिमगुणेहिं जुत्तो मणुआउं णिबंधदे जीवो ॥२५॥

'पयडीए' सहावेण तणुकसाओ मंदकसाओ, दाण पत्तदाणरदो 'सील-वदहीणो' अक्ख-संजम-पाण-संजमरहिदो, मज्झिमगुण [गुणेहिं जुत्तो एदेण] कारणेण मणुयाउयआसवो होइ ।

अणुवद-महव्वदेहि य बालतवाकामणिज्जराए य ।
देवाउगं णिबंधइ सम्माइट्ठी य जो जीवो ॥२६॥

अकामचारिणिरोध बंधण-वध-छुहा-तिसा-णिरोह-बम्हचेर-भूमिसयण-मलधारण-परितावादि णिज्जरा बालतव मिच्छादंसणोवेदमणुवा संकिलेस-पउर-अणुवदादीहिं देवाउगं णिबंधदि त्ति भणिदं होदि ।

मण-वयण-कायवंको माइल्लो गारवेहि दढबद्धो ।
असुहं बंधदि णामं तप्पडिवक्खेहि सुहणामं ॥२७॥

मण-वयण-कायवंको कुडिलदा अण्णहा पवत्तणं । माइल्लो मिच्छत्त-पिसुण कूड-माणकूड-तुलागरण-अप्पपसंसपरणिंदादिया माया । गारव इड्ढि-दव्वलाभ-रसमिट्ठभोयण-सादसुहसयणादि । एदेहिं दढबद्धो असुहणामं बंधइ । तव्विवरीदं जोग पउण (?) यस (रस-) सादरहिदं धम्मिकत्तं दंसणसंभव-संसार [संसकारो] सब्भावभीरुदा पमादादि-वज्जणादीहि सुहणामं बंधइ ।

अरहंतादिसु भत्तो सुत्तरुई पदणुमाण गुणपेही ।
बंधइ उच्चं गोदं विवरीदो बंधदे इदरं ॥२८॥

अरहंतादिसु भत्तो पंचगुरुम्हि अदीवभत्तो, सुत्तरुई जिणुत्तसुत्ते अंतरंगादि-परिणामरुई, पदणुमाण अइथोडउ माण, गुणपेही अप्पणिंदण-परपसंसण-गुणुब्भावणा सगुणाच्छादणं गुणुक्कस्स विणएण णमणं विण्णाणादि-उक्कस्स सव्वो विअदमदहंकार उच्छेय-रहिदादि बंधदि गोदुच्चं । विवरीओ इदरं । किं तं ? णिच्चगोदं । जेहिं हेदूहिं अप्पपसंस-परणिंदा-सग्गुणुच्छेदागुणुब्भाव-णादीहिं अरुहादिभत्तिरहिदेहिं त्ति वुत्तं होदि ।

पाणव्वहादिसु रदो जिणपूया-मोक्खमग्गविग्घयरो ।
अज्जेइ अंतरायं ण लहदि हिय-इंछियं जेण ॥२९॥

पाणवधादि त्ति सुगमं । अंतरायं अज्जेदि पंचपयारं । दाणंतरायं तं कह (हं) जीवाणं अभय-विग्घेण जेण सम्मत्ताणुवद-महव्वद-लयणसिस्सा ण उप्पज्जंति । उप्पण्णा वि ण थिरा होंति । अहवा सुवण्ण-वत्थुआदिदाणविग्घादो सुवण्णादिदा णो उप्पज्जंति । लाभंतराएणं अणवरयं भुंजमाणमवि ण तित्ती होइ, अण्णेवि लाभा सरीरावणहेदवो ण लब्भंति । भोगंतरायं [एण] असणादिचउव्वि-हाहारं दिंताण विग्घादो जेण सोदरमवि पूरेदुं ण सक्कदे । पूरिदमवि छद्दि-आदि होइ । सयलमवि पच्चक्खं, आगमदोऽवसेयं च । उवभोगंतराएण वत्थित्थीतूलि-पल्लंक-मरुलालंकारादिणसिया । एवं विरियंतराएण बलविरिया आहारब्भासहजा ण उप्पज्जंति, अदीवसी (लघीयसी) णासंति त्ति वुत्तं होइ । आहार-देयाणं दायार-पत्ताणं वा अंतरं इच्छमज्झे ठाइ त्ति अंतरायं । तदेहिं पच्चएहिं बंधइ सामण्णे पच्चए जदुत्तं तं एवं ण लब्भइ हिय-इंछियं चित्तेण माणसियं अहिलसियवत्थू तं ण पावए जीवो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छसु ठाणएसु सत्तट्ठविहं बंधंति तिसु वि सत्तविहं ।
छव्विहमेगु त्तिण्णेगविहं तु अबंधगो इक्को ॥३०॥

छसु गुणठाणएसु मिच्छादिट्ठि - सासणसम्मादिट्ठि-असंजद- देसविरद-पमत्तापमत्तेसु आउ-वज्ज सत्त, तेण सह अट्ठबंधो । एइंदियप्पहुदि जाव असण्णिपंचिंदियतिरिक्खेसु कम्मभूमिसण्णि-पंचिंदियतिरिक्खेसु कम्मभूमिपडिभागि-सण्णिपंचिंदियतिरिक्खेसु च । मणुस्सा च अप्पप्पणो आउग-तिभाग-सेसकाले आउगबंधपाउग्गो होदि । भोगभूमिसण्णिपंचिंदिय तिरिक्ख-मणुस्सेसु भोगभूमिपडिभागसण्णिपंचिंदियतिरिक्खेसु च सव्वणेरइय-देवेसु छम्मासाउगसेसकाले आउगं बंधमाणस्स पाओग्गो होदि । सव्वेसु सव्वसंकिलेस-विसुद्धपरिणामेसु आउगबंधो ण होइ, तप्पा-उग्गसंकिलेसपरिणामेसु णिरयाउगबंधो, तप्पाउग्गविसोहिपरिणामेसु सेसाउगबंधो होइ । विग-लिंदिय-असण्णिपंचिंदियतिरिक्खकम्मभूमि-कम्मभूमिपडिभागेसु होंति बंधगा । कम्मभूमिपडि-भागो णाम सयंभूरवणदीवमज्झे ठिदसयंपभणगिंदवरपव्वयप्पहुदि बाहिरभागो । भोगभूमिपडि-भागो णाम माणुसुत्तरपव्वयप्पहुइय जाव सयंपभणगिंदवरपव्वउ त्ति । एइंदिया पुण सव्वत्थ हुंति, तेण सोदाराण मदि-वाउलविणासणत्थं खेत्तविसेसो उववादं विसेसिदूण भणिदो । अण्णधा सोदारा ण बुज्झंति । 'तिसु य सत्तविधं'—सम्मामिच्छादिट्ठि-अपुव्व-अणियट्टीसु आउगवज्ज सत्त कम्माणि बंधंति । 'एगो' सुहुमो मोहाउगवज्जाणि छकम्माणि बंधंति । 'तिण्णेगविहं तु उवसंत-खीण-सजोगिणो वेयणीयमेयं बंधंति । अजोगी अबंधगो ।

अट्ठविह-सत्त-छबंधगा वि वेदंति अट्ठयं णियमा ।
एगविहबंधगा पुण चत्तारि व सत्त चेव वेदंति ॥३१॥

'अट्ठविह-सत्त-छबंधगा' पुव्वुत्ता यदु (अट्ठ) कम्माणि वेदंति । 'एगविहबंधगा' सजोगि-केवली चत्तारि अघादिकम्माणि वेदंति । उवसंत-खीणकसाया मोहणीयवज्ज सत्त कम्माणि वेदंति । 'च' सद्देण अजोगिकेवलिणो चत्तारि अघादिकम्माणि वेदंति ।

घादीणं छदुमत्था उदीरगा रागिणो य मोहस्स ।
तदियाऊण पमत्ता जोगंता हुंति दुण्हं पि ॥३२॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि खीणकसायंता घादीणमुदीरगा हुंति । ते चेव सुहुमंता मोहस्स । 'तदिआऊणं' वेदणीयाउगाणं पमत्तंता । सजोगिकेवलि-अंता णामा-गोदाण उदीरगा हुंति । वट्ट-माणाणं उदयट्ठिदियपढमसमयप्पहुदि जाव य आवलियमेत्तट्ठिदीओ मुत्तूण उवरिमट्ठिदीणं पलि-दोवम-असंखिज्जदिमभागमेत्तं कम्मपरमाणू ओकट्टिऊण उदयावलिपक्खेवणं उदीरणा । 'अपक्क-पचणं' उदीरणेत्ति वयणादो ।

मिच्छादिट्ठिप्पहुदी अट्ठमुदीरेंति जा पमत्तो त्ति ।
अद्धावलियासेसे तहेव सत्तुदीरेंति ॥३३॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव पमत्तंता अट्ठ कम्माणि उदीरिंति । सम्मामिच्छादिट्ठि-वज्जियाणं एदेसिं चेव अप्पप्पणो आउगावलियकालाउसेसे आउगवज्ज-सत्तकम्माणमुदीरणा होइ । भुंजमा-णाउगस्स उदयावलिउवरि ट्ठिदी णत्थि । उदयावलिए ट्ठिदाणं पि उदीरणा णत्थि ।

वेदणियाउगवज्जिय छकम्ममुदीरिंति जाव चत्तारि ।
अद्धावलियासेसे सुहुमो उदीरेइ पंचेव ॥३४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पमत्तप्पहुदि जाव सुहुमंता वेदणीय-आउगवज्ज छक्कम्माणि उदीरिंति । सुहुम- संप-राइगो गुणट्ठाणकालस्स आवलियकालावसेसे मोहणीयवज्ज पंचकम्माणि उदीरेइ, खवगस्स उदया-वलियउवरि ट्ठिदी णत्थि । चउमाणोवसामगस्स उदयादो दो-आवलिउवरि अंतोमुहुत्तमंतरं होऊण उवरि अंतोकोडाकोडीमेत्तट्ठिदीओ विज्जमाणा वि ण उदीरेदि । पडिआवालियादो चेव उदी-रणा । जाव य समयाधिया उदयावलिसेस त्ति तओ उदओ चेव । ओदरमाणोवसामगस्स एस विही णत्थि ।

वेदणियाउगमोहे वज्जिय उदीरिंति दोण्णि पंचेव ।
अद्धावलियासेसे णामं गोदं च अकसाई ॥३५॥

'वेदणियाउगमोहे वज्जिय' उवसंत-खीणकसाया पंच कम्माणि उदीरिंति । खीणकसाओ अप्पगो गुणट्ठाणकालस्स आवलियकालावसेसे णामागोदाणि उदीरेइ, णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं उदयावलि-उवरिट्ठिदी णत्थि, उदीरणा णत्थि ।

उदीरेइ णाम-गोदे [छक्कम्म]-कम्मविवज्जिदो सजोगी दु ।
वट्टंतो दु अजोगी ण किंचि कम्मं उदीरेइ ॥३६॥

छक्कम्माणि वज्ज णाम-गोदाणि सजोगिजिणो उदीरेइ । 'वट्टंतो वि अघादिकम्मोदयसहिदो वि अजोगी ण किंचि कम्मं उदीरेइ; जोगरहिदस्स उक्कट्टणादिकिरिया णत्थि, अंतोमुहुत्तमेत्तं कम्मट्ठिदी विज्जमाणो वि ।

अट्ठविहमणुदीरिंतो अणुभवदि चदुव्विधं गुणविसालं ।
इरियावहं ण बंधइ आसण्णपुरक्कडो दिट्ठो ॥३७॥

अजोगिजिणो अट्ठकम्माणि ण उदीरेइ, अघाइचउक्कं वेदेइ । जोगणिमित्तं कम्मं ण बंधइ, आसण्णपुरक्कडो दिट्ठो आसण्णगयसरीरभेओ संतो ।

इरियावहमाउत्ता चत्तारि व सत्त चेव वेदंति ।
उदीरिंति दोण्णि पंच य संसारगदम्मि भयणिज्जा ॥३८॥

सजोगिजिणो जोगणिमित्तवेदणीयकम्मबंधजुत्तो अघादिचदुक्कं वेदेइ । उवसंतकसाय-खीणकसाया जोगणिमित्तं वेदणीयकम्मबंधजुत्ता मोहणीयवज्ज सत्त कम्माणि वेदंति । सजोगिजिणो णाम-गोदाणि उदीरेइ । उवसंत-खीणकसाया वेदणीयाउगमोह वज्ज पंच कम्माणि उदीरिंति । संसारगदम्हि णिग्गयसंसारे खीणकसाया भयणिज्जा पंच वा दोण्णि वा उदीरिंति, अप्पणो गुणट्ठाणकालस्स आवलियकालावसेसे दोण्णि, सेसकाले पंच ।

छप्पंचमुदीरिंतो बंधइ सो छव्विहं तणुकसाओ ।
अट्ठविहमणुभवंतो सुक्कज्झाणे डहइ कम्मं ॥३९॥

सुहुमसंपराइओ वेदणियाउगवज्जाणि छक्कम्माणि उदीरेइ, अप्पणो गुणट्ठाणकालस्स आव-लियकालावसेसे चेव मोहणीयवज्जाणि पंच कम्माणि उदीरेइ, मोहाउगवज्जाणि छ कम्माणि बंधेइ, अट्ठ कम्माणि वेदेइ ।

अट्ठविहं वेदंता छव्विहमुदीरिंति सत्त बंधंति ।
अणियट्टी य णियट्टी अप्पमत्तो य ते तिण्णि ॥४०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणियट्टि-अपुव्व-अप्पमत्तसंजदा अट्ठ कम्माणि वेदंति, वेदणियाउगवज्जाणि छ कम्माणि उदीरिंति, आउगवज्जाणि सत्त कम्माणि बंधंति। पुव्वं अप्पमत्तसंजदो अट्ठ कम्माणि बंधदि इदि वुत्तं। संपहि सत्त बंधदि त्ति कहं ण विरुज्झइ ? अप्पमत्तसंजदो आउगबंधं ण पारभदि त्ति जाणावणट्ठं वुत्तं। पमत्तसंजदो आउगं बंधमाणो अप्पमत्तसंजदो होदूण समाणेइ, अप्पमत्तगुणट्ठाणकाले आउगबंधपाओग्गकालादो गुणट्ठाणकालो थोओ, आउगबंधगद्धा बहुगेत्ति ण पारभदि।

बंधंति य वेदंति य उदीरिंति य अट्ठ अट्ठ अवसेसा।
सत्तविहबंधगा पुण अट्ठण्हमुदीरणे भज्जा ॥४१॥

अवसेसा मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजद-संजदासंजद-पमत्तसंजदा अट्ठ कम्माणि बंधंति, वेदंति, उदीरिंति य। एदे चेव आउगवज्ज सत्त कम्माणि बंधकाले अट्ठ उदीरिंति, अप्पप्पणो आउगावलियकालावसेसे आउगवज्ज सत्त कम्माणि उदीरिंति। सम्मामिच्छादिट्ठी आउगवज्ज सत्त कम्माणि बंधइ, अट्ठ कम्माणि वेदेइ, उदीरेइ य। सम्मामिच्छादिट्ठी आउगवज्ज सत्त कम्माणि कहं ण उदीरेइ ? आउगावलिकालावसेसे सम्मामिच्छत्तगुणो ण संभवइ, अंतोमुहुत्ताउगावसेसे संभवदि त्ति।

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेदणीय-मोहणीया।
आउग णामा गोदं अंतरायं च मूलपयडीओ ॥४२॥

एदाए गाहाए एगेगेगमूलपयडीओ, उत्तरा चेव। एदीए गाहाए [एगुत्तरपयडिसमुक्कित्तणा वुत्ता।

सादि अणादि धुवं अद्धुवो य पगडिठाण भुजगारो।
अप्पदरमवट्ठिदं च हि सामित्तेणावि णव हुंति ॥४३॥

अबंधादो बंधदि त्ति सादी। सेढिमणारूढं पडुच्च जीवकम्माणमणादि त्ति। अणादि अभवसिद्धिं पडुच्च, धुवो भवसिद्धिं पडुच्च। अबंधं वा बंधवुच्छेदो वा गंतूण अद्धुवो।

सादि अणादिय धुव अद्धुओ य बंधो दु कम्मछक्कस्स।
तदिया सादियसेसा अणादि-धुवसेसगो आऊ ॥४४॥

उवसंतकसाओ कालं कादूण देवेसुप्पण्णगस्स आउग-वेदाणि वज्जाणं छण्हं अकम्माणं सादियबंधो होइ। सो चेव सुहुमसंपराओ जाओ, तस्स वा सादियबंधो मोहणीयवज्जाणं पंचण्हं सुहुमसंपराओ उवसामगो अणियट्टिगोवसामगो जाओ, तस्स मोहणीयस्स सादियबंधो। उवसमखवगसेढिमणारूढं पडुच्च अणादी। अभवसिद्धिं पडुच्च धुवो। सुहुमसंपराइगोवसामगो उवसंतभावेण अद्धुओ। सुहुमसंपराइयखवगो खीणभावेण वा अद्धुओ। अणियट्टि-उवसामगो खवगो वा सुहुमसंपराइय-उवसामग-खवगभावेण मोहणीयस्स अद्धुवबंधो। अ[पुव्व]उवसामगस्स अद्धुवं अबंधभावेण, खवगस्स बंधवुच्छेदभावेण वा। 'तदिया सादिअसेसा वेदणीयस्स सादियबंधो णत्थि। कहं ? अजोगी हेट्ठा ण पडदि त्ति। सजोगी अजोगिभावेण अद्धुवं। जीव-कम्माणमणादि त्ति अणादि धुवपुव्वं[बं]धयावुगस्स अणादि-धुवबंधो णत्थि। अबंधगो होदूण बंधमाणे सादियबंधो, बंधोवरमे अद्धुवबंधो।

उत्तरपयडीसु तहा धुवयाणं बंध चदुवियप्पो दु।
सादी अद्धुविआओ सेसा परियत्तमाणीओ ॥४५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणंतरायदसयं दंसण णव मिच्छ सोलस कसाया ।
भयकम्म दुगुंछा वि य तेजा कम्मं च वण्णचदू ॥४६॥

अगुरुगलहुगुवघादा णिमिणं च तहा भवंति सगदालं ।
बंधो य चदुवियप्पो धुवपगडीणं पगिदिबंधो ॥४७॥

'उत्तरपगडीसु तहा धुवयाणं' पंच णाणावरणीय-चक्खु-अचक्खु-ओधि-केवलदंसणावरण-पंचंतराइयाणं उवसंतकसाओ देवभावेण सुहुमोवसामगभावेण सादियबंधो। अणादिधुव [बंधा] पुव्वं वा। सुहुमउवसामगो खवगो वा उवसंतभावेण खीणभावेण अदूधुवं। णिद्दा-पयलाणं अपुव्वकरणद्धाए सत्तभागाण ओदरमाणस्स चरमभागपढमसमए सादियबंधो। अणादि-धुव [बंधा] पुव्वं व। अपुव्वउवसामगो खवगो वा पढमभागादिविदियभागस्स अदूधुव। णिद्दाणिद्दा पचलापचला थीणगिद्धी अणंताणुबंधिचदुक्काणं असंजद-देसविरद-पमत्तसंजदा सासण-भावेण मिच्छभावेण वा सादियबंधो। अणादि मिच्छादिट्ठिस्स। धुव पुव्वं व। मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छत्त-असंजद-देसविरद-अपमत्तसंजदभावेण वा अदूधुवबंधो। मिच्छत्तस्स सासण-सम्मा-मिच्छत्त-असंजद-देसविरद-पमत्तसंजदाणं मिच्छत्तभावेण सादियबंधो। अणादि मिच्छादिट्ठिस्स। धुव पुव्वं व। अणंताणुबंधिस्स जहा, तहा अपच्चक्खाणावरणचउक्कस्स वि। देसविरद-पमत्तसंजदाणं असंजद-सम्मामिच्छत्त-सासण-मिच्छत्तभावेण सादियबंधो। मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव असंजदो त्ति एदेसिं उवरिमगुणमगहिदाणं अणादि। धुव पुव्वं व। एदेसिं चेव उवरिमगुणभावेण अदूधुव। पच्चक्खाणावरणचउक्कस्स अप्पमत्तसंजदस्स हेट्ठिमगुणभावेण सादियबंधो। मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव संजदासंजदु त्ति एदेसिं उवरिमगुणमगहिदाणं अणादिबंधो। एदेसिं अप्पमत्तभावेण अदूधुवं। धुव पुव्वं व। कोहसंजलणस्स ओदरमाणेण अणियट्टि-उवसामगे अबंधगे होदूण बंधगजादस्स सादियं। अणादि धुव पुव्वं व। अणियट्टि-उवसामगस्स खवगस्स वा अबंध बंधवुच्छेदभावेण अदूधुवं। एवं माण-मायासंजलणाणं। लोभसंजलणस्स ओदरमाणसुहुम-उवसामगस्स अणियट्टि-भावेण सादि। अणादि-धुव पुव्वं व। अणियट्टि-उवसामगस्स खवगस्स वा सुहुमउवसामग-खवग-भावेण अदूधुवा। भय-दुगुंछाणं ओदरमाण-अणियट्टिअ-उवसामगस्स अपुव्व-उवसामगभावेण सादिय। अणादि धुवआ पुव्वं [व]। अपुव्वकरण-उवसामगस्स खवगस्स वा अणियट्टि-उवसामग-खवगभावेण अधुव। तेजा-कम्मइगसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुगलहुग-उवघाद-णिमिणणामाणं ओदरमाण-अपुव्वुवसामगस्स अबंधगयस्स सादि। अणादि धुव-पुव्वं व। अपुव्वकरण-उवसाम-गस्स खवगस्स वा सत्तमभागपढमसमए गयस्स अदूधुव सत्तेत्तालीसं पगडीणं अबंधगाणं कालं काऊणं देवेसुप्पण्णाणं बंधजोगाणं सादिअबंधो होदि त्ति वा वत्तव्वो। बंधजोग्गा पुण मिच्छत्त-अणंताणुबंधिचदुक्क-णिद्दाणिद्दा-पचलापचला-थीणगिद्धी वज्जाओ बंधसंभवगुणट्ठाणेसु सव्वकालं बंधइ त्ति धुवपगडीओ वुच्चंति। चत्तारि आऊ आहारसरीर-आहारसरीर-अंगोवंग-परघाद-उस्सास-आदावुज्जोव-तित्थयरणामाणं सादि-अदुधुवबंधो होदि; एदेसिं पडिवक्खपयडी णत्थि त्ति। सेसाओ त्ति वुच्चंति धुवपगडिसेसपगडीवज्जाणं परियत्तमाणीणं सादि-अधुवबंधो होदि। पडि-वक्खपगडिजुत्ताओ परियत्तमाणीओ वुच्चंति। सेसपगडी परियत्तमाणपगडीणं अणादिधुवरूवेण बंधो णत्थि। एदाहिं दोहि गाहाहिं मूलुत्तरपगडीसु सादि-आदि चत्तारि अणिओगद्दाराणि वुत्ताणि।

चत्तारि पगडिट्ठाणाणि तिण्णि भुजगारमप्पदरगाणि ।
मूलपगडीसु एवं अवट्ठिदं चदुसु णादव्वं ॥४८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वकम्माणि अट्ठ, आउगवज्जाणि सत्त, आउग-मोह-वज्जाणि छब्भवे। वेदणीयं चेव इक्कं। एदाणि चत्तारि मूलपगडिट्ठाणाणि अप्पं बंधंतो बहुदरं बंधइ त्ति एस भुजगार [बंधो] बहुदरं बंधंतो अप्पदरं बंधइ त्ति एस अप्पदरबंधो। भुजगारे अप्पदरे वा कदे तत्तियं तत्तियं बंधइ त्ति एस अवट्ठिदो बंधो। उवसंतकसायं एगं बंधंतो सुहुमो होदूण छकम्माणि बंधदि त्ति एस एक्को भुजगारो। सुहुमो अणियट्टी होदूण सत्त बंधइ त्ति बिदिओ भुजगारो। आउगबंधपाओग्गगुणट्ठाणेसु सत्त बंधंतो अट्ठ बंधइ त्ति तदिओ भुजगारो। उवसंतकसाओ सुहुमो वा हेट्ठाऽहो होदूण सत्त बंधइ त्ति वा भुजगारो। विवरीदेण तिण्णि अप्पदरगाणि वत्तव्वाणि। भुजगार-अप्पदरकालो एगसमइओ। सेसबंधकाले चत्तारि अवट्ठिदाणि।

तिण्णि दस अट्ठ ठाणाणि दंसणावरण-मोह-णामाणं।
इत्थेव य भुजगारा सेसस्सेगं हवइ ठाणं ॥४९॥

दंसणावरणकम्मस्स तिण्णि ठाणाणि–णव छ चत्तारि। दंसणावरणस्स सव्वकम्माणि घेत्तूणं णव बंधइ त्ति मिच्छादिट्ठिणो। थीणगिद्धीतिग वज्ज छ कम्माणि सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपढम-सत्तमभाग त्ति बंधंति। गेसु [एदेसु] मज्झे णिद्दा-पचला वज्ज चत्तारि कम्माणि अपुव्वकरणविदिय-सत्तमभागप्पहुदि जाव सुहुमसंपराय त्ति बंधंति। ओदरमाण-अपुव्वकरणुवसामगो चत्तारि बंधमाणो छ बंधइ त्ति एक्को भुजगारो। असंजदसम्मादिट्ठी देस-विरदं पमत्तसंजद छ कम्माणि बंधमाणस्स सासणभावेण वा मिच्छभावेण वा णव बंधमाणस्स विदिओ भुजगारो। सम्मामिच्छादिट्ठिस्स छ बंधमाणस्स मिच्छभावेण णव बंधमाणस्स वा भुज-गारो। मिच्छादिट्ठिस्स णव बंधमाणस्स सम्मामिच्छत्त-असंजद-देसविरद-अप्पमत्तसंजदभावेण छ बंधमाणस्स इक्को अप्पदरो। छ बंधमाणो अपुव्वकरणो चत्तारि बंधदि त्ति विदिओ अप्पदरो। तिण्णि अवट्ठिदाणि।

बावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच।
चदु तिग दुगं च एगं बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥५०॥

मोहणीयस्स दस ट्ठाणाणि। मिच्छत्त सोलस कसाय इत्थी-णवुंसग-पुरिसवेदाणमेक्कदरं, हस्स-रइ अरइ-सोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदासिं बावीसपगडीणं बंधमाणस्स एकं ठाणं। तिण्णि वेद-भंगा दो-जुयलभंगेहिं गुणिदा छ भंगा बावीसस्स। एदाओ चेव मिच्छत्त-णवुंसयवज्जाओ एक्कवीसपयडीओ बंधमाणस्स सासणस्स विदियट्ठाणं। इत्थीपुरिस दो भंगा दो दोजुयल-दोभंगेहिं गुणिया चत्तारि इक्कवीसस्स। एदाओ चेव पगडीओ अणंताणुबंधि-इत्थी-वज्जाओ सत्तरसपगडीओ बंधमाणस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा तदियठाणं। जुयल-भंगा दो चेव सत्तारसस्स। एयाओ चेव अपच्चक्खाणावरणचउक्क-वज्जाओ तेरस पगडीओ बंधमाणस्स देसविरदस्स चउत्थट्ठाणं। जुयल-भंगा दो चेव। पच्चक्खाणावरणचउक्क-वज्जाओ णव पगडीओ बंधमाणस्स पमत्तापमत्त-अपुव्वकरणस्स पंचमट्ठाणं। जुयल-भंगा दो चेव। णवरि अपुव्वकरण-अप्पमत्त अरदि-सोगाणि ण बंधंति। पुरिसवेद-चउसंजलणाणि घेत्तूण पंच। पुरिसवेद-वज्ज चउ। कोधसंजलण-वज्ज तिण्णि। माणसंजलण-वज्ज दोण्णि। मायासंजलणं इक्कं। एदाणि पंच ठाणाणि अणियट्टि-अद्धाए पंचसु भागेसु जहाकमेण हुंति। भंगो इक्केक्को चेव। दोप्पहुदि जाव बावीस त्ति णव भुजगारा ९। बावीस-बंधगो इक्कवीस-बंधगो ण होदि त्ति अट्ठ अप्पदरगाणि ८। दस अवट्ठिदाणि १०।

एक्कं च दो व तिण्णि य चत्तारि पंचेव दो अंका।
इगिवीसादेगंता भुजगारा वीस मोहस्स (२०) ॥५१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिअ दोण्णि छक्कक्क वावीस [ ]
सत्तरसादिय दो य इक्कारस समासदो हुंति मोहस्स (११) ॥५२॥

णामस्स य अट्ठ ठाणाणि—

तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठवीसमुगुतीसं ।
तीसेक्कतीसमेयं बंधट्ठाणाणि णामस्स ॥५३॥
इगि तिण्णि पंच-पंच य बंधट्ठाणाणि जाण णामस्स ।
णिरयगइ-तिरिय-मणुया देवगई संजुदा हुंति ॥५४॥
अट्ठावीसं णिरए तेवीसं [पंच-] वीस छव्वीसं ।
उणतीसं तीसं [च हि] तिरियगईसंजुदा पंच ॥५५॥
पणुवीसं उगुतीसं तीसं च य तिण्णि हुंति मणुसगई ।
इगितीसादेगुण अट्ठावीसेक्कगं च देवेसु ॥५६॥

णिरयगइसंजुत्तं एगट्ठाणं । तं जहा—णिरयगइ पंचिंदियजादि वेउव्विय तेजा कम्मइय-सरीर हुंडसंठाण वेउव्वियसरीर अंगोवंग वण्ण गंध रस फास णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुग-लहुग उवघाद परघाद उस्सास अप्पसत्थविहायगइ तस बादर पज्जत्त पत्तेयसरीर थिर असुभग दुब्भग दुस्सर अणादिज्ज अजसकित्ती अ णिमिणणामाओ अट्ठवीस पगडीओ बंधमाणस्स कम्म-भूमि-कम्मभूमिपडिभागी सण्णी असण्णी पंचिंदिय तिरिक्ख पज्जत्त-कम्मभूमिमणुसपज्जत्तमिच्छा-दिट्ठिस्स एगठाणपदस्स भंगो एक्को ।

तिरिक्खगइसंजुत्ताणि पंच ट्ठाणाणि । तत्थ पढमाए तीसं ठाणं । तं जहा—तिरिक्खगइ पंचिंदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइगसरीर छ संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीर अंगोवंग छ-संघडणाणमेक्कदरं वण्ण गंध रस फास तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वो अगुरुगलहुग उवघाद पर-घाद उस्सास उज्जोव पसत्थापसत्थविहायगदीणमेक्कदरं तस बादर पज्जत्त पत्तेगसरीर थिरा-थिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं आदिज्ज-अणादिज्जाणमेक्कदरं जस-अजस-कित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाणं तीसपगडीणं बंधमाणाणं भोगभूमि-भोगभूमिपडिभागी सण्णी पंचिंदियतिरिय-भोगभूमिमणुस-आणदादिदेववज्जाण मिच्छादिट्ठीणं एदं ठाणं संठाण-छब्भंगा संघडण-छब्भंगेहिं गुणिया ३६ । ते चेव विहायगदि-दोभंगेहिं गुणिया ७२ । ते चेव थिराथिर-दोभंगेहिं गुणिया १४४ । ते चेव सुभासुभ-दोभंगेहिं गुणिया २८८ । ते चेव सुभग-दुभग-दोभंगेहिं गुणिया ५७६ । ते चेव सुस्सर-दुस्सर दोभंगेहिं गुणिया ११५२ । ते चेव आदेज्ज-अणादिज्जदोभंगेहिं गुणिया २३०४ । ते चेव जसकित्ति-अजसकित्तीणं दोभंगेहिं गुणिदा ४६०८ ।

एवं विदियतीसाए ठाणं । णवरि हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्टा सरीरसंघडणं च णत्थि । असंखिज्जवस्साउगतिरिक्ख-मणुस्साणदादिदेव वज्ज सासणसम्मादिट्ठीणं विदियतीसं । एदस्स भंगा ण गहिया, पुव्वुत्तभंगेसु पुणरुत्त त्ति ।

तदियतीसाए ठाणं तं जहा—तिरिक्खगइ बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियजादीणं इक्कदरं ओरालिय तेजा कम्मइगसरीर हुंडसंठाण ओरालियसरीर-अंगोवंग असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडण-वण्ण गंध रस फास तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उस्सास उज्जोव अप्पसत्थविहायगइ तस बादर पज्जत्त पत्तेगसरीर थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं दुभग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुस्सर अणादिज्ज जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ तीसं पगडीओ बंधमाणस्स असंखिज्जवस्साउग वज्ज तिरिक्ख-मणुस्समिच्छादिट्ठिस्स । एवं तदिय तीसं तिण्णि जादि-भंगा थिराथिर-दो भंगेहिं गुणिया ६ । ते चेव सुभासुभ-दोभंगेहिं गुणिया १२ । ते चेव जस-अजसकित्ति-दोभंगेहिं गुणिया ।।२४।।

जहा पढम-विदिय-तदियतीसं, तहा पढम-विदिय एगुणतीसं । णवरि उज्जोववज्ज ।··· ·········४६३२ ।

तिरिक्खगइ एइंदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर हुंडसंठाण वण्ण गंध रस फास तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी य अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उस्सास आदावुज्जोवाणमेक्कदरं थावर बादर पज्जत्त पत्तेगसरीर थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं दुभग अणादिज्ज जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ छव्वीसपगडीओ बंधमाणस्स असंखिज्जवस्साउगतिरिक्ख-मणुस-सव्वणेरइय-सणक्कुमारादिदेववज्जमिच्छादिट्ठिस्स । एदं छव्वीसं ठाणं आदावुज्जोव-दोभंगा थिराथिर-दोभंगेहिं गुणिया ४ । ते चेव सुभासुभ-दोभंगेहिं गुणिया ८ । ते चेव जस-अजसकित्ति-दोभंगेहिं गुणिया १६ ।

तिरिक्खगइ एइंदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर हुंडसंठाण वण्ण गंध रस फास तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उस्सास थावर बादर-सुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्त पत्तेग-साहारणसरीराणमेक्कदरं थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं दुभग अणादिज्ज जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाणं पणुवीसं पगडीणं बंधगा ते चेव, जे छव्वीसपगडीणं बंधगा हुंति । णवरि सुहुम-साहारणाणि भवणादि-ईसाणंता देवा सामी ण होंति । जसकित्ती णिरुंभिऊण थिराथिर-दो भंगा सुभासुभदो-भंगेहि गुणिया ४ । अजसकित्ती णिरुंभिऊण बादर-सुहुमदोभंगा पत्तेग-साहारण-दोभंगेहिं गुणिया ४ । ते चेव थिराथिर-दोभंगेहिं गुणिया ८ । ते चेव सुभासुभ-दोभंगेहिं गुणिया १६ । एदे अजसकित्ती सोलस पुव्वुत्त जसकित्ती चत्तारि सहिदा वीसा पढमपणुवीसभंगा हुंति २० ।

तिरिक्खिगइ वेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियजादीणमेक्कदरं ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर हुंडसंठाणं ओरालियसरीरअंगोवंग असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडण वण्ण गंध रस फास तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद तस बादर पज्जत्त पत्तेयसरीर अथिर असुभ दुभग अणादिज्ज अजसकित्ती णिमिणणामाओ पणुवीसं पयडीओ बंधमाणस्स असंखेज्जवस्सा-उग वज्ज तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिस्स विदियपणुवीसं ठाणं । एयस्स चत्तारि जाइ-भंगा ४ ।

तिरिक्खगई एइंदियजाई ओरालिय तेजा कम्मइगसरीर हुंडसंठाण वण्ण गंध रस फास तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद थावर बादर-सुहुमाणमेक्कदरं अपज्जत्त पत्तेग साधारणसरीराणमेक्कदरं अथिर असुभ दुभग अणादिज्ज अजसकित्ती निमिणणामाओ तेवीसं पग-डीओ बंधमाणस्स असंखेज्जवस्साउग वज्ज तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिस्स तेवीसं ठाणं । बादर-सुहुमदोभंगा पत्तेग-साधारणदोभंगेहिं गुणिया तिरिक्खगइसंजुत्तसव्वभंगा एत्तिया हुंति ६३०८ ।

मणुसगइसंजुत्ताणि तिण्णि ठाणाणि । मणुसगइ पंचिंदियजादि ओरालिय तेजा कम्म-इयसरीर समचउरसरीरसंठाण ओरालियसरीरंगोवंग वज्जरिसभवइरणारायसरीरसंघडण वण्ण गंध रस फास मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद परघाद उस्सास पसत्थविहायगइ तस बादरपज्जत्तपत्तेगसरीर थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं सुभग सुस्सर आदिज्ज जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिण तित्थयरणामाओ तीसपयडीओ बंधमाणस्स चउत्थादिहेट्ठिम-पुढवी-भवणवासि-वाणविंतर-जोदिसिय वज्ज देव-णेरइयअसंजदसम्मादिट्ठिस्स तीस ठाणं । थिराथिर-दो भंगा सुभासुभदोभंगेहिं गुणिया ४ । ते चेव जस-अजसकित्ती-दोभंगेहिं गुणिया ८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसगइ पंचिंदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर छसंठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीर-अंगोवंग छसंघडणाणमेक्कदरं वण्णादिचदुक्कं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुगादिचदुक्कं पसत्थ-[अप्पसत्थ-]विहायगदीणमेक्कदरं तस बादर पज्जत्त-पत्तेगसरीर थिराथिराणमेक्कदरं सुभा-सुभाणमेक्कदरं सुभग-दुभगाणमेक्कदरं सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं आदिज्ज-अणादिज्जाणमेक्कदरं जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ एगुणतीसपगडीओ बंधमाणस्स सत्तामपुढवीणेरइय तेउ वाउ असंखेज्जवस्साउगं वज्ज मिच्छादिट्ठिस्स पढमएगुणतीसठाणं। एदस्स वि भंगा तिरिक्खगइसंजुत्त-पढमएगुणतीसठाणं भंगा चेव ४६०८।

एवं विदियं एगुणतीसठाणं पि। णवरि हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं च वज्ज सासणसम्मादिट्ठिस्स विदियएगुणतीसठाणं। वियप्पा पुणरुत्ता त्ति ण गहिया।

मणुसगई पंचिंदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइगसरीर समचदुरसरीरसंठाण ओरालिय-सरीरअंगोवंगं वज्जरिसहवइरणारायसरीरसंघडणं वण्णादिचदुक्कं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी य अगुरुगलहुगादिचदुक्कं पसत्थविहायगइ तस बादर पज्जत्त पत्तेगसरीर थिराथिराणमेक्कदरं सुभा-सुभाणमेक्कदरं सुभग सुस्सर आदिज्ज जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ एगुणतीसपग-डीओ बंधमाणस्स देव-णेरइयसम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिस्स तदियएगुणतीसठाणं। एदस्स भंगा पुणरुत्त त्ति ण गहिया।

मणुसगइ पंचिंदियजादि ओरालिय तेजा कम्मइयसरीर हुंडसंठाण ओरालियसरीरअंगोवंग असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं वण्णादिचदुक्कं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुग उवघाद तस बादर पज्जत्त पत्तेगसरीर अथिर असुभ दुभग अणादिज्ज अजसकित्ती णिमिणणामाओ पणुवीस पगडीओ बंधमाणस्स तेउ-वाउ असंखेज्जवस्साउगं वज्ज तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिस्स पणुवीसं ठाणं। एदस्स इक्को चेव भंगो १।

मणुसगइसंजुत्ताण सव्वभंगा एत्तिया ४६१७।

देवगइसंजुत्ताणि पंच ठाणाणि। देवगइ पंचिंदियजादि वेउव्वियाहारतेजाकम्मइय[सरीर] समचउरससरीरसंठाणं वेउव्विय-आहारसरीरंगोवंगा वण्णचदुक्कं देवगइपाओग्गाणुपुव्वी अगुरुग-लहुगादिचदुक्कं पसत्थविहायगइ तस बादर पज्जत्त पत्तेयसरीरा थिर सुभ सुभग सुस्सर आदिज्ज जसकित्ती णिमिण-तित्थयरणामाओ[इ-]क्कत्तीसपयडीओ अप्पमत्तासंजदा अपुव्वकरणद्धाए सत्त-छभागगया अट्ठाणं [य ठाणं] बंधंति। एवं एक्कत्तीसा अट्ठाण [य ठाणे] इक्को भंगो १। एवं चेव तीसाए ठाणं पि। णवरि तित्थयरवज्जं। एदस्स वि एक्को चेव भंगो १।

पढमए उणतीसाए ठाणं जहा तहा एक्कत्तीसठाणं णायव्वं। णवरि[आहार-]आहारसरीरंगो-वंग वज्ज। एवं विदिए एगुणतीसाए ठाणं। णवरि थिराथिराणमेक्कदरं सुभासुभाणमेक्कदरं जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं भाणियव्वं। सामिणो कम्मभूमिमणुस-असंजद-देस-विरद-पमत्तसंजदा हुंति। थिराथिरा दोभंगा सुभासुभ-दोभंगेहिं गुणिया ४। ते चेव जस-अजसकित्तीण दोभंगेहिं गुणिया ८। पढम-एगुणतीसवियप्पा एत्थेव पुणरुत्त त्ति ण गहिया।

पढम-अट्ठावीसा अ ट्ठाणं जहा पढम-एगुणतीसा अ ठाणं तहा णायव्वं। णवरि तित्थयरं वज्ज। विदिय-अट्ठावीसा अ ट्ठाणं जहा विदिय-एगुणतीस ठाणं तहा णायव्वं। णवरि तित्थयरं वज्ज। सामिणो वि य सण्णिपंचिंदिय-असण्णिपंचिंदिय-पज्जत्तमिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजद-तिरिक्ख-मणुस्सा पमत्तसंजदा य हुंति। देवगइ-संजुत्तसव्वभंगा अट्ठारस १८।

एक्कं ठाणं अगदिसंजुत्तं जसकित्ती तम्हा सामिणो अपुव्वकरणद्धाए उवरिम-सत्तमभागगया जाव सुहुमसंपराइया त्ति। एदस्स भंगो इक्को चेव १। सव्वभंगा मेलिया एत्तिया हुंति १३९४५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्हि जम्हि असंखिज्जवस्साउग त्ति भणिया, तम्हि तम्हि भोगभूमिपडिभागियतिरिक्ख-भोगभूमिमणुसा च घेत्तव्वो। सेसतिरिक्ख-मणुससंखेज्जवस्साउगं परघाद उस्सास विहायगइ सुस्सरणामाणि अपज्जत्तेण सह बंधं णागच्छंति।

पुव्वुत्तभंगा[णं]संखपरूवणा एस गाहा—

सव्वे वि पुव्वभंगा उवरिमभंगेसु इक्कमेक्केसु।
मेलंति त्ति य कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखा ॥११॥

तेवीसं पणुवीसं [छव्वीसं] अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं इक्कत्तीसं इक्कं एदाणि णामस्स अट्ठ ठाणाणि। ओदरमाणेण अपुव्वुवसामगो एक्कं बंधंतो एक्कत्तीसं वा तीसं वा एगूणतीसं वा अट्ठावीसं वा बंधंति त्ति चत्तारि भुजगारा ४। तेवीसं बंधमाणो पंचवीस बंधइ त्ति एक्को भुजगारो। पंचवीसं बंधमाणो छव्वीसं बंधइ त्ति विदिओ भुजगारो २। एवं जाव एक्कत्तीस त्ति ताव जहासंभवेण भुजगारो घेत्तव्वो। एवं भुजगारट्ठाणाणि छह्। अपुव्वकरणो अट्ठावीसं वा एगूणतीसं वा तीसं वा एक्कत्तीसं वा बंधमाणो इक्को बंधइ त्ति अप्पदर इक्कत्तीसं बंधमाणो देवेसुप्पण्णो एगूणतीसं बंधइ त्ति अप्पदरो। इक्कत्तीसं बंधमाणो पमत्तभावेण एगूणतीसं बंधइ त्ति तीसमादिं काऊण जाव तेवीसं जहासंभवेण अप्पदरा घेत्तव्वा। एवं सत्त अप्पदरट्ठाणाणि। उभयं अट्ठ ठाणाणि।

इगि दुग दुगं च तिय चदु पणयं तीसादि तेवीस ठाणे।
एयाई चत्तारि दु भुजगारा हुंति णामस्स (११) ॥५७॥
तिय छक्क पंच चदु दुग एगं इगितीस आइ ठाणेसु।
पणुवीसंते जाणसु अप्पदरा हुंति णामस्स ॥५८॥

सेसेसु पंचसु कम्मसु एक्कदरट्ठाणं ति कहं? पंच णाणावरणीयं पंच अंतराइयाणि सरिसाणि य गच्छंति बंधमिदि तेसिं भुजगार-अप्पदरगाणि णत्थि। अवट्ठिओ चेव। सादासादाण अण्णदरमिदि, उच्चाणिच्चागोदाणं अण्णदरं बंधइ त्ति एदेसिं अप्पदर-भुजगारा णत्थि। अवट्ठिदो चेव। आउगमेक्कं बंधंतो अण्णाउगाणि ण बंधइ त्ति भुजगार-अप्पदरं णत्थि। अवट्ठिओ चेव। वेदणीयवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं अबंधादो बंधदि त्ति [अ-] वत्तव्वो बंधो, तक्काले भुजगाराप्पदरावट्ठिओ त्ति ण वुच्चइ त्ति।

एदाहिं दोहिं गाहाहिं मूलुत्तरपगडीसु पगडिट्ठाण-भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदाणि चत्तारि अणिओगद्दाराणि वुत्ताणि।

सव्वासिं पगडीणं मिच्छादिट्ठी दु बंधगो भणिदो।
तित्थयराहारदुगं मुत्तूण य सेसपगडीणं ॥५९॥
सम्मत्तगुणणिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं।
बज्झंति सेसियाओ मिच्छत्तादीहिं हेदूहिं ॥६०॥

पंच णाणावरण णव दंसणावरण सादासादं मिच्छत्त सोलस कसाय णव णोकसाय चत्तारि आउगाणि चत्तारि गदि पंच जादि पंच सरीर छ संठाण तिण्णि अंगोवंग छ संघडणं वण्ण गंध रस फास चत्तारि आणुपुव्वी अगुरुगलहुगादि चत्तारि आदाउज्जोव दो विहायगइ तस थावर बादर सुहुम पज्जत्तापज्जत्त पत्तेगसाधारणसरीर थिराथिर सुभासुभ सुभग दुभग सुस्सर दुस्सर आदेज्ज अणादिज्ज अजस-जसकित्ती णिमिण तित्थयर उच्चणिच्चगोदं पंच अंतराइयपगडीओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदाओ वीसुत्तरसदबंधपगडी णाम वुच्चंति । सव्वीसं पगडीणं आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग-तित्थयरणामाओ वज्ज सेसबंधपगडीओ मिच्छादिट्ठी बंधइ ११७ ।

सोलस मिच्छत्तंता आसादंता य होइ पणुवीसं ।
तित्थयराउगसेसा अविरद-अंता दु मिस्सस्स ॥६१॥

मिच्छत्त-णवुंसगवेद णिरयाउ णिरयगइ एइंदिय बीइंदिय तीइंदिय चदुरिंदियजादि हुंड-संठाणं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडण णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी आदाव थावर सुहुम अपज्जत्तसाधा-रणसरीर [एदाओ] सोलस पगडीवज्जियाओ इक्कुत्तरसयपगडीओ सासणसम्मादिट्ठिणो[ट्ठी] बंधइ १०१ । थीणगिद्धीतिग अणंताणुबंधीचदुक्क इत्थिवेद तिरियाउग तिरिक्खगइ समचउर-हुंडवज्ज चउसंठाण वज्जरिसभवइरणाराय-असंपत्तसेवट्टा वज्ज चउसंघडण तिरिक्खगइपाओग्गाणु-पुव्वी उज्जोय अप्पसत्थविहायगइ दुभग दुस्सर अणादिज्ज णिच्चगोदं[एदाओ] पणुवीसपगडी वज्जियाओ एगुत्तरसदपगडीओ तित्थयरसहियाओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधइ ७७ । मणुस-देवाउग-तित्थयरवज्जियाओ पगडीओ सत्तसत्तरि मिच्छादिट्ठी बंधइ ७४ ।

अविरद-अंता दु दसं विरदाविरदंतिया उ चत्तारि ।
छच्चेव पमत्तंता इक्का पुण अप्पमत्तंता ॥६२॥

अपच्चक्खाणावरणचदुक्क मणुसाउग मणुसगइ ओरा-[लियसरीर-ओरा-]लियसरीरअंगोवंगं वज्जरिसभ [वइरणारायसंघडणं] मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी [एदाओ] दसपगडिवज्ज सत्तत्तरि पगडीओ संजदासंजदो बंधइ ६७ । पच्चक्खाणावरणचउक्कं वज्ज सत्तसट्ठिपगडीओ पमत्तसंजदो बंधइ ६३ । असाद अरदि सोग अथिर असुभ अजसकित्ती छ पगडीवज्जाओ आहारदुग-सहियाओ तेसट्ठि पगडीओ अपमत्तो बंधइ ५९ । देवाउग वज्ज एगूणसट्ठि पगडीओ अपुव्व-करणो बंधइ पढम-सत्तमभागम्मि ५८ ।

दो तीसं चत्तारि य भागा भागेसु संखसण्णाओ ।
चरिमेसु जहासंखा अपुव्वकरणंतिया हुंति ॥६३॥

णिद्दा-पयलाओ वज्ज अट्ठवण्णपगडीओ विदियभागपढमसमयप्पहुडि छट्ठ भाग जाव चरमसमओ त्ति अपुव्वकरणो बंधइ ५६ । देवगइ पंचिंदियजाइ वेउव्विय आहार तेज कम्मइय-सरीर समचउरसरीरसंठाण [वेउव्विय-] वेउव्वियसरीरंगोवंग वण्णाइचउक्कं देवगइपाओग्गाणु-पुव्वी अगुरुगलहुगादिचउक्क पसत्थविहायगइ तस बादर पज्जत्त पत्तेयसरीर थिर सुह सुहग सुस्सर आदिज्ज णिमिण तित्थयरं तीस पगडीओ वज्ज छप्पण्ण पगडीओ उवरिमसत्त-पढम-समयप्पहुडि जाव चरमसमओ त्ति अपुव्वकरणो बंधइ २६ । हस्स रइ भय दुगुंछा चत्तारि पगडीओ वज्ज छव्वीस पगडीओ अणियट्टिअद्धाए पढमसमयप्पहुड संखिज्जभागेसु बंधइ २२ ।

संखेज्जदिमे सेसे आढत्ता बादरस्स चरमंतो ।
पंचसु इक्केक्कंता सुहुमंता सोलसा हुंति ॥६४॥

तओ [अंतोमुहुत्तं पुरिसवेदं वज्ज बावीस पगडीओ बंधइ २१ । तओ अंतोमुहुत्तं कोहसंज-लणं वज्ज इगिवीस पगडीओ बंधइ २० । तओ] अंतोमुहुत्तं माणसंजलणं वज्ज वीसं पगडीओ बंधइ १९ । तओ अणियट्टिचरमसमओ त्ति मायसंजलणं वज्ज एगुणवीसं पगडीओ बंधइ १८ । लोभसंजलणं वज्ज अट्ठारसपगडीओ सुहुमसंपराइगो बंधइ १७ । पंच णाणावरण चउ दंसणा-वरण जसकित्ती उच्चगोद पंच अंतराइय सोलस पगडीओ वज्ज सत्तरस पगडीओ उवसंत-खीण-सजोगिकेवलिणो बंधंति, सादं बंधंति त्ति वुत्तं होदि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादंता जोगंता एत्तो पाएण णत्थि बंधो त्ति ।
णायव्वो पगडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥६५॥
गदि-आदिएसु एवं तप्पाओग्गाणमोघसिद्धाणं ।
सामित्तं णेयव्वं पगडीणं ठाणमासेज्ज ॥६६॥

देवाउग णिरयाउग णिरयगइ देवगइ एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चदुरिंदियजादि वेउव्विय-आहारसरीर वेउव्विय-आहारसरीरंगोवंग णिरयगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी आदाव थावर सुहुम अपज्जत्त साधारण एयाओ एगूणवीस पगडीओ वज्जाओ वीसुत्तरसदपगडीओ णेरइया बंधंति १०१ । तित्थयरवज्ज एगुत्तरसदपगडीणं तं णेरइयमिच्छादिट्ठी बंधंति १०० । एदाओ चेव मिच्छत्त णउंसगवेद हुंडसंठाणं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणं एयाओ चत्तारि पगडीओ वज्ज णेरइय-सासणो बंधेइ ९६ । एदाओ चेव ओघवुत्त-पणुवीसपगडी वज्ज तित्थयरसहिय छण्णउयपगडीओ सम्मा-मिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठिणो बंधंति । णवरि सम्मामिच्छादिट्ठिणो मणुसाउग-तित्थयरा ण बंधंति ७० । सम्मामिच्छादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ७२ । एवं पढमादि जाव तदिया पुढवि त्ति । एवं चउत्थादि जाव छट्ठी पुढवि त्ति । णवरि तित्थयर असंजदो ण बंधेइ मिच्छादिट्ठी सासणो १००।९६।७०।७१। एवं चेव सत्तमाए पुढवीए । णवरि मणुसाउगं मणुसगइपाओग्गाणु-पुव्वी उच्चागोदं मिच्छादिट्ठी णो बंधंति । असंजदसम्मादिट्ठी मणुसाउगं ण बंधंति मिच्छादिट्ठी सामिणो ९६।९२।६७।६७ ।

आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग तित्थयर वज्ज वीसुत्तरसदपगडीओ तिरिक्खा बंधंति ११७ । मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजद-देसविरदेसु अप्पप्पणो बज्झमाण-पगडीओ ओघं व णेयव्वा । एवं पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणीसु ११७।१०१।७४।७६।६६। एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त १०९। तेसु णवरि णिरयाउग देवाउग णिरयगइ देवगइ वेउव्वियसरीर वेउव्वियसरीरअंगोवंग णिरयगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी अट्ठ पगडीणं बंधो णत्थि । तेसु मिच्छादिट्ठिगुणट्ठाणमेक्कं चेव ।

एवं मणुसअपज्जत्तेसु वि । मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपगडीओ ओघं व णेय-व्वाओ । णवरि मणुसिणीसु तित्थयरं अपुव्वकरणो खवगो ण बंधइ ।

जहा णेरइयाणं सव्वपगडीओ वुत्ताओ, तहा देवाणं पि । णवरि एइंदिय आदाव थावर-णाम पगडीओ बंधंति । एवं सोहम्मीसाणेसु । एवं भवणवासिय-वाणविंतर-जोदिसियदेव-देवीसु, सोधम्मीसाणदेवेसु च । णवरि तित्थयरबंधो णत्थि । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारेसु पढमपुढवी भोवं [व णेयव्वं] । एवं आणदादि जाव उवरिमगेवज्जेसु । णवरि तिरिक्खाउग तिरिक्ख [गइ] तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी उज्जोव-बंधो णत्थि । अणुदिस-अणुत्तरदेवा असंजदा सम्मादि-ट्ठिणो चेव । जाओ पगडीओ देव-असंजदसम्मादिट्ठिणो बंधंति ताओ चेव बंधंति ।

तित्थयरं कम्म मणुस्सेसु पारंभेऊण सोधम्मादि-उप्पण्णा बंधंति । मणुसा पुव्वाउगबंधा असंजदसम्मादिट्ठिणो तित्थयरं बंधमाणो पढमपुढविउप्पण्णा बंधंति । मणुसअसंजदसम्मादिट्ठिणो पुव्वाउगं 'बंधंति [बद्धा त्ति] तित्थयरं बंधमाणो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तकालेण कालं काऊण विदिय-तदिय-पुढवीसुप्पण्णा अंतोमुहुत्तकालेण पज्जत्तीहिं अ पज्जत्तगदा होऊण सम्मत्तं घेत्तूण तित्थयरं बंधंति । तित्थयर-संत कम्मिआ सण्णत्थ [अण्णत्थ] ण उप्पज्जंति ।

इंदियादिसु एवं णादव्वं । एदाहिं अट्ठागाहाहिं एगेगुत्तरपगडीसामित्ताणिओगद्दाराणि वुत्ताणि । सामण्णेण य भणियं । विसेसो एत्थ कहिस्सामो ।

आदेसेण गइआणुवादेण णिरयगईए णेरइया कित्तियाओ पगडीओ बंधंति ? एउत्तरसयं । तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपगडीण मज्झे णिरयाउय देवाउय णिरयगइ देवगइ

एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियजादि वेउव्विय-आहारसरीरं वेउव्विय-आहार-सरीरंगोवंग णिरयगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी आदाव थावर सुहुम अप्पज्जत्त साधारण एयाओ एगूणवीस पयडीओ अवणीय एगुत्तरसयं होइ। तं च एयं १०१। एत्थेव तित्थयरणामं अवणीय सयं होइ। तं णेरइयमिच्छादिट्ठी बंधंति। तस्स पमाणयं एयं १००। एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेय हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्टसंघडण एदाओ चत्तारि पगडीओ अवणीदे सेसाओ छण्णउइ पगडीणं सासणसम्मादिट्ठी बंधंति ९६। एत्थ जाओ सासणसम्मादिट्ठिस्स पणुवीस पयडीओ वुच्छिण्णाओ ताओ अवणीय पुणरवि मणुसाउअं अवणीय सेसाओ सत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी बंधंति ७०। एत्थेय मणुसाउय-तित्थयरणामं च पक्खित्ते बाहत्तरि पयडीओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति ७२। एवं चेव पढमाए पुढवीए विदियाए तदियाए चदुसु वि गुणट्ठाणेसु हुंति। पुव्वुत्त-एउत्तरसयपयडीणं मज्झे तित्थयरं णाम अवणीय सेस सयं चउत्थपुढविणेरइया बंधंति १००। मिच्छादिट्ठी वि एत्तिया चेव बंधंति १००। एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेय हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्टसंघडण एदाओ चत्तारि पयडीओ अवणीदे सेसाओ छण्णवइपगडीओ सासणसम्मादिट्ठी बंधंति ९६। एत्थ सासण-वुच्छिण्णपयडीओ पणुवीस, मणुसाउअं च अवणीय सेसाओ सत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी बंधंति ७०। एत्थेव मणुसाउअं तप्पक्खित्ते एयहत्तरिपयडी असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति। एवं चेव पंचमीए छट्ठीए पुढवीए चदुसु वि गुणट्ठाणेसु होइ। चउत्थपुढवीए णेरइयबंधपयडीणं मज्झे मणुसाउयमवणीय सेसाओ णवणउइयपयडीओ सत्तमपुढविणेरइया बंधंति। तं च एवं ९९। एत्थेव मणुयदुगं उच्चगोदं अवणीय सेसाओ छण्णउयपयडीओ मिच्छादिट्ठी बंधंति ९६। एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेद हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्टसंघडण तिरियाउं अवणीदे सेसाओ एयाणउइपयडीओ सासणसम्मादिट्ठी बंधंति। एत्थ सासणसम्मादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीओ तिरियाउं मोत्तूण चउवीसं अवणिऊण मणुसदुग उच्चगोदं च पक्खित्ते सत्तरि पगडीओ मिच्छादिट्ठी बंधंति ७०। असंजदसम्मादिट्ठि त्ति एत्तियाओ चेव बंधंति ७०।

एवं णिरयगई समत्ता।

तिरियगईए सामण्णतिरिया केत्तियाओ पयडाओ बंधंति? सत्तरहुत्तरसयं। तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे–वीसुत्तरसयबंधपयडीणं मज्झे तित्थयर-आहारदुगं अवणीय सत्तर [हु-] सयं च होइ। तं च एया ११७। सामण्णतिरियमिच्छादिट्ठी एतियाओ चेव बंधंति ११७। एत्थ मिच्छादिट्ठी-वुच्छिण्णपयडीओ सोलस अवणीय सेसाओ एउत्तरसयं सासणमिच्छा-[सम्मा-]दिट्ठी बंधंति। तं च एयं १०१। एत्थ सासणसम्मादिट्ठिवुच्छिण्ण-पणुवीसपयडीओ अवणीय मणुयदेवाउगाणि मणुयगदिपाओग्गाणुपुव्वी ओरालियसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग आदिम संघडणमवणीय सेसउणहत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी बंधंति ६९। एत्थ देवाउग पक्खित्ते असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति ७०। एत्थेव विदियकसायचदुक्कं अवणीय सेसाओ छावट्ठी पगडीओ संजदासंजदा बंधंति ६६। एवं चेव पंचिंदियतिरियपज्जत्त-पंचिंदियतिरियजोणिणीसु। पंचिंदियतिरियापज्जत्ता केत्तियाओ पयडीओ बंधंति? णउत्तरसयं। तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे–पुव्वुत्तसत्तरहुत्तरसयं पयडीणं मज्झे णिरयाउय-देवाउय-वेउव्वियछक्कमवणीए णवुत्तरसयं होइ। तं च एयं १०९।

एवं तिरियगदी समत्ता।

मणुयगईए सामण्णमणुया केत्तियाओ पयडीओ बंधंति? वीसुत्तरसयं १२०। आहारदुगतित्थयरेण विणा सत्तरहुत्तरसयं मिच्छादिट्ठी बंधंति। तं एदं ११७। एत्थ वुच्छिण्णमिच्छादिट्ठिपयडीओ सोलस अवणीए सेसं एगुत्तरसदं सासणसम्मादिट्ठी बंधंति १०१। एत्थ सासणसम्मादिट्ठि-वुच्छिण्णपयडीओ पंचवीसमवणिऊण देवाउ मणुयाउ मणुयगइ मणुयगइपाओग्गाणुपुव्वी ओरालियसरीर ओरालियसरीरंगोवंग आदिसंघडण अवणिदे सेसाओ एगूणहत्तरिपगडीओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामिच्छादिट्ठी बंधंति ६६। एत्थेव तित्थयर, देवाउगं च पक्खित्ते एयहत्तरि पगडीओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति ७१। एत्थेव विदियकसायचदुक्कं अवणिय सेसाओ सत्तसट्ठि पगडीओ संजदासंजदा बंधंति ६७। एत्तो पमत्तसंजदप्पहुदि जाव सजोगिकेवलि त्ति ताव ओघभंगो। जहा सामण्णमणुस्साणं भणियं, तहा चेव मणुसपज्जत्ताणं मणुसिणीणं च होइ। मणुय-अपज्जत्ताणं तिरिय-अपज्जत्तभंगो।

एवं मणुयगई समत्ता।

देवगईए सामण्णदेवा केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? चदुरुत्तरसयं। तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपयडीणं मज्झे णिरयाउग देवाउग वेउव्वियछक्क वेइंदिय तीइंदिय चदुरिंदियजाइ आहारदुग सुहम अपज्जत्त साहारण एयाओ सोलस पयडीओ अवणीए चदुरुत्तरसयं होइ। तं च एयं १०४। एत्थेव तित्थयरणाममवणीए सेसा तेउत्तरसयं मिच्छादिट्ठी बंधंति १०३। एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेय हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्टसंघडण एइंदियजादि थावर आदाव एयाओ सत्त पयडीओ अवणीय सेसाओ छण्णवइ पयडीओ सासणसम्मादिट्ठी बंधंति ९६। एत्थ सासणसम्मादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीओ मणुसाउयं च अवणीय सेसाओ सत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी बंधंति ७०। एत्थ मणुसाउगं पक्खित्ते एयहत्तरिपगडीओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति ७१।

सोहम्मीसाणकप्पेसु सामण्णदेवभंगो। सणक्कुमारप्पहुदि जाव सहस्सारकप्पवासिया देवा कित्तियाओ पयडीओ बंधंति ? एउत्तरसयं। तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे। तं जहा-सामण्णदेवपयडीणं मज्झे एइंदियजाइ थावर आदाव एयाओ तिण्णि पयडीओ अवणीय एउत्तरसयं च होइ। तं च एयं १०१। एत्थेव तित्थयरणाम अवणिए सेसं सयं च मिच्छादिट्ठी बंधइ त्ति १००। एत्थ मिच्छत्त णवुंसयवेद हुंडसंठाणमसंपत्तसेवट्टसंघडणमवणीए सेसाओ छण्णवइ पयडीओ सासणसम्मादिट्ठी बंधंति ९६। एत्थ सासणसम्मादिट्ठि-वोच्छिण्णपयडीओ पणुवीस मणुआउगं च अवणीय सेसाओ सत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी बंधंति ७०। एत्थ तित्थयर मणुसाउगं च पक्खित्ते बाहत्तरि पयडीओ हुंति, ताओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति ७२।

आणदादि जाव उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा केत्तियाओ पगडीओ बंधंति ? सत्ताणउइ। तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे। तं जहा—सामण्णदेवपगडीणं मज्झे तिरियाउगं च एइंदियजादि तिरियदुग आदाउज्जोव थावर एयाओ सत्त पयडीओ अवणीए सत्ताणउदि पयडीओ हुंति ९७। एत्थेव तित्थयरणाममवणिए सेसाओ छण्णउइ पगडीओ मिच्छादिट्ठी बंधंति ९६। एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेद हुंडसंठाणं असंपत्तसेवट्टसंघडणं एयाओ चत्तारि पगडीओ अवणीय सेसा बाणउदि-पयडीओ सासणसम्मादिट्ठी बंधंति ९२। एत्थ सासणसम्मादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीणं मज्झे तिरिया [उगं] तिरियदुगं [च] उक्खेव [पक्खेवे] एयाओ चत्तारि पयडीओ सासणवुच्छिण्ण इक्कवीस पयडीओ अवणीए सेसाओ सत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी बंधंति ७०। एत्थेव तित्थयर मणुसाउग पक्खित्ते बाहत्तरि पयडीओ हुंति। ताओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति ७२। एयाओ असंजदसम्मादिट्ठीओ अणुदिस-अणुत्तर जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासिदेवा बंधंति ७२।

एवं देवगइमग्गणा समत्ता।

इंदियमग्गणाणुवादेण जाव इगि-विगलिंदियाण तिरिय-अपज्जत्ताण भंगो। तस्स पमाणं १०९। एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय [चउरिंदिय] मिच्छादिट्ठिणो बंधंति १०९। एत्थ मिच्छादिट्ठी-वुच्छिण्णपयडीण मज्झे णिरयाउग णिरयदुगं सेसा दूणादि उस्सास (णवुत्तरसय) पयडीओ सासण-सम्मादिट्ठी बंधंति ९६। पंचिंदियाणं वेण [ओघमिव]।

एवं इंदियमग्गणा समत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-वणप्फदिकाइयादिमिच्छादिट्ठीण एइंदियमिच्छा-दिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठादि [सासणसम्मादिट्ठिभंगमिव] जाव [ ] एइंदियपगडीणं मज्झे मणुसाउगं मणुसदुगं उच्चगोदं च अवणीय सेसं पंचुत्तरसयं तेज-वाउकाइया बंधंति १०५। तसकाइयाण ओघभंगो।

एवं कायमग्गणा समत्ता।

जोगाणुवादेण चउण्हं मणजोगाणं चउण्हं वचि-[जोगाणं] ओघभंगो। ओरालियकाय-जोगस्स सामण्णमणुयभंगो। वीसुत्तरसयबंधपयडीणं मज्झे णिरय-देवाउगं णिरयदुगं आहारदुगं च अवणिए सेसा चउदसुत्तरसयं च ओरालियमिस्सकायजोगी बंधंति ११४। एत्थेव देवदुगं वेउव्विय-दुगं तित्थयरणाम अवणीय सेसणउत्तरसयं मिच्छादिट्ठी बंधंति १०९। एत्थेव णिरयाउगं णिरयदुगं मोत्तूण सेसाओ मिच्छादिट्ठि-वुच्छिण्ण-पयडीओ तेरसमवणीए पुणरवि तिरियाउगं मणुयाउगं अवणीए सेसाओ चउणउइपयडीओ सासणसम्मादिट्ठी बंधंति ९४। एत्थेव सासणसम्मादिट्ठिवोच्छि-ण्णपयडीणं मज्झे तिरियाउगं मोत्तूण सेसाओ चउवीस पगडीओ अवणिऊण देवदुगं वेउव्विय-दुगं तित्थयरणामं च पक्खित्ते पंचहत्तरि पयडीओ हुंति, ताओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति ७५। वेउव्वियकायजोगस्स सामण्णदेवभंगो १०४। सामण्णदेवपगडीणं मज्झे तिरियाउगं मणुयाउगं च अवणिय सेसा दोउत्तरसयं वेउव्वियमिस्सकायजोगी बंधंति १०२। एत्थेव तित्थयरणामं अवणीए सेस-एउत्तरसयं मिच्छादिट्ठी बंधंति १०१। एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेय हुंडसंठाणमसंपत्त-सेवट्टसंघडण एइंदियजाइ थावर आदाव एयाओ सत्त पयडीओ अवणीय सेसा चउणउदिपयडीओ सासणसम्मादिट्ठी बंधंति ९४। एत्थ सासणसम्मादिट्ठि-वुच्छिण्णपयडीणं मज्झे तिरियाउगं मोत्तूण सेसाओ चउवीस पयडीओ अवणिऊण तित्थयरणाम पक्खित्ते एगत्तरि पगडीओ असंजद-सम्मादिट्ठी बंधंति ७१।

आहारमिस्सकायजोगी तेसट्ठि (?) पगडीओ बंधंति। [आहार-] कायजोगी तेसट्ठि पयडीओ जाओ पमत्तसंजदा बंधंति ताओ तेसट्ठि पयडीओ ६३।

कम्मइयकायजोगी केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? वारहुत्तरसयं। तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसय-बंधपयडीणं मज्झे चत्तारि आउगाणि णिरयदुगं आहारदुगं अट्ठ पयडीओ अवणीए सेसं वारहुत्तरसयं कम्मइयजोगी बंधंति ११२। एत्थ देवदुगं वेउव्वियदुगं तित्थयरणाम मवणीय सेसं सत्तुत्तरसयं मिच्छादिट्ठी बंधंति १०७। एत्थ मिच्छादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीणं मज्झे णिरयाउग-णिरयदुगं तिण्णि पयडीओ मोत्तूण सेसाओ तेरस पयडीओ अवणिय सुद्धसेसाओ चउ-णउदि पयडीओ सासणसम्मादिट्ठी बंधंति ९४। एत्थ सासणसम्मादिट्ठि-वुच्छिण्णपयडीणं मज्झे तिरियाऊ मोत्तूण सेसाओ चउवीस पयडीओ अवणेऊण देवदुगं वेउव्वियदुग तित्थयरणाम पक्खित्ते पंचहत्तरि पगडीओ असंजदसम्माइट्ठी बंधंति ७५।

एवं जोगमग्गणा सम्मत्ता।

वेदाणुवादेण जाव वावीसबंधअणियट्टि ताव तिण्ह वेदाणं ओघभंगो। अवगयवेयाणं पि एगवीस-बंध-अणियट्टिप्पहुदि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघभंगो।

एवं वेदमग्गणा समत्ता।

कसायाणुवादेण सामण्णकसाई केत्तियाओ पगडीओ बंधंति ? वीसुत्तरसयं १२०। कोह-कसाईणं मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव एक्कवीस बंधय-अणियट्टि ताव ओघभंगो। माणकसाईणं मिच्छा-दिट्ठिप्पहुदि-जाव वीसबंधयअणियट्टि ताव ओघभंगो। मायकसाईणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव एक्कऊणवीस-बंधय अणियट्टी ताव ओघभंगो। लोभकसाईण मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सुहुमसंप-राओ त्ति ताव ओघभंगो। अकसाईणं पि उवसंतकसाय-खीणकसाय-जोगीणं ओघभंगो।

एवं कसायमग्गणा समत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणाणुवादेण मइअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? सत्तरसुत्तरसयं। तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपयडीणं मज्झे तित्थयरं आहारदुगं अवणिऊण सत्तरससयं च होइ। तं च एयं ११७। मइ-अण्णाणी सुद-अण्णाणी विभंगणाणी मिच्छादिट्ठी एत्तियाओ चेव बंधंति ११७। एत्थ मिच्छादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीओ सोलस अवणीए सेस-एउत्तरसयं सासणसम्मादिट्ठी बंधंति १०१। मइ-सुय-ओधिणाणीणं असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुदि जाव खीणकसाओ त्ति ताव ओघभंगो। मणपज्जवणाणीणं पमत्त-संजदप्पहुइ जाव खीणकसाओ त्ति ताव ओघभंगो। केवलणाणीणं पि सजोगीण ओघभंगो।

[एवं] णाणमग्गणा समत्ता।

संजमाणुवादेण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमाण पमत्तसंजदप्पहुइ जाव अणियट्टि ओघभंगो। परिहारसुद्धि-संजदाणं पि पमत्तापमत्ताण ओघभंगो। सुहुमसंपराइयसुद्धिसंजदाणं पि सुहुम-ओघभंगो। जहाखादसंजदाणं पि उवसंतखीण-सजोगी ओघभंगो। संजमासंजमस्स ओघभंगो। असंजमस्स वि मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव असंजदसम्मादिट्ठी ओघभंगो।

एवं संजममग्गणा समत्ता।

दंसणाणुवादेण चक्खु-अचक्खुदंसणस्स मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्थि त्ति ताव ओघभंगो। ओधिदंसणस्स असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुदि जाव खीणकसाय-वीयरायछदुमत्थेत्ति ताव ओघभंगो। केवलदंसणस्स सजोगिओघभंगो।

[एवं] दंसणमग्गणा समत्ता।

लेसाणुवादेण किण्ह-णील-काउलेसा केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? अट्ठारहुत्तरसयं। तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधगपयडीणं मज्झे आहारदुगं अवणीय अट्ठारहुत्तरसयं च होइ। तं च एयं ११८। एत्थ तित्थयर णाममवणीय सेससत्तारहुत्तरसया मिच्छादिट्ठी बंधंति ११७। एत्थ मिच्छादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीओ सोलस अवणीय सेसं एउत्तरसयं सासणसम्मादिट्ठी बंधंति १०१। एत्थ सासणसम्मादिट्ठिवुच्छिण्णपयडीओ देव-मणुसाउगं च अवणीय सेसाओ चउहत्तरि पयडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी बंधंति ७४। एत्थ तित्थयरणाम मणुसाउगं च पक्खित्ते सत्तहत्तरि पयडीओ हुंति। ताओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति ७७।

तेउलेसिया केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? एयारहुत्तरसयं। तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपयडीणं णिरयाउय णिरयदुअं वियलिंदियजाइतिय सुहुम साहारण अपज्जत्त एयाओ णव पयडीओ अवणीय एयारहुत्तरसयं होइ। तं च एयं १११। एत्थेव तित्थयराहारदुगमवणीय सेस-अट्ठुत्तरसयं मिच्छादिट्ठी बंधंति १०८। एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेयपयडीओ हुंडसंठाणं असंपत्तसेवट्टसंघडण एइंदियजाइ आदव थावर एयाओ सत्त पयडीओ अवणीअ सेस-एउत्तरसयं सासणसम्मादिट्ठी बंधंति १०१। संपहि सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुइ जाव अप्पमत्तासंजओ त्ति ओघभंगो।

पम्मलेसिया केत्तियाओ पगडीओ बंधंति ? अट्ठुत्तरसयं। तं कहं णज्जइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपयडीणं मज्झे णिरयाउग-[णिरयाउग-]दुगं एगिंदिय विगलिंदियजाइ आदव थावर सुहुम अपज्जत्त साधारण एयाओ वारस पयडीओ अवणीय सेसं अट्ठुत्तरसयं होइ। तं च एयं १०८। एत्थ तित्थयर-आहारदुगमवणिदे सेसपंचुत्तरसयं मिच्छादिट्ठी बंधंति १०५। एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेद हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्ट-संघडणमवणिअ सेसएगुत्तरसयं सासणसम्मादिट्ठी बंधंति १०१। संपहि सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुइ जाव अप्पमत्तासंजओ त्ति ताव ओघभंगो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुक्कलेसिया केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? चउरुत्तरसयं । तं कहं णव्वइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—वीसुत्तरसयबंधपयडीणं मज्झे णिरयाउगं तिरियाउगं णिरयदुगं तिरियदुगं इगि-विगलिंदियजाइ आदाउज्जोव थावर सुहुम अपज्जत्त साहारण एयाओ सोलह पयडीओ अवणीय चदुरुत्तरसयं होइ । तं च एयं १०४ । एत्थ तित्थयर-आहारदुगमवणीय सेसं एउत्तरसयं मिच्छादिट्ठी बंधंति १०१ । एत्थ मिच्छत्त णउंसयवेय हुंडसंठाण असंपत्तसेवट्टसंघडण एयाओ चत्तारि पयडीओ अवणीय सेसाओ सत्ताणउदिपयडीओ सासणसम्मादिट्ठी बंधंति ९७ । एत्थ सासणसम्मादिट्ठि-वुच्छिण्णपयडीणं मज्झे तिरियाउग तिरियदुग उज्जोव मोत्तूण सेसाओ एक्कवीस पयडीओ अवणि-ऊण मणुय-देवाउगे अवणीए चदुहत्तरि पयडीओ हुंति । ताओ सम्मामिच्छादिट्ठी बंधंति ७४ । एत्थ तित्थयर-मणुस-देवाउगं च पक्खित्ते सत्तहत्तरि पयडीओ हुंति । ताओ असंजदसम्मादिट्ठी बंधंति ७७ । संपहि संजदासंजदप्पहुदि जाव सजोगिकेवलि त्ति ताव ओघभंगो ।

एवं लेसामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवाएण भवसिद्धियाण ओघभंगो । अभवसिद्धियाण ओघमिच्छादिट्ठि-भंगो ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण खाइयसम्मत्तस्स असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुइ जाव सजोगिकेवलि त्ति ताव ओघभंगो । वेदयसम्मत्तस्स असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुइ जाव अप्पमत्तासंजओ त्ति ताव ओघभंगो ।

उवसमसम्मत्तस्स असंजदसम्मादिट्ठिगुणट्ठाणे केत्तियाओ पयडीओ बंधंति ? पंचहत्तरि पयडीओ । तं कहं णव्वइ त्ति वुत्ते वुच्चदे—असंजदसम्मादिट्ठि[1] सत्तहत्तरि पयडीणं मज्झे मणुय-देवाउगमवणीय पंचहत्तरि पयडीओ हुंति ७५ । एत्थ विदियकसायचउक्कं मणुयदुग ओरा-लियदुग आदिसंघडणं एयाओ अवणिय सेसाओ छावट्ठि पयडीओ संजदासंजदा बंधंति ६६ । तत्थ तदियकसायचउक्कं अवणीअ सेसाओ बासट्ठि पयडीओ पमत्तसंजदा बंधंति ६२ । एत्थ सादिदरमरदि सोग अथिर असुभ अजसकित्ती अवणिऊण आहारदुगं पक्खित्ते अट्ठावण्ण पय-डीओ हुंति । ताओ अप्पमत्तसंजदा बंधंति ५८ । संपहि अपुव्वकरणप्पहुइ जाव उवसंतकसाय-वीयरायछउमत्थु त्ति ताव ओघभंगो ।

सासणसम्मत्तस्स सासणसम्मादिट्ठि-भंगो । सम्मामिच्छत्तस्स सम्मामिच्छादिट्ठि-भंगो । मिच्छत्तस्स मिच्छादिट्ठि-भंगो ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

[सण्णियाणुवादेण] सण्णीणं ओघभंगो । असण्णीणं ओघमिच्छादिट्ठि-भंगो । असण्णि-सासणसम्मादिट्ठीणं सासण-भंगो । णेव सण्णी णेवासण्णीण सजोगकेवलीण ओघभंगो ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

आहाराणुवादेण आहारीणमोघभंगो । अणाहारीण कम्मइयकायजोगभंगो ।

[एवं आहारमग्गणा समत्ता ।]

जह जिणवरेहिं कहियं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
आयरियकमेण पुणो जह गंगणइ-पवाहुव्व ॥१२॥

तह पउमणंदिमुणिणा रइयं भवियाण बोहणट्ठाए ।
ओघेणादेसेण य पयडीणं बंधसामित्तं ॥१३॥

---

१. अत्र ओघभंगो इत्यधिकः पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छउमत्थयाय रइयं जं इत्थ हविज्ज पवयणविरुद्धं ।
तं पवयणाइकुसला सोहंतु मुणी पयत्तेण ॥१४॥

एवं गदिआदिबंधसामित्तं समत्तं ।

तिण्हं खलु पढमाणं उक्कस्सं अंतराइयस्सेव ।
तीसं कोडाकोडी सागरणामाणमेव ट्ठिदी ॥६७॥
मोहस्स सत्तरिं खलु वीसं णामस्स चेव गोदस्स ।
तेतीसमाउगाणं उवमाऊ सागराणं च ॥६८॥

उक्तं च—

योजनं विस्तरं पल्यं यस्य योजनमुच्छ्रूतम् ।
आसप्ताहःप्ररूढानां केशानां तु सुपूरितम् ॥१५॥
ततो वर्षशते पूर्णे एकैके केशमुद्धृते ।
क्षीयते येन कालेन तत्पल्योपममुच्यते ॥१६॥
कोटकोटी दश एषां पल्यानां सागरोपमम् ।
सागरोपमकोटीनां दशकोट्यावसर्पिणी ॥१७॥

अद्धाच्छेदो दुविधो—मूलपयडि-अद्धाच्छेदो उत्तरपयडि-अद्धाच्छेदो चेदि । तत्थ मूलपयडि-अद्धाच्छेदो दुविहो—जहण्णओ उक्कोसो च । [तत्थ] उक्कस्सए [पयदं-] णाणावरणीय-दंसणावरणीय वेदणीय-अंतराइयाणं उक्कस्सो दु ठिदिबंधो तीस सागरोवमकोडाकोडीओ । तिण्णि वाससहस्साणि आबाधा । आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । मोहणीयस्स उक्कस्सओ दु ट्ठिदिबंधो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ । सत्तावाससहस्साणि आबाधा । आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो । आउगस्स उक्कस्सो दु ट्ठिदिबंधो तेत्तीस सागरोवमाणि । पुव्वकोडि-तिभागमाबाधा । तेतीससागरोवमाणि कम्मणिसेगो । णामा-गोदाणं उक्कस्सओ दु ट्ठिदिबंधो वीससागरोवम-कोडा-कोडीओ । दुवाससहस्साणि आबाधा । आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

ओघेण मूलपयडीणं उक्कस्सओ अद्धाच्छेदो समत्तो ।

आवरणमंतरायं पण णव पणयं असादवेदणियं ।
तीसुदधिकोडकोडी सागर-उवमाणमुक्कस्सं ॥६९॥

जो सो उत्तरपयडि-अद्धाच्छेदो सो दुविधो—जहण्णुक्कस्सो चेव । तत्थ उक्कस्सए पयदं । पंच णाणावरण-णवदंसणावरण-असाद-पंचअंतराइयाणं उक्कस्सगो दु ट्ठिदिबंधो तीससागरोवम-कोडाकोडीओ । तिण्णि वाससहस्साणि आबाधा । आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

मणुय-दुग इत्थिवेदं सादं पण्णरस कोडकोडीओ ।
मिच्छत्तस्स य सत्तरि चरित्तमोहस्स चत्तालं ॥७०॥

सादं इत्थिवेद-मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीणं उक्कस्सगो ठिदिबंधो पण्णरससागरोवमकोडाकोडीओ । पण्णरस वास-सयाणि आबाधा । आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छत्तस्स उक्कस्सगो ठिदिबंधो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ। सत्तवाससहस्साणि आबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। सोलसकसायाणं उक्कस्सगो ठिदिबंधो चत्तालीससागरोवमकोडाकोडीओ। चत्तारि वाससहस्साणि आबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

णिरयाउग-देवाउग-ट्ठिदिउक्कस्सं हवेइ तेतीसं।
मणुसाउग-तिरियाउग उक्कस्सं तिण्णि पल्लाणि ॥७१॥

णिरयाउग-देवाउगाण उक्कस्सगो दु ट्ठिदिबंधो तेत्तीस सागरोवमाणि। पुव्वकोडितिभागमाबाधा। तेतीससागरोवमाणि कम्मणिसेगो। तिरिक्ख-मणुसाउगाण तिण्णि पलिदोवमाणि उक्कस्सगो दु ट्ठिदिबंधो। पुव्वकोडि-तिभागमाबाधा। तिण्णि पलिदोवमाणि कम्मणिसेगो।

णवुंसयवेय-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ-णिरयगइ - तिरियगइ-एइंदिय - पंचिंदियजाइ-ओरालिय-वेउव्विय-तेज-कम्मइयसरीर-हुंडसंठाण-ओरालिय-वेउव्वियअंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसंघडण- वण्णादि-चदुक्क-णिरयगइ-तिरियगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुगादिचदुक्क - आदाउज्जोव - अप्पसत्थविहायगइ-तस-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेगसरीर-अथिरादिछक्क-णिमिण-उच्चागोदाणं उक्कस्सगो दु ट्ठिदिबंधो वीससागरोवमकोडाकोडीओ। वेवाससहस्साणि आबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

पुरिसवेय-हस्स-रइ - देवगइ - समचदुरसरीरसंठाण-वज्जरिसभवइरणारायसंघडण - देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-पसत्थविहायगइ-थिरादिछक्क-उच्चगोदाणं उक्कस्सगो दु ट्ठिदिबंधो दससागरोवमकोडाकोडीओ। दसवाससयाणि आबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

बीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय-वामणसंठाण-खीलियसंघडण - सुहुम - अपज्जत्त - साहारणाण उक्कस्सगो दु ट्ठिदिबंधो अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ। अट्ठारसवाससयाणि आबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

णग्गोहपरिमंडलसंठाण-वज्जणारायसंघडणाणमुक्कस्सगो दु ट्ठिदिबंधो बारससागरोवमकोडाकोडीओ। बारस वाससयाणि आबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। सादियसंठाण-णारायसंघडणाण उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो चोद्दससागरोवमकोडाकोडीओ। चोद्दसवाससदाणि आबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। खुज्जसंठाण-अद्धणारायसंघडणाणं उक्कस्सगो ठिदिबंधो सोलससागरोवमकोडाकोडीओ। सोलसवाससदाणि आबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। आहारसरीर-आहारंगोवंग-तित्थयरणामाणं उक्कस्सगो दु ट्ठिदिबंधो अंतोकोडाकोडी सागरोवमाणि। अंतोमुहुत्तं आबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

उत्तरपयडि-ओघ-उक्कस्स-अद्धाच्छेदो समत्तो।

बारस य वेदणीए णामे गोदे य अट्ठ य मुहुत्ता।
भिण्णमुहुत्तं तु ट्ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥७२॥

जहण्णं पयदं। णाणावरण-दंसणावरण-मोहणीयंतराइयाणं जहण्णगो ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मठिदी कम्मणिसेगो। वेदणीयस्स जहण्णगो ठिदिबंधो बारस मुहुत्ता। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। आउगस्स जहण्णगो ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तो। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। णामागोदाणं जहण्णगो ठिदिबंधो अट्ठमुहुत्ता। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

ओघेण मूलपगडि-जहण्णद्धाच्छेदो समत्तो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवरणमंतराइय पण चदु पणयं च लोहसंजलणं।
ठिदिबंधो दु जहण्णो भिण्णमुहुत्तं वियाणाहि ॥७३॥

तत्थ जहण्णट्ठिदि-बंधद्धाच्छेदो पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-लोभसंजलण-पंचअंतराइयाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो। अंतोमुहुत्तं। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

बारस मुहुत्त सादं अट्ठ मुहुत्तं तु उच्च जसकित्ती।
बेमास मास पक्खं कोहं माणं च मायं च ॥७४॥

सादावेदणीयस्स जहण्णगो ठिदिबंधो बारस मुहुत्ताणि। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। जसकित्ति-उच्चागोदाणं जहण्णगो ठिदिबंधो अट्ठिमुहुत्ताणि। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। कोहसंजलणस्स जहण्णगो ठिदिबंधो बे मासाणि। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। माणसंजलणस्स जहण्णगो ठिदिबंधो मासमिक्को। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। मायसंजलणस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अद्धमासो। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

पुरिसस्स अट्ठ वस्सं आउग-दुग भिण्णमेव य मुहुत्तं।
देवाउग-णिरयाउग वाससहस्सा दस जहण्णा ॥७५॥

पुरिसवेदस्स जहण्णगो ठिदिबंधो अट्ठ वस्साणि। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। तिरिक्खाउग-मणुसाउगाणं जहण्णगो ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं। अंतोमुहुत्तमाबाधा। अंतोमुहुत्तं कम्मणिसेगो। णिरय-देवाउगाउगाणं जहण्णगो ठिदिबंधो दसवाससहस्साणि। अबाधा अंतोमुहुत्तं। दसवाससहस्साणि कम्मणिसेगो।

पंचय त्रिदियावरणं सादीदरवेदणीय मिच्छत्तं।
बारस य अट्ठ णियमा कसाय तह णोकसायाणं ॥७६॥

तिण्णि य सत्त य चदु दुग सागर उवमस्स सत्तभागा दु।
ऊणं असंखभागा पल्लस्स जहण्णट्ठिदिबंधो ॥७७॥

णिद्दाणिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी य णिद्दा य पयला य असादवेदणीयाण जहण्णगो ठिदिबंधो सागरोवमस्स तिण्णि-सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। मिच्छत्तस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवमं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागूणं। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। अणंताणुबंधि—अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणावरण-कोह-माण-माया-लोभाणं जहण्णगो ठिदिबंधो सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखिज्जदिभागूणिया। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। इत्थी-णउंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं जहण्णगो ठिदिबंधो सागरोवमस्स वे-सत्तभाया पलिदोवमस्स असंखिज्जदिभागूणिया। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

तिरियगई मणुयदोण्णि य पंच य जादी सरीरणामतिगं।
संठाणं संघडणं छक्को ओरालियंगवंगो य ॥७८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वण्ण रस गंध फासा आणुपुव्वीदुगं अगुरुगलहुगादि हुंति चत्तारि ।
आदाउज्जोवं खलु विहायगदी वि य तहा दोण्णि ॥७९॥
तस-थावरादि जुगलं णव णिमिण अजसकित्ति णीचं च ।
सागर-वि-सत्तभागा पल्लासंखिज्जभागूणा ॥८०॥
उदधिसहस्सस्स[1] तहा वि-सत्तभागा जहण्णट्ठिदिबंधो ।
वेउव्वियछक्कस्स हि पल्लासंखिज्जभागूणा ॥८१॥

णिरयगइ-देवगइ-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग - णिरय - देवगइपाओग्गाणुपुव्वीणं जहण्णगो ठिदिबंधो सागरोवमसहस्सस्स वे-सत्तभागा पलिदोवमस्सासंखिज्जदिमभागूणिया। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। सेसाणं आहारदुग-तित्थयरवज्जाणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो सागरोवम-वे-सत्तभागा पलिदोवमस्स असंखिज्जदिभागूणिया। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो। आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग-तित्थयरणामाणं अंतोकोडाकोडी सागरोवमाणि जहण्णट्ठिदिबंधो होदि। अंतोमुहुत्तमाबाधा। आबाधेणूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेगो।

उत्तरपयडि-ओघ-जहण्णअद्धाच्छेदो समत्तो।

उक्कस्समणुक्कस्सो जहण्णमजहण्णगो य ठिदिबंधो ।
सादि-अणादिसहिया सामित्तेणावि णव हुंति ॥८२॥
मूलट्ठिदिसुअजहण्णो सत्तण्हं बंध-चदुवियप्पा दु ।
सेसतिए दुवियप्पो आउचउक्के वि दुवियप्पो ॥८३॥

आउगवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं उवसंत [कसाओ] कालं कादूण देवेसुववण्णस्स य जहण्णट्ठिदिबंधो सादिओ होइ। तस्सेव सुहुमभावेण वा आउगमोहवज्जाणओ[-दर-] माणसुहुमसंपराइयस्स अणियट्टिभावेण वा मोहस्स य जहण्णं सादि। सेढिमणारूढं पडुच्च अणादि। अभवसिद्धिं पडुच्च धुव। अधुवसिद्धिं पडुच्च जहण्णं वा। अबंधं वा गंतूण अद्धुवो। उक्कस्समणुक्कस्स जहण्णट्ठिदिबंधो सादिअद्धुवो कहं? अणुक्कस्स-ठिदिं बंधमाणो उक्कस्सं बंधइ त्ति अद्धुवो। विवरीदेण अणुक्कस्से सादि अद्धुवो। जहण्ण बंधमाणो जहण्णयं ति सादि। जहण्णबंधमाणो बंधवुच्छेदो गंतूण अद्धुवो। आउगस्स उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्णट्ठिदी सादि अद्धुवो चेव।

अट्ठारहपयडीणं अजहण्ण बंध चदुवियप्पो दु ।
सादीअद्धुवबंधो सेसतिए हवदि बोधव्वो ॥८४॥
णाणंतरायदसयं विदियावरणस्स हुंति चत्तारि ।
संजलणं अट्ठारस चदुधा अजहण्णबंधो सो ॥८५॥
उक्कस्समणुक्कस्सो जहण्णमजहण्णगो य ट्ठिदिबंधो ।
सादिय अद्धुवबंधो पयडीणं होइ सेसाणं ॥८६॥

अट्ठारसपयडीणं पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-चउसंजलण-पंचअंतराइयाणं अजहण्णस्स उवसंतस्स देवेसुप्पण्णस्स सादि। तस्सेव सुहुमसंपराइयस्स अणियट्टिभावेण लोभ-माया-माण-

1. आदर्शप्रतौ 'उवधी सहसस्स' इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोहाणं जहाकमेण सादिबंधो। सेढिमणारुढं पडुच्च अणादि। अभवसिद्धिं पडुच्च धुव। अबंधं वा जहण्णं वा गंतूण अद्धुवो। उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्णाणं सादि अद्धुवो चेव। सेसाणं पयडीणं उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्ण [ट्ठिदिबंधो] सादिअ अद्धुवो चेव। पुव्वुत्त-अट्ठारसधुव-पगडीणं खवगसेढीए जहण्णट्ठिदिं काऊण अजहण्णेण पडइ। सेसाणं धुवपगडीणं बादरेइंदिअ जहण्णं काऊण अजहण्णेण पडदि। अजहण्णदो जहण्णं पडइ त्ति। जहण्णस्स अणादि धुवो णत्थि।

एदाहिं तीहिं गाहाहिं मूलुत्तरपयडीसु सादि अणादि-धुव-अद्धुव-उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्णादि अट्ठ अणिओगद्दाराणि वुत्ताणि।

सव्वाओ वि ठिदीओ सुभासुभाणं पि होंति असुभाओ।
माणुस तिरिक्ख देवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥८७॥

सव्वासिं सुभासुभपगडीणं कसायवड्ढीए ट्ठिदी वड्ढइ त्ति असुभाओ ठिदीओ हुंति। णवरि तिरिक्ख-मणुस-देवाउगं तप्पाओग्गविसोहीए ठिदी वड्ढइ त्ति सुभाओ ठिदीओ हुंति।

सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उ उक्कस्ससंकिलेसेण।
विवरीदो दु जहण्णो आउगतिग वज्ज सेसाणं ॥८८॥
सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छादिट्ठी दु बंधगो भणिओ।
आहारं तित्थयरं देवाउग चावि मुत्तूण ॥८९॥
देवाउगं पमत्तो आहारं अप्पमत्तविरदो दु।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेइ ॥९०॥

सव्वट्ठिदीणं देवाउगस्स उक्कस्सो ठिदिबंधो पमत्तस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स उक्कस्स-आबाधाए उक्कस्सठिदिबंधे वट्टमाणस्स। आहारदुगस्स उक्कस्सगो ठिदिबंधो पमत्ताभिमुहस्स अप्पमत्तसंकिलिट्ठस्स उक्कस्सचरमट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। तित्थयरस्स उक्कस्सगो ठिदिबंधो मणुस-पज्जत्तो असंजदसम्मादिट्ठिस्स मिच्छत्ताभिमुहस्स बिदियतदियपुढवीसु उप्पज्जमाणस्स संकिलिट्ठस्स उक्कस्सचरमट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स।

पण्णरसण्ह ठिदीणं उक्कस्सं बंधंति मणुय-तेरिच्छा।
छण्हं सुर-णेरइया ईसाणंता सुरा तिण्हं ॥९१॥

पण्णरसण्हं णिरयगइ-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरंगोवंग - णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो सण्णिस्स तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिस्स संखिज्ज-वस्साउगस्स सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तगदस्स सागार-जागार-सुदो व-[जोग-] जुत्तस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स ईसिमज्झिम-परिणामस्स वा उक्कस्साबाधाए उक्कस्सट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। एवं तिरिक्ख-मणुसाउगाणं। णवरि तप्पाओग्गविसुद्धस्स। एवं णिरयाउग-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियजाइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीराणं। णवरि तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स।

तिरिक्खगइ-ओरालियसरीर-तदंगोवंग-असंपत्तसेवट्टाणं तिरियगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोवाणं छण्हं उक्कस्सगो ठिदिबंधो सव्वणेरइय-आणदाइयदेव वज्ज सव्वदेव-मिच्छादिट्ठिस्स पज्जत्तायस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स ईसिमज्झिम-परिणामस्स वा उक्कस्साबाधाए उक्कस्सट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। णवरि ओरालियंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसंघडणाणं भवणाइ-ईसाणंता मिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्सट्ठिदिं ण बंधंति। उक्कस्स-संकिलेसेण एइंदियं बंधंति, तेण सह बंधं णागच्छंति। एइंदिय-आदाव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थावराणं उक्कस्सगो ठिदिबंधो भवणवासिय-वाणविंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणदेवा मिच्छादिट्ठिस्स पज्जत्तस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा उक्कस्साबाधाए उक्कस्सठिदिबंधे वट्टमाणस्स सागार-जागार-सुदोवजुत्तस्स ।

सेसाणं चदुगदिया ठिदि-उक्कस्सं करिंति पगडीणं ।
उक्कस्ससंकिलेसेण ईसिमहमज्झिमेणावि ।।९२।।

सेसाणं चदुगदिया पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-असादवेदणीय-मिच्छत्त-सोलस कसाय-णउंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-पंचिंदिय-तेज-कम्मइयसरीर - हुंडसंठाण-वण्णादिचदुक्क-अगुरुग-लहुगादिचदुक्क-अप्पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेगसरीर-अथिरादि छ-णिमिण-णिच्च-गोदाण पंचअंतराइयाणं उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जवस्साउग-आणदादिदेव वज्ज चउगइ-सण्णिमिच्छादिट्ठिस्स पज्जत्तस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स उक्किट्ठसंकिलिट्ठस्स ईसि-मज्झिमपरिणामस्स वा । उक्कस्सठिदिबंधपाओग्ग-असंखेज्जलोगपरिणामेसु जं चरमपरिणाम-ट्ठाणं तं उक्कस्ससंकिलेसेत्ति वुच्चइ। तेसु चेव जं पढमपरिणाम [ट्ठाणं] ईसि त्ति वुच्चइ। दुण्हं विच्चालपरिणामट्ठाणं मज्झिमपरिणामे त्ति वुच्चइ। एवं सेसाणं पगडीणं। णवरि तप्पा-ओग्गसंकिलिट्ठस्स ।

आहारं तित्थयरं णियट्टि अणियट्टि पुरिस संजलणं ।
बंधइ सुहुमसराओ साद-जसुच्चावरण-विग्घं ।।९३।।

आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंग-तित्थयरणामाणं जहण्ण-उक्कस्सगो ठिदिबंधो अपुव्व-करणखवगस्स छट्ठमभागचरमे जहण्णगे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। पुरिसवेद-चदुसंजलणाण जहण्णगो ठिदिबंधो अणियट्टिखवगस्स अप्पप्पणो जहण्णगे चरमे ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। साद-जसकित्ति-उच्चगोद-पंचणाणावरण-चउदंसणावरण- पंचअंतराइयाणं जहण्णगो ठिदिबंधो सुहुमखवगस्स चरमजहण्णगे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स ।

छण्हमसण्णिट्ठिदीण कुणइ जहण्णमाउग्गमण्णदरो ।
सेसाणं पज्जत्तो बादर एइंदियसुद्धो दु ।।९४।।

'छण्हमसण्णी' [णिरयग-] इ-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो **असण्णि-**पंचिंदियपज्जत्तस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स जहण्णगे ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। देवगइ-वेउव्विय-सरीर-तदंगोवंग-देवगइपाओग्गाणुपुव्वीणं जहण्णगो ठिदिबंधो असण्णिपंचिंदियपज्जत्तस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। णिरयाउगस्स जहण्णगो ठिदिबंधो [असण्णिपंचिंदिय-पज्जत्तस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स सव्वविसुद्धस्स मिच्छा-दिट्ठिस्स जहण्णगे ठिदिबंधे] वट्टमाणस्स। एवं देवाउगस्स वि। णवरि तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स। तिरिय-मणुसाउगाणं जहण्णगो ठिदिबंधो असंखेज्जवस्साउग वज्ज सव्वतिरिय-मणुसाणं मिच्छा-दिट्ठीण तप्पाओग्गसंकिलिट्ठाणं जहण्णठिदिबंधे वट्टमाणाणं ओगाहण [दोण्हमाउगाण] जादि [जायदि]। णाणा [णवरि] विसेसाण पडुच्च अण्णदरो त्ति णादव्वो। 'सेसाणं पज्जत्तो' पंच दंसणावरण-मिच्छत्त-वारस कसाय-हस्स-रइ-भय-दुगुंछ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेज-कम्म-इयसरीर-समचउरसरीर-संठाण-ओरालियसरीरंगोवंग-वज्जरिसभवइरणारायसरीरसंघडण-वण्णादि-चउक्क - अगुरुलहुगादिचउक्क - पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेगसरीर - थिर-सुभ - सुभग-सुस्सर-आदिज्ज-णिमिण [णामाणं] जहण्णगो ट्ठिदिबंधो बादरएइंदियपज्जत्तस्स सागार-जागारस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। असाद-इत्थी-णवुंसक [वेद]-अरइ-सोग-चउजाइ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचसंठाण-पंचसंघडण-अप्पसत्थविहायगइ-आदव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त - साहारण-अथिर-[अ-] सुभ-दुभग-दुस्सर-अणादिज्ज-अजसकित्तीणं जहण्णगो ट्ठिदिबंधो बादर-एइंदियपज्जत्तस्स सागार-जागारस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स जहण्णगे ट्ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। तिरिक्खगइ-तिरिक्खपाओग्गाणु-पुव्वी-उज्जोव-णिच्चगोदाणं जहण्णगो ठिदिबंधो बादरतेउ-वाउपज्जत्तस्स सागार--जागारस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे ठिदिबंधे वट्टमाणस्स। मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीणं जहण्णगो ठिदिबंधो बादर-पुढवी-आउ-पत्तेगसरीरपज्जत्तस्स सागार-जागारस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे ट्ठिदि-बंधे वट्टमाणस्स।

ठिदिबंधो समत्तो।

सादि अणादि अट्ठ य पसत्थिदरपरूवणा तहा सण्णा !
पच्चय-विवाग देसा सामित्तेणाध अणुभागो ॥९५॥
घादीणं अजहण्णो अणुक्कस्सो वेयणीय-णामाणं।
अजहण्णमणुक्कस्सो गोदे अणुभागबंधम्मि ॥९६॥
सादि अणादि धुव अद्धुवो य बंधो दु मूलपयडीसु।
सेसम्हि दु दुवियप्पो आउचउक्के वि एमेव ॥९७॥

अणुभागो णाम कम्माण रसविसेसो। 'घादीणमजहण्णो' णाणावरण-दंसणावरण-मोहणी-यंतराइयाणं अजहण्णाणुभागबंधस्स उवंतस्स य [उवसंतकसायो] बंधगो। देवेसुप्पण्णस्स य सादियबंधो। तस्सेव सुहुमभावेण वा मोहणीयं वज्ज णं [वज्जिऊण]। मोहणीयस्स हु सुहुमस्स ओदरमाणस्स अणियट्टिभावेण सादी। सेढिमणारूढं पडुच्च अणादी। अब्भवसिद्धिं पडुच्च धुवो। जहण्णं वा अबंधं वा गंतूण अद्धुवबंधो। वेदणीय-णामाणं अणुक्कस्स-अणुभागबंधस्स उवसंतस्स देवभावेण वा सुहुमभावेण वा सादियबंधो। सेढिमणारूढं पडुच्च अणादिबंधो। अभवसिद्धिं [पडुच्च] धुवबंधो उक्कस्सं वा। अबंधं गंतूण अद्धुवबंधो। गोदस्स य जहण्णमणुक्कस्साणं उवसंत [स्स] सुहुमभावेण वा देवभावेण वा अणुक्कसो सादी। अजहण्णस्स सत्तमाए पुढवीए उवसमसम्म-त्तभिमुह-मिच्छादिट्ठि-चरमसमय जहण्णं काऊण उवसमसम्मत्तं गहिय मिच्छत्तं गयस्स सादिय-बंधो। सेढिमणारूढं पडुच्च अणादि अजहण्णस्स सत्तमपुढवीए उवसमसम्मत्ताभिमुहमिच्छा-दिट्ठि चरमसमय जहण्णं अकरंतस्स वा अणादि। अब्भवसिद्धियस्स धुव। अजहण्णस्स जहण्णं वा अबंधं वा बंधवुच्छेदं वा गंतूण अद्धुव। अणुक्कसो उक्कस्सं वा गंतूण अधुव। सेसतिगस्स एदेसिं वुत्तस्स कम्माणं गोदवज्जाणं सादिअद्धुवबंधो। गोदस्स सेसदुगस्स सादि अद्धुवबंधो। आउगस्स उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्णाणं सादि-अद्धुवबंधो।

अट्ठण्हमणुक्कस्सो तेदालाणमजहण्णगो बंधो।
णेयो दु चदुवियप्पो सेसतिए होदि दुवियप्पो ॥९८॥

'अट्ठण्हमणुक्कस्सो' तेज-कम्मइयसरीर-पसत्थ-वण्ण-गंध - रस-फास - अगुरुगलहुग-णिमिण-णामाणं अणुक्कस्स-ओदरमाणस्स अपुव्वस्स अबंधगस्स बंधमागदस्स सादियबंधो। देवेसुप्पण्णस्स वा अबंधगस्स सेढिमणारूढं पडुच्च अणादि०। अब्भवसिद्धिं पडुच्च धुव०। उक्कस्सं वा अबंधं वा बंधवुच्छेदं वा गंतूण अद्धुव०। 'तेदालाणमजहण्णं' पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-मिच्छत्त-सोलस कसाय-भय-दुगुंछ-अप्पसत्थवण्णादिचदुक्क-उवघाद-पंचंतराइयाणं अजहण्णस्स अबंधगाण अप्प-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्पणो गुणट्ठाणे बंधमाणाणं सादियबंधो। अबंधगुणट्ठाणं अप्पमत्ताणं अणादि। अभव्वसिद्धियाणं धुवं। अबंधं वा जहण्णं वा गंतूण य अद्धुवं। एदेसिं सेसतिगस्स सादि अद्धुवं।

उक्कस्समणुक्कस्सो जहण्णमजहण्णगो य अणुभागो।
सादिय अद्धुवबंधो पगडीणं हुंति सेसाणं ॥९९॥

सेसपगडीणं उक्कस्समणुक्कस्स-जहण्णमजहण्णाणं सादिअद्धुवबंधो।

सुहपयडीण विसोही तिव्वं असुभाण संकिलेसेण।
विवरीदे दु जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥१००॥

सुहपगडीण विसोहीए तिव्वं उक्कस्स अणुभाग-बंधट्ठाणं होइ। असुभाणं पि पगडीणं संकिलेसेण उक्कस्सअणुभाग-बंधट्ठाणं होइ। 'विवरीदे दु जहण्णगो' सुभपगडीणं संकिलेसेण जहण्णो अणुभागो, असुभाण विसोहीए जहण्णो अणुभागो।

बादालं पि पसत्था विसोहिगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ।
वासीदिमप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥१०१॥

'बादालं पि पसत्था' य सद्देण मूलपयडीणं अपसत्थपरूवित्थादो वा सादी पयडीओ अपसत्थाओ अघादिपयडीओ पसत्थापसत्थाओ णायव्वाओ। णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं उक्कस्सो अणुभागबंधो असंखिज्जवस्साउग-आणदादिदेव वज्ज चउगइसण्णि पंचिंदियमिच्छादिट्ठिस्स सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तगस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। वेदणीय-णाम-गोदाणं उक्कस्स-अणुभागबंधो सुहुमखवगस्स चरमे उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। आउगस्स उक्कस्स-अणुभागबंधो अप्पमत्तसंजदस्स सागार-जागार-सुदोवजुत्तस्स तप्पाओग्गट्ठिदिबंधस्स उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। णाणावरणीय-दंसणावरणीय-पंचअंतराइयाणं जहण्णगो अणुभागबंधो सुहुमखवगस्स चरमे जहण्णअणुभागबंधे वट्टमाणस्स। मोहणीयस्स जहण्णअणुभागबंधो अणियट्टिखवगस्स सागार-जागारस्स जहण्ण-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। वेदणीयणामाणं जहण्णगो अणुभागबंधो सम्मादिट्ठिस्स वा मिच्छादिट्ठिस्स वा परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहण्णगे य अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। आउगस्स जहण्णगो अणुभागबंधो जहण्णियं अपज्जत्ततिरियाउगं बंधमाणस्स असंखेज्ज-वस्साउगवज्ज तिरियस्स मणुसस्स मिच्छादिट्ठिस्स परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। गोदस्स जहण्णगो अणुभागबंधो सत्तमाए पुढवीए णेरइयमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागारस्स सव्वविसुद्धस्स सम्मत्ताभिमुहस्स चरमे जहण्णे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स।

'बादालं पि पसत्था' साद-तिरिक्ख-मणुस-देवाउग-मणुस-देवगइ-पंचिंदियजादि-पंचसरीर-समचउरससंठाण-तिण्णि अंगोवंग वज्जरिसभवइरणारायसंघडण-पसत्थवण्णादि-चदुक्क-मणुस-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-परघाद-उस्सास-आदाव - उज्जोव-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेग सरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदिज्ज-जसकित्ती-णिमिण-तित्थयर-उच्चगोद बादालीस-पयडीओ पसत्थाओ उक्कस्स विसोहिगुणजुत्तस्स तिव्वकसाय-अणुभागाओ हुंति।

'वासीदिमप्पसत्था' पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-असादावेदणीय-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय-णिरयाउ-णिरयगइ-तिरिक्खगइ-पंचिंदियवज्ज चउजाइ-समचउरवज्ज पंचसंठाण-वज्ज-रिसभ वज्ज पंचसंघडण-अप्पसत्थवण्णादिचदुक्क-णिरयगइ-तिरिक्खगइपाओग्गाणु-पुव्वी-उवघाद अप्पसत्थविहायगइ - थावर-सुहुम-अपज्जत्त - साहारण-अथिर-असुभ-दुभग-दुस्सर-अणादिज्ज-अजस-कित्ति णिच्चगोद-पंचअंतराइया वासीदिपगडीओ अप्पसत्थाओ उक्कस्ससंकिलेसजुत्तमिच्छादिट्ठिस्स।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदाउज्जोवाणं मणुव-तिरिक्खाउगं पसत्थाओ ।
मिच्छस्स होंति तिव्वा सम्मादिट्ठिस्स सेसाओ ॥१०२॥

आदाउज्जोव-मणुव-तिरिक्खाउगं चत्तारि पगडीओ पसत्थपगडीण मज्झे मिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्स-अणुभागाओ हुंति । सेसाओ अट्ठत्तीस पगडीओ सम्मादिट्ठिस्स उक्कस्स-अणुभागट्ठिदीओ हुंति ।

देवाउगमपमत्तो तिव्वं खवगा करिंति बत्तीसं ।
बंधंति तिरिय-मणुया इक्कारस मिच्छभावेण ॥१०३॥

देवाउगस्स उक्कसो अणुभागबंधो अप्पमत्तस्स सागार-जागार सुदोवजुत्तस तप्पाओग्ग-विसुद्धस्स उक्कस्स अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । तिवखवगा सं [तिव्वं खवगा करिंति बत्तीसं] साद-जसकित्ति-उच्चगोदाणं उक्कस्सगो अणुभागबंधो सुहुम-संपराइयखवगस्स चरमे उक्कस्सअणुभागबंधे वट्टमाणस्स । देवगइ-पंचिंदियजाइ-वेउव्वियाहार-तेज-कम्मइयसरीर - समचउरसरीरसंठाण - वेउव्वियाहारसरीरंगोवंग-पसत्थवण्णादिचउक्क-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-परघाद - उस्सासपसत्थविहाय-गइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेगसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदिज्ज - णिमिण - तित्थयराणं उक्कस्सगो अणुभागबंधो अपुव्वकरणखवगस्स छ-सत्तमभागचरमे उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स सागार-जागारस्स सव्व-विसुद्धस्स बंधंति । णिरयाउग-बीइंदिय-तीइंदिय-चतुरिंदियजादि-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं उक्कस्सगो अणुभागबंधो असंखिज्जवस्साउग वज्ज सण्णि-पंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुस-पत्तज्जमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागारस्स तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स उक्कस्सअणुभागबंधे वट्टमाणस्स । तिरिक्ख-मणुसाउगाणं च सो चेव भंगो । णवरि तप्पाओग्गविसुद्धस्स । एवं णिरयगइपाउग्गाणु-पुव्वीणं । णवरि उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स ।

पंच सुर-णिरयसम्मो सुरमिच्छो तिण्णि जददि पगडीओ ।
उज्जोवं तमतमगा सुर-णेरइया भवे तिण्णि ॥१०४॥

'पंच सुर णिरयसम्मो' मणुसगइ-ओरालिय-सरीर-ओरालियसरीरंगोवंग-वज्जरिसभ-मणुस-गइपाओग्गाणुपुव्वीण उक्कस-अणुभागबंधो देव-णेरइयअसंजदसम्मादिट्ठिस्स पज्जत्तस्स सागार-जागरस्स सव्वविसुद्धस्स उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । 'सुरमिच्छो' त्ति पयडीओ एइंदिय-आदाव-थावराणं उक्कसो अणुभागबंधो भवणादि-सोहम्मीसाणं देवपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस उक्कस्सअस्स । एवं आदावस्स । णवरि तप्पाओग्गविसुद्धस्स । उज्जोवस्स उक्कस्सअणुभागबंधो सत्तमपुढवीणेरइयपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स सव्व-विसुद्धस्स सम्मत्ताभिमुहस्स चरमे उक्कस-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । 'सुर-णेरइया भवे तिण्णि' तिरिक्खगइ-असंपत्तसेवट्टसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीणं उक्कस्सअणुभागबंधो आणदादि-देव वज्ज देव-णेरइयअपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स उक्कस्स-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स ।

सेसाणं चदुगदिया तिव्वणुभागं करिंति पयडीणं ।
मिच्छादिट्ठी णियमा तिव्वकसाउक्कडा जीवा ॥१०५॥

'सेसाणं चदुगदिया' सेसाणं पगडीण असंखेज्जवस्साउग वज्ज आणदादिदेव वज्ज चउगइ-सण्णि-पंचिंदियपज्जत्तमिच्छादिट्ठिणो उक्कस्स-अणुभागं करिंति । सागार-जागरस्स उक्कससंकिले-सेण । णवरि इत्थी-पुरिसवेय-हस्स-रइ-समचदुर-हुंडवज्ज चउसंठाण वज्जरिसभ-असंपत्तसेवट्ट वज्ज-चउसंघडणाण तप्पाओग्गसंकिलेसेण ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउद्दस सरागचरमे पण अणियट्टी णियट्टि एयारं ।
सोलस मंदणुभागं संजमगुणपत्थिदो जददि ॥१०६॥

'चउद्दस सराग चरमे' पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-पंचअंतराइयाणं जहण्णगो अणुभागबंधो सुहुमसंपराइयखवगस्स चरमे जहण्णे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । 'पंच अणियट्टी' पुरिसवेद-जहण्णगो अणुभागबंधो अणियट्टिखवगस्स पुरिसवेदोदयस्स चरमे जहण्णअणुभागबंधे वट्टमाणस्स । एवं कोह-माण-माया-लोभ-संजलणाणं । णवरि अप्पप्पणो चरमे जहण्णअणुभागबंधे वट्टमाणस्स । कोहस्स कोहोदएण वा, माणस्स कोहोदएण वा माणोदएण वा, मायाए कोह-माण-मायाणं अण्णदरोदएण । लोभस्स चउसंजलणाणं अण्णदरोदएण खवगसेढिं चडिदस्स होइ । 'णियट्टि एयारं' हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं जहण्णगो अणुभागबंधो अपुव्वकरणखवगस्स चरमसमए वट्टमाणस्स सागार-जागरस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे आस्स [अणुभागबंधे वट्टमाणस्स] पसत्थवण्णादिचउक्क-उवघादाण जहण्णगो अणुभागबंधो अपुव्वकरणखवगस्स छ-सत्तभागचरमसमए वट्टमाणस्स सागार-जागरस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णअणुभागबंधे वट्टमाणस्स । णिद्दा-पचलाणं जहण्णगो अणुभागबंधो अपुव्वकरणपढमसत्तमचरमसमए वट्टमाणस्स सागार-जागरस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । 'सोलस मंदणुभागं' स० दि [संजमगुणपत्थिदो जददि] णिद्दा-णिद्दा-पचलापचला-थीणगिद्धी-मिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहण्णगो अणुभागबंधो मणुसपज्जत्तस्स संजमाभिमुहस्स मिच्छादिट्ठिस्स चरमसमए वट्टमाणस्स सागार-जागरस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । एवं अपच्चक्खाणावरणचउक्कस्स । णवरि असंजदसम्मादिट्ठिस्स । एवं पच्चक्खाणावरणचउक्काणं । णवरि संजदासंजदस्स ।

आहारमप्पमत्तो पमत्तसुद्धो दु अरदि-सोगाणं ।
सोलस य मणुय-तिरिया सुर-णेरइया तमतमगा तिण्णि ॥१०७॥

'आहारमप्पमत्तो' आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगाणं जहण्णगो अणुभागबंधो अप्पमत्तस्स सागार-जागरस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स पमत्ताभिमुहस्स चरमसमए जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । 'पमत्तसुद्धो दु अरदिसोगाणं' अरदि-सोगाणं जहण्णगो अणुभागबंधो पमत्तसंजदस्स सागार-जागरस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स । 'सोलस य मणुय-तिरिया सुर-णेरइया तमतमा तिण्णि' णिरय-देवाउगाणं जहण्णगो अणुभागबंधो असंखिज्जवस्साउग वज्ज सण्णि-पंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुसस्स मिच्छादिट्ठिस्स पज्जत्तस्स दसवाससहस्साउगट्ठिदिबंधमाणस्स मज्झिमपरिणामस्स सागार-जागरस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । तिरिक्खमणुसाउगाणं जहण्णगो अणुभागबंधो असंखेज्जवस्साउग वज्ज मणुस-तिरिक्खमिच्छादिट्ठिस्स जहण्णं अपज्जत्ताउगं अंतोमुहुत्तं बंधमाणस्स सागार-जागरस्स मज्झिमपरिणामस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । णिरयगइ-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीणं जहण्णगो अणुभागबंधो असंखिज्जवस्साउग वज्ज पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स मज्झिमपरिणामस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । देवगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वीणं जहण्णगो अणुभागबंधो पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसपज्जत्त मिच्छादिट्ठिस्स परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहण्णअणुभागबंधे वट्टमाणस्स । वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरंगोवंगाणं जहण्णगो अणुभागबंधो असंखिज्जवस्साउग वज्ज सण्णि-पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स जहण्ण-अणुभागबंधे वट्टमाणस्स । बीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदियजादि-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं जहण्णगो अणुभागबंधो असंखिज्जवस्साउगवज्ज तिरिक्ख-मणुसमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स परियत्तमाणमज्झिम-परिणामस्स जहण्णअणुभागबंधे वट्टमाणस्स । ओरालियसरीर-ओरालियसरीरंगोवंग-उज्जोवाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहण्णगो अणुभागबंधो आणदादिदेव वज्ज देव-णेरइय-पज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स जहण्णअणुभागबंधे वट्टमाणस्स। तिरिक्खगइ-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-णीचगोदाणं जहण्णगो अणुभागबंधो सत्तमपुढवीए णेरइय पज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सम्मत्ताभिमुहस्स सागार-जागरस्स सव्वविसुद्धस्स चरमसमए जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स।

एइंदिय थावरयं मंदणुभागं करिंति तेगदिया।
परियत्तमाणमज्झिमपरिणामा णारगं वज्ज ॥१०८॥

एइंदिय-थावराणं जहण्ण-अणुभागबंधो णेरइय-[अ-]संखेज्जवस्साउग-सणक्कुमारादि देव वज्ज सेसमिच्छादिट्ठिस्स परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। मज्झिमपरिणामेत्ति सुभासुभपगडीणं साधारणभूदा मज्झिमपरिणामा त्ति वुच्चंति।

आदावं सोधम्मो तित्थयरं अविरद-मणुस्सेसु।
चउगदि-उक्कडमिच्छो पण्णरस दुवे विसोधीए ॥१०९॥

'आदावं सोधम्मो' आदावस्स जहण्णगो अणुभागबंधो भवणादि-सोहम्मीसाणंतदेवपज्जत्त-मिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागारसुदोवजुत्तस्स उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। तित्थयरस्स जहण्णगो अणुभागबंधो मणुसपज्जत्त-असंजदसम्मादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स मिच्छत्ताभिमुहस्स विदिय-तदियपुढवी-उप्पज्जमाणस्स चरमे जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। 'चदुगदिमुक्कडमिच्छो' पंचिंदियजाइ-तेजस-कम्मइयसरीर-पसत्थवण्णादिचदुक्क-अगुरुगलहुग-परघाद-उस्सास-तस - बादर-पज्जत्त-पत्तेगसरीर - णिमिण-णामाणं जहण्णगो अणुभागबंधो असंखेज्जवस्साउग वज्ज-आणदादिदेव वज्ज चदुगदि-सण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। 'दुवे विसोधीए' इत्थीवेदस्स जहण्णगो अणुभागबंधो चउगइ-सण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स सागार-जागरस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स णियमा उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। एवं णवुंसकवेदस्स। णवरि असंखेज्जवस्साउग वज्ज।

सम्मादिट्ठी मिच्छो वादं [व अट्ठ] परियत्तमज्झिमो जददि।
परियत्तमाणमज्झिममिच्छादिट्ठी दु तेवीसं ॥११०॥

'सम्मादिट्ठी मिच्छो वा अट्ठ' सादासाद-थिराथिर-सुभासुभ-जस-अजसकित्तीणं जहण्णगो अणुभागबंधो चउगदि-मिच्छादिट्ठिस्स वा सम्मादिट्ठिस्स वा परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स। 'मिच्छादिट्ठी दु तेवीसं' छसंठाण-छसंघडण-मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी - दोविहायगइ-सुभग - दुभग-सुस्सर-दुस्सर - आदिज्ज - अणादिज्ज- उच्चगोदाणं जहण्णगो अणुभागबंधो चउगइमिच्छादिट्ठिस्स परियत्तमाणमज्झिमपरिणामस्स जहण्णगे अणुभागबंधे वट्टमाणस्स।

केवलणाणावरणं दंसणछक्कं च मोहबारसयं।
ता सव्वघादिसण्णा हवदि य मिच्छत्तवीसदिमं ॥१११॥

'ता' सद्देण मूलपयडीणं घादि-अघादित्तं परूविज्जइ। णाणावरण-दंसणावरण-[णाण] उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्ण-अणुभागबंधो सव्वघादी। वेदणीय-आउग णामा-गोदाण उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्ण अणुभागबंधो अघादी घादियाणं पडिभागो। मोहंतराइयाणं उक्कस्स-अणुभागबंधो सव्वघादी। अणुक्कस्स-अणुभागबंधो सव्वघादी वा देसघादी वा। जहण्ण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुभागबंधो देसघादी । अजहण्ण-अणुभागबंधो देसघादी वा सव्वघादी वा । केवलणाणावरणं णिद्दाणिद्दा पचलापचला थीणगिद्धी णिद्दा पचला केवलदंसणावरणं चउसंजलण वज्ज बारस कसाय मिच्छत्तं एदासिं वीसण्हं पगडीणं उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्ण-अणुभागबंधो सव्वघादी णाणादिगुणाणं सव्वं घादंतीति सव्वघादी, महावणदाहं व ।

णाणावरणचउक्कं दंसणतिग अंतराइगे पंच ।
ते [ता] होंति देसघादी संजलणं णोकसाया य ॥११२॥

केवलणाणावरण वज्ज आभिणिबोहिग-सुद-अवधि-मणपज्जवचउक्क-चक्खु-अचक्खु-ओहि-दंसणावरण-पंचअंतराइय-चउसंजलण-णवणोकसायाणं उक्कस्स-अणुभागबंधो सव्वघादी अणुकस्स-अणुभागबंधो सव्वघादी वा देसघादी वा । जहण्णगो अणुभागबंधो देसघादी । अजहण्ण-मणुभागबंधो देसघादी वा सव्वघादी वा । णाणादिगुणाणं इक्कदेसं घादयंति त्ति देसघादी, एक्कदेसवणदाहं व ।

अवसेसा पगडीओ अघादि घादीण होइ पडिभागो ।
ता एव पुण्ण-पावा सेसा पावा मुणेदव्वा ॥११३॥

'अवसेसा पगडीओ' सादासाद-चउआउग-सव्वणामपयडी-उच्च-णीचगोदाणं उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्ण अणुभागबंधो 'अघादि घादियाण पडिभागो' घादि-कम्मसंजुत्ताणं अघादीणं सकज्जकरणसमाणिदो घादीणं पडिभाग त्ति वुच्चदे । अघादिविसेसो । सकज्जकरणसामत्थं णत्थि, चोरसहिय-अचोरुव्व । 'ता एव पुण्ण-पावा' अघादिपयडीओ पुण्ण-पावपगडीओ हुंति । घादि-कम्मपगडीओ सव्वाओ पावाओ हुंति ।

आवरण देसघादंतराय संजलण पुरिस सत्तरसं ।
चउविहभावपरिणदा तिविहा भावा भवे सेसा ॥११४॥

मोहणीय-अंतराइयवज्जाणं छण्हं कम्माणं उक्कस्स-अणुभागबंधो चउट्ठाणी । अणुकस्स-अणुभागबंधो चउट्ठाणिओ त्ति वा तिट्ठाणिगो त्ति वा बिट्ठाणिगो त्ति वा । जहण्णअणुभागबंधो बिट्ठाणिओ । अजहण्णं अणुभागबंधो बिट्ठाणिगो त्ति वा तिट्ठाणिगो त्ति वा चउट्ठाणिगो त्ति वा । मोहंतराइयाणं उक्कस्स-अणुभागबंधो चउट्ठाणिओ । अणुक्कस्स-अणुभागबंधो चउट्ठाणिओ वा,तिट्ठाणिओ वा, बिट्ठाणिओ वा, एगट्ठाणिओ वा । जहण्ण-अणुभागबंधो एगट्ठाणिगो । अजहण्ण-अणुभागबंधो एगट्ठाणिओ वा, बिट्ठाणिओ वा, तिट्ठाणिओ वा, चउट्ठाणिओ वा । आवरण-देससेस-चउणाणावरण-तिण्हदंसणावरण-चउसंजलण-पुरिसवेद-पंचअंतराइय-सत्तरसपयडीणं उक्कस्स-अणुभागबंधो चउट्ठाणिओ । अणुक्कस्स-अणुभागबंधो चउट्ठाणिओ वा तिट्ठाणिओ वा बिट्ठाणिओ वा एक्कट्ठाणिओ वा । जहण्ण-अणुभागबंधो इक्कट्ठाणिओ वा । अजहण्ण-अणुभागबंधो एक्कट्ठाणिओ वा, बिट्ठाणिओ वा, तिट्ठाणिओ वा चउट्ठाणिओ वा केवलणाणावरण-छदंसणावरण-सादासाद-मिच्छत्त-बारस-कसाय-अट्ठणोकसाय-चउआउ-सव्वणामपयडी-उच्च-णिच्च-गोदाणं उक्कस्स-अणुभागबंधो चउट्ठाणिओ । अणुकस्स अणुभागबंधो चउट्ठाणिओ, वा तिट्ठाणिओ वा बिट्ठाणिओ वा । जहण्ण-अणुभागबंधो बिट्ठाणिओ । अजहण्ण-अणुभागबंधो तिट्ठाणिओ वा, तिट्ठाणिओ वा, चउट्ठाणिओ वा । असुभपगडीणं णिंबं व एगट्ठाणं, कंजीरकं व बिट्ठाणं विसं व तिट्ठाणं कालकूडं व चउट्ठाणं । सुभ-पगडीणं गुडं व एगट्ठाणं, खंडं व बिट्ठाणं, सक्करं व तिट्ठाणं, अमीव चउट्ठाणं । सव्वघादीणं एगट्ठाणं णत्थि । अट्ठणोकसाय केवलं एगट्ठाणं णत्थि, बिट्ठणेण मिस्सं होदूण एगट्ठाणं हुंति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादं चदुपच्चइगं मिच्छो सोलस दुपच्च पणत्तिस्सं ।
सेसा तिपच्चया खलु तित्थयराहार-वज्जाओ ॥११५॥

'सादं चदुपच्चइदं' सादस्स मिच्छत्त-असंजम-कसाय-जोग-चदुण्हं पच्चयाणं पत्तेयं पत्तेयं पाधण्णेण बंधो होइ। पगडिबंध-सामित्ते मिच्छादिट्ठिस्स वुत्ताणं सोलसण्हं पगडीणं मिच्छत्त-पच्चय-पाधण्णेण बंधो होइ। तम्हि चेव सासणंत-पणुवीसं असंजदंत-दस-पणतीसपगडीणं मिच्छत्त-असंजम दुण्हं पच्चयाणं पत्तेगपाधण्णेण बंधो होइ। सेसाणं तित्थयराहार-दुगे वज्जाणं मिच्छत्त-असंजम-कसाय-तिण्हं पच्चयाणं पत्तेय-पाधण्णेण बंधो हवदि। तित्थयरस्स सम्मत्त-पाधण्णेण, आहार-दुगस्स पमादरहिद-संजमपाधण्णेण।

पंच य छ त्तिय छप्पंच दुण्णि पंच य हवंति अट्ठेव।
सरिरादिय-फासंता पगडीओ हुंति आणुपुव्वी[ए] ॥११६॥
[अगुरुयलहुगुवघाया परघाया आदावुज्जोय णिमिण णामं च।
पत्तेय-थिर-सुहेदरणामाणि य पुग्गलविवागा ॥११७॥]
आऊणि भवविवागी खेत्तविवागी य होइ अणुपुव्वी।
अवसेसा पगडीओ जीवविवागी मुणेयव्वा ॥११८॥

'पच य छ' पंचसरीर छ संठाण तिण्णि अंगोवंग छ संघडण पंच वण्ण दोगंध पंचरस अट्ठफास अगुरुगलहुग उवघाद परघाद आदाव उज्जोव णिमिण पत्तेग साहारण थिर अथिर सुभ असुभ एदाओ पगडीओ पुग्गलविवागा पुग्गलपरिणामकारणादो पुग्गलविवागा त्ति वुच्चंति। 'आऊणि भवविवागी' चत्तारि आउगाणि भवविवागा हवंति, भव-धारण-णिमित्तादो। चत्तारि आणुपुव्वीओ खेत्तविवागा हुंति, विग्गहं काऊण गच्छमाणस्स खेत्तफलदाणादो। अवसेसा पगडीओ जीवविवागा हुंति, जीवपरिणामणिमित्तादो।

एवं अणुभागबंधो समत्तो।

एयक्खेत्तवगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं।
बंधइ जहुत्तहेदू सादिमह अणादियं चावि ॥११९॥

'एयक्खेत्तवगाढं जीवस्स अप्पप्पणो सव्वपदेसट्ठिदखेत्तपदेसे तत्तियमेत्तेण ठिदपुग्गलदव्वं कम्मजोग्गं बंधदि, जहुत्तकारणसहिदो जीवो 'सादिअ' कम्मसरूवेण गहिय-मुक्कपुग्गलदव्वं सादिअं। पुव्वकम्मसरूवेण गहिय-पुग्गलदव्वं अणादियं।

पंचरस-पंचवण्णेहिं परिणदो दोगंध-चदुहिं फासेहिं।
दवियमणंतपदेसं जीवेहि अणंतगुणहीणं ॥१२०॥

'पंच रस' तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल-महुर[रसेहिं]संजुत्तं, किण्ह-णील-रुहिर-हालिद्द-सुक्किल-वण्णेहिं सहिदं, सुरभि-दुरभि गंध-सीदुण्ह-णिद्ध-लुक्खेहिं परिणदमणंतपदेसं सव्वजीवेहिं अणंत-गुणहीणं अभवसिद्धेहिं अणंतगुण सिद्धाणमणंतभागं कम्मबंधजोग्गपुग्गलदव्वं होइ।

आउगभागो थोवो णामा-गोदे समो तदो अधिगो।
आवरणमंतराए सरिसो अहिओ दु मोहे वि ॥१२१॥

'आउगभागो थोवो' अट्ठविधकम्माणं बंधमाणस्स एगेगसमए गहणमागयाणं कम्मपदेसाणं मज्झे आउगभागो थोवो। णामा-गोदाणं अण्णुण्णं भागो समो, आउगभागादो इक्कदरेण अधिओ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं भागो अण्णुण्णसरिसो, णामा-गोद-एक्कदरभागादो एदेसिं इक्कदरभागो अधिओ। 'अधिओ दु' मोहस्स भागो आवरणमंतराइय-एक्कदरभागादो अधिओ।

सव्वुवरि वेदणीए भागो अधिओ दु कारणं किंतु।
सुह-दुक्खकारणत्ता ठिदिव्विसेसेण सवाणं [सेसाणं]॥१२२॥

'सव्वुवरि वेदणीए' मोहभागादो वेदणीयभागो अधिगो, सव्वकम्मपदेसाणं उवरि वेदणीय-पदेसं अधियं। तस्स कारणं सुह-दुक्खकारणत्तादो। आउहीणं सेसाणं कम्म-पदेसाणं ठिदि-अधियत्तादो भागो अधिगो, सव्वत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागेण एगखंडमेत्तेण अधिओ। एवं सत्तविहबंधयाणं आउगवज्ज णामादीणं भाणियव्वं। एवं छव्विहबंधयाणं आउग-मोहवज्ज णामादीणं भाणियव्वं। णाणावरणादीणं अप्पप्पगो पदेसभागो अप्पप्पणो उत्तरपयडीओ जत्तियाओ बंधमागच्छंति, तत्तियाणु जहाजोग्गं विभंजिऊण गच्छइ।

छण्हं पि अणुक्कस्सो पदेसबंधो दु चउव्विहो होइ।
सेसतिए दुवियप्पो मोहाऊणं च सव्वत्थ॥१२३॥

'छण्हं पि अणुक्कस्सो' मोहाउग-वेदणीय-वज्ज पंच कम्माणि अणुक्कस्सपदेसबंधस्स उवसंतस्स देवभावेण वा सुहुमभावेण वा अणुक्कस्सपदेसबंधस्स सादिं सुहुमसंपराइय-अप्पणो काले उक्कस्स-बंधमाणो अणुक्कस्स बंधइ त्ति वा। सादवेदणीयस्स अणुक्कस्सपदेसबंधस्स सुहुमसंपराइगो अप्पणो काले उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स अणुकस्स बंधइ त्ति सादिबंधो। सेढिमणारूढं पडुच्च अणादि अब्भवसिद्धिं पडुच्च धुवं उक्कस्सं वा अबंधं वा बंधवुच्छेदं वा गंतूण अद्धुवो। वेदणीयस्स उक्कस्सबंधवुच्छेदं वा गंतूण अद्धुवो। 'सेसतिए दुवियप्पो' दुक्खस्स जहण्ण-अजहण्णाणं सादि अद्धुवबंधो। मोहमाउगाणं उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्ण-अजहण्णाणं सादि-अद्धुवबंधो।

तीसण्हमणुक्कस्सो उत्तरपगडीसु चउव्विहो बंधो।
सेसतिए दुवियप्पो सेसचउक्के वि दुवियप्पो॥१२४॥

'तीसण्हं अणुक्कस्सो' पंचणाणावरणीय थीणगिद्धितिग वज्ज छ दंसणावरण-अणंताणुबंधि वज्ज बारसकसाय-भय-दुगुंछ-पंचअंतराइयाणं तीसण्हं पगडीणं अणुक्कस्स पदेसबंधस्स, उक्कस्सादो अणुक्कस्सबंधमाणस्स वा सादि, अप्पप्पणो य बंधगुणट्ठाणं उक्कस्सं वा अप्पडिवण्णाणं अणादि, अब्भवसिद्धिं पडुच्च धुवं, उक्कस्सं वा अबंधं वा गंतूण अद्धुवं, उक्कस्स-जहण्ण-अजहण्णाणं सादि-अद्धुवबंधो। सेसाणं णउदिपयडीणं उक्कस्स-अणुक्कस्स-जहण्णाणं सादि अद्धुवं।

आउगस्स पदेसस्स छ सत्त मोहस्स णव दु ठाणाणि।
सेसाणि तणुकसाओ बंधइ उक्कस्सजोएण॥१२५॥

आउगस्स उक्कस्सपदेसबंधो चउगइ-सण्णिपज्जत्त-मिच्छादिट्ठि-सासण-असंजद-तिरिक्ख-मणुस-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदाणं अट्ठविहबंधयाणं उक्कस्स-जोगीणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्ट-माणस्स। मोहणीयस्स उक्कस्सपदेसबंधो चउगइसण्णिपंचिंदिय-पज्जत्त-मिच्छादिट्ठि-सासण-सम्मा-*दिट्ठि-सम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-तिरिक्ख-मणुस-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-अपुव्वकरण-अणियट्टीण उक्कस्सजोगीण आउगवज्ज सत्तकम्माण बंधमाणाणं* उक्कस्स-पदेसबंधे वट्ट-माणाणं होइ। 'सेसाणि तणुकसाओ' आउग-मोहवज्जाणं छण्हं कम्माणं उक्कस्सपदेसबंधो सुहुम-संपराइयस्स मोहाउगवज्ज छक्कम्माणि बंधमाणस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसस्स।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुमणिगोद-अपज्जत्तगस्स पढमे जहण्णगे जोगे ।
सत्तण्हं पि जहण्हं आउगबंधो वि आउस्स ॥१२६॥

'सुहुमणिगोद-अपज्जत्तगस्स' आउगस्स वज्जाणं सत्तण्णं कम्माणं जहण्णपदेसबंधो सुहुमणिगोद-अपज्जत्तबभव-पढमसमए[य]त्थ जहण्णजोगिस्स आउगवज्जसत्तकम्माणि बंधमाणस्स जहण्णपदेसबंधे वट्टमाणस्स । आउगस्स जहण्ण-पदेसबंधे सुहुमणिगोद जीव-अपज्जत्तगस्स खुद्दाभवग्गहण-तदिय-तिभागपढमसमए आउगं बंधमाणस्स अट्ठविधबंधगस्स जहण्णपदेसबंधे वट्टमाणस्स ।

सत्तरस सुहुमसरागे पण अणियट्टी य सम्मओ णवयं ।
अअदी विदियकसाए देसयदी तदियगे जददि ॥१२७॥

'सत्तरस सुहुमसरागे' पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-साद-जसकित्ति-उच्चगोद-अंतराइयाणं सत्तरसण्हं पगडीणं सुहुमसंपराइय आ[रुहमाणस्स]उवसामगस्स वा खवगस्स वा मोहाउगवज्ज छकम्माणि बंधमाणस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्स-पदेसबंधे वट्टमाणस्स । कोहसंजलणस्स उक्कस्स-पदेसबंधो अणियट्टिबादर-संपराइय-उवसामगस्स खवगस्स वा मोहणीय-चउविहबंधमाणस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स । एवं माणसंजलणस्स । णवरि मोहतिविहबंधगस्स । एवं मायासंजलणस्स वि । णवरि मोहदुविहबंधगस्स । एवं लोभसंजलणस्स वि । णवरि मोह-एगविधबंधगस्स । पुरिसवेदस्स उक्कस्सपदेसबंधो अणियट्टिबादरसंपराइय-उवसामगस्स वा खवगस्स वा उक्कस्सजोगिस्स मोहपंचविह-बंधगस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स । 'सम्मओ णवयं' णिद्दा-पचलाणं उक्कस्सपदेसबंधो चउगइपज्जत्त-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजद सम्मादिट्ठि-तिरिक्ख-मणुस-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-अपुव्वकरणसत्तमभाग-पढमभागगयाणं उक्कस्सजोगीणं आउगवज्ज सत्तकम्माणि बंधमाणाणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणाणं । एवं हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं । णवरि अपुव्वकरणचरमसमओ त्ति भाणियव्वं । एवमरदि-सोगाणं । णवरि पमत्तसंजदो त्ति भाणियव्वं । तित्थयरस्स उक्कस्स-पदेसबंधो मणुसपज्जत्त-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजद-अपुव्वकरण-सत्तमभागगयाणं एगूणतीस-णामाए सह आउगवज्ज सत्तकम्माणि बंधमाणाणं उक्कस्सजोगीणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणाणं होइ । 'अयदी विदियकसाए' अपच्चक्खाणावरणचउक्कस्स उक्कस्सपदेसबंधो चउगइपज्जत्त-असंजद-सम्मादिट्ठिस्स सत्तविह-बंधगस्स उक्कस्स जोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स । एवं पच्चक्खाणावरणचउक्कस्स । णवरि तिरिक्ख-मणुससंजदासंजदस्स ।

तेरस बहुप्पदेसो सम्मो मिच्छो य कुणदि पगडीओ ।
आहारमप्पमत्तो सेसपदेसुक्कडो मिच्छो ॥१२८॥

'तेरस बहुप्पदेसो' देवगइ-वेउव्वियसरीर-समचउरससरीर-हुंडसंठाण-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-पसत्थविहायगइ-सुभग-सुस्सर-आदिज्जाणं उक्कस्स-पदेसबंधो तिरिय-मणुस-सण्णिपंचिंदियपज्जत्तमिच्छादिट्ठिप्पहुइ जाव अपुव्वकरणसत्तमभागगयाणं णववीसणामाए सह सत्तविहबंधयाणं उक्कस्सजोगीण उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स[-णाणं] । मणुसाउगस्स पदेसबंधो सत्तमपुढवी-असंखेज्जवस्साउग वज्ज चउगइ-सण्णि-पज्जत्त-मिच्छादिट्ठि [स्स] देव-णेरइय-पज्जत्त-असंजदसम्मादिट्ठिस्स वा अट्ठविहबंधस्स वा उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स । देवाउगस्स उक्कस्सपदेसबंधो तिरिक्ख-मणुस-सण्णि-पज्जत्त-मिच्छादिट्ठि-सासण-सम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदाणं अट्ठविहबंधयाणं उक्कस्स-जोगीणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणाणं । असादवेदणीयस्स उक्कस्सपदेसबंधो चउगइ-सण्णि-पज्जत्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव पमत्तसंजदाणं सत्तविहबंधयाणं उक्कस्सजोगीणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणाणं। वज्जरिसभस्स उक्कस्सपदेसबंधो चउगइ-सण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्त-मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-[ट्ठीणं] देव-णेरइय-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं एगूणतीसणामाए सह सत्तविहबंधयाणं उक्कस्स-जोगीणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणाणं। आहारसरीर-तदंगोवंगाणं उक्कस्सपदेसबंधो अप्पमत्तसंजद-अपुव्वकरण-छ-सत्तमभागगयाणं तीसणामाए सह सत्तविह-बंधयाणं उक्कस्सजोगीणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणाणं। 'सेसपदेसुक्कडो मिच्छो' णिद्दाणिद्दा-पचलापचला-थीणगिद्धिमिच्छत्त-अणंताणुबंधिचउक्क-इत्थी-णउंसगवेद-णीचगोदाणं उक्कस्सपदेसबंधो चउगइसण्णिपंचिंदियपज्जत्तमिच्छादिट्ठि - सासणसम्मादिट्ठीणं सत्तविहबंधयाणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणाणं। णवरि मिच्छत्त-णवुंसयवेदाणं सासणसम्मादिट्ठी सामी ण होइ। णवुंसगवेद-णिच्चागोदाणं असंखिज्जवस्साउगो सामी ण होइ। णिरयाउगस्स उक्कस्सपदेसबंधो असंखिज्जवस्साउग वज्ज सण्णि-पंचिंदियतिरिक्ख-मणुसपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स अट्ठविहबंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स। तिरियाउगस्स पदेसबंधो असंखिज्जवस्साउग-आणदादिदेववज्ज चउगइ-सण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्त-मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं अट्ठविहबंधयाणं उक्कस्सजोगीणं उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणाणं। णवरि सत्तमपुढवीसासणो तिरिक्खाउगस्स सामी ण होइ। णिरयगइ-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी-अप्पसत्थविहायगइ-दुस्सराण उक्कस्सपदेसबंधो असंखिज्जवस्साउग-पज्जत्त-सण्णि-पंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुस-पज्जत्त-मिच्छादिट्ठिस्स अट्ठवीसणामाए सह सत्तविहबंधगस्स उक्कस्स-पदेसबंधे वट्टमाणस्स। तिरिक्खगइ-एइंदियजाइ-ओरालिय-तेज-कम्मइयसरीर-हुंडसंठाण-वण्णादिचदुक्क-तिरिक्खाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-उवघाद-थावर-बादर-सुहुम-अपज्जत्त-पत्तेग - साधारणसरीर - अथिर-असुभ-दुभग-अणादिज्ज- अजसकित्ती-णिमिणणामाणं उक्कस्सपदेसबंधो असंखिज्जवस्साउग वज्ज सण्णि-पंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुसपज्जत्त-मिच्छादिट्ठिस्स तेवीसणामाए सह सत्तविहबंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स। मणुसगइ-बेइंदियादिचउजाइ-[ओरालियसरीर-] ओरालियसरीरंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसरीर-संघडण-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-तसणामाण उक्कस्सपदेसबंधो असंखिज्जवस्साउगवज्ज सण्णिपंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुसपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स पणुवीसणामाए सह सत्तविह-बंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स। समचउर-हुंडवज्ज चउसंठाण-वज्जरिसभ-असंपत्तवज्ज चउसंघडणाणं उक्कस्सपदेसबंधो असंखेज्जवस्साउग वज्ज चउगइ-सण्णि-पंचिंदियपज्जत्तमिच्छादिट्ठिस्स वा सासणसम्मादिट्ठिस्स वा एगूणतीसणामाए सह सत्तविहबंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्स-पदेसबंधे वट्टमाणस्स। परघाद-उस्सास-पज्जत्त-थिर-सुभ-णामाणं उक्कस्सपदेसबंधो णेरइय-असंखिज्जवस्साउग-सणक्कुमारादि देव वज्ज तिरिक्खगइ-सण्णि-पज्जत्त-मिच्छादिट्ठिस्स पणवीसणामाए सह सत्तविह-बंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स। एवं आदाव-उज्जोवाणं। णवरि छव्वीसणामाए सह सत्तविहबंधगस्स उक्कस्सजोगिस्स उक्कस्सपदेसबंधे वट्टमाणस्स।

उक्कस्सजोगी सण्णी पज्जत्तो पगडिबंधमप्पदरो।
कुणइ पदेसुक्कस्सं जहण्णगे जाण विवरीदं ॥१२९॥

उक्कस्सजोगी सण्णी पंचिंदियपज्जत्तो छहि पज्जत्तीहि [पज्जत्तयदो] थोवा पगडी बंधमाणो उक्कस्सपदेसबंधं कुणइ। जहण्णपदेसबंधं जहण्णजोगी कुणइ। केसिंचि कम्माणं सुहुम-एइंदिय-अपज्जत्तो, केसिंचि कम्माणं असण्णि-पंचिंदिय-अपज्जत्तो, केसिंचि कम्माणं असंजदसम्मादिट्ठि-अपज्जत्तो, केसिंचि कम्माणं अप्पमत्तसंजदो बहुयाओ पगडीओ बंधमाणो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घोलणजोगिमसण्णी बंधइ चदु दोण्णि अप्पमत्तो य ।
पंचासंजदसम्मो भवादिसुहुमो भवे सेसा ॥१३०॥
णिरयाउग देवाउग णिरयदुगं चेव जाण चत्तारि ।
आहारदुगं-दुगं [चेव य] देवचउक्कं तु तित्थयरं ॥१३१॥

'घोलणजोगिमसण्णी' उक्कस्सपरिणामजोगादो हीयमाणरूवमागंतूण सव्वजहण्णपरिणामजोगो घोलमाणो जोगो त्ति वुच्चइ। णिरय-देवाउगाणं जहण्णपदेसबंधो असण्णि-पंचिंदियपज्जत्त-जहण्णपरिणामजोगस्स अट्ठविहबंधगस्स जहण्णपदेसबंधे वट्टमाणस्स। एवं णिरयगइ-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीणं। णवरि अट्ठवीसणामाए सह अट्ठविहबंधगस्स। 'दुण्णि अप्पमत्तो दु' आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगाणं जहण्णपदेसबंधो अप्पमत्त-अपुव्वकरण-छ-सत्तमभागगयाणं एक्कत्तीसणामाए सह अट्ठविहबंधगाणं जहण्णपरिणामजोगाणं जहण्णपदेसबंधे वट्टमाणाणं। 'पंचासंजदसम्मो' देवगइ-वेउव्वियसरीर - वेउव्वियसरीरंगोवंग - देवगइपाओग्गाणुपुव्वीणामाणं जहण्णपदेसबंधो असंखेज्जवरसाउग वज्ज मणुस-असंजदसम्मादिट्ठि-पढमसमए आहारक-पढमसमए तब्भवत्थस्स एगूणतीसणामाए सह सत्तविहबंधगस्स जहण्णउववाद-जोगिस्स जहण्णपदेसबंधे वट्टमाणस्स। तित्थयरस्स जहण्णपदेसबंधो सोधम्मादिदेव-पढम-पुढवीणेरइयअसंजदसम्मादिट्ठि-पढमसमए आहारकपढमसमए तब्भवत्थस्स तीसणामाए सह सत्तविहबंधगस्स जहण्णउववादजोगिस्स जहण्णपदेसबंधे वट्टमाणस्स। 'भवादि सुहुमो भवे सेसा' सेसाणं पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-सादासाद- मिच्छत्त-सोलसकसाय - णवणोकसाय-णिच्चुच्चगोद-पंचंतराइयाणं जहण्णपदेसबंधो सुहुमणिगोदपज्जत्तगस्स पढमसमए आहारक-पढमसमए तब्भवत्थस्स सत्तविहबंधगस्स जहण्णउववादजोगिस्स जहण्णपदेसबंधे वट्टमाणस्स। तिरिक्ख-मणुसाउगाणं जहण्णपदेसबंधो सुहुमणिगोदजीव-अपज्जत्तगस्स खुद्दाभवग्गहणतदिय-तिभाग-पढमसमए आउगं बंधमाणस्स जहण्णपरिणामजोगिस्स जहण्णपदेसबंधे वट्ट-माणस्स। तिरिक्खगइ-बीइंदियादि-चदुजाइ-ओरालिय - तेजा-कम्मइयसरीर-छसंठाण - ओरालिय-सरीर-[ओरालियसरीर-] अंगोवंग - छसंघडण - वण्णादिचदुक्क - तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुगादिचउक्क-उज्जोव-दोविहायगइ-तस-बादर - पज्जत्त-पत्तेगसरीर-थिरादि छ जुगल-णिमिणणामाणं जहण्णपदेसबंधो सुहुमणिगोद-अपज्जत्तगस्स पढमसमए अणाहारकपढमसमए तब्भ-वत्थस्स तीसणामाए सह सत्तविहबंधगस्स जहण्णउववादजोगिस्स जहण्णपदेसबंधे वट्टमाणस्स। एवं मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीणं। णवरि एगूणतीसणामाए सत्तविहबंधगस्स। एवं एइंदिय-आदाव-थावरणामाणं। णवरि छव्वीसणामाए सह सत्तविहबंधगस्स। एवं सुहुम-अपज्जत्त-साहारणणामाणं। णवरि पणुवीसाए सह सत्तविहबंधगस्स।

जोगा पयडि-पदेसा ठिदि-अणुभागं कसायदो कुणइ ।
काल-भव-खेत्तपेती [पेही] उदओ सविवाग अविवागो ॥१३२॥

जोगादो पयडिबंधं पदेसबंधं च कुणइ। कसायदो ठिदिबंधं अणुभागबंधं च कुणइ। सीदादिकाल-णिरयादिभव-रदणपभादिखेत्त-वत्थादिदव्वाणं इट्ठाणिट्ठाणं पेक्खिदूण कम्मोदओ उदीरणोदओ चेव होदि।

सेढि-असंखेज्जदिमे जोगट्ठाणाणि हुंति सव्वाणि ।
तेसिमसंखिज्जगुणो पगडीणं संगहो सव्वो ॥१३३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तासिमसंखेज्जगुणा ठिदीविसेसा हवंति पगडीणं ।
ठिदिबंध-अज्झवज्ज [स्स] ट्ठाणा [अ] संखिज्जगुणाणि एत्तो दु ॥१३४॥
तेण असंखेज्जगुणा अणुभागा हुंति बंधठाणाणि ।
एत्तो अणंतगुणिया कम्मपदेसा मुणेयव्वा ॥१३५॥
अविभागपलिदच्छेदो [दा] अणंतगुणिदा हवंति इत्तो दु ।
सुदपवरदिट्ठिवादे विसिट्ठमदओ परिकथंति ॥१३६॥

सेढिमसंखेज्जदिजोणीसु सुहुमणिगोदजीव-अपज्जत्तगस्स जहण्ण-उववादजोगट्ठाणप्पहुदि जाव सण्णि-पंचिंदिय पज्जत्त-उक्कस्सपरिणामजोगट्ठाणो त्ति पक्खेवुत्तरकमेण जोगट्ठाणाणि जगसेढीए असंखेज्जभागमेत्ताणि भवंति । पक्खेवपमाणं जहण्णजोगट्ठाणस्स सेढीए असंखेज्जदि-भागमेतखंडगदस्स एगखंडं होदि । तेसिं जोगट्ठाणाणं णाणावरणादि-सव्वाओ पयडीओ असंखेज्ज-गुणाओ । तासिं पयडीणं सव्वपयडिट्ठिदिबंधवियप्पा असंखिज्जसागरोवमगुणा । तेसिं ठिदिबंध-वियप्पाण ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जलोगगुणाणि हुंति । 'तेण असंखेज्जगुणा तेसिं वा, तेसिं ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं अणुभागबंधट्ठाणाणि असंखिज्जलोगगुणाणि हुंति । तेसिं अणुभागबंधट्ठाणाणं अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणा सिद्धाणं अणंतभागा कम्मपदेसा हुंति । 'अविभागपलियछेदो' तेसिं कम्मपदेसाणं अविभागपलिदछेदा सव्वजीवेहिं अणंतगुणा होंति । ['सुदपवरदिट्ठिवादे'] सुदप्पहाणदिट्ठिवादे कोट्ठबुद्धिपहुइसंजुत्तगणहरपहुदिआयरिया एवं वक्खाणं कुव्वंति । उक्तं च—

"सेढिमसंखेज्जदिभागमेत्ता जोगट्ठाणाणि हुंति सव्वाणि" । तस्स संदिट्ठी—एगजोगट्ठाणं पडि जदि असंखेज्जलोगमेत्तपयडीओ लहामो, तो सेढिअसंखेज्जइभागमेत्तजोगट्ठाणेहिं केत्तियाओ
१
पयडीओ लहामो १ १ । ० ० । १ । एगपयडि पडि जदि ट्ठिदिवियप्पाणि असंखेज्जाणि लभामो,
१
०
तो असंखेज्जलोगमेत्तपयडिवियप्पेहिं केत्तियाणि ठिदिविसेसाणि लभामो १ ० ।22।१।
०
एगट्ठिदिविसेसं पडि असंखेज्जाणि ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि लभामो, तो असं-खेज्जलोगमेत्तट्ठिदिविसेसेहिं केत्तियाणि ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि लभामो
१
१ १ । 22०।१। एगट्ठिदिबंधज्झवसाणठाणं पडि जदि [असंखेज्जलोगमेत्त] अणुभाग-
१
बंधज्झवसाणट्ठाणाणि लभामो, तो असंखेज्जलोगमेत्तठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणेहिं केत्तियाणि
१ १
अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि लभामो । १ १ । 2222 । ० ।   एगअणुभागबंधज्झवसाणं
१
पइ जदि असंखेज्जदिअणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि लभामो, तो असंखेज्जलोगमेत्तट्ठिदि-
१
बंधज्झवसाणठाणेहिं केत्तियाओ अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणाणि लभामो ? । १ १ । 222
१
१ १
2222 । ० अणुभागबंधज्झवसाणट्ठाणेहिं अणंतगुणागारे कदे कम्मपदेसा मुणेदव्वा । १ । १ ।
१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2222222। १/० । कम्मपदेसेहिं अणंतगुणगारे कदे अविभागपलिदच्छेदा भवंति १। १/१ । 22222 22 । १ । १ । योगप्रकृतिस्थित्यध्यवसानानुभागकर्मप्रदेशाः पल्यस्य छेदविभागा कर्मविभागाश्च क्रमेण ज्ञातव्या इति ।

एसो बंधसमासो पिंडुक्खेवेण वण्णिदो कोइ [किंचि]।
कम्मप्पवादसुदसागरस्स णिस्संदमेत्तो दु ॥१३७॥

एसो बंधसंखेवो संखेवेण गहिदूण कहिओ कोइ कम्मप्पवाद-सुदसमुद्दो णिस्संदमेत्तो दु ।

बंधविहाणसमासो संखेवेण रइदो थोवसुद-अप्पबुद्धिणा दु ।
बंधे मुक्खे कुसला मुणओ पूरेदूण परिकहेंतु ॥१३८॥
इय कम्मपयडिपयदं संखेवुद्दिट्ठणिच्छयमहत्थं ।
जो उवजुज्जइ बहुसो सो जाणइ बंध-मुक्खट्ठं ॥१३९॥

'इयकम्मपयडिपयदं' एवं कम्मपगडियवियारं संखेवेणुद्दिट्ठणिच्छयमहत्थं जो मुणी उवओगं करेइ, सो जाणइ बंध-मोक्खाणं अत्थं ।

सो मे तिहुयणसहिदो सुद्धो बुद्धो णिरंजणो सिद्धो ।
दिसदु वरणाणलाभं चरित्तसुद्धिं समाहिं वा ॥१८॥
आदि-मज्झवसाणे मंगलं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
तो कदमंगलविणओ इणमो सुत्तं पवक्खामि ॥१९॥

सदगपंजिया समत्ता

[इदि चउत्थो सतगसंगहो समत्तो]

पंचमो

सत्तरि-संगहो

वंदित्ता जिणचंदं दुण्णय-तम-पडल-पाडयं वरदं ।
सत्तरिगाहसमुद्दं बहु-भंग-तरंग-संजुत्तं ॥

सिद्धपदेहिं महत्थं बंधोदयसंतपगडिठाणाणि ।
वुच्छं सुण संखेवं णिस्सदं दिट्ठिवादादो ॥१॥

'सिद्धपदेहिं महत्थं' [महत्थं] णाम ख्यातनिपातोपसर्गविरहितं, सभावसिद्धेहिं पदेहिं बंधोदयसंतपगडिठाणाणं वुच्छं महत्थं संखेवं सुण दिट्ठिवादस्स णिस्सदं । उदयगहणेण उदीरणा वि गहिदा । सत्तगहणेण उवसमणं खवणं च गहियं ।

कदि बंधंतो वेददि कइया कदि पगडिठाणकम्मंसा ।
मूलुत्तरपगडीसु य भंगवियप्पा य बोधव्वा ॥२॥

'कदि बंधंतो वेददि' कदि पगडिट्ठाणाणि बंधमाणो केत्तियाणि पगडिट्ठाणाणि वेदेदि, कदि वा संतकम्मपगडिट्ठाणाणि तस्स । मूलपगडीसु उत्तरपगडीसु च भंगवियप्पा जाणियव्वा ।

अट्ठविह सत्त सो[छ]बंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा ।
एगविधे तिवियप्पो एगवियप्पो अबंधम्मि ॥३॥

अट्ठविहबंधगेसु सत्तविहबंधगेसु छव्विहबंधएसु च अट्ठविह-उदयकम्माणि, अट्ठेव संतकम्माणि हुंति । वेदणीय-एगविहबंधगे उवसंतकसाये मोहणीयवज्ज सत्त उदयकम्माणि अट्ठ संतकम्माणि । एस इक्को वियप्पो । खीणकसाए मोहणीयवज्ज सत्त उदय-कम्माणि । संतकम्माणि सत्त । एस विदिओ वियप्पो । सजोगिकेवलिम्मि चत्तारि अघादिकम्माणि उदय-संताणि त्ति । एस तदिओ वियप्पो । अबंधम्मि अजोगिकेवलिम्हि चत्तारि अघादिकम्माणि उदय-संताणि त्ति एक्को चेव वियप्पो ।

सत्तट्ठ बंध अट्ठोदयंस तेरससु जीवठाणेसु ।
इक्कम्हि पंच भंगा दो भंगा हुंति केवलिणो ॥४॥

'सत्तट्ठबंध अट्ठोदयंस' सण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्त वज्ज तेरससु जीवसमासेसु सत्तकम्माणि अट्ठकम्माणि वा बंधट्ठाणाणि, उदय-संतकम्मट्ठाणाणि अट्ठ । 'इक्कम्हि पंच भंगा' सण्णि-पंचिंदिय-पज्जत्त-जीवसमासेसु अट्ठबंधोदयसंतकम्मट्ठाणाणि त्ति एओ वियप्पो । सत्त कम्माणि बंधट्ठाणं, अट्ठ उदय-संतकम्मट्ठाणाणि त्ति विदिओ वियप्पो । छकम्माणि बंधट्ठाणं अट्ठ उदय-संतकम्मट्ठाणाणि त्ति तदिओ वियप्पो । वेदणीयमेक्कं चेव बंधट्ठाणं, सत्त उदयकम्माणि, संतकम्माणि अट्ठ इदि चउत्थो वियप्पो । वेदणीयमेक्कं चेव बंधट्ठाणं, सत्तउदय-सत्तसंत-कम्मट्ठाणाणि, पंचमो वियप्पो । 'दो भंगा हुंति केवलिणो' सजोगिकेवलिस्स वेदणीयमेक्कं चेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधट्ठाणं, चत्तारि अघादिकम्माणि उदय-संतट्ठाणाणि त्ति। इदि एक्को वियप्पो। एवं अजोगिकेवलिस्स। णवरि बंधट्ठाणं णत्थि त्ति विदिओ वियप्पो।

अट्ठसु एगवियप्पो छसुवि गुणसण्णिदेसु दुवियप्पो।
पत्तेयं पत्तेयं बंधोदयसंतकम्माणं ॥५॥

'अट्ठसु एगवियप्पो' सम्मामिच्छादिट्ठि-अपुव्व-अणियट्टीसु पत्तेयं पत्तेयं सत्त बंधकम्माणि उदय-संतकम्माणि अट्ठ। सुहुमसंपराइयम्मि बंधकम्माणि छ, उदय-संतकम्माणि अट्ठ। उवसंतकसायम्मि बंधकम्म वेदणीयं। मोहणीयवज्ज उदयकम्माणि सत्त। अट्ठ संतकम्माणि। खीणकसायम्मि वेदणीय बंधं। मोहणीयवज्ज सत्त उदयकम्माणि, संतकम्माणि सत्त। सजोगिकेवलिम्मि वेदणीयकम्मबंधो, चत्तारि अघादिकम्माणि उदय-संताणि। एवं अजोगिकेवलिस्स। णवरि बंधो णत्थि। 'छसु वि गुणसण्णिदेसु दुवियप्पो' मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-अप्पमत्तासंजदेसु पत्तेयं पत्तेयं अट्ठ बंधुदयसंतकम्मट्ठाणाणि त्ति एओ वियप्पो। सत्तकम्माणि बंधट्ठाणाणि, अट्ठ उदय-संतकम्मट्ठाणाणि त्ति विदिओ वियप्पो।

बंधोदयकम्मंसा णाणावरणंतराइगे पंच।
बंधोवरमे वि तहा उदयंसा हुंति पंचेव ॥६॥

'बंधोदयकम्मंसा णाणावरणंतराइगे पंच' बंधोदयसंतकम्माणि पंचेव। बंधवुच्छेदे जादे वि उदय-संतकम्माणि पंच।

बंधस्स य संतस्स य पगडिट्ठाणाणि तिण्णि सरिसाणि।
उदयट्ठाणाणि दुवे चदु पणयं दंसणावरणे ॥७॥

बंध-संताणं तिण्णि पगडिट्ठाणाणि सरिसाणि। तं जहा-दंसणावरणसव्वपयडीओ घेत्तूण णवेत्ति एगं बंधट्ठाणं। णिद्दाणिद्दा पचलापचला थीणगिद्धी वज्ज सेसपगडीओ घेत्तूण छ इदि विदियं बंधट्ठाणं। एदाओ चेव णिद्दा पचला वज्जाओ पगडीओ घेत्तूण चत्तारि त्ति तदियं बंधट्ठाणं। ताणि चेव तिण्णि संतट्ठाणाणि हुंति। उदयट्ठाणाणि दुण्णि चत्तारि वा, पंच वा। तं जहा-चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं अवहिदंसणावरणीयं [केवलदंसणावरणीयं] एयाओ पयडीओ घेत्तूण एगं उदयट्ठाणं। एदाओ चेव चत्तारि पयडीओ णिद्दाणिद्दा-पचलापचला थीणगिद्धीण णिद्दा-पचलाणं एक्कदर-सहियायो घेत्तूण पंचेत्ति विदियमुदयट्ठाणं।

विदियावरणे णवबंधगेसु चदु पंच उदय णव संता।
सो [छ] बंधगेसु एवं तह चदुबंधे छ-णवंसा य ॥८॥

'विदियावरणे' दंसणावरणे णवकम्माणि बंधमाणेसु चत्तारि वा पंच वा उदयकम्माणि, णव संतकम्माणि। एवं दो भंगा। छ कम्माणि बंधमाणेसु वि चत्तारि वा पंच वा उदयकम्माणि, णव संतकम्माणि [त्ति] दो चेव भंगा। चत्तारि कम्माणि बंधमाणेसु चत्तारि वा, पंच वा, उदयकम्माणि, णव वा छ वा संतकम्माणि ६।४।६, ६।५।६; ६।४।६, ६।५।६; ४।४।६, ४।५।६; ४।४।६, ४।५।६। एवं चत्तारि भंगा।

उवरदबंधे चदु पंच उदय, णव छच संत चदु जुगलं।

अबंधगे चत्तारि वा पंच वा उदयकम्माणि; णव वा छ वा संतकम्माणि, चत्तारि उदयकम्माणि; संत कम्माणि चत्तारि ।०।४।६, ०।५।६, ०।४।६; ०।५।६; ०।४।४ एवं पंचभंगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदणियाउगगोदे विभज्ज मोहं परं वुच्छं ॥९॥

गोदेसु सत्त भंगा अट्ठ य भंगा हवंति वेदणिए ।
पण णव णव पण भंगा आउचउक्के वि कमसो दु ॥१०॥

साद बंधं, सादं उदयं, सादासादं संतं; सादं बंधं, असादं उदयं, सादासादं संतं; असादं बंधं, सादं उदयं, सादासादं संतं; असादं बंधं, असादं उदअं, सादासादं संतं। उवरदबंधे सादं उदयं सादासादं संतं, असादं उदयं सादासादं संतं, सादं उदयं सादं संतं; असादमुदयं असादं संतं, एवं वेदणीयस्स अट्ठ भंगा हुंति।

णेरइयस्स णिरयाउगमुदयं णिरयाउगसंतं, तिरिक्खाउगं बंधं णिरयाउगमुदयं णिरय-तिरियाउगं संतं, मणुसाउगं बंधं णिरयाउगं [उदयं] णिरय-मणुसाउगं संतं, णिरयाउगं उदयं [णिरय-तिरियाउगं संतं, णिरयाउगं उदयं] णिरयमणु-साउगं संतं। एवं णिरयाउगस्स पंच भंगा हुंति। तिरिक्खस्स तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं, णिरयाउगं बंधं तिरिक्खाउयं उदयं तिरिक्खाउगं णिरयाउगं संतं, तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खणिरयाउगं संतं, तिरिक्खाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं, तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं, मणुसाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं, तिरिक्खाउगं उदयं, तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं, देवाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं, तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं। एवं तिरिक्खाउगस्स णव भंगा हुंति। मणुसस्स मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं, णिरयाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-णिरयाउगं संतं, मणुसाउगं उदयं मणुस-णिरयाउगं संतं, तिरिक्खाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरिक्खाउगं संतं, मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरिक्खाउगं संतं, मणुसाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं, मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं, देवाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं, मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं। एवं मणुसाउगस्स वि णव भंगा हुंति। देवस्स वि देवाउगं उदयं देवाउगं संतं, तिरिक्खाउगं बंधं देवाउगं उदयं देव-तिरिक्खाउगं संतं, देवाउगं उदयं देव-तिरिक्खाउगं संतं, मणुसाउगं बंधं देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं, उवरदबंधे देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं। एवं देवाउगस्स वि पंच भंगा हुंति।

उच्चं बंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचसंतं, उच्चं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचसंतं, णीचं बंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचसंतं, णीचं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचसंतं, णीचं बंधं णीचं उदयं णीचं संतं, उव्विल्लिदम्मि उच्चे तेउ-वाउम्मि बोधव्वा। उवरदबंधे उच्चं उदयं उच्च-णीचसंतं, उच्चं य उदयं उच्चं संतं। एवं गोदस्स वि सत्त भंगा हुंति।

वावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच।
चदु तिद दुगं च एगं बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥११॥

वावीस एक्कवीस सत्तारस तेरस णव पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि इक्क एदाणि दस बंधट्ठाणाणि मोहणीयस्स। एदेसिं वावीसादीणं पगडिणिद्देसो सदगे वुत्तकमेण णादव्वो।

इक्कं च दो व चत्तारि तदो एगाधिया दसुक्कस्सं।
ओघेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणाणि णव हुंति ॥१२॥

इक्कं दोण्णि चत्तारि पंच छ सत्त अट्ठ णव दस एदाणि णव उदयट्ठाणाणि मोहणीयस्स हुंति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठ य सत्त य छक्क य चदु तिग दुग एग अधिग वीसाणि ।
तेरस वारेगारं एत्तो पंचादि-एगूणं ॥१३॥
संतस्स पगडिठाणाणि मोहणीयस्स हुंति पण्णरसं ।
बंधोदयसंते पुण भंगवियप्पा बहु जाणे ॥१४॥

अट्ठावीसं सत्तावीसं छव्वीसं चउवीसं तेवीसं वावीसं इक्कवीसं तेरस बारस इक्कारस पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि इक्क एदाणि पण्णरस संतट्ठाणाणि मोहणीयस्स। एदेसिं अट्ठावीसादीणं पयडि-णिद्देसो। तं जहा—मोहणीयस्स सव्वपगडीओ घेत्तूण अट्ठवीसं। अट्ठवीसादो सम्मत्ते उव्वेल्लिदे सत्तावीसं। सत्तावीसादो सम्मामिच्छत्ते उव्वेल्लिदे छव्वीसं। अट्ठावीसादो अणंताणुबंधिचदुक्के विसंजोइए चउवीसं। चउवीसादो मिच्छत्ते खविए तेवीसं। तेवीसादो सम्मामिच्छत्ते खविए वावीसं। वावीसादो सम्मत्ते खविए एक्कवीसं। एक्कवीसादो अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणा-वरण-अट्ठकसाएसु खविएसु तेरस। तेरसादो णउंसयवेदे खविए वारस। वारसादो इत्थीवेदे खविए एक्कारस। एक्कारसादो हस्स रइ अरइ सोग भय दुगुंछा एदेसु छणोकसाएसु खविएसु पंच। पंचादो पुरिसवेदे खविदे चत्तारि। चउक्कादो कोहसंजलणे खविदे तिण्णि। तिगादो माणसंजलणे खविदे दोण्णि। दुगादो मायसंजलणे खविदे एक्कं। एक्केक्कस्स सत्तट्ठाणस्स इक्केक्को चेव भंगो। मोहणीयस्स संतकम्मट्ठाणाणि अट्ठावीसादीणि पुव्वुत्ताणि पण्णरस हुंति। 'बंधोदय-संते पुण भंगो णे [भंगवियप्पा बहु जाणे]' बंधोदयसंतकम्मकम्मट्ठाणेसु भंगवियप्पा बहुगा जाणियव्वा।

सो[छव्-]वावीसे चदु इगिवीसे सत्तरस तेरस दो दो दु ।
णवबंधगे वि दोण्णि दु एगेगमदो परं भंगा ॥१५॥

[वावीसबंधट्ठाणे छ भंगा]। इक्कवीसबंधट्ठाणे चत्तारि भंगा। सत्तारसबंधट्ठाणे दो भंगा। तेरसबंधट्ठाणे दो चेव। णवबंधट्ठाणे दो भंगा। पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि इक्क एदेसु पंचसु बंधट्ठाणेसु इक्केक्को चेव भंगो। एदेसिं वावीसादिबंधट्ठाणाणं पयडिणिद्देसो भंगपरूवणा च सदगे वुत्तकमेण णादव्वा।

दस वावीसे णव इगिवीसे सत्तादि उदयकम्मंसा ।
छादी णव सत्तरसे तेरे पंचादि अट्ठेव ॥१६॥

'दस वावीसे' वावीसबंधट्ठाणे सत्त अट्ठ णव दस उदयट्ठाणाणि। तं जहा—मिच्छत्तं अणंताणुबंधीणमेक्कदरं अपच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं [पच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं] संजलणाणमेक्क-दरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रइ—अरइ-सोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछाओ, एदाओ पयडीओ घेत्तूण दस-उदयट्ठाणं। चत्तारि कसायभंगा तिण्णि वेद-भंगेहिं गुणिया वारस १२। ते चेव जुगल-दोभंगेहिं गुणिया चउवीस भंगा हुंति २४। एवं दसण्हं इक्को चउवीसो। एदाओ चेव पगडीओ भय-विरहियाओ घेत्तूण पढम-णवउदयट्ठाणं। तस्स इक्को चेव पढम-चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछ-विरहियाओ भय-सहियाओ घेत्तूण विदियं णव-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। अणंताणुबंधी वज्ज सेसपगडीओ घेत्तूण तदियं णव-उदयट्ठाणं। एदस्स वि तदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पयडीओ भय-रहियाओ घेत्तूण पढमं अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछ-विरहियाओ घेत्तूण विदियं अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भय-दुगुंछविरहिय अणंताणु बंधि-इक्कदरसरहियाओ [इक्कदरसहियाओ] घेत्तूण तदिय-अट्ठउदयट्ठाणं। एदस्स वि तदिओ चउवीस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंगो। एदाओ चेव पगडीओ अणंताणुबंधि-भय-दुगुंछविरहियाओ घेत्तूण सत्तूदयट्ठाणं। एदस्स वि एक्को चउवीसभंगो।

एक्कवीसबंधट्ठाणे सत्त अट्ठ णव उदयट्ठाणाणि। तं जहा—मिच्छत्तं वज्ज सेसपुव्वुत्त-पगडीओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं। एदस्स वि एक्को चउवीसभंगो। एदाओ चेव भय-विरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चेव चउवीसभंगो। एदाओ चेव दुगुंछ-विरहियाओ भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव भय-दुगुंछाविरहियाओ घेत्तूण सत्तूदयट्ठाणं। एदस्स वि इक्को चेव चउवीसभंगो।

सत्तरसबंधट्ठाणे छ सत्त अट्ठ णव उदयट्ठाणाणि। तं जहा-सम्मामिच्छत्तं अपच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं पच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेयाणमेक्कदरं हस्स-रइ-अरइ-सोग-दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा च,एदाओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं। एदस्स वि एक्को चउवीसभंगो। एदाओ चेव सम्मामिच्छत्तविरहियाओ सम्मत्तसहियाओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव भय-रहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव भय-सहिय दुगुंछरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव सम्मत्त-भयरहिय सम्मामिच्छत्त-दुगुंछ सहियाओ वा घेत्तूण अट्ठउदयट्ठाणं। एदस्स तिदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव दुगुंछ-रहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स चउत्थो चउवीसभंगो। सम्मत्त-रहिय पुव्वुचरियपगडीओ घेत्तूण वा असंजदउवसम-सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठिम्मि अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स पंचमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव सम्मामिच्छत्तसहिय-भय दुगुंछविरहियाओ घेत्तूण सग [सत्त] उदयट्ठाणं। पढमो चउवीसभंगो। सम्मत्त-सहिय सम्मामिच्छत्त-विरहिय-असेसपगडीओ घेत्तूण वा सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव सम्मत्त-भयरहिय-दुगुंछसहियाओ घेत्तूण वा असंजद-उवसम-सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठिम्मि सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव दुगुंछ-रहिय-भयसहियाओ घेत्तूण सत्त उदयट्ठाणं। एदस्स चउत्थो चउवीसभंगो। एदाओ चेव भय-दुगुंछविरहियाओ घेत्तूण वा-छ-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एवं चेव सम्मत्त-रहिय-असंजद-उवसमसम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठिम्मि उदयट्ठाणं।

तेरस बंधट्ठाणे पंच छ सत्त अट्ठ उदयट्ठाणाणि। तं जहा-सम्मत्तं पच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रइ अरइ-सोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भयदुगुंछा च, एदाओ पयडीओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो। एदाओ चेव भय-रहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव दुगुंछ-रहिय भय-सहिय घेत्तूण वा सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ-चउवीसभंगो। एदाओ चेव सम्मत्त-रहिय दुगुंछा-सहियाओ घेत्तूण वा संजदासंजद-उवसमसम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठिम्मि सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव भय-रहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव भयसहियाओ दुगुंछरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीस-भंगो। एदाओ चेव भयरहिद-सम्मत्तसहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव भय-दुगुंछ-सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण पंच-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो।

चत्तारि आदि णवबंधगेसु उक्कस्स सत्त उदयंसा।
पंचविध बंधगे पुण उदओ दोण्हं मुणेदव्वो ॥१७॥

'चत्तारि आदि णव बंधगेसु' णवबंधट्ठाणे चत्तारि पंच छ सत्त उदयट्ठाणाणि। तं जहा—सम्मत्तं चउसंजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रइ अरइ-सोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुगु'छा च । एदाओ पगडीओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय-रहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं-एदस्स इक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगु'छ-रहिय-भय-सहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मत्त-रहिय-दुगु'छसहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं उवसमखइयम्मि । एदस्स चउवीसभंगो । एदाओ चेव भय-रहियाओ घेत्तूण पंच-उदयट्ठाणं । एदस्स एक्को चउवीसभंगो । एदाओ चेव दुगु'छ-रहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा पंच-उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीसभंगो । सम्मत्तसहियाओ भयरहियाओ घेत्तूण वा पंचउदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीसभंगो । एदाओ चेव सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण चत्तारि उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीसभंगो ।

पंचविधबंधट्ठाणे चउसंजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं एदाओ घेत्तूण एक्कमुदयट्ठाणं । एदस्स बारस भंगा ।

एक्कं च दोण्णि चउबंधगेसु उदयंसया दु बोधव्वा ।
इत्तो परं तु इक्कं उदयंसा होदि सेसेसु ॥१८॥

'इक्कं च दो व तिण्णि चउबंधगेसु' चउविहबंधट्ठाणे दोण्णि उदयट्ठाणाणि । तं जहा—चउसंजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं, एदाओ घेत्तूण एक्कं उदयट्ठाणं । एदस्स बारस भंगा । चउसंजलणाणमेक्कदरं एयं उदयट्ठाणं । एदस्स चत्तारि भंगा । तिण्हं बंधट्ठाणे कोहवज्ज तिण्हं संजलणाणमेक्कदरं । एक्कं उदयट्ठाणं । एदस्स तिण्णि भंगा । दुविहबंधट्ठाणे कोह-माण वज्ज दुण्हं संजलणाणमेक्कदरं, एक्कं उदयट्ठाणं । एदस्स दो भंगा । एयविधबंधगे लोभसंजलणमेक्कं उदयट्ठाणं । एदस्स एक्को चेव भंगो । अबंधगेसु सुहुमलोहसंजलणं । एक्कं उदयट्ठाणं । एदस्स एक्को चेव भंगो ।

इक्क य छक्केयारं दस सत्त चउक्क इक्कयं चेव ।
एदे चउवीसगदा चउवीस दुगेगमेगारं ॥१९॥

णव पंचाणउदिसदा उदयवियप्पेण मोहिया जीवा ।
उणहत्तरि-एगत्तरि-पयबंधसदेहिं विण्णेया ॥२०॥

'इक्क य छक्केयारं' दस-उदयट्ठाणे एक्को चउवीसो । णव-उदयट्ठाणे छ चउवीसा । अट्ठ-उदयट्ठाणे एगारस चउवीसा । सत्त-उदयट्ठाणे दस चउवीसा । छ उदयट्ठाणे सत्त चउवीसा । पंच-उदयट्ठाणे चत्तारि चउवीसा । चत्तारि-उदयट्ठाणे इक्को चउवीसो । दो-उदयट्ठाणे चउवीस-भंगा । एक्कोदयट्ठाणे एक्कारस भंगा ।

'णव पंचाणउदिसदा' दसादिचदुक्कंतं चउवीस गणण वलागा [सलागा] चालीस, चउवीसेण गुणिया एत्तिया हु'ति ९६० । एदेसु दो-उदयट्ठाणे चउवीस भंगा, एक्क-उदयट्ठाणे इक्कारस भंगा, मेलिया सव्वे उदयवियप्पा एत्तिया हु'ति ९९५ ।

दस-उदयट्ठाणे इक्का चउवीससलागा दसपयडीहिं गुणिया एत्तिया हु'ति १० । णव-उदयट्ठाणे छ चउवीससलागा णवपगडीहिं गुणिया एत्तिया हु'ति ५४ । अट्ठ-उदयट्ठाणे इक्कारस चउवीस-सलागा अट्ठपगडीहिं गुणिया एत्तिया हु'ति ८८ । सत्त-उदयट्ठाणे दस चउवीससलागा सत्त-पगडीहिं गुणिया एत्तिया हु'ति ७० । [छ-उदयट्ठाणे] सत्त चउवीससलागा छ पयडीहिं गुणिया एत्तिया हु'ति ४२ । पंच-उदयट्ठाणे चत्तारि चउवीस सलागा पंचपगडीहिं गुणिया एत्तिया हु'ति २० । चउ-उदयट्ठाणे एग चउवीससलागा चउपयडीहिं गुणिया एत्तिया हु'ति ४ । एदे सव्वे मेलिया एत्तिया हु'ति २८८ । एदे चउवीस गुणियाए एत्तिया हु'ति ६९१२ । एदेसु दो-पगडीहिं [दो पगडि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदय] ट्ठाणे चउवीस उदय-वियप्पा दो पगडीहिं गुणिया एक्को अट्ठाणं [ ] इक्कारस-उदयवियप्पा वि एगपगडीहिं गुणिया एत्तिया हुंति ११ । सव्वपदबंधवियप्पा ६६७१ ।

तिण्णेव दु वावीसे, इगिवीसे अट्ठवीस कम्मंसा ।
सत्तरह-तेरह-णव बंधगेसु पंचेव ठाणाणि ॥२१॥
पंचविह-चउविहेसु व छ सत्त सेसेसु जाण पंचेव ।
पत्तेयं पत्तेयं पंचेव दु सत्त ठाणाणि ॥२२॥

'तिण्णेव दु वावीसे' वावीसबंधट्ठाणे अट्ठावीस सत्तावीस छव्वीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि हुंति । इगिवीसबंधट्ठाणे अट्ठावीस इक्कसंतट्ठाणं । सत्तारस-तेरस-णवबंधट्ठाणेसु अट्ठावीस चउवीस तेवीस वावीस इक्कवीस एदाणि पंच संतट्ठाणाणि पत्तेयं हुंति ।

'पंचविह-चउविहेसु य छ सत्त' पंचविहबंधट्ठाणे अट्ठावीस चउवीस एगवीस तेरस वारस एक्कारस छ संतट्ठाणाणि । चउविहबंधट्ठाणे अट्ठावीस चउवीस इगिवीस वारस इक्कारस पंच चत्तारि एदाणि सत्त संतट्ठाणाणि । तिण्हिबंधट्ठाणे अट्ठावीसं चउवीसं चत्तारि तिण्णि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । दुविहबंधट्ठाणे अट्ठावीस चउवीस इगिवीस तिण्णि दोण्णि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । एयविहबंधट्ठाणे अट्ठावीस चउवीस इगिवीस दोण्णि एक्कं एदाणि पंच संतट्ठाणाणि । अबंधगे अट्ठावीसं चउवीसं इगिवीसं इक्कं च एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि हुंति ।

दस णव पण्णरसाई बंधोदयसंतपगडिठाणाणि ।
भणिदाणि मोहणिज्जे एत्तो णामं परं वुच्छं ॥२३॥

दस बंधट्ठाणाणि, णव उदयट्ठाणाणि, पण्णरस संतट्ठाणाणि मोहणीयम्मि भणिदाणि । एत्तोवरि णामम्मि बंधोदयसंतठाणाणि भणिस्सामो ।

तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठवीसमुगुतीसं ।
तीसेक्कतीसमेयं बंधट्ठाणाणि णामस्स ॥२४॥
इगिवीसं चउवीसं एत्तो इगितीसय त्ति एगधियं ।
उदयट्ठाणाणि हवे णव अट्ठ य हुंति णामस्स ॥२५॥
[ति-दु-इगि-णउदी णउदी अड-चदु-दुगाधियमसीदिमसीदी च ।
उणसीदी अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव संता ॥२६॥]

तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठवीसं उणतीसं तीसं इक्कतीसं एक्कं एदाणि अट्ठ बंधट्ठाणाणि णामस्स हुंति । 'इगिवीसं चउवीसं एत्तो [इगितीसं ति] एगाधियं' इगिवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं उगुतीसं तीसं एक्कतीसं णव अट्ठ एदाणि इक्कारस उदयट्ठाणाणि हुंति णामस्स । तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि तेरस संतट्ठाणाणि हुंति णामस्स ।

अट्ठेयारस तेरस बंधोदयसंतपगडिठाणाणि ।
ओघेणादेसेण य एत्तो जहसंभवं विभजे ॥२७॥

अट्ठ बंधट्ठाणाणि, एक्कारस उदयठाणाणि, तेरस संतठाणाणि ओघेण णामस्स हुंति । विसेसेण गइ-आइसु मग्गणठाणेसु जहासंभवं विभंजिऊण बंधोदयसंतठाणाणि एदाणि हुंति भणियव्वाणि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरस णव चदु पणयं बंधवियप्पा उ हुंति बोधव्वा ।
छावत्तरिमेगारससदाणि णामोदया हुंति (७६११) ॥२८॥

तेवीसादि-अट्ठसु बंधट्ठाणेसु पगडिणिद्देसो भंगणिरूवणा च सदगे वुत्ता [त्तक] कमेण जाणिऊण भाणियव्वा। तेरस सहस्सा णव सदा पंच य तालीसा णामस्स बंधट्ठाणवियप्पा हुंति १३९४५। इक्कवीसादि-इक्कारसेसु उदयट्ठाणेसु पगडिणिद्देसो भंगपरूवणा च। तं जहा—

णिरयगइणामोदयसंजुत्ताणि पंच उदयट्ठाणाणि। तं जहा—णिरयगइ-पंचिंदियजाइ-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-तस-बादर-पज्जत्त-थिराथिर-सुभासुभ-दुभग-अणादिज्ज-अजसकित्ति-णिमिणणामाओ एदाओ पगडीओ घेत्तूण इक्कवीस उदयट्ठाणं। तं विग्गहगइवट्टमाणस्स णेरइयस्स जहण्णेण एयसमयं, उक्कस्सेण वेसमयं। एदाओ आणुपुव्वीवज्जाओ वेउव्वियसरीर-हुंडसंठाण-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग-उवघाद-पत्तेयसरीरसहियाओ पगडीओ घेत्तूण पणुवीस उदयठाणं। तं सरीरगहिय-पढमसमयमादिं काऊण जाव सरीरपज्जत्ता [त्तो] ण होइ, ताव होदि। जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं। एदाओ चेव परघाद-अप्पसत्थविहायगइ-सहियाओ पयडीओ घेत्तूण सत्तावीस-उदयठाणं। तं सरीरपज्जत्तगपढमसमयप्पहुडि जाव आणापाणपज्जत्तो ण होइ, ताव होइ। जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं। एदाओ चेव उस्साससहियाओ पयडीओ घेत्तूण अट्ठावीस उदयठाणं। तं आणापाणपज्जत्तगए पढमसमयप्पहुदि जाव भासापज्जत्तगओ ण होइ, ताव होइ। जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं। एदाओ चेव दुस्सरसहियाओ पयडीओ घेत्तूण एगूणतीस-उदयठाणं। तं भासापज्जत्तगए पढमसमयप्पहुदि जाव जीविदंतं ताव होइ। जहण्णेण दस [वास-]सहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि। एदेसिं पंचण्हं ठाणाणं एक्केक्को चेव भंगो। उदयवियप्पा पंच ५।

इगिवीसं चउवीसं एत्तो इगितीस य त्ति एगधियं।
णव चेव उदयट्ठाणा तिरियगइसंजुदा हुंति ॥२९॥
पंचेव उदयठाणाणि सामण्णेइंदियस्स बोधव्वा।
इगि-चउ-पण-छ-सत्ताधिया वीसा तह होइ णायव्वा ॥३०॥
आदाउज्जोवाणमणुदय-एइंदियस्स ठाणाणि।
सत्तावीसा य विणा सेसाणि हवंति चत्तारि ॥३१॥
आदाउज्जोउदओ जस्सेसो णत्थि तस्स णत्थि पणुवीसं।
सेसा उदयट्ठाणा चत्तारि हवंति णायव्वा ॥३२॥

आदाउज्जोवाणमणुदय-एइंदिएसु इगिवीसं तिरिक्खगइ-उदयसंजुत्ताणि णव ठाणाणि। तत्थ सामण्णेइंदियस्स पंच उदयठाणाणि। तं जहा—तिरिक्खगइ-एइंदियजाइ-तेजाकम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-थावर-बादर-सुहुमाणमेक्कदरं पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिराथिर-सुभासुभ-दुभग-अणादिज्ज-जस अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ पगडीओ घेत्तूण इगिवीस-उदयट्ठाणं। तं विग्गहगईए वट्टमाणस्स जहण्णेणेगसमयं, उक्कस्सेण तिण्णि समयं। एदस्स भंगा जसकित्ति-उदएण इक्को भंगो, सुहुमअपज्जत्त-उदओ णत्थि त्ति। अजसकित्ति-उदएण चत्तारि भंगा। [एवं पंच भंगा ५।] एदाओ चेव पगडीओ आणुपुव्वीवज्जाओ ओरालियसरीर-हुंडसंठाण-उवघाद-पत्तेग-साधारणसरीराणमेक्कदरं सहियाओ घेत्तूण चउवीस-उदयट्ठाणं। तं सरीरगहियपढमसमयप्पहुडि जाम सरीरपज्जत्तगओ ण होइ ताम होइ। जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं। एदस्स भंगा—जसकित्ति-उदएण एक्को भंगो, सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं

उदओ णत्थि त्ति । अजसकित्ति-उदएण अट्ठभंगा । एवं णव भंगा ९ । एदाओ अपज्जत्तवज्ज-परघादसहियाओ घेत्तूण पणुवीस उदयट्ठाणं । तं सरीरपज्जत्ताए पढमसमयप्पहुड जाव आणापाणपज्जत्तगओ ण होइ ताव होइ । जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं । एदस्स भंगा—जसकित्ति-उदएण एक्को भंगो, सुहुम-साहारणाणं उदओ णत्थि त्ति । अजसकित्ति-उदएण चत्तारि भंगा ४ । एवं पंच भंगा ५ । एदाओ चेव उस्सासससहियाओ पगडीओ घेत्तूण छव्वीस उदयट्ठाणं । तं आणापाणपज्जत्ताए पढमसमयप्पहुडि जाव जीवियंतं ताव होइ । जहण्णेणंतोमुहुत्तकालं, उक्कस्सेण वावीस [वास] सहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । एदस्स आ पंचवीस उदयट्ठाण वियप्पा तत्तिया चेव ५ । आदावुज्जोवुदअविरहियाणं[ए-]इंदियाणं जहा भणिदं । आदावुज्जोव-उदयसहियाणं एइंदियाणं तहा इगिवीसं । चउवीस-उदयट्ठाणं पुव्वं च । णवरि सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं उदओ णत्थि त्ति । एदेसिं दो दो भंगा । ते पुव्वभंगेसु पुणरुत्ता त्ति ण गहिया । चउवीस पगडीओ परघाद-आदाउज्जोवेक्कदरसहियाओ घेत्तूण छव्वीसउदयठाणं । तं सरीर-पज्जत्ताए पढमसमयप्पहुदि जाव आणापाणपज्जत्तगओ ण होइ ताव होइ । जहण्णुक्कस्सेणंतो-मुहुत्तकालं । एदस्स भंगा चत्तारि ४ । एदाओ चेव उस्सासससहियाओ पगडीओ घेत्तूण सत्ता-वीस उदयठाणं । तं आणापाणपज्जत्ताए पढमसमयप्पहुदि जाव जीविदंतं ताव होइ । जहण्णेणंतो-मुहुत्तं, उक्कस्सेण वावीसवस्ससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । एदस्स वि भंगा चत्तारि ४ । एइंदियाण सव्वे भंगा बत्तीसं ३२ ।

विगलिंदियसामण्णेणु दयट्ठाणाणि हुंति छच्चेव ।
इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसादि जाव इगितीसं ॥३३॥
उज्जोवरहियविगले इगितीसूणाणि पंच ठाणाणि ।
उज्जोवसहियविगले अट्ठावीसूणया पंच ॥३४॥

उज्जोव-उदयविरहियवेइंदियट्ठाणाणि पंच । वेइंदियस्स सामण्णेण छ उदयट्ठाणाणि । तं जहा—तिरिक्खगइ-वेइंदियजाइ-तेजा - कम्मइयसरीर - वण्ण गंध-रस-फास-तिरिक्खगइपाओग्गाणु-पुव्वी-अगुरुगलहुग-तस-बादर-पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिराथिर-सुभासुभ-दुभग-अणादिज्ज-जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ पयडीओ घेत्तूण इक्कवीस उदयट्ठाणं । तं विग्गहगईए वट्टमाणस्स जहण्णेण एगसमयं, [उक्कस्सेण वे समयं ।] एदस्स भंगा—जसकित्ति-उदएणेक्को भंगो, अपज्जत्तोदओ णत्थि त्ति । अजसकित्ति-उदएण दो भंगा । एवं तिण्णि भंगा ३ । एदाओ चेव ओरालियसरीर-हुंडसंठाण-ओरालियसरीरंगोवंग-असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडण—उवघाद-पत्तेग-सरीरसहियाओ आणुपुव्वीवज्जाओ घेत्तूण छव्वीस-उदयट्ठाणं । तं सरीरगहियपढमसमयप्पहुड जाव सरीरपज्जत्तो ण होइ, ताव होइ । जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं । एदस्स भंगा—जसकित्ति-उदएण इक्को भंगो १, अपज्जत्तोदओ णत्थि त्ति । अजसकित्ति-उदएण दो भंगा । एवं भंगा तिण्णि ३ । एदाओ चेव अपज्जत्तवज्ज परघाद-अपसत्थ-विहायगइसहियाओ घेत्तूण अट्ठावीसं उदयट्ठाणं सरीरपज्जत्ताए पढमसमयप्पहुड जाव आणापाणपज्जत्तगओ ण होइ, ताव होइ । जहण्णु-क्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं । एदस्स दो भंगा २ । एदाओ सव्वाओ उस्सासससहियाओ घेत्तूण एगूण-तीसउदयट्ठाणं । तं आणापाणपज्जत्ताए पढमसमयप्पहुदि [जाव भासा-] पज्जत्तयओ ण होइ अंतोमुहुत्तकालं । [ ] एवं दो भंगा २ । एदाओ चेव दुस्सर-सहियाओ पगडीओ घित्तूण तीसउदयठाणं । तं भासापज्जत्ताए पढमसमयप्पहुडि जाव जीविदं ताव होइ । जहण्णेणंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बारस वासाणि । एदस्स दो भंगा ।

एवं उज्जोव-अजसकित्तिया·····················उज्जोव-[उदयसहिय] वेइंदियस्स जहा इगिवीस-छव्वीस पुव्वं व । णवरि अपज्जत्त-उदओ णत्थि । एदेसिं दो दो भंगा चेव । पण्णरस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुणरुत्तासमादिया। छत्तीस-[छव्वीस] पगडीओ परघाद-उज्जोव-अपसत्थविहाय[गदि] सत्त सहियाओ घेत्तूण···जाव आणापाणपज्जत्तगओ ण होइ ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तकालं। एदस्स दो भंगा। एदाओ चेव उक्कस्स-[उस्सास-]सहियाओ पगडीओ घेत्तूण तीस-उदयट्ठाणं। तं आणापाणपज्जत्तगए पढम [समयप्प-हुदि जाव भासापज्जत्तगओ ण होइ ताव] अंतोमुहुत्ताकालं। एदस्स वि दो भंगा २। एदाओ चेव दुस्सरसहियाओ पयडीओ घेत्तूण एगत्तीस-उदयट्ठाणं [तं] भासापज्जत्तगए पढमसमयप्प-हुदि जाव जीविदंतं ताव होइ। जहण्णेणंतोमुहुत्ताकालं, उक्कस्सेण वारस वासाणि अंतोमुहुत्त-णाणि। दो भंगा २। सव्ववियप्पा अट्ठारस १८।

एवं विं [तीइं-] दियस्स णवरि तीइंदियजाइ भाणियव्वं। तीस-इक्कत्तीसकालो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण एगूणवण्ण रादिंदिवाणि अंतोमुहुत्तूणाणि। एवं चउरिंदियस्स। णवरि चउरिंदियजाइ वत्तव्वं। तीसेक्कतीसकालो जहण्णेणंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण छम्मासाणि अंतोमुहुत्तू-णाणि। वियलिंदियसव्ववियप्पा चउवण्णं ५४।

पंचिंदिय तिरियाणं सामण्णे उदयठाण छच्चेव।
इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसादि जाव इगितीसं ॥३५॥
उज्जोवरहियसयले इगितीसूणाणि पंच ठाणाणि।
उज्जोवसहियसयले अट्ठावीसूणगा पंच ॥३६॥

पंचिंदियतिरिक्खसामण्णेण छ उदयट्ठाणाणि। तं जहा—उज्जोवरहियसयले तस्स इमं एअवीसअं ठाणं—तिरिक्खगइ-पंचिंदियजाइ-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्ख-गइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-तस-बादर-पज्जत्तापज्जत्ताणमेक्कदरं थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दुभगाणमेक्कदरं आदेज्ज-अणादेज्जाणमेक्कदरं जस-अजसकित्तीणमेक्कदरं णिमिणणामाओ पग-डीओ घेत्तूण इक्कवीस-उदयट्ठाणं। तं विग्गहगईए वट्टमाणस्स जहण्णेणेगसमयं, उक्कस्सेण वे समयं। एदस्स पज्जत्तोदएण अट्ठभंगा ८। अपज्जत्तोदएण एक्को भंगो १। दुभग-अणादिज्ज-अजसकित्तीण एवं उदओ त्ति एव णव भंगा। एदाओ चेव आणुपुव्वीवज्जाओ ओरालिय-सरीर छ संठाणाणमेक्कदरं ओरालियसरीरंगोवंग-छसंघडणाणमेक्कदरं उवघाद-पत्तेगसरीरसहियाओ पयडीओ घेत्तूण छव्वीस-उदयट्ठाणं। तं सरीरगहियपढमसमयप्पहुइ जाव सरीरपज्जत्तगओ ण होइ ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं। पज्जत्तुदएण दुसद-अट्ठासीदि-भंगा २८८। अपज्जत्तो-दएण इक्को भंगो १। हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडण-दुभग-अणादिज्ज-अजसकित्तीणमेव उदओ त्ति एवं सव्वभंगा २८९। एदाओ चेव अपज्जत्तवज्ज परघाद-पसत्थापसत्थ विहायगईण-मेक्कदरं सहियाओ पगडीओ घेत्तूण अट्ठावीस-उदयट्ठाणं। तं सरीरपज्जत्तगए पढमसमयप्पहुदि जाव आणापाणपज्जत्तगओ ण होइ ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं। एदस्स वियप्पा पंच सदा छ सत्तरी ५७६। एदाओ चेव उस्साससहियाओ घेत्तूण एगूण तीस-उदयट्ठाणं आणापाण-पज्जत्तगए पढमसमयप्पहुदि जाव भासापज्जत्तगओ ण होइ ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ता-कालं। एदस्स भंगा पंच सदा छहत्तरी ५७६। एदाओ चेव सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरसहियाओ पगडीओ घेत्तूण तीस-उदयट्ठाणं। तं भासापज्जत्तगयपढमसमयप्पहुदि जाव जीविदंतं ताव होइ जहण्णेणंतोमुहुत्तकालं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि अंतोमुहुत्तूणाणि। एदस्स भंगा इक्कार-सयबावण्णाणि ११५२। एवं उज्जोव-उदएण रहिद-पंचिंदियतिरिक्खाणं भणिदं।

उज्जोव-उदयसहियपंचिंदियतिरिक्खाणं जहा इगिवीस-छव्वीस पुव्वं व भाणियव्वं। णवरि अपज्जत्तोदओ णत्थि। एदेसिं भंगा पुव्वुत्तभंगेसु पुणरुत्ता त्ति ण गहिया। एदाओ छव्वीस पगडीओ परघाद-उज्जोव-पसत्थ-अपसत्थविहायगईणमेक्कदरं सहिया घेत्तूण एगूणतीस-उदयट्ठाणं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं सरीरपज्जत्तगए पढमसमयप्पहुदि जाव आणापाणपज्जत्तगओ ण होइ ताव होइ। जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं। एदस्स भंगा ५७६। एदाओ चेव उस्सासस़हियाओ पगडीओ घेत्तूण तीस-उदयट्ठाणं। तं आणापाणपज्जत्तगए पढमसमयप्पहुदि जाव भासापज्जत्तगओ ण होइ ताव होइ। जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं। एदस्स भंगा पंच सदा छावत्तरी ५७६। एदाओ चेव सुस्सर-दुस्सराणमेक्कदरं सहियाओ घेत्तूण एक्कतीस-उदयट्ठाणं। तं भासापज्जत्तगए पढमसमयप्पहुदि जाव जीविदंतं ताव होइ जहण्णेणंतोमुहुत्ताकालं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि अंतोमुहुत्तूणाणि। एदस्स भंगा इक्कारस सदा बावण्णा ११५२। पंचिंदियतिरिक्खसव्वभंगा चत्तारि सहस्स-णवसदा छदुत्तरा ४९०६। सव्वतिरियभंगा मेलिया एत्तिया ४९६२।

मणुसगइसंजुदाणं उदयट्ठाणाणि हुंति दस चेव।
चउवीसं वज्जित्ता सेसाणि हवंति णेयाणि ॥३७॥
तित्थयराहाररहिया पगडी मणुसस्स पंच ठाणाणि।
इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसूणतीस तीसासु ॥३८॥

पयडी मणुसस्स उदयट्ठाणाणि। तं जहा—इगिवीसं छव्वीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एदाणि उदयट्ठाणाणि हुंति। जहा—उज्जोवउदयरहियपंचिंदियतिरिक्खाणं तहा वत्तव्वाणि। णवरि मणुसगइआदि भाणियव्वा। एदेसिं भंगा एत्तिया हुंति २६०२। एवं सामण्णमणुसस्स भणिदं। विसेसमणुसस्स तं जहा—मणुसगइ-पंचिंदियजाइ-आहार-तेज-कम्मइयसरीर-समचउरसरीरसंठाण-आहारसरीरंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुगलहुग-उवघाद-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेगसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-आदिज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामाओ पगडीओ घेत्तूण पणुवीस-उदयट्ठाणं आहारसरीर-उट्ठाविदपढमसमयप्पहुदि जाव पज्जत्तगओ होइ ताव होइ। जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं। एदस्स भंगो इक्को चेव १। एदाओ चेव परघादापसत्थविहायगइसहियाओ सत्तावीस-उदयट्ठाणं। तं सरीरपज्जत्तगए पढमसमयप्पहुदि जाव आणापाणपज्जत्तगओ ण होइ [ताव होइ]। जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं। एदस्स इक्को भंगो १। एदाओ चेव उस्सासस़हियाओ पगडीओ घेत्तूण अट्ठावीसउदयट्ठाणं। तं आणापाणपज्जत्तगए पढमसमयप्पहुदि जाव भासापज्जत्तगओ ण होइ ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं। एदस्स वि भंगो एक्को चेव १। एदाओ चेव पगडीओ सुस्सरसहियाओ घेत्तूण एगूणतीस-उदयट्ठाणं। तं भासापज्जत्तगयपढमसमयप्पहुदि जाव आहारसरीरविउव्विओ ण अच्छइ ताव होइ। जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तकालं। एदस्स वि भंगो एक्को चेव १। एदस्स सव्वभंगा चत्तारि ४।

विसेसमणुसस्स तं जहा—मणुसगइ-पंचिंदियजाइ-ओरालिय-तेज-कम्मइयसरीर-समचउरसरीरसंठाण-ओरालियसरीरंगोवंग-वज्ज-रिसभवइरणारायसरीरसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुगलहुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेगसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदिज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयर-णामाओ पगडीओ घेत्तूण एक्कत्तीस-उदयट्ठाणं। तं सजोगिकेवलिस्स सत्थाणस्स जहण्णेण वासपुधत्तं, उक्कस्सेणंतोमुहुत्तमधिय-अट्ठवस्सूण-पुव्वकोडिकालं। एदस्स इक्को भंगो १। मणुसगइ-पंचिंदियजाइ-तस-बादर-पज्जत्त-सुभग-आदिज्ज-जसकित्ति-तित्थयरणामाओ पगडीओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं। तं अजोगिकेवलिस्स। एदस्स इक्को भंगो। एदाओ चेव तित्थयरविरहियाओ पगडीओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदं पि अजोगिकेवलिस्स। एदस्स वि इक्को भंगो १। एदे तिण्णि भंगा ३। मणुसगइसव्वभंगा एत्तिया हुंति २६०९।

इगिवीसं पणुवीसं सत्तावीसं अट्ठावीसमुगुतीसं।
एदे उदयट्ठाणा देवगइ-संजुदा पंच ॥३९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगइ-उदयसंजुत्ताणि पंच ठाणाणि। तं जहा—देवगइ-पंचिंदियजाइ-तेज-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुगलहुग-तस-बादर-पज्जत्त-थिराथिरसुभासुभ-सुभग-आदिज्ज-जसकित्ति-णिमिणणामाओ पगडीओ घेत्तूण एक्कवीस-उदयट्ठाणं। तं विग्गहगईए वट्टमाणस्स जहण्णेणेगसमयं, उक्कस्सेण वे समयं। एदस्स एक्को चेव भंगो १। एदाओ चेव आणुपुव्वीवज्जाओ वेउव्वियसरीर-समचउरसंठाण-वेउव्वियसरीरंगोवंग-उवघाद-पत्तेयसरीर-सहियाओ घेत्तूण पणवीस-उदयट्ठाणं। तं सरीरगहियपढमसमयप्पहुदि जाव सरीरपज्जत्तगओ ण होइ, ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तं। एदस्स भंगो इक्को चेव १। एदाओ चेव पगडीओ परघाद-पसत्थविहायगइसहियाओ घेत्तूण सत्तावीस-उदयट्ठाणं। तं सरीरपज्जत्तागदपढम-समयप्पहुदि जाव आणापाणपज्जत्तगओ ण होइ, ताव होइ जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्ताकालं। एदस्स वि एक्को चेव भंगो १। एदाओ चेव पगडीओ उस्सासससहियाओ घेत्तूण अट्ठावीस-उदयट्ठाणं। तं आणापाणपज्जत्तगदपढमसमयप्पहुदि जाव भासापज्जत्तगओ ण होइ। ताव होइ। जहण्णुक्कस्सेणंतो-मुहुत्तकालं। एदस्स इक्को चेव भंगो १। एदाओ चेव पगडोओ सुस्सरसहियाओ घेत्तूण एगुणतीस-उदयट्ठाणं। तं भासापज्जत्तगदपढमसमयप्पहुदि जाव जीविदं ताव होइ। जहण्णेण दसवाससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि [अंतोमुहुत्तूणाणि]। एदस्स वि इक्को चेव भंगो १। एदे पंच भंगा ५।

सव्वणामकम्म उदयवियप्पा छावत्तरि सदा एयारस ७६११।

"ति-दु-इगि-णउदी अट्ठाहिय-चदु-दुरहिय असिदि असिदिं च।
ऊणासिदि अट्ठत्तर सत्तत्तरि दस य णव संता॥"

संतपगडिट्ठाणाणि। तं जहा—णिरयगइ-तिरियगइ-मणुसगइ-देवगइ-एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियजाइ-ओरालिय-वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीर-ओरालिय-वेउव्विय-आहार-तेज-कम्मइयसरीरबंधण-ओरालिय-वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीरसंघाद-छसंठाण-तिण्णि अंगोवंग-छसंघडण-पंचवण्ण-दोगंध-पंचरस-अट्ठफास-चत्तारि आणुपुव्वी-अगुरुगलहुगादि चत्तारि-आदावुज्जोव-दो विहायगइ-तसादि दसजुगल-णिमिण-तित्थयरणामाओ पगडीओ घेत्तूण तेणउदिसंतट्ठाणं ९३। एदाओ चेव तित्थयरविरहियाओ बाणउदिसंतट्ठाणं ९२। आहार-दुगविरहियाओ तेणउदिपगडीओ घेत्तूण इक्काणउदिसंतट्ठाणं। एदाओ तित्थयरविरहियाओ घेत्तूण णउदिसंतट्ठाणं ९०। णउदिसंतट्ठाणादो एइंदिएसु देवगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वीसु उव्विल्लिदेसु अट्ठासीदिसंतट्ठाणं ८८। अट्ठासीदिदो णिरयगइ-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरंगोवंग-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीसु उव्विल्लिदेसु चउरासीदिसंतट्ठाणं ८४। चउरासीदिसंतादो तेउ-वाउकाइएसु मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी उव्विल्लिदेसु बासीदिसंतट्ठाणं होइ ८२। तेण-उदि-बाणउदि एक्काणउदि [णउदि] संतादो अणियट्टिखवयम्मि णिरयगइ-तिरियगइ-एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियजादि-णिरयगइ-तिरियगइपाओग्गाणपुव्वी-आदाउज्जोव-थावर-सुहुम-साहारण-एदासु तेरसपयडीसु खवियासु असीदि ८०, एगुणसीदि ७९, अट्ठहत्तरि ७८, सत्तत्तरि ७७ संतट्ठाणाणि हुंति। मणुसगइ-पंचिंदियजाइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-तस-बादर-पज्जत्त-सुभग-आदेज्ज-जसकित्ति-तित्थयरणामाओ पगडीओ घेत्तूण दससंतट्ठाणं अजोगिचरमसमए होइ १०। एदाओ चेव तित्थयरवज्जाओ पगडीओ घेत्तूण णवसंतट्ठाणं तम्मि चेव होइ ९। एवं तेरस संतट्ठाणि हुंति। इक्केक्कस्स संतट्ठाणस्स इक्केक्को चेव भंगो। १३९४५। ७६११।

णव पंचोदयसंता तेवीसे पणुवीस छब्बीसे।
अट्ठ चउरट्ठवीसे णव सत्तुगुतीस तीसम्मि॥४०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगेगं इगितीसे एगेगुदय अट्ठसंतम्मि ।
उवरदबंधे चउ दस वेददि संतम्मि ठाणाणि ॥४१॥

'णव पंचोदयसंता' तेवीस बंधट्ठाणे पणुवीसबंधठाणे छव्वीसबंधठाणे इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एक्कत्तीस एदाणि णवउदयठाणाणि; वाणउदि णवदि अट्ठासी चउरासी वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि होंति। अट्ठावीस बंधट्ठाणे इगिवीस पंचवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एक्कत्तीस एदाणि अट्ठ उदयट्ठाणाणि हुंति; वाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि हुंति। एगूणतीस बंधट्ठाणे तीसबंधट्ठाणे इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीस एदाणि णव उदयट्ठाणाणि; तेणउदि वाणउदि एक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि संतट्ठाणाणि हुंति। 'एगेगं इगितीसे' इक्कत्तीस बंधट्ठाणे तीसउदयट्ठाणं, तेणउदिसंतट्ठाणं होदि। इक्कविहबंधट्ठाणे तीस उदयट्ठाणं; तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि असीदि उणासी अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि अट्ठ संतट्ठाणाणि हुंति। णामाबंधगे तीस इक्कत्तीस णव अट्ठ एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि हुंति, तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि दस संतट्ठाणाणि।

तिवियप्पपगडिट्ठाणाणि जीवगुणसण्णिदेसु ठाणेसु ।
भंगा पउंजियव्वा जत्थ जहा पयडिसंभवो होदि ॥४२॥

'तिविअप्पपयडिट्ठाणाणि जीवगुणसण्णिदेसु ठाणेसु' बंधोदयसंतकम्माणं तिविधाणं पगडिट्ठाणाणि पउंजियव्वाणि, भंगा वि पउंजियव्वा जीवट्ठाणेसु गुणट्ठाणेसु य।

तेरेसु जीवसंखेवएसु णाणंतराय तिवियप्पो ।
एयम्मि ति-दुवियप्पो करणं पइ एत्थ अवियप्पो ॥४३॥

'तेरसेसु जीवसंखेवएसु' सण्णिपंचिंदियं-पज्जत्त-वज्ज तेरसेसु जीवसमासेसु णाणावरणंतराइयाणं पंच बंधं पंच उदयं पंच संतं। एक्कम्मि सण्णिपंचिंदियपज्जत्त जीवसमासे बंधं पंच, उदयं पंच संतं पंच। उवरदबंधे पंच उदयं पंच संतं। 'करणं पदि' दव्विदियं पडुच्च सजोगिकेवलिस्स इत्थ णाणावरण-अंतराइएसु वियप्पो णत्थि।

तेरे णव चदु पणयं णवंस एयम्मि तेरस वियप्पा ।
वेदणीयाउगगोदे विभज्ज मोहं परं वुच्छं ॥४४॥

'तेरे णव चदु पणयं' सण्णिपंचिंदियपज्जत्तवज्ज सेसेसु जीवसमासेसु दंसणावरणस्स णव बंधं, चत्तारि उदयं, णव संतं; णव बंधं पंच उदयं णव संत एवं दुवियप्पा। सण्णिपंचिंदियपज्जत्त-जीवसमासे णव बंधं चत्तारि उदयं णव संतं; णव बंधं पंच उदयं णव संतं; छ बंधं चत्तारि उदयं णव संतं; छ बंधं पंच उदयं णव संतं; चत्तारि बंधं चत्तारि उदयं णव संतं; चत्तारि बंधं पंच उदयं णव संतं, चत्तारि बंधं चत्तारि उदयं छ संतं, चत्तारि बंधं पंच उदयं छ संतं। उवरदबंधे चत्तारि उदयं णव संतं; पंच उदयं णव संतं; चत्तारि उदयं छ संतं; पंच उदयं छ संतं; चत्तारि उदयं चत्तारि संतं। एत्थ वि करणं पदि अवियप्पो। 'वेदणीयाउगगोदे विभज्ज मोहं परं वुच्छं।'

३	१३													
९	९	९	९	६	६	४	४	४	४					
४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४
९	९	९	९	९	९	९	९	६	६	९	९	६	६	४

बावट्ठि वेदणीए आउस्स हवंति तिरधियसयं च।
गोदस्स य सगदालं जीवसमासेसु बोधव्वा ॥४५॥

'वेदणीयाउगे गोदे बावट्ठि' वेदणीए सादं बंधं सादं उदयं सादासादं संतं; सादं बंधं असादं उदयं सादासादं संतं; असादं बंधं सादं उदयं सादासादं संतं; असादं बंधं असादं उदयं असादं संतं एक्कस्स जीवसमासस्स चत्तारि वियप्पा लोभमुत्ति [लभामो तो] चउद्देसु जीवसमासेसु केत्तिया हुंति त्ति चउहि चोद्दस जीवसमासा गुणिया छप्पण्णा हुंति ५६। णेव सण्णि-णेवासण्णिम्मि सादं बंधं सादं उदयं सादासादं संतं; सादं बंधं असादं उदयं सादासादं संतं; उवरदबंधे सादं उदयं सादासादं संतं, असादं उदयं सादासादं संतं; अजोगि-चरमे सादं उदयं सादं संतं; असादं उदयं असादं संतं एदे छ भंगा पुव्विल्ल छप्पण्णभंगा मेलाविय बावट्ठिं भंगा हुंति वेदणीयस्स ६२।

'आउगस्स हवंति तिरधियसयं च' सुहुमिंदियापज्जत्तजीवसमासम्मि तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं, तिरिक्खाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं। एदे पंच भंगा। एवं असण्णिपंचिंदियपज्जत्त-सण्णिपंचिंदियपज्जत्तापज्जत्तजीवसमासाणं सव्वे भंगा पणवण्णा ५५। असण्णिपंचिंदियपज्जत्तयम्मि तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं; णिरयाउगं बंधं तिरियाउगं उदयं तिरिक्ख-णिरयाउगं संतं। उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-णिरयाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं तिरिक्खाउगमुदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; एवं णव भंगा ९। सण्णिपंचिंदियपज्जत्तजीवसमासम्मि णिरयाउगं उदयं णिरयाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं णिरयाउगं उदयं णिरय-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे णिरयाउगं उदयं णिरय-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं णिरयाउगं उदयं णिरय-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे णिरयाउगं उदयं णिरय-मणुसाउगं संतं एवं भंगा पंच ५। तिरिक्खस्स तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं; णिरयाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-णिरयाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-णिरयाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं: मणुसाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं। एवं णव भंगा ९। मणुसस्स मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; णिरयाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं, मणुस-णिरयाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-णिरयाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरियाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं, उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं। एवं णव भंगा ९। देवस्स देवाउगं उदयं देवाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं देवाउगं उदयं देव-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे देवाउगं उदयं देवतिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं। एवं पंच भंगा ५।

सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तजीवसमासम्मि तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं; तिरिक्खाउगं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधं तिरिक्खाउगमुदयं तिरिक्ख-तिरिक्खाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं तिरिक्खाउगमुदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-मणुसाउगं संतं। एवं पंच भंगा ५। मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरिक्खाउगं संतं। उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं। उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं। एवं पंच भंगा ५।

णेव सण्णी-णेवासण्णीसु मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं एक्को चेव भंगो १। सव्वे भंगा आउगस्स तिउत्तरसदं १०३।

['गोदस्स य सगदालं'] सुहुमेइंदियापज्जत्तजीवसमासम्मि उच्चं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचसंतं; णीचं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचसंतं; णीचं बंधं णीचं उदयं णीच-णीच-संतं। एस तदियभंगो ३ तेउ-वाउकाइएसु उच्चमुव्वेल्लिऊण तम्मि दिट्ठस्स [ट्ठिदस्स] वा अण्णत्थ उप्पण्णस्स वा होइ। एवं तिण्णि भंगा। एवं सण्णिपंचिंदियपज्जत्तवज्ज सेसतेरसजीवसमासाणं। एदेसिं भंगा एगूणचालीसं ३९। सण्णिपंचिंदियपज्जत्तजीवसमासम्मि उच्चं बंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं; उच्चं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचं संतं; णीचं बंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचंसंतं, णीचं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचसंतं; णीचं बंधं णीचं उदयं णीच-णीचं संतं। उवरदबंधे उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं। एदे छ भंगा ६।

णेवसण्णी-णेवासण्णीसु उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं; अजोगिचरमसमए उच्चं उदयं उच्चं संतं; एदे दो भंगा २। गोदस्स सव्वे भंगा सत्तेतालीसा हुंति ४७।

अट्ठसु पंचसु एगे एगं दुग दस दु मोहबंधगये।
तिय चदु णव उदयगदे तिय तिय पण्णरस संतम्मि ॥४६॥

मोह वुच्छं 'अट्ठसु पंचसु एगे' सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ता बादरेइंदिय-अपज्जत्ता बीइंदिय अपज्जत्त तीइंदिय अपज्जत्त चउरिंदियअपज्जत्त असण्णिपंचिंदिय अपज्जत्त एदेसु अट्ठसु जीवसमासेसु वावीसबंधठाणं एगं, दस णव अट्ठ एदाणि तिण्णि उदयट्ठाणाणि, अट्ठवीस सत्तावीस छव्वीस एदाणि तिण्णि संतठाणाणि। बादरेइंदियपज्जत्त बीइंदियपज्जत्त तीइंदियपज्जत्त चउरिंदियपज्जत्त असण्णिपंचिंदियपज्जत्त एदेसु पंचसु जीवसमासेसु वावीस इक्कवीस एदाणि दोण्णि बंधट्ठाणाणि, दस णव अट्ठ सत्त एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि, अट्ठावीस सत्तावीस छव्वीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि। सण्णिपंचिंदियपज्जत्तजीवसमासम्मि वावीस इक्कवीस सत्तरस तेरस णव पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि एक्क एदाणि दस बंधट्ठाणाणि, दस णव अट्ठ सत्त छ पंच चत्तारि दु इक्क एदाणि णव उदयट्ठाणाणि, अट्ठावीस सत्तावीस छव्वीस चउवीस तेवीस वावीस इक्कवीस तेरस वारस एक्कारस पंच चत्तारि तिण्णि दुग इक्क एदाणि पण्णरस संतट्ठाणाणि। उवरदबंधे एगपगडि-उदय, अट्ठावीस चउवीस इक्कवीस एक्क एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि।

पणग दुग पणग पणगं चदु पण बंधुदयसंतपणगं च।
पण छक्क पण य छक्कं पणय अट्ठट्ठमेयारं ॥४७॥
सत्तेव अपज्जत्ता सामी सुहुमो य बादरो चेव।
विगलिंदिया य तिण्णि दु तहा असण्णी य सण्णी य ॥४८॥

इदाणिं णामं भणिस्सामो—'सत्तेव अपज्जत्ता' सुहुमादि सत्तसु अपज्जत्तजीवसमासेसु तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच बंधट्ठाणाणि, इगिवीस चउवीस एदाणि दोण्णि उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। सुहु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिंदियपज्जत्तम्मि तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस एदाणि पंच संत[बंध]ट्ठाणाणि इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि, वाणउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। बादरेइंदियपज्जत्तजीवसमासम्मि तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस एदाणि पंच बंधट्ठाणाणि, इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। बीइंदियपज्जत्त तीइंदियपज्जत्त चदुरिंदियपज्जत्त एदेसु तीसु जीवसमासेसु तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच बंधट्ठाणाणि, इगिवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस एक्कतीस एदाणि छ उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। असण्णिपंचिंदियपज्जत्तजीवसमासम्मि तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एदाणि छ बंधट्ठाणाणि, इक्कवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीस एदाणि छ उदयट्ठाणाणि, वाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। सण्णिपंचिंदियपज्जत्तजीवसमासम्मि तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं इक्कतीसं एक्कं एदाणि अट्ठ बंधट्ठाणाणि, एक्कवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीस एदाणि अट्ठ उदयट्ठाणाणि, तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि वासीदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि इक्कारस संतट्ठाणाणि। उवरदबंधे उदयट्ठाणं तीसं इक्कं, तेणउदि वाणउदि इक्काणउदि णउदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि अट्ठ संतट्ठाणाणि। णेव सण्णी-णेवासण्णीसु तीस इक्कतीस णव अट्ठ एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि, असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि छ संतट्ठाणाणि।

णाणंतराय तिविहमवि दससु दो हुंति दोसु ठाणेसु।
मिच्छा सासण विदिए णव चदु पण णवय संतकम्मंसा ॥४९॥
मिस्सादि-णियट्टीदो सो[छ]चउ पण णव य संतकम्मंसा।
चदुबंधं तिय चदु पण णव अंस दुवे छलंसा य ॥५०॥
उवसंते खीणम्मि य चदु पण णव छच्च संत चउजुगलं।
वेदणियाउगगोदे विभज्ज मोहं परं वुच्छं ॥५१॥

मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइओ त्ति एदेसु दससु गुणट्ठाणेसु णाणावरणंतराइयाणं पंच बंधं पंच उदयं पंचं संतं। उवसंत-खीणकसाय एदेसु दोसु गुणट्ठाणेसु पंच उदयं पंच संतं। दंसणावरणम्मि मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि एदेसु दोसु गुणट्ठाणेसु णव बंधं, चत्तारि वा पंच वा उदयंसा, णव संता। 'मिस्सादि अणियट्टीदो' सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अपुव्वकरणपढम-सत्तमभागो त्ति एदेसु छसु गुणट्ठाणेसु छ बंधं, चत्तारि वा पंच वा उदयं, णव संतं। अपुव्वकरणविदियसत्तमभागप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइओ त्ति एदेसु तीसु गुणट्ठाणेसु चत्तारि वा पंच वा उदयं, णव संतं। अणियट्टिखवगद्धाए संखेज्जभागं गंतूण णिद्दाणिद्दा पचलापचला-थीणगिद्धी एदासु तीसु पगडीसु खीणासु तओ पहुदि जाव सुहुमसंपराइयखवगो त्ति एदेसु दोसु गुणट्ठाणेसु छ संतं, बंधोदयपगडीओ पुव्वुत्ताओ चेव। उवरदबंधे उवसंतकसायम्मि चत्तारि वा पंच वा उदयं, णव संतं। खीणकसायम्मि चत्तारि वा पंच वा उदयं, छ संतं। तस्सेव चरमसमए चत्तारि उदयं, चत्तारि संतं। 'वेदणिआउगगोदे विभज्ज मोहं परं वुच्छं'।

बादालतेरसुत्तरसदं च पणुवीसयं वियाणाहि।
वेदणियाउगगोदे मिच्छादि-अजोगिणं भंगा ॥५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव पमत्तसंजदो त्ति एदेसु छसु गुणट्ठाणेसु सादं बंधं सादं उदयं सादासादं संतं; सादं बंधं असादं उदयं सादासादं संतं; असादं बंधं सादं उदयं सादासादं संतं; असादं बंधं असादं उदयं सादासादं संतं। एदेसिं गुणट्ठाणाणं चउवीस भंगा २४। अप्पमत्त-संजदप्पहुदि जाव सजोगिकेवलि त्ति एदेसु सत्तसु गुणट्ठाणेसु सादं बंधं सादं उदयं सादासादं संतं; सादं बंधं असादं उदयं सादासाद संतं। एदेसिं गुणट्ठाणाणं चउदस भंगा १४। अजोगि-केवलिम्हि सादं उदयं सादासादं संतं; असादं उदयं सादासादं संतं; तस्सेव चरमसमए सादं उदयं सादं संतं असादं उदयं असादं संतं। एदेव चत्तारि भंगा ४। सव्वभंगा बादालीसा हुंति ४२।

अड छव्वीसं सोलस वीसं छच्चेव दोसु तिण्णेव।
दुगु दुगु दुगं च दोण्णि य एगेगं इक्क आउस्स ॥५३॥

मिच्छादिट्ठिम्मि णिरयाउगमुदयं णिरयाउगं संतं; तिरिक्खाउगं बंधं णिरयाउगमुदयं तिरिक्ख-णिरयाउगं संतं; उवरदबंधे णिरयाउगं उदयं णिरय-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं णिरयाउगं उदयं णिरय-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे णिरयाउगं उदयं णिरय-मणुसाउगं संतं। एवं पंच भंगा ५। तिरिक्खाउगं उदयं तिरियाउगं संतं; णिरयाउगं बंधं तिरियाउगं उदयं णिरय-तिरियाउगं संतं; उवरदबंधे तिरियाउगं उदयं णिरय-तिरियाउगं संतं; तिरियाउगं बंधं तिरियाउगं उदयं तिरियाउगं संतं; उवरदबंधे तिरियाउगं उदयं तिरिय-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं तिरिया-उगं उदयं तिरिय-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे तिरियाउगमुदयं तिरिय-मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं तिरियाउगं उदयं देव-तिरियाउगं संतं; उवरदबंधे तिरियाउगं उदयं देव-तिरियाउगं संतं। एवं णव भंगा ९। मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; णिरयाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-णिरयाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-णिरयाउगं संतं; तिरियाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं तिरिय-मणु-साउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं तिरिय-मणुसाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं। एवं णव भंगा। देवाउगं उदयं देवाउगं संतं; तिरियाउगं बंधं देवाउगं संतं देव-तिरियाउगं संतं; उवरदबंधे देवाउगं उदयं देव-तिरियाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं। एवं पंच भंगा ५। एवं अट्ठावीस भंगा २८।

एवं सासणसम्मादिट्ठिस्स। णवरि णिरयाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-णिरयाउगं संतं; णिरयाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-णिरयाउगं संतं, एदे दो भंगा णत्थि। सव्वे भंगा २६।

सम्मामिच्छादिट्ठिम्मि णिरयाउगं उदयं णिरयाउगं संतं; णिरयाउगं उदयं णिरय-तिरियाउगं संतं; णिरयाउगं उदयं णिरय-मणुसाउगं संतं; तिरियाउगं उदयं तिरियाउगं संतं; तिरियाउगं उदयं तिरिक्ख-णिरयाउगं संतं; तिरियाउगं उदयं तिरियाउगं संतं; तिरियाउगं उदयं तिरिय-मणुसाउगं संतं; तिरियाउगं उदयं तिरिय-देवाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुस-णिरयाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरियाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं; देवाउगं उदयं देवाउगं संतं; देवाउगं उदयं देव-तिरिया-उगं संतं; देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं। एवं सोलस भंगा १६।

असंजदसम्मादिट्ठिम्मि णिरयाउगं उदयं णिरयाउगं संतं; णिरयाउगं उदयं णिरय-तिरियाउगं संतं; [मणुसाउगं बंधं] णिरयाउगं उदयं णिरस-मणुसाउगं संतं; उवरदबंधे णिरयाउगं उदयं णिरय-मणुसाउगं संतं; तिरियाउगं उदयं तिरियाउगं संतं; तिरियाउगं उदयं तिरिय-णिरयाउगं संतं;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[तिरियाउगं उदयं तिरिय-तिरियाउगं संतं;] तिरियाउगं उदयं तिरिय-मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं तिरियाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; उवरदबंधे तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुस-णिरयाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुस-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुस-मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं; देवाउगं उदयं देवाउगं संतं; देवाउगं उदयं देव-तिरिक्खाउगं संतं; मणुसाउगं बंधं देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं। उवरदबंधे देवाउगं उदयं देव-मणुसाउगं संतं। एवं वीस भंगा २०।

संजदासंजदम्मि तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्खाउगं संतं; देवाउगं बंधं तिरिक्खाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; उवरदबंधे तिरियाउगं उदयं तिरिक्ख-देवाउगं संतं; मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं। एवं छ भंगा ६।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदेसु मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; देवाउगं बंधं मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं; उवरदबंधे मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं। एदेसिं गुणट्ठाणाणं छ भंगा ६। अपुव्वकरणप्पहुदि जाव उवसंतकसाओ त्ति एदेसु चउसु गुणट्ठाणेसु मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं; एस भंगो खवगाणं पडुच्च। मणुसाउगं उदयं मणुस-देवाउगं संतं एसो भंगो उवसामगाणं पडुच्च। एदेसिं गुणट्ठाणाणं अट्ठ भंगा ८। खवग-अपुव्व-अणियट्टि-सुहुम-खीणकसाय-सजोगि-अजोगिकेवलीसु मणुसाउगं उदयं मणुसाउगं संतं। एदेसिं गुणट्ठाणाणं तिण्णि भंगा ३।

आउगस्स सव्वभंगा तेरसुत्तरसदा हुंति ११३।

मिच्छादिट्ठिम्मि उच्चं बंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं; उच्चं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचं संतं; णीचं बंधं [उच्चं] उदयं उच्च-णीचं संतं; णीचं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचं संतं; णीचं बंधं णीचं उदयं णीच-णीचं संतं। एस भंगो तेउ-वाउकाइएसु उच्चगोदं उव्वेल्लिऊण तेसु चेव ट्ठिदस्स वा अण्णत्थ उप्पण्णस्स वा होइ। एवं पंच भंगा ५।

एवं सासणसम्मादिट्ठिम्मि। णवरि णीचं बंधं णीचं उदयं णीचं संतं इदि एस भंगो णत्थि। एवं चत्तारि भंगा ४। सम्मामिच्छादिट्ठिम्मि असंजदसम्मादिट्ठिम्मि संजदासंजदेसु उच्चं बंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं; उच्चं बंधं णीचं उदयं उच्च-णीचं संतं; एदेसिं गुणट्ठाणाणं छ भंगा ६। पमत्तसंजदप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइगो त्ति एदेसु पंचसु गुणट्ठाणेसु उच्चं बंधं उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं। एदेसिं गुणट्ठाणाणं पंच भंगा ५। उवसंतकसाय-खीणकसाय-सजोगिकेवलीसु उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं। एदेसिं गुणट्ठाणाणं तिण्णि भंगा हुंति ३। अजोगिकेवलिम्मि उच्चं उदयं उच्च-णीचं संतं, तस्सेव चरमसमए उच्चं उदयं उच्चं संतं; एवं दो भंगा २। एवं गोदस्स सव्वभंगा पंचवीस २५।

गुणट्ठाणएसु अट्ठसु एगेगं बंधपगडिठाणाणि।
पंच अणियट्टिट्ठाणे बंधोवरमो परं तत्तो ॥५४॥
सत्तादि दस दु मिच्छे आसायण मिस्से अ णवुक्कस्सं।
छादी अविरदसम्मे देसे पंचादि अट्ठेव ॥५५॥
विरदे खओवसमिए चउरादी सत्त छ य णियट्टिम्हि।
अणियट्टिबादरे पुण इक्कं च दुवे य उक्कंसा [उदयंसा] ॥५६॥
एयं सुहुमसरागो वेदेइ अवेदया भवे सेसा।
भंगाणं च पमाणं पुव्वुद्दिट्ठेण णायव्वं ॥५७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहम्मि बंधोदयसंतकम्मपगडिट्ठाणाणि पवक्खामि 'गुणट्ठाणएसु' मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अपुव्वकरणो त्ति एदेसु अट्ठसु गुणट्ठाणेसु बावीस एक्कवीस [सत्तारस] सत्तारस तेरस णव णव णव; एदाणि अट्ठ बंधट्ठाणाणि जहाकमेण णायव्वाणि। अणियट्टिगुणट्ठाणे पंच चत्तारि तिण्णि दो एक्क एदाणि पंच बंधट्ठाणाणि हुंति। उवरिमगुणट्ठाणेसु मोहणीयस्स बंधो णत्थि।

'सत्तादि दससु मिच्छे' मिच्छादिट्ठिम्मि सत्त अट्ठ णव दस एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि। तं जहा-मिच्छत्तं अणंताणुबंधीणमेक्कदरं अपच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं पच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुयलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण दस-उदयट्ठाणं। एदस्स एक्को चउवीस भंगो २४। एदाओ चेव पगडीओ भयविरहियाओ घेत्तूण णव उदयट्ठाणं। एदस्स वि इक्को चेव चउवीस भंगो २४। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछ-विरहियाओ हाससहियाओ घेत्तूण वा णव-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीस भंगो २४। एदाओ चेव अणंताणुबंधी वज्ज दुगुंछसहियाओ घेत्तूण वा णव-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठउदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चेव चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछविरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीस भंगो। एदाओ चेव अणंताणुबंधिसहिय-भयरहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीस भंगो। एदाओ चेव अणंताणुबंधिरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीस भंगो।

सासणसम्मादिट्ठिम्मि सत्त अट्ठ णव एदाणि तिण्णि उदयट्ठाणाणि। एदाओ तं जहा-अणंताणुबंधीणमेक्कदरं अपच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं पच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीस भंगो। एदाओ पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो। एदाओ चेव दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीस भंगो।

सम्मामिच्छादिट्ठिम्मि सत्त अट्ठ णव एदाणि तिण्णि उदयट्ठाणाणि। तं जहा—सम्मामिच्छत्तं अपच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं पच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च। एदाओ पगडीओ घेत्तूण णव उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो।

असंजदसम्मादिट्ठिम्मि छ सत्त अट्ठ णव एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि। तं जहा-सम्मत्तं अपच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं पच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं संजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स रइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च। एदाओ पगडीओ घेत्तूण णवउदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछारहिय-भयसहियाओ घेत्तूण सत्तउदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव सम्मत्तसहिय-भयरहियाओ पगडीओ घेत्तूण वा सत्तउदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो।

संजदासंजदम्मि पंच छ सत्त अट्ठ एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि। तं जहा—सम्मत्तं पच्चक्खाणावरणाणमेक्कदरं संजलणकोहमाणमायालोभाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स रइ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण अट्ठउदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-[सत्त]उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भय-सहियाओ घेत्तूण वा सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव सम्मत्तरहिद-दुगुंछसहियाओ घेत्तूण वा सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो। एदाओ चेव दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव सम्मत्तसहिय-भयरहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण पंच-उदयट्ठाणं। एदस्स वि इक्को चउवीसभंगो।

'विरदे खओवसमिए चउरादी' पमत्तसंजदम्मि चत्तारि-पंच छ सत्त अट्ठ एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि। तं जहा—सम्मत्तं संजलणकोहमाणमायालोभाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स रइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं। एदस्स वि पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछा-रहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहिय-भय दुगुंछा-सहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ [तदिओ] चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण पंचउदयट्ठाणं। एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भय-दुगुंछरहियाओ घेत्तूण वा पंच-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तसहिय-भयरहियाओ घेत्तूण वा पंच उदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण चत्तारि उदयट्ठाणं। एदस्स वि एक्को चउवीसभंगो।

एवं अप्पमत्तसंजदस्स वि। अपुव्वकरणम्मि चत्तारि पंच छ एदाणि तिण्णि उदयट्ठाणाणि। तं जहा—चउसंजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय-दुगुंछा च एदाओ चेव पगडीओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण पंचउदयट्ठाणं। एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहियाओ भयसहियाओ घेत्तूण वा पंच-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण चत्तारि उदयट्ठाणं। एदस्स एक्को चउवीस भंगो। दंसणमोहणीयं उवसामिऊण वा उवसमसेढिं चढइ, खविऊण खवगसेढिं चढइ त्ति अपुव्वादिसु सम्मत्तोदओ णत्थि।

अणियट्टिम्मि इक्कं दोण्हं एदाणि दोण्णि उदयट्ठाणाणि। तं जहा—चउसंजलणाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं एदाओ पगडीओ घेत्तूण दोण्णि उदयट्ठाणं। एदस्स बारस भंगा १२। चउ-संजलणाणमेक्कदरं इक्कं चेव उदयट्ठाणं। एदस्स भंगा चत्तारि ४।

'एयं सुहुमसरागो वेदेदि' सुहुमसंपरागो लोभसंजलणं इक्कं वेदेदि। एदस्स इक्को चेव भंगो। 'सेसा' उवसंतादिया अवेदया हुंति। भंगपमाणं पुव्वुत्तकमेण णायव्वं।

इक्क य छक्केयारं एयारेयारमेव णव तिण्णि।
एदे चउवीसगदा बारस [दुग] एग पंचम्मि ॥५८॥

बारस पण सट्ठाई उदयवियप्पेहिं मोहिया जीवा।
चुलसीदी सत्तत्तरि पदबंधसदेहिं विण्णेया ॥५९॥

'एक्क य छक्केयारं' दसण्हं चउवीससलागा इक्का। णवण्हं चउवीस सलागा छ। अट्ठण्हं चउवीससलागा एगारस। सत्तण्हं चउवीससलागा इक्कारस। छण्हं चउवीस सलागा इक्कारस। पंचण्हं चउवीस सलागा णव। चउण्हं चउवीस सलागा तिण्णि। एदाओ सलागाओ सव्वाओ मेलवियाओ वावण्णा होंति। एदाओ चउवीसेहिं गुणिया दो पगडि-एक्कपगडिभंगसहियाओ बारससदपंचसट्ठिभंगा हुंति १२६५। 'बारस पणसट्ठाई' एवं बारससदपंचसट्ठि-उदयवियप्पेण मोहियओ जीवो जीवेइ। इक्क छ इक्कारस णव तिण्णि चउवीससलागा दस-णव-अट्ठ-सत्त-छ-पंच-चउसलागाहिं गुणेऊण मेलिया तिण्णि सदा वावण्णा हुंति। चउवीसेहिं गुणिया बारसेहिं दो-पगडिगुणिएहिं पंचएहिं पगडिगुणिएहिं सहिया चुलसीदिसदसत्तत्तरिपदबंधा हुंति ८४७७। एदाहिं चउरासीदिसत्तत्तरिपगडीहिं मोहिदा जीवा विण्णेया।

जोगोवओगलेसाइएहिं गुणिया हवेज्ज कायव्वा।
जे जत्थ गुणट्ठाणे हवंति ते तस्स गुणगारा ॥६०॥
तेरस चेव सहस्सा वे चेव सदा हवंति णव चेव।
उदयवियप्पे जाणसु जोगं पडि मोहणीयस्स ॥६१॥
णउई चेव सहस्सा तेवण्णा चेव हुंति बोधव्वा।
पदसंखा णायव्वा जोगं पदि मोहणीयस्स ॥६२॥

'तेरस चेव सहस्सा' वेउव्वियमिस्सकायजोगम्मि मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छत्तं अणंताणुबंधि-अपच्चक्खाणावरण-[पच्चक्खाणावरण-] संजलणकोहमाणमायालोभाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ चेव पगडीओ घेत्तूण दस-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा णव-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो। सव्वे भंगा छण्णउदी ९६। दसण्हं इक्कचउवीसं, णवण्हं दोचउवीसं, अट्ठण्हं इक्कचउवीसं दस-णव-अट्ठपगडीहिं गुणेऊण मेलिया एत्तिया हुंति पदबंधा ८६४।

सासणसम्मादिट्ठिस्स अणंताणुबंधि-अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणावरण—संजलणकोहमाण-मायालोभाणमेक्कदरं इत्थि-पुरिसवेदाणमेक्कदरं, णेरइएसु सासणसम्मादिट्ठी ण उप्पज्जइ त्ति णउंसयवेदो णत्थि। हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ चेव पगडीओ घेत्तूण णव उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को सोलस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो सोलस भंगो। एदाओ चेव दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ सोलस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स वि इक्को सोलसभंगो। सव्वभंगा एत्तिया हुंति ६४। णवण्हं इक्क सोलस, अट्ठण्हं वे सोलस, सत्तण्हं वे [इक्क] सोलस णव-अट्ठ-सत्त-पगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ५१२।

असंजदसम्मादिट्ठिम्मि अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणावरण-संजलणकोह-माण-माया-लोभा-णमेक्कदरं पुरिस-णउंसगवेदाणं एक्कदरं, असंजदसम्मादिट्ठी इत्थीवेदे ण उप्पज्जइ। पुव्वाउगबंधो पढमपुढवीए उप्पज्जइ त्ति णवुंसगवेदो लब्भइ। हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ चेव पगडीओ घेत्तूण [णव-] उदयट्ठाणं, एदस्स इक्को सोलसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो सोलस भंगो। एदाओ चेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ सोलस-भंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहिय-दुगुंछासहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ सोलसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो सोलस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा सत्त उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ सोलस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तसहिय-भयरहियाओ घेत्तूण वा सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स तिदिओ सोलस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं। एदस्स वि इक्को चेव सोलस भंगो। सव्वभंगा एत्तिया हुंति १२८। णवण्णं इक्क सोलस, अट्ठण्हं तिण्णि सोलस, सत्तण्हं तिण्णि सोलस, छण्हं इक्क सोलसं णव-अट्ठ-सत्त-छपगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ६६० ।

कम्मइयकायजोगिम्मि मिच्छादिट्ठिम्मि असंजदसम्मादिट्ठीणं वेउव्वियमिस्सम्मि जहा भणियं तहा भाणियव्वं। मिच्छादिट्ठि-भंगा ८६४। असंजदसम्मादिट्ठिभंगा १२८। पदसंख्या ६६०।

सासणसम्मादिट्ठिस्स अणंताणुबंधि-अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणावरण-संजलणकोहमाण-मायालोभाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव दुगुंछरहिय-[भय-]सहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीस भंगो। एदस्स सव्वे भंगा ९६ एत्तिया हुंति। णवण्हं इक्क चउवीस अट्ठण्हं वे चउवीस, अट्ठण्हं [सत्तण्हं] एक्क [चउवीस], णव-अट्ठ-सत्तपगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ७६८।

ओरालियमिस्सम्मि मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं जहा कम्मइयकायजोगम्मि भणियं तहा [भाणियव्वं]। मिच्छादिट्ठि-भंगा ९६। पदसंखा ८६४। सासणसम्मादिट्ठि-भंगा ९६। पदसंखा ७६८।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स सम्मत्तं अपच्चक्खाणावरण-पच्चक्खाणावरण-संजलणकोहमाणमाया-लोभाणमेक्कदरं पुरिसवेद हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण णव-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को अट्ठभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो अट्ठभंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं! एदस्स विदिओ अट्ठभंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्त-रहिय-दुगुंछसहियाओ घेत्तूण वा अट्ठ-उदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ अट्ठभंगो। एदाओ चेव पयडीओ भयरहियाओ दुगुंछसहियाओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो अट्ठभंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण सत्तउदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ अट्ठ-भंगो। एदाओ पगडीओ सम्मत्तरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ अट्ठभंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं। एदस्स वि इक्को अट्ठ-भंगो। सव्वभंगा एत्तिया हुंति ६४। णवण्हं इक्क अट्ठ, अट्ठण्हं तिण्णि अट्ठ, सत्तण्हं तिण्णि अट्ठ, छण्हं इक्क अट्ठ। णव - अट्ठ-सत्त - छपगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ४८०।

वेउव्वियकायजोगिम्मि मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मा-दिट्ठीणं जहा गुणट्ठाणाणि रुंभेऊणं भणियं तहा भाणियव्वं। मिच्छादिट्ठि-भंगा १९२। पदसंखा १६३२। सासणसम्मादिट्ठि-भंगा ९६। पदसंखा ७६८। सम्मामिच्छादिट्ठि-भंगा ९६। पद-बंधा ७६८। असंजदसम्मादिट्ठि-भंगा १९२। पदबंधा १४४०।

आहारकायजोगिम्मि पमत्तसंजदस्स सम्मत्तं संजलणकोहमाणमायालोभाणमेक्कदरं तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्सरइ-अरइसोग दुण्हं जुगलाणमेक्कदरं भय दुगुंछा च एदाओ पगडीओ घेत्तूण सत्त-उदयट्ठाणं। एदस्स इक्को चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण छ-उदयट्ठाणं। एदस्स पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहिय-दुगुंछ-सहियाओ घेत्तूण वा छ-उदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ चउवीस भंगो। एदाओ चेव पगडीओ भयरहियाओ घेत्तूण पंच-उदयट्ठाणं। एदस्स वि पढमो चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछरहिय-भयसहियाओ घेत्तूण वा पंच-उदयट्ठाणं। एदस्स विदिओ चउवीसभंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तसहिय-भयरहियाओ घेत्तूण वा पंच उदयट्ठाणं। एदस्स तदिओ चउवीस-भंगो। एदाओ चेव पगडीओ सम्मत्तरहियाओ घेत्तूण वा चत्तारि उदयट्ठाणं। एदस्स वि इक्को चेव चउवीसभंगो। सव्वभंगा एत्तिया हुंति १९२। सत्तण्हं इक्को चउवीसभंगो, छण्हं तिण्णि चउवीसभंगो, पंचण्हं तिण्णि चउवीसभंगो, चउण्हं इक्क चउवीसभंगो, सत्त-छ-पंच-चउपगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति १०५६।

एवं आहारमिस्सम्मि। पमत्तसंजदभंगा १९२। पदबंधा १०५६। एवं वेउव्वियमिस्स-कम्मइय-ओरालियमिस्स-वेउव्वियाहाराहारमिस्सकायजोगस्स सव्वभंगा इत्तिया हुंति १८२४। पदबंधा एत्तिया हुंति १३७६०।

मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइओ त्ति एदेसु दससु गुणट्ठाणेसु चत्तारि मणजोग-चत्तारि वचिजोग-ओरालिय-कायजोगा हुंति। एदेसिं इक्केक्कजोगम्मि पुव्वुत्तगुणट्ठाणेसु दससु भणिय-उदयवियप्पा बारससदा पण्णट्ठा हुंति १२६५। ते सच्चमणजोगादि-णवजोगेहिं गुणिया एत्तिया हुंति ११३८५। एदे उदयवियप्पा वेउव्वियमिस्सादिसु छसु जोगेसु भणिद-अट्ठारस-सद-चउवीस-छउदयवियप्पेहिं मेलविया सव्वबंधवियप्पा एत्तिया हुंति १३२०९। एवं 'तेरस चेव सहस्सा वे चेव सदा हवंति णव चेव'। पुव्वुत्तगुणट्ठाणेसु भणिद-पदबंधा चउरासीदिसदसत्तत्तरी ८४७७ णवजोगेहिं गुणिया एत्तिया हुंति ७६२९३। एदे पदबंधा वेउव्वियमिस्सकायजोगादिसु भणिय-तेरससहस्स-सत्तसदसट्ठि-पदबंधेहिं सहिया सव्वपदबंधा एत्तिया हुंति ९००५३। 'णउदी चेव सहस्सा तेवण्णा चेव हुंति बोधव्वा।'

सत्तत्तरि चेव सदा णवणउंदा चेव हुंति बोधव्वा।
उदयवियप्पे जाणसु उवओगा मोहणीयस्स ॥६३॥

इक्कावण्णसहस्सा तेसीदा चेव हुंति बोधव्वा।
पदसंखा णायव्वा उवओगे मोहणीयस्स ॥६४॥

'सत्तत्तरि चेव सदा' मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीसु मदि-अण्णाणं सुद-अण्णाणं विभंगा-णाणं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं एदे पंच उवओगा हुंति। एदे से [सिं] इक्केक्कम्मि उवओगम्मि तेसु गुणट्ठाणेसु पुव्वभणिद-उदयवियप्पा दुसदा अट्ठासीदा लब्भंति २८८। ते पंचउवओगेहिं गुणिया एत्तिया हुंति १४४०। तेसु गुणट्ठाणेसु अप्पणो उदयवियप्पा अप्पप्पणो पगडीहिं पुध पुध गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति २४००। ते पंच-उवओगेहिं गुणिया पदबंधा हुंति १२०००।

सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेसु तिसु गुणट्ठाणेसु आभिणिबोधिय-णाणं सुदणाणं ओहिणाणं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओधिदंसणं एदे छ उवओगा हुंति। एदेसिं इक्केक्कम्मि उवओगम्मि तेसु तीसु गुणट्ठाणेसु पुव्वभणिद-उदयवियप्पा चत्तारि सदा असीदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लब्भंति ४८० । एदे छ-उवओगेहिं गुणिया एत्तिया हुंति २८८० । तेसु गुणट्ठाणेसु अप्पप्पणो भणिय-उदयवियप्पा पुध पुध अप्पप्पणो पगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ३४५६ । ते छ-उवओगेहिं गुणिया पदबंधा एत्तिया हुंति २०७३६ ।

पमत्तसंजद-अपमत्तसंजद-अपुव्व-अणियट्टि-सुहुमसंपराइय एदेसु पंचसु गुणट्ठाणेसु आभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं मणपज्जवणाणं चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं ओहिदंसणं एदे सत्त उवओगा हुंति । एदेसिं उवओगम्मि तेसु पंचसु गुणट्ठाणेसु अप्पप्पणो पुव्वभणिदवियप्पा मेलिया चारि सदा सत्ताणउदी लब्भंति ४९७ । एदे सत्त-उवओगेहिं गुणिया इत्तिया हुंति ३४७९ । एदेसु पंचसु गुणट्ठाणेसु अप्पप्पणो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा अप्पप्पणो पगडीहिं गुणिऊण मेलविया २६२१ हुंति । एदे सत्त उवओगेहिं गुणिया पदबंधा एत्तिया हुंति १८३४७ । सव्व-उदयवियप्पा मेलिया इत्तिया हुंति ७७९९ । एवं 'सत्तत्तरि चेव सदा णवणउदा चेव उदया हवंति बोधव्वा ।' सव्वपदबंधा मेलिया एत्तिया हुंति ५१०८३ । 'एक्कावण्णसहस्सा तेसीदा चेव हुंति बोधव्वा ।'

वावण्णं चेव सदा सत्ताणउदा हवंति बोधव्वा ।
उदयवियप्पे जाणसु लेसं पदि मोहणीयस्स ॥६५॥
अट्ठत्तीससहस्सा वे चेव सदा हवंति सगतीसा ।
पदसंखा णादव्वा लेसं पदि मोहणीयस्स ॥६६॥

'वावण्णं चेव सदा' मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव असंजदसम्मादिट्ठिस[त्ति]एदेसु चउसु गुणट्ठाणेसु किण्ह णील काउ तेउ पम्म सुक्क छ लेसा हुंति । एदेसिं इक्का वा लेस्साए चउसु गुणट्ठाणेसु अप्पप्पणो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा मेलिया पंचसदा छावत्तरी लब्भंति ५७६ । एदे छ-लेसाहिं गुणिया एत्तिया हुंति ३४५६ । तेसु चउसु गुणट्ठाणेसु अप्पप्पणो पुव्वभणिदवियप्पा अप्पप्पणो पगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ४६०८ । एदे छ-लेसाहिं गुणिया पदबंधा एत्तिया हुंति २७६४८ ।

संजदासंजद पमत्तसंजद अपमत्तसंजद एदेसु तिसु गुणट्ठाणेसु तेउ-पम्म-सुक्कलेसा तिण्णि हुंति । एदेसिं इक्का य लेस्सा एत्तिएसु तिसु गुणट्ठाणेसु अप्पप्पणो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा मेलिया पंचसदा छावत्तरी लब्भंति ५७६ । एदे तीहिं लेस्साहिं गुणिया उदयवियप्पा एत्तिया हुंति १७२८ । तेसु तिसु गुणट्ठाणेसु अप्पप्पणो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा अप्पप्पणो पगडीहिं गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया हुंति ३३६० । एदे तीहिं लेसाहिं गुणिया पदबंधा एत्तिया हुंति १००८० ।

अपुव्वकरणप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइगो त्ति एदेसु तीसु गुणट्ठाणेसु सुक्कलेसा इक्का चेव । तेसु गुणट्ठाणेसु अप्पप्पणो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा मेलिया एत्तिया हुंति [११३] । इक्काए लेसाए गुणिया वि तत्तिया चेव । तेसिं पमाणं तेरसुत्तरसदा ११३ । तेसु तीसु गुणट्ठाणेसु अप्पप्पणो पुव्वभणिद-उदयवियप्पा अप्पप्पणो पगडीहिं पुध पुध गुणेऊण मेलिया पदबंधा एत्तिया [५०९] हुंति । एक्काए सुक्कलेसाए गुणिया तत्तिया चेव । तेसिं पमाणं णवुत्तरपंचसदा ५०९ । सव्व-उदयवियप्पा मेलिया एत्तिया हुंति ५२९७ । एवं 'वावण्णं चेव सदा सगणउदा चेव हुंति बोधव्वा' । सव्वपदबंधा मेलिया एत्तिया हुंति ३८२३७ । एवं 'अट्ठत्तीस सहस्सा वे चेव सदा हवंति सगतीसा' ।

'जोगोवजोगं' जम्मि गुणट्ठाणे [जे] जोगादिया हुंति, ते तम्मि गुणगारा हुंति त्ति । जोगोवओगलेसा-संजमादीहिं गुणिया उदयवियप्पा पदसंखा य हुंति त्ति जाणियव्वा ।

तिण्णेगे एगेगं दो मिस्से पंच चउ णिअट्टिम्मि तिण्णि ।
दस बादरम्मि सुहुमे चत्तारि य तिण्णि उवसंते ॥६७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तिण्णेगे एगेगं' मिच्छादिट्ठिम्हि अट्ठावीस सत्तावीस छव्वीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि। सासणसम्मादिट्ठिम्मि अट्ठावीससंतट्ठाणमेक्कं। सम्मामिच्छादिट्ठिम्मि अट्ठावीस सत्तावीस एदाणि दोण्णि संतट्ठाणाणि। असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजद एदेसु चदुसु गुणट्ठाणेसु अट्ठावीस चउवीस तेवीस बावीस इक्कवीस एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। अपुव्वकरणम्मि अट्ठावीस चउवीस इक्कवीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि हुंति उवसमगम्हि। खवगम्हि इगिवीस बादर-अणियट्टिम्मि अट्ठावीस चउवीस इक्कवीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि हुंति उवसामगे। खवगे पुण इक्कवीस तेरस बारस इक्कारस पंच चत्तारि तिण्णि दोण्णि एदाणि अट्ठ संतट्ठाणाणि हुंति। अणियट्टिसुहुमम्मि अट्ठावीस चउवीस इक्कवीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि हुंति उवसामगे। खवगे पुण एगं लोभसंजलणसंतं। उवसंतकसायम्मि अट्ठावीस चउवीस इक्कवीस एदाणि तिण्णि संतट्ठाणाणि हुंति।

छण्णव छ त्तिय सत्त य एग दुग तिग दु तिगट्ठ चदुं।
दुग दुग चदु दुग पण चदु चउरेग चदु पणगेग चदुं ॥६८॥
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ छदुमत्थ-केवलिजिणाणं।
एगं चदु एग चदु दो चदु दो छक्क उदयकम्मंसा ॥६९॥

इदाणिं णामस्स वुच्छामि—मिच्छादिट्ठिम्मि तेवीस पणुवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एदाणि छ बंधट्ठाणाणि, इक्कवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीस एदाणि णव उदयट्ठाणाणि, बाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि बासीदि एदाणि छ संतट्ठाणाणि।

सासणसम्मादिट्ठिम्मि अट्ठावीस एगूणतीस तीस एदाणि तिण्णि बंधट्ठाणाणि, इक्कवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस [तीस] इक्कतीस एदाणि सत्त उदयट्ठाणाणि, णउदि इक्कं संतट्ठाणं। सम्मामिच्छादिट्ठिम्मि अट्ठावीस एगूणतीस एदाणि दोण्णि बंधट्ठाणाणि, एगूणतीस तीस इक्कतीस एदाणि तिण्णि उदयट्ठाणाणि, बाणउदि णउदि एदाणि दोण्णि संतट्ठाणाणि। असंजद-सम्मादिट्ठिम्मि अट्ठावीस एगूणतीस तीस एदाणि तिण्णि बंधट्ठाणाणि, इक्कवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एगतीस एदाणि अट्ठ उदयट्ठाणाणि, तेणउदि बाणउदि इक्काण-उदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि। संजदासंजदम्मि अट्ठावीस एगूणतीस एदाणि दोण्णि बंधट्ठाणाणि, तीस इक्कतीस एदाणि दुण्णि उदयट्ठाणाणि, तेणउदि बाणउदि इक्काणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि। पमत्तसंजदम्मि अट्ठावीस एगूणतीस एदाणि दोण्णि बंधट्ठाणाणि, पणुवीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, तेणउदि बाणउदि इक्काण-उदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि। अप्पमत्तसंजदम्मि अट्ठावीस एगूणतीस तीस एगतीस एदाणि चत्तारि बंधट्ठाणाणि, तीस इक्क-उदयट्ठाणं, तेणउदि बाणउदि इक्काणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि।

अप्पुव्वकरणम्मि अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीस इक्कं एदाणि पंच बंधट्ठाणाणि, तीसं इक्कं उदयट्ठाणं, तेणउदि बाणउदि इक्काणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि। अणियट्टिम्मि जसकित्ती इक्कं च बंधट्ठाणं, तीसं इक्कं उदयट्ठाणं, तेणउदि बाणउदि इक्काणउदि णउदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि अट्ठ संतट्ठाणाणि। सुहुमम्मि जसकित्ती इक्कं च बंधट्ठाणं, तीसं इक्कं उदयट्ठाणं, तेणउदि बाणउदि इक्काणउदि णउदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि अट्ठ संतट्ठाणाणि। उवसंतकसायम्मि तीसं इक्कं उदयट्ठाणं, तेणउदि बाण-उदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि। खीणकसायम्मि तीसं इक्कं उदयट्ठाणं, असीदि एगूणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि। सजोगिकेवलिम्मि तीसं इक्कत्तीसं एदाणि दोण्णि उदयट्ठाणाणि, असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि। अजोगिकेवलिम्मि णव अट्ठ एदाणि दुण्णि उदयट्ठाणाणि, असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि छ संतट्ठाणाणि।

दो छक्कट्ठ चउक्कं णिरयादिसु बंधपगडिठाणाणि।
पण णव दसयं पणय त्ति पंच वार चउक्कं तु ॥७०॥

'दो छक्कट्ठ चउक्कं' णेरइयम्मि एगूणतीसं तीसं एदाणि दोण्णि बंधट्ठाणाणि, इक्कवीस पणुवीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, बाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि बासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। [तिरिक्खगइम्मि तेवीस पंचवीस छव्वीस अट्ठावीस ऊणत्तीस तीस एदाणि छ बंधट्ठाणाणि, इगिवीस चदुवीस पणुवीस छब्बीस सत्तावीस अट्ठावीस ऊणतीस तीस एक्कत्तीस एदाणि णव उदयट्ठाणाणि, बाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि बासीदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि।] मणुसम्मि तेवीस पंचवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीसं इक्कं एदाणि अट्ठ बंधट्ठाणाणि, एक्कवीस पंचवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कत्तीस णव अट्ठ एदाणि दस उदयट्ठाणाणि, तेणउदि बाणउदि एक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि बारस संतट्ठाणाणि। देवगइम्मि पंचवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि चत्तारि बंधट्ठाणाणि, इक्कवीस पंचवीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, तेणउदि बाणउदि इक्काणउदि णउदि एदाणि चत्तारि संतट्ठाणाणि।

इगि विगलिंदिय सयले पण पंचय अट्ठ बंधठाणाणि।
पण छक्क दसयमुदयं पण पण तेरे दु संतम्मि ॥७१॥

इगि विगलिंदियजादिआदि सयलिंदियम्मि तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच बंधट्ठाणाणि, इक्कवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, बाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि बासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। विगलिंदियम्मि तेवीस पंचवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि छ उदयट्ठाणाणि, बाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि बासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। पंचिंदियम्मि तेवीस पणुवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कत्तीस इक्क एदाणि अट्ठ बंधट्ठाणाणि, इक्कवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कत्तीस णव अट्ठ एदाणि दस उदयट्ठाणाणि, तेणउदि बाणउदि इक्काणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि बासीदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि तेरस संतट्ठाणाणि।

तिय दुण्णि इक्किकाआ पण पंच य अट्ठ हुंति बंधाओ।
पण चदु दस उदयगदा पण पण तेरे दु संतो ऊ ॥७२॥

'तिय काया' पुढवीकाइय-आउकाइय-वणप्फदिकाइएसु तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच बंधट्ठाणाणि, इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस एदाणि पंच उदयट्ठाणाणि, बाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि बासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। 'दुण्णि य काया' तेउ-वाउकाइएसु तेवीस पणुवीस छव्वीस एगूणतीस तीस एदाणि पंच बंधट्ठाणाणि, इगिवीस चउवीस पणुवीस छव्वी एदाणि चत्तारि उदयट्ठाणाणि, बाणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि बासीदि एदाणि पंच संतट्ठाणाणि। 'इक्किकाया' तसकाइएसु तेवीस पणुवीस छव्वीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कत्तीस इक्क एदाणि अट्ठ बंधट्ठाणाणि, इगिवीस पणुवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस इक्कतीस णव अट्ठ एदाणि दस उदयट्ठाणाणि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेणउदि बाणउदि इक्कणउदि णउदि अट्ठासीदि चउरासीदि बासीदि असीदि एगूणासीदि अट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस णव एदाणि तेरस संतट्ठाणाणि ।

इय कम्मपगडिट्ठाणाणि सुट्ठु बंधुदयसंतकम्माणि ।
गइआइएसु अट्ठसु चउप्पयारेण णेयाणि ॥७३॥

इय एवं बंधुदयसंतकम्मपगडिट्ठाणाणि [सुट्ठु] सम्मं णाऊण गइआइएसु णिरयगइ एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चदुरिंदिय पंचिंदिय तिरिक्खगइ मणुसगइ देवगइ एदासु अट्ठमग्गणासु बंध-उदय-उदीरणा-संतसरूवचउव्विहेण जाणिज्जासु ।

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जइ विसेसो ।
मोत्तूण य इगिदालं सेसाणं सव्वपगडीणं ॥७४॥

'उदयस्स उदीरणस्स य' पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-पंचअंतराइयाण मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव खीणकसाय-अद्धाए समयाधियआवलियसेस त्ति उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव चरमसमओ त्ति । णिद्दापचलाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव खीणकसायसमयाधियावलिसेस त्ति उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव दुचरमसमओ त्ति । णिद्दाणिद्दा-पचला-पचला-थीणगिद्धीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव पमत्तसंजदो त्ति आहारसरीरं आवलियमेत्तकालेण उट्ठावेदि त्ति ताव उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव चरमसमयो त्ति । सादासादं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव पमत्तसंजदो त्ति ताव उदीरणा । उदओ पुण अजोगिचरमसमओ त्ति । मिच्छत्तस्स उदीरणा मिच्छादिट्ठिचरमसमयो त्ति सम्मत्ताभिमुहमिच्छादिट्ठि-अणियट्टिकरणद्धाए समयाधिय-आवलियसेस त्ति उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव चरमसमओ त्ति। लोभसंजलणस्स मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सुहुमसंपराइगद्धाए समयाधियआवलियसेस त्ति ताव उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव चरमसमओ त्ति । इत्थि-णवुंसग-पुरिसवेदाण मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अणियट्टिअद्धाए संखेज्जभागे गंतूण अप्पप्पणो वेदगद्धाए समयाधियआवलियसेस त्ति ताव उदीरणा । उदओ पुण तस्सेव अप्पप्पणो वेदगद्धाए चरमसमओ त्ति । सम्मत्तस्स असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुदि जाव अप्पमत्तसंजदो त्ति ताव उदीरणा। णवरि अप्पप्पणो दंसणखवण-अणियट्टिकरणद्धाइ समयाहिय आवलियसेस त्ति ताव उदीरणा । उदओ पुण अप्पप्पणो चरमसमओ त्ति । णिरय-देवाउगाणं मिच्छादिट्ठिप्हुदि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ताव उदीरणा । णवरि मरणावलियं मुत्तूण । सम्मामिच्छादिट्ठी मरणावलियवसो णत्थि । उदओ पुण अप्पप्पणो चरमसमओ त्ति । तिरिक्खाउगस्स मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव संजदासंजदो त्ति ताव उदीरणा । णवरि अप्पप्पणो मरणावलियं मुत्तूण । सम्मामिच्छादिट्ठी मरणावलियवसो णत्थि । उदओ पुण अप्पप्पणो चरमसमओ त्ति । मणुसाउगस्स मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव पमत्तसंजदो त्ति ताव उदीरणा । णवरि अप्पप्पणो मरणावलिं मत्तूण । सम्मामिच्छादिट्ठिम्मि मरणावलिववदेसो णत्थि । उदओ पुण अजोगिचरमसमओ त्ति । मणुसगइ-पंचिंदियजाइ-तस-बादर-पज्जत्त-सुभग-आदेज्ज-जसकित्तीणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सजोगिकेवली ताव उदीरणा । उदओ पुण अजोगिचरमसमओ त्ति । तित्थयरस्स सजोगिकेवलिम्मि उदीरणा । उदओ पुण अजोगि त्ति । उच्चागोदस्स जहा मणुसगदि तहा णेयव्वा । आदाव-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणाणं उदय-उदीरणा मिच्छादिट्ठिम्मि । अणंताणुबंधि-एइंदिय-वेइंदिय-तेइंदिय-चदुरिंदिय-थावराणं मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं उदयो उदीरणा च । अपच्चक्खाणावरणचउक्क-णिरयगइ-देवगइ-वेउव्विय-वेउव्वियसरीरंगोवंग-दुभग-अणादिज्ज-अजसकित्ति-णिमिणा-[णामाणं] मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति उदयो उदीरणा च । णिरयगइ-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वीणं मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीसु उदओ उदीरणा च । णवरि सासणे णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी णत्थि । पच्चक्खाणावरणचउक्क-तिरिक्खगइ-उज्जोव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खाउग-णीचगोदाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव संजदासंजदो त्ति उदओ उदीरणा च। आहार-सरीर-आहारसरीरंगोवंगाणं पमत्तसंजदस्स आहारसरीरअं तु उट्ठाविदस्स उदयो उदीरणा च। अद्धणाराय-खीलिय-असंपत्तासेवट्टसरीरसंघडणाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अप्पमत्तसंजदो त्ति उदयो उदीरणा च। हस्स-रइ-अरइ-सोग-भय-दुगुंछाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अपुव्वकरणो त्ति उदयो उदीरणा च। कोह-माण-मायासंजलणाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव अणियट्टि-अद्धा-संखेज्जभागो त्ति उदयो उदीरणा च। वज्जणाराय-णारायसरीरसंघडणाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव उवसंतकसाओ त्ति ताव उदयो उदीरणा च। ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-छसंठाण-ओरालियसरीरंगोवंग-वज्जरिसभणारायवइरसरीरसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास - अगुरुगलहुग - उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थापसत्थविहायगइ-पत्तेगसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-सुस्सर - दुस्सर-णिमिणणामाणं मिच्छादिट्ठिप्पहुदि जाव सजोगिकेवली उदयो उदीरणा च।

णाणंतरायदसयं दंसण णव वेदणीय मिच्छत्तं।
सम्मत्त-लोभ-वेदाउगाणि णव णाम उच्चं च ॥७५॥

एदाओ इगिदालपगडीओ पुव्वं वुत्ताओ।

तित्थयराहारविरहियाओ अज्जेइ सव्वपगडीओ।
मिच्छत्तवेदओ सासणो य उगुवीससेसाओ ॥७६॥
छादालसेसमिस्सो अविरदसम्मो तिदालपरिसेसा।
तेवण्ण देसविरदो [विरदो] सगवण्ण सेसाओ ॥७७॥
उक्कुट्ठि-[उगुसट्ठि-] मप्पमत्तो बंधइ देवाउगं च इयरो वि।
अट्ठावण्णमपुव्वो छप्पण्णं चावि छव्वीसं ॥७८॥
बावीसा एगूणं बंधइ अट्ठारसं तु अणियट्टी।
सत्तरस सुहुमसरागे सादममोहो सजोगी दु ॥७९॥
एसो दु बंधसामित्तो गइयाइएसु य णायव्वो।
ओघादो सासाविज्जो [साहिज्जो] जत्थ जहा पयडिसंभवो होइ ॥८०॥

'तित्थयराहारविरहियाओ' तित्थयराहारसरीर-आहारसरीररंगोवंग एदाओ तिण्णि पगडि-विरहियाओ वीसुत्तरसद-पगडीओ मिच्छादिट्ठी बंधइ ११७। सदगम्हि य भणिद-सोलस मिच्छत्तंता तित्थयराहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगसहिय - एगूणवीस - पगडिरहिय - वीसुत्तरसद-पगडीओ सासणसम्मादिट्ठी बंधइ १०१। सदगम्हि य भणिद-सोलसमिच्छत्तंता, सासणंता पणुवीसं तित्थयर-आहारदुगं मेलिय मणुस-देवाउगमेलिया छादालपगडि-विरहिय-वीसुत्तरस-पगडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी बंधइ ७४। तित्थयरमणुस-देवाउग-विरहिय-पुव्वभणिद-छादाल पगडिविरहिया वीसुत्तरसदपगडीओ सम्मामिच्छादिट्ठी [असंजदसम्मादिट्ठी] बंधइ ७७। सोलस मिच्छत्तंता, पणुवीस सासणंता, असंजदसम्मादिट्ठि-अंता दस, आहारसरीर-आहार-सरीरंगोवंगमेलिया तेवण्ण-पगडिविरहिया वीसुत्तरसदपगडीओ संजदासंजदो बंधइ ६७। सदगम्हि भणिद सोलस मिच्छत्तंता, पणुवीस सासणंता, दसय असंजदसम्मादिट्ठि-अंता, चत्तारि देसविरदंता आहारदुगमेलिया सत्तवण्णपगडिरहियाओ 'वीसुत्तरसदपगडीओ पमत्त-संजदो बंधइ ६३। 'उगुसट्ठिमप्पमत्तो बंधइ' अप्पमत्तसंजदो पंचणाणावरणीयं छ दंसणावरणीयं सादावेदणीयं चत्तारि संजलणं पुरिसवेद हस्स रइ भय दुगुंछ देवाउगं देवगइ पंचिंदियजाइ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्वियाहार-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरसंठाण-वेउव्विय-आहारंगोवंग वण्णचत्तारि देवगइ-पाओग्गाणुपुव्वी अगुरुगलहुगादि चत्तारि पसत्थविहायगइ तस बादर पज्जत्त पत्तेगसरीर थिर सुभ सुभग सुस्सर आदिज्ज जसकित्ती णिमिण तित्थयर उच्चगोद पंच अंतराइय एदाओ ऊणसट्ठि-पगडीओ अप्पमत्तसंजदो बंधइ। सेसाओ इक्कसट्ठिपगडीओ ण बंधइ। अप्पमत्तो सेससंखेज्जदि-भागे अट्ठावण्णं बंधइ, वासट्ठी ण बंधइ। कहं ? अंतोमुहुत्तं संखेज्जखंडाणि काऊण दसमे [संखेज्जदिमे] खंडे देवाउगं ण बंधइ, तेण अट्ठावण्णपगडीओ बंधइ; वासट्ठी ण बंधइ। 'अट्ठावण्णमपुव्वो छप्पण्णं चावि छव्वीसं' अट्ठावण्ण जाणि चेव अपमत्तोदएण खएण बंधइ, ताणि चेव अपुव्वकरणे सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण छप्पण्णं बंधइ, चउसट्ठी ण बंधइ। किं कारणं ? णिद्दा-पचलाओ संखेज्जदिमे भागे वोच्छिण्णाओ। सो चेव अपुव्वकरणे पुणरवि सेस-संखेज्जदिमे भागे गंतूण पंचणाणावरण चउदंसणावरण सादावेदणीयं चत्तारि संजलण पुरिसवेद हस्स रइ भय दुगुंछा जसकित्ती उच्चागोदं पंचअंतराइय एदाओ छव्वीस पगडीओ बंधइ, चउण-उदिपगडीओ ण बंधइ। सो चेव अपुव्वकरणो चरमसमए वावीसपगडीओ बंधइ, अट्ठाणउदि-पगडीओ ण बंधइ। कहं ? हस्स रइ भय दुगुंछा च चरमसमए वुच्छिण्णाओ। 'वावीसादो एगेगूणं बंधइ अट्ठारसं अणियट्टी। सत्तरस सुहुमसंपराइय सादममोहो सजोगि त्ति' अणियट्टिस्स अंतोमुहुत्तसंखेज्जभागे गंतूण इक्कवीस पगडीओ बंधइ, एगूणसदं ण बंधइ, पुरिसवेदस्स बंधो वुच्छिण्णो। सो चेव अणियट्टी सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण वीसपगडी बंधइ, एगपगडिसदं ण बंधइ; कोहसंजलणो य वुच्छिण्णो। सो चेव अणियट्टी पुण सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण वीस-पगडीओ बंधइ, एगुत्तरपगडिसदं ण बंधइ; माणसंजलणा य बंधवुच्छिण्णा। सो चेव अणियट्टी पुणरवि सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अट्ठारस पगडीओ बंधइ, वेउत्तरपगडिसदं ण बंधइ, माय-संजलणो य बंधवुच्छिण्णो। सुहुमसंपराइओ पंचणाणावरण चत्तारि दंसणावरण सादावेदणीय जसकित्ती उच्चगोद पंच अंतराइय त्ति एदाओ सत्तरस पगडीओ सुहुमसंपराओ बंधइ, ति-उत्तर-पगडिसदं ण बंधइ, लोभसंजलणस्स बंधो वुच्छिण्णो। उवसंतकसाय खीणकसाय सजोगिकेवलित्ति एक्कपगडी सादं बंधं, एगूणवीसुत्तरपगडिसदं ण बंधइ। अजोगिस्स बंधवुच्छिण्णो। 'एसो दु बंधसामित्तो गदिआदिएसु वि तहेव ओघादो साहिज्जो जस्स जहा पयडिसंभवो होदि। एसोघो गुणट्ठाणेसु भणिदव्वो।

तित्थयर देव-णिरयाउगं च तीसु वि गईसु बोधव्वा।
अवसेसा पगडीओ हवंति सव्वासु वि गईसु ॥८१॥

एदाणि बंधसामित्तादो साधिदूण गदि आदि कादूण जाव अणाहारए त्ति णादव्वं। तित्थ-यरपगडिसंतेण तीसु वि गदीसु अत्थि। णिरयगइ मणुसगइ देवगइ एदासु तीसु गदीसु तित्थयर-संतेण अत्थि। तिसु [वि] गदीसु देवाउसंतेण अत्थि। देव-[णिरय]-गइ तिरिक्खगइ मणुसगइ एदासु तिसु गदीसु णिरयाउगं-[सं-] तेण अत्थि त्ति विण्णेयं। सेसाओ पगडीओ चउसु वि गईसु अत्थि। सेसाओ ओघदिसेण गदिआदि कादूण णेयव्वं जाव अणाहारए त्ति।

पढमकसायचदुक्कं दंसणतिग सत्तआ दु उवसंता।
अविरदसम्मत्तादी जाव णियट्टि त्ति बोधव्वा ॥८२॥

सत्तट्ठ णव य पण्णरस सोलस अट्ठारस वीस वावीसा।
चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं बादरे जाण ॥८३॥

सत्तावीसं सुहुमे अट्ठावीसं तु मोहपगडीओ ।
उवसंतवीयरागे उवसंता हुंति णायव्वा ॥८४॥

मोहणीयस्स गुणट्ठाणएहिं काओ पगडीओ उवसंताओ ? सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्कं एदाओ सत्त पगडीओ पंचसु ठाणएसु उवसंताओ असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुदि जाव अपुव्वकरणो त्ति । अणियट्टिबादरस्स सत्तट्ठ णव य पण्णरस सोलस अट्ठारस वीस बावीस चउवीस पणुवीस छव्वीस एदे इक्कारस भंगा अंतोमुहुत्तस्स संखेज्जदिमभागे गंतूण । सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं अणंताणुबंधिचदुक्कं एदाओ सत्त पगडीओ पुव्वोवसंताओ । संखेज्जदिमे भागे गंतूण णवुंसकवेदो उवसंतो । सत्तपगडीसु णवुंसगवेदो छत्तेदूण अट्ठ । एवं जो जहा उवसंतो, तेण जहा [सो तहा] ढोढव्वा । पुणरवि सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण इत्थीवेदो उवसंतो, तेण णव । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण हस्स-रइ-अरइ-सोग-भय दुगुंछाओ एदाओ छ पगडीओ उवसंताओ, तेण पण्णरस । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण पुरिसवेदो उवसंतो, तेण सोलस । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अपच्चक्खाणावरणकोहो पच्चक्खाणावरणकोहो उवसंतो, तेण अट्ठारस । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अपच्चक्खाणावरणमाणो पच्चक्खाणावरणमाणो उवसंतो, तेण वीसं । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अपच्चक्खाणावरणमाया पच्चक्खाणावरणमाया उवसंता, तेण बावीसं । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अपच्चक्खाणावरणलोभो पच्चक्खाणावरणलोभो उवसंतो, तेण चउवीसं । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण कोहसंजलणं उवसंतं, तेण पणुवीसं । सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण माणसंजलणं उवसंतं, तेण छव्वीसं । सुहुमसंपराइयस्स सत्तावीस उवसंता । कहं ? जेण अणियट्टिबादरचरमसमए मायसंजलणा उवसंता तेण सत्तावीस भवंति । उवसंतकसायस्स अट्ठावीसं पि उवसंता । कहं जेण सुहुमसंपराइयस्स चरमसमए लोभसंजलणं उवसंतं, तेण अट्ठावीस भवंति । एत्थ गाहा—

"सत्तावीसं सुहुमे अट्ठावीसं पि मोहपगडीओ ।
उवसंत वीयराए उवसंता हुंति णायव्वा" ॥८५॥
पढमकसायचउक्कं इत्तो मिच्छत्त मिस्स सम्मत्तं ।
अविरदसम्मे देसे विरदे पमत्तापमत्ते य खीयंति ॥८६॥
अणियट्टिबादरे थीणगिद्धितिग णिरयादि [णिरय-तिरिय-] णामाओ ।
संखेज्जदिमे सेसे तप्पाओग्गा य खीयंति ॥८७॥
एत्तो हणादि कसायट्ठयं तु पच्छा णउंसयं इत्थी ।
तो णोकसायछक्कं पुरिसवेदम्मि संछुभदि ॥८८॥
पुरिसं कोहे कोहं माणे माणं च छुभदि मायाए ।
मायं च छुब्भदि लोहे लोभं सुहुमं पि तो हणदि ॥८९॥

इदाणिं गुणट्ठाणएसु भणिस्सामो—'पढमकसायचदुक्कं' मिच्छत्तं सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं अणंताणुबंधी चत्तारि, एदाओ सत्त पगडीओ असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो पमत्त-अप्पमत्त-संजदो वा खवेदि । अणियट्टिबादरे थीणगिद्धितिगं णिरय-तिरियणमाओ संखेज्जदिमे सेसे तप्पाओग्गा खीयंति । अपुव्वकरणो एगं पि पगडी ण खवेदि । अणियट्टिबादरस्स णिद्दाणिद्दा पचलापचला थीणगिद्धी णिरयगइ तिरिक्खगइ एइंदिय वेइंदिय तेइंदिय चदुरिंदिय णिरयतिरिक्खाणुपुव्वी आदाव उज्जोव थावर सुहुम साहारण एदाओ सोलस पगडीओ संखेज्जदिमे भागे खीयंति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुणरवि सो चेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण अपच्चक्खाणावरणचत्तारि पच्चक्खाणावरण-चत्तारि एदाओ अट्ठ पगडीओ खवेदि। सो चेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण णउंसगवेदं खवेदि। सो चेव अणियट्टि [सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण] इत्थीवेदं खवेदि। सो चेव अणियट्टि सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण हस्स रइ अरइ सोग भय दुगुंछा च एदे छण्णोकसाए पुरिसवेदम्मि किंचिमित्तं छोदूणं खीयंति। सो चेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण पुरिसवेदं किंचावलेखं कोहसंजलणे छोदूण खीयंति। सो चेव अणियट्टिसेससंज्जदिमे भागे गंतूण कोहसंजलणं माणसंज-लणे किंचवसेसं छोदूण खीयंति। तस्सेव अणियट्टिसेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण माणसंजलणं किंचवसेसं मायसंजलणे छोदूण खीयंति। तस्सेव अणियट्टिस्स सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण माय-संजलणं किंचवसेसं छोदूणं खीयंति। तस्सेव अणियट्टिस्स सेससंखेज्जदिमे भागे गंतूण मायसंज-लणा य किंचवसेसं पत्तेयं छोदूण पाडंति लोभसंजलणयं सुहुमसंपराइयो वेदेदि [खवेदि]।

खीणकसायदुचरमे णिद्दा पयला य हणदि छदुमत्थो।
आवरणमंतराए छदुमत्थो हणइ चरमसमयम्मि ॥६०॥

खीणकसाओ दोहिं समएहिं केवली भविस्सदि त्ति णिद्दा पचला य खीयंति। तस्सेव खीणकसायस्स पंचणाणावरण चउ दंसणावरण पंचअंतराइय त्ति एदाओ चोद्दस पगडीओ चरम-समए खीयंति।

देवगइसहगदाओ दुचरमभवसिद्धियस्स खीयंति।
सविवागेदरसण्णा मणुसगइणाम णीचं पि इत्थेव ॥६१॥
अण्णदरवेदणीयं मणुसाउग उच्चगोद णाम णव।
वेदेइ अजोगिजिणो उक्कस्स जहण्णमेयारं ॥६२॥
मणुसगइ पंचिंदियजादि तस बादरं च पज्जत्तं।
सुभगं आदिज्जं जसकित्ती तित्थयरणामस्स हवंति णव एदे ॥६३॥
तच्चाणुपुव्विसहिदा तेरस भवसिद्धियस्स चरमंते।
संतस्स दु उक्कस्सं जहण्णयं बारसा हुंति ॥६४॥
मणुसगइसहगदाओ भव-खेत्तविवाग जीवविवाअं सा।
वेदणियं अण्णदरुच्चं च चरमसमए भवसिद्धियस्स खीयंति ॥६५॥

सजोगिकेवली इक्कि वि पगडी ण खवेदि। "देवगइसहगदाओ दुचरमसमयस्स खीयंति। सविवागेदरमणुसगइणाम णीचं च इत्थेव" देवगइ पंच सरीर पंच संघाद पंच बंधण छ संठाण तिण्णि अंगोवंग छ संघडण पंच वण्ण दो गंध पंच रस अट्ठ फास देवाणुपुव्वी य अगुरुगलहुगादि चत्तारि दो विहायगइ अपज्जत्त पत्तेग थिराथिर सुभासुभ सुभग दुभग सुस्सर दुस्सर अणादिज्ज अजसकित्ती णिमिण णीचगोदं सादासादं च एक्कदरं एदाओ अविवागाओ बावत्तरि पगडीओ अजोगिदुचरससमए खीयंति। सविवागाओ—'मणुसगइसहियाओ अण्णदरवेदणीयं उच्चगोदं वेदेइ अजोगिजिणो उक्कस्स जहण्ण बारस' सादासादाणमेक्कदरं मणुसाउगं मणुसगइ पंचिंदियजाइ तस बादर पज्जत्त सुभग आदिज्ज जसकित्ती तित्थयर उच्चगोद मणुसाणुपुव्वीसहिदाओ एदाओ तेरस पगडीओ चरमसमए संत-उक्कस्स तित्थयरेण अजोगिम्स जहण्णगस्स तित्थयर वज्ज बारस पयडीओ, तित्थयरस्स अजोगिस्स 'मणुसगइसहियाओ भव-खेत्तविवाग जीवविवागं सा वेदणीय अण्णदरुच्चं चरमे भवियस्स खीयंति।" मणुसाऊ भवविवागा, मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी अ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेत्तविवागा; एदाओ भव-खेत्त-जीव-विवागाओ तेरस बारस पगडीओ चरमे भवियस्स अजोगिस्स अणंतरसमए सिद्धो भविस्सदि त्ति खीयंति। एदासु खीणासु—

अह सुचरियसयलजयसिहर अरयणिरुवमसभावसिद्धिसुहं।
अणिहणमव्वाबाहं तिरयणसारं अणुभवंति ॥९६॥
दुरधिगम-णिउण-परमट्ठ-रुचिर-बहुभंगदिट्ठिवादादो।
अत्था अणुसरिदव्वा बंधोदयसंतकम्माणं ॥९७॥
जो इत्थ अपरिपुण्णो अत्थो अप्पागमेण बद्धो त्ति।
तं खमिदूण बहुसुदा पूरेदूणं परिकहंतु ॥९८॥
इय कम्मपगडिपगदं संखेवुद्दिट्ठणिच्छयमहत्थं।
जो उवजुंजदि बहुसो सो णाहइ बंधमुक्खट्ठं ॥९९॥

एवं सत्तरिचूलिया समत्ता।

[इदि पंचमो सत्तरि-संगहो समत्तो।]

एकादशाङ्गम्—४१५०२०००। परियम्म १८१०५०००। सुत्त ८८००००००। पढमाणिओग ५०००। पुव्वगद ९५५०००००००५। चूलिया चेव १०४९४६०००। श्रुतज्ञानमिदं एवं ११२८३५८००।

इति पंचसंग्रहवृत्तिः समाप्ता।
शुभम्भवतु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपालसुत-डड्ढ-विरचिते

संस्कृत-पञ्चसंग्रहे

जीवसमासाख्यः प्रथमः संग्रहः

चतुर्णिकायामरवन्दिताय घातिक्षयावाप्तचतुष्टयाय ।
कुतीर्थतर्कार्जितशासनाय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥१॥

षड्द्रव्याणि पदार्थांश्च नव द्रव्यादिभेदतः । विजानतो जिनान्नत्वा वक्ष्ये जीवप्ररूपणाम् ॥२॥
स्थानयोर्गुण-जीवानां पर्याप्तौ प्राण-संज्ञयोः । मार्गणासूपयोगे च विंशतिः स्युः प्ररूपणाः ॥३॥

१४।१४।६।१०।४।१४ (४।५।६।१५।३।१६।८।७।४।६।२।६।२।२) उपयोगाः १२ ।

जीवस्यौदयिको भावः क्षायिकः पारिणामिकः । क्षायोपशमिकोऽथौपशमिकोऽस्ति गुणाह्वयः ॥४॥
मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रौपशमिकक्षायिकाभिधाः । बन्धमौदयिका भावाः निःक्रियाः पारिणामिकाः ॥५॥

अत्र निःक्रिया इति बन्धं मोक्षं च न कुर्वन्तीत्यर्थः ।

उदयादिभवैर्भावैर्जीवा यैर्लक्ष्यतां गताः । गुणसंज्ञाः समादिष्टास्ते समस्तावभासिभिः ॥६॥
मिथ्यादृक्सासनो मिश्रोऽसंयतो देशसंयतः । प्रमत्त इतरोऽपूर्वानिवृत्तिकरणावपि ॥७॥
सूक्ष्मोपशान्तक्षीणकषाया योग्ययोगिनौ । चतुर्दश गुणस्थानान्येवं सिद्धास्ततोऽपरे ॥८॥
मिथ्यात्वस्योदयाज्जीवः स्यान्मिथ्यादृग् जिनोदितम् । श्रद्दधाति न तत्त्वार्थं जीवाजीवास्रवादिकम् ॥९॥
मिथ्यात्वोदयवान् जीवो जायते विपरीतदृक् । रुचिमात्रं न धर्मेऽस्ति ज्वरिवन्मधुरे रसे ॥१०॥

सासादनः प्रकर्षेण सम्यक्त्वस्याऽऽदिमस्य तु । शेषेऽस्त्यावलिकाषट्के समये च जघन्यतः ॥११॥
सम्यक्त्वात्प्रथमाद् भ्रष्टो मिथ्यात्स्थानमसादयन्[1] । सासादनोऽस्त्यनन्तानुबन्ध्यन्यतमपाकतः ॥१२॥
सम्यग्मिथ्यात्वपाकेन सम्यग्मिथ्यादृगाह्वयः । मिश्रभावो भवेज्जीवो मिश्रं दधिगुडं यथा ॥१३॥
मिश्रं दधिगुडं नैव कर्तुं याति यथा पृथक् । मिश्रभावस्तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिरितीरितः ॥१४॥

विरतो नेन्द्रियार्थेभ्यस्त्रसस्थावरहिंसकः । पाकाच्चारित्रमोहस्य त्रिसम्यक्त्वोऽस्त्यसंयतः ॥१५॥

युक्तोऽष्टान्त्यकषायैर्यः स्थावरेन्द्रियसंयमैः । नाऽन्यथ[युक्तः]सम्यक्त्वाद्येकादशगुणैश्च[2] सः ॥१६॥
न हन्ता त्रसजीवानां स्थावराणां तु हिंसकः । एकस्मिन् समये जीवः संयतासंयतः स्मृतः ॥१७॥

संयतेष्वाऽऽत्मसात्कुर्वन् यः प्राणीन्द्रियसंयमम् । किञ्चित्स्खलितचारित्रः प्रमत्तोऽसौ प्रमादतः ॥१८॥
सञ्ज्वाल-नोकषायाणां यस्मात्तीव्रोदयो यतेः । प्रमादः सोऽस्त्यनुत्साहो धर्मे शुद्ध्यष्टके तथा ॥१९॥
तितिक्षा मार्दवं शौचमार्जवं सत्य-संयमौ । ब्रह्मचर्यं तपस्त्यागाऽऽकिञ्चन्ये धर्म उच्यते ॥२०॥

---

१. अनाश्रयन् । २. सम्यक्त्वाद्येकादशप्रतिमालक्षणैर्गुणैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालुष्यसन्निधानेऽपि द्विषदाक्रोशनादिभिः । अकालुष्यं मुनेः प्राहुस्तितिक्षाऽतिविचक्षणा ॥२१॥
जात्याद्यष्टमदावेशविनाशः खलु मार्दवम् । शुचिभिः सर्वतो लोभान्निवृत्तिः शौचमुच्यते ॥२२॥
वाङ्-मनोऽङ्गक्रियारूपयोगस्यावक्रताऽऽर्जवम् । अपि सत्सु[1] प्रशस्तेषु[2] साधुत्वा[3]त्सत्यमुच्यते ॥२३॥
प्राण्यक्षपरिहारः स्यात्संयमो यमिनां मतः । वासो गुरुकुले नित्यं ब्रह्मचर्यमुदीर्यते ॥२४॥
परं कर्मक्षयार्थं यत्तप्यते तत्तपः स्मृतम् । त्यागः सुधर्मशास्त्रादिविश्राणन[4]मुदाहृतम् ॥२५॥
शारीरादिकमात्मीयमनपेक्ष्य प्रवर्तनम् । निर्ममत्वं मुनेः सम्यगाकिञ्चन्यमुदीरितम् ॥२६॥
मनोवाक्कायभिक्षेर्यासूत्सर्गे शयनासने । विनये च यतेः शुद्धिः शुद्ध्यष्टकमुदाहृतम् ॥२७॥
सर्वशीलगुणैर्युक्तः कर्बुराचरणो[5] यतिः । व्यक्ताव्यक्तप्रमादेषु वर्तमानः प्रमत्तकः ॥२८॥
कषायविकथानिद्राप्रणयाक्षैः प्रमाद्यति । स्याच्चतुश्चतुरेकैकपञ्चसङ्ख्यैः प्रमादवान् ॥२९॥

४।४।१।१।५। सर्वे १५ ।

निःप्रमादोऽप्रमत्ताख्यः स्यादस्खलितसंयमः । शमको न स चारित्रमोहस्य क्षपकश्च न ॥३०॥
प्रसक्तः शुभयोगेषु व्रतशीलगुणान्वितः । भवेत्समितिभिर्युक्तो गुप्तिभिर्ध्यानवानसौ ॥३१॥
ध्मायमानं यथा लोहं शुद्ध्यत्यशुभतो मलात् । अपूर्वकरणात्तद्वदपूर्वकरणै[6]र्युतः ॥३२॥
करणो[7] न समो भिन्नसमयस्थेषु येष्वसौ । भात्यात्समोऽसमाश्चैकसमयस्थेषु सन्ति ते ॥३३॥
अपूर्वकरणाः कर्म न किञ्चित्क्षपयन्ति नो । शमयन्ति परं मोहशमन-क्षपणोद्यताः ॥३४॥
शुक्लध्यानसमारूढैस्तत्रोपस्थितसंयतैः । न प्राप्ताः करणाः पूर्वं तेऽपूर्वकरणास्ततः ॥३५॥
संस्थानादिषु भेदेऽपि परिणामैः समानता । समानसमयस्थानां स्याद्येषां तेऽनिवृत्तयः ॥३६॥
भावै शुद्धतरैःकर्मप्रकृतीः शमयन् यतिः । क्षपयंश्चानिवृत्तिः स्यात्कषाये बादरे स्थितः ॥३७॥
ततः शुद्धतरैर्भावैर्गालयँल्लोभकिट्टिकाम् । सूक्ष्मेतरामसौ ज्ञेयोऽनिवृत्ताख्यः स संयतः ॥३८॥
पूर्वापूर्वविभागस्थः स्पर्धकाख्यानुभागतः । योऽनन्तगुणहीनाणुलोभोऽसौ सूक्ष्मसंयतः ॥३९॥
यत्रोपशान्तिमायाति कषायो यत्र च क्षयम् । लोभसंज्वलनः सूक्ष्मसाम्परायः स संयतः ॥४०॥
कुसुम्भस्य यथा रागो गतोऽप्यस्त्यन्तरा तनुः । सूक्ष्मलोभयुतस्तद्वत्सूक्ष्मलोभो भवेदसौ ॥४१॥
यथाम्भः कतकेनाधोमले नीतेऽतिनिर्मलम् । उपर्यस्त्युपशान्ताख्यो मोहे शान्ते तथा यतिः ॥४२॥
मलं विना तदेवाम्भः पात्रेऽन्यत्र यथा कृतम् । स्यात्प्रसन्नं तथा क्षीणकषायो मोहसंक्षये ॥४३॥
घातिकर्मक्षयोत्पन्ननवकेवललब्धिमान् । प्रणेता विश्वतत्त्वानां सयोगः केवली भवेत् ॥४४॥
ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्य-सम्यक्त्व-दानयुक् । भोगोपभोगलाभाख्या नवकेवललब्धयः ॥४५॥
वेद्याऽऽयुर्नामगोत्राणि हुत्वा सद्ध्यानतेजसि । मुक्तिं निरास्रवो याति शीलेशोऽयोगकेवली ॥४६॥
अष्टकर्मभिदः शीतीभूता नित्या निरञ्जनाः । लोकाग्रवासिनः सिद्धाः जयन्त्वष्टगुणान्विताः ॥४७॥
देव-श्वाभ्रेषु चत्वारि गुणस्थानानि पञ्च तु । तिर्यक्षु नृषु सर्वाणि यथास्वं चेन्द्रियादिषु[8] ॥४८॥
ज्ञायन्तेऽनेकधाऽनेकजीवास्तज्जातिजास्तु यैः । संक्षिप्तार्थतया जीवसमासास्ते चतुर्दश ॥४९॥
चतुर्दशैकविंशत्या त्रिंशद्व्यष्टषडादिकाः । त्रिंशत्पञ्चाष्टचत्वारिंशच्चतुःसप्तपूर्विका ॥५०॥
पञ्चाशद्दशजीवानां स्थाने ज्ञेया विकल्पकाः । सूक्ष्म-बादरभेदेन कायेन्द्रियवितर्कणैः ॥५१॥
एकाक्षा बादराः सूक्ष्मा द्व्यक्षाद्या विकलास्त्रयः । पञ्चाक्षाः संज्ञ्यसंज्ञ्याख्याः सर्वे पर्याप्तकेतरे ॥५२॥

१।१।२।३।४।५।५।

एकेन्द्रियेषु चत्वारि जीवानां विकलेषु षट् । पञ्चाक्षेष्वपि चत्वारि स्थानान्येवं चतुर्दश ॥५३॥

---

१. धर्मार्थिषु । २. मोक्षार्थिषु । ३. उपकारकत्वात् । ४. दानम् । ५. कर्बुरं मिश्रं आचरणं यस्य स कर्बुराचरणः । ६. अपूर्वपरिणामैः । ७. परिणामः । ८. इन्द्रियादिमार्गणादिषु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्णाऽपूर्णानि वस्तूनि वस्त्रादीनि यथा तथा । पूर्णाऽपूर्णतया जीवाः पर्याप्तेतरका मताः ॥५४॥
आहाराङ्गेन्द्रियेष्वाने पर्याप्तिर्वाचि मानसे । चतस्रः पञ्च षट् ताः स्युरेकाक्षन्यूनसंज्ञिनाम् ॥५५॥

बहिर्भवैर्यथा प्राणैरेवमाभ्यन्तरैरपि । यैस्त्रिकालेऽपि जीवन्ति जीवाः प्राणा भवन्ति ते ॥५६॥
पञ्चेन्द्रियाणि वाक्कायमानसानां बलानि च । श्वासोच्छ्वासानापान आयुश्च प्राणाः स्युः प्राणिनां दश ॥५७॥
कायाक्षायूंषि सर्वेषु पर्याप्तेष्वान इष्यते । वाग् द्व्यक्षादिषु पूर्णेषु मनः पर्याप्तसंज्ञिषु ॥५८॥
दश संज्ञिन्यतो हेयमेकैकं द्वयमन्त्ययोः । पूर्णेष्वन्येषु सप्ताद्यै रेकैकोनाश्च तेऽप्यतः ॥५९॥

इति प्राणाः । ४।४।६।७।८।९।१०।७।७।६।५।४।३।३।

अत्राऽऽहारशरीरेन्द्रियाऽऽनापानभाषामनोनिष्पत्तिः पर्याप्तिः । शरीरेन्द्रियादिपर्याप्तिभ्यः[1] आयुष[2]-श्चोत्पन्नशक्तयः प्राणाः । ते चोत्पन्नसमयादारम्भ यावज्जीवितचरमसमयं तावन्न विनश्यन्ति, आजन्मन आमरणाच्च भवधारणत्वेनोपलम्भात् । उक्तञ्च—

[3]प्राणित्येभिरात्मेति प्राणाः ।

यकाभिर्दुःखमाप्नोति जन्तुरत्र परत्र ताः । संज्ञाश्चतस्र आहार-भी-मैथुन-परिग्रहाः ॥६०॥
एकाक्षादिष्विमाः सर्वाः पर्याप्तेष्वितरेषु च । प्रमत्तान्तेष्वथाऽऽहारसंज्ञोनाः स्युरतो द्वयोः[4] ॥६१॥
[5]पञ्चस्वाद्येऽनिवृत्त्यंशे[6] द्वौ मैथुन-परिग्रहौ । संज्ञात्वेन ततः सूक्ष्मं यावत्संज्ञा परिग्रहे ॥६२॥

अत्राप्रमत्तनाम्न्यसद्वेद्यस्योदीरणाभावादाहारसंज्ञा नास्ति, कारणभूतकर्मोदयसद्भावादुपचारेण भय-मैथुनपरिग्रहसंज्ञाः सन्तीति ।

जन्तोराहारसंज्ञा स्यादसातोदीरणे यथा । रिक्तकोष्ठतयाऽऽहारदृष्टेस्तदुपयोगतः ॥६३॥
भयसंज्ञा भवेद् भीतिकृत्कर्मोदीरणात्तथा । भीमस्य दर्शनात्तस्योपयोगात्सत्त्वहानितः ॥६४॥
स्ववेदोदीरणात्संज्ञा मैथुनी वृष्यभोजनात् । स्त्रीषु संगोपयोगाभ्यां स्यात्पुंसः पुंसि च स्त्रियः ॥६५॥

च शब्दादुभयोरपि षण्ढस्य ।

लोभोदीरणतश्चास्ति संज्ञा जन्तोः परिग्रहे । उपयोगोक्षणात्तस्योपयोगान्मूर्च्छनादपि ॥६६॥

यकाभिर्यासु वा जीवा मार्ग्यन्तेऽत्र यथास्थिताः । श्रुतज्ञाने विनिश्चेयास्ताश्चतुर्दश मार्गणाः ॥६७॥
गत्यक्षकाययोगाख्या वेदक्रोधादिवित्तयः । संयमो दर्शनं लेश्या भव्यसम्यक्त्वसंज्ञिनः ॥६८॥
आहारकश्च सन्त्येता याश्चतुर्दश मार्गणाः । सदाद्यैराशु मार्ग्यन्ते जीवा मिथ्यादृगादयः ॥६९॥

४।५।६।१५।३।४।८।७।४।६।२।६।२।२

अपर्याप्ता नरा गत्यां योगेष्वाहारकद्वयम् । मिश्रवैक्रियिकोपेतं संयमे सूक्ष्मसंयमः ॥७०॥
सम्यक्त्वे सासनो मिश्रस्तथौपशमिकं च तत् । सान्तरा मार्गणाश्चाष्टौ विकल्पा इति नापरे ॥७१॥

अत्रैको गतौ १ त्रितयं योगे ३ एकः संयमे १ त्रयं सम्यक्त्वे ३ इत्यष्टौ सान्तरा मार्गणासु समुदिताः ८ ।

गतिकर्मकृता चेष्टा या सा निगदिता गतिः । संसारं वा यया जीवा भ्रमन्तीति गतिस्तु सा ॥७२॥
न रमन्ते यतो द्रव्ये क्षेत्रेऽथ काल-भावयोः । नित्यमन्योन्यतश्चापि तस्मात्ते सन्ति नारकाः ॥७३॥
तिरो[7] यान्ति यतः पापबहुलाः संज्ञाभिरुत्कटाः । सर्वेष्वप्यधिकाज्ञानास्तिर्यञ्चस्तेन कीर्तिताः ॥७४॥

---

१. सकाशात्, २. सकाशात्, ३. जीवति, ४. अप्रमत्तापूर्वयोः, ५. शेषपञ्चगुणस्थानेषु, ६. नवमगुण-स्थानकपूर्वार्धे, ७. वक्रभावम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्यन्ते यतो नित्यं मनसा निपुणा यतः । मनसा चोत्कटा यस्मात्तस्मात्ते मानुषाः स्मृताः ॥७५॥
अणिमादिभिरष्टाभिर्गुणैः क्रीडन्ति ये सदा । भासन्ते दिव्यदेहाश्च देवास्ते वर्णितास्ततः ॥७६॥
न जातिर्न जरा दुःखमसंयोगवियोगजम् । नापि रोगादयो यस्यां सन्ति सिद्धिगतिस्तु सा ॥७७॥

अहमिन्द्रा यथा मन्यमाना अहमहं सुरा । एकैकमीशते यस्मादिन्द्रियाणीन्द्रवत्ततः ॥७८॥
यवनालमसूरातिमुक्तेन्द्वर्धसमाः क्रमात् । श्रोत्राक्षिघ्राणजिह्वाः स्युः स्पर्शनं नैकसंस्थितिः ॥७९॥
जीवे स्पर्शनमेकाक्षे द्वयक्षादिष्वेकवृद्धितः । भवन्ति रसनाघ्राणचक्षुः श्रोत्राण्यनुक्रमात् ॥८०॥
रूपं पश्यत्यसंस्पृष्टं स्पृष्टं शब्दं शृणोति च । बद्धास्पृष्टञ्च[1] जानाति स्पर्शं गन्धं तथा रसम् ॥८१॥
अक्षेणैकेन यद्वेत्ति स्वामित्वं कुरुते च यत् । भुङ्क्ते पश्यति चैकाक्षोऽतः पृथिव्यादिकायिकः ॥८२॥
शम्बूकः शङ्खशुक्ती च गण्डूपदकपर्दकाः । कुक्षिकृम्यादयश्चैवं द्वीन्द्रियाः प्राणिनो मताः ॥८३॥
कुन्थुः पिपीलिका गुम्भी वृश्चिकाश्चेन्द्रगोपकाः । तथा मत्कुणयूकाद्यास्त्रीन्द्रियाः सन्ति जन्तवः ॥८४॥
भ्रमराः कीटका दंशा मशका मक्षिकादयः । एते जीवाः समासेन निर्दिष्टाश्चतुरिन्द्रियाः ॥८५॥
जरायुजाण्डजाः पोता गर्भजा औपपादिकाः । सम्मूर्च्छिमाश्च पञ्चाक्षा रसजाः स्वेदजोद्भिजाः ॥८६॥
अवग्रहादिभिर्नार्थग्राहकाः करणातिगाः । अनन्तातीन्द्रियज्ञाना ज्ञेया जीवा निरिन्द्रियाः ॥८७॥

यथा भारवहो भारं वहत्यादाय कावटिम् । कर्मभारं वहत्येवं देहवान् कायकावटिम् ॥८८॥
कायः पुद्गलपिण्डः स्यादात्मप्रवृत्तिसञ्चितः । भेदाः षट् तस्य भूम्यम्बुतेजोवाततरुत्रसाः ॥८९॥
मसूराम्बुपृषत्सूचीकलापध्वजसन्निभाः । धराप्तेजोमरुत्काया नानाकारास्तरुत्रसाः ॥९०॥
पृथिवी-शर्करा-रत्न-सुवर्णोपलकादयः । षट्त्रिंशत्पृथिवीभेदा निर्दिष्टाः सर्वदर्शिभिः ॥९१॥
अवश्यायो हिमं बिन्दुस्तथा शुद्धघनोदके । शीकराद्याश्च विज्ञेया जिनैर्जीवा जलाश्रयाः ॥९२॥
ज्वालाङ्गारास्तथाऽर्चिश्च मुर्मुरः शुद्ध एव च (पावकः) । अग्निश्चेत्यादिकास्तेजःकायिकाः कथिता जिनैः ॥९३॥
महान् घनस्तनुश्चैव गुञ्जा मण्डलिरुत्कलिः । वातप्रभृतयो वातकायाः सन्ति जिनोदिताः ॥९४॥
मूलाग्रपर्वकन्दोत्थाः स्कन्धबीजरुहास्तथा । सम्मूर्च्छिमाश्च विज्ञेयाः प्रत्येकानन्तकायिकाः ॥९५॥
साधारणो यदाहार आनपानस्तथाविधः । साधारणा तनुस्तेन जीवाः साधारणाः मताः ॥९६॥
यत्रैको म्रियते तत्रानन्तानां मरणं मतम् । उत्पद्यते च यत्रैकोऽनन्तानां जन्म तत्र तु ॥९७॥
अनन्ताः सन्ति जीवा ये न जातु त्रसतां गताः । न मुञ्चन्ति निगोतत्वमुच्चैर्भावकलङ्किताः ॥९८॥
द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चैव चतुरक्षाश्च संज्ञिनः । असंज्ञिनश्च पञ्चाक्षा जीवाः स्युस्त्रसकायिकाः ॥९९॥
न बहिर्लोकनाड्याः स्युर्जन्तवस्त्रसकायिकाः । मुक्त्वा परिणतांस्तेषू[2]पपादे मारणान्तिके ॥१००॥
प्रत्येकाङ्गाः पृथिव्यम्बुतेजःपवनकायिकाः । देवाः श्वाभ्रास्तथाऽऽहारकाङ्गाः केवलिनोर्द्वयम् ॥१०१॥
इत्यप्रतिष्ठिताङ्गाः स्युर्निगोतैः सूक्ष्म-बादरैः । विकलाः शेषपञ्चाक्षा वृक्षाश्च तैः प्रतिष्ठिताः ॥१०२॥
वह्निस्थं काञ्चनं यद्वन्मुच्यते द्विविधान्मलात् । कायबन्धविनिर्मुक्ता ध्यानतोऽकायिकास्तथा ॥१०३॥

मनोवाक्काययुक्तस्य वीर्यरूपेण वृत्तिता[3] । जीवस्यात्मनि योज्यो यः स योगः परिकीर्त्तितः ॥१०४॥
योगो वीर्यान्तरायाख्यक्षयोपशमसन्निधौ । भवेदात्मप्रदेशानां परिस्पन्दः त्रिधेति सः ॥१०५॥
मनोवाचौ चतुर्धा स्तः पृथक्सत्यमृषोभयैः । युक्तेश्चानुभयेनापि भवेत्कायोऽपि सप्तधा ॥१०६॥
यथावस्तु प्रवृत्तं यन्मनः सत्यमनोऽस्ति तत् । मृषा मनोऽन्यथा चोभयाख्यं सत्यमृषात्मकम् ॥१०७॥
नो यत्सत्यं मृषा नैव तदसत्यमृषामनः । तैर्योगाः सन्ति चत्वारो मनोवत्सन्ति वाच्यपि ॥१०८॥
अस्ति सत्यवचो योगो दशधा सत्यवाक् स्थितः । विपरीतो मृषा त्वन्यः सत्यासत्यद्वयात्मकः ॥१०९॥

---

१. स्पृष्टम् । २. तेषु जन्तुषु मध्ये, ३. प्रवृत्तित्वम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यो न सत्यमृषारूपः स्यात्सोऽसत्यमृषात्मकः । [1]सा भाषाऽमनसां संज्ञावतां चाऽऽमन्त्रणादिका[2] ॥११०॥
उदारे[3] यो भवो वाऽस्योदारं वा स्यात्प्रयोजनम् । सः स्यादौदारिकः कायो मिश्रोऽपूर्णः स एव तु ॥१११॥
विक्रियायां भवः कायो विक्रिया वा प्रयोजनम् । यस्य वैक्रियिकः सः स्यान्मिश्रोऽपूर्णः स एव तु ॥११२॥

अत्रोदारं स्थूलम् । एकानेकाणुमहच्छरीरविविधकारणं विक्रिया ।

सम्प्राप्तर्द्धिः प्रमत्ताख्यो गत्वा केवलिसन्निधौ । सूक्ष्मानाहरते येन[4] पदार्थान्[5] सति संशये ॥११३॥
भवेदसंयमस्यापि यो वा परिजिहीर्षया । आहारकः स कायः स्याद्धवलो धातुभिर्विना ॥११४॥
मूर्धोत्थो हस्तमात्रश्चाव्याघात्युत्तमसंस्थितिः । स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तोऽस्य मिश्रोऽपूर्णः स एव तु ॥११५॥
कर्मैव कार्मणः कायो भवेत्कर्मणि वा भवः । एक-द्वि-त्रिषु तद्योगो वक्रतौ[6] समयेषु तु ॥११६॥
न कर्म बध्यते नापि जीर्यते तैजसेन हि । शरीरेणोपभुज्येते सुख-दुःखे च तेन नो ॥११७॥
सप्तैवं काययोगाः स्युः कायैरेतैस्तु सप्तभिः । जिनाः शुभाशुभैर्योगैः मुक्ताः सन्ति निरास्रवाः ॥११८॥
एकेन्द्रियेषु पर्याप्ताः स्थूला वाताग्निकायिकाः । विकुर्वते च पञ्चाक्षा नान्ये[7] न विकलेन्द्रियाः ॥११९॥
वैक्रियिकाऽऽहारयोरेकं प्रमत्तेऽस्ति न ते[8] समम् । विग्रहर्तौ तु सर्वस्य जन्तोस्तैजसकार्मणे ॥१२०॥
ते च वैक्रियिकं च स्युर्देव-श्वाभ्रेषु तानि च । औदार्यं च नृ-तिर्यक्षु नृष्वाहारं च तानि च ॥१२१॥
सर्वे वक्रगतौ द्व्यङ्गास्त्रिकाया देव-नारकाः । त्रिशरीरा नृ-तिर्यञ्चश्चतुःकायाश्च सन्ति ते ॥१२२॥
द्वयोस्त्रयोदशान्येषु[9] दश योगास्त्रयोदश । नवैकादश षट्सु स्युर्नवातः सप्त योगिनि ॥१२३॥

१३।१३।१०।१३।९।११।९।९।९।९।९।९।७।०।

वेदोदीरणया जीवो बालस्तु बहुशो भवेत् । वेदस्तु त्रिविधोऽस्ति स्त्रीपुन्नपुंसकभेदतः ॥१२४॥
अत्र बालः सुषुप्तपुरुषवदनवगतगुणदोषो भवेत् ।
नोकषायोदयाद् भाववेदो भवति जन्तुषु । योनि-लिङ्गादिको द्रव्यवेदः स्यान्नामपाकतः ॥१२५॥
आत्मप्रवृत्तिसम्मोहोत्पादो वेदोऽस्ति भावतः । नोकषायविशेषः स्त्री-पुं-षण्ढोदयहेतुकः ॥१२६॥

अत्र प्रवृत्तिः परिणामः ।

याऽऽकाङ्क्षा स्यात्स्त्रियः पुंसि पुरुषस्य च या स्त्रियाम् । स्त्री-पुंसयोश्च षण्ढस्य वाऽसौ वेदोऽस्ति भावतः ॥१२७॥

[10]अनयोरर्थः—चारित्रमोहनीयविशेषस्त्रीवेदद्रव्यकर्मोदयजनितः पुरुषाभिलाषो भावस्त्रीवेदः । एवं पुंवेदद्रव्यकर्मोदयजनिताङ्गनाभिलाषो भावपुरुषवेदः । नपुंसकवेदद्रव्यकर्मोदयजनित उभयाभिलाषो भावनपुंसकवेदः । उक्तञ्च **सिद्धान्ते**—"कषायवन्नान्तर्मुहूर्तस्थायिनो भाववेदाः, आजन्मन आमरणं तदुदयसद्भावादिति" ।

स्त्रीपुन्नपुंसकाख्याभिर्योनिलिङ्गादिकः पुनः । नामकर्मोदयाद् द्रव्यवेदोऽपि त्रिविधो भवेत् ॥१२८॥

अस्याप्यर्थः—नामकर्मोदयनिर्वर्तितो योनि-जघन-स्तनविशिष्टशरीराकारो द्रव्यस्त्रीवेदः । लिङ्ग-श्मश्रुप्रभृतिविशिष्टशरीराकारो द्रव्यपुंवेदः । उभयविशिष्टशरीराकारो द्रव्यनपुंसकवेद इति ।

योनिमृदुत्वमस्तत्वं मुग्धता क्लीबता स्तनौ । पुंस्कामितेति लिङ्गानि सप्त स्त्रीत्वनिवेदने ॥१२९॥
मेहनं खरता स्ताब्ध्यं शौण्डीर्यश्मश्रुधृष्टता । स्त्रीकामितेति लिङ्गानि सप्त पुंस्त्वनिरूपणे ॥१३०॥
योनिः खरादिसंयुक्ता मेढ्र्[11] मृद्वादिसंयुतम् । नपुंसके [12]तयोस्त्वेकप्राधान्यात्स्त्री पुमानिति ॥१३१॥
स्त्रीपुन्नपुंसकाः प्रायो जीवाः स्युर्द्रव्य-भावतः । सदृशाः विसदृक्षाश्च सम्भवन्ति यथाक्रमम् ॥१३२॥

---

१. सा असत्यमृषात्मरूपा अनुभयभाषा अमनसां मनोरहितानां जीवानां भवति । २. आमन्त्रणी-प्रमुखा नवप्रकारा अनुभयभाषा संज्ञिनां भवति । ३. उदारशब्दोऽत्र स्थूलवाची । ४. येन कारणभूतेन कायेन कृत्वा । ५. पदानां अर्थाः पदार्थास्तान् । ६ विग्रहगतौ । ७ अपरे एकेन्द्रियाः । ८. ते द्वे युगपत् न । ९. अन्येषु मिश्रादिषु क्रमेण कथ्यन्ते । १०. श्लोकयोः । ११. मेहनम् । १२. योनि-मेढ्रयोर्मध्ये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्याप्यर्थः—स्त्रीपुन्नपुंसका जीवा द्रव्य-भावाभ्यां सदृशाः प्रायो भवन्ति, विसदृशाश्च सम्भवन्ति। कथम्? द्रव्यतः पुंवेदस्यापि भावतः स्त्रीवेदोदयो भवति, द्रव्यतः स्त्रीवेदस्यापि भावतः पुंवेदोदयः स्यादित्यादि।

पुनरपि भाव-द्रव्यवेदमाह—

मार्दवक्लैव्यपुंस्कामनादीन् भावान् दधाति यत्। स्त्रैणान्[1] यस्माच्च गर्भोऽस्यां स्त्यायति स्त्रीत्यतोऽस्ति सा॥१३३॥
दोषैः स्तृणाति चात्मानं पुरुषं वाऽभिकाङ्क्षति। सदाऽऽच्छादनशीला च तेन सा स्त्रीति वर्णिता॥१३४॥
पारुष्य-रभसत्व-स्त्रीकामनादीन् दधाति यत्। पौंस्नान् भावान् पुमान् तेन भवेत्पुरुगुणश्च यत्॥१३५॥
कुर्यात्पुरुगुणं कर्म शेते पुरुगुणेषु च। आकाङ्क्षति स्त्रियं सूतेऽपत्यं यत्पुरुषस्ततः॥१३६॥

अत्र शेते प्रमदयति, सूते जनयति।

भावतो न पुमान्न स्त्री द्वयाकाङ्क्षो नपुंसकः। स्त्रीरूपो नररूपश्च पापोऽभ्यधिकवेदनः॥१३७॥
कारीषाग्नि-तृणाग्निभ्यां सदृशो नेष्टकाग्निना। वेदत्रयेण निर्मुक्ता जिनाः सन्ति सुखात्मकाः॥१३८॥

कर्मक्षेत्रं कृषन्त्येते सुख-दुःखाख्यशस्यभृत्। यच्चतुर्गतिपर्यन्तं कषायास्तेन कीर्तिताः॥१३९॥

अत्र कृषन्ति फलवत्कुर्वन्ति।

चारित्रपरिणामं वा कषन्तीति कषायकाः। क्रुन्मानवञ्चनालोभाः प्रत्येकं ते चतुर्विधाः॥१४०॥
सन्त्यनन्तानुबन्ध्याख्याः अप्रत्याख्यानसंज्ञकः। ते प्रत्याख्याननामानस्तथा संज्वलनाभिधाः॥१४१॥
आद्याः सम्यक्त्व-चारित्रे द्वितीया घ्नन्त्यणुव्रतम्। तृतीयाः संयमं तुर्या यथाख्यातं क्रुधादयः॥१४२॥
दृषद्भूमिरजोवारिराजीभिः क्रोधतः समात्। श्वभ्रतिर्यग्नृदेवेषु जीवो याति चतुर्विधात्॥१४३॥
शिलास्तम्भास्थिकाष्ठार्द्रलतातुल्याच्चतुर्विधात्। श्वभ्रतिर्यग्नृदेवेषु जायते मानतोऽसुमान्॥१४४॥
मायया वंशमूलाविश्वङ्गगोमूत्रचामरैः। श्वभ्रतिर्यग्नृदेवेषु जन्तुर्व्रजति तुल्यया॥१४५॥
कृमिनीलीहरिद्राङ्गमलरागैः समाद् व्रजेत्। श्वभ्रतिर्यग्नृदेवेषु प्राणी लोभाच्चतुर्विधात्॥१४६॥
क्रुधः श्वाभ्रेषु तिर्यक्षु मायायाः प्रथमोदयः। नृषूत्पन्नस्य मानस्य स्याल्लोभस्य सुरेषु हि॥१४७॥
मतेनापरसूरीणां समुत्पन्नेषु जन्तुषु। गतिष्वनियमेन स्युः क्रोधादिप्रथमोदयः॥१४८॥
स्व-परोभयबाधाया वधस्यासंयमस्य च। येषां हेतुः कषाया नो निःकषाया हि ते जिनाः॥१४९॥

स्थित्युत्पादव्ययैर्युक्तं गुणपर्ययवच्च यत्। द्रव्यं जीवादि याथात्म्यावगमो ज्ञानमस्य तत्॥१५०॥
इन्द्रियैर्मनसा चार्थग्रहणं यन्मतिस्तु सत्। ज्ञानमस्य विकल्पाः स्युः षट्त्रिंशत्त्रिशतप्रमाः॥१५१॥
मतिपूर्वं श्रुतं तच्च द्व्यनेकद्वादशात्मकम्। शब्दादग्न्यादिविज्ञानं धूमादिभ्योऽपि च श्रुतम्॥१५२॥

तथा चोक्तम्—शब्दधूमादिभ्योऽर्थावगमः श्रुतम्।

अवाच्यानामनन्तांशो भावाः प्रज्ञाप्यमानकाः। प्रज्ञाप्यमानभावानामनन्तांशः श्रुतोदितः॥१५३॥
मूर्त्ताशेषपदार्थान् यज्ज्ञानं साक्षात्करोत्यसौ। अवधिः स्यादवाग्धानात्क्षायोपशमिकश्च सः॥१५४॥
देवानां नारकाणां च स्याद् भवप्रत्ययोऽवधिः। क्षयोपशमहेतुस्तु स्याच्छेषाणां च षड्विधः॥१५५॥
अनुगोऽननुगामी च तदवस्थानवस्थितः। प्रवृद्धो हीयमानः स्यादित्थं षड्विधोऽवधिः॥१५६॥
श्वाभ्रतिर्यग्नृदेवानामेको देशावधिर्भवेत्। परमावधि-सर्वावध्यभिधं यतिषु द्वयम्॥१५७॥
तीर्थकृच्छ्वाभ्रदेवानां सर्वाङ्गोत्थोऽवधिर्भवेत्। नृ-तिरश्चां तु शङ्खाब्जस्वस्तिकाद्यङ्गचिह्नजम्॥१५८॥

अत्र शङ्खाब्जस्वस्तिकश्रीवत्सध्वजकलशनन्द्यावर्तहलादीन्यवधेरुत्पत्तिक्षेत्रसंस्थानानि तिर्यङ्-मनुष्याणां नाभेरुपरिमभागे भवन्ति, नाधस्तात्। विभङ्गस्तु पुनः सरटाद्यशुभाकृतीन्युत्पत्तिस्थानानि नाभेरधस्ताद्भवन्ति, नोपरिष्टात्।

---

१. स्त्रियाः इमे स्त्रैणाः, तान् स्त्रैणान्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनसाऽन्यमनो यातं साक्षादर्थं करोति यः । स मनःपर्ययो भेदावस्यर्जुविपुले मती ॥१५९॥
मनःपर्ययबोधः स्यात्संयतेषु प्रकर्षतः । क्षेत्रे नृलोकमात्रे च मूर्त्तद्रव्यप्रकाशकम् ॥१६०॥
त्रिलोकगोचराशेषपदार्थान् विदधाति यत् । साक्षाज्जिनैरनन्तं तत्केवलज्ञानमीरितम् ॥१६१॥
मिथ्यात्वेन सहैकार्थसमवायाद्विपर्ययम् । जनयेद्यत्तु रूपादौ तन्मत्यज्ञानमक्षजम् ॥१६२॥
यच्छब्दप्रत्ययं ज्ञानं मिथ्यात्वेन च सङ्गतम् । धर्मरिक्ततया तुच्छं श्रुताज्ञानं वदन्ति तत् ॥१६३॥
मिथ्यात्वसमवेतो[1] यः पर्याप्तस्यास्ति देहिनः । अवधिः स विभङ्गाख्यः क्षयोपशमसम्भवः ॥१६४॥

कषाया नोकषायाश्च भेदाश्चारित्रमोहने । तेषामुपशमादौपशमिकं क्षायिकं क्षयात् ॥१६५॥
द्वादशाद्याः कषाया ये स्युस्तेषामुदयक्षयात् । तत्सत्त्वोपशमान्मिश्रं[2] चारित्रं संयमाभिधम् ॥१६६॥
चतुःसंज्वलनेष्वन्यतमपाकाच्च तत्तथा । नवानां नोकषायाणां यथासम्भवपाकतः ॥१६७॥
व्रतानां धारणं दण्डत्यागः समितिपालनम् । कषायनिग्रहोऽक्षाणां जयः संयम इष्यते ॥१६८॥
व्रतानामेकभावेन यदात्मन्यधिरोपणम् । नियतानियतः कालः स्यात्सामायिकसंयमः ॥१६९॥
व्रतानां भेदरूपेण यदात्मन्यधिरोपणम् । व्रतलोपे विशुद्धिर्वा छेदोपस्थापनं तु तत् ॥१७०॥
परिहृत्यैव सावद्यं सम्यक् समिति-गुप्तिभिः । यदासौ[3] प्राप्यते तेन स्यात्परिहारसंयमः ॥१७१॥
यः सूक्ष्मसाम्परायाख्ये शमके क्षपकेऽपि वा । स्यात्सूक्ष्मसाम्परायोऽसौ संयमः सूक्ष्मलोभतः ॥१७२॥
चारित्रमोहनीयस्य क्षयेणोपशमेन वा । अवाप्नुतो यथाख्यातं छद्मस्थौ यदि वा जिनौ ॥१७३॥
संयतेषु चतुर्ष्वाद्यौ परिहारस्तथाऽऽद्ययोः । सूक्ष्मे स्यात्संयमः सूक्ष्मो यथाख्यातश्चतुर्ष्वतः ॥१७४॥
त्रसघातान्निवृत्तो यः प्रवृत्तः स्थावरार्दने । जीवः श्रावकधर्मं स संयमासंयमं श्रितः ॥१७५॥
दर्शन्यणुव्रतश्चैव स सामायिक इत्यपि । प्रोषधी विरतश्चैव सचित्ताद्दिनमैथुनात् ॥१७६॥
ब्रह्मव्रती निरारम्भः श्रावको निःपरिग्रहः । निरनुज्ञो निरनुद्दिष्टः स्यादेकादशधेति सः ॥१७७॥
अष्टौ स्पर्शा रसाः पञ्च द्वौ गन्धौ वर्णपञ्चकम् । षड्जादयः स्वराः सप्त दुर्मनोऽक्षेष्वसंयमः ॥१७८॥
इत्यष्टाविंशतिर्जीवसमासेषु चतुर्दश । नैतेभ्यो विरता ये स्युर्जीवास्ते सन्त्यसंयताः ॥१७९॥

इन्द्रियेष्वसंदमाः २८ । जीवेष्वसंयमाः १४ ।

रूपादिग्राहकत्वेन सामान्याख्यस्य वेदनम् । आत्मनो ह्यन्तरङ्गं यद्दर्शनं तज्जिनोदितम् ॥१८०॥
तच्चक्षुर्दर्शनं ज्ञेयं चक्षुषा यत्प्रकाशते । शेषेन्द्रियप्रकाशस्त्वचक्षुर्दर्शनमीरितम् ॥१८१॥
परमाण्वन्त्यभेदानि रूपिद्रव्याणि पश्यति । सम्यक् प्रत्यक्षरूपेण यत्तच्चावधिदर्शनम् ॥१८२॥
उद्योता[4] बहवः सन्ति नियते क्षेत्रगोचराः । केवलो दर्शनोद्योतः पुनर्विश्वं प्रकाशते ॥१८३॥

लेश्या योगप्रवृत्तिः स्यात्कषायोदयरञ्जिताः । भावतो द्रव्यतोऽङ्गस्य छविः षोढोभयी तु सा ॥१८४॥
कृष्णा नीलाऽथ कापोती पीता पद्मा सिता च षट् । लेश्याः सन्त्यात्मसात्कुर्वन्त्याभिः कर्माणि जन्तवः ॥१८५॥
धराऽप्तेजोमरुद्वृक्षकायिकेषु यथाक्रमम् । लेश्याः स्युः षट् सिता पीता कापोता षट् च जन्तुषु ॥१८६॥

अत्र षण्णां लेश्यानां शरीरमाश्रित्य प्ररूपणा—तत्र बादरपर्याप्तपृथिवीकायिकानां षड्लेश्यानि शरीराणि । तथा अप्कायिकानां शुक्ललेश्यानि । अग्निकायिकानां तेजोलेश्यानि । वातकायिकानां कापोतलेश्यानि । वनस्पतिकायिकानां षड्लेश्यानीति श्लोकार्थः ।

सर्वसूक्ष्मेषु कापोता सर्वापर्याप्तकेषु च । लेश्या सर्वेषु शुक्लैका विग्रहतौ गतेषु च ॥१८७॥

अत्र सर्वेषां सूक्ष्माणां शरीराणि कापोतलेश्यानि । सर्वे चापर्याप्ताः कापोतलेश्याङ्गाः । सर्वेषां च विग्रहगतौ शुक्ललेश्यानि शरीराणि ।

---

१. सहितः । २. सरागचारि इति औपशमिकादि त्रिविधं चारित्रं भावसंग्रहोक्तं ज्ञेयम् । ३. संयमः । ४. दीप-चन्द्रादयः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्मणं शुक्ललेश्यं स्यात्तेजोलेश्यं च तैजसम् । औदारिकं नृ-तिर्यक्षु षड्लेश्यं[1] तु शरीरकम् ॥१८८॥
मूलनिर्वर्तनात्तस्याल्लेश्या वैक्रियिकाह्वये । पीता पद्मा सिता चाङ्गे देवे कृष्णा तु नारके ॥१८९॥

अत्र नृ-तिरश्चां षड्लेश्यानि शरीराणि । देवानां मूलनिर्वर्तनातः पीत-पद्म-शुक्ललेश्यानि । उत्तरनिर्वर्तनातः षड्लेश्यानि । देवीनां मूलनिर्वर्तनातः पीतलेश्यानि । उत्तरनिर्वर्तनातः षड्लेश्यानि । नारकाणां कृष्णलेश्यानि । किमुक्तं भवति ? वैक्रियिकं मूलनिर्वर्तनातः सामान्येन कृष्णलेश्यं पीतलेश्यं पद्मलेश्यं शुक्ललेश्यं वा कथितं भवति । शेषं सुगमम् ।

षड्लेश्याङ्गा मतेऽन्येषां ज्योतिष्कभौमभावनाः । कापोतमुद्गगोमूत्रवर्णलेश्यानिलाङ्गिनः ॥१९०॥

इति सिद्धान्तालापे । इति द्रव्यलेश्या प्ररूपिता । भावलेश्योच्यते—

योगाविरतिमिथ्यात्वकषायजनितस्तु यः । संस्कारः प्राणिनां भावलेश्याऽसौ कथिताऽऽगमे ॥१९१॥
तीव्रो[2] लेश्या स कापोता नीला तीव्रतरश्च सः । कृष्णा तीव्रतमः पीता संस्कारो मन्द इष्यते ॥१९२॥
पद्मा मन्दतरः शुक्ला सः स्यान्मन्दतमस्त्विमाः । षट्स्थानगतया वृद्ध्या प्रत्येकं षडपीरिताः ॥१९३॥

अत्र मिथ्यात्वासंयमकषाययोगजनितो जीवस्य संस्कारो भावलेश्या । तत्र यस्तीव्रः संस्कारः स कापोतलेश्या, तीव्रतरो नीललेश्येत्यादि नेयम् । एताः षडपि लेश्याः अनन्तभागवृद्ध्यसंख्यातभागवृद्धि-संख्यातभागवृद्धि-संख्यातगुणवृद्ध्यसंख्यातगुणवृद्ध्यनन्तगुणवृद्धिक्रमेण प्रत्येकं षट्स्थानपतिताः ।

निर्मूल-स्कन्ध-शाखोपशाखच्छेदे तरोर्वचः । उच्चये पतितादाने भावलेश्याः फलार्थिनाम् ॥१९४॥

तत्र फलार्थिनां पुंसां तरोर्निर्मूलोच्छेदे तीव्रतमकषायानुरञ्जितं वचः वाक्प्रवृत्तिर्भावलेश्या कृष्णा १ । तरोः स्कन्धोच्छेदे तीव्रतरकषायानुरञ्जितं वचः नीला २ । तरोः शाखोच्छेदे तीव्रकषायानुरञ्जितं वचः कापोता ३ । तरोरुपशाखोच्छेदे मन्दकषायानुरञ्जितं वचः पीता ४ । तरोः फलोच्चये मन्दतरकषायानुरञ्जितं वचः पद्मा ५ । तरोरधःपतितफलादाने मन्दतमकषायानुरञ्जितं वचः शुक्ला ६ । एवं मनसि काये च नेयम् ।

लेश्याश्चतुर्षु षट् च स्युस्तिस्रस्तिस्रः शुभास्त्रिषु । गुणस्थानेषु शुक्लैका षट्सु निर्लेश्यमन्तिमम् ॥१९५॥

इति मिथ्यादृष्ट्यादिषु लेश्याः ६।६।६।६।३।३।३।१।१।१।१।१।१।०।

आद्यास्तिस्रोऽप्यपर्याप्तेष्वसंख्येयाब्दजीविषु । लेश्या क्षायिकसद्दृष्टौ कापोता स्याज्जघन्यका ॥१९६॥
षट् नृ-तिर्यक्षु तिस्रोऽन्त्यास्तेष्व[3]संख्याब्दजीविषु । एकाक्षविकलासंज्ञिष्वाद्यं लेश्यात्रयं मतम् ॥१९७॥
[4]द्विष्कापोताऽथ कापोता नीले नीलाऽथ मध्यमा । नीलाकृष्णे च कृष्णातिकृष्णा रत्नप्रभादिषु ॥१९८॥

अत्र रत्नप्रभायां जघन्या कापोता । शर्करायां मध्यमा कापोता । वालुकायां द्वे लेश्ये—उत्कृष्टा कापोता नीला च जघन्येत्येवं त्रिकत्रयं नेयम् । न्यासश्च रत्नप्रभादिषु—

० ० ० ० ० ० ०
३ ३ ३ २ २ १ १ ।
२ १

अपर्याप्तेषु कृष्णाद्या लेश्यास्तिस्रो जघन्यका । पीतैका भावनाद्येषु त्रिषु पर्याप्तकेषु च ॥१९९॥
सौधर्मैशानयोः पीता पीतापद्मे द्वयोस्ततः । कल्पेषु षट्स्वतः पद्मा पद्माशुक्ले ततो द्वयोः ॥२००॥
आनतादिषु शुक्लाऽतस्त्रयोदशसु मध्यमा । चतुर्दशसु सोत्कृष्टाऽनुदिशानुत्तरेषु च ॥२०१॥

अत्र भावन-भौम-ज्योतिष्केषु त्रिषु निकायेषु देवानामपर्याप्तकानां कृष्णा नीला कापोतास्तिस्रो लेश्याः । तेषामेव पर्याप्तकानामेकैव जघन्या पीतलेश्येति चतस्रो लेश्याः । सौधर्मैशानयोर्मध्यमा पीता । ततो द्वयोर्द्वे लेश्ये—उत्कृष्टा पीता जघन्या पद्मेत्येवं त्रिकत्रयं नेयम् । न्यासस्तु—

० ०
४ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
४ ४ ५ ० ० ० ० ०
५ ५ ६ ६ ६ ६ ६

॥ इति भावलेश्या समाप्ता ॥

१. षड्वर्णमित्यर्थः । २. संस्कारस्तीव्रः सन् कापोता भवति । ३. पर्याप्तेषु । ४. द्विः द्विवारम् ।

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

लेश्याकर्मोच्यते—

दुर्मोहो दुष्टचित्तश्च रागद्वेषादिभिर्युतम् । क्रुन्मानवञ्चनालोभैस्तथाऽनन्तानुबन्धिभिः ॥२०२॥
चण्डः सन्ततवैरश्च निर्दयः कलहप्रियः । मधुमांससुरासक्तः कृष्णलेश्यो मतोऽसुमान् ॥२०३॥
निर्बुद्धिर्मानवान् मायी मन्दो विषयलम्पटः । निर्विज्ञानालसो भीरुर्निद्रालुः परवञ्चकः ॥२०४॥
नानाविधे धने धान्ये सर्वत्रैवातिमूर्च्छितः । सारम्भो नीलया प्राणी लेश्यया संयुतो भवेत् ॥२०५॥
बहुशः शोकभीग्रस्तो रुष्यत्यपि च निन्दति । असूयन् दूषयंस्त्यं पर परिभवत्यपि ॥२०६॥
आत्मानं बहुशः स्तौति स्तूयमानश्च तुष्यति । मन्यमानः परं स्वं वा न प्रत्येति कुतश्चन ॥२०७॥
हानिं नावैति वृद्धिं वा वष्टि मृत्युं रणाङ्गणे । श्लाघ्यमानस्तरां दत्ते जीवः कापोतलेश्यया ॥२०८॥
सर्वत्र समदृग् वेत्ति कृत्याकृत्यं हिताहितम् । दयादानरतो विद्वांस्तेजोलेश्यावशोऽसुमान् ॥२०९॥
त्यागी क्षान्तिपरश्चोक्षो भद्रात्मा सरलक्रियः । साधुपूजोद्यतो जीवोऽधिष्ठितः पद्मलेश्यया ॥२१०॥
सर्वत्रापि समोऽपक्षपातस्त्यक्तनिदानकः । रागद्वेषव्यपेतात्मा स्यात्प्राणी शुक्ललेश्यया ॥२११॥

इति लेश्याकर्म समाप्तम् ।

त्यक्तकृष्णादिलेश्याकाः सिद्धिं याता निरापदः । अनन्तातीतसुखा जीवा निर्लेश्याः परिकीर्त्तिताः ॥२१२॥

जीवाः सिद्धत्वयोग्या ये भवसिद्धा भवन्ति ते । न तेषु नियमः शुद्धेरस्ति हेमोपलेष्विव ॥२१३॥
सङ्ख्येयेनाप्यसङ्ख्येन कालेनानन्तकेन वा । जीवाः सिद्ध्यन्ति ये भव्या न त्वभव्याः कदाचन ॥२१४॥
न भव्या नापि ये भव्या निर्द्वन्द्वा मुक्तिमाश्रिताः । विज्ञेया सन्ति ते जीवा भव्याभव्यत्ववर्जिताः ॥२१५॥

भव्यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञी जीवः पर्याप्तकस्तथा । काललब्ध्यादिभिर्युक्तः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते ॥२१६॥

सप्तकर्मणां सागरोपमान्तःकोटीकोटिस्थितौ सत्यां काललब्धिर्भवति । अत्र क्षयोपशम-विशुद्धि-देशन-प्रायोग्य-लब्धीर्लब्ध्वा पश्चादधःप्रवृत्तापूर्वानिवृत्तिकरणान् कृत्वोपशम-क्षयोपशम-क्षयसम्यक्त्वरूपां बोधिं लभते जीवः । पूर्वसञ्चितकर्मपटलस्यानुभागस्पर्धकानि यदा विशुद्ध्या प्रतिसमयमनन्तगुणहीनानि भूत्वोदीर्यन्ते तदा क्षयोपशमलब्धिर्भवति १ । प्रतिसमयमनन्तगुणहीनक्रमेणोदीरितानुभाग-स्पर्धकजनित-जीवपरिणामः सातादिसुख (शुभ) कर्मबन्धनिमित्तः सावद्यासुख (-शुभ) कर्मबन्धविरुद्धो विशुद्धि-लब्धिर्नाम २ । पञ्चास्तिकाय-षड्द्रव्य-सप्ततत्त्व-नवपदार्थोपदेशः, उपदेशकर्त्र्याचार्याद्युपलब्धिर्वा उपदिष्टार्थ-ग्रहण-धारण-विचारणशक्तिर्वा देशनालब्धिर्नाम ३ । सप्तकर्मणामुत्कृष्टस्थितिमुत्कृष्टानुभागं च हत्वाऽन्तःकोटी-कोटिस्थितौ द्विस्थानानुभागस्थानं प्रायोग्यलब्धिर्नाम ४ । तथोपरिस्थितपरिणामैरधःस्थितपरिणामाः समानाः अधःस्थितपरिणामैरुपरिस्थितपरिणामाः समाना भवन्ति यस्मिन्नवस्थाविशेषे काले सोऽधःप्रवृत्तकरणः । अपूर्वाः अपूर्वाः शुद्धतराः करणाः परिणामा यस्मिन् कालविशेषे सोऽपूर्वकरणपरिणामः । एकसमये प्रवर्तमानैः करणैः परिणामैर्न विद्यते निवृत्तिर्भेदो यत्र सोऽनिवृत्तिकरण इति ५ ।

श्रद्धानं यज्जिनोक्तार्थेष्वाज्ञयाऽधिगमेन च । षट्-पञ्च-नवभेदेषु सम्यक्त्वं तत्प्रवक्ष्यते ॥२१७॥
तच्च प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्यलक्षणम् । चारित्रदर्शनघ्नाश्चत्वारोऽनन्तानुबन्धिनः ॥२१८॥
सम्यक्त्वमथ मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वमेव च । त्रीणि दर्शनमोहे चेत्येतत्प्रकृतिसप्तकम् ॥२१९॥
यत्तस्योपशमादौपशमिकं क्षायिकं क्षयात् । क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वाख्यदृग्मोहपाकतः ॥२२०॥
भवेत्सम्यग्मिथ्यात्वमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिनाम् । पाकक्षयाच्च सम्यक्त्वं तत्सत्त्वोपशमाच्च[1] तत् ॥२२१॥

अत्रानन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वयोश्चोदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाच्च सम्यक्त्वस्य देशघातिस्पर्धकस्योदये तत्त्वार्थश्रद्धानं क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वं भवति ।

दृष्टिमोहे क्षयं जाते यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलम् । सम्यक्त्वं क्षायिकं तत्स्यात्सदा कर्मक्षयावहम् ॥२२२॥

१. सत्तारूपोपशमात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचनैर्हेतुभी रूपैः सर्वेन्द्रियभयावहैः । जुगुप्साभिश्च बीभत्सैर्नैव क्षायिकदृक् चलेत् (युग्मम्) ॥२२३॥
दृग्मोहनक्षतेः कर्मभूजः प्रस्थापको मतः । मनुष्येष्वेव सर्वत्र भवेन्निष्ठापकः पुनः ॥२२४॥
क्षयस्यारम्भको यस्मिन् भवे स्यादपरांस्ततः । नात्येत्येव भवांस्त्रीन् स क्षीणे दर्शनमोहने ॥२२५॥
शमको दर्शनमोहस्य गतिष्विष्टोऽखिलास्वपि । संज्ञी पञ्चेन्द्रियश्चास्ति पर्याप्तः सान्तरश्च सः ॥२२६॥
ज्योतिर्भावनभौमेषु षट्स्वधः श्वभ्रभूमिषु । तिर्यग्नर-सुरस्त्रीषु सद्दृष्टिर्नैव जायते ॥२२७॥
सम्यक्त्वान्ययताद्येषु चतुर्षु त्रीणि वेदकम् । मुक्त्वोपशमकेषु द्वे शेषेषु क्षायिकं परम् ॥२२८॥

०।०।०।३।३।३।३।२।२।२।२।१।१।१।१।

।१।१।१।१।१।

सौधर्मादिष्वसंख्याब्दायुः तिर्यक्षु नृष्वपि । रत्नप्रभावनौ च स्यात्सम्यक्त्वत्रयमङ्गिनाम् ॥२२९॥
शेषेषु देवतिर्यक्षु षट्स्वधःश्वभ्रभूमिषु । द्वे वेदकोपशमिके स्यातां पर्याप्तदेहिनाम् ॥२३०॥
जन्तोः सम्यक्त्वलाभोऽस्ति बद्धेऽप्यायुश्चतुष्टये । बद्धे व्रतद्वयप्राप्तिर्देवायुष्यपरेषु न ॥२३१॥
सम्यक्त्वात्प्रथमाद् भ्रष्टो मिथ्यात्वमगतोऽन्तरा । पारिणामिकभावोऽसौ सासादन इति स्मृतः ॥२३२॥
मिथ्यात्वे स्वर्धसंशुद्धे कोद्रवे मदशक्तिवत् । शुद्धाशुद्धात्मको भावः सम्यग्मिथ्यात्वमङ्गिनाम् ॥२३३॥
उपदिष्टं[1] न मिथ्यादृक् श्रद्दधाति जिनोदितम् । श्रद्दधाति तत्सद्भावं[2] कथितं यदि वाऽन्यथा ॥२३४॥
सम्यक्त्वस्याऽऽदिमो लाभः सकलोपशमान्मतः । नियमेनापरस्त्विष्टः सर्व-देशोपशान्तितः ॥२३५॥
सम्यक्त्वस्याऽऽदिमाल्लाभान्मिथ्यात्वं पृष्ठतो भवेत् । मिथ्यात्वं मिश्रकं वा स्याल्लाभेष्वन्येषु पृष्ठतः ॥२३६॥

शिक्षाऽऽलापोपदेशानां ग्राही संज्ञी मनोबलात् । हिताहितपरीक्षायां योऽसमर्थोऽस्त्यसंज्ञ्यसौ ॥२३७॥
कार्याकार्यं पुरा तत्त्वमतत्त्वं च विचारयेत् । शिक्षते वापि नाम्नेति समनस्कोऽन्यथेतरः ॥२३८॥
एवं कृते मया भूय एवं कार्यं भविष्यति । एवं विचारको यो हि स संज्ञी त्वितरोऽन्यथा ॥२३९॥

अत्र संज्ञी नाम कथं भवति ? नोइन्द्रियावरणसर्वघातिस्पर्धकानामुदयक्षयेण तेषामेव सतामुपशमेन देशघातिस्पर्धकानामुदयेन संज्ञी भवति । नोइन्द्रियावरणस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयेनासंज्ञिनो भवन्ति ।

विक्रियाऽऽहारकौदार्याङ्गषट्पर्याप्तिपुद्गलान् । योग्यान् गृह्णाति यो जीवः सः स्यादाहारकाभिधः ॥२४०॥
समुद्घातं गतो योगी मिथ्यादृक्सासनायताः । विग्रहर्तावयोगश्च सिद्धाश्चाऽऽहारका न हि ॥२४१॥
दण्ड औदारिको मिश्रः स स्याद्दण्ड-कपाटयोः । कार्मणो योगिनो योगः प्रतरे लोकपूरणे ॥२४२॥

अन्तरङ्गोपयोगः स्याद्दर्शनं तच्चतुर्विधम् । बहिरङ्गोपयोगस्तु ज्ञानमष्टविधं तु तत् ॥२४३॥
ज्ञानदृग्रोधमोहान्तरायाणां जिनयोः क्षयात् । तद्वृत्तिः स मनान्येषु तत्क्षयोपशमात् क्रमात् ॥२४४॥
छद्मस्थेषूपयोगः स्याद्द्विधाऽप्यन्तर्मुहूर्तगः । साद्यपर्यवसानोऽसौ जिनयोर्युगपद् भवेत् ॥२४५॥
जीवयोगितयोत्पन्नो यो भावो वस्तुहेतुकः । उपयोगो द्विधा सोऽस्ति साकारेतरभेदतः ॥२४६॥
मतिश्रुतावधिस्वान्तैर्यद्विशेषावधारणम् । उपयोगः स साकारो भवत्यन्तर्मुहूर्तकः ॥२४७॥
यदिन्द्रियावधिस्वान्तैरविशेषार्थभासनम् । उपयोगो निराकारः स स्यादन्तर्मुहूर्तगः ॥२४८॥
*[द्वि-त्रि-सप्त-द्विषु ज्ञेया गुणेषु क्रमतो बुधैः ।] पञ्च षट् सप्त च द्वौ चैवोपयोगा यथायथम् ॥२४९॥

५।५।६।६।६।७।७।७।७।७।७।७।२।२ ।

ये मारणान्तिकाऽऽहारतेजो विक्रियकेवलिकषायवेदनाभेदात्समुद्घाता हि सप्त तु ॥२५०॥
सम्भूयात्मप्रदेशानां बहिरुद्गमनानि च । एकदिक्कौ तु तेष्वाद्यौ दशदिक्काः पञ्च चापरे ॥२५१॥

---

१. जिनवचनम् । २. तत्सद्भावं कथितं सत् अन्यथा अन्येन प्रकारेण श्रद्दधाति ।
* आदर्शप्रतौ कोष्ठकान्तर्गतः पाठो नास्ति । स त्वमितगतिपञ्चसंग्रहाद् योजितः,—सम्पादकः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थे दिवसाः सप्त पञ्चमे तु चतुर्दश । गुणे [1]प्रथमहक्च्छेदस्ततः पञ्चदश द्वयोः ॥२५२॥
मुहूर्त्ताः पञ्चचत्वारिंशत्पञ्चदश वासराः । मासा एक-द्वि-चत्वारः षट् द्वादश च सान्तरम् ॥२५३॥

रत्नादिषु औपशमिकसम्यक्त्वस्य ।

मनःपर्यय आहारयुग्मं सम्यक्त्वमादिमम् । परीहारयमोऽस्त्येषां यश्चिकत्वत्र नापरः ॥२५४॥

अत्र मनःपर्ययज्ञानेन सहोपशमश्रेण्या अवतीर्य प्रमत्तगुणं प्रपन्नस्योपशमसम्यक्त्वेन सह मनःपर्ययज्ञानं लभ्यते न पश्चात्कृतमिथ्यात्वस्योपशमसम्यग्दृष्टेः प्रमत्तस्य च तत्रोत्पत्तिसम्भवाभावात् ।

आहारर्द्धिः परीहारो मनःपर्यय इत्यमी । तीर्थकृच्चोदये न स्युः स्त्री-नपुंसकवेदयोः[3] ॥२५५॥

प्रमाण-नय-निक्षेपानुयोगादिषु विंशति । भेदान् विमार्गयन्नस्ति जीवसद्भाववेदकः ॥२५६॥
जीवस्थान-गुणस्थान-मार्गणास्थानतत्त्ववित् । तपोनिर्जीर्णकर्मात्मा निर्योगः सिद्धिमृच्छति ॥२५७॥

इति जीवसमासाख्यः प्रथमः संग्रहः समाप्तः ।

---

१. उपशमसम्यक्त्वाभावः । २. प्रमत्ताप्रमत्तयोः । ३. उदये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृतिसमुत्कीर्त्तनाख्यः द्वितीयः संग्रहः

मुक्तं प्रकृतिबन्धेन प्रकृतिस्वात्मदेशकम् । प्रणम्योरुश्रियं वीरं वक्ष्ये प्रकृतिकीर्त्तनम् ॥१॥
ज्ञानदर्शनयो रोधौ वेद्यं मोहायुषी तथा । नाम-गोत्रान्तरायौ च मूलप्रकृतयोऽष्ट वै ॥२॥
क्रमात्पञ्च नव द्वे च विंशतिश्चाष्टसंयुताः । चतस्रस्त्र्यधिका नवतिर्द्वे पञ्चोत्तरा मताः ॥३॥
तत्र प्रकृतयः पञ्च ज्ञानरोधस्य रुन्धतः । मतिश्रुतावधीन् जन्तोर्मनः पर्ययकेवले ॥४॥
निद्रानिद्रादिका ज्ञेया प्रचलाप्रचलादिका । स्त्यानगृद्धिस्तथा निद्रा प्रचला च प्रकीर्त्तिता ॥५॥
वृक्षाग्रे वाऽथ रथ्यायां तथा जागरणेऽपि वा । निद्रानिद्राप्रभावेन न दृष्ट्युद्घाटनं भवेत् ॥६॥
स्यन्दते मुखतो लालां तनुं चालयते मुहुः । शिरो नमयतेऽत्यर्थं प्रचलाप्रचलाक्रमः ॥७॥
स्वपित्युत्थापितो भूयः स्वयं कर्म करोति च । अबद्धं वा प्रलपति स्त्यानगृद्धिक्रमो मतः ॥८॥
यान्तं संस्थापयत्याशु स्थितमासयते शनैः । आसितं शाययत्येव निद्रायाः शक्तिरीदृशी ॥९॥
किञ्चिदुन्मीलितो जीवः स्वपित्येव मुहुर्मुहुः । ईषदीषद्विजानाति प्रचलालक्षणं हि तत् ॥१०॥
चक्षुषोऽचक्षुषोदृष्टेरवधेः केवलस्य च । रोधो दर्शनरोधस्य नव प्रकृतयो मताः ॥११॥
वेद्यस्य प्रकृती द्वे तु सातासातानुवेदिके । अष्टाविंशतिसंख्याना मोहनीयस्य तद्यथा ॥१२॥
मोहनं द्विविधं दृष्टेश्चारित्रस्य च मोहनात् । दृग्मोहस्तत्र मिथ्यात्वं तत्स्यादेकं तु बन्धतः ॥१३॥
तच्च सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्वभेदतः । सत्कर्म तु पुनस्तस्य दृग्मोहस्य त्रिधा भवेत् ॥१४॥
यच्चारित्रमोहाख्यं कर्म तद् द्विविधं मतम् । कषायवेदनीयं स्यान्नोकषायाभिधं परम् ॥१५॥
कषायवेदनीयं तु तत्र षोडशधा भवेत् । क्रोधो मानस्तथा माया लोभोऽनन्तानुबन्धिनः ॥१६॥
तथा त एव वाऽप्रत्याख्यानावरणसंज्ञकाः । प्रत्याख्यानरुधश्चातस्तथा संज्वलनाभिधाः ॥१७॥
नवधा नोकषायाख्यं स्त्रीपुंवेदौ नपुंसकम् । हास्यं रत्यरती शोको भयं साकं जुगुप्सया ॥१८॥

उक्तञ्च—

षोडशैव कषायाः स्युर्नोकषाया नवेरिताः । ईषद्भेदो न भेदोऽत्र कषायाः पञ्चविंशतिः ॥१९॥
श्वभ्रतिर्यङ्नृदेवायुर्भेदादायुश्चतुर्विधम् । पिण्डापिण्डाभिधा नाम्ना द्वाचत्वारिंशदीरिताः ॥२०॥
पिण्डाश्चतुर्दशैतासामष्टाविंशतिरन्यथा ।

पिण्डाः १४ । अपिण्डाः २८ । मीलिताः ४२ ।

गतिर्जातिः शरीरं तद्बन्धसङ्घातयोर्द्वयम् ॥२१॥
संस्थानं तस्य तस्याङ्गोपाङ्गं तस्यैव संहतिः । वर्णगन्धरसस्पर्शाः आनुपूर्वी च तीर्थकृत् ॥२२॥
निर्माणागुरुलध्वाख्य उपघातोऽन्यघातयुक् । उच्छ्वास आतपोद्योतौ विहायोगतिरित्यतः ॥२३॥
त्रसं बादर-पर्याप्तं प्रत्येकं च स्थिरं शुभम् । सुभगं सुस्वरादेये यशःकीर्त्तिश्च सेतराः ॥२४॥
श्वभ्रतिर्यङ्नृदेवानां गतिनाम चतुर्विधम् । एकेन्द्रियादिभेदेन जातिनामापि पञ्चधा ॥२५॥
औदारिकं तथा वैक्रियिकमाहार-तैजसे । कार्मणं चेति भेदेन कायनामास्ति पञ्चधा ॥२६॥
बन्धनात्पञ्चकायानां बन्धनं पञ्चधा स्मृतम् । एतेषामेव सङ्घातात्सङ्घातोऽपि च पञ्चधा ॥२७॥
समादिचतुरस्रं हि न्यग्रोधं स्वाति-कुब्जके । वामनं हुण्डकं चेति षोढा संस्थानमिष्यते ॥२८॥
औदार्यादित्रिदेहानामाङ्गोपाङ्गं त्रिधा मतम् । स्याद्वज्रर्षभनाराचं वज्रनाराचमेव च ॥२९॥
नाराचमर्धनाराचं कीलिका चासृपाटिका । असम्प्राप्तपरा[1] षोढेत्येवं संहननं मतम् ॥३०॥

---

१. असम्प्राप्तसृपाटिकमित्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णाः शुक्लादयः पञ्च द्वौ गन्धौ सुरभीतरौ । मधुराम्लकटुस्तिक्तः कषायः पञ्चधा रसः ॥३१॥
अष्टधा स्पर्शनामापि कर्कशं मृदुगुर्व्वपि । लघु स्निग्धं तथा रूक्षं शीतलं चोष्णमेव च ॥३२॥
श्वभ्रादिगतिभेदात्स्यादानुपूर्वी चतुर्विधा । शस्तेतरे नभोरीती पिण्डप्रकृतयस्त्विमाः ॥३३॥
गोत्रमुच्चं तथा नीचमन्तरायोऽपि पञ्चधा । स्याद्दानलाभभोगोपभोगवीर्येषु विघ्नकृत् ॥३४॥
द्वे त्यक्त्वा मोहनीयस्स नाम्ना षड्विंशतिं तथा । सर्वेषां कर्मणां शेषा बन्धप्रकृतयो मताः ॥३५॥

१२० ।

अबन्धा मिश्रसम्यक्त्वे बन्धःसंघातगा दश ।

५।५।

स्पर्शे सप्त तथैका च गन्धेऽष्टौ रसवर्णगाः ॥३६॥

२८

एता एवोदयं नैव प्रपद्यन्ते कदाचन । सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिद्वयवर्जिताः ॥३७॥

२६।१२२ ।

पटकप्रतिहारासिमद्यगुप्त्यनुकुर्वते[1] । चित्रकृत्-कुम्भकारौ च भाण्डागारिकमेव ताः ॥३८॥
आहारविक्रियश्वभ्रनरदेवद्वयानि च । सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वमुच्चमुद्वेलना इमाः ॥३९॥

अत्र परप्रकृतिस्वरूपेण सङ्क्रमणमुद्वेलनम् १३ ।

दशापि ज्ञानविघ्नस्था दृग्रोधा नव षोडश । कषाया भी जुगुप्सोपघातास्तैजसकार्मणे ॥४०॥
मिथ्यात्वागुरुलघ्वाख्ये निर्मिद्वर्णचतुष्टयम् । ध्रुवाः प्रकृतयस्त्वेताश्चत्वारिंशच्च सप्तयुक् ॥४१॥

४७ ।

आहारद्वयमायूंषि चत्वार्युद्योततीर्थकृत् । परघातातपोच्छ्वासाः शेषैकादशधा मताः ॥४२॥

११

द्वे वेद्ये गतयो हास्यचतुष्कं द्वे नभोगती । षट्के संस्थानसंहत्योर्गोत्रे वैक्रियिकद्वयम् ॥४३॥
चतस्रश्चानुपूर्व्यापि दश युग्मानि जातयः । औदारिकद्वयं वेदा एताः सपरिवृत्तयः ॥४४॥

६७ ।

इति प्रकृतिकीर्त्तनं समाप्तम् ।

१. गुप्तिः शृङ्खला हडिरित्यर्थः । समाहारसमासत्वादेकवचनम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३

कर्मस्तवाख्यः तृतीयः संग्रहः

नत्वा सर्वान् जिनान् सर्वभावसद्भाववेदकान् । बन्धोदयसदुच्छेदवर्णकं स्तवमारभे ॥१॥

अत्र जीवकर्मणोः सम्पर्को बन्धः । कर्मणामनुभवनमुदयः । वर्तमानोदयस्थितिप्रभृत्यावलिकामात्र-स्थितीः मुक्त्वोपरितनस्थितीनामसंख्यातभागकर्मपरमाणून् आकृष्योदये प्रक्षेपणमुदीरणा । अपक्वपाचन-मुदीरणेति वचनात् । विद्यमानता सत्ता ।

कषायकलुषो ह्यात्मा कर्मणो योग्यपुद्गलान् । प्रतिक्षणमुपादत्ते स बन्धोऽनेकधा मतः ॥२॥

उक्तञ्च—

रायो (ययो) रैक्यं यथा स्वमरौप्ययोरनुवेशतः । बन्धोऽन्योन्यं तथा जीव-कर्मणोरुपवेशतः ॥३॥
धान्यस्य संग्रहो वा सत्कर्म यत्पूर्वसञ्चितम् । उदयो भोज्यकालस्तूदीरणाऽपक्वपाचनम् ॥४॥
सप्ताष्टौ वा प्रबध्नन्ति सप्ताद्या मिश्रकं विना । आयुषा तु विना सप्त मिश्रापूर्वानिवृत्तयः ॥५॥
मोहायुर्भ्यां विना षट्कं सूक्ष्मो बध्नात्यतस्त्रयः । बध्नन्ति वेद्यमेवैकमयोगः स्यादबन्धकः ॥६॥

७	७	७	७	७	७	७	७	७	६	१	१	१	०
८	८	०	८	८	८	८	०	०					

भुञ्जतेऽष्टापि कर्माणि सूक्ष्मान्ता मोहनं विना । शान्तक्षीणौ तु तान्येवं जिनेन्द्रौ घातिभिर्विना ॥७॥

८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।७।७।४।४।

उदीरिकास्तु घातीनां तत्स्था मोहस्य रागिणः । वेद्यायुषो प्रमत्तान्ता योग्यन्ता नाम-गोत्रयोः ॥८॥

८	८	८	८	८	८				६		५		
						६	६	६		५		२	०
७	७	०	७	७	७				५		२		

अत्र मरणावलिकायामायुष उदीरणा नास्तीति मिश्रं त्यक्त्वा पञ्च मिथ्यादृष्ट्यादयः मरणावलि-कायां सप्तोदीरयन्ति । आवलिकाशेषे चायुषि मिश्रगुणोऽपि न सम्भवति तेनाष्ट मिश्रः[1] । आवलिकाशेष-काले च । सूक्ष्मः पञ्च मोहं विना । क्षीणश्च नाम-गोत्रे आवलिकाशेषकाले उदीरयेत् ।

प्रशान्तान्तेषु सन्त्यष्टौ सप्त मोहं विना परे । कर्माणि घातिहीनानि चत्वार्येव जिनद्वये ॥९॥

८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।८।४।४

सम्यक्त्वं तीर्थकृत्वस्याऽऽहारयुग्मस्य संयमः । बन्धहेतुः प्रबध्यन्ते शेषा मिथ्यादिहेतुभिः ॥१०॥

[बन्धविच्छेदो भण्यते—]

षोडशैव च मिथ्यात्वे सासने पञ्चविंशतिः । दशाव्रते चतस्रस्तु देशे षट्कं प्रमादिनि ॥११॥
एकातोऽतो द्वयं त्रिंशच्चतस्रोऽतोऽपि पञ्च च । सूक्ष्मे षोडश विच्छिन्ना बन्धात्सातं च योगिनि ॥१२॥

इति बन्धे सर्वाः १२० ।

	१६		२५		०
एतास्तीर्थंकराहारद्वयोना मिथ्यादृष्टौ	११७	सासने	१०१	सुर-नरायुर्भ्यां विना मिश्रे	७४
	३		१९		४६
	३१		४७		७४

१. मिश्रोऽष्ट उदीरयति ।

	१०		४		६		१	
तीर्थंकरसुरनरायुर्भिः सहासंयते	६७ ४३	देशे	६७ ५३	प्रमत्ते	६३ ५७	आहारकद्विकेन सहाप्रमत्ते	५९ ६१	अपूर्वे सप्तसु भागेषु
	७१		८१		८५		८९	

२	०	०	०	०	३०	४		१	१	१	१	१
५८	५६	५६	५६	५६	५६	२६	अनिवृत्तौ पञ्चसु भागेषु	२२	२१	२०	१९	१८
६२	६४	६४	६४	६४	६४	९४		९८	९९	१००	१०१	१०२
९०	९२	९२	९२	९२	९२	१२२		१२६	१२७	१२८	१२९	१३०

सूक्ष्मादिषु—

सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
१६	०	०	१	०
१७	१	१	१	०
१०३	११९	११९	११९	१२०
१३१	१४७	१४७	१४७	१४८

मिथ्यात्वं षण्ढवेदश्च श्वभ्रायुर्नरकद्वयम् । चतस्रो जातयश्चाद्याः सूक्ष्मं साधारणातपौ ॥१३॥
अपर्याप्तमसंप्राप्तं स्थावरं हुण्डमेव च । षोडशेति च मिथ्यात्वे विच्छिद्यन्ते हि बन्धतः ॥१४॥
स्त्यानगृद्धित्रयं तिर्यगायुराद्या कषायकाः । तिर्यग्द्वयमनादेयं स्त्रीनीचोद्योतदुःस्वराः ॥१५॥
संस्थानस्याथ संहत्याश्चतुष्के द्वे तु मध्यमे । दुर्भगासन्नभोरीती सासने पञ्चविंशतिः ॥१६॥
द्वितीयमथ कोपादिचतुष्कं चादिसंहतिः । नरायुर्नृद्वयौदार्यद्वये च दश निर्वृते ॥१७॥
कषायाणां चतुष्कं च तृतीयं देशसंयते । आसातमरतिः शोकास्थिरे चाशुभमेव च ॥१८॥
अयशः षट् प्रमत्ताख्ये देवायुश्चाप्रमत्तके । अपूर्वप्रथमे भागे द्वे निद्राप्रचले ततः ॥१९॥
षष्ठे सकार्मणं तेजः पञ्चाक्षममरद्वयम् । स्थिरं प्रथमसंस्थानं शुभं वैक्रियिकद्वयम् ॥२०॥
त्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादिकचतुष्टयम् । सुभगं सुस्वरादेये निर्माणं सन्नभोगतिः ॥२१॥
आहारकद्वयं तीर्थकरं त्रिंशदिमास्ततः । हास्यं रतिजुगुप्साभीः क्षणेऽपूर्वस्य चान्तिमे ॥२२॥

इत्यपूर्वे २।३०।४।

क्रमात्पुंवेदसंज्वाला पञ्चांशेष्वनिवृत्तिके । सूक्ष्मेऽप्युच्चं यशो दृष्टेश्चतुष्कं ज्ञान-विघ्नयः ॥२३॥
दशैवं षोडशास्माच्च शान्तक्षीणौ विहाय च । सयोगे सातमेकं तु बन्धः सान्तोऽप्यनन्तकः ॥२४॥

अनिवृत्तौ ५ । सूक्ष्मे १६ । सयोगे १ ।

उदेति मिश्रकं मिश्रे सम्यक्त्वं तु चतुर्ष्वतः । आहारकं प्रमत्ताख्ये तीर्थकृत्केवलिद्वये ॥२५॥
पाके श्वभ्रानुपूर्वी न सासने श्वभ्रगो न सः । मिश्रे सर्वानुपूर्व्यो न येनासौ म्रियते न हि ॥२६॥
उदयाद्यान्ति विच्छेदं पञ्च प्रकृतयो नव । एका सप्तदशाष्टौ द्व पञ्चैव च यथाक्रमम् ॥२७॥
चतस्रः षट् तथा षट्कमेका द्वे षोडशापि च । अपयोगजिनान्तेषु[1] त्रिंशच्च द्वादशापि च ॥२८॥ (युग्मम् ।)

इत्युदये सर्वाः १२२ :

		५	
एताः सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वाऽऽहारकद्वयहीना मिथ्यादृष्टौ		११७	नरकानुपूर्वीं विना सासने
		५	
		३१	

९		१	
१११ ११	तिर्यङ्नरसुरानुपूर्वीभिर्विना सम्यग्मिथ्यात्वेन च सह मिश्रे	१०० २२	चतसृभिरानुपूर्वीभिः सम्यक्त्वेन
३७		४८	

१. निर्योगजिनान्तेषु चतुर्दशसु गुणस्थानेषु इति ज्ञेयम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	१७		८		५		४		६		
च सहासंयते	१०४	देशे	८७	आहारकद्विकेन सह प्रमत्ते	८१	अप्रमत्ते	७६	अपूर्वे	७२	अनिवृत्तौ	
	१८		३५		४१		४६		५०		
	४४		६१		६७		७२		७६		

६		१		२		२		१४		३०	
६६	सूक्ष्मे	६०	उपशान्ते	५९	क्षीणद्विचरमसमये	५७	चरमसमये	५५	तीर्थंकरेण सह सयोगे	४२	
५६		६२		६३		६५		६७		८०	
८२		८८		८९		९१		९३		१०६	

	१२
अयोगे	१२
	११०
	१३६

पञ्चापर्याप्तमिथ्यात्वसूक्ष्मसाधारणातपाः । मिथ्यादृश्युदयाद्भ्रष्टाः स्थावरं सासनाभिधे ॥२९॥
चतस्रो जातयश्चाद्यं कोपादि च चतुष्टयम् । सम्यङ्मिथ्यात्वमेकं च सम्यग्मिथ्यादृगाह्वये ॥३०॥

५।९।१

द्वितीया अपि कोपाद्या आयुर्नारकदेवयोः । नृ-तिर्यगानुपूर्व्ये द्वे दुर्भगं वैक्रियिद्वयम् ॥३१॥
देवद्विकमनादेयमयशो नारकद्वयम् । दश सम्यग्व्रतस्थानेऽतस्तृतीया क्रुधादयः ॥३२॥
तिर्यगायुर्गती नीचोद्योतावष्टावणुव्रते । पञ्चाऽऽहारद्वयं स्त्यानगृद्धित्रयमतः परे ॥३३॥

१७।८।५

सम्यक्त्वं संहतेश्चान्त्यं त्रयं चैवाप्रमत्तके । षट्कं तु नोकषायाणामपूर्वेऽप्युदयाच्च्युतिम् ॥३४॥

४।६।

वेदत्रयं तु संज्वालास्त्रयः षडनिवृत्तिके । सूक्ष्मे च लोभसंज्वाल एक एवान्तिमे क्षणे ॥३५॥

६।१

वज्रनाराच-नाराचे प्रशान्तेऽप्युदयाच्च्युते । निद्रा च प्रचला च द्वे क्षीणमोह उपान्तिमे ॥३६॥
पञ्च ज्ञानावृतेर्दृष्टेश्चतुष्कं विघ्नपञ्चकम् । चतुर्दशोदयाद् भ्रष्टाः क्षणे क्षीणस्य चान्तिमे ॥३७॥

२।१४।

वेद्यमेकतरं वर्णचतुष्कौदारिकद्वये । संस्थानानि षडाद्या च संहतिर्द्वे नभोगती ॥३८॥
तथैवागुरुलघ्वादिचतुष्कं तैजसं तथा । प्रत्येकं च स्थिरद्वन्द्वं शुभसुस्वरयोर्युगे ॥३९॥
निर्माणं कार्मणं त्रिंशत्समयेऽन्त्ये हि योगिनः । वेदनीयं द्वयोरेकं मनुष्यायुर्गती त्रसम् ॥४०॥
पञ्चाक्षं सुभगं स्थूलं पर्याप्तं तीर्थकृत्तथा । आदेयं यश उच्चं च द्वादशैवमयोगके ॥४१॥

३०।१२

विच्छिन्नोदीरणाः पञ्च नव मिथ्यादृगादिषु । एका सप्तदशाष्टाष्टौ चतस्रः षट् षडेव तु ॥४२॥
एका द्वे षोडशैकान्नचत्वारिंशत्क्रमादिमाः । उदीर्यं ते न चैकापि निर्योगे प्रकृतिर्जिने ॥४३॥ (युग्मम् ।)

	५		
एताः सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वाऽऽहारकद्वयतीर्थंकरहीना मिथ्यादृष्टौ	११७	नरकानुपूर्वीं विना सासने	
	५		
	३१		

३		१	
१११	तिर्यङ्नरसुरानुपूर्वीर्विना सम्यग्मिथ्यात्वेन सह मिश्रे	१००	चतसृभिरानुपूर्वीभिः सम्यक्त्वेन च सहा-
११		२२	
३७		४८	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयते १७/१०४/१८/४४ देशे ८/८७/३५/६१ आहारकद्विकेन सह प्रमत्ते ८/८१/४१/४७ अप्रमत्तादिषु षट्सु—

अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म०	उप०	द्वि० क्षी०	च० क्षी०
४	९	६	१	२	२	१४
७३	६९	६३	५७	५६	५४	५२
४९	५३	५९	६५	६६	६८	७०
७५	७९	८५	९१	९२	९४	९६

तीर्थकरेण सह सयोगे ३९/३९/८३/१०९ अयोगे ०/०/१२२/१४८ ।

सातासातनरायुर्भिर्हीनाः प्रकृतयो यकाः । अयोगस्योदये तासां योगिन्येवास्त्युदीरणा ॥४४॥
इत्युदीर्यंत एकान्नचत्वारिंशत्सयोगके । सातासातनरायुभिः षष्ठेऽष्टोदीरणान्तगाः ॥४५॥
इति षष्ठे प्रमत्ते उदयव्युच्छेदे ५ सातादिभिः सहाष्टौ ८ ।
प्रमत्त-केवलिभ्यो[1]ऽन्यत्रोदयोदीरणे समे । उदीर्यते न चैकापि निर्योगे प्रकृतिर्जिने ॥४६॥
आहारद्वयतीर्थेशसत्त्वे सासनताऽस्ति न । सत्त्वे तीर्थकृतो[2] नैति वै तिर्यक्त्वं च मिश्रताम् ॥४७॥
नाणुव्रतेषु श्वभ्रायुः प्रमत्तेयतरयोश्च न । तिर्यक्-श्वभ्रायुषी सत्त्वे न चौपशमिकेषु ते[3] ॥४८॥
सप्त स्युर्निर्व्रताऽऽद्येषु चतुर्ष्वेकत्र सत्क्षये । षोडशाष्टौ तथैकैका षडेकैका चतुर्ष्वतः ॥४९॥
अनिवृत्तौ ततश्चैका सूक्ष्मे क्षीणेऽपि षोडश । अयोगे क्षीयते पश्चात् द्वासप्ततिरुपान्तिमे ॥५०॥
त्रयोदश क्षणान्त्ये च इत्येवं प्रकृतीर्जिनम् । सिद्धिजातं नमाम्यष्टचत्वारिंशच्छतप्रमाः ॥५१॥

१४८।

अत्र सामान्येन तावत्प्रथमो विकल्पः-मिथ्यादृष्टौ १४८ । तीर्थकराऽऽहारद्वयोनाः सासने १४५/३ । आहारकद्विकेन सह मिश्रे १४७/१ । सर्वासंयते १४८ । नारकायुषा विना देशे १४७/१ । तिर्यगायुषा विना प्रमत्ते १४६/२ । अप्रमत्ते १४६/२ । औपशमिकसम्यक्त्वेषूपशमकेषु चतुर्षु १४६/२ १४६/२ १४६/२ १४६/२ । क्षायिकसम्यक्त्वेषूपशमकेषु चतुर्ष्वपि १३९/९ १३९/९ १३९/९ १३९/९ । अपूर्वादिक्षपकेषु च १३८/१० ।

३६	१	१६	०	७	१३
१३८	१०२	१०१	८५	८५	१३ ।
१०	४६	४७	६३	६३	१३५

द्वितीयो विकल्पश्चरमशरीरेषु श्वभ्रतिर्यक्सुरायुर्हीना मिथ्यादृष्टौ ०/१४५/३ । तीर्थकराऽऽहारद्वयहीनाः सासने ०/१४२/६ । आहारकद्विकेन सह मिश्रे ०/१४४/४ । तीर्थकरेण सहासंयते ७/१४५/३ । देशे ७/१४५/३ । प्रमत्ते

---

१. प्रमत्तसयोग्ययोगिगुणस्थानेभ्यः । २. तीर्थकरस्य । ३. तिर्यक्-श्वभ्रायुषी ।

७ ७ ० १६ ८ १ १ ६ १
१४५। अप्रमत्ते १४५। अपूर्वे १३८। अनिवृत्तौ नव भागेषु १३८ १२२ ११४ ११३ ११२ १०६
३ ३ १० १० २६ ३४ ३५ ३६ ४२

१ १ १ १ ० २ १४
१०५ १०४ १०३। सूक्ष्मे १०२। उपशान्ते १४५। क्षीणोपान्त्यसमये १०१ चरमसमये च ९९।
४३ ४४ ४५ ४६ १ ४२ ४९

० ७२ १३
सयोगे ८५। अयोगे द्विचरमसमये ८५ चरमसमये च १३।
६३ ६३ १३५

श्वभ्रतिर्यक्सुरायुःषु प्रक्षीणेष्वन्यजन्मनि। उच्यते नृभवे जाते गुणस्थानेषु सत्क्षयः ॥५२॥
चतुर्ष्वसंयताद्येषु क्वाप्यनन्तानुबन्धिनः। मिथ्यात्वं मिश्रसम्यक्त्वे सप्त यान्ति क्षयं क्रमात् ॥५३॥
स्त्यानगृद्धित्रयं तिर्यग्द्वयं श्वभ्रद्वयं तथा। एकाक्षविकलाक्षाणां जातयः स्थावरातपौ ॥५४॥
सूक्ष्मसाधारणोद्योताः षोडशोऽतोऽष्टमध्यमाः। कषायाः षण्ढवेदोऽतः स्त्रीवेदोऽतस्ततः क्रमात् ॥५५॥
हास्यषट्कं च पुंवेदः क्रोधो मानोऽथ वञ्चनाः। अनिवृत्तेर्नवांशेषु सूक्ष्मे लोभस्ततोऽन्तिमः ॥५६॥

अनिवृत्तौ १६।८।१।१।६।१।१।१।१। सूक्ष्मे १।

निद्रा च प्रचला च द्वे क्षीणस्योपान्तिमे क्षणे। दृक्चतुष्कमथो विघ्नज्ञानावृत्योर्दशान्तिमे ॥५७॥

२।१४।

पञ्चायोगे शरीराणि जिने तद्बन्धनानि च। सङ्घातपञ्चकं षट् च संस्थानान्यमरद्वयम् ॥५८॥
अङ्गोपाङ्गत्रयं चाष्टौ स्पर्शाः संहननानि षट्। अपर्याप्तं रसाः पञ्च द्वौ गन्धौ वर्णपञ्चकम् ॥५९॥
अयशोऽगुरुलघ्वादिचतुष्कं द्वे नभोगती। स्थिरद्वन्द्वं शुभद्वन्द्वं प्रत्येकं सुस्वरद्वयम् ॥६०॥
वेद्यमेकतरं निर्मिन्नीचानादेयदुर्भगम्। उपान्त्यसमये क्षीणाः द्वासप्ततिरिसाः समम् ॥६१॥

७२।

क्षणेऽन्त्येऽन्यतरद्वेद्यं नरायुर्नृद्वयं त्रसम्। सुभगादेयपर्याप्तपञ्चाक्षोच्चयशांसि च ॥६२॥
बादरं तीर्थकृच्चैतास्त्रयोदश परिक्षयम्। यत्र प्रकृतयो जातास्तमयोगमभिष्टुवे ॥६३॥

१३।

किं प्राग्विच्छिद्यते बन्धः किं पाकः किमुभौ समम्। किं स्वपाकेन बन्धोऽन्यपाकेनोभयथापि किम् ॥६४॥
सान्तरस्तद्विपक्षो[1] वा स किं चोभयथा मतः। एवं नवविधे प्रश्ने क्रमेणास्यैतदुत्तरम् ॥६५॥
देवायुर्विक्रियद्वन्द्वं देवाहारद्वयेऽयशः। इष्टानां पुरा पाकः पश्चाद्बन्धो विनश्यति ॥६६॥

८।

हास्यं रतिर्जुगुप्सा भीर्मिथ्यापुंस्थावराऽऽतपाः। साधारणमपर्याप्तं सूक्ष्मं जातिचतुष्टयम् ॥६७॥
नरानुपूर्वी संज्वालल्लोभहीना क्रुधादयः। इत्येकत्रिंशतो बन्धपाकोच्छेदौ समं मतौ ॥६८॥

एकस्मिन् गुणस्थाने बन्धोदयौ ३१।

प्रकृतीनां तु शेषाणामेकाशीतिभिदा युजाम्। पूर्वं विच्छिद्यते बन्धः पश्चात्पाकस्य विच्छिदा ॥६९॥

८१।

ज्ञानदृग्रोधवेद्यान्तरायगोत्रभवायशः। शोकारत्यन्तलोभाः स्त्रीषण्ढवेदौ च तीर्थकृत् ॥७०॥
श्वभ्रतिर्यङ्नरायूंषि श्वभ्रतिर्यङ्नृरीतयः। तिर्यक्श्वभ्रानुपूर्व्यौ द्वे पञ्चाक्षौदारिकद्वये ॥७१॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादिकचतुष्टयम्। षट्कं संस्थान-संहत्योरुद्योतो द्वे नभोगती ॥७२॥
स्थिरादिपञ्चयुग्मानि निर्मित्तैजसकार्मणे। एकाशीतेः पुरा बन्धः पश्चात्पाको विनश्यति ॥७३॥

८१।

१. निरन्तरः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्रियाषट्कमाहारद्वयं श्वभ्रामरायुषी । तीर्थकृच्चैव बध्यन्ते एकादश परोदयात् ॥७४॥

अत्र एताः परोदयेन बध्यन्ते, बन्धोदययोः समानकाले वृत्तिविरोधात् ।

ज्ञानावृत्यन्तरायस्था दश तैजसकार्मणे । शुभस्थिरयुगे वर्णचतुष्कं दृक्चतुष्टयम् ॥७५॥

निर्माणागुरुलघ्वाह्वे मिथ्यात्वं सप्तविंशतेः । बन्धः स्यात्स्वोदयाच्छेषद्व्यशीतेः स्व-परोदयात् ॥७६॥

२७।

द्वे वेद्ये पञ्च दृग्रोधाः कषायाः पञ्चविंशतिः । षट्के संस्थान-संहत्योर्नृद्वयौदारिकद्वये ॥७७॥

तिर्यङ्नरायुषी तिर्यग्द्वयोद्योतौ नभोगती । परघातातपोच्छ्वासा द्वे गोत्रे पञ्च जातयः ॥७८॥

उपघातं युगान्यष्टौ शुभस्थिरयुगे विना । त्रसादीनीति बन्धः स्याद् द्व्यशीतेः स्वपरोदयात् ॥७९॥

८२।

एताः स्वोदय-परोदयाभ्यां बध्यन्ते, उभयथापि विरोधाभावात् ।

ज्ञानदृग्रोधविघ्नस्थाः सर्वाः सर्वे क्रुधादयः । मिथ्यात्वं भी जुगुप्सोपघातास्तैजसकार्मणे ॥८०॥

निर्माणागुरुलघ्वाह्वे वर्णादिकचतुष्टयम् । इति प्रकृतयः सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवा इमाः ॥८१॥

४७।

आयुश्चतुष्टयाऽऽहारद्वयतीर्थकरैर्युताः । चतुःपञ्चाशदासां च भवेद् बन्धो निरन्तरः ॥८२॥

५४।

पञ्चान्तिमानि संस्थानान्यन्त्यं संहतिपञ्चकम् । चतस्रो जातयोऽप्याद्याः षण्ढः स्त्रीस्थावरातपाः ॥८३॥

शोकारत्यशुभोद्योतसूक्ष्मसाधारणायशः । अस्थिरा सन्नभोरीती दुर्भगापूर्णदुःस्वरम् ॥८४॥

श्वभ्रद्वयमनादेयासाते त्रिंशच्चतुर्युताः । बध्यन्ते सान्तरा बन्धेऽन्याः सान्तरनिरन्तराः ॥८५॥

३४।

तिर्यग्द्वयं नरद्वन्द्वं पुंवेदौदारिकद्वये । गोत्रे सातं सुरद्वन्द्वं पञ्चाद्यं वैक्रियद्वयम् ॥८६॥

परघातं रतिहास्यमाद्ये संस्थानसंहती । दश त्रसादियुग्मानामाद्यान्युच्छ्वाससद्गती ॥८७॥

३२।

अत्रैकं समयं बद्ध्वा द्वितीयसमये यस्याः बन्धविरामो दृश्यते, सा सान्तरा बन्धप्रकृतिः । यस्याः बन्धकालो जघन्योऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमात्रः, सा निरन्तरा बन्धप्रकृतिः । तेनोक्तं—सान्तरो बन्ध एकसमयेन, द्वितीयसमयेन बन्धाभावात् । निरन्तरो बन्ध एक-एकसमयेन बन्धोपरमाभावात् । इति बन्धे सान्तराः ३४ । सान्तरनिरन्तराः ३२ ।

वाततेजोऽङ्गिनो नोच्चं न बध्नन्ति नृजीवितम् । सत्त्वे तीर्थकृतो नैति तिर्यक्त्वं न च मिश्रताम् ॥८८॥

आहारद्वयतीर्थेशः सत्त्वे सासनताऽस्ति न । अशस्तवेदपाकाच्च[1] नाहारर्द्धिः प्रजायते ॥८९॥

पाके स्त्री-षण्ढयोस्तीर्थकृत्सत्त्वे क्षपकोऽस्ति न । [ ] ॥९०॥

इति कर्मबन्धस्तवः समाप्तः ।

१. स्त्री-नपुंसकवेदोदयात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतकाख्यः चतुर्थः संग्रहः

श्रुताम्भोनिधिनिष्यन्दाज्ज्ञानतर्षाभिघातकृत् । भव्यानाममृतप्रख्यं जिनवाक्यं जयत्यदः ॥१॥
अत्रैव कतिचिच्छ्लोकान् दृष्टिवादात्समुच्चितान् । वक्ष्ये जीवगुणस्थानगोचरान् सारसंयुतान् ॥२॥
उपयोगास्तथा योगा येषु स्थानेषु यत्प्रमाः । सन्ति यत्प्रत्ययो बन्धस्तेषु तत्सर्वमुच्यते ॥३॥
बन्धादयस्त्रयस्तेषां तेषु संयोग इत्यपि । तथा बन्धविधानेऽपि संक्षेपात्किञ्चिदुच्यते ॥४॥

अष्ट [अत्र] सूत्रपदादि—

एकाद्या बादरा सूक्ष्मा द्व्यक्षाद्या विकलास्त्रयः । पञ्चाख्या संज्ञ्यसंज्ञ्याख्याः सर्वे पर्याप्तकेतरे ॥५॥
एकेन्द्रियेषु चत्वारि जीवानां विकलेषु षट् । पञ्चाक्षेष्वपि चत्वारि स्थानान्येवं चतुर्दश ॥६॥
तिर्यग्गतौ समस्तान्यन्यासु द्वे संज्ञिनि स्थिते । नेयानि मार्गणास्वेवं जीवस्थानानि कोविदैः ॥७॥

२,१४,२,२ । ४;२,२,२,४ । ४,४,४,४,४,१० । १;१,१,१,१,१,१,५,७,८,१,१,१,८ । ४,४,१४ । १४,१४,१४,१४ । १४,१४,१,२,२,२,१,१ । १,१,१,१,१,१ । १४ । ३, वि० ६[1], १४,२,१ । १४,१४,१४, २,२,२ । १४,१४ । १, वि० २,२,२,२, वि० ८, १,१४ । २,२, वि० १२ । १४,८ ।

देवश्वाभ्रेषु चत्वारि गुणस्थानानि पञ्च तु । तिर्यक्षु नृषु सर्वाणि यथास्वं चेन्द्रियादिषु ॥८॥

४,५,१४,४ । २,२,२,२,१४ । २,२,१,१,२,१४ । १३,१२,१२,१३,१३,१२,१२,१३,१३,४,४, ३,१,१,४ । ६,६,६ । ६,६,६,१० । २,२,२,६,६,६,२,२ । ४,४,२,१,४,१,४ । १२,१२,६,२ । ४,४,४, ७,७,१३ । १४,१ । ८,४,११,१,१,१ । १२,२ । १३,५[2] ।

त्रिभिर्विना नवान्यासु नृगतावखिला अपि । ज्ञातव्या मार्गणास्वेवमुपयोगा यथायथम् ॥९॥

९,९,१२,९ । ३,३,३,४,१२ । ३,३,३,३,३,१२ । १२,१०,१०,१२; १२,१०,१०,१२; १२,९[3], ९,७,६,६,९ । ९,९,१० । १०,१०,१०,१० । ५,५,५,७,७,७,७,२ । ७,७,६,७,९,६,९ । १०,१०,७,२ । ९,९,९,१०,१०,१२ । १२,५ । ६,७,९,५,६,५ । १०,४ । १२,९[4] ।

योगास्त्रयोदश ज्ञेया नृगतौ तु विचक्षणैः । अन्यास्वेकादशैवं ते यथास्वं चेन्द्रियादिषु ॥१०॥

११,११,१३,११ । ३,४,४,४,१५ । ३,३,३,३,३,१५ । १,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१,१ । १३,१५,१३ । १५,१५,१५,१५ । १३,१३,१०,१५,१५,१५,९,७ । ११,११,९,९,११,९,१३ । १२,१५, १५,७ । १३,१३,१३,१५,१५,१५ । १५,१३ । १३,१५,१५,१३,१०,१३ । १५,४ । १४,१ ।

एकादश द्विकैकेषु जीवस्थानेष्वनुक्रमात् । त्रिचतुर्द्वादश ज्ञेया उपयोगा भवन्ति वै ॥११॥

११	२[5]	१[6]
३	४	१२

नवस्वथ चतुर्ष्वेकस्मिन्नेको द्वौ तिथिप्रमाः । योगाः स्युस्तन्नवस्थेषु विग्रहतौ तु कार्मणः ॥१२॥

---

१. चक्षुर्दर्शने विग्रहगतौ षड् जीवसमासा भवन्ति—चतुरिन्द्रिया पर्याप्तापर्याप्ता इति । २. मिथ्यात्व-सासादनाविरतिसयोग्ययोगिनः, एते पञ्च । ३-४. चक्षुर्विभङ्गमनःपर्ययं विना नव भवन्ति । ५. चतुरिन्द्रिय-पर्याप्त-पञ्चेन्द्रियासंज्ञिपर्याप्तौ द्वौ । ६. पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्त एकः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

० ६[१] ४[२] १[३]
१ २ १५

अत्र वृत्तिश्लोकास्त्रयः—

मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानमचक्षुर्दर्शनं त्रयः। एकादशसु ते चक्षुर्दर्शनाच्चतुरिन्द्रिये ॥१३॥
असंज्ञिनि च पर्याप्ते पूर्णे द्वादश संज्ञिनि। उपयोगास्तथा योगा जीवस्थानेषु सन्त्यमी ॥१४॥
पूर्णेष्वौदारिकं षट्सु वाक्तेषु द्वीन्द्रियादिषु। सर्वे संज्ञिनि पूर्णेष्वौदार्यमिश्रं च सप्तसु ॥१५॥
द्वयोः पञ्च द्वयोः षट् ते मिश्रा एकत्र सप्तसु। सप्त सन्त्यु योगास्तु द्वौ गुणस्थानयोर्द्वयोः ॥१६॥

गुणेषु ५।५।६।६।६।७।७।७।७।७।७।७।२।२।

अत्र वृत्तिश्लोकौ—

मिश्रे ज्ञानत्रिकं युग्मे ज्ञानैर्मिश्रं च तत्त्रिभिः। मिश्रे ज्ञानत्रयं युग्मे चतुष्कं यतिसप्तके ॥१७॥
द्वयोर्द्वे दर्शने त्रीणि दर्शनानि दशस्वतः। जिनयोः केवलज्ञानं तथा केवलदर्शनम् ॥१८॥

३ ३ ३ ३ ३ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४
२ २ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ सयोगायोगयोः २।२। अत्र मिश्रे सम्यग्मिथ्यादृष्टौ त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि।

आद्ययोर्निवृते चैव सन्ति योगास्त्रयोदश। दश मिश्रे प्रमत्ते तु तथैकादश वर्णिताः ॥१९॥
नव योगाः समादिष्टाः गुणस्थानेषु सप्तसु। उपयोगे तु जिने सप्त स्थानमेकमयोगकम् ॥२०॥

१३।१३।१०।१३।९।११।९।९।९।९।९।९।७।०।

अत्र वृत्तिश्लोकाः—

त्रिष्वाहारकयुग्मोना मिश्रे चौदार्यविक्रिये। वाङ्मानसचतुष्के च विक्रियोनाश्च तेऽष्टसु ॥२१॥
द्वौ चाहारौ प्रमत्तेऽन्या चौदार्यौ योगिनस्तथा। आद्यन्ते मानसे वाचौ समुद्घातं गतस्य च ॥२२॥
योगिन्यौदारिको योगो दण्डेऽस्यौदार्यमिश्रकः। कवाटे कार्मणाख्यस्तु प्रतरे लोकपूरणे ॥२३॥

सयोगे ७।

मिथ्यात्वाविरती योगः कषायो बन्धहेतवः। पञ्च द्वादश ते पञ्चदश स्युः पञ्चविंशतिः ॥२४॥

१।१।१।१ इति मूलप्रत्ययाः। एते समुदिताः ४। एषामेव भेदा उत्तरप्रत्ययाः। ५।१२।१५।२५। एतेऽपि समुदिताः ५७। तत्र मूलप्रत्ययानां बन्धहेतुत्वं समुदायेऽवयवे च वेदितव्यम्। कथमित्याह—

आद्ये बन्धश्चतुर्हेतुस्त्रिष्वनन्त्यात् प्रत्ययत्रिकात्। विरत्यविरतिमिश्रा देशेऽन्त्यौ द्वाविति त्रिकात् ॥२५॥
कषाययोगजः पञ्चस्वतः स्याद्योगजस्त्रिषु। सामान्यप्रत्ययाः सन्ति गुणेष्वित्यष्टकर्मणाम् ॥२६॥

अत्र देशे संयतासंयते त्रसविरतिः स्थावराविरत्या मिश्रा। इति गुणेषु नानैकसमयमूलप्रत्यया नानैकजीवानां ४।३।३।३।३।२।२।२।२।२।१।१।१।०। उत्तरप्रत्ययानाह—

संशयाज्ञानिकैकान्तविपरीतविकल्पतः। भेदाद्वैनयिकाद्वाच मिथ्यात्वं पञ्च चोदितम् ॥२७॥

तत्र सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः किं स्याद्वा नवेति मतिद्वैविध्यं संशयः १। हिताहित-परीक्षाविरहोऽज्ञानिकत्वम् २। इदमेवेत्थमेव धर्मिधर्मयोरभिसन्निवेश एकान्तः। स च 'पुरुष एवेदं सर्वं' इत्यादि ३। सग्रन्थो निर्ग्रन्थः, केवली कवलाहारी, स्त्री सिद्ध्यतीत्येवमादिर्विपर्ययः ४। सर्वदेवतानां सर्व-समयानां च समदर्शित्वं वैनायिकम् ५।

द्वादशाविरतेर्भेदाः प्राणिकायेन्द्रियाश्रयाः। प्राणिकायाः पृथिव्याद्याः षट् षडत्रेन्द्रियाण्यपि ॥२८॥

इति द्वादशविधा अविरतिः १२।

---

१. द्वयोरेकेन्द्रिययोः पर्याप्तयोरौदारिक एकः। सप्तस्वपर्याप्तेष्वौदारिकमिश्र एक इति समुदायेन नवस्वेको योगः। २. द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तेषु चतुर्षु द्वौ कायवाग्योगौ। ३. संज्ञिनि पर्याप्ते पञ्चदश योगाः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षोडशैव कषायाः स्युर्नोकषाया नवेरिताः । ईषद्भेदो न भेदोऽत्र कषायाः पञ्चविंशतिः ॥२९॥

अत्र षोडश कषायाः, नव नोकषायाः । ईषद्भेदो न भेद इति पञ्चविंशतिः कषायाः २५ ।

आहाराहारमिश्रयोः प्रमत्ते सम्भवादिति ताभ्यां सह 'निरुपभोगमन्त्यम्' इति वचनात्तैजसाच्च विना पञ्चदश योगाः १५ । उक्तञ्च—

न कर्म बध्यते नापि जीर्यते तैजसेन हि । शरीरेणोपभुज्येते सुख-दुःखे च तेन नो ॥३०॥

तैजसस्य जघन्येनैकः समयः, उत्कर्षेण षट्षष्टि-सागरोपमाणि स्थितिः । तदो ते समुदिताः ५७ । एताश्च गुणेष्वाऽऽह—

आद्ये स्युः पञ्चपञ्चाशत् पञ्चाशत्प्रत्ययाः परे । त्रिचत्वारिंशदप्यस्मात् षट्चत्वारिंशदप्यतः ॥३१॥

सप्तत्रिंशच्चतुर्विंशतिश्च द्वाविंशतिर्द्वयोः । षोडशैकैकहीनाः स्युः यावद्दशानिवृत्तिके ॥३२॥

दश सूक्ष्मकषायेऽपि शान्त-क्षीणकषाययोः । नव सप्त सयोगाख्ये निर्योगः प्रत्ययातिगः ॥३३॥

इति नानाजीवेषु नानासमयेषूत्तरप्रत्ययाः गुणस्थानेष्वष्टसु ५५।५०।४३।४६।३७।२४।२२।२२। अनिवृत्तौ १६।१५।१४।१३।१२।११। सूक्ष्मादिषु पञ्चसु १०।१०।९।७।० ।

अत्र वृत्तिश्लोकाः—

आद्ये नाहारकद्वन्द्वं न मिथ्यात्वानि सासने । त्रिष्वाद्या न कषायाः स्युर्न देशे विक्रियाद्वयम् ॥३४॥

न त्रसासंयमो नान्ये कोपाद्या मिश्र-देशयोः । कार्मणौदार्यमिश्रे न नो वैक्रियिकमिश्रकम् ॥३५॥

साहारे न प्रमत्तेऽन्ये कोपाद्या नाप्यसंयमः । द्वयोर्नाहारकद्वन्द्वं नानिवृत्तौ क्रमादिमे ॥३६॥

हास्यादिषट्कं षण्ढस्त्री पुं-क्रोधौ मान-वञ्चने । येऽनिवृत्तौ दश स्युस्ते सूक्ष्मे लोभाद्विना द्वयोः ॥३७॥

आद्यन्ते मानसे वाचौ चाद्यन्ते कार्मणं तथा । औदार्यौदार्यमिश्रे च प्रत्ययाः सप्त योगिनि ॥३८॥

५१।५३।५५।५२॥ ३८।४०।४१।४२।७॥ ३८।३८।३८।३८।३८।५७॥ ४३।४३।४३।४३।४३।४३। ४३।४३।४३।४३।४३।४३॥ १२।१२।४३॥ ५३।५५।५३॥ ४५।४५।४५।४५॥ ५५।५५॥ ५२।४८।४८।४८। २०।७॥ २४।२४।२२।१०।११।३७।५५॥ ५७।५७।४८।७॥ ५५।५५।५५।५७।५७।५७॥ ५७।५५॥ ४६।४८। ४८।४३।५०।५५॥ ५७।४५।५६।४३॥

आहारौदार्ययुग्माभ्यां स्त्री-पुंभ्यां चापि वर्जिताः । प्रत्ययास्त्वेकपञ्चाशच्छेषाः श्वभ्रगतौ मताः ॥३९॥

५१।

विक्रियाऽऽहारयुग्माभ्यां हीनास्तिर्यक्षु ते मताः । त्रिपञ्चाशत् नृगतौ तु विक्रियद्वयहीनकाः ॥४०॥

५३।५५।

आहारौदार्ययुग्माभ्यां षण्ढवेदेन वर्जिताः । सुरेषु प्रत्ययाः शेषाः द्वापञ्चाशत्प्रमाणकाः ॥४१॥

५२

मिथ्यात्वपञ्चकं स्पर्शः षट्कायाश्च क्रुधादयः । ते स्त्री-पुंभ्यां विनैकाक्षे औदार्यद्वयकार्मणे ॥४२॥

३८

ते जिह्वावान्त्यवाग्भ्यां स्युः सार्धं द्वीन्द्रियके तथा । त्रीन्द्रिये घ्राणयुक्तास्ते चक्षुषा चतुरिन्द्रिये ॥४३॥

४०।४१।४२।

पञ्चाक्ष-त्रसयोः सर्वे स्थावरेष्वेकखे यथा ।

३८।३८।३८।

विहायाऽऽहारकं युग्मं शेषयोगेषु च क्रमात् ॥४४॥

---

१. मिश्राविरतदेशविरतेषु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्त्वा निजं निजं शेषचतुर्दशविहीनकाः ।
४३।४३।४३।४३।४३।४३।४३।४३।४३।४३।४३।४३।४३।
संज्वाला नोकषायाश्च स्त्रीषण्ढद्वयवर्जिताः ॥४५॥
निजयोगेन संयुक्ता आहाराहारमिश्रयोः ।
१२।१२।
स्त्रिया पुं-षण्ढवेदाभ्यामाहाराभ्यां च वर्जितः ॥४६॥
५३
स्त्री-षण्ढवेदनिर्मुक्ताः पुंवेदे प्रत्ययाः मताः ।
५५
षण्ढवेदे तु पुं-स्त्रीभ्यामाहाराभ्यां च वर्जिताः ॥४७॥
५३

सजातीयं निजं त्यक्त्वा चतुष्कमितरैर्विना । कषायैस्तु कषायेषु चत्वारिंशच्च पञ्चयुक् ॥४८॥
४५

मत्यज्ञाने श्रुताज्ञाने आहारद्वयवर्जिताः ।
५५।५५।
मिश्रत्रयेण चाहारद्वयोना ना विभङ्गके ॥४९॥
५२।

उत्तरप्रत्यया ज्ञानत्रयेऽपि परिकीर्त्तिताः । मिथ्यात्वपञ्चकेनोनास्तथाऽनन्तानुबन्धिभिः ॥५०॥
४८।४८।४८।

योगाद्या नव संज्वालाः स्त्री-षण्ढाभ्यां विवर्जिताः । नोकषाया भवन्त्येते मनःपर्ययबोधने ॥५१॥
२०।

आद्यन्ते मानसे वाचौ कार्मणं च तथा युगम् । औदार्याख्यं तु ते सन्ति संज्ञाने केवलाह्वये ॥५२॥
७।

नोकषायास्तु संज्वाला योगा एकादशाऽऽद्ययोः[1] ।
२४।
परीहारे विना षण्ढस्याहारकद्वयेन च ॥५३॥
२०।

योगा नवादिमा लोभोऽन्त्यश्च सूक्ष्मे जिनेरिताः ।
१०।
त एव प्रत्यया ऊना अन्त्यलोभेन संयुताः ॥५४॥
कार्मणौदार्यमिश्राभ्यां यथाख्याते भवन्त्यथ ।
११।

१. सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोकषाया नवाद्या योगाः कषायाष्ट चान्तिमाः ॥५५॥
एकोनाः संयमाः सर्वे संयमासंयमे स्मृताः ।

३७।

असंयमे तु निःशेषा आहारद्वयवर्जिताः ॥५६॥

५५

कोविदैरखिला ज्ञेयाश्चक्षुर्दर्शनसंज्ञके ।

५७

अचक्षुर्दर्शने ते च संज्ञानत्रयसंज्ञके ॥५७॥

५७

ये सन्ति प्रत्ययाः केचिदवधिदर्शनेऽपि ते ।

४८

ये सन्ति केवलज्ञाने तेऽपि केवलदर्शने ॥५८॥

७

तिसृणामाद्यलेश्यानां नैवाहारद्वयं भवेत् ।

५५।५५।५५।

शुभलेश्यात्रये सन्ति पञ्चाशदथ सप्त च ॥५९॥

५७।५७।५७।

भव्ये सर्वे त्वभव्येऽप्याहारयुग्मं विनाऽखिलाः ।

५७।५५।

औदार्यमिश्रमिथ्यात्वपञ्चकाऽऽहारयुग्मकम् ॥६०॥

आद्यान् कषायकांश्चैव त्यक्त्वौपशमिके मताः ।

४५

वेदके क्षायिकेऽप्येते आहारौदार्यमिश्रकैः ॥६१॥

४८।४८।

मिथ्यात्वपञ्चकानन्तानुबन्ध्याहारकैर्विना । मिश्रत्रयेण वै मिश्रे मिथ्यात्वानि न सासने ॥६२॥

४३।५०

युग्मं नाहारकं मिथ्यात्वे संज्ञिन्यखिलास्ततः । स्त्री-पुंश्चोत्वेदमा (?) संज्ञे ते ये ख्याताश्चतुःखके ॥६३॥

५५।५७।४५।

विहाय कार्मणं चानाहारे शेष चतुर्दश । योगैर्विना मताः शेषा आहारे कार्मणोनकाः ॥६४॥

४३।५६

गत्यादिमार्गणास्वेवमुत्तराः प्रत्ययाः स्फुटाः । सामान्योक्तविधानेन विशेषेण च वर्णिताः ॥६५॥
उत्तरोत्तरसंज्ञाश्च कूटस्थानेषु पञ्चसु । गुणस्थानं प्रति प्रोक्तास्ते कथ्यन्तेऽधुना स्फुटाः ॥६६॥

द्वितीयविकल्पोद्भवा इमे मताः ।

दशाष्टादश सन्त्याद्ये दश सप्तदशाऽप्यतः । नव षोडश युग्मेऽतस्ततोऽष्टौ च चतुर्दश ॥६७॥
पञ्च सप्त त्रिके तस्माद् द्वौ त्रयोऽतश्चतुर्ष्विमे । द्वौ चैकाधिक एकश्च जघन्योत्कृष्टहेतवः ॥६८॥

इत्येकजीवं प्रतीत्यैकसमयजघन्योत्कृष्टप्रत्ययाः गुणेषु—

ज०	१०	१०	९	९	८	५	५	५	२	२	१	१	१	०
उ०	१८	१७	१६	१६	१४	७	७	७	३	२	१	१	१	०

यावदावलिकां पाको नास्त्यनन्तानुबन्धिनाम् । मिथ्यात्वं दर्शनात्प्राप्तेऽन्तर्मुहूर्त्तं मृतिर्न च ॥६९॥

अत्र चशब्दात्सम्यक्त्वं च मिथ्यात्वात्प्राप्तेऽन्तर्मुहूर्त्तं मृतिर्न च ।

[1]कू १ । कू ३ । कू ५ । कू ६ । कू ६ । कू ६ । कू ५ । कू ३ । कू १ ।

वामदृष्टेः यो १२ यो १ यो १३[2] यो १२ सासादनस्य यो १० मिश्रस्य[3] यो १०
वे ३ वे २ वे २ वे १ वे ३ वे स्त्री
यो १२ यो १३ यो १० यो २[4] यो १[5] अयतस्य यो ९ यो ९ यो ९ यो ९ यो ९ यो ९
वे न० वे पुं० वे ३ वे २ वे पुं वे ३ वे २ वे पुं वे ० वे ० वे ०
अनिवृत्तौ सूक्ष्मादिषु ९ । ९ । ९ । ७ ।

एकसंयोगादिगुणकारास्तद्यथा—

६	१५	२०	१५	६	१	का	अ	भ	यो
१	२	३	४	५	६	१	०	०	१०

एतेषां जघन्योत्कृष्टभङ्गाः

४३२००	१०३४४	८६४०	१००८०	६४८०
९३६०	१८२४	१४४०	१६८०	१२९६

२३२	२१६	२१६	३६	९	९	९	७	०
२३२	२१६	२१६	१०८	९	९	९	७	०

अत्र वृत्तिश्लोकः—

मिथ्यात्वमिन्द्रियं कायस्त्रयः क्रोधाः परेऽथवा[6] । वेदा युग्मं च हास्यादिष्वेकं योगो दशात्र ते ॥७०॥

१।१।१।३।१।२।०।१। मीलिताः १० ।

अत्र पञ्चानां मिथ्यात्वानामेकतरस्योदय इत्येको मिथ्यात्वप्रत्ययः १ । षण्णामिन्द्रियाणामेकतरेण, षण्णां कायानामेकतरविराधने द्वावसंयमप्रत्ययौ २ । अनन्तानुबन्धिचतुष्कवर्जाणां त्रयाणां क्रोधानामन्येषां वा एकतरत्रिकोदयेन त्रयः कषायप्रत्ययाः ३ । त्रयाणां वेदानामेकतरः १ । हास्यरतियुगलारतिशोकयुगलयोरेकतरं युगलम् २ । इति षट्कषाय-प्रत्ययाः । आहाराहारमिश्रौदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रकार्मणकाययोगान् मुक्त्वा शेषाणां दशानां योगानामेकतरेणैको योगप्रत्ययः १ । एवमेते मिथ्यादृष्टेरेकसमयप्रत्यया जघन्येन दश १० ।

अत्र विसंयोजितानन्तानुबन्धी यः सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यात्वं गतोऽन्तर्मुहूर्त्तं न च म्रियते, न चानन्तानुबन्ध्युदयो यावदावलिकां तस्यास्त्यतस्त्रयः कषाया औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणहीनाश्च दश योगाः । तथाऽत्र भङ्गाः-पञ्चमिथ्यात्वैकतरभङ्गाः, उपरिमषडिन्द्रियैकतरषड्भङ्गघ्नास्त एवोपरिमषट्कायैकतरषड्भङ्गगुणास्त एवोपरिमकषायचतुष्किकैकतरचतुर्भङ्गघ्नास्त एवोपरिम वेदत्रयत्रिभङ्गगुणास्त एवोपरिमद्वियुगलद्विभङ्गताडितास्त एवोपरिमदशयोगदशभङ्गगुणा एतावन्तः ४३२०० ।

---

१. दशतः अष्टादशपर्यन्तानां क्रमेण कूटसंख्या । २. यतस्त्रयोदशयोगेषु स्त्रीपुंवेदौ स्तः, द्वादशयोगेषु एको नपुंसकवेदोऽस्ति । ततः द्वादशयोगाः त्रिभिर्वेदैः गुण्याः । एको वैक्रियिकमिश्रयोगः द्वाभ्यां स्त्री-पुंवेदाभ्यां गुण्यः । ३. यतो दशयोगेषु स्त्रीवेदः, द्वादशयोगेषु नपुंसकवेदः, त्रयोदशयोगेषु पुंवेदः । ततः दशयोगा वेदत्रयेण गुण्याः द्वौ योगौ द्वाभ्यां पुन्नपुंसकाभ्यां गुण्यौ, एको योगः एकेन नपुंसकवेदेन गुण्यः; इत्यभिप्रायेण कोष्ठका ज्ञेयाः । ४. वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगौ, वेदौ द्वौ पुन्नपुंसकौ ताभ्यां गुण्यौ । ५. औदारिकमिश्रः १ नपुंसकवेदेन एकेन गुण्यः । ६. अथवा परे मानादयः मानत्रयं मायात्रयं लोभत्रयमित्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवैते ५।६।६।४।३।२।१० अन्योन्यगुणा मिथ्यादृष्टेर्जघन्यभङ्गा ४३२०० ।

	का०	अ०	भ०	यो०	
	२	०	०	१०	
एकादशः—	१	१	०	१३	२५०५६० ।
	१	०	१	१०	

	का०	अ०	भ०	यो०	
	३	०	०	१०	
द्वादशः—	२	१	०	१३	६५५४२० ।
	२	०	१	१०	
	१	१	१	१३	
	१	०	२	१०	

	का०	अ०	भ०	यो०	
	४	०	०	१०	
	३	१	०	१३	
त्रयोदशः—	३	०	१	१०	१०२८१६० ।
	२	१	१	१३	
	२	०	२	१०	
	१	१	२	१३	

	का०	अ०	भ०	यो०	
	५	०	०	१०	
	४	१	०	१३	
चतुर्दशः—	४	०	१	१०	१०५८४०० ।
	३	१	१	१३	
	३	०	२	१०	
	२	१	२	१३	

	का०	अ०	भ०	यो०	
	६	०	०	१०	
	५	१	०	१३	
पञ्चदशः—	५	०	१	१०	७२५७६० ।
	४	१	१	१३	
	४	०	२	१०	
	३	१	२	१३	

	का०	अ०	भ०	यो०	
	६	१	०	१३	
	६	०	१	१०	
षोडशः—	५	१	१	१३	३१४६८० ।
	५	०	२	१०	
	४	१	२	१३	

	का०	अ०	भ०	यो०	
	६	१	१	१३	
सप्तदशः—	६	०	२	१०	८२०८० ।
	५	१	२	१३	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्वमिन्द्रियं कायाः षट् कषायचतुष्टयम् । वेदो हास्यादिषु द्वे भीयुग्मं योगो दशाष्ट च ॥७१॥

१।१।६।४।१।२।२।१ । मीलिताः १८ ।

अत्रापि पञ्चानां मिथ्यात्वानामेकतरं १ षण्णामिन्द्रियाणामेकतरेण षट्कायविराधने सप्तासंयमप्रत्ययाः ७ । चतुर्णां क्रोधमानमायालोभचतुष्काणामेकतरं क्रोधचतुष्कमन्यद्वा चतुष्कं ४ । एकतरो वेदः १, एकतरं युगलं २, भयजुगुप्सा च २ । आहारद्वयवर्जशेषत्रयोदशयोगानामेकतरः १ । एवमेतेऽष्टादशोत्कृष्टप्रत्ययाः १८ ।

अत्र पञ्चमिथ्यात्वैकतरं पञ्च भङ्गाः, षडिन्द्रियभङ्गाः, एकः कायभङ्गः, चत्वारः कषायचतुष्कभङ्गाः, त्रयो वेदभङ्गाः, द्वौ हास्यादियुगलभङ्गौ, एको भययुगलभङ्गः, त्रयोदश योगभङ्गाः । ५।६।१।४।३।२।१।१३ । अन्योन्याभ्यस्ताः सर्वे भङ्गाः, ९३६० । एवमेते जघन्योत्कृष्टा जघन्यानुत्कृष्टप्रत्ययैर्मिथ्यादृष्टिरर्पितप्रकृतीर्बध्नाति । वामदृष्टेर्भङ्गाः सर्वे मीलिताः ४१७३१२० । एवमन्येऽपि नेयाः ।

तत्र सासनस्यैते जघन्यप्रत्ययाः का० अ० भ० यो० / १ १ ० १२।१ ०।१।१।४।१।२।०।१ मीलिताः १० । एषामेते ०।६।६।४।२।०।१२ । अन्योन्यघ्ना भङ्गाः १०३६८ । तथा वैक्रियिकमिश्रयोगे सासनो नरकेषु न व्रजति, तेन तस्य देवेषु स्त्री-पुंवेदयोरेते ०।६।६।४।२।२।०।१ । अन्योन्यघ्ना भङ्गाः ५७६ । एवमेते १०३६८ । एते च ५७६ मीलिताः जघन्याः १०९४४ ।

	का०	अ०	भ०	यो०	
एकादशः—	२	१	०	१२।१	४६२४८ ।
	१	१	१	१२।१	

	का०	अ०	भ०	यो०	
द्वादशः—	३	१	०	१२।१	
	२	१	१	१२।१	१०२१४४ ।
	१	१	२	१२।१	

	का०	अ०	भ०	यो०	
त्रयोदशः—	४	१	०	१२।१	
	३	१	१	१२।१	१२७६८० ।
	२	१	२	१२।१	

	का०	अ०	भ०	यो०	
चतुर्दशः—	५	१	०	१२।१	
	४	१	१	१२।१	१०२१४४ ।
	३	१	२	१२।१	

	का०	अ०	भ०	यो०	
पञ्चदशः—	६	१	०	१२।१	
	५	१	१	१२।१	५१०७२ ।
	४	१	२	१२।१	

	का०	अ०	भ०	यो०	
षोडशः—	६	१	१	१२।१	१४५९२ ।
	५	१	२	१२।१	

	का०	अ०	भ०	यो०	
सप्तदशः—	६	१	२	१२।१	१७२८ ।

उत्कर्षेणैते प्रत्ययाः ०।६।१।४।१।२।२।१ मीलिताः १७ । एषामेते ०।६।१।४।३।२।१।१२ अन्योन्यघ्ना भङ्गाः १७२८ । तथा वैक्रियिकमिश्रे देवेषु स्त्री-पुंवेदयोरेते ०।६।१।४।२।२।१।१ अन्योन्यघ्नाः भङ्गाः ९६ । उभये १८२४ ।

सासादनस्य सर्वेऽपि भङ्गाः मीलिताः ४५९६४८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्मिथ्यादृष्टेरेते जघन्याः का० भ० यो० / १ ० १० ०।१।१।३।१।२।०।१ मीलिताः ९। एषामेते ०।६।६।४।३।२।०।१० अन्योन्यघ्ना भङ्गाः ८६४०।

	का०	भ०	यो०	
दशमः—	२	०	१०	३८८८० ।
	१	१	१०	
	का०	भ०	यो०	
एकादशः—	३	०	१०	
	२	१	१०	८०६४० ।
	१	२	१०	
	का०	भ०	यो०	
द्वादशः—	४	०	१०	
	३	१	१०	१००८०० ।
	२	२	१०	
	का०	भ०	यो०	
त्रयोदशः—	५	०	१०	
	४	१	१०	८०६४० ।
	३	२	१०	
	का०	भ०	यो०	
चतुर्दशः—	६	०	१०	
	५	१	१०	४०३२० ।
	४	२	१०	
	का०	भ०	यो०	
पञ्चदशः—	६	१	१०	११५२० ।
	५	२	१३	
	का०	भ०	यो०	
षोडशः—	६	२	१०	१४४० ।

तथोत्कृष्टा एते ०।१।६।३।१।२।२।१ मीलिताः १६। एषामेते ०।६।१।४।३।२।१।१० अन्योन्यघ्ना भङ्गाः १४४०। मिश्रस्य भङ्गाः सर्वेऽपि मीलिताः ३६२८८०।

असंयतस्याप्येते एव प्रत्ययाः, किन्तु भङ्गविशेषस्तत्र दशसु योगेष्वेते जघन्याः का० भ० यो० / १ ० १० ०।१।१।३।१।२।१ मीलिताः ६। एषामेते ०।६।६।४।३।२।०।१० अन्योन्यगुणा भङ्गाः ८६४०। तथौदारिकमिश्रमाश्रित्य नृतिर्यक्षु पुंवेद एवैकोऽस्ति, तेनात्रैते ०।६।६।४।१।२।०।१ अन्योन्यगुणा भङ्गाः २८८। तथा वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगयोर्देवेषु पुंवेदो बद्धायुष्कस्य नारकेषु नपुंसकवेदोऽस्तीति द्वावेव वेदौ। तेनात्रैते ०।६।६।४।२।२।०।२ अन्योन्यगुणा भङ्गाः ११५२। एवमसंयते सर्वजघन्यभङ्गाः १००८०।

	का०	भ०	यो०	
दशमः—	२	०	१०।२।१	४५३६० ।
	१	१	१०।२।१	
	का०	भ०	यो०	
एकादशः—	३	०	१०।२।१	
	२	१	१०।२।१	९४०८० ।
	१	२	१०।२।१	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	का०	भ०	यो०	
	४	०	१०।२।१	
द्वादशः—	३	१	१०।२।१	११७६०० ।
	२	२	१०।२।१	

	का०	भ०	यो०	
	५	०	१०।२।१	
त्रयोदशः—	४	१	१०।२।१	६४०८० ।
	३	२	१०।२।१	

	का०	भ०	यो०	
	६	०	१०।२।१	
चतुर्दशः—	५	१	१०।२।१	४७०४० ।
	४	२	१०।२।१	

	का०	भ०	यो०	
पञ्चदशः—	६	१	१०।२।१	१३४४० ।
	५	२	१०।२।१	

उत्कृष्टप्रत्ययाश्च १६ दशसु योगेष्वेते (का० ६, भ० २, यो० १०।२।१) एतेषामेते ०।६।१।४।३।२।१ अन्योन्यगुणा भङ्गाः १४४० । तथौदारिकमिश्राश्रयेण नृ-तिर्यक्षु पुंवेद एवैकोऽस्ति, तेनात्रैते ०।६।१।४।१।२।१।१ अन्योन्यगुणा भङ्गाः ४८ । तथा वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोगयोः श्वाभ्र-देवेषु षण्ढ-पुंवेदौ द्वावेव भवतस्तेनात्रैते ०।६।१।४।२।२।१।२ अन्योन्यगुणा भङ्गा १९२ । एवमेते मीलिताः असंयतस्योत्कृष्टाः १६८० ।

असंयतस्य सर्वेऽपि भङ्गा मीलिताः ४२३३६० ।

देशगुणकाराः $\frac{५।१०।१०।५।१}{१।२।३।४।५}$[1] । संयतासंयतस्यैते जघन्याः (का० १, भ० ०, यो० ९) । ०।१।१।२।१।२।०।१ मीलिताः ८ । एतेषामेते ०।६।५।४।३।२।०।९ अन्योन्यगुणा भङ्गाः ६४८० ।

	का०	भ०	यो०	
नवमः—	२	०	९	२५९२० ।
	१	१	९	

	का०	भ०	यो०	
	३	०	९	
दशमः—	२	१	९	४५३६० ।
	१	२	९	

	का०	भ०	यो०	
	४	०	९	
[illegible]	३	१	९	[illegible]
	२	२	९	

	का०	भ०	यो०	
	५	०	९	
द्वादशः—	४	१	९	२७२१६ ।
	३	२	९	

१. इग दुग तिग संजोए देसजयम्मि चउ पंच संजोए ।
पंचेव दसय दसगं पंचय एक्कं हवंति गुणगारा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	का०	भ०	यो०	
त्रयोदशः—	५	१	६	
				३०७२।
	४	२	६	

	का०	भ०	यो०	
तथोत्कृष्टाः	५	२	९	०।३।५।२।१।२।२।१। मीलिताः १४ । एषां चैते ०।६।१।४।३।२।१।६ अन्योन्यघ्ना भङ्गाः १२६६ ।

संयतासंयतस्य सर्वेऽपि भङ्गाः मीलिताः १६०७०४ ।

अशस्तवेदपाकाच्च नाहारर्द्धिः प्रजायते । पाके स्त्रीषण्ढयोस्तीर्थकृत्सत्त्वे क्षपकेऽस्ति न ॥७२॥

अनेन एतदुक्तं भवति—प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वाणामेते जघन्याः ०।०।०।१।१।२।०।१ मीलिताः ५ । एषामेते ०।०।०।४।३।२।०।६ अन्योन्यगुणा भङ्गाः २१६ । मध्यमाः ०।०।०।१।१।२।१।१ एते मीलिताः ६ । एषामेते ०।०।०।४।३।२।२।६। अन्योन्यगुणा भङ्गाः ४३२ । भय-जुगुप्सासहिता उत्कृष्टाश्चैते ०।०।०।१।१।२।२।१ मीलिताः ७ । एषामेते ०।०।०।४।३।२।१।६ अन्योन्यगुणा भङ्गाः २१६ । किन्तु प्रमत्तस्य स्त्री-नपुंसकवेदोदये सत्याहारद्वयस्योदयाभावात्पुंवेदस्यैवोदये सति तस्योदयादन्येऽपि पुंवेदभङ्गाः १६ । कथम्? उच्यते—संज्वलनाः ४ एकः पुंवेदः १ द्वे युगले २ आहारकद्वयं २ । एषामन्योन्यबंधे भङ्गाः १६ । मध्यमाः ४।१।२।२।२ अन्योन्यघ्ना भङ्गाः ३२ । उत्कृष्टाः ४।१।२।१।२ अन्योन्यघ्ना भङ्गाः १६ । एवं प्रमत्तस्य सर्वे भङ्गा मीलिता ६२८ । अप्रमत्तस्य च सर्वे भङ्गा मीलिताः ८६४ । अपूर्वस्य च सर्वे भङ्गा मीलिताः ८६४ ।

अनिवृत्तेर्जघन्येन द्वौ, उत्कर्षेण त्रयम् । कथम्? सवेदानिवृत्तेश्चतुर्णां संज्वलनानामेकतरः १ त्रिवेदानामेकतरः १ नवयोगानामेकतरः १ । एवमेते त्रयः ०।०।०।१।१।०।०।१ उत्कृष्टाः ३ । एषामेते ०।०।०।४।३।०।०।६। अन्योन्यगुणा भङ्गाः १०८।४।२।६। अन्योन्यगुणा मध्यमाः ७२।४।१।६। अन्योन्यगुणा भङ्गाः ३६ । अवेदानिवृत्तेर्जघन्याः ०।०।०।१।०।०।०।१ संज्वलनयोगावनयोरेते ०।०।०।४।०।०।०।६। अन्योन्यगुणा भङ्गाः ३६ । ३।६ अन्योन्यगुणा मध्यमाः २७।२।६ अन्योन्यगुणा भङ्गाः १८।१।६। तथा भङ्गाः ६ । सर्वे मीलिताः ३०६ ।

सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभ एकः १ । नवानां योगानामेकतरः १ । एवं द्वौ जघन्यौ उत्कृष्टौ च प्रत्ययौ । अत्र नवयोगभङ्गाः ६ ।

शान्त-क्षीणयोर्नवानां योगानामेकतरः १ इत्येको जघन्य उत्कृष्टश्च १ योगप्रत्ययोऽस्य । नव योगभङ्गाः ६ ।

सयोगस्य सप्तानां योगानामेकतरः १ । इत्येको जघन्य उत्कृष्टश्च योगप्रत्ययः । सप्तयोगभङ्गाः ७ ।

तत्प्रदोषोपघातान्तरायासादननिह्नवाः । तन्मात्सर्यं च बन्धस्य हेतवो ज्ञान दृग्धोः ॥७३॥

अस्यार्थः—तत्त्वज्ञानस्य मोक्षसाधनस्य कीर्त्तने कृते कस्यचिदनभिव्याहारतोऽन्तःपैशुन्यपरिणामः प्रदोषः । उपघातस्तु ज्ञानमज्ञानमेवेति ज्ञाननाशाभिप्रायः । ज्ञानव्यवच्छेदकरणमन्तरायः । कायेन वाचा वा परप्रकाश्यज्ञानस्य वर्जनमासादनम् । कुतश्चित्कारणान्नास्ति, न वेद्मीत्यादि ज्ञानस्य व्यपलपनवचनं निह्नवः । कुतश्चित्कारणाद्भावितमपि ज्ञानं दानार्हमपि यत्र दीयते तन्मात्सर्यमिति ।

सरागसंयमादिभ्यो भूतव्रत्यनुकम्पया । स्याद्दानात्क्षान्तितः शौचाद् बन्धः सद्वेद्यकर्मणः ॥७४॥

दुःखशोकवधाक्रन्दपरिदेवनतापतः । स्वान्योभयस्थिताद् बन्धोऽस्त्यसद्वेद्यस्य कर्मणः ॥७५॥

प्रत्यनीको भवन्नर्हत्सिद्धसाधुषु पाठके । गुरौ रत्नत्रये चापि दृष्टिमोहं समर्जयेत् ॥७६॥

केवलिश्रुतसंघानां तपोधर्मदिवौकसाम् । बध्नाति प्रत्यनीकः सन् जीवो दर्शनमोहनम् ॥७७॥

कषायोदयतस्तीव्राद्रागादिपरिणामतः । द्विभेदं परिबध्नाति जीवश्चारित्रमोहनम् ॥७८॥

मिथ्यादृग् निर्व्रतो लोभी बह्वारम्भपरिग्रहः । रौद्रचित्तो विशीलश्च नरकायुः समर्जयेत् ॥७९॥

उन्मार्गदेशको जीवः शल्यवान् मार्गनाशकः । मूढचित्तः शठो मायी तिर्यगायुः समर्जयेत् ॥८०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृत्या मन्दकोपादिर्दाता निःशीलनिर्व्रतः । प्रबध्नाति मनुष्यायुरल्पारम्भपरिग्रहः ।।८१।।
अकामनिर्जराबालतपःसद्दृष्ट्यणुव्रतैः । महाव्रतैश्च देवायुर्जीवो योग्यं समर्जयेत् ।।८२।।
मनोवाक्कायवक्रः सन् मायावी गौरवैर्युतः । अशुभं नाम बध्नाति विपरीतस्ततः शुभम् ।।८३।।
स्वप्रशंसाऽन्यनिन्दा च द्वेषश्चार्हच्छ्रुतादिषु । नीचैर्गोत्रस्य हेतुः स्यादन्यस्य तद्विपर्ययः ।।८४।।
अन्तरायस्य दानादिप्रत्यूहकरणं तथा । हेतवश्चास्रवोपेतबन्धस्तत्पूर्वको यतः ।।८५।।
अनुभागं प्रति प्रोक्तास्तत्प्रदोषादिहेतवः । नियमेन प्रदेशं तु प्रतीत्य व्यभिचारणः ।।८६।।

इति विशेषप्रत्यया बन्धास्रवयोः ।

सप्ताष्टौ वा प्रबध्नन्ति षडाद्या मिश्रकं विना । आयुषः तु विना सप्त मिश्रापूर्वानिवृत्ततः ।।८७।।
मोहायुर्भ्यां विना षट्कं सूक्ष्मो बध्नात्यतस्त्रयः । बध्नन्ति वेद्यमेवैकमयोगः स्यादबन्धकः ।।८८।।

७	७	७	७	७	७	७	७	७	६।१।१।१।०
८	८	०	८	८	८	८	०	०	

अष्टौ सप्ताथ षट् बध्नन् भुङ्क्तेऽष्टौ क्षीणशान्तकौ । सप्त मोहाद् ऋतेऽन्त्यौ द्वौ चतुष्कं घातिभिर्विना ।।८९।।

८।८।८।८।८।८।८।८।८।८। शान्तक्षीणौ ७।७। सयोगायोगौ ४।४ ।

उदीरकास्तु घातीनां तत्स्थाः मोहस्य रागिणः । वेद्यायुषोः प्रमत्तान्ता योग्यन्ता नाम-गोत्रयोः ।।९०।।

गुणेषूदीरणाः ८।८।८।८।८।८।६।६।६।६।५।५।२।० ।

अष्टावुदीरयन्त्येव प्रमत्तान्तास्त एव तु । सप्तैवावलिकाशेषे विनायुर्मिश्रवर्जिताः ।।९१।।
उदीरयन्ति चत्वारः षट्कं वेद्यायुषी विना । सूक्ष्मश्चावलिकाशेषे मोहहीनास्तु पञ्च च ।।९२।।
शान्तक्षीणौ तु पञ्चैता वेद्यायुमोहिवर्जिताः । क्षीणस्त्वावलिकाशेषे नाम-गोत्रे उदीरयेत् ।।९३।।
कर्मषट्कं विना योगी नाम-गोत्रे उदीरयेत् । वर्त्तमानोऽपि नो किञ्चिदयोगः समुदीरयेत् ।।९४।।

गुणेषूदीरणाः—													
८	८	८	८	८	८	६	६	६	६	५	५	२	०
७	७	०	७	७	७	०	०	०	५	०	२	०	०

अत्रापक्कपाचनमुदीरणेति वचनादुदयावलिकां प्रविष्टा कर्मस्थितिः नोदीर्यत इति मरणावलिकायामायुषः, सूक्ष्मे मोहस्य, क्षीणे घातित्रयस्योदीरणा नास्ति । आवलिकाशेषे चायुषि मिश्रगुणोऽपि न सम्भवति ।

भुङ्क्ते चत्वारि कर्माणि तान्यष्टावनुदीरयन् । योगहेतुं न बध्नात्ययोगः सातस्य बन्धकः ।।९५।।
योगी क्षीणोपशान्तौ च चतस्रः सप्त सप्त च । भुञ्जतेऽथ द्वयं पञ्च पञ्च चोदीरयन्त्यपि ।।९६।।
द्वयं चोदीरयेत्क्षीणः सूक्ष्मोऽष्टावनुभवंस्त्रयम् । बध्नाति षड्विधं पञ्च षड्-द्वयसौ समुदीरयेत् ।।९७।।
उदीरयन्ति षड् वाष्टौ भुञ्जते सप्तबन्धकाः । अनिवृत्तिरथापूर्वाप्रमत्त इति तत्त्रयः ।।९८।।
बध्नन्त्युदीरयन्त्यन्ये सप्ताष्टौ चाष्ट भुञ्जते । भुङ्क्तेऽष्टौ उदीरयत्यष्ट मिश्रो बध्नाति सप्त च ।।९९।।

बन्धोदयोदीरणा एकत्र तद्यथा—

बं०	७।८	७।८	७	७।८	७।८	७।८	७	७	७	६	२	२	१	०
उ०	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४
उदी०	८।७	८।७	८	७।८	८।७	८।७	६	६	६	६।५	५	५।२	२	०

अत्र प्रमत्त आयुर्बन्धमारभते, अप्रमत्तो भूत्वा समाप्तिं नयेदिति ज्ञापनार्थं सप्त कर्माणि बध्नातीत्युक्तम् ।

ज्ञान-दर्शनयो रोधौ वेद्यं मोहायुषी तथा । नामगोत्रान्तरायौ च मूलप्रकृतयोऽष्ट वै ।।१००।।
क्रमात्पञ्च नव द्वे च विंशतिश्चाष्टसंयुता । चतस्रो द्व्यधिका चत्वारिंशद् द्वे पञ्च चोत्तराः ।।१०१।।

५।९।२।२८।४।४२।२।५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्धभेदेन चेति स्युः साद्यनादिध्रुवाध्रुवाः । स्थानं[1] भुजाकृतिश्चाल्पतरोऽवस्थित ईरिता ॥१०२॥

९

अबन्धाद्बध्नतः सादिरनादिः श्रेण्यसङ्क्रमे । बन्धोऽभव्ये ध्रुवो बन्धे बन्धध्वंसेऽथवा ध्रुवम् ॥१०३॥
अल्पं बद्ध्वा भुजाकारे बहुबध्नात्यतोऽन्यथा । बध्नात्यल्पतरे बन्धे तत्तद्बध्नात्यवस्थिते ॥१०४॥

कर्मबन्ध विशेषस्य कर्तृता स्वामिता मता ।
ज्ञातव्यं नवभेदानां बन्धानामिति लक्षणम् ॥ (अमित० सं० पंच सं० ४,१०४)

कर्मषट्कस्य बन्धाः स्युः साद्यनादिध्रुवाध्रुवाः । साद्यूनास्ते हि वेदस्यायुषोऽनादिध्रुवोनिताः ॥१०५॥
चतुर्विधा ध्रुवाख्याः स्युरुत्तरप्रकृतिष्वपि । शेषाः साद्यध्रुवा बन्धे तथा सपरिवृत्तयः ॥१०६॥
दशापि ज्ञान-विघ्नस्था दृग्रोधे नव षोडश । कषाया भीजुगुप्सोपघातस्तैजसकार्मणे ॥१०७॥
मिथ्यात्वागुरुलघ्वाख्ये निर्मिद्वर्णचतुष्टयम् । ध्रुवाश्चतुर्विधा बन्धे चत्वारिंशच्च सप्तयुक् ॥१०८॥

इति ध्रुवाः ४७ ।

आहारद्वयमायूंषि चत्वार्युद्योततीर्थकृत् । परघातातपोच्छ्वासाः शेषाः साद्यध्रुवा इमाः ॥१०९॥

इत्यध्रुवाः निःप्रतिपक्षाः ११ ।

द्वे वेद्ये गतयो हास्यचतुष्कं द्वे नभोगती । षट्के संस्थान-संहत्योर्गोत्रे वैक्रियिकद्वयम् ॥११०॥
चतस्रश्चानुपूर्व्योऽपि दश युग्मानि जातयः । औदारिकद्वयं वेदा एताः सपरिवृत्तयः ॥१११॥

६२ सप्रतिपक्षा इत्यर्थः ।

बन्धे स्थानानि चत्वारि भुजाकारास्त्रयस्त्रयः । कर्मस्वल्पतरा ज्ञेयाश्चत्वारोऽष्टस्ववस्थिताः ॥११२॥

मूलप्रकृतिषु बन्धस्थानानि ८।७।६।१। भुजाकाराः १ ६ ७ / ६ ७ ८ । अल्पतराः ६ ७ ८ / १ ६ ७ ।

अवस्थिताः ८ ७ ६ १ / ८ ७ ६ १ ।

दृग्रोधे मोहने नाम्नि बन्धे त्रीणि दशाष्ट च । स्थानान्येषु भुजाकाराः शेषेषु स्थानमेककम् ॥११३॥
नव षट्कं चतुष्कं च स्थानानि त्रीणि दृग्धि । भुजाकारोऽत्र वाच्योऽल्पतरोऽवस्थित एव च ॥११४॥

बन्धस्थानानि ९।६।४। भुजाकारौ ४ ६ / ६ ९ अल्पतरौ ९ ६ / ६ ४ अवस्थिता ९ ६ ४ / ९ ६ ४ ।

दृग्रोधे नव सर्वाः षट् स्त्यानगृद्धित्रयं विना । चतस्रः प्रचला-निद्राहीनाः स्थानेष्विति त्रिषु ॥११५॥

९।६।४।

आद्यौ द्वौ नव बध्नीतो मिश्राद्याः षट् दृग्धि । अपूर्वान्ताश्चतस्रोऽत्रापूर्वाद्याः सूक्ष्मपश्चिमाः ॥११६॥

९।९।६।६।६।६।६

अपूर्वप्रथमसप्तमभागे ६ । अपूर्वद्वितीयसप्तमभागादारभ्य यावत्सूक्ष्मम् ४ ।

द्व्येकाग्रे विंशती सप्तदश बन्धे त्रयोदश । नव-पञ्च-चतुष्क-त्रिद्व्येकस्थानानि मोहने ॥११७॥

२२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१।

द्वाविंशतिः समिथ्यात्वाः कषायाः षोडशैककः । वेदो युग्मं च हास्यादिष्वेकं भयजुगुप्सने ॥११८॥

१।१६।१।२।१।१। मीलिताः २२ ।

इयमाद्ये द्वितीये तु निर्मिथ्यात्वनपुंसकाः । हीनाऽनन्तानुबन्धिस्त्रीवेदैर्मिश्रेऽथवाऽव्रते ॥११९॥

मिथ्यादृष्टौ २२ । प्रस्तारः
२
२ २ भङ्गाः ६ ।
१ १ १
१ ६
१

१. कर्मबन्धविशेषो यः स स्थानमिति कथ्यते । (अमित० सं० पंचसं० ४, १०२) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ २

सासने २१ । प्रस्तारः २ २ भङ्गाः ४ । मिश्रासंयतयोः १७ । प्रस्तारः २ २ भङ्गौ २ ।

१ १ १

१६ १२

देशे द्वितीयकोपाद्यैरूनाः षष्ठेऽपि तत्परैः[1] । अप्रमत्ते तथाऽपूर्वे शोकारतिविवर्जिताः ॥१२०॥

२ २

देशव्रते १३ । प्रस्तारः २ २ भङ्गौ २ । प्रमत्ते ६ । प्रस्तारः २ २ भङ्गौ २ । अप्रमत्तापूर्वयोः ६

१ १

८ ४

२

प्रस्तारः २ भङ्गः १ ।

१

४

बन्धे पुंवेदसंज्वालाः संज्वालाश्चानिवृत्तिके । तेऽपि क्रुन्मानमायोनाः क्रमात्स्थानानि मोहने ॥१२१॥

अनिवृत्तौ बन्धाः ५।४।३।२।१।

भङ्गाः द्वाविंशतेः षट् स्युः बन्धस्थाने ततः परे । चत्वारस्त्रिष्वतो द्वौ द्वावेकैकोऽन्येषु मोहने ॥१२२॥

६।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

अत्र त्रयो वेदभङ्गाः द्वियुगलभङ्गगुणिताः षड् भङ्गाः द्वाविंशतिस्थाने मिथ्यादृष्टौ ६ । स्त्री-पुरुषभङ्गौ द्वियुगलगुणितौ चत्वारो भङ्गा एकविंशतिस्थाने सासनस्य ४ । मिश्रासंयतयोः सप्तदश बध्नतो देशसंयतस्य त्रयोदश बध्नतः प्रमत्तस्य च नव बध्नतो द्वौ युगलभङ्गौ त्रिषु बन्धस्थानेषु २ । अप्रमत्तापूर्वकरणावरतिशोकौ न बध्नीतस्तेन नव बध्नतोरपि तयोरेकैक एव भङ्गः १ । एवमनिवृत्तौ पञ्चसु बन्धस्थानेषु ५।४।३।२।१। एकैको भङ्गः १।१।१।१।१ ।

विंशतिः स्युर्भुजाकाराः सैकाश्चाल्पतरा दश । मोहेऽवक्तव्यबन्धौ द्वौ त्रयस्त्रिंशदवस्थिताः ॥१२३॥

२०।११।२।३३।

मोहे भुजाकारः—एकं बध्नन्नधस्तादवतीर्य द्विविधं बध्नाति । तत्रैव कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नः सप्तदशविधं वा बध्नाति । एवं सर्वत्रोच्चारणीयम् ।

भुजाकाराः—

१	२	३	४	५	६	१३	१७	२१
२	३	४	५	६	१३	१७	२१	२२
१७	१७	१७	१७	१७	१७	२१	२२	
					२१	२२		
					२२			

अल्पतराः—

२२	१७	१३	६	५	४	३	२
१७	१३	६	५	४	३	२	१
१३	६	५					
६							

सूक्ष्मोपशामकोऽधस्तादवतीर्योऽनिवृत्तिर्भूत्वैकं बध्नाति । अथवा सूक्ष्मोपशामकः कालं कृत्वा देवेषू-

०

त्पन्नः सप्तदशविधं बध्नाति । अव्यक्तभुजाकारौ १ । भुजाकाराल्पतराव्यक्तसमासेनावस्थिता भवन्ति

१७

भुजाकाराः २० अल्पतराः ११ अवक्तव्यौ २ । समासेन ३३ ।

त्रिकपञ्चषडष्टाग्रा नवाग्रा विंशतिः क्रमात् । दशैकादशयुक्तैकं बन्धस्थानानि नामनि ॥१२४॥

२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ ।

---

१. तृतीयकोपाद्यैः ।

श्वभ्रतिर्यङ्नृदेवानामेकं पञ्च त्रि पञ्च तु । क्रमेण गतियुक्तानि बन्धस्थानानि नामनि ॥१२५॥

१।५।३।५।

तत्र श्वभ्रद्वयं हुण्डं निर्माणं दुर्भगास्थिरे । पञ्चेन्द्रियमनादेयं दुःस्वरं चायशोऽशुभम् ॥१२६॥
असन्नभोगतिस्तेजः कार्मणं विक्रियद्वयम् । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादि च चतुष्टयम् ॥१२७॥
इत्यष्टाविंशतिस्थानमेकं मिथ्यात्वसंयुजः । श्वभ्रत्तिपूर्णपञ्चाद्यैर्युक्तं बध्नन्ति देहिनः ॥१२८॥

भङ्गः १ ।

अत्र नरकगत्या सह वृत्त्यभावादेकाक्षविकलाक्षजातयो न बध्यन्ते ।

दशभिर्नवभिः षड्भिः पञ्चभिर्विंशतिस्त्रिभिः । युक्तस्थानानि पञ्चैव तिर्यग्गतियुतानि तु ॥१२९॥

३०।२९।२६।२५।२३ ।

तत्राद्या त्रिंशदुद्योततिर्यग्द्वितयकार्मणे । तेजः संहति-संस्थानषट्कस्यैकतरद्वयम् ॥१३०॥
नभोगतियुगस्यैकतरमौदारिकद्वयम् । वर्णाद्यगुरुलघ्वादि त्रसादि च चतुष्टयम् ॥१३१॥
स्थिरादिषड्युगेष्वेकतरं पञ्चाक्षनिर्मिती । पञ्चाक्षोद्योतपर्याप्ततिर्यग्गतियुतामिमाम् ॥१३२॥
मिथ्यादृष्टिः प्रबध्नाति बध्नात्येतां च सासनः । द्वितीयां त्रिंशतं किन्तु हुण्डासम्प्राप्तवर्जिताम् ॥१३३॥

तत्र प्रथमत्रिंशति षट्संस्थान-षट्संहनन-नभोगतियुगस्थिरादिषड्युगलानि ६।६।२।२।२।२।२।२।२ । अन्योन्याभ्यस्तानि भङ्गाः ४६०८ ।

द्वितीयत्रिंशति सासनेऽन्तिमसंस्थान-संहनने बन्धं नागच्छतस्तद्योग्यतीव्रसंक्लेशाभावात् । अतः ५।५।२।२।२।२।२।२।२ । अन्योन्याभ्यस्तानि भङ्गाः ३२०० । एते पूर्वप्रविष्टाः पुनरुक्ता इति न गृह्यन्ते ।

तत्र त्रिंशत्तृतीयेयं तिर्यग्द्वितयकार्मणे । तेजश्चौदारिकद्वन्द्वं हुण्डासम्प्राप्तदुर्भगम् ॥१३४॥
त्रसाद्यगुरुलघ्वादिवर्णादिकचतुष्टयम् । विकलत्रितयस्यैकतरं दुःस्वरमेव च ॥१३५॥
यशःस्थिरशुभद्वन्द्वत्रिकस्यैकतरत्रयम् । निर्माणं चाप्यनादेयमुद्योतोऽसन्नभोगती ॥१३६॥
बध्नात्येतां मिथ्यादृक् पर्याप्तोद्योतसंयुताम् । विकलेन्द्रियसंयुक्तां तिर्यग्गतियुतामपि ॥१३७॥

अत्र तृतीयत्रिंशति विकलेन्द्रियाणां हुण्डसंस्थानमेकमेव । तथैतेषां बन्धोदययोः दुःस्वरमेवेति । तिस्रो जातयस्त्रीणि युगलान्यन्योन्याभ्यस्तानि ३।२।२।२ । भङ्गाः २४ ।

तिस्रो हि त्रिंशतो यद्वदेकान्नत्रिंशतस्तथा । तिस्रो विशेष एतासु यदुद्योतो न विद्यते ॥१३८॥

एतासु पूर्वोक्ता भङ्गाः ४६०८।२४

षड्विंशतिरियं तत्र तिर्यग्द्वितयकार्मणे । तेज औदारिकैकाक्षे हुण्डं पर्याप्तबादरे ॥१३९॥
निर्मित्यगुरुलघ्वादिवर्णादिक चतुष्टयम् । शुभस्थिरयशोद्वन्द्वेष्वेकैकमथ दुर्भगम् ॥१४०॥
आतपोद्योतयोरेकं प्रत्येकं स्थावरं तथा ।अनादेयं च बध्नाति मिथ्यादृष्टिरिमामपि ॥१४१॥
सतिर्यग्गतिमेकाक्षपूर्णबादरसंयुताम् । तथैकतरसंयुक्तामातपोद्योतयोरपि ॥१४२॥

तत्र षड्विंशतावेकेन्द्रियेष्वङ्गोपाङ्गं नास्ति, अष्टाङ्गाभावात् । संस्थानमप्येकमेव हुण्डम् । आतपोद्योत-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशो-ऽयशोयुगानि २।२।२।२ अन्योन्यगुणानि भङ्गाः १६ ।

षड्विंशतिर्विनोद्योतातपाभ्यां पञ्चविंशतिः । तस्यैवैकतरोपेताः सूक्ष्म-प्रत्येकयुग्मयोः ॥१४३॥

अत्र प्रथमपञ्चविंशतौ सूक्ष्म-साधारणे भावनादीशानान्ता देवा न बध्नन्ति । तेन यशःकीर्त्तिं निरुध्य स्थिरास्थिरभङ्गौ शुभाशुभभङ्गाभ्यां गुणितौ ४ । अयशःकीर्त्तिं निरुध्य बादर-प्रत्येकस्थिरशुभयुगानि २।२।२।२ अन्योन्यगुणान्ययशःकीर्त्तिभङ्गाः १६ । द्वयेऽपि २० ।

पञ्चविंशतिरत्रान्या तिर्यग्द्वितयकार्मणे । पञ्चाक्षविकलाक्षैकतरमौदारिकद्वयम् ॥१४४॥
तेजोऽपर्याप्तनिर्माणे प्रत्येकागुरुलघ्वपि । उपघातायशो हुण्डास्थिरासम्प्राप्तदुर्भगम् ॥१४५॥
त्रसं स्थूलं च वर्णाद्यनादेयमशुभं त्विमाम् । सतिर्यग्गत्यपर्याप्तत्रसां बध्नाति वामदृक् ॥१४६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र द्वितीयपञ्चविंशतौ परघातोच्छ्वासविहायोगतिस्वरनाम्नामपर्याप्तेन सह बन्धो नास्ति, विरोधात्, अपर्याप्तकाले चैषामुदयाभावाच्च । अत्र चत्वारो जातिभङ्गाः ४ ।

त्रयोविंशतिरेकाक्षं तिर्यग्द्वितयकार्मणे । तेजोऽशुभं तथौदार्यदुर्भगागुरुलघ्वपि ॥१४७॥

हुण्डं वर्णचतुष्कं चोपघातमयशोऽस्थिरम् । सूक्ष्म-बादरयोरेकमेकं साधारणान्ययोः ॥१४८॥

स्थावरापूर्णनिर्माणानादेयानि च वामदृक् । सतिर्यग्गत्यपर्याप्तैकाक्षं बन्धात्यमूमपि ॥१४९॥

अत्राङ्गोपाङ्गसंहननबन्धो नास्ति, एकेन्द्रियेष्वङ्गोपाङ्गसंहननयोरुदयाभावात् । अत्र बादर-सूक्ष्मभङ्गयोः प्रत्येकसाधारणभङ्गगुणनायां चत्वारो भङ्गाः ४ ।

एवं तिर्यग्गतियुक्ताः सर्वे भङ्गाः ६३०८ ।

दशभिर्नवभिर्युक्ता विंशतिः पञ्चभिः क्रमात् । बन्धस्थानानि युक्तानि नृगत्यां त्रीणि नामनि ॥१५०॥

३०।२९।२५ ।

त्रिंशद्देशाऽत्र पञ्चाक्षं नृद्वयौदारिकद्वये । सुस्वरं सुभगादेयनाद्ये संस्थान-संहती ॥१५१॥

शुभस्थिरयशोयुग्मैकतराणि च सद्गतिः । वर्णाद्यगुरुलघ्वादित्रसादिकचतुष्टयम् ॥१५२॥

तीर्थकृत्कार्मणं तेजो निर्मिद्ध्नात्यसंयतः । एतां नृगतिपञ्चाक्षपूर्णतीर्थकरैर्युताम् ॥१५३॥

३०

अत्र प्रथमत्रिंशति दुर्भगदुःस्वरानादेयानां तीर्थकरेण सम्यक्त्वेन च सह विरोधान्न बन्धः, सुभग-सुस्वरादेयानामेव बन्धः । तेन त्रीण्येवात्र युग्मानि २।२।२ । अन्योन्यगुणानि भङ्गा ८ ।

हीना तीर्थकृता त्रिंशदेकान्नत्रिंशदस्त्यमूम् । युक्तां मनुष्यगत्याद्यैर्बध्नीतो मिश्र-निर्वृतौ ॥१५४॥

२९ ।

अत्राष्टौ भङ्गाः ८ पुनरुक्ता इति न गृहीताः, वक्ष्यमाणैकान्नत्रिंशद्भङ्गेषु प्रविष्टत्वात् ।

द्वितीयाप्येवमेकान्नत्रिंशदेकतरैरियम् । युग्मानां सुस्वरादेयसुभगानां त्रिभिर्युता ॥१५५॥

एतां संहति-संस्थानषट्कैकतरसंयुताम् । सनभोगतियुग्मैकतरां बध्नाति वामदृक् ॥१५६॥

अत्रैषां २।२।२।२।२।२।६।६।२ परस्परवधे भङ्गाः ४६०८ ।

तृतीयापि द्वितीयेव बध्नात्येतां च सासनः । त्यक्त्वा हुण्डमसम्प्राप्तं तच्छेषैकतरान्विताम् ॥१५७॥

अत्रैषां २।२।२।२।२।२।५।५।२ अन्योन्यवधे भङ्गाः ३२०० । एते पुनरुक्ता इति न गृहीताः ।

स्यात्पञ्चविंशतिरत्र मनुष्यद्विककार्मणे । तेजोऽसम्प्राप्तहुण्डानि पञ्चाक्षौदारिकद्वये ॥१५८॥

प्रत्येकागुरुलघ्वाह्वस्थूलापर्याप्तदुर्भगम् । त्रसं वर्णचतुष्कं चानादेयमयशोऽस्थिरे ॥१५९॥

निर्माणं चाशुभं चोपघातोऽमूमादिमोऽर्जयेत् । मनुष्यगत्यपर्याप्तयुजं पञ्चाक्षसंयुताम् ॥१६०॥

२५।

अत्र पञ्चविंशतौ संक्लेशेन बध्यमानापर्याप्तेन सह स्थिरादीनां विशुद्धिप्रकृतीनां बन्धो नास्ति, तेन भङ्गः १ ।

एवं मनुष्यगतेः सर्वभङ्गाः ४६१७ ।

एकत्रिंशदतस्त्रिंशन्नवाष्टाग्रे च विंशती । चत्वार्यमरगत्याऽस्मा निर्गत्येकं तु पञ्चमम् ॥१६१॥

३१।३०।२९।२८।१ ।

तत्रैकत्रिंशदेषाऽत्र देवद्वितयकार्मणे । पञ्चाक्षमाद्यसंस्थानं तेजोवैक्रियिकद्वयम् ॥१६२॥

वर्णाद्यगुरुलघ्वादि त्रसादि च चतुष्टयम् । सुभगं सुस्वरं शस्तनभोगतियशःशुभम् ॥१६३॥

स्थिराऽऽहारद्विकाऽऽदेयं निर्माणं तीर्थकृत्तथा । बध्नाति चाप्रमत्तोऽमूमपूर्वकरणस्तथा ॥१६४॥

देवगत्या च पर्याप्तपञ्चाक्षाऽऽहारकद्वयैः । युक्तं तीर्थकृता चैकत्रिंशत्स्थानमिदं भवेत् ॥१६५॥

अत्र देवगत्या सह संहननानि न बध्यन्ते, देवेषु संहनननामुदयाभावात् । अत्र भङ्गः १ ।

८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकत्रिंशद्भवेत्त्रिंशद्विना तीर्थंकरेण सा । बध्यते साऽप्रमत्तेन तथाऽपूर्वाह्वयेन च ॥१६६॥

अत्रास्थिरादीनां बन्धो न भवति, विशुद्धया सहैतेषां बन्धविरोधात् । तेनात्र भङ्गः १ ।

आहारद्वितयेऽपास्ते एकत्रिंशत्सती भवेत् । एकान्नत्रिंशदाद्येषा बध्यते सप्तमाष्टमैः ॥१६७॥

अत्रापि भङ्गः १ ।

एकान्नत्रिंशदन्यैवं परमेकं स्थिरे शुभे । यशस्यपि च बध्नन्ति निर्वृत्ताद्यास्त्रयस्तु ताम् ॥१६८॥

अत्र देवगत्या सहोद्योतो न बध्यते, देवगतौ तस्योदयाभावात् । तिर्यग्गतिं मुक्त्वाऽन्यगत्या सह तस्य बन्धविरोधः । देवानां देहदीप्तिस्तर्हि कुतः ? वर्णनामकर्मोदयात् । अत्र च त्रीणि युगानि २।२।२। भङ्गाः ८ ।

एकत्रिंशच्च निस्तीर्थंकराऽऽहारद्वया भवेत् । अष्टाविंशतिराद्यैतां बध्नीतः सप्तमाष्टमौ ॥१६९॥

अत्र भङ्गः १ पुनरुक्तः ।

अष्टाविंशतिरत्राम्यैकान्नत्रिंशद्द्वितीयके । हीना तीर्थंकरेणैतां प्रबध्नन्ति षडादिमाः ॥१७०॥

कुत एतत् ? उपरिज्ञानामप्रमत्तादीनामस्थिराशुभायशसां बन्धाभावाद् । भङ्गाः ८

एवं देवेषु भङ्गाः १९ ।

यशोऽत्रैकमपूर्वाद्ये त्रये भङ्गास्तु नामनि । चतुर्दश सहस्राणि पञ्चपञ्चाशतं विना ॥१७१॥

एवं नाम्नि सर्वे भङ्गाः १३९४५ ।

द्वाविंशतिर्भुजाकारा नामन्यल्पतराभिधाः । सन्त्येकविंशतिर्द्वौ चाव्यक्तौ सर्वेऽप्यवस्थिताः ॥१७२॥

२२।२१।२।४५।

	अपू०	मिथ्या०	मिथ्या०	मिथ्या०	अप्र०	अप्र०	अप्र०
नाम्नो भुजाकाराः—	१	२३	२५	२६	२८	२९	३०
	२८	२५	२६	२८	२९	३०	३१
	२९	२६	२८	२९	३०	३१	
	३०	२८	२९	३०	३१		
	३१	२९	३०				
		३०					

	अपू०	अपू०	अपू०	अपू०	अपू०	मि०	मि०	मि०	मि०	मि०
अल्पतराः—	३१	३०	२९	२८	३१	३०	२९	२८	२६	२५
	१	१	१	१	३०	२९	२८	२६	२५	२३
					२९	२८	२६	२५	२३	१
					२	२६	२५	२३	२	
						२५	२३	३		
						२३	४			
						५				

उपशान्तकषायोऽधस्तादवतीर्य[१] सूक्ष्मोपशामको भूत्वा यशःकीर्त्तिं बध्नाति । अथवोपशान्तकषायः कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नो मनुष्यगतिसंयुक्तां त्रिंशतमेकान्नत्रिंशतं वा बध्नाति । अव्यक्तभुजाकारा ० १ ३० ३१ । भुजाकाराल्पतराव्यक्तसमासेनावस्थिता भवन्ति ४६ । भुजाकाराः २२ । अल्पतराः २१ । अव्यक्तौ २ । अवस्थिता द्वितीयविकल्पेनाथवा ४५ ।

॥ इति स्थानबन्धः समाप्तः ॥

१. उपशमश्रेणिस्थसूक्ष्म इत्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृष्टिः प्रबध्नाति प्रकृतीः सकला अपि । हीनास्तीर्थंकरत्वेन तथाऽऽहारद्वयेन च ॥१७३॥
सम्यक्त्वं तीर्थकृत्त्वस्याऽऽहारयुग्मस्य संयमः । बन्धहेतुः प्रबध्यन्ते शेषा मिथ्यादिहेतुभिः ॥१७४॥
षोडशैव समिथ्यात्वे सासने पञ्चविंशतिः । दशाव्रते चतस्रस्तु देशे षट्कं प्रमादिनि ॥१७५॥
एकोऽतोऽतो द्वयं त्रिंशच्चतस्रोऽतोऽपि पञ्च च । सूक्ष्मे षोडश विच्छिन्ना बन्धात्सातं च योगिनि ॥१७६॥

एतास्तीर्थंकराऽऽहारद्वयोना मिथ्यादृष्टौ (१६ / ११७ / ३ / ३१) । सासने (२५ / १०१ / १९ / ४७) । सुर-नरायुर्भ्यां विना मिश्रे (० / ७४ / ४६ / ७४) । तीर्थंकरसुरनरायुर्भिः सहासंयते (१० / ७७ / ४३ / ७१) । देशे (४ / ६७ / ५३ / ८१) । प्रमत्ते (६ / ६३ / ५७ / ८५) । आहारद्विकेन सहाप्रमत्ते (१ / ५९ / ६१ / ८९) अपूर्वे सप्तसु भागेषु (२ / ५८ / ६२ / ९०) (० / ५६ / ६४ / ९२) (० / ५६ / ६४ / ९२) (० / ५६ / ६४ / ९२) (० / ५६ / ६४ / ९२) (३० / ५६ / ६४ / ९२) (४ / २६ / ९४ / १२२) । अनिवृत्तौ पञ्चसु भागेषु (१ / २२ / ९८ / १२६) (१ / २१ / ९९ / १२७) (१ / २० / १०० / १२८) (१ / १९ / १०१ / १२९) (१ / १८ / १०२ / १३०) । सूक्ष्मादिषु (१६ / १७ / १०३ / १३१) (० / १ / ११९ / १४७) (० / १ / ११९ / १४७) (१ / १ / ११९ / १४७) (० / ० / १२० / १४८) ।

मिथ्यात्वं षण्ढवेदश्च श्वभ्रायुर्निरयद्वयम् । चतस्रो जातयश्चाद्याः सूक्ष्मं साधारणातपौ ॥१७७॥
अपर्याप्तमसम्प्राप्तं स्थावरं हुण्डमेव च । षोडशेति समिथ्यात्वे विच्छिद्यन्ते हि बन्धनात् ॥१७८॥

१६ ।

स्त्यानगृद्धित्रयं तिर्यगायुराद्याः कषायकाः । तिर्यग्द्वयमनादेयं स्त्रीनीचोद्योतदुस्वराः ॥१७९॥
संस्थानस्याथ संहत्याश्चतुष्के द्वे तु मध्यमे । दुर्भगासन्नभोरीतिः सासने पञ्चविंशतिः ॥१८०॥

२५ ।

मिश्रं विहाय कोपाद्या द्वितीया आदिसंहतिः । नरायुर्नृद्वयौदार्यद्वये च दश निर्व्रते ॥१८१॥

१० ।

तृतीयमथ कोपादिचतुष्कं देशसंयते ।

४ ।

असातमरतिः शोकोऽस्थिरं चाशुभमेव च ॥१८२॥
अयशः षट् प्रमत्ताख्ये देवायुश्चाप्रमत्तके ।

६।१ ।

अपूर्वप्रथमे भागे द्वे निद्राप्रचले पुनः ॥१८३॥

२

षष्ठांशे कार्मणं तेजः पञ्चाक्षाममरद्वयम् । स्थिरं प्रथमसंस्थानं शुभं वैक्रियिकद्वयम् ॥१८४॥
त्रसाद्यगुरुलघ्वादि वर्णादिकचतुष्टयम् । सुभगं सुस्वरादेये निर्माणं सन्नभोगतिः ॥१८५॥
आहारकद्वयं तीर्थकरं त्रिंशदिमाः पुनः ।

३०

हास्यं रतिर्जुगुप्सा भीः क्षणेऽपूर्वस्य चान्तिमे ॥१८६॥

४

क्रमात्पुंवेदसंज्वालाः पञ्चांशेष्वनिवृत्तिके ।

५

सूक्ष्मेऽप्युच्चं यशो दृष्टेश्चतुष्कं ज्ञानविघ्नयोः ॥१८७॥

दशैवं षोडशास्माच्च शान्तक्षीणौ विहाय च । सयोगे सातमेकं तु बन्धः सादिरनन्तकः ॥१८८॥

१६।१

स्वाम्यम्—

गत्यादौ तत्प्रयोग्यानां सिद्धानामोघरूपतः । प्रकृतीनां हि विज्ञेयं स्वामित्वं च यथागमम् ॥१८९॥

इति प्रकृतिबन्धः समाप्तः ।

आद्यकर्मत्रिकस्यान्तरायस्यापि प्रकर्षतः । कोटीकोटयः स्फुटं त्रिंशत्सागराणां स्थितिर्भवेत् ॥१९०॥

सप्ततिर्मोहनीयस्य विंशतिर्नाम-गोत्रयोः । आयुषस्तु त्रयस्त्रिंशत्सागराणां परा स्थितिः ॥१९१॥

आयान्ति नोदयं यावत्कालेनोदीरणां विना । कर्माणवः स कालः स्यादाबाधा सप्तकर्मणाम् ॥१९२॥

सा स्याद्वर्षशतं वार्धिकोटीकोटीस्थितेरिति । स्वस्थितिप्रतिभागेनाबाधा त्रैराशिकेन तु ॥१९३॥

सप्तानां कर्मणां पूर्वकोटीत्र्यंशः पराऽऽयुषः । भवेदन्तमुहूर्त्तश्च जघन्या सर्वकर्मणाम् ॥१९४॥

इति सप्तकर्मोत्कृष्टाऽऽबाधा वर्षाणि ३००० । ३००० । ३००० । ७००० । २००० । २००० । २००० । आयुषः पूर्वकोटीत्र्यंशः $\frac{पू}{३}$ ।

आबाधोना स्थितिः कर्मनिषेकः सप्तकर्मणाम् । स्थितिरेव निजा कर्मनिषेकस्त्वायुषो मतः ॥१९५॥

अत्र निषेचनं निषेकः । आबाधोपरिस्थित्यां कर्मपरमाणुस्कन्धनिक्षेप इत्यर्थः । तत्र ज्ञानावरणीयस्य त्रीणि वर्षसहस्राण्याबाधा । तां मुक्त्वा यत्प्रथमसमये स्थितिप्रदेशाग्रं निषिक्तं तद्बहु । यद्द्वितीयसमये स्थितिप्रदेशाग्रं निषिक्तं, तद्विशेषहीनम् । यत्तृतीयसमये निषिक्तं तदपि विशेषहीनम् । एवं विशेषहीनं तावद्यावदुत्कर्षेण त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः स्वाबाधाहीनाः । एवमन्येषामपि कर्मणां स्वाबाधां मुक्त्वा कर्मनिषेका वक्तव्याः । सर्वेषां च निषेकाणां गोपुच्छाकारेणावस्थानमिति ।

ज्ञानदृग्रोधविघ्नेषु स्यात्पञ्च नव पञ्च तु । असाते च स्थितिस्त्रिंशत्कोटीकोटयो नदीशिताम् ॥१९६॥

प्र० २०—३० साग० को० ।

चत्वारिंशत्कषायाणां मिथ्यात्वस्य च सप्ततिः । सातस्त्रीनृद्वये कोटीकोटयः पञ्चदशापि च ॥१९७॥

षोडशकषायाणां १६—४० साग० को० । मिथ्यात्वे १—७० साग० को० । सातादिषु ४—१५ साग० को० ।

सागराणां त्रयस्त्रिंशच्छ्वाभ्रदेवायुषोः स्थितिः । तिर्यङ्नृणां परं चायुस्त्रिपल्योपमसम्मितम् ॥१९८॥

२—३३ साग० । २—३ पल्यो० ।

भयं शोकोऽरतिश्चैव जुगुप्सा च नपुंसकम् । नीचैर्गोत्रं तथा श्वभ्रगतिस्तिर्यग्गतिस्तयोः ॥१९९॥

आनुपूर्व्याविथैकाद्यं पञ्चाद्यं कर्म-तेजसी । औदारिकद्वयं हुण्डोद्योतौ वैक्रियिकद्वयम् ॥२००॥

वर्णागुरुत्रसादीनि चतुष्काण्यथ दुर्भगम् । असन्नभोगतिर्निर्मिदातपश्चास्थिराशुभे ॥२०१॥

असम्प्राप्तमनादेयं दुःस्वरं वायशोऽपि च । स्थावरं स्थितिरासां च कोटीकोटयो हि विंशतिः ॥२०२॥

प्रकृ० ४३ आसां स्थितिः २० साग० को० ।

हास्यं रतिर्नृवेदश्च सुस्वरं सन्नभोगतिः । देवद्विकं स्थिरादेये सुभगं च यशः शुभम् ॥२०३॥

संस्थान-संहती चाद्ये उच्चमासां परा जिनैः । सागराणां समादिष्टा कोटीकोटयो दश स्थितिः ॥२०४॥

प्रकृ० १५ । आसां स्थितिः १० साग० को० ।

द्विन्यक्षचतुरक्षेषु सूक्ष्मापर्याप्तयोस्तथा । साधारणे स्थितिः कोटीकोटयोऽष्टादश सम्मिताः ॥२०५॥

प्रकृ० ६ । १८ साग० को० ।

सन्ति द्वादश संस्थाने द्वितीये संहतावपि । चतुर्दश तु संस्थाने तृतीये संहतौ तथा ॥२०६॥

प्र० २।१२ सा० को० । प्र० २।१४ सा० को० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुर्ये संहति-संस्थाने कोटीकोट्यस्तु षोडश । संस्थाने संहतौ चापि पञ्चमेऽष्टादश स्मृताः ॥२०७॥

प्र० २।१६ सा० को० । प्र० २।१८ सा० को० ।

सम्यग्दृष्टौ भवेत्तीर्थकराऽऽहारकयुग्मयोः । अन्तर्मुहूर्त्तमाबाधाऽन्तःकोटीकोट्यपि स्थितिः ॥२०८॥

प्र० ३ । १००००००००००००००० अन्तः को० सा० ।

मुहूर्त्ता द्वादश ज्ञेया वेद्येऽष्टौ नाम-गोत्रयोः । स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तं तु जघन्या शेषकर्मसु ॥२०९॥

दशसु ज्ञान-विघ्नस्थास्वथान्ते दृक्-चतुष्टये । लोभसंज्वलने चैव स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तिका ॥२१०॥

मुहूर्त्ता द्वादशात्र स्युः सातेऽष्टावोच्चयशस्यपि (?) । क्रोधे मासद्वयं मासार्धमासौ मान-माययोः ॥२११॥

अत्र क्रोधे संज्वलने मासौ २ । माने मासः १ । मायायां पक्षः १ ।

तिर्यङ्नरायुषोरन्तर्मुहूर्त्तः श्वाभ्र-देवयोः । दशवर्षसहस्राणि पुंवेदे सरदौष्ट[1] च ॥२१२॥

असातेन युतं चाद्यं दर्शनावृतिपञ्चकम् । मिथ्यात्वं द्वादशाष्टौ च कषायाः नोकषायकाः ॥२१३॥

६।१।१२।८

त्रयः सप्त च चत्वारो द्वौ पयोधेरनुक्रमात् । सप्तभागास्तु पल्यस्यासंख्यभागोनिता स्थितिः ॥२१४॥

३ ४ ३ २
७ ७ ७ ७

तिर्यङ्-नरगतिद्वन्द्वे जातयः पञ्च चातपः । षट्के संस्थान-संहत्योरुद्योतो द्वे नभोगती ॥२१५॥

वर्णाद्यगुरुलघ्वादिचतुष्के कर्म-तैजसी । त्रसादीनि च युग्मानि नवाप्यौदारिकद्वयम् ॥२१६॥

निर्माणमयशो नीचं जघन्याऽऽसां स्थितिर्मताः । जलधेः सप्तभागौ द्वौ पल्या संख्यांशरिक्तितौ ॥२१७॥

प्रकृ० ५८ स्थितिः $\frac{२}{६}$ ।

उदधीनां सहस्रस्य सप्तांशौ द्वौ जघन्यिका । स्थितिर्वैक्रियिकषट्कस्य पल्यासंख्यांशहीनकौ ॥२१८॥

$\frac{२०००}{७}$ ।

अपूर्वक्षपके तीर्थकराऽऽहारकयुग्मयोः । जघन्यस्थितिबन्धोऽन्तःकोटीकोटी नदीशिनाम् ॥२१९॥

अत्र जघन्याऽऽबाधा सर्वत्रान्तर्मुहूर्त्तवर्त्तिनी ।

उत्कृष्टः स्यादनुत्कृष्टो जघन्यस्त्वजघन्यकः । साद्यादिभिश्चतुर्धा च स्थितिबन्धः स्वाम्येन च ॥२२०॥

६

अजघन्यश्चतुर्भेदः[2] स्थितिबन्धो हि सप्तसु[3] । साद्यध्रुवाख्ययो[4]ऽन्ये तु चत्वारोऽप्यायुषो द्विधा[5] ॥२२१॥

इति मूलप्रकृतिषु । अत उत्तरास्त्वाह—

दशके ज्ञान-विघ्नस्थे संज्वालेष्वथ दृग्बधः । चतुष्केऽष्टादशस्वेवमजघन्यश्चतुर्विधः ॥२२२॥

१८

सादयश्चाध्रुवाः शेषाश्च त्रयोऽष्टादशस्वपि । उत्कृष्टाद्यास्तु चत्वारोऽप्यन्यासु सादयोऽध्रुवाः ॥२२३॥

१०२

शुभानामशुभानां च सर्वाः स्युः स्थितयोऽशुभाः । नृतिर्यगमरायूंषि मुक्त्वाऽन्यासां तु बन्धने ॥२२४॥

उत्कृष्टः स्थितिबन्धः स्यात्संक्लेशोत्कर्षतोऽपरः । विशुद्ध्युत्कर्षतस्तिर्यङ्नृसुरायुःष्वसौ[6]ऽन्यथा ॥२२५॥

अत्र सातबन्धयोग्यः परिणामः विशुद्धिः । असातबन्धयोग्यः परिणामः संक्लेशः । तत उत्कृष्टविशुद्ध्या या स्थितिर्बध्यते सा जघन्या भवति, सर्वस्थितीनां प्रशस्तभावाभावात् । तेन संक्लेशवृद्धेः सर्वप्रकृतिस्थितीनां वृद्धिर्भवति, विशुद्धिवृद्धेस्तासामेव हानिर्भवति । उत्कृष्टस्थितौ च विशुद्धयः स्तोका

---

१. संवत्सराष्टकम् । २. साद्यनादि—ध्रुवाध्रुवाः । ३. सप्तसु कर्मसु । ४. जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाः । ५. साद्यध्रुवौ । ६. बन्धः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूत्वा गणनया वर्धमाना [तावद्] गच्छन्ति, यावज्जघन्या स्थितिः। जघन्यस्थितौ पुनः संक्लेशाः स्तोका भूत्वोपरि प्रक्षेपोत्तरक्रमेण वर्धमानाः [तावद्] गच्छन्ति, यावदुत्कृष्टा स्थितिरिति।

सर्वोत्कृष्टस्थितीनां हि मिथ्यादृष्टिस्तु बन्धकः। विमुच्याऽऽहारकं तीर्थंकरं देवायुरित्यपि ॥२२६॥
सप्रमादो हि देवायुराहारं त्वप्रमत्तकः। तीर्थंकृत्त्वं पुनर्मर्त्यः समर्जयति निर्व्रतः ॥२२७॥

४।

स्थितेरुत्कर्षका पञ्चदशानां नृ-गवादयः। देवाश्च नारकाः षण्णामीशानान्ताः सुरास्त्रिषु ॥२२८॥

१५।६।३।

श्वभ्रतिर्यङ्नरायूंषि षट्कं वैक्रियिकाह्वयम्। साधारणमपर्याप्तं सूक्ष्मं च विकलत्रिकम् ॥२२९॥
इत्यासां नर-तिर्यञ्चः सोत्कर्षां कुर्वते स्थितिम्। आतपस्थावरैकाक्षेष्वीशानान्ताः सुरास्त्रिषु॥ २३०॥
तिर्यग्द्वयमसम्प्राप्तमुद्योतौदारिकद्वये। इत्युत्कर्षस्थितेरासां देवाः श्वाभ्राश्च कुर्वते ॥२३१॥
प्रकृतीनां तु शेषाणां चतुर्गतिगताः स्थितिम्। कुर्युरुत्कृष्टसंक्लेशेनेपन्मध्यमकेन च ॥२३२॥

शेषाः प्रकृतयः ९२।

आहारकद्वयस्याप्यपूर्वस्तीर्थकृतस्तथा। अनिवृत्तिस्तु पुंस्त्वस्य चतुःसंज्वलनस्य च ॥२३३॥

३।५।

दृग्रोधस्थचतुष्कस्य दशानां ज्ञानविघ्नयोः। सातोच्चयशसां सूक्ष्मो जघन्यां कुरुते स्थितिम् ॥२३४॥

१७।

वैक्रियस्य तु षट्कस्य तामसंज्ञ्यायुषां पुनः। संज्ञ्यसंज्ञी चतुर्णां च यथास्वं कुरुते स्थितिम् ॥२३५॥

१०।

पुनरप्यासां दशानां विशेषमाह—

पर्याप्तासंज्ञिपञ्चाक्षः श्वभ्रगतिद्वयस्य तु। तद्योग्यप्राप्तसंक्लेशो जघन्यां कुरुते स्थितिम् ॥२३६॥
देवगत्यानुपूर्व्यो हि वैक्रियद्वितयस्य तु। हेतुस्तस्याः स एव स्यात्किन्तु सर्वविशुद्धिकः ॥२३७॥
श्वभ्रायुषस्तु पञ्चाक्षोऽसंज्ञी वा यदि वेतरः। मिथ्यादृक् सर्वपर्याप्तस्तथा सर्वविशुद्धिकः ॥२३८॥
एवं देवायुषः किन्तु तत्प्रायोग्येन संयुतः। संक्लेशेनात्मनो जन्तुर्जघन्यां कुरुते स्थितिम् ॥२३९॥
भोगभूमिजवर्जानां नृ-तिरश्चां तदायुषः। योग्यं संक्लेशमाप्तानां जघन्या स्थितिरिष्यते ॥२४०॥
प्रकृतीनां तु शेषाणां जघन्यां कुरुते स्थितिम्। पर्याप्तबादरैकाक्षः प्राप्तसर्वविशुद्धिकः ॥२४१॥

५

एवं स्थितिबन्धः समाप्तः।

अष्टोत्कृष्टादयः शस्ताशस्तौ संज्ञानुभागगाः। स्युः प्रत्ययविपाकौ च स्वामित्वं च चतुर्दश ॥२४२॥
घातीनामजघन्योऽस्त्यनुत्कृष्टो नाम-वेद्ययोः। गोत्रे यस्त्वजघन्यो योऽनुत्कृष्टः स चतुर्विधः ॥२४३॥
बन्धाः साद्यध्रुवाः शेषाश्चत्वारोऽप्यायुषि द्विधा। अनुभागो मतो ह्येवं मूलप्रकृतिगोचरः ॥२४४॥

अष्टोत्कृष्टानां साद्यादयो भेदाः—

* ....

अष्टानामस्त्यनुत्कृष्टोऽनुभागश्चतुरंशकः। त्रिचत्वारिंशतोऽपि स्यादजघन्यश्चतुर्विधः ॥२४५॥
अनुभागाख्यबन्धास्तु परिसृष्टास्त्रयोऽत्र ये। साद्यध्रुवप्रकारेण द्विविकल्पा भवन्ति ते ॥२४६॥
तैजसागुरुलघ्वाद्धे शस्तं वर्णचतुष्टयम्। कार्मणं निर्मिदष्टानामनुत्कृष्टश्चतुर्विधः ॥२४७॥
दृष्टिरोधे नव ज्ञाने विघ्ने च दश षोडश। कषाया भीजुगुप्से च निन्द्यं वर्णचतुष्टयम् ॥२४८॥

---

* आदर्शप्रतावेते भेदा लिखिता न सन्ति, अतः शतकगाथाङ्क ४४२ स्य संस्कृतटीकातो बोध्याः। सम्पादकः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यात्वमुपघातश्च त्रिचत्वारिंशतोऽपि हि । अजघन्यश्चतुर्भेदस्त्रयोऽन्ये सादयोऽध्रुवाः ॥२४९॥

४३ ।

प्रकृतीनां तु शेषाणामनुभागा मता जिनैः । उत्कृष्टाद्यास्तु चत्वारः साद्याः प्रत्येकमध्रुवाः ॥२५०॥

७३।

स्वमुखेनैव पच्यन्ते मूलप्रकृतयोऽपराः । स्वजातावेव मोहायुरूनाः परमुखेन च ॥२५१॥

अस्यार्थः—सर्वासां मूलप्रकृतीनां स्वमुखेनैवानुभवः उत्तरप्रकृतीनां तुल्यजातीयानां परमुखेनापि भवति । आयुर्दृक्-चारित्रमोहवर्जानाम् । उक्तञ्च—

पच्यते न मनुष्यायुर्नरकायुर्मुखेन हि । नापि चारित्रमोहाख्यं दृष्टिमोहमुखेन तु ॥२५२॥

विशुद्धया च प्रकृष्टोऽनुभागः स्याच्छुभकर्मणाम् । संक्लेशेनाशुभानां तु जघन्यस्त्वन्यथा मतः ॥२५३॥

द्विचत्वारिंशतस्तीव्रः शस्तानां स्याद्विशुद्धितः । अशस्तानां द्व्यशीतेस्त्वसुदृक् संक्लेशयोगतः ॥२५४॥

वपुःपञ्चकमायुष्कत्रिकं त्रसचतुष्टयम् । अङ्गोपाङ्गत्रिकं निर्मिदाद्ये संस्थान-संहती ॥२५५॥

परघातागुरुलघ्वाह्वे* देवद्विक-नरद्विके । सुभगोच्चस्थिरोच्छ्वासा सुस्वरं सन्नभोगतिः ॥२५६॥

पञ्चाक्षं च शुभादेये शस्तं वर्णचतुष्टयम् । यशः सातातपोद्योताः प्रशस्तातीर्थकृद्युताः ॥२५७॥

४२।

प्रशस्तास्वातपोद्योतौ नृ-तिरश्चां तथाऽऽयुषी । तीव्रा मिथ्यादृशः सन्ति शेषाः सम्यग्दृशस्तथा ॥२५८॥

औदारिकद्वयं चाद्या संहतिर्नृद्वयं तथा । सुर-नारकसद्दृष्टिः पञ्च तीव्रीकरोत्यमूम् ॥२५९॥

अप्रमत्तोऽपि देवायुर्द्विचत्वारिंशतस्ततः । शेषां द्वात्रिंशतं तीव्रां क्षपका एव कुर्वते ॥२६०॥

४।५।१।३२। मीलिताः ४२ ।

ज्ञानविघ्ने च दृग्रोधे पञ्च पञ्च नव क्रमात् । मोहे षड्विंशतिर्नीचं निन्द्यं वर्णचतुष्टयम् ॥२६१॥

श्वभ्र-तिर्यग्द्वये पञ्च संस्थानान्ययशोऽशुभम् । पञ्चसंहतयोऽसातानादेयासन्नभोगतिः ॥२६२॥

सूक्ष्मं साधारणैकाक्षे श्वभ्रायुर्विकलत्रिकम् । उपघातमपर्याप्तं स्थावरास्थिरदुःस्वरम् ॥२६३॥

दुर्भगं चाप्रशस्तेयं द्व्यशीतिर्वामदृग्युताः ।

८२।

श्वभ्र-तिर्यङ्-नरायुष्यपर्याप्तं विकलत्रिकम् ॥२६४॥

सूक्ष्म साधारणं श्वभ्रद्वयमेकादशेति याः । मिथ्यादृशो नृ-तिर्यञ्चस्तीव्रास्ताः कुर्वतेऽङ्गिनः ॥२६५॥

११।

आतपस्थावरैकाक्षं तीव्रयेद् वामदृक् सुरः । तीव्रयन्ति तथोद्योतमाश्रिताः सप्तमीं क्षितिम् ॥२६६॥

३।१।

तिर्यग्द्वयमसंप्राप्तं तिस्रस्तु प्रकृतीरिमाः । तीव्रानुभागबन्धास्तु कुर्वन्ति सुरनारकाः ॥२६७॥

३

चतुर्गतिगताः शेषाः प्रकृतीस्तीव्रयन्ति तु । जीवास्तीव्रकषायाढ्याः नियमेनासदृष्टयः ॥२६८॥

६४।

अथ शुद्धस्वामित्वमाह—

सूक्ष्मो मन्दानुभागो हि कुर्यादन्ते चतुर्दश । अनिवृत्तिः पुनः पञ्चापूर्वास्त्वेकादशापि च ॥२६९॥

१४।५।११।

ज्ञानावृद्विघ्नयोर्दृष्ट्यावृत्तेर्दश चतुष्टयम् । सूक्ष्मेऽनिवर्त्तिके पुंस्त्वं संज्वालानां चतुष्टयम् ॥२७०॥

१४।५

* अस्मिन् श्लोकपादेऽक्षराधिक्यमस्ति । सम्पादकः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हास्यं रतिर्जुगुप्सा भीर्निन्द्यं वर्णचतुष्टयम् । प्रचला चोपघाताश्च निद्रैका दश चाष्टमे ॥२७१॥

अपूर्वे ११

आहारस्याप्रमत्ताख्यः शोकारत्योः प्रमादवान् ।

२।२।

स्त्यानगृद्धित्रयं मिथ्यात्वं चानन्तानुबन्धिनः ॥२७२॥

मिथ्यादृष्टिर्द्वितीयांश्च कोपादीनप्यसंयतः । तृतीयं च कषायाणां चतुष्कं देश संयतः ॥२७३॥

८।४।४। मीलिताः १६ ।

इत्येताः प्रकृतीरेते चारित्राभिमुखास्त्रयः । मन्दानुभागबन्धा हि क्रमात्षोडश कुर्वते ॥२७४॥

१६।

सूक्ष्ममायुश्चतुष्कं च षट्कं वैक्रियिकाह्वयम् । साधारणमपर्याप्तं विकलाक्षत्रयं तथा ॥२७५॥

मिथ्यादृशो नृ-तिर्यञ्चो मन्दाः कुर्वन्ति षोडश । औदार्यद्वयमुद्योतस्तिसृश्च सुर-नारकाः ॥२७६॥

१६।३।

नीचं तिर्यग्द्वयं चेति तिसृणां कुर्वतेऽङ्गिनः । मन्दानुभागबन्धं तु सप्तमीमवनिं गताः ॥२७७॥

३।

देवमानुष्यतिर्यञ्चः स्थावरैकाक्षयोस्तथा । मन्दतां कुर्वते भावे वर्तमानास्तु मध्यमे ॥२७८॥

२।

मिथ्यादृशो हि सौधर्मदेवान्ता एकमातपम् । मर्त्यास्तीर्थकरत्वं तु मन्दीकुर्वन्त्यसंयताः ॥२७९॥

१।१।

पञ्चाक्षं कार्मणं तेजः शस्तं वर्णचतुष्टयम् । निर्मित्त्रसचतुष्कं चाथोच्छ्वासाऽगुरुलघ्वपि ॥२८०॥

परघातं च संक्लिष्टाश्चतुर्गतिगता अपि । मिथ्यादृशस्तु कुर्वन्ति मन्दाः पञ्चदशाप्यमूः ॥२८१॥

१५।

तथा मिथ्यादृशस्तीव्रविशुद्धियुतचेतसः । स्त्रीत्व-षण्ढत्वयुग्मस्य मन्दिमानं वितन्वते ॥२८२॥

२।

सद्दृष्टिरितरो चाष्टौ दुर्दृष्टिस्त्वथ विंशतिम् । मन्दयेत्परिणामेऽथ वर्तमानो हि मध्यमे ॥२८३॥

सातासाते स्थिरद्वन्द्वं शुभाशुभ-यशोऽयशः । अष्टाप्येता हि सद्दृष्टिर्वामदृष्टिश्च मन्दयेत् ॥२८४॥

८।

षट्के संस्थान-संहत्योर्नभोगतियुगं तथा । मर्त्यद्वितयमादेयमनादेयं सुरद्वयम् ॥२८५॥

दुर्भगं सुभगं चैव तथोच्चैर्गोत्रमेव च । विंशतिं त्वधिकामेव मन्दीकुर्वन्त्यसद्दृशः ॥२८६॥

२३ ।

भवन्ति सर्वघातिन्यो मिथ्यात्वं केवलावृतिः । पञ्चाद्या दृग्धोऽन्त्याश्च कषाया द्वादशादिमाः ॥२८७॥

इति बन्धे विंशतिः २० । सम्यग्मिथ्यात्वेन सहोदये एकविंशतिः २१ ।

चतस्रो ज्ञानरोधे स्युस्तिस्रो दृग्धि मोहने । संज्वाला नोकषायाश्च देशघ्न्यो विघ्नपञ्चकम् ॥२८८॥

इति बन्धे पञ्चविंशतिः २५ । सम्यक्त्वेन सहोदये षड्विंशतिः २६ । एवं घातिप्रकृतयो मीलिताः ४७ ।

नाम्नो वेद्यस्य गोत्रस्यायुषः प्रकृतयस्तु याः । अघातिन्यस्तु ताः सर्वा एकोत्तरशतप्रमाः ॥२८९॥

१०१ । इति सर्वा मीलिता १४८ ।

अघातिन्योऽपि घातिन्यः सन्त्येता घातिसंयुजः[1] । पुण्य-पापास्त्वघातिन्यः स्युःपापा घातिसंज्ञकाः ॥२९०॥

चतस्रो ज्ञानरुध्याद्याः संज्वालाः विघ्नपञ्चकम् । तिस्रो दृग्धि पुंवेद इति सप्तदशप्रमाः ॥२९१॥

१७।

१. घातिसंयुताः सन्त्यः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्विधेन भावेनैताः स्युः परिणताः सदा । शेषास्त्रिविधभावेन सप्तोत्तरशतप्रमाः ॥२९२॥
लतादार्वस्थिपाषाणैः समभावैरिमा मताः । शेषा दार्वस्थिपाषाणैः सप्तोत्तरशतप्रमाः ॥२९३॥

इति चतुर्विधभावाः १०७ ।

शुभप्रकृतिभावाः स्युर्गुडखण्डसितामृतैः । अपरे निम्बकाञ्जीरविषहालाहलैः समाः ॥२९४॥

अत्रापरे अशुभप्रकृतिभावाः ।

[1]चतुर्थात्प्रत्ययात्सातं मिथ्यात्वादपि षोडश । पञ्चाप्रासंयतात्रिंशद्बध्यन्तेऽन्याः कषायतः ॥२९५॥
सम्यक्त्वात्तीर्थकृत्त्वं चाहारकं संयमादिमे । प्रधानप्रत्यया यस्मात्तासां बन्धोऽस्ति तैर्विना ॥२९६॥

इति प्रधानहेतुनिर्देशः | अपरे त्वेवमाहुः—

मिथ्यात्वेनाथ कोपादिचतुष्कैश्च त्रिभिः क्रमात् । षोडशानां तथा पञ्चविंशतेर्दशकस्य च ॥२९७॥
चतुर्णां[2] योगतो बन्धः स्यात्सातस्य कषायतः । प्रकृतीनां तु शेषाणां तीर्थसाहारकैर्विना ॥२९८॥

अत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धव्यवच्छिन्नप्रकृतयः षोडश मिथ्यात्वोदयकारणाः ? मिथ्यात्वोदयेन विना तासां बन्धानुपलब्धेः १६ । एवमनन्तानुबन्ध्युदयकारणाः सासने पञ्चविंशतिः २५ । अप्रत्याख्यानोदयकारणाः अविरते दश १० । प्रत्याख्यानोदयनिमित्ता देशव्रते चतस्रः ४ । योगकारणं सयोगे सातम् १ । शेषाः स्वगुणसंस्थानेषु संज्वलनकषायोदयकारणाः । कुतः ? कषायोदयेन सह बन्धोपलब्धेः । ६४ । सम्यक्त्वं तीर्थकृत्त्वस्याऽऽहारयुग्मस्य संयमः[3]' बन्धहेतुरिति पूर्वमेवोक्तम् ।

शरीरपञ्चकं पञ्च वर्णाः पञ्च रसास्तथा । संस्थानषट्कमष्टौ च स्पर्शाः संहननानि षट् ॥२९९॥
अङ्गोपाङ्गत्रिकं गन्धौ निर्माणोऽगुरुलघ्वपि । प्रत्येकस्थिरयुग्मे च परघातः शुभाशुभे ॥३००॥
उपघातातपोद्योताः केषाञ्चिद्बन्धनान्यपि । संघातैः सह सन्त्येवं द्वाषष्टिः पुद्गलोदयाः ॥३०१॥

एताः पुद्गलविपाकाः वेदितव्याः । कुतः ? एतासां विपाकेन शरीरादीनां निष्पत्तेर्दर्शनात् । एवं नाम्नि पुद्गलनिबन्धना द्वापञ्चाशत् ५२ । बन्धन-संघातैः सह द्वाषष्टिः ६२ ।

ज्ञानदृग्रोधमोहान्तरायोत्था वेद्यगोत्रजा । गतयो जातयस्तीर्थकृदुच्छ्वासा नभोगती ॥३०२॥
त्रससुस्वरपर्याप्तस्थूलादेययुगानि च । यशःसुभगयुग्मे च जीवपाका इमा मताः ॥३०३॥

७८ ।

तत्र ज्ञान-दर्शनावरणे जीवविपाके । कुतः ? जीव एव तयोर्विपाकस्योपलब्धेः । मोहनीयमप्यात्मनि निबद्धमवगन्तव्यम् । कुतः ? सम्यक्त्व-चारित्रयोर्जीवगुणयोर्घातकस्वभावत्वात् । अन्तरायमपि जीवनिबद्धं वेदितव्यम् । कुतः ? घातिकर्मत्वात्, दानादीनां च विघ्नकरणे तद्व्यापारोपलब्धेः । वेदनीयमप्यात्मनिबद्धम् । कुतः ? सातासातविपाकफलयोः सुख-दुखयोर्जीवे समुपलम्भात् । गोत्रमप्यात्मनिबद्धम् । कुतः ? उच्च-नीचगोत्रयोर्जीवपर्यायत्वे दर्शनात् । गत्यादयोऽपि सप्तविंशतिर्नामप्रकृतयः आत्मनिबद्धाः । कुतः ? एतासां विपाकस्य जीव एवोपलब्धेः ।

चतस्रश्चानुपूर्व्योऽपि क्षेत्रपाका मताः जिनैः । आयूंष्यपि हि चत्वारि भवपाकानि सन्ति हि ॥३०४॥

४

तत्र चतस्र आनुपूर्व्यः क्षेत्रनिबद्धाः । कुतः ? प्रतिनियतक्षेत्र एवैतासां फलोपलब्धेः । नरकायुर्नरकभवनिबद्धम् । कुतः ? नरकभवधारणशक्तिदर्शनात् । शेषायूंष्यप्यात्मीयात्मीयभवेषु निबद्धानि, तेभ्यस्तेषां भवानामवस्थानोपलब्धेः ।

मीलिताः १४८ ।

इत्यनुभागबन्धः समाप्तः ।

---

१. योगात् । २. चतुर्णां प्रत्ययानां संयोगात् । ३. अत्रार्धश्लोकाग्रे वाक्यमस्तीति ज्ञेयम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भागाभागस्तथोत्कृष्टाद्याः स्वामित्वमेव च । दश प्रदेशबन्धे स्युर्भागाभागोऽत्र चास्त्ययम् ॥३०५॥
एकात्मपरिणामेन गृह्यमाणा हि पुद्गलाः । अष्टकर्मत्वमायान्ति ग्रभुक्तान्नरसादिवत् ॥३०६॥
एकक्षेत्रावगाढांस्तान् कर्मार्हान् सर्वदेशगान् । यथोक्तहेतून् बध्नाति जीवः सादीननादिकान् ॥३०७॥
वर्णगन्धरसैः सर्वैश्चतुःस्पर्शैश्च तद्युतम् । स्यात्सिद्धानामनन्तांशः कर्मानन्तप्रदेशकम् ॥३०८॥

अत्र शीतोष्ण-स्निग्धरूक्षाश्चत्वारः स्पर्शाः ४।

असंख्यातांशमावल्याः अपनीय ततोऽपरम् । अष्टकर्मसु तुल्यांशं दत्वाऽन्यद्विभजेदिति ॥३०९॥
बध्नतोऽष्टविधं कर्मैकैकस्मिन् समयेऽत्र ये । प्रदेशबन्धमायान्ति तेषामेतद्विभञ्जनम् ॥३१०॥
भागोऽल्पोऽत्रायुषस्तुल्यो गोत्र-नाम्नोस्ततोऽधिकः । तुल्यो वरणविघ्नेष्वधिकोऽतोऽतोऽधिमोहने ॥३११॥
सर्वोपरिमभागो हि वेदनीयेऽधिको मतः । सुख-दुःखनिमित्तत्वाच्छेषाणां स्थित्यपेक्षया ॥३१२॥
अनुत्कृष्टः प्रदेशाख्यः षण्णां बन्धश्चतुर्विधः । साद्यध्रुवाख्यः शेषाः सर्वे मोहायुषोर्द्विधा ॥३१३॥
ज्ञानावृद्विघ्नगाः सर्वाः स्त्यानगृद्धित्रयं विना । दृग्रोधे षट् जुगुप्सा भीः कषायाः द्वादशान्तिमाः ॥३१४॥
अनुत्कृष्टाश्चतुर्धाऽऽसां त्रयोऽन्ये सादयोऽध्रुवाः । शेषाणां सादयः सन्ति चत्वारोऽप्यध्रुवास्तथा ॥३१५॥

३०।९०।

मिश्रं विनाऽऽयुषो बन्धः षट्सूत्कृष्टप्रदेशतः । गुणस्थानेषु चोत्कृष्टो मोहस्य स्यान्नवस्वसौ ॥३१६॥
आयुर्मोहनवर्जानां षण्णां स्यात्कर्मणां स तु । समुत्कृष्टेन योगेन स्थाने सूक्ष्मकषायके ॥३१७॥
सप्तानां कर्मणां बन्धो जघन्योऽधमयोगिनः[1] । सूक्ष्मापूर्णनिगोतस्य (?) आयुर्बन्धे तथाऽऽयुषः ॥३१८॥
सूक्ष्मे सप्तदशानां हि पञ्चानामनिवृत्तिके । सम्यग्दृष्टौ नवानां तु स्यादुत्कृष्टप्रदेशता ॥३१९॥

१७।५।९।

पञ्च पञ्च चतस्रश्च ज्ञाने विघ्नेऽथ दृग्धि । सातमुच्चं यशः सप्तदश सूक्ष्मेऽनिवृत्तिके ॥३२०॥

१७।

पुंस्त्वं संज्वलनाः पञ्च हास्याद्याः षट् च तीर्थकृत् । निद्रा च प्रचला चैवं सम्यग्दृष्टौ हि मानवे ॥३२१॥

५।९।

द्वितीयस्य चतुष्कस्य कोपादीनामसंयते । तृतीयस्यापि देशाख्ये प्रदेशोत्कृष्टता भवेत् ॥३२२॥

४।४।

देवद्विकमथाऽऽदेयं सुभगं नृ-सुरायुषी । आद्ये संहति-संस्थाने सुस्वरं सद्भोगतिः ॥३२३॥
असातं विक्रियद्वन्द्वमिति याः स्युस्त्रयोदश । मिथ्यादृष्टौ च सद्दृष्टौ तासामुत्कृष्टदेशता ॥३२४॥

१३।

आहारकद्वयस्याथ प्रमादरहितो यतिः । शेषाणां तु स मिथ्यात्वः प्रदेशोत्कर्षणक्षमः ॥३२५॥

६६।

संज्ञी पर्याप्त उत्कृष्टयोगः स्तोकाः समर्जयन् । कुर्यात्प्रदेशमुत्कृष्टं विपरीतो जघन्यकम् ॥३२६॥
श्वभ्र-देवायुषी श्वभ्रद्वयमेतच्चतुष्टयम् । [2]विवर्तमानयोगस्त्वसंज्ञी चाऽऽहारकद्वयम् ॥३२७॥
अप्रमत्तो यतिः पञ्च तीर्थं सुरचतुष्टयम् । नयेत्सूक्ष्मनिगोतस्तु शेषाः स्वल्पप्रदेशताम् ॥३२८॥

अत्रासंज्ञी ४ । अप्रमत्तः २ । असंयतः ५ । निगोतः शेषाः १०९ ।

प्रदेश-प्रकृती बन्धौ योगात् स्थित्यनुभागकौ । कषायात्कुरुते जन्तुर्न तौ यत्र न तत्र ते ॥३२९॥
प्रकृतिः स्यात्स्वभावोऽत्र स्वभावादच्युतिः स्थितिः । तद्रसोऽप्यनुभागः स्यात्प्रदेशः स्यादियत्त्वगः[3] ॥३३०॥
प्रकृतिस्तिक्तता निम्बे तत्स्वभावाच्युतिः स्थितिः । तद्रसोऽप्यनुभागः स्यादित्येवं कर्मणामपि ॥३३१॥

---

१. जघन्ययोगस्य । २. मध्ययोगव्यवस्थितः । ३. इयत्प्रमाणं इयत्-आत्मप्रदेशप्रमाणमित्यर्थः । तस्य भाव इयत्त्वम्, तद्गच्छतीति इयत्त्वगः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालं भवमथ क्षेत्रमपेक्ष्यैवोदयो भवेत् । कर्मणां स पुनर्द्वेधा सविपाकेतरत्वतः ॥३३२॥
श्रेण्यसंख्यातभागो हि योगस्थानानि सन्ति वै । ततोऽसंख्यगुणस्त्विष्टः सर्वप्रकृतिसंग्रहः ॥३३३॥
ततोऽसंख्यगुणो ज्ञेयो विशेषः स्थितिगोचरः । स्थितेरध्यवसायानां स्थानानि तथा ततः ॥३३४॥
रसस्थानान्यपीष्टानि ततोऽसंख्यगुणानि तु । ततोऽनन्तगुणाः सन्ति प्रदेशाः कर्मगोचराः ॥३३५॥
अविभागपरिच्छेदाः सन्त्यनन्तगुणास्ततः । कथयन्त्येवमाचार्याः सिद्धान्ते सूक्ष्मबुद्धयः ॥३३६॥

[इति प्रदेशबन्धः समाप्तः]

किञ्चिद्बन्धसमासोऽयं संक्षेपेणोपवर्णितः । कर्मप्रवादपूर्वाम्भोनिधिनिष्यन्दमात्रकम् ॥३३७॥
अल्पश्रुतेन संक्षेपादुक्तो बन्धविधिर्मया । यस्तं समग्रतां नीत्वा कथयन्तु बहुश्रुताः ॥३३८॥
श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्राग्वाटवणिजा कृते । श्रीपालसुतडड्ढे [न] स्फुटार्थः पञ्चसंग्रहे ॥३३९॥

इति शतकं समाप्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्ततिकाख्यः पञ्चमः संग्रहः

वक्ष्ये सिद्धपदैर्बन्धोदयसत्प्रकृतिश्रिताम् । स्थानानां लेशमुच्चार्य (मुदृधृत्य) निष्यन्दं श्रुतवारिधेः ॥१॥
कति बध्नाति भुङ्क्ते च सत्त्वे स्थानानि वा कति । मूलोत्तरगताः सन्ति कति वा भङ्गकल्पनाः ॥२॥
अष्ट-सप्तक-षड्बन्धेष्वष्टैवोदयसत्त्वयोः । एकबन्धे त्रयो भेदा एकभेदस्त्वबन्धके ॥३॥

बं०	८	७	६
उ०	८	८	८
स०	८	८	८

एकबन्धे

बं०	१	१	१
उ०	७	७	४
स०	८	७	४

अबन्धे

बं०	०
उ०	४
स०	४

त्रयोदशसु[1] सप्ताष्टौ बन्धेऽष्टौ पाक-सत्त्वयोः । विकल्पाः संज्ञिपर्याप्ते पञ्च द्वौ केवलिद्वये ॥४॥

त्रयोदशसु जीवसमासेषु

बं०	७	८
उ०	८	८
स०	८	८

एकस्मिन् संज्ञिपर्याप्ते

बं०	८	७	६	१	१
उ०	८	८	८	७	७
स०	८	८	८	८	७

केवलिनोः

बं०	१	०
उ०	४	४
स०	४	४

गुणस्थानेषु भेदौ द्वौ षट्सु मिश्रं विनाष्टसु । एकैककर्मणां बन्धोदयसद्रूपतां प्रति ॥५॥

षट्सु मिथ्यादृष्ट्यादिषु मिश्रवर्जितेषु द्वौ भङ्गौ

बं०	८	७
उ०	८	८
स०	८	८

एकैकोऽष्टसु

	मिश्र०	अपू०	अनि०	सू०	उ०	क्षी०	स०	अ०
बं०	७	७	७	६	१	१	१	०
उ०	८	८	८	८	७	७	४	४
स०	८	८	८	८	८	७	४	४

बन्धोदयास्तिता सम्यग् मूलप्रकृतिषु स्थिताः । अभिधाय ततो वक्ष्ये उत्तरप्रकृतिश्रिताः ॥६॥
ज्ञानावृद्विघ्नयोः पञ्च पञ्च बन्धादिषु त्रिषु । शान्ते क्षीणे च निर्बन्धे पञ्चानामुदयास्तिते[2] ॥७॥

दशसु गुणस्थानेषु

बं०	५	५
उ०	५	५
स०	५	५

उपशान्त-क्षीणकषाययोः

बं०	०	०
उ०	५	५
स०	५	५

नव षट् च चतस्रश्च स्थानानि त्रीणि दृग्वृधि । बन्धे सत्त्वे च पाके तु द्वे चतस्रोऽथ पञ्चकम् ॥८॥
दृग्रोधे नव सर्वाः षट् स्त्यानगृद्धित्रयं विना । चतस्रः प्रचला-निद्राहीनाः स्युर्बन्धसत्त्वयोः ॥९॥

९।६।४

दृग्रोधस्योदये चक्षुर्दर्शनावरणादयः । चतस्रः पञ्च वा निद्रादीनामेकतरोदये ॥१०॥

४।५

नव बन्धत्रये सत्त्वे षट् चतुर्थत्वके नव । षड्वाऽबन्धे[3]ऽत्र पाकौ द्वौ चतुःसत्त्वोदयौ परे ॥११॥

बं०	९	९	६	६	४	४	४	४	०	०	०	०	०
उ०	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४
स०	९	९	९	९	९	९	६	६	९	९	६	६	४

अत्र बन्धत्रयं ९।६।४ । सर्वे मूलभङ्गाः १३ ।

---

१. जीवसमासेषु । २. उदयश्च अस्तिता च उदयास्तिते । ३. अबन्धे सत्त्वे नव षट् च ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आद्ययोर्नव षट् चातोऽपूर्वस्यांशं तु सप्तमम् । यावद्वद्ध्यतः सूक्ष्मं यावद्बन्धे चतुष्टयम् ॥१२॥

इति गुणस्थानेषु बन्धः ९।९।६।६।६।६।६।६।४।४।०।०।०।०

सत्त्वे नवोपशान्तान्ताः क्षपकेष्वनिवृत्तिके । संख्यातभागान् यावत्ताः क्षीणं यावत्ततश्च षट् ॥१३॥
चतस्रोऽन्त्यक्षणे क्षीणे चतस्रः पञ्च चोदये । क्षीणस्योपान्तिमं यावत् क्षणमन्ते चतुष्टयम् ॥१४॥

इति सप्तस्वाद्येषु गुणस्थानेषु शमकेषु क्षपकेषु चापूर्वकरणेऽनिवृत्तौ च संख्यातभागान् बहून् यावत्सत्त्वे नव ९ । ततः परमनिवृत्ति-सूक्ष्म-क्षीणक्षपकेषु सत्त्वे षट् ६ । 'चतस्रोऽन्त्यक्षणे क्षीणे' इति क्षीणे क्षीणकषायोपान्त्यक्षणश्चरमसमयस्तत्र चतस्रः सत्त्वे ४ । एवं सत्त्वे ९।९।९।९।९।९।९ । $\frac{9}{9}$ $\frac{9}{9}$|$\frac{9}{6}$ $\frac{9}{6}$ $\frac{9}{0}$

$\frac{6}{4}$ ०|० । 'चतस्रः पञ्च चोदये' इति मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायोपान्तिमसमयं यावदुदये $\frac{4}{5}$ $\frac{4}{5}$ $\frac{4}{5}$ $\frac{4}{5}$ $\frac{4}{5}$

$\frac{4}{5}$ $\frac{4}{5}$ $\frac{4}{5}$ $\frac{4}{5}$ $\frac{4}{5}$ $\frac{4}{5}$ $\frac{4}{5}$ क्षीणस्यैवान्त्यक्षणे चरमसमये चतुष्टयम् ४ । एवं मिथ्यादृष्टि-सासनयोः

९	९			६	६	
४	४	सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादिद्विविधापूर्वकरणप्रथमसप्तमभागं यावत्		४	५ ।	शेषापूर्वानिवृत्ति-
९	९			९	९	

सूक्ष्मोपशमकेषु क्षपकेषु चापूर्वकरणस्य सप्तभागेषु षट्स्वनिवृत्तेः संख्यातांशान् बहून् भागान् यावत् $\begin{matrix}4 & 4\\ 4 & 5\\ 9 & 9\end{matrix}$ ।

	४	४		०	०	
ततः परं क्षपितषोडशप्रकृतेरनिवृत्तेः शेषसंख्यातभागे सूक्ष्मक्षपके च	४	५	उपशान्ते	४	५	क्षीणे
	६	६		९	९	

०	०		०		
४	५	क्षीणचरमसमये च ।	४	एवं सर्वे १३ ।	
६	६		४		

गोत्रे स्युः सप्त वेद्येऽष्टौ भङ्गाः पञ्च तथा नव । नव पञ्चक्रमाच्छ्वभ्रतिर्यङ्नरसुरायुषाम् ॥१५॥

इति गोत्रे ७ । वेद्ये ८ । आयुषि ५।९।९।५

उच्चोच्चमुच्चनीचं च नीचोच्चं नीचनीचकम् । बन्धे पाके चतुर्थेषु सद्द्वयं सर्वनीचकम् ॥१६॥

१	१	०	०	०
१	०	१	०	०
१।०	१।०	१।०	१।०	०।०

अत्रोच्चमेकोऽङ्कः १ । नीचं शून्यः ० इति संदृष्टिः । सातासातयोरप्येषैव संदृष्टिः १।० ।
इत्याद्ये पञ्च चत्वार आद्या भङ्गास्तु सासने । द्वावाद्यौ त्रिष्वतोऽन्येषु पञ्चस्वेकस्तथाऽऽदिमः ॥१७॥

दशसु मिथ्यादृष्ट्यादिषु पञ्चानां विभागः ५।४।२।२।२।१।१।१।१।१ ।

उच्चं पाके द्वयं सत्त्वेऽबन्धकैकादशादिषु । स्यादुच्चमुदये सत्त्वे चायोगस्यान्तिमे क्षणे ॥१८॥

	०		०	
चतुर्षु	१	अयोगान्ते	१	एवं सप्त ७ ।
	१।०		१	

वेद्यस्य गोत्रवद्भङ्गाश्चत्वारः प्रथमा मताः । षट्स्वादिमेषु ते सन्ति द्वावेवाद्यौ तु सप्तसु ॥१९॥
आद्यावेव विना बन्धमयोगे द्वावुपान्तिमे । द्वौ चान्त्ये स च पाकस्थे सातेऽसाते तथाष्ट वै ॥२०॥

बं०	१	१	०	०					
उ०	१	०	१	०	१	०	०	१	एवमष्ट ८ ।
स०	१।०	१।०	१।०	१।०	१।०	१।०	०	१	

अबध्नत्युदितं सत्स्यादायुर्जीवे तु बध्नति । बध्यमानोदिते सत्त्वे बद्धे बद्धोदिते सती ॥२१॥

तिर्यङ्-मनुष्यायुषी बध्नत्सु निरयायुष उदये नारकेष्वेव पञ्च भङ्गाः—

०	२	०	३	०
१	१	१	१	१
१	१।२	१।२	१।३	१।३

अत्र नारक-तिर्यङ्-मनुष्य-देवायुषामेक-द्वि-त्रि-चतुरङ्कैः संदृष्टयः १।२।३।४ ।

एवं निरय-तिर्यङ्-मनुष्य-देवायूंषि बध्नत्सु तिर्यक्षु तिर्यगायुरुदये नव भङ्गाः—

०	१	०	२	०	३	०	४	०
२	२	२	२	२	२	२	२	२
२	२।१	२।१	२।२	२।२	२।३	२।३	२।४	२।४

एवं निरय-तिर्यङ्-मनुष्य-देवायूंषि बध्नत्सु मनुष्येषु मनुष्यायुरुदये नव भङ्गाः—

०	१	०	२	०	३	०	४	०
३	३	३	३	३	३	३	३	४
३	३।१	३।१	३।२	३।२	३।३	३।३	३।४	३।४

एवं तिर्यङ्-मनुष्यायुषी बध्नत्सु देवेषु देवायुरुदये पञ्च भङ्गाः—

०	२	०	३	०
४	४	४	४	४
४	४।२	४।२	४।३	४।३

द्व्येकाग्रे विंशती सप्तदश बन्धे त्रयोदश । नव पञ्च चतुष्कं त्रिद्व्येकं स्थानानि मोहने ॥२२॥

२२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१

द्वाविंशतिः समिथ्यात्वाः कषायाः षोडशैककः । वेदो युग्मं च हास्यादिष्वेकं भयजुगुप्सने ॥२३॥

१।१६।१।२।१।१। मीलिताः २२ ।

इयमाद्ये द्वितीये तु निर्मिथ्यात्वनपुंसकाः । हीनाऽनन्तानुबन्धिस्त्रीवेदैर्मिश्रायतानयोः ॥२४॥

मिथ्यादृष्टौ २२ । प्रस्तारः— २ / २ २ / १ १ १ / १६ / १ । सासने २१ । प्रस्तारः— २ / २ २ / १ १ / १६ । मिश्रासंयतयोः १७ ।

प्रस्तारः— २ / २ २ / १ / १२ ।

देशे द्वितीयकोपाद्यैरूना षष्ठेऽपि तत्परैः । अप्रमत्ते तथाऽपूर्वे शोकारतिविवर्जिताः ॥२५॥

देशयतौ १३ प्रस्तारः— २ / २ २ / १ / ८ । प्रमत्ते ९ । प्रस्तारः— २ / २ २ / १ / ५ । अप्रमत्तापूर्वकरणयोः ९ ।

प्रस्तारः— २ / २ / १ / ४

बन्धे पुंवेद-संज्वाला संज्वालाश्चानिवृत्तिके । तेऽप्येकद्वित्रिभिर्हीनाः कोपाद्यैः सन्ति मोहने ॥२६॥

अनिवृत्तौ ५।४।३।२।१

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

स्थानं दश नवाष्टौ च सप्त षट् पञ्च मोहने । चतुष्कं द्वयमेकं च सामान्यान्नवधोदये ॥२७॥

१०।९।८।७।६।५।४।२।१

मिथ्या क्रोधाश्च चत्वारोऽन्ये वा वेदो विकल्पतः । हास्यादियुग्मयोरेकं भीर्जुगुप्सा दशोदये ॥२८॥

मिथ्यात्वमाद्यकोपादीन् द्वितीयांस्तत्परान् त्यजेत् । भीयुगैकतरं द्वे च हासादीन् वेदगं त्रयम् ॥२९॥

अत्र श्लोकार्थः—मिथ्यात्वमेकं अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलनाख्याः चत्वारः क्रोधाः, चत्वारो वा मानाः, चतस्रो वा मायाः, चत्वारो वा लोभा इति चत्वारः कषायाः ४ । त्रिष्वेकतरो वेदः १ हास्यरती अरतिशोकाविस्येकतरं युग्मम् २ । भयं १ जुगुप्सा च १ इति दशोदयस्थानम् १० । द्वाविंशतिबन्धस्थाने मिथ्यादृष्टेः १० । अस्माच्च दशोदयस्थानात् मिथ्यात्वे त्यक्ते नवोदयस्थानमेकविंशतिबन्धस्थाने सासनस्य ९ । एतदेवानन्तानुबन्धिचतुष्कोनं शेषचतुष्कत्रयस्य त्रयः क्रोधा माना माया लोभा वा, इति त्रयः कषायाः ३ । वेदैकतरादिभिश्च पञ्चभिः सहाष्टोदयस्थानं सप्तदशबन्धस्थाने [सम्यग्मिथ्यादृष्टेः] असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च ८ । एतदेव द्वितीयकोपाद्यूनं शेषचतुष्कद्वयस्य द्वौ क्रोधौ मानौ माये लोभौ चेति द्वौ कषायौ २ । वेदैकतरादिभिश्च पञ्चभिः सह सप्तोदयस्थानं त्रयोदशबन्धस्थाने देशसंयतस्यौपशमिकसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च ७ । एतदेव तृतीयकोपाद्यूनं चतुर्णां संज्वलनानामेकतरेण वेदैकतरादिभिः पञ्चभिः सह षडुदयस्थानं नव बन्धस्थाने औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां च प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वाणाम् ६ । एतदेव भय-जुगुप्सयोरेकतरेण विना पञ्चोदयस्थानं प्रमत्तादिष्वेव । अस्य द्वौ भङ्गौ ५।५। एतदेव भय जुगुप्साभ्यां द्वाभ्यामपि हीनं प्रमत्तादीनामेव चतुरुदयस्थानम् ४ । एषाञ्चैकैकस्य दशाद्युदयस्थानस्य चतुर्भिः कषायैः त्रिभिर्वेदैः युगलाभ्यां गुणितस्य चतुर्विंशतिभङ्गाः २४ । ततः सवेदानिवृत्तौ हास्यादिभिर्विना चतुर्णां संज्वलनानामेकतरेण त्रिवेदैकतरेण च द्विकमुदयस्थानम् २ । अस्य च द्वादश भङ्गाः १२ । तथाऽनिवृत्तेरेव चतुर्विधबन्धस्थाने द्वे उदयस्थाने द्वावेकश्च । तत्राद्येऽपूर्ववद् द्वादश भङ्गाः १२ । द्वितीये चावेदानिवृत्तौ वेदैर्विना चतुर्णां संज्वलनानामेकतरेणैकमुदयस्थानम् । अस्य चत्वारो भङ्गाः ४ । त्रिविधबन्धस्थाने क्रोधवर्जत्रिसंज्वलनानामेकतरेणैकमुदयस्थानम् । अस्य त्रयो भङ्गाः ३ । द्विविधबन्धस्थाने क्रोधमानवर्जद्विसंज्वलनयोरेकतरेणैकमुदयस्थानम् । अस्य द्वौ भङ्गौ २ । एकविधबन्धके लोभसंज्वलनेनैकमुदयस्थानम् । अस्यैको भङ्गः १ । अबन्धके सूक्ष्मलोभसंज्वलनेनैकमुदयस्थानम् । एक एव भङ्गः १ ।

विंशतिस्त्वष्टसप्ताग्राः षट्चतुस्त्रिद्विकैकयुक् । तथा त्रयोदशातोऽपि द्वादशैकादशोऽप्यतः ॥३०॥

सत्त्वे पञ्च चतुस्त्रिद्व्येकं स्थानानीति मोहने । सन्ति पञ्चदशातः स्युर्भङ्गा बन्धादिगोचराः ॥३१॥

२८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

मोहे स्युः सत्तया सर्वाः विंशतिः सप्त-षड्-युताः । उद्वेल्लितेति सम्यक्त्वे सम्यग्मिथ्यात्व एव च ॥३२॥

मिथ्यादृष्टौ २८।२७।२६।

क्षपितेष्वाद्यकोपादिष्वष्टाविंशतितः पुनः । मिथ्यात्वे मिश्रके च स्युः सम्यक्त्वेऽष्टकषायके ॥३३॥

नपुंसके स्त्रियां हास्यादिषट्के पुरुषे क्रमात् । क्रोधे संज्वलने माने मायायामपराणि तु ॥३४॥

एवं शेषाणि सत्तास्थानानि २४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१ ।

भङ्गाः द्वाविंशतेः षट् स्युश्चत्वारश्चैकविंशतेः । स्थानेषु त्रिष्वतो द्वौ द्वावेकोऽतो मोहबन्धने ॥३५॥

६।४।२।२।२।१।१।१।१।१

पञ्चस्वाद्येषु बन्धेषु पञ्च पाका दशादिकाः । द्वौ परे द्विकमेको वाऽन्यत्रान्येष्वेक एव च ॥३६॥

बं०	२२	२१	१७	१३	९	अनिवृत्तौ	बं० ५	४	३	२	१	सूक्ष्मे	बं०	०
उ०	१०	९	८	७	६		उ० २	२	१	१	१		उ०	१

आद्ये[1]ऽनन्तानुबन्ध्यूनोऽन्यो[2]ऽन्यौ[3] सप्तदशेऽपि[4] तौ । मिश्र-सम्यक्त्वयुक्तौ स-सम्यक्त्वौ चोदयौ[5] द्वयोः ॥३७॥

बं०	२२	२१	१७	१३	९
उ०	१०।९	९	९।८	८।७	७।६

१. बन्धस्थाने । २. अनन्तानुबन्धिसहितः । ३. उदयभङ्गौ । ४. मिश्राविरतयोः । ५. बन्धस्थानयोः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशाऽप्येते भयेनोना जुगुप्सोना द्वयोनकाः । इत्यन्येऽप्युदया एषामेकैकस्योपरि त्रयः ॥३८॥

२२	२१			१७		१३		९
	७	७	वे०	ओ० छा०	वे०	ओ० छा०	वे०	ओ० छा०
८	८	८।८	७	६	६	५	५	४
९।९	९।९	९	८।८	७।७	७।७	६।६	६।६	५।५
१०	१०		९	८	८	७	७	६

एको दशोदयोने स्युः षडेकादश वै दश । सप्त चत्वार एकोऽत्रानिवृत्तौ द्वौ च पञ्चकम् ॥३९॥

अत्र पञ्चसु बन्धस्थानेषु दशोदयादीनां संख्याः १।६।११।१०।७।४।१। मीलिताः ४० । अनिवृत्तौ २।४। [सूक्ष्मे १ ।]

दश द्वाविंशतेर्बन्धे सप्ताद्याः उदयाः परे । नव सप्तादिकाः सप्तदशे नव षडादिकाः ॥४०॥
त्रयोदशेऽष्ट पञ्चाद्याः सप्ताऽतश्चतुरादिकाः । चत्वारिंशदिमे पाकाः बन्धस्थानेषु पञ्चसु ॥४१॥

४० ।

कषायवेदयुग्मैस्ते चतुस्त्रिद्विभिराहताः । चतुर्विंशतिभेदाः स्युः प्रत्येकमखिलोदयाः ॥४२॥

एवं पञ्चसु बन्धस्थानेषु चत्वारिंशदुदयाश्चतुर्विंशतिभङ्गगुणाः सन्त एतावन्त उदयविकल्पाः ९६० ।

भङ्गाः कषाय-वेदैः स्युर्बन्धयोर्द्वादशाद्ययोः । द्विकोदये चतुर्बन्धे चत्वारोऽन्येऽप्येकोदये ॥४३॥
बन्धत्रिके त्रिक-द्वयेकभङ्गाश्चैकोदये क्रमात् । अनिवृत्तावतः सूक्ष्मे स्यादेकः पाक-भङ्गयोः ॥४४॥

५	४	४	३	२	१		०
२	२	१	१	१	१	सूक्ष्मे	१
१२	१२	४	३	२	१		१

एवं सर्वे भङ्गा मीलिताः ३५ । पूर्वोक्तैः सहैतावन्तः ९९५ ।

पाकस्थानानि पाकस्थप्रकृतिघ्नानि ताडयेत् । स्वैर्विकल्पैश्चतुर्विंशत्याद्यैश्च पदबन्धनैः ॥४५॥
मोहप्रकृतिसंख्यायाः पदबन्धास्त एव हि । एकान्नत्रिंशदूनानि सहस्राणि तु सप्त ते ॥४६॥

६९७१ ।

अत्र दशादि-चतुरन्तानि पाकस्थानान्येतावन्ति १।६।११।१०।७।४।१ दशादिपाकस्थप्रकृतिघ्नानि १०।५४।८८।७०।४२।२०।४ मीलिताः २८८ । पुनश्चतुर्विंशतिघ्नानि ६९१२ । अनिवृत्तौ पूर्वोक्ता द्विकाद्युदयप्रकृतयः २।२।१।१।१।१। सूक्ष्मे १ । एता एभिर्भङ्गैः १२।१२।४।३।२।१।१। पूर्वोक्तैर्गुणिता एतावन्तः ६९७१ ।

आद्ये त्रीणि परे चैकं त्रिषु पञ्च च षट् परे । सप्तातोऽन्येषु चत्वारि सत्तास्थानानि बन्धने ॥४७॥

२२	२१	१७	१३	९	५	४	३	२	१	०
३	१	५	५	५	६	७	४	४	४	४

एवं सामान्येनाभिधाय विशेषेणाऽऽह—

आद्यमाद्ये त्रयं बन्धे द्वितीयेऽष्टाग्रविंशतिः । सत्तयाऽष्ट चतुस्त्रिद्वयेकाग्रात्रिष्वपि विंशतिः ॥४८॥
साऽतोऽष्टचतुरेकाग्रा त्रिद्वयेकाग्रास्तथा दश । पञ्चाग्राणि परेऽमूनि त्रिष्वतो बन्धके तथा ॥४९॥
प्रत्येकं चतुरष्टैकयुक्ता विंशतयः क्रमात् । चतुस्त्रिद्वयेकसत्कैस्ताः सत्तास्थानैश्च संयुताः ॥५०॥

द्वाविंशतिबन्धके सत्तास्थानानि २८।२७।२६। एकविंशतिबन्धके २८। सप्तदश-त्रयोदश-नवबन्धकेषु सत्तास्थानानि २८।२४।२३।२२।२१। पञ्चबन्धके २८।२४।२१।१३।१२।११। चतुर्बन्धके २८।२४।२१।१३।१२।११।५। शेषबन्धत्रिकेऽबन्धकेऽपि चत्वारि सत्तास्थानानि । तत्र त्रिबन्धके २८।२४।२१।४। द्विबन्धके २८।२४।२१।३। एकबन्धके २८।२४।२१।२ सत्तास्थानानि । अबन्धके २८।२४।२१।१।

बन्धेऽत्र नव पाकेऽपि मोहने स्थानानि दश । सत्त्वे पञ्चदशोक्त्वेति नामातो वक्ष्यते परम् ॥५१॥
त्रिक-पञ्च-षडष्टाग्रा नवाग्रा विंशतिः क्रमात् । दशैकादशयुक्तैकं बन्धस्थानानि नामनि ॥५२॥

२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१

श्वभ्रतिर्यङ्नृदेवानामेकं पञ्च त्रि पञ्च तु । क्रमेण गतियुक्तानि बन्धस्थानानि नामनि ॥५३॥

१।५।३।५

अत्र श्वभ्रद्वयं हुण्डं निर्माणं दुर्भगास्थिरे । पञ्चेन्द्रियमनादेयं दुःस्वरं चायशोऽशुभम् ॥५४॥

असन्नभोगतिस्तेजः कार्मणं वैक्रियद्वयम् । वर्णाद्यगुरुलघ्वादि त्रसादिकचतुष्टयम् ॥५५॥

इत्यष्टाविंशतिस्थानमेकं मिथ्यात्वसंयुजाम् । श्वभ्रतिपूर्णपञ्चाक्षैर्युक्तं बध्नन्ति देहिनः ॥५६॥

स्थानं २८ । भङ्गः १ । अत्र नरकगत्या सह वृत्त्यभावादेकाक्ष-विकलाक्षजातयः संहननानि च न बध्यन्ते ।

दशभिर्नवभिः षड्भिः पञ्चभिर्विंशतिस्त्रिभिः । युक्ता स्थानानि पञ्चैव तिर्यग्गतियुतानि तु ॥५७॥

३०।२९।२६।२५।२३।

तत्राद्या त्रिंशदुद्योतं तिर्यग्द्वितयकार्मणे । तेजः संहति-संस्थानषट्कस्यैकतरद्वयम् ॥५८॥

नभोगतियुगस्यैकतरमौदारिकद्वयम् । वर्णाद्यगुरुलघ्वादि-त्रसादिकचतुष्टयम् ॥५९॥

स्थिरादिषड्युगेष्वेकतरं पञ्चाक्षनिर्मिती । पञ्चाक्षोद्योतपर्याप्ततिर्यग्गतियुतामिमाम् ॥६०॥

मिथ्यादृष्टिः प्रबध्नाति बध्नात्येतां च सासनः । द्वितीयां त्रिंशतं किन्तु हुण्डासम्प्राप्तवर्जिताम् ॥६१॥

तत्र प्रथमत्रिंशति षट्संस्थान-षट्संहनननभोगतियुग-स्थिरादिषड्युगलानि च ६।६।२।२।२।२।२।२ २।अन्योन्याभ्यस्तानि भङ्गाः ४६०८ । द्वितीयत्रिंशति सासनोऽन्तिमसंस्थान-संहनने बन्धं नागच्छतः, तद्योग्यतीव्रसंक्लेशाभावात् । अतः ५।५।२।२।२।२।२।२।२। अन्योन्याभ्यस्तानि भङ्गाः ३२०० । एते पूर्व-प्रविष्टाः पुनरुक्ता इति न गृह्यन्ते ।

तत्र त्रिंशन्तृतीयेयं तिर्यग्द्वितयकार्मणे । तेजश्चौदारिकद्वन्द्वं हुण्डा सम्प्राप्तदुर्भगम् ॥६२॥

त्रसाद्यगुरुलघ्वादि-वर्णादिकचतुष्टयम् । तथा विकलजात्येकतरं दुःस्वरमेव च ॥६३॥

यशःस्थिरशुभद्वन्द्वत्रिकस्यैकतरत्रयम् । निर्माणं चाप्यनादेयमुद्योतासन्नभोगती ॥६४॥

बध्नात्येतां च मिथ्यादृक् पर्याप्तोद्योतसंयुताम् । विकलेन्द्रियसंयुक्तां तिर्यग्गतियुतामपि ॥६५॥

अत्र विकलेन्द्रियाणामेकं हुण्डसंस्थानमेव, तथैतेषां बन्धोदययोः दुःस्वरमेवेति तिस्रो जातयस्त्रीणि युगलान्यन्योन्याभ्यस्तानि ३।२।२।२। भङ्गाः २४ ।

तिस्रो हि त्रिंशतो यद्वदेकान्नत्रिंशतस्तथा । तिस्रो विशेषः सर्वासु यदुद्योतो न विद्यते ॥६६॥

एतासु पूर्वोक्तभङ्गाः ४६०८ ।

षड्विंशतिरियं तत्र तिर्यग्द्वितयकार्मणे । तेज औदारिकैकाक्षे हुण्डं पर्याप्तबादरे ॥६७॥

निर्मित्यागुरुलघ्वादि-वर्णादिकचतुष्टयम् । शुभस्थिरयशोद्वन्द्वेष्वेकैकमथ दुर्भगम् ॥६८॥

आतपोद्योतयोरेकं प्रत्येकं स्थावरं तथा । अनादेयं च बध्नाति मिथ्यादृष्टिरिमामपि ॥६९॥

सतिर्यग्गतिमेकाक्षपूर्णबादरसंयुताम् । तथैकतरसंयुक्तामातपोद्योतयोरपि ॥७०॥

अत्रैकेन्द्रियेष्वङ्गोपाङ्गं नास्त्यष्टाङ्गाभावात् । संस्थानमप्येकमेव हुण्डम् । अतः आतपोद्योतस्थिरा-स्थिरशुभाशुभायशोयशसां युगानि २।२।२।२ अन्योन्यगुणितानि भङ्गाः १६ ।

षड्विंशतिर्विनोद्योतातपाभ्यां पञ्चविंशतिः । तस्यैवैकतरोऽप्येताः सूक्ष्म-प्रत्येकयुग्मयोः ॥७१॥

अत्र सूक्ष्म-साधारणे भावनादीशानान्ता देवा न बध्नन्ति । अत्र च यशःकीर्त्तिं निरुध्य स्थिरा-स्थिरभङ्गौ शुभाशुभभङ्गाभ्यां गुणितौ ४ । अयशःकीर्त्तिं निरुध्य बादरप्रत्येकस्थिरशुभयुगानि २।२।२।२ अन्योन्यगुणितान्ययशःकीर्त्तिभङ्गाः १६ । द्वयेऽपि २० ।

पञ्चविंशतिरत्रान्या तिर्यग्द्वितयकार्मणे । पञ्चाक्ष-विकलाक्षैकतरमौदारिकद्वयम् ॥७२॥

तेजोऽपर्याप्तनिर्माणे प्रत्येकागुरुलघ्वपि । उपघातायशोहुण्डास्थिरासम्प्राप्तदुर्भगम् ॥७३॥

त्रसं वर्णादयः सूक्ष्ममनादेयाशुभैस्त्विमाम् । सतिर्यग्गत्यपर्याप्तत्रसां बध्नाति वामदृक् ॥७४॥

अत्र परघातोच्छ्वासविहायोगतिस्वरनाम्नामपर्याप्तेन सह बन्धो नास्ति, विरोधादपर्याप्तकाले चैषा-मुदयाभावाच्च । अत्र चत्वारो जातिभङ्गाः ४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयोविंशतिरेकाक्षं तिर्यग्द्वन्द्वं च कार्मणम् । तेजोऽशुभं तथौदार्यं दुर्भगागुरुलघ्वपि ॥७५॥
हुण्डं वर्णचतुष्कं चोपघातमयशोऽस्थिरम् । सूक्ष्मबादरयोरेकमेकं साधारणान्ययोः ॥७६॥
स्थावरापूर्णनिर्माणानादेयानि च वामदृक् । सतिर्यग्गतिपर्याप्तैकाक्षं बध्नात्यमूमपि ॥७७॥

अत्र संहननबन्धो नास्ति, एकेन्द्रियेषु संहननस्योदयाभावात् । अत्र बादर-सूक्ष्मभङ्गयोः प्रत्येक-साधारण-भङ्गगुणनायां चत्वारो भङ्गाः ४ ।

एवं तिर्यग्गतियुक्ताः सर्वभङ्गाः ९३०८ ।

दशभिर्नवभिर्युक्ता विंशतिः पञ्चभिः क्रमात् । बन्धस्थानानि युक्तानि नृगत्यां त्रीणि नामनि ॥७८॥

३०।२९।२५।

त्रिंशदेषाऽत्र पञ्चाक्षं नृद्वयौदारिकद्वये । सुस्वरं सुभगादेयमाद्यसंस्थान-संहती ॥७९॥
शुभस्थिरयशोयुग्मैकतराणि च सद्गतिः । वर्णाद्यगुरुलघ्वादि-त्रसादिकचतुष्टयम् ॥८०॥
तीर्थकृत्कार्मणं तेजो निर्मिद् बध्नात्यसंयतः । एतां नृगतिपञ्चाक्षपूर्णतीर्थकरैर्युताम् ॥८१॥

३० । अत्र दुर्भग-दुःस्वरानादेयानां तीर्थकरेण सम्यक्त्वेन च सह विरोधान्न बन्धः । सुभग-सुस्वरादेयानामेव बन्धस्तेन त्रीण्येव युगानि २।२।२। अन्योन्यगुणिता भङ्गाः ८ ।

हीनां तीर्थकृता त्रिंशदेकान्नत्रिंशदस्त्ययमूम् । युक्तां मनुष्यगत्याद्यैर्बध्नीतो मिश्र-निर्वृतौ ॥८२॥

२९ । अत्राष्टौ भङ्गाः ८ वक्ष्यमाणद्वितीयैकान्नत्रिंशदपेक्षया पुनरुक्ता इति न गृहीताः ।

द्वितीयाऽप्येवमेकान्नत्रिंशदेकतरैरियम् । युग्मोनां सुस्वरादेयसुभगानां त्रिभिर्युताः ॥८३॥
एतां संहति-संस्थानषट्कैकतरसंयुताम् । सन्नभोगतियुग्मैकतरां बध्नाति वामदृक् ॥८४॥

अत्रैषां २।२।२।२।२।२।२।६।६ परस्परवधे भङ्गाः ४६०८ ।

तृतीयापि द्वितीयेव बध्नात्येतां च सासनः । त्यक्त्वा हुण्डमसम्प्राप्तं तच्छेषैकतरान्विताम् ॥८५॥

अत्रैषां २।२।२।२।२।२।२।५।५ अन्योन्यवधे भङ्गाः ३२०० । एते पूर्वप्रविष्टा इति न गृहीताः ।

स्यात्पञ्चविंशतिस्तत्र मनुष्यद्विक-कार्मणे । तेजोऽसम्प्राप्तहुण्डानि पञ्चाक्षौदारिकद्विके ॥८६॥
प्रत्येकागुरुलघ्वाद्वे स्थूलापर्याप्तदुर्भगम् । त्रसं वर्णचतुष्कं चानादेयमयशोऽस्थिरे ॥८७॥
निर्माणं चाशुभं चोपघातोऽमूमादिमोऽर्जयेत् । मनुष्यगत्यपर्याप्तयुजं पञ्चाक्षसंयुताम् ॥८८॥

अत्र संक्लेशेन बध्यमानापर्याप्तेन सह स्थिरादीनां विशुद्धिप्रकृतीनां बन्धो नास्ति, तेन भङ्गः १ ।

एवं मनुष्यगतौ सर्वभङ्गाः ४६१७ ।

एकत्रिंशदतस्त्रिंशन्नवाष्टाग्रे च विंशती । चत्वार्यमरगत्यामा निर्गत्येकं तु पञ्चमम् ॥८९॥

३१।३०।२९।२८।१।

तत्रैकत्रिंशदेषात्र देवद्वितय-कार्मणे । पञ्चाक्षमाद्यसंस्थानं तेजोवैक्रियिकद्वयम् ॥९०॥
वर्णाद्यगुरुलघ्वादि-त्रसादिकचतुष्टयम् । सुभगं सुस्वरं शस्तनभोगतियशःशुभम् ॥९१॥
स्थिराहारद्विकादेयनिर्माणं तीर्थकृत्तथा । बध्नाति चाप्रमत्तोऽमूमपूर्वकरणस्तथा ॥९२॥
देवगत्याऽथ पर्याप्तपञ्चाक्षाद्याहारकद्वयैः । युक्तं तीर्थकृता चैकत्रिंशत्स्थानमिदं भवेत् ॥९३॥

अत्र देवगत्या सह संहननानि न बध्यन्ते, देवेषु संहननानामुदयाभावात् । अत्र भङ्गः १ ।

एकत्रिंशद् भवेत् त्रिंशद्धीना तीर्थकरेण सा । बध्यते चाप्रमत्तेन तथाऽपूर्वाह्वयेन च ॥९४॥

अत्रस्थिरादीनां बन्धो न भवति, विशुद्ध्या सहैतेषां बन्धविरोधात् । तेनात्र भङ्गः १ ।

आहारद्वितयेऽपास्त एकत्रिंशत्सती भवेत् । एकान्नत्रिंशदाद्यैषा बध्यते सप्तमाष्टमैः ॥९५॥

अत्रापि भङ्गः पुनरुक्तः १ ।

एकान्नत्रिंशदन्येवं परमेकं स्थिरे शुभे । यशस्यपि च बध्नन्ति निर्वृताद्यास्त्रयस्तु ताम् ॥९६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र देवगत्या सह उद्योतो न बध्यते, देवगतौ तस्योदयाभावात्, तिर्यग्गतिं मुक्त्वाऽन्यगत्या सह तस्य बन्धविरोधाच्च । देवानां देहदीप्तिस्तर्हि कुतः? वर्णनामकर्मोदयात् । अत्र च त्रीणि युगानि २।२।२ । भङ्गाः ८ ।

एकत्रिंशच्च निस्तीर्थंकराऽऽहारद्वया भवेत् । अष्टाविंशतिराद्यैतां बध्नीतः सप्तमाष्टमौ ॥९७॥

अत्र भङ्गः पुनरुक्तः १ ।

अष्टाविंशतिरत्रान्यैकान्नत्रिंशद्द्वितीयका । हीना तीर्थकरेणैतां प्रबध्नन्ति षडादिमाः ॥९८॥

कुतः ? एतदुपरिजानामप्रमत्तादीनामस्थिराशुभायशसां बन्धाभावात् । भङ्गाः ८ । एवं देवेषु भङ्गाः १९ ।

यशोऽत्रैकमपूर्वाद्ये त्रये भङ्गास्तु नामनि । चतुर्दश सहस्राणि पञ्चपञ्चाशतं विना ॥९९॥

१३९४५ ।

पाकेऽत्रैकचतुः पञ्च षट् सप्ताष्टनवाधिकाः । दशैकादशयुक्तापि विंशतिर्नव चाष्ट च ॥१००॥

नाम्नः पाके २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८।

एकपञ्चकसप्ताष्टनवयुक्ताऽत्र विंशतिः । पाकस्थानानि पञ्चैव सन्ति श्वभ्रगताविति ॥१०१॥

२१।२५।२७।२८।२९।

अत्रैकविंशतं श्वभ्रयुग्मं तैजसकार्मणे । निर्मिद्वर्णचतुष्कं च पर्याप्तागुरुलघ्वपि ॥१०२॥

अनादेयायशःस्थूलं पञ्चाद्यं दुर्भगं त्रसम् । नित्योदयचतुष्कं च स्थिरास्थिरशुभाशुभैः ॥१०३॥

विग्रहत्तिगतस्य स्यान्नारकस्योदयेऽस्य तु । जघन्यसमयं द्वौ च समयो परमोऽपि च ॥१०४॥

२,१। भङ्गः १ ।

अपश्वभ्रानुपूर्वीकमस्तीदं पाञ्चविंशतम् । युक्तं प्रत्येकहुण्डोपघातवैक्रियिकद्वयैः ॥१०५॥

अहोऽस्यात्तशरीरायत्तणादारभ्य पूर्णताम् । यावच्छरीरपर्याप्ते कालोऽत्रान्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥१०६॥

२५ । भङ्गः १ । कुतोऽत्र न संहननोदयः? नरकगत्या देवगत्या च सह संहननस्य बन्धाभावात् ।

पर्याप्ताङ्गेऽन्यघातासद्गतियुक् साप्तविंशतम् । तत्कालेऽस्य न पर्याप्तिनिष्पत्तिर्यावदस्त्यदः ॥१०७॥

२७। भङ्गः १ ।

अष्टाविंशत्तमानाप्तौ भाषापर्याप्तिपूर्णताम् । यावत्सोच्छ्वासमस्तीदं कालोऽस्यान्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥१०८॥

२८ । भङ्गः १ ।

एकान्नत्रिंशतं तत्स्याद् वाक्पर्याप्तौ सदुस्वरम् । कालस्तु जीवितान्तोऽस्यैकैको भङ्गोऽपि पञ्चसु ॥१०९॥

२९ । भङ्गः १ । एवं सर्वे ५ ।

अत्र जघन्या दशवर्षसहस्राणि, उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उभेऽप्येतेऽन्तर्मुहूर्त्तोने ।

एवं नरकगतिः समाप्ता ।

एकाग्रा विंशतिः सा च चतुरादिभिरन्विताः । एकाग्रत्रिंशतं यावत्तिर्यक्त्वे ते नवोदयाः ॥११०॥

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

पृथिवीकायिके स्थूले पूर्णाङ्गेऽस्त्यातपोदयः । तिर्यक्षूद्योतपाकोऽस्ति मुक्त्वा तेजोऽनिलाङ्गिनौ ॥१११॥

अत्र तेजोवातकायिकौ मुक्त्वाऽन्येषु बादरपर्याप्तपृथिव्यम्बुवनस्पतिषु पर्याप्तद्वित्रिचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियेषु च तिर्यक्षूद्योतोदयो भवतीत्यर्थः ।

सामान्यैकेन्द्रियस्याद्यं स्थानं पञ्चकमिष्यते । निःसाप्तविंशतं तत्स्यान्निरुद्योतातपोदये ॥११२॥

अत्र सामान्यैकेन्द्रियाणामुदयस्थानानि पञ्च २१।२४।२५।२६।२७ तेषामेवातपोद्योतयोरनुदयेनामूनि चत्वारि २१।२४।२५।२६।

आतपोद्योतपाकोनैकेन्द्रियस्यैकविंशतम् । इदं तिर्यग्द्वयं तेजोऽगुरुलघ्वथ कार्मणम् ॥११३॥

वर्णगन्धरसस्पर्शाः निर्माणं च शुभाशुभम् । स्थिरास्थिरमनादेयं स्थावरैकाक्षदुर्भगम् ॥११४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशोबादरपर्याप्तत्रियुग्मैकतरत्रयम् । वक्रतौ वर्त्तमानस्यास्त्येकद्वित्रिक्षणस्थितिः ॥११५॥
सूक्ष्मसाधारणापूर्णैः सहोदेति न यद्यशः । यशःपाकेऽस्ति तेनैको भङ्गोऽन्यत्र चतुष्टयम् ॥११६॥

२१ । अत्र भङ्गाः अयशःकीर्त्युदये बादरपर्याप्तयुग्माभ्यां चत्वारः ४ । यशःकीर्त्युदये चैकः १ । कुतः ? सूक्ष्मापर्याप्ताभ्यां सह यशःकीर्त्तेरुदयाभावात्, यशःकीर्त्या च सह सूक्ष्मापर्याप्तयोरुदयाभावाद् वा । सर्वे भङ्गाः ५ ।

चातुर्विंशतमस्तीदं स्वानुपूर्व्योनमागते[1] । हुण्डे प्रत्येकयुग्मैकतरे चौदारिकेऽपि च ॥११७॥
उपघाते गृहीताङ्गस्याङ्गपर्याप्तिपूर्णताम् । यावद्भङ्गा नवास्यान्तर्मुहूर्त्तश्च द्विधा स्थितिः ॥११८॥

२४ । अत्राप्ययशःकीर्त्युदये बादरपर्याप्तप्रत्येकयुग्मैरष्टौ भङ्गाः ८ । यशःकीर्त्युदये चैकः १ । कुतः ? यशःकीर्त्या सह सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानामुदयाभावात् । सर्वे नव ९ ।

सान्यघातमपूर्णोनं स्यादेतत्पाञ्चविंशतम् । तत्कालं पञ्चधा यावदानपर्याप्तिनिष्ठितम् ॥११९॥

२५ । अत्र भङ्गाः अयशःकीर्त्युदये चत्वारः ४ । कुतः ? अपर्याप्तोदयस्याभावात् । यशःकीर्त्युदये चैकः १ । सर्वे ५ ।

षोड्विंशतं तदानाप्तौ सोच्छ्वासं पञ्चभङ्गयुक् । स्यादस्याब्दसहस्राणि स्थितिर्द्वाविंशतिः परा ॥१२०॥

२६ । भङ्गाः ५ । स्थितिः २२००० । एवं सर्वे भङ्गाः २४ ।

एकाक्षे पञ्चधोक्तं यत्स्थानं तत्पाञ्चविंशतम् । विनैकाक्षे चतुर्धा स्यादातपोद्योतवेदने ॥१२१॥

२१।२४।२६।२७ ।

एकाक्षे सातपोद्योते चतुरेकाग्रविंशती । पूर्वोक्ते किन्तु पर्याप्तसूक्ष्मसाधारणोज्झिते ॥१२२॥

२१।२४ । अनयोः सूक्ष्मपर्याप्तोना एकविंशतिः २१ । साधारणोना चतुर्विंशतिः २४ । कुतः ? आतपोद्योतोदयभाविनां सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणशरीराणामुदयाभावाद् यशोयुग्मैकतरम् । भङ्गौ चात्र द्वौ द्वौ पुनरुक्तौ २।२ ।

पर्याप्तस्याङ्गपर्याप्त्या स्यात् षाड्विंशतं त्विदम् । आतपोद्योतयोरेकतरे क्षिप्तेऽन्यघातयुक् ॥१२३॥

२६ । अस्योत्कृष्टजघन्या स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तगा भङ्गाः ४ ।

स्यात्तदेवानपर्याप्तौ सोच्छ्वासं साप्तविंशतम् । तच्चैतच्चतुर्भङ्गकालोऽस्य प्राणितावधिः ॥१२४॥

२७ । अत्रोत्कृष्टा द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि स्थितिः २२००० । भङ्गाः ४ । एवमेकेन्द्रियस्य सर्वे-भङ्गाः ३२ ।

स्थानान्येकषडष्टाग्रा नवाग्रा चैकविंशतिः । त्रिंशत्सैकाधिका पाके सामान्यादिकलेषु षट् ॥१२५॥

२१।२६।२८।२९।३०।३१

एतान्येव निरुद्योते सन्त्येकत्रिंशतं विना । सोद्योते तु विनाऽष्टाग्रविंशतिं तानि सन्ति हि ॥१२६॥

उद्योतोदयरहिते विकले २१।२६।२८।२९।३०।३१ । उद्योतोदययुक्ते विकले २१।२६।२९। ३०।३१ ।

अनुद्योतोदयस्यादौ द्वीन्द्रियस्यैकविंशतम् । द्व्यक्षं तिर्यग्द्वयं वर्णचतुष्कं त्रसकार्मणे ॥१२७॥
शुभस्थिरयुगे तेजोऽनादेयागुरुलघ्वपि । स्थूलमेकतरे च द्वे यशःपर्याप्तयुग्मयोः ॥१२८॥
निर्माणं दुर्भगं वक्रत्ताविकद्विक्षणस्थितिः । यशःकीर्त्युदये भङ्गोऽत्रैको द्वापरत्र तु ॥१२९॥

२१ । अत्र यशःकीर्त्युदये एको भङ्ग १ । कुतः ? अपर्याप्तोदयेन सह यशःकीर्त्तेरुदयाभावात् । अयशःकीर्त्युदये द्वौ भङ्गौ । कुतः ? पर्याप्तापर्याप्ताभ्यां सहायशःकीर्त्युदयसम्भवात् । भङ्गाः ३ ।

प्रत्येकौदार्ययुग्मोपघातासम्प्राप्तहुण्डयुक् । इदं गृहीतकायाद्यक्षणे षाड्विंशतं भवेत् ॥१३०॥
अपनीतानुपूर्वीकं यावत्कायस्य पूर्णताम् । भङ्गास्त्रयोऽस्य कालोऽन्तर्मुहूर्त्तोऽस्ति द्विधा स्थितौ ॥१३१॥

२६ । भङ्गाः ३ ।

---

१. आगते सति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्ताङ्गेऽस्त्यपूर्णोनं तदेवाष्टाग्रत्रिंशतम् । तत्कालमन्यघातासद्गतियुक्तं द्विभङ्गयुक् ॥१३२॥

२८ । अत्रायशःकीर्त्युदये एको भङ्गः १ । यशःकीर्त्युदये एको भङ्गः १ । अयशःकीर्त्युदयेऽप्येकः कुतः ? प्रतिपक्षप्रकृत्युदयाभावात् । मिलितौ भङ्गौ २ ।

पर्याप्तानस्य सोच्छ्वासमेकान्नत्रिंशतं भवेत् । यावद्भावपूर्णतां कालोऽन्तर्मुहूर्तो द्विभङ्गयुक् ॥१३३॥

२९। भङ्गौ २।

स्थानं त्रिंशतमेतत्स्याद्भाषापर्याप्तौ सदुःस्वरम् । जीवितान्ता परा चास्य वर्षाणि द्वादश स्थितिः ॥१३४॥

३०।भङ्गौ २ । स्थितिर्जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेण द्वादश वर्षाणि ।

उद्योतोदयभाग्द्वयन्ते षडेकाग्रे च विंशती । स्यातां पूर्वोदिते किन्तु नास्त्यपर्याप्तकेऽन्तयोः ॥१३५॥

२१।२६। अत्र पुनरुक्तौ भङ्गौ द्वौ द्वौ २।२।

सोद्योताशस्तगत्यन्यघातं षाड्विंशतं भवेत् । एकान्नत्रिंशतं पूर्णाङ्गेऽन्तकालं द्विभङ्गयुक् ॥१३६॥

२९।भङ्गौ २।

सोच्छ्वासमानपर्याप्त्यपर्याप्ते त्रिंशतं त्वदः । यावद्भावपूर्णतां कालोऽन्तर्मुहूर्तो द्विभेदकः ॥१३७॥

३०।भङ्गौ २ ।

एकाग्रत्रिंशतं तत्स्याद्भाषापर्याप्तौ सदुःस्वरम् । द्विभेदं परमा चास्य स्थितिर्द्वादशवार्षिकी ॥१३८॥

३१। भङ्गौ द्वौ २। सर्वे भङ्गाः १८।

एवं द्व्यक्षगताः भङ्गाः सन्त्यष्टादश मीलिताः । द्व्यक्षवत्स्थानभङ्गादि सर्वं त्रि-चतुरक्षयोः ॥१३९॥

त्रीन्द्रिये त्रिंशदेकाग्रत्रिंशतोऽस्य परा स्थितिः । दिनान्येकान्नपञ्चाशत्षण्मासाश्चतुरिन्द्रिये ॥१४०॥

अत्र त्रीन्द्रियस्य निरुद्योत-सोद्योतस्थानयोः ३०।३१ स्थितिस्त्र्यक्षे दिवसाः ४९ । सर्वे च भङ्गाः अष्टादश १८ । चतुरिन्द्रिये चतुःस्थानयोः ३०।३१। स्थितिश्चतुरक्षे मासाः ६ । सर्वे च भङ्गाः १८ । एवं त्रिषु विकलेन्द्रियेषु सर्वे भङ्गाः ५४ ।

तिर्यक्पञ्चेन्द्रिये पाकाः षडोघा[1] द्विंशतियुताः । एकषट्काष्टकैरंस्त्रैस्त्रिंशच्चैकोत्तरा त्रसाः ॥१४१॥

२१।२६।२८।२९।३०।३१।

अनुद्योतोदये स्थानान्येकाग्रत्रिंशतं विना । उद्योतभाजि पञ्चाक्षे सन्त्यष्टाविंशतिं विना ॥१४२॥

उद्योतोदयरहिते पञ्चाक्षे २१।२६।२८।२९।३०।३१ । सोद्योतोदये च २१।२६।२९।३०।३१ ।

अनुद्योतोदयेऽस्तीदं पञ्चाक्षे चैकविंशतम् । तिर्यग्द्वयं च पञ्चाक्षं तेजोऽगुरुलघु त्रसम् ॥१४३॥

निर्माणं सुभगादेययशःपर्याप्तनामसु । युग्मे चैकतरं वर्णचतुष्कं स्थूलकार्मणे ॥१४४॥

शुभस्थिरयुगे वक्रर्तावेकद्वित्रिक्षणस्थितिः । भङ्गाः पर्याप्तपाकेऽष्टावेकोऽन्यत्रोभये न च ॥१४५॥

२१ । अत्र पर्याप्तोदये अष्टौ भङ्गाः ८ । अपर्याप्तोदये चैकः १ । कुतः ? सुभगादेययशःकीर्तिभिः सह अपर्याप्तोदयस्याभावात् ।९।

इदमेवानुपूर्व्यूनं क्षिप्ते षाड्विंशतं भवेत् । संस्थान-संहतिष्वेकतर औदारिकद्वये ॥१४६॥

प्रत्येक उपघाते च गृहीतवपुषस्त्विदम् । पर्याप्तिं यावदङ्गस्य पर्याप्तस्योदयेऽत्र च ॥१४७॥

भङ्गाः शतद्वयं साष्टाशीतमेकोऽपरत्र च । कालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तोऽस्य जघन्यः परमस्तथा ॥१४८॥

२६ । अत्र पर्याप्तोदये त्रिभियुग्मैः संस्थानैः संहननैश्च षड्भिः २।२।२।६।६ अन्योन्यगुणैर्भङ्गाः २८८ । अपर्याप्तोदये चैकः १ । कुतः ? शुभैः सहापर्याप्तस्योदयाभावात् । उक्तं च—

अयशःकीर्त्यनादेयहुण्डासम्प्राप्तदुर्भगम् । उदयं यात्यपर्याप्ते पर्याप्ते वितरैः सह ॥१४९॥

एवं सर्वे २८९ ।

अष्टाविंशतमेतत्स्यादपर्याप्तोनमागते । [2]खेत्योरन्यतरे वान्यघाते पूर्णतनोरिदम् ॥१५०॥

---

१. सामान्यात् । २. विहायोगत्योः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतानि पञ्चभङ्गानां षट्सप्ततियुतानि तु । कालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तोऽत्र जघन्यः परमोऽपि च ॥१५१॥

२८ । अत्र पूर्वोक्ता एव २८८ विहायोगतियुग्मघ्ना भङ्गाः ५७६ ।

आनपर्याप्तिपर्याप्तस्यैकान्नत्रिंशतं त्वदः । सोच्छ्वासमस्ति तत्कालं भङ्गाश्चापि तथाविधाः ॥१५२॥

२९ । भङ्गाः ५७६ ।

वाक्पूर्णे त्रैंशतं तत्स्यात्स्वरैकतरसंयुतम् । भङ्गास्तद्द्विगुणाः पल्यत्रयमस्य स्थितिः परा ॥१५३॥

३० । अत्र पूर्वोक्ता एव ५७६ स्वरयुगलघ्ना भङ्गाः ११५२ । एवमुद्योतोदयरहिते पञ्चाक्षे सर्वे भङ्गाः २६०२ ।

सोद्योतोदयपञ्चाक्षौ षडेकाग्रे तु विंशती । स्यातां पूर्वोदिते किन्तु नास्त्यपर्याप्तकं तयोः ॥१५४॥

२१।२६ । अत्र पुनरुक्तभङ्गाः ८।२८८ ।

षाड्विंशतं तदेकाग्रत्रिंशतं देहनिर्मितौ । स्वगत्यन्यतरोद्योतपरघातैर्युतं भवेत् ॥१५५॥

शतानि पञ्च भङ्गानामस्य षट्सप्ततिस्तथा । उत्कृष्टोऽस्य जघन्यश्च कालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥१५६॥

२९ । भङ्गाः ५७६ ।

पर्याप्तस्यानपर्याप्त्या सोच्छ्वासं त्रैंशतं त्वदः । कालोऽप्यस्यास्ति पूर्वोक्तो भङ्गास्तावन्त एव च ॥१५७॥

३० । भङ्गाः ५७५ ।

एकत्रिंशतमेतत्स्यात्स्वरैकतरसंयुतम् । वाक्पूर्णे द्विगुणा भङ्गा कालोऽस्य प्राणितावधिः ॥१५८॥

३१ । भङ्गाः ११५२ । कालः पल्यत्रयम् ३ । एवं सोद्योते पञ्चाक्षे सर्वे भङ्गाः २३०४ । [निरुद्योते २६०२ ।] एवं पञ्चाक्षे सर्वे भङ्गाः ४९०६ ।

सहस्राणि तु चत्वारि भङ्गाः नव शतानि तु । द्वानवत्युत्तराणि स्युः सर्वे तिर्यग्गतौ गताः ॥१५९॥

४९९२ ।

एवं तिर्यग्गति-[भङ्गाः] समाप्ताः ।

नरगत्या समेताः स्युः सर्वे पाका नृणामपि । चतुर्विंशतिपाकोनाः शेषाः सन्ति दशैव ते ॥१६०॥

२१।२५।२६।२८।२९।३०।३१।९।८ ।

पाकस्थानानि यानि स्युर्निरुद्योतेषु पञ्च तु । पञ्चेन्द्रियेषु तिर्यक्षु तानि सामान्यनृष्वपि ॥१६१॥

२१।२६।२८।२९।३० ।

तिर्यग्द्वयप्रसङ्गे तु वाच्यं तत्रास्ति नृद्वयम् । भङ्गास्तद्द्विकाग्राणि षाड्विंशतिशतानि तु ॥१६२॥

२६०२ ।

तथापि सुखबोधार्थमुच्यते—

अपतीर्थंकराहारे नरोदं त्वैकत्रिंशतम् । मनुजद्वय-पञ्चाक्ष-तेजोऽगुरुलघुत्रसम् ॥१६३॥

निर्माणं सुभगादेययशःपर्याप्तनामसु । युग्मेष्वेकतरं वर्णचतुष्कं स्थूल-कार्मणे ॥१६४॥

शुभस्थिरयुगे वक्रर्त्तावेक-द्विक्षणस्थितिः । भङ्गाः पर्याप्तपाकेऽष्ट चैकोऽन्यत्रोभये नव ॥१६५॥

२१ । अत्र पर्याप्तोदयेऽप्यष्टौ ८ । अपर्याप्तोदये चैकः १ । उभये नव ९ ।

इदमेवानुपूर्व्यूनं क्षिप्ते षाड्विंशतं भवेत् । संस्थान-संहतिष्वेकतरे औदारिकद्वये ॥१६६॥

प्रत्येके उपघाते च गृहीतवपुषस्त्विदम् । पर्याप्तिं यावदङ्गस्य पर्याप्तस्योदयेऽत्र च ॥१६७॥

भङ्गाः शतद्वयं चाष्टाशीतं चैकोऽपरत्र च । कालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तोऽस्य जघन्यः परमोऽपि च ॥१६८॥

अयशःकीर्त्यनादेयहुण्डासम्प्राप्तदुर्भगम् । उदयं यान्त्यपर्याप्ते पर्याप्ते त्वितरैः सह ॥१६९॥

२६ । इत्यपर्याप्तोदये भङ्गः १ । पर्याप्तोदये २८८ । सर्वे २८९ ।

अष्टाविंशतमेतत्स्यादपर्याप्तोनमागते । खेत्योरन्यतरेऽथान्यघाते पूर्णतनोरिदम् ॥१७०॥

शतानि पञ्च भङ्गानां षट्सप्ततियुतानि तु । कालोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तोऽत्र जघन्यः परमोऽपि च ॥१७१॥

२८। भङ्गाः ५७६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनापर्याप्तिपर्याप्तस्यैकोनत्रिंशतं विदम् । सोच्छ्वासं तत्कालं च भङ्गाश्चापि तथाविधाः ॥१७२॥

२९। भङ्गाः ५७६ ।

वाक्पूर्णे त्रिंशतं तस्यास्स्वरैकतरसंयुतम् । भङ्गास्तद्द्विगुणाः पल्यत्रयमस्य स्थितिः परा ॥१७३॥

३० । भङ्गाः ११५२ ।

आहारोदयसंयुक्ते विशेषनरि नामनि । उदये पञ्च-सप्ताष्ट-नवाग्रा विंशतिर्भवेत् ॥१७४॥

२५।२७।२८।२९।

स्यात्पाञ्चविंशतं तत्र नृगत्याऽहारकद्वये । कार्मणं सुरगादेये तेजो वर्णचतुष्टयम् ॥१७५॥

पञ्चाक्षं चतुरस्रं चोपघातोऽगुरुलघ्वपि । शुभस्थिरयुगे निर्मित्प्रशस्तसचतुष्टयम् ॥१७६॥

आहारोत्थापनेऽस्तीदं यावत्तद्देहपूर्णताम् । पूर्णाङ्गे समगत्यन्यघातयुक् साप्तविंशतम् ॥१७७॥

२५। भङ्गः १ । [२७ । भङ्गः १ ।]

सोच्छ्वासं चानपर्याप्तावाष्टाविंशतमस्त्यदः । त्रिषु भङ्गास्त्रयः कालोऽन्तर्मुहूर्त्तो द्विधाऽत्र तुः ॥१७८॥

२८ । भङ्गः १ । एवं त्रिषु भङ्गास्त्रयः ३ ।

एकान्नत्रिंशतं तस्याद्वाक्पर्याप्तौ ससुस्वरम् । यावदाहारदेहान्तं कालोऽत्रान्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥१७९॥

२९ । भङ्गः १ । एवं विशेषमनुष्ये भङ्गाश्चत्वारः ४ ।

ऐकत्रिंशतमेतत्स्यात्तीर्थकृद्युक्तयोगिनः । नृगत्यौदारिकद्वन्द्वमाद्ये संस्थान-संहती ॥१८०॥

तेजःकार्मणपञ्चाक्षे तीर्थकृत्सुभगं यशः । वर्णाद्यगुरुलघ्वादि-त्रसादिकचतुष्टयम् ॥१८१॥

शुभस्थिरयुगे निर्मित्सुस्वरादेयसद्गतिः । पूर्वकोटिः पराब्दानां पृथक्त्वं चापरा स्थितिः ॥१८२॥

३१ । अत्र जघन्या वर्षपृथक्त्वमुत्कृष्टाऽन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकगर्भाद्यष्टवर्षोना पूर्वकोटी । भङ्गः १ ।

नृगतिः पूर्णपञ्चाक्षं स्थूलादेययशस्त्रसम् । सुभगं चेत्ययोगेऽष्टौ पाके तीर्थकृतो नव ॥१८३॥

उदये ८। भङ्गः १। तथा ९। भङ्गः १। एवं विशेषविशेषमनुष्येषु भङ्गाः २।

नवाग्राण्युदये नृणां षड्विंशतिशतानि तु । भङ्गाः पाके सयोगे तु वक्ष्येऽन्यस्थानसप्तकम् ॥१८४॥

२६०९ ।

सयोगे विंशतिः सैकषट्सप्ताष्टनवाधिका । त्रिंशच्चान्यत्तु पूर्वोक्तमेकत्रिंशतमष्टकम् ॥१८५॥

२०।२१।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

नृगतिः कार्मणं तेजः पञ्चाक्षं त्रस-बादरे । शुभस्थिरयुगे वर्णचतुष्कागुरुलघ्वपि ॥१८६॥

पर्याप्तसुभगादेययशोनिर्मिच्च विंशतिः । सयोगस्योदयं यान्ति प्रतरे लोकपूरणे ॥१८७॥

२०। भङ्गः १।

अत्र प्रतरे १। लोकपूरणे १। पुनः प्रतरे १। एवं त्रयः समयाः ३।

कपाटस्थसयोगस्य क्षिप्ते चौदारिकद्वये । प्रत्येक उपघाताख्ये चाद्ये संहनने तथा ॥१८८॥

संस्थानेषु च षट्स्वेकतरे षड्विंशतिर्भवेत् । संस्थानैकतरैः षड्भिर्भङ्गाः सन्ति षडत्र तु ॥१८९॥

२६। भङ्गाः षट् ६ ।

अष्टाविंशतमस्तीदं दण्डस्थस्यान्यघातयुक् । क्षिप्तेऽत्रान्यतरे खेत्योर्भङ्गाः द्वादश योगिनः ॥१९०॥

२८। भङ्गाः १२।

पर्याप्तस्यानपर्याप्त्या चैकान्नत्रिंशतं त्वदः । भवेदुच्छ्वासयुग्भङ्गा द्वादशात्रापि योगिनः ॥१९१॥

२९। भङ्गाः १२।

स्थानं त्रैंशतमस्तीदं भाषापर्याप्तिनिष्ठितौ । स्वरैकतरयुक्तं च चतुर्विंशतिभङ्गयुक् ॥१९२॥

३०। भङ्गाः २४।

पृथक्तीर्थकृतैतानि युक्तान्यन्यानि पञ्च तु । संस्थानं किन्तु तत्राद्यं प्रशस्तौ च गतिस्वरौ ॥१९३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति तीर्थकृद्युक्तसयोगे २१।२७।२६।३०।३१। पञ्चस्वेकैकभङ्गेन भङ्गाः ५। एवं सयोगे भङ्गाः ६०। किन्त्वेकत्रिंशद्‌भङ्गोऽत्र पुनरुक्तः। शेषाः ५६। एतैः सहैते पूर्वोक्ताः २६०६ एतावन्तः २६६८ नृगतौ भङ्गा इति।

एवं मनुष्यगतिः समाप्ता।

एकपञ्चकसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिः क्रमात्। देवगत्या युतं नाम्न्युदयेऽस्ति स्थानपञ्चकम् ॥१६४॥

२१।२५।२७।२८।२६।

तत्रैकविंशतं देवद्वयं तैजस-कार्मणे। पञ्चाक्षस्थूलपर्याप्तागुरुलघ्वशुभं शुभम् ॥१६५॥
निर्माणं सुभगादेये यशो वर्णचतुष्टयम्। त्रसं स्थिरास्थिरे वक्रत्ताविक-द्विक्षणस्थितिः ॥१६६॥

२१। भङ्गः १।

एतदेवानुपूर्व्यूनं पाञ्चविंशतमागतैः। प्रत्येकचतुरस्रोपघातवैक्रियिकद्वयैः ॥१६७॥
इदमात्तस्य शरीरस्य स्याद्यावद्देहस्य निर्मितम्। कालस्तु द्विविधोऽप्यस्य भवेदन्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥१६८॥

२५। भङ्गः १।

साप्तविंशतमेतच्चान्यघाते सन्नभोगतौ। क्षिप्तायामङ्गपर्याप्तौ तत्कालोऽन्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥१६६॥

२७। भङ्गः १।

सोच्छ्वासमानपर्याप्तावाष्टाविंशतमीरितम्। यावत्स्याद्वाचिपर्याप्तिस्तत्कालोऽन्तर्मुहूर्त्तभाक् ॥२००॥

२८। भङ्गः १।

एकान्नत्रिंशतं तत्स्याद्वाक्पर्याप्तौ ससुस्वरम्। कालस्तु जीवितान्तोऽस्यैकैको भङ्गोऽपि पञ्चसु ॥२०१॥

२६। भङ्गः १। एवं सर्वे ५।

अत्र स्थितिर्भाषापर्याप्त्या पर्याप्तस्य प्रथमसमयप्रभृति यावदायुषश्चरमसमयस्तस्याश्च प्रमाणं जघन्यं दशवर्षसहस्राणि, उत्कृष्टं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि; उभे अन्तर्मुहूर्त्तोने।

एवं देवगतिः समाप्ता।

सर्वाप्यन्तर्मुहूर्त्तोना भाषापर्याप्तके स्थितिः। वाच्योत्कृष्टा जघन्या च देव-नारकयोर्द्वयोः ॥२०२॥
नृ-तिरश्चोः जघन्याऽन्तर्मुहूर्त्तोना गतिभूदयाः। नाम्न एकादशोपेतषट्सप्ततिशतप्रमाः ॥२०३॥

७६११।

एकान्नषष्टिरन्ये च समुद्धातस्थयोगिनि। सत्तास्थानान्यतो नाम्नो वक्ष्यन्तेऽत्र त्रयोदश ॥२०४॥

५६। सर्वे ७६७०

नवतिस्त्रिद्विकैकाग्रा सा च सा द्वि-षडष्टभिः। हीनाशीतिश्च सैक-द्वि-त्र्यूना दश नवापि च ॥२०५॥

६३।६२।६१।६०।८८।८४।८२।८०।७६।७८।७७।१०।६।

सत्तास्थानेषु नाम्नोऽस्त्यादिमे त्रिनवतिस्त्रिषु। सोना तीर्थकृताहारद्वयेनैभिस्त्रिभिः क्रमात् ॥२०६॥

आद्ये स्थाने ६३। त्रिष्वतः स्थानेषु ६२।६१।६०।

स्थानानि त्रीणि तिर्यक्षूद्वेलिते नवतेरपि। देवद्वये ततः श्वभ्रचतुष्के नृद्वये ततः ॥२०७॥

नर-तिर्यक्षु ८८।८४। तिर्यक्षु ८२।

श्वभ्र-तिर्यग्द्वयैकाक्षविकलस्थावरातपाः। सूक्ष्मसाधारणोद्योतास्त्रयोदशसु चास्विति ॥२०८॥
आद्याच्चतुष्कतः पश्चात्प्रत्येकं क्षपितास्विदम्। अशीत्यादिचतुष्कं चानिवृत्तिक्षपकादिषु ॥२०६॥

[अनिवृत्त्यादिषु] पञ्चसु[1] ८०।७६।७८।७७।

पञ्चाचं नृद्वयं पूर्णं सुभगादेयतीर्थकृत्। त्रसस्थूलं यशोऽयोगे दशातीर्थकरे[2] नव ॥२१०॥

अयोगे [तीर्थकरे] १०। तीर्थकृतोनाः ६।

---

१. अनिवृत्तिक्षपके शेषनवांशेषु चाष्टसु सूक्ष्म-क्षीण-सयोगेषु निर्योगस्य च द्विचरमसमयं यावत् इति पञ्चसु स्थानेषु कस्यचित् अशीतिः, कस्यचिदेकोनाशीतिः, कस्यचित् अष्टसप्ततिः, कस्यचित् सप्तसप्ततिः इति ज्ञेयम्, २. तीर्थकरं विना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टस्वसंयताद्येषु चत्वारि प्रथमानि तु । द्वानवत्यादिकं षट्कं सत्त्वे मिथ्यादृगाह्वये ॥२११॥

अष्टस्वसंयताद्युपशान्तान्तेषु ९३।९२।९१।९०। मिथ्यादृष्टौ ९२।९१।९०।८८।८४।८२।

सासने नवतिर्मिश्रे नवतिर्द्व्यधिका च सा । तिर्यक्षु द्वानवत्याद्या नवत्यादिचतुष्टयम् ॥२१२॥

सासने ९० । मिश्रे ९२। ९०। तिर्यक्षु ९२।९०।८८।८४।८२।

द्वानवत्यादिकं सत्त्वे त्रिकं श्वाभ्रेष्वथो नृषु । द्व्यशीत्यूनानि सर्वाणि देवेष्वाद्यं चतुष्टयम् ॥२१३॥

नारकेषु ९२।९१।९०। नृषु द्व्यशीतिं विना सर्वाणि १२ देवेषु ९३।९२।९१।९०।

एवं नाम्नः सत्प्ररूपणा समाप्ता ।

बन्धे त्रिपञ्चषड्युक्तविंशतिरुदये नव । स्थानानि पञ्च सत्तायां बन्धे त्वष्टाग्रविंशतिः ॥२१४॥

सत्त्वे चत्वारि पाकेऽष्टावेकान्नत्रिंशते तथा । सत्त्वे स्युः सत्त्व-पाके च नत्रैव त्रिंशतेऽपि च ॥२१५॥

	बं०	२३	२५	२६		बं०	२८	२९	३०
[त्रयोविंशत्यादिबन्धेषु—]	उ०	९	९	९	अष्टाविंशत्यादिबन्धेषु—	उ०	८	९	९
	स०	५	५	५		स०	४	७	७

त्रिकपञ्चषडग्राया विंशतेर्बन्धकेषु तु । अग्रगं द्वितयं त्यक्त्वा भवन्त्याद्या नवोदयाः ॥२१६॥

सत्तास्थानानि पञ्चैषु नवतिर्द्व्यग्राऽथ केवला । तथा क्रमान्मताऽशीतिरधिकाष्टचतुर्द्विभिः ॥२१७॥

बन्धस्थानेषु २३।२५।२६ । प्रत्येकं नवोदयस्थानानि २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्तास्थानानि ९२।९०।८८।८४।८२ ।

सप्तविंशतिपाके तु प्राग्वद्बन्धत्रयं भवेत् । द्व्यशीतिं वर्जयित्वाऽन्यसत्तास्थानचतुष्टयम् ॥२१८॥

पूर्वोक्तनवोदयमध्ये सप्तविंशत्युदये बन्धेषु २३।२५।२६ । उदये २७ । सत्तास्थानानि ९२।९०। ८८।८४ ।

इति बन्धत्रयं समाप्तम् ।

वर्जयित्वान्तिमं युग्मं चतुर्विंशतिमेव च । अष्टोदया भवन्त्येवमष्टाविंशतिबन्धके ॥२१९॥

सत्तास्थानानि चत्वारि नवतिर्द्व्येकसंयुता । दशाष्टसहिताऽशीतिरित्येतेन विशेषतः ॥२२०॥

बन्धे २८ । उदये २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वे ९२।९१।९०।८८ ।

बन्धेऽष्टाविंशतिः पाके षड्विंशत्येकविंशती । नवतिः सा द्वियुक्सत्त्वे निर्दङ्मोहे[1] कुरूद्भवे[2] ॥२२१॥

इति क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां नृणां बन्धे २८ । उदये २६।२१ । सत्त्वे ९२।९०

पञ्चसप्ताग्रविंशत्योः पाके द्वानवतिः सती । आहारारम्भणे बन्धेऽप्रमत्तेऽष्टाग्रविंशतिः ॥२२२॥

अप्रमत्ते बन्धः २८ । उदयः २५।२७ । सत्ता ९२ ।

बन्धेऽष्टाविंशतिः पाके नवाष्टाग्रे तु विंशती । सत्तास्थाने मते द्वे तु नवतिर्द्वानवतिस्तथा ॥२२३॥

एषोऽष्टाविंशतेर्बन्धः सम्यग्दृष्टावसंयते । आहारकाख्यसत्कर्मवति चापि प्रमत्तके ॥२२४॥

बन्धे २८ । उदये २९।२८ । सत्त्वे ९२।९० ।

नवतिर्द्व्युत्तरा सा च सत्तायां त्रिंशदुद्गमाः । तथाष्टाविंशतेर्बन्धो मिथ्यादृष्ट्यादिपञ्चके ॥२२५॥

बन्धे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ९२।९० ।

बन्धेऽष्टाविंशतिः पाके त्रिंशत्तु नवतिः सती । एकाग्रा तीर्थकृत्सत्त्वे द्वि-त्रिक्षितिविगाहिनाम् ॥२२६॥

बन्धे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ९१ ।

अष्टाशीतिर्मता सत्त्वे त्रिंशतोऽपि तथोदयः । नर-तिर्यक्षु बन्धोऽष्टाविंशतेर्वामदृष्टिषु ॥२२७॥

बन्धे २८ । उदये ३० । सत्त्वे ८८ ।

नवतिर्द्व्युत्तरा सा च सत्येकत्रिंशदुद्गमः । तथाष्टाविंशतेर्बन्धो मिथ्यादृष्ट्यादिपञ्चके ॥२२८॥

बन्धे २८ । उदये ३१ । सत्त्वे ९२।९० ।

१. क्षायिकसम्यग्दृष्टौ । २. उत्तमभोगभूमिजे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टाशीतिः सती त्वेकत्रिंशतोऽस्त्युदयेऽपि च । तथाष्टाविंशतेर्बन्धस्तिर्यक्षु वामदृष्टिषु ॥२२९॥

बन्धे २८ । उदये ३१ । सत्त्वे ८८ ।

इत्यष्टाविंशतेर्बन्धः समाप्तः ।

एकान्नत्रिंशतेर्बन्धे बन्धेऽपि त्रिंशतस्तथा । पाका नवान्तिमं द्वन्द्वं स्यश्चवोघेन भवन्ति हि ॥२३०॥

आदौ त्रिनवतीं कृत्वाऽशीतिं यावद्विकोत्तरा । सत्तास्थानानि सप्तौघादतो वक्ष्ये विशेषतः ॥२३१॥

बन्धे २९।३० । प्रत्येकमुदया नव २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सप्त सत्तास्थानानि ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ ।

एकान्नत्रिंशतो बन्धे स्यात्पाकस्त्वेकविंशतिः । सत्यौ तु द्व्येकनवती तीर्थकृन्नाम्नृविग्रहे ॥२३२॥

बन्धे २९ । उदये ११ । सत्त्वे ९३।९१ ।

प्राग्वद्बन्धोदयौ सत्त्वे नवतिर्द्विकयुक् च सा । चतुर्गतिकजीवेषु स्यादेवं विग्रहे कृते ॥२३३॥

बन्धे २९ । उदये २१ । सत्त्वे ९२।९० ।

प्राग्वद्बन्धोदयौ सत्त्वेऽशीतिश्चतुरष्टयुक् । नर-तिर्यक्षु तिर्यक्षु द्व्यशीतिर्विग्रहे मता ॥२३४॥

बन्धे २९ । उदये २१ । सत्त्वे ८८।८४। तथैव तिर्यक्षु बन्धे २९ । उदये २१ । सत्त्वे ८२ ।

प्राग्वद्बन्धस्तथैकाक्षे चतुर्विंशतिपाकगे । आद्यानि सप्त सत्त्वेन तृतीय-प्रथमे विना ॥२३५॥

अपर्याप्तैकाक्षे बन्धे २९ । उदये २४ । सत्त्वे ९२।९०।८८।८४।८२ ।

प्राग्वद्बन्धस्तथाद्यानि सत्तास्थानानि सप्त तु । पञ्चाग्रविंशतेः पाकश्चतुर्गतिषु जन्तुषु ॥२३६॥

इति यथासम्भवं पर्याप्तेषु बन्धः २९ । उदये २५ । सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ ।

एकान्नत्रिंशतो बन्धः सत्त्वे चाद्यानि सप्त तु । पाके दशनवाष्टाग्रा सप्तषड्युक्तविंशतिः ॥२३७॥

बन्धे २९ । यथासम्भवमुदये ३०।२९।२८।२७।२६ । सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ ।

प्राग्वद्बन्धस्तथैकाग्रा त्रिंशत्तिर्यक्ष्वथोदये । सत्त्वेऽशीतिश्चतुद्वर्यष्टदशद्वादशयुक् पृथक् ॥२३८॥

बन्धे २९ । उदये ३१ सत्त्वे ८४।८२।८८।९०।९२ ।

इत्येकान्नत्रिंशद्बन्धः समाप्तः ।

एकान्नत्रिंशतो बन्धे पाकस्थानादि यद्भवेत् । तदेव त्रिंशतः सर्वं बन्धस्थाने प्रकीर्त्तितम् ॥२३९॥

विशेषस्त्रिंशतो बन्धे पाके स्यात्पञ्चविंशतिः । स्थानानि सप्त सत्तायां तेषां चैषा प्रकल्पना ॥२४०॥

देव-श्वाभ्रेषु सत्तायां द्व्येकाग्रे नवती मता । तिर्यक्षु द्व्यधिकाऽशीतिः स्यात्सत्त्वेऽन्यौ[1] पूर्ववत् ॥२४१॥

चातुर्गतिकजीवेषु नवतिः सा द्वियुक् सती । अशीतिश्चतुरष्टाग्रा सत्त्वे तिर्यक्षु नृष्वपि ॥२४२॥

इति सामान्येन त्रिंशद्बन्धे ३० । उदये २५ । सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ । एषां च सप्तसत्तास्थानानां विभागः सुर-नारकेषु ९३।९१ । तिर्यक्षु ८२ । चातुर्गतिकजीवेषु ९२।९० । नर-तिर्यक्षु ८८।८४ ।

पाके षड्विंशतिः सत्त्वेऽशीतिस्तिर्यक्षु द्वियुता । नृ-तिर्यक्षु नवत्यादि त्रिकं द्वानवतिस्तथा ॥२४३॥

इति त्रिंशद्बन्धे ३० तिर्यक्षूदये २६ सत्त्वे ८२ । नृ-तिर्यक्षु बन्धे ३० उदये २६ सत्त्वे ९२।९०।८८।८४।

एकपञ्चकसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिः पृथक् । पाके स्युस्त्रिंशतो बन्धे सत्त्वे चाद्यानि सप्त च ॥२४४॥

बन्धे ३० । उदये २१।२५।२७।२८।२९ । सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२ ।

पाके दश चतुःषट्कैकादशाग्रा च विंशतिः । तत्रैव तानि सप्तापि द्व्येकाग्रे नवती विना ॥२४५॥

तत्र बन्धे ३० । उदये ३०।२४।२६।३१ सत्त्वे च पञ्च ९२।९०।८८।८४।८२ ।

इति त्रिंशतो बन्धः समाप्तः ।

---

१. बन्धोदयौ ।

तथैकत्रिंशतो बन्धे पाके त्रिंशच्च नामनि । अप्रमत्ते तथाऽपूर्वे सत्त्वे त्रिनवतिर्भवेत् ॥२४६॥

बन्धे ३१ । उदये ३० । सत्त्वे ९३ ।

तथैकबन्धके पाके त्रिंशत्सत्त्वेऽष्ट तानि च । चत्वार्याद्यानि चत्वार्यग्रे त्यक्त्वोपरिमं द्वयम् ॥२४७॥

इत्युपशमकेषु बन्धे १ । पाके ३० । सत्त्वे ९३।९२।९१।९० । क्षपकेषु सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७ ।

त्रिंशत्सा चैकयुक् पाके यथायोग्यं नवाष्ट च । चत्वार्यधः षडग्रे च सत्तास्थानान्यबन्धके ॥२४८॥

इत्यबन्धके उदयाः ३१।३०।९।८ । सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७।१०।९ ।

अत्र वृत्तिश्लोकाः पञ्च—

सप्तांशे चरमेऽपूर्वोऽनिवृत्तिः सूक्ष्म एव च । बध्नन्त्येकं यशः शेषाश्चत्वारः सन्त्यबन्धकाः ॥२४९॥

[यशोबन्धकास्त्रयः] १।१।१। [अबन्धकाश्चत्वारः] ०।०।०।०।

अपूर्वादित्रिकत्रिंशच्छान्ते क्षीणे च सोदये । त्रिंशत्सत्त्वैकयुग्योगिन्ययोगाख्ये नवाऽष्ट च ॥२५०॥

इत्युदयेऽपूर्वादिषु ३०।३०।३०।३०।३० । सयोगे ३१।३० अयोगे ९।८ ।

त्रिषूपशमकेषूपशान्ते चाद्यं चतुष्टयम् । क्षपकेष्वप्यपूर्वे सदनिवृत्तौ च सम्भवेत् ॥२५१॥

षोडशप्रकृतीनां तु यावन्न कुरुते क्षयम् । क्षपिता अनिवृत्तौ सदशीत्यादिचतुष्टयम् ॥२५२॥

तत्सूक्ष्मादिष्वयोगे च यावद्द्विचरमक्षणम् । चरमे समयेऽयोगे सत्त्वे दश नवापि च ॥२५३॥

इत्युपशमश्रेण्यामपूर्वादिषु चतुर्षु क्षपकेषु चापूर्वेऽनिवृत्तिप्रथमनवांशे च सत्त्वे ९३।९२।९१।९० । अनिवृत्तिक्षपकशेषनवांशेषु चाष्टसु सूक्ष्म-क्षीण-सयोगेषु निर्योगस्य च द्विचरमसमये यावत्सत्त्वे ८०।७९।७८। ७७ । चरमसमये चायोगे १०।९ ।

एवं नामप्ररूपणा समाप्ता

जीवस्थानेषु सर्वेषु गुणस्थानेषु च क्रमात् । स्थानानां त्रिविकल्पानां भङ्गा योज्या यथागमम् ॥२५४॥

बन्धे पाके च सत्त्वे स्युः पञ्चापि ज्ञान-विघ्नयोः । सर्वजीवसमासेषु निर्बन्धे[1] पाक-सत्त्वयोः ॥२५५॥

त्रयोदशसु जीवसमासेषु ५/५/५ । चतुर्दशे संज्ञिपर्याप्ते मिथ्यादृष्ट्यादि-सूक्ष्मान्तेषु त्रिषु बन्धादिषु पञ्च ५/५/५ । निर्बन्धे उपरतबन्धे उपशान्ते क्षीणे चेति द्वयोः पाके सत्त्वे पञ्च ०/५/५ ।

त्रयोदशसु द्यग्रोधे नव स्युर्बन्ध-सत्त्वयोः । चतस्रः पञ्च वा पाके संज्ञिपर्याप्तकाभिधे ॥२५६॥

गुणस्थानोदिता भङ्गाः स्थाने सन्ति चतुर्दशे । वेद्यायुर्गोत्रमाभाष्य ततो मोहः प्रचक्ष्यते ॥२५७॥

त्रयोदशसु ९/४/९ ९/५/९ संज्ञिपर्याप्तके मिथ्यादृष्टिसासनयोः ९/४/९ ९/५/९ मिश्राद्यपूर्वकरणद्वय[2]प्रथमसप्तमभागं यावत् ६/४/९ ६/५/९ शेषापूर्वानिवृत्तिसूक्ष्मोपशमकेषु क्षपकेषु चापूर्वस्य शेषसप्तमभागेषु षट्स्वनिवृत्तेश्च संख्यातभागान् यावत् ४/४/९ ४/५/९ ततः परमनिवृत्तेः शेषसंख्यातभागे सूक्ष्मक्षपके च ४/४/६ ४/५/६ उपशान्ते ०/४/९ ०/५/९ क्षीणद्विचरमसमये ०/४/६ ०/५/६ क्षीणचरमसमये ०/४/४ सर्वे मीलिताः १२ ।

---

१. निर्बन्धे इत्युक्ते किम् ? उपरतबन्धे इत्यर्थः । २. उपशमश्रेणि-क्षपकश्रेण्योः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेद्ये द्वाषष्टिरायुष्के विकल्पास्त्र्युत्तरं शतम् । चत्वारिंशच्च सप्ताग्रा गोत्रे जीवसमासगाः ॥२५८॥

६२।१०३।४७ ।

चतुर्दशसु चत्वारो भङ्गाः प्रत्येकमादिमाः । षट् स्युः केवलिनोर्वेद्ये षष्टिरेवं द्विकाधिका ॥२५९॥

	१	१	०	०	
इति चतुर्दशसु प्रत्येकमादिमाश्चत्वारः	१	०	१	०	इति । सयोगे द्वावाद्यौ
	१०	१०	१०	१०	

१	१	
१	०	अयोगे त्वाद्यावेव बंधेन विनाऽऽद्यावुपान्तिमे समये
१०	१०	

१	०	
१०	१०	द्वावयोगस्यैवान्ते समये

०	१	
०	१	एवं सर्वे ६२ ।

मतान्तरम्—

देवायुर्नारकायुश्च पर्याप्तौ संज्ञ्यसंज्ञिनौ । बध्नीतोऽन्ये न बध्नन्ति द्वादशैकेन्द्रियादयः ॥२६०॥
पृथग्जीवसमासेषु स्युः पञ्चैकादशस्वतः । नवासंज्ञिनि पर्याप्ते दशापर्याप्तसंज्ञिनि ॥२६१॥
विकलाः संज्ञिपर्याप्ते त्वष्टाविंशतिरायुषः । युताः केवलिभङ्गेन मीलितास्त्र्यधिकं शतम् ॥२६२॥

१०३ । एषामर्थः—यस्मादेकादश जीवसमासाः नारक-देवायुषी न बध्नन्तीत्युक्तम्, अतस्तेषु तिरश्चामायुर्बन्धभङ्गेभ्यो नवभ्यो द्वौ नारकायुर्बन्धभङ्गौ, द्वौ च देवायुर्बन्धभङ्गौ; एवं चतुरस्त्यक्त्वा शेषा एकादशसु जीवसमासेषु पञ्च पञ्चेति कृत्वा पञ्चपञ्चाशद्भवन्ति ।

	०	२	०	३	०
तत्र पञ्चानां संदृष्टिः—	२	२	२	२	२
	२	२ २	२ २	२ ३	२ ३

ततः परमसंज्ञिपर्याप्ते नव तिर्यग्भङ्गा भवन्ति ९ । ततश्च दशापर्याप्तसंज्ञिनि, यस्मादपर्याप्तसंज्ञी तिर्यङ्मनुष्यश्च नारकदेवायुर्षी न बध्नीतोऽऽतस्तिरश्चां मनुष्याणां च स्वायुर्बन्धभङ्गेभ्यो नवभ्यो नवभ्यो द्वौ नारकायुर्बन्धभङ्गौ, द्वौ च देवायुर्बन्धभङ्गाविति प्रत्येकं चतुरश्चतुरस्त्यक्त्वा शेषाः पञ्च पञ्चायुर्बन्धभङ्गा भवन्ति ५।५ । एवमपर्याप्तसंज्ञिनि दश १० ।

भङ्गाः श्वाभ्रेषु पञ्च स्युर्नव तिर्यक्षु नृष्वपि । पञ्च देवेषु बध्नत्सु बद्धेष्वायुःष्वपि क्रमात् ॥२६३॥

५।९।९।५ ।

० २ ० ३ ०   ० १ ०   २ ० ३ ० ४ ०
१ १ २ १ १   २ २ २   २ २ २ १ २ २
१ १ २ १ २ १ ३ १ ३   २ २ १ २ १   २ २ २ २ २ ३ २ ३ २ ४ २ ४

० १ ० २ ० ३ ० ४ ०   ० २ ० ३ ०
३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३   ४ ४ ४ ४ ४
३ ३ १ ३ १ ३ २ ३ २ ३ ३ ३ ३ ३ ५ ३ ४   ४ ४ २ ४ २ ४ ३ ४ ३

पर्याप्तसंज्ञिनि श्वभ्रतिर्यङ्मनुष्यदेवायुर्बन्धभङ्गाः भवन्ति, ते चैते ५।९।९।५। मीलिताः २८ ।

	०	
एकः केवलिषु	३	। एवं सर्वे १०३ ।
	३	

उच्चं बन्धेऽथ पाकेऽन्यद् द्वे सत्त्वे बन्ध-पाकयोः । नीचं सत्त्वे द्वयं नीचं सर्वेष्विति पृथक् त्रयम् ॥२६४॥

१	०	०
०	०	०
१०	१०	००

त्रयोदशसु जीवेषु त्रिंशद्भङ्गा नवाधिकाः । षड़ाद्याः संज्ञिपर्याप्ते द्वौ चान्त्यौ केवलिस्थितौ ॥२६५॥

त्रयोदशसु प्रत्येकं त्रयस्त्रय इति ३९ ।

संज्ञिपर्याप्तेषु अष्टभङ्गेषु प्रथमाः षट् । संज्ञ्यसंज्ञिव्यपदेशरहितकेवलिनोरिमौ द्वौ १/१ १/१ एवं ३९।६।२। मीलिताः ४७ ।

सर्वेऽपि मीलिता भङ्गाः गोत्रे सप्तभिरन्विताः । चत्वारिंशद्भवेदेवमतो मोहः प्रचक्ष्यते ॥२६६॥

सप्तापर्याप्तकेषु स्युः सूक्ष्मे[1] चेत्यष्टजन्तुषु । बन्धे द्वाविंशतिस्त्रीणि चाद्यानि सत्त्व-पाकयोः ॥२६७॥

अष्टसु बन्धे २२ उदये १०।९।८ सत्त्वे २८।२७।२६।

मुक्त्वैकं संज्ञिपर्याप्तं पर्याप्तेष्वथ पञ्चसु । बन्धोदयसतां स्युर्द्वे चत्वारि त्रीणि चादितः ॥२६८॥

पञ्चसु पर्याप्तेषु बन्धे २२।२१। उदये १०।९।८।७। सत्त्वे २८।२७।२६।

एकस्मिन् संज्ञिपर्याप्ते मोहस्य दश बन्धने । नव स्थानानि पाके स्युः सत्त्वे पञ्चदशापि च ॥२६९॥

संज्ञिपर्याप्ते सर्वाणि बन्धे २२।२१।१७।१३।९।५।४।३।२।१। उदये १०।९।८।७।६।५।४।२।१ सत्त्वे २८।२७।२६।२४।२३।२२।२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

पञ्च द्वे पञ्च नाम्नि स्युर्बन्धपाकसतां त्रिके । पञ्च चत्वारि पञ्चैव पञ्च पञ्चाथ पञ्च च ॥२७०॥

स्थानानि पञ्च षट् पञ्च षट् षट् पञ्च ततः क्रमात् । अष्टाष्टैकादशैषां तु स्वामिनः स्युः क्रमादिमे ॥२७१॥

सप्तापर्याप्तकाः सूक्ष्मो बादरो विकलत्रिकम् । असंज्ञी क्रमतः संज्ञी विशेषोऽतः प्रचक्ष्यते ॥२७२॥

५	५	५	५	६	८
२	४	५	६	६	८
५	५	५	५	५	११

क्रमादेषां च स्वामिसंख्या ७।१।१।३।१।१।

त्रिपञ्चषट्नवाग्रा हि विंशतिस्त्रिंशदप्यतः । सप्तपर्याप्तकेष्वेवं बन्धस्थानानि पञ्च तु ॥२७३॥

२३।२५।२६।२९।३०।

स्थूले सूक्ष्मे त्वपर्याप्ते पाकास्तेष्वेकविंशतेः । विंशतेश्चतुरग्रायाः स्यादेवमुदयद्वयम् ॥२७४॥

२१।२४।

शेषापर्याप्तकानां तु पञ्चानामुदयद्वयम् । षड्विंशत्येकविंशत्योस्तेष्वतः सत्त्वमुच्यते ॥२७५॥

उदये २१।२६

सत्तास्थानानि तेषु द्वानवतिर्नवतिस्तथा । अशीतिश्च युताष्टाभिश्चतुर्भिश्च द्विकेन च ॥२७६॥

९२।९०।८८।८४।८२।

सप्तापर्याप्तेष्विति गतम् ।

सूक्ष्मपर्याप्तके बन्ध-सत्तास्थानानि पूर्ववत् । पाके त्वेक-चतुः-पञ्च-षड्युक्ता विंशतिर्भवेत् ॥२७७॥

सूक्ष्मपर्याप्तके बन्धाः २३।२५।२६।२९।३०। उदयाः २१।२४।२५।२६। सत्त्वानि ९२।९०।८८।८४।८२।

सन्ति बादरपर्याप्ते बन्धाः सत्ताश्च पूर्ववत् । एकविंशतितः सप्तविंशत्यन्तास्तथोदयाः ॥२७८॥

बादरैकेन्द्रिये पञ्चबन्धाः २३।२५।२६।२९।३०। उदयाः २१।२४।२५।२६।२७। सन्ति ९२।९० ८८।८४।८२।

बन्धस्थानानि तान्येव तानि सत्ताऽऽस्पदानि च । पूर्णेषु विकलाक्षेषु प्रत्येकं त्रिषु सन्ति हि ॥२७९॥

एकत्रिंशत्तथा त्रिंशदेकान्नत्रिंशदप्यतः । विंशतिश्चाष्टषट्कैकयुक्ताः सन्ति तथोदयाः ॥२८०॥

विकलेषु बन्धाः २३।२५।२६।२९।३० । उदयाः २१।२६।२८।२९।३०।३१ । सन्ति ९२।९०।८८।८४।८२ ।

---

१. सप्तपर्याप्ताः सूक्ष्मपर्याप्तेन सह तेषु बन्धे ।

त्रयोविंशतितस्त्रिंशदन्ताः पूर्णे स्वसंज्ञिनि । बन्धाः सत्त्वोदयाश्चापि विकलाक्षसमा मता ॥२८१॥

बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३० । उदयाः २१।२६।२८।२९।३०।३१ । सन्ति ९२।९०।८८।८४।८२ ।

बन्धस्थानानि सर्वाणि सन्ति पर्याप्तसंज्ञिनि । पाके त्यक्त्वा नवाष्टौ च चतुरग्रां च विंशतिम् ॥२८२॥
सत्तास्थानानि तस्यैवाधस्तनान्यग्रिमद्वयात् । भवन्त्येकादशाद्यानि संज्ञ्यसंज्ञी न केवली ॥२८३॥

बन्धाः सर्वे २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । अष्टौदयाः २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७ ।

पाके केवलिनि त्रिंशदेकत्रिंशन्नवाष्ट च । अग्रिमाणि च सत्तायां षट् स्थानानि भवन्ति हि ॥२८४॥

केवलिनोरुदयाः ३०।३१।९।८। सत्तायां ८०।७९।७८।७७।१०।९ ।

इति जीवसमासप्ररूपणा समाप्ता ।

ज्ञानावृद्विघ्नयोः पञ्च बन्धे पाकेऽथ सत्तया । दशस्वतो गुणस्थानद्वये ताः पाक-सत्त्वयोः ॥२८५॥

५ ५ / ५ ५ / ५ ५ — गुणस्थानेषु दशसु ५ ५ / ५ ५ / ५ ५ अबन्धकोपशान्तक्षीणयोः ० ० / ५ ५ / ५ ५ ।

आद्ययोर्नव षट् चातोऽपूर्वस्यांशं तु सप्तमम् । यावद्दग्ध्रुध्यतः सूक्ष्मं यावद् बन्धे चतुष्टयम् ॥२८६॥
सत्त्वेन चोपशान्तात्ताः क्षपकेष्वनिवृत्तिके । संख्यातांशं च यावत्ताः क्षीणं यावत्ततश्च षट् ॥२८७॥
चतस्रोऽन्त्यक्षणे क्षीणे चतस्रः पञ्च चोदये । क्षीणस्योपान्तिमं यावत्क्षणमन्ते चतुष्टयम् ॥२८८॥

इति मिथ्यादृष्टि-सासनयोः ९ ९ / ४ ५ / ९ ९ मिश्राद्यपूर्वकरणद्वयप्रथमसप्तमभागं यावत् ६ ६ / ४ ५ / ९ ९ शेषापूर्वानिवृत्तिसूक्ष्मोपशमकेषु चापूर्वकरणस्य शेषसप्तमभागेषु षट्स्वनिवृत्तेश्च संख्यातभागान् यावत् ४ ४ / ४ ५ / ९ ९ । ततः परमनिवृत्तेः शेषसंख्यातभागे सूक्ष्मक्षपके च ४ ४ / ४ ५ / ९ ९ उपशान्ते ० ० / ४ ५ / ९ ९ क्षीणे ० ० / ४ ५ / ६ ६ क्षीणचरमसमये च ० / ४ / ४ । सर्वे मूलभङ्गाः १३ । गुणेषु गणनया ३१ ।

चत्वारिंशद् द्विकाग्रा स्युस्त्रयोदशयुतं शतम् । पञ्चाग्रा विंशतिर्भङ्गाः वेद्येऽथायुष्कगोत्रयोः ॥२८९॥

४२।११३।२५ ।

वेद्ये भङ्गास्तु चत्वारः षट्स्वाद्येष्वादिमास्त्वतः । द्वावाद्यौ सप्तसु ज्ञेयौ निर्योगेऽन्त्यं चतुष्टयम् ॥२९०॥

मिथ्यात्वादिप्रमत्तान्तेष्वेकैकस्मिन् प्रथमाश्चत्वारः १ १ ० ० / १ ० १ ० / १ ० १ ० १ ० १ ० एवं षट्सु २४ । परेषु सप्तसु प्रत्येकं प्रथमौ द्वौ १ १ / १ ० / १ ० १ ० इति १४ । अयोगेऽन्तिमाश्चत्वारः १ ० ० १ / १ ० १ ० ० १ एवं सर्वे ४२ ।

क्रमादष्टषडग्रे तु विंशती षोडशाप्यतः । विंशतिः षट् त्रयो द्वन्द्वे द्वौ चतुर्ष्वेकक्रस्त्रिषु ॥२९१॥
त्रयोदशाग्रमायुष्के भङ्गानामित्यदः शतम् । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानाद्यावदन्त्यजिनेश्वरम् ॥२९२॥

मिथ्यादृष्ट्यादिषु भङ्गाः २८।२६।१६।२०।६।३।३।२।२।२।२।१।१।१ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अबध्नत्युदितं सत्स्यादायुर्जीवे तु बध्नति । बध्यमानोदिते सत्त्वे बद्धेऽबद्धोदिते सती ॥२६३॥

इति नरकायुरादिषु पूर्वोक्ता भङ्गाः ५।६।६।५। एषां संदृष्टिर्नारकेषु

	०	२	०	३	०
नारकेषु	१	१	१	१	१
	१	१ २	१ २	१ २	१ ३

	०	१	०	२	०	३	०	४	०
तिर्यक्षु	२	२	२	२	२	२	२	२	२
	२	२ १	२ १	२ २	२ २	२ ३	२ ३	२ ४	२ ४

	०	१	०	२	०	३	०	४	०
मनुष्येषु	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	३	३ १	३ १	३ २	३ २	३ ३	३ ३	३ ४	३ ४

	०	२	०	३	०
देवेषु	४	४	४	४	४
	४	४ २	४ २	४ ३	४ ३

इति मिथ्यादृष्टौ सर्वे २८। सासनो नरकेषु न वध्नातीति निरयायुर्बन्धे तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती १। नरकायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती १। इति द्वौ भङ्गौ त्यक्त्वा शेषाः सासने २६। सम्यग्मिथ्यादृष्टिरेकमप्यायुर्न बध्नात्यतस्तस्योपरतबन्धभङ्गाः १६। यस्मादसंयतो मनुष्यस्तिर्यग्गतिस्थो वा देवायुरेव बध्नाति, नेतराणि। नारक-देवगतिस्थश्च मनुष्यायुष एव बन्धको नापरेषाम्। ततस्तिर्यगायुर्बन्धे नरकायुरुदये द्वे अपि सती १। नरकायुर्बन्धे तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती २। तिर्यगायुर्बन्धे तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती ३। मनुष्यायुर्बन्धे तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती। नरकायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती ५। तिर्यगायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती ६! मनुष्यायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती ७। तिर्यगायुर्बन्धे देवायुरुदये द्वे अपि सती ८। एवमष्टौ त्यक्त्वा शेषा असंयतस्य २०। तिर्यगायुरुदये तिर्यगायुः सत् १। देवायुर्बन्धे तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती २। तिर्यगायुरुदये तिर्यग्देवायुषी सती ३। मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः सत् ४। देवायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती ५। मनुष्यायुरुदये मनुष्य-देवायुषी सती ६। एवं संयतासंयतस्य ६। मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः सत् १। देवायुर्बन्धे मनुष्यायुरुदये द्वे अपि सती २। मनुष्यायुरुदये मनुष्य-देवायुषी सती ३। एवं प्रमत्ते ३। एत एवाप्रमत्तेऽपि ३। अपूर्वप्रभृति यावदुपशान्तस्तावच्चतुर्षूपशमकेषु त्रिषु च क्षपकेषु मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः सत् १। उपशमकान् प्रतीत्य मनुष्यायुरुदये मनुष्य-देवायुषी सती २। एवं द्वाभ्यां द्वाभ्यां भङ्गाभ्यां चतुर्ष्वष्ट ८। क्षीणकषाय-सयोगायोगेषु मनुष्यायुरुदये मनुष्यायुः सत् १। एवं त्रिषु त्रयः ३। सर्वेऽप्यायुषि ११२।

पञ्चस्वाद्येषु पञ्च स्युश्चत्वारो द्वौ द्विकद्वयम्। अष्टस्वेकैकमन्त्ये द्वौ गोत्रे पञ्चाग्रविंशतिः ॥२६४॥

गुणस्थानेषु गोत्रभङ्गाः ५।४।२।२।२।१।१।१।१।१।१।१।२।

उच्चोच्चमुच्चनीचं च नीचोच्चं नीचनीचकम्। बन्धे पाके चतुर्ष्वेषु सद्द्वयं सर्वनीचकम् ॥२६५॥

१	१	०	०	०
१	०	१	०	०
१ ०	१ ०	१ ०	१ ०	० ०

इत्याद्ये पञ्च चत्वार आद्या भङ्गा सुसासने। द्वावाद्यौ त्रिष्वतोऽन्येषु पञ्चस्वेकस्तथादिमः ॥२६६॥

मिथ्यात्वादिसूक्ष्मान्तेष्वेते भङ्गाः ५।४।२।२।२।१।१।१।१।१।

उच्चं पाके द्वयं सत्त्वे बन्धकैकादशादिषु। स्यादुच्चमुदये सत्त्वे चायोगस्यान्तिमक्षणे ॥२६७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपशान्तक्षीणसयोगायोगेषु चतुर्षु चत्वारः १/१० १/१० १/१० १/१० अयोगस्यान्तिमे समये एकः

१/१ । एवं गोत्रे सर्वभङ्गाः २५ ।

आद्ये द्वाविंशतिर्मोहे सासने चैकविंशतिः । द्वयोः सप्तदशान्यत्र त्रयोदश नवत्रिषु ॥२९८॥
बन्धे पञ्चानिवृत्तौ स्युश्चतुस्त्रिद्वयकमेव च ; [क्रमतो मोहनीयस्य बन्धस्थानानि सन्ति वै ॥२९९॥

२२।२१।१७।१७।१३।९।९।९।अनिवृत्तौ ५।४।३।२।१ ।

षट् चत्वारश्चतुर्षु द्वावेको भङ्गोऽपरेषु तु ; [ ] ॥३००॥

६।४।२।२।२।२। शेषेष्वेकः १ ।

ज्ञेया दश नवाष्टौ च सप्त षट् पञ्च मोहने । चतुष्कं द्वयमेकं च सामान्येन नवोदयाः ॥३०१॥

१०।९।८।७।६।५।४।२।१।

मिथ्या क्रोधाश्च चत्वारोऽन्ये चाद्ये वेद एककः । हास्यादियुग्मयोरेकं भी जुगुप्से दशोदयाः ॥३०२॥
मिथ्यात्वं दर्शनात्प्राप्ते यावदावलिकामसौ । मोहेऽनन्तानुबन्ध्यूनः स्याद्द्येऽन्यो नवोदयाः ॥३०३॥

एवं मिथ्यादृष्टौ द्वावुदयौ १०।९।

मिथ्यात्वेनाद्यकोपाद्यैर्द्वितीयैस्तत्परैर्विना । सासादनादिषु ज्ञेया एकद्वयकत्रिकेष्वसौ ॥३०४॥

मिथ्यात्वे १०।९।सासादनादिषु— सा० ९ मि० ८ अ० ८ दे० ७ प्र० ६ अ० ६ अपू० ६ ।

इति मोहोदया मिश्रे सम्यग्मिथ्यात्वसंयुताः । सम्यक्त्वसंयुजोऽन्येऽतो न शेषे यत्र दर्शने ॥३०५॥

एवं मिश्रे सम्यग्मिथ्यात्वसंयुताः ९ । असंयतादिषु चतुर्षु यत्र शेषे क्षायिकौपशमिके सम्यक्त्वे न भवतस्तत्र सम्यक्त्वोदये वेदकसम्यक्त्वेन सहान्योऽपि द्वितीय उदयस्तेन असंयतादिषु द्वौ द्वावुदयावेतौ ९,८।८,७।७,६।७,६ । अपूर्वे मोहभेदसम्यक्त्वोदयाभावाद्वेदकसम्यक्त्वं नास्तीति षट्कोदय एवैकः ६ ।

सर्वेऽप्येते भयेनोना जुगुप्सोना द्वयोनकाः । इत्यन्येऽप्युदया ह्येषामेकैकस्योपरि त्रयः ॥३०६॥

क्षायो० औप०

	८	७		७		७		७	६	
इति मिथ्यादृष्टौ	९ ९	८ ८	। सासने	८ ८	। मिश्रे	८ ८	। असंयते	८ ८ ।	७ ७	।
	१०	९		९		९		९	८	

देशे वेद० क्षायि०

६ ।	५ ।		५	४		५	४
७ ७	६ ६	प्रमत्ते	६ ६ ।	५ ५ ।	अप्रमत्ते	६ ६ ।	५ ५ । अपूर्वे वेदकसम्यक्त्वं
८	७		७	६		७	६

विना त्रीण्येवोदयस्थानानि ४/५ ५/६ ।

इत्याद्ये दश सप्ताद्या नव सासन-मिश्रयोः । अयते नव षट्काद्याः पञ्चाद्यास्त्वष्ट पञ्चमे ॥३०७॥
सप्ताद्या द्वयोः सप्तापूर्वे षट्चतुरादिकाः । द्वावेकश्चानिवृत्ताख्ये सूक्ष्मेऽप्येकस्तथोदयः ॥३०८॥

इति सवेदानिवृत्तौ प्रथमभागे चतुर्णां कषायाणामेकतरस्त्रयाणां वेदानामेकतरः, इति द्वावुदयस्थानम् ।

अवेदानिवृत्तौ चतुर्षु भागेषु यथासम्भवमेकतरः कषायोदयः एवमनिवृत्तौ २/१ । सूक्ष्मे १ ।

कषायवेदयुग्मैस्ते चतुस्त्रिद्विभिराहताः । चतुर्विंशतिभेदाः स्युः सप्त पाका दशादिकाः ॥३०९॥

इति दशाद्युदयस्थानानि सप्त १०।९।८।७।६।५।४। इत्येतानि कषायादिभिश्चतुर्विंशतिभेदानि स्युः ।
एषाञ्च संख्यार्थमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादृश्यष्टचत्वारि द्वयेऽतोऽष्ट चतुर्ष्वतः । अपूर्वेऽपि च चत्वार्युदयस्थानानि मोहने ॥३१०॥

८।४।४।८।८।८।८। अपूर्वे ४ ।

चतुर्विंशतिभङ्गघ्नान्यपूर्वान्यमूनि च । योगोपयोगलेश्याभिर्यथास्वं गुणयेत्ततः ॥३११॥

मिश्रे सासादनेऽपूर्वे पाकाः षण्णवतिप्रमाः । पञ्चस्वन्येषु ते विद्याद्द्वयोः सप्तदशापि च ॥३१२॥

इति मिथ्यादृष्ट्यादिषूदयविकल्पाः १९२।९६।९६।१९२।१९२।१९२।१९२।९६। अनिवृत्तौ सवेदे १२। अवेदे ४। सूक्ष्मे १।

उदयस्थानसंख्यैवं विकल्पा उदयाश्रयाः । पञ्चत्रिंशद् द्विहीनानि त्रयोदशशतानि ते ॥३१३॥

१२६५।

मिथ्यादृश्यष्टषष्टिः स्युर्द्वयोर्द्वात्रिंशदप्यतः । षष्टिश्चातो द्विपञ्चाशत्प्रमत्तेतरयोः पुनः ॥३१४॥

चत्वारिंशच्चतुर्युक्ता स्यादपूर्वेऽपि विंशतिः । पाकप्रकृतयो मोहे चतुर्विंशतिसंगुणाः ॥३१५॥

एवं मोहे पूर्वोक्तदशाद्युदयानां प्रकृतयो मिथ्यादृष्ट्यादिषु ६८।३२।३२।६०।५२।४४।४४। अपूर्वे २०। अनिवृत्तौ २।१ सूक्ष्मे १। एताश्चतुर्विंशतिभङ्गगुणा यावदपूर्वं मिथ्यादृष्टौ ८६४।७६८। उभयोर्मीलने १६३२। सासनादिषु ७६८।७६८।१४४०।१२४८।१०५६।१०५६।४८०। एता मीलिताः ८४४८। उक्तं च—

शतान्यष्टौ चतुःषष्ट्याऽमाष्टषष्ट्या च सप्त च । मीलितानि शतान्याद्ये द्वात्रिंशान्नीति षोडश ॥३१६॥

१६३२।

शतानि चाष्ट षष्ट्याऽमा सप्त सासन-मिश्रयोः । चतुर्दश शतानि स्युश्चत्वारिंशान्यसंयते ॥३१७॥

७६८।७६८।१४४० ।

द्वापञ्चाशद्द्विहीनानि शतान्यस्मात्त्रयोदश । षट्पञ्चाशं सहस्रं च प्रमत्तेतरयोर्द्वयोः ॥३१८॥

१२४८।१०५६।१०५६ ।

चतुःशताधिकाशीत्याऽपूर्वे प्रकृतयस्त्विमाः । विपाके पदबन्धाख्या गुणस्थानेषु सप्तसु ॥३१९॥

अपूर्वे ४८०। सर्वाः ८४४८ ।

त्रिवेदघ्नैः कषायैः स्युर्द्वादशात्र द्विकोदयाः । एकोदयाश्च चत्वारः कषायैः सूक्ष्म एककः ॥३२०॥

पाकाः सप्तदशैकान्नत्रिंशत्प्रकृतयस्त्विति । अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे योगादिघ्नाश्च पूर्ववत् ॥३२१॥

इत्यनिवृत्तौ द्विकोदयाः १२। एकोदयाः ४। सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभ एकः १। एवमुदयस्थानानि १७। तथा द्वादशसु द्विकोदयेषु प्रकृतयः २४। एकोदयप्रकृतयः ४। सूक्ष्मे प्रकृतिरेका १। एवं प्रकृतयः २९ पदबन्धाख्याः ।

पाकप्रकृतिसंख्यायाः पदबन्धास्त एव हि । सहस्राण्यष्ट सप्ताग्रा सप्ततिश्च चतुःशती ॥३२२॥

८४७७

ये यत्र स्युर्गुणस्थाने उदयाः प्रकृतयश्च याः । योगोपयोगलेश्याद्यैर्यथास्वं गुणयेच्च ताः ॥३२३॥

द्वयोस्त्रयोदशान्येषु दश योगास्त्रयोदश । नवैकादश षट्सु स्युर्नव योगिनि सप्त च ॥३२४॥

इति गुणस्थानेषु योगाः १३।१३।१०।१३।९।११।९।९।९।९।९।७।०। गुणस्थानेषु पूर्वोक्तोदयविकल्पा मिथ्यादृष्टौ ९६।९६। सासनादिषु ९६।९६।१९२।१९२।१९२।१९२।९६ अनिवृत्तौ १२।४।१ सूक्ष्मे १। इति द्वयोः सप्तदश १७।

कार्मणो वैक्रियौदार्यमिश्रौ मिथ्यादृशि त्रयः । मिथ्यात्वं दर्शनात्प्राप्ते न स्युर्नो मिश्रकेऽपि ते ॥३२५॥

त्रयोदश दशाप्याद्ये योगा द्वादश सासने । त्रयोदश नवातोऽतोऽप्येकादश नव द्वयोः ॥३२६॥

इति मिथ्यादृष्टौ योगाः १३।१० । सासनादिषु च १२।१०।१०।९।११।९।९ ।

चतुर्विंशतिभेदा ये पाकप्रकृतयोऽपि याः । यथास्वं गुणिता योगैर्भङ्गाः स्युर्योगजास्तु ते ॥३२७॥

इति योगैः षण्णवत्यादयः विकल्पाः पूर्वोक्ता गुणिता मिथ्यादृष्टौ १२४८।९६० मीलिताः २२०८ । सासनादिषु च ११५२।९६०।१९२०।१७२८।२११२।१७२८।८६४ एते मीलिताः १२६७२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न याति सासनः श्वभ्रं तेन वैक्रियमिश्रके । न भावषण्ढवेदोऽस्य भङ्गैः षोडशभिस्ततः ॥३२८॥
कषायवेदयुग्मोत्थैश्चत्वारः सासनोदयाः । गुणिताः स्युश्चतुःषष्टिमिश्रवैक्रियसंगुणाः ॥३२९॥

इति वैक्रियिकमिश्रवेदद्वये सासनेऽप्युदयविकल्पाः ६४ ।

षण्ढः श्वाभ्रेषु देवेषु पुमान् वैक्रियमिश्रके । स्यादौदारिकमिश्रे च पुंवेदो नृष्वसंयतः ॥३३०॥
कषायवेदयुग्मोत्थैर्भङ्गैः षोडशभिर्हताः । मिश्रे विक्रिय-कर्मभ्यां चायतेऽष्टोदया गुणाः ॥३३१॥
षट्पञ्चाशे शते द्वे स्तो मिश्रेऽप्यौदारिकेऽष्ट च । पाकभङ्गाष्टकघ्नाः स्युर्भङ्गाः षष्टिश्चतुर्युताः ॥३३२॥

अत्रासंयते कषायाः ४ । पुंवेद-नपुंसकवेदौ २ । हास्यादियुग्मं २ । अन्योन्यगुणा भङ्गाः १६ । एतेऽष्टोदयगुणाः १२८ । वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगाभ्यां हताः २५६ । तथा कषायाः ४ पुंवेदहास्यादियुग्मं २ अन्योन्यघ्ना भङ्गाः ८ । एतेऽप्यष्टोदयघ्नाः ६४ । औदारिकमिश्रघ्नाः अपि ६४ । एवमयतेऽन्येऽप्युदय-विकल्पाः ३२० ।

अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे पाकाः सप्तदशोदिताः । नवयोगहतास्ते च त्रिपञ्चाशं शतं मतम् ॥३३३॥

५३ । प्रथम-पञ्चमभागे सवेदानिवृत्तौ वेदाः ३ संज्वलनाः ४ अन्योन्यगुणा द्विकोदयाः १२ । एते नवयोगहताः १०८ । तथाऽनिवृत्तावेवेदे जाते शेषपञ्चमभागेषु चतुर्षु चतुःसंज्वलनैरेकोदयाः ४ नव-योगगुणाः ३६ । एते मीलिताः अनिवृत्तौ १४४ । सूक्ष्मे सूक्ष्मलोभसंज्वलने नैकोदयः, नवयोगगुणाः ९ । एवं सर्वे मीलिताः १५३ ।

मोहोदयविकल्पाः स्युर्योगानाश्रित्य मीलिताः । त्रयोदश सहस्राणि द्वे शते नवकोत्तरे ॥३३४॥

१३२०९

साम्प्रतं पदबन्धा योगान् प्रति कथ्यन्ते ; तत्र च मिथ्यादृष्ट्यादिषु पूर्वोक्तयोगैरेतैः १३।१०। सास-नादिषु १२।१०।१०।९।११।९।९। क्रमादेताः प्रकृतयः पूर्वोक्ता मिथ्यादृष्टौ ८६४।७६८। सासनादिषु ७६८।७६८।१४४०।१२४८।१०५६।१०५६।४८०। गुणिता जाताः [मिथ्यादृष्टौ] ११२३२।७६८०। सास-नादिषु ९२१६।७६८०।१४४००।११२३२।११६१६।९५०४।४३२० ।

चतुर्विंशतिभङ्गैस्तथाः पाकप्रकृतयस्त्विमाः । षडशीति सहस्राण्यशीत्या युक्तं शताष्टकम् ॥३३५॥
पाकप्रकृतयो द्व्यग्रा त्रिंशत्षोडशभिर्गुणाः दश पञ्चशती द्वौ च सासने मिश्रवैक्रिये ॥३३६॥

सासने चत्वार उदयाः $\begin{matrix} & 7 & \\ 8 & & 8 \\ & 9 & \end{matrix}$ । एषां प्रकृतयः ३२ । पूर्वोक्तषोडशभङ्गगुणाः वैक्रियिकमिश्रयोग-हताश्चान्येऽपि पदबन्धाः ५१२ ।

पाकेष्वष्टसु षष्ट्यिर्या सन्ति प्रकृतयोऽयते । कषायवेदयुग्मोत्थैर्भङ्गैः षोडशभिर्हताः ॥३३७॥
मिश्रवैक्रिययोगेन कार्मणेन च ताडिताः । शतानि नव विंशानि सहस्रं च भवन्ति ताः ॥३३८॥

असंयतेऽष्टोदयाः $\begin{matrix} 7 & \\ 8 & 8 \\ 9 & \end{matrix}$ । $\begin{matrix} & 6 \\ 7 & 7 \\ & 8 \end{matrix}$ । एषां च प्रकृतयः ६० पूर्वोक्तषोडशभङ्गघ्नाः ९६० वैक्रियिक-मिश्र-कार्मणयोगाभ्यां गुणाः १९२० ।

पाके प्रकृतयः षष्टिर्भङ्गैरष्टभिराहताः । मिश्रौदारिकभङ्गघ्नाः अशीत्यग्रा चतुःशती ॥३३९॥

असंयतेऽन्येऽपि औदारिकमिश्रयोगभङ्गाः ४८० । एवमसंयते त्रिषु योगेष्वन्येऽपि मीलिताः पद-बन्धाः २४०० ।

अनिवृत्तौ तु या सूक्ष्मेऽप्येकान्नत्रिंशदाहताः । नवयोगैः शते द्वे स्त एकषष्ट्यधिके तु ताः ॥३४०॥

इत्यनिवृत्तौ २ द्वादशभिर्द्विकोदयैर्हताः २४ । चतुर्भिरेकोदयैः ४ । एवं २८ । सूक्ष्मे एकोदयः एकः १ । एवं २९ । एताः पूर्वप्रकृतयो नवयोगहताः २६१ ।

---

१. 'शढ-षण्ढौ क्लैबे' इत्यनेकार्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वोक्तं मीलने योगैः पदबन्धाः प्रमाणतः । नवतिः स्युः सहस्राणि त्रयः पञ्चाशदप्यमी ॥३४१॥

इति मोहे योगान् प्रति गुणस्थानेषु पदबन्धाः ९००५३ ।

उदयाः पदबन्धाश्च गुणस्थानेषु येषु ये । ते तत्रत्योपयोगघ्नास्ते ते सन्तीह तान् प्रति ॥३४२॥

द्वित्रिसप्तद्विषु ज्ञेया गुणस्थानेषु निश्चयात् । पञ्च षट् सप्त च द्वौ चैवोपयोगा यथाक्रमम् ॥३४३॥

इति गुणस्थानेषूपयोगाः ५।५।६।६।६।७।७।७।७।७।७।२।२। गुणस्थानेषु चाष्टसूदयविकल्पाः पूर्वोक्ताः १९२ । ९६।९६।१९२।१९२।१९२।१९२।९६। अनिवृत्तौ १२।४। सूक्ष्मे १ । इति द्वयोः १७ । इत्येते यथास्वीययोगोपयोगगुणा एतावन्त उपयोगं प्रति उदयविकल्पाः ९६०।४८०।५७६।११५२।११५२। १३४४।१३४४।६७२। सर्वे मीलिताः ७६८० ।

अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे पाकाः सप्तदशोदिताः । हताः सप्तोपयोगैस्ते शतं चैकान्नविंशतिः ॥३४४॥

११९ । मीलिताः ७७९९ ।

मोहोदयविकल्पाः स्युरुपयोगेषु मीलिताः । सर्वे नवनवत्यग्रा शतानां सप्तसप्ततिः ॥३४५॥

इत्युदयविकल्पाः ७७९९ ।

पाकप्रकृतयो याः स्युर्गुणस्थाने यथाष्टसु । उपयोगैर्गुणाः स्वैस्ताः पदबन्धास्तु तान् प्रति ॥३४६॥

इति गुणस्थानेषु पाकप्रकृतयोऽष्टसु १६३२।७६८।७६८।१४४०।१२४८।१०५६।१०५६।४८०। एता यथास्वमुपयोगगुणाः पदबन्धाः ८१६०।३८४०।४६०८।८६४०।७४८८।७३९२।७३९२।३३६० । एते मीलिताः ५०८८० ।

अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे पाकप्रकृतयो हताः । सप्तभिश्चोपयोगैः स्याद्विंशतिस्त्रिभिरन्विताः ॥३४७॥

अत्र पाकप्रकृतयः २९ । सप्तोपयोगहताः २०३ ।

स्युः सर्वेऽप्युपयोगेषु पदबन्धाः प्रमाणतः । सहस्राण्येकपञ्चाशदशीतिश्च त्रिकाधिकाः ॥३४८॥

५१०८३।

लेश्याश्चतुर्षु षट् षट् स्युस्तिस्रस्तिस्रः शुभास्त्रिषु । गुणस्थानेषु शुक्लैका षट्सु निर्लेश्यमन्तिमम् ॥३४९॥

६।६।६।६।३।३।३।१।१।१।१।१।१।०। अत्राष्टसु गुणस्थानेषूदयविकल्पाः १९२।९६।९६।१९२।१९२। १९२।१९२।९६। एतैश्च लेश्यागुणा लेश्यासूदयविकल्पाः ११५२।५७६।५७६।११५२।५७६।५७६।५७६।९६। तथाऽनिवृत्ति-सूक्ष्मयोरुदयाः १७ शुक्ललेश्यागुणाः १७ । सर्वे मीलिताः ५२९७ ।

त्रिपञ्चाशच्छतान्येवं त्रिभिरूनानि निश्चयात् । उदयेषु विकल्पानां स्युर्लेश्याः प्रति मोहने ॥३५०॥

५२९७।

पदबन्धेऽप्यष्टगुणस्थानेषु प्रकृतयः पूर्वोक्ताः १६३२।७६८।७६८।१४४०।१२४८।१०५६।१०५६।४८०। यथास्वं लेश्यागुणाः पदबन्धाः ९७९२।४६०८।४६०८।८६४०।३७४४।३१६८।३१६८।४८०। सर्वे मीलिताः ३८२०८। तथाऽनिवृत्ति-सूक्ष्मयोरुदयप्रकृतयः २९ शुक्ललेश्यागुणाः २९ । एते च मीलिताः ३८२३७ ।

अष्टात्रिंशत्सहस्राणि सप्तत्रिंशच्छतद्वयम् । लेश्यासुद्दिश्य जायन्ते पदबन्धाः प्रमाणतः ॥३५१॥

३८२३७।

मोहे वेदं प्रति उदयविकल्पाः ३७५६ । पदबन्धाश्च २५३६८ । संयमं प्रति उदयविकल्पाः मोहनीयस्य १३७७ । पदबन्धाश्च ७३५३ । सम्यक्त्वं प्रति उदयविकल्पा मोहस्य २५३० । पदबन्धाश्च १५४१८ ।

श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्राग्वाटवणिजा कृते श्रीपालसुतडड्ढेन स्फुटार्थे पञ्चसंग्रहे मोहनीयउदयस्थानप्ररूपणा समाप्ता ।

आद्ये भेदास्त्रयोऽप्येको द्वौ पंच चतुर्ष्वतः । त्रयोऽतो दश चत्वारोऽतस्त्रयो मोहसत्त्वगाः ॥३५२॥

इति मोहे सत्तास्थानसंख्या मिथ्यादृष्ट्यादिषूपशान्तान्तेषु ३।१।२।५।५।५।५।३।१०।४।३।

अष्टसप्तकषट्काग्रा विंशतिः प्रथमे ततः । अष्टाग्रा विंशतिस्तस्मात्सैवाष्टकचतुर्युता ॥३५३॥

मिथ्यादृष्टौ २८।२७।२६। सासने २८। मिश्रे २८।२४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततोऽष्टकचतुस्त्रिद्व्येकाग्रा चैव चतुर्ष्वतः। अपूर्वे विंशतिस्त्वष्टचतुरेकसमन्विताः ॥३५४॥

असंयत-देशव्रत-प्रमत्ताप्रमत्तेषु चतुर्षु २८।२४।२३।२२।२१। अपूर्वोपशमके २८।२४।२१। अपूर्वे क्षपके च २१।

तथाऽष्टचतुरेकाग्रा विंशतिस्तु त्रयोदश। द्वादशैकादशानैव पञ्चकं च चतुष्टयम् ॥३५५॥

त्रयो द्वौ चानिवृत्त्याख्ये सन्त्येव दश[1] सत्तया। सूक्ष्मेऽष्टचतुरेकाग्रा विंशतिस्त्वेक एव च ॥३५६॥

विंशतिश्चोपशान्तेऽपि स्यादष्टचतुरेकयुक्। एकादशसु सन्त्येवं सत्तास्थानानि मोहने ॥३५७॥

इत्यनिवृत्त्युपशमके २८।२४।२१। अनिवृत्तिक्षपके च २१।१३।१२।११।५।४।३।२। सूक्ष्मोपशमके २८।२४।२१। सूक्ष्मक्षपके १। तथोपशान्ते २८।२४।२१।

एवं मोहनीयप्ररूपणा समाप्ता।

मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मान्तगुणस्थानेष्वनुक्रमात्। नामाख्यकर्मसम्बन्धि-बन्धादित्रयमुच्यते ॥३५८॥

आद्ये षड् नव षट् चातस्त्रयः सप्तैक एव च। मिश्रेऽपि द्वौ त्रयो द्वौ चातस्त्रयोऽष्टौ चतुष्टयम् ॥३५९॥

ततो द्वौ द्वौ च चत्वारोऽतो द्वौ पञ्च चतुष्टयम्। चतुष्कैकचतुष्काणि पञ्चैकश्च चतुष्टयम् ॥३६०॥

द्वयोरेकस्तथैकोऽष्टौ[2] शान्ते न पाक-सत्त्वयोः। एकस्तथा चतुष्कं च क्षीणेऽप्येकचतुष्टयम् ॥३६१॥

सयोगे द्वौ चतुष्कं च नियोगे द्वौ च षट् तथा। बन्धनोदयसत्तांशाः सन्ति नाम्नो गुणेष्विति ॥३६२॥

मिथ्यादृष्ट्यादिषु दशसु ६, ९, ६। ३, ७, १। २, ३, २। ३, ८, ४। २, २, ४। २, ५, ४। ४, १, ४। ५, १, ४। १, १, ८। १,१,८। अबन्धकेषूपशान्तादिषु ०, १, ४। ०, १, ४। ०, २, ४। ०, २, ६।

मिथ्यादृष्टौ षडाद्यानि बन्धे पाके नवादितः। विना त्रिनवतिं सत्त्वे स्थानान्याद्यानि नाम्नि षट् ॥३६३॥

बन्धे २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदये २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ९२।९१।९०। ८८।८४।८२।

नवाष्टदशयुग्बन्धे विंशतिः सप्त चोदयाः। स्युर्व्येष्टाग्रसप्ताग्रे विंशती नवतिः सती ॥३६४॥

सासने बन्धाः २८।२९।३०। उदयाः २१।२४।२५।२६।२९।३०।३१। तीर्थकराऽऽहारद्वयसत्कर्मा सासनगुणं न प्रतिपद्यत इति सासने सत्त्वे ९०।

मिश्रेऽष्टनवयुग्बन्धे दशैकादशयुक् तथा। नवाग्राविंशतिः पाके नवतिः सा द्वियुक्सती ॥३६५॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टौ बन्धे २८।२९। उदये २९।३०।३१। तीर्थकृत्सत्कर्मा मिश्रगुणं न प्रतिपद्यत इति तस्य त्र्येकनवती न सत्यौ, शेषे सत्यौ ९२।९०।

नवाष्टदशयुग्बन्धे विंशतिश्चादितोऽयते। द्वितीयोनानि[3] पाकेऽष्ट सत्त्वे चाद्यं चतुष्टयम् ॥३६६॥

असंयते बन्धाः २८।२९।३०। उदयाः २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ९३।९२। ९१।९०।

बन्धे तु विंशती देशे नवाष्टाग्रे तथोदये। एकत्रिंशत्तथा त्रिंशत्सत्त्वे चाद्यं चतुष्टयम् ॥३६७॥

देशयतेः बन्धे २८।२९। उदये ३०।३१। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।

बन्धे नवाष्टयुक्पाके नव सप्ताष्टपञ्चयुक्। विंशतिर्दशयुक्ताद्यं प्रमत्ते सच्चतुष्टयम् ॥३६८॥

प्रमत्ते बन्धे २८।२९। उदये २५।२७।२८।२९।३०। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।

नवाष्टैका दशाग्रा तु दशाग्रा चैकविंशतिः। बन्धे त्रिंशत्तथा पाके सत्त्वे तान्यप्रमत्तके ॥३६९॥

अप्रमत्ते बन्धाः २८।२९।३०।३१। उदये ३०। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।

समके क्षपकेऽपूर्वे बन्धेऽमूयं स्थानपञ्चकम्। उदये तु भवेत्त्रिंशत्सत्त्वे चाद्यं चतुष्टयम् ॥३७०॥

इत्यपूर्वे बन्धे २८।२९।३०।३१।१। उदये ३०। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।

---

१. सत्तया दशस्थानानि इमानि। २. शान्तादिषु बन्धो न। ३. चतुर्विंशत्यूनानि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तांशे चरमेऽपूर्वोऽनिवृत्तिः सूक्ष्म एव च । बध्नन्त्येकं यशः शेषाश्चत्वारः सन्त्यबन्धकाः ॥३७१॥

१।१।१।०।०।०।० ।

अपूर्वादित्रये शान्ते क्षीणे त्रिंशदथोदये । त्रिंशत्सा चैकयुग्योगिन्ययोगाख्ये नवाष्ट च ॥३७२॥

इत्युदयेऽपूर्वादिषु पञ्चसु ३०।३०।३०।३०।३० । सयोगे ३०।३१ । अयोगे ९।८ ।

त्रिषूपशमकेषूपशान्ते चाद्यं चतुष्टयम् । क्षपकेष्वप्यपूर्वे सदनिवृत्तौ च सद्भवेत् ॥३७३॥

षोडशप्रकृतीनां तु यावन्न कुरुते क्षयम् । क्षपितास्वनिवृत्तौ सदशीत्यादिचतुष्टयम् ॥३७४॥

सूक्ष्मादिष्वयोगे च यावद्विचरमक्षणम् । चरमे समयेऽयोगे सत्त्वे दश नवापि च ॥३७५॥

इत्युपशमश्रेण्यामपूर्वादिषु चतुर्षु क्षपकेषु चापूर्वेऽनिवृत्तिप्रथमनवांशे च सत्त्वे ९३।९२।९१।९० । अनिवृत्तिक्षपकशेषनवांशेषु चाष्टसु सूक्ष्म-क्षीण-सयोगेषु निर्योगस्य च द्विचरमसमयं यावत् सत्त्वे ८०।७९। ७८।७७ । चरमसमये चायोगे १०।९ ।

एवं नामप्ररूपणा समाप्ता ।

द्विषडष्टचतुःसंख्या बन्धाः स्युर्नरकादिषु । पाकाः पञ्च नवातोऽतो दश पञ्चाथ सत्तया ॥३७६॥

स्थानानि त्रीण्यतः पञ्च द्वादशातश्चतुष्टयम् । त्रिंशदेकोनिता सा च बन्धे श्वाभ्रेष्वथोदये ॥३७७ ॥

	नरक०	तिर्य०	मनु०	देव०
बं०	२	६	८	४
उ०	५	९	१०	५
स०	३	५	१२	४

एकपञ्चकसप्ताग्राष्टनवाग्रा च विंशतिः । स्थानान्यपि त्रीणि द्वानवत्यादिकानि हि ॥३७८॥

नरकगतौ बन्धे २९।३०। उदये २१।२५।२७।२८।२९ । तीर्थकरयुक्ताहारद्वयसत्कर्मा नरके नोत्पद्यत इति त्रिनवतिं विना सत्त्वे ९२।९१।९० ।

तिर्यक्ष्वाद्यानि षट् बन्धे नवाद्यान्युदये सती । नवतिर्द्वियुता सा चाशीतिश्चाष्टचतुर्द्वियुक् ॥३७९॥

तिर्यग्गतौ बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदये २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । तीर्थकृत्सत्कर्मा तिर्यक्षु नोत्पद्यत इति तेन विना सत्त्वे ९२।९०।८८।८४।८२ ।

सर्वे बन्धा मनुष्येषु चतुर्विंशतिवर्जिताः । सर्वे पाका विनाद्यप्राशीतिं सर्वाणि सत्तया ॥३८०॥

मनुष्यगतौ बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदयाः २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। ९।८। सत्त्वानि ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८०।७९।७८।७७।१०।९।

पञ्च-षड्-नवयुग्बन्धे दशयुक्तापि विंशतिः । पाके नवाष्टसप्ताग्रा पञ्चैकाग्रा च विंशतिः ॥३८१॥

सत्त्वे चाद्यं चतुष्कं तु देवानां स्याद् गताविति । तान्येवातः परं वक्ष्ये हृषीकविषये यथा ॥३८२॥

देवगतौ तु बन्धाः २५।२६।२९।३०। उदयाः २१।२५।२७।२८।२९। सत्त्वानि ९३।९२।९१।९०।

एकाक्षविकलाक्षे च पञ्चाक्षे च यथाक्रमम् । पञ्च पञ्चाष्ट बन्धे स्युः पञ्च षड् दश चोदये ॥३८३॥

क्रमात्स्थानानि सत्तायां पञ्च पञ्च त्रयोदश । एकाक्षेषु त्रि-पञ्चाग्रा षड् नवाग्रा दशाधिका ॥३८४॥

बन्धे स्याद्विंशतिः पाके पञ्चाद्यान्यथ सत्तया । नवतिर्द्वियुता सा चाशीतिश्चाष्टचतुर्द्वियुक् ॥३८५॥

	ए०	वि०	पं०
एक-विकल-पञ्चाक्षेषु बन्धादयः	५	५	८
	५	६	१०
	५	६	१३

एकाक्षेषु बन्धाः २३।२५।२६।२९।३०। उदयाः २१।२४।२५।२६।२७। सत्त्वे ९२।९०।८८।८४।८२।

सन्त्येकेन्द्रियवद्बन्धा विकलाक्षेष्वपि त्रिषु । तथैकेन्द्रियवत्सत्तास्थानान्यपि भवन्ति हि ॥३८६॥

एकत्रिंशत्तथा त्रिंशदेकान्नत्रिंशदप्यतः । एकषट्काष्टकैर्युक्ता विंशतिः स्वस्ति पाकतः ॥३८७॥

विकलेन्द्रियेषु बन्धाः २३।२५।२६।२९।३०। उदयाः २१।२६।२८।२९।३०।३१। सत्त्वानि ९२।९०।८८। ८४।८२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्धाः सर्वेपि पञ्चाक्षे सर्वस्थानानि सत्त्वतः । चतुर्विंशतिहीनाः स्युः पाकाः सर्वेऽपि नामनि ॥२८८॥

पञ्चाक्षे बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ उदयाः २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८। सत्त्वानि ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९।

गत्यादिमार्गणास्वेवं सत्संख्यादिषु चाष्टसु । नाम्नोऽन्येषां च बन्धादित्रयं नेयं यथागमम् ॥२८९॥

५ ८
स्थावराणां त्रसानां च ५ १० स्थावराणां बन्धाः २३।२५।२६।२९।३०। उदयाः २१।२४।२५।
५ १३

२६।२७। सत्तास्थानानि ९२।९०।८८।८४।८२। त्रसेषु बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदयाः २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८। सत्त्वानि ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९।

८ ८ ६ ४ ४ २ २ ६
योगेषु बन्धादयः— ३ ७ ५ ३ १ ३ १ ९ । मनोवाग्योगे बन्धाः २३।
१० ११ ११ ४ ४ २ १ ११

२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदयाः २९।३०।३१। सत्त्वानि ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८०।७९।७८।७७। औदार्ये बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदयाः २५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। औदारिकमिश्रे बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयाः २४।२६।२७।३०।३१। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। वैक्रियिके बन्धाः २५।२६।२९।३०। उदयाः २७।२८।२९। सत्त्वे ९३।९२।९१।९० वैक्रियिकमिश्रे बन्धाः २५।२६।२९।३०। उदये २५। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०। आहारके बन्धौ २८।२९। उदयाः २७।२८।२९। सत्त्वे ९३।९२। आहारकमिश्रे बन्धौ २८।२९। उदये २५। सत्त्वे ९३।९२। कार्मणे बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदयाः २१।३०।३१। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।

८
स्त्रीवेदे बन्धादयः ८। स्त्रीवेदे बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदये २१।२५।२६।२७।
९

८
२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७७। पुंवेदे बन्धादयः ८। पुंवेदे बन्धाः
१०

२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदये २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।

८
८४।८२।८०।७९।७८।७७। नपुंसकवेदे बन्धादयः ९। बन्धे २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदये २१।
९

२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७७।

८
क्रोधादिचतुष्के बन्धादयः ९। क्रोधादिचतुष्के बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदयाः
११

२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ९३-९२-९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।

६ ६ ५ ५ ०
ज्ञाने बन्धादयः ९ ३ ८ १ ४ । मति-श्रुताज्ञानयोर्बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।
६ २ ८ ८ ६

३०। उदये २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ९२।९१।९०।८८।८४।८२। विभङ्गे बन्धाः २३। २५।२६।२८।२९।३०। उदयाः २९।३०।३१। सत्त्वे ९२।९०। मतिश्रुतावधिषु बन्धाः २८।२९।३०।३१।१। उदयाः २१।२५।२६।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७। मनःपर्यये बन्धाः २८। २९।३०।३१।१। उदये ३०। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७। केवले बन्धो नास्ति । उदयाः ३०। ३१।९।८। सत्त्वे ८०।७९।७८।७७।१०।९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामयिक-छेदोपस्थापनयोर्बन्धादयः ५ ५ ८ । सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्बन्धाः २८।२९।३०।३१।१। उदये २५।२७।२८।२९।३०। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७। परिहारे बन्धादयः ४ १ ४ । बन्धाः २८।२९।३०।३१। उदये ३०। सत्तायां ९३।९२।९१।९०। सूक्ष्मसंयमे बन्धादयः १ १ ८ । बन्धः १ उदये ३०। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७। यथाख्याते बन्धो नास्ति। उदयादयः ० ४ १० । उदयाः ३०। ३१।९।८। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७।१०।९। संयमासंयमे बन्धौ २—२८।२९। उदये २—३०।३१। सत्त्वे ४—९३।९२।९१।९०। असंयमे बन्धे ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदये ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। असंयमे सत्त्वे ७—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।

चक्षुर्दर्शने बन्धाः—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदये ८—२१।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। सत्त्वेषु दश-नववर्जशेषैकादश ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। अचक्षुर्दर्शने बन्धाः ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदयाः ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। अवधि-केवलदर्शनयोरवधि-केवलज्ञानवत् ।

	षट्सु	ते०	प०	शु०
लेश्याषट्के बन्धादयः—	६	६	४	५
	९	८	८	८
	७	४	४	८

प्रथमलेश्यात्रये बन्धाः २३।२५।२६।२८।२९।३०। उदये २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२। तेजसि बन्धाः २५।२६।२८।२९।३०।३१। उदये २१।२५।२६।२७। २८।२९।३०।३१ । सत्त्वे ९३।९२।९१।९० । पद्मायां बन्धाः २८।२९।३०।३१ । उदये सत्त्वे च तेजोलेश्या-वत् । शुक्लायां बन्धे २८।२९।३०।३१।१ । उदये २१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वे ९३।९२।९१। ९०।८०।७९।७८।७७ । निर्लेश्ये उदये २—९।८ । सत्त्वे ६—८०।७९।७८।७७।१०।९ ।

भव्ये बन्धाः ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदयाः ११—२१।२४।२५।२६।२७।२८। २९।३०।३१।९।८ । सत्त्वे १३—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९ । अभव्ये बन्धाः ६—२३।२५।२६।२८।२९।३० । उदये ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वे ४—९०।८८। ८४।८२ ।

औपशमिकसम्यक्त्वे बन्धाः ५—२८।२९।३०।३१।१। उदये ५—२१।२५।२९।३०।३१ । सत्त्वे ४—९३।९२।९१।९० । वेदके बन्धाः ४—२८।२९।३०।३१ । उदये ८—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०। ३१ । वेदकसत्त्वे ४—९३।९२।९१।९० । क्षायिके बन्धाः ५—२८।२९।३०।३१।१ । उदयाः १०—२१। २५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९।८ । सत्त्वे १०—९३।९२।९१।९०।८०।७९।७८।७७।१०।९ । सासने बन्धाः ३—२८।२९।३० । उदये ७—२१।२४।२५।२६।२९।३०।३१ । सत्त्वे १—९० । मिश्रे बन्धाः २—२८।२९ । उदये ३—२९।३०।३१। सत्त्वे २—९२।९० । वामदृग्बन्धाः ६—२३।२५।२६।२८।२९।३० । उदयाः ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ । सत्त्वे ६—९२।९१।९०।८८।८४।[८२ ।]

संज्ञिषु बन्धाः ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१ । उदयाः ८—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०। ३१ । सत्त्वानि ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७ । असंज्ञिषु बन्धाः ६—२३।२५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६।२८।२९।३०। उदयाः ६—२१।२६।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ५—९२।९०।८८।८४।८२। नो संज्ञी नो असंज्ञी, तत्र उदयाः ४—३०।३१।९।८। सत्त्वे ६—८०।७९।७८।७७।१०।९।

आहारके बन्धाः ८—२३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। उदयाः ८—२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१। सत्त्वे ११—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७। अनाहारे बन्धाः ६—२३।२५।२६।२८।२९।३०। उदये ५—२१।३०।३१।९।८। सत्त्वे १३—९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२।८०।७९।७८।७७।१०।९।

मिथ्यात्वं श्वभ्रदेवायुर्द्वयमायुस्तिरश्च्यापि। सातासाते नरायूंषि स्त्यानगृद्धित्रिकं च षट् ॥३९०॥
सम्यक्त्वं वेदलोभोऽन्यो निद्रा च प्रचलायुता। पञ्चज्ञानावृतौ दृग्धु-चतुष्कं विघ्नपञ्चकम् ॥३९१॥
षोडश त्रस-पञ्चाक्षे नृगतिः सुभगं यशः। पर्याप्तबादरादेयतीर्थकृत्त्वोच्चयुग्मदश ॥३९२॥
मिश्रसासादनापूर्वोपशान्तगतयोगकान्। मुक्त्वाऽन्येषु विशेषः स्यादासां मिथ्यादृगादिषु ॥३९३॥
१।०।०।२।१।६।१।०।३।१।०।१६।१०।०। मीलिताः ४१।
चत्वारिंशतमेकाग्रां मुक्त्वैनां सर्वकर्मणाम्। स्वाम्यं प्रति विशेषोऽस्ति नोदयोदीरणास्ततः ॥३९४॥
४१।

विना तीर्थकराहारं शतं सप्तदशाधिकम्। मिथ्यादृक् शतमेकाग्रं प्रकृतीः सासनाभिधः ॥३९५॥
मिश्रायतौ तु बध्नीतश्चतुःसप्तप्रसप्तती। पञ्चमः सप्तषष्टिं तु षष्ठः षष्टिं त्रिकाधिकाम् ॥३९६॥
अप्रमत्तस्तथैकाग्रपष्टिं चापूर्वसंज्ञिकः। पञ्चाशदष्टषट्काग्रा विंशतिः षड्युतेरयम् ॥३९७॥
यावदष्टादशैकैकहीनां द्वाविंशतिं क्रमात्। अनिवृत्तिस्तु बध्नाति सूक्ष्मः सप्तदशैव तु ॥३९८॥
प्रशान्तक्षीणमोहौ तु मतौ सातस्य बन्धकौ। सातं बध्नाति योगी च गतयोगस्त्वबन्धकः ॥३९९॥

[मिथ्यादृगादिसप्तसु]	११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	। अपूर्वे	५८	५६
	१६	२५	०	१०	४	६	१		२	३०

२६	। अनिवृत्तौ	२२	२१	२०	१९	१८	सूक्ष्मादिषु	१७	१	१	१	०	।
४		१	१	१	१	१		१६	०	०	०	०	

अतः प्रभृति बन्धस्य स्वाम्यं गत्यादिषु स्फुटम्। उद्यतः साधयेदत्र यथाप्रकृतिसम्भवम् ॥४००॥
श्वभ्रदेवायुषी तीर्थकरतेति गतित्रये। सन्ति प्रकृतयः शेषाः सर्वा गतिचतुष्टये ॥४०१॥
श्वभ्रायुर्नास्ति देवेषु देवायुर्नारकेषु न। तिर्यक्षु तीर्थकृन्नास्ति सन्त्यन्याः सर्वरीतिषु ॥४०२॥
आदिमं तु कषायाणां चतुष्कं दर्शनत्रयम्[1]। प्रशान्तमव्रताद्यावदपूर्वं मोहने विदुः ॥४०३॥
षण्डस्त्रीनोकषायाः पुंवेदो द्वौ द्वौ क्रुधादिषु। एकैकोऽतश्च संज्वाल उपशान्ता यथाक्रमम् ॥४०४॥

उक्तं च—

शक्यं यन्नोदये दातुमुपशान्तं तदुच्यते। सङ्क्रमोदययोर्यच्च नो शक्यं तन्निवर्तकम् [तन्निधत्तकम्] ॥४०५॥
यत्सङ्क्रमोदयोत्कर्षापकर्षेषु चतुर्ष्वपि। दातुं न शक्यते कर्म भवेत्तच्च निकाचितम् ॥४०६॥

[अनिवृत्तौ] ७।१।१।६।१।२।२।२।२।१।१। सूक्ष्मे १। उपशान्ते १। एते मीलिताः सप्तभिः सह २८।

एता एव समुदिता आह—

उपशान्तास्तु सप्ताष्ट नव पञ्चदश क्रमात्। षोडशाष्टादशातोऽपि विंशतिर्द्वियुक् च सा ॥४०७॥
चतुः पञ्चकषट्काग्रा विंशतिश्चानिवृत्तके। सप्ताग्रा विंशतिः सूक्ष्मे शान्तेऽष्टाग्रा च विंशतिः ॥४०८॥

अनिवृत्तौ ७।८।९।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२५।२६। सूक्ष्मे २७। उपशान्ते २८।

चतुर्षु संयताद्येषु क्याप्यनन्तानुबन्धितः। मिथ्यात्वं मिश्र-सम्यक्त्वे सप्त यान्ति क्षयं क्रमात् ॥४०९॥
स्त्यानगृद्धित्रयं श्वभ्रं द्विकं तिर्यग्द्वयं तथा। एकाक्षविकलाक्षाणां जातयः स्थावरातपौ ॥४१०॥

---

१. मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्वमिति त्रयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मसाधारणोद्योताः षोडशैत्यनिवृत्तिके । स्युः संख्येयतमे शेषे क्षयभाजस्ततश्च सः ॥४११॥

अत्र तिर्यग्द्वयादयः तिर्यग्गतिसहगताः ११ । श्वभ्रद्वयादयः श्वभ्रगतिसहगताः ५ ।

कषायान्माध्यमानष्टौ हन्त्यतोऽपि नपुंसकम् । स्त्रीवेदं च ततो हन्ति षट्कं हास्यादिकं ततः ॥४१२॥
पुंस्त्वे प्रक्षिप्य पुंस्त्वं च क्रोधे माने च तं पुनः । मायायां तं च तां लोभे लोभं सूक्ष्मो निहन्त्यतः ॥४१३॥
द्वे निद्रा-प्रचले क्षीणः समये हन्त्युपान्तिमे । दृक्चतुष्कमथो विघ्न-ज्ञानावृत्योर्दशान्तिमे ॥४१४॥

२।१४।

देवगत्या नृगत्या च सहितो हन्त्ययोगकः । जीवेतरविपाकाद्या नीचं चोपान्तिमे क्षणे ॥४१५॥

अत्र सर्वाः ७२ ।

जीवपाकाः स्वरद्वन्द्वमुच्छ्वासो द्वे नभोगती । वेद्यमेकमनादेयायशोऽपर्याप्तदुर्भगम्[1] ॥४१६॥
स्युः पुद्गलोदयाः पञ्च देहास्तद्बन्धनानि च । तत्संघातास्ततः षट् संस्थानान्यशुभं शुभम् ॥४१७॥
अङ्गोपाङ्गत्रयं चाष्टौ स्पर्शाः संहननानि षट् । पञ्च वर्णा रसाः पञ्च गन्धौ निर्मित्स्थिरद्वयम् ॥४१८॥
उपघातोऽन्यघातश्च प्रत्येकागुरुलघ्वपि । देवगत्या सहैतासु देवद्वन्द्वं च नीचकम् ॥४१९॥
एवं द्वासप्ततिः क्षीणाः समये स्यादुपान्तिमे । अन्ते त्वन्यतरद्वेद्यं नरायुर्नृद्वयं त्रसम् ॥४२०॥
सुभगादेयपर्याप्तपञ्चाक्षोच्चयशांसि च । बादरं तीर्थकृच्चेति यस्यायोगः स वंद्यते ॥४२१॥

७२।१३।

प्राप्तोऽथ स जगत्प्रान्तं निर्विशत्यात्मसम्भवम् । रत्नत्रयफलं नित्यं सिद्धिसौख्यं निरञ्जनम् ॥४२२॥
दुरध्येयातिगम्भीरं महार्थाद् दृष्टिवादतः । कर्मणामनुसर्तव्याः सन्ति बन्धोदयाः स्फुटम् ॥४२३॥
स्वल्पागमतया किञ्चिद्यदपूर्णमिहोदितम् । कृत्वा तदतिसम्पूर्णं कथयन्तु बहुश्रुताः ॥४२४॥
संक्षिप्योक्तमिदं कर्मप्रकृतिप्राभृतं सदा । अभ्यसन् पुरुषो वेत्ति स्वरूपं बन्ध-मोक्षयोः ॥४२५॥
अष्टकर्मभिदः शीतीभूता नित्या निरञ्जनाः । लोकाग्रवासिनः सिद्धा जयन्त्वष्टगुणान्विताः ॥४२६॥

उक्तं च—

जीवस्थान-गुणस्थान-मार्गणास्थानतत्त्ववित् । तपोनिर्जीर्णकर्मात्मा विमुक्तः सुखमृच्छति ॥४२७॥
श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्राग्वाटवणिजा कृते । श्रीपालसुतडड्ढेन स्फुटार्थः पञ्चसंग्रहे ॥४२८॥

इति सप्ततिः समाप्ता ।

---

१. एता जीवविपाकाः १० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्ततिका-चूलिका

अभिवन्द्य जिनं वीरं त्रिदशेन्द्रनमस्कृतम् । बन्धस्वामित्वमोघेन विशेषेण च वर्ण्यते ॥१॥
शते सप्तदशैकाग्रे चतुः सप्तासप्तती । सप्तषष्टिं त्रिषष्टिं चैकाग्रषष्टिमथादिमा ॥२॥
सप्त बध्नन्त्यपूर्वाख्याः षष्टिं द्विचतुरूनिताम् । षड्विंशतिं गुणान्त्ये चानिवृत्तिः प्रकृतीः क्रमात् ॥३॥
द्वयेकाग्रविंशती तां च ते चैवैकद्विरिक्तते । सूक्ष्मः सप्तदशान्येऽतस्त्रयः सातं न तत्परः[1] ॥४॥
अबन्धा मिश्रसम्यक्त्वे बन्ध-संघातका दश । स्पर्शे सप्त तथैकश्च गन्धेऽष्टौ रस-वर्णयोः ॥५॥

इत्यबन्धप्रकृतयः २८ । शेषा बन्धप्रकृतयः १२० ।

सम्यक्त्वं तीर्थकृत्वस्याहारयुग्मस्य संयमः । बन्धहेतुः प्रबध्यन्ते शेषा मिथ्यादिहेतुभिः ॥६॥

इति मिथ्यादृष्टौ १६/११७ । सासने २५/१०१ । नरसुरायुर्भ्यां विना मिश्रे ०/७४ । तीर्थंकर-नर-सुरायुर्भिः सहासंयते १०/७७ । देशे ४/६७ । प्रमत्ते ६/६३ । आहारद्वयेन सहाप्रमत्ते १/५९ । अपूर्वे सप्तसु भागेषु २ ०/५ ५६ ०/५६ ०/५६ ०/५६ ३०/५६ ४/२६ अनिवृत्तौ पञ्चसु भागेषु १/२२ १/२१ १/२० १/१९ १/१८ सूक्ष्मादिषु १६/१७ ०/१ ०/१ १/१ ०/० ।

मिथ्यात्वं षण्ढवेदश्च श्वभ्रायुर्निरयद्वयम् । चतस्रो जातयश्चाद्याः सूक्ष्मं साधारणतपौ ॥७॥
अपर्याप्तमसम्प्राप्तं स्थावरं हुण्डमेव च । षोडशेति स मिथ्यात्वे विच्छिद्यन्ते हि बन्धतः ॥८॥

१६।

स्त्यानगृद्धित्रयं तिर्यगायुराद्याः कषायकाः । तिर्यग्द्वयमनादेयं स्त्री नीचोद्योतदुःस्वराः ॥९॥
संस्थानस्याथ संहत्याश्चतुष्के द्वे तु मध्यमे । दुर्भगासत्त्वभोरीती सासने पञ्चविंशतिः ॥१०॥

इत्युत्तरत्रापि पञ्चविंशतिग्रहणेनैता एव ग्राह्याः ।

२५।

चतस्रो जातिकाः सूक्ष्मापर्याप्तस्थावरातपान् । साधारणं सुरश्वभ्रायुष्के श्वभ्रसुरद्वये ॥११॥
विक्रियाहारकद्वन्द्वे मुक्त्वाऽन्यच्छतमेकयुक् । श्वाभ्रा बध्नन्ति ता मिथ्यादृशस्तीर्थंकरं विना ॥१२॥
हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वषण्ढोनास्त्यासु सासनः । त्यक्त्वैताभ्यो मनुष्यायुरोघोक्तां पञ्चविंशतिम् ॥१३॥
शेषा मिश्रोऽयतस्तासु नरायुस्तीर्थकृद्युताः । इति श्वभ्रत्रिकेऽस्त्याद्ये विना तीर्थकृतापरे ॥१४॥

इति सामान्येन नारकेषु १०१/१९ । मिथ्यादृष्टौ १००/२० । सासने ९६/२४ । मिश्रे ७०/५० । असंयते ७२/४८ । इति त्रिषु नरकेषु । अनन्तरेषु च त्रिष्वेता एव तीर्थंकरोनाः सामान्येन १००/२० । मिथ्यादृष्टौ १००/२० । सासने ९६/२४ । मिश्रे ७०/५० । असंयते ७१/४९ ।

शतं च सप्तमे श्वभ्रे बध्नन्त्यूनं नरायुषा । ता मनुष्यद्वयोच्चोना बध्नन्ति वामदृष्टयः ॥१५॥
हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वतिर्यगायुर्नपुंसकम् । त्यक्त्वैकनवतिं शेषास्ताभ्यो बध्नन्ति सासनाः ॥१६॥
तिर्यगायुर्विना पञ्चविंशतिं सासनोज्झिताम् । त्यक्त्वा मिश्रायतौ क्षिप्त्वा नृद्वयोच्चे तु सप्ततिम् ॥१७॥

इति चतुर्थपृथिवीप्रकृतिशतं नरायुरूनं सप्तमे नरके सामान्येन ९९ । मिथ्यादृष्टौ ९६ । सासने ९१ । मिश्रे ७० । असंयते ७० ।

एवं नरकगतिः समाप्ता ।

---

१. सातं न बध्नाति अयोगकः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यञ्चः प्रकृतीस्तीर्थकराऽऽहारद्वयोनिताः । मिथ्यादृशश्च तास्तासु सासनाः षोडशोनिताः ॥१८॥

सामान्येन तिर्यञ्चः $\frac{११७}{३}$ । पर्याप्ततिर्यञ्चस्तिरश्च्यश्च मिथ्यादृशः $\frac{११७}{३}$ । सासनाः $\frac{१०१}{१६}$ ।

पञ्चविंशतिमोघोक्तां नृद्वयं नृसुरायुषाम् । औदार्यद्वन्द्वमाद्यं च त्यक्त्वा संहननं तथा ॥१९॥

एताभ्योऽन्यासु मिश्राह्वा बध्नन्त्येकान्नसप्ततिम् । बध्नन्त्यसंयताभिख्याः संयुक्तास्ताः सुरायुषा ॥२०॥

मिश्रायतौ $\frac{६९}{५१}$ । $\frac{७०}{५०}$ ।

हीना द्वितीयकोपाद्यैस्ताश्च बध्नन्त्यणुव्रताः । एवं पञ्चाप्यपर्याप्तास्तिर्यञ्चस्तस्त्रियोऽपि च ॥२१॥

संयतासंयताः ६६ ।

स्त्रौघादपूर्णतिर्यञ्चस्त्यक्त्वाश्वभ्र-सुरायुषी । तथा वैक्रियषट्कं च बध्नन्ति नवयुक्छतम् ॥२२॥

१०९

एवं तिर्यग्गतिः समाप्ता ।

तिर्यग्वत्प्रकृतीर्मर्त्याः पञ्च मिथ्यादृगादयः । बध्नन्त्ययनदेशाख्यौ तेषु तीर्थकराधिकाः ॥२३॥

अपर्याप्तमनुष्याश्च तिर्यग्वन्नवयुच्छतम् । बध्नन्त्यतः प्रमत्ताद्याःप्रकृतीरोघसम्भवा ॥२४॥

इति सामान्यमनुष्याः १०१ । पर्याप्तमनुष्या मानुष्यश्च मिथ्यादृष्ट्याद्याः पञ्च ११७।१०१।६९।७१। ६७ । प्रमत्ताद्याः सप्त ६३।५९।५८।५६।२६।२२।१७।१।१।१।० । अपर्याप्तमनुष्याः १०९ ।

इति मनुष्यगतिः समाप्ता ।

सूक्ष्मं साधारणाहारद्वये श्वाभ्र-सुरायुषी । षट्कं वैक्रियिकाह्वं चापर्याप्तं विकलत्रयम् ॥२५॥

मुक्त्वाऽन्याः प्रकृतीर्देवाश्चतुर्युक्तशतप्रमा । बध्नन्ति तीर्थकृत्वोना मिथ्यादृक् त्र्युत्तरं शतम् ॥२६॥

हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वस्थावरैकेन्द्रियातपान् । षण्ढं चाभ्योऽपि मुक्त्वान्या बध्नन्ति सासनाभिधाः ॥२७॥

इति सामान्यदेवा १०४ । मिथ्यादृष्टिः १०३ । सासने ९६ ।

त्यक्त्वैताभ्यो मनुष्यायुरोघोक्तां पञ्चविंशतिम् । शेषा मिश्रोऽयतस्तास्तु नरायुस्तीर्थकृद्युताः ॥२८॥

मिश्रे ७० । असंयता ७२ ।

बध्नन्ति वामदृष्ट्याश्चत्वारोऽसंयतान्तिमाः । देवौघं तीर्थकृत्वोनं ज्योतिर्व्यन्तरभावनाः ॥२९॥

देवा देव्यश्च देव्यश्च सौधर्मसानसम्भदाः । सामान्यदेवभङ्गास्तु सौधर्मैशचनकल्पयोः ॥३०॥

इति भावनादिषु त्रिषु तद्देवीषु च सोधर्मैशानदेवीषु च सामान्येन १०३ । मिथ्यादृगादिषु १०३ । ९६।७०।७१। सोधर्मैशानयोः सामान्येन १०४ । मिथ्यादृगादिषु १०३।९६।७०।७२ ।

त्यक्त्वा बध्नन्ति देवौघादेकाक्षस्थावरातपान् । शेषाः सनत्कुमाराद्याः सहस्रारान्तिमाः सुराः ॥३१॥

सामान्येन १०१।

मिथ्यादृक् तीर्थकृत्त्वोनास्ता बध्नाति शतप्रमाः । हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वषण्ढोनास्तास्तु सासनः ॥३२॥

१००।९६।

त्यक्त्वाऽऽभ्योऽपि मनुष्यायुरोघोक्तां पञ्चविंशतिम् । शेषा मिश्रोऽयतस्तास्तु नरायुस्तीर्थकृद्युताः ॥३३॥

७०।७२।

तिर्यग्द्वयातपोद्योतस्थावरैकाक्षमोघतः । देवानां तिर्यगायुश्च त्यक्त्वाऽन्याश्चानतादिषु ॥३४॥

अन्त्यग्रैवेयकान्तेषु तीर्थोना वामदृक् च ताः । हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वषण्ढोनास्तासु सासनाः ॥३५॥

इत्यानतादिषु सामान्येन ९७ । तीर्थोना मिथ्यादृशः ९६ । सासनाः ९२ ।

त्यक्त्वेताभ्यो मनुष्यायुरोघोक्तां पञ्चविंशतिम् । मिश्रास्तिर्यग्द्वयोद्योततिर्यगायुभिरूनिताम् ॥३६॥

मिश्राः ७०।

बध्नन्त्येता मनुष्यायुस्तीर्थकृत्संयुजोऽयताः । एता एव च बध्नन्ति सर्वेऽप्युपरिमाः सुराः ॥३७॥

असंयताः ७२ । एता एवानुदिशप्रभृति यावत् सर्वार्थसिद्धिदेवाः ७२ ।

एवं देवगतिः समाप्ता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्त्वा वैक्रियिकषट्कतीर्थे श्वभ्र-सुरायुषी । आहारकद्वयं बध्नन्त्येकाक्षविकलेन्द्रियाः ॥३८॥

११

श्वभ्रायुः श्वभ्रयुग्मोनास्त्यक्त्वौघोक्तास्तु षोडश । ताभ्योऽन्याः सासना बध्नन्त्याद्यं पञ्चेन्द्रियाभिधाः ॥३९॥

एकाक्षविकलेन्द्रियाः सामान्येन १०९/११ । मिथ्यादृशः १०९/११ । सासनाः ९६ । पञ्चाक्षाः १२० ।

एकाक्ष-विकलाक्षेषु समुत्पन्नस्तु सासनः । न शरीरेऽपि पर्याप्तिं समापयति यत्ततः ॥४०॥

नरायुस्तिर्यगायुश्च नैव बध्नात्यसौ ततः । ताभ्यां विनाऽस्य बन्धे स्याच्चतुर्नवतिरेव हि ॥४१॥

इति केषाञ्चित् ९४।

इतीन्द्रियमार्गणा समाप्ता ।

एकाक्षवच्च बध्नन्ति पृथिव्यप्तरुकायिकाः । मिथ्यादृशस्तथैकाक्षसासनैः सासनाः समम् ॥४२॥

त्रिषु कायेषु मिथ्यादृष्टयो १०९ । सासने ९६ । अथवा ९४ ।

मनुष्यायुर्नरद्वन्द्वमुच्चं तेजोऽनिलाङ्गिनाम् । त्यक्त्वैकाक्षौघतः शेषाः बध्नन्त्योघं त्रसाङ्गिनः ॥४३॥

तेजोवातकायिका मिथ्यादृष्टयो बध्नन्ति १०५ । ओघं त्रसकायिकाः १२० ।

एवं कायमार्गणा समाप्ता ।

ओघभङ्गोऽस्ति योगेषु वाङ्मानसचतुष्कयोः । सामान्यनरभङ्गेषु योगेऽस्त्यौदारिकाह्वये ॥४४॥

औदारिके ११७।१०१।६९।७१ उपर्योघः ।

श्वभ्रदेवायुषी श्वभ्रद्वयमाहारकद्वयम् । त्यक्त्वौदारिकमिश्राह्वे योगे बध्नन्ति चापराः ॥४५॥

इति सामान्येनौदारिकमिश्रे ११४ ।

त्यक्त्वैताभ्यः सुरद्वन्द्वं तीर्थकृद् वैक्रियिकद्वयम् । मिथ्यादृशस्तु बध्नन्ति प्रकृतीर्नवयुक् शतम् ॥४६॥

१०९

श्वभ्रायु-श्वभ्रयुग्मोनास्त्यक्त्वौघोक्तास्तु षोडश । तिर्यङ्-नरायुषी चाभ्यस्त्यक्त्वाऽन्याः सासनाभिधाः ॥४७॥

९४।

त्यक्त्वाऽभ्यस्तिर्यगायुष्कविहीनां पञ्चविंशतिम् । तीर्थं विक्रियदेवाह्वे युग्मे प्रक्षिप्य निर्व्रताः ॥४८॥

७५। तथौदारिकमिश्रे योगे सयोगः शतम् १ ।

सामान्यदेवभङ्गेषु योगे वैक्रियिकाह्वये । तिर्यङ्-नरायुरूनास्ता मिश्रे वैक्रियिके पराः ॥४९॥

वैक्रियिके सामान्येन १०४ । मिथ्यादृष्ट्यादिषु १०३।९६।७०।७२। वैक्रियिकमिश्रे सामान्येन १०२ ।

तीर्थोनौघस्ताश्च मिथ्यादृक् स्थावरैकेन्द्रियातपान् । हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वषण्ढास्त्यक्त्वा च सासनः ॥५०॥

मिथ्यादृष्टिः १०१ । सासनः ९४ ।

पञ्चविंशतिमेताभ्यस्त्यक्त्वोनां तिर्यगायुषा । प्रक्षिप्य तीर्थकृन्नाम शेषा बध्नन्त्यसंयताः ॥५१॥

७१ ।

प्रमत्तवच्च बध्नन्त्याहाराहारकमिश्रयोः । आयुश्चतुष्टयश्वभ्रद्वयाहारद्वयैर्विना ॥५२॥

बध्नन्ति कार्मणे योगे शेषा मिथ्यादृशस्त्रिवमाः । तीर्थकृद्विक्रियद्वन्द्वदेवद्वयविवर्जिताः ॥५३॥

आहारकाहारकमिश्रयोः ६३ । सामान्येन कार्मणकाययोगे ११२ । मिथ्यादृशः १०७ ।

श्वभ्रायुः श्वभ्रयुग्मोनास्त्यक्त्वौघास्ताश्च षोडश । ताभ्योऽन्याः सासनाभिख्या योगे बध्नन्ति कार्मणे ॥५४॥

पञ्चविंशतिमेताभ्यस्त्यक्त्वोनां तिर्यगायुषा । तीर्थविक्रियदेवाह्वे युग्मे प्रक्षिप्य निर्व्रताः ॥५५॥

सासनाः ९४।७५ । सयोगः सातं प्रतर-लोकपूरणयोः १ ।

एवं योगमार्गणा समाप्ता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघो वेदत्रयेऽप्यस्ति यावदेकान्नविंशतेः । बन्धकोऽस्त्यनिवृत्ताख्यः सन्त्यवेदास्ततोऽपरे[1] ॥५६॥

एवं वेदमार्गणा समाप्ता ।

क्रुन्मानवञ्चनालोभेष्वोघो मिथ्यादृगादिषु । तावद्यावत्तु बन्धान्तमनिवृत्तौ क्रमेण तु ॥५७॥

इति चतुःकषायाणां सामान्येन १२० । विशेषेण क्रोधमानमायाकषायाणां यथाक्रमं मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदेकविंशति-विंशत्येकान्नविंशत्यष्टादशबन्धकानिवृत्तयः तावदोघभङ्गः । लोभकषायिणां सूक्ष्मसाम्परायचरम-समयं यावत्तावदोघः । अकषायिणामप्युपशान्तक्षीणसयोगायोगानामोघः ।

एवं कषायमार्गणा समाप्ता ।

अज्ञानत्रितयेऽप्योघो मिथ्यादृक्-सासनाख्ययोः । नवस्वसंयताद्येषु स्वोघो मत्यादिकत्रिके ॥५८॥

स्यान्मनःपर्ययेऽप्योघः प्रमत्तादिषु सप्तसु । केवलस्याप्यथौघः स्याज्जिनयोर्योग्ययोगयोः ॥५९॥

इति सामान्यमत्यज्ञानि-श्रुताज्ञानि-विभङ्गज्ञानिषु ११७ । मिथ्यादृष्टौ ११७ । सासने १०१ । शेषं सुगमम् ।

एवं ज्ञानमार्गणा समाप्ता ।

ओघः सामायिकाख्यस्य छेदोपस्थापनस्य च । आद्ये यतिचतुष्केऽस्ति परिहारस्य चाद्ययोः ॥६०॥

सूक्ष्मवृत्तस्य सूक्ष्माख्येऽथाख्यातस्य चतुर्ष्वतः । देशाख्ये देशवृत्तस्यासंयमस्य चतुष्टये ॥६१॥

एवं संयममार्गणा समाप्ता ।

द्वादशस्वादिमेष्वोघो दृष्टेश्चक्षुरचक्षुषोः । स्यादोघोऽवधिदृष्टेश्च नवस्वसंयतादिषु ॥६२॥

ओघः केवलदृष्टेश्च भवेत्केवलिनो द्वये ।

इति दर्शनमार्गणा समाप्ता ।

कृष्णा नीलाऽथ कापोता लेश्यात्रितयमादिमम् ॥६३॥

आद्यलेश्यात्रयोपेता बध्नन्त्याहारकद्वयम् । त्यक्त्वान्यास्तीर्थकृत्वोनास्तासु मिथ्यादृगाह्वयाः ॥६४॥

सासनाः षोडशोनास्ता मिश्राह्वाः पञ्चविंशतिः । नरदेवायुषी चाभ्यस्त्यक्त्वा बध्नन्ति चापराः ॥६५॥

तीर्थकृन्नरदेवायुः संयुक्तास्तास्वसंयताः । तेजोलेश्यासु बध्नन्त्यपर्याप्तं विकलत्रयम् ॥६६॥

श्वभ्रायुः श्वभ्रयुग्मं च सूक्ष्मं साधारणं तथा । त्यक्त्वान्या वामदृष्टिस्तास्तीर्थाहारद्वयोनिताः ॥६७॥

इति कृष्णनीलकापोतलेश्याः सामान्येन ११८ ।

मिथ्यादृष्टयः ११७ । सासनाः १०१ । मिश्राः ७४ । असंयताः ७७ । तेजोलेश्याः सामान्येन १११ । मिथ्यादृष्टयः १०८ ।

हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वस्थावरैकेन्द्रियातपान् । षण्ढं चाभ्योऽपि मुक्त्वाऽन्या बध्नन्ति सासनाभिधाः ॥६८॥

१०१ ।

पञ्चस्वतो भवेदोघः सम्यग्मिथ्यादृगादिषु ।

पञ्चस्वोघः ७४।७७।६७।६३।५९ ।

पद्मलेश्यास्वबध्नन्ति श्वभ्रायुर्निरयद्वयम् ॥६९॥

सूक्ष्मसाधारणैकाक्षस्थावरं विकलत्रयम् । तथाऽऽतपसपर्याप्तं त्यक्त्वाऽन्याः शतमष्टयुक् ॥७०॥

सामान्यपद्मलेश्याः १०८ ।

मिथ्यादृशस्तु तास्तीर्थकराहारद्वयोनिताः । हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वषण्ढोनास्तासु सासनाः ॥७१॥

मिथ्यादृशः १०५ । सासनाः १०१ ।

पञ्चस्वतो भवेदोघः सम्यग्मिथ्यादृगादिषु । शुक्ललेश्यासु बध्नन्ति स्थावरं विकलत्रयम् ॥७२॥

तिर्यक्-श्वभ्रायुषी सूक्ष्मापर्याप्ते नरकद्वयम् । साधारणातपोद्योतां तिर्यग्द्वयमेकेन्द्रियम् ॥७३॥

---

१. अवेदा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यक्त्वाऽन्या वामदृष्टिस्तास्तीर्थाहारद्वयोनिता । हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्वषण्ढोनास्तास्तु सासनाः ॥७४॥

सामान्येन शुक्कलेश्याः १०४ । मिथ्यादृष्टयः १०१ । सासनाः ९७ ।

उद्योततिर्यगायुष्कतिर्यग्द्वितयवर्जिताम् । युक्तां नर-सुरायुर्भ्यां त्यक्त्वाऽऽभ्यः पञ्चविंशतिः ॥७५॥
शेषाः बध्नन्ति मिश्राद्याः संयुक्तास्त्वसंयताः । तीर्थकृन्नृ-सुरायुर्भिर्नवस्वाद्या भवेदतः ॥७६॥

७४।७७।

एवं लेश्यामार्गणा समाप्ता ।

ओघो भव्येषु मिथ्यादृग्भङ्गश्चाभव्यजन्तुषु । ओघो वेदकसम्यक्त्वस्यायतादिचतुष्टये ॥७७॥
भवेत्क्षायिकसम्यक्त्वस्याप्योघोऽसंयतादिषु । एकादशसु सम्यक्त्वस्यार्थौपशमिकस्य तु ॥७८॥
ओघो नर-सुरायुर्भ्यां हीनः स्यादयतेषु यत् । बध्नन्ति नैकमप्यायुः सम्यक्त्वे प्रथमे स्थिताः ॥७९॥
आभ्यो विहाय कोपादीन् द्वितीयानादिसंहितम् । नृद्वयौदारिकद्वन्द्वे शेषा बध्नन्त्यणुव्रताः ॥८०॥

इत्यसंयतेषु ७५। संयतासंयतेषु ६६।

हीनस्तृतीयकोपाद्यैस्ताः प्रमत्ताख्यसंयताः । असातमरतिशोकायशोऽशुभमस्थिरम् (?) ॥८१॥
त्यक्त्वाऽऽभ्योऽप्यप्रमत्ताख्याः शेषाः साहारकद्वयाः । ओघभङ्गोऽस्त्यपूर्वाद्येषूपशान्तान्तिमेषु च ॥८२॥

प्रमत्तेषु ६२ । अप्रमत्तेषु ५८ ।

एवं भव्यमार्गणा सम्यक्त्वमार्गणा च समाप्ता ।

ओघः संज्ञिषु मिथ्यादृग्भङ्गोऽसंज्ञिषु जन्तुषु । सासादनेऽप्यसंज्ञाख्यभङ्गाः सासादनोद्भवाः ॥८३॥

एवं संज्ञिमार्गणा समाप्ता ।

ओघ आहारकाख्येषु स्यादनाहारकेषु तु । भङ्गः कार्मणकायोत्थः कर्मप्रकृतिबन्धने ॥८४॥

एवमाहारमार्गणा समाप्ता ।

इति सप्ततिका समाप्ता ।

श्रीचित्रकूटवास्तव्यप्राग्वाटवणिजा कृते ।
श्रीपालसुतडड्ढेन स्फुटः प्रकृतिसंग्रहः ॥८५॥

डड्ढकृतः पञ्चसंग्रहः समाप्तः ।

शुभम्भवतु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

जीवसमास आदि प्रकरणोंमें जिन संदृष्टियोंके परिशिष्टमें देखनेकी सूचना की गई है वे इस प्रकार हैं—

संदृष्टि सं० १, चौदह जीवसमास

बादर सूक्ष्म
एके०— अप० प०, प० अ०
० १ १ ०
द्वी० प० १ ० अ०
त्री० ,, १ ० ,,
चतु० ,, १ ० ,,
पंचे० असं०—० १, १ ० सं०

संदृष्टि सं० २, इक्कीस जीवसमास

बादर सूक्ष्म
ऐके०— ल० नि० प० । प० नि० ल०
० ० १ १ ० ०
प० नि० ल०
द्वी० १ ० ०
त्री० १ ० ०
चतु० १ ० ०
पंचे० असं०-० ० १, १ ० ० सं०

संदृष्टि सं० ३, तीस जीवसमास

बादर । सूक्ष्म
अप०, प०, प० अ०
पृ० ० १ १ ०
ज० ० १ १ ०
ते० ० १ १ ०
वा० ० १ १ ०
वन० ० १ १ ०
प० अ०
द्वी० १ ०
त्री० १ ०
चतु० १ ०
पंचे० असं० । संज्ञी
० १ १ ०

संदृष्टि सं० ४, बत्तीस जीवसमास

बादर । सूक्ष्म
अ० प०, प० अ०
पृ० ० १ १ ०
ज० ० १ १ ०
ते० ० १ १ ०
वा० ० १ १ ०
साधारण । प्रत्येक
बा० सू०
वनस्पति अ० प० प० अ० प० अ०
० १ १ ० १ ०
प० अ०
द्वी० १ ०
त्री० १ ०
चतु० १ ०
पंचे० असं० । संज्ञी
० १ १ ०

संदृष्टि सं० ५, छत्तीस जीवसमास

बादर । सूक्ष्म
अ० प० प० अ०
पृ० ० १ १ ०
ज० ० १ १ ०
ते० ० १ १ ० ०
वा० ० १ १ ०
साधारण प्रत्येक
नित्य० इतर नि० प० अ०
बा० । सू० बा० । सू० १ ०
अ.प.प.अ. । अ.प.प.अ.
० १ १ ० । ० १ १ ०

संदृष्टि सं० ६, सैंतीस जीवसमास

बादर । सूक्ष्म
अ० प० प०-अ०
पृ० ० १ १ ०
ज० ० १ १ ०
ते० ० १ १ ०
वा० ० १ १ ०
साधारण प्रत्येक
नित्य० इतर नि० सप्र० अप्र०
बा० सू० बा० सू०
अ.प.प.अ. अ.प.प.अ. अ० प० प० अ०
० १ १ ० ० १ १ ० ० १ १ ०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	प०	अ०
द्वी०	१	०
त्री०	१	०
चतु०	१	०

असं० । संज्ञी
० १   १ ०

	प०	अ०
द्वी०	१	०
त्री०	१	०
चतु०	१	०

असं०   संज्ञी
० १   १ ०

संदृष्टि सं० ७, अड़तालीस जीवसमास

	बादर			सूक्ष्म		
	लब्ध्य.	निवृ.	पर्या.	प.	नि.	ल.
पृ०	०	०	१	१	०	०
ज०	०	०	१	१	०	०
ते०	०	०	१	१	०	०
वा०	०	०	१	१	०	०

वन०   साधा०   प्रत्येक
बा०   सू०
ल.नि.प. प.नि.ल.   प. नि. ल.
० ० १ १ ० ०   १ ० ०

	ल०	नि०	प०
द्वी०	०	०	१
त्री०	०	०	१
चतु०	०	०	१

पंचे०   असं०   संज्ञी
ल०नि०प० प०नि०ल०
० ० १ १ ० ०

संदृष्टि सं० ८, चौवन जीवसमास

	बादर			सूक्ष्म		
	ल०	नि०	प०	प०	नि०	ल०
पृ०	०	०	१	१	०	०
ज०	०	०	१	१	०	०
ते०	०	०	१	१	०	०
वा०	०	०	१	१	०	०

वन०   साधारण   प्रत्येक वन०
नित्य०   इतर०
बा० सू०   बा० सू०
ल.नि.प. प.नि.ल.।ल.नि.प.।ल.नि.प.।ल.नि.प.
० ० १ १ ० ० ० ० १ ० ० १ ० ० १

	ल०	नि०	प०
द्वी०	०	०	१
त्री०	०	०	१
चतु०	०	०	१

असंज्ञी   संज्ञी
ल०नि०प० ल०नि०प०
० ० १ ० ० १

संदृष्टि सं० ९, सत्तावन जीवसमास

	बादर			सूक्ष्म		
	ल०	नि०	प०	ल०	नि०	प०
पृ०	०	०	१	०	०	१
ज०	०	०	१	०	०	१
ते०	०	०	१	०	०	१
वा०	०	०	१	०	०	१

वनस्पति   साधारण   प्रत्येक
नित्य   इतर
बा०।सू०   बा०।सू०   सप्र० । अप्रति०
ल.नि.प.।ल.नि.प.।ल.नि.प.।ल.नि.प.।ल.नि.प.ल.नि.प.
० ० १ ० ० १ ० ० १ ० ० १ ० ० १ ० ० १

	ल०	नि०	प०
द्वी०	०	०	१
त्री०	०	०	१
चतु०	०	०	१

असंज्ञी   संज्ञी
ल० नि० प०   ल० नि० प०
० ० १   ० ० १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदृष्टि संख्या १०

गुणस्थानोंमें बन्ध-अबन्धादिकी संदृष्टि इस प्रकार है :—

नाम गुणस्थान		बन्धव्युच्छिन्न	बन्ध	अबन्ध	सर्वप्रकृतियोंकी अपेक्षा अबंध	विशेष विवरण
१ मिथ्यात्व		१६	११७	३+	३१	+ तीर्थंकर और आहारद्विकके विना
२ सासादन		२५	१०१	१९	४७	
३ मिश्र		०	७४+	४६	७४	+ मनुष्यायु और देवायुके विना
४ अविरत		१०	७७+	४३	७१	+ तीर्थंकर, मनुष्यायु और देवायुके मिल जानेसे
५ देशविरत		४	६७	५३	८१	
६ प्रमत्तविरत		६	६३	५७	८५	
७ अप्रमत्तविरत		१	५९+	६१	८९	+ आहारकद्विक मिल जानेसे
	१	२	५८	६२	९०	
	२	०	५६	६४	९२	
	३	०	५६	६४	९२	
८ अपूर्वकरण	४	०	५६	६४	९२	
	५	०	५६	६४	९२	
	६	३०	५६	६४	९२	
	७	४	२६	९४	१२२	
	१	१	२२	९८	१२६	
	२	१	२१	९९	१२७	
९ अनिवृत्तिकरण	३	१	२०	१००	१२८	
	४	१	१९	१०१	१२९	
	५	१	१८	१०२	१३०	
१० सूक्ष्मसाम्पराय		१६	१७	१०३	१३१	
११ उपशान्तमोह		०	१	११९	१४७	
१२ क्षीणमोह		०	१	११९	१४७	
१३ सयोगकेवली		१	१	११९	१४७	
१४ अयोगिकेवली		०	०	१२०	१४८	

संदृष्टि संख्या ११

गुणस्थानोंमें उदय-अनुदयादिकी संदृष्टि इस प्रकार है :—

नाम गुणस्थान	उदय-व्युच्छिन्न	उदय	अनुदय	सर्व प्रकृतियोंकी अपेक्षा अनुदय	विशेष विवरण
१ मिथ्यात्व	५	११७	५+	३१	+ सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आहारकद्विक और तीर्थंकरके विना
२ सासादन	९	१११	११	३७	+ नरकानुपूर्वीके विना
३ मिश्र	१	१००	२२+	४८	+ तिर्यगानु० मनुष्यानु० देवानुपूर्वीके विना और सम्यग्मिथ्यात्वके साथ
४ अविरत	१७	१०४+	१८	४४	+ चारों आनुपूर्वी और सम्यक्त्वप्रकृति के मिलानेसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५ देशविरत	८	८७	३५	६१	
६ प्रमत्तविरत	५	८१ +	४१	६७	+ आहारकद्विकके मिलानेसे
७ अप्रमत्तविरत	४	७६	४६	७२	
८ अपूर्वकरण	६	७२	५०	७६	
९ अनिवृत्तिकरण	६	६६	५६	८२	
१० सूक्ष्मसाम्पराय	१	६०	६२	८८	
११ उपशान्तमोह	२	५९	६३	८९	
१२ क्षीणमोह द्विचरमसमय	२	५७	६५	९१	
चरमसमय	१४	५५	६७	९३	
१३ सयोगिकेवली	३०	४२ +	८०	१०६	+ तीर्थंकर प्रकृतिके मिलानेसे
१४ अयोगिकेवली	१२	१२	११०	१३६	

संदृष्टि संख्या १२

गुणस्थानोंमें उदीरणा-अनुदीरणादिकी संदृष्टि इस प्रकार है :—

गुणस्थान	उदीरणा	व्यु०उदीरणा	अनुदीरणा	सर्व प्रकृतियोंकी अपेक्षा अनुदीरणा	विशेष विवरण
१ मिथ्यात्व	५	११७	५ +	३१	+ सम्यक्त्व प्र० सम्यग्मिथ्या तीर्थंकर और आहारकद्विक विना
२ सासादन	९	१११ +	११	३७	+ नरकानुपूर्वीके विना
३ मिश्र	१	१०० +	२२	४८	+ तिर्यगानु० मनुष्या० देवानु० विना तथा मिश्र सहित
४ अविरत	१७	१०४ +	१८	४४	चारों आनुपूर्वी और सम्यक्त्वप्रकृतिके साथ
५ देशविरत	८	८७	३५	६१	
६ प्रमत्तविरत	८	८१ +	४१	६७	+ आहारक द्विक मिलाकर
७ अप्रमत्तविरत	४	७३	४९	७५	
८ अपूर्वकरण	६	६९	५३	७९	
९ अनिवृत्तिकरण	६	६३	५९	८५	
१० सूक्ष्मसाम्पराय	१	५७	६५	९१	
११ उपशान्तमोह	२	५६	६६	९२	
१२ क्षीणमोह द्विचरम स०	२	५४	६८	९४	
चरम स०	१४	५२	७०	९६	
१३ सयोगिकेवली	३९	३९ +	८३	१०९	+ तीर्थंकर प्रकृति मिलाकर
१४ अयोगिकेवली	०	०	१२२	१४८	

संदृष्टि संख्या १३

गुणस्थानोंमें सत्त्व-असत्त्वादिकी संदृष्टि इस प्रकार है :—

गुणस्थान	सत्त्वव्युच्छित्ति	सत्त्व	असत्त्व	विशेष विवरण
१ मिथ्यात्व	०	१४५ +	३	+ देवायु, नरकायु और तिरगायुके विना
२ सासादन	०	१४२ +	६	+ तीर्थंकर और आहारकद्विकके विना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३ मिश्र	०	१४४+	४
४ अविरत	७	१४५❀	३
५ देशविरत	७	१४५	३
६ प्रमत्तविरत	७	१४५	३
७ अप्रमत्तविरत	७	१४५	३
८ अपूर्वकरण	०	१३८	१०
प्र० भा०	१६	१३८	१०
द्वि० भा०	८	१२२	२६
तृ० भा०	१	११४	३४
च० भा०	१	११३	३५
९ अनिवृत्तिकरण पं० भा०	६	११२	३६
ष० भा०	१	१०६	४२
स० भा०	१	१०५	४३
अ० भा०	१	१०४	४४
न० भा	१	१०३	४५
१० सूक्ष्मसाम्पराय	१	१०२	४६
११ उपशान्तमोह	०	१०१	४७
१२ क्षीणमोह द्वि० च० स०	२	१०१	४७
चरमसमय	१४	९९	४९
१३ सयोगिकेवली	०	८५	६३
१४ अयोगिकेवली द्वि० च० स०	७२	८५	६३
चरमसमय	१३	१३	१३५

+आहारकद्विक मिलाकर ❀तीर्थंकर मिलाकर

संदृष्टि संख्या १४

गुणस्थानोंमें बन्धाबन्धादि दर्शक यंत्र

बन्धयोग्य सर्व प्रकृतियाँ १२०

सं.	गुणस्थान	बन्ध प्र०	बन्ध व्यु०	अबन्ध	बन्धाभाव
१	मिथ्यात्व	११७	१६	३	३१
२	सासादन	१०१	२५	१९	४७
३	मिश्र	७४	०	४६	७४
४	अविरत	७७	१०	४३	७१
५	देशविरत	६७	४	५३	८१
६	प्रमत्तविरत	६३	६	५७	८५
७	अप्रमत्तविरत	५९	१	६१	८९

८	अपूर्वकरण	प्रथम भाग	५८	२	६२	६०
		द्वितीय ,,	५६	०	६४	६२
		तृतीय ,,	५६	०	६४	६२
		चतुर्थ ,,	५६	०	६४	६२
		पंचम ,,	५६	०	६४	६२
		षष्ठ ,,	५६	३०	६४	६२
		सप्तम ,,	२६	४	६४	१२२
९	अनिवृत्तिकरण	प्रथम भाग	२२	१	९८	१२६
		द्वितीय ,,	२१	१	९९	१२७
		तृतीय ,,	२०	१	१००	१२८
		चतुर्थ ,,	१९	१	१०१	१२९
		पंचम ,,	१८	१	१०२	१३०
१०	सूक्ष्मसांपराय		१७	१६	१०३	१३१
११	उपशान्तमोह		१	०	११९	१४७
१२	क्षीणमोह		१	०	११९	१४७
१३	सयोगिकेवली		१	१	११९	१४७
१४	अयोगिकेवली		०	०	१२०	१४८

संदृष्टि सं० १५

नरक सामान्यकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १०१

गुणस्थान	बन्धयोग्य	अबन्ध	बन्धव्यु०
मिथ्यात्व	१००	१	४
सासादन	९६	५	२५
मिश्र	७०	३१	०
अविरत	७२	२९	१०

संदृष्टि सं० १६

सप्तम पृथिवीगत नारकियोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ ९९

गुणस्थान	बन्ध	अबन्ध	बन्धव्यु०
मिथ्यात्व	९६	३	५
सासादन	९१	८	२४
मिश्र	७०	२९	०
अविरत	७०	२९	९

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

संदृष्टि सं० १७

तिर्यंच सामान्यकी बन्ध-रचना

बन्धयोग्य सर्व प्रकृतियाँ ११७

मिथ्यात्व	११७	०	१६
सासादन	१०१	१६	३१
मिश्र	६९	४८	०
अविरत	७०	४७	४
देशविरत	६६	५१	४

संदृष्टि सं० १८

मनुष्य सामान्यकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १२०

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंधव्यु०
मिथ्यात्व	११७	३	१६
सासादन	१०१	१९	३१
मिश्र	६९	५१	०
अविरत	७१	४९	४
देशविरत	६७	५३	४
प्रमत्तविरत	६३	५७	६
अप्रमत्तविरत	५९	६१	१
अपूर्वकरण	५८	६२	३६
अनिवृत्तिकरण	२२	९०	५
सूक्ष्म साम्पराय	१७	१०७	१६
उपशान्तमोह	१	११९	०
क्षीणमोह	१	११९	०
सयोगिकेवली	१	११९	१
अयोगिकेवली	०	१२०	०

संदृष्टि सं० १९

देवसामान्यकी तथा सौधर्म-ईशानकालकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १०४

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंधव्यु०
मिथ्यात्व	१०३	१	८
सासादन	९६	८	२५
मिश्र	७०	३४	०
अविरत	७२	३२	१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदृष्टि सं० २०

भवनत्रिक देव-देवियोंकी तथा कल्पवासिनी देवियोंकीबन्ध रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १०३

मिथ्यात्व	१०३	०	७
सासादन	९६	७	२५
मिश्र	७०	३३	०
अविरत	७१	३२	१०

संदृष्टि सं० २१

सनत्कुमारादि-सहस्रारान्त कल्पवासी देवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १०१

मिथ्यात्व	१००	१	४
सासादन	९६	५	२५
मिश्र	७०	३१	०
अविरत	७२	२९	१०

संदृष्टि संख्या २२

आनतादि-उपरिमग्रैवेयकान्त कल्पवासी देवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ ९७

गुणस्थान	बंध	अबन्ध	बन्धव्यु०
मिथ्यात्व	९६	१	४
सासादन	९२	५	२१
मिश्र	७०	२७	०
अविरत	७२	२५	१०

संदृष्टि संख्या २३

एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय जीवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १०९

मिथ्यात्व	१०९	०	१३
सासादन	९६	१३	२९

संदृष्टि संख्या २४

बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ ११२

मिथ्यात्व	१०७	५	१३
सासादन	९४	१८	२४
अविरत	७५	३७	१३
प्रमत्तविरत	६२	५०	६१
सयोगिकेवली	१	१११	१

प्रमत्तविरतमें वहाँ व्युच्छिन्न होनेवाली ६, आहरकद्विकके विना अपूर्वकरणकी ३४, अनिवृत्तिकरणकी ५ और सूक्ष्म साम्परायकी १६, इस प्रकार सबको जोड़नेसे ६१ प्रकृतियोंकी बन्ध-व्युच्छित्ति बतलाई गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदृष्टि संख्या २५

औदारिक मिश्र काययोगियोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ ११४

मिथ्यात्व	१०६	५	१५
सासादन	९४	२०	२६
अविरत	७५	४४	६६+
सयोगिके०	१	११३	१

+ यहाँ पर अविरतमें व्युच्छिन्न होनेवाली ४ तथा ऊपरके गुणस्थानोंमें व्युच्छिन्न होनेवाली ६५ मिलाकर ६६ की व्युच्छिन्न जानना चाहिए।

संदृष्टि संख्या २६

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ १०२

मिथ्यात्व	१०१	१	७
सासादन	९४	८	२४
अविरत	७१	३१	६

संदृष्टि सं० २७

कार्मणकाययोगियोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ ११२

मिथ्यात्व	१०७	५	१३
सासादन	९४	१८	२४
अविरत	७५	३७	७४+
सयोगिकेवली	१	१११	१

+ ऊपरके गुणस्थानोंमें विच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंको भी यहाँ गिन लिया गया है।

संदृष्टि सं० २८

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ ११८

मिथ्यात्व	११७	१	१६
सासादन	१०१	१७	२५
मिश्र	७४	४४	०
अविरत	७७	४१	१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदृष्टि सं० २९

तेजोलेश्यावाले जीवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १११

	मि०	सासा०	मि०	अवि०	देश०	प्रम०	अप्र०
बन्ध	१०५	१०१	७४	७७	६७	६३	५९
अबन्ध	३	७	३४	३१	४१	४५	४९
बंध०व्यु०	४	२५	०	१०	४	६	१

संदृष्टि सं० ३०

पद्मलेश्यावाले जीवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १०८

गुण०	मि०	सासा.	मि०	अवि०	देश०	प्रमत्त	अप्र०
बन्ध	१०५	१०१	७४	७७	६७	६३	५९
अबन्ध	३	७	३४	३१	४१	४५	४९
बन्ध व्यु०	४	२५	०	१०	४	६	१

संदृष्टि सं० ३१

शुक्ललेश्यावाले जीवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ १०४

गु०	मि०	सा०	मि०	अवि०	देश०	प्र०	अप्र०	अपू०	अनि०	सूक्ष्म	उप०	क्षी०	सयो०
बन्ध	१०१	९७	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१
अब०	३	७	३०	२७	३७	४१	४५	४६	८२	८७	१०३	१०३	१०३
बं.व्यु.	४	२१	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१

संदृष्टि सं० ३२

औपशमिकसम्यक्त्वी जीवोंकी बन्ध-रचना

बन्ध-योग्य सर्व प्रकृतियाँ ७७

गुण०	अवि०	देश०	प्रमत्त	अप्र०	अपू०	अनि०	सू०	उप०
बन्ध०	७५	६६	६२	५८	५८	२२	१७	१
अब०	२	११	१५	१९	१९	५५	६०	७६
बं० व्यु०	९	४	६	०	३६	५	१६	१०

सभाष्य पञ्चसंग्रह

की

गाथानुक्रमणिका

गाथा प्रथम चरण	प्र० पद्याङ्क
[अ]	
अइभीमदंसणेण	१,५३
अगुरुगलहुगुवघादं	४,२९२
अगुरुगलहुवघायं	५,८६
अगुरुयलहुगुवघाया	४,४९०
अगुरुयलहुतसबायर-	५,१२४
अगुरुयलहुतसबायर-	५,१६१
अगुरुयलहुपंचिदिय-	५,१७२
अगुरुयलहुयचउक्कं	३,६२
अगुरुयलहुयचउक्कं	४,२६
अगुरुयलहुयचउक्कं	४,२७१
अगुरुयलहुयचउक्कं	४,४००
अगुरुयलहुयचउक्कं	५,५७
अगुरुयलहुयचउक्कं	५,६४
अगुरुलहुयं तसबा-	५,१४०
अगुरुयलहुयं तसबा-	५,१५८
अचक्खुस्स ओघभंगो	५,२०३
अजयाई खीणंता	४,६६
अज्जसकित्ती य तहा	३,२१
अज्जसकित्ती य तहा	४,२६५
अज्जसकित्ती य तहा	४,३१४
अज्जसकित्ती य तहा	५,५८
अट्ठचउरट्ठवीसे	५,२२५
अट्ठचउरेयवीसं	५,३९७
अट्ठट्ठी बत्तीसं	५,३१९
अट्ठट्ठी सत्तसया	५,३२२
अट्ठण्हमणुक्कस्सो	४,४४३
अट्ठत्तीस सहस्सा	५,३८६
अट्ठ य पमत्तभंगा	५,३३४
अट्ठ य बंधट्ठाणा	४,२५४
अट्ठ य सत्त य छक्क य	५,३३
अट्ठ य सत्त य छक्क य	५,३९४
अट्ठविहकम्मवियडा	१,३१
अट्ठविह-सत्त-छब्बं	४,२२१
अट्ठविहसत्त-छब्बं	५,४
अट्ठविहं वेयंता	४,२३०
अट्ठसहस्सा य सदं	५,३६६
अट्ठसु असंजयाइसु	५,२१७
अट्ठसु एयवियप्पो	५,६
अट्ठसु पंचसु एगे	५,२६४
अट्ठारस पयडीणं	४,४२०
अट्ठारसेहि जुत्ता	१,४१
अट्ठावीसं णिरए	४,२६१
अट्ठावीसं णिरए	५,५४
अट्ठावीसुणतीसा	५,४६५
अट्ठेगारस तेरस	५,२२०
अट्ठेयारह चउरो	४,६८
अट्ठेवोदयभंगा	५,३२९
अट्ठेवोदयभंगा	५,३३२
अट्ठेवोदयभंगा	५,३३५
अडछब्बीसं सोलस	५,२९१
अडयाला बारसया	५,३२३
अडविहमणुदीरंतो	४,२२७
अडवीसाई तिण्णि य	५,४६४
अडवीसाई बंधा	५,४५८
अडवीसा उणतीसा	५,४४९
अडवीसा उणतीसा	५,४५२
अडवीसा उणतीसा	५,४६२
अडसीदिं पुण संता	५,२३१
अडसीदिं पुण संता	५,२३३
अण-एइंदियजाई	३,३३
अण-मिच्छविदियतसबह-	४,९५
अण-मिच्छ-मिस्स-सम्मं	५,४८७
अण-मिच्छ-मिस्स-सम्मं	३,५१
अण-मिच्छाहारदुगूणा	४,९७
अण-रहिओ पढमिल्लो	५,३६
अणादेज्जं णिमिणं च	३,६३
अणियट्टिबादरेथी-	५,४९०
अणियट्टिम्मि वियप्पा	५,३७०
अणियट्टिय सत्तरसं	५,३७८
अणियट्टिसुदयभंगा	५,३६३
अणियट्टिस्स दु बंधं	५,४१३
अणियट्टि मिच्छाई	४,३६८
अणुगो य अणणुगामी	१,१२४
अणुदय सव्वे भंगा	५,३४६
अणुदिस-अणुत्तरवासी	४,३५४
अणुलोहं वेयंतो	१,१३२
अणुवय-महव्वएहि य	४,२११
अण्णयरवेयणीयं	३,४१
अण्णयरवेयणीयं	३,४४
अण्णयरवेयणीयं	३,६४
अण्णयरवेयणीयं	५,५००
अण्णयरवेयणीयं	५,५०१
अण्णाणतिए होंति य	४,३१
अण्णाणतियं दोसुं	४,७२
अत्थाओ अत्थंतर	१,१२२
अत्थि अणंता जीवा	१,८५
अथ अप्पमत्तभंगा	५,३६९
अथ अप्पमत्तविरदे	५,३८४
अपुव्वम्मि संठाणा	५,३९७
अप्पपरोभयबाहण	१,११६
अप्पप्पवुत्तिसंचिय	१,७५
अप्पं बंधिय कम्मं	४,२३४
अरई सोएणूणा	४,२५०
अरई सोएणूणा	५,२८
अरहंत-सिद्ध-चेइय-	४,२०६
अरहंतादिसु भत्तो	४,२१३
अवरादीणं ठाणं	४,९७
अवसेसविहिविसेसा	५,२०७
अवसेस संजमट्ठाणं	५,२०३
अवसेसं णाणाणं	५,२०१
अवसेसा पयडीओ	४,४८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवहीयदि त्ति ओही १,१२३
अव्वाघादी अंतोमुहुत्त- १,९६
अविभागपलियछेदो ४,५१८
अविरयअंता दसयं ४,३११
अविरयसम्मे सट्ठी ५,३५७
असच्चमोसवचिए ५,१९६
असहायणाणदंसण- १,२९
असंजदमादि किच्चा ५,३९५
असंजमम्मि चउरो ४,६५
असंजमम्मि णेया ४,३४
असंजमे तहा ठाणं ५,२०२
अहमिंदा जह देवा १,६५
अह सुट्ठियसयलजय सि- ५,५०५
अहिमुहणियमियबोहण- १,१२१
अंडज-पोतज-जरजा १,७३
अंतरायस्स कोहाई ४,२१५
अंतिमए छद्दंसण ४,५००
अंतोकोडाकोडी ४,४०७
अंतोमुहुत्तमज्झं १,९४
अंतोमुहुत्तमज्झं १,९६
अंतोमुहुत्तमज्झं १,९८

[आ]

आइत्तियं वावीसे ५,४८
आइदुयं णिब्बंधं ५,२०
आउक्कस्स पदेसस्स ४,५०२
आउगभागो थोवो ४,४९५
आऊणि भवविवागी ४,४९१
आदाओ उज्जोवं ४,५५९
आदाव-तसचउक्कं ४,४५४
आदावुज्जोवाणं ५,६८
आदी वि य चउठाणा ५,२५१
आदी वि य संघयणं ३,४२
आवाधूण ठिदी कम्म- ४,३९४
आभीयमासुरक्खा १,११९
आयावुज्जोयाणं ४,२७५
आयावुज्जोयाणं ५,१०९
आयावुज्जोयाणं ५,११०
आयावुज्जोवुदयं ५,११७
आयावुज्जोवुदये ५,११८
आवरण-अंतराए ४,४०९
आवरणदेसघायं ४,४८५
आवरणमंतराए ४,३९५
आवरण-विग्घ सव्वे २,९
आवरण-विग्घ सव्वे ४,२३७
आवलियमित्तकालं ५,३०५
आवलियमेत्तकालं ४,१०३
आसादे चउभंगा ५,३३१
आसाय छिण्णपयडी ४,३२८
आसाय छिण्णपयडी ४,३५४
आसाया पुण ताओ ४,३७९
आसीदि होइ संता ५,२१३
आ सोधम्मादावं ४,४७६
आहरइ अणेण मुणी १,९७
आहरइ सरीराणं १,१७६
आहार-ओघभंगो ५,२००
आहारजुयलजोगं ४,१९५
आहारदंसणेण य १,५२
आहार दुग विहीणा ४,८१
आहार दुगूणा तिसु ४,७५
आहारदुगे णियया ५,१९९
आहारदुगोराला ४,५०
आहारदुयं अवणिय ४,२९९
आहारदुयं अवणिय ५,९२
आहारमप्पमत्तो ४,४७२
आहारय तित्थयरं ४,४३२
आहारय-वेउव्विय- २,८
आहारयं सरीरं ४,४१८
आहार-सरीरिंदिय १,४४
आहारसरीरुदयं ५,१७०
आहारसुदएण १,९६
आहारे कम्मूणा ४,१००

[इ]

इक्कं च तिण्णि पंच य ४,९८
इक्कं बंधइ णियमा ४,२५९
इक्कावण्ण सहस्सा ५,३७१
इगि चउ पण छस्सत्त य ५,१९०
इगि छव्वीसं च तहा ५,४३०
इगि जाइ हुंड संढय ४,३४४
इगितीसबंधगेसु य ५,२५०
इगितीसंता बंधइ ४,२५८
इगि-दुग-तिग-संयोए ४,१८०
इगि-पण-सत्तावीसं ५,२४७
इगि पंच तिण्णि पंच य ४,२६०
इगि पंच तिण्णि पंच य ५,५३
इगि-विगल-थावरादव- ४,३७७
इगि-विगल-थावरादव- ४,३८०
इगिविगलिंदियजाई ४,३२५
इगिविगलिंदियजाई ५,२१४
इगिवियलिंदियसयले ५,४२६
इगिवीसं चउवीसं ५,९७
इगिवीसं चउवीसं ५,१०७
इगिवीसं छव्वीसं ५,१९३
इगिवीसं छव्वीसं ५,४६८
इगिवीसं पणुवीसं ५,९७
इगिवीसं पणुवीसं ५,१८२
इच्चेवमाइया जे १,१६४
इत्थि-णउंसयवेदे ४,८९
इत्थि-णउंसयवेयं ४,४७८
इत्थि-पुरिसेसु णेया ४,१४
इत्थी-पुरिस-णउंसय- १,१०४
इदि मोहुदया मिस्से ५,३०७
इय कम्मपयडिठाणा- ५,४७२
इय कम्मपयडिपगदं ४,५२१
इयरे कम्मोरालिय ४,५४
इरियावहमाउत्ता ४,२२८
इय जाहि बाहिया विय १,५१
इंगाल जाल अच्ची १,७९
इंदिय चउरो काया ४,१४७
इंदिय चउरो काया ४,१५१
इंदिय चउरो काया ४,१५५
इंदिय चउरो काया ४,१६५
इंदिय चउरो काया ४,१५९
इंदिय चउरो काया ४,१७३
इंदिय चउरो काया ४,१८७
इंदिय चउरो काया ४,१९१
इंदिय चउरो काया ४,१९४
इंदिय छक्क य काया ४,१५३

इंदिय छक्क य काया ४,१५६
इंदिय छक्क य काया ४,१५८
इंदिय छक्क य काया ४,१७१
इंदिय छक्क य काया ४,१७४
इंदिय छक्क य काया ४,१७६
इंदिय तिण्णि य काया ४,१४४
इंदिय तिण्णि य काया ४,१४८
इंदिय तिण्णि य काया ४,१५२
इंदिय तिण्णि य काया ४,१६२
इंदिय तिण्णि व काया ४,१७०
इंदिय तिण्णि य काया ४,१८४
इंदिय तिण्णि य काया ४,१८८
इंदिय तिण्णि य काया ४,१९२
इंदिय तिण्णि वि काया ४,१६६
इंदिय दोण्णि य काया ४,१४२
इंदिय दोण्णि य काया ४,१४५
इंदिय दोण्णि य काया ४,१४९
इंदिय दोण्णि य काया ४,१४८
इंदिय दोण्णि य काया ४,१६०
इंदिय दोण्णि य काया ४,१६३
इंदिय दोण्णि य काया ४,१६७
इंदिय दोण्णि य काया ४,१८२
इंदिय दोण्णि य काया ४,१८५
इंदिय दोण्णि य काया ४,१८९
इंदिय पंच य काया ४,१५०
इंदिय पंच य काया ४,१५४
इंदिय पंच य काया ४,१५७
इंदिय पंच य काया ४,१७२
इंदिय पंच य काया ४,१७५
इंदिय पंच वि काया ४,१६८
इंदिय पंच वि काया ४,१९०
इंदिय पंच वि काया ४,१९३
इंदिय पंच वि काया ४,१९५
इंदिय मणोहिणा वा १,१८०
इंदियमेओ काओ ४,१४१
इंदियमेओ काओ ४,१४३
इंदियमेओ काओ ४,१४६
इंदियमेओ काओ ४,१४७
इंदियमेओ काओ ४,१५७
इंदियमेओ काओ ४,१५९
इंदियमेओ काओ ४,१६१
इंदियमेओ काओ ४,१६४
इंदियमेओ काओ ४,१८१
इंदियमेओ काओ ४,१८३
इंदियमेओ काओ ४,१८६

[उ]

उक्कस्सजोगसण्णी ४,५०९
उक्कस्सपदेसत्तं ४,५०५
उक्कस्समणुक्कस्सं ४,४२२
उक्कस्समणुक्कस्सं ४,४४७
उक्कस्समणुक्कसो ४,३८९
उगुतीस अट्ठवीसा ५,२२८
उगुतीसट्ठावीसा ५,४०९
उगुतीस तीसबंधे ५,२३४
उगुतीस बंधगेसु य ५,२३६
उगुसट्ठिमप्पमत्तो ५,४८०
उच्चं णीचं णीचं ५,२६१
उच्चुच्चमुच्चणीचं ५,१६
उच्चुच्चमुच्चणीचं ५,२९७
उज्जोउ'तसचउक्कं ५,६१
उज्जोयमप्पसत्थं ४,३१०
उज्जोयमप्पसत्था ३,१८
उज्जोयरहियवियले ५,१२२
उज्जोव-उदयरहिय- ५,१२३
उज्जोव-उदयसहिए ५,१३१
उज्जोव-तसचउक्कं ४,२६८
उज्जोवरहियसयले ५,१३८
उज्जोवरहियसयले १३९
उज्जोयसहियसयले ५,१४९
उणवीसेहि य जुत्ता १,४२
उत्तमअंगम्हि हवे १,९६
उत्तरपयडीसु तहा ४,२३६
उदधिसहस्सस्स तहा ४,४१७
उदयट्ठाणकसाए ५,२००
उदयट्ठाणेसंखा ५,३१८
उदयपयडि संखेज्जा ५,३२६
उदयस्सुदीरणस्स य ३,४६
उदयस्सुदीरणस्स य ५,४७३
उदया इगि-पणुवीसा ५,४६१
उदयादो सत्तरसं ५,३२५
उदया हु णोकसाया १,१०३
उदीरेइ णामगोदे ४,२२६
उम्मगदेसओ सम ४,२०९
उवओगा जोगविही ४,४
उवओगा जोगविही ४,५५
उवयरणदंसणेण य १,५५
उवरयबंधे इगिती- ५,२५२
उवरबंधे संते ५,१४
उवरबंधे संते ५,२८७
उवरिम दुय चउवीस य ५,२२४
उवरिम पंचट्ठाणे ५,४१२
उवरिल्लपंचया पुण ४,७९
उवरिमदो वज्जित्ता ५,४५४
उववाद मारणंतिय- १,८६
उवसमसम्मत्तादी ५,२०६
उवसंत-खीणमोहे ३,२८
उवसंतखीणमोहो १,५
उवसंते खीणे वा १,१३३
उस्सासो पज्जत्ते १,४७

[ऊ]

ऊणत्तीसं भंगा ५,३८५

[ए]

एइंदिय आयावं ४,४६४
एइंदिय णिरयाऊ ४,४५७
एइंदिय थावरयं ४,४७५
एइंदिय-पंचिंदिय ४,३९९
एइंदिय-विगलिंदि १,१८६
एइंदियस्स जाई ५,११२
एइंदियस्स फासं १,६७
एइंदिएसु चत्तारि ४,६
एइंदिएसु बायर- ४,९
एए उदयट्ठाणा ५,४२५
एए तेरस पयडी ५,२१५
एए पुव्वपदिट्ठा ५,६१
एक्कम्हि कालसमये १,२०
एक्कम्हि महुरपयडी ४,५१४
एक्क य छक्केगारं ५,३१२
एक्कयरं च सुहासुहं, ४,२७६
एक्कयरं वेयंति य ५,१४१

एक्कं च दो व चत्तारि ५,३०
एक्कं च दो व चत्तारि ५,३०३
एक्काई पणयंतं ४,२५२
एक्कासी पयडीणं ३,७२
एगणिगोदसरीरे १,८४
एगसहस्सं णवसद- ५,३५२
एगं सुहुमसरागो ५,३११
एगेगमट्ठ एगे ५,४००
एगेगं इगितीसे ५,२४९
एत्तो हणदि कसाय ५,४९२
एत्तो उवरिल्लाणं ४,३४६
एत्थ इमं पणुवीसं ५,८५
एत्थ वि भंग-वियप्पा ५,१५१
एयम्हि गुणट्ठाणे १,१८
एदाणि चेव सुहुमस्स ५,४१४
एमेव अट्ठवीसं ५,१०४
एमेव अट्ठवीसं ५,१२८
एमेव अट्ठवीसं ५,१६६
एमेव ऊणतीसं ५,१४४
एमेव ऊणतीसं ५,१५०
एमेव ऊणतीसं ५,१७२
एमेव एक्कतीसं ५,१३४
एमेव एक्कतीसं ५,१५३
एमेवट्ठावीसं ५,१४५
एमेवट्ठावीसं ५,१७४
एमेवट्ठावीसं ५,१८८
एमेव विदियतीसं ४,२६९
एमेव विदियतीसं ५,६२
एमेव य उगुतीसं ५,१०५
एमेव य उगुतीसं ५,१८९
एमेव य चउवीसं ५,११३
एमेव य छव्वीसं ५,११६
एमेव य छव्वीसं ५,११९
एमेव य छव्वीसं ५,१२६
एमेव य छव्वीसं ५,१४२
एमेव य छव्वीसं ५,१६३
एमेव य पणुवीसं ५,१०१
एमेव य पणुवीसं ५,११५
एमेव य पणुवीसं ५,१८५
एमेव विदिय तीसं ४,२६९
एमेव सत्तवीसं ५,१०३
एमेव सत्तवीसं ५,१२०
एमेव सत्तवीसं ५,१७३
एमेव सत्तवीसं ५,१८७
एमेव होइ तीसं ४,२९८
एमेव होइ तीसं ५,९१
एमेव होइ तीसं ५,१३०
एमेव होइ तीसं ५,१३३
एमेव होइ तीसं ५,१४८
एमेव होइ तीसं ५,१५२
एमेव होइ तीसं ५,१६९
एमेवूणत्तीसं ५,१३९
एमेवूणत्तीसं ५,१४७
एमेवूणत्तीसं ५,१६८
एमेवूणत्तीसं ५,१७५
एयक्खेत्तोगाढं ४,४९३
एयणउंसयवेयं ३,५७
एयदरं च सुहासुह- ५,६९
एययरं वेयंति य ५,१६२
एय-विय-कायजोगे ४,१०२
एयार जीवठाणे ५,२५८
एयारसेसु तित्ति य ४,२१
एवं कए मए पुण १,१७५
एवं तइ उगुतीसं ४,२९१
एवं तइयउगुतीसं ५,८४
एवं विउला रिद्धी १,१६२
एवं विदि-उगतीसं ४,३००
एवं विदि-उगुतीसं ५,९३
एसो दु बंधसामित्तोघो ५,४८२
एसो बंधसमासो ४,५१९

[ओ]

ओघियकेवलदंसे ५,२६४
ओरालियकाययोगं ५,१९७
ओरालमिस्स-कम्मे ४,१२
ओरालमिस्स-कम्मे ४,६२
ओरालमिस्स-कम्मे ५,१९७
ओरालमिस्सजोगं ४,१७९
ओरालाहारदुए ४,४४
ओरालिय-आहारदु- ४,८४
ओरालिय उज्जोवं ४,४७४
ओरालियंगवंगं ४,२६७
ओरालियंगवंगं ४,२८०
ओरालियंगवंगं ५,६०
ओरालियंगवंगं ५,७३
ओरालियंगवंगं ५,१२७
ओसा य हिमय महिया १,७८
ओहीदंसे केवल ४,३५

[क]

कदकफलजुदजलं वा १,२४
कदि बंधंतो वेददि ५,३
कम्मइए तीसंता ५,४४०
कम्मइयकायजोई ४,३६५
कम्मोरालदुगाइं ४,४५
कम्मोरालदुगाइं ४,४६
कम्मोरालदुगाइं ४,९४
करिस-तणेट्टावग्गी १,१०८
कंचण-रूप्पदव्वाणं ३,२
काऊ काऊ तह का- १,१८५
किण्हाइतिअसंजम ४,५१
किण्हाइतिए चउदस ४,१८
किण्हाइतिए णेया ४,३६
किण्हाइतिए बंधा ५,४५५
किण्हाइलेस्सरहिया १,१५३
किण्हाई तिसु णेया ४,३७१
किण्हा भमरसवण्णा १,१८३
किमिराय-चक्कमल-कद्दम १,११५
कोडंति जदो णिच्चं १,६३
कुंथु-पिपीलिय-मंकुण १,७१
केवलजुयले मण वचि- ४-४९
केवलणाणदिवायर १,२७
केवलणाणम्हि तहा ४,३२
केवलणाणावरणं ४,४८२
केवलदुगमणहीणा ४,३०
केवलदुयमणपज्जव- ४,२९
केवलदुयमणवज्जं ४,२४
केवलिणं सागारो १,१८१
कोसुंभो जिह राओ १,२२
कोहाइकसाएसुं ४,३६९
कोहाइचउसु बंधा ५,४४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[ख]

खवणाए पट्ठवगो १,२०३
खविए अण-काहाई ५,३६
खाइयमसंजयाइसु १,१६७
खीणकसायदुचरिये ५,४९४
खीणंता मज्झिल्ले ४,६१
खीणे दंसणमोहे १,१६०
खुल्ला-वराड-संखा १,७०

[ग]

गइ-आदिय-तित्थंते ५,२०८
गइ इंदियं च काए १,५७
गइकम्मविणिव्वत्ता १,५९
गइ चउ दो य सरीरं २,१२
गइ चउ दो य सरीरं ४,२४०
गइचउरएसु भणियं ५,१८९
गइयादिएसु एवं ४,३२४
गुणजीवा पज्जत्ती १,२
गुणठाणएसु अट्ठसु ५,३००
गूढसिरसंधिपव्वं १,८३
गोदेसु सत्त भंगा ५,१५

[घ]

घाइतियं खीणंता ३,६
घाईणं अजहण्णो ४,४४१
घादीणं छदुमत्था ४,२२२
घोलणजोगमसण्णी ४,५१०

[च]

चउ-इयरणिगोएहि जु- १,३८
चउ चरिमा अजोगियस्स ५,२९०
चउ-छक्कं बंधंतो ४,२४४
चउ-छव्वीसिगितीस य ५,२४९
चउ-तिय मण-वचिए ५,१९६
चउतीसं पयडीणं ३,७९
चउदालं तु पमत्ते ५,३५२
चउपच्चइयो बंधो ४,७८
चउबंधयम्मि दुविहा ५,१३
चउबंधयम्मि दुविहो ५,२८६
चउ भंगा पुव्वस्स य ५,३३६
चउरो हेट्ठा छा उवारें ५,४६३
चउवीसं दो उवरिं ५,४४५
चउवीसं वज्जित्ता ५,१९४
चउवीसं वज्जुदया ५,४२३
चउतीसं वज्जुदया ५,४३१
चउवीसं वज्जुदया ५,४३४
चउवीसेण य गुणिया ५,३३७
चउवीसेण वि गुणिदे ५,३५५
चउवीसेण वि गुणिया ५,३१६
चउसट्ठि होंति भंगा ५,३३८
चउसट्ठी अट्ठसया ५,३२१
चउहत्तरि सत्ततरि ५,४७९
चउ हेट्ठा छा उवरिं ४,४५१
चक्खूण जं पयासइ १,१३९
चक्खूदंसे छद्धा ४,१७
चक्खूदंसे जोगा ४,५२
चत्तारि-आदिणवबंध- ५,४१
चत्तारि पयडिठाणा ४,२४१
चत्तारि वि छेत्ताइं १,२०१
चदुसंजलण-णवण्हं ४,२०२
चंडो ण मुयइ वेरं १,१४४
चाई भद्दो चोक्खो १,१५१
चिंतियमचिंतियं वा १,१२५
चोद्दस जीवे पढमा ५,२५७
चोद्दस पुव्वुद्दिट्ठा १,३५
चोद्दस सराय-चरिमे ४,४६६

[छ]

छक्कं हस्साईणं ४,८३
छण्णउदिं च वियप्पा ५,३७७
छण्णव छत्तिय सत्त य ५,३९९
छण्णोकसाय-पयला ४,५०६
छण्हमसण्णी ट्ठिदिं ४,४३३
छण्हं पि अणुक्कस्सो ४,४९७
छण्हं सुर-णेरइया ४,४३०
छत्तीसं ति-बत्तीसं ५,३४४
छद्दव्व-णवपयत्थे १,१
छप्पढमा बंधंति य ४,२१९
छप्पंच-णवविहाणं १,१५९
छप्पंचमुदीरंतो ४,२२९
छब्बंधा तीसंता ५,४७१
छव्वावीसे चउ इगि- ४,२५१
छव्वावीसे चउ इगि- ५,२९
छव्वावीसे चउ इगि- ५,३०२
छम्मासाउगसेसे १,२००
छव्वीसाए उवरिं ५,१३२
छव्वीसिगिवीसुदया ५,२२६
छसु ठाणेसु सत्तट्ठ ४,२१८
छसु पुण्णेसु उरालं ४,४२
छसु हेट्ठिमासु पुढवीसु १,१९३
छादयदि सयं दोसे १,१०५
छायाल-सेस मिस्सो ५,४७७
छावत्तरि एयारह ५,१९१
छिज्जइ पढमं बंधो ३,६७
छेत्तूण य परियायं १,१३०

[ज]

जत्थेक्कु मरइ जीवो १,८३
जवणालिया मसूरी १,६६
जसकित्ती बंधंतो ४,२५७
जस-बादर-पज्जत्ता ५,१११
जह कंचणमग्गिगयं १,८७
जह गेरुवेण कुड्डो १,१४३
जह छव्वीसं ठाणं ४,२७७
जह तिण्हं तीसाणं ४,२७३
जह तीसं तह चेव य ४,२८८
जह तीसं तह चेव य ५,८१
जह पढमं उणतीसं ४,२८९
जह पुण्णापुण्णाइं १,४३
जह भारवहो पुरिसो १,७६
जह सुद्धफलियभायण १,२६
जं णत्थि राय-दोसो १,२८
जं सामण्णं गहणं १,१३८
जाइ-जरा-मरण-भया १,६४
जा उवसंता सत्ता ३,१०
जाणइ कज्जाकज्जं १,१५०
जाणइ तिकालसहिए १,११७
जाणइ पस्सइ भुंजइ १,६९
जाहि व जासु व जीवा १,५६
जिह छव्वीसं ठाणं ५,७०
जिह तिण्हं तीसाणं ५,६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिह तिण्हं तीसाणं ४,२७३
जिह पढमं उणतीसं ५,८२
जीवट्ठाणवियप्पा १,३३
जीवा चोद्दस भेया १,१३७
जुगवेदकसाएहिं ५,४२
जुगवेदकसाएहिं ५,३१४
जे ऊणतीस बंधे ५,२४३
जे जत्थ गुणे उदया ५,३२७
जे पच्चया वियप्पा ४,१७८
जे पच्चया वियप्पा ४,२००
जेसिं ण संति जोगा १,१००
जेहिं अणेया जीवा १,३२
जेहिं दु लक्खिज्जंते १,३
जो एत्थ अपडिपुण्णो ५,५०७
जोगा पयडि-पदेसा ४,५१२
जोगिम्मि ओघभंगो ४,३६७
जो ण विरदो हु भावो १,१३४
जो णेव सच्चमोसो १,९२
जो तसबहाउ विरदो १,१३
जो समाइय-छेदो- १,१९५

[ण]

णउदी चेव सहस्सा ५,३६०
णउदी संता सादे ५,२१८
णउदी संतेसु तहा ५,२११
णउंसए पुण एवं ५,२००
ण कुणेइ पक्खवायं १,१५२
णट्ठासेसपमाओ १,१६
णमिऊण अणंतजिणे ३,१
णमिऊण जिणिंदाणं ५,१
ण य इंदिय-करणजुआ १,७४
ण य जे भव्वाभव्वा १,१५७
ण य पत्तियइ परं सो १,१४८
ण य मिच्छत्तं पत्तो १,१६८
ण य सच्च-मोसजुत्तो १,९०
णरदुय-उच्चजुयाओ ४,३३२
णरदुय-उच्चूणाओ ४,३३०
णरदुयणराउउच्चूणा ४,३५७
णर-देवाऊरहिया ४,३३५
णर-देवाऊरहिया ४,३४०
ण रमंति जदो णिच्चं १,६०
णवगाई बंधंतो ४,२५३
णव छक्क चदुक्कं च हि ४,२४३
णव छक्कं चत्तारि य ५,९
णव छक्कं चत्तारि य ५,२८२
णव दस सत्तत्तरियं ५,२८०
णव दस सत्तत्तरियं ५,४१७
णव पंचाणउदि सया ५,४६
णव-पंचोदय-संता ५,२२१
णव सत्तोदयसंता ५,२३५
णव सव्वाओ छक्कं ५,१०
णव सव्वाओ छक्कं ५,२८३
णवसु चउक्के एक्के ४,४१
णवं अजोई ठाणं ५,१७९
णाणस्स दंसणस्स य २,२
णाणंतरायदसयं ३,२७
णाणंतरायदसयं ४,७४
णाणंतरायदसयं ४,३२३
णाणंतरायदसयं ४,४२२
णाणंतरायदसयं ४,४४६
णाणंतरायदसयं ४,४५६
णाणंतरायदसयं ४,४६८
णाणंतरायदसयं ४,५००
णाणंतरायदसयं ४,५०५
णाणंतरायदसयं ५,४७४
णाणं पंचविहं पि य १,१७८
णाणावरणचउक्कं ४,४८४
णाणावरणे विग्घे ५,२८१
णाणणेसु संजमेसु य ४,३७१
णाणोदहि-णिस्संदं ४,२
णामस्स य बंधोदय- ५,४०१
णिक्खेवे एयट्ठे १,१८२
णिद्दा पयला य तहा ३,४०
णिद्दा पयला य तहा ३,२२
णिद्दा पयला य तहा ४,३१७
णिद्दा-वंचणबहुलो १,१४६
णिद्दा-चिय तित्थयरं ४,२९८
णिमिणं चिय तित्थयरं ५,९०
णिम्मूलखंधसाहा १,१९२
णियखेत्ते केवलिदुग १,९६
णिरए तीसुगितीसं ५,४१९
णिरय-णर-देवगईसु ४,८
णिरयदुग-आहारजुयल ४,३६०
णिरयदुयस्स असण्णी ४,४३५
णिरयदुयं पंचिंदिय ४,२६४
णिरयदुयं पंचिंदिय ५,५६
णिरयाउग-देवाउग- ४,३९८
णिरयाउग-देवाउग- ४,५१२
णिरयाउअस्स उदए ५,२१
णिरयाउअस्स उदए ५,२९२
णिरयाणुपुव्वि-उदओ ३,३१
णिस्सेसखीणमोहो १,२५
णेत्ताइ दंसणाणि य ५,११
णेत्ताइ दंसणाणि य ५,२८४
णेरइयदुयं मोत्तुं ४,३५८
णोइंदिएसु विरदो १,११

[त]

तइयकसायचउक्कं ३,२०
तइयकसायचउक्कं ४,३१४
तइयकसायचउक्कं ४,४७२
तइयचउक्कयरहिया ४,३८७
तत्थ इमं इगिवीसं ५,१६०
तत्थ इमं छव्वीसं ४,२७५
तत्थ इमं छव्वीसं ५,६७
तत्थ इमं तेवीसं ४,२८३
तत्थ इमं तेवीसं ५,७५
तत्थ इमं पणुवीसं ५,१७१
तत्थ इमं पणुवीसं ४,२९३
तत्थ य तीसट्ठाणा ५,७८
तत्थ य तीसं ठाणं ४,२८६
तत्थ य पढमं तीसं ४,२६७
तत्थ य पढमं तीसं ५,५९
तत्थिगिवीसं ठाणं ५,१८२
तत्थिगिवीसं ठाणं ५,९९
तत्थुप्पण्णा देवा ४,३५०
तदियक्कसायचउक्कं ३,३६
तम्मिस्से तित्थयरूणा ४,३६२
तसकाइएसु णेया ५,१९५
तसचउ वण्णचउक्कं ४,२८७
तसचउ वण्णचउक्कं ५,७९

तसचउ वण्णचउक्कं	४,२९७
तसचउ वण्णचउक्कं	५,८९
तसचउ पसत्थमेव य	३,२४
तसचउ पसत्थमेव य	४,३१९
तसथावरादिजुयलं	४,४१७
तसपंचक्खे सव्वे	४,८७
तस्स दु संतट्ठाणा	५,२७९
तस्स य अंगोवंगं	५,१४३
तस्स य अंगोवंगं	५,१६४
तस्स य उदयट्ठाणा-	५,४०४
तस्स य संतट्ठाणा	५,४०३
तस्स य संतट्ठाणा	५,४१०
तस्स य संतट्ठाणा	५,४१६
तस्सुवरि सुक्कलेस्सा	५,३७३
तस्सेव अपज्जत्ते	५,३३०
तस्सेव संतकम्मा	५,४०६
तस्सेव होंति उदया	५,४०७
तस्सोरालियमिस्से	५,३५३
तह अट्ठवीसबंधे	५,२३०
तह उवसमसुहुमकसाए	५,२८४
तह खीणेसु वि उदयं	५,४१५
तह चेह अट्ठ पयडी	३,४९
तह णोकसायछक्कं	३,३८
तह मणुय-मणुसणीओ	४,३४३
तह य तदीयं तीसं	४,२७१
तह य तदीयं तीसं	५,६३
तं चेव य बंधुदयं	५,२४६
तं बंधंतो चउरो	४,२५५
तं मिच्छत्तं जमसद्दहणं	१,७
ताओ चउवीसगुणा	५,३२०
ताओ तत्थ य णिरया	४,३३२
तारिसपरिणामट्ठिय	१,१९
तासिमसंखेज्जगुणा	४,५१७
तिण्णि दस अट्ठट्ठाणा	४,२४२
तिण्णि य अंगोवंगं	३,६१
तिण्णि य अंगोवंगं	४,४५४
तिण्णि य सत्त य चदु दुग	४,४१४
तिण्णिगे एगेगं	५,३९३
तिण्णेव सहस्साइं	५,३८७
तिण्णेवाउय सुहुमं	४,४६४
तिण्हं खलु पढमाणं	४,३९१
तिण्हं दोण्हं दोण्हं	१,१८८
तित्थयर-णराउजुया	४,३४६
तित्थयर-णराउजुया	४,३५९
तित्थयर-देव-णिरया-	५,४८३
तित्थयरमेव तीसं	३,२५
तित्थयरमेव तीसं	४,३२०
तित्थयर सह सजोई	५,१७६
तित्थयर सुरचदुजुया	४,२६३
तित्थयर-सुरचदूणा	४,३६१
तित्थयर-सुर-णराऊ	४,३८४
तित्थयरं वज्जित्ता	५,१८०
तित्थयराहारजुयल-	४,३७९
तित्थयराहारदुअं	३,५४
तित्थयराहारदुअं	३,७३
तित्थयराहारदुअं	३,७६
तित्थयराहारदुअं	४,३७२
तित्थयराहारदुगूणा	४,३७६
तित्थयराहारदुगूणा	४,३८२
तित्थयराहारदुयं	४,३०२
तित्थयराहारदुयं	५,९४
तित्थयराहाररहिय	५,१५९
तित्थयराहारविरहि-	५,४७६
तिदु इगि णउदिं णउदिं	५,२०८
तिय पण छव्वीसेसु वि	५,२२३
तियमण-चउमणजोए	४,११
तिरि-णरमिच्छेयारह	४,४६३
तिरियगइ-मणुयदोण्णि य	४,४१५
तिरियगई ओरालं	४,४३०
तिरियगई तेवीसं	५,४२१
तिरियगदीए चोद्दस	४,७
तिरियदुवे मणुयदुयं	५,१५८
तिरियमणुयाउगेहि	४,३६२
तिरियंति कुडिलभावं	१,६१
तिरियाउ तिरियजुयलं	४,३८३
तिरियाउस्स य उदए	५,२२
तिरियाउस्स य उदए	५,२९३
तिरिया तिरियगईए	४,३३४
तिवियप्पपयडिठाणा	५,२५३
तिव्वकसाओ बहुमोह'	४,२०७
तिव्वेदाए सव्वे	१,१०२
तिसु तेरेगे दस णव	४,७४
तिस्से हवेज्ज हेऊ	४,४३६
तीसण्हमणुक्कस्सो	४,४९९
तीसं चेव य उदयं	५,४११
तीसंता छव्वंधा	५,४५२
तीसंता छव्वंधा	५,४६६
तीसं बारस उदयं	३,४३
तीसादी एगूणं	५,२४१
तीसुगतीसा बंधा	५,४३८
तीसेक्कतीसकालो	५,१३६
तीसेक्कतीसकालो	५,१५४
तेउप्पउमासुक्के	५,२०४
तेऊ तेऊ तेऊ	१,१८९
तेऊ पम्मा बंधा	५,४५६
तेऊ पम्मासु तहा	४,६७
तेऊ वाऊ काए	४,६०
ते एयारह जोया	४,८२
ते चिय बंधट्ठाणा	५,२७४
ते चिय बंधा संता	५,४४४
ते चिय संता वेदे	५,४४१
ते चेव य छत्तीसे	५,३४८
ते चेव य बंधुदया	५,२३७
ते चेव य बंधुदया	५,२३८
तेजतिय चक्खुजुयले	४,९६
तेजप्पउमा सुक्के	५,२०२
तेजाकम्मसरीरं	४,४४५
तेजाकम्मसरीरं	४,४७८
तेणउदीसंतादो	५,२१०
तेणं सत्त अ मिस्सो	३,८
तेणेव होंति णेया	५,३४०
तेतीस सायरोवम	५,१०६
तेतीस सायरोवम	५,१९०
तेयालं पयडीणं	४,४४७
तेरस चेव सहस्सा	५,३४३
तेरस जीवसमासे	५,२६२
तेरस सयाणि सयरिं	५,३८९
तेरससु जीवसंखे-	५,२५४
तेरह बहुप्पएसो	४,५०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरासिएण णेया ४,३९४
तेरे णव चउ पणयं ५,२५५
तेवीसमादि कादुं ५,४०२
तेवीसं पणुवीसं ४,२५७
तेवीसं पणुवीसं ५,५२
तेवीसं पणुवीसं ५,४२७
ते सव्वे भयरहिया ५,३०८
तेसिमसंखेज्जगुणा ४,५१८
तेसिं सट्ठि वियप्पा ५,३५८
तेसिं संतवियप्पा ५,४२८
तेसु य संतट्ठाणा ५,२७३
तेहि विणा णेरइया ४,३२७
तेहि विणा बंधाओ ४,३३९

[थ]

थावर अथिरं असुहं ४,२८४
थावर आदाउज्जो' ४,३५३
थावरमथिरं असुहं ५,७६
थावर सुहुमं च तहा ३,१६
थावर सुहुमं च तहा ४,३०९
थिर अथिरं च सुहासुह- ५,१००
थिरमथिरं सुभमसुभं ५,१८४
थिरसुहजस आदेज्जं ४,४०४
थीणतियं इत्थी वि य ४;३१०
थीणतियं इत्थी वि य ३,१७
थीणतियं चेव तहा २,३७
थीणतियं चेव तहा ३,५५
थीणतियं णिरयदुयं ५,४९१
थी-पुरिसवेयगेसु य ५,१९९

[द]

दस अट्ठारस दसयं ४,१०१
दसगादि-उदयठाणा ५,४४
दस णव अडसत्तुदया ५,३४५
दस णव पण्णरसाइं ५,५१
दस णव पण्णरसाइं ५,२६७
दस बंधट्ठाणाणि ४,२४६
दस वावीसे णव इगि ५,४०
दसविहसच्चे वयणे १,९१
दस सण्णीणं पाणा १;४८
दहिगुडमिव वामिस्सं १,१०
दंडदुगे ओरालं १,१९९
दंसण-आइदुअं दुसु ४,७३
दंसण-णाणाइतियं ४,३३
दंसण-णाणाइतियं ४,३८
दंसणमोहक्खवणा १,२०२
दंसणमोहस्सुदए १,१६६
दंसणमोहस्सुवसमगो १,२०४
दंसण वय सामाइय १,१३६
दंस-मसगो य मक्खिय- १,७२
दुग तीस चउरपुव्वे ३,१२
दुब्भग दुस्सर णिमिणं ४,२७३
दुब्भग दुस्सर णिमिणं ५,६५
दुब्भगदुस्सरमजसं ४,४०२
दुब्भगदुस्सरमजसं ४,४५९
दुब्भगदुस्सरमसुभं ३,७८
दुरधिगमणिउणपरमट्ठ- ५,५०६
दुसु तेरे दस तेरस ५,३२८
देवगइसहगयाओ ५,४९५
देवगईपयडीअ ४,३४७
देवदुअ पणसरीरं ३,६०
देवदुयं पंचिदिय- ४,२९६
देवदुयं पंचिदिय- ५,८८
देव-मणुस्सादीहिं १,३७
देवाउ अजसकित्ती ३,६९
देवाउग वज्जेविय ४,४२९
देवाउगं पमत्तो ४,४२७
देवाउगमपमत्तो ४,४६२
देवाउस्स य उदए ५,२४
देवाउस्स य उदए ५,२९५
देवाउस्स य एवं ४,४३८
देवे अणण्णभावो १,१६५
देवेसु य णिरयाउ ५,४८४
देसविरये च भंगा ५,२०२
देसे सहस्स सत्त य ५,३६८
दो उवरिं वज्जित्ता ५,४३६
दो उवरिं वज्जित्ता ५,४५९
दो चेव सहस्साइं ५,३९९
दो छक्कट्ठचउक्कं ५,४१८
दोण्हं पंच य छच्चेव ४,७१
दो तीसं चत्तारि य ४,३१६

[ध]

धण्णस्स संगहो वा ३,३

[प]

पक्खित्ते पत्तेयं ५,११४
पच्चइणो मणुयाऊ ४,४५०
पच्चंति मूलपयडी ४,४४९
पज्जत्तय जीवाणं १,१९०
पज्जत्ता णियमेणं ४,३३८
पज्जत्तासण्णीसु वि ५,२७७
पडपडिहारसिमज्जा २,३
पडिणीयमंतराए ४,२०४
पडिणीयाई हेऊ ४,२१६
पढमकसायचउक्कं ४,४७१
पढमकसायचउक्कं ५,४८५
पढमकसायचउक्कं ५,४८९
पढमचउक्केणित्थी ५,२७
पढमचउक्केणित्थी ५,२४९
पढमा-चउ छ-लेस्सा १,१८७
पढमा चउरो संता ५,४४८
पढमादोऽण्णाणतिए ४;६३
पढमे दंडं कुणइ य १,१९७
पढमे विदिए तीसु वि ५,४७
पढमो दंसणघाई १,११०
पण णव इगि सत्तरसं ३,२९
पण णव इगि सत्तरसं ३,५०
पणय दुय पणय पणयं ५,२६९
पणयालीस मुहुत्ता १,२०६
पणवण्णा पण्णासा ४,८०
पणवीसं उगुतीसं ४,२६३
पण सत्तावीसुदया ५,२२७
पणिदरसभोयणेण य १,५४
पणुवीस सहस्साइं ५,३८८
पणुवीसं उणतीसं ५,५५
पणुवीसं छव्वीसं ५,४२४
पणुवीसाई पंच य ५,४३७
पण्णर छत्तिय छप्पंच ५,४९३
पण्णररसण्हं ठिदि ४,४२८
पण्णरस सहस्साइं ५,३९२
पण्णरसं छत्तिय छ- ५,४९७
पण्णरसं छत्तिय छ- ५,४९७

पत्तेयमथिरमसुहं ४,२८२
पत्तेयमथिरमसुहं ५,७४
पत्तेयसरीरजुयं ५,१४४
पत्तेयसरीरजुयं ५,१६५
पत्तेयागुरुणिमिणं ५,४९८
पमत्तेदरेसु उदया ५,३५३
पम्मा पउमसवण्णा १,१८४
पयडिविबंधणमुक्कं २,१
पयडी एत्थ सहावो ४,५१४
पयडीए तणुकसाओ ४,२१०
परघादुस्सासाणं २,१०
परघादुस्सासाणं ४,२३८
परघायं चेव तहा ५,१४६
परघायं चेव तहा ५,१६७
परमाणुआदियाइं १,१४०
पहिया जे छप्पुरिसा १,१९१
पंचक्खदुए पाणा १,५०
पंच णव दोण्णि अट्ठा २,४
पंच णव दोण्णि छव्वी- २,५
पंच-तिय-चउविहेहिं १,१३५
पंचमयं संठाणं ४,४०७
पंच य विदियावरणं ४,४१३
पंच रस पंच वण्णेहिं ४,४९५
पंच वि इंदिय पाणा १,४६
पंच वि थावरकाया १,३६
पंचविहे अडचउएगा- ५,४९
पंचसमिदो तिगुत्तो १,१३१
पंचसु थावरकाए ४,१०
पंचसु थावरकाए ४,२६
पंचसु थावरकाए ५,४३२
पंचसु पज्जत्तेसु य ५,२६६
पंचाइल्ला संता ५,४६९
पंचिंदियो असण्णी ४,४३७
पंचिंदियतिरियाणं ५,१३७
पंचिंदियतिरिएसु ५,१५७
पंचिंदियसंजुत्तं ४,२९५
पंचिंदियसंजुत्तं ५,८७
पंचेव उदयठाणा ५,१९२
पाणवहाईसु रओ ४,२१४
पुट्ठं सुणेइ सद्दं १,६८
पुढवी य सक्करा वा- १,७७
पुणरवि दसजोगहदा ५,३४७
पुण्णेसु सण्णि सव्वे १,४९
पुरिसस्स अट्ठवासं ४,४१२
पुरिसं कोहे कोहं ५,४९३
पुरिसं चउसंजलणं ३,२६
पुरिसं चउसंजलणं ४,३२२
पुरिसं चदुसंजलणं ४,४६९
पुरिसे सव्वे जोगा ४,४७
पुरुगुणभोगे सेदे १,१०६
पुरुमहमुदारुदालं १,९३
पुव्वापुव्वप्फड्डय- १,२३
पुव्वुत्ता छत्तीसा १,३९
पुव्वुत्ता जे उदया ५,४५
पुव्वुत्ता वि य तीसा १,३७
पुंवेदो मिच्छत्तं ३,७१

[ब]

बत्तीसं आसादे ५,३५६
बत्तीसोदयभंगा ५,३४९
बहुविहबहुप्पयारा १,१४१
बंध-उदया उदीरण- ४,५
बंधट्ठाणा चउरो ४,२१६
बंधपयडीहिं रहिया ४,३६६
बंधविहाणसमासो ४,५२१
बंधं तं चेवुदयं ५,२३९
बंधं तं चेवुदयं ५,२४४
बंधं तं चेवुदयं ५,२४०
बंधंति अप्पमत्ता ४,३८८
बंधंति जसं एयं ४,३०४
बंधंति जसं एयं ५,६६
बंधंति य वेयंति य ४,२३१
बंधा संता ते च्चिय ५,४४६
बंधेण विणा पढमो ५,१८
बंधेण विणा पढमो ५,२९९
बंधोदयकम्मंसा ५,८
बाणउदि एगणउदी ५,२१९
बाणउदि-णउदिमडसी- ५,४२२
बाणउदि-णउदिसंता ५,२२९
बाणउदि-णउदिसंता ५,२३२
बाणउदि-णउदिसंता ५,२४५
बाणउदि-णउदिसंता ५,४३३
बायर-सुहुमेक्कदरं ५,७१
बायर-जसकित्ती वि य ३,४५
बायर-जयकित्ती वि य ३,६५
बायर-पज्जत्तेसु वि ५,२७५
बायर-सुहुमेक्कयरं ४,२७९
बायर-सुहुमेगिंदिय- १,३४
बायालतेरसुत्तर- ५,२८८
बायालं पि पसत्था ४,४५२
बारसपण्णट्ठाइं ५,३१३
बारण भंगे वि गुणे ५,३५९
बारस मुहुत्त सायं ४,४११
बारस य वेयणीए ४,४०९
बावण्ण देसविरदे ५,३५१
बावण्णं चेव सया ५,३७९
बावत्तरि पयडीओ ५,४९९
बावत्तरी दुचरिमे ३,५३
बावीसमेक्कबीसं ४,२४७
बावीसमेक्कवीसं ५,२५
बावीसा एगूणं ५,४८१
बावीसादिसु पंचसु ५,३७
बासट्ठि वेयणीए ५,२५६
बासीदिं दो उवरिं ५,४३५
बासीदिं वज्जित्ता ५,२२३
बाहिर पाणेहिं जहा १,४५
बि-ति-एइंदियजीवे ४,२५
बि-ति-चउरिंदिय-सुहुमं ४,४०५
बि-ति-चउरिंदिय-सुहुमं ४,४७४
बिदियकसाएहि विणा ४,३३७
बिदियकसाएहि विणा ४,३४२
बिदियकसायचउक्कं ३,१९
बिदियकसायचउक्कं ४,३१३
बिदियचदुमणुसो- ४,३८६
बिदियपणवीसठाणं ४,२८०
बिदियपणुवीसठाणं ५,७२
बिदियं अट्ठावीसं ४,३०३
बिदियं अट्ठावीसं ५,९५
बिदिय-चदुमणुसोरा- ४,३८६
बिहिं तिहिं चउहिं पंचिहिं १,८६
बुद्धी सुहाणुबंधी १,१६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बेइंदियस्स एवं ५,१३५
बेसय छप्पण्णाणि य ५,३४१

[भ]

भयमरइदुगुंछा वि य ४,३९९
भयरहिया णिदूणा ५,३९
भविया सिद्धी जेसिं १,१५६
भविएसु ओघभंगो ५,२०५
भव्वो पंचिंदियो सण्णी १,१५८
भासा-मणजोआणं ४,७६
भिण्णसमयट्ठिएहिं दु १,१७
भूयाणुकंप-वद-जोग- ४,२०४

[म]

मइ-सुअअण्णाणाइं ४,२१
मइ-सुअअण्णाणाइं ४,४०
मइ-सुअअण्णाणेसु य ५,२०१
मइ-सुअअण्णाणेसुं ४,१५
मइ-सुअअण्णाणेसुं ४,४८
मइ-सुअअण्णाणेसुं ४,९७
मइ-सुअअण्णाणेसुं ५,४४३
मइ-सुअ-ओहिदुगेसुं ४,९१
मइ-सुअ-ओहि-मणेहि य १,१७९
मइ-सुय-ओहिदुगाइं ४,२३
मज्झिल्ले मण-वचिए ४,२६७
मणपज्जवपरिहारो १,१९४
मणपज्जे केवलदुवे ४,९२
मण-वयण-कायवंको ४,२१२
मणसा वाया काएण १,८८
मणुयगइ सव्वभंगा ५,१८१
मणुयगइ सहगयाओ ५,५०४
मणुयगई पंचिंदिय- ५,४७५
मणुयगई पंचिंदिय- ५,५०२
मणुयगई संजुत्ता ५,१५६
मणुय-तिरियाउअस्स हि ४,४३९
मणुय-तिरियाणुपुव्वी ३,३५
मणुयदुवं उव्वेल्लिय ५,२१२
मणुयदुयं ओरालिय- ४;४६१
मणुयदुयं पंचिंदिय- ५;२१६
मणुया य अपज्जत्ता १,५८
मणुयाउस्स य उदए ५,२३
मणुयाउस्स य उदए ५,२९४
मणुयाणुपुव्विसहिया ५,५०३
मणुसगइसव्वभंगा ५,१७८
मणुसदुग इत्थिवेयं ४,३९७
मण्णंति जदो णिच्चं १,६२
मरणं पत्थेइ रणे १,१४९
मंदो बुद्धिविहीणो १,१४५
मायं चिय अणियट्टी- ३,५८
मिच्छक्खपंचकाया ४,११९
मिच्छक्खपंचकाया ४,१२६
मिच्छक्खपंचकाया ४,१२७
मिच्छक्खपंचकाया ४,१३३
मिच्छक्खपंचकाया ४,१३४
मिच्छक्खपंचकाया ४,१३८
मिच्छक्खं चउकाया ४,११३
मिच्छक्खं चउकाया ४,१२०
मिच्छक्खं चउकाया ४,१२१
मिच्छक्खं चउकाया ४,१२८
मिच्छक्खं चउकाया ४,१२९
मिच्छक्खं चउकाया ४,१३५
मिच्छ णउंसयवेयं ३,१५
मिच्छ णउंसयवेयं ४,३०८
मिच्छ णउंसयवेयं ४,३२८
मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,१०८
मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,१३०
मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,११४
मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,११५
मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,१२२
मिच्छत्तक्ख तिकाया ४,१२३
मिच्छत्तक्ख दुकाया ३,१०५
मिच्छत्तक्ख दुकाया ४,१०९
मिच्छत्तक्ख दुकाया ४,११६
मिच्छत्तक्ख दुकाया ४,११७
मिच्छत्तक्ख दुकाया ४;१२४
मिच्छत्तक्ख दुकाया ४,११०
मिच्छत्तक्खं काओ ४,११८
मिच्छत्तक्खं काओ ४,१११
मिच्छत्तक्खं काओ ४,११२
मिच्छत्तक्खं काओ ४,१०४
मिच्छत्तक्खं काओ ४,१०६
मिच्छत्तक्खं काओ ४,१०७
मिच्छत्तण कोहाई ५,३२
मिच्छत्तण कोहाई ५,३०६
मिच्छत्तं आयावं ३,३२
मिच्छत्तं वेदंतो १,६
मिच्छत्ताई चउट्टय ४,८६
मिच्छम्मि छिण्णपयडी ४,३४०
मिच्छम्मि पंच भंगाऽ- ५,१७
मिच्छम्मि पंच भंगाऽ- ५,२९८
मिच्छम्मि य बावीसा ४,२४८
मिच्छम्मि य बावीसा ५,२६
मिच्छम्मि सासणम्मि ५,१२
मिच्छम्मि सासणम्मि य ५,२८५
मिच्छाइ-अपुव्वंता- ३,३०१
मिच्छाइचउक्केयार- ४,९८
मिच्छाइट्ठी जीवो १,१७०
मिच्छादिट्ठी जीवो १,८
मिच्छाइपमत्तंता ५,२८९
मिच्छाइसजोयंता ४,६७०
मिच्छाई खीणंता ४,६९
मिच्छाई चत्तारि य ४,५८
मिच्छाई तिसु ओघो ४,३४७
मिच्छाई देसंता २,२९६
मिच्छा कोहचउक्कं ५,३१
मिच्छा कोहचउक्कं ५,३००
मिच्छादि-अपुव्वंता ५,३६५
मिच्छादि-अप्पमत्तं ५,३७२
मिच्छादिट्ठिप्पभई ४,२२३
मिच्छादिट्ठिप्पहुदिं ५,३८०
मिच्छादिट्ठिस्सोदय, ५,३२९
मिच्छादिट्ठी भंगा ५,३७४
मिच्छादिट्ठी भंगा ५,३८१
मिच्छादिट्ठी महारंभ ४,२०७
मिच्छादिय-देसंता ५,३६१
मिच्छा मोहचउक्कं ५,३०४
मिच्छासंजम हुंति हु ४,७७
मिच्छासादा दोण्णि य ४,५९
मिच्छा सासण णवयं ४,२४५
मिच्छा सासण मिस्सो १,४
मिच्छा सासण मिस्सो ४,५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छा सासण मिस्सो ५,२०५
मिच्छाहारदुगूणा ४,९८
मिच्छिंदियछक्काया ४,१३२
मिच्छिंदियछक्काया ४,१३७
मिच्छिंदियछक्काया ४,१२५
मिच्छिंदिय छक्काया ४,१३२
मिच्छिंदिय छक्काया ४,१३९
मिच्छिंदिय छक्काया ४,१३६
मिच्छे तेत्तियमेत्तं ४,३५७
४,३७१
मिच्छे अड चउ चउ ५,३१५
मिच्छे सोलस पणुवी- ३,११
मिस्सस्स वि बत्तीसा ५,३५०
मिस्सं उदेइ मिस्से ३,३०
मिस्सम्मि उणतीसं ५,४०५
मीमंसइ जो पुव्वं १,१७४
मूलग्गपोरबीया १,८१
मूलट्ठिदि-अजहण्णो ४,४२०
मूलपयडीसु एवं ५,७
मोहस्स सत्तरी खलु ४,३९२
मोहाऊणं हीणा ४,२२०
मोहे संता सव्वा ५,३५

[र]

रूसइ णिंदइ अण्णे १,१४७

[ल]

लिंपइ अप्पीकीरइ १,१४२

[व]

वण्णरसगंधफासं ४,४१६
वण्णरसगंधफासा २,६
वण्णरसगंधफासा २,७
वत्तावत्तपमाए १,१४
वत्थुणिमित्तो भावो १,१७८
वदसमिदिकसायाणं १,१२७
वयणेहिं हेऊहिं य १,१६१
वस्ससयं आबाहा ४,३९३
वंसीमूलं मेसस्स १,११४
वाउब्भामो उक्कलि १,८०
वा चदु अट्ठासीदि य ५,२४२
विकहा तहा कसाया १,१५
विग्गहगइमावण्णा १,१७७
विग्गहगइमावण्णा १,१९१
विग्गहगईहिं एए ५,१२५
वियलिंदिएसु तीसु वि ५,४२९
वियलिंदिएसु तेच्चिय ५,२७६
वियलिंदिय णिरयाऊ ४,३७५
वियलिंदियसामण्णे ५,१२१
विरए खओवसमए ५,३१०
विरदाविरदे जाणे ५,४०८
विरयाविरए जाणसु ५,३८३
विरयाविरए णियमा ५,३३३
विरयाविरए भंगा ५,३७६
विवरं पंचमसमए १,१९८
विवरीयमोहिणाणं १,१२०
विविहगुणइड्ढिजुत्तं १,९५
विसजंतकूडपंजर- १,११८
विहिं तिहिं चदुहिं पंचहिं १,८६
वेउव्वजुयलहीणा ४,८५
वेउव्वमिस्सकम्मे ५,३३९
वेउव्वमिस्सजोयं ४,१४०
वेउव्वाहारदुगे ४,१३
वेउव्वे मणपज्जव ४,२८
वेदणिए गोदम्मि व ५,१९
वेदय-खइए भव्वा ४,३८५
वेदय-खइए सव्वे ४,५३
वेदयसम्मे केवल- ४,३९
वेदस्सुदीरणाए १,१०१
वेदाहया कसाया ५,४३
वेयण कसाय वेउव्विओ १,१९६
वेयणियगोयघाई ४,४९३
वेयणियाउयमोहे ४,२२५
वेयणियाउयवज्जे ४,२२४

[स]

सगवण्ण जीवहिंसा १,१२८
सग-सगभंगेहि य ते ५,३६२
सगुणा अद्धावलिया ३,९
सण्णिअपज्जत्तेसुं ४,४३
सण्णि-असण्णी आहा- ४,३८९
सण्णिम्मि सण्णिदुविहो ४,२०
सण्णिम्मि सव्वबंधा ५,४६७
सण्णिस्स ओघभंगो ५,२०६
सण्णी पज्जत्तस्स य ५,२५९
सत्त-अपज्जत्तेसु य ५,२६५
सत्त-अपज्जत्तेसुं २,२६५
सत्तट्ठ छक्कठाणा ३,४
सत्तट्ठ णव य पणरस ५,४८६
सत्तट्ठबंध अट्ठो- ५,५
सत्तत्तरि चेव सया ५,३६४
सत्तरस उदयभंगा ५,३४२
सत्तरसघियसदं खलु ५,४७८
सत्तरस सुहुमसराए ४,५०४
सत्तरसं बंधंतो ५,२५२
सत्तादि दस दु मिच्छे ५,३०९
सत्तावीसं सुहुमे ५,४८८
सत्ताहियवीसाए ३,७५
सत्तेव अपज्जत्ता ५,१९८,२६८
सत्तेव य पज्जत्ते ५,२७०
सत्तेव सहस्साइं ५,३९०
सद्दहणासद्दहणं १,१६९
सब्भावो सच्चमणो १,८९
समचउरस वेउव्विय ३,२३
समचउरं ओरालिय ५,१७७
समचउरं पत्तेयं ५,१८६
समचउरं वेउव्विय ४,३१८
सम्मत्तगुणणिमित्तं ३,१४
सम्मत्तगुणणिमित्तं ४,३०६
सम्मत्तगुणणिमित्तं ४,४८९
सम्मत्तदेससंयम- १,११०
सम्मत्तपढमलंभो १,१७१
सम्मत्तरयणपव्वय- १,९
सम्मत्तादिमलंभस्सा- १,१७२
सम्मत्ते सत्त दिणा १,२०५
सम्माइट्ठी कालं ४,५७
सम्माइट्ठी जीवो १,१२
सम्माइट्ठी णिर-तिरि ४,१७९
सम्माइट्ठी मिच्छो ४,४८०
सम्मामिच्छत्तेयं ३,३४
सम्मामिच्छाइट्ठी ४,३७४
सम्मामिच्छे जाणसु ५,३८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामिच्छे जाणे	५,३७५
सम्मामिच्छे भंगा	५,३६७
सयलससिसोमवयणं	४,१
सरजुयलमपज्जत्तं	५,४९६
सव्वट्ठिदीणमुक्कस्साओ	४,४२५
सव्वाओ वि ठिदीओ	४,४२४
सव्वासिं पयडीणं	४,३०५
सव्वुक्कस्सठिदीणं	४,४२६
सव्वुवरि वेदणीए	४,४९७
सव्वे बंधाहारे	५,४७०
सव्वे वि बंधठाणा	५,२७८
सव्वे वि य मिलिएसु	५,२६३
सव्वेसिं तिरियाणं	५,१५५
सव्वेसिं पयडीणं	३,१३
संखेज्ज-असंखेज्जा	१,१५५
संखेज्जदिमे सेसे	४,३२१
संगहियसयलसंजम-	१,१२६
संजलण-णोकसाया	४,८८
संजलण-तिवेदाणं	४,२०१
संजलणलोहमेयं	३,३९
संजलणं एयदरं	४,१९७
संजलण य एयदरं	४,१९८
संजलण य एयदरं	४,१९९
संजलणा वेदगुणा	५,३२४
संठाणं पंचेव य	४,४५७
संठाणं संघयणं	३,७७
संठाणं संघयणं	४,४०६
संठाणं संघयणं	४,४८२
संतट्ठाणाणि पुणो	५,४२०
संतर णिरंतरो वा	३,६८
संतस्स पयडिठाणा	५,३४
संताइल्ला चउरो	५,४५०
संतादिल्ला चउरो	५,४३९
संता चउरो पढमा	५,४५७
संता णउदाइचदुं	५,४६०
संपुण्णं तु समग्गं	१,१२६
साइ अणाइ धुव अद्धुवो	४,४४३
साइ अणाइ य धुव अद्धुवो	४,२३५
साइ अबंधा बंधइ	४,२३३
साईयर वेदतियं	२,११
सादि अणादि य अट्ठ य	४,४४१
सादि अणादि य धुव अद्धुवो	४,२३५
सादियरं वेया विय	४,२३५
सादेदर दो आऊ	४,५०९
सामण्णणिरयपयडी	४,३३०
सामाइय-छेदेसुं	४,९३
सामाइय-छेदेसुं	४,६४
सामाइय-छेदेसुं	५,४४७
सामाइयाइछस्सुं	४,१६
सायं चउपच्चइओ	४,४८८
सायं तिण्णेवाउग-	४,४५३
सायंतो जोयंतो	४,३२४
सायासाय दोण्णिवि	४,४८१
सासणमिस्सेऽपुव्वे	५,३१७
सासणसम्माइट्ठी	४,३६५
सासणसम्माइट्ठी	४,३७७
सासणसम्माइट्ठी	४,३३५
सासणसम्मा देवा	४,३५० ३५४
सासणसम्मे सत्त अ	४,१९
साहारण पत्तेयं	४,२८५
साहारण पत्तेयं	५,७७
साहारणमाहारं	१,८२
साहारण-वियलिंदिय	४,३४२
साहारण सुहुमं चिय	३,५६
सिक्खाकिरिउवएसा-	१,१७३
सिद्धत्तणस्स जोगा	१,१५४
सिद्धपदेहि महत्थं	५,२
सिलभेय-पुढविभेया	१,११२
सुक्काए सव्वे वि य	४,३७
सुणह इह जीवगुणसण्णि-	४,३
सुण्ण जुयट्ठारसयं	५,३५४
सुभमसुभसुहयसुस्सर-	५,१७८
सुर-णारएसु चत्तारि	४,५७
सुर-णिरएसुं पंच य	५,२६०
सुस्सरजसजुयलेक्कं	४,२८८
सुस्सरजसजुयलेक्कं	५,८०
सुह-दुक्खं बहुसस्सं	१,१०९
सुहपयडीण विसोही	४,४५१
सुहपयडीणं भावा	४,४८७
सुहसुस्सरजुयलाविय	३,४३
सुहुम अपज्जत्ताणं	५,२७१
सुहुमणिगोयअपज्जत्त-	४,५०३
सुहुमंतट्ठ वि कम्मा	३,५
सुहुमम्मि सुहुमलोह	४,२०३
सुहुमम्मि होंति ठाणे	५,३९८
सेढिअसंखेज्जदिमे	४,५१६
सेलसमो अट्ठिसमो	१,११३
सेलेसिं संपत्तो	१,३०
सेसअपज्जत्ताणं	५,२७२
सेसं उगुदालीसं	३,४८
सेसाणं चउगइया	४,४३२
सेसाणं चउगइया	४,४६६
सेसाणं पयडीणं	४,४४०
सेसेसु अबंधम्मि य	५,५०
सो मे तिहुअणमहिओ	३,६६
सोलस जीवसमासा	१,४०
सोलस मिच्छंतंता	४,३०७
सोलह अट्ठेक्केक्कं	३,५२
[ह]	
हस्स रइ भय दुगुंछा	३,७०
हास रइ पुरिस वेयं	४,४०३
हास रइ भय दुगुंछा	४,४७०
हुंडमसंपत्तं पि य	४,२९१
हुंडमसंपत्तं पि य	५,८३
हुडं पत्तेयं पि व	५,१०२
होंति अणियट्टिणो ते	१,२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृतटीकोद्धृत-पद्यानुक्रमणी

[अ]

अट्ठविहमणुदीरंतो- ४,२९
अणसंजोजिद मिच्छे मुहुत्त-अंतो ४,१३
अणसंजोजिद सम्मं मिच्छं- ५,५
अणसंजोजिद सम्मे मिच्छं- ४,१२
अत्रैकत्रिशतकं स्थानं- ५,२०
अनुभागं प्रति प्रोक्ता- ४,२७
अनुलोम-विलोमाभ्यां ४,१०
असौ न म्रियते यस्मात् ४,१९
असंख्यातगुणान्यस्माद्रसस्थानानि- ४,५५
असम्प्राप्तमनादेयमयशो- ५,७
अविभागपरिच्छेदाः ४,५६

[आ]

आद्ये संहनने क्षिप्ते ५,१४
आबाधोर्ध्वस्थितावस्थां- ४,३५
आबाधोनाऽस्ति सप्तानां ४,३४

[उ]

उदये विंशतिः सैक- ५,११
उदितं विद्यमानञ्च ५,२५
उवसम-खइए-सम्मं ५,३

[ए]

एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च षट् ४,९

[क]

कम्मसरूवेणागयदव्वं ४,३२
कर्मप्रवादाम्बुधिबिन्दुकल्प चतुर्विधो- ५,५७
कालमावलिकामात्रं ४,१४
कालक्षेत्रं-भवं ४,४८
कषायाणां द्वितीयानामुदये ४,४०

[ग]

गुणस्थानविशेषेषु ४,६०
घोरसंसारवाराशित- ४,३०
चरिम-अपुण्णभवत्थो- ४,४७

[छ]

छट्ठो त्ति पढमसण्णा ४,५
जघन्यो नाथरो यस्माद- ४,५२

[त]

ततोऽसंख्यगुणानि स्युः ४,५४
तदुच्छ्वासयुतं स्थानमेको- नत्रिंशतं- ५,१७
तिण्णेगे एगेगंदो मिस्से- ५,४
तित्थाहारा जुगवं सव्वं ५,२१
तिर्यक्ष्वौदारिके मिश्रे- ५,२४
त्रिभिर्द्वाभ्यां तथैकेन- ४,२५
त्रयस्त्रिंशज्जिनैर्लक्षाः- ४,३१
त्रैशतं पूर्णभाषस्य- ५,१८

[द]

देवायुर्नारकायुर्बध्नोतः- ५,२४

[न]

न दुर्भगमनादेयं दुःस्वरं ४,२९
नृगतिः कार्मणं पूर्ण- ५,१२
नृगतिः पूर्णमादेयं पञ्चाक्षं- ५,९

[प]

पज्जत्ती पाणा विय सुगमा ४,४
परघात इव गत्यन्यतराभ्यां- ५,१६
परतः परतः स्तोकः- ४,३६
परं भवति तिर्यक्षु ५,२२
पाको नावलिका- ४,१८
पुद्गलाः ये प्रगृह्यन्ते, ४,४६
पूर्वकेन परं राशिं गुण- यित्वा- ४,११
प्रकृति परिणामः- ४,४९
प्रकृतिस्तिक्तता निम्बे ४,५१
पृथक्तीर्थकृता योगे- ५,१९

[ब]

बन्धकालो जघन्योऽपि ३,२
बन्धयोग्यगुणस्थाने ३,१
बन्धस्य हेतवो येऽमी- ४,२६
बन्धविचारं बहुविधिभेदं ४,५९
बन्धे कत्युदये सत्वे सन्ति ५,१
बायर-सुहुमेगिंदिय वि-ति ४,२

[भ]

भागोऽसंख्यातिमः- ४,५३
भोगामुमा देवायुं- ५,३

[म]

मर्त्यायुरेव नान्यानि ५,२७
मिच्छे चोद्दस जीवा सासण ४,३
मिच्छे सासणसम्मे ४,७
मिथ्यात्व १ मिन्द्रिय १ कायः- ४,१६
मिथ्यात्वं विंशतिर्बन्धे ४,३७
मिथ्यात्वस्योदये यान्ति ४,३९

[य]

यतो बध्नाति सद्दृष्टिर्नर- ५,२६
यावत्कालमुदीर्यन्ते- ४,३३
ये सन्ति यस्मिन्नुपयोग- योगाः ४,१
योगिन्यौदारिको दण्डे ४,८
योगे वैक्रियिके मिश्रे- ४,२३
मोगैर्द्वादशभिस्तस्मान्मिश्र- ४,२१

[व]

विग्गहगइमावण्णा ४,९
वेद्यायुर्नामगोत्राणां ४,३८

[ष]

षड्विंशति शतान्युक्त्वा- ५,१०
षष्टिः पञ्चाधिका बन्धं ४,४२
षाड्विंशतमिदं स्थानं ५,१५

[स]

सत्रयोदशयोगस्य ४,१७
सप्तैवावलिकाशेषे- ४,२८
सम्यक्त्वतो न मिथ्यात्वं ४,१५
सम्यक्त्वं कारणं पूर्व- ४,४३
सयलरसरूपगंधेहिं- ४,४५
सयोगेन योगतः सातं ४,४१
सहस्राः पञ्चभङ्गानामष्ट- ५,८
सासादनो यतो जातु ४,२०
सुभगं बादरादेयं निर्मित- ५,१३
सुरणिरया णरतिरियं ५,२६
संस्थाप्य सांसनं द्वेधा- ४,२२
स्थानानां त्रिविकल्पानां- ५,२३
स्वभावः प्रकृतिर्ज्ञेया- ४,५०
स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः- ४,६
स्वामित्वभागभागाभ्यां ४,४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृतवृत्ति-गत-पद्यानुक्रमणी

[अ]

अक्खरणंतिमभागो ५५४
अगुरुगलहुगचउक्कं ५६३
अगुरुगलहुगुवघादा ५९९
अगुरुयलहुगुवघाया ६२४
अगुरुगलहुगुवघादं ५६५
अज्जसकित्तीय तहा ५६१
अज्ञो जन्तुरनीशोऽय- ५४७
अट्ठण्हमणुक्कस्सो ६१८
अट्ठत्तीस सहस्सा ६५४
अट्ठ य सत्त य छक्क य ६३४
अट्ठविघकम्मवियला ५७३
अट्ठविहमणुदीरितो ४३७
अट्ठविह-सत्त-छबंधगा ५९६
अट्ठविह सत्त सो [छ] ६३१
अट्ठविहं वेदंता ५९७
अट्ठसु एगवियप्पो ६३२
अट्ठसु पंचसु एगे ६४५
अट्ठारह पयडीणं ६१५
अट्ठावीसं णिरए ६०१
अट्ठेयारस तेरस ६३७
अट्ठेव सदसहस्स- ५८९
अड छव्वीसं सोलस ६४७
अडदालीस मुहुत्ता ५८३
अण एइंदियजादी ५६१
अणमिच्छमिस्स सम्मं ५६०
अणमिच्छमिस्स सम्मं ५६६
अणियट्टिबादरे थीणगिद्धितिग ६६०
अणुवद-महव्वदेहि य ५९५
अण्णदरवेदणीयं ६६१
अण्णदरवेदणीयं ५६२
अण्णदरवेदणीयं ५६२
अण्णदरवेदणीयं ५६३
अण्णाणतिगं च तहा ५७६
अथिरासुहं तहेव य ५६५
अदिभीमदंसणेण ५७४
अदिसयमादसमुत्थं ५४३
अधो गौरवधर्माणः ५५४
अप्पपरोभयबाधा ५७९
अप्पप्पवुत्तिसंचिद ५७७
अप्रतिबुद्धे श्रोतरि ५८५
अरहंतसिद्धचेदिय ५९४
अरहंतादिसु भत्तो ५९५
अल्पाक्षरमसंदिग्धं ५८५
अवगदणिवारणत्थं ५४१
अवधीयदि त्ति ओही ५७९
अवसेसा पगडीओ ६२३
अविभागपलिदच्छेदो ६२९
अविरद-अंता दसयं ६०५
असिदिसदं किरियाणं ५४५
अस्सण्णिय-सण्णीणं ५७४
अहमिंदा विय देवा ५७६
अहिमुहणियमिदबोधण ५७९
अहसुचरियसयलजय ६६२

[आ]

आई मंगल करणं ५५१
आउगभागो थोवो ६२४
आउगस्स पदेसस्स ६२५
आऊणि भवविवागी ६२४
आणादिज्जं णिमिणं ५६३
आदाउज्जो उदओ ६३८
आदाउज्जोवाणमणुदय ६३८
आदाउज्जोवाणं ६२०
आदाव सोधम्मो ६२२
आदिमज्झावसाणे ६३०
आदी मज्झवसाणे ५४३
आदी विय संघडणं ५६२
आदी विय संघडणं ५६५
आभीयमासुरक्खा ५७९
आयारं सुद्दयडं ५४४
आलस्योद्योतिरात्मा भोः ५४७
आवरणदेसघादंतराय ६२३
आरणमंतरायं ६१२
आवरणमंतराइय ६१४
आवरणमंतराए ५६४
आहरदि अणेण मुणी ५७८
आहरदि सरीराणं ५८३
आहारमप्पमत्तो ६२१
आहारदंसणेण य ५७४
आहारसरीरिंदिय ५७३
आहारं तित्थयरं ६१७

[इ]

इक्क य छक्केयारं ६३६
इक्क य छक्केयारं ६५०
इक्कावण्णसहस्सा ६५३
इक्कं च दो य चत्तारि ६३३
इगि तिण्णि पंच पंच य ६०१
इगि दुग दुगं च तिय चदु ६०४
इगि विगलिंदिय सयले ६५६
इगिवीसं चउवीसं ६३७
इगिवीसं चउवीसं ६३८
इगिवीसं पणुवीसं ६४१
इच्चेवमादिया जे ५८२
इत्थि-णउंसयवेयं ५६५
इदरेदरपरिमाणं ५७२
इयकम्मपगडिट्ठाणाणि ६५७
इयकम्मपगडिपगदं ६६२
इयकम्मपयडिपयदं ६३०
इय वंदिऊण सिद्धे ५४१
इरियावहमाउत्ता ५९७
इह जाहि बाधिदा विय ५७४
इंगाल जाल अच्ची ५७७
इंदियमणोधिणा वा ५८४

[उ]

उवओगा जोगविही ५८७
उक्कस्सजोगी सण्णी ६२७
उक्कस्समणुक्कस्सो ६१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कस्समणुक्कस्सो ६१६
उक्कुट्टि (उगुसट्टि) मप्पमत्तो ६५८
उच्चारिदम्हि दु पदे ५४१
उज्जुवमणुज्जुगं पिअ ५८०
उज्जोवमप्पसत्थं ५६१
उज्जोवरहियविगले ६३९
उज्जोवरहियसयले ६४०
उत्तरपयडीसु तहा ५९८
उदधिसहस्सस्स तहा ६१५
उदयस्सुदीरणस्स य ५६२
उदयस्सुदीरणस्स य ६५७
उदीरेइ णामगोदे ५९७
उम्मग्गदेसओ मग्ग- ५९४
उवजोगा जोगविही ५८६
उवयरणदंसणेण ५७४
उवरदबंधे चदुपंच ६३२
उवरिल्लपञ्चया पुण ५९०
उवघादं परघादं ५६४
उवसमखइयं च तहा ५७६
उवसंतखीणमोहे ५६१
उवसंत-खीणमोहो ५७०
उवसंते खीणम्मि य ६४६
उवसंते खीणे वा ५८०

[ए]

एइंदिएसु चत्तारि ५८६
एइंदिय थावरयं ६२२
एओ चेव महप्पो ५४४
एकैकस्योपसर्गस्य ५४२
एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः ५४७
एक्कारसेसु तिय तिय ५८७
एक्केक्कम्मि य वत्थू ५५०
एक्कं च दोण्णि चउबंधगेसु ६३६
एक्कं च दोव तिण्णि य ६००
एगुत्तर असिदीओ ५६३
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ ६५५
एगेगं इगितीसे ६४३
एत्तो हणदि कसायट्ठयं ६६०
एदे खलु चोत्तीसा ५६५
एदे णवाहियारा ५६५
एदे पुव्वुद्दिट्ठा ५७४
एदेसिं पुव्वाणं ५५०
एदं कम्मविधाणं ५६६
एयक्खेत्तपगाढं ६२४
एय णवुंसयवेयं ५६३
एयारसंगमूलो ५४४
एयंतबुद्धदरिसी ५९०
एयं सुहुमसरागो ६४८
एवं कदे मएपुण ५८३
एवं विउला बुद्धी ५८२
एवं सुहुमसरागो ५७३
एसो दु बंधसामित्तो ६५८
एसो बंधसमासो ६३०

[ओ]

ओरालिय तम्मिस्सं ५७५
ओसा यहि मिग ५७७

[अं]

अंडज पोदज जरजा ५७७
अंतयडदसं अणुत्तरो ५४४
अंतोमुहुत्तमज्झं ५७८

[क]

कः कण्टकानां प्रकरोति ५४७
कदि बंधंतो वेददि ६३१
कधं चरे कधं चिट्ठे ५४४
कम्मेव य कम्मभवं ५७८
काऊ काऊ य तहा ५८१
कारिसतणिट्ठमग्गी ५७९
कालः सृजति भूतानि ५४७
काले चदुण्ह वुड्ढी ५५४
काले तिणए उवघाणे ५७५
किण्हा भवरसवण्णा ५८१
किमिरागं चक्कमलं ५७९
किं बंधोदयपुव्वं ५६३
कीडंति जदो णिच्चं ५७६
कुंथु पिपीलगमक्कुण ५७७
केवलणाणावरणं ६२२
केवलणाणी लोगं ५७३
केवलिणं सागारो ५८४
कोटकोटी दशा एषां ६१२
कोसुंभो जह रागो ५७३

[ख]

खयउवसमं विसोही ५५६
खवणाए पट्ठवगो ५८३
खीणकसाय दुचरमे ६६१
खीणकसाय दुचरिमे ५६३
खुल्लग वरडग अक्खग ५७७

[ग]

गइ इंदिएसु काए ५७५
गदिआदिएसु एवं ६०६
गदिकम्म विणिव्वत्ता ५७६
गुणजीवा पज्जत्ती ५७०
गुणट्ठाणएसु अट्ठसु ६४८
गोदेसु सत्त भंगा ६३३

[घ]

घादीणं अजहण्णो ६१८
घादीणं छदुमत्था ५९६
घोलणजोगिमसण्णी ६२८

[च]

चउतीसं चउवण्णं ५६४
चउदस सरागचरमे ६२१
चउपच्चइओ बंधो ५९०
चक्खु अचक्खू ओधी ५७६
चक्खु विहीणे ते इंदियाण ५७४
चक्खुं घाणं जिब्भा ५७४
चक्खूणं जं पस्सदि ५८०
चत्तारि आदि णवबंध ६३५
चत्तारि पगडिट्ठाणाणि ५९९
चत्तारि वि छेत्ताइं ५८२
चदुगदियमग्गणा विय ५५४
चागी भद्दो चोक्खो ५८१
चारणवंसो तह पंचमो ५४७
चंडो ण मुयदि वेदं ५८१

[छ]

छउमत्थयाय रइयं ६१२
छक्कावक्कमजुत्तो ५४४
छण्णव छत्तिय सत्त य ६५५
छण्हमसण्णिट्ठिदीण ६१७
छण्हं पि अणुक्कस्सो ६२५
छदव्वणवपदत्थे ५७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छप्पंचणवविघाणं ५८२
छप्पंचमुदीरिंतो ५९७
छसु ट्ठाणएसु सत्तट्ठ ५९६
छसु हेट्ठिमासु पुढवीसु ५८२
छस्संठाणं च तहा ५६४
छाएदि सयं दोसेण ५७८
छादालसेसमिस्सो ६५८
छेत्तूण य परिमायं ५८०

[ज]

जणवय संमद ठवणा ५४९
जदं चरे जदं चिट्ठे ५४४
जलरेणुभूमिपव्वद ५५६
जह कंचणग्गिणेया ५७७
जह खोत्तुवंतु उदयं ५७३
जह गेरुवेण कुड्डो ५८१
जह जिणवरेहिं कहियं ६११
जह पुण्णापुण्णाइं ५७३
जह भारवहो पुरिसो ५७७
जह लोहं धम्मंतं ५७२
जह लोहं धम्मंतं ५७३
जाणदि अणेण जीवो ५७९
जाणदि कज्जाकज्जं ५८१
जाणदि पस्सदि भुंजदि ५७६
जादिजराजरामया ५७६
जाहिं य जासु व जीवा ५७४
जितमदहर्षद्वेषा ५८५
जिब्भा फासं वयणं ५७४
जीवे चउदसभेदे ५८०
जीवो कत्ता य वत्ता य ५४९
जेम णियमेसु य पंचि- ५८०
जेसिं ण संति जोगा ५७८
जेहिं अणेगा जीवा ५७३
जेहिं दुलक्खिज्जंते ५७०
जो इत्थ अपरिपुण्णो ६६२
जोगा पयडि पदेसा ६२८
जोगोवओगलेसाइ ६५१
जो णेव सच्चमोसो ५७८
जं सामण्णं गहणं ५८०
ज्ञानं प्रमाणमित्याहुः ५४२

[ण]

णउई चेव सहस्सा ६५१
णमिऊण अणंतजिणे ५६०
णमिऊण जिणवरिंदे ५६५
ण य इंदिएसु विरदो ५७२
ण य कुणदि पक्खवादं ५८१
ण य जे भव्वाभव्वा ५८२
ण य पत्तियदि परं सो ५८१
ण य मिच्छत्तं पत्तो ५८३
ण य सच्चमोसजुत्तो ५७८
ण रमंति जदो णिच्चं ५७६
णलया बाहू य तहा ५५७
णव पंचाणउदिसदा ६३६
णव पंचोदयसंता ६४२
णवमो इक्खाउगाणं ५४८
णवसु चदुक्के इक्के ५८७
णवि इंदियकरणजुदा ५७७
णाणस्स दंसणस्स य ५५१
णाणस्स दंसणस्स य ५६०
णाणस्स दंसणस्स य ५९८
णाणंतराय तिविहमवि ६४६
णाणंतराय दसयं ६१५
णाणंतरायदसयं ६५८
णाणंतराय दसयं ६६१
णाणंतरायदसयं ६६४
णाणंतरायदसयं ५६५
णाणंतरायदसयं ५९९
णाणावरणचउक्कं ६२३
णाणोदधिणिस्संदं ५८५
णिक्खेवे एयट्ठे ५८४
णिद्दा पयला य तहा ५६१
णिद्दा पयला य तहा ५६२
णिंदा वंचणबहुलो ५८१
णिमिणेण सह सगवीसा ५६४
णिमिणं तित्थयरेण ५६४
णिम्मूल खंधदेसे ५८२
णिरयगई तिरियगई ५७५
णिरय-तिरियाणुपुव्वी ५६४
णिरयायुग दवाउग ६१३
णिरयाऊ तिरियाऊ ५६४
णिरयाऊ देवाऊ ५६४
णे वित्थी णेव पुमा ५७९

[त]

तच्चाणुपुव्विसंहिदा ६६१
ततो वर्षशते पूर्णे ६१२
तदियकसायचउक्कं ५६१
तदियकसायचउक्कं ५६२
तसचउ पसत्थमेव य ५६१
तसजीवेसु य विरदो ५८०
तस थावर सुहुमाविय ५६५
तस थावरादिजुगलं ६१५
तस बादरपज्जत्तं ५६४
तस बादरपज्जत्तं ५६५
तह चेव अट्ठपगडी ५६२
तह णोकसायछक्कं ५६२
तह पउमणंदिमुणिणा ६११
तासियमसंखेज्जगुणा ६२९
तिण्णि दस अट्ठठाणाणि ६००
तिण्णि य अंगोवंगं ५६३
तिण्णि य सत्त य चदुदुग ६१४
तिण्णेव दु वावीसे ६३७
तिण्हं खलु पढमाणं ६१२
तिण्हं दोण्हं दोण्हं ५८२
तित्थयर देव-णिरयाउगं ६५९
तित्थयरमेव तीसं ५६१
तित्थयराहाररहिया ६४१
तित्थयराहारविरहियाओ ६५८
ति-दु-इगि-णउदी अट्ठा ६४२
[ति-दु-इगि-णउदी णउदी] ६३७
तिय छक्क पंचचदुदुग ६०४
तिय दुण्णि इक्किक्काओ ६५६
तिय दोण्णि छक्कचक्क ६०१
तिरियगईए चउदस ५८६
तिरियगई मणुयदोण्णि ६१४
तिरियंति कुडिलभावं ५७६
तिव्वकसायबहुमोह- ५९०
तिवियप्पपगडिट्ठाणाणि ६४३
तिसदं वदंति केई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिसु तेरेगे दस णव ५९०
तीसण्हमणुक्कस्सो ६२५
तीसं वारस उदयं ५६२
तेऊ तेऊ य तहा ५८१
तेण असंखेज्जगुणा ६२९
तेरस कोडी देसे ५८९
तेरस चेव सहस्सा ६५१
तेरस णव चदु पणयं ६३८
तेरस बहुप्पदेसो ६२६
तेरे णव चदु पणयं ६४३
तेरेसु जीवसंखेवएसु ६४३
तेवीसं पणुवीसं ६०१
तेवीसं पणुवीसं ६३७
तं चेव सुप्पसण्णं ५७३

[थ]

थावर सुहुमं च तहा ५६१
थावर सुहुमं च तहा ५६५
थीणतिगं इत्थी विय ५६१
थीणतिगं चेद तहा ५६२
थूले जीवे वधकरण ५७२

[द]

दए अट्ठारह दसयं ५९१
दस चउदस अट्ठट्ठा ५५०
दस णव पण्णरसाई ६३७
दस बावीसे णव ६३४
दस पिधसच्चे वयणे ५७८
दस सण्णीणं पाणा ५७३
दहि गुलमिव वामिस्सं ५७२
दुगतीस चदुरपुव्वे ५६०
दुगतीस चदुरपुव्वे ५६६
दुण्हं पंच य छच्चेव ५९०
दुरधिगम-णिउण-परमट्ठ ६६२
देवगइ सहगदाओ ६६१
देवदुगपण सरीरं ५६३
देवाउगमपमत्तो ६२०
देवाउगं पमत्तो ६१६
देवाऊ देवचऊ ५६४
देवासुरिंदमहिदं ५६३
देवे अणण्णभावो ५८२
दैवमेव परं मन्ये ५४७
दो छक्कट्ठ चउक्कं ६५६
दो तीसं चत्तारि य ६०५
दंसणपण णिरयाउग ५६४
दंसण मोहक्खवणे ५८३
दंसणमोहस्सुदए ५८२
दंसणमोहस्सुवसमगो ५८३
दंसण वद सामाइय ५८०
दंसा मसगा मक्खिग ५७७

[प]

पउमापउमसवण्णा ५८१
पडपडिहारसि मज्जा ५५१
पडिणीय अंतराए ५९३
पढम कसाय चउक्कं ६५९
पढम कसाय चउक्कं ६६०
पढमुदओ वुच्छिज्जइ ५६३
पढमो अबंधगाणं ५४८
पढमो अरहंताणं ५४८
पढमो दंसण घादी ५५६
पढमं भव्वं च तहा ५७६
पणग दुग पणग पणगं ६४५
पण णव इगि सत्तरसं ५६०
पण णव इगिसत्तरसं ५६६
पण वण्णा इर वण्णा ५९०
पणिदरस मोयणेण ५७४
पणुतीसं उगुतीसं ६०१
पण्हंरसण्हढिदीणं ६१६
पदणामेण य भणिजिदो ५५४
पयडीए तणुकसाओ ५९५
पयडी बंधण मुक्कं ५५१
परमाणु आदि गाहं ५८०
परिहरदि जो विसुद्धो ५८०
पल्लो सायर सूई ५५४
पाणव्वहादिसु रदो ५९५
पाहुड पाहुडणाणो ५५४
पुढवीय आऊ य तहा ५७५
पुढवी जलं च छाया ५७०
पुढवी य वालुगा ५७७
पुरिस इत्थी णउंसय ५७५
पुरिसस्स अट्ठ वस्सं ६१४
पुरिसं कोहे कोहं माणे ६६०
पुरिसं चदु संजलणं ५६१
पुवगुण भोगे सेदे ५७८
पुरुमह मुदारुरालं ५७८
पुव्वुत्त चदुरमज्झे ५७४
पुव्वुत्त सत्तमज्झे ५७४
पंच णव दुण्णि अट्ठा ५५१
पंच णव दुण्णि अट्ठा ५६०
पंच य छ त्तिय छप्पंच ६२४
पंचय विदियावरणं ६१४
पंचरस-पंचवण्णेहिं ६२४
पंच विइंदियपाणा ५७३
पंचविह-चउविहेसु व ६३७
पंच सुरणिरयसम्मो ६२०
पंचिदिय तिरियाणं ६४०
पंचिदियं च वयणं ५७३
पंचेव उदयठाणाणि ६३८
पंचेव य तेणउदी ५८९
प्रदीपेनार्च्चयेदर्क- ५४३
प्रमाणनयनिक्षेपैः ५४१

[फ]

फासं कायं च तहा ५७४
फासं जिब्भा घाणं ५७४

[ब]

बहुविह-बहुप्पयारा ५८०
बादर जसकित्ती विय ५६२
बादर जसकित्ती विय ५६३
बादर सुहुमेगिंदिय ५७३
बादालं पि पसत्था ६१९
बारस मुहुत्त सादं ६१४
बाहिद पाणेहिं जहा ५७३
बुद्धी सुहाणुबंधी ५८२
बंधविहाण समासो ६३०
बंधस्स य संतस्स य ६३२
बंधं उदय उदीरण ५८६
बंधंति य वेदंति य ५९८
बंधोदयकम्मंसा ६३२
ब्रह्मात्परं नापरमस्ति ५४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[भ]
भविया सिद्धी जेंसि ५८२
भायं चिय अणियट्टी ५६३
भूदाणकंपवदजोग ५९४

[म]
मणपज्जवपरिहारो ५८३
मण वयणकायपंको ५९५
मणसा वचिया काएण ५७७
मणुआणुपुव्विसहिदा ५६४
मणुय-तिरियाणुपुव्वी ५६२
मणुय-तिरियाणुपुव्वी ५६४
मणुय-तिरियाणुपुव्वी ५६५
मणुयदुग इत्थिवेदं ६१२
मणुसगइ पंचिंदियजादि ६६१
मणुसगइ सहगदाओ ६६१
मणुसगइ संजुदाणं ६४१
मण्णंति जदो णिच्चं ५७६
मदिअण्णाणं च तहा ५७५
मदि-सुद-ओधि-मणेहिय ५८४
मदिसुदओही य तहा ५७६
मरणं पत्थेदि रणे ५८१
माया चमरि गोमुत्ति ५५७
मिच्छ णवुंसय वेयं ५६०
मिच्छत्तं आदावं ५६१
मिच्छत्तं पण्णारस ५६४
मिच्छत्तं वेदंतो ५७२
मिच्छादिट्ठिप्पहुदी ५९६
मिच्छादिट्ठी जीवो ५८३
मिच्छादिट्ठी महारंभ ५९४
मिच्छे सोलस पणुवीस ५६०
मिच्छे सोलस पणवीस ५६५
मिच्छे सासणमिस्सो ५७०
[मिच्छो सासणमिस्सो] ५८७
मिस्सादि णियट्टीदो ६४६
मीमंसदि जो पुव्वं ५८३
मूलग्गपोरबीया ५७७
मूलट्ठिदिसु अजहण्णो ६१५
मोहस्स सत्तरिं खलु ६१२
मोहस्सु [वेदस्सु] दीरणाए ५७८
मंगलणिमित्त हेउं ५४१
मंगल णिमित्त हेदुं ५५१
मंदो बुद्धिविहीणो ५८१

[य]
यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके ५४१
योजनं विस्तरं पल्यं ६१२

[र]
रूसदि णिंददि अण्णे ५८१

[ल]
लिंपदि अप्पीकीरदि ५८१
लेसपरिणाममुक्का ५८२
लोगागासपदेसे ५७०
लोभं अणुवेदंतो ५८०

[व]
वण्ण रस गंध फासा ६१५
वण्णादीहिय भेदा ५७७
वत्थुणिमित्तो भावो ५८३
वत्थूवसाहपवरो ५४४
वयणेण वि हेदूण वि ५८२
वादाल तेरसुत्तर ६४६
वादुब्भामो उक्कलि ५७७
वारस पण सट्ठाई ६५०
वारस य वेदणीए ६१३
वारस विहं पुराणं ५४८
वावट्ठि वेदणीए ६४४
वावण्णं चेव सदा ६५४
वावत्तरिं दुचरिमे ५६०
वावत्तरिं दुचरिमे ५६६
वावीसमेक्कवीसं ६००
वावीसमेक्कवीसं ६३३
वावीसा एगूणं ६५८
विकहा तह य कसाया ५७२
विगलिंदिय सामण्णेणुद ६३९
विग्गहगइ मावण्णा ५८३
विदिय कसाय चउक्कं ५६१
विदियावरणे णवबंध ६३२
विरदे खओवसमिए ६४८
विवरीय मोधिणाणं ५७९
विविह गुण इड्ढि जुत्तो ५७८
विएजंत कूडपंजर ५७९
वीसदि पाहुड वत्थू ५५४
वेइंदिय तेइंदिय ५७७
वे चेव सहस्साणि य ५४५
वेदणियाउग मोहे ५९७
वेदणियाउग वज्जिय ५९६
वंदित्ता जिणचंदं ६३१
वंसीमूलं मेहस्स ५७९

[स]
सकलमसहायमेकं ५५५
सच्चासच्चं च तहा ५७५
सण्णि-असण्णी जीवा ५७६
सत्तट्ठबंध अट्ठोदयंस ६३१
सत्तट्ठ णव य पण्णरस ६५९
सत्तत्तरि चेव सदा ६५३
सत्तरस सुहुमसरागे ६२६
सत्ता जंतू य माणीय ५४९
सत्तादि दस दु मिच्छे ६४८
सत्तादी अट्ठंता ५८९
सत्तावीसेगारं ५६३
सत्तावीसं सुहुमे ६६०
सत्तेव अपज्जत्ता ६४५
सत्यं पिशाचात्र वने वसामो ५४७
सद्दहणासद्दहणं ५८३
सब्भावो सच्चमणो ५७८
समचउरं वेउव्विय ५६१
सम्मत्तगुणणिमित्तं ६०४
सम्मत्तरयण पव्वद ५७२
सम्मत्त सत्तया पुण ५८३
सम्मामिच्छत्तेयं ५६१
सम्मादिट्ठी मिच्छो ६२२
सयलससिसोमवयणं ५८५
सल्लेख्य विधिना देहं ५४२
सव्वट्ठिदीण मुक्कस्सओ ६१६
सव्वाओ वि ठिदीओ ६१६
सव्वासिं पगडीणं ६०४
सव्वुक्कस्सठिदीणं ६१६
सव्वुवरि वेदणीए ६२५
सव्वेवि पुव्वभंगा ६०४
सादिअणादि अट्ठ य ६१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादि अणादि य धुव ५९८
सादि अणदि धुवअद्धुवो ६१८
सादि अणादि धुवं ५९८
सादं चदुपच्चइगं ६२४
सादंता जोगंता ६०६
साधारणसुहुमं चिय ५६३
सामाइयम्हि दुकदे ५८०
सामाइयं च पढमं ५७६
सिक्खाकिरिउवदेसा ५८३
सिद्धपदेहिं महत्थं ६३१
सिलभेद-पुढविभेदा ५७९
सुट्ठुवि अवट्टमाणा ५७३
सुण्हइहजीवगुणसण्णिदेसु ५८५
सुभओगेसु पसंगो ५७२
सुभगादिजुयल चदुरो ५६५
सुर-णारएसु चत्तारि ५८८
सुह-दुक्खं बहुसस्सं ५७९
सुहपयडीण विलोहो ६१९
सुहसुस्सर जुयलाविय ५६२
सुहुमणिगोदअपज्जत्त ६२६
सेढिअसंखेज्जदिमे ६२८
सेलसमो अट्ठिसमो ५७९
सेलेसिं संपत्तो ५७३
सेसाणं चदुगदिया ६१७
सेसाणं चदुगदिया ६२०
सेसं उगुदालीसं ५६२
सो [छव्] वावीसेचदु ६३४
सोदूण पाठसद्दं ५७९
सो मे तिहुवणमहिदो ६३०
सो मे तिहुवणमहिदो ५६३
सोलस अट्ठेक्केक्कं ५६०
सोलस अट्ठेक्केक्कं ५६५
सोलस मिच्छत्तंता ६०५
सोलसयं चउवीसं ५८९
संखिज्जमसंखिज्जं ५८२
संखेज्जदिमे सेसे ६०५
संजलण लोहमेयं ५६२
सम्पुण्णं तु समग्गं ५८०
संयोगमेवेह वदन्ति तज्ज्ञाः ५४७
स्वच्छन्ददृष्टिप्रविकल्पितानि ५४६
स्थितस्य वा निषण्णस्य ५४२

[ह]

हस्सरदिपुरिसवेदं ५६५

संस्कृत-पञ्चसंग्रहस्थश्लोकानुक्रमः

[अ]

अकामनिर्जराबाल- ६९३
अघातिन्योऽपि घातिन्यः ७०४
अङ्गोपाङ्गत्रयं चाष्टौ ७३७
अङ्गोपाङ्गत्रयं चाष्टौ ६८०
अङ्गोपाङ्गत्रिकं गन्धौ ७०५
अजघन्यश्चतुर्भेदः ७०१
अणिमादिभिरष्टाभि- ६६६
अतः प्रभृति बन्धस्य ७३६
अत्र श्वभ्रद्वयं हुण्डं ७१३
अत्रैकविंशतं श्वभ्र- ७१५
अत्रैव कतिचिच्छ्लोकान् ६८२
अनन्ताः सन्ति जीवा ये ६६६
अनादेयायशःस्थूलं ७१४
अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे ७३०
अनिवृत्तौ तथा सूक्ष्मे ७३१
अनिवृत्तौ तु या सूक्ष्मेऽ- ७३०
अनुत्कृष्टः प्रदेशाख्यः ७०६
अनुत्कृष्टाश्चतुर्धासां ७०६
अनुगोऽननुगामी च ६६८
अनुद्योतोदयस्यादो ७१६
अनुद्योतोदयेऽस्तीदं ७१७
अनुद्योतोदये स्थाना- ७१७
अनुभागं प्रतिप्रोक्ता ६९३
अनुभागाख्यबन्धास्तु ७०२
अन्त्यग्रैवेयकान्तेषु ७३९
अन्तरङ्गोपयोगः स्या- ६७२
अन्तरायस्य दानादि- ६९३
अपतीर्थकराहारे ७१८
अपनीतानुपूर्वीकं ७१६
अपर्याप्तमनुष्याश्च ७३९
अपर्याप्तमसंप्राप्तं ६७७
अपर्याप्तमसम्प्राप्तं ६९९
अपर्याप्तमसम्प्राप्तं ७३८
अपर्याप्ता नरागत्यां ६६५
अपर्याप्तेषु कृष्णाद्या ६७०
अपश्वभ्रानुपूर्वीक- ७१५
अप्रमत्तस्तथैकान्न- ७३६
अप्रमत्तोऽपि देवायु- ७०३
अप्रमत्तो यतिः पञ्च ७०६
अपूर्वकरणाः कर्म ६६४
अपूर्वक्षपके तीर्थ- ७०१
अपूर्वादित्रये शान्ते ७३३
अपूर्वादिकत्रिंश- ७२३
अबध्नत्युदितं सत्स्या- ७१०
अबध्नत्युदितं सत्स्या- ७२७
अबध्नाद्बध्नतः सादि- ६९४
अबन्धामिश्रसम्यक्त्वे ६७५
अबन्धा मिश्रसम्यक्त्वे ७३८
अभिवन्द्य जिनं वीरं ७३८
अयशःकीर्त्यनादेय- ७१७
अयशःकीर्त्यनादेय- ७१८
अयशः षट्प्रमत्ताख्ये ६७७
अयशः षट्प्रमत्ताख्ये ६९९
अयशोऽगुरुलघ्वादि- ६८०
अल्पश्रुतेन संक्षेपा- ७०७
अल्पं बद्ध्वा भुजाकारे ६९४
अवग्रहादिभिर्नार्थ- ६६६
अवश्यायो हिमं बिन्दु- ६६६
अवाच्यानामनन्तांशो ६६८
अविभागपरिच्छेदाः ७०७
अशस्तवेदपाकाच्च ६९२
अष्टकर्मभिदः शीतो- ६६४
अष्टकर्मभिदः शीती ७३७
अष्टधा स्पर्शनानापि ६७५
अष्टसप्तकषट्काग्रा ७३१
अष्ट-सप्तक-षड्बन्धे- ७०८
अष्टस्वसंयताद्येषु ७२१
अष्टात्रिंशत्सहस्राणि ७३१
अष्टानामस्त्यनुत्कृष्टोऽ- ७०२
अष्टात्रिंशतमस्तीदं ७१९
अष्टाविंशतमानाप्तौ ७१५
अष्टाविंशतमेतत्स्या- ७१७
अष्टाविंशतमेतत्स्या- ७१८
अष्टाविंशतिरन्यान्यै- ६९८
अष्टाविंशतिरन्यान्यै- ७१५
अष्टावुदीरयन्त्येव ६९३
अष्टाशीतिर्मता सत्त्वे ७२१
अष्टाशीतिः सतीत्वेक ७२२
अष्टोत्कृष्टादयः शस्ता- ७०२
अष्टौ सप्ताथ षट्बध्नन् ६९३
अष्टौ स्पर्शा रसाः पञ्च ६६९
असन्नभोगतिस्तेजः ६६६
असन्नभोगतिस्तेजः ७१३
असम्प्राप्तमनादेयं ७००
असंख्यातांशमावल्याः ७०६
असंज्ञिनि च पर्याप्ते ६८३
असातं विक्रियद्वन्द्वं ७०६
असातेन युतं चाद्यं ७०१
अस्ति सत्यवचो योगो ६६६
अहमिन्द्रा यथा मन्य- ६६६
अहोऽस्त्यात्तशरीराद्य- ७१५
अक्षेणैकेन यद्वेत्ति ६६६
अज्ञानत्रितयेऽप्योघो ७४१

[आ]

आतपस्थावरैकाक्षं ७०३
आतपोद्योतपाकोनै- ७१५
आतपोद्योतयोरेकं ६९६
आतपोद्योतयोरेकं ७१३
आत्मप्रवृत्तिसम्मोहो- ६६७
आत्मानं बहुशः स्तौति ६७१
आद्यकर्मत्रिकस्यान्त- ७००
आद्यमाद्ये त्रयं बन्धे ७१२
आद्यन्ते मानसे वाचौ ६८४
आद्यन्ते मानसे वाचौ ६८५
आद्ययोर्नव षट् चातोऽ- ७०९
आद्ययोर्नव षट् चातोऽ- ७२६
आद्ययोर्निर्वृते चैव ६८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आद्यलेश्यात्रयोपेता ७४१
आद्याच्चतुष्कतः पश्चा- ७२०
आद्यान् कषायकांश्चैव ६८६
आद्यावेव विना बन्ध- ७०९
आद्यास्तिस्रोऽप्यपर्याप्ते ६७०
आद्याः सम्यक्त्व-चारित्रे ६६८
आद्येऽनन्तानुबन्ध्यूनोऽ- ७११
आद्ये त्रीणि परे चैकं ७१२
आद्ये द्वाविंशतिर्मोहे ७२८
आद्ये नाहारकद्वन्द्वं ६८४
आद्ये बन्धश्चतुर्हेतु- ६८३
आद्ये भेदास्त्रयोऽप्येको ७३१
आद्ये षड् नव षट् चा- ७३२
आद्ये स्युः पञ्चपञ्चाशत् ६८४
आद्यौ द्वौ नव बध्नीतो ६९४
आदिमं तु कषायाणां ७३६
आदौ त्रिनवतीकृत्वाऽ- ७२२
आनतादिषु शुक्लाऽत- ६७०
आनपर्याप्तिपर्याप्त- ७१८
आनापर्याप्तिपर्याप्त- ७१९
आनुपूर्व्यविधैकाक्षं ७००
आबाधोना स्थितिः कर्म- ७००
आभ्यो विहाय कोपादीन् ७४२
आयान्ति नोदयं यावत्- ७००
आयुश्चतुष्टयाऽऽहार- ६८१
आयुर्मोहनवर्जानां ७०६
आहारकद्वयं तीर्थ- ६७७
आहारकं द्वयं तीर्थ- ६९९
आहारकद्वयस्याथ ७०६
आहारकद्वयस्याप्य- ७०२
आहारकश्च सन्त्येता ६६५
आहारद्वयतीर्थेश- ६७९
आहारद्वयतीर्थेशः ६८१
आहारद्वयमायूंषि ६७५
आहारद्वयमायूंषि ६९४
आहारद्वितयेऽपास्ते ६९८
आहारद्वितयेऽपास्त ७१४
आहारर्द्धिः परीहारो ६७३
आहारविक्रियश्वभ्र- ६७५
आहारस्याप्रमत्ताख्यः ७०४
आहारोङ्गेन्द्रियेष्वाने ६६५
आहारोत्थापनेऽस्तीदं ७१९
आहारोदयसंयुक्ते ७१९
आहारौदार्ययुग्माभ्यां ६८४
आहारौदार्ययुग्माभ्यां ६८४

[इ]

इति मोहोदया मिश्रे ७२८
इत्यप्रतिष्ठिताङ्गाः स्यु- ६६६
इत्यष्टाविंशतिर्जीव- ६६९
इत्यष्टाविंशतिस्थान- ६९६
इत्याष्टाविंशतिस्थान- ७१३
इत्याद्ये दश सप्ताद्या ७२८
इत्याद्ये पञ्च चत्वार ७०९
इत्याद्ये पञ्च चत्वार ७२७
इत्यासां नर-तिर्यञ्चः ७०२
इत्युदीर्यत एकान्न- ६७९
इत्येताः प्रकृतीरेते ७०४
इदमात्तस्य शरीरस्य ७२०
इदमेवानुपूर्व्यूनं ७१७
इदमेवानुपूर्व्यूनं ७१८
इन्द्रियैर्मनसा नार्थ- ६६८
इयमाद्ये द्वितीये तु ६९४
इयमाद्ये द्वितीये तु ७१०

[उ]

उच्चोच्चमुच्चनीचं च ७०९
उच्चोच्चमुच्चनीचं च ७२७
उच्चं पाके द्वयं सत्त्वे ७०९
उच्चं पाके द्वयं सत्त्वे ७२७
उच्चं बन्धेऽथ पाकेऽन्यद् ७२४
उत्कृष्टः स्थितिबन्धः स्यात् ७०१
उत्कृष्टः स्यादनुत्कृत्कृष्टो ७०१
उत्तरप्रत्यया ज्ञान- ६८५
उत्तरोत्तरसंज्ञाश्च ६८६
उदधीनां सहस्रस्य ७०१
उदयस्थानसंख्यैवं ७२९
उदयादिभवैर्भावै- ६६३
उदयाः पदबन्धाश्च ७३१
उदयाद्यान्ति विच्छेदं ६७७
उदारे यो भवो वाऽस्यो- ६६७
उद्योगतिर्यगायुष्क- ७४२
उद्योता बहवः सन्ति ६६९
उद्योतोदयभाग्द्वयक्षे ७१७
उदीरकास्तु घातीनां ६९३
उदीरयन्ति चत्वारः ६९३
उदीरयन्ति षड्वाष्टौ ६९३
उदीरिकास्तु घातीनां ६७६
उदेति मिश्रकं मिश्रे ६७७
उन्मार्गदेशको जीवः ६९२
उपघातातपोद्योताः ७०५
उपघाते गृहीताङ्ग- ७१६
उपघातोऽप्यघातश्च ७३७
उपघातं युगान्यष्टौ ६८१
उपदिष्टं न मिथ्यादृक् ६७२
उपयोगास्तथायोगा ६८२
उपशान्तास्तु सप्ताष्ट- ७३६

[ए]

एकत्रिंशच्च निस्तीर्थ- ६९८
एकत्रिंशच्च निस्तीर्थ- ७१५
एकत्रिंशतमेतत्स्या- ७१८
एकत्रिंसत्तथा त्रिंश- ७२५
एकत्रिंशत्तथा त्रिंश- ७३३
एकत्रिंशदतस्त्रिंश- ७१४
एकत्रिंशदतस्त्रिंश- ६९७
एकत्रिंशद्भवेत्त्रिंश- ६९८
एकत्रिंशद्भवेत् त्रिंश- ७१४
एकपञ्चकसप्ताष्ट- ७३३
एकपञ्चकसप्ताष्ट- ७१५
एकपञ्चकसप्ताष्ट- ७२०
एकपञ्चकसप्ताष्ट- ७२२
एकस्मिन् संज्ञिपर्याप्तौ ७२५
एकक्षेत्रावगाढांस्तान् ७०६
एकाग्रत्रिंशतं तत्स्या- ७१७
एकाग्रा विंशतिः सा च ७१५
एकातोऽतो द्वयं त्रिंश- ६७६
एकात्मपरिणामेन ७०६
एकादश द्विकैकेषु ६८२
एका द्वे षोडशैकान्न- ६७८
एकाग्रत्रिंशतं तत्स्याद् ७१५
एकाग्रत्रिंशतं तत्स्याद् ७१९
एकाग्रत्रिंशतं तत्स्या- ७२०

एकान्नत्रिंशतेर्बन्धे ७२२
एकान्नत्रिंशतो बन्धः ७२२
एकान्नत्रिंशतो बन्धे ७२२
एकान्नत्रिंशदन्येवं ७१४
एकान्नत्रिंशदन्यैवं ६९८
एकान्यषष्टिरन्ये च ७२०
एकाक्षादिष्विमाः सर्वाः ६६५
एकाक्षा बादराः सूक्ष्मा ६६४
एकाक्षा बादरा सूक्ष्मा ६८२
एकाक्षवच्च बध्नन्ति ७४०
एकाक्षविकलाक्षे च ७३३
एकाक्ष-विकलाक्षेषु ७४०
एकाक्षे पञ्चघोक्तं य- ७१६
एकाक्षे सातपोद्योते ७१६
एकेन्द्रियेषु चत्वारि ६६४
एकेन्द्रियेषु चत्वारि ६८२
एकेन्द्रियेषु पर्याप्ताः ६६७
एकोऽतोऽतो द्वयं त्रिंश- ६९९
एकोदशोदयोने स्युः ७१२
एकोनाः संयमाः सर्वे ६८६
एतदेवानुपूर्व्यूनं ७२०
एता एवोदयं नैव ६७५
एतान्येव निरुद्योते ७१६
एताभ्योऽन्यासु मिश्राह्वा ७३९
एतां संहति-संस्थान- ६९७
एतां संहति-संस्थान- ७१४
एवं कृते मया भूय ६७२
एवं देवायुषः किन्तु ७०२
एवं द्वयक्षगताः भङ्गाः ७१७
एवं द्वासप्ततिः क्षीणाः ७३७
एषोऽष्टाविंशतेर्बन्धः ७२१

[ऐ]

ऐकत्रिंशतमेतत्स्या- ७१९

[ओ]

ओघभङ्गोऽस्ति योगेषु ७४०
ओघः केवलदृष्टेश्च ७४१
ओघः सामायिकाख्यस्य ७४१
ओघः संज्ञिषु मिथ्यादृग् ७४२
ओघो नर-सुरायुर्भ्यां ७४२
ओघो भव्येषु मिथ्यादृग्- ७४२
ओघो वेदत्रयेऽप्यस्ति ७४१

[औ]

औदारिकद्वयं चाद्या ७०३
औदारिकं तथा वैक्रियिक- ६७४
औदार्यादित्रिदेहाना- ६७४

[क]

कति बध्नाति भुङ्क्ते च ७०८
कपाटस्थसयोगस्य ७१९
करणो न समो भिन्न- ६६४
कर्मबन्धविशेषस्य ६९४
कर्मषट्कस्य बन्धाः स्युः ६९४
कर्मषट्कं विना योगी ६९३
कर्मक्षेत्रे कृषन्त्येते ६६८
कर्मैव कार्मणः कायो ६६७
कषायकलुषो ह्यात्मा ६७६
कषाययोगजः पञ्च- ६८३
कषायविकथानिद्रा ६६४
कषायवेदनीयं तु ६७४
कषायवेदयुग्मोत्थै- ७३०
कषायवेदयुग्मैस्तु ७२८
कषायवेदयुग्मैस्ते ७१२
कषायाणां चतुष्कं च ६७७
कषाया नोकषायाश्च ६६९
कषायान्माध्यमानष्टौ ७३७
कषायोदयतस्तीव्रा- ६९२
कायाक्षायूंषि सर्वेषु ६६५
कायः पुद्गलपिण्डः स्या- ६६६
कारीषाग्नि-तृणाग्निभ्यां ६६८
कार्मणो वैक्रियौदार्य- ७२९
कार्मणौदार्यमिश्राभ्यां ६८५
कार्मणं शुक्ललेश्यं स्या- ६७०
कार्याकार्यं पुरातत्त्व- ६७२
कालुष्यसन्निधानेऽपि ६६४
कालं भवमथ क्षेत्र- ७०७
किञ्चिदुन्मीलितो जीवः ६७४
किञ्चिद्बन्धसमासोऽयं ७०७
किं प्राग्विच्छिद्यते बन्धः ६८०
कुन्थुः पिपीलिका गुम्भी ६६६
कुर्यात्पुरुगुणं कर्म ६६८
कुसुम्भस्य यथा रागो ६६४
केवलिश्रुतसंघानां ६९२
कोविदैरखिला ज्ञेया- ६८६
कृमिनीलीहरिद्राङ्ग- ६६८
कृष्णा नीलाऽथ कापोती ६६९
क्रमात्पञ्च नव द्वे च ६७४
क्रमात्पञ्च नव द्वे च ६९३
क्रमात्पुंवेदसंज्वालाः ६७७
क्रमात्पुंवेदसंज्वाला ७००
क्रमात्स्थानानि सत्तायां ७३३
क्रमादष्टषडग्रे तु ७२६
क्रुधः श्वाभ्रेषु तिर्यक्षु ६६८
क्रुन्मानवञ्चनालोभे ७४१

[क्ष]

क्षणेऽन्त्येऽन्यतरद्वेद्यं ६८०
क्षपितेष्वाद्यकोपादि- ७११
क्षयस्यारम्भको यस्मिन् ६७२

[ग]

गतिकर्मकृता चेष्टा ६६५
गत्यक्षकाययोगाख्या ६६५
गत्यादिमार्गणास्त्वेव- ६८६
गत्यादिमार्गणास्वेवं ७३४
गत्यादौ तत्प्रयोग्यानां ७००
गुणस्थानेषु भेदौ द्वौ ७०८
गुणस्थानोदिता भङ्गाः ७२३
गोत्रमुच्चं तथा नीच- ६७५
गोत्रे स्युः सप्तवेद्येऽष्टौ ७०९

[घ]

घातिकर्मक्षयोत्पन्न- ६६४
घातीनामजघन्योऽस्त्य- ७०२

[च]

चण्डः सन्ततवैरश्च ६७१
चतस्रश्चानुपूर्व्यापि ६७५
चतस्रश्चानुपूर्व्योऽपि ६९४
चतस्रश्चानुपूर्व्योऽपि ७०५
चतस्रः षट् तथा षट्क- ६७७
चतस्रो जातयश्चाद्यं ६७८
चतस्रो जातिकाः सूक्ष्मा- ७३८
चतस्रोऽन्त्यक्षणे क्षीणे ७०९
चतस्रोऽन्त्यक्षणे क्षीणे ७२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतस्रो ज्ञानरुध्याद्याः ७०४
चतस्रो ज्ञानरोधे स्यु- ७०४
चतुर्गतिगताः शेषाः ७०३
चतुर्णां योगतो बन्धः ७०५
चतुर्णिकायामरवन्दिताय ६६३
चतुर्थात्प्रत्ययात्सातं ७०५
चतुर्थे दिवसाः सप्त ६७३
चतुर्दशसु चत्वारो ७२४
चतुर्दशैकविंशत्या ६६४
चतुर्विधा ध्रुवाख्याः स्यु- ६९४
चतुर्विधेन भावेन- ७०५
चतुर्विंशतिभङ्गघ्ना- ७२९
चतुर्विंशतिभङ्गोत्थाः ७३०
चतुर्विंशतिभेदा ये ७२९
चतुर्षु संयताद्येषु ७३६
चतुर्ष्वसंयताद्येषु ६८०
चतुःपञ्चकषट्काग्रा ७३६
चतुःशताधिकाशीत्याऽ- ७२९
चतुःसंज्वलनेष्वन्य- ६६९
चत्वारिंशच्चतुर्युक्ता ७२९
चत्वारिंशतमेकाग्रां ७३६
चत्वारिंशत्कषायाणां ७००
चत्वारिंशद्द्विकाग्रास्यु- ७२६
चक्षुषोऽचक्षुषो दृष्टे- ६७४
चातुर्गतिकजीवेषु ७२२
चातुर्विंशतमस्तीदं ७१६
चारित्रमोहनीयस्य ६६९
चारित्रपरिणामं वा ६६८

[छ]

छद्मस्थेषूपयोगः स्या- ६७२

[ज]

जन्तोराहारसंज्ञा स्या- ६६५
जन्तोः सम्यक्त्वलाभोऽस्ति ६७२
जरायुजाण्डजाः पोता ६६६
जात्याद्यष्टमनावेश- ६६४
जीवपाकाः स्वरद्वन्द्व- ७३७
जीवयोगितयोत्पन्नो ६७२
जीवस्थान-गुणस्थान- ६७३
जीवस्थान-गुणस्थान- ७३७
जीवस्थानेषु सर्वेषु ७२३
जीवस्यौदयिको भावः ६६३
जीवाः सिद्धत्वयोग्या ये ६७१
जीवे स्पर्शनमेकाक्षे ६६६

[ज्ञ]

ज्ञान-दर्शन-चारित्र- ६६४
ज्ञानदर्शनयो रोधौ ६७४
ज्ञानदर्शनयो रोधौ ६९३
ज्ञानदृग्रोधमोहान्त- ६७२
ज्ञानदृग्रोधमोहान्त- ७०५
ज्ञानदृग्रोधविघ्नस्थाः ६८१
ज्ञानदृग्रोधविघ्नेषु ७००
ज्ञानदृग्रोधवेद्यान्त- ६८०
ज्ञानविघ्ने च दृग्रोधे ७०३
ज्ञानावृद्विघ्नगाः सर्वाः ७०६
ज्ञानावृद्विघ्नयोः पञ्च ७०८
ज्ञानावृद्विघ्नयोः पञ्च ७२६
ज्ञानावृद्विघ्नयोर्दृष्ट्या- ७०३
ज्ञानावृत्यन्तरायस्था ६८१
ज्ञायन्तेऽनेकधाऽनेक- ६६४
ज्ञेया दश नवाष्टौ च ७२८
ज्योतिर्भावनभावेषु ६७२
ज्वालाङ्गारास्तथाऽर्चिश्च ६६६

[त]

तच्च प्रशमसंवेगा- ६७१
तच्च सम्यक्त्व-मिथ्यात्व- ६७४
तच्चक्षुर्दर्शनं ज्ञेयं ६६९
ततः शुद्धतरैर्भावै- ६६४
ततो द्वौ द्वौ च चत्वारोऽ- ७३२
ततोऽष्टकचतुस्त्रिद्वयं- ७३२
ततोऽसंख्यगुणो ज्ञेयो ७०७
तत्प्रदोषोपघातान्त- ६९२
तत्र त्रिंशत्तृतीयेयं ६९६
तत्र त्रिंशत्तृतीयेयं ७१३
तत्र प्रकृतयः पञ्च ६७४
तत्र श्वभ्रद्वयं हुण्डं ६९६
तत्राद्या त्रिंशदुद्योत- ६९६
तत्राद्या त्रिंशदुद्योतं ७१३
तत्रैकत्रिंशदेषाऽत्र ६९७
तत्रैकत्रिंशदेषात्र ७१४
तत्रैकविंशतं देव- ७२०
तत्सूक्ष्मादिष्वयोगे च ७२३
तथाऽष्टचतुरेकाग्रा ७३२
तथा त एव वाऽप्रत्या- ६७४
तथा मिथ्यादृशस्तीव्र- ७०४
तथैकत्रिंशतो बन्धे ७२३
तथैकबन्धके पाके ७२३
तथैवागुरुलघ्वादि- ६७८
तृतीयमथ कोपादि- ६९९
तृतीयापि द्वितीयेव ६९७
तृतीयापि द्वितीयेव ७१४
तितिक्षा मार्दवं शौच- ६६३
तिरो यान्ति यतः पाप- ६६५
तिर्यक्पञ्चेन्द्रिये पाकाः ७१७
तिर्यक्-श्वभ्रायुषो सूक्ष्मा- ७४१
तिर्यगायुर्गती नीचो- ६७८
तिर्यग्गतौ समस्तान्य- ६८२
तिर्यग्द्वयं नरद्वन्द्वं ६८१
तिर्यग्द्वयप्रसङ्गे तु ७१८
तिर्यग्द्वयमसम्प्राप्त- ७०२
तिर्यग्द्वयमसंप्राप्तं ७०३
तिर्यग्द्वयातपोद्योत- ७३९
तिर्यङ्-नरगतिद्वन्द्वे ७०१
तिर्यङ्नरायुषी तिर्यग् ७८१
तिर्यङ्नरायुषोरन्त- ७०१
तिर्यक्ष्वाद्यानि षट्बन्धे ७३३
तिस्रो हि त्रिंशतो यद्व- ६९६
तिस्रो हि त्रिंशतो यद्व- ७१३
तिसृणामाद्यलेश्यानां ६८६
तीर्थकृत्कार्मणं तेजो ६९७
तीर्थकृत्कार्मणं तेजो ७१४
तीर्थकृन्नरदेवायुः ७४१
तीर्थकृच्छ्वभ्रदेवानां ६६८
तीर्थोनौघस्ताश्च मिथ्यादृक् ७४०
तीव्रो लेश्या स कापोता ६७०
तुर्ये संहति-संस्थाने ७०१
ते च वैक्रियिकं च स्यु- ६६७
तेजः कार्मणपञ्चाक्षे ७१९
ते जिह्वाक्षान्त्यवाग्भ्यां स्युः ६८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजोपर्याप्तनिर्माणे ६९६
तेजोऽपर्याप्तनिर्माणे ७१३
तैजसागुरुलघ्वाहे ७०२
त्यक्तकृष्णादिलेश्याकाः ६७१
त्यक्त्वाऽन्या वामदृष्टिस्ता- ७४२
त्यक्त्वा बध्नन्ति देवौघा- ७३९
त्यक्त्वाऽऽभ्यस्तिर्यगायुष्का- ७४०
त्यक्त्वाऽऽभ्योऽप्यप्रमत्ताख्याः ७४२
त्यक्त्वाऽऽभ्योऽपि मनुष्यायु- ७३६
त्यक्त्वेताभ्यो मनुष्यायु- ७३९
त्यक्त्वैताभ्यः सुरद्वन्द्वं ७४०
त्यक्त्वैताभ्यो मनुष्यायु- ७३९
त्यागी क्षान्तिपरश्चोक्षो ६७१
त्रयः सप्त च चत्वारो ७०१
त्रयोदशसु जीवेषु ७२५
त्रयोदशदशाप्याद्ये ७२९
त्रयोदशसुदृग्रोधे ७२३
त्रयोदशसु सप्ताष्टौ ७०८
त्रयोदशाग्रमायुष्के ७२६
त्रयोदशोऽष्ट पञ्चाद्याः ७१२
त्रयो द्वौ चानिवृत्ताख्ये ७३२
त्रयोविंशतितस्त्रिंश- ७२६
त्रयोविंशतिरेकाक्षं ६९७
त्रयोविंशतिरेकाक्षं ७१४
त्रससुस्वरपर्याप्त- ७०५
त्रसं बादर-पर्याप्ते ६७४
त्रसं वर्णादयः सूक्ष्म- ७१३
त्रसं स्थूलं च वर्णाद्य- ६९६
त्रसघातान्निवृत्तो यः ६६९
त्रसाद्यगुरुलघ्वादि- ६७७
त्रसाद्यगुरुलघ्वादि- ६९६
त्रसाद्यगुरुलघ्वादि ६९९
त्रसाद्यगुरुलघ्वादि- ७१३
त्रिपञ्चषट् नवाग्रा हि ७२५
त्रिकपञ्चषडग्राया ७२१
त्रिकपञ्चषडष्टाग्रा ६९५
त्रिक-पञ्च-षडष्टाग्रा ७१२
त्रिपञ्चाशच्छतान्येवं ७३१
त्रिभिर्विना नवान्यासु ६८२
त्रिलोकगोचराशेष- ६६९
त्रिवेदघ्नैः कषायैः स्यु- ७२९
त्रिंशत्सा चैकयुक्पाके ७२३
त्रिंशदेषाऽत्र पञ्चाक्षं ६९७
त्रिंशदेषाऽत्र पञ्चाक्षं ७१४
त्रिषूपशमकेषूप- ७२३
त्रिषूपशमकेषूप- ७३३
त्रिष्वाहारकयुग्मोना ६८३
त्रीन्द्रिये त्रिंश देकाग्रे ७१७

[द]

दण्ड औदारिको मिश्रः ६७२
दर्शन्यणुव्रतश्चैव ६६९
दशके ज्ञान-विघ्नस्थे ७०१
दशद्वाविंशतैर्बन्धे ७१२
दशभिर्नवभिर्युक्ता ६९७
दशभिर्नवभिर्युक्ता ७१४
दशभिर्नवभिः षड्भिः ६९६
दशभिर्नवभिः षड्भिः ७१३
दशसंज्ञिन्यतो ह्येय- ६६५
दशसु ज्ञान-विघ्नस्था- ७००
दशसूक्ष्मकषायेऽपि ६८४
दशाऽप्येते भयेनोना ७१२
दशापि ज्ञानविघ्नस्था ६७५
दशापि ज्ञान-विघ्नस्था ६९४
दशाष्टादशसन्त्याद्ये ६८६
दशैवं षोडशास्माच्च ६७७
दशैवं षोडशास्माच्च ७००
दुःखशोकवधाक्रन्द- ६९२
दुरध्येयातिगम्भीरं ७३७
दुर्ग्राहो दुष्टचित्तस्य ६७१
दुर्भगं चाप्रशस्तेयं ७०३
दुर्भगं सुभगं चैव ७०४
देवगत्या च पर्याप्त- ६९७
देवगत्याऽथ पर्याप्त- ७१४-
देवगत्यानुपूर्व्यो हि ७०२
देवगत्यानुगत्या च ७३७
देवद्विकमनादेय- ६७८
देवद्विकमथाऽऽदेयं ७०६
देवमानुष्यतिर्यञ्चः ७०४
देव-श्वाभ्रेषु चत्वारि ६६४
देवश्वाभ्रेषु चत्वारि ६८२
देव-श्वाभ्रेषु सत्तायां ७२२
देवा देव्यश्च देव्यश्च ७३९
देवानां नारकाणां च ६६८
देवायुर्नारकायुश्च ७२४
देवायुर्विक्रियद्वन्द्वं ६८०
देशे द्वितीयकोपाद्यै- ७१०
दोषैः स्तृणाति चात्मानं ६६८
द्वयं चोदीरयेत्क्षीणः ६६३
द्वादशस्वादिमेष्वोघो ७४१
द्वादशाद्याः कषाया ये ६६९
द्वादशा विरतेर्भेदः ६८३
द्वानवत्यादिकं सत्त्वे ७२१
द्वापञ्चाशद्द्विहीनानि ७२९
द्वाविंशतिर्भुजाकारा ६९८
द्वाविंशतिः समिथ्यात्वाः ६९४
द्वाविंशतिः समिथ्यात्वाः ७१०
द्विचत्वारिंशतस्तीव्रः ७०३
द्वितीयमथ कोपादि- ६७७
द्वितीयस्य चतुष्कस्य ७०६
द्वितीया अपि कोपाद्या ६७८
द्वितीयाप्येवमेकान्न- ६९७
द्वितीयाऽप्येवमेकान्न- ७१४
द्वि-त्रि-सप्त-द्विषु ज्ञेया ६७२
द्वित्रिसप्तद्विषु ज्ञेया ७३१
द्वित्र्यक्षचतुरक्षेषु ७००
द्विषडष्टचतुःसंख्या ७३३
द्विष्कापोताऽकापोता ६७०
द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चैव ६६६
द्वे त्यक्त्वा मोहनीयस्य ६७५
द्वे निद्रा-प्रचले क्षीणः ७३७
द्वे वेद्ये गतयो हास्य ६७५
द्वे वेद्ये पञ्च दृग्रोधाः ६८१
द्वे वेद्ये गतयो हास्य- ६९४
द्वौ चाहारौ प्रमत्तेऽन्या ६८३
द्वयोः पञ्चद्वयोः षट् ते ६८३
द्वयोरेकस्तथैकोऽष्टौ ७३२
द्वयोर्द्वे दर्शने त्रीणि ६८३
द्वयोस्त्रयोदशान्येषु ६६७
द्वयोस्त्रयोदशान्येषु ७२९
द्व्येकाग्रविंशती तां च ७३८

द्वयेकाग्रे विंशती सप्त- ६९४
द्वयेकाग्रे विंशती सप्त- ७१०
दृग्मोहनक्षतेः कर्म- ६७२
दृग्रोधस्थचतुष्कस्य ७०२
दृग्रोधस्योदये चक्षु- ७०८
दृग्रोधे मोहने नाम्नि ६९४
दृग्रोधे नव सर्वाः षट् ६९४
दृग्रोधे नव सर्वाः षट् ७०८
दृषद्भूमिरजोवारि- ६६८
दृष्टिमोहे क्षयं जाते ६७१
दृष्टिरोधे नवज्ञाने ७०२

[ध]

धानस्य संग्रहो वासत् ६७६
धाराप्तेजोमरुद्वृक्ष- ६६९
ध्मायमानं यथा लौहं ६६४

[न]

न कर्म बध्यते नापि ६६७
न कर्म बध्यते नापि ६८४
न जातिर्न जरा दुःख- ६६६
नत्वा सर्वान् जिनान् ६७६
न त्रसासंयमो नान्ये ६८४
नपुंसके स्त्रियां हास्या- ७११
न बहिर्लोकनाड्याः स्यु- ६६६
न भव्या नापि ये भव्या ६७१
नभोगतियुगस्यैक- ६९६
नभोगतियुगस्यैक- ७१३
न याति सासनः श्वभ्रं ७३०
नरगत्या समेताः स्युः ७१८
न रमन्ते यतो द्रव्ये ६६५
नरानुपूर्वी संज्वाल- ६८०
नरायुस्तिर्यगायुश्च ७४०
नवतिद्व्यु त्तरा सा च ७२१
नवतिस्त्रिद्विकैकाग्रा ७२०
नवधा नो कषायाख्यं ६७४
नवबन्धत्रये सत्त्वे ७०८
नव योगाः समादिष्टाः ६८३
नवषट्कं चतुष्कं च ६९४
नवष्वथ चतुर्ष्वेक- ६८२
नवषट् च चतस्रश्च ७०८
नवाग्राण्युदये नृणां ७१९
नवाष्टदशयुग्बन्धे ७३२
नवाष्टैका दशाग्रा तु ७३२
न हन्ता त्रसजीवानां ६६३
नाणुव्रतेषु श्वभ्रायु- ६७९
नानाविधे धने धान्ये ६७१
नाम्नो वेद्यस्य गोत्रस्या- ७०४
नाराचमर्धनाराचं ६७४
निजयोगेन संयुक्ता ६८५
निद्रा च प्रचला च द्वे ६८०
निद्रानिद्रादिका ज्ञेया ६७४
निःप्रमादोऽप्रमत्ताख्यः ६६४
निर्बुद्धिर्मानिवान् मायी ६७१
निर्माणं कार्मणं त्रिश- ६७८
निर्माणं चाशुभं चोप- ६९७
निर्माणं चाशुभं चोप- ७१४
निर्माणं दुर्भगं वक्र- ७१६
निर्माणं सुभगादेय- ७१७
निर्माणं सुभगादेय- ७१८
निर्माणं सुभगादेये ७२०
निर्माणगुरुलघ्वाख्य- ६७४
निर्माणगुरुलघ्वाह्वे ६८१
निर्माणमयशो नीचं ७०१
निर्मिच्चागुरुलघ्वादि ७१३
निर्मिच्चागुरुलघ्वापि ६९६
निर्मूल-स्कन्ध-शाखोप- ६७०
नीचं तिर्यग्द्वयं चेति ७०४
नृगतिः कार्मणं तेजः ७१९
नृगतिः पूर्णपञ्चाक्षं ७१९
नृ-तिरश्चोः जघन्याऽन्त- ७२०
नोकषायस्तु संज्वाला ६८५
नोकषायोदयाद् भाव- ६६७
नो यत्सत्यं मृषा नैव ६६६

[प]

पच्यते न मनुष्यायु- ७०३
पञ्च द्वे पञ्च नाम्नि स्यु- ७२५
पञ्च पञ्च चतस्रश्च ७०६
पञ्चविंशतिमेताभ्य- ७४०
पञ्चविंशतिरत्रान्या ६९६
पञ्चविंशतिरत्रान्या- ७१३
पञ्च-षड्-नवयुग्बन्धे ७३३
पञ्च-सप्त त्रिके तस्माद् ६८६
पञ्चसप्ताग्रविंशत्योः ७२१
पञ्चस्वतो भवेद्बोधः ७४१
पञ्चस्वाद्येऽनिवृत्त्यंशे ६६५
पञ्चस्वाद्येषु पञ्च स्यु- ७२७
पञ्चस्वाद्येषु बन्धेषु ७११
पञ्च ज्ञानावृतेर्दृष्टे ६७८
पञ्चान्तिमानि संस्थाना- ६८१
पञ्चापर्याप्तमिथ्यात्व- ६७८
पञ्चायोगे शरीराणि ६८०
पञ्चाशद्दशजीवानां ६६४
पञ्चाक्षं कार्मणं तेजः ७०४
पञ्चाक्षं चतुरस्रं चो ७१९
पञ्चाक्षं च शुभोदये ७०३
पञ्चाक्षं नृद्वयं पूर्ण ७२०
पञ्चाक्षं सुभगं स्थूलं ६७८
पञ्चाक्ष-त्रसयोः सर्वे ६८४
पञ्चेन्द्रियाणि वाक्काय- ६६५
पटकप्रतिहारासि- ६७५
पद्मा मन्दतरः शुक्ला ६७०
परं कर्मक्षयार्थी यत्त- ६६४
परघातं च संक्लिष्टा- ७०४
परघातं रतिर्हास्य- ६८१
परघातागुरुलघ्वाह्वे ७०३
परमाण्वन्त्यभेदानि ६६९
पर्याप्तसुभगादेय- ७१९
पर्याप्तस्याङ्गपर्याप्त्या ७१६
पर्याप्तस्यानपर्याप्त्या- ७१८
पर्याप्तस्यानपर्याप्त्या ७१९
पर्याप्ताङ्गेऽन्यघातास- ७१५
पर्याप्ताङ्गेऽस्त्यपूर्णोनं ७१७
पर्याप्तानस्य सोच्छ्वास- ७१७
पर्याप्तासंज्ञिपञ्चाक्षः ७०२
परिहृत्यैव सावद्यं ६६९
पाकप्रकृतयो द्व्यग्रा ७३०
पाकप्रकृतयो याः स्यु- ७३१
पाकप्रकृतिसंख्यायाः ७२९
पाकस्थानानि पाकस्थ- ७१२
पाकस्थानानि यानि स्यु- ७१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाकाः सप्तदशैकाग्र- ७२९
पाकेऽत्रैकचतुःपञ्च ७१५
पाके केवलिनि त्रिंश- ७२६
पाके दशचतुःषट्कं- ७२२
पाके प्रकृतयः षष्टि- ७३०
पाके श्वभ्रानुपूर्वी न ६७७
पाके षड्विंशतिः सत्त्वेऽ- ७२२
पाकेष्वष्टसु षष्टिर्या ७३०
पाके स्त्री-षण्ढयोस्तीर्थ- ६८१
पारुष्य-रभसत्त्व-स्त्री- ६६८
पिण्डाश्चतुर्दशैतासा- ६७४
पुंस्त्वं संज्वलनाः पञ्च ७०६
पुंस्त्वे प्रक्षिप्य पुंस्त्वं च ७३७
पूर्णाऽपूर्णानि वस्तूनि ६६५
पूर्णेष्वौदारिकं षट्सु ६८३
पूर्वापूर्वविभागस्थः ६६४
पूर्वोक्तं मीलने योगैः ७३१
पृथक्तीर्थकृतैतानि ७१९
पृथग्जीवसमासेषु ७२४
पृथिवीकायिके स्थूले ७१५
पृथिवी-शर्करा-रत्न- ६६६
प्रकृतिस्तिक्तता निम्बे ७०६
प्रकृतिः स्यात्स्वभावोऽत्र ७०६
प्रकृतीनां तु शेषाणा- ६८०
प्रकृतीनां तु शेषाणां ७०२
प्रकृतीनां तु शेषाणा- ७०३
प्रकृत्यामन्दकोपादि- ६९३
प्रत्यनीको भवन्नर्ह- ६९२
प्रत्येक उपघाते च ७१७
प्रत्येकं चतुरष्टैक- ७१२
प्रत्येकागुरुलघ्वाह्व- ६९७
प्रत्येकागुरुलघ्वाह्वे ७१४
प्रत्येकाङ्गाः पृथिव्यम्बु- ६६६
प्रत्येके उपघाते च ७१८
प्रत्येकौदार्ययुग्मोप- ७१६
प्रदेश-प्रकृती बन्धौ ७०६
प्रमत्त-केवलिभ्योऽन्य- ६७९
प्रमत्तवच्च बध्नन्त्या ७४०
प्रमाण-नय-निक्षेपा- ६७३
प्रशस्तास्वातपोद्योतौ ७०३
प्रशान्तान्तेषु सन्त्यष्टौ ६७६
प्रशान्तक्षीणमोहौ तु ७३६
प्रसक्तः शुभयोगेषु ६६४
प्राग्वद्बन्धस्तथाद्यानि ७२२
प्राग्वद्बन्धस्तथैकाग्रा ७२२
प्राग्वद्बन्धस्तथैकाक्षे ७२२
प्राग्वद्बन्धोदयौ सत्त्वे ७२२
प्राण्यक्षपरिहारः स्यात् ६६४
प्राप्तोऽथ न जगत्प्रान्तं ७३७

[ब]

बध्नतोऽष्टविधं कर्म- ७०६
बध्नन्ति कार्मणे योगे ७४०
बध्नन्ति वामदृष्ट्याश्च ७३९
बध्नात्येतां च मिथ्यादृक् ७१३
बध्नात्येतां मिथ्यादृक् ६९६
बध्नन्त्युदीरयन्त्यन्ये ६९३
बध्नन्त्येता मनुष्यायु- ७३९
बन्धत्रिके त्रिक-द्व्येक- ७१२
बन्धनात्पञ्चकायानां ६७४
बन्धभेदेन चेति स्युः ६९४
बन्धस्थानानि तान्येव ७२५
बन्धस्थानानि सर्वाणि ७२६
बन्धाः सर्वेऽपि पञ्चाक्षे ७३४
बन्धाः साद्यध्रुवाः शेषा- ७०२
बन्धादयस्त्रयस्तेषां ६८२
बन्धे तु विंशती देशे ७३२
बन्धेऽत्र नव पाकेऽपि ७१२
बन्धे त्रिपञ्चपड्यु- ७२१
बन्धे नवाष्टयुक् पाके ७३२
बन्धे पञ्चानिवृत्तौ स्यु- ७२८
बन्धे पाके च सत्त्वे स्युः ७२३
बन्धे पुंवेदसंज्वालाः ६९५
बन्धे पुंवेद-संज्वाला ७१०
बन्धेऽष्टाविंशतिः पाके ७२१
बन्धे स्थानानि चत्वारि ६९४
बन्धे स्याद्विंशतिः पाके ७३३
बन्धोदयास्तिता सम्यग् ७०८
बहिर्भवैर्यथा प्राणै- ६६५
बहुशः शोकभीग्रस्तो ६७१
बादरं तीर्थकृच्चैता- ६८०
ब्रह्मव्रतीनिरारम्भः ६६९

[भ]

भङ्गाः कषाय-वेदैः स्यु- ७१२
भङ्गाः द्वाविंशतेः षट् स्युः ६९५
भङ्गाः द्वाविंशतेः षट् स्युः ७११
भङ्गाः शतद्वयं चाष्टा- ७१८
भङ्गाः शतद्वयं चाष्टा- ७१७
भङ्गाः श्वाभ्रेषु पञ्च स्यु- ७२४
भयं शोकोऽरतिश्चैव ७००
भयसंज्ञा भवेद् भीति- ६६५
भवन्ति सर्वघातिन्यो ७०४
भवेत्सम्यग्मिथ्यात्व- ६७१
भवेत्क्षायिकसम्यक्त्व- ७४२
भवेदसंयमस्यापि ६६७
भव्यः पञ्चेन्द्रियः संज्ञी ६७१
भव्ये सर्वे त्वभव्येऽप्य- ६८६
भागाभागस्तथोत्कृष्टा- ७०६
भागोऽल्पोऽत्रायुषस्तुल्यो ७०६
भावतो न पुमान्न स्त्री ६६८
भावैः शुद्धतरैः कर्म- ६६४
भोगभूमिजवर्जानां ७०२
भुङ्क्ते चत्वारि कर्माणि ६९३
भुञ्जतेऽष्टापि कर्माणि ६७६
भ्रमरा कीटका दंशा ६६६

[म]

मतिपूर्वं श्रुतं तच्च ६६८
मतिश्रुतावधिस्वान्तै- ६७२
मतेनापरसूरीणां ६६८
मत्यज्ञानं श्रुताज्ञान- ६८३
मत्यज्ञाने श्रुताज्ञाने ६८५
मनःपर्यय आहार- ६७३
मनःपर्ययबोधः स्यात् ६६९
मनसाऽन्यमनो यातं ६६९
मनुष्यायुर्नरद्वन्द्व- ७४०
मनोवाक्कायभिक्षेर्या- ६६४
मनोवाक्काययुक्तस्य ६६६
मनोवाक्काययवक्रः सन् ६९३
मनोवाचौ चतुर्धा स्तः ६६६
मन्यन्ते यतो नित्यं ६६६

मलं विना तदेवाम्भः ६६४
मसूराम्बुपृषत्सूची- ६६६
महान् धनस्तनुश्चैव ६६६
मायया वंशमूलावि- ६६८
मार्दवक्लैव्यपुंस्काम- ६६८
मिथ्या क्रोधाश्च चत्वारोऽ- ७११
मिथ्याक्रोधाश्च चत्वारोऽ- ७२८
मिथ्यात्वं दर्शनात्प्राप्ते ७२८
मिथ्यात्वं श्वभ्रदेवायु- ७३६
मिथ्यात्वं षण्ढवेदश्च ७३८
मिथ्यात्वं षण्ढवेदश्च ६७७
मिथ्यात्वं षण्ढवेदश्च ६९९
मिथ्यात्वमिन्द्रियं काय- ६८६
मिथ्यात्वमिन्द्रियं कायाः ६८६
मिथ्यात्वपञ्चकानन्ता- ६८६
मिथ्यात्वपञ्चकं स्पर्शः ६८४
मिथ्यात्वमाद्यकोपादीन् ७११
मिथ्यात्वमुपघातश्च ७०३
मिथ्यात्वसमवेतो यः ६६९
मिथ्यात्वस्योदयाज्जीवः ६६३
मिथ्यात्वागुरुलघ्वाख्ये ६७५
मिथ्यात्वगुरुलघ्वाख्ये ६९४
मिथ्यात्वाविरती योगः ६८३
मिथ्यात्वे त्वर्धसंशुद्धे ६७२
मिथ्यात्वेन सहैकार्थ- ६६९
मिथ्यात्वेनाथ कोपादि- ७०५
मिथ्यात्वेनाद्य कोपाद्यै- ७२८
मिथ्यात्वोदयवान् जीवो ६६३
मिथ्यादृक् तीर्थकृत्त्वोना- ७३९
मिथ्यादृक्सासनो मिश्रोऽ- ६६३
मिथ्यादृग् निर्व्रतो लोभी ६९२
मिथ्यादृशस्तु तास्तीर्थ- ७४१
मिथ्यादृशो नृ-तिर्यञ्चो ७०४
मिथ्यादृशो हि सौधर्म- ७०४
मिथ्यादृश्यष्टचत्वारि ७२९
मिथ्यादृश्यष्टषष्टिः स्यु- ७२९
मिथ्यादृष्टयादिसूक्ष्मान्त- ७३२
मिथ्यादृष्टिः प्रबघ्नाति ६९६
मिथ्यादृष्टिः प्रबघ्नाति ६९९
मिथ्यादृष्टिः प्रबघ्नाति ७१३
मिथ्यादृष्टिर्द्वितीयांश्च ७०४
मिथ्यादृष्टौ षडाद्यानि ७३२
मिश्रं दधि गुडं नैव ६६३
मिश्रं विनाऽऽयुषो बन्धः ७०६
मिश्रं विहाय कोपाद्या ६९९
मिश्रवैक्रिययोगेन ७३०
मिश्रसासादनापूर्वो- ७३६
मिश्रायतौ तु बध्नीत- ७३६
मिश्रेऽष्टनवयुग्बन्धे ७३२
मिश्रे सासादनेऽपूर्वे ७२९
मिश्रे ज्ञानत्रिकं युग्मे ६८३
मुक्तं प्रकृतिबन्धेन ६७४
मुक्त्वा निजं निजं शेष- ६८५
मुक्त्वाऽन्याः प्रकृतीर्देवा- ७३९
मुक्त्वा वैक्रियिकषट्क- ७४०
मुक्त्वैकं संज्ञिपर्याप्तं ७२५
मुहूर्ताः पञ्चचत्वारि- ६७३
मुहूर्ता द्वादश ज्ञेया ७०१
मुहूर्त्ता द्वादशात्र स्युः ७०१
मूर्ताशेषपदार्थान् यज्ज्ञा- ६६८
मूर्धोऽथो हस्तमात्रश्चा- ६६७
मूलनिर्वर्त्तनात्तस्या- ६७०
मूलाग्रपर्वकन्दोत्थाः ६६६
मेहनं खरता स्ताब्ध्यं ६६७
मोहनं द्विविधं दृष्टे- ६७४
मोहप्रकृतिसंख्यायाः ७१२
मोहायुर्भ्यां विना षट्कं ६७६
मोहायुर्भ्यां विना षट्कं ६९३
मोहे स्युः सत्तया सर्वाः ७११
मोहोदयविकल्पाः स्यु- ७३०
मोहोदयविकल्पाः स्युः ७३१
मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रौप- ६६३

[य]

यः सूक्ष्मसाम्परायाख्ये ६६९
यकाभिर्दुःखमाप्नोति ६६५
यकाभिर्यासु वा जीवा ६६२
यच्छब्दप्रत्ययं ज्ञानं ६६९
यत्तच्चारित्रमोहाख्यं ६७४
यत्तस्योपशमादौप- ६७१
यत्रैको म्रियते तत्रा- ६६६
यत्रोपशान्तिमायाति ६६४
यत्सङ्क्रमोदयोत्कर्षा- ७३६
यथाम्भः कतकेनाधो- ६६४
यथा भारवहो भारं ६६६
यथावस्तु प्रवृत्तं यत् ६६६
यदिन्द्रियावधिस्वान्तै- ६७२
यवनालमसूराति- ६६६
यशःकीर्त्या सह सूक्ष्मा- ७१६
यशःस्थिरशुभद्वन्द्व- ६९६
यशःस्थिरशुभद्वन्द्व- ७१३
यशोऽत्रैकमपूर्वाद्ये ६९८
यशोऽत्रैकमपूर्वाद्ये ७१५
यशोबादरपर्याप्त- ७१६
याऽऽकाङ्क्षा स्यात्स्त्रियःपुंसि ६६७
यान्तं संस्थापयत्याशु ६७४
यावदष्टादशैकैक- ७३६
यावदावलिकां पाको ६८७
युक्तोऽष्टान्त्यकषायैर्यः ६६३
युग्मं नाहारकं मिथ्या- ६८६
ये मारणान्तिकाऽऽहार- ६७२
ये यत्र स्युर्गुणस्थाने ७२९
ये सन्ति प्रत्ययाः केचि- ६८६
योगाद्या नव संज्वालाः ६८५
योगा नवादिमा लोभोऽ- ६८५
योगाविरतिमिथ्यात्व- ६७०
योगास्त्रयोदश ज्ञेया ६८२
योगिन्यौदारिको योगो ६८३
योगीक्षीणोपशान्तौ च ६९३
योगो वीर्यान्तरायाख्य- ६६६
यो न सत्यमृषारूपः ६६७
योनिमृदुत्वभ्रस्तत्वं ६६७
योनिःसरादिसंयुक्ता ६६७

[र]

रसस्थानान्यपीष्टानि ७०७
रायो (ययो) रैव्यं यथा ६७६
रूपं पश्यत्यसंस्पृष्टं ६६६
रूपादिग्राहकत्वेन ६६९

[ल]

लतादार्वस्थिपाषाणैः ७०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेश्यायोगप्रवृत्तिः स्या- ६६९
लेश्याश्चतुर्षु षट् च स्यु- ६७०
लेश्याश्चतुर्षु षट् षट् स्यु- ७३१
लोभोदीरणतश्चास्ति ६६८

[व]

वचनैर्हेतुभी रूपैः ६७२
वज्रनाराच-नाराचे ६७८
वपुःपञ्चकमायुष्क- ७०३
वर्णगन्धरसस्पर्शाः ७१५
वर्णगन्धरसैः सर्वे- ७०६
वर्णाः शुक्लादयः पञ्च ६७५
वर्णागुरु त्रसादीनि ७००
वर्णाद्यगुरुलघ्वादि- ६८०
वर्णाद्यगुरुलघ्वादि- ६९७
वर्णाद्यगुरुलघ्वादि- ७०१
वर्णाद्यगुरुलघ्वादि- ७१४
वर्जयित्वान्तिमं युग्मं ७२१
वह्निस्थं काञ्चनं यद्वन्- ६६६
वक्ष्ये सिद्धपदैर्बन्धो- ६७०
वाक्पूर्णे त्रिशतं तत्स्या- ७१९
वाक्पूर्णे त्रैशतं तत्स्या- ७१८
वाङ्मनोऽङ्गक्रियारूप- ६६४
वाततेजोऽङ्गिनो नोच्चं ६८१
विंशतिः स्युर्भुजाकाराः ६९५
विंशतिश्चोपशान्तेऽपि ७३२
विंशतिस्त्वष्टसप्ताग्राः ७११
विकल्पाः संज्ञिपर्याप्ते ७२४
विक्रियायां भवः कायो ६६७
विक्रियाषट्कमाहार- ६८१
विक्रियाऽऽहारकौदार्या- ६७२
विक्रियाऽऽहारयुग्माभ्यां ६८४
विग्रहर्तिगतस्य स्या- ७१५
विना तीर्थकराहारं ७३६
विरतो नेन्द्रियार्थेभ्य- ६६३
विशुद्धया च प्रकृष्टोऽनु- ७०३
विशेषस्त्रिशतो बन्धे ७२२
विहाय कार्मणं चाना- ६८६
वृक्षाग्रे वाऽथ रथ्यायां ६७४
वेदत्रयं तु संज्वाला- ६७८
वेदोदीरणया जीवो ६६७
वेद्यमेकतरं निर्मि- ६८०
वेद्यमेकतरं वर्ण- ६७८
वेद्यस्य गोत्रवद्भङ्गा- ७०९
वेद्यस्य प्रकृती द्वे तु ६७४
वेद्यायुर्नामगोत्राणि ६६४
वेद्ये द्वाषष्टिरायुष्के ७२४
वेद्ये भङ्गास्तु चत्वारः ७२६
वैक्रियस्य तु षट्कस्य ७०२
वैक्रियिकाऽऽहारयोरेकं ६६७
व्रतानां धारणं दण्ड- ६६९
व्रतानामेक भागेन ६६९
व्रतानां भेदरूपेण ६६९

[श]

शक्यं यन्नोदये दातु- ७३६
शिक्षाऽऽलापोपदेशानां ६७२
शतं च सप्तमे श्वभ्रे ७३८
शतानि चाष्ट षष्ट्याऽमा ७२९
शतानि पञ्चमङ्गानां ७१८
शतान्यष्टौ चतुःषष्ट्याऽ- ७२९
शते सप्तदशैकाग्रे ७३८
शमको दर्शनमोहस्य ६७२
शम्बूकः शङ्खशुक्ती च ६६६
शरीरपञ्चकं पञ्च ७०५
शान्तक्षीणौ तु पञ्चैता ६९३
शारीरादिकमात्मीय- ६६४
शिलास्तम्भास्थिकाष्ठार्द्र- ६६८
शुभप्रकृतिभावाः स्यु- ७०५
शुभस्थिरयशोयुग्मै- ६९७
शुभस्थिरयशोयुग्मै- ७१४
शुभस्थिरयुगे तेजोऽ- ७१६
शुभस्थिरयुगे निर्भित् ७१९
शुभस्थिरयुगे वक्रर्ता- ७१७
शुभस्थिरयुगे वक्रर्ता ७१८
शुभानामशुभानां च ७०१
शुक्लध्यानसमारूढै- ६६४
शेषाः बध्नन्ति मिश्राह्वाः ७४२
शेषापर्याप्तकानां तु ७२५
शेषा मिश्रोऽयतस्तासु ७३८
शेषेषु देवतिर्यक्षु ६७२
शोकारत्यशुभोद्योत- ६८१
श्रद्धानं यज्जिनोक्तार्थे- ६७१
श्रीचित्रकूटवास्तव्य- ७०७
श्रीचित्रकूटवास्तव्य- ७३७
श्रीचित्रकूटवास्तव्य- ७४२
श्रुताम्भोनिधिनिष्यन्दा- ६८२
श्रेण्यसंख्यातभागो हि ७०७
श्वभ्रतिर्यक्सुरायुःषु ६८०
श्वभ्रतिर्यग्द्वये पञ्च ७०३
श्वभ्र-तिर्यग्द्वयैकाक्ष- ७२०
श्वभ्रतिर्यग्नृदेवाना- ६६८
श्वभ्रतिर्यङ्नरायूंषि ६८०
श्वभ्रतिर्यङ्नरायूंषि ७०२
श्वभ्रतिर्यङ्नृदेवानां ६७४
श्वभ्रतिर्यङ्नृदेवान- ७१३
श्वभ्रतिर्यङ्नृदेवाना- ६९६
श्वभ्रतिर्यङ्नृदेवायु- ६७४
श्वभ्रदेवायुषी तीर्थ- ७३६
श्वभ्र-देवायुषीश्वभ्र- ७०६
श्वभ्रदेवायुषी श्वभ्र- ७४०
श्वभ्रद्वयमनादेया- ६८१
श्वभ्रादिगतिभेदात्स्या- ६७५
श्वभ्रायुर्नास्ति देवेषु ७३६
श्वभ्रायुःश्वभ्रयुग्मं च ७४१
श्वभ्रायुः श्वभ्रयुग्मोना ७४०
श्वभ्रायुषस्तु पञ्चाक्षो ७०२

[ष]

षट्के संस्थान-संहत्यो- ७०४
षट्चत्वारश्चतुर्षु द्वा- ७२८
षट् नृतिर्यक्षु तिस्रोऽन्त्या- ६७०
षट्पञ्चाशे शते द्वे स्तो ७३०
षड्द्रव्याणि पदार्थाश्च ६६३
षड्लेश्याङ्गा मतेऽन्येषां ६७०
षड्विंशतिरियं तत्र ६९६
षड्विंशतिरियं तत्र ७१३
षड्विंशतिर्नवोद्योता- ६९६
षड्विंशतिर्विनोद्योता- ७१३
षण्ढः श्वाभ्रेषु देवेषु ७३०
षण्ढस्त्रीनोकषायाः पुं- ७३६
षष्ठांशो कार्मणं तेजः ६९९
षष्ठे सकार्मणं तेजः ६७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षाड्विंशतं तदानाप्तं ७१६
षाड्विंशतं तदेकान्न- ७१८
षोडशत्रस-पञ्चाक्षे ७३६
षोडशप्रकृतीनां तु ७२३
षोडशप्रकृतीनां तु ७३३
षोडशैव कषायाः स्यु- ६७४
षोडशैव कषायाः स्यु- ६८४
षोडशैव च मिथ्यात्वे ६७६
षोडशैव समिथ्यात्वे ६९९

[स]

सत्तास्थानेषु नाम्नोऽस्त्या- ७२०
सत्त्वे चत्वारि पाकेऽष्टा- ७२१
सत्त्वे चाद्यं चतुष्कं तु ७३३
सत्त्वेन चोपशान्ता ताः ७२६
सत्त्वे नवोपशान्तान्ताः ७०९
सत्त्वे पञ्चचतुस्त्रिद्वये- ७११
सदृष्टिरितरो चाष्टौ ७०४
सन्ति द्वादशसंस्थाने ७००
सत्तास्थानानि पञ्चेषु ७२१
सत्तास्थानानि तस्यैवा- ७२६
सत्तास्थानानि तेषु द्वा- ७२५
संख्ये येनाप्यसंख्येन ६७१
संज्ञीपर्याप्त उत्कृष्ट- ७०६
संयतेषु चतुर्ष्वाद्यौ ६६९
संयतेष्वाऽऽत्मसात्कुर्वन् ६६३
संशयाज्ञानिकैकान्त- ६८३
संस्थानं तस्य तस्याङ्गो- ६७४
संस्थानस्याथ संहत्या- ६७७
संस्थान-संहती चाद्ये ७००
संस्थानादिषु भेदेऽपि ६६४
संस्थानेषु च षट्स्वेक- ७१९
सजातीयं निजं त्यक्त्वा ६८५
सञ्ज्वाल-नोकषायाणां ६६३
सतिर्यग्गतिमेकाक्ष- ६९६
सतिर्यग्गतिमेकाक्ष- ७१३
सत्तास्थानानि चत्वारि ७२१
संस्थानस्याथ संहत्या- ६९९
संस्थानस्याय संहत्या- ७३८
संक्षिप्योक्तमिदं कर्म- ७३७
सन्ति बादरपर्याप्ते ७२५

सन्त्यनन्तानुबन्ध्याख्याः ६६८
सन्त्येकेन्द्रियवद्बन्धा ७३३
सप्ततिर्मोहनीयस्य ७००
सप्तत्रिंशच्चतुर्विंश- ६८४
सप्तबध्नन्त्यपूर्वाख्याः ७३८
साप्तविंशतिपाके तु ७२१
सप्त स्युर्निर्ग्रताऽऽद्येषु ६७९
सप्ताद्या द्वयोः सप्ता- ७२८
सप्तानां कर्मणां पूर्व कोटी- ७००
सप्तानां कर्मणां बन्धो ७०६
सप्तापर्याप्तकाः सूक्ष्मो ७२५
सप्तापर्याप्तकेषु स्युः ७२५
सप्तांशे चरमेऽपूर्वोऽ- ७२३
सप्तांशे चरमेऽपूर्वोऽ- ७३३
सप्ताष्टौ वा प्रबध्नन्ति ६७६
सप्ताष्टौ वा प्रबध्नन्ति ६९३
सप्तैवं काययोगाः स्युः ६६७
सप्रमादो हि देवायु- ७०२
समके क्षपकेऽपूर्वे ७३२
समादिचतुरस्रं हि ६७४
समुद्धातं गतो योगी ६७२
सम्प्राप्तर्द्धिः प्रमत्ताख्यो ६६७
सम्भूयात्मप्रदेशानां ६७२
सम्यक्त्वमथ मिथ्यात्वं ६७१
सम्यक्त्वस्याऽऽदिमो लाभः ६७२
सम्यक्त्वस्याऽऽदिमाल्लाभा- ६७२
सम्यक्त्वात्तीर्थकृत्त्वं चा- ७०६
सम्यक्त्वं तीर्थकृत्त्वस्याऽऽ- ६७६
सम्यक्त्वं तीर्थकृत्त्वस्याऽऽ- ६९९
सम्यक्त्वं तीर्थकृत्त्वस्या- ७३८
सम्यक्त्वं वेदलोभोऽन्यो ७३६
सम्यक्त्वं संहृतेश्चान्त्यं ६७८
सम्यक्त्वात्प्रथमाद्भ्रष्टो ६६३
सम्यक्त्वात्प्रथमाद्भ्रष्टो ६७२
सम्यक्त्वान्ययताद्येषु ६७२
सम्यक्त्वे सासनो मिश्र- ६६५
सम्यग्दृष्टो भवेत्तीर्थकरा- ७०१
सम्यग्मिथ्यात्वपाकेन ६६३
सयोगे द्वौ चतुष्कं च ७३२
सयोगे विंशतिः सैक- ७१९

सरागसंयमादिभ्यो ६९२
सर्वत्र समदृग् वेत्ति ६७१
सर्वत्रापि समोऽपक्ष- ६७१
सर्वशीलगुणैर्युक्तः ६६४
सर्वसूक्ष्मेषु कापोता ६६९
सर्वाण्यन्तर्मुहूर्त्तोना- ७२०
सर्वेऽपि मीलिता भङ्गाः ७२५
सर्वेऽप्येते भयेनोना ७२८
सर्वे बन्धा मनुष्येषु ७३३
सर्वे वक्रगतौ द्व्यङ्गा- ६६७
सर्वोत्कृष्टस्थितीनां हि ७०२
सर्वोपरिमभागो हि ७०६
सहस्राणि तु चत्वारि ७१८
सागराणां त्रयस्त्रिंश- ७००
सातासातनरायुर्भि- ६७९
सातासाते स्थिरद्वन्द्वं ७०४
साऽतोऽष्टं चतुरेकाग्रा ७१२
सादयश्चाध्रुवाः शेषा- ७०१
साधारणो यदाहार- ६६६
सान्तरस्तद्विपक्षो वा ६८०
सान्यघातमपूर्णोनं ७१६
साप्तविंशतमेतच्च ७२०
सामान्यदेवभङ्गेषु ७४०
सामान्यैकेन्द्रियस्वाद्यं ७१५
सासनाः षोडशोनास्ता ७४१
सासने नवतिर्मिश्रे ७२१
सासादनः प्रकर्षेण ६६३
सा स्याद्वर्षशतं वार्धि- ७००
साहारे न प्रमत्तेऽन्ये ६८४
सुभगादेयपर्याप्त- ७३७
सूक्ष्मं साधारणाहार- ७३८
सूक्ष्मं साधारणैकाक्षे ७०३
सूक्ष्मपर्याप्तके बन्ध- ७२५
सूक्ष्ममायुश्चतुष्कं च ७०४
सूक्ष्मवृत्तस्य सूक्ष्माख्येऽ- ७४१
सूक्ष्मसाधारणं श्वभ्र- ७०३
सूक्ष्मसाधारणापूर्णैः ७१६
सूक्ष्मसाधारणैकाक्ष- ७४१
सूक्ष्मसाधारणोद्योताः ६८०
सूक्ष्मसाधारणोद्योताः ७३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मादिष्वयोगे च	७३३	स्थानानि त्रीण्यतः पञ्च	७३३	स्वपित्युत्थापितो भूयः	६७४
सूक्ष्मे सप्तदशानां हि	७०६	स्थानानि पञ्च षट् पञ्च	७२५	स्वप्रशंसाऽन्यनिन्दा च	६९३
सूक्ष्मोपशान्तक्षीण-	६६३	स्थानान्येकषडष्टाग्रा	७१६	स्वमुखेनैव पच्यन्ते	७०३
सूक्ष्मो मन्दानुभागो हि	७०३	स्थानयोर्गुणजीवानां	६६३	स्वल्पागमतया किञ्चि-	७३७
सोच्छ्वासं चानपर्याप्त-	७१९	स्थावरापूर्णनिर्माणा-	४१४	स्ववेदोदीरणात्संज्ञा	६६५
सोच्छ्वासमानपर्याप्ता-	७२०	स्थावरापूर्णनिर्माण-	६९७	स्वौघादपूर्णतिर्यञ्च-	७३९
सोच्छ्वासमानपर्याप्त्य-	७१७	स्थितेरुत्कर्षका पञ्च-	७०२	**[ह]**	
सोद्योताशस्तगत्यन्य-	७१७	स्थित्युत्पादव्ययैर्युक्तं	६६८	हानिं नावेति वृद्धिं वा	६७१
सोद्योतोदयपञ्चाक्षौ	७१८	स्थिरादिपञ्चयुग्मानि	६८०	हास्यं रतिर्जुगुप्सा भी-	६८०
सौधर्मादिष्वसंख्याब्दा-	६७२	स्थिरादिषड्युगेष्वेक-	७१३	हास्यं रतिर्जुगुप्सा भी-	७०४
सौधर्मैशानयोः पीता	६७०	स्थिरादिषड्युगेष्वेक-	६९६	हास्यं रतिर्नृ देवश्च	७००
स्त्यानगृद्धित्रयं तिर्य-	६७७	स्थिराऽऽहारद्विकाऽऽदेयं	६९७	हास्यषट्कं च पुंवेदः	६८०
स्त्यानगृद्धित्रयं तिर्य-	६८०	स्थिराहारद्विकादेय-	७१४	हास्यादि षट्कं षण्ढस्त्री	६८४
स्त्यानगृद्धित्रयं तिर्य-	६९९	स्थूले सूक्ष्मे त्वपर्याप्ते	७२५	हीनस्तृतीयकोपाद्यै-	७४२
स्त्यानगृद्धित्रयं तिर्य-	७३८	स्यन्दते मुखतो लालां	६७४	हीना तीर्थकृता त्रिंश-	६९७
स्त्यानगृद्धित्रयं श्वभ्रं	७३६	स्यात्तदेवानपर्याप्तौ	७१६	हीनां तीर्थकृता त्रिंश-	७१४
स्त्रीपुन्नपुंसकाः प्रायो	६६७	स्यात्पाञ्चविंशतं तत्र	७१९	हीना द्वितीयकोपाद्यै-	७३९
स्त्रीपुन्नपुंसकाख्याभि-	६६७	स्यात्पञ्चविंशतिरत्र-	६९७	हुण्डं वर्णचतुष्कं चो-	६९७
स्त्री-षण्ढवेदनिर्मुक्ताः	६८५	स्यात्पञ्चविंशतिस्तत्र	७१४	हुण्डं वर्णचतुष्कं चो-	७१४
स्थानं त्रिंशत्मेतत्स्या-	७१७	स्यान्मनःपर्ययेऽप्योघः	७४१	हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्व-	७३८
स्थानं दशनवाष्टौ च	७११	स्युः पुद्गलोदयाः पञ्च	७३७	हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्व-	७३८
स्थानं त्रैंशतमस्तीदं	७१९	स्युः सर्वेऽप्युपयोगेषु	७३१	हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्व-	७३९
स्थानानि त्रीणि तिर्यक्षू-	७२०	स्व-परोभयबाधाया	६६८	हुण्डासम्प्राप्तमिथ्यात्व-	७४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

श्री० ब्र० पं० रतनचन्द्रजी मुख्तार (सहारनपुर) ने प्रस्तुत ग्रन्थका स्वाध्याय कर मूल एवं टीकागत पाठोंके विषयमें कितने ही स्थलोंपर सैद्धान्तिक आपत्तियाँ उठाई हैं और उसके परिहारार्थ पाठ-संशोधनके रूपमें अनेक सुझाव दिये हैं, हम उन्हें यहाँ साभार ज्यों-का-त्यों दे रहे हैं और विद्वज्जनोंसे अनुरोध करते हैं कि वे उनपर गहराईके साथ विचार करें और जो पाठ उन्हें आगमानुकूल प्रतीत हों, उन्हें यथास्थान सुधार लेवें । चूँकि मूलप्रतिमें वैसे पाठ उपलब्ध नहीं हैं, अतएव सुझाये गये पाठोंको हमने शुद्धि-पत्रके रूपमें नहीं दिया है । उनके द्वारा पूछी गई दो-एक बातोंका उत्तर इस प्रकार है—

पृ० १२ पर टिप्पणीमें जो "उवसमेण सह·······औपशमिकस्य सप्त दिनानि" पाठ दिया है, वह आदर्श मूलप्रतिमें हाँशियेमें दिये गये टिप्पणके आधारसे दिया गया है ।

पृ० २४ पर गाथाङ्क ११० से ११५ तकके अर्थमें जो अनन्तानुबन्धी आदि कषायोंके नामोंका उल्लेख किया गया है, उसका आधार श्वे० नवीन कर्मग्रन्थ भाग प्रथमकी निम्न गाथा है—

"जा जीव-वरिस-चउमास-पक्खगा निरय-तिरिय-नर-अमरा ।
सम्माणुसव्वविरई-अहखायचरित्तघायकरा ॥१८॥

इसके अतिरिक्त नेमिचन्द्राचार्य विरचित कर्मप्रकृतिमें (जो कि अभी तक अप्रकाशित है) भी चारों गाथाएँ आई हैं और ये गाथाएँ गो० जीवकाण्डमें भी हैं । उसके संस्कृत टीकाकारोंने उनका अर्थ करते हुए कषायोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य अनुभागशक्तिके फलस्वरूप क्रमशः नरकादि गतियोंमें उत्पत्ति बतलाई है । इन दोनों टीकाओंका आधार लेकर पं० हेमराजजीने आजसे लगभग तीनसौ वर्ष पूर्व उक्त गाथाओंका जो अर्थ किया है उससे भी मेरे किये गये अर्थकी पुष्टि होती है । यहाँ उसका कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

"भावार्थ—पाषाणरेखा समान उत्कृष्ट [शक्ति] संयुक्त अनन्तानुबन्धी क्रोध जीवको नरगविषै उपजावै है । हल करि कुवाजुहे भूमिभेद तिस समान मध्यमशक्ति संयुक्त अप्रत्याख्यान क्रोध तिर्यंचगतिकौ उपजावै है । धूलिरेषा समान [अ] जघन्यशक्ति संयुक्त प्रत्याख्यान क्रोध जीवको मनुष्यगति उपजावै है । जलरेषा समान जघन्यशक्ति संयुक्त संज्वलन क्रोध देवगति विषै उपजावै है ।" (देखो पत्र ३३)

इस टीकाकी एक हस्तलिखित प्रति मेरे संग्रहमें है जो कि वि० सं० १७५३ के वैशाख सुदी ५ रविवारकी लिखी हुई है ।

कसायपाहुडमें उक्त दृष्टान्त चतुःस्थानिक, त्रिस्थानिक, द्विस्थानिक और एकस्थानिक अनुभागशक्तिके ही रूपमें दिये गये हैं; किन्तु वहाँपर उनके द्वारा नरकादि गतियोंमें उत्पन्न करानेकी कोई चर्चा नहीं है ।

पृ० ३९५ पर गा० २२८ के अन्तमें 'पमत्तिदरे' पाठ आया है । संस्कृत टीकाकारने उसका 'अप्रमत्ते' अर्थ किया है और तदनुसार हमने भी अनुवादमें 'अप्रमत्तगुणस्थान' लिखा है । परन्तु श्री० ब्र० पं० रतनचन्द्रजी मुख्तारका कहना है कि अप्रमत्तगुणस्थानमें २८ व २९ स्थानवाले नामकर्मका उदय नहीं है, केवल ३० स्थान-वाले नामकर्मका उदय है । प्रमत्त गुणस्थानमें आहारकसमुद्घातके समय २८ व २९ प्रकृतिक स्थान होता है । अतः मूल पाठ 'पमत्तिदरे' के स्थानपर 'पमत्तविरदे' पाठ कर देना चाहिए और तथैव ही संस्कृत टीका और अनुवादमें भी अर्थ करना चाहिए । पर चूँकि किसी भी मूल प्रतिमें 'पमत्तविरदे' पाठ हमें नहीं मिला और न संस्कृत टीकाकारको ही, अतः शुद्धिपत्रमें उनका यह संशोधन नहीं दिया गया है, पर उनका तर्क आगमका बल रखता है, इसलिए विद्वज्जन इसपर अवश्य विचार करें ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके अतिरिक्त उन्होंने और भी अनेक स्थलोंपर पाठोंके संशोधनार्थ अनेक सुझाव उपस्थित किये हैं, जो कि निम्न प्रकार हैं—

पृष्ठ	पंक्ति	
१११	४	'परिहारविशुद्धौ त एव २४ आहारकद्विकोनाः द्वाविंशतिः २२ ।' स्त्रीवेदी व नपुंसकवेदी जीवोंके भी नहीं होता (धवल पु० २ पृ० ७३४) । अतः परिहारविशुद्धि संयममें स्त्रीवेद व नपुंसकवेद ये दोनों बंधप्रत्यय भी कम होकर शेष २० बंधप्रत्यय होने चाहिए (धवल पु० ८ पृ० ३०५) ।
२५२	४ व ८	'पल्लासंखेज्जभागूणा ॥४१८॥' (पंक्ति ४) । 'पल्यासंख्यातभागहीनाः ।' (पंक्ति ८) के स्थानपर **'पल्लसंखेज्जभागूणा ॥ ४१८ ॥' 'पल्यसंख्यातभागहीनाः ।'** होना चाहिए (महाबंध पु० २ पृ० २४३) ।
२८७	२१	'तन्न, मिथ्यात्वद्रव्यस्य देशघातिनामेव स्वामित्वात् ॥५०८–५०९॥' अनन्तानुबंधीके मिथ्यात्वका देशघातिपना कैसे ?
३३१	२४–२५	"तच्चतुर्विधबन्धकानिवृत्तिकरणक्षपकश्रेण्यां एकविंशतिकसत्त्वस्थाने २१ मध्यमकषायाष्ट-क्षपिते त्रयोदशकं सत्त्वस्थानम् ।" क्षपक श्रेणीमें चारका बंधस्थान सवेदके अन्तिम समयमें या अवेदमें होगा, उस समय आठ मध्यम कषायका सत्त्व नहीं होता ।
३३२	२,३,४,६,८	"ते पुण अहिया णेया कमसो चउ-तिय-दुगेगेण ॥५०॥" 'तत्थ तिबंधए २८।२४।२१।४ । दुबंधए २८।२४।२१।३ एयबंधे २८।२४।२१।२।' (पंक्ति ३–४) । 'तानि पुनः क्रम-शश्चतुस्त्रिद्विकैकेनाधिकानि मोहसत्त्वस्थानानि ।' (पंक्ति ६) । 'तत्त्रिबन्धानिवृत्तिक्षपके पुंवेदे क्षयं गते चतुःसंज्वलनसत्त्वस्थानं ४ ।' (पंक्ति ८) । तीन (मान माया लोभ) के बंधकके क्रोधका क्षय हो जानेपर ३ का सत्त्वस्थान भी होता है । इसी प्रकार दो (माया, लोभ) के बंधकके मानका क्षय हो जानेपर दो प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी होता है । इसी प्रकार एक (लोभ)के बंधकके मायाका क्षय हो जानेपर एक प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी होता है । किन्तु ये सत्त्वस्थान मूल या टीकामें क्यों नहीं कहे गये ?
३४९		गुणस्थानकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका कथन नहीं पाया जाता, किन्तु **पृ० ३८३ गाथा २०५–२०७ में गुणस्थानवत्** जाननेकी सूचना की है । इससे ज्ञात होता है कि गुणस्थानकी अपेक्षा नामकर्मके उदयस्थानोंका पाठ छूटा हुआ है ।
३७५ ३७६	३५ २	**तीर्थंकरके केवलिसमुद्घातमें नामकर्मका २२ प्रकृतिक उदयस्थान कहा है, जो ठीक नहीं** है । प्रतर लोकपूरण अवस्थामें २१ प्रकृतिक उदयस्थान कहा है । उसके पश्चात् कपाट समुद्घातमें औदारिक मिश्र होनेपर औदारिकद्विक २, वज्रवृषभनाराच संहनन ३, उपघात ४, समचतुरस्रसंस्थान ५, प्रत्येकशरीर ६, के मिलनेपर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है । परघात, प्रशस्तविहायोगतिके मिलनेपर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है । **पृ० ४२२** पर समुद्घात केवलीके २२ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं कहा है । सामान्य केवलीकी अपेक्षा २०,२६ व तीर्थंकर केवलीकी अपेक्षा २१,२७ का उदयस्थान कहा है ।
३८८	३०–३१	"तिर्यग्गतिको मनुष्यो वा मिथ्यादृष्टिः देवगति-तदानुपूर्व्यद्वयं उद्वेल्लयति, तदा अष्टाशीतिकं ८८ । तथा नारकचतुष्कमुद्वेल्लयति, तदा चतुरशीतिकं ८४ ।" पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य देवगतिद्विक या नरकचतुष्ककी उद्वेलना नहीं करता । अतः यह पाठ इस प्रकार होना चाहिए—**"तिर्यग्गतिको मनुष्यो वा मिथ्यादृष्टिः देवगति-तदानुपूर्व्यद्वयं पूर्वभवे उद्वेल्य तस्य अष्टाशीतिकं ८८ । तथा नरकचतुष्कमुद्वेल्य तस्य चतुरशीतिकं ८४ ।"** या **'मनुष्यो वा'** पाठ निकाल दिया जावे । (गो० क० गाथा ६१४,६१६,६२४ ।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ पंक्ति

४०२ १६,१७,१८ "तु पुनश्चतुर्गतिजीवानां त्रिंशत्क-बंधे ३० पञ्चविंशतिकोदये २५ द्वानवतिक-नवतिक-सत्त्वस्थानद्वयं ९२।९०। तिर्यङ्मनुष्येषु त्रिंशत्कबंधे ३० पञ्चविंशतिकोदय २५ अष्टाशीतिक-चतुरशीतिसत्त्वस्थानद्वयम् ८८।८४।" **नोट**—मनुष्यमें २५ का उदयस्थान आहारक-समुद्घातके समय होता है। वहाँपर देवगति-सहित २८ का या तीर्थंकर-सहित २९ का बंधस्थान संभव है। प्रमत्तगुणस्थान होनेके कारण आहारकद्विकका बंधस्थान संभव नहीं। प्रमत्तगुणस्थानमें ८८ व ८४ का सत्त्वस्थान भी संभव नहीं है। अतः '**चतुर्गति-जीवानां**' के स्थानपर '**त्रिगतिजीवानां**' पाठ होना चाहिए। तथा '**तिर्यङ्-मनुष्येषु**' के स्थानपर '**तिर्यक्षु**' पाठ होना चाहिए।

४१८ २६,२७ "सूक्ष्म अपर्याप्तकोंके इक्कीस प्रकृतिक एक उदयस्थान जानना चाहिए। बादर अपर्याप्तकोंके चौबीस प्रकृतिक एक ही उदयस्थान जानो ॥२७१॥" सूक्ष्म अपर्याप्तकोंके विग्रहगतिमें नामकर्मका २१ प्रकृतिक उदयस्थान और शरीर ग्रहण करनेपर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसी प्रकार बादर अपर्याप्तकोंके भी ये दोनों उदयस्थान होते हैं। **अतः पाठ इस प्रकार होना चाहिए—'सूक्ष्म अपर्याप्तकों और बादर अपर्याप्तकोंके २१ प्रकृतिक और २४ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते हैं ॥२७१॥'** पृ० ४१७ मूलगाथा ३१ व ३२ में सातों अपर्याप्त जीव समासोंमें प्रत्येकके दो-दो उदयस्थान कहे हैं।

पृष्ठ गाथा

४३४ २९६ "मिच्छाई देसंता पण चदु **दो दोण्णि** भंगा हु!" इसमें 'दो दोण्णि' का अर्थ 'दो, दो और दो' किया गया है किन्तु इसका अर्थ 'दो दो बार' होता है। अतः '**दो तिण्णि**' पाठ होना चाहिए।

४५१ ३३४, ४५९ ३५२, ४६१ ३५५ प्रमत्त गुणस्थानमें ९ योग तो तीनों वेदोंके उदयमें होते हैं। किन्तु **आहारक-द्विक काय-योगमें मात्र पुरुषवेद होता है** अतः भंग लाते समय ९ योगसे गुणाकर २४ (४ कषाय × ३ वेद × २ हास्यादि युगल) से गुणा करना चाहिए। आहारक और आहारक मिश्र इन दो योगोंसे पृथक् गुणाकर ८ (४ कषाय × १ वेद × २ हास्यादि युगल) से गुणा करना चाहिए। **एक साथ ग्यारह योगसे गुणा कर, गुणनफलको पुनः २४ से गुणा करना ठीक नहीं है।**

४८४ ३९६-३९७ अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें एक प्रकृतिक सत्त्वस्थान मोहनीय कर्मका क्यों नहीं कहा? मायाके क्षय होनेपर मात्र बादर लोभका सत्त्व रहता है।

४८६ ३९९ 'छण्णव छत्तिय सत्त य एग दुयं तिय तियट्ठ चदुं!' अर्थ—६ ९ ६, ३ ७ १, २ ३ २, ३ ८ ४। '२ ३ २' में से दूसरे '२' के लिए गाथामें कौन शब्द है? गाथाका पाठ इस प्रकार होना चाहिये—'**छण्णव छत्तिय सत्त य एग दुयं तिय [दुयं] तियट्ठ चदुं।**'

५०० ४३७ 'पणुवीसाई पंच य बंधा वेउव्विए भणिया।' वैक्रियिक काययोगमें २५।२६।२८।२९।३० ये पांच बंधस्थान नामकर्मके कहे हैं। किन्तु **वैक्रियिक काययोगमें २८ प्रकृतिक बंधस्थान कैसे संभव है? क्योंकि २८ का बंधस्थान देवगति या नरकगति सहित होता है।** वैक्रियिक काययोग देव व नारकियोंके होता है जो देव या नरकगतिका बंध नहीं करते।

५०१ ४३९ आहारक काययोगियोंके नामकर्मका ९१ व ९० का सत्त्वस्थान कैसे सम्भव है? **क्योंकि आहारक काययोगके आहारक द्विकका सत्त्व अवश्य होगा।**

५०३, ४४४ व टीका "अडवीस" के स्थानपर '**णव वीस**' होना चाहिए। क्योंकि २८ प्रकृतिक नामकर्म उदय-स्थान चारों गतियोंमें छहों पर्याप्तियोंके पूर्ण होनेसे पूर्व होता है और विभंगज्ञान मनः-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ गाथा

पर्याप्ति पूर्ण होनेके पश्चात् होता है। **तथा विभंग ज्ञानियोंके ८८, ८४, ८२ का सत्व-स्थान भी नहीं होना चाहिए** (गो० क० गाथा ७२४)।

५०६ ४५२ **असंयमोंके नामकर्मका ८० प्रकृतिक सत्त्वस्थान सम्भव नहीं है,** क्योंकि अनिवृत्तिकरण क्षपक गुणस्थानमें सम्भव है। किन्तु देवद्विककी उद्वेलना होनेपर ८८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान सम्भव है। **अतः गाथा ४५२ में ८० के स्थानपर ८८ होना चाहिए।**

५०७ ४५६ **तेज पद्मलेश्यामें नामकर्मका २६ प्रकृतिक उदयस्थान भी सम्भव है।** जो सम्यग्दृष्टि देव मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होता है उसके शरीर ग्रहण करनेपर २६ प्रकृतिक उदयस्थान तेज व पद्म लेश्यामें होता है। (पृ० ३८२ गा० २०४, पृ० ३७९ गाथा १९५)

५१२ ४६८ असंज्ञी जीवोंमें नामकर्मका २४ प्रकृतिक भी उदयस्थान हैं, क्योंकि एकेन्द्रिय जीवोंमें शरीर ग्रहण करनेपर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

५१३ ४७१ **अनाहारकोंमें नामकर्मके ३० व ३१ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होते।** १४ वें गुण-स्थानमें भी ९ व ८ प्रकृतिक नामकर्मका उदयस्थान होता है। १४ वें गुणस्थानवाले अनाहारक हैं। (देखो, पृ० ३८३ व पृ० ५०८ गा० ४५८) **अतः गाथा ४७१ में 'चउ उवरिं' के स्थानपर 'दुयं उवरिं' होना चाहिए।**

विद्वान् पाठक गण उक्त सुझाये गये पाठोंके ऊपर विचारकर आगमानुकूल अर्थका अवधारण करें।

—सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धि-पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	२९–३०	और अप्रतिष्ठित ये	के पर्याप्त और अपर्याप्त ये
९	४–५	में बादर चतुर्गति····सप्रतिष्ठितके चार	में, इतरनिगोदके बादर सूक्ष्म पर्याप्त तथा अपर्याप्त अर्थात् बादर इतरनिगोद पर्याप्त, बादर इतरनिगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म इतरनिगोद पर्याप्त, और सूक्ष्म इतरनिगोद अपर्याप्त, ये चार
१०	२१	ये प्राण	ये द्रव्य प्राण
१०	२३–२४	आदिकी····तथा वचन	×
१०	३३	वीइंदियादि	एइंदियादि
१२	५	वा तीव्र उदय	×
१३	२७–२८	और युगके आदिमें मनुओंसे उत्पन्न हुए हैं	×
१८	३२	गो० जी० २०७	गो० जी० २१५
२३	५	भी आच्छादित करे	भी दोषसे आच्छादित करे
२३	३२	पृ० २४१	पृ० ३४१
२५	३०	पृ० ३५४	पृ० ३५१
४२	१२	पहले और आठवें	पहले और सातवें
२७	२७	द्रव्यसंयम	संयम
२७	३२	,,	,,
२८	१	भावसंयमका स्वरूप	×
२८	४	विरत होना, सो भावसंयम	जो विरतिभाव है सो संयम
४०	२७	कर, कोई	कर, कोई शाखाको काटकर, कोई
४१	३५–३६	ध० १, ३, २ गो०	ध० भा० ४ पृ० २९ गो०
४९	२०	११।	१३।
४९	३३	उच्छ्वास, उद्योत	उच्छ्वास, आतप, उद्योत
५०	१२–१३ १४–१५	उदय	बन्ध
५३	२८	जानेपर नाम और गोत्रको छोड़कर	जानेपर मोहनीयको छोड़कर
६८	२४	तत्र सत्त्वम् १६। ०	तत्र तासां व्युच्छेदः १६।
६९	२३,२४, २५	उवसंते $\frac{१०१}{४७}$	×
७०	१९	चौंतीसका सत्त्व है।	चौंतीसका असत्त्व है
७०	२८–३०	उपशान्तमोह·······व्युच्छित्ति नहीं होती	×
७३	२	पञ्चकं ५	पञ्चकं ५ [औदारिकादिशरीरबन्धनपञ्चकं ५]
७४	१	स्वात्मलामं	स्वात्मलाभं
७५	२७	अप्रत्याख्यानचतुष्टयस्य देशविरते	अप्रत्याख्यानचतुष्टयस्याविरते युगपद् बन्धोदयौ विच्छेदौ भवतः $\frac{४}{४}$ प्रत्याख्यानचतुष्टयस्य देशविरते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७५	२९	भवतः २/९	भवतः ९/९
७६	१९	संहननस्य ७/२	संहननस्य ७/१
७६	२१	अस्थिरस्य १३/६ अशुभस्य	अस्थिरस्य १३/६ [शुभस्य १३/८] अशुभस्य
७६	२३	तीर्थविधायितायाः १३/८	तीर्थविधायितायाः १४/८
७९	२२	मनुष्यद्विकं २ औदारिक-	मनुष्यद्विकं २ तिर्यग्द्विकं २ औदारिक-
७९	२३	समचतुरस्रसंस्थानं २	समचतुरस्रसंस्थानं १
८२	४	णिरय-	[1]णिरय-
८२	३९	×	[1]सं० पञ्च सं० ४ 'श्वभ्रमानवदेवेसु' इत्यादि गद्यभागः (पृ० ७४)
८३	२२	पर्याप्तक जीवसमास	अपर्याप्तक जीवसमास
८४	२१	केव० २	केव० १
८५	५	एव २।	एव १।
८८	२०–२१	मिथ्यादृष्टि संज्ञी····चार, तथा	×
८९	८	१०,	१२,
९१	२८	२ चेति	३ चेति
९१	३०	९ स्युः	६ स्युः
९४	२२	कार्मणकाययोग	वैक्रियिकमिश्रकाययोग
९५	२५	१० योगा	१५ योगा
१०१	२५	दश गुणस्थानानि भवन्ति १० ।	द्वादश गुणस्थानानि भवन्ति १२ ।
१०२	१९	मि० सा० दे० ६ ६ ६	मि० अ० दे० ६ ६ ६
१०२	३३	१,११७।	१,१७७
१०४	२१	मध्ये असत्यमृषायोगौ मुक्त्वा अन्ये अनुभय-	मध्ये मुक्त्वा अन्ये असत्यमृषायोगौ अनुभय-
१०७	१०	११। बादरलोभः	११। संज्वलनमायां विना सप्तमे भागे दश १०। बादरलोभः
१०७	२५	न० ५५	न० ५३
१०७	२८	प० २२	प० २०
१११	४	द्वाविंशतिः २२।	विंशतिः २०।
१११	२३	आहारकद्विकके सिवाय शेष बाईस	आहारकद्विक, स्त्री तथा नपुंसक वेदके सिवाय शेष बीस
११४	५	अनि० सू० २ २ २ १	अनि० सू० २ २ ३ २
१२०	१८	मिथ्यात्वं खमिन्द्रियं	मिथ्यात्वं १ खमिन्द्रियं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२१	२०	५।६।६।४।३।२।२।१०	५।६।६।४।३।२।१०
१२१	२९	,, ,,	,, ,,
१२२	२	,, ,,	,, ,,
१२३	८	२ × १	२ + १
१२३	२६	४।४।३	४।३
१२५	३६	२।२ इनका	२।२।१० इनका
१२६	२४	एक, काय पाँच	एक, इन्द्रिय एक, काय पाँच
१२७	१२	२।२।१०	२।१०
१२७	२०	२।२।१३	२।१३
१२९	२९	२।२।१३	२।१३
१३०	२	२।२	२।२।१३
१३१	९	२ योगत्रयोदशक	२ एकभययुग्मं १ योगत्रयोदशक
१३५	५	४।२।२।२ एदे	४।२।२।१ एदे
-१३५	६	३।२।१२	३।२।३।१२
१३५	२७	३।२।२।१२	३।२।१२
१३५	३६	६।२०।४।३	६।२०।४
१३६	७	३।२। वै० मि०	३।२।१२ वै० मि०
१३७	८	४।२।२।१। एते	४।२।२।२।१। एते
१३७	२३	४।२।२।१ एए	४।२।२।२।१ एए
१३८	२३	३।२।२।१२	३।२।१२
१३९	४	२१५२	११५२
१४४	१५	३।२।१०	३।२।२।१०
१४९	३०	रहिताः	हताः
१५०	१२	६।१५।४।२।२ परस्परेण	६।१५।४ परस्परेण
१५०	१८	६।६।४।२।२।२। परस्परेण	६।६।४ परस्परेण
१५१	६ और ७के बीचमें	×	दसयोग-तिवेदभंगा—८०६४०
१५१	१८	हास्यादि २ भय २ योगाः	हास्यादि २ योगाः
१५२	९	हास्यादि २ भययुग्म २ गुणिताः ९६०।	हास्यादि २ गुणिताः ९६०। भययुग्म-
१५२	१२	३।२।१०	३।२।२।१०
१५२	१२ और १३ के बीचमें	×	३६०।१।२।१ परस्परं गुणिताः ७२०
१५२	२४	१०८०००	१००८००
१५३	४	वैक्रियिकमिश्रेण	औदारिकमिश्रेण
१५४	१६	५ १	६ १
१५४	१७	६ २	५ २
१५४	२७	१।५।३।१।२।१……६।४।४	१।५।३।१।२।२।१……६।६।४
१५६	८	२० अंशे तथाकृत द्वि २ त्रि ३ हारेण भक्ते	२० त्रि अंशे ६० तथाकृत द्वि २ त्रि ३ हारेण ६ भक्ते
१५८	११	६।१०।४।२।२।९।	६।१०।४।३।२।९
१५८	३३	२५९६०	२५९२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५९	३०	काय तीन	काय दो
१५९	३२	१ + + २	१ + २
१६०	९	१२९६९	१२९६०
१६७	५	उप० १।१	उप० १।९
१६७	२०	२ × १ × ९ = १८	१ × ९ = ९
१६७	२० और २१के बीचमें	×	उपशान्तकषाय गुणस्थानमें ९ ९ भंग होते हैं।
१६८	१५	खंति ण-	खंति-दाण
१७५	१३ व १४	७ ७ ८	७ ७ ७ ८ ८
१७६	३	सप्तविध कर्म-	सप्तविध-षड्विधकर्म-
१७७	५	रहनेपर मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव	रहनेपर, मिश्रगुणस्थानवर्ती जीवके अतिरिक्त,
१७८	५ व ६	६ ५ ५ ५ ० २ २ २	६ ६ ५ ५ ० ५ २ २
१८२	९	तत्रानाद्यनन्तत्वात्।	तत्रानाद्यनन्तत्वात् ३।
१८४	१५	सुस्वरद्वयं २ आदेय-	सुस्वरद्वयं २ सुभगद्वयं २ आदेय-
१८५	११	अप्पयरा ८ ६ १ ७ ६ १	अप्पयरा ८ ७ ६ ७ ६ १
१९०	७	१ ३ २	१३ २
१९१	२८	अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— ६।४।२।२।२।२।१।१।१।१।१।	अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— ६।४।२।२।२।१।१।१।१।१।
१९४	२६–२७	वा प्रमत्तो भूत्वा	वाऽप्रमत्तो भूत्वा
२०२	३२	(६ × ६ × २ × २ × २ × २ × २ × २ = ६४०८)	(६ × ६ × २ × २ × २ × २ × २ × २ × २ = ६४०८)
२०६	१९	२।४ अयशः	४। अयशः
२०७	३	हुण्डकसंस्थानं	हुण्डकसंस्थानं १
२१०	१८	२।२।२।२।२।५	२।२।२।२।२।२।५
२११	१३	वर्णचतुष्कं १	वर्णचतुष्कं ४
२११	१४	दुर्भगं अनादेयं	दुर्भगं १ अनादेयं
२१५	३–७	अप्र० २८ २९ ३०	अप्र० २८ २९ ३० ३१
२१५	१६	(१ + १ + १ + ८ + १ + ८ = २०)	(१ + १ + १ + ८ + ८ = १९)
२१५	१७	(तिर्यग्गति)	(नरकगतिका १ तिर्यग्गति)
२१५	१८	२० = १३९५५	१९ = १३९४५
२२५	६	विना तथा सासादन	विना सासादन
२२५	२२	।३६।	।६६।
२२६	११	६४	६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२७	१६	६२ ९० १०७ ११९	६२ ९८ १०३ ११९
२२७	२३	६५	६७
२२८	२६	१३	१०३
२२९	९	मि० अ० ।७२।	मि० ।७०। अ० ।७२।
२३०	४	।७१।	।७२।
२३०	११	हुण्डकासम्प्राप्त १	हुण्डकासम्प्राप्त २
२३१	७	मि० सा० १५ २९ १०५ ९४ ० १५	मि० सा० १५ २४ १०९ ९४ ० १५
२३२	११	गुणस्थानानि १४।	गुणस्थानानि १३।
२३२	३०	तीर्थञ्च	तीर्थङ्करञ्च
२३५	२१	७२	७७
२३५	२४	कुतः २	कुतः ?
२३६	८	सूक्ष्मलोभस्य बन्धोऽस्ति	सूक्ष्मलोभस्य [बन्धाभावात्सप्तदशप्रकृतीनां] बन्धोऽस्ति
२३६	१३	अठारह प्रकृतियों	अठारह तथा सूक्ष्मसाम्परायके सतरह प्रकृतियों
२३६	३१	९	१
३३७	४	४२	४३
२३७	२८	मत्यादि चार····। केवलज्ञानमें	मत्यादि तीन····। मनःपर्यय ज्ञानमें प्रमत्तादि सात गुणस्थान होते हैं। केवलज्ञानमें
२३८	१७	११७ ७४ ७४ ७७	११७ १०१ ७४ ७७
२४०	२६	१६ ० ० ०	१६ ० ० १
२४०	३०	मनुष्यायु, तिर्यगायु, मनुष्यद्विक,	नरकायु, तिर्यगायु, नरकद्विक
२४१	२१	औदारिक-तङ्गोपाङ्गद्वयं	औदारिक-तदङ्गोपाङ्गद्वयं
२४१	२५	प्रकृती २ प्रमत्तोपशम-	प्रकृतीरप्रमत्तोपशम-
२४२	३२	तिर्यग्द्विकं २	तिर्यग्मनुष्यायुर्द्वयं २
२४४	२५	३०००।२०००	३०००।७०००।२०००
२४७	१८	साग० ३२	साग० ३३
२५३	३६	जघन्य	अजघन्य
२५४	२३	अनादि	×
२५६	१८	सप्तदशोत्तरसर्व-	सप्तदशोत्तरशतसर्व-
२५६	२०	उत्कृष्टविशुद्ध····तद्विपरीतेनोत्कृष्टमविशुद्ध	उत्कृष्टं विशुद्ध····तद्विपरीतेन अविशुद्ध
२५६	३२	तद्देवायुर्बन्धान्निरतिशये	तद्देवायुरबन्धान्निरतिशये
२५७	८	अप्रमत्तसंयतके	प्रमत्तसंयतके
२५८		गाथा ४३२ के अर्थके नीचे दिये गये उत्थानिका वाक्यको इसी गाथाके ऊपर पढ़ें।	
२५८	२३	निर्बध्नाति ३।	मुनिर्बध्नाति ३।
२५९	२३	सेणाणं पयडीणं	सेसाणं पयडीणं
२६१	२२	जघन्योत्कृष्टबन्धा-	जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टबन्धा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६१	२९	० ध्रुव अध्रुव	० ० अध्रुव
२६१	३०	० ,, ,,	० ध्रुव ,,
२६१	३१	० ,, ,,	० ० ,,
२६१	३२	० ,, ,,	० ध्रुव ,,
२६२	११	५ उत्कृ०	४ उत्कृ०
२६३	२३	साद्यध्रुवाभ्यां अजघन्या-	साद्यध्रुवाभ्यां जघन्यानुभागबन्धः साद्यध्रुवभेदाभ्यां अजघन्या-
२६३	२५	४३ जघ० ०	४३ जघ० सादि ०
२६३	२६	४३ अज० अना०	४३ अज० ,, अना०
२६३	२७	४३ उत्कृ० ०	४३ उत्कृ० ,, ०
२६३	२८	४३ अनु० ०	४३ अनु० ,, ०
२६६	२९	आदेयं १	अनादेयं १
२७०	३१	वण्णचउक्क पसत्थं	वण्णचउक्कापसत्थं
२७१	१०	उपघातः १ प्रशस्तवर्ण-	उपघातः १ अप्रशस्तवर्ण-
२७१	२२	और प्रशस्त वर्ण	और अप्रशस्त वर्ण
२७४	४	यद्य परिवर्त्तमान-	यदा परिवर्त्तमान-
२७४	१६	संस्थानं १, संहननं १	संस्थानं ६, संहननं ६
२७४	१७	मनुष्यद्विकं ५	मनुष्यद्विकं २
२७४	१७	देवद्विकं २	स्वरद्विकं २
२७४	३०	-वरणं १ निद्रानिद्रा	-वरणं १ [निद्रा १ प्रचला १] निद्रानिद्रा
२७५	१	कुतः १	कुतः ?
२७७	४	तासु घातिन्यः ७५ ।	तासु अघातिन्यः ७५ ।
२७९	११	ये सर्व ६१	ये सर्व ६२
२८०	२३	सूक्ष्मचतुः	रूक्षचतुः
२८३	८	णाणंतरायदयं	णाणंतरायदसयं
२८६	२९	मिश्रगुणस्थानको	चौथे गुणस्थानको
२८८	४	और प्रकृतियोंका अल्पतर बन्ध	और अल्प प्रकृतियोंका बन्ध
२८८	६	तथा प्रकृतियोंका अधिकतर बन्ध	तथा अधिक प्रकृतियोंका बन्ध
२८८	१७	देवगति-नरकगति	नरकगति
२८९	२७	ये ३७	ये २७
२९१	२८	पल्यस्याविभागप्रतिच्छेदाः	तस्याविभागप्रतिच्छेदाः
२९७	१६,१७,१८	८ ७ ७ ६ ८ ८ ८ ८ ८ ८ ८ ८	८ ७ ६ ८ ८ ८ ८ ८ ८
२९७	२६	अष्टधाऽष्टधा सप्तधा	अष्टधाऽष्टधा अष्टधा
२९७	२९	८ ८ ७ ७ ७	८ ८ ८ ७ ७
२९७	३६	तथा आठ प्रकृतिक सत्त्वस्थान;	×
२९८	२२,२३,२४	भवतः ८ ७ ८ ८ ८ ७	भवतः ८ ७ ८ ८ ८ ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०२	२४,२५,२६	सत्ता ० ० ४ ४ ६ ६	सत्ता ० ० ४ ५ ६ ६
३०३	३	४।४	४।५
३०३	२६	भङ्गाः । पञ्च	भङ्गाः पञ्च
३११	४१	ति २।१ ति २।३ २।२	ति २।१ ति २।१ २।२
३१३	६	२।२	३।२
३१३	३७	नौ बन्ध	नौ भङ्ग
३१५	११	३।२१।	३।२।१।
३१६	१९	२२	२ २
३१६	२०	सासणे २० पत्थारो	सासणे २१ पत्थारो
३२१	१४	पुनः मध्यमप्रत्याख्यान	पुनः मध्यमाप्रत्याख्यान
३२२	२	डदयस्था०	उदयस्था०
३२२	१२	२१, १२	२१, १३, १२
३२३	९	२१ ३	२१ ९
३२३	१७	५ ४ २ ४	५ ४ २ २
३२४	८	२०	२२
३२४	१४	मिश्रसहितमष्टकं	मिश्ररहितमष्टकं
३२४	१७	१२ ९	१३ ९
३२८	२	५ ४ २ १	५ ४ २ २
३२८	३	४ १ १२	४ २ १२
३२९	६	सुहमे ।	सुहमे १।
३२९	१४	१२।१२।४।३।२।१	१२।१२।४।३।२।१।१
३२९	२४	(यथा—२।२।१।१।१।१।१।)	(यथा—२।२।१।१।१।१।१।१।)
३३३	१४	सत्ताईस	×
३३३	२९–३२	किन्तु जिस·······सत्ताईस प्रकृतिक सत्त्व-स्थान होता है।	×
३३४	२५	तेईस और	तेईस, बाईस और
३३८	१५	नारकी	×
३४०	१९	पर्याप्तं १ स्थिरा-	पर्याप्तं १ प्रत्येकं १ स्थिरा-
३४०	२७	दुर्भग और यशस्कीर्ति	दुर्भग, यशस्कीर्ति
३४३	३२	सुस्वर और यशःकीर्त्ति	सुस्वर, यशःकीर्त्ति
३४४	३	(२ × २ × = ८)	(२ × २ × २ = ८)
३४४	२६	।२।४।५	।२।२।५
३४५	५	१।२।१	१।१।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४५	११	(६×६×२×२×२×२× २×२=)	(६×६×२×२×२×२×२× २×२=)
३४६	२३	प्रमत्तसंयत	×
३४७	३	प्रमत्त	×
३४९	२	१+१+१+८+१+८=२०	१+१+८+८+१=१९
३४९	३	(तिर्यग्गति	(नरकगति-सम्बन्धी १ + तिर्यग्गति
३४९	४	२०=	१९=
३५०	१२	संयुक्त उदयस्थान	संयुक्त पच्चीसप्रकृतिक उदयस्थान
३५२	१८	३०,।	३०, ३१।
३५३	१४	९ दुर्भगं १	२ दुर्भगं १
३५५	१७	वर्षसहस्राणि १०००। द्वाविंशतिः	वर्षसहस्राणि द्वाविंशतिः
३५५	३१	स्थानं भवति ।	स्थानं न भवति ।
३६७	२३	उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ।	उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्य है ।
३६७	२४	अनन्तमुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
३६८	१७	षड्विंशतिकं २७	षड्विंशतिकं २६
३७६	१६	स्थानके ३	आठ प्रकृतिक व नौ प्रकृतिक स्थानके ३
३८०	२३	मिश्रकायनोग	मिश्रकाययोग
३८०	२९	-कायकोगमें	काययोगमें
३८१	१२	२९।३०	२९।३०।३१
३८१	२२	उनतीस और तीस प्रकृतिक और आठ	उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतिक नौ
३८१	३७	केवलज्ञानमें इकतीस,····तीन	केवलज्ञानमें तीस, इकतीस,····चार
३८२	१३	२०।२१।२४।२६।२७	२०।२१।२६।२७
३८३	२	२७।२८।३०।३१	२७।२८।२९।३०।३१
३८३	४	२५।२७	२५।२६।२७
३८३	५	२१।२५।२७।२८····२०।२१।२५	२१।२५।२६।२७।२८····२०।२१।२५।२६
३८३	१३	और छब्बीस	×
३८३	१४	शेष सात	शेष आठ
३८३	२९	२१।२४।२६।२७।२८।	२१।२५।२६।२७।२८।
३८४	२२	स्वशरीरेषु	सुस्वरेषु
३८४	२९	शरीरमिश्रे २४।२५।	शरीरमिश्रे २४।
३८४	३०	२६।२७। उच्छ्वासपर्याप्तौ २६ उदयागतं	२५।२६। उच्छ्वासपर्याप्तौ २६।२७। उदयागतं
३८४	३३	शरीरपर्याप्तौ २७ उदेति ।	शरीरपर्याप्तौ २८।२९। उदेति ।
३८५	५	शरीरमिश्रपर्याप्तौ २४/२५	शरीरमिश्रपर्याप्तौ २४
३८५	६	शरीरपर्याप्तौ २६	शरीरपर्याप्तौ २५, २६
३८५	२२	६३।९२।९१।९०।८८।८२।८२	९३।९२।९१।९०।८८।८४।८२
३८७	८	मनुष्यद्विक	नरकद्विक
३८८	२२	९३।६२।६१।९०।	९३।९२।९१।९०।
३८८	३०	८१। तिर्यग्गतिको	८२। तिर्यग्गतिको
३८९	७	मिस्से ९२।६०।	मिस्से ९२।९०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८९	८	देवेसु ९३।९२।९१।६०।	देवेसु ९३।९२।९१।९०।
३८९	१०	द्विनवतिकं ९०	द्विनवतिकं ९२
३८९	१५-१६	तीर्थयुतं ९२ न आहारयुतं चास्ति ९०;	तीर्थयुतं न, आहारयुतं चास्ति ९२।९०;
३८९	२६	मि० ९२ ९१ ८८ ८४ ८२	मि० ९२ ९१ ८८ ८४
३९०	३	सू० ९३ ९२ ६१ ९०	सू० ९३ ९२ ९१ ९०
३९०	१८	८८ ८४ ८२	८८ ८४
३९०	३१	४ १० ९	१० ९
३९१	९	३०।९।८।	३०।३१।९।८।
३९१	१०	७८।१०।९।	७८।७७।१०।९।
३९२	२७	९९, ९०, ८८, ८४	९२, ९०, ८८, ८४
३९७	१	१ प्रथमसंस्थानं १	१ वैक्रियिकशरीरं १ प्रथमसंस्थानं १
३९७	३६	२'५२–२५१	२५०–२५१
३९८	२३	९१।९२।	९१।९३।
३९८	२९–३१	जो असंयतसम्यग्दृष्टि आदि····देवलोकको जाते हुए कार्मणकाययोग	जो असंयत सम्यग्दृष्टि देव या नारकी तीर्थंकर-प्रकृतिका बंध कर रहा है, वह मरण करके मनुष्यगतिको जाते हुए विग्रहगतिमें तीर्थंकर प्रकृति सहित देवगति युत २९ प्रकृतिक स्थानका बंध करता है, उसके कार्मणकाययोग
३९९	२८	८८ द्व्यशीतिकं	८८ चतुरशीतिकं ८४ द्व्यशीतिकं
४०१	२२	२७।२८।	×
४०१	२४	बन्धः १९ म० ।	बन्धः २९ म० ।
४०१	२५	२७।२८।	×
४०१	२६	स० ९३।९०।	स० ९२।९०।
४०३	२७	मनुष्यगतियुत	×
४०३	२८	प० म० म० ती०	प० उ० म० ती०
४०३	२९	पं० ति०।उद० २१········पं० ति० ।	पं० ति० उ०।उद० २१········पं० ति०–
४०३	३१	सत्ता ९१।वंशा	सत्ता ९३।९१।वंशा
४०४	१	२१।२४।२६।३०।३१।स० ९०।	२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१ स० ९२।९०।८८।८४।८२।
४०४	१६	८२, ९०	९२, ९०
४०८	३६	स० ६ ४	स० ६ ६
४०८	३७	४	०
४०९	४	४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४।५	४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४।५ ४
४०९	५	९ ९ ९ ९ ९ ६ ४	९ ९ ९ ९ ६ ६ ४
४०९	२७	और पाँचप्रकृतिक	और छहप्रकृतिक
४११	२२	अयोगिकेवलीमें भी ये ही दो भङ्ग	अयोगिकेवलीमें भी ये ही दो भङ्ग बन्ध विना
४११	२३	वेदनीय कर्मके बन्धका अभाव	वेदनीय कर्मकी किसी एक प्रकृतिकी सत्ताका अभाव
४११	२४	बंधके विना	×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१३	१–२–३	म ३ म ३ ० ति २ ति २ ति २ ति२ म२ ति २ ति २ ति २ म ३	म ३ ० ति २ ति २ ति २ म ३ ति २ म ३
४१३	१७	स० २ २।२ ३।२ २।२ २।३ ०	स० २ २।२ २।२ २।३ २।३ ० ३ ०
४१३	२४–२५–२६	म ३ ३।२	म ३ म ३ म ३ ३।२ ३।३ ३।३
४१३	३५	तिर्यगायुसम्बन्धी	तिर्यंचोंमें आयुसम्बन्धी
४१३	३५	मनुष्यायुसम्बन्धी	मनुष्योंमें आयुसम्बन्धी
४१३	३८	केवलीके ६ भङ्ग बतलाये गये हैं।	केवलीके १ भङ्ग बतलाया गया है।
४१३	३९	२८+९)	२८+१)
४१५	२०	सप्तिकाकार	सप्ततिकाकार
४१८	१०	य पज्जत्ते	अपज्जत्ते
४१८	१३	,,	,,
४१८	२५	बादरपर्याप्तयोः	बादरापर्याप्तयोः
४१९	२६	२२, ९०,	९२, ९०,
४२१	१८	३१। उदयाः	३१।१। उदयाः
४२१	२४	२३ २१।२१ ९२	२३ २१।२४ ९२
४२१	२६	८२	८८
४२१	२८	२०	३०
४२३	१८	५ ५ ० ० ०	५ ० ० ० ०
४२४	१८	६। एता	६। षट् प्रकृतयः सत्त्वरूपाश्च ६। एता
४२७	९	४ ४ ०	४ ० ०
४२७	१०	४।५।४ ४।५।४ ४।५।४	४।५ ४।५ ४।५।४
४२७	१३	० ४ ० ० ०	० ० ० ० ०
४२८	१९	बं० १ १ १ १	बं० १ १ ० ०
४२८	२२	बं० ० ०	बं० १ १
४३१	३४	णिरयाउगं उदयं बंधं मणुयाउगं ५।	णिरयाउगं बंधं मणुयाउगं उदयं दो वि संता ५।
४३२	१	दो वि संता तिरियाउगं	तिरियाउगं
४३३	८	षष्ठः ५।	षष्ठः ६।
४३३	२३–२८	मि० ५ ८ ८ ५ २६	मि० ३ ५ ५ ३ १६ ०
४३४	२६	२ १ १ १ १ १ १ १ १ १	२ १ १ १ १ १ १ १ १ २
४३७	३०	२ २ २ २ २ २	२ २ २ २ १ १
४३७	३६	२ २ २	२ २ २।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३८	४	४।३।२।	४।२।
४४०	२९	९ ९ ७ ९	९ ९ ९ ९
४४१	३२	शेषाः अपूर्वकरणस्य	शेषाः अनिवृत्तिकरणस्य
४४२	४	क्षायोपशमिकसम्यक्त्वी	क्षायोपशमिकसम्यक्त्व भी होता है, अतः
४५०	९–१०	७ ८।८ चतुर्भङ्गा	७ ८।८ चतुर्भङ्गा ९
४५१	३१	मिथ्यादृष्टौ ८०।१२। सासादने	मिथ्यादृष्टौ ८०।१२।गु० २४। सासादने
४५२	२६	(२२०८ × ११५२	(२२०८ + ११५२
४५५	१७	भवन्ति १४।	भवन्ति १७।
४५५	३२	२६ भङ्ग	३६ भङ्ग
४५५	३३	२६ =) १४४	३६ =) १४४
४५६	१६	अनि० ९ ९ १२ १०८	अनि० ९ १ १२ १०८
४५६	१७	९ ४ ३६	९ १ ४ ३६
४५६	१८	सूक्ष्म० ९ ९ १	सूक्ष्म ९ १ १ ९
४५७	२	चालीस और	चबालीस और
४६१	२६-२८	७ सासणे उदया ८८ ७	७ सासणे उदया ८।८ ९
४६४	५	१९१६।५१२	९२१६।५१२
४६४	२४	सासादन १३	सासादन १२
४६७	५	अ० ८ ६४ ६	अ० ८ ६० ६
४६७	२२	सासादन ५ ८ २४	सासादन ५ ४ २४
४६७	२४	अविरत ६ ८ २५	अविरत ६ ८ २४
४६७	३१	सूक्ष्मसाम्प० ७ १ १	सूक्ष्मसाम्प० ७ १ ७
४६८	१४	इस प्रकार हैं—६८, ३२	इस प्रकार हैं—६८, ३२, ३२
४७०	८	दे० ५२ ६ २१२ २४	दे० ५२ ६ ३१२ २४
४७०	२८	अपूर्वकरण ७ २० २४ ३६६०	अपूर्वकरण ७ २० २४ ३३६०
४७१	२१	८ ८ ८ ८ ८	८ ८ ८ ८ ४
४७५	१७	१९१	१९२
४७५	१९	१६०	३६०
४७५	२३	२	२०
४७५	२४	१२ ४४ १	१२ २४ १
४८४	१५	सासादनमें २,	सासादनमें २८, (इस पंक्तिको पंक्ति ७ के पश्चात् पढ़ें)
४८४	२१	अप्रमत्तविरतगुणस्थानमें २८, १४, २३,	अप्रमत्तविरतगुणस्थानमें २८, २४, २३,
४८९	२८	प्रकृतिक ९० होते हैं ।	९० प्रकृतिक होते हैं ।
४९०	१	गुणस्थान	उदयस्थान
४९१	२६	८९।७९	८०।७९
४९२	३	उपरिम दो दो छोड़कर	उपरिम दो छोड़कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९२	३३	क्षी० ० २ ३०	क्षी० ० १ ३०
४९३	३	८० २९ ७८ ७२ १०	८० ७९ ७८ ७७ १०
४९४	३	२८।२९	२७।२८।२९
४९५	४	यियासीको	बियासीको
४९५	२७	तिर्य० ६ २२, २५, २६, २७, २९,	तिर्य० ६ २३, २५, २६, २८, २९,
४९५	३२	देव० ४ २५, २६, २८, २९, ३० ।	देव० ४ २५, २६, २९, ३० ।
४९५	२५	टौकामें	टीकामें
४९८	१६	।अष्टाविंशतिकर्वाजतानि उदयस्थानान्याद्यानि	अष्टाविंशतिकवर्जितानि । उदयस्थानान्याद्यानि
४९८	१८–२०	स्थावरकायिकोंमें····प्रारम्भके	स्थावरकायिकोंमें २८ को छोड़कर प्रारम्भके
४९८	१९	तथा अट्ठाईसको छोड़कर आदिके	तथा आदिके
५००	७	उदयस्थाने द्वे चतुर्विंशतिके	उदयस्थाने द्वे षड्विंशतिक-चतुर्विंशतिके ।
५०२	२	२८।२९।३०।३१।	२७।२८।२९।३०।३१।
५०६	२०	२१।२४।२५।२६	२१।२५।२६
५०७	१४	८८।८४।	८८।८४।८२
५०९	३	ये दश बन्धस्थान	ये छह बन्धस्थान
५०९	९	नोभव्याभव्ये अयोगे	नोभव्याभव्ये सयोगे अयोगे
५०९	२४	नवतिकादीनि	त्रिनवतिकादीनि
५११	२	एकोनत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि	एकोनत्रिंशत्कत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कानि
५१३	२४	बं० ६ २३, २४, २६	बं० ६ २३, २५, २६
५१४	४	बं० ८ २२, २५	बं० ८ २३, २५
५१४	३६	बं० ५ २५, २६, २८, २९, ३० ।	बं० ४ २५, २६, २९, ३० ।
५१५	६ व ९	स० ४ ९३, ९२, ९१, ९० ।	स० २ ९३, ९२ ।
५१५	२६	उ० ३ २८, ३०, ३१ ।	उ० ३ २९, ३०, ३१ ।
५१५	२७	स० ६ ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२ ।	स० ३ ९२, ९१, ९० ।
५१६	३८	उ० ७ २१,२५,२७,२८,२९,३०,३१ ।	उ० ८ २१,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१ ।
५१७	२	,, ,, ,,	,, ,, ,,
५१८	२	उ० ६ २१,२६,२८,२९,३०,३१ ।	उ० ७ २१, २४, २६, २८, २९, ३०, ३१ ।
५१८	१२	उ० ५ २१, ३०, ३१, ९, ८ ।	उ० ३ २१, ९, ८ ।
५२१	१०	इन इक्कीस-	इन इकतालीस
५२४	१	(४७)	(४३)
५२५	५	अ० ४३ अ० ४३	अ० ४६ अ० ४३
५२५	१२	तिरेपन	तिरेसठ
५२६	१०-११	गुणस्थानके अन्तिम समयमें	गुणस्थानमें
५२९	१२	भाष्यगाथाकार	मूल सप्ततिकाकार
५३१	६	ऊणसंजोजणविहिं	अणसंजोजणविहिं
५३५	३	देवगतिके साथ नियमसे बँधनेवाली दश	जीवविपाकी दश
५३५	१५	११	१०
५३५	१७	१४४	११४
५३५	४१	'रभ्रदेव'	'श्वभ्रदेव'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५३६	१६	असत्त्व प्रकृतियाँ	अपूर्वकरणमें असत्त्व प्रकृतियाँ
५३६	१९	२४	३४
५३६	२३	४०	४४
५४२	१४	जागुण-भविय	जाणुग-भविय
५४६	४	पुण्य पाप	×
५५०	११	१००	१०
५५२	२८-२९	जसकित्तिणामं [अजसकित्तिणामं]	×
५६४	९	दंसग चउ	दंसण णव
५६४	११	णिरयाऊ तिरियाऊ	णिरय-तिरिय-मणुयाउ
५६४	२१	आवरणमंतराए चउ पण	आवरणमंतराए णव पण
५६४	२७	णिरियाउग''''मणुवगइमेव ।	तिरियाउग''''मणुवतिरिगइमेव ।
५६६	९	छक्केक्केक्केक्क	छेक्केक्केक्केक्क
५६६	३३	पज्जत्तेयसरीर	पत्तेयसरीर
५६७	१३	लोभ तिरिक्खगदि	लोभ[तिरिक्खाउग]तिरिक्खगदि
५६७	१९	इत्थीवेदाणं	इत्थी-पुंवेदाणं
५६७	२६	जाव	×
५६७	२७	प्पहुडि	प्पहुडि जाव
५६७	३२	'पण मिच्छत्तस्स'	'पण' मिच्छत्तस्स
५७०	१८	कम्मसंध	कम्मखंध
५७०	२५	साणण	सासण
५९१	३८	एदे	[भय दुगुंछा च तेरसण्हं जोगाणमेक्कदरं] एदे-
६००	१	छक्कक्क	छक्केक्क
६०२	२५	पज्जत्त	अपज्जत्त
६०३	१८	पज्जत्त	अपज्जत्त
६०५	१२	मिच्छादिट्ठी	सम्मामिच्छादिट्ठी
६०६	१६	९६।९२।६७।६७।	९६।९१।७०।७०।
६०६	२०	७४।७६।	६९।७०।
६०६	२७	देवेसु	देवीसु
६०७	२०	मिच्छादिट्ठी	सम्मामिच्छादिट्ठी
६०८	१५	मणुसाउगं पक्खित्ते	मणुसाउगं[तित्थयरं] पक्खित्ते
६०८	१६	७१।	७२।
६१३	१२	उच्चागोदाणं	णिच्चागोदाणं
६१५	१९	य जहण्ण-	अजहण्ण-
६१५	२१	य जहण्णं	अजहण्णं
६१७	२८	[असण्णि''''	[सण्णि''''
६२६	३२	णववीस-	अट्ठवीस-
६२८	१२	आहारक-	अणाहारक
६२८	१५	आहारक	अणाहारक
६२८	१८	आहारक-	अणाहारक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३०	१५	तिहुयणसहिदो	तिहुयणमहिदो
६३७	१२	चउवीसं	चउवीसं इगिवीसं
६४४	५	असादं	सादासादं
६४६	१	एगूणतीस	एगूणतीस तीस
६४६	२	बाणउदि	बाणउदि णउदि
६४६	४	एगूणतीस	एगूणतीस तीस
६४६	७	एक्कतीस	तीस एक्कतीस
६४६	३१	चत्तारि	चत्तारिबंधं, चत्तारि
६४७	३१	तिरियाउगं संतं;	तिरिय-तिरियाउगं संतं;
६४९	१०	हाससहियाओ	भयसहियाओ
६४९	३५	सत्त उदयट्ठाणं ।	अट्ठ उदयट्ठाणं ।
६४९	३६	चउवीस भंगो । एदाओ	चउवीस भंगो । एदाओ [सम्मत्त वज्ज दुगुंछ सहियाओ घेत्तूण अट्ठ उदयट्ठाणं । एदस्स तदिओ चउवीस भंगो । एदाओ चेव भयरहियाओ पगडीओ घेत्तूण सत्त उदयट्ठाणं । एदस्स इक्को चउवीस भंगो । एदाओ चेव पगडीओ दुगुंछारहियभयसहियाओ घेत्तूण सत्त उदयट्ठाणं । एदस्स विदिओ चउवीस भंगो ।] एदाओ
६५०	१०	अट्ठ	×
६५०	१८	भय-दुगुंछरहियाओ	भयसहियाओ दुगुंछरहियाओ
६५५	२	सत्तावीस	चउवीस
६५६	८	बाणउदि णउदि अट्ठासीदि	बाणउदि इक्काणउदि णउदि
६५६	९	चउरासीदि वासीदि एदाणि पंच	एदाणि त्रीणि
६५६	१९	चत्तारि	पंच
६७६	२४	८।४।४	७।४।४
६७९	३२	७ / ८५	७२ / ८५
६८०	२८	इष्टानां पुरा	अष्टानां पुरा
६८४	१२	११। सूक्ष्मादिषु	११।१०। सूक्ष्मादिषु
६८४	१९	४२।७।।	४२।५७।।
६८४	२०	४३।।१२। १२।४३।।	४३।४३।। १२।१२।।
६९३	३०	६ २ २ १ ०	६ १ १ १ ०
७०१	१८	स्थितिः २/६ ।	स्थितिः २/७ ।
७०३	३२	६४।	६६।
७०४	६	दशसंयतः	देशसंयतः
७०९	१	शतकाख्यः	सप्ततिकाख्यः
७११	१	शतकाख्यः	सप्ततिकाख्यः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७१२	२–६	२२ २१ वे० ७ ७ ७ ८ ८।८ ८।८ ९।९ ९ ९ १०	२२ २१ १७ वे० ७ ७ ७ ७ ८।८ ८।८ ८।८ ८।८ ९ ९ ९ ९
७१६	२९	२९।३०।३१	२९:३०।
७१७	२४	२९।३०।३१। सोद्योतोदये	२९।३०। सोद्योतोदये
७२२	९	उदये ११।	उदये २१।
७२५	२१	२६।२७।३०।	२६।२९।३०।
७२६	१८	च ४ ४ ४ ५ ९ ९	च ४ ४ ४ ५ ६ ६
७२६	२१	४१।११३।२५।	४२।११३।२५
७२६	२८	निथ्यादृष्टयादिषु	मिथ्यादृष्टयादिषु
७२७	१३	तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती ।	तिर्यगायुरुदये द्वे अपि सती ४।
७२८	१८	९, ८।८, ७।७, ६।७, ६।	६।८, ८।७, ७।६, ७।६
७३४	१२	२६।२७।३०।३१।	२६।३०।३१।
७३४	१८	८२।८०।७९।७७। पुंवेदे	८२।७९।७७। पुंवेदे
७३४	२१	८२।८०।७९।७७।	८२।७९।७७।
७३५	८	चक्षुर्दर्शने बन्धाः—	चक्षुर्दर्शने बन्धाः ८—
७३५	८	उदये ८—२१।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।	उदये ८—२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।
७३५	१२	षटसु	त्रिषु
७३६	१	उदयाः ६—२१।२६।२८।२९।३०।३१	उदयाः ९—२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।
७३६	२०	१ १ १ ०| ० ० ० ०|	१ १ १ ०| ० ० १ ०|
७३८	९	भागेषु २ ५	भागेषु २ ५८
७४०	२३	७५। तथौदारिकमिश्रे	७०। तथौदारिकमिश्रे
७४५	३०	सैंतीस जीवसमास	अड़तीस जीवसमास
७४७	३६	अनुष्यानु०	मनुष्यानु०
७५१	२१	२२ ९० ५	२२ ९८ ५
७५१	२२	१७ १०७ १६	१७ १०३ १६
७५१	२८	ईशानकालकी	ईशान कल्पकी
७५१	३१	१०३ १ ८	१०३ १ ७
७५३	६	अविरत ७५	अविरत ७०
७५४	५	बन्ध १०५	बन्ध १०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७५४	६	अबन्ध ३ ७ ३४ ३१ ४१ ४५ ४९	अबन्ध ३ १० ३७ ३४ ४४ ४८ ५२
७५४	७	बन्धव्यु० ४	बन्धव्यु० ७
७५४	२८	बं० व्यु० ९ ४ ६ ० ३६ ५ १६ १०	बं० व्यु० ९ ४ ६ ० ३६ ५ १६ ०

यह शुद्धिपत्र भी श्री० ब्र० पं० रतनचन्द्रजी मुख्तारने ही तैयार करके भेजा है, इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

—सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org